पद्मावती परिषद्का मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल।

(सामाजिक, धार्मिक, ऐतिहासिक लेखों तथा चित्रोंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

विषय सूची।

२ रा वर्ष.

पोष्टेज सहित वार्षिक मूल्य २) रु०

एक अंकका मूल्य ≈) आना।

१ ला अंक.

पद्मावती पुरवालके नियम।

१ यह पत्र हर महीने प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य ग्राहकोंसे २) रु० और पद्मावती परिषद्के सभासदोंसे १॥) रु० पेशगी लिया जाता है।

२ इस पत्रमें राजविरुद्ध और धर्मविरुद्ध लेखोंको स्थान नहिं दिया जाता।

३ इस पत्रके जीवनका उद्देश्य जैन समाजमें पैदा हुई कुरीतियोंका निवारण कर सर्वज्ञप्रणीत धर्मका प्रचार करना है।

४ विज्ञापन छपाने और बटवानेके नियम निम्नलिखित पतेसे पत्र द्वारा तय करना चाहिये।

श्री "पद्मावतीपुरवाल" जैन कार्यालय

नं० ८ महेंद्रबोस लेन, श्यामबाजार, कलकत्ता।

संरक्षक, पोषक और सहायक।

२५) ला० शिखरचंद्र वासुदेवजी रईस, ईडला।

२५) पं० मनोहरलालजी, मालिक—जैनग्रंथ उद्धारक कार्यालय, बंबई।

२०) पं० लालारामजी मक्खनलालजी शास्त्री लेखक चावली।

२५) पं० रामप्रसाद गजाधरलालजी (संपादक) कलकत्ता।

२५) पं० मक्खनलाल श्रीलाल (प्रकाशक) कलकत्ता।

१२) पं० फूलजारीलालजी धर्माध्यापक जैनहाई स्कूल, पानीपत।

१२) पं० अमोलकचंद्रजी प्रबंधकर्ता जैनमहाविद्यालय, इंदौर।

१२) पं० सोनपालजी जैन भारौलगांव वाले, पाढ़म।

१२) पं० वंशीधर खूबचंद्रजी शास्त्री जैनसिद्धान्तविद्यालय मोरेना।

१२) पं० शिवजीरामजी उपदेशक प्रांतिकसभा।

१२) पं० कुंजबिहारीलालजी अध्यापक जैनपाठशाला, प्रांतिज।

५) पं० रघुनाथदासजी रईस, सरनौ (एटा)

५) ला० बाबूरामजी रईस वीरपुर।

५) ला० लालाराम बंगालीदासजी पेपर मर्चेंट, धर्मपुरा-देहली।

५) ला० गिरनारीलालजी रईस, टेहरी (गढ़वाल)

५) शाह बाजीराव देवचंद्र नाकाडे, भंडारा (वर्धा)

नोट—जिन महाशयोंने २५) रु० दिये हैं वे संरक्षक, जिनने १२) दिये हैं वे पोषक और जिनने ५) दिये हैं वे सहायक हैं। इन महानुभावोंने गतवर्षका घाटा पूराकर इस पत्रको स्थिर रक्खा है। आशा है इससाल भी ये कृपा दिखलावेंगे। पत्रका आकार आदि बढ़ा जानेसे अबकी बहुत घाटा पड़ेगा पर हमारे अन्य २ भाई भी ऊपरके तीन पदोंमेंसे किसी एक पदको स्वीकार करनेकी कृपा दिखलावेंगे तो आशा है अवश्य हम सफल प्रयत्न होंगे।

महाशय !

धर्मस्नेहपूर्वक जुहारु ।

आपकी सेवामें पद्मावतीपुरवालका १ला अंक बतौर नमूनाके भेजाजाता है इसका वार्षिक मूल्य २) रु० है । इसके पढनेसे आपको मालूम हुआ होगा कि इसके उद्देश्य और लेख कैसे हैं । आपकी सामाजिक व धार्मिक उन्नति पुरातन ऋषिप्रणीत ग्रंथोंका अनुयायी हो किस तरह करसक्ता है, चित्र जो इसमें रहते हैं वा रहेंगे वे कैसे मार्मिक हैं, वा होनेकी संभावना है । यद्यपि इसका नाम एक जातिवाचक है पर लेख प्रायः समस्त जैनजातियोंके कामके रहते हैं वा रहेंगे इसलिये आशा है कि आगेका जो दूसरा अंक २) रु० की वी० पी० से भेजा जायगा उसे अवश्य ही आप छुडालेंगे ।

कारणवश आप वी० पी० न छुडासके हों तो कृपया १ पैसे का मोह न कर हमें मनाईकी सूचना दे दीजिये जिससे व्यर्थ ही इस पत्रको पांच पैसेका धाटा न उठाना पडे ।

आपका—

मैनेजर—'पद्मावती पुरवाल' ।

८ महेंद्रबोसलेन, श्यामबाजार—कलकत्ता ।

पद्मावतीपरिषद्का मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल

"जिसने की न जाति निज उन्नत उस नरका जीवन निस्सार"

२ रा वर्ष } कलकत्ता, चैत्र वीर निर्वाण सं० २४५४ सन १९२८, { १ ला अंक

हम क्या करें ?

कल्पतरु जिनवर पदछाया, धार भवि जीवन सुख छाया ॥ टेक ॥

जगत दुख सागर अतिभारी, जगत यह देखत भयकारी ।

रहे जे जगमें अविचारी, सहैं वे दुख भी अतिभारी ॥

जगदुख दुखिया जीवको, दुखसे लेट निकार ।

सुखी करे सो जगतमें, धर्म कहावे सार ॥

दिगंबर गुरुने इम गाया, धार० ॥ १ ॥

देव गुरु आगम सरधानो, धर्मका मूल यही जानो ।

शास्त्रमें लच्छन पहिचानो, परखकर इनको सरधानो ॥

विना परख गुरुदेवकी, करे अज्ञानी सेव ।

पट माता हट पक्षमें, नहि जाने गुरुदेव ॥

रतन चिंतामणि कर आया, धार० ॥ २ ॥

दोष अष्टादश परिहारी, अनुपम गुण अनंत धारी।
दिगंबर रत्नत्रय धारी, परम गुरु सबसे हितकारी॥
दिगंबर आगममें कह्यो, यह सरधा उर धार।
श्रावक मुनिवर धर्मको, सफल करे यह सार॥
इसीसे दिव शिव सुख पाया, धार० ॥ ३ ॥

धर्मभक्त—

शरीरको ही आत्मा माननेका फल।

(लेखक—पं० मक्खनलालजी, प्रधानाध्यापक श्रीमहावीरजैन विद्यालय, कलकत्ता।)

संसारमें लोग जिससे इंद्रियां तृप्त होती हैं शरीरको सुख पहुंचता है, मनकी अभिलाषा पूर्ण होती है उसे उपादेय और जिससे इन्द्रियोंकी तृप्ति न हो उल्टी अवसन्नता, शरीरको सुख न पहुंचकर थकावट वा ग्लानि, और मन की अभिलाषा पूर्ण न हो अधूरी रह जाती या होती ही नहीं है उसे त्याज्य समझते हैं। बच्चेसे लेकर बूढे तकको देखिये, कीड़े मकोड़े से लेकर हाथी तकको परखिये, मूर्खसे लेकर बुद्धिमान तक पर निगाह दौड़ा जाइये पर आपको ऊपर लिखे गये उपादेय और त्याज्यके लक्षणसे लक्षित सब ही संसारी जीव मिलेंगे। इसका एक खास कारण है और वह यह है कि अनादिकालसे आत्मा और देहका जुदापन प्रत्यक्ष नेत्र इंद्रिय द्वारा नहीं दीखना, शरीर या इंद्रियोंको दुःख वा बाधा पहुंचने पर उसकी हरकत आत्मप्रदेशोंमें होनेके कारण "शरीर ही मैं हूं" यह विश्वास अटल होता चला आया है और उसने सबके ऊपर ऐसा असर डाल दिया है कि "शरीरसे आत्मा भिन्न कोई पदार्थ है।" इस बातको कहनेवाले पर बेरोक टोक एक तरहका गुस्सासा आजाता है। मन अपने चिर अभ्यस्त शरीरके एकत्व पर नाना तरहके तर्क वितर्क उठाने लगते हैं और "खुद कहीं आत्मासे भिन्न सिद्ध न होजाय" इस बातके लिये पूरीपूरी कोशिश करने लगता है यहांतक कि जो अपने विरुद्ध कुछ भी कोई लिख गया है वा आत्मा और शरीर भिन्न भिन्न पदार्थ है इस बातकी सिद्धि कर चुका है उस को सैकड़ों उल्टी सीधी सुनानेकी विचारता ही नहीं बल्कि सुनाने भी लगता है।

इन पंक्तियोंसे मनकी हालत, उपादेय और त्याज्यका लक्षण पाठकोंने संसारी जीवोंका किस तरहका है यह अच्छी तरह समझ लिया होगा अब हम अपनी समाजके उन नेता बननेवालों की तरफ इशारा करते हैं कि जिन्होंने उपर्युक्त रीतिसे वर्त्तना आरंभ कर दिया है जो लोग समाचारपत्रोंको पढते हैं उन्हें मालूम होगा कि वे लोग किस तरहका परिश्रम अपनी उद्दण्डताकी पुष्टिमें कर रहे हैं। उन्होंने यहांतक साहस कर डाला है कि जिन पुरातन महात्माओं ने अपने ऊपर मनका आधिपत्य स्वीकार न

कर उसीके ऊपर अपना अधिकार जमाया था, जिन्होंने शरीरकी गुलामी मंजूर न कर उसीको गुलाम बनाया था, जिन्होंने इंद्रियोंके फंदमें न पड़ उन इंद्रियोंको ही अपने फन्दमें डाला था उनको कोसना प्रारंभकर दिया हैं। इंद्रियोंके दास बनकर उन्होंने अन्य भाइयोंको अपने सरीखा बनालेनेका जो उद्योग किया है वह तो किया ही है पर पूर्व निर्दोष आचार्योंको भी उन्होंने अपने समान सिद्ध करनेकी चेष्टाकी है " शरीर आत्मासे भिन्न हैं, दोनोंमें एक दूसरेसे विरुद्धता पाई जाती है एक में जब कि जड़ता है तब दूसरेमें ज्ञान पाया जाता हैं ; एक जब अनित्य क्षणस्थायी है तब दूसरा नित्य अजर अमर है जिस प्रकार मनुष्य और तिर्यंच दो गतियां नेत्र इंद्रिय द्वारा प्रत्यक्ष देखनेमें आती हैं उसी प्रकार नरक एवं देव नामकी गतियां भी कोई दो भिन्न भिन्न हैं जिनका कि अस्तित्व आगमप्रामाण्य और अनुमान प्रामाण्य पर कायम है। राम रावण आदि पहिले बहुतसे ऐसे मनुष्य हुये हैं जिन्होंने कि अपने अपने शुभ अशुभ कर्मोंके अनुसार शुभ अशुभ फल पाया था उनका कई जन्मोंसे संबंध चला आया था और आजकल भी जितने जीव इस संसारमे हैं सबका ही परस्पर अपनी अपनी योग्यतानुसार संबध होरहा है और होता रहेगा। " आदि बातोंको नाना उदाहरण प्रत्युदाहरणों द्वारा समझानेवाले आचार्यों पर जिस प्रकार हमला किया जारहा है और उनको सभ्यताकी डींग मारनेवाले लोगों द्वारा असभ्य शब्दोंसे याद किया जारहा है उसके सुनने जाननेसे किस हिताहित विवेकी समदर्शी पुरुषको दुःख न होगा। परंतु समयका बड़ा ही माहात्म्य हैं वह सब कुछ करा लेता है इसके सिवा ऊपर लिखा गया जो आत्माको ही शरीर और शरीरको ही आत्मा माननेका जो विचार है उसकी भी महिमा कम नहीं हैं। हम तो यहां तक कह सके हैं कि समयका तो एक तरहका बहाना हैं जो कुछ भी अहितमें प्रवृत्ति होती है और उससे जो जो अनर्थ होते हैं वे समस्त ही इसी एक सिद्धांतके चित्तमें स्थिर हो जानेसे होते हैं।

क्या होगया ?

गजल।

देखते २ क्यांसे क्या होगया ? जो शाहे जहां था गदा होगया ॥ १ ॥
इकदिन मुस्तहर था जो आफाकमें, आज पामाल होकर तबाह होगया ॥ २ ॥
इन चश्मोंने क्या २ लखे इन्कलाब, एक पैदा हुआ, इकफना होगया ॥ ३ ॥
बैठा हुआ था वह मगरूर हो, आह ! पलभरमें दाई कजा होगया ॥ ४ ॥
सारे समाजोंमें बढकर था "जैन", उसमें यह फलक बेवफा होगया ॥ ५ ॥
बज्में जहांमें, उठो, वीर गण ! "भारतिय" मुन्तजिर आसमां होगया ॥ ६ ॥

बूढ़े मदारीका खेल।

घरमें फिरते नाती पोते, पोतोंके भी लडके रोते।

तब भी बुड्ढा रचा विवाह, बाल बनाये अपने सियाह।

लाय बन्दरिया घर बैठायी, हंसी खेलमें कंधा चढायी।

कामी कौतुक होने लागे, इष्टदेव सब रुष्ट हो भागे।

दुनियाकी है चाल विकट। धनसे सबही लगें लिपट॥

चित्रमित्र.

परिषद्की आवश्यकता।

(लेखक—पं० वंशीधरजी न्यायतीर्थ, मंत्री—पद्मावतीपरिषद्)

परिषद्को आपने समझलिया है परंतु फिर भी मैं दुहराना चाहता हूं। आपकी पद्मावतीपुरवाल जाति एक पुरानी जैन जाति होकर भी आज बहुत बुरी अवस्थामें है। उसका उद्धार होना यदि संभव है तो इस परिषद्के द्वारा ही होगा।

आपकी बुराइयां आपके कानोंतक जबतक न पहुंचेंगी तबतक आप उससे सावधान न होंगे जबतक आप एकत्रित न होंगे तबतक वे बुराइयां आपके कानोंतक पहुंचना कठिन बात है एकत्रित होकर भी आप उन्हें सुनना न चाहेंगे तबतक भी वे बुराइयां आपमेंसे दूर न होंगी और न सुनाई ही पड़ेंगी इसलिये एकत्रित होना चाहिये और अपनी बुराइयोंको सुनना चाहिये। उसका यदि कोई मार्ग है तो परिषद् ही एक मार्ग है।

आप हमेशा ही इकट्ठे होते हैं परंतु एकत्रित होकर करते क्या हैं? इस बातपर ही प्रथम विचार करिये।

हमारे माननीय जातिशिरोमणि लाला हीरालालजीका आपको और हमको बड़ा ही शुकिया अदा करना चाहिये बहुत धन्यवाद गाना चाहिये, अत्यंत आभारी होना चाहिये कि उनकी बदौलत आप हम सबको एकत्रित होनेका मौका वर्षमें एकबार मिलजाता है।

गंजमें मेला न होता तो आपको अपनी इच्छानुसार सभा करनेका सौभाग्य प्राप्त न होता। इस मेलेका कुछ लोग विरोध करते थे परंतु यह भूल है। इस मेलेसे हमारी जातिको बहुत कुछ लाभ है। सभाका या परिषद्का कोई दूसरा अर्थ नहीं होता है। मेला या सभा एक ही बात है। लाला हीरालालजी साहबके प्रशंसायोग्य परिश्रमका और शुभभावनाका यह फल बहुत दिनसे चालू है। इस लिये हम जो पद्मावतीपरिषद्का संगठन कर रहे हैं। वह भी न तो कोई नई चीज है और न धर्मके विरुद्ध ही है। लाला हीरालालजीने इस मेलेकी बुनयाद डाली और इस परिषद्के भी शुरूसे ही वे मुखिया बने। कुछ दिन सभापतिकी हैसियतसे उन्होंने इस परिषद्को मदत दी और फिर वे कुल सभाके संरक्षक बनकर हर तरहसे सहायता देते रहे। उस संरक्षक पदको स्वीकार करके आजतक वे सभाको उन्नत करनेमें चेष्टा कर रहे हैं इसके लिये पद्मावतीपुरवाल जाति उनकी ऋणी है।

अब यह देखना चाहिये कि इस मेलेकी या परिषद्की उन्नति कैसे हो और सुधार कैसे हो?

जबतक सिलसिलेसे कोई काम न किया जाय तबतक उसकी उन्नति होना कठिन है। मेला और परीषद्की मंसा यह है कि जाति भाई एकत्रित होकर कभी कभी अपने सुधारकी चिंता किया करें। जो बातें बुरी दीखें उन्हें छोड़नेकी तजवीजें सोचा करें। इसी कामको

सिलसिलेसे चलानेकेलिये परिषद्का जन्म हुआ है।

सिलसिलेसे कोई भी कार्य तब हो सकता है जब कि करनेवाले लोग निर निराले विभागोंपर निरनिराले मुकर्रर हों। धार्मिक कार्योंके जरूरी विभाग करके उनपर कार्यकर्ताओंको नियत करना और नियमानुसार कार्य चलाना-यही इस परिषद्की मंसा है। आज इस परिषद्को इसी इच्छाके अनुसार कुछ टूटा फूटा कार्य करते हुये सात वर्ष हो गये हैं

हम आशा करते हैं कि लाला हीरालालजीके समान और भाई भी बुजुर्गोंकी हैसियतसेधर्म और जातिके प्रेमसे, संतानकी भलाईकी इच्छासे परिषद्के कार्य कर्ताओंको असीस देंगे और हर तरहसे मदत करेंगे जिससे कि परिषद्की मंसा पूरी हो।

बहुतसे लोग समझ रहे होंगे कि परिषद्से धर्म और जातिकी क्या सेवा होगी? कुछ थोडेसे भाई ऐसे भी होंगे कि जो खुद कुछ करना नहीं चाहते हों और जातिकी दुर्दशा पर कुछ पछताते भी न हों। कुछ थोडेसे भाई ऐसे भी होंगे कि जो किसी भी कामके होनेमें विघ्न डाल देना ही अपना कर्तव्य समझते हों। जगमें सभी तरहके लोग होते हैं। यह कोई नई बात नहीं है।

हम उन भाइयोंको भी बुरा नहीं समझते हैं और उनसे घबराते भी नहीं हैं। हां! उनसे हम प्रार्थना करते हैं कि वे चाहें पूछकर हर एक सवालका जवाब सुनलें। हमारा कार्य यदि सच्चा धर्मानुकूल है और शुद्ध अंतःकरणोंसे किया गया है तो किसीके भी विघ्न डालनेसे उसमें विघ्न नहीं आसकता है हमारी ही शिथिलतासे चाहे वह धीरे धीरे चले परंतु उसके फल कभी न कभी अच्छे ही होंगे। जो निःस्वार्थ सेवा कीजाती है उसका फल अवश्य मिलता है और अच्छा ही फल होता है

परिषद्के कार्यविभाग।

परिषद्के कार्य विभाग पांच हो गये हैं।

(१) प्रबंध विभाग।

(२) उपदेशक विभाग।

(३) विद्या विभाग।

(४) समाचार पत्र विभाग।

(५) विरोधनाशक कमेटी।

(१) प्रबंध विभागका यह कार्य है कि परिषद्का दफतर वहांपर रक्खा जाय, उसका कागजात और हिसाब ठीक रक्खे जाय, दूसरे कुल विभागोंके ऊपर जो कार्यकर्ता हैं उनकी कार्यवाहीका संग्रह किया जाय, कार्यकर्ताओंको उत्तेजित रक्खा जाय, सब पासकी रिपोर्ट वार्षिक या जैसी होसके, एकत्रित करके सभामें पास कराई जाय और प्रकाशित की जाय, यह प्रबंधविभागका कार्य दूसरे विभागोंके अच्छे होनेपर अच्छा दीख सकता है और दूसरे विभाग अच्छे न चलते हों, यह भी अच्छा नहीं दीख सकता है। समाजमें जिससे सीधा फल प्राप्त हो सकता है ऐसे आगेके तीन ही विभाग हैं। परंतु प्रबंध विभाग न रहे तो परिषद्का संगठन रहना ही असंभव है। इसलिये आव-

श्यकता प्रबंध विभागकी भी है ही। यदि पूरा विचार किया जाय तो यह बात माननी पडेगी कि प्रबंध विभाग ही सबोंमें मुख्य विभाग है।

आगेके चार विभागोंकी आवश्यकता ना मोंपरसे ही जरुरी जान पडती है। इन विभागोंमेंसे समाचार पत्रमें और विद्याविभागमें काम बराबर इस वर्ष चलता रहा है। गत वर्ष विद्याविभागका ही एक काम हुआ था। परंतु गत अधिवेशनके समय समाचार पत्रकी आवश्यकता कुछ भाइयोंने अधिक बताई थी इसलिये इस वर्षमें पूरी हो गई है।

समाचार पत्रका क्या कार्य है और उससे क्या उन्नति हुई है? इस प्रश्नका उत्तर समाजबान्धव स्वयं देसकते हैं और नहीं तो उत्तर परोक्ष होनेसे अनुमान द्वारा जाना जासकता है। परंतु इतना उत्तर हम भी देसकते हैं कि आजकलके जमानेमें उन्नतिकेलिये समाचार पत्र एक मुख्य साधन है। इसका कार्य प्रारंभ करके एक वर्षतक बराबर और यथोचित चलाया। इसकेलिये हम संपादक और प्रकाशकके आभारी हैं।

समाचार पत्रकी रिपोर्ट इससे पहिले अंकमें प्रकाशित हो चुकी है। और विद्याविभागकी रिपोर्ट जुदी सुनाई जायगी। विद्याविभागकी आवश्यकता ऐसी नहीं है कि जो समझानी पडे। वर्तमान समयमें जो देश उन्नत हुए हैं वे विद्याकी ही उन्नति करनेसे उन्नत हुए हैं। जिन भाइयोंको अपनी इस जातिकी दशापर कुछ थोडासा भी पश्चात्ताप होता होगा उनको चाहिये कि धनकी और शारीरिक परिश्रमकी मदतसे इस विभागकी वे उन्नति करें।

इस विभागमें लौकिक तथा पारमार्थिक दोनों ही विद्याओंकी उन्नति करनेकी आवश्यकता है। इस उन्नतिके लिये धनकी बहुत ही आवश्यकता होगी। थोडेसे धनसे यह कार्य सिद्ध नहीं हो सकता है। इसलिये आपको घबराना न चाहिये। आपकी ही संततिको सुयोग्य बनानेकेलिये इस धनका उपयोग होगा। जबतक इस विभागमें धनकी मदत पूरी पूरी नहीं मिलेगी तबतक उन्नतिका होना नाम मात्र ही है।

उपदेशक विभागका और विरोधनाशक कमेटीका कोई भी उल्लेख योग्य कार्य इस वर्ष नहीं हुआ। मैं आशा करता हूं कि उक्त दोनों विभागोंके अधिकारी इस बात पर ध्यान देंगे। धनकी कमी भी इस त्रुटिका एक कारण हो सकती है। परंतु कुछ भी काम न हो तो हमारा आलस्य भी इस त्रुटिका मुख्य कारण मानना चाहिये।

समाजमेंके सभी भाइयोंसे मैं इस समय इस बातकी प्रार्थना करुंगा कि उक्त चाहें जिस विभागको चाहें जिस रूपसे मदत कीजिये और जिस विभागके कार्यकर्तामें त्रुटि जान पडती हो उसके स्थानमें किसी भी दूसरे सुयोग्य भाईको नियत कीजिये। यह काम किसी एकका नहीं है जो कि दूसरोंका शामिल होना असंभव हो। आप चाहें जिस प्रकारसे इस परिषद्की उन्नतिमें योग दें, वह सहर्ष स्वीकार किया जायगा।

अब क्या करना चाहिये ?

हमारी उन्नतिमें जो बाधक कारण हैं उनमेंसे कुछ तो ऐसे हैं जो कि दूसरी जातियोंके ही समान हैं। कुछ ऐसे हैं कि जो दूसरी जातियोंसे जुदी तरहके हैं। कुछ ऐसे हैं कि जो थोडेसे प्रयत्नसे ही दूर हो सकते हैं। कुछ ऐसे हैं कि उनके हटानेमें दीर्घ प्रयत्न करना पडेगा। जब हम इन बातों पर विचार करते हैं तो मानना पडता है कि केवल दूसरोंकी नकल करनेसे हमारा भला नहीं होगा। हमें चाहिये कि अपने हानिलाभका हम स्वयं ही विचार करें।

हमारी जातिके लोग प्राय: छोटे गांवोंमें वास करते हैं वे या तो अल्पसंतोषी होते हैं या उन्हें उन्नतिके साधनोंका ज्ञान नहीं होता है। इसी लिये नीतिकारोंने ग्रामवासकी निंदा की है। परंतु साथ ही कुछ सामाजिक ऐसे गुण भी हैं जो कि शहरोंमें वास करनेसे नष्ट हो जाते हैं। जैसे कि सहनशीलता ब्रह्मचर्य अथवा स्वदार संतोष भक्ष्याभक्ष्य विवेक इत्यादि कुछ गुण ऐसे हैं कि उनकेलिये ग्रामवास अनुकूल रहता है।

सच बात तो यह है कि ग्रामवास हो या नगरवास किंतु जिसका सांपत्तिक सुख होता है अथवा जिसे खाने पीनेकी बेफिकरी होती है उसमें ऊपरके गुण सहज ही कम होने लगते हैं इसीलिये धनिक श्रीमंत, तीर्थोंके पंडे, प्रत्येक धर्मोंके मठाधीश, इत्यादि लोग जितने दुर्व्यसनी होते हैं उतने शायद ही दूसरे कोई हों। इसलिये अभ्युदयका बढना भी पापका कारण है। परंतु इतने ही दोषके कारण अभ्युदयसे गुण भी बहुतसे हैं। अभ्युदयके बिना गृहस्थी का जीवन निस्सार है। इसलिये अभ्युदयकी वृद्धि जिसप्रकारसे हो उसप्रकारसे करनी चाहिये। साथ ही जो अभ्युदयके होनेसे दोष आनेकी आशंका है उसकी रुकावट धार्मिक शिक्षणके द्वारा करनी चाहिये। इसलिये ग्रामीण जीवनका सुधार करना होगा।

द्विजत्वके चिह्न—

महापुराणमें भगवज्जिनसेनाचार्यने द्विज गृहस्थोंके लिये त्रेपण क्रिया धारण करनेकी आवश्यकता बताई है। गर्भादिक संस्कार उन्हीं त्रेपन क्रियाओंमें गर्भित हैं। जो इन संस्कारोंको नहीं करता है उसकी गिनती शूद्रोंमें होती है। वह धर्मका पात्र नहीं हो सकता है। उसे जिनेन्द्रकी पूजा करनेतकका भी अधिकार नहीं हो सकता है। उसमें अविनय परस्त्रीगामिता आदि दुर्गुण बढते जाते हैं।

सारांश यह है कि संस्कारोंके बिना मनुष्य किसी भी कामका नहीं हो सकता है। जो जैनधर्म धारनेके सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिके, जिनेंद्रकी पूजा करनेके सबसे उत्तम और मनोवांछित फल हैं वे आज इसीलिये प्राप्त नहीं होते हैं कि संस्कारोंसे हम लोग शून्य हो चुके हैं।

उन संस्कारोंका प्रचार करना चाहिये। संस्कारोंके प्रचारसे भारी कुरीतियां दूर हो सकती हैं। आप यह विचार करें कि जड पदार्थोंको भी संस्कारकी जरूरत पडती है तो मनुष्योंको संस्कारकी जरूरत क्यों न होनी चाहिये ?

आप बुरा न मानें, मैं यदि पंचपापत्यागका प्रश्न करूं तो जिनका नाम भी न उठे ऐसे विरले ही नौजवान निकलेंगे। इसका क्या कारण है? केवल संस्कारका न होना ही कारण है। इसलिये संस्कारकी रीति चलानेकी तर्फ समाजका ध्यान आकर्षित होना चाहिये

इसके सिवा अपनी आजीविकाओंका सिलसिला भी ऐसा होना चाहिये जो कि ऊंच वर्णोंके योग्य हो। खेतीकी आजीविकाको कुछ लोग बुरा समझते हैं परंतु इतनी बात जरूर है कि इस पेशेवालोंको बुद्धिविकाश होनेका संबंध कम रहता है। यही हाल यदि मजदूरोंके द्वारा कराया जाय तो मैं उसे बुरा नहीं मानता हूं हमारे जातिमें जमींदार लोग बहुत हैं। और जमीनकी आजीविका अभ्युदयका कारण है। इसलिये यहां इसकी जिक्र लानी पड़ी है।

अपनी रक्षाका उपाय--

पद्मावती पुरवाल जाति मुख्यतासे तीन प्रांतोंमें विभक्त होरही है। (१) मध्य प्रदेशमें, (२) नागपुर प्रांतमें, (३) मालवा प्रांतमें इन प्रांतोंके पद्मावती पुरवालोंकी संख्या अंदाजन कुल १३०० है। मालवा प्रांतमें १००० है। नागपुर प्रांतमें २०० हैं। बाकी मध्य प्रदेशमें हैं। मध्य प्रदेशकी संख्या सबसे अधिक है। नागपुर प्रांतमें बहुत ही कम हैं। वहांकी दशा देखनेसे मालूम हुआ कि यदि कहीं दूसरी जगह उनके संबंध न होने लगेंगे तो वह संख्या शीघ्र ही खतम होजाने वाली है

ऐसी दशामें कोई ऐसी तजवीज सोचनी चाहिये कि जिससे उनकी रक्षा और वृद्धि हो। अनेक उपायोंमेंसे एक यह भी उपाय है कि उनकी संततिके विवाह संबंध अपनी तरफ किये जांय। इससे बंधुत्व-प्रेम भी बढ़ेगा और समूह शक्ति भी बढ़ेगी। आप अपने विचारोंको यदि उदात्त बनावेंगे तो इसकी बहुत बड़ी आवश्यकता जान पड़ेगी। इसके लिये उधरके बच्चों की शुमार ठीक मालूम होनी चाहिये

इस कामका भार सेठ बालीराम लाडाइ मंडावावाले अथवा सेठ रामायन बकाराम गोहे अभी स्वीकार करेंगे तो यह काम पार पड़ जायगा। मैं पं० रघुनाथदासजी शास्त्रीके इस विषयमें उद्योगपरताकी प्रशंसा किये बिना न रहूंगा कि जिन्होंने यह मार्ग खोलदिया है।

मालवा प्रांतिक सभाके पूर्व सभापति अपनी मर्दुमशुमारी प्रसिद्ध की है और नागपुर प्रांतकी तथा इस मध्यप्रदेशकी श्रीमान् पं० मोतीलालजीने तयार की है। इसके लिये समाज इनका ऋणी है। यह काम बहुत ही जरूरतका था।

अब इस शुमारसे यह पता लगाना चाहिये कि बच्चे जो अविवाहित हैं वे कहां किस होसकें। यह काम कोई पांडे साहिब हाथमें लेंगे तो होसकता है।

प्रांतोंमें शिक्षाका प्रचार--

यदि होजाय तो विवाहादि संबंधों सुधार बहुत कुछ होसकता है। मैं देख रहा हूं कि बहुत कुछ शिक्षासे उपेक्षा उन लोगोंकी होरही है। इस कामपर मेरे मित्र पांडे महावीरसहा-

यजी ध्यान देंगे तो यह काम होसकता है। कमसे कम यदि कोई भाई मुझे पांडोंकी संतानके पूरे पते देंगे तो मैं उन बच्चोंके लिये योग्य शिक्षा दिलानेकी कोशिश करूंगा।

शिक्षाकी आवश्यकता--

आपकी जातिमें शिक्षणका प्रचार बहुत कम है। इस बातकी तरफ आपका ध्यान देनेकी बहुत ही जरूरत है। केवल एक धार्मिक शिक्षणके दिलानेसे ही शिक्षाका काम पूरा नहीं होसकता है। आपको औद्योगिक शिक्षणका भी आलंबन लेना चाहिये।

एटामें जो परिषद्की तरफसे पाठशाला चलरही है उसका पठनक्रम बनानेके लिये और उसका उपयोग करानेके लिये गतवर्ष एक कमेटी नियत कीगई थी। परंतु कमेटीका काम बहुत ही सुस्त रहा। मैं आशा करता हूं कि वही कमेटी आगे इस बातपर ध्यान देगी।

इसी प्रकार मैं विरोधनाशक कमेटीसे भी प्रार्थना करूंगा कि वह अपने कर्तव्यका पालन करे।

आज जब कि सारा संसार अपनी अपनी उन्नति करनेमें लग रहा है और आगे बढ रहा है तो आप अपनी उन्नति करनेमें क्यों पीछे पड़े हुए हैं! आपको इस बातपर बहुत ध्यान देना चाहिये।

विवाहोंका सुधार–

विवाहोंके संबंधमें जो अत्याचार बढरहे हैं वे दूर होने चाहिये। मैं नहीं चाहता हूं कि इन अत्याचारोंका उल्लेख करूं। परंतु प्रत्येक गांवके भाई उन अत्याचारोंको हर तरहसे दबानेका प्रयत्न करें तो वे बंद होसकते हैं। यद्यपि दूसरी जातियोंमें हमारे यहांसे बहुत ही अधिक अत्याचार होते हैं परंतु हम अपनी उपेक्षा तो भी क्यों करें?

स्त्रियोंका शिक्षण।

बहुतसे लोग यह आक्षेप करते हैं कि स्त्रियोंको पढा लिखाकर क्या करना है? परंतु मेरा मतलब यह है कि वे अपनी गृहस्थीका काम सुधार सकें और धार्मिक संस्कार बढा सकें इतनी शिक्षाकी उन्हें भी आवश्यकता है मैं देखता हूं कि बहुतसी लड़कियां अशिक्षित रह जानेके कारण वे बड़ेपनमें भी अपनी गृहस्थीकी संभाल चाहिये जैसी नहीं कर सकती हैं। विवाहोंमें गाली बकनेका रिवाज अभीतक भी जारी है। यह सब फूहड़पना क्यों है? अशिक्षाके ही सबबसे है। इसलिये स्त्रियोंमें भी शिक्षण प्रचार करनेकी आवश्यकता है।

जो लड़कियां छोटेपनसे विधवा होगई हैं वे पढ़ने लिखनेमें लग जांय तो उनका जीवन धार्मिक रूपसे बीत सकता है और वे समाजको भी लाभ पहुंचा सकती हैं। जो सधवा स्त्रियां हैं। वे पाठशालाओंमें पढानेका काम नहीं कर सकती हैं। इसलिये विधवा लड़कियां यदि शिक्षा प्राप्त करने लग जांय तो उनसे पाठशालाओंमें पढानेका काम पूरा होसकता है। इस कामकी बहुत जरूरत है। जगह जगहसे अध्यापिकाओंकी मांग आती हैं। परंतु अध्यापिकाएं मिलती नहीं हैं। यह सब कमी पूरी

करनेकेलिये विधवा स्त्रियोंको तो अवश्य ही पढना चाहिये। यदि विधवा लडकियां पढना चांहे तो मैं उनकी व्यवस्था करनेको तयार हूं।

पद्मावतीबैंक—

परिषद्‌की तरफसे एक ऐसा बैंक खुलना चाहिये जिससे कि जातिको भी मदत मिलती रहे और परिषद्‌के कुल खातोंको भी मदद मिलती रहे। इस बैंककी बाबत माननीय महामंत्री बाबु बनारसीदासजी साहिब शुरुआतसे ही जिक्र करते आरहे हैं। उनके पूज्य पिताजीकी उत्कट इच्छा है कि यह काम पूरा पडजाय। मुझे आशा है कि इसका काम सुरू कर दिया जाय तो अधूरा पडा न रहेगा।

आठ हजार रुपयेके करीब परिषद्‌का ध्रुव फंड है। दो हजार रुपयेके खास बैंकके लिये भाग इकट्ठे और कर लिये जांय। बस, दश हजारकी रकम होते ही यह सुरू कर दिया जाय तो काम चल सकता है। बादमें मुझे उम्मेद है कि रकम बहुत ही जल्दी बढ जायगी। पद्मावती पुरवाल पत्रमें इस विषयका आंदोलन करनेकी जरूरत है-शेअर्स (भाग) इकट्ठे होनेमें विलंब न होगा। जिससे भाग देनेवालोंको भी और परिषद्‌को भी प्रतिफल योग्य मिलसके ऐसे नियम व उद्देश तयकरलेने चाहिये खास बात इतनी रक्खी जांय तो ठीक होगा।

१ एक भाग दश रुपयेका हो।

२ नफा आधा भागीदारको और आधा परिषद्‌को मिले।

३ मूल द्रव्यका मालिक भागीदार समझा जाय।

अब एक ध्यानदेनेकी बात सुनिये. परिषद्‌के प्रबंध खातेका काम एक क्लार्कके बिना नहीं चल सकता है। एक आदमी इसी कामपर मुकर्रर हो तो सर्व दूसरे खातोंकी भी संमाल उसीसे कराली जासकती है। इस क्लार्कके लिये और दफ्तर खर्चके लिये सालभरमें कमसे कम दोसौ रु० की जरूरत रहती है। उस खर्चेकी पूर्ति सभासदी फीससे हो सकती है जो कि एक रुपया सालाना है। परंतु इससाल परिषद्‌के सभासद या मेंबर बहुत ही कम बने। इससे काम चलना कठिन है। इसलिये जो भाई चाहते हैं कि परिषद्‌का काम अच्छा चले उन्हें चाहिये कि मेम्बर बनकर और हर तरहसे इस प्रबंध खातेकी मदत करें।

इस परिषद्‌की रजिष्टरी करानेका विचार गत अधिवेशनमें तय हुआ था। तदनुसार रजिष्टरीका मसौदा और पचास रु० फीसके भेज दिये गये हैं। रजिष्टरीका जवाब अभी नहीं मिला है परंतु संभव है कि बहुत ही जल्दी सरकारसे मंजूरी आजायगी।

मैं प्रत्यक्ष और परोक्षमें उन महाशयोंको धन्यवाद देता हूं, कि जिन्होंने परिषद्‌के कामोंमें मदतकी है और जो परिषद्‌के साथ सहानुभूति रखते हैं।

दिल्लीके पं० प्यारेलालजी साहिब एक बडे ही सज्जन और उत्साही हैं जो कि परिषद्‌की उन्नतिको दिलसे चाहते हैं। ऐसे सौ पचास भाई भी यदि एक दिल होकरके काम करें तो क्या असंभव है कि कामोंकी तरक्की न हो? ऐसे भाइयोंको मैं अंतःकरणसे धन्यवाद देता हूं।

परिषद् के आय और प्रतिफल पर ध्यान दीजिये।

प्रतिफल—

१ विद्याविभागद्वारा आपके बच्चोंको जो शिक्षा मिलेगी वह ऐसी सुसंस्कृत होनी चाहिये कि उसके द्वारा अपना पुराना आर्यधर्म फिरसे जाग्रत होउठे, सदाचारी गृहस्थ बननेके संस्कार पैदा हों, अपने प्यारे जैनधर्मसे विमुखता न होकर उसमें प्रीति उत्पन्न हो, ब्रह्मचर्यका महत्व बढे और देशभरकी सेवा करनेका उत्साह जाग्रत हो।

२ मातृभाषाकी योग्यता सबसे प्रथम कराई जाय जिससे कि लिखने पढनेकी आवश्यकता पूरी होसके। आजकल लिखने पढनेकी योग्यताकी कमी उसीकी आवश्यकता पडती है।

३ समाचार पत्र और उपदेशक विभाग द्वारा समाजकी धार्मिक तथा व्यवहारसंबंधी कुरीतियां दूर कराई जांय। साथ ही यह ध्यान रहे कि, ऐसी उच्छृंखलता उपदेशकोंमें तथा समाचारपत्रमें न आनी चाहिये जिससे कि पारस्परिक द्वेष बढे और बोलने लिखनेमें हलकापन प्रतीत हो। उपदेश और लेख वजनदार होने चाहिये।

४ प्रबंधखाता कायम रक्खा जाय और मजबूत बनाया जाय। क्योंकि, वह खाता रहेगा तो परिषदका नाम मात्र ही कायम रहेगा यह बात नहीं है किंतु एकता और सच्ची एकताका उपयोग तभी होसकेगा।

आयके उपाय और मार्ग—

१ सभासदी फीस द्वारा प्रबंध खातेकी मदद होनी चाहिये।

२ विद्याविभागका, उपदेशक विभागका तथा प्रबंध विभागका ध्रुवफंड करना चाहिये और बढना चाहिये।

३ विवाहोंके समय वर और कन्याके पक्षसे कुछ सहायता मिलनी चाहिये।

४ जन्म मरणके समय चाहे कमसे कम मदद हो परंतु मिलनी अवश्य चाहिये।

५ बैंक द्वारा उपरके विभागोंको मदद पहुचनी चाहिये और एक रिजर्व फंड होना चाहिये।

६ तीर्थयात्राओंको जाकर आनेवाले भाई इसे धर्मकार्य समझ कर इसमें कुछ मदद दें।

७ एक प्रायश्चित्तके उपाय जैसे तीर्थयात्रादि किये जाते हैं वैसे ही परिषदको भी मदद मिलती रहना चाहिये।

८ मंदिर प्रतिष्ठा आदि कराकर जैसे अपने नामको अमर किया जाता है वैसे विद्यालयका मकान पूरा या एकाद हिस्सा बनवानेसे नाम अमर होगा और समयानुसार जातिकी सेवा समझी जायगी। अतएव यह बडे ही पुण्यका काम है।

९ ध्रुवफंडके खातेमें अपनी रकम जो निराली अपने ही नामसे रखना चाहें वे रख सकते हैं और अपने नामको अमर करसकते हैं। इनके सिवा और भी उपाय सोचने चाहिये।

वसंत ऋतु।

(लेखक—जौंहरीलाल जैन रपरिया, करहल)

(१)

ऋतु वसंत आई है मित्रो ! सब जीवन सुख देती है।
नूतन पत्ते होंय वृक्षमें, सूखे पत्ते लेती है ॥

(२)

रंग बिरंगे फूल खिले हैं, अलिगण आ गुंजार रहे।
नये वर्षका स्वागत करके, प्रकृतिका यश गाय रहे ॥

(३)

आम्रलतामें नये बौरका, कोयल आ रसपान करै।
हो मदमत्त अननके वशतैं, कुहू कुहूका गान करै ॥

(४)

खेतोंमें सरसों फूली है, ज्यों खिलते नभमें तारे।
छोटे छोटे पक्षी कलरव, करते खूब लगें प्यारे ॥

(५)

इस डालीसे उस डालीपर, फुदक फुदक कर जाते हैं।
नये अन्नका सबसे पहिले, वे ही भोग लगाते हैं ॥

(६)

नरगिस जुही गुलाब चमेली, चंपा मौरसिरी प्यारी।
बेला गेंदा खिले अलहदा, मेंहदी फूली है न्यारी ॥

(७)

कृषककामिनी लेकर बच्चे, खेतोंको हैं जाय रहीं।
ऋतुवसंतकी बडी खुशीसे, गीतोंको हैं गाय रहीं ॥

(८)

कृषक लोग भी बडी खुशीसे, ढप लेकरके मौज करें।
कोई कोई बडी खुशीमें, मित्रजनोंका भोज करें ॥
"जौंहरि" विरही जन पाते हैं, ऋतु वसंतमें दुःख अपार।
कष्टोंका वे अनुभव करलें, जिनका वाहर है घरद्वार ॥

आत्म-निवेदन।

(आधुनिक शिक्षाविषयक गल्प)

(लेखक-श्री धन्यकुमार जैन, 'सिंह' ऑ० मैनेजर-"पद्मावतीपुरवाल" कलकत्ता।)

मैं पहिले अपना पूर्व परिचय थोडा सा दूं, फिर वर्तमान अवस्था की कथा कहूंगा। मेरे पिता जमींदार थे; अब भी जमींदारी है, पर वे दिन अब नहीं रहे। मेरी जमींदारीकी आय मेरे पिताके समयमें लाख रुपयेसे अधिक थी। उन दिनों गांवके एक जमींदारकी वार्षिक आमदनी एक लाख रुपये होना, कुछ कम नहीं थी। हमलोग राजाओंके समान सुखसे रहते थे। हमारी जमींदारी दूर २ तक फैली हुई थी तो भी कर (लगान) वसूल करनेमें दिक्कत नहिं उठानी पडती थी। जिस जिलेमें हमारा निवास था, उसी जिलेमें ही हमारी जमींदारी थी. अतएव हमारा बडा ही सुखका वास था. चारों ओर ही हमारी प्रजा और वह भी हमारी आज्ञाकारी थी। वह पिताजीके मंगलके लिये प्राण तक दे सकती थी।

पिताजी अंग्रेजी लिखना पढना नहिं जानते थे; पर हिन्दी और संस्कृतके पूरे पंडित थे। जमींदारीके कामोंमें उनका अनुभव खूब बढ़ा चढा था, अन्य जमींदारोंकी तरह वे अत्याचारी और विलासी न थे। प्रजा उनको पिताकी तरह मानती थी और वे भी प्रजाको पुत्रकी तरह देखते थे। प्रजाका सुख दुःख ही उनका सुख दुःख था, भारीसे भारी खर्च उठाकर भी प्रजाको सुख पहुंचाना, उनका स्वभावसा पड गया था।

मेरे पितामें कोई भी व्यसन नहीं था और न कुछ शौक ही था। हां! एक बातका उन्हें बड़ा ही शौक था-वे सामाजिक काममें विशेषकर विद्यालय, अनाथालय, पुस्तकालय औषधालय, मासिक या साप्ताहिक आदि पत्रोंमें भरपूर अर्थव्यय कर उनकी उन्नतिमें सहायक होते थे। प्राचीन भण्डारोंमें पडे हुये ग्रंथ जो दीमकोंके आहार बन रहे हैं, उन्हे उद्धारकर उनको प्रकाशित करनेमें वे लाखों रुपये खर्च कर देते थे और इसीमें वे बडी ही खुशी मनाते थे। अस्तु।

मेरी अवस्था जब ग्यारह वर्षकी थी तबही पिताजी मुझे छोड़कर परलोक सिधारे। देश भरमें हाहाकार फैल गया। केवल मैं ही पितृहीन नहिं हुआ, हमारे देशके हजारों नरनारी पितृहीन हो गये।

मैं ही पिताकी एक मात्र संतान था। पिता स्वयं अंग्रेजी नहिं जानते थे, किंतु मुझे अंग्रेजी सिखानेके लिये एक मास्टर महाशय नियत किये गये थे। मैं इनके पास लिखना-पढना सीखता था।

पिताजी विशेष प्रयोजनके बिना कभी कलकत्ते नहिं जाते थे; वे कलकत्तेसे बड़े ही डरते थे। प्रायः कहा करते थे—"कलकत्ता जादूगरोंका देश है, वहां जानेसे मेरे समान क्षुद्र जमींदारकी जमींदारी तीन महिनेमें ही जादू-मंत्र द्वारा चटसे उड़ जायगी" इसीलिये उन्होंने कलकत्तेमें मकान नहिं बनवाया था, कलकत्ते जानेपर वे वहां तीनदिनसे अधिक नहीं रहते थे।

मेरे मास्टर अंग्रेजीके अच्छे विद्वान होनेके कारण कुछ अधिक अंग्रेजीदां थे किंतु उनका चारित्र अति निर्मल था। साहबी चाल-चलनोंकी ओर उनका कुछ ज्यादह खिंचाव था। मेरी उमर कम होनेपर भी मैं इन सब बातोंको समझता था, पर पिताजी नहिं समझ पाते थे, समझनेपर वे ऐसे शिक्षकको मेरा शिक्षण भार कभी भी न देते मास्टर साहब पिताजीके सामने अपनी चाल नहिं दिखाते थे, परंतु पिताजीकी मृत्युके बाद साहबी चालके बिना वे किसीकी ओर ताकते भी न थे।

पिताजीकी मृत्युके कुछ दिन बाद मास्टर साहबने मेरी मासे प्रस्ताव किया कि "कुमारको अब ग्राम में रखना ठीक नहीं, यहां उसकी पढ़ाई ठीक नहीं होती। कलकत्तेके किसी स्कूल में उसे भर्ती करदेना चाहिये, जिससे वह विद्वान बन सके" मा पहिले इस प्रस्तावसे सहमत नहिं हुई थीं; किंतु जब मास्टर साहब प्रतिदिन इसी प्रस्तावको सुनाने लगे तब एक मात्र पुत्रकी मंगल-कामनामें मा मेरे स्वर्गीय पिताका उपदेश भूल गईं। कलकत्ते जानेका प्रस्ताव सुनकर मैं भी नाच उठा—मेरे सर्वनाशका पथ प्रशस्त हुआ। मेरी सुख और शांतिकी कुटीर टूट गई। इतने दिन पीछे मैं उस बातको समझ सका हूं; परंतु बहुत ही अधिक मूल्य देकर इस अभिज्ञताको सञ्चय किया है—एक अमूल्य, अतुल्य, अपार्थिव जीवनके विनिमयसे मेरा यह भ्रम दूर हुआ है। वही कथा—वही निदारुण कहानी सुनानेके लिये ही आज प्रयत्न करूंगा।

पढ़-लिख कर योग्य बननेके लिये, विद्वान होनेके लिये, गण्य मान्य बननेके लिये एवं मनुष्य जन्मको सफल करनेके लिये ही मेरा कलकत्ता जाना स्थिर हुआ। मैनेजर साहब पर जमींदारीका कार्य-भार दे, मा मुझे लेकर कलकत्ते आगईं।

मैं पहिले कह चुका हूं कि कलकत्तेमें मेरे पिताजी मकान नहिं बना गये। अतएव एक किरायेके मकानमें ही हम रहने लगे। मास्टर महाशय भी हमारे साथ रहे। मैं स्कूलमें भर्त्ती किया गया। किंतु मा की इच्छा यह नहिं थी। वे चाहती थीं कि, मैं स्कूल में न पढ़कर घर पर मास्टर साहबके पास ही पढ़ा करूं। इसपर मास्टर साहबने माको यह सलाह दी कि—'घर पर पढ़ानेसे पढ़ तो जायगा और परीक्षामें भी उत्तीर्ण हो जायगा; परंतु इससे हृदय बहुतही संकुचित रह जायगा। स्कूलमें अच्छे लड़कोंके साथ प्रतियोगितासे बड़ाही लाभ होता है।' इन युक्तियोंको सुनकर मा मुझे स्कूलमें पढ़ानेको राजी होगईं।

मैं स्कूलमें ही पढने लगा। साथ साथ मेरी बिलासिता भी बढ़ने लगी। मैं था तो एक जमींदारका लड़का; राजपुत्र कहनेसे भी कोई अत्युक्ति न होगी; भला मैं प्रतिदिन कलकत्तेके राजपथसे पैदल ही स्कूल कैसे जा सकता था! अथवा सैकेंड या थर्ड कलासकी किराये की गाड़ियोंमें चढ़कर मेरास्कूल जाना कैसे अच्छा लग सकता था! अतएव एक मोटर खरीदी गई। देशमें जो पुरानी रिवाजोंके अनुसार घरमें असबाब आदि थे, उनसे भला कलकत्तेमें कैसे गुजारा हो सकता था; दरी या गलीचे पर बैठकर भला अंग्रेजी कैसे पढी जा सकती थी? शहर मे रहनेसे शहरके नियमोंकी भी रक्षा करनी पड़ती है। अतएव मुझे भी अपनी पोषाक-परिच्छद बदलनी पड़ी, खाने-पीनेमे भी कुछ परिवर्त्तन करना पड़ा। हमारे घर नाना द्रव्योंकी आमदनी होनेलगी, विलास द्रव्यसे हमारा वह किरायेका मकान परिपूर्ण होगया। पुत्रके मंगलके लिये माता बीस तीस हजार रुपयोंको तो रुपया ही नहि समझती थीं। पिता तो यथेष्ट अर्थ सञ्चय कर ही गये थे, फिर चिन्ता कैसी!

मकान-देढ़ सौ रुपये माहवारी भाड़ा देने-पर भी दिलचस्प न था। अतएव मास्टर साहबने माको समझाया कि, 'जब कलकत्तेमें रहते ही हैं; और भविष्यमें भी रहना ही पड़ेगा तब यहां एक घरका मकान रहना ही चाहिये।' माने यह प्रस्ताव ग्रहण तो कर लिया, किंतु मैनेजर-साहबसे परामर्श लेनेकी आवश्यकता समझी।

इधर हमारा कलकत्तेका खर्च उत्तरोत्तर बढ़ते देख, मैनेजर साहब विशेष चिंतित हुये। वे कभी कभी पत्रमें भी यह बात लिखते थे, और जब कभी कार्य-वश कलकत्ते आते थे तब भी माताको फिजूल खर्च न करनेका उपदेश भी देते थे। कलकत्तेमें मकान बनानेका प्रस्ताव जब मैनेजर-साहबके पास पहुंचा, तब वे कलकत्ते आये और मातासे बोले कि, 'कलकत्तेमें मकान बनवानेकी अभी कोई आवश्यकता नहीं है।' परंतु पूज्य माताको मास्टर साहबने पहिलेहीसे समझा रक्खा था कि, कलकत्तेमें मकान बनवानेसे, वह भविष्यमें एक लाभकी संपत्ति होगी। यदि भविष्यमें हम लोग कलकत्तेमें न भी रहेंगे; तो भी मकान किराये पर देनेसे उससे यथेष्ट आय होती रहेगी। मैनेजर साहबने जब देखा कि तर्क वितर्क करना व्यर्थ है, तब उन्होंने भी अपनी सम्मति देदी। कुछ दिन बाद मकान भी बन गया; और वह बहुत-ही दिलचस्प बना।

इधर मेरी भी यथेष्ट श्री वृद्धि होने लगी तीन चार वर्षमें ही मेरी प्रकृतिका खूब ही परिवर्त्तन होगया। मैं पूरा कलकत्तेका बाबू बन गया। पन्द्रह वर्षकी उमरमें ही मुझे खूब अच्छी तरह अंग्रेजी सिखानेके लिये या यों कहिये कि मुझे साहब बनानेके लिये, साहबी कायदा कानून सिखानेके लिये, एक अंग्रेज-शिक्षक नियुक्त किया गया। भला, विना साहबके पास पढ़े अच्छी अंग्रेजी शिक्षा कैसे मिल सकती थी!

इसप्रकार मेरी यथेष्ट उन्नति होने लगी; मैं बिना किसी संकोचके ही विलास--सागरमें कूद पड़ा। परंतु एक बात मैं पहिले ही कहे देता हूं, मेरे मास्टर साहब तथा मेरी माताकी विशेष चेष्टा और सतर्कतासे एवं मास्टर--महाशयकी शिक्षाके गुणसे मुझे असत् संसर्गमें मिलनेका सुयोग बिलकुल ही नहीं मिला। मास्टर-महाशय अंग्रेजी भावोंके विशेष पक्षपाती होने पर भी वे अत्यंत सच्चरित्र थे, यह मैं पहिले ही कह चुका हूं। मैंने उनसे अनेक विलायती-विलास-शिक्षायें पाई थीं, यह बात कैसे अस्वीकार करूंगा; किंतु उन्होंने मुझे सच्चरित्र रखनेके लिये यथासाध्य प्रयत्न किया था। मैं साहब सजकर विलायती अदब कायदाओंमें एक दम मशगूल हो गया। देशीय आचार व्यवहारोंके ऊपर मुझे बहुत ही घृणा होगई। मातासे छिपकर मास्टर-महाशयके साथ जा होटलोंमें आहारादि करनेमें भी खूब ही निपुण होगया; किंतु मैंने चरित्र नहिं खोया।

जब मेरी उमर बीस वर्षकी हुई, तब पूज्य माता मेरे विवाहकेलिये बहुत ही व्याकुल हो उठीं। किंतु उनके व्याकुल होनेसे ही क्या होता; मेरी सहधर्मिणी बनने लायक लड़की ही ढूंढे न मिली। हिन्दुस्थानी-गृहस्थ घरोंकी लड़की; क्या मेरे जैसे पूरे साहबकी स्त्री हो सकती थी? चारों ओर अनुसंधान होने लगा, बहुतसी सगाईयां आई; किंतु लड़कियोंके सुंदर होनेसे क्या होता, उनके चालचलन अदब कायदा तो बिलकुल ही हिन्दुस्तानियों जैसे थे! फिर भला, एक ऐसी लड़कीको मैं अपनी जीवन-संगिनी कैसे बना सकता था! इतने दिन पीछे स्नेही माताको चैतन्योदय हुआ, वे समझ सकीं कि, मुझे साहब बनाकर उन्होंने अपने पैरों पर कुहाड़ी मारी! किंतु उपाय?

जो हो, प्रायः लगातार एक वर्ष नाना स्थानोंमें अनुसंधान करने पर एक लड़की मेरे मन-माफिक मिली। कलकत्ता-हाईकोर्टके एक वकीलकी कन्याको मैंने पसंद किया। वकील साहबकी अवस्था अच्छी थी। यद्यपि वे कभी विलायत नहीं गये और न उनके परिवारमेंसे ही कोई गया, तो भी उनने अपने परिवारमें बहुतसे विलायती अदब--कायदा चलाये थे। घरमें बवर्ची भी था, कुर्सी-टेबिल पर बैठकर सपरिवार खाना खाते थे, घरमें स्त्रियां जूता मोजा पहिरती थीं; कभी कभी प्रकाश्यमें बाहर भी निकला करती थीं। जिस बालिकाके साथ मेरा विवाह स्थिर हुआ था, वह बेथुन कालिजमें एन्ट्रेंस तक पढ़ी थी, उसके बाद घर पर भी बहुत अंग्रेजी सिखी थी, गाना-बजाना भी खूब जानती थी, नाना प्रकारके शिल्प-कार्यमें भी संपूर्ण दक्ष थी, घर-गृहस्थीका काम जानती थी या नहीं, यह बात तब पूछनेकी कोई आवश्यकता न समझी थी; इस विषयमें पारदर्शिताकी बात सुननेसे शायद मैं विवाह ही न करता! बालिका देखनेमें भी अति सुन्दरी थी, उमर प्रायः सत्रह वर्षकी थी। मेरी उमर भी तब इक्कीस वर्षसे कम न थी।

माताकी इच्छा थी कि-वे एक मात्र पुत्रका विवाह अपने देशमें ही करें। इस प्रस्तावमें मेरे भावी श्वशुर-महाशयको कोई आपत्ति न थी, कारण उन्हे तो लड़कीको कंधेपर रखकर, हमारे गांवमें जाकर उसका विवाह नहिं करना: वरको ही उनके घर पर आकर विवाह करना पड़ेगा। अतएव वह गाँवसे आवे या कलकत्ते से, उनके लिये दोनों ही समान हैं। किंतु मुझे इसमें आपत्ति थी, मैंने कहा कि—' विवाह तो यहींसे होगा, और व्याहके बाद में कुछ दिन (एक सप्ताह) देशमें रहकर सस्त्रीक कलकत्ते ही लौट आऊंगा। ' आखिर मेरी ही बात रही। महासमारोहके साथ, बहुत अर्थव्यय कर मेरा विवाह हो गया। विवाहके बाद अंग्रेज लोग अपनी मेंमके साथ 'हनिमुन्'को जाते हैं, मैंने भी उसका अनुकरण किया। विवाहके एक माह बाद ही सस्त्रीक देशभ्रमणके लिये निकला। नानास्थानोंमें भ्रमण न हो सका, सीधा वालटेयार (विलायतमें) जाकर, वहीं आठ महीना सानंद विताये।

वे आठ महीने मेरे कैसे आनंदसे वीते, उसका वर्णन हिंदी भाषा में संपूर्ण अनभ्यस्त-मैं कैसे कर सकता हूं!

आठ माह बाद मैं कलकत्ता लौट आया। लौटने के चार-छह दिन बाद मुझे एकबार देश फिर जाना पड़ा, क्योंकि तब यथारीति से जमींदारीका कार्य भार मुझे लेना पड़ा। फिर कानूनके अनुसार जो कुछ कर्तव्य था, वह किसी प्रकार खतम कर, जमींदारीका कार्य जैसे पहिले चलता था, वैसे ही चलानेकेलिये मैनेजर-साहब को आदेश देकर मैं फिर कलकत्ता चला आया। जमींदारी का भार ग्रहण करते समय मैनेजर-साहबने कहा कि, आपका कलकत्तेका खर्च दिन दिन बढ़ता चला जारहा है, जमींदारी की आमदनीसे उसकी पूर भी नहीं पड़ती। इसी बीचमें ऋण बहुत ही बढ़ गया है। अब यदि हिसाबसे खर्च न हुआ तो ऋण बढ़ता ही जायगा। इसलिये आपको फिजूल खर्च न करना चाहिये: आदि।' मैंने उनकी बात पर कर्णपात भी न किया। मैंने कहा—'खर्च घटाने में मेरा काम न चलेगा।' मैनेजर महाशय विपन्न हुए, कुछ उत्तर न दिया।

अब मैं ही कर्ता होगया: मेरे ऊपर बोलने वाला कोई भी न रहा। कलकत्ते आकर अब की वार मेरा व्यय और भी बढ़ गया। इतने दिन अकेला था, ना बालक था, अतएव इच्छानुसार बहुतसे काम न कर पाता था। अब वह वाधायें न रहीं। विशेषतः, अब मैं अकेला नहीं रहा, मनके माफिक ही मुझे सहधार्मिणी मिली। सरला मेरी कोई भी इच्छा अपूर्ण न रखती थी। मैं उसे जो कहता था, वह वही करती थी. किसी दिन किसी विषयमें उसने कोई दूसरा मत प्रकट नहिं किया।

इसी समय मेरे कई मित्र-बंधु भी हो गये थे। उनमें से दो-तीन तो विलायत-फिरती बैरिष्टर थे, और दो-चार विलायत न जाने पर भी मेरे समान साहब थे। प्राय: सबही

खूब धनाढ्य थे। गरीबों के साथ में मिलता ही क्यों? प्रायः ही डिनारपार्टी चलने लगी, नाना प्रकार के आमोद प्रमोद भी होने लगे। मेरा भी धीरे २ अधः पतन होने लगा। सोडा-लिमनेड से लेकर बियार, ह्विस्कि, श्याम्पेन भी मेरी टेबिल पर धीरे २ आने लगी। सरलाने मेरे साहबी ठाटबाटों में कभी कोई आपत्ति नहिं की। किंतु मेरी टेबिल पर जब विलायती बोतलें (शराब) स्थान पाने लगीं और उसका भी परिमाण क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होने लगा, तब वह धीर भावसे मुझे उन सबोंसे निवृत्ति पाने के लिये समझाती थी। किंतु तब मेरे विलास-सागरमें बाढ़ आ रही थी; मुझे क्या उस समय निवृत्ति की बात अच्छी लग सकती थी?

मैं अपनी स्त्रीको लेकर प्रगट भाव से भ्रमणार्थ बाहर निकलता था, बंधु-बांधवोंके सन्मुख भी उसे आना पड़ता था; हम लोगों की डिनार-टेबिल में भी उसे शामिल होना पड़ता था। परंतु इतनी बढ़-चढ़ सरलाको पसंद न थी। वह मुझे प्रायः कहा करती थी कि—"तुम अपने साथ जो कुछ करने को कहोगे, वह मैं करने के लिये तैयार हूं; परंतु तुम्हारे बंधु-बांधवों के साथ बिना किसी संकोच के मिलना जुलना मुझे पसंद नहीं। हां! उनके सामने जाने को कहो—जाऊंगी, इस विषयमें मैं अभ्यस्त भी हो चुकी हूं। किंतु उन लोगों में घनिष्ठता के साथ मिलना-जुलना मैं बिल्कुल ही पसंद नहीं करती—कतई नहीं।"

मैं इससे बहुत ही असंतुष्ट होता था; मैं कहा करता था कि—"जो लोग हमारे घर आते हैं, जिनको मैं बंधु मान कर आदर करता हूं, उन लोगोंकी प्रकृति बिना जाने ही क्या मैं उनसे मित्रताका भाव रखता हूं? वे अति भद्र हैं। इन सब शिक्षित पुरुषोंके साथ मिलने-जुलनेसे तुम्हारा उपकारके सिवा अपकार न होगा। वे सबही मुझसे भी अधिक विद्वान हैं,—सच्चरित्र हैं, साधु व्यक्ति हैं। तुम्हें संकोच करनेकी कोई आवश्यकता नहीं।"

सरला क्या करती? मेरी बातपर प्रतिवाद करना उसकी शक्तिके बाहर था, वह सचमुचही मुझे देवता मानती थी। मेरे सुखके लिये वह हर तरहकी तकलीफ सह सकती थी।

बाढ़में नौका बहाई थी,—मेरी बिलासकी नाव सन-सनाती हुई चली। कोई चिन्ता नहीं है; रुजगार कर धन कमाना नहीं पड़ता; रुपयों की जरूरत पड़ने पर मैनेजरको पत्र देते ही रुपये आजाते हैं; परम स्नेहमयी सुंदरी पत्नी है, बाहरमें बंधु गणः—दिन खूब ही सुखसे व्यतीत होते थे।

विशेष कोई काम नहीं था; तोभी अवकाशका संपूर्ण अभाव था। आज यहां समिति है तो शामको बंधुसम्मिलनः—सुख-सागरमें मैं खूब ही तैरने लगा। विलासके उपकरणोंसे घर भर गया।

देखते देखते ही एक वर्ष बीत गया! मेरा आग्रह-उत्साह वैसाका वैसा ही बना रहा;

शरीर भी सैंकड़ों अत्याचार सह कर खराब न हुआ। शहर भरमें मैं एक प्रतिष्ठित-पुरुष हो गया। परंतु सब ही का अंत है, मेरे भी सुखके दिनोंका अंत आगया है, यह मैं नहिं समझ सका। चारों ओर ताक कर देखनेका मुझे अवकाश ही कहां था! और की तो क्या; मेरी सरलाका मुख कमल जो कभी कभी विषण्ण हो जाता था, वह भी मेरी दृष्टिको आकर्षित नहिं कर सकता था। मैं समझता था, सरला भी मेरी तरह सुखके नशेमें, विलासकी मदिरामें विह्वल हो गई है। उसका शरीर जो दिन प्रतिदिन कुम्हला जा रहा था, इसको मैं समझ भी न सका।

उसके बाद—एक दिन सरला बहुत ही ज्यादा बीमार हो गई, उसमें इतनी भी शक्ति न रही कि-वह खटिया परसे उठ कर बैठ सके। मैं उसी समय जल्दीमें डाक्टरको बुला लाया। कलकत्तेके सुप्रसिद्ध विलायती-डाक्टरने आकर उसकी बहुत देर तक परीक्षाकी; और कहा कि—'मानसिक दुर्बलताके अतिरिक्त उसको और कोई रोग नहीं है कुछ दिन विश्राम करनेसे ही स्वास्थ्य सुधर जायगा। डाक्टरकी बात सुनकर सरला कुछ विषाद सहित हंसी। मैं उसकी उस हंसीका अर्थ बिल्कुल ही न समझ सका। डाक्टरके चले जाने पर मैंने सरलाको विश्राम करनके लिये बहुत उपदेश दिया। उसने एकबार सतृष्ण दृष्टिसे मेरी ओर ताक कर आंखें बंद करलीं।

दो दिन इसी तरहसे बीते। इन दिनोंमें मैं बाहर नहीं निकला। तीसरे दिन निमंत्रण-रक्षाके लिये जानेका विशेष अनुरोध था। संध्याके बाद दो-तीन मित्रोंने आकर मुझे चलनेके लिये बहुतही आग्रह किया, मुझे निमन्त्रणमें जाना ही पड़ा। सरलाको अकेली छोड़कर निमंत्रणमें जानेकी मेरी इच्छा बिल्कुल ही न थी; किंतु मित्र-दोस्तोंने मेरा पीछा नहि छोड़ा। वे कहने लगे—अधिक रात न होगी; ग्यारह बजनेके पहिले ही घर लौट सकोगे। तब फिर क्या करता, सरलाको सब बात सुनाई। उसने कहा—"तुम जाओ; मेरे लिये क्या डर है?" इतना कह कर मेरी ओर ताका। मुर्ख मैं तब उस दृष्टिका अर्थ न समझ सका। मैं उसके शयन गृहसे बाहर निकलकर बंधु-बांधवोंके साथ शामिल हुआ और नाना तरहकी गप्प करते हुए निमंत्रण स्थानमें चला गया।

जब रातको करीब साढ़े नौ बजे तब जिस होटलमें हम सब आमोद-प्रमोदमें मस्त थे, उसके एक कर्मचारीने आकर कहा—"मिस्टर 'गुप्ता' को 'टेलिफोन' में कोई बुला रहा है।" 'टेलिफोन' का ऐसा बुलावा प्रायः दिनमें दस-बार आया करता था अतएव मैंने कर्मचारीसे कहा "तुम ही सुन आओ न! कौन क्या कह रहा है।" थोड़ी ही देरमें उस कर्मचारीने आकर कहा—"आपको इसी समय घर जानेके लिये कह रहा है, बहुत ही जल्दी!"

इस बातको सुनते ही मेरी छाती पर पहाड़ सा गिर पड़ा, मैंने समझा: सरलाकी बीमारी अवश्य ही बढ़ गई है। मैं उसी समय उठ

खड़ा हुआ। दरवाजे पर मेरी मोटर तैयार थी। मोटरमें बैठकर ड्राईवरको तेजीसे चलानेको कहा। दस मिनटमें ही मोटर मेरे दरवाजे पर जा खड़ी हुई। हमारा पुराना भृत्य रामस्वरूप बाहर ही खड़ा था। मैंने उससे पूछा—'क्या है?' रामस्वरूप बोला—"ऊपर चलिये,—बहूजीको—"

मैंने उसकी बात खतम भी न होने दी, जल्दीसे ऊपर चढ़कर सरलाके शयन-गृहमें प्रवेश किया—कैसा भयानक दृश्य था वह! बड़ा भयानक!! सरलाने गलेमें फांसी डालकर आत्म-हत्या की है!!! मैं ज्यादा देरतक खड़ा न रह सका। क्षणभरमें ही चीतकारकर बेहोश हो ज़मीनपर गिर पड़ा।

मैं जब सचेत हुआ, तब देखता क्या हूं कि—पूज्य माता मेरे सिरहाने बैठी हैं मैनेजर साहब मेरे पलंगके पास ही एक कुर्सी पर बैठे हैं। मुझे सचेत देख माता मेरे मुंहके ऊपर मुंह रखकर रूंधे हुए गलेसे कहने लगीं—"बेटा बेटा रे—" मैंने बोलनेकी चेष्टा की, किंतु मेरे मुंहसे आवाज न निकली। मैनेजर—महाशय स्नेहपूर्ण स्वरसे बोले—"घबराओ मत, विश्राम करो। अभी बोलनेकी जरूरत नहीं है" मैंने आंखे मूद लीं।

मैं बिछौनेपर पड़ा हुआ दिन रात सोचता था—किसलिये सरलाने आत्महत्या की! मैंने तो उसके साथ कभी भी किसी प्रकारका अन्याय व्यवहार नहिं किया, किसी दिन उसको एक अप्रिय शब्द भी नहिं कहा, और न किसी सामान्य कारणसे कभी भी उसके ऊपर विरक्ति-का भाव ही प्रकाश किया तब उसने ऐसा काम क्यों किया? आत्म हत्या—सामान्य कारणसे क्या कोई आत्म हत्याकर सकता है? विषम आघात पाये विना क्या कोई प्राण-विसर्जन कर सकता है? सरलाने ऐसा कौनसा आघात पाया था जिससे उसने ऐसा काम किया! विचार कर कुछ स्थिर न कर सका, लेकिन चिंता भी न तज सका। डाक्टर हकीम मुझे प्रफुल्ल रहनेके लिये कहते थे, किंतु मैं प्रफुल्लता कहां पाता? सरला तो वह सब चुराकर लोकांतरको चली गई थी! बंधु-बांधवगण मुझे सान्त्वना देनेके-लिये आते थे, और व्यर्थ प्रयास हो लौट जाया करते थे। किसीके साथ बोलनेकी मेरी इच्छा न होती थी रात दिन केवल यही विचार करता था कि—किस अपराधसे सरला मुझे छोड कर चली गई? यह चिंता मैं किसीतरह न छोड सका।

जब कुछ सुस्थ हुआ इस घरसे उस घर जाने आने लगा तब याद आई कि सरला क्या कुछ किसी प्रकार का आभास ही नहीं देगई, क्यों उसने ऐसा काम किया! तब मैं सरलाके बकस–ट्रङ्क, पुस्तकें–कागज– पत्र आदि खोजने लगा। मै जानता था, वह कभी कभी थोडा बहुत अंग्रेजी या हिंदी में कुछ रचना भी करती थी दो चार कविता भी बनाती थी। उनको वह किसीको भी दिखाती न थी, मैं जब देखने के लिये आग्रह करता तब वह कहती—"इन सब लड़कपनों को देख कर क्या करोगे मैं क्या लिख जा-

सती हूं ?" तौ भी वह कभी कभी लिखा करती थी।

मैंने उसके उन लेखों को खोज कर निकाला कई छोटी कापी मिली, उसमें बहुत जगह काट-छाँट की हुई पाँच-छह कविता लिखी थी, कविताओं में विशेषता कुछ नहिं थी, जैसी सब लिखते हैं, वैसी ही थी। हाँ! किसी भी कवितामें आजकल कीसी मामुली प्रेमकी गन्ध नहिं पाई, सब ही प्रार्थना आत्म निवेदन इत्यादि।

एक दिन सरला का एक कपडोंका बकस खोल कर उसके कपड़े-लत्ते उलट-पुलट कर रहा था, बकसके तले में एक जिल्द बन्धी हुई कापी पाई। कापी खोल कर देखता हूं तो उसमें कई छोटे छोटे निबन्ध लिखे हैं-सरला के ही हाथका लिखा हुआ उनमें एक निवन्ध अति सुन्दर था-उसका नाम "आत्म-निवेदन" था। "आत्म निवेदन" मुझे बहुतही अच्छा लगा। उसमें अनेक हृदयकी बातें लिखी हैं, स्त्री शिक्षाके विषयमें कई एक अच्छी २ आलोचनायें हैं। उन्हें न लिखूँगा बीचमें से कुछ लिखूँगा जिसके पढ़ने से मेरा बड़ा उपकार हुआ मैं अपना भ्रम समझ सका।

सरलाने अपने "आत्म-निवेदन" में एक स्थान पर लिखा है-------

" स्त्रियों को किस रीति से शिक्षा मिलनी चाहिये, यह एक विचारने की बात हो चली है। हम लोगोंने जैसी शिक्षा पाई है, कोरी अङ्ग्रेजी-हिन्दी-संस्कृत पढ़ी है, घर-गृहस्थी का काम नहिं सीखा गाना-बजाना सीखा है, घरमें रहने की जगह बाहर हवा खाना सीखा है,लज्जा शरम को हटाकर बन्धु बांधवोंके साथ बिना किसी सङ्कोच के मिलना-जुलना सीखा है, यही उत्तम है----या पहिले जैसी शिक्षा दी जाती थी, वही अच्छी है?--यह सचमुच ही विचारने की बात है। केवल विचारने की ही नहीं वरन् सोच-समझ कर अभीसे स्त्रियोंको (लड़कियों को) उसी प्रकार की शिक्षा देने की व्यवस्था कर देना भी आवश्यक है। मैं अपने अनुभव से यही कह सकती हूं-कह सकना क्या? दृढ़ता के साथ कहती हूं कि, हम लोगोंने जैसी शिक्षा पाई है, और हमारे स्वामी-महाशय गण जिस प्रकार की शिक्षा का आदर करते हैं, वह बिलकुल ही हेय है-वांछनीय नहीं। इस (आधुनिक) शिक्षा से विलासिता बढ़ती है। इस शिक्षा की जड़में तो कुछ भी नहिं है। चरित्र बल इस शिक्षा से नहि होता। कुछ किताबें पढ़ना, कुछ व्यर्थ के नाटक-उपन्यास पढ़ना, और स्वाधीनता पाकर उसका सोलहआना अपव्यय हार करना--यही सब फल इसके देख रही हूं। यह शिक्षा नहि चाहिये। जिससे हमारा मन उन्नत हो, जिससे हम पाप के साथ---प्रलोभन के साथ युद्ध कर जीत सकें, वही शिक्षा हम लोगों को चाहिये। और वही शिक्षा हमको परम्परा सच्चे सुखसे सुखी बना सकेगी, दूसरी नहीं। हमलोगोंने जो सीखा है इसमें तो शिक्षा हुई नहीं। हम पुरुष बंधु बांधवोंके साथ बिना किसी संकोचके मिलतीं हैं। गल्प करती हैं। आमोद—आल्हाद करतीं हैं; यह सब मैं तब तक अच्छा नहीं समझती,जबतक हम अपने चरित्रको समस्त प्रलोभनोंके ऊपर बिठा न सकें। मन यदि ठीक रक्खा जासके, तो फिर डर क्या है? किंतु सब क्या ऐसा कर सकती हैं?

या सबको वैसी शिक्षा ही मिली है ? यह सब आगको लेकर खेलना बड़ा ही भयंकर है! इससे अलग रहनेकेलिये प्राण लेकर भागना पड़ता है। प्रलोभन-जय कितनी स्त्रियां कर सकतीं हैं ? जो कर सकती हैं वे 'नारीरत्न' हैं ! परंतु मैं तो यह कहती हूं— प्रलोभन जय करनेके लिये 'कीचड़में पैर बोरना और फिर धोना' इससे या मनको अंततः कलुषित करनेकी अपेक्षा उस (प्रलोभन) से दूर—बहुत दूर—और भी दूर रहना अच्छा इससे सब भीरू कहें-कहने दो। हृदयमें बल चाहिये, प्रलोभन-जय करनेकी शक्ति संचय करनी चाहिये; तब ही आग देखकर डर नहिं लगेगा। शिक्षा नहीं दीक्षा नहीं, ढाल नहीं, तरवाल नहीं,—तो भी प्रलोभनके साथ संग्राम ! इसमें कितनी पराजित हुई हैं, उसकी खबर कौन रखता है ? कितने जीवन जो बिल्कुल ही डूब गये हैं, उसकी कथा कौन जानता है ? कितनोंने जो चिर-जीवन आत्म-ग्लानि से नरक यंत्रणायें सहीं हैं उसका इतिहास कितने जानते हैं ? शरीरका पाप भी पाप है, मनका पाप भी पाप है ! यह बात कितने आदमी समझते हैं ? इस पापका भी प्रायश्चित्त नहीं है और-उस पापका भी प्रायश्चित्त नहिं है ! मैं तो यही समझती हूं, यही जानती हूं।"

कापीमें इस तरहकी अनेक अच्छी अच्छी बातें लिखी थी. अनेक उपदेशकी बातें लिखी थीं। किंतु यह उपदेश तो मुझे कभी किसीने दिया नहीं। सरलाके इस उपदेशसे इतने दिन बाद मेरा भ्रम मिट गया. मैंने जिसप्रकारसे जीवन यापन किया है, वह ठीक पथ नहीं है, यह मैं अच्छी तरह समझ गया. लेकिन सरलाने क्यों आत्म-हत्या की ? उसका कोई कारण न जान सका कहीं कुछ लिखा भी न पाया ! उसकी बहुतसी सखियां थीं वे भी तो कुछ नहि कहतीं ! मेरी तरह सब ही पूछते हैं—"ऐसा क्या हुआ जिससे सरलाने आत्म-हत्या की ?"

उसके बाद—

उसके बाद और क्या ? अब मैंने कलकत्ता त्याग दिया है मामका भूलाभटका सवेरे घरआया हूं। अब चेष्टा कर रहा हूं, पिता जीने जिस प्रकार जीवन-यात्रा निर्वाह की थी वैसीही कर सकूंगा या नहीं। परन्तु अब भी प्रायःप्रति दिन ही सैकड़ों काम करते सरलाकी याद आती है किस अपराधसे मुझे छोड़ कर चली गई ! जीवन के विनिमयसे भी क्या यह बात नहिं जानी जासकती ? इस जीवनमें क्या इस बात की मीमांसा नहीं होगी ? न हो, मत हो ! दूसरा जन्मतो अवश्य हीहै और-उसमें सरला को पूछूंगा, क्यों वह मुझे इस तरह छोड़ कर चली गई है। उसी आशासे उसी आश्वाससे तो जीवित हूं। वे दिन कब आवेंगे ?

नोट—"आत्म-निवेदन" बंगलाके सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत जलधर सेनके एक गल्पका परिवर्तित अनुवाद है।

—अनुवादक।

चेतावनी।

लेखक:—सं० रा० म० 'भारतीय' जारकी (आगरा)

हरिगीतिका।

(१)

ऐ जाति ! कैसी सो रही है, नींद अब तो त्याग दे।
संसार उन्नति कर रहा है, शीघ्र तू भी जाग ले॥
बस सो चुकी अबतक बहुत तू सार सारा खोचुकी।
बलहीन हो, धन आदि खोकर, मृतक जैसी हो चुकी॥

(२)

अयि जगतगुरु! उठि, जग जगाव, आज शुभ जय बोलिके।
प्रिय! अंतकरि निज नींदका तू नेत्र अपने खोलि ले॥
यदि आज भी चेती नहीं तो, चेत फिर नहिं पायगी।
संसारसे कुछ कालमें तू सरबसर मिट जायगी॥

(३)

जो था असंख्य सभी, उसे अब, लाखमें गिनलो अहो।
प्रतिकूलता ऐसी कहीं भी, आपने देखी कहो!
गुण एक भी तुझमें नहीं है, और अवगुण सैकड़ों।
फिर भूखसे क्योंकर मरें नहिं, पुत्र तेरे सैकड़ों॥

(४)

अह! बाल्य-वृद्ध-विवाहसे है, अंग तेरा हीनसा।
'अनमेल' के कारण हुई है, दुखित कैसा, दीन! हा!
विधवा, अनाथ महा दुखी हो, सांस ठंडी ले रहे।
तेरे सपूत अहो! धर्मको, भी बिदा हैं दे रहे॥

(५)

मत भेद भी कुछ कम नहीं है, द्वेषसे परिपूर्ण है।
बस, मर रही है सब तरह, जनु, विकल तन-तन चूर्ण है॥
जो दीन है सबसे अधिक वह, जगतमें को जाति है।
"पद्मावती पुरवाल" ही है 'भारतीय' विख्याति है॥

(६)

अब भी तुझे चिन्ता नहीं, जब सर्वनाश समीप है।
कुछ कालका ही अतिथि अब हा ! तोर जीवन-दीप है ॥
पद्मावती-संतान ! तू क्यों आज ऐसी सो रही।
होकर अचेत अमूल्य रत्नावलि सहजमें खो रही ॥

(७)

'पद्मावती पुरवाल' है हित-कार सारी जातिका।
उसको करो उन्नत कि वह है भाग्य सारी जातिका ॥
भगवानके गुण याद करि कर्तव्य निज पूरण करो।
होकर सजग, आलस भगाकर, नींदका चूरण करो ॥

(८)

कर हैं मगर करती नहीं कुछ, कानसे सुनती नहीं।
होते हुये दो पैर, वह दो पैर भी चलती नहीं ॥
दृग मींच करि क्यों "भारतिय" तू सो रही, जगते हुये ?
जीते हुये क्यों मर रही ? उठि, निज कमर कसते हुये ॥

युवक मंडल पर विचार।

(लेखक—पं० फूलजारीलालजी व्याकरणशास्त्री, धर्माध्यापक-जैन हाईस्कूल, पानीपत।)

गत अंकमें अनुभवी संपादकने युवकमंडलके संगठनका प्रस्ताव समाजके सामने रक्खा है वास्तवमें यदि देखा जाय तो जैसी समाज की दशा दिनपर दिन होती नजर आरही है और उन्नतिकी तरफ लोगोंकी मंदगति दीख पडती है उससे जान पड़ता है कि अब हमें दूसरों का विश्वास न करना चाहिये। जब अपनेमें इतनी सामर्थ्य है कि हर एक काममें सफल प्रयत्न हो सके हैं तो क्या जरूरत है कि हम दूसरोंके मुहकी तरफ टकटकी लगाये खड़े रहें और अपनी उन्नति का मार्ग अपने आप निश्चित न करें या अपने पैरों आप खड़े होकर उन्नतिकी तरफ कदम न बढ़ायें।

हमारे बुजुर्ग यद्यपि उन्नति चाहते हैं और वह भी जैसी हम चाहते हैं वैसी ही चाहते हैं। यह नहीं, जैसी कि अन्य लोगोंमें मतविभिन्नता पाई जाती है वैसी हममें या हमारे बुजुर्गोंमें हो ; दोनों एक ही मार्ग पर चलना चाहते हैं तब भी यदि अंतर है तो इतना ही है कि वृद्धगण तो चाहते हुये भी आगे कदम नहीं बढ़ाते और हमसे अब उनकी बाँट नही जोही जाती हम आगे बढ़कर काम करना चाहते हैं। दृष्टांतकेलिये लीजिये कि—हमारे वृद्धगण ८।९ वर्षकी उम्रमे विवाह करना पसंद नहीं

करने पर साथ ही उनकी उम्रका विवाह न कर अधिक उम्रका ही विवाह करें इस मार्ग पर भी कदम नहीं बढ़ाते। लेकिन हम चाहते हैं कि उस-पर हम कामयाब हों और अपनी संतानके, भाई बंधुओंके विवाह शास्त्रद्वारा निर्णीत समय परही करें। बस! इसी प्रकारके अनेक कारण हैं जिनसे यह बात बहुत ही समुचित जान पड़ती है कि नवयुवकोंका एक मंडल बनाया जाय और उसके लिये नीचे लिखे जातिसुधारके कार्य सौंपे जांय।

यद्यपि यहां यह शंका सहज ही हो सकती है कि जब पद्मावतीपरिषद् या ऐसी ही अन्य २ जातियोंमें अन्य २ सभायें मौजूद हैं तब एक पृथक् मंडलका संगठन कर क्यों आडंबर बढ़ाया जाय। परंतु इसका निराकरण बहुत ही कम विचारनेसे समझमें आजाता है। वह यह कि मंडल कोई सभा सोसाइटियों से भिन्न निर्वाचित करनेका प्रस्ताव नहीं किया गया है। जो २ सभायें जैन समाजमें प्रांतिक या जातीय मौजूद हैं उनहीकी शाखा स्वरूप मंडल संगठित करनेका विचार है। क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि जितनी भी सभायें हैं उन सबके कहीं न कहीं सालाना जल्से अवश्य होते हैं और उनमें कोडियों प्रस्ताव भी पास हुआ करते हैं परंतु अमलमें शायद ही आते हैं। प्रस्तावोंके समर्थक--सच्चे समर्थक जाति या समाजमें बहुत ही कम हैं यह बात भी इसीसे जानी जाती है और प्रस्तावसमर्थकताका भाव उत्पन्न करनेके लिये ही मंडलका जन्म होना चाहिये। किसी भी जैन जातिके लोग चाहें बूढे हों चाहें जवान, सब ही इसके मेंबर बनाये जांय परंतु इतनी बात जरूर हो कि मेंबर बननेवाले महाशय प्रस्तावोंको सब तरहसे पालते हों और दूसरोंसे पलवानेकी कोशिश कर सकते हों।

यह बात हम इस वास्ते लिखते हैं कि बातोंकी सफाई करनेवाले तो हरजगह और हरसमय पाये जाते हैं परंतु काम-वास्तविक काम करनेवाले लोग सब जगह और सब समय नहीं मिलते। उनका प्रायः अभावसा रहा करता है। इसलिये चाहे मंडलके सदस्य कम ही हों परंतु उसमें प्रविष्ट ऊपर लिखे अनुसार ही होने चाहिये।

मंडलके सदस्योंको ऐसे सैकड़ों और हजारों काम करनेके लिये पड़े हैं जिनके कि किये बिना समाज मुर्दा होरहा है और रही सही शक्तिको भी खोरहा है। अंतमें हम अन्य जैन सभाओंका इस मंडल की या अपने प्रस्तावोंको समाज द्वारा पलवानेवाले वीरोंकी संख्याका संगठन करनेकी प्रेरणा करते हुए पद्मावती-परिषद्‌को खास तौरसे सूचित करते हैं कि वह अपने आगामी चैत्र सुदी ५ मी के मेलेपर इस मंडलका शीघ्र ही संगठन कर डाले। क्योंकि बिना ऐसा किये सुधारकी अन्य कोई योजना ही नहीं दीख पड़ती। जितने भी प्रस्ताव पास हों सब ही प्रायः अमलमें आने चाहिये इसलिये भिन्न भिन्न प्रस्ताव भिन्न भिन्न योग्य व्यक्तिके जिम्मे किया जाय और महामन्त्री या सहायक महामंत्री बराबर मासिक, त्रैमासिक या षाण्मासिक रिपोर्ट हर प्रस्तावके प्रचारकसे मगानेका प्रयत्न करें। प्रचारकका प्रमाद यदि मालूम पड़े तो बीचमें बीचमें उत्तेजना देते रहें और इस पर भी प्रमाद हो तो प्रचारकताका भार दूसरे किसी भी उत्साही पुरुष पर डाल दिया जाय, बस! यही मंडलके संगठनका कार्य है और इसीलिये हमने समाजके समक्ष उसका अनुमोदन उपस्थित किया है।

संपादकीय विचार।

रूप परिवर्तन।

'पद्मावतीपुरवाल' पद्मावतीपुरवाल जातिकी जो अधो दशा हो रही है उसके निवारणार्थ निकाला गया था परन्तु पहिले उद्देश्यमें कुछ वृद्धि की गई है। कारण-जो दीन हीन दशा पद्मावतीपुरवाल जातिकी है वह ही प्रायः अन्य समस्त जैन जातियोंकी भी है। ऐसी दशामें यदि कुछ विशेष परिश्रम द्वारा अन्य लोगोंका भी उपकार हो सके तो धार्मिक वात्सल्यताके कारण कर देना ही उचित प्रतीत हुआ। इसके सिवा जैन समाजमें जो नास्तिकताकी वृद्धि करनेवाले लोगोंका प्राबल्य दिनपर दिन बढ़ता नजर आ रहा है उसका रोध करना भी जरूरी समझा गया इसलिये सामाजिक लेखोंके सिवा एकादि लेख नास्तिकतापरिहारक भी प्रत्येक अङ्कमें देनेका बहुतसे मित्रोंने आग्रह किया।

ऊपर लिखे गये रूप परिवर्तनके कारणोंसे तथा इस अङ्कके लेखोंके पढ़नेसे हमारे पाठकोंको यह बात भली भांति मालूम होगई होगी कि इसका यद्यपि नाम 'पद्मावतीपुरवाल' एक जाति वाचक है पर समस्त जैन जातियोंकी सेवा करनेकी इसमें यथेष्ट सामिग्री मौजूद है और जब यह बात है तब केवल नामकी तरफ दृष्टि न दे इसे अवश्य ही सब जातिके लोग अपनावेंगे।

हमारे सहायक।

पहिली वर्षमें इस पत्रको १२५) रु० का घाटा पड़ा था इसका हिसाब और उसको पूर्ण करनेकी अपील हमने समाजके सामने उपस्थित की थी। हर्षकी बात है कि वह समाजने खुशी खुशी पूर्ण कर यह बात बतलादी कि हम तुम्हारे साथ हैं और जो कुछ घाटा पड़ेगा उसमें अवश्य सहायक होंगे। जिन लोगोंने सहायता दी है उनके नाम मुखपृष्ठपर छपे हैं उनको हम ही क्या समस्त जाति सहस्र सहस्र बार धन्यवाद दे रही है और सर्वदा देती रहेगी।

मालवा प्रांतिक पद्मावतीपुरवाल सभा।

मालवा प्रांतके पद्मावती पुरवालोंने उपर्युक्त नामकी एक सभा कुछ वर्षोंसे स्थापितकर रक्खी है जिसका विवरण समय समय पर इसी पत्रमें छपता रहा है। इसीके उपदेशक विभागकी तथा सरस्वती भंडार खातेकी रिपोर्ट भी हमारे पास आई हैं। रिपोर्ट पढ़नेसे मालूम पड़ता है कि उक्त सभा अपने इन दोनों विभागों द्वारा बड़ा ही अच्छा काम कर रही है। वास्तवमें जिस सभासे समाजको किसी प्रकारका लाभ ही न हो तो उससे उस समाजका और मनुष्योंका क्या प्रयोजन निकलता है।

मालवा प्रांतके भाइयोंको चाहिये कि वे इसको दिनपर दिन उन्नति करें और इसके मेंबर बन कन्याविक्रय आदि कुरीतियोंके निवारणमें सहायक हों।

पद्मावतीपरिषद्—

के कई विभाग हैं उनमें अन्य विभाग जो काम कर रहे हैं वह तो समाजको मालूम ही है। परन्तु विरोधनाशक कमेटी और उपदेशकविभागका कार्य

एकदम ही सुस्त है। सुस्त क्या ? कुछ कर ही नहीं रहे हैं। हम लोग अन्य लोगोंकी भांति प्रस्ताव तो बड़े २ लम्बे चौड़े पास कर डालते हैं और उस समय आंखोंके सामने लिहाजसे कहिये, या खुद ही वाचनिक जमा खर्च करनेके कारण कहिये, उन प्रस्तावोंको अमलमें लाने तथा समाजमें फैलानेके लिये भार भी ग्रहण कर लेते हैं परन्तु फिर घर जाकर ही सब भूल जाया करते हैं। हम इन दोनों विभागोंके विषयमें पहिले भी लिख चुके हैं तथा अन्य बहुतसे भाईयोंने भी हमारे पास लिखा है। परन्तु हमारे मन्त्री महोदयोंने कभी इधरसे उधर करवट भी नहीं बदला। हम विशेष लिखना नहीं चाहते सिर्फ इतनी ही प्रार्थना करते हैं कि पञ्चोंकी साक्षीमें जो काम करनेकी प्रतिज्ञा की है उसे हर भाई अवश्य ही पालनेकी कोशिश करें।

हमने जो ऊपर कुछ लिखा है वह इसलिये कि परिषद्‌का बहुत ही शीघ्र यानी चैत्र शुक्ल ५ मीसे मरसल गंजके मेलेपर अधिवेशन होनेवाला है और उस समय प्रायः समस्त विभागोंके सब ही कार्याध्यक्ष भी पधारेंगे ऐसी आशा है। परिषद्‌के नियमानुसार कार्य कर्ता ३ वर्षमें बदले जाते हैं इसलिये नये कार्यकर्ता तो शायद न चुने जांय और पुराने अपनी सदाकी ही चाल रखना पसन्द करें तो ऐसी दशामें समाजकी बड़ी भारी हानि होनेकी सम्भावना है इसलिये परिषद् उससमय इस विषयपर खूब सोच समझ कर अपना मार्ग निर्णय करे।

ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रमका पठन क्रम।

उक्त आश्रमके अधिष्ठाता पण्डित मक्खनलालजी न्यायालंकारने हमारे पास एक पठनक्रम सम्मत्यर्थ भेजा है। जो कि पास होजानेपर आश्रममें पढाया जायगा। पठनक्रम सब तरहसे उचित और देश कालके अनुकूल मालूम पड़ता है परन्तु नीचे लिखे बातोंका सुधार होजाय तो बहुत अच्छा हो--

ऋजु व्याकरणकी जगह संस्कृतप्रवेशिनी पढाई जाय और जैनेंद्र प्रक्रिया (पँ० वंशीधरजी न्यायतीर्थ कृत) की जगह पर जबतक कि वह पूर्ण छपकर तयार न होजाय शब्दार्णव चन्द्रिका रक्खी जाय। ऐसा कहनेका मतलब यह है कि संस्कृतप्रवेशिनीकी रचना जैनेंद्र व्याकरणके अनुसार हुई है उसमें धातु, प्रत्यय और संज्ञाओंका प्रयोग जैनेंद्र सरीखा है एवम् आश्रमके कोर्समें भी जैनेंद्र व्याकरण ही है। इसके सिवा विद्यार्थियोंको परिश्रम भी कम उठानापड़ेगा क्योंकि उसमें घोखनेकी प्रायः जरूरत नहीं होती।

बृहद् जैनेंद्र प्रक्रियाका परिवर्त्तन इसलिये चाहते हैं कि वह अभी तयार नहीं है और होनेके शीघ्र कोई लक्षण भी नहीं दीख पड़ते। ऐसी दशामें सिर्फ पठन क्रममें नाम लिखे रहनेसे कोई लाभ नहीं प्रतीत होता दूसरे लघु जैनेंद्र प्रक्रियाके (जो कि निम्न कक्षाओंमें है) और इसके सूत्रोंमें भी अन्तर है। जो छात्र पहिले सूत्रोंको याद्कर चुका है उसे फिर दूसरी प्रकारके दूसरे सूत्र उनही की जगह याद करने उचित प्रतीत नहीं होते।

मनुष्यकी वाणीमें गौकी बात चीत।

यहां एक फोर्ट विलयम जगह है। वहांके कसाई खानेमें एक दिन सबेरे ४ गौ वध्यस्थानमें लाई गई। निर्दय कसाईने उनको हलाल करना प्रारम्भ किया। जब वह पहिली तीन गायोंको मार चुका तो चौथीका नम्बर आया। ज्योंही कसाईने उसे मारनेके लिये अपना सशस्त्र हाथ आगे बढाया त्योंही मनुष्यके शब्दोंमें गाय बोली--"मुझे मत मारो" इस आश्चर्य-

कारी घटनाको देखकर कसाया डर गया और सीधा अपने ऊपरके कर्मचारीके पास पहुंचा। उसने जब यह बात सुनी तो वह शीघ्र ही गायके पास आया और उसे मारनेका हुक्म दिया। अपने ऊपर फिर आपत्ति आई देख गायने कहा--तुम्हें खुदाकी कसम है मुझे मत मारो" इसबार गोरा कर्मचारी भी आश्चर्यमें डूब गया और उस गायके वधको मनाई कर दी। गाय सुरक्षित एक स्थानमें रखी गई है।

ऊपरकी घटना सच है। इसका यहांके प्रायः सबही पत्रोंने उल्लेख किया है, इसके देखनेसे मालूम पड़ता है कि हमारे पुराण ग्रन्थोंमें जो लिखा मिलता है कि अमुक तिर्यंचने अमुक कार्य मनुष्या सरीखा किया वह बिल्कुल सच है। हमारे देवबंदके भाई क्या इससे कुछ शिक्षा ग्रहण न करेंगे और ऊपरसे चिकने चुपडे पर भीतर हलाहल घुले वचनोंका प्रयोग स्वर्गीय आचार्योंके लिये कर अपनी कलिकालीन सभ्यताका परिचय न देनेकी कृपा करेंगे ?

पटेल बिल और सत्योदय।

(लेखक—श्रीलाल जैन 'काव्यतीर्थ')

" सन्मार्गमें स्वार्थ और हठ बुरी चीज है; मनुष्य इन दो बातों के फन्द में जब पड जाता है तब भला बुरा हित अहित कुछ नहीं समझ पाता। नीतिकारोंने भी यही लिखा है कि ' अर्थी दोषं न पश्यति ' जो मतलबी होता है वह पापसे कभी नहीं डरता। लोकमें भी स्वार्थी गण दोषोंसे भय नहीं खाते यह बात प्रसिद्ध है।

संसार तरंग।

ऊपर लिखी पंक्तियां बिल्कुल सच हैं। जो महात्मा अपने अनुभवसे कुछ लिख जाते हैं या लोक में जो नीतिरूप प्रसिद्ध हो जाता है वह प्रायः सत्य हुआ करता है और उसके समय समय पर उदाहरण भी लोगोंको मिला करते हैं परन्तु जो समझदार होते हैं वे ही उनसे लाभ उठाते हैं और जो विचारे भोले भाले होते हैं वे चिकनी चुपडी बातों की उलझनमें फंस ठगे जाते हैं।

अपने को जैनत्वका दावा करनेवाले कुछ लोगोंका ' सत्योदय ' नामका एक मासिक पत्र इटावा से बाहिर होता है। इसका उद्देश्य शब्दोंमें चाहे जो कुछ हो, पर अर्थसे शास्त्रोंका विपरीत अर्थ जैन जनता को समझाना और अपने मन माफिक चलना है। यों तो इसके हर अङ्क में स्वार्थसाधनकी कथा और छलपूर्वक आडम्बरयुक्त वचन विन्यासकी छटा छटकती रहती है पर हमारे सामने फरवरी १९१९ का अङ्क सामने है उसमें पटेल बिलके विषयमें जो कुछ शास्त्रोंमें वर्णविचार लिखा है उसका विपरीत अर्थ कर कुछका कुछ लिख मारा है। विद्वान् लोगोंने तो उसका सार समझही लिया है पर भोले भाई न फस जांय इसलिए कुछ पंक्तियां लिखते हैं—

सबसे पहिले लेखनपटु सम्पादक महावीर प्रभु का अनुयायी होनेकी धमकी दिखाते हुये जैनमित्रादि पत्रोंने जो पटेल बिलका विरोध किया है उसकी तरफ घृणा प्रकट करते हुये लिखते हैं कि-" जिन का सिद्धांत मनुष्य मात्रको दुःखोंसे मुक्त करनेका

है उन लोगोंकी अज्ञानतासे ऐसे लोगोंके स्वरमें स्वर मिलाना बड़ा आश्चर्यकारी है।" इसपर हमारा पूछना है कि 'मनुष्य मात्रको दु:खोंसे मुक्त करनेका आपने क्या तात्पर्य समझ रक्खा है ? क्या आपका मतलब सांसारिक सुख जिनको कि थोड़ीसी भी अक्ल रखनेवाला हेय समझता है उनकी सामिग्री मिलादेनेकी योजना करदेना ही दु:खोंसे मुक्त करदेना है या और कुछ ? यदि सांसारिक सुख मिलादेना-इन्द्रियोंके विषयभोगोंकी सामिग्री जुड़ा देना ही दु:खोंसे मुक्त कर देना है तो ऐसे सिद्धांतको दूरसे ही नमस्कार है क्योंकि इन्द्रिय विषय सेवन करने करानेसे कोई कभी सुखी नहीं हो सक्ता-सर्वदा दु:ख ही भोगना पड़ता है और वास्तविक दु:खोंसे मुक्त करानेका है, तो पटेल बिलके विरोध करनेसे सुख प्राप्त करानेका सिद्धांत क्यों न रहा ? क्या पटेल बिल पास होजानेसे चाहे जिस जातिकी लड़कीके साथ संयोग कर लेनेसे सब सँसार सुखी हो जायगा ?

आगे आपने लिखा है कि-उसके विरोधी स्वार्थ वश सर्व साधारणको अज्ञानतामें डालनेका कैसा भयँकर प्रयत्न कर रहे हैं इत्यादि ।

महाशय ! पटेल बिलके विरोधियोंका तो कुछ भी स्वार्थ प्रतीत नहीं होता । वे तो अपने धर्मरक्षार्थ वैसा करते ह । परन्तु हां ! आपका तथा आपस-रीखे ललनालोलुपियोंका स्वार्थ अवश्य ही प्रकट होता है कि पटेल बिल पास हो जानेसे भंगी चमार चाहे जिस जातिकी लड़की मन पसन्द आने पर घरमें रख लेंगे ।

इससे आगे फिर आप लिखते हैं कि-पटेल बिल पास हो जानेपर भी जैन शास्त्रानुसार जो वर्ण व्यवस्था मानी गई है वह नष्ट नहीं होगी । इसके प्रमाणमें आदि पुराणका यह श्लोक उद्धृत किया है और उसका अर्थ निम्न प्रकार लिखे प्रकरणके अन्य श्लोकोंको छिपा आपने अपने अनुयायियोंमें सँस्कृतज्ञ और शास्त्रज्ञ प्रसिद्ध होना चाहा है । देखिये-

आदि पुराणके पर्व ३८ में वर्ण व्यवस्थाका आचार्यने वर्णन किया है और वर्ण व्यवस्था जन्म तथा कर्म दोनोंसे मानी है पर आपने अन्य श्लोकोंको छिपाकर सिर्फ यही एक श्लोक लिखा है कि-

मनुष्यजातिरेकैव जातिनाम(नो)दयोद्भवा ।
वृत्तिभेदाहिताद्भेदा(च्चातुर्विध्यमिहाश्नु)ते ॥

अर्थात् जाति नाम कर्मके उदयसे उत्पन्न हुई मनुष्योंकी एकही जाति है किंतु वृत्तिभेदसे वह चार प्रकारकी होगई है ।

पाठक गण ! ऊपर जो श्लोक छपा है वह ठीक सत्योदय की नकल है । उसमें हर एक चरण में गलतियां हैं इसलिये यह तो आपको मालूम होही गया कि सम्पादक महाशय कितने सँस्कृतके विद्वान है । और जब इतने विद्वान हैं कि अनुष्टुप छन्द तक की अशुद्धि नहीं पकड़ सक्ते तो फिर यह तो स्पष्ट ही है कि जो कुछ अर्थ श्लोकका लिखा है वह या तो बा० सूरजभानु जी के उस ट्रैक्टसे लिखा है जिसके पढ़नेकी प्रेरणा आप जीजानसे करते हैं या फिर आदिपुराण भाषासे लिखा है । पर जहां तक हमें ज्ञान होता है उक्त अर्थ आदि पुराणभाषा से नहीं लिखा गया क्योंकि उसमें अर्थ लिखते तो आगेका प्रकरण भी पढ़ते और तब जिनसेनाचार्यने वर्णव्यवस्था किस तरहकी लिखी है यह भी मालूम हो जाता । या फिर आपने जानबूझ कर लोगोंको धोखेमें डालना चाहा है आचार्य महाराज

है उक्त श्लोक लिखा अवश्य है पर साथ ही यह भी लिखा है कि—

तपःश्रुताभ्यामेवातो जातिसंस्कार इष्यते ।
असंस्कृतस्तु यस्ताभ्यां जातिमात्रेण स द्विजः ॥४७॥ पर्व ३८

अर्थात् तप और शास्त्रसे जिसका सन्स्कार नहीं होता वह सिर्फ जन्मसे द्विज है कर्मसे नहीं ।

इससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि सिर्फ कर्मसे ही वर्ण नहीं होता किन्तु जन्मसे भी होता है यदि जन्मसे वर्णव्यवस्था नहीं होती तो आचार्य तप और श्रुतहीनको कदापि जन्मद्विज न लिखते ।

(अपूर्ण)

जैनसमाजमें कुलीन प्रथा ।

(लेखक--श्रीयुत भविष्यवक्ता)

आजकल धनमदांध बुड्ढे बाबाओंके डबल बिबल विवाहोंकी खबरें अखबारोंसे ज्ञात होता है कि जैनसमाजमें भी अब शीघ्र ही बंगाल देशकी कुलीन प्रथा चल निकलेगी। क्यों कि--हालमें ललितपुरके पंचम बब्बाजी घृणित विवाहको संपादन करानेमें अभिनन्दन जैनपाठशालाके परमसंस्थापक प्रसिद्ध धर्मात्मा सेठ मथुरादासजी पन्नालालजी टँडैया इसमें प्रधान दलाल सुने जाते हैं। यद्यपि हम कसम खाकर कह सकते हैं कि टँडैयाजीने दलाली का एक पैसा भी नहि लिया परंतु सर्वथा निःस्वार्थ रहकर पंचोंके विरुद्ध होकर भी ऐसा घृणित कार्य क्यों कराया इसका हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। जब विचार करते २ बहुत समय बीत गया तो अनुमान हुवा कि इस विवाहके हुये बाद सायद टँडैया साहब भी अपना पुनर्विवाह शीघ्र ही करनेवाले होंगे विना ललना लोभके ऐसी जातिकी निःस्वार्थ सेवा बनना अत्यंत कठिन है। सायद यह हमारा अनुमान गलत भी होसकता है क्योंकि आप पंचम बब्बासे भी अधिक बूढ़े हैं इसलिये दूसरा अनुमान यह होता है कि आप नहीं तो अपने सुपुत्र पन्नालालजी को तो अवश्य ही ४ बहुये ब्याह देंगे। हमारी समझमें तो रामटेकके परवार महासभाके अधिवेशनमें एक एक परवार भाईको चार चार विवाह करनेकी आज्ञाका प्रस्ताव पासकर देना चाहिये बल्कि कागजी प्रस्ताव ही नहि करें किंतु लगते हाथ ही खंडेलवाल जातिके अग्रणी इंदौरके सेठोंकी तरह परवार महासभाके सभापति महोदय सवाई सिंघई गरीबदासजी और सिवनीके निष्पुत्र सेठ पूरनसावजी और बाबू पार्टीके अग्रगण्य वकील गोकुलचंदजी रायसाहब भी अपना पुनर्विवाह शीघ्र ही करडालें जिससे बंगालदेशकी कुलीन प्रथाका प्रचार शीघ्र ही परवार समाजमें होजाय। क्योंकि खंडेलवाल जातिमें अग्रणी शेठोंके बहु विवाह होनेसे ही तो झालरापाटनके रायसाहब माणिकचंद्रजी आदिके द्वारा बहु विवाह चलनेवाला है। सिर्फ दक्षण देशके खंडेलवाल समाजमें कुछ कसर है सो हमारी समझमें दक्षण खंडेलवाल पंचसभामें इसका प्रस्ताव करके सबसे पहिले उसके सभापति व मंत्री आदि बड़े २ लोग अपना २ पुनर्विवाह करडालें। फिर अग्रवाल आदि समाजमें भी प्रचार हो जायगा।

बतासोंकी मार।

१

बाबू बनारसीदासजी वकील बी० ए० बड़े ही उत्साही कार्यकर्ता हैं। वे कहनेको तो पद्मावती परिषद्के महा मन्त्री हैं पर स्वयम् पत्रों द्वारा कुछ पूछनेकी तो क्या बात? परिषद्के अन्य विभागीय मन्त्रियोंके एक नहीं, छह छह पत्रोंके उत्तर नहीं देते।

२

इटावाके वैद्य चन्द्रसेनजी जैसे पितृभक्त हैं वैसे शायद ही कोई हों। वे पिताकी इच्छा विरुद्ध चल कर सर्वदा उन्हें खुश करते रहते हैं और जब तब अपनी प्यारी बचपनकी घुडकियां भी दिखला देते हैं

३

गर्म खबर है कि-देवबन्दके वकील सूरजभान जीने किसीको पीठ पिछार भली बुरी न कहना चाहिये, यह नीति मालूम करली है। इसलिये वे जल्दी ही पुराण कर्त्ताओं को मुह पर गाली देनेके लिये जाने वाले है। उनके पक्षपातियोंको भी तयार हो जाना चाहिये, क्योंकि विपक्षी के सामने सज धज करके ही जाना ठीक है।

४

बाबू जुगलकिशोरजी मुख्त्यार भी वकील साहबके साथ जायगे। उन्होंने अपनी अर्धाङ्गिनीको सब तरह की तयारी कर रखने केलिये पहिलेसेही भेज दिया है।

५

सत्योदयके आश्रम हितैषीजी को नवीन तत्वका ज्ञान हुआ है। उन्होंने निर्वाह योग्य वेतन भोगीको आश्रमका वैरी और आनरेरी (?) को भक्त बतलाया है पर शायद उन्हें अभी इस बातका पता नहीं लगा कि आनरेरी यदि मूर्ख होता है तो घमण्ड में आकर मनमानी पर जानी भी करने लगता है। और तब पृथक करनाही पड़ता है। ठीक है पिछलगुओंको आगे देखनेसे क्या मतलब?

६

आश्रम के अधिष्ठाता पण्डित मक्खनलालजी न्यायालङ्कार बनाये गये हैं यह बड़ा अन्याय है। सिवा अग्रेजीदां और ऊपरी स्वार्थत्यागी हुए क्या कोई अधिष्ठाता हो सका है?

७

सत्योदय के सिवा सब ही जैन पत्रों के सम्पादक अनपढ़ हैं क्योंकि और सब तो अपने अपने पत्रोंमें कुछ न कुछ लिखते भी हैं सत्योदय सम्पादक एक भी लेख नहीं लिख सके ठीक है-बिना काम किये ही नाम हो जाय तो काम से क्या काम।

बतासेवाला—अमेरफल।

जिनेश्वरपदसंग्रह प्रथमभाग।

पवित्रप्रेसमें छपकर तैयार है।

जैनसमाजमें जैनसिद्धांतके उत्तमज्ञाता स्वर्गीय पंडित जिनेश्वरदासजी पद्मावतीपुरवाल बडे परोपकारी विद्वान् हो गये हैं। मारवाडमें धर्मकाप्रचार करनेमें ही उन्होंने उमरभर प्रयत्न किया। मारवाडमें दुराचारी भट्टारकोंका प्रबल पराक्रम दूर करके सचे धर्मके [शुद्धाम्नायके] प्रचार करनेका यश आप हीके बांटमें आया था। आप जैनसिद्धांतके जैसे ज्ञाता थे वैसे कविताके भी बडे विद्वान् थे। आपने चतुर्विंशतिपूजा, नंदीश्वरमंडलविधान आदिके शिवाय सैकडों उपदेशी अध्यात्मी, हजूरी पद भी बनाये थे जो कि मारवाडी भाई बडी श्रद्धासे कंठस्थ करते हैं आपकी कविता बहुत ही प्रिय है। यद्यपि वे छापेके द्वेषी नहीं थे, अपनी अनेक कवितायें छपनेकेलिये बंबई भेज चुके थे, परंतु कारण विशेषसे छापनेकी आज्ञा उन्होंने नहिं भेजी थी, जिससे आपकी कविताओंका प्रचार वा जैनसमाजको परम लाभ नहिं हो पाया परंतु अब उनका स्वर्गवास हो गया और आपके अनुगामी सेठोंने पवित्रप्रेस खुलजानेसे छापनेकी आज्ञा भी हमें देदी है। इसलिये क्रम २ से हम उक्त पंडितजीके बनाये हुये पद व समस्त कवितायें छापैंगे। आपके पद करीब ५००–६०० के हैं। उनमेंसे फिलहाल नमूनेके बतौर अच्छे २ चुने हुये ६२ पदोंका जिनेश्वरपदसंग्रहप्रथमभागके नामसे छपाया है। मूल्य कागजोंके महंगे होनेसे ।≈) आने रक्खे हैं। सो जिनको इन पदोंसे लाभ उठाना हो शीघ्र ही मगा लेवै। एक साथ पांचप्रति मगानेवालोंको १ प्रति बिना मूल्य भेजी जायगी। विलंब करनेवालोंको शायत पछताना पडै।

आवश्यकता।

महासभाके उपदेशक विभागको कई उपदेशकोंकी आवश्यकता है। किंतु ध्यान रहे कि हमारा विचार प्रायः उपदेशकी पर उन्हीं महाशयोंको नियत करनेका है जो कि दिगम्बर जैन धर्मावलंबी योग्य अनुभवी विद्वान हों, तथा धाराप्रवाह प्रत्येक विषय पर

Regd No. C 888

वक्तृता देने एवं जैनधर्म और श्रीऋषि प्रणीत ग्रंथों पर किये हुये आक्षेपोंका यथासाध्य उत्तर देनेमें समर्थ हों। वेतन योग्यतानुसार दिया जावेगा। पत्रव्यवहार मय वेतनादिके निम्न पतेसे कीजिये।

मुंशीलाल जैनमंत्री

उपदेशक विभाग–हाथरस।

वरकी आवश्यकता।

हमारी पुत्री जिसकी उम्र १५ साल है धर्मविद्या व. इंगलिश पढ़ी हुई है. उसके वास्ते, पद्मावतीपुरवाल वरकी आवश्यकता है. वरकी उम्र २० या २५ सालकी हो, वर सुयोग्य, विद्वान और अच्छे घरका हो नीचे पतेपर पत्र व्यवहार करना चाहिये.

साह, देवचन्द्र बालमित्र, मारवाड़

पद्मावतीपुरवाल. [illegible]

काम सीखनेवाले चाहिये!

जातिमें विद्याकी दिन दिन तरक्की हो रही है बहुतसे हमारे भाई सर्कारी मदरसोंमें चौथी दफा व मिडिल तक पढ़ते हैं। पढ़ चुकने पर उन्हें ६)। ८) रु० की नौकरी मिलती है इसलिये उन्हें हम सूचित करते हैं कि यदि उन्हें अधिककी नौकरी करनी है तो वे हमसे लिखा पढ़ी करें। उनके लिये हमने छापेखानेका काम सिखानेका विचार किया है। फिलहाल जब तक काम न सीख जायगे उन्हें ८) रु० महीने केवल भोजन खर्च मिलेगा, उसके बाद उनको १५) रु० से २५) तककी नौकरी करदी जायगी छापेखानेका काम कुछ कठिन नहीं है उसे चतुर लड़के ६ महीनेमें बखूबी सीख सकते हैं। काम भी दिनमें आठ घंटा करना होता है इससे ज्यादा करनेपर तनख्वाह भी घंटोंके हिसाबसे ज्यादा दी जाती है. परिश्रमी मनुष्य महीनेमें ३०,४० रु० तक कमा सकता है इसलिये जो जैनी भाई मदरसोंमें ८) रु० की नौकरी कर रहे हैं वा करनेवाले हैं या जो लिखे हैं पर नौकरीके लिये खाली बैठे हैं उन्हें हमसे पत्र व्यवहार करना चाहिये

मैनेजर जैनसिद्धान्त प्रकाशक (पवित्र) प्रेस

८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार

कलकत्ता

सूचना!

पद्मावती पुरवालके गतवर्षके कुछ अंक हमारे पास हैं। उन्हें हम बिना मूल्य देते हैं। लेनेवाले एक आनेकी टिकट भेजकर शीघ्र ही मंगा लें।

मैनेजर।

श्रीलाल जैनके प्रबंधसे जैनसिद्धान्तप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,
८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार कलकत्तामें छपा।

पद्मावती परिषद्का मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा चित्रोंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'
प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

विषय सूची।

२ रा वर्ष. } पोष्टेज सहित वार्षिक मूल्य २) रु० एक अंकका मूल्य ≈) आना। { २ रा अंक.

पद्मावती पुरवालके नियम।

१ यह पत्र हर महीने प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य ग्राहकोंसे २) रु० और पद्मावती परिषद्के सभासदोंसे १॥) रु० पेशगी लिया जाता है।

२ इस पत्रमें राजविरुद्ध और धर्मविरुद्ध लेखोंको स्थान नहिं दिया जाता।

३ इस पत्रके जीवनका उद्देश्य जैन समाजमें पैदा हुई कुरीतियोंका निवारण कर सर्वज्ञप्रणीत धर्मका प्रचार करना है।

४ विज्ञापन छपाने और बटानेके नियम निम्नलिखित पतेसे पत्र द्वारा तय करना चाहिये।

श्री "पद्मावतीपुरवाल" जैन कार्यालय

नं० ८ महेंद्रबोस लेन, श्यामबाजार, कलकत्ता।

संरक्षक, पोषक और सहायक।

२५) ला० शिखरचंद्र वासुदेवजी रईस, टूंडला।
२५) पं० मनोहरलालजी. मालिक—जैनग्रंथ उद्धारक कार्यालय, बंबई।
२५) पं० लालारामजी मक्खनलालजी न्यायालंकार चावली।
२५) पं० रामप्रसादजी गजाधरलालजी (संपादक) कलकत्ता।
२५) पं० मक्खनलालजी श्रीलाल (प्रकाशक) कलकत्ता।
२५) सेठ रामचंद्रराव बकारामजी गोंडे, वर्धा।
१२) पं० फूलजारीलालजी धर्माध्यापक जैन हाईस्कूल, पानीपत
१२) पं० अमोलकचंद्रजी प्रबंधकर्ता जैनमहाविद्यालय, इंदौर।
१२) पं० सोनपालजी जैन पानीगांव वाले, पाढम।
१२) पं० वंशीधर खूबचंद्रजी मंत्री जैनसिद्धांतविद्यालय, मोरेना
१२) पं० शिवजीरामजी उपदेशक वरार मध्य प्रादेशिक दि० जैन सभा।
१२) पं० कुंजबिहारीलालजी जैन जरौवा निवासी।
५) ला० धनपतिरायजी धन्यकुमार 'सिंह' (मैनेजर) उम्मरपाड़ा।
५) पं० रघुनाथदासजी रईस, सरनौ (एटा)
५) ला० बाबूरामजी रईस वीरपुर।
५) ला० लालारामजी बंगालीदासजी पेपर मर्चेंट. धर्मपुरा-देहली।
५) ला० गिरनारीलालजी रईस, टहरी (गढवाल)
५) शाह बाजीराव देवचंद्र नाकाडे, भंडारा (वर्धा)

नोट—जिन महाशयोंने २५) रु० दिये हैं वे संरक्षक, जिनने १२) दिये हैं वे पोषक और जिनने ५) दिये हैं वे सहायक हैं। इन महानुभावोंने पिछली सालका घाटा पूराकर इस पत्रको स्थिर रक्खा है। आशा है इससाल भी ये कृपा दिखलावेंगे। पत्रका आकार आदि बदल जानेसे अबकी बहुत घाटा पड़ेगा पर हमारे अन्य २ भाई भी ऊपरके तीन पदोंमेंसे किसी एक पदको स्वीकार करलेनेकी कृपा दिखलावेंगे तो आशा है अवश्य हम सफल प्रयत्न होंगे।

पद्मावतीपरिषद्‌का मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल

"जिसने की न जाति निज उन्नत उस नरका जीवन निस्सार"

२ रा वर्ष } कलकत्ता, वैसाख वीर निर्वाण सं० २४४५ सन १९१९. { २ रा अंक

प्रार्थना पंचक।

हे दीनजनपालक ! प्रभो ! तारण तरण ! पीड़ा हरण !
श्रीवीरनाथ जिनेश ! हमको लीजिये अपने शरण ॥ टेक ॥

देकर अलौकिक संपदा, निज सेवकोंको बल तथा।
है प्राप्त किया आपने निज वीर नाम यथा तथा॥
सेवक हमें भी मानकर अब, नाथ ! अपना लीजिये।
वह दिव्य संपद और बल अनुपम हमें भी दीजिये ॥ २ ॥

जो शक्ति जितनी थी जगतमें प्राप्त कीनी नाथ ! तुम।
था महावीर पड़ा इसीसे नाथ ! जगमें नाम तुम ॥
कर दया प्रभु ! वह शक्ति सब अब जल्द हमको दीजिये।
यदि सब नहीं तो कुछ झलक हृदयोंमें झलका दीजिये ॥ २ ॥

धर्मद्वेषी आदि वैरी जगतमें जो थे अडे ।
विन शस्त्र अद्भुत तेज से वे शांत रहगये थे खडे ॥
उस ही अलौकिक तेजसे, प्रभु ! नाम तुम अतिवीर है ।
उस तेजको अब दीजिये, उस विन हमें नहिं धीर है ॥ ३ ॥
कर्मवैरीको जला तुम ज्ञान पाया था अमल ।
जिससे हिताहित ज्ञान तुममें, जगमगा निकला अचल ॥
उस ज्ञानही के हेतु प्रभु! तुम नाम सन्मति है पडा ।
दीजिये उस- ज्ञानको, है दुख हमै उस विन बडा ॥ ४ ॥
बाह्य अभ्यंतर विभूतीसे जगतमें तुम बडे ।
थे अलौकिक ज्ञानसे भी, नाथ! सवमें तुम बडे ॥
वर्धमान पडा इसीसे नाम जगमें आपका ।
करि वर्धमान हमें गुणोंसे हरो दुख भवतापका ॥ ५ ॥

सूरजभानी लीला ।

ज्ञान गुण आत्मा गुणी है । ज्ञान धर्म. आत्मा धर्मी है । गुण और धर्म किसी हालत में गुणी या धर्मी आत्मा से जुदे नहीं रह सकते । हां यह बात जरूर है गुणोंकी पर्यायें (हालतें) सदा पलटती रहती हैं । पर्यायोंकी पलटन के कारण ज्ञान गुणकी अपेक्षा आत्मा की तीन अवस्था मानी हैं एक अज्ञ. जिसमें योग्य विचार शक्तिका विकास न हो। दूसरी अर्ध दग्ध अवस्था, जिसमें कुछ विचार शक्तिका तो विकास हो पर वह ऊट पटांग और उद्दंडता को लिये हो । तीसरी विशेषज्ञ अवस्था, जहां पर विचार, न्याय और धर्मानुकूल हों । इन तीनों अवस्थाओं में आदि और अन्तकी अवस्थाओंको उत्तम माना गया है क्योंकि अज्ञ अवस्थामें विचारशीलों के वचनों का आदर रहता है। अज्ञ मनुष्य की बुद्धि पर धर्मानुकूल बातोंका फौरन असर पहुंचता है और उसी के अनुकूल चलनेके कारण वह अपनेको कि वा दूसरे को अशांति नहिं पहुंचा सकता । तथा विशेषज्ञ अवस्थामें भी हेयोपादेयका अच्छीतरह ज्ञान हो जानेके कारण बुद्धिकी प्रवृत्ति धर्मानुकूल ही होती है जिससे अपना और अन्य जीवों की आत्माको शांति रहती है । परन्तु अर्ध दग्ध अवस्था निहायत दुःख देने वाली है क्योंकि इस अवस्था में अपनी विद्वत्ता झलकाने को खास आशा हृदय में कूद फांद करने लगती है, यदि उसके साथ कदाग्रहकी मात्रा बढ जाती है तबतो अर्ध दग्ध मनुष्य सदा इसी बातका जप करता रहता है कि बस, अब संसार में मेरी ही तूती बोले । संसारी जीवोंके घट घट में मैं ही व्यापक हो जाऊं फिर वह लोक लाजसे भय नहीं खाता। उसकी विचारशक्ति पर बलवान आवरण पड़ जाता है। यहां तक कि समस्त जीवों के अद्वितीय हितकारी धर्म और उसके अंगों में भी उसे दोष निकालने में भय नहिं होता ।

बाबू सूरजभानुजी वकीलको जो धार्मिक बातों पर बेधड़क लेखनी चटक रही है जैन समाज उससे भले प्रकार परिचित है। अन्य विषय में तो हम नहि कह सक्ते परन्तु धार्मिक ज्ञान के विषय में हमारा यह अचल विश्वास है कि बाबू साहब उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं में बीचकी अवस्था के पात्र हैं क्योंकि उनकी ऊट पटांग जिरहैं इस बात को जतला रही हैं। वकील साहब की लेखनी सर्वथा मिथ्या और अज्ञान से प्रेरित है यद्यपि उससे जैन समाज नहीं, पर अन्य समाज अवश्य जैन शास्त्रों पर घृणा कर सकती है। इसलिये उनकी निरर्थक जिरहों का प्रतिवाद करना हमें उचित ही जान पड़ता है—

"चोरी का माल धर्मार्थ लगाना"
इस शीर्षका उत्तर—

सत्योदय अंक १ वर्ष २ में 'चोरी का माल धर्मार्थ में लगाना' शीर्षक नोट निकला है लेखक उसके उक्त वकील साहब ही हैं वकील साहब ने लिखा है कि—

"एक वार एक मजदूर को राजाका तालाव खोंदते समय सोनेकी सरियों से भरा हुआ एक सन्दूक मिल गया जिसमेंसे एक सरी उसने सेठ जिनदत्त-को बेचदी उस समय वह सोनेकी सरी बहुत ही मैली थी और लोहा की मालूम होती थी इसकारण सेठने उसै लोहे के भाव खरीदा परन्तु जब वह सरी धो धा कर देखी गई तो सोने की सरी निकली सेठने उसै चोरी का माल समझ कर अपने घर में उसका रखना उचित नहीं समझा इसकारण उसने उसकी एक जिन प्रतिमा बनवाली और प्रतिष्ठा कराकर उसे मंदिर में विराज मान कर दिया।"

सेठके इस कृत्य पर ग्रंथकारने अपना विचार प्रकट करते हुए लिखा है कि 'सच है धर्मात्मा पुरुष पाप से बड़े डरते हैं' फिर आगे कथा लिखी है कुछ दिनों बाद वह मजदूर फिर एक सरी लेकर आया परन्तु अबकी वार जिनदत्तने उससे सरी नहि खरीदी इसलिये कि वह धन दूसरे का है। इस बात पर वकील साहब ने अपनी यह राय पेश की है कि—

इस कथा को पढ़कर हमको बड़ा आश्चर्य होता है कि क्या सेठ जिनदत्तका वह कृत्य ठीक था कि जिस सोने की सरीको उसने चोरीका माल समझ कर अपने घरमें रखना पसंद नहीं किया उसको जिनेंद्र भगवान की प्रतिमा बनवा कर और प्रतिष्ठा कराकर मंदिर में विराजमान करदी। क्या सेठ के बाबत ग्रंथकार का प्रशंसा करना और जैन धर्म पर उसका गाढ श्रद्धान और उसके योग्य आचार विचार अच्छे थे इत्यादि लिखना ठीक था? और क्या इस कथा से यह शिक्षा नहि मिलती कि जो कार्य अपने वास्ते करने में पाप कार्य है वह ही कार्य धर्म के वास्ते करने में पाप कर्म नहि रहता है और धर्म कार्य हो जाता है? अन्तमें आपने यह कथा जैन धर्म के विरुद्ध और उसे बदनाम करने वाली है इत्यादि लिखा है। परंतु—

वकील साहब! सेठ ने गैरवाजिब काम क्या किया? ग्रंथ में भी यह लिखा है और आप भी यह समझते हैं कि सेठने जानबूझकर चोरी नहि की भूल में उससे वैसा बनगया था। यदि बेचने वाले पर उसै यह विश्वास होता कि वह फिर आवेगा तो वह सरी अवश्य उसै वापिस कर देता परन्तु फिर बेचने वालेका सेठ के पास आनेका कोई भरोसा

न था। चोरी का माल लेकर उसे धर्मार्थ में लगा कर उसे अपने नाम आदिका भी शौक न था इसी लिये उसने सरी फिर बेचने वालेसे नहिं खरीदी थी, फिर भी ग्रंथकार ने यह लिखकर कि "उसने प्रतिष्ठा कराई थी" यह जतला दिया कि सेठ ने प्रतिष्ठा का खर्च उठाकर उस भूलसे की हुई चोरी का प्रायश्चित्त कर लिया था। मिहिरवान्? तमाम दुनिया इस वातको कह सक्ती है और बुद्धि पर जोर देनेसे आप भी खुद समझ सक्त हैं कि धर्मात्मा सेठको जब यह बात मालूम हो गई थी कि मुझ से चोरीका पाप वनगया है तव वह सरीको हजम तो किसी कदर नहिं कर सक्ता था. किसी न किसी पुण्य कार्य में ही उसे लगाता। गरीबों को उसका दान न दिया तो प्रतिमा बनवाकर लोगोंको परिणामों के पवित्र करनेके लिये सामग्री जुटा दी। अन्याय क्या किया? कुछ जान नहि पड़ता। इस बात को हम भी कहते हैं कि चोरीके मालको इस रूप से वा अन्य रूपसे भी काम में लाना महा पाप है परन्तु वेसुध में वैसा कार्य वन जाय और फिर वह मालूम पड़जाय तो चुपकी साध जाना वा उसे हजम कर जाना भी तो महापाप है। जिनदत्त सेठ सर्वज्ञ तो था हा नही, जो उसे पहिलेही से चोरी वा वेचोरी का ज्ञान होता। वह विचारा अल्पज्ञानी फिर भी व्यापारी था। छद्मस्थ अवस्था में हर एक से निंद्य कार्य वनजाते हैं। तिसपर भी अपना अपराध मालूम पडनेपर उसने प्रायश्चितकर डाला यह जिनदत्त सरीखे धर्मात्माओंका ही काम है आप सरीखेका नहीं क्योंकि आपकी बुद्धि आपको यह विश्वास दिला रही है कि केवलज्ञानीकी बुद्धिमें और मुझ में कुछ फर्क नहीं है मेरा आधार भी केवल ज्ञानीसे कम नहीं है। अस्तु धतूरा का खाने वाला सब ओर सिवाय सोनेके और कुछ भी नहीं देख सकता।

जनाबमन्! आपका ख्याल ठीक है कि चोरीका माल किसी भी काममें न लाना चाहिये पर जानबूझकर चोरीका माल लेकर उसे काम में लाना ठीक नहीं वेसुधमें आजाय तो उसे घरमें भी रखना ठीक नहीं। शास्त्रमें भी यही लिखा है कि वेसुधमे सरी लेली थी उसके बावत जिनदत्तने वैसा किया, परन्तु वकील साहबकी पक्षपातमें गरकी हुई बुद्धि क्योंकर इस बातको समझे? शास्त्रका तात्पर्य तो वकील साहबने समझा नहीं लिखनेकेलिये कलम दौड़ा दी कि शास्त्रमें लिखा है चोरीकामाल लेकर धर्मार्थ लगानेमें पाप नहीं और यह भी लिख मारा कि 'ऐसी बात जैनधर्मको बदनाम करती है'। धन्य है वकील साहब! आप भले ही अपनेको बड़ा माने पर लोग यह अच्छी तरह समझते हैं कि आपको इतना भी होश नहीं कि आप मामूली कथाभागकी भाषाकी पंक्तियोंको भी समझलें। मिहिरबान! आप चाहे न समझें पर इस कथाका लोगोंपर यह असर पड़ता है कि "मत चोरीका माल खरीदो और जानबूझकर उसे खरीद कर धर्मार्थमें भी कभी मतलगावो। कदाचित भूलसे आजाय तो उसे घरमें मत रक्खो किसी अच्छे कार्यमें लगादो' पर जैन, धर्मके मत्थे झूठा कलंक मढ़नेवाले आपकी बुद्धिमें यह अभिप्राय कहां प्रवेश करे। पित्तज्वरवालेको तो दूध कडुवा ही लगेगा। आप निश्चय समझें कि सेठ जिन-

वश से भूलसे वैसा कार्य बन गया इसलिये उसका दोष नहीं और न उसके इस चरित्रसे जैनधर्ममें बट्टा लग सक्ता है। आपकी भूल है। आप विना विचारे ले उड़ते हैं। जरा इस कथाका मनन करें तब आपकी बुद्धिमें इस कथाका असली भाव जंचेगा।

'इन्द्रका ऐरावत हाथी' इस शीर्षका उत्तर।

सत्योदयकी उपर्युक्त संख्यामें ही 'इंद्रका ऐरावत हाथी' शीर्षक एक लंबा चौड़ा लेख और निकला है। इसके लेखक भी उपर्युक्त वकील साहब ही हैं। बाबू साहबको ऐरावत हाथीके स्वरूपके बाबत जरा भी ज्ञान नहीं इसलिये उसकी लंबाई चौडाई उन्हें असंभव जान पड़ी है। वकील साहबने औदारिक शरीरका ही धारक ऐरावत हाथीको समझा है इसलिये वह 'कैसे और कहां समाया!' इत्यादि शंका उन्हें उठ खड़ी। परन्तु यह वकीलसाहबकी हद दर्जेकी भूल है। जो बात अपने समझमें न आवे उसे किसी अन्य विद्वानसे पूछनेमें विद्वत्तामें बट्टा नहीं लगता। वकील साहब जरा ऐरावत हाथीका स्वरूप किसी विद्वानसे पूछलेते तो उन्हें उसके विषयमें इतना लंबा चौड़ा लेख न लिखना पड़ता पर खेद, उनकी समझ!!! ऐरावत हाथीका थोड़ा स्वरूप हम यहां लिखे देते हैं आशा है वकील साहबकी शंकाएं इसी थोड़ेसे स्वरूपसे रफै होजायगी।

द्वीप असंख्याते हैं लोकाकाश भी असंख्यात प्रदेशी है। औदारिक शरीरके प्रायः परमाणू ऐसे हैं कि उनका पर्वत आदिसे प्रतिघात होजाता है। वैक्रियिक शरीरका मूर्तिमान द्रव्यसे प्रतिघात नहि होता। ऐरावत हाथीका शरीर वैक्रियिक होता है। चाहे वह कितना भी बड़ा बनालिया जाय वा इंद्र अपने शरीरको कितना भी फैलादे किसी प्रकारकी अड़चन नहीं होती। वैक्रियिक शरीरका आवरण भी नहि होता। जहां पर एक का वैक्रियिक शरीर मोजूद है वहांपर दूसरा भी वैक्रियिक शरीर रह सक्ता है औदारिक शरीरके धारक वातकायके वा तेजःकायके जीवोंका शरीर भी जब हरएक मूर्तिमान द्रव्यसे प्रतिहत नहि होता तब वैक्रयिक शरीर का भी किसी दृश्यमान पदार्थ से प्रतिघात नहीं होता इसबातके माननेमें किसी प्रकारकी असुविधा नहि होसकती। फिर भी इंद्र जिस समय चलता है उस समय वह जैसे विस्तीर्ण हाथीपर सवार होता है और भगवानके जन्मस्थान में भी उस का वैसा ही अकार रहता है यह लेख कहीं नहीं मिलता। वैक्रियिक शरीरमे संकोच विकास शक्ति रहती हैं इसलिये हाथी का आकार संकुचित करलिया जासकता है। बस, इस प्रकार उसके शरीरका स्वरूप समझने से ही वकील साहबकी शंका नहि ठहरसक्ती तथापि हम उनकी कुछ पंक्तियोंको लिखकर अपनी ओरसे कुछ लिखना उचित समझते हैं।

जंबूद्वीपके बराबर हाथीका परिमाण उसके मुख दांत सरोवर अप्सरा आदिका परिमाण तथा आदिपुराणके कथनानुसार इंद्राणीके विमानका प्रमाण और उसके आगे चलनेवाले पारिषद आदि देवोंका वर्णन कर वकील साहब ने यह लिखा है कि—'परंतु इस कथनमें हमें यह बात समझमें नहीं आती है कि जो हाथी

स्वयं ही जंबूद्वीपके बराबर ४० करोड मील लंबा था वह स्वर्गसे चलकर गया कहां था और जंबूद्वीपके बराबर जो लंबा चौडा विमान बनाया गया था सो वह इस हाथीके आगे था वा पीछे था वा इसके पास २ चल रहा था क्योंकि जब हाथी ही जंबूद्वीपके बराबर था तो वह विमान तो चाहै किधर भी हो वह अवश्य ही जंबूद्वीपके बाहर ही निकला हुआ होगा और सामानिक देवोंके विमान भी यदि इन्द्रके ऐरावत हाथी और इन्द्राणीके विमानके बराबर अर्थात् जंबूद्वीपके समान चालीस २ करोड मील लंबे नहि होंगे तो इनसे कुछ ही कम होंगे क्योंकि यह सामानिक देव इद्रके माता पिता गुरु आदिक ही होते है जिनका आदर इंद्रके ही समान होता है इनके विमान गिनतीमें भी बहुत ही होंगे और उन विमानों की कतार जंबूद्वीपकी लंबाईसे दूसोंगुनी हो हो गई होगी इसी प्रकार त्रायस्त्रिंश जातिके देवोंके विमान भी करीब २ इनहीके बराबर होंगे इत्यादि इन्द्रके अनुयायी देवोंकी विमानों की संख्या लिखकर आपने यह सिद्ध किया है कि इतने लंबे चौडे विमान कभी हो नहीं सके।

परन्तु हम ऊपर लिख चुके हैं कि यद्यपि जंबूद्वीपका विस्तार लाख योजनका है पर लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी है और वैक्रियिक शरीरका पर्वत आदिसे प्रतिघात नहि होता। इन्द्र आदि देव अपने और अपने वाहनों के शरीरको इच्छानुसार फैला सकते हैं और संकुचित कर सकते हैं। जब इन्द्रादि देव चलते हैं तब लोकाकाशके समान विस्तृत बना लेते हैं पर जिस समय वे जंबूद्वीपमें प्रवेश करते होंगे उस समय सबको उसीके अनुसार संकुचित कर लेते होंगे और अयोध्यामें आते समय तो अपने और अपने वाहनोंके शरीरोंको जरूर ही क्षेत्रके अनुसार संकुचित कर लेते होंगे वकील साहब! आप वृथा अपनी बुद्धि न दौडावैं अवधिज्ञानी इन्द्रादि देव हमारे और आपके समान बुद्धिवाले नहीं होते हमसे विशेषज्ञानी रहते हैं। जो दीपकका प्रकाश बडे होलमें प्रकाशमान रहता है वह क्या किसी छोटी सी मटकीमें संकुचितरूपसे नहि रह सकता?

मिहिरवान्! आपने तो ऐसा तमाशा खडा कर दिया कि किसी ग्रामीण मनुष्यने किसी से यह सुना कि अमुक राजाके लिये उसके चौकेमें दो मन चून खर्च होता है। बस वह मचाने लगा हल्ला कि, हैं! राजा कभी दो मन चून खा सकता है? विलकुल असंभव है। पर उस मूर्ख ने यह न समझा कि राजाके साथमें २० २५ मनुष्य और खाने बैठते हैं इसलिये उन सबके लिये दो मन आटा खर्च होता है तथा राजा प्रधान रहता है इसलिये व्यवहारमें यही कहा जाता है कि राजाके चौकेमें दो मन आटा खर्च होता है। उसी तरह आपने यह तो समझा नहीं कि वक्रियिक शरीरमें फैलने और सिकुडनेकी शक्ति होती है और वह जहां जैसा मौका देखा जाता है वहां बडा छोटा बना लिया जाता है वस! आंख मीचकर आपने लिख डाला कि कभी ऐरावत हाथी और इन्द्राणीके विमानका इतना प्रमाण हो सक्ता है? विलकुल असंभव है। वकील साहब! आपकी समझदारीको

बलिहारी है। जबतक आर्य समाजोंमें संस्कृत विद्याका प्रचार न था तब तक वे लोग प्राचीन लोगोंकी लंबाई चौड़ाई सुनकर चौंक पड़ते थे और उसको असंभव जतलानेके लिये लेक्चर बाजीके ढेर लगा देते थे परंतु जबसे उनमें संस्कृत शिक्षाका प्रचार होगया है और अनुमान आदिका ज्ञान उनकी आत्मामें विकसित होगया तबसे सौ दो सौ वर्षके प्राचीन शरीरोंके अंगोंकी लंबाई चौड़ाई देखकर वे अनुमान करने लगे हैं कि प्राचीन कालमें अवश्य मनुष्योंके शरीर लंबे चौड़े होते थे परंतु हमारे वकील साहबका दश पंद्रह वर्षके पहिलेके आर्यसमाजियोंके समान अब होश हुआ है। ठीक भी है संस्कृत भाषाकी शिक्षामें कोरे रहनेके कारण हमारे वकील साहबकी बुद्धि अनुमान आदिके पकड़नेके लिये नहिं दौड़ना चाहती। आश्चर्य है जिस वैक्रियिक शरीरकी संकोच विकास शक्तिको प्रायः जैनियोंके बच्चे २ समझते हैं वकील साहबकी अभी वहांतक पढ़ाई नहीं पहुंची तिसपर भी वे उसके विषयमें ऊटपटांग लिखनेमें मन नहिं करते। अस्तु।

आगे चलकर आपने लिखा है कि परंतु इन्द्र और इंद्रानीने अपना इतना लंबा चौड़ा शरीर क्यों बनाया जिसके वास्ते जंबूद्वीपकी लंबाईके बराबर अर्थात चालीस करोड़ मील लंबे ऐरावत हाथी और इतना ही लंबा विमान बनाना पड़ा और फिर अन्य भी सब देवोंको अपना शरीर इतना ही बड़ा २ बनाकर अपने सब जलूसकी कतारको जंबूद्वीपमें लाखों करोड़ गुना लंबा बनाना पड़ा इसके अलावा इन सबको तो स्वर्गसे नीचे उतर कर जंबूद्वीपमें ही आना था तब यह अपनी सवारीकी इतनी लंबी कतार बनाकर चले कहां होंगे ? यदि यह कहा जावे कि यह सब जलूस आगेको नहिं चला था बल्कि ऊपरसे नीचेको उतरा था अर्थात् स्वर्गसे उतरकर जंबूद्वीपमें ही आया था तब एक इंद्रका हाथी तो बेशीकर जंबूद्वीपके ही ऊपर उतरा होगा इत्यादि लिखा है।

इसका उत्तर यह है कि इंद्र इंद्रानीकी खुशी थी वे कितना भी शरीर बनालें और अपने वाहनोंको फैलालें क्योंकि स्वर्गसे अयोध्या पर्यंत आकाश कम विस्तृत नहीं। राजाकी खुशी वह अपने चोकेमें चाहे जितना आटा खर्च कर सकता है। अयोध्या तक उन्होंने अपने और अपने वाहनोंके आकारोंको भी संकुचित कर लिया होगा इसलिये इंद्रादि देव जंबूद्वीपके बाहर नहिं रह सके। वकील साहब! बात सुनकर उसपर एक दम चढ ही न बैठना चाहिये विचार शक्तिको भी काममें ले आना चाहिये। आप निश्चय समझें जब वैक्रियिक शरीरमें संकोच विकास शक्ति है तब आपकी कोई शंका नहिं ठहर सकती आप जितनी चाहें कितनी भी करें। आपने यह जो लिखा है कि इंद्रको पछताना पड़ा होगा सो मिथ्यावाद! पछिताना तो उसे जब पड़ता जब उसके पास संकोच करनेकी विद्या न होती वा वैक्रियिक शरीर न होता पर वहां तो दोनों चीज अर्थात् संकोच करनेवाली विद्या और वैक्रियिक शरीर मौजूद थे तब पछितावेकी क्या बात ? वकील साहब असली बात छिपा क्यों लोगोंको बहका रहे हैं ? जो बात खुद समझमें नहिं आती उसे किसीसे पूछ लेने में कोई हर्ज नहीं है।

आगे चलकर—परंतु स्वर्गसे नीचे भरतोपर उतरनेके वास्ते अकेले एक इंद्रको भी तो इतना बड़ा हाथी कुछ काम नहीं दे सकता है क्योंकि जब वह हाथी ही ४० करोड़ मील लंबा था तो उससे आधा अर्थात् २० करोड़ मील ऊंचा अपने पेरोंसे पीठ तक वह अवश्य होगा इत्यादि लिखा है।

परंतु उसका उत्तर यही है कि इंद्र आपसे ज्यादह बुद्धिमान था। कहां अपना और अपने वाहनोंका शरीर विस्तृत बनाना चाहिये इस बातकी उसे खुद अक्ल थी आप ही यह न समझें जो कुछ अक्ल दुनियामें है सब मुझमें ही समा गई है। इसी फिकरामें जो आपने अपनी यह राय पेश की है कि "क्योंकि यदि वह इंद्र और उसके सब साथी अपना सात सात हाथका ही असली शरीर रखते और उनहीके अनुसार सात सात गजके छोटे छोटे विमानोंमें बैठ कर ही स्वर्गसे उतरते तो उनको सवार होते समय भी आसानी रहती और उतरते समय भी और वह सब विमान अन्य अन्य द्वीप समुद्रोंमें न उतर कर सबके सब एक साथ इस आर्यवर्तमें ही उतरते और सब मिलकर अपार शोभा पैदा करते" उसका उत्तर यह है कि अबतक इंद्रको मालूम न थी कि असली खुबसूरतीके जानने वाले आप पैदा होगये है। अब उसको पता लग गया होगा सो वह आपसे जरूर राय ले लिया करेगा। इंद्रादि देवोंके गुरु बन जानेसे आपकी शोभा भी होगी और अभिमत की सिद्धि भी हो जायगी। हमें तो यह मालूम होता है कि आप अपनेको पचीसवां तीर्थंकर मान रहे है और कुदरती बातोंपर दोषारोपण कर आप अपनेको पच्चीसवे तीर्थंकरका दावा भी करना चाहते हैं। इंद्र आपके जन्म आदि कल्याणोंमें नहिं आया था इसीलिये अब आप उसकी बुराई पर तूर पड़े हैं पर इसमें उसका कसूर नहीं क्योंकि वह तो अपना वैसा ही शरीर बनाकर ठाट बाटसे आता पर आपको यह पसंद न होता इसलिये वह न आ पाया उसको पाप जरूर लगा होगा क्योंकि उसने पच्चीसवे तीर्थंकरका अपमान कर डाला और आप उसे क्षमा करें। आगे चलकर आपने—

"कहा जाता है कि वह हाथी इंद्रजाल या भानमतीके तमाशे या जादूगरोंके नजरबंदीके खेलके समान बिलकुल मायामय होता है परंतु आदिपुराणके कथनसे तो यह मालूम होता है कि अभियोग जातिके नागदत्त नामके देवने अपनी विक्रिया ऋद्धिसे इस हाथीको बनाया था। वह हाथी शक्तिशाली शीघ्र गमन करनेवाला इत्यादि बतलाकर, अंतमें यह लिखा है कि इस प्रकार आदिपुराणके इस उपरोक्त कथनसे तो यह ही सिद्ध होता है कि वह हाथी मायावी न था बल्कि असली ही बनाया गया था।

धन्य है वकील साहब! अभीतक आपने हाथी का यह भी मोटा स्वरूप न पहिचाना कि वह कैसा और क्या हाथी होता है. सिद्धिरस्तु! मायामयीका अर्थ यह है कि खास स्वरूपसे कुछ अद्‌भुत स्वरूपका बना देना इन्द्रकी सातप्रकारकी सेनाका एक अङ्ग हाथी भी है और वह अपने मूल स्वरूपमें रहता है पर जिस समय वह तीर्थंकरके जन्माभिषेकमें आता है उस समय विक्रियाशक्तिसे वा मायासे उसे इच्छानुसार बना लिया जाता है आपने भानुमती जादूगरकी नजरबंदीके समान वह हाथी समझ कहां से लिया? किस शास्त्रमें यह लेख लिखा है? यह आपको मालूम होगा भानुमती आदिके तमाशे अपना असली कार्य नहिं कर सके देखने मात्रके होते है पर हाथी ऐसा नहीं होता इसलिये उनके समान हाथीको मानना आपकी भूल है। वकील साहब अपने मनसे आप भले पच्चीसवे तीर्थंकर बन जावें पर अजानता बात बात पर आपकी टपक

पहुंती है।आगे चलकर आपने—

अब इस मामलेमें सबसे बड़ी बात विचारने योग्य यह है कि जंबूद्वीप के बीच में एक लाख योजन ऊंचा सुमेरु पर्वत स्थित है जो स्वर्ग तक पहुंचगया है इस कारण यह हाथी तो किसी प्रकार भी न तो जंबूद्वीप के ऊपर स्वर्ग से नीचे खड़ा हो हो सकता है और न जंबूद्वीपके ऊपर उतर ही सकता है इत्यादि लिखा है तथा अन्तमें यह भी सिद्धांत स्थिर किया है कि 'गरज़ इस सुमेरु पर्वत के बीच में पड़ जानेके कारण ऐरावत हाथीकी तो यह सारी कहानी ही असंभव ठहरती है और किसी प्रकार भी वास्तविक नहि मालूम होती है इत्यादि।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि जब वैक्रियिक शरीर में यह सामर्थ्य है कि उसका किसी भी पदार्थसे प्रतिघात नहि होता तब जंबूद्वीप के बीच मे एक मेरु नहीं हजार मेरु पर्वत क्यों न आकर पड़ जांय, वैक्रियिक शरीरका उनसे कभी प्रतिघात नहि हो सकता तथा वैक्रियिक शरीर मे संकोच विकास शक्ति भी होती है इस लिये वैक्रियिक शरीरका धारक ऐरावत जंबूद्वीप के ऊपर स्वर्गसे उतर भी सकता है और जंबूद्वीप के ऊपर खड़ा भी हो सकता है। आपने जो यह लिखा है कि 'ऐरावत हाथी की सारी कहानी असंभव ठहरती है' यह आपकी हद दर्जेकी धृष्टता और अज्ञानता है। क्योंकि जो मनुष्य वैक्रियिक शरीरका स्वरूप तक नहि समझता वह उसके विषयमें अपनी राय पेश कर उसे जबरन असंभव कह ही नहि सकता। वकील साहब! अपने अज्ञानकी ओर ध्यान दो सिद्धांत को असंभव बनानेके लिये मत उतारू होओ। आगे चलकर आपने यह भी फर्माया है कि—

बल्कि महाकाव्य ग्रंथोंका यह सब कथन महान कवियोंकी काव्य चतुराईका ही फल है जिन्होंने महान अद्भुत रस पैदा करनेके वास्ते ही यह सारा कथन बांधा है इसका कारण आजकल के विद्वानोंका यह कहना भी ठीक ही मालूम होता है कि आदिपुराण आदि महाकाव्य ग्रंथोंका अभिप्राय वह ही समझ सकते हैं और वह ही उनके काव्य रसोंका आस्वादन ले सकते हैं जो काव्य शास्त्रके पूरे ज्ञाता हों, भावार्थ जिसका स्पष्ट शब्दों में यह होता है कि काव्य शास्त्रको भलेभांति न जानने वाले सब लोगोंको इन महा काव्य ग्रंथों के पढ़ने सुननेका अधिकार ही नहीं है इत्यादि—

उत्तरमें निवेदन है कि आपका यह हद दर्जेकी भूल है कि वैक्रियिक शरीरके धारक हाथीकी लंबाई चौडाईको आपने काव्य चतुराईका फल बतला दिया और यह भी लिख डाला कि यह बात कोई अद्भुत रस पैदा करनेके लिये ग्रंथकारने लिखी है। मिहिरबान! ग्रंथकार ऐसे अज्ञ न थे जो वे विना विचारे हाथीका उतना परिमाण लिख देते उनको वैक्रियिक शरीरका पूर्ण स्वरूप मालूम था इसलिये उन्हें यथार्थ स्वरूपके बतलानेमे किसी प्रकारका संकोच न था। आप भी यदि वैक्रियिक शरीरका स्वरूप जानते तो आप भी उसके विषयमे ऊटपटांग न लिखते। आप ही कहें कि हाथीके वैसे स्वरूपके लिखनेमें क्या तो ग्रंथकारकी काव्य चतुराई होगई और क्या अद्भुत रस पैदा होगया? आपने जो यह लिखा है कि 'आजकलके विद्वानोंके मतके अनुसार जो काव्य शास्त्रके पूरे ज्ञाता हों वे ही उनका अभिप्राय समझ सकते हैं अन्य नहीं' सो बिलकुल ठीक है क्योंकि आपही विचारें यदि आपको काव्य शास्त्रका पूर्ण ज्ञान होता तो आप हाथीके परिमाण वर्णनको न तो काव्यकी च

तुराई बतलाते और न यह लिखते कि ग्रंथकारने अद्भुत रस पैदा करनेके लिये यह बात लिखी है क्योंकि ऐसी बातोंका वर्णन चतुराई किंवा रस आदिसे संबंध नहिं रखता। खास स्वरूप आदिसे संबंध रखता है। हम तो इस बातको डंकेकी चोट कहनेको तयार हैं कि जिसप्रकार नीम हकीम-थोड़ी हिकमत जाननेवाला मनुष्य कुछ चूरन आदि बनानेमें ही अपनेको ऊंचे दर्जेका हकीम समझ लेता है मानबढाईके लिये कुछ रोगियोंको दवा भी बांट देता है पर जिससमय कहीं रोगकी परीक्षाका मौका पड़ जाता है उससमय वह किसी रोगको कुछ रोग बता देता है और दूसरे रोगकी दवाको दूसरे रोगकी कह डालता है परिणाम उसका यह होता है विचारे रोगीको यमराजकी गोदका खिलौना बन जाना पड़ता है उसीप्रकार हमारे वकील साहबकी दशा है। जैन सिद्धांतकी थोड़ीसी इधर उधरकी बातें जानकर वकील साहबने अपनेको जैन धर्मका मर्मज्ञ विद्वान समझ लिया है। मानबढाईकी भी लालसा उनके हृदयमें पूरीतौरसे फटक निकली है पर जिस समय कुछ सिद्धांतकी बात आकर पड जाती है उससमय वकील साहब कुछका कुछ लिख डालते है और समझ लेते हैं। परिणाम यह निकलता है कि लोगोंके परिणामोंमें खलबली मच जाती है। मिस्टर वकील! जरा खुद ही सोचो वैक्रियिक शरीरका स्वरूप न समझकर आपने ऐरावत हाथीके विषयमें ऊटपटांग लिख डाला फिर भी उसे काव्य चतुराई अथवा अद्भुत रस बांधनेवाला बतला दिया। तथा विद्वानोंने जो सच्चीबात कही वह भी अच्छी न समझी। कुछ भी हो, जनाबमन्! आपसे हमारा यह नम्र निवेदन है कि कृपाकर आप जैन धर्मके तत्त्वोंका मनन करें, साहित्यकी जानकारी भी हासिल करें पीछे आप समालोचनाके लिये तयार हों वर्ना आपकी कलई बिना खुले न रह सकेगी।

"यक्ष देवताका एक स्त्री पर आसक्त हो जाना"

इसका उत्तर—

उपर्युक्त अंकमें ही आपने महीपाल चरित्रके कथनानुसार राजमंत्री गुणधवलकी स्त्री गुणश्री पर जो मानभद्र नामका यक्ष आसक्त हुआ था। उसकी कथा लिखी है और यह सिद्ध किया है कि मानुषीके ऊपर देवका आसक्त होना नितरां असंभव है तथा विद्वानोंके लिये यह नोटिस भी निकालने कृपा कर डाली हैं कि–इस कथाके विषयमें जैन विद्वानोंसे हमारी यह प्रार्थना है कि वह कृपाकर इसबातका स्पष्टी करण कर देवें कि क्या वास्तवमें यह कथा सत्य है वा काव्य शास्त्रके किसी नियमके अनुसार शृंगारादि रस पैदा करनेके वास्ते ही गूंथी गई है क्योंकि जब विद्वान लोग स्वयं यह बात प्रगट कर रहे हैं कि जैन कथा ग्रंथ काव्य शास्त्र या महाकाव्य होनेके कारण केवल उन्हींकी समझमें आ सकते हैं जो काव्य शास्त्रके विद्वान हों इत्यादि............तथा यह भी लिखा है– यदि वास्तवमें यह कथा सत्य है तो जिसप्रकार इस कथामें यक्षदेव एक मनुष्य स्त्री पर आसक्त होगया उसही प्रकार क्या अन्य व्यंतर और भवनवासी वैमानिक और ज्योतिषी आदि सब प्रकारके देव भी मनुष्यकी स्त्रियोंपर आसक्त हो सकते है? और क्या जैन शास्त्रोंमें देवोंके मनुष्य स्त्रियोंपर आसक्त हो जानेकी अन्य भी कथा है यदि है तो किस शास्त्रमें है और इस कथामें जैसा कि यक्षदेवने मनुष्यका रूप धारण करके इस मनुष्य स्त्रीसे संभोग भोग वा मैथुनकी इच्छा

और कोशिश की थी तो क्या यक्षदेव मनुष्य स्त्रीसे भोग कर सक्ते हैं?"

उत्तरमें निवेदन है कि जिन जीवोंका पूर्वभवमें घनिष्ट संबंध हो चुका है चाहैं वे विजातीय गतियोंमें ही क्यों न उत्पन्न हो जांय जिससमय उनका आपसमें मिलाप होता है उससमय पूर्व भवकी वासना उद्बुद्ध हो जाती है। मानभद्र और गुणश्रीका यही हाल था। देव कौतूहली होते हैं। कौतूहलके वास्ते ही मानभद्रने गुणश्रीके साथ वैसा कार्य किया था भोग संभोग की कोई बात न थी। न मालूम मानभद्र की वैसी चेष्टामें आपको यह कैसे झलक गई कि वह संभोग करना चाहता था। आजकल मनुष्य भी बहुत से ऐसे हैं जो ऊंचे दर्जे के हमारा है पर नीच कार्य करनेमें भय खाते हैं। जनाबमन! यह तो यक्ष जो सामर्थ्यवान देव था उसको पूर्व भवकी बात है। पूर्व भवके संबंधसे तो मेंढक आदि तिर्यञ्चोंने भी पूर्वभवकी नी स्त्रियोंके साथ कामोद्दीपक चेष्टा की हैं पर उसका यह अभिप्राय नहीं कि भोग संभोगके ही वास्ते मेंढक आदिकी वे चेष्टायें थीं। आप बुद्धिमानीके तावमें भले भवलते रहें पर आपकी विचार शक्ति जरा भी कार्यकारी नहीं। मानभद्रकी चेष्टामें जो आपने उसके विषयमें अपने ख्यालात प्रगट किये हैं बिलकुल झूट हैं कथाके अभिप्रायके समझनेकी आपमें दम ही नहीं। आप जो काव्य शास्त्रियों पर वजन पकटते हैं और उनसे उत्तर मागते है हमें वह भी युक्त नहिं मालूम पड़ता कारण जब आप युक्तिपूर्ण कथाभागोंको भी नहिं समझ सकते तब आप शास्त्रियोंकी बातको कब समझेंगे, झूठी दलीलें पेशकर उनकी युक्ति परिपूर्ण बातको कभी अपने गले न उतरने देंगे। आपने पूछा है "क्या ऐसी कथा कहीं और शास्त्रमें भी है"! उसका उत्तर यह है कि पहले तो सब शास्त्रोंको किसीने देखा नहीं। यदि देखकर कोई बतावे भी तो आपको विश्वास नहि हो सकता। आप वहां भी यह कहनेको तयार हो जावेंगे कि ऐसी कथा और भी कहां लिखी है? सार यह है वकील साहब! जब तक आप खुद अपनी विचार शक्तिको काममें न लावेंगे तबतक कोई भी आपको नहि समझा सक्ता। आप निश्चय समझें पूर्वभवके घनिष्ट संबंधसे हर एकका हर एकसे प्रेम हो सकता है पर संभोगकी जिनमें योग्यता होगी संभोग वे ही कर सकेंगे मेंढक आदिका कथाओंसे आप इस बातका तजुरबा कर लेंवे। वृथा लोगोंमें अपना हंसी करानेका प्रयत्न न करें।

उचित सलाह।

(लेखक—पं० सोनपालजी जैन पाटन)

जैन समाजमें अनेक सभाओंने सैकड़ों प्रस्ताव इस विषयके पास किये कि जैन समाजमें कन्या विक्रय बालविवाह बृद्धविवाह आदि न किये जांय और विवाह शादियोंमें आतिशबाजी व वेश्यानृत्य न हो लेकिन जैन समाजने इन प्रस्तावोंकी कुछ भी कदर न की प्रत्युत डबल विवाहके एक पौधेको और खड़ा कर दिया है न जानें यह पौधा कहां तक झाड़ जावेगा। पर फलेगा फूलेगा भी। खैर

जैन समाजमें अनेक जातियां हैं जैसे खंडेलवाल अगरवाल लमेंचू पोरवाड़ हूमड़ पद्मावतीपुरवाल, इन सब जातियोंमें जब विवाह होते हैं तब विवाह पढ़ने (कराने) वालेका अत्यन्त आवश्यकता रहती है

बिना इनके कोई भी जाति अपने पुत्र पुत्रियोंका विवाह नहीं करा सकती जैसे खंडेलवालोंमें ब्राह्मण हूमड़ोंमें गोरजी पद्मावती पुरवारोंमें पांडे इत्यादि सब ही जातियोंको इनकी आवश्यकता पड़ती है। शास्त्रोंमें इन लोगोंको गृहाचार्यकी पदवी दी गई है लेकिन खेद है कि कोई भी जाति इन गृहस्थाचार्यों की योग्यता पर ध्यान नहीं देती मेरी तुच्छ रायमें अगर इन गृहस्थाचार्यों को हालत सुधार दी जाय या ये अपने आप सुधार लेवें तो मैं डंकेकी चोटसे कह सकता हूं कि जैन समाजमेंसे बालविवाह वृद्धविवाह अनमेल विविवाह आतिशबाजी वेश्यानृत्य आदि अनेक कुरीतियें जैन समाजने हमेशाके लिये काला मुंह कर जांय। जिस कामको अनेक सभायें वर्षोंसे चिल्लाते रहने पर भी न कर सकीं उस कामको गृहस्थाचार्य थोड़े दिनोंमें कर सकते हैं।

और जातियोंका तो मुझे अनुभव नहीं है लेकिन पद्मावती पुरवाल जाति यदि अपनेमेंसे उक्त कुरीतियों को दूर करना चाहैं तो उसको पांडोंकी हालत अवश्य सुधारनी चाहिये।

पद्मावती पुरवालोंके ये वर्तमान पांडे सिवाय अशुद्ध विवाह पद्धतिके रटलेनेके वास्तविक जैन विवाह पद्धतिके ज्ञानसे कोरे होते हैं इनके १—१श्लोक में अक्षरोंसे भी ज्यादा अशुद्धियां रहती हैं। सिवाय एक चौकके ऊपर पुञ्ज बनानेके वेदिका वगैरहकी रचनासे बिलकुल अनभिज्ञ रहते हैं। अपने नेग लेनेके अतिरिक्त और कोई भी जात्युन्नति संबंधी काम इनसे नहीं होता किसी किसी जगह तो आठ दस पांडे इकट्ठे हो जाते हैं फिर इनकी कैफियत देखिये। इन पंक्तियों के लेखकको एक ऐसी ही बरातमें फरिहा जाना पड़ा था जिसमें कई पांडे इकट्ठे हो गये थे उस वक्त उनमें यह झगड़ा पड़ा हुआ था कि एक कहता था कि विवाह करानेके लिए मैं नहाऊंगा दूसरा कहता कि मैं नहाऊंगा इस नहानेका कारण यह था कि जो नहाता (स्नान करता) है उसीको धोती दुपट्टे मिल जाया करते हैं इसके सिवाय एक क्या कई किस्से हैं उनमें से एक उल्लेख योग्य है।

एक बरातमें यह कथा हो रही थी और पांडेजी भी इसमें सहमत थे कि जो नवीने जैन विवाहपद्धतिसे विवाह कराते हैं उनके घरमें अनेक उत्पात होते हैं इस बातको यहांतक अत्युक्ति दीगई कि जो रिवाज अबतक चले आते हैं उनमें फेर फार करना मानों अपने ऊपर दुख का पहाड़ लादना है इसका दृष्टांतभी दिया गया कि पं० रघुनाथदासजीने नवीन रीति चलाकर दक्षिणप्रांतमेंके प० पु० के साथ अपनी कन्या का विवाह किया उसके फलसे कन्या विधवा होगई इसके ऊपर मैंने शास्त्रानुकूल युक्तियों से समझाया तो उत्तर दिया गया कि क्या तुम्हारे शास्त्रों को चाटें, शास्त्रों में तो यह लिखा है कि जीव देहसे निकलकर उसी देहमें वापिस नहि आता लेकिन इस ग्राम में एक मुसलमान कि लड़की मरगई थी और थोड़ी देर बाद जीवित हो गई और ईश्वर के यहां हो आई ईश्वर ने कहा कि हमने तुझको नहीं बुलाया था तेरे गांव के फलां आदमी को बुलाया था——थोड़ी देरमे जिसको बुलाया था वह आदमी मरगया और लड़की जीवित होगई—इस पर मैंने उनको अनेक तरहसे समझाया लेकिन वे टस से मस न हुए और कहने लगे कि तुमारी बातों को मानें या प्रत्यक्ष देखी हुई बातों को मानें? आखिरकार मेरी हार हुई इस विषय में पांड़े जी बहु सम्मति की तरफ झुकगये और उनकी हां, में हां मिलाते रहे!

१ नवीन इस लिये कि लोगों ने पा[illegible] की जैन पद्धति को प्राचीन और शास्त्रानुकूल पद्धति को नवीन समझ रखा है

मुझे उनलोगों की तरफ तो कुछ ख्याल नहीं गया लेकिन पांडों की दशा देखकर चित्त अतीव खेदित हुआ कि जो गृहस्थाचार्य की पदवी को धारण किये हुए हैं उनको जैन धर्मके मोटे तत्वसे इतनी अजानकारी!!! इनसे पद्मावती पुरवार जाति की क्या भलाई हो सकती है?

मेरी पांडों के साथ कोई शत्रुता नहीं है न व्यक्तिगत कोई द्वेष है और संभव है कि कोई २ पांडे इस लेखके अपवाद स्वरूप होंगे लेकिन पांडे सामान्य के लिये ये कुछ पंक्तियां लिखी हैं कि इन पांडों की दशा अवश्य सुधारनी चाहिए मेरी रायमें फिलहाल निम्न लिखित सुधार होना चाहिये।

(१) एक पांडो का मुखिया मुकर्रर किया जाय।

(२) जिसके यहां विवाह हो वह १५ दिन पहले उस मुखिया के पास प्रार्थना पत्र भेजे पश्चात् उस मुखिया का कर्तव्य होगा कि जिसको मुनासिब समझे उसको उस विवाहमें भेजे।

(३) पद्मावती पाठशाला में या अन्य किसी विद्यालयमें जैन विवाह पद्धति पढ़नेके लिये पांडों के बालक भेजे जांय और वेही विवाह करावें।

(४) वर्तमान पांडे प्राचीन जैन विवाह पद्धति को सीखें यह कार्य काम चलाने लायक ६ महीने से कममें सीख सकते हैं।

(५) जिस विवाहमें कन्याविक्रय अनमेलविवाह व वेश्या नृत्यादि कुरीतियां हों उसमें कोई भी पांड़े महाशय विवाह करानेके लिये न जांय फिर देखिये कैसी शीघ्रता से उक्त कुरीतियां इस जातिसे दूर भागती हैं।

आशा है मेरे इन वाक्योंसे पांड़े महाशय रुष्ट न होंगे और इस गिरी हुई जाति को हस्तावलंबन देंगे, पद्मावती पुरवार जातिके सिवाय अन्य जातियोंकोभी चाहिये कि वेभी अपने गृहस्थाचार्यों की दशा सुधारें और उनको इस योग्य बनावें कि जिस विवाह में उक्त कुरीतियां होंगी उसमें विवाह कराने नहीं जाय।

वर्तमानमें जिन २ भाइयोंने जैन विवाह पद्धति सीखी हैं उनको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि जिस विवाहमें कन्याविक्रय हुआ है या अनमेल विवाह है, उसमें हम विवाह कराने नहीं जायगे। भाइयो! आपकी यह प्रतिज्ञा हजारों प्रस्ताव पास कराने से बढ़कर है-यदि ये कुरीतियां इस तरह दूर होगई तो इसका श्रेय आपको ही है इस प्रतिज्ञासे जैन समाज का जो हित होगा वह लेखनी के अगोचर है। विश्वास है विवाह करानेवाले गृहस्थाचार्य मेरी इस तुच्छ प्रार्थना को अवश्य स्वीकार करेंगे।

जैन समाज के हितैषी और उत्साही सज्जनों की सेवा में निवेदन पत्र।

(लेखक—पं० अमोलक चन्द जी उडेसरीय, मंत्री शाखा सभाविभाग, इन्दौर)

माननीय बन्धुओ !

आज आपकी सेवा में एक निवेदन को लेकर सन्मुख उपस्थित हुआ हूं आशा है आप निवेदन पर ध्यान देंगे और निवेदन को स्वीकारता का स्वीकृत पत्र भेज कर अनुगृहीत करेंगे।

सज्जनो ! आप से जाति की दशा कुछ छिपी नहीं है, आपके हजारों भाई ज्ञान बिना अपने मानव जीवन को केवल पापीपेट के भरने की चिंता में ही व्यतीत करते हुवे पूरा कर रहे हैं, उन्हें नहीं मालूम कि हमें मनुष्य होकर क्या काम करना चाहिये ? किन किन कार्यों के करने से हमारा यह जीवन सार्थक बन सका है. उनमें भक्ष्याभक्ष्यका विवेक उठ चला है, व्रताचरण की परिपाटी भी दिखाई नहीं देती व्रताचरण की परिपाटी का रहना तो दूर रहा उन्हें व्रतों के नाम तक भी शायद नहीं मालूम होते हैं वे अपने जीवनमें लौकिक और पारलौकिक कोई प्रकार की उन्नति नहीं कर सके योंही उनका जीवन पूर्ण हो जाता है। कैसी शोचनीय दशा है ?

आप की जाति के छोटे छोटे बालक शिक्षा बिना कुसंगति में पड़कर अपना जीवन नष्टकर रहे हैं माता पिता भी बेखबर हैं वे अपनी संतान को सदाचरणी और शिक्षित बनाने का ध्यान नहीं लाते. ग्रामों में यह दशा है कि उन छोटे बालकोंसे घास खोदने मिट्टी, गोबर ढोने तकका काम लिया जाता है पर उनके पढ़ाने का कुछ प्रयत्न नहीं किया जाता है, थोड़े बड़े हुवे कि उन के ऊपर गृहस्थी के कार्यों का बोझ डाल दिया जाता है। बस ! वे अशिक्षित रह जाते हैं और जन्म जिंदगी पूरी करते रहते हैं।

कन्याओं तथा गृहणियोंमें धार्मिक शिक्षा न होनेसे हमारे घर कलहके स्थान बन रहे हैं, सास, बहू, देवरानी, जिठानी, नन्द भौजाईयोंमें झगड़े ठनते हैं, गालियां बकी जाती हैं यहां तक कि स्त्रियोंके कलहके कारण भाईसे भाईको भी जुदा होना पड़ता है और एक मा जाये भाई एक दूसरे के कट्टर शत्रु बन जाते हैं, सासका बहूके ऊपर पुत्रीके समान प्यार होना देवरानी जिठानीमें छोटी बड़ी बहिनका व्यवहार होना, बहूका सासको माता मानना उनकी सेवा करना, घरमें प्रेम पूर्वक रहना आपसमें बैठकर अच्छी अच्छी बातें करना, आदि बातोंका तो लोप ही होगया है। कहिये ऐसी दशामें यह मनुष्य अपने जीवनको कैसे सुखमय बना सक्ता है। गृहणियोंके अशिक्षित होनेसे आगामी संतान भी धर्मसे शून्य बन रही है।

सह धर्मियोंमें आपसमें लड़ाई और वैर विरोध बढ़ रहा है भाईको भाई नहीं देख सक्ता, अगर एक भाई सुखी है, खाना पीना आरामसे करता है तो दूसरा भाई उसके आराममें बाधा डालने की कोशिश करता है भाईसे भाई लड़कर हजारों लाखों रुपया मुकद्दमे बाजीमें खर्च करते हैं, खाना खराब होते हैं।

थोड़ेसे पूर्व समयमें जातीय झगड़े, भाई भाईके झगड़े सब पंचायतके द्वारा तय होते थे, अदालतमें जाने की कोई आवश्यकता नहीं होती थी परन्तु आजपंचायतें शिथिल होने से बात बात में अदालत की शरण

बूढेका पछितावा।

बूढेपनमें ब्याह रचाया, लाकर तुझको मैं पछिताया।
सारा रुपया व्यर्थ गयामा, कुलको मैंने दाग लगाया॥
विद्वानों की बात न मानी, हाय! वृथा मैं अपनी तानी।
कीया जैसा मैंने पाया, धनके मदने मुझे भ्रमाया॥

—~~—

लेनी पड़ती है, पंचायतियों का कोई दवाव नहीं रहा है जिस के मन में जो आता है वही वह कर डालता है इसी कारण समाज में दिन पर दिन बुराईयां पैदा होती जाती हैं किसी को अपने बुजुर्गों, जाति के पंचों का भय नहीं रहा और पंच लोग भी निरपेक्ष नहीं रहे उनमें स्वार्थता बढ गई अतएव यह मार्ग ही उठ चला चला है, जिसके कारण यह जाति दिन पर दिन दुःखी बनती जाती है, भाइयो! क्या आप ऐसी दशा देखते ही रहेंगे, अपना कर्तव्य कुछ न करेंगे? नहीं, नहीं आशा है आप इस जातिको सुखी बनानेके लिये अवश्य प्रयत्न करेंगे।

प्रिय बान्धव! ऊपर कही हुई बुराइयों को दूर करने के लिये सब से प्रथम अपने नगर में एक [illegible] जैन सभा स्थापित कीजिये उसमें नगर के संपूर्ण भाइयों को इकट्ठा कीजिए सब जैन भाइयों को उसमें शामिल कीजिये और अपनी जाति की दशा प्रगट कर उसके सुधारने का विचार कीजिये, और इस सभाके द्वारा नीचे लिखे काम प्रारम्भ कीजिये।

(१) प्रतिदिन अपने नगर के मंदिर जी में शास्त्र होवें। उसमें सब भाइयों के तथा स्त्रियों के आनेकी कोशिश करें।

(२) हर हफ्ते या पन्द्रहवे दिन बडी सभा करें जिस में अच्छे २ उपदेश करावें और समाचार पत्रों के समाचार सब भाइयों को सुनावें ताकि उन को यह मालूम हो कि दुनियां में कहां क्या काम हो रहा है।

(३) बालकों और कन्याओं को धार्मिक और नैतिक शिक्षा देने के लिये कन्याशाला पाठशाला स्थापित करें!

(४) आपस में प्रेम भाव पैदा किया जावे, एक भाई के दुःख में सब भाई सहायता देवें, अपने नगर में कोई अनाथ बालक बालिका हो, या विधवा हो उसकी सहायता का प्रबंध करें। रोजगार में एक दूसरे भाई को आपस में सहाता देवें।

(५) पंचायत कायम कीजावें और उनके द्वारा सब झगड़े व जाति के कार्य तय होवें पंचायती के नियमों की पूरी पाबन्दी की जावै—

इस प्रकार थोड़े से काम आपकी सेवा में निवेदन किये गये हैं। उत्साही भाइयो! इन कार्यों को अपने २ नगर में प्रारम्भ कीजिये तब देखिये समाजमें किस प्रकार के सुख और शांतिका साम्राज्य स्थापित होता है।

मान्यवर भाइयो! आपको जातिका हितैषी और उत्साही यह निवेदन पत्र आपकी सेवा में उपस्थित किया है, आप सरीखे उत्साही सज्जनों की सहायता के ऊपर ही इस जाति का आधार है अतएव आप कृपा कर इस निवेदन पर ध्यान देवें, और अपना कर्तव्य समझकर इन कामों को करना शीघ्र प्रारम्भ कर देवें। और सदैव के लिये दृढ प्रतिज्ञा हो कि हम नियमित रीति से समाज सेवा का कार्य यथा शक्ति अवश्य करते रहेंगे। इस से महान पुण्य बंध होगा और सब समाज (महासभा) की तरफ से सन्मान प्राप्त होगा।

पूर्ण आशा है कि आप अपनी जातीय दशा को देख और अपना कर्तव्य समझ इस समाज सेवा के व्रती अवश्य बनेंगे और एक कार्ड द्वारा व्रती बनने की हमें भी सूचना देने की कृपा करेंगे ताकि आप का शुभ नाम समाज के उत्साही हितैषियों की नामावली में सुशोभित कर लिया जावे।

---- :o: ----

फ़लक ।

(लेखक—से० रा० स० 'भारतीय' जखरी (आगरा) हैडमास्टर मदरसा अटरू 'कोटा')

(१)

ऐ फलक क्या मिलेगा तुझको हमें सताकर ?
कब तक बनेगा ज़ालिम, बदक़िस्मती बताकर ?

(२)

ऐ संगदिल ! न शायद अब हमको रंजोगम दे,
बुजदिल बना चुका तू घुड़की दिखा २ कर ।।

(३)

कामी हैं हमसे हम ही बस, आज कल जहांमें,
बालाज़ईफ चलते, विधवा बना बनाकर ।।

(४)

रहते खड़े हैं अब हम, हरदम अदालतोंमें.
खुश होनेवाले हम हैं निज धन उड़ा २ कर ।।

(५)

बनते हैं शेर निर्बल पर निर्बलोंके हित हम ।
पग चाटते बलीका, खुदक़िस्मती बनाकर ।।

(६)

भूले हैं अपनेको भी, मायामें गर्क होकर,
खुश हैं खुदी बसाकर. जिल्लत कमा २ कर ।।

(७)

हम हैं बखील, क्यों दें, दो पैसा धर्मके हित.
हां चोर डाकू ले लें, दे देंगे सिर पिटाकर ।।

(८)

वस्त्र तक भी मुश्किलसे हैं लाते घरमें हम,
पै लेती रण्डियां हैं, जर गालियां सुना कर ।।

(९)

ब्याहों पे आते अपव्यय, करते खुशी मनाकर,
रोते अखीरमें फिर, धन खाकमें मिलाकर ।।

(१०)

गर भूखों मर रहे हैं लाखों अनाथ यारब,
हंसते हैं शकल उनकी लखि, तालियां बजाकर ।।

(११)

दुर्गुण भरे हैं हम में सब कूट २ कर जब,
आश्चर्य क्या ! सताये गर तू हमें मत कर ।।

(१२)

चंचल हो गया है, बस अंत कर दे तू भी
खुश कर "भारतीय" अब इस सबको गम मिटाकर ।।

परवार समाज को सूचना ।

परवार सभा से जो अनाथ सहायक फंड खुला है उसके लिये अपने प्रांतके अनाथ बालकों के नाम जो बालक पढ़ना चाहते हों मय उनकी योग्यता के अर्थात् अभी क्या पढे हैं मूर गोत्र उमर क्या है क्या पढ़ना चाहते हैं ? आदि लिखकर मय प्रांत के किसी योग्य व्यक्ति की शिफारस के पत्र भिजवाईये ।

तथा अनाथ विधवाओं का विवरण भी जिसमें उनका नाम. मूर गोत्र उमर—आदि तथा अभी उसकी गुजर कैसे होती थी, मय योग्यव्यक्तिकी शिफारस के लिखकर भिजवाईये ।

पत्र आने पर सभाद्वारा उनको सहायता देनेका प्रबंध किया जावेगा—

पता-कुंवरसेन, मन्त्री परवारसभा सिवनी सी. पी.

हमारी अवनतिके कुछ कारण ।

(लेखक—पं० बाबूलालजी जैन, प्रबंधकर्ता—सुमेरुचंद्र जैन बोर्डिंग हाउस, इलाहाबाद.)

प्राचीन और वर्तमान इतिहासके देखनेसे मालूम होता है कि जिन जातियोंने अपनी उन्नति की है अथवा कर रही हैं उस उन्नतिका मूल कारण समयके अनुसार कार्य करना तथा आवश्यक्ताओंके होनेपर अपनी रीति रिवाजोंका धर्म शास्त्रके अविरुद्ध बदलना है वैसे तो जैन जाति विद्या कला कौशल शिक्षा आदिमें सबसे पीछे पड़ी हुई है जब कि अन्य जातियां अविश्रान्त परिश्रमसे आगे बढ़ी जा रही हैं. तब हमारी जैन जाति अभी तक करने योग्य और न करने योग्य का भी फैसला नहीं कर पाई है जिसमें हमारे प्राचीन जैन भाई तो इनमें भी बहुत कुछ पीछेकी तरफ देखभाल कर रहे हैं।

यदि हम सद् बुद्धिसे विचार कर अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहेंगे, भाई भाईसे प्रीति करेंगे, परस्पर एक दूसरेका दुख सुख अपना समझेंगे, हम खुद शिक्षित बनेंगे, अपने बहिन भाइयों पुत्र पुत्रियोंको शिक्षित बनायेंगे, देश देशांन्तरोंमें जाकर द्रव्य उपार्जन करेंगे. अपने जीवनको शुद्ध जीवन कर्मवीर और धर्मवीरोंका जीवन बनादेंगे तो इसी वर्तमान मनुष्य पर्यायमें उस सुखका अनुभव करेंगे जो देवोंको भी अप्राप्य है। जैसे अच्छे राष्ट्रके लिये राष्ट्रके अङ्गभूत जातियोंका शिक्षित होना आवश्यक है उसी तरह उन्नत जातिके लिये प्रत्येक जातिके मनुष्यका सदाचारी, शिक्षित, परिश्रमी और उच्च विचारका बनना जरूरी है हमारी जातिके ऊंचे न उठनेके और नीचे गिरनेके मुख्य और गौण कई कारण हैं जिनका कुछ जिक्र किया जाना बहुत जरूरी समझ करता हूं—

१ गावोंके रहने और खासकर ऐसे छोटे २ गावोंमें रहनेसे जहांपर सत्सङ्ग की तो क्या बात ? बल्कि अधिकतर मूर्ख और गंवार आदमियोंके साथ ही रहना पड़ता है हमारे भाइयोंकी बुद्धि मंद और विचार संकीरण तथा नीच हो जाते हैं और यही कारण उन स्त्रियों तथा बच्चोंके न सुधरनेका होता है जिनको कि आगे चलकर समाजकी भींति खड़ी करनी पड़ती है गावोंमें उन बच्चोंके लिये न पढनेका कोई प्रबंध होता है और न पढ़े लिखे लड़कोंका साथ ही रहता है अतएव वह भी अपने मा बापकी तरह अशिक्षित रह जाते हैं।

आर्थिक दशा भी गांवोंके रहनेसे नहीं सुधर सक्ती क्योंकि वहांपर ऐसा कोई व्यापारका कारण ही नहीं मिलता जिससे कि खर्चेसे अधिक पैदा करके कुछ रुपया इकट्ठा कर अपनी और अपने कुटुम्बकी अवस्था अच्छी बना सकें। गृहस्थोंको द्रव्यकी बहुत आवश्यकता रहती है और खास कर आज कलके समयमें जबकि इस महगीमें विना अच्छे व्यापार किये या और कोई पेशा किये खर्चेका काम चलही नहीं सक्ता। उद्योगी और बुद्धिमान आदमियोंको जरूरत॰ की ताड़ना ऊंचा उठा देती है या यों कहिये कि जब खाने पीनेको भी पासमें खर्चा नहीं होता तो आदमीकी तबियतमें एक दम जोश पैदा होता है कि ऐसे जीनेसे क्या लाभ ? जहांपर पेट भर खानेको भोजन और पहननेको कपड़ा न मिले, ऐसी अवस्थामें मनुष्य चेत जाता है और जीतोड़ परिश्रम कर अपनी हालत सुधार लेता है। परन्तु गांवोंमें ऐसा भी कोई साधन नहीं जिससे कि

कुछ सफलता हो सके और यदि किसी भाईको गले पड़े रहके रुक जानेसे कुछ अचानक लाभ भी हो गया तो वह बदौलत या तो डांकुओं वा चोरों के हवाले करना पड़ता है या फिर गरीब किसानों- को अधिक व्याजके लोभमें फँस बांट देनेमें खो देना होता है।

यहां यह प्रश्न सहज ही हो सक्ता है कि जितने गांव छोड़कर शहरोंमें आ बसे हैं या आ रहे हैं वह सब क्या धनवान हो गये हैं? परन्तु इसका उत्तर इतना होकाफी है कि उन गांवको छोड़े हुये भाइयोंका उद्देश्य बहुत छोटा है, भावोंकी गति अधिक ऊंची नहीं है सदाचारी ईमानदारी कला कौशल्य परिश्रम आदिकी तरफ भी उतना ध्यान नहीं है इसलिये यथेष्ट उन्नति नहीं कर सके परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं उनको उन्नति करनेके शहरोंमें साधन बहुत मिलते हैं और कुछ अपनी अवस्था गांवोंसे बहुत अच्छी बना लेते हैं साधारण आदमी भी जो गांव छोड़ शहरोंमें आ गये हैं उनकी दशा पहलेसे बहुत कुछ अच्छी होगई है हमारे बहुतसे भाइयोंका ख्याल है कि गांवोंके रहनेसे हमारे आचरण अच्छे रहते हैं तन्दुरुस्ती अच्छी रहती है हममें एक दूसरेसे प्रेम और जन्म स्थानके साथियोंसे मेल रहता है परन्तु यह उन भाइयोंका ख्याल गलत है आचरणका अर्थ सिरफ यही नहीं है कि कुछ खान पानका परहेज कर लेना और शूद्र आदि जातियोंकी छूत छातसे बचलेना किन्तु आचरणसे मतलब—सच्चे व्योहार ईमानदारी कषायोंके कम करने अन्याय त्याग करने झूंठ चोरी व्यभिचार दगाबाजी छोड़ने और अत्याचारको तिलाञ्जुलि देनेमें भी है। स्वास्थ्य गांवोंमें शहरकी अपेक्षा कुछ अच्छा रहनेका कारण वहांकी छोटी वस्ती और ताजी आवो हवा है परन्तु साथ ही यदि आपने बीमारों की अवस्थाका अनुभव किया होगा तो मालूम होगा कि वहांपर न तो अच्छे वैद्य ही इलाज करनेको होते हैं और न दवा ही मिल सक्ती है मूर्ख वैद्यके कारण रोगीके प्राण घुट रहे हैं और जरूरत है इसी वक्त दवाओंकी, परन्तु गांव होनेके कारण दवा नहीं मिलती, जबतक शहरसे आदमी दवा लेकर वापिस आता है तो वहां न रोगी है न रोग है।

अब रही आपसमें और कुटुम्बकी मुहब्बतकी बात, सो हमारे प्रेम और मुहब्बत का फल अन्य स्थान पर तो पीछे देखना, पहले अपने घर और अपने बाल बच्चों के साथ ही देखलो, मा बाप लड़कों के साथ अनुचित प्रेम करके उन्हें अपनी खराब आदतें झूंठ बोलना गाली देना—छछोरापन, स्वार्थपरायणता, मूर्खता का वर्ताव, मूछें पकड़ना—तू तड़ाक बुलवाना और जिदसे रूठ जाना आदि सिखलाते हैं, इससे न तो वह लड़के आगे चलकर अपनी आदतें सुधार सक्ते हैं और न सभ्य आदमियोंकीसी बोलचाल रहन सहन ही उनको आती है और यदि लड़के अपने सुधारकेलिये विद्या पढ़ने या द्रव्य कमानेकेलिये परदेश जानेको कहते हैं तो मानो उनके मा बाप पर आफत के पहाड़ आपड़े इसका नतीजा जो कुछ हो रहा है आपके सामने मौजूद है इधर हमारी मुहब्बत और उधर हमारी प्राणप्यारी सन्तान के जीवन का सर्वनाश! यह नमूना तो आपके प्रेमका सन्तान के साथ है। रही नाते रिश्तेदारों और मिलनेजुलनेवालों की मुहब्बत इसका मतलब तो स्पष्ट है कि गांवों के रहनेसे संबंधीलोग कभी बार छह महीने में एक आधबार आये तो उनकी अच्छी तरह खातिर करदी और जब शहरोंकी तरह

नित्य या दूसरे तीसरे दिन उनका मिलना हो तो उनकी हालत शहरवालोंसे ज्यादह हो जायगी इसलिये यह बात तो सब मान्य है कि गांवों का निवास हमारी उन्नति न होनेका मूल कारण है।

२–दूसरी बात हमें ऊंचा न उठने देने वाली यह है कि हम वैश्य जाति के हैं और वैश्यों के लिये यदि अधिक नहीं तो अपने व्यापार लेनदेन चिट्ठी पत्री आदि के लिखने पढ़ने लायक विद्या और समय के व्यापारका ज्ञान अवश्य होना चाहिये और राजविद्या के अध्ययन किये बिना कुछ राज काजके न जाने और अन्यदेश और स्वदेशके मालकी आने जाने की बातें जाने बिना हम व्यापार में सफलता प्राप्त नही कर सक्ते —इस लिये बहुत ज़रूरी है कि हम शहरों में रहकर अपनी जिन्दगीका उद्देश्य वाणिज्य के अन्दर सफलताप्राप्त करने के लिये अपने लड़कोंको ऐसी पाठशालाओं मे पढावें जहां धर्म ज्ञान और सत्सङ्गति के साथ २ खाता बही लेखा हिसाब किताब तार चिट्ठी इत्यादि के लिखने पढ़ने लायक, कुछ इंग्रेजीज्ञान प्राप्त हो और अपने साथ उनका व्यापार ज्ञान बोल चालको तमीज़ बड़े आदमियों में आना जाना उनके ऊंचे व्यवहार और उच्च आदर्शों के भाव उनके दिल में पैदा कर दें तथा उद्योगी और वीर पुरुषों के चरित्र बताकर उनके हृदय में बड़े आदमीके समान वीर उद्योगी साहसी कर्तव्य परायण बनने की इच्छा उत्पन्न करें और खुद ईमानदार सचाई का नमूना बनकर दिखावें।

कोई भी आदमी तब तक सच्ची उन्नती नहीं कर सक्ता जबतक अपने आपको दृढ़ी विश्वासी हिम्मती, ईमानदार नहीं बनाता द्रव्यवान हो जाना ही यथार्थ उन्नति नहीं कहलाती। धन और अच्छे ओहदे का सच्ची सज्जनता के साथ कोई जरूरी संबंध नहीं है, निर्धन मनुष्य भी सच्चा सज्जन हो सक्ता है उसके भावों में और नित्यके कामों में सुजनता आसक्ती है वह सच्चा, खरा, नम्र, संयमी साहसी अपनी कदर करने वाला और अपने भरोसे काम करने वाला बन सक्ता है और इसीको उन्नति का मूल मंत्र कहना चाहिये जिस मनुष्य के पास धन न हो परन्तु उसके भाव और चरित्र अच्छा हो तो वह उस आदमी से सब तरह श्रेष्ठ है जिसके पास धन तो हो परन्तु भाव निकृष्ट नीच और चरित्र मलीन हो जिन मनुष्यों के भाव हीन हैं असल में वही गरीब है जिसके पास एक वक्त खाने के लिये भी नहीं परन्तु साहस प्रसन्नता आशा, धर्म परायणता, और ईमानदारीको हाथ से न जाने दिया हो वही सच्चा धनी है क्योंकि ऐसे मनुष्य का सारा संसार विश्वास करता है और उसको छोटीर चिताये दुख नहीं देती। उल्टा तपाये हुये सुवर्ण के समान वह संकटों में पड़कर निर्मल और सच्चा वीर बन जाता है उसके ऊंचे दर्जे के भाव उसको गिरने नहीं देते बल्कि थोड़े ही समय मे वह लक्ष्मीका पात्र भी बन जाता है। मेरे लायक दोस्त जौहरी ईश्वरलालजी जौहरी जैपुर जेवरश्रृंगार कम्पनीके मालिक पहले इतने गरीब थे कि आटा गूंथनेके लिये उनके पास थाली तक नहीं थी उसी चकले पर आटा उसन कर कढाई पर रोटी बना खालिया करते थे उस समय भी उनके उस्ताद का उनके पास हजारो रुपयों का माल था परन्तु उस सच्चे ईमानदार बालकका प्रण था कि उस्ताद से जवाहरात का काम सीखकर अपने हाथ से कमा कर बर्तन खरीदूंगा क्योंकि पूरी सचाई के साथ उन्होंने अटूट परिश्रम करके जवाहरात का काम सीखा और जो कुछ वेद खरीत जवाहरात लेने बेचने में उन्हें

मिल जाता था उसीमें अपनी गुज़र करते थे, आज उसी सचाई का फल यह है कि वह एक अच्छे जौहरी और धनी बन गये हैं इसलिये जब तक हम इस अमूल्य धन को हाथ से न जाने देंगे सुखी और प्रसन्न रहेंगे एवं अपने कुटुम्बको भी सुखी बनायेंगे, चाहैं शहरों में आकर हम छोटे से छोटा काम करना शुरू करदें और कमसे कम नौकरी पर लगजांय परन्तु हमारा लक्ष्य ऊंचे की तरफ होना चाहिये । अतएव जातिके व्यक्ति मात्र का यह कर्तव्य है । कि वह अपनी निज संपत्ति व्यापार को संभाल कर उच्च श्रेणि के स्वतंत्र व्यापारी विद्वान् समाज सेवक सच्चे जाति हितैषी वीर पैदा करने का उद्यम करें । (अपूर्ण)

मनुज-कर्त्तव्य ।

(लेखक—पं० दरबारीलाल जैन धर्माध्यापक स्याद्वादविद्यालय बनारस)

१

हैं सैकड़ों जन जन्म लेते हाय इस संसारमें ।
उठते तथा हैं डूबते संसार पारावारमें ।
ऐसा करो परकाम जिससे देशका उत्थान हो ।
इस पूज्य भारत वर्षका सर्वत्र ही सम्मान हो ॥१॥

२

जो पड़ रहा निज पगतले उसको उठाकर चूमलो ।
देखे नहीं कोई जिसे उस ही तरफको घूमलो ॥
जो डाल पतली पर फलद निःशंक उसपर झूमलो ।
आवे अगर बाधा उसे निःशंक होकर घूमलो ॥

३

करके दिखाकर ही रहो करना तुम्हें जो काम है ।
पर कार्य उसको ही कहो जो सर्व लोक ललाम है ।
जिसमें जरा भी देखनेको स्वार्थका नहि लेश हो ।
करते रहो उसको सदा पर, आत्ममें नहिं क्लेश हो

४

भ्राता हमारे सैकड़ों हैं भूखसे ही मर रहे ।
करके परिश्रम रात दिन निज पेटको हैं भर रहे ॥
आश्चर्य है पर पेट तो उनका अभी खाली पड़ा ।
हे सभ्य ! क्या है अन्न कम या पेट ही उनका बड़ा

५

लड़के जिन्होंके भूखसे रोते खड़े गिर गिर पड़े ।
रोटी गई पर नहिं पड़े निज हाथमें दाने सड़े ॥
यों देख भीषण काण्ड भी जिनके नहीं आंसू झड़े
पर बन बड़े, महलों पड़े धन पर अड़े मोतिन जड़े

६

हे सभ्यगण ! सोचो जरा क्या सभ्यताका फल यही
क्या इन गुणोंसे ही कहेंगे पूज्य ये भारत मही ॥
दिनरात भी रोओ मगर वह नहीं देगी तेलको ।
होने न देंगे काम ये, जीवनसफलता मेलको ॥

७

करना अगर जीवन सफल तो प्रेमसे उनसे मिलो ।
मानों उन्हें प्रिय बन्धु अपने देखकर उनको खिलो ।
ये रेशमी कपड़े तुम्हारे हम कहेंगे सफल तब ।
उनसे पुंछेंगी बन्धुओंके आंसुओंकी धार जब ॥
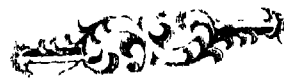
मेला मर्सल गंज–फरिहा तथा पद्मावती परिषद् ।

और और वर्षों के समान इस वर्ष भी मेला मर्सल गंज (फरिहा) का हो गया इस मेलाका क्रम बंधा हुआ है कि एक साल फीरोजाबादका और एकसाल मर्सल गंजका हो इसलिये क्रमानुसार यह मेला तीसरी वर्ष होता है। इससाल इसका नंबर था इसलिये यह चैत सुदी ५ से ६ तक हुआ था। रेलवे स्टेसन की नजदीकी न होनेके कारण यह मेला बहुत ही हलका रहता है और इस साल भी हलका था परन्तु कुछ प्रधान विद्वान और श्रीमानोंके पधारने से इस मेला में रोचकता आगई थी।

मेला में श्रीमान् ला. हीरालाल जी एटा, लाला हरदेव दासजी जेलसर, पं०रघुनाथ दासजी रहीस व जमींदार सरनौ पं. गौरीलालजी पं वंशीधरजी न्यायतीर्थ बेरनी पं. लालारामजी शास्त्री पं. नंदनलाल जी शास्त्री पं० मक्खनलाल जी न्यायालंकार चावली पं० वद्रीप्रसाद शास्त्री दौंहई पं० मक्खनलालजी शास्त्री टेहू पं० मनीराम जी देहली पं० चम्पाराम जी अवागढ पं० चंपारामजी जगनी पं० मुन्नीलालजी उड़ेसर बाबा छोटेलाल जी ब्रह्मचारी पांडे महावीरसहाय जी पाढम आदि श्रीमान् व विद्वान पधारे थे भाग्य वश हम (संपादक) भी पहुंच गये थे। पंचमी और छठ को मेलाका जमाव बहुत ही हलका था पर सप्तमी से अन्य सज्जन व विद्वानों के पधारनेसे मेला में रौनक होगयी। मंदिर के सामने एक आलीशान मंडप तयार किया गया था। शहर के मन्दिरसे आये हुए श्रीजी इसी मण्डप में विराजमान थे। प्रातःकाल बड़े भक्ति भाव से पूजन होती थी तेरह द्वीप विधान भी था पा गया था इसलिये करीब दो बजे दिन से बड़े समारोहसे वह किया जाता था।

कोटला और जगनी इन दो स्थानों के मन्दिर भी आये थे शास्त्र सभा में बड़ा आनन्द रहता था, शंका समाधानोंकी लड़ी बड़ी आनन्दजनक मालूम पड़ती थी, सप्तमी के दिन श्रीमान् पं० लालारामजी ने बड़ी विद्वत्ता के साथ स्थानीय मंदिरके मण्डिपमें शास्त्र पढा था जिससे उपस्थित श्रोताओं को बड़ा आनन्द मालूम पड़ता था। अष्टमीको पं० मक्खनलालजी न्यायालङ्कार का स्थानीय मंदिर में ही शास्त्र हुआ था नवमी के दिन जगनी के मन्दिर में पं० मक्खनलाल जी टेहूका शास्त्र हुआ था। यहांकी शास्त्र सभा में उपस्थित विद्वानों के शंका समाधान बड़े ही आनन्द जनक थे। सप्तमीको मन्दिर कोटला की जलेब बड़े समारोह से फरिहा से गंजको आई थी और अष्टमी के दिन जगनी के मन्दिर की जलेब फरिहा से गंजको बड़े ठाठ से आई थी। श्रीमान् लाला हीरालालजी का प्रबंध सराहनीय था। तंबू आदि की किसीको भी तकलीफ सुनने में नहिं आई थी

परिषद्का विवरण

मेला के अन्तके तीन दिनों में अर्थात् सातें से नौ तक श्रीपद्मावती–परिषद्का सातवां अधिवेशन हुआ था प्रथम ही सप्तमी ता. ७-४-१६ को शास्त्र सभा के बाद ६ बजे से परिषद् का प्रारम्भ हुआ। मंगलाचरण और परिषद् की आवश्यकता के दिखानेके बाद सभा पतिका प्रस्ताव हुआ। प्रस्तावक पं० लालारामजी शास्त्री चावली, अनुमोदक पं० रघुनाथ दासजी रहीस सरनौ समर्थक पांडे महावीरसहायजी पाढम हुए थे और श्रीमान लाला हीरालालजी साहब सर्राफ एटाने सभापतिका आसन सुशोभित किया था। सभा पतिकी आज्ञानुसार परिषद के महामंत्री न्यायतीर्थ

पं० वंशीधरजीने बड़े महत्वजनक और प्रिय शब्दों में विशेष विस्तारके साथ परिषद् की रिपोर्ट सुनाई जो इसी पत्र के प्रथमांक में प्रकाशित भी हो चुकी है पश्चात समयके अधिक हो जानेसे सब्जेक्टकमेटी का प्रस्ताव हो चुकने पर जयध्वनि के साथ सभा का विसर्जन किया गया।

दूसरे दिन अष्टमी ता०-८-४-१६ को ग्यारह बजे से १ तक सब्जेक्ट कमेटी की बैठक हुई और सभामें जो प्रस्ताव पास करनेथे उन प्रस्तावोंका चुनाव किया गया पश्चात् एक बजे से सभा का प्रारम्भ हुआ प्रथम ही मङ्गलाचरण न्यायालंकार पं० मक्खनलाल जीने किया और प्रस्ताव पास होने लगे। उसदिन जरानी की जलेब निकलने वाली थी इसलिये पांच बजे ही सभाका कार्य समाप्त करदिया। कुछ प्रस्ताव पास होने के लिये शेष रहगये। उसीदिन शास्त्र सभा के बाद पुनः रात्रिको ८ बजे सभाका प्रारम्भ हुआ। मङ्गलाचरण पं० मक्खनलालजी शास्त्री टेहूने कीया और प्रस्ताव पास होने लगे। पूर्ण वाद विवाद के साथ प्रस्तावों के पास होजाने पर पं० मक्खनलाल जी न्यायालंकार चावलीने इस पत्रकी आवश्यकता वत लाई इसके बाद वयोवृद्ध श्रीमान् पं० रघुनाथ दास जी साहव ने उक्त पत्रकी बहुत जरूरत लोगोंको सुझाई पश्चात् श्रीमान् पं० गौरीलालजी साहव तथा न्याय तीर्थ पं० वंशीधर जीने उक्त पत्रकी तारीफ करते हुए उसीकी जरूरत पर पूर्ण जोर दिया। उक्त महत्व पूर्ण कार्यमें मुझे (संपादक) भी सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था इसलिए इस पत्र (पद्मावती पुरवाल) की गत वर्ष की हालत पर मैंने भी थोड़ा सा कहा बाद जयध्वनिके साथ सभा विसर्जित की गई।

तीसरे दिन १ बजेसे फिर परिषद् की बैठक हुई पं० बद्रीप्रसादजी शास्त्री दौहरेने मङ्गलाचरण कर समयोपयोगी एक सार गर्भित व्याख्यान दिया। इसी प्रकार पं० नंदनलालजी चावलीका भी व्याख्यान हुआ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनागपुरका एक ब्रह्मचारी भी आया था विद्या विषय पर उसका व्याख्यान हुआ। ब्रह्मचारीके बोलने की शैली सराहनीय थी उसी समय श्रीमान् पं० गौरीलाल जीने बालक और बालिकाओं की परीक्षाली और योग्यतानुसार पारितोषिक भी वितीर्ण किया गया पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

उल्लेखनीय बात।

स्थानीय भाई श्रीलालजी बजाज साहब आदिके अनुरोधसे मेलामें कोटला (आगरा) की सेवा समिति भी पधारी थी। यद्यपि मेलाकी रक्षार्थ पुलिस मौजूद थी पर सेवासमितिसे जनताको जो सुख पहुंचा था यह वही कह सक्ती है। सेवा समितिकी सहन शीलता अत्यंत प्रशंसनीय थी। सेवा समितिके कार्य कर्ताओं पर यदि कोई ढेला भी पड़ जाता था वा कोई कड़े शब्दोंका भी प्रयोग कर डालता था तो वे उससे कुछ भी नहि कहते थे। शांतिपूर्वक उसकी सेवामेंही तत्पर रहते थे। समझदार सदस्योंके सिवा समितिके बालक सदस्य भी बड़े परिश्रमी और शांत थे। कोटलाकी जलेब जिस समय फरिहासे गंजको आ रही थी मार्गमें मूसलधार वर्षा हो गई पर सेवासमिति उसी प्रकार अपने कार्यमें डटी रही। उन सभ्य महाशयोंने अपनी कीमती पोशाककी भी कुछ पर्वा न की थी। मार्गमें यदि किसी के पैरमें कांटा भी लग जाता तो समितिके सदस्य उसे निकालने तकको उतारू हो जाते थे। विशेष कहां तक कहा जाय उस समय समितिके सदस्योंकी पवित्र

चेष्टासे देश सेवाका प्रेम प्रत्यक्ष दीख पड़ता था।

उक्त समितिको धन्यवाद देते हुये हम उनसे यह हृदयसे आग्रह करते हैं कि देश की ओर जो उनका प्रेम जागृत हुआ है उसे दिनो दिन उन्नत करते चले जांय और भारतवासियोंके दुःखोद्धारके लिये सदा तयार खड़े रहैं। जिन गांवोंमें अभी सेवा समितिकी स्थापना नहि हुई है वहांके भाई अवश्य सेवा-समितिकी स्थापना कर लें और अपने भाइयोंके दुःखोंके दूर करनेके लिये कमर कस डालें। उक्त सेवा—समितिके सदस्योंके नाम इस प्रकार हैं-

प्रधान श्रीयुक्त ठाकुर कुंदन सिंहजी, उपप्रधान डा० वृन्दावन दास जी अग्रवाल सेक्रेटरी-मुंशी ब्रजकिशोरजी कायस्थ, नायब सेक्रेटरी ला० संतोषीलालजी जैन, कोषाध्यक्ष—ला० खुशमुखराय जी जैन, मेम्बर कमेटी लाला सेनीलालजी जैन ला० उमरावलालजी जैन अग्रवाल ला० कुंदनलालजी माहौर ठा० महराज सिंहजी एडी कांग राज अॉफ कोटला, हेडस्वयंसेवक—पं० गंगाधरजी शर्मा, असिस्टेंट हेड-पन्नालालजी अग्रवाल, स्वयंसेवक-ला० मुन्नालालजी जैन, ला० रामस्वरूपजी जैन, ला० बुद्धसेनजी जैन, ला० उमरावलालजी माहौर, ला० मुखनंदन लालजी माहौर, ला० पुत्तूलाल जैन, बोहरे रामगोपालजी माहेश्वरी, मुन्शी रिपुसूदन लालजी कायस्थ, ला० चिरञ्जीलालजी माहौर, ला० जगन्नाथदासजी अग्रवाल, पं० रामस्वरूपजी शर्मा, ला० बालमुकुन्दजी जैन, ला० मुन्शीलालजी जैन, ठा० करनपालजी।

इस सेवा समितिके सदस्य अधिकतर अजैन महाशय थे परन्तु कार्य करनेमें किसीको भी संकोच न था जिसको जो काम बताया जाता था उसे वह खुशीसे करता था। सेवा समितिके प्रधान सेक्रेटरी आदि मुखिया बड़े सहन शील और सुशिक्षित हैं। सेवा समितिके सदस्योंके अलावा अन्य भी महाशय मेलाका कार्य बड़े उत्साह से करते मालूम पड़ते थे जैसे ला० दुर्गादास जी जैन ला० मोकमलाल जी जैन, लाला पंचोलालजी जैन आदि। स्थानीय भाई श्रीलाल जी आदिने समितिका पान सुपारी आदि से सत्कार करना चाहा था पर सदस्योंने बहुत कहने पर भी उनकी इस रूपमें खातर मंजूर नहि की इसके बजाय समितिके सेक्रेटरी मुंशी बृजकिशोर जीने समितिकी लघुता दिखाकर स्थानीय भाइयों से क्षमा प्रार्थना की जिससे उनका देश सेवाका प्रेम प्रत्यक्ष रूप से जागृत जान पड़ता था।

—:o:—

आत्म कहानी।

(लेखक—पं० फुलजारीलाल जी शास्त्री धर्माध्यापक जैन हाईस्कूल पानीपत)

(१)

शक्ती अनन्तीं आत्मामें, गुण अनन्तानन्त हैं।
सच्चिदात्मस्वरूप सुख दृग्ज्ञान वीर्य अनन्त हैं॥
सर्वज्ञ प्रभु परमात्मा जब, कर्म अष्टक त्यक्त हैं।
उनमें अनन्ते शक्ति गुण तब सर्व होते व्यक्त हैं॥

(२)

ये गुण तथा शक्ती अनन्तीं, आत्मा प्रत्येकमें।
हैं विद्यमान अनादिसे पर, अप्रकट बहुतेकमें॥
शुद्धात्मको जो भूलकर, पड देह कारागारमें।
इस जीवने बहु कर्मके वश, दुख सहे संसारमें॥

(३)

वे कर्म क्या हैं भाइयो, ऐसी विलक्षण वस्तु हैं।
वे आत्मासे भिन्न हैं, पुद्गलकी अद्भुत शक्ति हैं॥
लोहका सन्तप्त गोला, यथा जलको खींचता।
द्वेषादि अग्नीसे तपित आतम, कर्म नित खींचता॥

(४)

मोह मदिराके नशेमें, दुख सहे कुछ हद नहीं।
गहरी अविद्या नींदमें, यह खूब सोया सुध नहीं॥
जड कर्मके सम्बन्धसे, यह जीव भी जड बन गया।
भूलकर अपनी अवस्था, देहसुखमें रम गया॥

(५)

अच्छा मनुज यदि मद्यको, पीले जो दुर्जन संगमें।
उस मद्यसे विभ्रान्त होता वह विकृत सर्वांगमें॥
कार्यकारण योगसे, होना है ऐसा भी यथा।
जडकर्मके सम्बधसे, इस जीवकी हालत तथा॥

(६)

जैसे मदारी ज्यों नचावे, चपल बन्दर जातिको।
वह विवश होकर त्यों नचे, परतन्त्र दिन अरु रातको॥
हा कर्मरूप मदारियोंने, जीव सब संसारके।
ऐसे नचाये दुःख दे बहु देहरज्जू बांधके॥

(७)

विश्वमें यदि सृष्टि कर्ता, है अगर तो कर्म है।
संसारके जीवोंको दुख सुख, दानमें वेशर्म है॥
यदि चाहते हो आप कहना, कर्मको ईश्वर कहो।
क्यों कि बन रहे कर्म ही ये विश्वके ईश्वर अहो॥

(८)

कमाके दुखमय जालसे, यदि मुक्तिकी हो चाहना।
करके सदा महती तपस्या, कर्मगढको ढाहना॥
सुख शान्ति शक्ती गुण अनन्ते, प्रगट होंगे आपसे।
होजाओगे सर्वज्ञ तुम भी, नष्ट कर्म कलापसे॥

——:०:——

भाइयों को सूचना।

विदित हो कि फीरोजाबादवाले पद्मावतीपरिषद के अधिवेशन में एक कमेटी बनाई गई थी जिसके सभापति ला० शिखरप्रसाद जी साहिब रईस टुंडला हैं—इस कमेटी का उद्देश्य यह है कि अपनी जाति में जो आपुस में किसी बात का पंचायती, श्रीमंदिरजी सम्बन्धी या और किसी प्रकार का विरोध लडाई झगडा हो उसे मिटा कर एकता बढाई जावे, ताकि सर्व भाई मिलकर अपनी जातिकी, जो सब जातियों से बहुत गिरी हुई है उन्नति हो। इस कमेटी का काम अभी तक कुछ नही हुआ था हाल में मरसिलगंजवाले अधिवेशन में पुनः इस विषयपर जोर दिया गया—और यह काम अति आवश्यक है भी। इस लिये सर्व पद्मावतीपुरवाल भाइयों से निवेदन है कि यदि उनके ग्रामों में किसी प्रकार का आपसमें वैमनस्य हो तो वे कृपा कर मुझे लिखें मैं यथा सम्भव उस विरोध को दूर करने का प्रयत्न करूंगा——

जाति सेवक—महावीरसहाय पांडे. जैन, शिकोहाबाद।

रत्नलता

(गल्प)

(लेखक— श्री धन्यकुमार जैन, 'सिंह' ऑ० मैनेजर—"पद्मावतीपुरवाल" कलकत्ता ।)

(१)

भीतरी दृष्टि से देखा जाय, तो संसार में जितने भी पदार्थ हैं, वे सब हमें कुछ न कुछ शिक्षा देते हैं। प्रकृति का संघटन ही ऐसा है कि वह अपनी विलक्षणता का भान, यदि कोई देखने वाला हो तो भली भांति करा देता है। अंधेरी रात्रि के घनघोर नीले जलभरे बादलोंकी तरफ दृष्टि दौड़ाइये तो मालूम होगा कि संसारमें जिसके कारण अंधकार छा जाता है, घड़घड़ाहट की आवाजों से भले भलों के दिल दहल जाते हैं, पथिकों के छक्के छूट जाते हैं और लोगों के समस्त कार बार बंद पड़ जाते हैं, वही मेघ एक अद्भुत प्रकाश पैदा करता है, रास्ता चलते भूले भटकों को अपनी उस तीक्ष्ण रोशनी से एक प्रकारकी आशाका संचार करा देता है और "विश्वमें जहां ज्यादा अन्धेर होता है, वहां कुछ न कुछ आंखों को चका चौंध पैदा करने वाला प्रकाश भी रहता है।" यह शिक्षा देता नजर आता है—

जिस प्रकार प्रकृति एक मेघके द्वारा "अन्धेरे में भी प्रकाश होता है" यह बात बतलाती है उसी प्रकार मानव जीवन की घटनाओंमें—चाहें वे अन्धकारमय ही क्यों न हों—प्रकाश एक तरह का उज्ज्वल परिणाम भीतर छिपा रहता है और समय पर प्रगट हो लोगों को अपनी कांतिसे चकमका देता है—यह बात भी नाना तामस प्रकृतिके जन स्वभावोंमें सत्व गुणका उद्रेक कर बतला देती है और संसारी प्राणियोंसे आश्चर्य भरे वचनों में अपना उक्त सिद्धांत पुष्ट करा लेती है।

आज हम अपने पाठकों को इसी प्रकृति के उपदेश पोषक एक घटना का संक्षिप्त वर्णन सुनाते हैं। जिस की जीवन कहानी का सार खींचकर हम विज्ञ पाठकों के सामने रखना चाहते हैं। उसका नाम है—रत्नलता।

रत्नलता अपने गांव वालों की दृष्टिमें, इतिमें थोड़ी टोलीमें एक घृणित पतित स्त्री है। वह जिस प्रकार अपना जीवनयापन करती है उससे उस पर सब 'धिक्कार—धिक्कार' की बौछार मारते हैं। कोई कोई मन चले धनमदमाते उसे अपनी भीतरी प्रेयसी भी समझते हैं। परन्तु वह अपने को इन्द्रियों की सवेग बहती हुई धारमें खिंचकर जाने वाली एक वृक्ष की डार मात्र समझती है। यद्यपि वह इस प्रकार दिन काटना अयोग्य समझती है और कभी कभी शरीर को कंपाने वाली अपनी घृणित चेष्टाओं की याद कर गरम २ श्वासें लेनेके साथ २ कांप भी उठती है पर काल-लब्धि के बिना अन्धे का तरह उसी प्रवाह में बहती चली आरही है।

(२)

पृथिवीमें दो तरहके बड़े आदमियों के नाम सुनने में आते हैं। अमुक चार पैसेकी पूंजी से लखपति हुए थे और अमुक साहबने बिड़ी के व्याह (रंडीबाजीमें) लाखों रुपये धूलकी तरह उड़ाये थे। विलासचंद दूसरे दर्जे के बड़े आदमी हैं। अबकी बार लोगोंकी देखा देखी दिखाऊ धर्मात्मा बनने के लिये श्री सम्मेद शिखरजी जाते समय वे रत्नलता को भी साथ लेते गये हैं।

तीर्थों की यात्रा का शुभकर्मों के कमाने की इच्छा भली-बुरी सब ही स्त्रियोंके हृदयमें प्रबल रहती है। इसीलिये आज श्रीसम्मेद-शिखरजीमें आकर रत्नलता का हृदय भी आनन्द से परिपूर्ण हो गया। उसको यह मालूम होने लगा कि-'आज मैं नरक छोड़कर मानो सशरीर ही स्वर्ग में आ गई हूं।'

स्नानादिसे निवृत्ति पा एक सिल्ककी धोती पहिर कर विलासचंद श्रीमंदिरजीके दर्शनके लिये निकले रत्नलता आनन्दसे फूली न समाई. वह आगे-आगे चलने लगी. पीछे पीछे विलासचंद भी अपनी ऊपरी भक्तिको आन्तरिक बनानेकी वृथा चेष्टा करते हुये अपने पैरोंको धीरे २ रखने लगे। रत्नलताके शरीरके अलंकार पुष्पित यौवनकी चंचल रागिणीके समान बहुत ही मधुरतासे बजने लगे! उसकी लघु गमन-भंगी देखनेसे यह मालूम होने लगा, मानो पहिली बसंतकी पवन समीर आज यहां मूर्तिक हो जाग उठी है। रत्नलताके पैरोंके साथ साथ विलासचंदके भी प्राण चढने-उतरने लगे।

रास्तेके लोग मंत्र-मुग्धकी तरह रत्नलताकी ओर ताकते रह गये। कोई-कोई आंखे मटका कर इशारा करनेमें भी न चूके। इस तरहके इशारे रत्नलताने पहिले भी बहुत देखे थे, किंतु आज, यहां उसने इसकी प्रत्याशा भी न की थी। आज वह चली है-श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शनके लिये पुजारियोंके वेषमें सिर झुका कर —किसीका चित्त दूषित करनेके लिये, न ... तो किसी प्रकारके हाव-भावकी ... नहीं ...! आज उस रास्ते ने और भी बहुत रूपसी ... चली हैं, पर वे अभागे उनकी ओर ताककर ... इशारे करनेका साहस नहीं करते! फिर? ... उसके मुखपर ऐसी कौनसी भयानक ... छाप मार दी है जिससे वह छिपने पर भी पकड़ी जाती है?

रत्नलताकी गति क्रमशः संकुचित हो आई। एक बार उसने पीछेको ओर-विलासचंद आ ... या नहीं?—ताककर देखा तो, विलासचंद ... सिरको हल मगाते हुये राहके उन ... ओर ताक ताककर मृदु-मृदु हंस रहे हैं। ... उस हंसीका अर्थ समझ गई। ... सबको यह कहना चाहती थी—'हूं हूं? ... दुर्लभ रत्नका मालिक मैं हूं, देखा!'

बड़ी भारी चोट खाकर रत्नलताने ... घूंघट खींच लिया।

(३)

आज श्री जिनेन्द्रदेवकी प्रतिबिम्बके दर्शन ... रत्नलता के भावोंका विचित्र परिवर्तन हुआ। ... देर तक अपने पहिलेके दुष्कृत्योंको याद कर ... उसके शरीरमें चारों तरफसे कांटेसे चुभने लगे। किंतु तो भी वह अचल, अटल भावसे बैठी बैठी कुछ प्रार्थनासी पढने लगी। इतनेमें पीछेसे विलासचंदने आकर उसके चंचल हृदयकी गति और भी तेज कर दी। वह कहने लगे—"क्या आज मंदिरमें ही दिन भर बीतेगा—आज क्या हो गया है?"

रत्नलता चौंककर बोली—" हाँ, हाँ—अभी आती हूं।" इतना कह कर शीघ्रताके साथ प्रार्थना समाप्त कर वहांसे चल दी।

बिलासचंद रत्नलताको देहसे प्रायः चिपट कर चलने लगे। उसके इस हाव-भावको देखकर मार्गके लोग अवाक् हो, देखने लगे। रत्नलताने यह देखकर विलासचंदसे कहा—" बीच रास्तेमें यह क्या कर रहे हो! तुम पीछे-पीछे मुझसे अलहदा होकर आओ मैं अभी-पहाड़ पर चढ़ूंगी।"

बिलासचंद बोला—"इतनी धूपमें पहाड़ पर! आज नहीं. कल सवेरे ठंडक में चलेंगे।"

रत्नलता कहने लगी—"यह कैसे हो सकता है! अभी श्रीजिनेन्द्रदेवके दर्शनसे परिणाम शुद्ध हैं. फिर न मालूम कैसे परिणाम हुए? इसका कुछ ठीक नहीं। इसलिये अभी चलना ही सबसे अधिक लाभ दायक है।—आजन्म पाप ही कमाती आई हूं. अपने वास्तविक सुखके लिये एक दिन भी कष्टका सामना कर पुण्य नहिं कमाया।—आज बहुत अच्छा मौका है। यदि ऐसा मौका पाकर भी कुछ पुण्य संचय न किया तो . . . . . ."

बिलासचंद जरा जोशमें आ गये और फिर कुछ सोचकर दबी हुई आवाजसे बोले—

"जो जितना ज्यादा पाप करता है, उसका पुण्यकी ओर उतना ही अधिक खिचाव होता है!"

रत्नलताका मुख पहिले कुछ विवर्ण—फिर क्रोधसे लाल हो गया। घाव पर ही चोट लगती है। कुछ देर तक चुप रहकर, हठात् वह उद्धत स्वरसे बोल उठी— 'तुम्हें यदि कुछ अड़चन मालूम पड़े, तो पहिले डेरे पर चले जाओ। मैं पहाड़ परकी वंदना करके पीछे धर्मशालामें आकर ठहरूंगी।"

बिलासचंद हा हा करके हंस उठे और बोले—" कैसी मुश्किल है? दिल्लगी भी नहिं समझती हो। चलो!" रत्नलता अनिश्चित भावसे बिलासचंद के साथ ही लौट आई।

(४)

दूसरे दिन सूर्योदय के पहिले ही रत्नलता नहा-धोकर तैयार हो गई। कुछ सामग्री लेकर वह अकेली ही, तीर्थंकरों के पवित्र तीर्थकी बन्दना कर, अपने भावों को और भी शुद्ध बनानेके लिये पर्वत की ओर चल दी।

धीरे धीरे वह गन्धर्वनाला, सीतानाला एक एक करके सब पार कर कुंथनाथजी की टोंक पर आपहुंची। उसे यह विश्वास था कि, बिलासचन्द उसका पीछा नहिं छोड़ेगा। अतएव वह सब टोंकों की बन्दना कर पार्श्वनाथजीकी टोंक पर पहुंची और श्रीजिनचरणोंकी वेदीके सामने स्थिर हो बैठ गई।

सूर्योदय होने में अब भी प्रायः एक घंटे की देर है। नीचे से देवाधिदेव श्रीजिनेन्द्रदेव की पवित्र स्मृति रूप श्री सम्मेदशिखरजी की बन्दना के लिये, यात्रियों के गद्गद् कण्ठ की जयगाथा ध्वनित हो रही है, कोई कहता है—' जय श्री संमेद शिखरजी की जय!' कोई- जय श्रीमद्दिगंबर जैनधर्म की जय।' और कोई- जय भगवान के समवशरण को जय!'—

नाना जाति नाना भाषाओं में, नाना स्वर में, वही एक ही अखण्डनीय, सच्चे, पवित्र दि० जैनधर्म की मुक्त कण्ठ से जय जयकार कर रहे हैं। कोई किसीको जानता नहीं, पहिचानता नहीं, किंतु सबके मनकी बात एक ही वाक्य में—एकही साथ निकल रही है—क्या पापी और क्या पुण्यवान?

झर-झर झरने की ध्वनि के साथ २ गंभीर स्तोत्र

पाठ और पवित्र जय ध्वनि सुनते सुनते, तिरस्कृत रत्नलता के भाव और भी पवित्र हो गये। वह और थोड़ा आगे बढ़कर श्रीजिन-चरणों की वेदी के पास आ बैठी। उसके कडुये, विरवाद जीवनमें आज अचानक ही कुछ अज्ञात आनन्दके मधुर मधुर फुहारे छूटने लगे—इस अमृतकी अजस्र धारामें रत्नलता का हृदय गद् गद् हो गया। उसके हृदय में केवल-" अहिंसा परमो धर्मः "—जग उठा।

उसकी वह भक्ति भरी, नतजानु, युक्तकर मूर्ति आज चित्र के सदृश स्थिर सुंदर और अपूर्व भासने लगी।

कोई एक भव्य अपने तीव्र स्वर से प्रार्थना पढ़ रहा था—

" तव पद मेरे हिय में—
मम हिय तेरे पुनीत चरणों मे,
तब लौं लीन रहै प्रभु—
जबलौं पाया न मुक्ति पद मैंने।"

इस प्रार्थना ने रत्नलता के हृदय को स्पर्श किया।

रत्नलता आंखें बंद कर क्या विचारती रही, यह हम नहीं कह सकते, पर उसके आंखोंसे झर-झर-झर आंसू गिरने लगे—यह शायद अनुतापके पवित्र अश्रु हैं। उस अश्रु-धाराके साथ साथ उसके हृदयके सकल कलंक धुलकर बाहर निकल आये। उसके हृदयमें ऐसे भावोंका उदय, कभी नाम मात्रके लिये भी न हुआ था। आज इस महातीर्थमें, अपूर्व स्थान माहात्म्यसे उसके हृदयमें संसारकी असारता स्पष्ट झलकने लगी।

श्री जिन-चरणोंकी वेदीके सन्मुख, पाषाण-मूर्त्ति की तरह स्थिर हो-'मैं कितनी देरसे बैठी हूं'-यह वह (रत्नलता) नहीं जानती, अचानक विलासचंदने उसका हाथ पकड़ कर खींचा।

किन्तु रत्नलताकी आत्मा तब दूसरे लोकमें थी-वह चुप-चाप बैठी रही।

विलासचंदने उसके हाथमें झटकादेकर अधीर स्वरसे कहा—"क्या, लौटना नहीं है?"

रत्नलता मानो सोतेसे जगी। मुंह फेर कर देखती है तो, विलासचंद! उसको देखते ही उसे पहिलेकी बातें फिर याद आने लगीं और साथ ही उसकी दृष्टिमें एक गंभीर व्यथाकी झलक झलकने लगी।

कातर स्वरसे थम-थम कर वह बोली-"क्या, क्या कहते हो-तुम?"

विलासचंद व्यंग सहित बोला—"कहना हूं, अतिभक्ति ढोंगका लक्षण है! भूखके मारे मेरे पेट में तो बिल्लियां कूद रही हैं-इधर तुम्हारी पूजा ही खतम नहि हो पाई-बस, हो चुका-उठो!"

वह कुछ कहना चाहती थी पर लोगोंकी कौतूहल पूर्ण दृष्टि अपनी ओर देख कर, वह घूमकर फिर पहिलेकी तरह ध्यान-मग्न हो बैठ गई।

ओष्ठ चबाते हुए विलासचन्द फिर बोल उठा-'ऐं! बात भी नहिं की!"

रत्नलता चुप है।

विलासचन्द ने उसका हाथ पकड़ कर जोरसे एक झटका मारा और कहा—" उठो, उठो, नहीं तो!"

सर्प जिस प्रकार फण उठाता है, उसी प्रकार विलासचन्द के पकड़ने पर रत्नलता भी गर्दन टेढ़ी कर उठ खड़ी हुई। कठिन और कर्कश स्वर से वह बोली-" कौन! कौन हो तुम? चले जाओ यहां से!"

उस के कण्ठ स्वर से मन्दिर के सब यात्री चौंक उठे। एक नवयुवक यात्री दूरसे इन दोनों के वर्त्ताव को तीक्ष्ण दृष्टि से देख रहा था। गड़ बड़ देखकर वह इन दोनों के सामने आ खड़ा हुआ। रत्नलता से उसने पूंछा—" क्या हुआ है बहिन?"

विलासचन्द उसके बलिष्ठ शरीर की ओर देखकर डरते हुए कहने लगे—" कुछ नहिं हुआ । यह मेरी स्त्री है, साथ जाना नहि चाहती । '

रत्नलता ने पहिले की तरह फिर कहा—" यह मेरा कोई नहि हैं । मेरे देह पर हाथ चलाता है-मैं इसको नहि पहिचानती ।"

युवक हुंकार कर बोला—" श्री सम्मेदशिखर जी पर महिलाका अपमान !" यह कह कर उस नवयुवक यात्रीने विलासचंद्र की गर्दन पकड़ कर एक ऐसा धक्का मारा, जिससे वह लट्टू की तरह घूमता हुआ मंदिरजीके बाहर दीवारसे जा टकराया ।

इसके बाद क्रुद्ध सिंहके समान युवकको अपनी ओर आते देख, विलासचंद्र अपनेको सम्हालते हुए नीचे उतरने लगे । पलक पलटते ही वह लापता हो गये ।

इसी बीचमें रत्नलता पहिलेकी तरह संसारकी असारताका चिंतवन करनेके लिये पुनः वेदीके पास जा बैठी—उसके नयनोंमें गहरे आनंदका पवित्र आभास झलकने लगा ।

(५)

आज हम उसी रत्नलताको श्वेत साड़ी पहिने हुये जिनेंद्र भगवानके उपदिष्ट धर्मका गांव २ प्रचार करते सुनते हैं ।
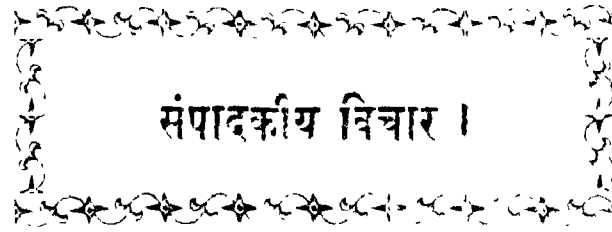
संपादकीय विचार ।

परिषद्के दो विभागोंमें एक तो चेता !

हमारे बहुतसे भाइयोंकी यह शिकायत थी और वास्तवमें बात भी ठीक थी कि परिषद्के अन्य विभागोंने जो कुछ कार्य किया है वह यद्यपि पूर्ण संतोषजनक नहीं है तो भी जो कुछ किया है वह बिल्कुल न करनेकी अपेक्षा किसी कदर ठीक है परंतु उपदेशक विभाग तथा विरोधनाशक विभागने कुछ भी काम नहीं किया है, जो कि बिल्कुल ही गैर वाजिब है। बहुतसे भाइयोंने तो इन दो विभागोंके कार्यकर्ताओंके विषयमें यहां तक लिखकर हमारे पास भेजा था कि यद्यपि परिषद्के नियमानुसार मंत्रियोंका परिवर्तन तीसरे वर्ष होता है पर इन विभागोंके मंत्रियोंको इसी साल बदल देना चाहिये । इसीलिये हमने पहिले अंकमें उन विभागोंकी उन्नति पर ध्यान देनेके लिये परिषद्को सचेत किया था । हर्ष है कि वह हमारी प्रार्थना सुनली गई, और विरोधनाशक कमेटीके अन्यतम सदस्य श्रीयुत महावीरसहायजी पांडे शिकोहाबादने एक विज्ञापन सर्वदा छपते रहनेके लिये भेज (जिसको कि हमारे भाई दूसरी जगह पढ़ेंगे) मंत्री होना स्वीकार किया है ।

पांडेजीने जो यह कार्य हाथमें लिया है वह बहुत ही महत्वशाली है, इसके सुचारु रूपसे संपादन करनेमें उन्हें बहुत ही कठिनाइयां झेलनी पड़ेंगी, परंतु उन सबका दमन कर 'कामयाबी हासिल' करना ही मनुष्यका कर्तव्य है' यह समझ पांडे जी धैर्यपूर्वक कार्य करते रहेंगे ऐसी आशा है ।

हम अपने जातीय भाइयोंसे भी यह निवेदन करना उचित समझते हैं कि जहां कहीं भी वैर विरोध हो और उसका मिटना आपसमें संभव न हो तो किसी तरहका संकोच न कर पांडे जी को इत्तिला देवे जिस तरह होगा बिरादरीके मुखिया भाइयोंको इकट्ठा कर वे समझौता कर देंगे।

यह तो हुई विरोधनाशक विभागकी बात, अब उपदेशक विभागकी सुनिये—

इस विभागके मंत्री पं० भूधरदासजी एटा हैं। पर आज तक उन्होंने अन्य कार्योंकी तो क्या बात? अपने ऊपर किये हुये लोगोंके आक्षेपोंके उत्तर देनेकी भी कृपा नहीं दिखलाई है। परिषद् भी ऐसी है जिसने कि आज तक उनकी एवज किसीको भी नहीं चुना। धन्य है!!!

स्वर्गयोग्य स्वार्थत्याग।

पं० बाबूलालजी जमादारने इलाहाबादसे हमारे पास लिखा है कि—"आजकल कुछ काम करनेको कह रहा है अत एव ता० १५ मईसे १५ जून तक एक मास में जाति सेवाके किसी भी कार्यको कर सक्ता हूं। मेरे रहन सहनमें जो खर्च होगा वह मैं अपने पाससे करूंगा।"

पंडितजीका उक्त विचार बड़े महत्त्वका है। वास्तवमें ऐसे ऐसे ही स्वार्थों पर लात मारनेवाले वीर एक दो नहीं, हजारों और लाखोंकी संख्यामें उत्पन्न होंगे तब ही जाति धर्मका उद्धार होगा। हम अपने अन्य विद्वान भाइयोंसे भी प्रार्थना करते हैं कि जब जब वे देशमें आवें और अधिक दिन घर रहें तब तब रिश्तेदारियोंमें घूमनेके समान वा घरमें रहनेके समान जाति सेवनका पवित्र व्रत अवश्य धारण किया करें।

ऊपर लिखी प्रतिज्ञाके अनुसार पंडित बाबूलालजी उपदेशकीका कार्य करेंगे इसलिये जिन जिन ग्रामोंमें जांय वहाँ वहांके भाइयोंका फर्ज है कि वे उपदेश आदि सुनकर लाभ उठावें।

स्याद्वाद महाविद्यालय काशी।

उक्त विद्यालयका जबसे जन्म हुआ है तभीसे कुछ ऐसी विलक्षण बात होती आई है कि यहांके विद्यार्थी और कार्यकर्त्ताओंमें नहीं पटती। इस विद्यालयके जन्म दिनसे लेकर आज तककी समस्त घटनाओंका इतिहास जानने वाले लोग यद्यपि जो अनबनका कारण है उसे अच्छी तरह समझते हैं परन्तु उनकी या तो कोई सुनता ही नहीं, या वे कुछ हस्तक्षेप करना पसंद ही नहीं करते।

यद्यपि विद्यार्थी और कार्यवाहकोंकी मतविभिन्नता जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है आजकी नहीं है तो भी विद्यालयने जो जैन धर्मकी सेवा करने वाले विद्वानोंको तयार कर समाजका उपकार किया है उसे कोई भी कृतज्ञ व्यक्ति अस्वीकार नहीं कर सक्ता। आज कल जितने भी पंडित, शास्त्री और तीर्थ दृष्टिगोचर होते हैं दो एकके सिवा सभी इस विद्यालयके ऋणी हैं। इसलिये प्रति दिनके आपसी झगड़ोंमें पड़कर भी यह विद्यालय विद्वान बनानेमें किसी प्रकार भी अयोग्य नहीं है यह स्पष्ट विदित होता है। लेकिन यदि उक्त मत विभिन्नता किसी प्रकार मिटादी जाय और दोनो समुदाय मिलकर चलने लगें तो आज तक इस विद्यालयने जो काम किया है उससे भी कई गुना कर दिखावे। विद्यालयका यह मत द्वैध किस प्रकार मिट सकता है इस विषय पर समयानुसार फिर कभी हम लिखेंगे। अभी सिर्फ फिल हालकी ही एक घटनाका उल्लेख कर विश्राम लेना चाहते हैं।

हमारे पास उक्त विद्यालयके मंत्री बा० सुमतिलालजीका एक लेख आया है जिसका सार यह है-

जैन गजटमें हड़ताल शीर्षक जो लेख इस विद्यालयके संबंधमें निकला है वह मिथ्या है असल बात यह है कि—कुछ विद्यार्थियोंने एक पार्टी बनाली थी वे विद्यालयके नियम विरुद्ध अभक्ष्य भक्षण तथा चौपर आदि खेल खेला करते थे इसलिये उपमंत्री साहबने कुछ कहा सुनोकी। पार्टीके मुखियाको यह बात सह्य नहीं हुई और उसने अपमानजनक ढंग से इसका उत्तर दिया। अतः प्रबंधकारिणी कमेटीको आज्ञानुसार उक्त छात्र विद्यालयसे पृथक् किया गया। यह देख पार्टीके अन्य छात्रोंने भी उसका साथ दिया। बस ! इस प्रकार कुछ छात्र विद्यालयसे अलग हो गये हैं वास्तवमें हड़ताल कुछ नहीं हुई।

अंतमें आपने अन्य जैन संस्थाओंको सूचित किया है कि ये छात्र बिना मेरी सम्मतिके न भर्ती किये जांय !

मंत्री साहबके उक्त पत्रसे विज्ञ पाठकोंने यह भली भांति समझ लिया होगा कि अपराध किसी एकका ही नहीं है न तो छात्र ही सिर्फ अपराधी बताये जा सक्ते हैं और न मंत्री साहब हो। वास्तवमें बात कुछ और ही होना चाहिये जिससे कि यह जबर्दस्त मुटभेंट हुई। एवं बहुत कुछ संभव है कि इस का तथ्य शीघ्र ही प्रकट हो।

संरक्षक बने।

वर्धाके शेठ रामासाव बकाराम जी रोडे २५) रु० प्रदान कर इस पत्रके संरक्षक बने है इसके लिये हम उनके बड़े कृतज्ञ हैं और शेठजीको शतशः धन्यवाद देते हैं। वास्तवमें भारत वर्षके सभी प्रांतोंके पद्मावती पुरवाल इसको जब अपनावेंगे और तन मन धन तीनोंसे सहायता देंगे तभी इसकी उन्नति होना संभव है।

धन्यवाद।

हमारे मित्र रार (एटा) निवासी पं० शिवजी रामजी आजकल वर्धा चांदाकी तरफ उपदेशकीका काम कर रहे हैं। हर्ष है कि उन्होंने आर्थिक सहायता जो इस पत्रको दी है वह तो दी ही है पर भ्रमण में भी सर्वदा इस पत्रपर कृपादृष्टि रखते हैं। पंडित जी जहां जाते हैं वहां ही इसका प्रचार करते हैं। आपकी ही प्रेरणाका फल है कि वर्धाके एक प्रसिद्ध श्रीमान् इसके संरक्षक बने हैं। आशा है पंडितजी सर्वदा ऐसी ही इसपत्र पर कृपा रक्खेंगे और धन्यवादके पात्र बनते रहेंगे।

ग्राहक बढाइये।

इस पत्रका जैसा आकार होगया है उससे गत वर्षकी अपेक्षा चौगुना खर्च हो गया है। कागजको दिन पर दिन मंहगी हो रही है ऐसे समयमें बिना ग्राहक बढाये इसका निष्कंटक रीतिसे चलना कठिन है इसलिये हर एक भाईसे प्रार्थना है कि वह ग्राहक संख्या बढावे। साल भरमें २) रु० देना किसीको भी कठिन नहीं है। वैसे तो हम अपनी बिरादरीके मालवा, नागपुर, आगरा प्रांतके जितने भी गांव है सबमें भेजते हैं पर उन गांवोंके भाइयोंको भी चाहिये कि यथाशक्ति इसकी सहायता करें। यदि कोई एक मनुष्य २) रु० नहीं दे सक्ता हो तो जितने भी उस गांवमें आदमी हों उन्हें चंदाकर भेज देना चाहिये।

सहायक हुये।

उत्तरपाड़ा (कलकत्ता) निवासी ला० धनपतिरायजीके नाती उत्साही नवयुवक श्री धन्यकुमार जैन 'सिंह' इस पत्रकी विना किसी प्रकारकी आर्थिक सहायता लिये रवानगी आदिका जो कार्य करते हैं उसके लिये ही जातिको कृतज्ञ होना चाहिये पर अब वे (धनपतिराय धन्यकुमार इस नामसे) इस पत्रके लिये ५) प्रदान कर सहायक हुये हैं इस लिये अनेक धन्यवाद हैं। उत्साही भाइयोंको इनका अनुकरण करना चाहिये।

समालोचना।

जिनेश्वर पदसंग्रह (प्रथम भाग) सरनौ (एटा) के स्व० पंडित जिनेश्वर दासजीने बहुतसे भजन व पद बनाये हैं। उनमेंसे ही ६३ पदोंका संग्रह इसमें छपाया है। पद बड़े ही मार्केके और शास्त्र सभा आदिके समय बोलने लायक हैं। पवित्र प्रेसमें छपनेके कारण हस्तलिखितके समान शुद्ध हैं। कीमत ।।) आना। पता—जैनमित्रमंडली श्यामबाजार, कलकत्ता।

जैन तिथिपत्र- बहुत ही चिकने बढ़िया कागजोंपर छपा हुआ है। विलायती ऐसे पत्र ।।) ।।=) में मिलते हैं पर बा० फूलचंद्र जैन कार्यालय बनारस सिटी इन्हें मंदिरोंके लिये मुफ्त और सर्व सामान्यको -) की टिकट भेजनेसे भेजते हैं। जैन पर्व व त्योहारोंका नाम आदि भी है।

Regd. No. C. 888

हैजा प्लेग इनफ्लूएंजादिकी अकसीर दवाइयां

विना मूल्य ।

दिगम्बर जैन मालवा प्रा०सभाके शुद्धौषधालय बड़नगर (उज्जैन) से सिर्फ पोस्ट पेकिंग खर्च मात्रसे भेजी जाती हैं यहांकी दवाइयोंसे फीसदी ९० रोगी आरोग्य हुए हैं जिनके हजारों प्रशंसापत्र मौजूद हैं। उक्त औषधियोंके सिवाय अनेक कठिन व साधारण रोगोंकी तत्काल गुणकारी औषधें भी विना मूल्य भेजी जाती है। अन्य स्थानोंमें शाखाएं भी खोली गई हैं। भारतमें नेपाल कामरूप आदि देशों तक ११२४ शाखाओं द्वारा औषधियोंका प्रचार हो रहा है। विलायतको भी औषधें भेजनेका प्रयत्न कर रहे हैं। पशुचिकित्साका भी प्रबंध किया गया है। यहांका कार्य द्रव्यदाताओंकी उदारता पर निर्भर है। सहायता भेजनेवालोंको टिकट भेजे जाते हैं और उनका नाम धन्यवाद पूर्वक अखबारोंमें छपाया जाता है।

विशेष वड़ा सूचीपत्र मंगाकर देखो—

पत्र व तारका पता—

जैन औषधालय बड़नगर (उज्जैन)

प्राप्ति स्वीकार ।

वर्धा निवासी शेठ चिरंजीलालजी बड़जातेने अपने भाईके विवाह समय २) रु० इस पत्रकी भेंट किये हैं एतदर्थ धन्यवाद।

काम सीखनेवाले चाहिये ।

जातिमें विद्याकी दिन दिन तरक्की हो रही है बहुतसे हमारे भाई सर्कारी मदर्सोंमें चौथी दफा व मिडिल तक पढते हैं। पढ चुकने पर उन्हें ६) या ८) रु० की नौकरी मिलती है इसलिये उन्हें हम सूचित करते हैं कि यदि उन्हें अधिककी नौकरी करनी है तो वे हमसे लिखा पढी करें। उनके लिये हमने छापेखानेका काम सिखानेका विचार किया है। फिलहाल जब तक काम न सीख जायगे उन्हें ८) रु० महीने केवल भोजन खर्च के लिये मिलेगा, उसके बाद उनकी १५) रु० से २५) तककी नौकरी करदी जायगी छापे खानेका काम कुछ कठिन नहीं है उसे चतुर लड़के ६ महीनेमें बखूबी सीख सकते हैं। काम भी दिनमें आठ घंटा करना होता है इससे वेशी करनेपर तनखाह भी घंटोंके हिसाबसे वेशी दी जाती हैं। परिश्रमी मनुष्य महीनेमें ३०.४० रु० तक कमा सकता है इसलिये जो जैनी भाई मदर्सोंमें ८) रु० की नौकरी कर रहे हैं वा करनेवाले हैं या पढे लिखे हैं पर नौकरीके विना खाली बैठे हैं उन्हें हमसे पत्र व्यवहार करना चाहिये।

मैनेजर--जैनसिद्धांतप्रकाशक पवित्र प्रेस।
८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार,
कलकत्ता।

श्रीलाल जैनके प्रबंधसे जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,
८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार कलकत्तामें छपा।

पद्मावती पुरवालके नियम।

१ यह पत्र हर महीने प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य ग्राहकोंसे २) रु० पेशगी लिया जाता है।

२ इस पत्रमें राजविरुद्ध और धर्मविरुद्ध लेखोंको स्थान नहिं दिया जाता।

३ इस पत्रके जीवनका उद्देश्य जैन समाजमें पैदा हुई कुरीतियोंका निवारण कर सर्वज्ञमणीत धर्मका प्रचार करना है।

४ विज्ञापन छपाने और बटवानेके नियम निम्नलिखित पतेसे पत्र द्वारा तय करना चाहिये।

श्री "पद्मावतीपुरवाल" जैन कार्यालय

नं० ८ महेंद्रबोस लेन, श्यामबाजार, कलकत्ता।

संरक्षक, पोषक और सहायक।

२५) ला० शिखरचंद्र वासुदेवजी रईस, टूंडला।

२५) पं० मनोहरलालजी, मालिक—जैनग्रंथ उद्धारक कार्यालय, बंबई।

२५) पं० लालारामजी मक्खनलालजी न्यायालंकार चावली।

२५) पं० रामप्रसादजी गजाधरलालजी (संपादक) कलकत्ता।

२५) पं० मक्खनलालजी श्रीलाल (प्रकाशक) कलकत्ता।

२५) सेठ रामासाव बकारामजी रोडे, वर्धा।

१२) पं० फुलजारीलालजी धर्माध्यापक जैन हाईस्कूल, पानीपत

१२) पं० अमोलकचंद्रजी प्रबंधकर्ता जैनमहाविद्यालय, इंदौर

१२) पं० सोनपालजी जैन पाजीगांव वाले, पाढम।

१२) पं० वंशीधर खूबचंद्रजी मंत्री जैनसिद्धांतविद्यालय, मोरेना।

१२) पं० शिवजीरामजी उपदेशक बरार मध्य प्रादेशिक दि० जैन सभा।

१२) पं० कुंजबिहारीलालजी जैन अटौवा निवासी।

५) ला० धनपतिरायजी धन्यकुमार 'सिंह' (मैनेजर) उत्तरपाड़ा।

५) पं० रघुनाथदासजी रईस, सरनौ (एटा)

५) ला० बाबूरामजी रईस वीरपुर।

५) ला० लालारामजी बंगालीदासजी पेपर मर्चेंट, धर्मपुरा-देहली।

५) ला० गिरनारीलालजी रईस, टेहरी (गढवाल)

५) शेठ बाजीराव देवचंद्र नाकाडे, भंडारा (वर्धा)

नोट—जिन महाशयोंने २५) रु० दिये हैं वे संरक्षक, जिनने १२) दिये हैं वे पोषक और जिनने ५) दिये हैं वे सहायक हैं। इन महानुभावोंने पिछली सालका घटा पूराकर इस पत्रको स्थिर रक्खा है। आशा है इससाल भी ये कृपा दिखलावेंगे। पत्रका आकार आदि बदल जानेसे अबकी बहुत घटा पड़ेगा पर हमारे अन्य २ भाई भी ऊपरके तीन पदोंमेंसे किसी एक पदको स्वीकार करनेकी कृपा दिखलावेंगे तो आशा है अवश्य हम सफल प्रयत्न होंगे।

पद्मावतीपरिषद्का मासिक मुखपत्र ।

पद्मावतीपुरवाल

"जिसने की न जाति निज उन्नत उस नरका जीवन निस्सार"

२ रा वर्ष } कलकत्ता, ज्येष्ठ वीर निर्वाण सं० २४४५ सन १९१९, { ३ रा अंक

प्रेमाष्टक ।

(लेखक—पं० दरबारीलाल जैन, धर्माध्यापक स्याद्वादमहाविद्यालय बनारस)

मैं ढूंढ फिरा संसार पार नहीं पाया । दिन रात रटा पर जग पास नहि आया ।
दिनरात विचारा पर न ध्यान में आया । यों करते मेरी क्षीण होगई काया ॥
जो कुछ है किये उपाय उन्हें दरशाऊं ।
कहं मनके प्यारे प्रेम देवको पाऊं ॥ १ ॥

मैं भ्रात पास भी गया वहां नहिं पाया । पर दिखी प्रेमके नाम वहा पर माया ॥
भावज भगिनीने नहीं प्रेम दिखलाया । पाई नहिं मैंने कहीं प्रेमकी छाया ॥
कैसे मैं अपना दुखित चित समझाऊं ।
कहं मनके प्यारे प्रेम देवको पाऊं ॥ २ ॥

प्रियतमा पास भी गया वहां पर छाना। पर दिखा स्वार्थ ही स्वार्थ वहां मनमाना॥
यों असली प्रेमस्वरूप न मुझे दिखाना। हा! भूख लगी पर मिला न इक भी दाना॥
अब किसको अपनी दुःख मय कथा सुनाऊं।
कहं मनके प्यारे प्रेम देवको पाऊं॥ ३॥

घरमें शरीरमें और बचनमें बलमें। हिंसा चोरीमें ब्रह्मचर्यमें छलमें॥
सुन्दर बसन्तमें कोकिलके कलकलमें। मैंने नहिं पाया प्रेम दीन निर्बलमें॥
तिसपर भी इच्छा यही प्रेम हो जाऊं।
कहं मनके प्यारे प्रेमदेवको पाऊं॥ ४॥

विधुमुखी कीरनासिका नारि यौवनमें। लावण्यपूर्ण प्रेयसी सुकोमल तनमें।
मदमत्त मतंग लजावनहार गमनमें। वक्षःस्थल रूपी मदनराजके वनमें।
नहिं मिला कहो कैसे मनप्यास बुझाऊं।
कहं मनके प्यारे प्रेम देवको पाऊं॥ ५॥

वह अलख अगोचर रूप तुम्हारा आला। छोटा है अथवा बडा गौर वा काला॥
तुम युवती हो वा युवक बाल वा बाला। कुछ समझ नहीं पडता तव रूप निराला॥
आते हो क्यों नहिं आओ चित्त रिझाऊं।
कहं मनके प्यारे प्रेम देवको पाऊं॥ ६॥

तुम तो व्यापक हो सर्व जगह रहते हो। गंगामें जल सम सर्व जगह बहते हो॥
तुम करते हो बहु काम न कुछ कहते हो। सुख होवे अथवा दुःख सर्व सहते हो॥
आवो आवो मनमणि मैं तुम्हें बनाऊं।
कहं मनके प्यारे प्रेमदेवको पाऊं॥ ७॥

हो आप जहां वह नरक स्वर्ग हो जाता। बिन आप स्वर्ग भी नरक समान दिखाता।
तुम सुखके प्यासे दीनोंको सुखदाता। जनताकी हो प्रभु आप अनोखी माता॥
इतनी स्तुति करनेपर भी क्या यह गाऊं।
कहं मनके प्यारे प्रेम देवको पाऊं॥ ८॥

हमारी अवनतिके कुछ कारण।

(लेखक—पं० दाबूलालजी जैन, अलाहाबाद)

दूसरे अंकसे आगे

तीसरा अवनतिका कारण हमारा सामाजिक अत्याचार और कुरीतियां हैं।

माना कि-कुछ समयसे बालविवाहोंकी संख्या कुछ कम हो गई है और हो रही है परन्तु साथ ही वृद्धविवाहोंकी दिन व दिन तरक्की है कुछ मन चले धनिक वृद्धोंने कन्याओंको खरीद कर उनके जीवनका सर्व नाश कर देना अपना कर्तव्य समझ लिया है इसमें सन्देह नहीं कि हमारे देशकी महिलाओंमें लज्जा और शील गुण प्रधान रहता है और खास कर इन अविवाहित कन्याओंकी तो यहां यह गति है कि मा बाप जिसके साथ ब्याह दें गायकी तरह उसीकी हो जाती हैं। परन्तु समाजके मनुष्य कन्याओंकी लज्जा और भोलेपनसे किस तरह अनुचित लाभ उठाकर उनके जीवनको मिट्टीमें मिला रहे हैं यह किसीसे छुपा नहीं है माता पिता हृदयके टुकड़े प्राण प्यारी दुधमुही भोली बेटीको पैसेके लालचमें फंस कर निर्दयी राक्षस विषय लोलुपी वृद्ध कसाईके हाथ बेच देते हैं जिसकी छुरीमें इतनी ताकत नहीं कि एक दम उस प्यारी बछियाके गले पर चल कर जीवनका अंत कर दे और उसको वैधव्य (विधवा होने) के अनन्त संकटमें न पड़ने दे उसकी छुरी इतनी भोथरी और शक्ति इतनी कमजोर है कि जीते जी उस अबलाकी गर्दन पर चलाता रहता है और बजाय इसके कि उस बिचारीका अन्त हो खुद मौत का शिकार बन जाता है और अपने किये हुये अपराध का फल उस बेगुनाह भोली अबलाको भोगना पड़ता है जिसको कि वह विधवापनेका चलते समय सार्टीफिकट दे जाता है या उसके जीवनके लिये अन्तिम फैसला कर जाता है जिसकी कि सुनाई किसी भी कोर्टमें हो नहीं सकती, माता पिता-जिनने कि नौ महीना पेटमें रखकर हर तरहकी खुद तकलीफ सह कर जिस बच्चीकी परवरिस की थी आज उस अनाथिनीको विधवाकी शकलमें सुहागका चिन्ह-हाथोंकी चूड़ियां पैरोंके बिछुआ टूटे हुये देखकर-बनावटी रञ्ज उसके साथ दिखाकर घाव पर नमक छिड़कनेका काम करते हैं आज उस निरपराध बालाके लिये चारो तरफ अंधेरे दुखके पहाड़ोंके सिवाय कुछ नजर नहीं आता उसके लिये संसार श्मसानसे भी बढ़कर होजाता है उसको भोजन जहरसे बढ़कर अन्दर रक्खे हुये लोह पात्रसे अधिक और प्रसन्नताकी बातें प्रलयके दुखसे भी ज्यादा मालूम होती हैं। जो बिचारी दो वर्ष पहले अपनी सहेलियोंके साथ हंसती खेलती थी, हिंडोले झूलती और आनन्दके गीत गाकर अपने कुटुम्ब व सहेलियोंको खुशकर आप सुखसे दिन बिताती थी आज उसके लिये वही सहेलियां कुटुम्ब और सावनके हिंडोले शत्रुसे भी अधिक दुखदाई मालूम होते हैं उससे मन बहलावका तो क्या आज कहीं ठिकानेका बहाना भी नहीं है क्या उस दुधी मुंहीको यह मालूम था कि थोड़े दिन बाद यह संसार मेरे लिये स्वप्न हो जायगा और अच्छा खाना पीना हंसना बोलना उसकी जिन्दगीके लिये कलङ्क बन जायगा? क्या उसे मालूम था कि विधाताकी सृष्टिमें उसके लिये उस दुनियांकी रचना हो रही है जहां दुख शोक और संतापके सिवा कोई चीज नहीं, लुटेरे चोर डाकुओंसे अपने

धर्मको बढ़ानेका कोई सच्चा मार्ग नहीं, प्रेम करनेके लिये दुनियामें उसके लिये कोई वस्तु नहीं! सच बात तो यह है हमारी इस क्षुद्र लेखनीमें और दिलमें इतनी शक्ती नहीं कि जिससे हम अनाथ विधवाओंका दुख वर्णन कर सकें असल बात यह है कि हम (मनुष्य जाति) स्त्री जातिके दुखका और खासकर उस वैधव्य दुखका जो कभी स्वप्नमें भी अनुभव नहीं कर सके क्या वर्णन करेंगे इसलिये इस वृद्ध विवाह रूप सामाजिक अत्याचारसे हमारी स्थिति दिनो दिन बिगड़ती जाती है उधर विचारे गरीबोंके लड़के कुआरे रहकर दुराचारी बनते जाते हैं और उनका हक क्वारी कन्यायें बुजुर्गोंकी कृपासे इस लायक ही नहीं रहने पाती कि संतान उत्पन्न कर समाजकी घटती हुई संख्याकी पूर्ति करें। अतः क्वारोंकी और थोड़ी उम्रकी विधवाओंकी संख्याकी वृद्धि समाज [जाति] को गहरे अवनतिके अंधेरेमें ले जा रही है।

कुछ दिनसे एक स्त्रीके होते हुये भी दूसरी शादी करनेका रोग भी जातिमें घुस गया है हम नहीं समझ सके इस पूर्ण स्वतंत्रता देनेवाले जैन धर्मके सेवक आज इतने स्वार्थान्ध क्यों बन गये हैं कि अपनी किंचित् विषय वासनाओंकी तृप्तिके लिये एक नारीके होते हुये भी दूसरी अबलाका जीवन निःसार कर जातिके गरीब लड़कोंका हक छीनकर उन दोनोंकी जिन्दगीको बेकार बनाते हैं। माना कि भारत वर्षकी महिलायें पुरुष जातिके लिये (पत्नी पतिके लिये) सर्वस्व अर्पण करती चली आई हैं और पतिको जीवनका आधार मान उसके सुखमें सुखी दुखमें दुखी होती आई है परन्तु क्या इसका अर्थ यह है कि हम अपने स्वार्थके लिये उनको भुलावा देकर गुलामोंसे भी बदतर बना दें और उनकी आगेकी जिन्दगीके सुख दुख पर ध्यान न देकर संसारकी खुशीसे वञ्चित कर बेकार बनाकर छोड़ जायें। इसमें सन्देह नहीं जब कि जैनियोंमें लड़कियोंकी संख्या इतनी कम है कि हजारों नौजवान क्वारे ही रह जाते हैं तब एक स्त्रीके होते हुये दूसरा विवाह करना, अत्याचार ही नहीं किन्तु अपनी जातिको दुराचारिणी और कलङ्कित जाति बनाना है अतएव इस कलङ्कित प्रथासे समाजको बचकर रहना चाहिये।

चौथा कारण अवनतिका यह है कि-कुछ समयसे संसारकी गतिके अनुसार हमारी जातिके भी लोगों में ऊपरी ढँग दिखाकर अपने आपको धनी और सभ्य जाहिर करनेकेलिये बहुत खर्च किया जाता है इससे थोड़े समय पहले यह होता था कि हरएक कुटुम्ब खाने पीने कपड़ेसे सुखी थे कमानेकी ज्यादा फिक्र नहीं करनी पड़ती थी एक कमाता सब घर बैठा खाता था सादगीके साथ अपना आनंदसे जीवन निर्वाह करतेथे किसीके पास अधिक धन होता भी था तौभी अपने आपको जाहिर नहीं करना चाहता था परन्तु आज इसके सर्वथा विपरीत है दिनों दिन हमारे खर्च बढ़रहे हैं और आमद घट रही है। सबके सब कमाते हैं तब भी पूरा नहीं पड़ता तिसपर भी जातिकी फिजूल खर्चीने नाकों दम कर रक्खा है. कल एक लड़कीकी शादी करके चुके कि बजाने पैर पसार दिये जातिके हितचिंतकोंने लड्डू खुरमा या पटफेनी को ठानदी इधर यह भी पहले भोले भाले विना पैसेके लोगथे जिसने चार चुपरी चिकनी बातें की और वाह २ के पुल बांधे कि उधरही लुढ़क गये और अपनी स्थिती और कुटुंबकी होनहार गतिको न देखकर बाबा साहबका कारज आवश्यकतासे अधिक इस ठाठ बाठसे कर डाला मानो आज बाबा शादीकर दादी लानेके लिये दुल्हा बनाये जांयगे, नतीजा यह हुआ कि जो कुछ पास था कारजमें लगादिया, आगे न पूरी आमद है न व्यापारके लिये पास

पूंजी है करें तो क्या करें और लड़केकी अभी सगाई भी नहीं हुई। यदि हमारी अन्दरकी सब कलई खुल गई तो लड़काकी शादी होना कठिन होजाता है और जैसे तैसे कर्ज़ करके अपनी आबरू बचाई तो मेला दशहरा, जाति बिरादरी में इस ठाट बाट तोड़ा जंजीर रेसमी चमकदार वस्त्र पहन कर और लड़केको पहनाकर जाने लगे कि देखने वालोंको भी भ्रम पैदा होजाय कि बहुत पुराने खानदानी रईस हैं। यह वर्तमान समाज की स्थिती है। शादी ब्याह कारज और ऊपरी दिखावेके खर्चोंने हमको इतना कंगाल और धोखा देनेवाला बना दिया है कि अन्दर कुछ न होते हुये भी हम अपने आपको अपने विश्वास और हृदयके विरुद्ध दिखाकर खुदको और दूसरे का मिथ्या भ्रम में फसाते हैं इससे सबसे बड़ी हानि यह होती है कि जो सादे निष्कलंक सदाचारी पढ़े लिखे परिश्रमी गरीबोंके लड़के हैं वो तो क्वांरे रहजाते हैं और चालाक धूर्त चटक मटकके वालोंकी एक छोड़कर तीन २ चार २ शादियां हो जाती हैं

इस विषयमें मैं खुद अपने एक मित्रका नमूना पेश कर सकता हूं यानी मेरे मित्र एक साधारण स्थितीके आदमी हैं ऊपरी ढोंग और दिखावा उन्हें कभी न पसंद था और न है उनके यहां तोड़े और जंजीर नहीं थे और दूसरेका मांगकर पहरना पसंद नहीं करते थे चुनांचे उनके पिता और वे अपने छोटे भाईके साथ फीरोज़ाबाद और उड़ेसर आदिके मेलाओं और कई बारातों में इसीगर्ज़ से गये कि किसी तरह इसकी सगाई होजाय. मित्रकी अन्तरंग इच्छा यह थी कि जिस समय भाई १८—२० वर्ष का हो कुछ कमाने लायक बन जाय उस समय शादी हो, अभी इसके पढ़नेमें विघ्न होगा, अस्तु पिताजीके आगे उनकी न चली परन्तु तोड़ा जंजीर रेसमी कपड़ा आदि बनावटी ठाठ उनने न बनाने दिया. नतीजा यह हुआ कि किसी भी मेले और बारात में लड़केको किसीने न पूछा घर वाले मित्र को बुरा भला कहने लगे इसलिये उनने उनकी मर्जी पर छोड़ दिया। पिताजी अपने लड़केका खूब शृंगार बढ़िया कपड़ा और कुछ तोड़ा जंजीर मांग २ कर पहनाकर एक बारात में लेगये। अब क्या था? जनाब! आने लगे सोनेकी सुगंधसे मूर्ख भ्रमर. उसी बारात में कई सगाई आई और घर आते २ सगाई पक्की हो गई। लड़केकी उम्र पहलेसे ज्यादा यानी करीब १८ साल थी परन्तु वहां तो स्वर्णके साथ सादी थी न कि उस लड़के और उसके गुणके साथ। घरवालोंके मित्रको ताने सहने पड़े और उनकी सादगी व सचाई ईमानदारी पर धूल डाली गई और फरेब चालाकी धूर्तताने विजय पाई। एक यह दृष्टान्त क्या जातिमात्रकी यही अवस्था है इसलिये फिज़ूल खर्ची व्यर्थ व्यय जातिके अन्दर बढ़ता चला जाता है और भीतरी हाल तो खराब व खोखला होता जाता है।

वर्तमान समय और शिक्षित जातियोंकी गति हम को बता रही है कि लड़कोंकी शादी कुड़ईके कारजों में आवश्यकतासे अधिक हम व्यर्थ खर्च न करें। अपनी संतानको पढ़ाने लिखाने और योग्य खाने पीनेमें खर्च करके तन्दुरुस्त मजबूत पढ़ी लिखी और सदाचारी बनाकर छोड़ जायें जिससे वे कि हमारे पीछे कुलको निष्कलंक रखकर अपना तथा कुलका नाम संसारमें अमर कर अपनी आत्माका कल्याण कर सकें॥

—~~—

सूरजभानी लीला।

भगवानका जन्माभिषेक शीर्षकका उत्तर।

सत्योदय वर्ष २ अंक २ रेमें हमारे वयोवृद्ध वकील साहबने भगवानका जन्माभिषेक नामका एक लेख लिखा है। भगवज्जिनसेनाचार्यने उपमा उपमेय उत्प्रेक्षा आदि अलंकारोंसे अलंकृत जो श्लोक श्रीमहापुराणजीमें लिखे हैं वकील साहबने उन श्लोकोंको उद्धृत किया है और अपनी अनुपम युक्तियोंकी सामर्थ्यको झलकाते हुए शंकाओंकी लड़ी लगा दी है। हमारी यह उत्तर लिखनेके पहिले सदा भीतरी अभिलाषा रहती है कि हम अपने वयोवृद्ध दूरदर्शी वकील साहबके लिये 'अज्ञान धिटाई आदि जैसे कड़ेसे लगने वाले शब्दोंका तनिक भी उपयोग न करें परंतु किया क्या जाय,—युक्तियोंकी बहार बतलानेमें हमारे वकील साहब इतने लीन हो जाते हैं कि उन्हें बहुत तुच्छ और हलके शब्दोंका ज्ञानवृद्ध आचार्योंके लिये उपयोग करनेमें जरा भी संकोच नहिं होता। इसलिये हमारी हठात् शांति भंग हो जाती है और लेखनीसे कुछ शब्द जो केवल कड़ेसे ही जान पड़ते हैं निकल जाते हैं क्योंकि आस्तिक मनुष्यको इतना तो अहंकार रहना ही उचित है कि वयोवृद्धकी अपेक्षा वह ज्ञान वृद्ध, चारित्रवृद्ध, परार्थी, धर्मके जीवनाधार, निरपेक्ष, व्यक्तिका अवश्य अनुयायी बने और उसकेसन्मानसे अपना सन्मान और अपमानसे अपना अपमान समझे। यद्यपि कुछ कड़े शब्दोंका उपयोग वकील साहबको अखड़ रहता है पूज्य आचार्योंको नहीं, कारण! वकील साहब अभी विद्यमान हैं आचार्य नहीं, पर जिन महात्माओंने अपना जीवन सर्वथा परार्थ उत्सर्ग किया था, जिन्होंने प्राणीमात्रके हितैषी धर्मका उपाय बतलाया था, उन महात्माओंके अनुयायी अभी संसारमें विद्यमान हैं अभी सारा संसार ही कृतघ्न नहीं होगया इसलिये आचार्योंको वकील साहबके मर्मस्पृक् शब्द नहिं अखड़ सके तो उनके अनुयायियोंको तो अखड़ते ही हैं अतः आचार्योंके लिये कड़े शब्दोंका उपयोग कर आस्तिक मार्गियोंका हृदय दुखाना क्या वकील साहबको उचित है? आचार्योंके वचनों पर उत्पन्न हुई शंकाओंकी निवृत्ति जिज्ञासा मूलक सरल शब्दोंमें प्रश्नोंके लिखनेमें भी हो सकती है परंतु वकील साहबको तो जिज्ञासा निवृत्त करनी नहीं है अस्तु।

उत्तर लिखनेके पहिले क्षमाकी प्रार्थना करते हुए हम वकील साहबको यह बतलाना बहुत जरूरी समझते हैं कि मूल बात और आलंकारिक बातोंमें यह फर्क है कि जो बात खास रूपसे कही जाती है और उस बातके स्वरूपके बतलाने वाले जो कुछ भी शास्त्र हैं उन सबमें जिस बातका जिक्र रहता है उसे तो मूल बात कहते हैं और आलंकारिक बात वह कही जाती है कि जिसको कवि ही अपनी कल्पनासे करे। जिस प्रकार दो व्यक्तियोंका युद्ध हुआ यह तो मूल बात है पर एकने यों तलवार चमकाई, दूसरेने यों पैतरा पलटे, इत्यादि बातें आलंकारिक हैं क्योंकि युद्धके वर्णन करने वाले कविको जितना युद्ध विषयक ज्ञान होगा उसे खर्च करनेमें वह कंजूसी न करेगा। तथा आलंकारिक बातोंपर सिद्धांत भी निर्भर नहिं माना जाता। यदि कोई आलंकारिक बातोंको मूल बातोंसे तुलना करता है तो चाहे वह बुरा ही मान जाय हम तो यही कहेंगे कि मूल और आलंकारिक बातोंका उसने भेद नहिं

समझा स्वार्थ किंवा और किसी कषाय वासनासे ही लिप्त हो वह अपनी सम्मति देने लग गया है।

जैन शास्त्रोंमें योजन दो प्रकारके माने हैं। एक बड़ा दूसरा छोटा। बड़ा योजन दो हजार कोस अर्थात् चार हजार मीलका माना है और छोटा चार कोस अर्थात् आठ मीलका माना है तथा जो पदार्थ अकृत्रिम हैं उनका प्रमाण बड़े योजनसे लिया गया है और जो कृत्रिम पदार्थ हैं उनकी गणना छोटे योजनसे है। जिन कलशोंसे देवगण श्रीतीर्थंकर भगवानका अभिषेक करते हैं वे अकृत्रिम नहीं होते, उन्हें देवगण अपनी विक्रियासे बनाते हैं इसलिये शास्त्रानुसार जब प्रत्येक कलशकी उंचाई आठ योजन अर्थात् बत्तीस कोसकी होती है तब वकीलसाहबका यह जाहिर करना कि "प्रत्येक कलशकी ऊंचाई बत्तीस हजार मीलकी थी" क्या झूठ नहीं? तथा आचार्य महाराजने जो यह उत्प्रेक्षा की है कि उस समय क्षीरसागरके श्वेत जलमें देवोंकी सेना और सूर्य चंद्रमा तारागण आदि डूबे सरीखे जान पड़ते थे तथा कलशोंकी धाराको जो गंगासिंधू के प्रपातकी उपमा दी है वह सब आलंकारिक बात है मूल बात नहीं क्या यह सिद्ध नहीं होता।

कलशोंकी बत्तीस हजार मीलकी ऊंचाईके सिद्ध करनेमें जो वकील साहबने अपनी मनोनीत युक्ति बतलाई है कि "प्रत्येक कलश आठ योजन ऊंचा होनेसे वह कलश ३२ हजार मील ही ऊंचा होगा तबही तो उनमें इतना पानी आ सकता है जिसके छींटोंसे ही सूरज चान्द सब तारे डूब जावें और पानी में तैरकर टेडे तिर्छे चलने लगें, तब ही तो भगवानके सिरपर डालते समय उस पानीकी धारा इतनी मोटी होगई थीं कि गंगा सिंधु आदि सबही नदियोंकी धारा मिलाकर भी इतनी मोटी नहि हो सकती" क्या यह संगत है? मिहिरबान्! थोड़ा पढ़ा कम अनुभवी मनुष्य भी यह जान सकता है कि जो यह कलशोंकी धाराकी तारीफ की गई है वह कि आलंकारिक बात कहलाती है किंतु उस जलके छींटेंमे सूरज आदिका डूबना और उसकी गंगसिंधुके प्रपातसे तुलना करना पढ़कर कोई कदापि यह नहीं समझ सका कि यह मूल बात थी और वह जब मूल बात ही नहीं समझी जा सकी तब उस धारासे जंबूद्वीप आदिके नाशकी शंका कर अपने समय और सामर्थ्यका व्यर्थ व्यय कौन समझदार कर सका है।

आपने जो यह लिखा है कि 'वह एक हजार कलशे तो जिनके द्वारा भगवानका अभिषेक किया था दो हजार कोस वाले योजनसे ही नापे गये होंगे' इससे साफ जाहिर होता है और अल्पज्ञ मनुष्य भी इस बात को जान सकता है कि आपने कलशोंके प्रमाणके जाननेमें जरा भी मस्तिष्कको तकलीफ नहि दी। नहीं तो, कभी ऐसा संदिग्धात्मक वाक्य न लिखते। अस्तु!

ऊपर लिखे गये वाक्योंसे यह बात सिद्ध हो चुकी कि वकील साहबका प्रत्येक कलशको बत्तीस हजार मील ऊंचा बतलाना सर्वथा झूठ है। पवित्र जैनधर्मसे मनुष्योंका चिगानेका उपाय रचा गया है तथा कलशोंके छींटोंमें सूर्य चंद्रमा मग्न होते जान पड़ते थे और उनकी धारा गंगा सिंधूके प्रपातके समान थी' इन आलंकारिक बातोंको उन्होंने मूल बातें समझ लीया है जो कि सर्वथा अयुक्त है।

वकील साहब! आपके लेखानुसार विद्वान जो यह लिखते हैं कि संस्कृत साहित्यके जानकार ही इन महापुराणोंका अभिप्राय समझ सकते हैं अन्य नहीं सो उनका ऐसा लिखना क्या झूठ है? आपही सोचलें और विद्याविद्वानोंसे भी यह प्रार्थना है वे भी

आधीन नहीं । उनकी अलौकिक वीतराग अवस्थापर निर्भर है जो अतिशयोंके आधीन तीर्थंकरोंकी मान्यता करते हैं वे जैन सिद्धांतके स्वरूपके कभी ज्ञाता नहीं हो सकते ।

ऐरावत हाथीके विषयमें हम लिख चुके हैं। कलशों पर जो फूल पत्तोंके विषयमें आपने लिखा है सो फूल भी कृत्रिम पदार्थ हैं उनकी लंबाई चौडाई भी तीर्थंकरोंके शरीरके समान कभी बड़ी होती है फिरभी इंद्रादि देवोंने आपके मनगढन्त हिसाबसे फूल पत्ते नहि रक्खे होंगे । चमेली आदिके फूल छोटे २ भी होते हैं और वे शरीर पर अभिषेकके समय रह नहि सकते, नीचे गिर जाते हैं इसीलिये फूल पत्तोंको मीलोंका लंबा बतलाना, उनका पर्वतका खड़ा होगया होगा भगवान दब गये होंगे इत्यादि लिखना, जिनागमकी हंसी उड़ाना है क्या फूल पत्ते उनके शरीर पर ही लगे रहे होंगे ? क्या इंद्रादि देव ऐसे निर्दयी थे जो कड़े फूल वा पत्ते भगवानके ऊपर फैंकते । वकील साहव ! क्या बाते लिखते हो ? जरा विचार भी तो करो आप ही कहें ऐसी वेतुकी बातोंपर क्रोध न आवै तो क्या हो। मूर्ख भलेही इन युक्तियोंसे धर्मसे घृणा करें विद्वान तो ऐसे लेखों को सिवाय वाल लेखोंके और कुछ न समझेंगे ।

फूल पत्ते समुद्रसे नहि लाये गये थे मेरुपर्वतपर भी बहुतसे वन मौजूद थे । कलशोंको क्षीर सागरसे लाने लेजानेमें देवोंको फुरसत न मिलनेसे फूल पत्ते कहांसे आये होंगे ? यह बात नहीं सबही देव कलशोंके लाने लेजानेमें नहीं लगे थे बहुतसे खाली थे । फिर भी विक्रिया ऋद्धिके सामने कोई बात कठिन न थी । मिहिरवान ! छोटे योजनसे प्रमाणित कलशोंका जल इतना नहि होसकता पर आपने बड़े योजनसे कलशों का प्रमाण ले लिया. इसलिये आपको इतना बड़ा लेख लिखना पड़ा । योजनसे बड़ाही योजन नहि लियाजा सकता अन्यथा सैंधवके नमक घोड़ा आदि कई अर्थ होते हैं भोजनके समय किसीके सैंधव मगानेपर कोई लाकर घोडा खड़ा करदेगा तो वही अकेला अर्थ सैंधव का न लियाजासकैगा असलियतमें तो बड़े कलशोंसे भी यदि अभिषेक कियाजाय तो मेरु सरीखे विशाल पर्वतके सामने वह बहुत तुच्छ है । मेरुसे अतिरिक्त वह कहीं जाही नहीं सकता पर वकील साहबको समझ ! ! !

लुटियाभी गई ।

[१]

धर्म गया गुणहीन बने, विद्या कब की छूमंत्र हुई ।
गई फूट, यह जाति फूटमें सभी भाँति परतंत्र हुई ॥
भ्रात भावका है अभाव, अरु प्रेम-देव भी दूरि हुये ।
मोह, स्वार्थ का पीकर प्याला सभी नशे में चूरि हुये ॥

[२]

कहें कहाँ तक ? बिगड़े हम ऐसे,
कोई नहि बिगड़ा ज्यों ।
पर सुभाग्यवश टुक "श्रद्धा"
हममें जीती थी अबतक ज्यों त्यों ॥
हम पथिकों ने सब कुछ खोया,
थी 'लुटिया' यहही शेष रही ॥
"भारतीय" अब होगा क्या ?
जब आज शेष लुटिया भी गई ॥

से० रा० स० भारतीय

हमारे विवाह ।

(लेखक—रामस्वरूप भारतीय 'जारखी' हेडमाष्टर मदर्सा अटरू)

(१)

आइये ! देखें तमाशा भारतीय विवाहका ! !
अंत क्या होगा कभी ? भगवान ! इस उत्साहका ।
जो कि जनताके लिये, सुख मूल था, दुख मूल है ।
भूल जिसने बात की, वह प्राणघातक भूल है ॥

(२)

आजन्म जिनको साथ रहना है ! हमें चिन्ता नहीं ।
हां, ध्यान है लल्लू बिना शादी न रह जावे कहीं ॥
अब तक उन्हें चिन्ता नहीं, चिन्ता चितासे कम नहीं ।
चिन्ता लगे, आदर्श शादी भी भला होती कहीं ॥

(३)

बालपन ही में उसे चिन्तासे कर देंगे बरी ।
इसके बिना माता पिताके जी में कब आती तरी ॥
आयु अति ही अल्प होगी, यदि न बालविवाह हो ।
संसार सुख इस जन्ममें किस बिध हमें फिर प्राप्त हो

(४)

गालियां गाने लगीं, हो बेहया, लो नारियां ।
लाखों ही अपनी सालियां बैठी हैं यों सुकुमारियां ॥
''नाम' जिनका ले दिया, वे मग्न हो कहने लगे ।
गालियां खाते ही क्या है प्रेमके जूते भले ॥

(५)

ठीक है, है धृष्टता, निर्लज्जता या मूर्खता ।
होती क्षमाके योग्य भी है किन्तु ऐसी धूर्तता ॥
लो ! एक दिन जहं धर्ममय शुभ गान होता था अहो !
संगीत अबका सा, वहां क्या ठीक है मित्रो कहो ॥

(६)

प्रारंभ होता है यहांसे द्वितिय सीन, सुनो सुनो ।
हे जैन माता ! शीस अपनेको न अबहीसे धुनो ॥
दूल्हा बने दावत भई, अरु रंडियोंका नाच भी ।
घबड़ाओ मत, वह देखो आतिशबाजी आती है अभी

(७)

हम भूल ही देखो गये उस साथके "नक्कार" को ।
गालियां पीछे सुनाते जो सदा बक्काल को ॥
नक्कार खाना साथ है, बाजे भी अब बजने लगे ।
मृदंग वाले भी कमरको, देखिये कसने लगे ॥

(८)

वेश्याको अपने पुत्रसे रुपये दिलाने हम लगे ।
व्यभिचारका यों पाठ पुत्रोंको सिखाने हम लगे ॥
पुत्र भी आशिक हुए, जिसपर पिता मुस्ताक थे ।
शत्रु इस कारण बने हैं सैकड़ों ही बापके ॥

(९)

घरमें न देंगे एक पाई, इनको रुपयेसे न कम ।
चाण्डाल सेवाके हुये आदी हैं ऐसे आज हम ॥
जो न जिन दर्शन करे चाण्डाल हैं देखो नहीं ।
पर उस छटाके बिन लखे क्या काम चल सकता कहीं ॥

(१०)

दावतों में जब तलक बिछे न सभी सामान हां !
तब तलक पाते नहीं अवकाश इस [illegible]मानका ॥
कहो जी कैसी रही ! बस अब न पूछो मित्रवर ।
मिष्टान्न इत उत लुढकता था पत्तलोंमें मचलकर ॥

स० पं. नन्दनलालजी श्रीलालजी फरिहा "

११ बजट इस प्रकार आगामी वर्षकेलिये हो कि १५०)
डेढसौ रु० दफ्तर खर्च ८२॥) पाठशाला खर्च,
१००) समाचार पत्रकेलिये मदत, १२५) उपदेशक
वि० २५) विरोधनाशक कमेटीके चिट्ठी पत्री
वगैरह खर्चके लिये, इस प्रकार कुल ६२५)
सवा नौसोका खर्च आमदनीके भीतर कियाजाय
अधिकके लिये कमेटीसे मंजूरी लीजाय ।

प्र० मं० प० प० स. मन्त्री वि. वि. ।
पं० मनीरामजी ।

१२ मि० पटेलने जो असवर्ण और विजातीय विवाहका
बिल बडेलाट साहबकी कौंशिलमें रक्खा है उसका
यह परिषद् घोर विरोध करती है, इस प्रस्तावके
स्वीकार करनेसे धार्मिक नीतिका घात होता है
किसीके धर्ममें हस्तक्षेप करना सरकारके नियम
विरुद्ध है, इसलिये सरकारसे प्रार्थना की जाती
है कि वह इस प्रस्तावको हाथमें न ले ।

प्र० पं० लालारामजी ।
स. पं. रघुनाथदासजी पं. मक्खनलालजी ।
पं. नन्दनलालजी ।

इस सालभरमें जो आमद खर्च हुआ उसका व्योरा--

आय—

१५७॥-) गत वर्षकी बाकी ।
१०२)॥। कोषाध्यक्षके पास ।
५५)। मन्त्री प० प० के पास ।

———

१५७॥-)

ब्याहोंसे आमदनी हुई ।

२) लाला श्यामलाल मु. पाढमसे ।
१) ला. सेतीलाल मु. जलेसरसे ।
२) ला. जयकुमार अवागढसे ।
७) ला. फुन्नीलालजी नगले सरूप ।
१) ला. चोखेलाल छक्कूमलसे ।
२) पं रामदयालजी मु. बेरनीसे ।
५) ला भगामल अवागढसे ।
५) ला. बनारसीदास जयकुमार से ।
२) ला. सुखनन्दनलाल मु. जिरसमीसे ।
१) ला. बंदीलाल मु रापसे ।
१) ला. गेंदालाल भजुआके नगलासे ।
१) ला. मुंशीलाल मु. फरिहासे ।
५) ला रघुबरदयाल मु. मरथरासे ।
१) ला. कुंदीलाल मु. दलसायपुर से ।
१) ला. बुद्धसेन मु. गयेथूसे ।
१) ला. रतनलाल नैनसुखदास कलियानगढीसे ।
२) ला. कनहीलाल अवागढसे ।
१ ला. बनारसीदास मु. हमिलियासे ।
२) " गोरेलालजी मु. कोसरीसे ।
२) " मदनलाल मु. जारखीसे ।
१) " छदामीलाल मु. शिकोहाबादसे ।
१) " रेंगनलाल मु. पमारसे ।
११) " भूधरदास भामंडलदास एटासे ।
२) " बनारसीदास पांडेसे ।
११) " धनसुखदास शिकोहाबादसे ।
१) " हीरालाल मु. पुनहरासे ।
१) " बोहरेलाल मु. चमकरीसे ।

———

७५) कुल व्याहोंसे आमद हुई ।

आमदनी वार्षिक सहायतासे हुई ।

३) लाला ख्यालीराम रेवतीराम मु. बरईसे ।
१२) " छोटेलालजी रईस मु. मरसौ ।

१२) पं० भूधरदासजी मु. बेरनीसे।
५) पं० रघुनाथदासजी मु. सरनौसे।
५) ला. रंगीलालजी पं० चंपालालजी मु. फीरोजपुर।

३१)

व्याजकी आमदनी ध्रु खातेसे—

१२) पं. रघुनाथदासजी रु० सैकड़ा सौ० रु० की व्याज
१८) " गजाधरलालजीसे रु० २५०) की व्याज।
१८) " श्रीलालजीसे　(१४ महीना १२ दिनकी)
१०) लाला मुन्नीलाल मु. उडेसरसे २००) की व्या. पेटे
६०) " राजकुमारजी सर्राफ एटासे १०००) की व्या.
३०) पं वंशीधर मंत्री प० प० से ५००) की व्याज।

१४८)

यहां तककी आमदनी प० प० की पाठशालाके खातेकी है और आगे की प्रबंध खातेकी है।

सभासदी फीससे जो वसूल हुआ—

१) भाई जवरचंद मोतीलालजी भोपालसे।
१) शेठ मगन लालजी सुजाल पुरसे।
१) पं. नरसिंहदासजी मु. चावलीसे।
१) भाई तुलाराम मु० सखावत पुरसे।
१) भाई ग्यालीरामजी मु० सखावत पुरसे।
१) लाला सोहन लालजी एटासे।
१) पं० माणिक चंदजी चावलीसे।
१) बाबू छुट्टन लालजी स्टेशनमाष्टर चौलासे।
१) भाई बाबूलालजी कटगवासे मु० जलेसरसे।
१) ल.०　?　फतेहपुर स्टेशनसे।
१)　मार्फत (बेनाम)।
१) लाला छोटेलालजी रईस मु. सरनौसे।
१) पं. पन्नालालजी मु० सरनौसे (दो वर्षकी)।
२) पं. रघुनाथदासजी सरनौसे (दो वर्षकी)।
२) बाबू महावीरसहायजी पांडे शिकोहाबादसे।
२) लाला मुन्नीलाल हुब्बलाल मु० पाढमसे।
१) लाला श्रीलालजी बजाज मु० फरिहासे।
१) ला० लालाराम लाहोरीमल मु० निवालरसे।
१) पं० नन्दनलालजी मु० चावलीसे।
२) लाला चंपारामजी मु० पेंडतसे।
१) " नाथूरामजी बजाज फरिहासे।
१) " लखमीचंदजी मु० ऐलई से।
१) " वंशीधरजी मु० टेहू से।
१) " रणछोड़ दासजी मु० चावली से।
१) " शिखरचंदजी मु० चावली से।
१) " प्रभूलालजी मु० कुरिमासे।
१) " ताराचंदजी हकीम मु० भोजपुरसे।
१) " चंपारामजी मु० जरानीसे।
१) " वासुदेव सहाय मु० पिलखतरसे।
१) भाई मुंशीलाल जी दहलीसे।
१) मुंशी हुंडीलालजी हेडमाष्टर मु० एकासे।
१) पं बद्रीप्रसाद जी मु० दौंहईसे।
१) पं गौरीलालजी मु० वेरनासे।
१) लाला हुंडीलाल जी बजाज एटासे।
१) बेनाम।
५) ला. मुन्नीलालजी मु उडेसरसे फुटकर मदतमे।
१७) गतवर्षके फीरोजाबादके मेले पर संयुक्त अपीलमें से मिले।
१५) पं० लालारामजी मु. चावलीसे २५०) ध्रुव फंड प्रबंध खातेकी व्याजसे।

७७) कुल प्रबंध खातेमें आमदनी हुई।

इस प्रकार जमाकी कुल रकम ४६४।-) है।

खर्च—

१४१॥=)॥ वेतन पं. चंपाराम जीको दिया।

१२५) अप्रेलसे अगस्त तक सन् १९१८ में महीना ५की

१६॥=)॥। रियायती काम २० दिन छुट्टीमें किया उसकी

६०) पं. डौरुमलको दिये वेतन महीना ४का अक्टोवर सं. १९१८ से जनवरी १९१९ तक।

२०) पं. प्यारेलालजीको एक महीना आठ दिनका वे.

४६) " गुणधरलालको दो महीना नौदिनका वेतन।

७।-)। " बुद्धसेनको म.च महीनाके दिन ग्यारहका वे.।

२०) मुन्नीलाल विद्यार्थीको वजीफा।

६) रसोई वालेका दो महीनेका वेतन।

४॥) पानी भराई मजूरी नौ महीनाकी।

३-॥)। फिरोजाबादके सन १९१८ वाले मेलेमें विद्यार्थियोंके लेजानेमें सफर खर्च वगैरह।

३।)॥ फुटकर खर्च—

३०३॥)॥। यह खर्च पाठशालाके मध्ये ह० कोषाध्यक्षके हुआ और जो दफ्तरसे खर्च हुआ वह नीचे लिखा है

५०) परिषद्को रजिष्टरी कराने केलिये जो अर्जी भेजी उसकी फीस रु० पचास मनीआर्डर द्वारा भेजे बंबई रजिष्ट्रार आफिस में।

१७॥=) रिपोर्ट नियमावली छपाई खर्च—

१२-)। तीन विद्यार्थियोंको हरननापुर भिजवानेमें सफर खर्च तथा ग्रांप खर्च पड़ा।

६)॥। पोष्टेज खर्च रिपोर्ट १४० व १०५६ चिट्ठियां वे.भे

५) दिल्लीमें जो पंचायती झगड़ा पड़ा था उसकी वावत दिल्ली जानेमें सफर खर्च।

५) फीरोजाबादमें गत अधिवेशन सन १९१८ में हुआ उस समय फुटकर खर्च।

४) दफ्तरमें कागज व रजिष्टर आये।

१०३॥) कुल दफ्तर खर्च—

४४७)॥। कुल परिषद्का खर्च—

४६४।-) को जमा रकममेंसे घटानेपर ४७)। बाकी जमा रहते हैं। इसमेंसे कोषाध्यक्षके पास कुछ नहीं वल्कि ११॥) रु० का घाटा है। वह घाटा पं० चंपाराम जीकी रियायती छुट्टीका वेतन खर्चमें डालकर उसमें से ११॥=)॥। अमानत जमा दिखलाये हैं इसलिये =)॥। कोषाध्यक्षके पास जमा रह जाते हैं। ४७)। हमारे दफ्तरमें जमा है, इतनी जमाकी रकम भी पेस्तरसे नहीं थी किंतु वर्तमान अधिवेशन पर फीस वसूल होनेसे होगई है. वर्तमान अधिवेशनमें जो फीस आई वह इसी हिसाबमें जोड़ दी है।

नोट—हिसाब वाकायदे जाचा नहीं गया है क्यों कि, ठीक समय पर हिसाब मिला था, इसलिये इस वर्षका हिसाब और आगामी वर्षका-दोनों मिलाकर आगामी अधिवेशन पर फिरसे दिखाये और पास कराये जायंगे. तो भी भाईयोंके अवलोकनार्थ यह हिसाब प्रसिद्ध किया गया है, परिषद्के संबंधमें अगर कोई भी रकम यहां जमा हुई न देखे तो हमें लिखें।

नोट—फीरोजाबादके टौनस्कूल हेडमाष्टर श्रीमान मु.शी वंशीधरजी रईस फिरोजपुरने विद्या विभागके ध्रु.व फंडमें पांचसौ पचीस ५२५) रु. प्रदान किये। इसके लिये उन्हें धन्यवाद है, पद्मावती परिषद्के अधिकारमें आपने एक पांच हजारके करीव जायदाद सुपुर्द करके शाखा पाठशाला खोली है उस जायदादका आप शीघ्रही रजिष्टरी करादेने वाले हैं, इस उदारताके लिये आपको अनेक धन्यवाद हैं। इस चिरस्थायी फंडसे जो जाति के भविष्य संतानको असीम लाभ होगा उसके पुण्यके आपही भागी होंगे। इस जायदादकी रजिष्ट्री होजानेपर रजिष्ट्री की नकल शीघ्र ही प्रकाशित कीजायगी।

(रिपोर्ट सही—सभापति अधिवेशन
(द: हीरालाल सर्राफ)।
प्र.मं—वंशीधर मंत्री प० परिषद्।

बिजली।

(लेखक—श्रीयु............. ....)

मुझे लोग बिजुली कहते हैं। मेरे मा बापने मेरा क्या नाम रक्खा था सो तो मुझे नहीं मालूम, पर यह कहते लोगोंको सुनती हूं कि एक समय कोई साधू महात्मा आये थे और उन्होंने मेरे लक्षण तथा हाथ आदि की रेखा देखकर कहा था कि इसका नाम बिजुली ठीक होगा जिस प्रकार बिजली कभी प्रकाश तो कभी अंधेरा कर देती है, कभी हर्ष तो कभी भय कर देती है उसीप्रकार यह भी बड़ी होनेपर ऐसी ही होगी और लोगोंको तथा स्वयं कभी दुःख तो कभी सुखकी परंपरायें पैदा करेगी।

(१)

इस समय मेरी उम्र करीब ३० वर्षके है। जिस समय मेरा नाम साधु महाराजने रक्खा था उस समय मैं बहुत ही छोटी अर्थात् ६–७ वर्षकी थी पर मेरे भाग्यने उसी दिनसे मुझे यथा नाम तथा गुण वाला बनाना प्रारंभ कर दिया सबसे पहिले मेरी मा परलोक सिधार गई। मुझे जो लाड प्यारसे पालती, घर गृहस्थीके काम काज सिखलाती, मेरे दुःखमें दुःख सुखमें सुख मनाती वह अब परलोकवासिनी हो सिर्फ स्वप्नमें दीखने लायक होगई। बस! अब क्या था! मेरे हाल चाल दिन पर दिन बदलने लगे। जिस प्रकार बिना अंकुश हाथी स्वछंद हो जाता है उसी प्रकार मैं मन मानी घर जानी करने लगी। मेरे समस्त दिनका एक यही काम होगया कि भूंखके समय जो मेरे पिता बनाकर रख जांय वह खा लूं और सब जगह घूमती हुई ऊधम मचाऊं। मुहल्लेके लड़के लड़कियां पीटें तो पिटआऊं और मौका मिले वा अपनेसे कोई निबल निकले तो मार आऊं। खैर!

इस प्रकार मेरी जिंदगीके दिन हथेलीमें भरे पानीके बूंदोंके समान एक २ कर बीतने लगे। ज्यों ज्यों दिन बीतते गये त्यों त्यों प्रकृतिके नियमानुसार शरीरका रंग ढंग भी पलटता गया। मैं संसारकी बातोंसे भी जानकार होती गई।

जिस समय मेरी उम्र करीब १० ११ वर्षकी होगई और मैं विवाहके लायक कुनने लगी तो चारो तरफ मेरी धूम मच गई। मैं कोई सुंदर न थी, गुणवती भी मा के मरजानेसे कहांसे हो सक्ती थी? पढ़ी लिखी होना तो मेरे ही एकके भाग्यमें क्या? सैंकड़ों और हजारों बहिनोंके भाग्यमें नहीं है फिर भी जो धूम मच गई वह इसलिये कि मनुष्योंमें इतनी इंद्रियलोलुपता, विषयगृध्नुता और स्वार्थपरताकी मात्रा बढ़ गई दिखलाई देती है जिसके कारण कसाईसे बढ़कर भी वे निर्दयता करनेमें नहीं सकुचाते। बल्कि कसाई तो पशुओंका हलाल बेंड़ेदार मकानमें छिपकर करता है पर ये कलियुगी मनुष्य सरे मैदान आमबाजार हम अबलाओं पर अत्याचार करते सकुचानेकी तो क्या बात? निर्लज्ज हो लंबी लंबी बातें मारते सुने जाते हैं।

जब इस प्रकार मेरी धूम मच गई और चारो तरफ यह खूब प्रसिद्ध होगया कि फलाने की लड़की १०-११ वर्षकी कुआरी है तो अब जिस प्रकार विष्ठा पर कुत्ते या मांसकी बोटी पर कौओंके झुंडके झुंड गिर पड़ते हैं उसी प्रकार कहीं का नाई, कहींका ब्राह्मण कहींके स्वयं लालाजी मेरे गांवकी परिक्रमा काटने लगे। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि मेरा गांव एक व्यापारके केंद्ररूप शहरकी रास्तेमें पड़ता था इसलिये जो कोई कुंवारा दुजिया (एकबारका विवाहित) तीजिया

चौधिया पंचिया उस रास्तेसे निकलता वह ही एक-बार मेरे घर आकर देवीकी भांति मुझे देख जाया करता और 'मंदिर कहां है? जरा हाथ धोना है पानी लाओ' आदि नाना तरहके बहाने बनाकर चलता बनता।

२

मेरे पिता साधारण स्थितिके आदमी थे। उन्हें काला अक्षर भैंस बराबर था वे अपनी वंजीवाटोका हिसाब किताब अंगुलियों पर रखते थे। इस विषयमें वे बड़े बड़े गुमास्तों और मुनीमोंके कान काटते थे। स्वार्थमें भी वे किसीसे कम नहीं थे। उन्हें पैसा मा बापसे अधिक था। मैं पहिले कह चुकी हूं कि मेरी मा जब मैं ५-६—वर्षकी थी तब ही मरचुकी थी इस समय सिर्फ मैं और भाई ये दो ही अपने बापकी संतान थे उससे मेरे भाईको भी उन्होंने अपना सा ही रक्खा पर हां! उसके साथ इतना अवश्य किया कि अपने साथ साथ फेरीके लिये लिवा कर अपना सा कर लिया।

फलतः मेरे भाईमें कोई ऐसा गुण न था जो दूसरों के मन भाता, या लोग जिससे उसकी प्रशंसा करते और जब यह बात थी तब आज कलके जमानेमें जबकि रुपयोंको दश पांच भरी थैलियोंके विना विवाह होना कठिन ही नहीं वलिक असंभव है तब उसका विवाह ही कैसे होसक्ता था लेकिन एक बात थी और वह यह कि यदि कोई पैरवीकेलिये खड़ा होता और परिश्रम करता तो मेरे बदलेमें मेरी भाभी आजाती। खैर, मेरे पिताके ऊपर लिखे स्वभावसे धूर्त दलालों की बन आई देश देशसे दलाल आने लगे। कोई कहने लगा—लड़का खूब बढ़िया देख लो, घरमें भी दस पांच हजारकी इज्जत है पर ५० वर्षके करीब है।' कोई कहने लगा—'भाई! हजार बात तो हम नहीं जानते सिर्फ डेढ़ बात है कहो तो २-४ हजारका गहना चढ़वा दो, और चाहें कुछ तुम्हारी इच्छा हो वह पूरी करालो पर इतनी ही बात है लड़का जरा बड़ा है और वह भी खूब बड़ा नहीं केवल ४०—४२ वर्षके करीब है।" कोई कहने लगा—"बहुत इगिर दिगिर तो हम पै नहीं आती है हम तो सीधी बात जानते हैं कि तुम अपने मनकी बातें साफ साफ कहो कि यह हमारी इच्छा है। लड़का एक नहीं सौ दिखा दूंगा और जिस तरह कहोगे उसी तरह शादी पक्की करा दूंगा।"

इस तरह पिताके पास सुबह शाम खासी भीड़ जमा होने लगी। जिस प्रकार व्याज पर रुपये देनेवाले साहूकारके पास लोगोंके झुंडके झुंड खुशामद करते नजर आते हैं उसी प्रकार मेरे पिताके पास भी नाना तरहके खुशामदी टट्टू इकट्ठे होने लगे। मेरे पिता इन लोगोंकी मीठी चिकनी चुपड़ी फुसलाहटकी बातोंको सुनते और मन ही मन खुशीके मारे फूले न समाते। कभी कभी तो उनके नाना कल्पनाओंसे तरंगित हृदय में ऐसी सुखकी लहरें उठतीं कि चेहरे पर स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगतीं और यह मालूम होने लगता कि मेरे पिताको मुझ सरीखी कन्याके प्राप्त होनेका उतनाही आनंद और गर्व है जितना कि चक्रवर्तीको अपनी आयुधशालामें उत्पन्न हुये चक्ररत्नसे होता है। होता भी क्यों न? ऐसी मंहगीके समयमें और ऐसी दुनियाकी बढ़वारीके प्रवाहमें जहां स्वार्थ साधना ही तो प्राप्य स्थान है और सब तरह रुपया जोड़ना ही जीवनका फल है वहां मुझ सरीखी एक कन्या नावके रूपमें सब विपत्तियोंसे छुड़ादेने वाली मौजूद थी जिस के द्वारा बातकी बातमें सैकड़ों और हजारों रुपये टकसालकी भांति ढाले जा सक्ते हैं वहां सिवा आनंद और क्या हो सक्ता है?

(३)

बहुत दिनोंकी धूमके बाद, अनेक जगहोंकी पंचायतोंके इकट्ठे होनेके पश्चात् दश पांच जगहके मेरे उ-

पर चढे हुये गहनोंके हडप जानेके उपरांत जब कि मेरे पिता मुझे बिल्कुल घरमें न रखनेके लिये लाचार होगये तो मेरी सगाई एक जगह पक्की—खूब पक्की होगई, खूब पक्की इसलिये कि पक्की सगाई तो एक नहीं दश पांच बार मेरी होगई थी और अपने दमाद तथा समदी बनने वालोंको खूब गालियोंकी बोछार कर मेरे पिताने बड़ी २ मुशकिलोंसे अपना पिंड छुटाया था। पर अब यह अंतिम सगाई होगई और मैं विवाहित होगई।

जिनके साथ मेरा विवाह हुआ वे तीजिया थे। पहिले विवाहसे उनके कोई संतान न थी दूसरेसे एक लडका था जो मेरे विवाहके समय मुझसे कुछ छोटा अर्थात् १०-११ वर्षका था. इनके (पतिका नाम कैसे ले सकी हूं ?) साथ मेरा विवाह होगया। मैं इनके सुपर्द कर दी गई और इन्होंने भी मेरे पिताके हाथ ३ हजारकी थैली दे दी। जब मैं विवाहके बाद घर आई और मुझसे इनसे (मेरे पतिसे) बात चीत हुई तो मेरा जी बहुत ही दुःखी हुआ। मेरी उम्र कोई बिल्कुल छोटी तो थी ही नहीं, और होती भी तो कैसे ? बिना बड़ी उम्रकी हुये मेरे पिताको ३ हजार ही कैसे मिलते इसलिये संसारकी कुल बातें मैं न समझ सकी ऐसा नहीं था। और दुःखी होनेकी एक बात.यह भी थी कि विवाहके समय तो मैंने लाज और शर्मके मारे किसीसे अपने मनकी बात ही न कही थी और कहती भी तो हो हो क्या सका था ? क्यों कि लोगोंकी भेड़ियाधसानके सामने मुझे जहां मेरे पिता हांकते वहां जाना ही पड़ता और जाना ही पडा। तिसपर भी मैंने यह सोच रक्खा था कि बूढे पति हैं तो क्या ? धन तो बहुत हैं क्योंकि ३ हजारकी थैलियोंको देते समय जैसी उदारता इन (पति) ने दिखलाई थी उससे मैं लखपति समझती थी पर आते ही यहां तो दूसरा ही ठाठ देखा एक एक कर कभी किसीके बहाने कभी किसीके बहाने मेरे विवाह पर चढ़े गहने सब दरिद्रियोंसे चुगे गये खेतके समान लापता होगये। कर्जदारोंके रोज तकाजे आने लगे। बाहिरके लोगोंके 'फलाने घर हैं क्या ?' की आवाज सुनते सुनते मेरा जी ऊब उठता। मुझे विवाह कर घर वाली बनानेके लिये लालायित हुवे इनने अपना सब धन फूंक दिया था और विना ऐसा किये मेरा ऐसे घरमें पदार्पण ही कैसे हो सक्ता था ?

खैर ! यह सब तो मुझे बुड्ढे के हाथ बेंच कर मन का धन करने वाले पिता की और दुलहिन बनाकर यहां ला बिठालने वाले पतिदेवकी कथा हुई अब जरा मेरी भी सुनिये—

(४)

मैं एक बार कह आई हूं कि मुझमें कोई गुण न था फिर भी जो ३ हजारमें बिकी इसका कारण केवल नरपिशाचोंका विषयासक्त मन ही था। इसलिये 'जैसी रू फरिस्ते वैसे' के माफिक जब कि हमारे बड़े लोगोंका ध्येय ही इन्द्रियसेवन निपुण हो गया है तब वह हमारा ही कैसे अच्छा रहसका है। बस ! इसी लिये जब घरमें तीनों प्राणियोंके पेट भरने लायक अन्न न पुजने लगा तो मुझे पीसने कूटने तककी नौबत आई क्योंकि गांवोंमें असमर्थ दरिद्रियोंको पेट भरनेका सिवाय इस रुजगारके दूसरा आजकल रह ही कौन गया है ? परंतु बापके घर तो मैंने ऐसा कोई परिश्रम या हुनरका काम न किया जिससे उसे मैं कर सक्ती और वह न अखरता। फलतः मेरा मन पतिभक्तिसे बिलग होने लगा। मैं कभी अपने बापको कोसती तो कभी पंचोंको गालियां सुनाती. कभी भगवानको उला

हना देती तो कभी पतिकी बुद्धिपर ही गरम २ घूंट लोलकर रह जाती ।

पहिले तो मैंने अपनेको खूब सम्हाला पर विना मेह पडे पौधे कैसे हरे रहसक्ते हैं. विना अंकुश हाथी कैसे राह पर चल सक्ता है, विना बंधन (रस्सी) पशु कैसे वश किये जा सक्ते है इसलिये विना सुशिक्षा मिले मेरा मन ही कैसे स्थिर रक्खा जा सक्ता था । वह उच्छृंखल होगया । खेतकी जब बाढ़ ही टूट गई तब उसमें रखवारी करने वाला ही कौन रहगया? मनमें पहिले तो अनेक तरहके संकल्प विकल्पोंकी लहरें आई और विना ही कुछ लिये दिये टकराकर नष्ट हो गई । परन्तु ···

हा ! उस दिनकी बात न कहूंगी, ओफ !! याद करते ही रोंगटे खड़े जाते हैं !!! कैसा भयानक दृश्य था. उसी दिनने आज मैं इस अवस्थामें ला खड़ी कर दी हूं । भगवन् ! मेरी सरीखी सैकड़ों और हजारों हो बहिने अंधकार मय जीवनमें इसी तरह पथ भ्रष्ट हुई और होती होंगी पर उनकी कौन चिंता करता है । खैर ! चाहें कोई स्वार्थियों द्वारा होते हुये अत्याचारोंका विरोध करे चाहें न करे पर अपना अंधकारमय जीवन की भयंकर घटना अवश्य कहूंगी और तभी मेरा नाम विजली सार्थक भी होगा ।

(५)

गांवके साहूकार जिनसे कि मेरे पतिने एक हजार रुपया कर्ज ले मुझे खरीदा था वे कई दिन तकाजा करने आये और पतिदेवको न पाया तो उन्होंने बड़े सवेरे ही आकर दर्वाजा खट खटाया । वश पति वाहिर कुछ रात्रि रहते ही चले गये थे उनको क्या काम था सो तो वे ही जानें. पर अक्सर रोज ही वे [illegible] अनुमान [illegible]गारोंका आवा आई प्रारंभ हो जानेका भय ही इसका कारण था । खैर ! जो कुछ भी हो ! इतना सवेरे दर्वाजाकी खटखटाहट सुन मैं पीसनेसे उठ आई और शायद कुछ चीज भूल गये हैं इसलिये पति ही लौट आये हैं ऐसा समझ दर्वाजाके पास आ सिकड़ी खोलदी । साहूकार इसी ताकमें आये ही थे और मैंने भी उनके चाल चलनके विषयमें पहिलेसे गांवकी औरतों द्वारा सुन रक्खा था इसलिये चट किवाड़ खोलते ही दुकानीमें वे आ घुसे । उन्हें देखकर मैंने घूंघट काढ लिया । साहूकार कुछ धीट होकर बोले—घूंघटकी क्या जरूरत है ? तुम्हारे पतिसे तो हम छोटेही हैं ।" मेरा मन तो पहिले सेही आपेको खो चुका था मैं भी उत्तरमें बोली—हां ! ठीक है । पर घूंघट काढना क्या बुरा है ?' इसके बाद जो बातचीत हुई उसको कहनेकी क्या जरूरत है बस ! इतना कहदेनाही काफी है कि तीन हजारमें इनका जिस प्रकार हिस्सा था उसी प्रकार उस द्रव्यसे खरीदे गये मुझ में भी हिस्सा होगया ।

साहूकारको प्रतिदिन मेरे घर आते जाते देख और मेरी आर्थिक स्थितिमें भी सुधारा देख औरतें क्या और मर्द क्या ? सबमें ही नाना तरहकी बातें होने लगीं मेरे पतिसे भी यह बात छिपी न रही पर उपाय क्या था? कर्ज देना था कि हंसी खेल ! रुपयों का जोर था फिर भला कोई कैसे चूंकर जाता ।

७

धीरे २ मुझे वरसों सी वीतगई । मेरे पति भी परलोक सिधार गये पर साहूकार जीसे मेरी जान पहिचान न छूट पाई । छूट भी कैसे पाती ? रुपये तो पटे ही न थे ! खैर ।

एक दिनकी बात है एक उपदेशकजी भाग्यवश गांवमें आगये ! सभाजकी अन्धाधुंधी होती देख कुछ

धर्मात्माओंने यह तरीका निकाला हैं ऐसा वे कहते थे। बहुत कुछ कहने सुनने पर उनके व्याख्यान सुनने की लोगोंने स्वीकारतादी। जैसे तैसे व्याख्यान हुआ लोग तो कम आये पर औरतों को कामधंदा कम रहता है और धर्ममें प्रीति भी अधिक रहती है इसलिये वे प्रायः सब ही आई। उपदेशकजी ने स्त्री शिक्षा पर व्याख्यान देना शुरू किया। बीचमें बाल विवाह वृद्ध विवाहका भी प्रकरण छेड़ दिया और उससे होनेवाली हानियां भी बताई। बस! क्या था? मैंतो इसी बात की शिकार थी सबसे अधिक मुझे ही उपदेशकजीका व्याख्यान पसंदआया और एक एक कर सब बीती हुई बातोंसे हृदय दहल उठा। उपदेशक जीने विधवाओं का एक यह भी कर्तव्य बतलाया कि वे किसी योग्य आश्रममें रहकर पढ़ें, धर्मका मर्म समझें। मुझे यह बहुत ही लाभदायक हुआ और शीघ्रही आश्रममें प्रविष्ट हो कियेहुये पापोंका प्रायश्चित्त करने लायक हो गई हूं।

बहिनें और भाई इससे कुछ शिक्षा लें और अंधे कुएमें न पड़ें इसलिये समाज की स्थितिको ध्यानमें रख कर यह गल्प लिखी गई है इसमें लिखी बातें सैकड़ों और हजारों स्त्रियोंके जीवनमें हुई है और हो रही हैं।

समाजके खंभो! स्वार्थके नशोंसे चूर हुये इन्द्रिय विषय लोलुपियो! धर्मकी नीव खोदनेमें सबसे पहिले और तेजीसे फावड़ा चलानेवाले नरपिशाचो! अपनी प्यारी संतानको उल्टे छुरेसे हत्या कर पेट पालनेवाले कसाइयों! संतान दर संतान तक अपकार करने वाले कृतघ्नो! सोचो! समझो!! अपने हृदय पर हाथ धर दूसरे की पीर देखो। आंखोंसे पट्टी खोलदो, और बिचारी कन्यायोंकी बुड्ढे लूले लंगडे असमर्थके हाथ बिक्री कर धनवान मत बनो!!

मित्रता

गजल।

मित्र का स्वेद गिरतेहीं रक्त अपना बहाते हैं।
जगत में धन्य सच्चे मित्र वह ही बस कहाते हैं ॥१॥
समय पड़ने पै रहकर दृढ़ सहायक मित्रके होवें।
जैन ये? क्या जगतमें कितने ऐसे जन दिखाते हैं?॥२॥
एकसे एक मिलना सीखते दर जान कर कितने?।
एक अरु एक मिलनेसे, कि एकादश कहाते हैं ॥३॥
झगड़ना खूब सीखे हैं जु अपनी नाश कर २ के।
यहीं श्रीमान् सच्चा मित्रता जगसे मिटाते हैं ॥४॥
अधर्मी देश-घातक, मूर्ख, अन्यायी व झगड़ालू।
मित्र बनते हैं, पहिले मित्रता मनसे भुलाते हैं ॥५॥
नहीं है मित्र बन करना, ठीक कुछ वार अपनों पर।
जो ऐसा करते है वह जन्ममें अपने थुकाते हैं ॥६॥
मित्रता करते हैं हो पाप पर आशक्त जो दुर्जन।
प्रेम को वे मिटाते हैं, 'करम' उनको सताते हैं ॥७॥
'भारतीय' मित्रता सच्ची करहु मतभेदको छोड़ो।
जो करते शत्रुता हैं, दूध माताका लजाते हैं ॥८॥

रामस्वरूप भारतीय।

कन्या गाय दुहो रे भाई ।

धंधा कर कर जन्म विताया, कभी पेट भर अन्न न खाया ।
गरम ठंडमें सवजग दोड़ा, रुपया एक न घरमें जोड़ा ॥
बडे दुःखमे कन्या पाली, धनकी आश इसीपर डाली ।
देखो कन्या कैसी सुंदर, गाय सरीखी वाहर अंदर ॥
इसके लिये वहुतसे डालें, थैली बहु रुपयोंकी खोलें ।
एकवृद्धने लेली इसको, कीमत दस हजार दी मुझको ॥
कन्या पाल महा सुख पाया, रुपया दूध खनाखन आया ।
लो प्यारी ! मैं रुपया दुहता, वजावजा कर थेली भरता ॥
ले तुम धरो तिजोरी अंदर, मौज करो बैठ घर अंदर ।

कन्या बेचने वाला ।

अचला ।

(लेखक—श्री युत पं० मक्खन लाल जी टेहू वर्तमान प्रधानाध्यापक दि. जैन महावीर विद्यालय कलकत्ता ।)

१

अंग देशके विजयपुर नामक शहरमे करीब २५ कोश चलकर एक सिंहनाद नामक महा भयानक जंगल है। दिनमें कोई पथिक नहीं चलता है रात्रिकी तो बात क्या है। सघन वृक्षोंसे काली घटा कभी नहीं दिखाई देती है। मयूर अत्यंत ऊंचे वृक्षोंको ही काली घटा समझ कर असमयमें ही नृत्य करने लगते हैं। दुष्ट अत्यंत रौद्र परिणामी सिंह व्याघ्र शृगाल आदि जन्तुओंके झुंडके झुंड खूब फिरते रहते हैं— डाकिनी शाकिनी नागिनी प्रेत भूतादिका निवास स्थान इस जंगलके भाग्य में बदा है। जंगलके ठीक मध्य भागमे एक युवति अत्यंत रुदन कर रही है कि हे भगवन् ! त्रिलोकीनाथ !! अशरणशरण !!! आप मेरी इस समय रक्षा कीजिये आपने सबके ऊपर करुणा दिखाई है—श्रीपाल नरेश कोटि भटको सागरसे तार सती रैनमंजूषासे मिलाया, द्रौपदीका चीर बढाया अंजनसे अधम मनुष्योंको अपनाया। सतीके रुदनको सुनकर जंगलके जानवरोंको भी दया आगई और जंगल एक साथ स्तब्ध होगया। युवतिके सामने एक पापी खड़ा हुवा है वह इस प्रकार युवतिसे कहने लगा-हे सुन्दरि ! आप इतना रुदन क्यों कर रही हो। इस समय तुम्हारा कोइ साथी नहीं होगा। तुमको उचित है कि हमको अपनाओ। संसारके अन्दर पुण्य पाप कोई वस्तु नहीं है जब तक दीपकमें तेल रहता है तब तक दीपक जलता है बादमें नष्ट हो जाता है इस ही प्रकार हमारे तुम्हारे शरीरका हाल होगा। युवतिसे नहीं रहा गया—लाल आंखकर मेघ ध्वनिसे बोली-रे पापी इस समय तू यहां से चला जा। पुण्य पाप संसारके अन्दर मौजूद है उसीसे सब फल मिलता है यदि ये न माने जांय तो सब संसार पापी हो जायगा क्या तूने कीचक पापीका नाम नहीं सुना है रावणका तो बच्चा बच्चा जानता है। युवति अश्रु धाराको पूंछती हुई कह रही थी कि इतनेमें सहसा फणाको धारण करनेवाला एक नाग आया और पापीके पास जाकर पैरोंसे लिपट गया फूंकारोंसे दशों दिशा व्याप्त होगई थोड़ी देरीमें युवक पापी अचेत होकर पृथ्वीमें गिरपड़ा और उसके मुंहसे सफेद २ पानी निकलने लगा।

२

सिन्धु नदीके उत्तर तटमें अचलपुर नामका विस्तृत राज्य है। महीपाल महाराज इस समय राज्य कर रहे हैं समस्त भूमंडलके राजाओंने आपको न्याय रत्नकी पदवीसे भूषित किया है अत एव आपका नाम सार्थक है पातिव्रत्यसे संयुक्त पद्मा नामकी महाराजके पट्टरानी है दोनोंके शुभ कर्मके उदयसे दो राजकुमार और एक कन्या रत्न है काल क्रमसे दोनों राजकुमारोंका प्रतिष्ठित राजघरानेसे विवाह हो गया है बाकी अब कन्या रह गई है। महाराजको रात्रि दिन चिन्ता रहती है कि इस अचला कुमारीका विवाह करनेके बाद मैं अवश्य तृणके समान राज्यको छोड़कर विश्व प्रसिद्ध आत्मस्वरूप जैन धर्मकी दीक्षा धारण कर आत्मकल्याण करूंगा। कभी २ महाराज चिन्तासे अत्यंत विलक्षण परिणाम कर लेते थे। मंत्री राजा साहबसे कहने लगे-राजन् ! आप इतनी चिन्ता क्यों करते हैं चिन्ता करनेसे काम नहीं चलता है विचार की-

जिये, वर ढूंढ़िये ज्योतिषियोंको बुलाइये, कन्याके लक्षण दिखाइये । कन्या जिस कुमारके योग्य है उसको प्रदान कीजिये । महाराजने मंत्रीकी सलाह मानली और विद्यालयमें जाकर खूब विचार किया क्योंकि 'तर्क रूढं हि निश्चलं'।

गंगा नदीके दक्षिण तट में स्थित नन्दा नामके देश में अरिंजय नामका रम्य राज्य हैं महाराजका नाम क्षितिमंडल है महाराज के कुमारका नाम देवराज है चतुर्दश विद्याका पारगामी है दूर २ देशांतरोंसे सर्व प्रकारकी विद्याका शास्त्रार्थ करनेके लिये पंडित हर रोज आते रहते हैं इसी कुमारको अचलपुरके महाराजने अपनी अचला कुमारीको देकर अचला कीर्ति बनाई है थोड़े दिनोंके बाद आपने अपने पुत्रोंको बुलाकर राज सौंप दिया और श्रीकनकप्रभ महर्षिके पास जाकर दिगम्बर दीक्षा लेकर आत्मानुभव करने लगे। देशांतरोंमें खूब जैन धर्मकी प्रभावना करने लगे । कभी सप्ततत्वोंका कभी जीवादि षट् द्रव्योंका कभी स्याद्वाद विद्याका सार लेकर व्याख्यान देने लगे और देशांतरोंमें घूमने लगे । कभी पहाड़ोंकी चोटी पर ध्यान कर आत्मानुभवमें रत होने लगे तो कभी २ गुफाओं में जाकर ध्यान करने लगे।

३

अचला एक समय भवनके उपर मकानपर बैठी हुई थी—आकाशकी शोभा देख रही थी । ऊपर एक विद्याधरका विमान आकाश मार्गसे जा रहा था विमान से वह विद्याधर अचलाके रूप सौन्दर्यको देख कर मोहित होगया और उसके पानेकेलिये नाना प्रकारकी चेष्टा करने लगा । अन्तमें अपनी विद्यासे अंधकार कर अचलाको हरले गया। विमानमें अचलाने देखा कि यह कौन मनुष्य है और मैं कहां जा रही हूं तब पूछा तो वह विद्याधर ऊटपटांग उत्तर देने लगा अबलाओंका बल रुदन करना है सो रुदन करने लगी विद्याधरने अचलाको खूब फुसलाया लेकिन अचलाने एक न मानी अन्तमें विद्याधर हताश होकर उसे सिंहनाद महावनीमें लेगया और वहां लेजाकर नाना प्रकार की चेष्टा कर सतीको लुभाने लगा ।

४

अरिंजयपुरेश अपनी सभामें बैठकर नाना देशोंसे आई हुई भेंटको देखकर अत्यंत मनही मनमें खुश हो रहे है। देवराज युवराज भी एक जगह अपने उचित सिंहासन पर उपस्थित है सामन्त गण आकर महाराज युवराजको योग्य नमस्कार कर अपने २ स्थान पर बैठे थे कि खोजाने आकर साष्टांग नमस्कार किया कि हे राजन् रनवासमें आपकी पुत्रवधूको कोई हर लेगया है क्या विद्याधर अथवा कोई देव, न जाने? महारानी विलाप कर रही हैं उनको दिलासा दीजिये। महाराज खोजाके वचन सुनकर अत्यंत अधीर हो गये युवराज भी अचेत होगये और मंत्रियोंके समझाने पर उसके खोजने का प्रयत्न करने लगे ।

५

महीपाल यतीश्वर देशांतरोंमें घूमते हुवे भव्योंको संसार सागरसे तिराते हुवे इस महा भयानक सिंहनाद नामकी अटवीमें आकर ध्यान करने लगे। ध्यान समाप्त होने के पश्चात् चर्याको जानेको उद्यत ही थे कि अचानक इस दृश्यको देखा कि एक सती बैठी २ रुदन कर रही है और एक—युवाके हाथों पैरोंमें अत्यंत काला नाग-बेड़ी दिये जीभ निकाल रहा है और युवक अचेत हो गया है ।

यतीश्वरको सहसा देखकर सतीने साष्टांग नमस्कार किया और अपनेको धन्य माना मनही मनमें

धर्मकी तारीफ करने लगी। यतीश्वरने धर्म-आशीर्वाद देकर कहा कि कन्ये! तुमने अच्छा किया इस ब्रह्मचर्य्य व्रतको इतना कष्ट होने पर भी नहीं छोड़ा धर्मही संसारमें सार है और कोई नहीं है मनुष्यके साथ पुण्य पाप ही जाता है अपनी पुष्ट की हुई देह भी नहीं जाती है। देखो! धर्मका साक्षात् फल है यह नाग देव इस युवाको हथकड़ी डाले हुवे हैं संसार बड़ा विचित्र है मोहनीय कर्म क्या २ नहीं करता। वास्तव में जैनधर्ममे जो कुछ है वही सार है। हे नागकुमार! तुम इसको छोड़दो इसने कियेका फल पाया अब इसकी काललब्धि आगई है तुम ही संसारमें श्रेष्ठ हो जो धर्मात्माओंके साथी होते हो। नागकुमारने यतीश्वरके सारगर्भित वचन सुन कर अपनी ऋद्धिको समेट लिया और युवकको सचेत करदीया। युवकने देखा कि नाग कुमार बैठे हुवे हैं यतीश्वर महाराज विराजमान हैं और सती है। युवकने हाथ जोड़कर अपनी बहुत आत्मनिंदा की। बादमें सतीसे अत्यंत क्षमा मांगी। हे बहिन! तुमने मुझे वास्तवमें सत्यका उपदेश दीया। यतीश्वरको साष्टांग बार बार नमस्कार कर कहने लगा—हे भगवन्! आप के चरणारविंदने मुझे जो लाभ हुआ है—प्राण बचाये हैं वह अकथनीय है इसलिये आपको स्वतः नमस्कार करता हूं यह सती मेरी सहोदर बहिन के समान है आज्ञा दीजिये इसे घर पहुंचा आऊं और सब लोगोंसे क्षमा मांग आऊं। बादमें आपके—चरणोंकी सेवा करूंगा। यतीश्वरने गंभीर होकर उत्तर दीया—ठीक है। नाग कुमार अपने स्थानको गये। मुनि विहार कर गये। सतीको विमानमें बैठाकर अजियपुरको विद्याधर लेगया और वहां पहुंचाकर सर्व से क्षमा मांग कर महर्षि महीपालके चरणोंमें आकर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली जोकि दोनों लोकोंकी-हितकर है।

उपसंहार।

प्यारे पाठको! इस कथा से आपलोगोंको यह मतलब लेना चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य व्रतसे एक कुमारी भी जब संसारमें आदर पा प्रसिद्ध हुई तब यदि और कोई इस दुर्धर व्रतको स्वीकार करेगा तो क्यों नहीं सुख भोगकर मुक्तिको प्राप्त करेगा।

—०:—

७ वर्षकी लड़कीपर अत्याचार।

समाज में जिसप्रकार अज्ञानियोंकी अधिकतासे दिन प्रतिदिन नाना अनर्थ सुने जाते हैं उनसे दिल दहल उठता है और अनुमान क्या, साक्षात ज्ञान होने लगता है कि यदि यही दशा कुछ दिनोंतक रही और विषयांध नराधमोंको लीलाका क्षेत्र बढ़ता ही गया. इसके रोकनेकी उपयुक्त शीघ्र कोई कार्यवाही न हुई तो हमलोग नेस्त नाबूद होजायेंगे। जिन लोगोंमें सामाजिक अत्याचारोंके अधिक होनेसे नीचता आगई है उन्हीं की पंक्तिमें हमलोग सम्मिलित हो जांयगे और आज जो कुछ भी जैनी होनेके चिह्न दिखलाई देते हैं एक भी न दीख पड़ेगा।

यह बात कम चिंताकी नहीं है कि हमारे भाइयोंमें इसतरहकी स्वार्थपरता और निंदनीय इन्द्रियसेवकता बढती जारही है जिसके कारण संसार दशामें सुख पूर्वक दिन वितानेवाले समाजका प्रधान अंग स्त्रीसमाज दिन पर पतित होना जारहा है और अपना चिरकालीन शीलधर्मको खोकर व्यभिचारी घृणित बन रहा है।

यों तो अपने भाइयोंके बीच (प्रांत) में रहनेसे रोजही नाना तरहकी खबरें कन्यायोंके ऊपर अत्याचार करने वालोंकी सुनाई पड़ती रहती हैं और आत्मामें क्षोभ व ग्लानि पैदा किया करती हैं परन्तु यहां पर भी जो एकाध समाचार मालूम पड़ा है उससे किस समाज हितैषी मनुष्यत्वाभिमानीको दुःख न होगा।

जो खबर हमें मालूम पड़ी है उसमें कितना सत्यांश है यह तो उस गांव वाले ही जानें परन्तु उसके जाननेसे जो चित्र हमारे हृदयमें अंकित हुआ है उस से वह विल्कुल नहीं तो चौदह आना अवश्य सत्य मालूम पड़ता है।

वह अत्याचार यह है कि आगरे जिलेमें पचोखरा एक गांव है उसमें रघुनाथ, सुखनंदन, पिसर, जीसुक रहते हैं इनमेंसे सुखनंदनकी उम्र ३८ वर्षकी है ये दूजिया है। इनहीके सब पापर बेले हुये हैं और वे यह कि—दिनौली गांवके रहनेवाले, हमारे युवक (सुखनंदन) के एक रिस्तेने साले, एकसे बहिनाई और एकसे साढू लगने वाले महाशय की (जिनका नाम नहीं मालूम और न अब वे जिन्दे हैं) ७ वर्ष ६ महीने की लड़कीके साथ धोकेसे अत्याचार कर अपनी चलाकी का नमूना दिखलाया है।

लड़कीमा बापके मरजानेसे अहमेदपुर ला. बुद्धसेन कल्यानमलके मकानमें किराये पर अपनी दादाके पास रहती थी। एक औरत पचौखराके छेदालालके लड़का भोलालकी विधवा प्रौढ पत्नी इसमें दलाल बनी (दलाल क्यों बनी? इसका पता जिनकी इच्छा हो लगावें) वह संध्या समय लड़कीको लुभाकर इका में विठला पचोखरा ले आई। जब खबर मकानके मालिकको लगी तो थानेमें रिपोर्ट की। थानेदार तहकी कानपर आये और बुढियाको धमका वा धोका देकर राजोनामे पर अंगूठेकी मुहर ले कुछ जेब गर्मकर चलते बने। जिस दिन यह वारदात हुई उसी रातको ३८ वर्षके युवकके गलेमें वह नन्ही बच्ची बांध दी गई और जो पहिले रिस्तेदारीसे मामा, फूफा वा मौसा लगता था उसको ही पति कहनेकेलिये मजबूर की गई।

विवाह मंगलके होजाने पर २१ इकवीस दिन वीत जानेके बाद ज्योनार कर पंचोंको खुश करनेकी दूल्हा साहबने ठानी और निमंत्रणमें कोई भी रिस्तेदार या पंचायतका भलामानस शामिल नहीं हुआ। इस पर भी उन्हें अपने कृत्य पर पछतावा न हुआ और अपनेको वे अक्लमन्दी का तमगा लगा कर खुशहो रहे हैं।

अब हमारी समाजके मुखिया और पंचोंसे प्रार्थना है कि—क्या इसी तरहके कुकृत्योंसे आप अपनेको कीर्तिमान् करते रहेंगे? क्या इसी तरह अत्याचार कर कर कन्यायोंका हलाल करते रहेंगे यदि नहीं, तो आलस्य त्यागिये और ऐसे २ नरपिशाचों, स्त्री लोलुपियोंका समाजसे काला मुंह कर सदा सुख की नींद सोनेका प्रयत्न कीजिये।

अत्याचारसे दुःखी—
एक परदेशी

कन्या विक्रय।

आजकल हमारी जातिमें पत्रके निकलने पर तथा उपदेशकके सर्वत्र उपदेश देनेपर भी लोग अपनी अज्ञानता को किसी तरह नहीं छोड़ते, बराबर अपना काम शुरू किये जाते हैं और कन्यायों की विक्री कर रुपयोंसे अपना घर भर रहे हैं। न मालूम, इस जातिका क्या विलकुल ही अधःपतन होजायगा। जातिके भाइयो! अब तो इस महान अज्ञान को छोड़ो! याद रखना कि इस पैसेसे कभी किसीका भला नहीं हुआ है। विवा-

रनेकी बात है कि पहिले हमारी जातिमें सबलोग इस विचार पर आरूढ़ थे और कुछ लोग अब भी हैं कि लड़कीके घरका पानी पीना तक भी पाप है परन्तु बड़े खेदकी बात है कि लोग इस समय बराबर कन्या विक्रय बढ़ाते चले जारहे हैं । पंचायतें एकदम नष्ट हो गई है और जहां कहीं हैं वेभी स्वार्थी बनगई हैं। पहिले लोग लड़कीके पैसेको हरामका पैसा समझते थे और कोई उसे लेता था तो उस गांवकी पंचायत उसको जातिच्युत कर देती थी तथा उसपर जुरमाना भी किया जाता था । उसकी निंदा सजातीय लोग ही नहीं, विजातीय भी करते थे इसलिये लेनावाला भी बदनामीसे डरता था और कन्याविक्रय की कोई बात भी न करता था परंतु आजकल जमाना पलट गया है इसमें अज्ञानता बढ़ गई है इसलिये न तो आजकल किसीको पंचायतका भय रहा है और न किसीको अपने बांधवोंका डर लगता है।

प्यारे बंधुओ ! क्या इस महान् अज्ञानांधकार में आछन्न ही रहोगे क्या तुमको इसहीमें आनन्द है? देखो! तुम्हारी निन्दारूपी पवन सर्वत्र फैल रही है । लड़की के पैसेसे कोई धनी नहीं हो जाता। हां बेचनेवाला दो तीन महीने तक तो धनीसा दीख पड़ता है पर फिर वह कोरा रह जाता है। हमारे भाइयोंके सामने ये बातें रात दिन बराबर गुजरती चली जाती हैं किन्तु खेद है कन्याविक्रे ता उसपर बिलकुल ध्यान नहीं देते। बुड्ढोंके हाथ बेचनेसे हमारी जातिमें विधवाओंकी संख्या अधिक होती चली आरही है। कन्याबेचनेवाले यह नहीं विचारते कि हमारी लड़की की क्या दशा होगी उन्हें तो रुपयेसे काम है। लड़कीके दुख सुखसे क्या प्रयोजन? यह लोग यह तो विचारते नहीं कि लड़की हमें गालियां या शाप देगी वा नहीं । सच पूछिये तो लड़कियोंके शापसेही लोग कंगाल दीख रहे हैं और मनमाना दुःख उठा रहे हैं। यदि सुख पाना है कुछ लाज करनी है तो इस पैसेका लेना भूल जाइये, आप क्या यह नहीं सोचते कि लड़कीके धनसे हमारी क्या दशा होगी । यह धन परलोक और इस लोकमें भी दुख देनेवाला है इसलिये यह धन किसीको भी लेना उचित नहीं है ।

हम अब अपने पाठकोंको एक कन्यावेचने और विकानेमें खूब चतुर महाशयका नाम लिखना उचित समझते हैं जिससे कि और भाइयोंको भी सूचना मिल जाय और लोग उनसे दूर रहें ।

जिला एटामें १.करौली एक छोटासा गांव है उसमें एक लाला जिनका नाम छेदालाल है आपने दलालीमें अधिक ख्याति प्राप्तकी है इसीलिये आपको लोगोंने दलंकारी इस डिगरीसे भी भूषित किया है। आपने एक आदमीको तैयार किया है और उससे २००० रुपया लेना चाहते हैं किन्तु देनेवालेकी इतनी इच्छा नहीं है कि मैं दो हजार दूं। मालूम पड़ता है कि दलाल महाशय १६०० रुपयेमें पसंद होजावेंगे । और लड़की के बापको कितने रुपये हाथ लगेंगे सो मालूम नहीं इसके सिवा और भी बहुत सी आपने दलाली की हैं लेकिन आप तीन चार महीनेमें ही कोरे रह जाते हैं। अतः जिन लोगोंको धनी हो कर कंगाल बनना होतो इन दलाल महाशयका अनुकरण करें और जिन लोगों को कंगालसे धनी बनना और सुख पाना होतो इन महाशय की तरफ़ दृष्टि भी न दें ।

समाजका दास—वासुदेव जैन टेहू (आगरा)

—~~—

श्री पद्मावती परिषद् के ' विरोध नाशक विभाग ' की रिपोर्ट ।

महाशय गण !

अपनी समाजको यह बतलाते रहनेकी आवश्यकता है कि परिषद्के प्रत्येक विभागने प्रत्येक मासमें क्या क्या कार्य किये, यदि परिषद्का प्रत्येक विभाग अपनी अपनी माहवारी रिपोर्ट प्रकाशित करता रहे तो प्रथम तो हर विभागके मंत्री स्वयं सावधानीसे कार्य करते रहें और चैतन्य रहे दूसरे हमारे महामंत्री जी साहब को भी वार्षिक रिपोर्टको तय्यारीमें कष्ट न उठाना पड़े तीसरे समाज की उन्नति शीघ्र हो। उपरोक्त मंतव्य को ध्यान में रखते हुए मैं गत मासकी रिपोर्ट विरोध नाशक विभागकी प्रकाशित करता हूं आशा है कि समाज इस पर ध्यान देगी और जहां कहीं किसी भी प्रकार का विरोध होगा मुझे सूचित करेगी ताकि आपुसी फूट निकल जावे जिसके कारण हमारी जाति दिन पर दिन हीनावस्थाको प्राप्त हो रही है । जबतक हम अपने भाईको देखकर प्रीतिभावको धारण नहीं करेंगे तब तक हम उसकी या वह हमारी किसी प्रकार भी मदद नहीं कर सकेंगे और बिना परस्परकी सहायताके न तो धर्मोन्नति ही होना संभव है और न लौकिक उन्नति ही ।

जब तक अपने दिलों मे मनुष्य मात्र की सूरत देखते ही बिना उससे जाति धर्म पूछे हम सैकडे पीछे ९५ आदमियों को न पहचान सकेंगे कि यह अपना भाई ही है तब तक हम यह नहीं कह सकते कि हमारे में जातिभाईके लिये पूर्ण प्रेम है—प्रेम वस्तु ही ऐसी है कि बिना जाने बूझे अपने प्रेमीको ढूंढ निकाले मनुष्यका चहरा देखते ही जैसे कांच में मुह दिखलाई देता है वैसेही शुद्ध प्रेमी के हृदयमें जाति भाईको ढूंढ निकालनेकी शक्ति छिपी हुई है जब हममें इतनी शक्ति पैदा होजायगी तब हम " जमात की करामात " की कहावत अनुसार जो कार्य चाहे कर सकेंगे अतः सबसे प्रथम हमें चाहिये कि आपसी वैमनस्यको हटावे जिससे प्रेम हमारे हृदयमें घुसना प्रारंभ हो । तभी हम देखेंगे कि हमारी जाति भी अन्य जातियोंके समान उन्नति शिखर पर चढना प्रारंभ कर रही है । अन्यथा ' क्षमाकरें ' आप लाखों जतन करें आप कुछ नहीं कर सकते अभी तक हमारे पास केवल एक चिट्ठी दिल्लीसे विरोधके विषयमें आई है जिसको मैंने इस कमेटीके सभापति ला० शिखरप्रसादजी साहेब रईस टूंडलाकी सेवामें भेज दिया है वहांसे आज्ञा आने पर उचित कार्रवाई की जायगी—जब कभी मेरा दिल्ली जाना (जो अपनी दुकान सम्बंधी कार्यार्थ बहुत जल्दी २ ही होता रहता है) होगा तब वहां पर मैं स्वयं तहकीकात करूंगा और कमेटीके अन्य सदस्योंसे परामर्श करूंगा कि इस विषय में क्या करना उचित है, कारण जहां तक मैंने सुना है दिल्लीमें धर्मोन्नत विरोध चला आता है । दिल्लीके भाईयोंको आदर्श बनना चाहिये उसके बदले वह यह जतला रहे हैं कि शहरमें रह कर और भी आदमी खुद मुख्तार हो जाता है । यह बात हमारे दिल्ली सरीखे इतने बड़े शहरमें रहने वाले पद्मावती पुरवाल भाइयों मे कलंकका टीका लगाती है प्रार्थना हमारी यह है कि दोनों पक्ष कृपाकर शुद्ध हृदयसे अपनी अपनी शिकायत विरोध विषय पर लिख भेजें तो मुझे सुभीता होगा ।

समाजसेवक
महावीरसहाय पांडे शिकोहाबाद ।

नोट- दिल्लीमें विरोध बहुत दिनोंसे सुनते हैं । दोनों पक्ष वालोंको चाहिये कि वे पांडेजीके पास अपने २ मनमुटावकी बातें लिख भेजें और साथही यह भी लिखें कि अमुक अपराधी अमुक दण्ड लेना कबूल करलेगा तो हम अपने विरोधी पक्षसे मिल जायेंगे । आशा है दोनों पक्षके मुखिया इस पर ध्यान देंगे और जातिके पतनमें कारण न होकर उन्नतिमें कारण होंगे ।

संपादक—

भूगोल पर कुछ निवेदन।

सत्योदय वर्ष २ अंक २ में भूगोल (पृथिवीका वर्णन) शीर्षक एक लेख निकला है। बाबू सूरज-भानजी वकीलने जैन भूगोलकी असलियत कायम करनेके लिये जो जैन विद्वानोंको उत्साहित किया है वह प्रशंसाके लायक है। आर्ष भूगोल और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निश्चित भूगोलमें इस समय हद दर्जे का मत भेद है। आर्ष भूगोलमें बतलाया है कि पृथ्वी स्थिर हैं और सूर्य चंद्रादि भ्रमण करते हैं और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निश्चित भूगोलमें बतलाया है कि सूर्य आदि स्थिर हैं पृथ्वी ही उनके इर्द गिर्द घूमती रहती है। तथा आर्ष भूगोलमें पृथ्वीकी लंबाई चौडाई असंख्यात द्वीप समुद्रोंको लिये हुए है और उससे भिन्न भूगोलमें पृथिवीकी लंबाई चौडाई बहुत ही कम बतलाई है जो आर्ष भूगोलके सामने बिलकुल ही तुच्छ है। तिसपर भी तुर्रा यह है कि हम लोगों को स्कूलोंके अन्दर पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निश्चित ही भूगोलका पाठ पढाया जाता है जिससे आर्ष भूगोलके बारेमे हम अपने श्रद्धानसे हाथ धो बैठते हैं और उसे झूठ बतलानेके लिये जरा भी खम नहीं खाते।

हमें इस समय इतना अवसर नहीं कि हम इस विषय पर प्रगल्भ विचार कर सकें पर इतना जरूर लिखे देते हैं कि—हमारे नेत्रोंके अन्दर इतनी सामर्थ्य नहीं कि हम बारीकसे बारीक वा दूर तक लंबे पदार्थकी सीमाका परिज्ञान कर सकें। हम बिना तारके तार आदि कारणोंसे वा खुद जाकर उतना ही पता लगा सकते हैं जहांतक हमारी गम्य हो सक्ती है। पाश्चात्य विद्वानोंने जो यह विषय निर्णीत कर दिया है कि पृथ्वी इतनी ही लंबी चौडी है' सो उन्होंने अपने नेत्रोंपर भरोसा कर वैसा किया है। अच्छा हमी उनसे पूछना चाहते हैं कि जहांतक आपने पृथ्वी की हद कायम की है वहांसे आगे और क्या पदार्थ दीख पडता है? यदि यह कहा जायगा कि आगे वर्फ किवा जल है इसलिये आगे गमन नहि किया जा सक्ता? तब यह सहज रूपसे सबोंकी समझमें आ सक्ती है कि उस वरफ वा जलके नीचे वा आगे अवश्य ही कहीं फिर पृथ्वी होगी एवं उस पृथ्वीके आगे यदि जल वा वर्फ पडेगा तो उसके आगे भी अवश्य पृथ्वी होगी क्योंकि पाश्चात्य विद्वानोंने यह तो निश्चित कर लिया ही नहीं है कि आगे चलकर सिर्फ आकाश ही है क्योंकि अब भी नवीन नवीन दुनियायों का प्रादुर्भाव होता चला जा रहा है जो कि समाचार पत्रों का पाठ करने वालों से छुपा नहीं है। इसलिये जब यह बात सिद्ध होजाती है कि आगे जल वा वर्फ आदिके देखनेसे पृथ्वीके अखीरी भागका निश्चय नहि हो सकता तब अपने नेत्रोंसे देखकर पृथ्वीकी गोलाईका कह देना समझमें न आनेके लायक बात हो जाती है। तथा इसरूपसे पाश्चात्य विद्वानोंके मतानुसार पृथ्वीकी सिद्धि न होनेसे सूर्य उससे कई गुणा बड़ा है और उसके इर्द गिर्द पृथ्वी घूमती रहती है यह भी बात विश्वस्त नहि मानी जा सकती।

पाश्चात्य विद्वानोंने यह मान रक्खा है कि अमेरिका पृथ्वीके दूसरे तलपर है इसलिये हिंदुस्थान जापान आदि देशोंसे ठीक पूर्वको ही तरफ चलते २ भी अमरीका देश आजाता है और ठीक पश्चिमको तरफ चलते २ भी, तथा हिंदुस्थान चीन जापानसे ठीक पूर्वकी तरफ जाकर नित्यही जहाज अमरीका देशमें पहुंचते रहते है और इसही प्रकार हिंदुस्थान और

चीन जापानसे ठीक पश्चिम की तरफ जाकार नित्य इंग्लेंड पहुंचते हैं और इग्लेंडसे पश्चिमकी तरफ जाते २ नित्य अमरीका पहुचते रहते हैं इसलिये जहाजों की इस आवाजाई के आधार पृथ्वी की परिधि ७५००० मीलकेही अनुमान है।

परंतु हमारो समझमें यहवात ठीक रूपसे नहीं जचती क्योंकि अमेरिका जानेके जो भी मार्ग हैं वे टेडापन लिये जान पड़ते हैं। हमने देखा है रेल गाड़ीमें उत्तर तरफ मुहकरके बैठा जाता है पर चलते चलते मुह पूर्व दिशाकी ओर होजाता है क्योंकि रेलगाड़ीका जो वैसा मार्ग है वह टेड़ापन लिये निकालागया है इसलिये जहाज के मार्गके आधार हिंदुस्थानको परिधि उपर्युक्त रूपसे नहिं मानी जासकी। हां! हवाई जहाज आदिसे हिंदुस्थानसे ठीक सीधा पूर्वको ओर अथवा एकदम सीधा पश्चिम की ओर उड़ा जाय तबभी अमेरिका ही आवें तब ठीक परीक्षा हो सक्ती है।

दूसरे अमेरिका पृथ्वीके अंत भागमें नहिं है जिससे हिंदुस्थानसे पूर्वकी ओर वा पश्चिमकी ओर चलनेसे अमेरिकाके आजानेसे यह समझ लिया जाय कि पृथ्वीकी परिधि ७५००० मीलकी है किंतु वह भी एक ऐसी जगहपर है और उसमें पहुचने के मार्ग भी वैसे पड़गये हैं जिससे हिंदुस्थानसे ठीक पूर्व वा पश्चिम की ओर चलनेसे अमेरिका आजाती है।

तिसपर भी पाश्चात्य विद्वानोका यह सिद्धांत है कि जिसप्रकार पूर्व और पश्चिम भागोंमें आवागमन होता है उसप्रकार दक्षिण उत्तरमें नहीं क्योंक वहां अत्यंत वर्फके कारण आगें जाया नहीं जासक्ता इससे स्पष्टरूपसे समझमे आजाता है कि पृथ्वोकी परिधि ७५००० मील की नहिं वन सक्ती किंतु वर्फके आगें भी पृथ्वी होने से उसकी परिधि वड़ी ही होसक्ती है।

हिंदुस्थानसे पूर्वकी ओर चलते २ भी और पश्चिमकी ओर चलते २ भी अमेरिका आजाती है इस आधारसे जो पाश्चात्य विद्वानोंने पृथ्वीको नारंगीके आकार गोल माना है वह भी ठीक नहिं जंचता क्योंकि हम पहिले कह चुके है कि पूर्व पश्चिम दोनों दिशाओंसे गमन करनेसे जो अमेरिका आजाती है वह मार्गका दोष है। दूसरे उत्तर ध्रुव और दक्षिणध्रुवमें जो वरफ मानी गई है उससे आगे पृथ्वी तो अवश्य ही है इसलिये वह नरंगीके समान गोल नहि होसक्ती किंतु उसका कोई दूसरा ही आकार सिद्ध होगा और वह कैसा होगा? जब ऐसा नहीं कहाजासक्ता तब आर्ष सिद्धांतमे जो उसका आकार वतलाया है वही माननेमें कोई दोष नहीं माना जा सक्ता।

जैन सिद्धांतमें जो यह बात लिखी है कि पृथ्वीके दूसरे तलपर कोई देश नहि है। सब ऊपरके तलपर ही है। उसे बहुतसे महाशय मिथ्या इसलिये वतलाते हैं कि उन्होंने यह समझ लिया है कि अमेरिका देश जमोनके भीतर दूसरे तलेपर है। पर हमें उन महाशयोंके इस सिद्धांतपर विश्वास नहि होता, कारण समुद्र आदिके बीच बीचमें पड़ जानेके कारण पृथ्वीमें निचाई उचाई होनेसे अमेरिका देश पृथ्वीके कुछ नीचे भागपर है दूसरे तलेपर नहीं। यह वात हर एक विद्वान मान सकता है कि कोई कोई भाग पृथ्वीका वहुत ही ऊंचा हो जाता है और दूसरा भाग बहुत ही नीचा होजाता है। इस समय बहुतसे स्थान ऐसे देखनेमें आते हैं कि उनकी पचासो गज निचाई पर खोद करने पर इमारते निकली हैं और अद्भुत चीजोंकी प्राप्ति हुई हैं। यहांपर यह शंका हो सक्ती है कि अमेरिका देशमें भी इमारतें निकलनी चाहिये थी मनुष्य कैसे रह सके हैं इसलिये वह पृथ्वीके दूसरे तलेपर मा-

मना पड़ेगा ? परंतु इस शंकाका समाधान यों हो जाता है कि बीचमें जलके विशाल दरियावोंके कारण अमेरिका देश नीचा रह गया और इधरका प्रदेश ऊंचा होगया क्योंकि जिस प्रकार पृथ्वीमें संकोच विकास शक्ति युक्तियुक्त है उस प्रकार यह भी शक्ति उसमें अवश्य माननी होगी कि कहींपर वह बहुत ही ऊंचे रूपमें है और कहीं पर बहुत ही नीचे रूपमें है। अस्तु भूगोल मीमांसा अनुमान गम्य है प्रत्यक्ष गम्य नही अन्यथा परमाणु आदिक पदार्थ जो नेत्रोंके गोचर हो ही नहीं सकते सर्वथा माने ही नहीं जा सकेंगे।

परंतु हां! जबतक भूगोल पर प्रधानतासे विचार नहि किया जायगा तब तक सत्यबातका भी किसीको विश्वास नहि हो सक्ता। सोना यद्यपि सोना है पर जब तक उसकी छान बीन नहीं होती तबतक उसकी भी असलियतका किसीको ज्ञान नहि होता। जैन समाजके मौलिक अनुभवी विद्वान श्रीमान् पं० प्यारेलालजी अलीगढ पं० छज्जूमलजी अलीगढ पं० रघुनाथदासजी रईस व जमींदार सरनऊ जिन्होंने असली भूगोलके छान बीन करनेके लिये अपना अनुपम उत्साह दिखाया है उनसे यह विशेष रूपसे प्रार्थना है कि वे जल्दी अकाट्य युक्तियोंके साथ इस विषयका निर्णय कर डालें कि आर्ष भूगोल ही निर्दोष है। हमें यह विश्वास है कि उनके इस प्रयत्नसे जनताका बड़ा लाभ होगा और इस समयके लिये एक नवीन बात का हितंकर उद्धार समझा जायगा।

विशेष बात।

वकील साहबने लिखा है कि पाश्चात्य विद्वानोंने जो लंबाई चौडाई पृथ्वीकी निश्चित की है उसका नकशा आसानीसे बन सक्ता है क्योंकि उन्होंने विशेष लंबाई चौडाई लिये पृथ्वीका परिमाण नहि बतलाया। परंतु आर्ष सिद्धांतमें जो पृथ्वीका परिमाण बतलाया है वह अत्यंत विस्तृत है उसका नकशा कभी बन ही नहिं सक्ता यहांतक कि प्रत्येक द्वीप समुद्रके समझानेके लिये अत्यंत छोटी विंदु भी रक्खी जावे तो भी वह नकशा इतना बड़ा तयार होगा जितना कि पाश्चात्य विद्वानोंने पृथ्वीका विस्तार माना है। सार यह है कि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निश्चित भूगोल सत्य है और आर्ष भूगोल असत्य है ऐसा वकील साहबका हृदय जान पड़ता है।

परंतु वकील साहबसे हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि कोई चीज बहुत भारी है और कोई मनुष्य उसे उठा नहि सक्ता तब क्या उस चीजका भारीपन नष्ट हो जायगा ? यह तो ऐसी बात होगई कि वृक्षपर पके हुए अंगूरोंके गुच्छेको देखकर एक लोमड़ीने हर चंद कोशिश की मैं इन्हें खाऊं पर जब वह उनके पास न पहुंच सकी तब वह कहने लगी कि अंगूर खट्टे हैं खाने के अयोग्य हैं पर क्या उस लोमड़ीके कहनेसे अंगूर खट्टे कहे जासकते हैं ?

महानुभाव! जिस प्रकार जिस पदार्थकी सिद्धि अनुमानसे की जाती है वहांपर समझानेके लिये दृष्टांतकी आवश्यकता मानी है बिना दृष्टांतके हरएक व्यक्तिको उस पदार्थकी सिद्धि निशंक रूपसे नहिं हो सक्ती तथा जो वह दृष्टांत दिया जाता है दार्ष्टान्तके सब धर्म उसके अन्दर नहिं पाये जाते अन्यथा खुदका खुद ही दृष्टांत हो सकेगा अन्य नहीं। उसी प्रकार विस्तृत पदार्थोंको आसानीसे समझाने लिये नकशामें इशारे रहते हैं। विस्तृत पदार्थोंका उसमें स्वरूप नहिं रहता। तिसपर भी नकशामें मुख्य २ चीजोंका उल्लेख रहता है और चीजोंको अनुमानसे सम-

ग्र लिया जाता है। अथवा 'इत्यादि' यह शब्द लिखकर अन्य पदार्थोंका भान करा दिया जाता है। अच्छा! थोड़ो देरके लिये आप पाश्चात्य विद्वानों द्वारा मानी हुई भूगोलको ही सत्य समझें पर यह तो आप मानेहोंगे उस भूगोलके अन्दर भी शहर गांव घर वृक्ष बंबे नहर आदि असंख्य पदार्थ भरे हुए हैं। आप किसीसे तमाम दुनियाका नकशा बनवाइए, देखें वह कैसें सब पदार्थोंको नकशाके अन्दर भरेगा? याद रक्खें यहांपर हम भी आपके समान यह कह सक्ते है कि "यदि दुनियाका हर एक पदार्थ नकशामें छोटो बूंद रखकर भी समझाया जायगा तो वह नकशा पाश्चात्य विद्वानों द्वारा निश्चित भूगोलसे कुछ ही कम होगा" तथा फिर नकशाकी जरूरत ही क्या है? उनकी मानी हुई भूगोल ही नकशा हो जायगी।

कदाचित् यह कहा जाय कि अन्य चीजोंका उल्लेख व्यर्थ है मुख्य चीजोंका ही उल्लेख करना चाहिये और चीज मध्यमें पडनेसे समझ ली जायगी। तब उसका उत्तर यह है-कि आदिका द्वीप अन्तका स्वयं भूरमण समुद्र और कुछ बीचके द्वीप समुद्रोंका उल्लेख करनेसेही आर्ष भूगोलका भी नकशा बन सका हैं अन्य पदार्थ मध्यमें पड़नेसे स्वतः समझ लिये जा सक्ते हैं। आप निश्चय समझें नकशा इशारा मात्र है वहांपर यह व्याप्ति नहि हो सक्ती कि जो चीज नकशामें आजायगी वही सत्य और अन्य असत्य समझी जायगी। चर्म चक्षुओंपर ही भरोसा कर भूगोलको सत्य मानना अयोग्य है।

आपने लिखा है विद्वान लोग इस बातका निर्णय करें। इसका उत्तर यह है— कि आज कलके जितने गण्य विद्वान हैं पाश्चात्य और पौरस्त्य दोनों ढंगसे गुरु आम्नाय पूर्वक उन्हें किसी विद्यालयमें इस विद्या.का पाठ नहि पढाया गया। जिनने पढा है उनने इकतरफा दृष्टि देकर। और इकतरफा दृष्टि से कुछ काम नहीं हो सक्ता इसलिये जो पक्षपातरहित संस्कृत, इंग्लिश विद्या के जानकार हैं उन्हें तो धार्मिक श्रद्धा रखते हुये विज्ञान के ढंग से इसका निर्णय करना चाहिये। और जो ऐसा नहीं करसक्ते उन्हें भाषा ग्रन्थों के आधार पर ही दोनों तरफ को युक्तियों का मननपूर्वक संघर्षण करना चाहिये यही निर्णयका प्रधान अंग है यह नहीं कि मुखसे तो कहें कि निर्णय करना चाहिये और खंडन करें एकांत पक्ष को लेकर, आर्ष ग्रंथों को हृदय में सर्वथा मिथ्या समझकर।

इसके सिवा आप भी तो विद्वान हैं आपको भी सत्यमार्ग का अवलंबन कर भीतर घुस आधुनिक विज्ञानवेत्ताओंके समान ही आर्ष ग्रंथों को भी प्रमाण मान निर्णय कर दिखाना चाहिये। पं० प्यारेलाल जी आदिके लेख वा युक्तियां जो जैनगजट में प्रकाशित होते रहते हैं उन पर शंका प्रशंका कर प्रकाश डालना चाहिये। हमारी समझमें वकील साहब! जब तक आप सिर्फ अपनी अपनी ही राय पेश करते रहेंगे दूसरों के उत्तर व शंकाओं पर लक्ष्य न देंगे तब तक आपका और समाज का किसी का भी हित नहीं हो सक्ता

इससमय आपको अवकाश काफी है। दोनों भूगोलों के ग्रंथोंको आप शांतिपूर्वक देख सक्ते हैं। इसलिये अन्य सब कार्योंको छोड़कर यह कार्य अवश्य आपको उपर्युक्त रीतिसे अपने हाथमें लेना चाहिये। आप यह न समझें कि हम आफत डालते हैं, नहीं। अन्य विद्वानोंने भी इस बातके विचारनेके लिये प्रार्थना करते हैं। हम भी यथावकाश विचार करेंगे आशा है हमारी इस अत्यंत हितंकर प्रार्थनाको आप अवश्य अपनावेंगे और तथ्य कीर्तिका उपार्जन करेंगे।

संपादकीय वक्तव्य ।

अनुकरणीय दान ।

सिकंदर (अलीगढ़) निवासी फिरोजाबाद टाउन स्कूलके हेड मास्टर मुंशी वंशीधरजी के पद्मावती पारिषद्के ध्रौव्यफंडमें सवा पांचसौ और एत्माद पुरमें शाखा पाठशाला खोलनेकेलिये पांच हजारके करीब जायदादके दानका समाचार पाठक गण अन्यत्र पढ़ चुके हैं । मुंशीजीने यह समयोपयोगी दान कर समाजके ऊपर जो उपकार किया है उससे उनकी कीर्ति अमर होगई है । पद्मावती पुरवालोंमें वैसे तो मेला मंदिर आदि धार्मिक कार्य करने वाले बहुत से हैं परन्तु इस प्रकारका समयोपयोगी ज्ञान दान देनेवाली संस्थाका जन्मदाता कोई भी माईका लाल नहीं दृष्टि गोचर हुआ है । अल्प मासिक की नोकरी कर वर्षोंमें द्रव्य एकत्र करने वाले एक व्यक्तिके साढे पांच हजार रुपये साढे पांच करोड़के बराबर हैं और उनका उसने निरीह हो जो दान किया है उससे उनके धार्मिक भावोंका और आत्म संयमी पनेका पता लगता है । हम जातिके मुख उज्ज्वल करनेवाले इस वीरको और क्या कह कर धन्यवाद दें ? बस ! इतना कह देनाही बस समझते हैं कि—आपका यह मार्ग जातिके धनवानों को दृष्टि गोचर हो, उसपर चलकर वे अपना पराया कल्याण करें और चंचल लक्ष्मीका स्वरूप आप जैसा समझते हैं वे भी समझ निकलें । "

मोतियोंकी खानिमें मोती ही निकलता है ।

ऊपर जिस दानवीरका उल्लेख कर आये हैं उनही की एक-मात्र संतान श्रीमती धनवंती बाईने भी अपनी मृत्युके समय ५२१) रु. विद्यादानमें प्रदान किये हैं । वास्तवमें जैसे पिता होते हैं वैसी उनकी संतान भी हुआ करती हैं क्योंकि मोतीकी खानिमें मोतीही पैदा होते हैं ।

हमारी बहिनका उपर्युक्त दान स्त्री समाजके लिये बहुत ही अनुकरणीय है और जो लोग संतान न होनेसे गोद (दत्तक) लिया करते हैं उनकेलिये इन पिता पुत्री दोनोंकाही दृष्टांत हितदायक है ।

निंदनीय बात ।

अन्यत्र छपे हुवे कन्या विक्रयके और ७ वर्षकी लड़की पर अत्याचारके समाचारोंसे मालूम पड़ता है कि समाजमें लडकियोंकी कमीके कारण और दूजिया तीजिया भुक भोगी युवक तथा इन्द्रिय शिथिल बुड्ढोंकी विषय लालसा की प्रबलताके कारण अत्याचारोंकी सीमा बढ रही हैं । लोगोंको जैसा उपाय सूझता है उसीसे वे अपना मतलब गांठना चाहते हैं । यह उच्चकुल और पवित्र जैनधर्मके सर्वथा विरुद्ध है । समाजके मुखिया और हितचिंतकों का ध्यान हम इस ओर खीचते हैं और बार२ आग्रह पूर्वक कहते हैं कि पंचायतोंके दृढ तथा न्यायप्रिय करनेका वे बहुत ही शीघ्र उद्योग करें । यदि इस तरफ ध्यान न दिया जायगा तो यह एक तरह की रिवाज होजायगी और फिर इसका नाश करना असंभव हो जायगा ।

धन्यवाद ।

समाजके कुछ भाइयोंका ध्यान इस उपयोगी कार्य को तरफ भी गया है यह एक उन्नतिका चिह्न है। नीचे लिखे महाशयोंने विवाह मंगलके समय जो दान दिया है उसके लिये उन्हें हम धन्यवाद देते हैं और अन्य भाइयोंसे भी इनके अनुकरण करनेको प्रार्थना करते है—

सुजालपुर निवासी बाबल रामजी उपदेशक माल वा प्रांतिकपद्मावतीपुरवाल सभा सोंहोरके विवाह मङ्गल में ७) रु०

लाला नाथूरामजी वसंदराने पुत्रके विवाहमें ५) रु

मैनेजर

पद्मावती पुरवाल

आवश्यकता ।

एत्मादपुरमें वहां के जैन पंचो और वंशीधरजी हेड माष्टर फिरोजाबाद टाउनस्कूलकी विशेष प्रेरणा और सहायतासे एक वंशाधर जैन पाठशाला खुली है। उसके लिये योग्य धर्मशास्त्रके ज्ञाता पण्डित की जरूरत है। पंडितजी मुनोमी वहो खातेका काम भी जानते हों। नीचे लिखे पतेपर पत्रव्यवहार कीजिये।

लालाराम पन्नालाल जैन बजाज—

एत्मादपुर (आगरा)

जरूरत है।

कलकत्तावासी शेठ चैनसुखदास गंभीरमल जीकी सहायतासे भिंड (ग्वालियर) मे एक जैन पाठशाला स्थापित हुई है उसके लिये एक धर्म शास्त्रज्ञ जैन पंडितकी आवश्यकता है पत्र व्यवहार नीचे लिखे पते पर करना चाहिये।

रामस्वरूप जैन,

जैन पुस्तकालय, परेट

भिंड (ग्वालियर)

Regd No. C. 888

श्रीलाल जैनके प्रबंधसे जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,

८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार कलकत्तामें छपा।

पद्मावती परिषद्का सचित्र मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा चित्रोंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

विषय सूची।

रा २वर्ष. | पोष्टेज सहित वार्षिक मूल्य २) रु० | एक अंकका मूल्य ≥) आना। | ४ था अंक.

पद्मावती पुरवालके नियम।

१ यह पत्र हर महीने प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य ग्राहकोंसे २) रु० पेशगी लिया जाता है।

२ इस पत्रमें राजविरुद्ध और धर्मविरुद्ध लेखोंको स्थान नहिं दिया जाता।

३ इस पत्रके जीवनका उद्देश्य जैन समाजमें पैदा हुई कुरीतियोंका निवारण कर सर्वज्ञप्रणीत धर्मका प्रचार करना है।

४ विज्ञापन छपाने और बटराईके नियम निम्नलिखित पतेसे पत्र द्वारा तय करना चाहिये।

श्री "पद्मावतीपुरवाल" जैन कार्यालय

नं० ८ महेन्द्रबोस लेन, श्यामबाजार, कलकत्ता।

संरक्षक, पोषक और सहायक।

२५) ला० शिखरचंद्र वासुदेवजी रईस, टूंडला।
२५) पं० मनोहरलालजी मालिक—जैनग्रंथ उद्धारक कार्यालय, बंबई।
२५) पं० लालारामजी मक्खनलालजी न्यायालंकार चावली।
२५) पं० रामप्रसादजी गजाधरलालजी (संपादक) कलकत्ता।
२५) पं० मक्खनलालजी श्रीलाल (प्रकाशक) कलकत्ता।
२५) सेठ रामाराव बकारामजी गोडे, वर्धा।
१२) पं० फुलजारीलालजी धर्माध्यापक जैन हाईस्कूल, पानीपत
१२) पं० अमोलकचंद्रजी प्रबंधकर्ता जैनमहाविद्यालय, इंदौर।
१२) पं० सोनपालजी जैन पानीगांव वाले, पाढम।
१२) पं० वंशीधर खूबचंद्रजी मंत्री जैनसिद्धांतविद्यालय, मोरेना
१२) पं० शिवजीरामजी उपदेशक वरार मध्य प्रादेशिक दि० जैन सभा।
१२) पं० कुंजविहारीलालजी जैन जटौवा निवासी।
५) ला० धनपतिरायजी धन्यकुमार 'सिंह' (मनेजर) उत्तरपाडा।
५) पं० रघुनाथदासजी रईस, सरनौ (एटा)
५) ला० बाबूरामजी रईस वीरपुर।
५) ला० लालारामजी बंगालीदासजी पेपर मर्चेंट, धर्मपुरा-देहली।
५) ला० गिरनारीलालजी रईस, टेहरी (गढवाल)
५) सेठ बाजीराव देवचंद्र नाकाडे, भंडारा (वर्धा)

नोट—जिन महाशयोंने २५) रु० दिये हैं वे संरक्षक, जिनने १२) दिये हैं वे पोषक और जिनने ५) दिये हैं वे सहायक हैं। इन महानुभावोंने पिछली सालका घटा पूराकर इस पत्रको स्थिर रक्खा है। आशा है इससाल भी ये कृपा दिखलावेंगे। पत्रका आकार आदि बदल जानेसे अबकी बहुत घटा पडेगा पर हमारे अन्य २ भाई भी ऊपरके तीन पदोंमेंसे किसी एक पदको स्वीकार करलेनेकी कृपा दिखलावेंगे तो आशा है अवश्य हम सफल प्रयत्न होंगे।

पद्मावतीपरिषद्‌का मासिक मुखपत्र।

पद्मावतीपुरवाल

"जिसने की न जाति निज उन्नत उस नरका जीवन निस्सार"

२ रा वर्ष } कलकत्ता, आषाढ़ वीर निर्वाण सं० २४४५ सन १९१९, { ४ था अंक

उचित वक्तव्य।

किया परिश्रम जिसने डटकर समझलिया कुछ तत्त्व अतत्त्व।
कहसक्ता उसके बारेमें वही अन्यको नहिं कुछ सत्त्व॥
उसहीके पथ पर चलनेसे होवेगा कल्याण महान।
वावदूक अज्ञानीके वश खो बैठोगे आतमज्ञान॥
चटकीली बातोंको सुनकर अरु भोगोंमें कर अनुराग।
स्वपरहितैषी सूरिवरोंकी सुनो मती निंदाका भाग॥
सोचो समझो और विचारो धरो चपलता जरा नहीं।
सहसा कीया कार्य मित्रवर होता ठीक न कभी वहीं॥

विवाह किसलिये करना चाहिये।

(लेखक-पं० मुन्नालाल काव्यतीर्थ मालथौन)

आदि पुराणमें गर्भावस्थासे लेकर विवाह पर्यन्त मनुष्यके १७ संस्कार बतलाये गये हैं। जिस समय हमारे यहां इन संस्कारोंका शास्त्रानुकूल प्रचार था उस समय हमारी संतान धार्मिक, शिष्ट और पुष्ट होती थी परंतु जबसे हमारे अन्दर धर्म प्रचारकोंका अभाव हुआ तब होसे ये संस्कार धीरे २ बिलकुल उठ गये यहां तक कि इनके जानकार बिलकुल नहीं रहे, जिससे हमारी धर्म क्रियाओंका बिलकुल अभाव होता चला जाता है। अजैन लोग जैनियोंको नास्तिक बतलाते समय इस बातको कहा करते हैं कि यदि जैनी आस्तिक होते तौ उनके यहां कोई न कोई संस्कार जरूर देखनेमें आते, इत्यादि। इसलिये इन संस्कारोंका प्रचार होना बहुत जरूरी है उन १७ संस्कारोंमेंसे विवाह संस्कार १७ वां है बाकी १६ संस्कार कौन २ हैं? और वे किस समय किस प्रकार करना चाहिये? इसके लिये हम फिर कभी लिखेंगे। अब विवाह किसको कहते हैं और वह किसलिये करना चाहिये? इस बात पर विचार किया जाता है-

जिसमें देवगुरु शास्त्रादिके साक्षी पित्रादिके द्वारा पुरुषको कन्या प्रदान की जाय उस कर्मको विवाह कहते हैं। यह विवाह शास्त्रोंमें पुरुषोंको एक उपयोगी और अत्यंत आवश्यकीय संस्कार बतलाया गया है। इस संस्कारसे संस्कृत होने पर ही पूर्ण पुरुष कहलाता है क्योंकि "यावज्जायां न विन्देत तावदर्धो भवेत्पुमान्—अर्थात् जब तक पुरुष स्त्रीको प्राप्त नहीं करलेता है तब तक वह अर्धपुरुष कहलाता है ऐसा नीतिका वाक्य है। गृहस्थावस्थामें धर्म अर्थ तथा कामरूपी तीनों पुरुषार्थोंको बराबर२ पालन करना तथा गृहस्थ धर्मकी रक्षार्थ योग्य संतान उत्पन्न करना ये दोही विवाहके मुख्य उद्देश्य हैं इन्हींकी सिद्धिके लिये विवाह किया जाता है।

विवाह होनेपर भिन्न २ दो व्यक्तियोंमें दंपती भाव रूप एक ऐसा संबंध उत्पन्न होता है जोकि अटल है और जिसका उन दोनोंको चाहे दुःखावस्था हो चाहे सुखावस्था हो यावज्जीवन निर्वाह करना पडता है। गुरु शिष्यत्व, अधिकारी किंकरत्वादि बहुतसे ऐसे संबंध हैं जो कोई निमित्त पाकर कालान्तरमें छिन्न भिन्न हो जाते हैं यहां तक कि ये संबंध कभी २ विरुद्ध भी हो जाते हैं अर्थात् जो व्यक्ति कभी किसीका शिष्य था वही कभी गुरु बन बैठता है जो नौकर था शुभ कर्मोंके निमित्तसे वही मालिक बन बैठता है। परन्तु यह पति पत्नी संबंध उनके समान नहीं है इस संबंधमें जो पति है वह यावज्जीवन पति ही रहेगा। जो पत्नी है वह यावज्जीवन पत्नी ही रहेगी। और दोनोंको एक साथ अपने २ धर्मका पालन करना पड़ता है, पतिका कर्तव्य है कि वह उसी धर्म नियमसे अपनाई गई निज स्त्रीमें ही संतोष धारण कर अन्य स्त्रियोंको यथायोग्य माता बहिन और पुत्रीके समान समझे और अपनी शक्तिके मुआफिक भोजन वस्त्र तथा जेवरादि इच्छा पूर्ण करने वाले पदार्थोंके द्वारा उसकी इच्छा पूर्ण करे-क्योंकि किसी ग्रंथकारका कहना है कि—

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
असहायस्य लोकेऽस्मिन् लोकयात्रासहायिनी ॥१॥

अर्थात्—स्त्री पुरुषका आधा अंग है; स्त्री पुरुष का सर्वोत्कृष्ट मित्र है और स्त्री माता पितादि कुटुंबी जनोंसे रहित पुरुषको भी गृहस्थ जोवन वितानेके लिये सहायता करने वाली है, इत्यादि गुणोंको हृदयमें धारण करके उसके साथ शांति पूर्वक प्रवर्ते, और गृह संबंधी संपूर्ण कामोंमें उससे संमति लेता रहे। पत्नीका यह धर्म है कि पतिकी आज्ञाका पालन करे, उसके अनुसार संपूर्ण कामोंको करे-उसके द्वारा दिये गये वस्त्र भोजन भूषादिमें संतोष धारण करे, पातिव्रत्य धर्मका मन वचन कायसे पालन करे अर्थात् स्वप्नमें भी परपुरुषका संयोग न चाहे, हमेशह पतिको प्रसन्न रक्खे इत्यादि। परंतु ऊपर कहे गये धर्मोंका पालन दंपती शुद्ध अन्तःकरणसे तभी कर सके हैं जब दोनोंकी प्रकृतिकी समानता रहते हुए मन मिल जावे क्योंकि पति पत्नीमें स्वभावोंकी समानताका होना ही प्रकृतिका मिलाना है समझ लीजिये कि पति विद्वान है पत्नी मूर्खा है। पति बालक अथवा वृद्ध है और स्त्री तरुणी है। पति उदार चित्त है और स्त्री कृपण है पति विषय विरक्त है और पत्नी अनुरक्ता है तो वहां पर दोनोंकी प्रकृतिका बड़ा भारी भेद है और यदि दोनोंही विद्वान्, उदार और एकसी अवस्थाके है तो समझना चाहिये कि इनमें प्रकृति भेद कदापि नहीं है। यदि पति पत्नीकी प्रकृति में किसी भी कारणसे असमानता है तो वहां पर अमृतके साथ विषका समागम समझना चाहिये, क्योंकि जहां स्वभावोंकी असमता है वहां पति पत्नीको अपने धर्मका पूर्ण पालन करना कष्ट साध्य है इसके अतिरिक्त स्त्री पुरुषोंमें परस्परमें कलहका होना व्यभिचार फैलना, घरमें फूट होना इत्यादि जितने अनर्थों का समुदाय है वह सब इसी स्वभाव भेद रूप विष वृक्षके कटुक और गंधे फल हैं, धन्य हैं वे पुरुष जो इस प्रकारके प्रकृतिभेद रहते हुए भी अपने कर्तव्यसे विचल नहीं होते। परन्तु जैसे ओदनादिकके लोभी होकर जालमें फसने वाले पक्षी अपने भविष्य दुःखका विचार न करके अन्धाधुंद उसमें फँस जाते हैं उसी प्रकार मनुष्य विवाहकी बातचीत सुनकर अपने अङ्गोंमें उत्कंठासे फूला नहीं समाता और उसके फलका कुछ विचार नहीं करता, इसीसे बहुत विषयान्ध पुरुष काम सेवनकोही विवाहका फल समझकर शीघ्र जिस किसी कन्याके साथ चाहे योग्य हो या अयोग्य हो विवाह कर डालते हो परंतु विना विचारे जो विवाह किये जाते है उनका फल यह होता है कि दुष्टा स्त्रीके संबंध से कालान्तरमें बहुतसे कष्टोंका सामना करना पड़ता है और उनमेंसे कितने ही पुरुषोंकी तो ये हालत होती है और रोना पड़ता है कि स्त्रीके दुर्गुणोंसे मनही मनमें रंज करके मर जाते है ऐसे पुरुषोंकी भयंकर दशा देखकरही किसी विद्वानने कहा है कि—

> क्रियते निर्वृतेर्हेतोर्जाया सा यदि निर्गुणा।
> तदायःशूलिकाप्रोतं नरं मन्यामहे वयं॥

अर्थात्—जिस पुरुषके-पति सेवा करना संतान पोषण करना, गृहकार्य करना आदिक गुणोंसे रहित दुष्टा स्त्री है उस पुरुषकी अपेक्षा हम उस मनुष्यको अच्छा समझते हैं जो कि लोहकी शूलीमें फँसा हुआ है। और जो अविचारी पुरुष हैं उन्हीं पर यह तुलशी दासजीका वाक्य चरितार्थ होता है कि—

> हाले फूले हम फिरे होत हमारो व्याव।
> तुलसी गाय बजायके देत काठमें पाव॥

जिस प्रकार अयोग्य स्त्रीके मिलने पर पुरुषको कष्ट उठाने पड़ते हैं एवं अयोग्य पुरुषके मिलने पर स्त्री को दुःख उठाने पड़ते हैं क्योंकि पुरुषोंके समान स्त्रियोंको भी अपने भले बुरेका ज्ञान होता है इसके

सिवा अयोग्य स्त्रीके बुरे वर्तावसे दुःखित होकर पुरुष दूसरा विवाह भी कर लेता है परंतु अवला स्त्री धर्म विरुद्ध ऐसा काम कभी नहीं कर सक्ती है। गुण और रूपसे उत्तमसे उत्तम स्त्रीको यदि उसके अशुभ कर्मोंके उदयसे नीचसे नीच भी पति मिल जावे तौ भी वह विचारी जीवन पर्यन्त उसीकी सेवा करना अपना परम धर्म समझती है और जिस तरह वह रखता है उसी तरह रहती है ऐसी स्त्रियोंसे दुःखित होकर ही किसी विद्वानने कहा है कि—"स्त्री को जीवन भरमें एक ही तो पति मिले और वह भी यदि निर्गुण हो तौ वह विचारी सुखको कभी प्राप्त नहीं कर सक्ती है उसकी वही दशा है जो कि जेलखानेके कैदीकी होती है" इस कहनेसे हमारे विज्ञ पाठकोंको यह बात अच्छी तरह विदित होगई होगी कि विवाह कार्य मनुष्य जीवनमें बड़े भारी विचारके साथ करने योग्य कार्य है और इसी कार्यकी विचार पूर्वक सिद्धि होने पर इस दुःख मय संसारमें दंपतीको कुछ सुख का अंश प्राप्त हो सक्ता है। अन्यथा सिवा दुःखके कोई ठिकाना नहीं है।

अब यहांपर इतना वतला देना और भी योग्य ज्ञात पड़ता है कि विवाहके विषयमें शास्त्रका क्या उपदेश है, तथा हमारे पूर्वज किस तरह विवाह करते थे और वर्तमानमें हमारे देशमें उच्च जातियोंमें किस तरह विवाह होते हैं इत्यादि—

पुराणोंके वांचनेसे विदित होता है कि प्रथम तौ कन्याके जन्म लेते ही हमारे पूर्वजोंको उसके लिये योग्य वर ढूढनेकी चिंता लग जाती थी उस चिंताको दूर करनेके लिये वे निमित्तज्ञानी मुनियोंके पास जाकर उनसे उसके भावि पति होने योग्य पुरुषको पूछा करते थे और दूसरे योग्य वर ढूढने रूप महा कार्यको स्वयं किया करते थे। तीसरे वे उसी योग्य जाति कुल धर्म और अवस्था वाले पुरुषके हाथ बड़ी कठिनाईयोंके साथ पाली हुई कन्याको देते थे जो कि सज्जन, धर्मात्मा, निरोगी और कार्यकुशल होते थे। चौथे वे—

"अज्ञानपतिमर्यादामज्ञातपतिसेवनां।
नोद्वहेत्पिता कन्यामज्ञातधर्मशासनां॥

अर्थात्—जिसने पतिकी मर्यादाको, पति सेवाकी विधिको और धर्म शास्त्रोंके उपदेशोंको पूर्ण रीतिसे जाना हो ऐसी कन्याका उसका पिता विवाह न करै। इस पवित्र उपदेशकी तरफ ध्यान देकर कन्याका उसी अवस्थामें विवाह करते थे जिस अवस्थामें कि वह विवाहके उद्देश्योंसे परिचित होकर स्वयं पतिका संयोग होनेकी इच्छा करती थी।

इससे यह शिक्षा जरूर मिलती है कि पहिले जमानेमें स्त्री शिक्षाका पूर्ण प्रचार था, जिससे गृहस्थ धर्मका पूर्ण रीतिसे पालन होता था जब स्त्री शिक्षिता होती थी उस समय उनका असर उनकी सन्तान पर अच्छा पडता था। आधुनिक कालके सदृश उस समय व्यभिचारादिक कर्मोंकी प्रवृत्ति नहीं थी। पांचवें वे जिस पुरुषको अपनी कन्याका पति वनाना चाहते थे उस पुरुषके विषयमें जिस किसी प्रकारसे कन्याका अभिप्राय जान लेते थे। यदि कन्याकी तरफसे उस पुरुषके विषयमें अप्रसन्नता मालूम होती थी तो वे कदापि उसके साथ विवाह नहीं करते थे, क्योंकि वे पतिके चुनावमें अपनेसे भी अधिक कन्याका अधिकार समझते थे। और इसीलिये कितनेही विचार शील पुरुष तो स्वयंवर मंडपमें दूर २ से वर होने योग्य पुरुषोंको एकत्र करके पति निश्चित करनेका पूर्ण अधिकार अपनी कन्याकोही देदेते थे। जिसके कंठमें वह वरमाला डालती थी उसीके साथ वे उस कन्याका

विवाह कर देते थे। इसी प्रकार पुत्रका पिता भी "जैसे सारथी रथकी धुराको बैलके कंधे पर धरकर अलग हो जाता है और वह धुरा बैलकोही खैंचनी पड़ती है उसीप्रकार पुत्रके माता पिता किसी कन्या के साथ पुत्रका विवाह करके दूर बैठजाते थे। उस स्त्री का निर्वाह उस पुत्रकोही करना पड़ता था" इस पवित्र शास्त्रोपदेशको हृदयमें धारण कर जब पुत्र जवान हो जाता था तभी उसकी इच्छाके अनुसार उसका पिता किसी योग्य कन्याके साथ विवाह करता था। परन्तु वर्तमानमें इस पद्धतिका बिलकुल लोप होगया आज कलके धनाढ्य महाशय तो १२ वर्षकी कन्या और १६ वर्षकी लड़केकी अवस्था होजाना और इतने में विवाह करना अपनी बेइज्जती समझते है और जो गरीब हैं वे बेचारे अपनी कन्याको गाय बैलकी बछिया से किसीतरह कम नहीं समझते उनके विचार होते है कि जिसप्रकार गायके जिस देशमें बेचो उसी देश में अपना निर्वाह करती है एवं हमारी लड़कीका भाग्य जहांका होगा वहीं जायगी इस उद्देश्यसे थैलिये की थैलियें रुपयेंको खलियेंमें भरवा लेते और बूढ़ बाबाके गले बांध देते हैं फल उसका यह होता कि लड़कीके द्वारा तो कुल और जाति कलंकित होती है और बूढ़े बाबाको पश्चातवनी पुरवारके दूसरे वर्षके दूसरे अंकके "बूढ़ेका पछताव" शीर्षकके सदृश पछताना पड़ता है। क्योंकि जिस समय बूढ़े बाबा अपना विवाह रचाते हैं उनकी अभिलाषा अपना नाम चलाने की रहती है. उनमें उठांकी शक्ति भले ही मत होओ उसकी उनका कुछ परवा नहीं परंतु परापेक्षी होकर अपना उद्देश्य पूर्ण कर बैठते हैं। और कन्या पक्ष वाले वरके विषय में योग्य अयोग्यका कुछ ख्याल न करके रुपयोंका ख्याल करते हैं और ऊंटके गले बकरी बांध देते हैं ऐसी अवस्थामें कहां तक वे कुली न रहेंगे इसका पाठक स्वयं विचार करलें। रही बाल विवाहको लीला सो यह तो भारतमें बहुत ही अधिक बढ़ गई है क्योंकि जिस समय लड़का पैदा होता है उसी समयसे लेकर उसके माता पिताको यह उत्कंठा अधिक सताती है कि कब हो कि घरमें वहू देखें इसी विचारमें उनको बड़ी मुश्किलसे ८—१० वर्ष बितानी पड़ती हैं कि इसके बादही ५—६ वर्षकी लड़की उनके घर वहू बनकर लड़केके प्रान लेनेको आजाती है। आप जानते है लड़केका वीर्य २० वर्षकी अवस्थासे पहिले परिपक्व नहीं होता और १५ वर्षकी अवस्थासे पहिले स्त्री की शक्ति परिपक्व नहीं होती ऐसी अवस्था के संसर्गसे जो संतान उत्पन्न होती है वह बलिष्ठ नीरोग और बुद्धिमान होती है उससे कुलकी मर्यादा स्थिर रहती है परंतु हमारे वैरी माता पिता ऐसा होने नहीं देते और वे १० वर्षके लड़के और ६ या ८ वर्षकी लड़की का संसर्ग कराकर सन्तानकी इच्छासे उनकी कच्ची शक्तिका क्षीण कर देते हैं जिसका फल यह होता है कि थोड़ेही दिनोंमें या तो दोनों कालके गालमें ग्रास होजायंगे या लड़की रांड़ होजायगी या लड़का रडुआ हो तो जन्म भर नाई द्वारा कमर पर तेलकी मालिश होती है। मतलब यह है कि बालविवाह वृद्धविवाह दोनों विवाह गंधे हैं। और जबसे भारतमें इन प्रथाओंको स्थान मिला तभीसे भारतकी उच्च जातियां धूलमें मिल गई। इसका प्रभाव है कि हमारे यहां घर २ फूट. कलहकी प्रवृत्ति और व्यभिचारकी प्रवृद्धि होगई है और कुल कलंकित हो रहे हैं इसलिये जो हितैषी पुरुष है उनको विवाहके मुख्य उद्देश्यको सफल करनेके लिये अपने पूर्वजोंकी विवाह प्रणालीका पूर्ण रीतिसे पालन करना चाहिये और वर्तमानमें जो विवाह की हानिकारक

प्रथायें जारी होगई हैं उनको दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

विवाहका जो लक्षण ऊपर लिखा गया है वह लक्षण जब हो सक्ता है जब जैन विवाह पद्धतिके अनुसार विवाह हों। बड़ी खुसीकी बात है कि कई जगहके भाई जैन विवाह पद्धतिसे विवाह कराने लगे हैं परंतु अभी बुंदेल खंडमें कई मुखिया इसके विरोधमें हैं। उनका कहना है कि जो विवाह जैन पद्धतिसे होंगे उन विवाहोंको लड़कियां बेवा होजायंगी, परंतु धर्म विधि मंगल कारक है या मंगल बाधक इस विषयमें हम फिर कभी लिखेंगे—

सूरजभानी लीला ।

जैनधर्मके नामसे मिथ्यात्वसेवन नामक शीर्षकपर विचार।

सत्योदय अंक ३ वर्ष २ रेमें 'जैनधर्मके नामसे मिथ्यात्व सेवन' नामका एक नोट निकला है। स्वर्गीय पं० टोडरमलजीने मोक्षमार्गप्रकाशमें कुछ विपरीत रीतियोंका उल्लेख किया है जो कि उनके समयमें जारी थी और आज तक भी कायम हैं। उन्हीं पर बाबू सूरजभानजी वकोलने जोर दिया है। परंतु पं० टोडर मलजीका लेख इस बातको बतलाता है कि वे रीतियां अयुक्त नहीं किंतु लोगोंने अज्ञानतावश जो कुछ का कुछ समझ लिया है वह अयुक्त है। लेकिन वकील साहबके लेखसे यह अभिप्राय नहिं निकलता उनका अभिप्राय तो यही है कि ये रीतियां ही सर्वथा अयुक्त है क्योंकि वस्तुस्वभाव रूप जो धर्म है उसके विरुद्ध है।

पूज्यवर पं० टोडरमलजीने लिखा है कि-जैन धर्म वीतरागरूप धर्म है इसमें सिवाय वीतरागके अन्य क्षेत्रपाल पद्मावती आदि सरागी देवोंकी पूजा न होनी चाहिये परंतु देखने में आता है कि अज्ञानतासे लोग तीर्थंकर देवके ही समान उनकी पूजा करते हैं जोकि जैनधर्मसे सर्वथा विपरीत है, लेकिन उनके इस कथनका अभिप्राय यह है कि—चारो गतियोंमें देवगतिसे मनुष्यगति श्रेष्ट है। क्योंकि देवगतिमें चौथे गुणस्थानसे उपर गुणस्थान नहिं होता इसलिये वहां चारित्र नहिं पल-सकता लेकिन मनुष्यगतिमें चौदह गुणस्थान होते हैं इसलिये लोग तपसे समस्त कर्मोंका विप कर मोक्ष प्राप्त करलेते हैं। इसकारण क्षेत्रपाल आदिकमें कुछ वैक्रियिक शक्ति समझकर जो लोग उनको पूज्य और अपना हितकारी मानते हैं सर्वथा अयुक्त है। जो लोग यह समझते हैं कि क्षेत्र पाल आदिकी पूजा से धन मिल जायगा या पुत्र उत्पन्न हो जायगा किंवा बीमार पुत्र जी जायगा वह तो सर्वथा मिथ्या हैं क्योंकि धन आदिकी प्राप्ति पुण्याधीन है यदि पुण्य तेज नहीं तो चाहें कितनी भी उनकी पूजा की जाय धन पुत्र आदि नहिं मिल सकते तथा आयुको तो ये बढा ही नहि सक्ते क्योंकि आयु का बढाना अतुल शक्तिके धारक तीर्थंकरके भी हाथमें नहीं तब ये बिचारे क्या चीज हैं। दूसरे यदि ये आयुके बढाने वाले ही होते तो आयुके अन्तमें खुद क्यों मरते? और भोग विलासकी जगह देव पर्यायको क्यों छोड़ते? क्योंकि धनवान वा विद्वान हो दूसरेको विद्वान बना सक्ता है निधन किंवा मूर्ख नहीं। इसलिये जो लोग इनकी वीतराग देवके समान पूजा करते हैं सर्वथा विपरीत है। परंतु हां जिसप्रकार राजाके सेवकोंका उनके योग्य सत्कार किया जाता है, राजाके समान नहो। उसीप्रकार ये सम्यग्दृष्टी हैं भगवानके सेवक हैं

इसलिये इनके योग्य इनका सत्कार अवश्य होना चाहिये। भगवान के समान नहीं।

परंतु वकील साहबका पूज्यवर पं० टोडरमलजीके इस अभिप्राय से विरुद्ध अभिप्राय है। उनका लेख इस बात को जाहिर कर रहा है कि इनको जराभी सन्मान न देना चाहिये, क्योंकि उनका इस समय 'वस्तु स्वभावही धर्म है और उसे ही अपनाना चाहिये, व्यवहार धर्म सर्वथा झूठा है उसकी ओर जाना ही न चाहिये, इस एकांत पक्षने बुरीतरह जकड़ रक्खा है। परंतु उन्हें यह नहीं मालूम कि यह सिद्धांत भी एकांत मिथ्यात्व है। व्यवहार धर्मको विना अवलंबन कीयें निश्चय धर्मकी ओर लोग मुतु हो ही नहीं सकते। भला यह कहां का-न्याय है कि जमींदारका एक मामूली सिपाही आवे उसको हाथ जोड़ने और खुशामद करते २ तो हम मर जाय पर भगवानकी निरंतर सेवामें मग्न सम्यग्दृष्टी क्षेत्रपाल आदिको जरा भी न पूछें। हम समझते है शायद वकील साहब सिवाय सर्वज्ञ देवके किसीको मस्तक न झुकाते होंगे और न हाथ जोड़ते होंगे एवं न कभी वैसा किया भी होगा। कदाचित् यह कहा जाय कि व्यवहार में वैसा किया जाता है तब वहां भी यह कहा जायगा कि-व्यवहारमें ही वैसा किया जाता है किंतु जिस समय वस्तुस्वभावका समझना पूर्णरूपसे होजाय तब इसकी जरा भी आवश्यकता नहीं। अस्तु जो लोग आत्माकी शक्तिपर विश्वास न कर तुच्छ सांसारिक लालसासे प्रेरित हो क्षेत्रपाल आदिको भगवानके समान मान रहे हैं। वीतराग भगवानके ही समान उनकी पूजा करते हैं उन लोगों से हमारा नम्र निवेदन है कि वे वैसा कदापि न करें। वैसा करनेसे पाप बंध होता है। पाप बंध दुर्गतिका कारण है किंतु वे वीतरागको ही अपना हितैषी माने तथा व्यवहार और निश्चय दोनों धर्मोको अच्छी तरह समझ निश्चय धर्मको हो अपनावें।

इसीप्रकार स्वर्गीय पं० टोडर मलजीने भट्टारकोंके विषयमें लिखा है कि भट्टारक होनेकी प्रथा जारी तो धर्मकी रक्षाके लिये हुई थी परंतु लोगोंकी अज्ञानतासे वह अधर्म वर्धक होगई लोगोंने अज्ञानतावश भट्टारकोंको ही अपना कर्ता हर्ता समझ लिया और भट्टारक लोग मनमाना अत्याचार करने लगे परंतु उनके इस कथनका यह अभिप्राय है कि भट्टारककी प्रथा बुरी नहीं क्योंकि 'राजा भट्टारको देवः' इस कोषप्रमाणसे भट्टारक शब्द पूज्य अर्थका वाचक है। पहिले वे आत्म संयमी धर्मात्मा ब्रह्मतेजके धारक होते थे आचार्य वर अकलंकदेवको भी भट्टारकके नामसे पुकारा जाता है। वे कैसे विद्वान थे "प्रमाणमकलंकस्य" यह वचन उनका कितना गौरव प्रकट करता है; यह किसीसे छिपा नहीं है। भट्टारकोंने अपने पंडित्यसे धर्मकी कैसी रक्षाकी है यह भी प्रसिद्ध है। परंतु वर्तमानमें अयोग्य भट्टारक बनाये जाते हैं। संस्कृतका एक शुद्ध वाक्य भी उनके मुहसे निकलना अत्यंत कठिन हो जाता है। अधिक आदर सत्कार और सुखी रहने के कारण वे अत्याचारी होजाते है और अज्ञानतासे लोग उन्हींको ईश्वर मान उनका अत्याचार सहलेते हैं यह अयुक्त है। इसलिये इससमय भट्टारककी प्रथा अत्यंत हानिकारक है और जिस लाभके लिये उसका उत्थान हुआ था लोगोंकी अज्ञानतासे ठीक उसके विपरीत कार्य हो रहा है।

परंतु वकील साहबका यह सिद्धांत है कि भट्टारकको प्रथा ही व्यर्थ है भला जब धुरंधर आचार्य भगवज्जिनसेनाचार्यकी भी निंदा करनेमें हमारे वकील साहबका अचिंत्य साहस है तब वे भट्टारकोंको कब

अच्छा कहेंगे ? परंतु एकांतरूपसे 'वस्तुस्वभाव ही धर्म है' यह उनका सिद्धान उन्हें और उनके अनुयायियोंको ले डूबेगा। जब अंतरंगमें दिव्यज्ञान होजाय और उससे आंख बंद रखने पर भी सब पदार्थ यथावत् दीख निकलें तब तो आंख बंदकर चलने में कोई हानि नहीं यदि कोई दिव्य ज्ञान प्राप्त न कर सुना सुनी अपनी ही बुद्धिसे आंख मूंदकर चलेगा तो वह किसी चीजसे ठोकर खा अवश्य गिरेगा और दांत तोड़ लेगा। वकील साबव ? वस्तु स्वभाव रूप धर्मका ज्ञान होना आसानी नहीं। व्यवहार धर्ममें पूर्ण निष्णातता होने से ही उसका स्वरूपज्ञान हो सकता है और वह अमलमें लाया जासकता है। लोगोंमें उचित ज्ञानकी मात्रा नहीं यदि उनको वस्तु स्वभाव धर्मका उपदेश दिया जायगा तो वे पूजन प्रतिक्रमण आदि कार्योंको जलांजलि देदेंगे। विषय सेवन आदि को शरीरका कार्य बतला कर उसका खूब सेवन करेंगे। अंतमें वे ऐसे अगाध समुद्रकी तलीमें बैठ जायंगे कि उनका उभरना कठिनता से हो सकेगा इसलिये आप वस्तुस्वभाव रूप धर्मके स्वरूप बनिये और लोगोंको बतलाइये। डाटे रहें चश्मा कोट और पेंट, उड़ाते रहें स्वार पूड़ी और वस्तुस्वभावरूप धर्मका उपदेश दें यह सर्वथा असंभव है। अस्तु जो महाशय भट्टारकोंका अधिक सन्मान और उन्हें इतना उच्चपद देते हैं जिसपर भी उनके गुण अवगुणोंका ख्याल नहिं करते सो उनकी बड़ी भूल है उनको ऐसा कदापि न करना चाहिये। यदि वे अपने कमाए हुये धनका भट्टारकोंके बिना उपयोग न कर सकें तो उन्हें विद्वान सदाचारी अपना गुरु बनाना चाहिये किंतु ऐसे भट्टारको कभी गुरु न मानना चाहिये जो खुद डूबे सो तो ठीक ही है अनुयायियोंको भी ले डूबें।

इसीतरह पं० टोडरमलजीने भगवानकी पूजाके विषयमें लिखा है कि लोग वीतराग भगवानकी पूजा भी धन वा पुत्र आदि सांसारिक लालसाओंको हृदय में रखकर करते हैं जिससे सिवाय पाप बंधके और कुछभी नहीं होता, परंतु उनके इस कथनका यह तात्पर्य है कि पूजा करनी चाहिये परंतु सांसारिक तुच्छ लालसा पूर्वक नहीं। जो लोग वैसा करते हैं वे अज्ञानी हैं भला इससे भी बढ़कर अज्ञान क्या होगा कि जिसने संसारका कारण अभ्यंतर शत्रु राग तक छोड़ दिया उससे धन पुत्र आदिकी लालसा की जाय।

परंतु वकील साहबको पूजा करनेका भी विरोधी होना चाहिये क्योंकि यह भी तो व्यवहार धर्म है जोकि वस्तुस्वभावस्वरूप धर्मके विरुद्ध है। परंतु वकील साहब ? पूजा तप आदि बिना कीये शायद आप बेशक तर जाय हम तो न तर सकेंगे इसलिये हमारा तो यही मंतव्य है कि यथाविधि व्यवहार धर्मका पालन कर उसके द्वारा निश्चय धर्मकी ओर झुकना चाहिये नहीं तो ऐसा हो जायगा कि जो आदमी पहिली सीढ़ीपर पैर न रखकर एकदम ऊपरकी सीढ़ीपर रखता है वह वहां तक पहुंचता तो है नहीं उल्टा गिर शिर फोड़ लेता है उसी प्रकार बिना व्यवहारके अवलंबनके निश्चय धर्म तो प्राप्त नहिं हो सकता किंतु उससे पतित होना पड़ता है और फिर किसी कामका नहीं रहना पड़ता।

इसी प्रकार और भी जो विपरीत बातें पं० टोडरमलजीके समयमें थी और आजतक जारी हैं उनके वैसे होने में भी अज्ञानकी मात्रा कारण है। 'केवल वस्तु स्वभाव ही धर्म है व्यवहार धर्म कोई चीज ही नहीं' इस एकांत मिथ्यात्वका भी प्रधान अङ्ग अज्ञान ही है। इसलिये उपदेश ऐसा देना चाहिये कि पूजा प्रतिक्रमण आदिमें जो वैपरीत्य दीख पड़ता है वह बंद होजाय किंतु जिसमें पूजा आदिका एकदम बंद करदेनेका कथन हो वा वैसा कथन झलकता हो ऐसा उपदेश अत्यंत अनर्थका मूल कारण है।

पितरोंको पानी देना इस शीर्षकपर विचार।

कृष्णके मर जानेपर जिससमय जरत्कुमारने पांडवोंसे आकर उनको मृत्युका समाचार सुनाया उस समय सब लोग हाय हाय करने लगे। कृष्ण और पांडवोंमें अत्यंत घनिष्ठ संबंध था इसलिये कृष्णकी मृत्युसे उन्हें और उनके कुटुंबीजनोंको अत्यंत कष्ट हुआ। इस स्थलपर हरिवंश पुराणमें यह लिखा है कि-' जब रोना चिल्लाना बंद हुआ तो समस्त लौकिक रीतिके जाननेवाले युधिष्ठिर आदि बांधवोंने संस्थित मनुष्योंके संतोषकेलिये मृत कृष्णको जल समर्पण किया ' इसवात पर हमारे वकील साहबको गजब हुआ है बल्कि उन्होंने यहां तक लिख दिया है कि जैनधर्ममें यह अन्य धर्मकी बात कहांसे घुस गई ? लौकिक रीति और जैनधर्मसे क्या संबंध ? जैनधर्मके भक्त युधिष्ठिरके लिये तो यह बात सर्वथा विरुद्ध थी तथा जैन विद्वानोंकेलिये यह लिखा है कि वे हमें जैन धर्मानुकूल इसका उत्तर दें—

उत्तरमें निवेदन है कि-'मृत कृष्णको जल समर्पण किया ' इस बातको सुनकर जो आप चमक उठे हैं और अनेक उत्तर प्रत्युत्तर कर डाले हैं सो ठीक नहीं क्योंकि उसका अभिप्राय भिन्न है। शब्दपरही न जम जाना चाहिये अभिप्राय भी समझना चाहिये। शायद इस समय 'नहीं परंतु पहिले आपने कभी भगवानकी पूजन तो अवश्य की होगी। पूजनमें अष्ट द्रव्यके चढाते समय, जलं निर्वपामि—समर्पयामि, इत्यादि कहना पड़ता है। वहांपर भी यह शंका हो सकती है कि क्या भगवान भूखे प्यासे हैं जो उन्हें जल आदि समर्पण किया जाता है ? परंतु उसका शास्त्रोंमें यह उत्तर लिखा है कि भगवानसे उनका कोई संबंध नहीं किंतु पूजक यह समझकर कि मेरे संसार ताप की शांति वा क्षुधा रोगका विनाश आदि बातें होवें भगवानकेलिये जल आदि समर्पण करता है। ऐसा ही युधिष्ठिर आदि पांडवोंने किया था। वहां पर युधिष्ठिर आदिने जो जल समर्पण किया था उसका अभिप्राय भी यही था कि मृत कृष्णकी आत्माको शांति मिले, किन्तु यह अभिप्राय न था कि वह जल कृष्णके पास पहुंच जाय। क्योंकि जल शांति जनक द्रव्य है इसलिये अपनेलिये वा परके लिये शांति होवे इस कारण उसका समर्पण किया जाता है। यह तो मामूली मनुष्य भी जान सकता है कि यदि युधिष्ठिरका यह मंतव्य होता कि मृत कृष्णके पास जल पहुंच जायगा तो वे मृत कृष्णके लिये छूंछा जलही क्यों समर्पण करते। लाडू पेड़े कलाकंद आदि भी समर्पण करते कुछ कीमती रत्न भी समर्पण करते। खुद भी मोहकी तीव्रतासे कृष्णसे मिलना चाहते थे इसलिये उनके पास जानेकेलिये खुदभी समर्पित होजाते। उन्हें यह भी मालूम था कि कृष्णकी मौत से बलदेवको अत्यन्त कष्ट होगा इसलिये उन्हें भी समर्पित करदेते। विशेष कहा तक कहा जाय जो कुछ भी कृष्णके साथ संबंध रखने वाले पदार्थ थे युधिष्ठिर सबको समर्पण कर देते।

यदि यहां पर यह शंका हो कि अन्यकी भलाई की आशासे तिसपर भी कहीं तालाव आदिमें जाकर जो जल समर्पण किया जाता है वह शांति कारक नहीं होता किंतु अपनी भलाईकी आशासे फिर भी जिसने संसारके समस्त तापोंकी शांति करदी है ऐसे समर्थ महात्माकी सेवामें चढ़ाया हुआ जल ही शांति प्रदान कर सकता है। युधिष्ठिर आदिने कृष्णकी भलाईकी अभिलाषासे तालाव आदिपर जाकर जल समर्पण किया था इसलिये उस जलसे शांति होनी असंभव है

किंतु संसार तापके नाशक भगवान वीतरागकी सेवा में अपनी भलाईकी आशासे वा उनके अत्यंत समर्थ होनेके कारण अन्यकी भलाईकी आशासे भी जो पूजक जल चढ़ाता है वही जल शांतिकारक हो सकता है? सो ठीक नहीं। क्योंकि शांतिका होना न होना कर्माधीन है परंतु मोहकी तीव्रतासे प्रेमीलोग अपने संबंधीको भलाईकेलिये भलाईके जनक कार्य करते हैं। युधिष्ठिर आदिका कृष्ण पर अचित्य प्रेम था इसलिये मोहकी तीव्रतासे 'कृष्णको शांति मिले' इस अभिलाषासे उन्होंने कृष्णको जल समर्पण किया था। लोकमें भी व्यापार का कार्य मुनीम गुमाश्ते करते हैं फलका भोग सेठ करता है। राज्यका कार्य मंत्री सूबेदार आदि करते हैं फलका भोग राजा करता है इत्यादि परकेलिये कार्य करनेसे परकोही फल होना दीखता है इस कारण यह बात प्रमाण सिद्ध होचुकी कि-यद्यपि युधिष्ठिरआदिने कृष्णको उनकी भलाईकी आशासे जल समर्पण किया तो भी कृष्णको उसका फल मिलना संभव है। तथा हम ऊपर लिख भी चुके हैं कि जल शांति जनक पदार्थ है इसलिये पर वा अन्य केलिये यदि शांतिकी अभिलाषा हो तो उसका इसतरह उपयोग करनेमें कोई हानि नहीं जलका तो किसी पर राग किंवा द्वेष है नहो जो वह वक्रको शांति प्रदान करे और दूसरेको अशांति। इसलिये युधिष्ठिर आदिका मृत कृष्णको जल समर्पण करना युक्त ही था।

वकील साहब! असलियतमें तो यह बात है कि आचार्य और उनके ग्रंथोंकी निंदा और पक्षपातकी मात्राने ऐसा आपकी बुद्धिमें भयंकर रूप धारण किया है कि आपको दोष ही दोष सूझते हैं गुणोंकी ओर आपका दिमाग घूमता ही नहीं; ग्रंथकारने स्वयं यहां पर मृत कृष्णको जल समर्पण करनेमें हेतु दिया है पर आपने जरा भी उसे नहिं समझा मिस्टर ख्वान! संपूर्वक स्था धातुका अर्थ मृत्यु होता है इसलिये हरिवंशमें जो यह लिखा है कि 'संस्थित जनोंके संतोषके लिये' इसका यह मतलब है कि मृत मनुष्योंको संतोष हो शांति मिले इसलिये' किंतु वहां संस्थितका अर्थ उपस्थित नहीं जैसा कि आपने समझ रक्खा है। हम अथवा हमारे मित्र कभी कभी यह लिख दिया करते हैं कि वकील साहब संस्कृत भाषाके ज्ञानमें कोरे हैं उसपर चाहे वकील साहब न भी बुरा माने क्योंकि उन्हें अपने ज्ञानकी तादाद मालूम है परंतु उनके भक्त इस बात पर जरूर चिड़ते हैं और हमें कोसते हैं कि 'हे ऐसा क्यों लिखडालते हो' क्योंकि वकील साहब उनकेलिये विषय भोग भोगनेका मार्ग साफ कर रहे हैं इसलिये वकीलसाहब पर उनकी भक्ति है परन्तु वे यहां पर विचार करले कि वकील साहबको संस्कृतका कितना बोध है कि जो संपूर्वक स्था धातुका अर्थ संस्कृतका थोड़ा पढ़ा लिखा भी जानता है वकील साहब न समझ सके। वकील साहब! क्षमाकी प्रार्थना पूर्वक हम इतना अवश्य कहेंगे कि आचार्यके हेतु पूर्वक कथनको भी अपनी अज्ञानतासे न समझकर उनपर वृथा दोष मढ़ना अत्यंत तीव्र पापका बंध कराने वाला है। आचार्य महाराजको शायद यह पता होगा कि हमारे भक्त वकीलसाहब सरीखे भी पैदा होंगे इसीलिये उन्होंने वहां हेतुका उल्लेख किया जान पड़ता है। जहां पर साफ हेतु लिखे हैं अथवा सरल मानकर कहीं पर हेतुओंका उल्लेख न भी किया है वहां सब जगह आप नोट कर डालते हैं ऐसा आपको न चाहिये क्योंकि ऐसा करनेसे आपको फजीतीके साथ धर्मकी निंदा असह्य मालूम होती है।

संसारमें जो लोग यह समझकर कि जो जल ब-

र्पण किंवा श्राद्ध आदि किया जायगा वह हमारे पितरों के पास पहुंच जायगा उनको जल आदि समर्पण करते हैं यह उनका अत्यंत अज्ञान है और मिथ्यात्व है क्योंकि पितरोंके पास वह पहुंच नहीं सकता हां यदि उनकी शांतिकी अभिलाषासे वे वैसा करें तब ठीक माना जा सक्ता है।

हेतुका उल्लेख न भी किया जाय तथापि "मृत कृष्णको जल समर्पण किया" इस वाक्यसे भी यह बोध बडी आसानीसे होता है कि कृष्णको शांति मिले इसलिये वैसा किया था परंतु न मालूम वकील साहबने क्यों इसबातपर विचार नहीं किया ? हां यदि भोजन आदिके समर्पणकी बात होती तो वेशक शंका करनी ठीक थी अस्तु अब वकील साहबको ज्ञान होगया होगा कि वह बात लोगोंको रिझाने वाली लौकिक बात न थी। मिथ्यात्व परिपूर्ण भी न थी जिससे इस रीतिके साथ २ अन्य मिथ्यात्व परिपूर्ण रीतियोंका जैनधर्ममें समावेश करलिया जाय। गृहस्थावस्थामें व्यवहार पर भी ध्यान रखना पड़ता है इसलिये युधिष्ठिर आदिका वैसा कार्य युक्त ही था। आशा है वकील साहब इस बातपर विचार करेंगे।

अयोग्यप्रतिष्ठाचार्यके द्वारा प्रतिष्ठाविधि करानेसे हानि नामक शीर्षक पर विचार।

सत्योदयकी उपर्युक्त संख्याहोमें "अयोग्य प्रतिष्ठाचार्यके द्वारा प्रतिष्ठाविधि करानेसे हानि" नामका तीसरा नोट निकला है। प्रतिष्ठासारोद्धार नामक ग्रंथमें प्रतिष्ठाचार्यके—दानी,मन वचन कायको शुद्ध रखनेवाला, मिष्टभाषी अणुव्रती आदि उत्तम कोटिकी अपेक्षा जो लक्षण बतलाये हैं, और वैसा प्रतिष्ठाचार्य न मिलनेसे यजमानके सर्वनाश होनेकी संभावना है जो यह लिखा है उसपर वकील साहबने अपनी यह राय पेश की है कि-यदि वैसा प्रतिष्ठाचार्य न मिले तो प्रतिष्ठा कराना ही हानिकारक है। तथा उनके इस कथनसे यह भी साफ झलकता है कि वैसा कभी कोई प्रतिष्ठाचार्य नहीं हो सकता है जिससे प्रतिष्ठा कराई जाइ इसलिये प्रतिष्ठा आदि कराना जाल है झूठा है।

हमें इस विषयमें इतना ही कहना काफी है कि प्रतिष्ठाचार्य जघन्य मध्यम उत्तमके भेदसे तीन प्रकारके माने हैं। उनमें प्रतिष्ठासारोद्धारमें जो लक्षण बतलाये गये हैं वे उत्तम प्रतिष्ठाचार्यके हैं किंतु उनसे कम गुणोंके धारक मध्यम और जघन्य कोटिके भी प्रतिष्ठाचार्य होते हैं और उन्हें प्रतिष्ठा करानेका अधिकार रहता है। जिसप्रकार पहिले मुनिगण महाव्रतका उपदेस देते थे जिससे कोई मनुष्य महाव्रत न पाल सके तो अणुव्रत तो अवश्य पालेगा, किंतु उनके कथनका यह अभिप्राय नहि लिया जाता था कि मुनिराजने महाव्रतका उपदेश दिया इसलिये जिस किसीको धारण करना चाहिये उसे महाव्रत ही धारण करना चाहिये किंतु अणुव्रत अथवा अपनी इच्छानुसार और भी नीचे दर्जेका नियम धारण कर लिया जा सकताथा उसीप्रकार प्रतिष्ठासारोद्धार ग्रंथमें जो प्रतिष्ठाचार्यके उत्तम दर्जेके लक्षण बतलाये हैं उसका यह अभिप्राय नहिं लिया जा सकता कि प्रतिष्ठाचार्य हो तो ऐसा ही होना चाहिये किंतु उससे कम गुणोंका भी जैसी कि उसमें योग्यता हो प्रतिष्ठाचार्य हो सकता है। देश कालके नितांत परिवर्तन से यथार्थ गुण धारक प्रतिष्ठाचार्योंका अभाव होगया परंतु पहिले वैसे ही प्रतिष्ठाचार्य मिलते थे इसलिये वैसे गुणोंके धारक प्रतिष्ठाचार्यके असंभवपनसे प्रतिष्ठा आदि कार्य व्यर्थ नहीं कहे जासकते। दक्षिण देशमें अब भी उपाध्याय रहते हैं, वे लोग पहिले अणुव्रती आदि प्रतिष्ठाचार्यके गुणोंसे युक्त

रहते थे इसलिये प्रतिष्ठा आदि कार्योंको ये ही सुसंपन्न कराते थे परंतु बीचमें इनकी योग्यतापर ध्यान न देनेके कारण ये अपना कर्तव्य कार्य भूल गये जिससे इनमें अणुव्रत आदि गुण विदा होगये। यदि इनपर अबभी ध्यान दियाजाय तो फिर भी ये लोग संभल सक्ते हैं।

परंतु वकील साहबने जो यह लिखा है कि धनी लोगोंको मान बढ़ाईकेलिये सर्वथा प्रतिष्ठाचार्यके गुणोंसे शून्य व्यक्तिसे प्रतिष्ठा न करानी चाहिये इस बातसे हम सहमत हैं क्योंकि यह सब जानते हैं कि सिंघई सवाई सिंघई आदि लालसाओंसे प्रेरित लोग प्रतिष्ठाके लिये लाखोंका खर्च कर डालते हैं। जिसने कहा कि 'हां मैं प्रतिष्ठा करालेता हु" उसीसे प्रतिष्ठा करवाडालते हैं उसके गुण अपगुणों का कुछ भी ख्याल नहि करते यह उनकी बड़ा भारी गलती है। इससमय विद्यादान वा मंदिरोंके जीर्णोद्धार आदिकी आवश्यकता है सबसे पहिलें यह कार्य करना चाहिये परंतु देखनेमें आता है लोग प्रतिष्ठाओंके करानेमें कमी नहि करते। इसलिये प्रतिष्ठाकारकोंसे हमारी यह प्रार्थना है कि वे प्रतिष्ठाओंकी भरमार अब न करें। विद्यादान आदिमें धनव्यय करें। यदि कहीं प्रतिष्ठा कराना बहुत जरूरी हो वहां उस प्रतिष्ठाचार्यसे प्रतिष्ठा करावें जो वर्तमान देश काल के अनुकूल प्रतिष्ठाचार्यके गुणोंका धारक हो।

वकील साहब! 'वत्थु सहावो धम्मो' इस मंत्रके आराधनसे तो आप बहुत ही ऊंचे चढ़गये हैं। भला यह विलक्षण बात नहीं तो क्या है? कि जो बात उत्तम कोटिके मनुष्योंके लिये कही है उसके विषयमें आप यही कह निकलते हैं कि यही होना चाहिये ओर सब बात झूठी हैं। परंतु मिहिरबान? जिसके पास करोड रुपया तो है नहीं, उसकी प्राप्तिकी योग्यता भी न हो, किंतु करोड़ रुपया ऐसा होता है सिर्फ इसी ध्यान में मग्न है यदि वह हजारपती किंवा करोड़पतीसे घृणा करता है तो लोग उसका वैसा कार्य उचित नहि समझते उसीप्रकार जिसने वस्तुस्वभाव रूप धर्मको न तो प्राप्त किया और न उसकी प्राप्ति की योग्यता हैं किंतु अभी वह यही विचार कर रहा है कि वस्तुस्वभावरूप धर्म ऐसा होता है यदि वह व्यवहारधर्मसे घृणा करे तो उसका वैसा कार्य उचित नहिं समझा जाता, किंतु क्रमसे जब हजार लाख पीछे करोड़ की पूंजी उसके पास हो जाती है यदि तब वह हजार वा करोड़ पतियोंसे घृणा करता है तो उसका ठीक समझा जाता है उसी प्रकार जो मनुष्य क्रमसे व्यवहार धर्मका स्थान न हो निश्चय धर्मका स्थान बनजाता है उससमय उसको व्यवहारधर्मसे घृणा उचित समझी जाती है। बल्कि घृणा करना भी तो निषिद्ध है उपेक्षा दृष्टि ही उचित समझी जाती है। आप व्यवहार धर्मको इसप्रकार सर्वथा घृणित न समझें। यह निश्चय है प्रथमश्रेणीमें विना व्यवहार धर्मके आलंबनके निश्चय धर्म पल नहिं सकता।

साधुओंका अद्भुत अतिशय नामक शीर्षकका उत्तर।

सत्योदयकी उपर्युक्त संख्यामें ही साधुओंका अद्भुत अतिशय यह चौथा नोट निकला है पार्श्वपुराणमें पार्श्वनाथके पूर्वभवके जीव मुनि आनंदरायके तीर्थकर प्रकृतिके बांधनेके अनंतर तपका ग्रंथकारने यह अतिशय वर्णन किया है कि उनके तपके प्रभावसे जातिविरोधी भी सर्व जीव द्वेष रहित होगये थे। सबोंमें मित्रताका संचार होने लग गया था, तथा उसी जगह यह भी लिखा है कि उनका पूर्वभवका वैरी कमठ उस समय सिंह हुआ था मुनिराजको देखकर उसे पूर्वभवका स्मरण होगया और उसने मुनि राजको खा डाला।

इसीप्रकार भगवान पार्श्वनाथका भी अतिशय लिखा है कि उनके वैरागी होनेपर तपके प्रभावसे

जीवोंका आपसका जातिविरोध नष्ट होगया था परंतु वहींपर यह लिखा हैं कि उनका पूर्वभवका बैरी कमठ उस समय ज्योतिषी देव होगया था वह आकाशमार्गसे जारहा था कि तीर्थंकरके ऊपरसे विमान न चलनेके कारण उसका विमान रुक गया और विभंगावधिसे पार्श्वनाथको अपना बैरी समझ वर्षाका उपद्रव कर डाला पश्चात धरणेंद्रने उस उपद्रवको शांत किया।

इसपर हमारे वकील साहबने एक दो भी नहीं चार शंकायें कर डाली हैं पहिली शंका—उनकी यह है कि—बड़े आश्चर्यकी बात है कि जिन मुनियोंके तप के प्रभावसे जीवोंका आपसमें बैर मिटजाना रूप असंभव तो कार्य होगया। परंतु कमठ पर उस प्रभावका असर न पड़ा? उनके अतिशयका प्रभाव उस समय कहां चलागया था? दूसरी शंका—बड़े आश्चर्यकी बात है कि भगवानके पुण्यसे विमान तो टकरागया परंतु देवका कीया उपसर्ग जो खास भगवानपर ही किया गया था न रुकसका। तीसरी शंका— इस से भी ज्यादा आश्चर्यकी बात क्या होगी कि जिस धरणेंद्रको देखकर वह देव भाग गया था भगवानके प्रतापने उसका आसन तो जा डुलाया परंतु तुच्छदेव का वह प्रताप उपसर्ग दूर न करसका। चौथी शंका— भगवानका जन्मसे ही मात्र प्रथमसे वह अतिशय वर्णन किया जाता है कि रात दिन देव सेवा करते रहते हैं परंतु तप करने पर और अतिशय प्रगट होनेपर कोई देव उनके पास नहिं रहता जिससे एक मामूली देवने उनपर उपसर्ग कर डाला। इस आश्चर्यका ठिकाना है? अंतमें वकील साहबने यहां तक भी लिख कर कि 'यह कथा कभी युक्तिसंगत नहीं' निशंकित अंगका निर्दोषरूपसे पालन किया है।

उत्तरमें निवेदन है कि-'यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा'। नही होनेवाला है वह हो नही सकता और जो होनेवाला है वह रुक नहीं सकता यह नियम है। चाहें कोई कितना भी बड़ा हो परंतु तीव्र कर्म किसीका सगा नहीं होता। जिससमय वह उदय आवेगा और जो कुछ उसका फल होगा वह भोगना ही पड़ेगा और जब यह बात निश्चित है तब बड़े पुण्यका प्रतापका असरपर भी हैं असर पड़जाय परंतु उसपर असर नहिं पड़ता जिसके निमित्तसे वह कर्मफल भोगना पड़ेगा। यह प्रत्यक्ष दीख पड़ता हैं कि एक विद्वान जो हजारों वार दूसरोंको मरते समय या अन्य अवस्थामें धर्मोपदेश देचुका है वह जिस समय खास मृत्युकी गोदमें बैठता है तीव्रकर्मके प्रतापसे अपनेको नहिं समझा सकता। एक मनुष्य जो करोड़पति है वह ऐसी जगह जाकर मरता है कि उसके लिये कफन तक पैदा नहिं होता। एक वैद्य जिसने एक रोगका हजारोंवार इलाज किया है। अच्छी तरह उस रोगकी घटनी बढनीको जानता है यदि वही रोग अपनेको होजाता है तो कर्मोंकी तीव्रतासे उसपर उसकी दवा नहिं चलती। परंतु यहांपर यह कोई शंका नहिं करता, कि वह तो विद्वान था वह क्यों अपनेको न समझा सका? वह तो करोड़ पति था क्यों उसके लिये कफन पैदा नहीं हुआ? वह तो बड़ा भारी वैद्य था क्यों अपना वह इलाज न कर सका? क्योंकि कर्मोंकी माया विचित्र है। इनपर किसीका प्रभाव नहीं पड़ सकता। यह हमारी जानी हुई बात है कि हमारे एक रिश्तेदार बडे भारी वैद्य थे। एक पुड़ियासे ही वे धाराप्रवाह दस्तोंको रोक देते थे परंतु जिस समय उन्हें दस्त हुए उस समय उन्होंने बहुत दवा खाई कुछ न हुआ। एक व्यक्तिने उनसे कहा भी कि आप क्यों अपना इलाज नहिं करते? उन्होंने उत्तर दिया कि मेरे पास ऐसी दवा

है कि मैं चलते पानीकी नालीतक रोक सकता हूं तथा उन्होंने जो पानी चर्सेसे कुएसे निकालकर खेतमें लाया जाता है उस पानीके बराह—नालामें उस पुड़ियाको डाला भी जिससे उस दवासे झाग उठकर पिंडसा बंध गया और पानी रुकगया। परंतु मैं अपना इलाज खुद नहीं कर सकता। अंतमें वह रोग उन्हें लेगया।

भगवान ऋषभदेवको लाभांतराय कर्मने छैमास और घुमाया तब कहीं उन्हें एकवर्ष बाद आहार मिला था। तीर्थंकर सबसे प्रधान राजाके पुत्र होते है परंतु नेमिनाथ भगवान कृष्णके मातहत राजा समुद्र विजय के पुत्र थे। परंतु क्या किया जाय कर्मानुसार फल भोगना ही पड़ता है। मुनि आनंदराय वा भगवान पार्श्वनाथ कैसे भी प्रतापी थे परंतु कर्मोंकी तीव्रताने सिंह और ज्योतिषी देव द्वारा उनके लिये उपसर्ग होना बदा था सो उन्हें भोगना पड़ा तथा ज्योतिषी देवके उपसर्गकी शांति धरणेंद्रद्वारा ही होनी थी सो हुई। महानुभाव! शास्त्रमें यह तो कहीं नहीं लिखा कि तीर्थकर सबके स्वामी होगये सो वे कर्मोंके भी स्वामी होगये क्योंकि यदि वे यह समझते कि हम कर्मोंके भी स्वामी हैं तो चक्रवर्ती कामदेव तीर्थंकर तीनोंकी एक साथ प्राप्त विभूतिको छोड़कर वे कर्मोंको नष्ट करनेके लिये क्यों दिगंबर वृत्ति धारण करते?

आप निश्चय समझें चाहे कितनी भी अग्नि जलाई जाय टोराका गलना कठिन पड़जाता है उसी प्रकार जिसके कर्मका बंध अत्यंत बड़ा है उसपर चाहे कितना भी प्रतापी हो उसका असर नहीं पड़ता, केवल ज्ञानके बाद तीर्थंकरका सब पर असर पड़ता है परंतु अभव्य मिथ्यादृष्टी तीर्थंकरको जालिया ही कहता है। जैनागमका सबपर असर पड़ता है परंतु बहुतसे लोग उसकी निंदा ही करते हैं सार यह है जिन जीवोंका भला होना है उन्हींपर मुनि तीर्थंकर आगम आदिका प्रभाव पड़ता है अन्यपर नहीं।

अन्य मतोंमें यह लिखा है कि जो अवतार होगये कर्म उसका कुछ नहिं करते। यदि वह ऐसा कोई काम भी करता है कि उससे कर्मोंका फल भोगना प्रकट होता है जैसे रामचंद्रको बनवास आदि, तो उसके विषयमें उन मतोंका यह सिद्धांत है कि अवतारी महात्मा, लोगोंकी आपत्ति झेलनी पड़ती है यह स्वयं दिखाकर उपदेश देते है। परंतु जैन फिलोसफीमें यह बात नहीं। वह सबमें मुख्य तीर्थंकर अवतारमें भी कर्मफलके भोगनेका उपदेश देती है। इसलिये जैन फिलोसफी इस अद्वितीय बातका उपदेश देती है कि भाई! तुम्हारी क्या बात तीर्थंकरोंको भी कर्मका फल भोगना पड़ता है इसलिये तुम कर्मोंसे बचनेका उपाय करो। परंतु न मालूम हमारे वकील साहब किस ध्वनिमें सवार है। वे क्यों इन अनुपम बातोंपर विचार करनेमें घबड़ाते है? अस्तु कर्मोंका फल विचित्र है कर्मोंकी दृष्टिमें तीर्थंकर आदि सब समान है, इतनेसे ही वकील साहबकी चारों शंकाएं दूर होती है। आशा है वकील साहब इसबातपर अवश्य विचार करेंगे।

मरते समय तिर्यंचको धर्मोपदेस नामक—शीर्षकका उत्तर।

सत्योदयकी उपर्युक्त संख्याहीमें, "मरते समय तिर्यंचको धर्मोपदेश" नामका पांचवां नोट निकला है। पार्श्वपुराणमें जो यह कथा लिखी है कि एक तपस्वी द्वारा मरता हुआ सांपका जोड़ा भगवान पार्श्वनाथके उपदेशसे धरणेंद्र और पद्मावती होगया था, उसपर बाबू सूरजभानजी वकीलने यह राय पेश की है कि जातिस्मरणके द्वारा जिनजीवोंने धर्मोपदेश ग्रहण किया और वे स्वर्गादि उत्तम गतियोंको प्राप्त हुए ऐसी जो

कथा पुराणोंके अंदर सुनी जाती हैं वे तो ठीक हैं क्योंकि जातिस्मरणसे पूर्वभवकी भाषा आदिका ज्ञान हो जाता है जिससे उपदेश श्रवणकी योग्यता प्रगट हो जाती है परंतु सर्प सर्पिणीने कैसे धर्मका उपदेश श्रवण किया? जातिस्मरणके विना भाषा आदिका ज्ञान न होनेसे पार्श्वनाथ भगवानके उपदेश श्रवणसे उन्हें उत्तम गति कैसे मिलगई? यह वडा आश्चर्य है।

उत्तर देनेके पहिले हमें भी यह प्रगट करते परम आश्चर्य होताहै कि वकीलसाहबको जातिस्मरणकी सचाईका ज्ञान किस पक्के सूत्रसे होगया? आजकल भी जातिस्मरणके दृश्य देखने सुननेमें आते हैं शायद वकील साहबकी निगाहके नीचे भी कोई जाति स्मरण का दृश्य गुजर चुका होगा. लेकिन यह बात भी जरा कमही विश्वस्त मालूम पड़ती है कि किसी जाति स्मरणके दृश्यका उन्हें साक्षात्कार हुआ हो क्योंकि अक्सर कर वे ऐसा कार्य कर डालते है कि जो बात उन्हें सच्ची नहीं जचती यदि उसके विना किसी बातके खण्डन करनेमें उनसे पुष्ट युक्ति न दी जासके तो वे उस बातको उस जगह प्रमाण मानकर ही आगे कदम वढाते है। वकील साहबके लेख पढनेवाले पाठकोंने इस बातकी परीक्षा करली होगी कि जिनग्रंथोंको वा बातोंको वकील साहबने मिथ्या ठहरा दिया है यदि उनमें विधवाविवाह चलाना, वर्ण विभाग नष्ट करदेना, आदि निंदित बातोंकी जरासी ही सिद्धी जनक बात निकल आती है तो उसे वे चट प्रमाण मान निकलते हैं और उस ग्रंथके कर्ता और ग्रंथको ऐसे सुंदर विशेषण लगाते हैं जिससे यह मालूम हो कि वकील साहबकी श्रद्धाकी लार टपकी पड़ती है। परंतु अंतरंगका छिपना कठिन है। नकली शेर कहां तक अपना प्रभाव डालेगा? अस्तु।

यह निश्चय है कि जिन जीवोंका भला होना होता है उनको काललब्धिकी कृपासे भलाईके उत्पादक कारणोंके जुटनेमें जराभी देरी नहिं होती। उनके चित्तपर जरासा ही बातका असर पड़ जाता है। भलाईके करने वाले को निःस्वार्थ शांत मूर्तिके देखनेसे वे अपना सब दुःख भूल जाते हैं और उनके हृदयमें शांतिका स्रोत वह निकलता है। भगवान पार्श्वनाथ अतिशयी पुरुष थे। दुष्ट मिथ्यादृष्टियोंके सिवाय सब जीवोंपर उनका प्रभाव पड़ता था। इसलिये जिस समय उन्होंने अपनी शांति जनक चेष्टासे हाथकी अंगुली आदिका इशारा कर उपदेश दिया होगा उस समय सर्प आदिने न भी उनका उपदेश समझा हो तथापि भगवानके आकार प्रकारके देखनेसे वे भगवानके शब्दोंकी ओर एकाग्र चित्त अवश्य हुए होंगे जिससे अवश्य उनका आर्तध्यान छूट गया होगा क्योंकि पुरुषकी चेष्टासे भी भलाई बुराई का पता लग जाता है। पशुओंको भलाई बुराईका ज्ञान रहता है जो मनुष्य पशुओंसे स्नेह रखता है पशु उसके पास आकर शिर झुका देते हैं। उसकी मृत्यु पर दो दो दिन तक घास नहीं खाते। रोते रहते हैं और अपने भलाई करने वालोंकी मददमें अपना दुःख भूल जाते हैं इसलिये यह बात युक्तियुक्त है कि भगवान पार्श्वनाथके पुण्य आकार प्रकारसे सर्पोंका ध्यान अक्रूर न होकर धर्म्यरूप हो गया होगा इसलिये उनको उत्तम गतिका लाभ हुआ था।

दूसरें ग्रंथकारने वही सामान्य बात लिखी है कारण का निषेध विधान नहिं किया इसलिये जातिस्मरण रूप कारण भी ग्रहणकर लिया जा सकता है कार्यके देखनेसे कारण का अनुमान करही लिया जाता है तथा जो कार्य अनेक कारणोंसे संपन्न होता है वहांपर संभवनीय कारणकी योग्यताका निश्चय करलिया जाता

है। हमें नहीं जान पड़ता वकील साहब ऐसे प्रश्न जिनका उत्तर जरासे ही सोचनेसे आसानीसे होजाता है और जिनके करनेमें कुछ भी महत्व नही दीखपड़ता क्यों वैसे प्रश्न कर डालते हैं। विद्वानों की दृष्टिमें ऐसे असमीक्षित प्रश्नोंसे जैन शास्त्र बदनाम नहिं होसकता।

शौचधर्म और जैनधर्म।

सत्योदकी उपर्युक्त संख्याही में 'शौचधर्म' और जैनधर्म' नामक छठा नोट निकला है सुभाषित रत्न संदोहमें जो निश्चय शौचधर्मका वर्णन किया है वकीलसाहबने वे कुछ श्लोक उद्धृत किये हैं और समझाया है कि वास्तविक धर्म यही है तथा यह भी लिखा है कि जो रिवाज प्रत्येक देशमें भिन्नतासे हो वह लौकिक रिवाज है। शुद्धतापूर्वक रसोई वनानेका किसी देशमें प्रचार है किसीमें नहीं है। कहीं कपड़ा उतारकर रोटी खाते हैं कहीं पर उन्हें पहिनकर। इसलिये इन वातों को धर्म न मानना चाहिये तथा उनका यह खास मंतव्य है कि जो लोग शूद्र आदिका रोटी नहीं खाते हैं उनकी भूल है यह लौकिक रिवाज है किंतु सबको खाने पीने आदिक लौकिक रिवाजोंमें एक होजाना चाहिये तथा इसीवातकी पुष्टिमें यह गजब का हेतु दिया है कि अपनेको जैनी कहाने वाले मनुष्य चोरी झूठ हिंसा आदि घोर पाप तो करते रहते हैं परंतु रोटी आदिके खानेमें पाखंड दिखाते हैं सार यह है कि जाति पातिका जो भेद मान रक्खा है व्यर्थ है सबको एक होजाना चाहिये।

परंतु यह वात युक्तिसिद्ध है कि पदार्थोंका स्पर्श मनुष्यकी प्रकृति पर असर पहुंचाता है। यदि कोई पदार्थ अच्छा होगा तो उसका स्पर्श मनुष्यकी प्रकृति पर अच्छा असर पहुचावेगा और यदि पदार्थ निकृष्ट होगा तो बुरा असर पहुचावेगा। एक प्रकारकी हड़ होती है यदि उसको मुट्ठीमें दवा लिया जाय तो प्रकृतिमें वेचेनी होकर दस्त हो निकलते हैं तथा चेचक आदि रोगोंके अंदर तो यह खास वात देखनेमें आती है कि इन रोगोंका स्पर्श दूसरे मनुष्यको उस रोगका उत्पादक होजाता है। स्पर्शसे दूसरेकी प्रकृतिपर असर पहुंचता है। इसवातको हम ही नही मानते पाश्चात्य विद्वानोंने भी यह निश्चय कर लिया है। यही कारण है कि डाक्टर लोग एक मरीजको देखकर साबुनसे हाथ धोकर ही दूसरे मरीज पर हाथ डालते है। विलायतमें सेकंड और फर्ड क्लासको गाडियोंमें मुशाफिरोंको पानी पीनेके लिये एक ही गिलास रहता था। वहुतसे लोग उसी गिलाससे पानी पीने लगे तो उनमें एकही प्रकारके रोगकी वहुतायत दीखने लगी अाखिर को एक प्रकारके कागज के गिलास वनायेगये और मुशाफिरोंको यह सूचना निकालनी पड़ी कि वे पीकर गिलासको गाडीसे वाहर पटकें।

आचरणके अंदर तो यह खास वात है कि जिस मनुष्यका आचरण अच्छा होता है उस मनुष्यके संसर्गसे अन्य मनुष्यपर वैसा ही प्रभाव पड़ता है। शूद्र मनुष्य का आचरण उज्ज्वल होना अत्यंत कठिन है। कदाचित् कोई मनुष्य स्वभावसे निर्मल परिणामोंका धारक हो भी तथापि उसे अपनी जातीय मनुष्योंके साथ संसर्ग रखनेसे अपना स्वभाव उन्हीके अनुसार करना पड़ता है। आजकल तो जब ब्राह्मण भी मास खानेवाले मदिरा पीनेवाले हैं तब शूद्र कभी इन वातोंसे बच हो नहिं सकते इसलिये शास्त्रोंमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनोंका परस्पर में खान पानका उपदेश है शूद्रका नही क्योंकि उच्च तीनों वर्णोंके संस्कारों मे पवित्रता रहती है। शूद्रके संस्कारोंमें नहीं। अतःवकीलसाहबका यह मंतव्य कि आपसमें रोटी आदि खाना वाह्यशुद्धि

है इसे हटा देना चाहिये, शास्त्र और लोक दोनोंसे विरुद्ध है।

वकील साहबने जो यह लिखा है कि आजकलके जैनी चोरी आदि पाप करनेमें तो नहि घबड़ाते परंतु यदि शूद्र उंगली भी चौकेमें रखदे तो रोटी खाना पाप समझते हैं। यह लिखना ठीक नहीं। क्योंकि जैनियोंके वैसे होनेमें जैनधर्मका दोष नहीं किंतु उन्हें योग्य गुरु मिला नहीं हिंसा चोरी आदिकरनेवालोंका संबंध रहा इसलिये उनमें वे आदतें पड़ गईं यदि उनका पवित्र व्यक्तियोंके साथ संबंध रहता तो कभी वे आदतें उनके पास नहीं आती। दूसरे एक महानिंदनीयवातके जारी करनेके लिये हिंसा चोरी आदि पाप कार्योंका करनेवाला किसी एक व्यक्तिको देखकर तमाम जैनियोंका दोषी जाहिर करना अत्यन्त हानिकारक है क्योंकि इससमय तो जैनियोंमें हिंसादि पापके आचरण करनेवाले थोड़े ही मनुष्य हैं किंतु वर्ण भेदके नष्ट होजाने पर कोई मिलहा न सकेगा, इसलिये जो पापभीरु कुछ धर्मात्मा लोग पवते हैं उनका पता भी न चलेगा, क्योंकि अपवित्र पदार्थोंका संसर्ग प्रकृतिको चल विचल कर देता है। यह नियम है उंगली पकड़ पोंचा और पोंचा पकड़ जेड़ सरकी जाती है। यदि चौकेमें शूद्रकी उंगलीका स्पर्श होने पर भी रोटी खाली जायगी तो कुछ दिन बाद उसके हाथकी रोटी खानेमें घृणा न रहेगी। शूद्रकासा कर्तव्य भी हो निकलेगा। आज कल ऐसा देखा जारहा है; इसलिये शूद्रोंके संबंधमें अपने आचरणोंको उज्वलताके लिये जैन वा अन्य उच्च जातियोंका अवश्य बचना चाहिये और व्यर्थका झूठ बोलना हिंसा करना आदि तो सर्वथा छोड़ ही देना चाहिये।

दोष और गुणोंके संबंधसे ही पदार्थोंके उत्कृष्ट और निकृष्ट भेद है। यद्यपि कोई कोई पदार्थ अपेक्षासे उत्कृष्ट निकृष्ट हैं परंतु बहुतसे विष्टा आदि ऐसे पदार्थ हैं जो निकृष्ट ही हैं। आप निश्चय समझें चमार चांडाल आदि निकृष्ट जातियां किसी हालतमें उत्कृष्ट नहीं मानी जा सकती यदि इनके साथ खान पानका व्यवहार जारी होगया तो अवश्य इनके बुरे भावोंका असर दूसरे पर पड़ेगा और उससे जो फल होगा वह पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

फिर भी यह बात कर्माधीन है ऊंच और नीच गोत्रोंमें जो उत्पत्ति होती है सब मत वालोंने वहां पुण्य पापको कारण माना है। यदि सब वर्णों में आपसमें समानता होती होती तो सभी ब्राह्मण किंवा वैश्य क्षत्रिय ही पैदा होते। यदि कहा जायगा कि पहिले ब्राह्मण आदि कोई वर्ण न थे ऋषभदेव और भरत चक्रवर्तीके सामनेसे इनका प्रसार हुआ है तो उसका समाधान यह है कि ऋषभदेव और भरत चक्रवर्तीने कोई नई बात पैदा नहीं की ऊंच और नीच गोत्रका प्रचार अनादि कालसे हैं क्योंकि जैनागम ऊंच नीच दोनों प्रकारके गोत्रोंका अनादिसे उपदेश दे रहा है। इस क्षेत्रमें भोगभूमिके जारी हो जानेसे वह विभाग लुप्त हो चुका था इसलिये ऋषभदेव और भरत चक्रवर्तीने पुनः इसका प्रादुर्भाव किया था। अतः यह बात निश्चित हुई कि ब्राह्मण आदि वर्णोंका विभाग शास्त्रानुकूल है और इस समय लोकमें प्रचलित है इसलिये किसी कषाय वस उसका तोड़ना शास्त्र और लोक दोनोंके विरुद्ध कार्य कर डालता है। मिहिरवान्! आपकी सेवामें यह निवेदन हम और करना चाहते हैं कि जिस प्रकार आप वर्ण विभाग नष्ट करना चाहते हैं उस प्रकार आप इस कार्यके करनेका भी उद्योग करें कि सब लोग राजा ही हो जावे। गरीब-रंक कोई दीख ही न पड़े क्योंकि जैसा नीच ऊंच गोत्रमें पैदा होना कर्माधीन है वैसा ही

भाग्यवान और गरीब होना भी कर्माधीन है वल्कि वर्ण विभागके नाशसे तो यह हानि होगी कि जीवोंके सबसे प्रधान चारित्र गुणके कलंकित होनेसे उन्हें अचिन्त्य दुःख भोगना पड़ेगा परंतु यदि सब भाग्यवान हो जायंगे तो दरिद्रताके दूर हो जानेसे सब सुखी रहेंगे आपको गहक गहक कर आशीर्वाद देंगे जिससे आप जुग जुग जी सकेंगे।

आपने जो यह लिखा है कि स्नान करना चौका आदिकी क्रिया पालना धर्म नहीं लौकिक रिवाज है। यह भी आपका एकांत परिपूर्ण कथन है। गृहस्थावस्थामें बहुतसे निकृष्ट पदार्थोंके साथ संबंध होजाता है और उस हालतमें कोई धर्म कार्य नहीं किया जा सकता इसलिये शुद्धिकी भावनासे वैसा कार्य उचित है इसी लिये स्नान आदिको व्यवहार शौच धर्म माना है हां मुनियोंको निकृष्ट पदार्थके साथ संबंध करनेका अवसर नहिं मिलता क्योंकि वे सांसारिक वासनासे विरक्त हो चुके हैं इसलिये उनकेलिये स्नान किंवा चौका आदिको क्रिया पालनेका विधान नहीं।

यहां पर यह शंका मत कर बैठना कि अपवित्र पदार्थके स्पर्शसे उत्पन्न अपवित्रताको जल आदि कभी दूर नहीं कर सकते इसलिये पवित्रताके लिये इनका उपयोग करना वृथा है? क्योंकि वस्तुका स्वभाव अचिन्त्य है जिसप्रकार सुगंधित पदार्थ दुर्गंधको नष्ट कर देता है। चूर्ण पेटको साफ कर देता है। साबुन मैलको छांट देता है उसी प्रकार जलादि भी अपवित्र पदार्थजन्य अपवित्रताको अवश्य नष्ट कर देते हैं।

जनाबमन्! वर्ण विभागके अभावमें मनुष्य जन्म किसी कामका न रहेगा। इसका पाना विषय भोगके ही लिये नहीं है इसलिये आप स्वयं वर्णविभागके नाशसे उत्पन्न हानिका विचार करें। यदि कभी काफी अवसर मिला तो हम इस विषयपर युक्ति पूर्ण लेख प्रकाशित करेंगे।

द्रोपदीको पंचभर्तारी कहनेका दण्ड नामक शीर्षक पर विचार।

सत्योदयकी उपर्युक्त संख्या हीमें "द्रोपदीको पंचभर्तारी कहनेका दंड" नामका सातवां नोट निकला है। लोकमें और हिंदु शास्त्रमें यह कथा प्रसिद्ध है कि द्रोपदी पांचों पांडवोंकी स्त्री थी परंतु जैनागममें वह अर्जुनकी ही स्त्री बतलाई है। सती द्रोपदी पांचों पांडवोंकी स्त्री थी यह बात कैसे प्रचलित हुई इसका कारण जिनसेनाचार्यने यह बतलाया है कि स्वयंवर मंडपमें समस्त राजाओंको छोड द्रोपदीने अपने पिताकी सूचनानुसार राधावेध आदि बातोंको करनेवाले अर्जुनके गलेमें जिससमय वरमाला डाली उस समय तीव्र हवाके चलनेके कारण माला टूटगई इसलिये उसके पुष्प साथमें बैठे हुए पांचों पांडवोंपर पडगये थे। अर्जुनके गलेमें माला पडजानेसे अन्य राजा लोगोंको जलन उबल उठी। उन्होंने हल्ला कर दिया कि माला पांचोंके गलेमें डाली है। वही बात आजतक चली आई है। इस स्थलपर सती साध्वी द्रोपदी पर व्यर्थ कलंकके मढ़ावके कारण आचार्य जिनसेनके मुंहसे यह निकल गया कि जो 'इसप्रकार निष्कलंक व्यक्तियों पर मिथ्या दोष मढने वाले हैं उनकी जीभके क्यों हजारों टुकड़े नहिं हो जाते" बस वकील साहब इसी बातपर उछल पड़े हैं उन्होंने लिखा है कि मुनि सो भी आचार्यको क्या ऐसा लिखना चाहिये! यदि उनको वैसा न लिखना चाहिये तो क्यों लिखा। ये आचार्य नहीं मालुम पड़ते भट्टारक हो सकते हैं।

परंतु यह नियम है जिससमय आचार्य वीर करुणा

आदि रसोंका वर्णन करते हैं उस समय उनका छठा गुणस्थान रहता है। छठे गुणस्थानमें संज्वलन क्रोधादिकको सत्ता रहती है तथा यदि उस गुणस्थानमें अखंड संयम न पलसके तो प्रत्याख्यानकषाय क्रोधादिका भी उदय हो सकता है इसलिये जिनसेनके मुंहसे वैसे शब्द निकलगये तो उससे वे मुनि वा आचार्य ही नहिं होसकते यह बात अयुक्त है। मुनियोंका सबसे नीचे दर्जेका गुणस्थान छठा ही होता है और चारित्र आदि गुणोंका स्थान गुणस्थान कहा जाता है। तथा उसमें अगणित जातिके परिणाम पलटते रहते हैं इसलिये परिणामोंके अगणित पनेसे छठे गुणस्थानके भी अगणित भेद होजाते हैं। अतः यदि उस समय किसी व्यक्तिके परिणामोंमें कषायका उदय हो आया तो वह प्रमत्त गुणस्थानके भेदोंमें कुछ मध्यम आदि भेदोंमें परिगणित करलिया जाता है। यह नहीं कहा जा सकता कि वह मुनि हो नहीं। विष्णुकुमार आदि मुनियोंने तो कारण वश मुनिवृत्ति तकका त्याग कर दिया है इसलिये जरासी बातपर आचार्य जिनसेनके मुनिपनेपर पानी फेरना वकोल साहबको कभी संगत नहीं हो सकता। आगे चलकर वकील साहबने लिखा है कि--

स्वयंवरसे उठी हुई बातके अनुसार अन्य मतके लोग द्रौपदीको पंचभर्ता होना सच हो लिखते आ रहे हैं इसलिये सत्य बातसे वे असत्यवक्ता किंवा झूठ जन्य दुःखके भागी नहीं कहे जा सकते। उत्तरमें निवेदन है कि वकील साहब? यदि दुष्टोंद्वारा ईर्षासे कलंकित द्रौपदीके पंचभर्तारी पनेको आप सच मान लेंगे तो बड़ा भारी अत्याचार होजायगा। एक सुंदर स्त्री पर कोई मनुष्य आशक्त है अपने चंगुलमें फसती न देख यदि वह यह प्रसिद्धि करता है कि यह अमुक व्यक्तिसे फसी है तो उस दुष्ट मनुष्यकी उस बातसे उस सती स्त्रीको व्यभिचारिणी कहना सत्य समझा जायगा। कोई धर्मात्मा मनुष्य विद्यालय आदिकेलिये चंदा करता है। एक पाई भी व्यर्थ नहीं गमाता यदि खाऊ लोग उसपर यह कलंक लगावें कि यह रुपया हजम कर गया है तो वह भी सत्य माना जायगा? आप तो वकील हैं शायद ऐसी बातका मामला आपके पास आया होगा और दुष्टों द्वारा उत्पन्न कीगई असत्य भी बातको सत्यमानकर आपने पेश की होगी इसीलिये वह संस्कार आपकी बुद्धिमें बैठा हुआ है। मिहिरबान! इस बातको अपनी लेखनीसे सत्य बतलाते समय आप किस फिक्रमें मशगूल थे? । धन्य है !!!

आपने लिखा है कि अन्यमतके ग्रंथोंमें जिस प्रकार द्रौपदी पर दोष लगाया जाता है उसी प्रकार जैन ग्रंथोंमें दोषकी बात है। कहीं पर नेमिनाथको युद्धमें जाना लिखा है कहीं पर नहीं। यदि यह बात भूलसे होगई हो तो द्रौपदीको पंचभर्तारी कहना अधिक लक्ष्यके योग्य बात है कि भगवानके हाथसे वृथा हत्या करना? तथा हरिवंशपुराणमें द्रौपदीके विषयमें अन्यथा कहने वालोंको जीभके क्यों सहस्र खंड नहीं हो जाते? यह लिखा है उसप्रकार तीर्थंकरके विषयमें अन्यथा लिखने वालोंको क्यों नहिं लिखना चाहिये? इत्यादि--उत्तरमें निवेदन है कि चक्रवर्तीको दिग्विजय करने जाना पड़ता है बहुतसे लोग प्रभावसे वश होजाते हैं तो बहुतसे लोगोंको युद्ध मार्गसे वश किया जाता है। तीर्थंकर भी चक्रवर्ती हुए हैं और वे उस अवस्थामें महात्मा संयमी नहीं थे किंतु राजा थे। राजविभूतिका परिपूर्ण भोग करते थे इसलिये चक्रवर्ती तीर्थंकरोंके समान नेमिनाथ तीर्थंकरका युद्धमें जाना और लड़ना असंभव नहीं। तथा एक ग्रंथ कारने उनका युद्धमें जाना लिखा है दूसरेने

नहीं। इसमें ग्रंथकारोंका दोष नहीं उनकी गुरुपरंपराकी स्मृतिका दोष है। तथा वैसे करनेसे कोई हानि भी नहीं। परंतु हानि इस बातमें है कि लोग द्रोपदीको सती साध्वी भी कहते हैं और पंचभर्तारी भी। क्या जिसके पांचपति हे वह सती साध्वी हो सकती है? आप निश्चय समझें द्रोपदीमें सती और पंचभर्तारी दोनों विरुद्ध धर्मोका समावेश सत्य समझनेमें स्त्री पुरुषों पर बुरा असर पडता है तथा जो लोग इस कथाको सत्य समझते हैं उनपर यह असर पड़ भी चुका हैं क्योंकि अल्मोडाकी ओर ४-५ आदमी एक स्त्री रख लेते हैं और उसे द्रोपदी व्याह कहकर कोई दोष नहीं मानते। वकील साहब! जरा बुद्धि पर जोर देकर आपही विचारो दोनों बातोंमें कौन बात हानि कारक है?

आपने लिखा है कि हिंदू लोग जिसको परमात्मा मानते हैं उस कृष्णको जैनागममें नरक जाना लिखा है यह अनुचित है। उत्तरमें निवेदन है यह आपने अपने मतकी बात है उनके यहा भी दुराकारा दुर्गंधमय शरीरा दर्शनत एवाखिलपुरुषहृत्का नियमधोगामिन्तानस्वेन पशुसमा. इत्यादि शब्द लिखे हैं। इस गकसे दिगंबर मुनि लिये गये हैं हमारे यहां तीर्थ कर तक मुनि होते हैं सबको उन्होंने नरक गामी बत लाया है क्या यह अनुचित नहीं?

आपने जो यह लिखा है कि इस समय ऐसे शब्द ग्रंथोंमें रखने उचित नहीं निकाल फेंकना चाहिये. उसका उत्तर यह कि वर्तमानमें जो विद्वान हैं पहिले तो वे आपसके ग्रंथकारोंके वचनों पर ख्याल नहिं करते उन का यह कथन है कि एक ग्रंथकार दूसरेको कड़े शब्द कहता है सो उसके उन शब्दों पर न जाना चाहिये तत्व देखना चाहिये दूसरे आप क्या क्या शब्द निकालेंगे? आप इन कड़े शब्दोंको निकालना चाहते हो हैं। शृंगार आदि रस भी ग्रंथोंमें रखना अनुचित है इसलिये आप उन्हे निकालना चाहते हैं। कथा भी ऊटपटांग आप ब तलाते हैं उन्हें भी निकालना चाहते हैं फिर ग्रंथोंमें रह क्या गया? साफ यही कह दो कि ग्रंथ ही उठाकर फेंक देने चाहिये। आजकलकी सभ्यताके शब्दोंमें यह क्यों कहते है कि अमुक बात निकाल देना चाहिये। आपने दो एक जैनधर्मके कथा भागका ग्रंथ देखकर जिसप्रकार यह समझलिया है कि बस जैनागमका ज्ञान मुझे हो है उसी प्रकार आपने इतर मतका कोई छोटा ग्रंथ देखकर यह समझलिया जान पडता है कि उनमे जैनियोंके वास्ते कोई कड़े शब्द नहीं लिखे यह आपकी नितांत भूल है। आप जरा उनके ग्रंथोंको देखेंगे तब मालूम होगा जैनियोंके साथ उनका कैसा व्य वहार है।

आपने आत्मप्रबोधका श्लोक उद्धृत कर जो यह समझाया है कि आत्मप्रबोधके कर्ताने भी द्रोपदीको पंच भर्तारी पनेका विरुद्ध कथन कर दिया है सो क्या हरि वंश पुराणके ग्रंथ कर्ताका कामना इनपर भी लागू होगा? बड़ा विचित्र है। क्या आपने आत्मप्रबोधके कथनसे यह समझलिया कि उनको द्रोपदीका पंचभ र्तारी होना इष्ट है? धन्य है। मिस्टिरबाद! काव्यकार चाहे अध्यात्म चाहे अनध्यात्म कैसे भी काव्य बनावे ऐसे दृष्टांत जो सवथा धर्मविरुद्ध है वे अपने काव्योंमें उनका उल्लेख करते हैं और उनको वे सिद्धांत नहीं मानते। ऐसा ही आत्मप्रबोधके कर्ताने किया है। धर्म श र्माभ्युदय द्विसंधान यशस्तिलक आदि महा काव्योंमें भी महादेव आदि को कथा दृष्टांतोंकेलिये ग्रहण की गई है परंतु वे सिद्धांतकी बाते नहीं हो सकतीं। असली बात यह है ये बातें साहित्यके कानूनोंके समझनेसे ध्यानमें आसकती हैं वकील साहब जब ऐसी छोटीसी बात नहीं समझ सकते उससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि उन्हें कितना साहित्यका ज्ञान है?

बाल विवाह ।

देखो पाठक कैसी दुलहिन ।
सासू इसकी लगे महेलिन ।
दूल्हाके पीछे चलती यह ।
निश्चय लगती सा उसको यह ।
हुआ हमारा व्याह जानकर ।
दूल्हा जी चलते इठ इठकर ॥
किंतु पता नहिं यह है उनको ।
यही वह होगी विष मुझ को ॥
घर पतुआकासा यह खेला ।
लिया व्याहका समझ झमेला ॥

मात पिता अरु बालक बरने ।
किंतु पडेंगे आगे दुख सहने ॥
रोगी शक्ति हीन होता नर ।
मौत सवारी करती आकर ॥
बहुत जल्द यह बड़ा दोष है ।
बालव्याहमें सुख न लेश है ॥
दिखतीं लाखों विधवा नारी ।
वेश्या बन जिन कीनी ख्वारी ॥
लाखों ही घर होगये चौपट ।
छोडो बाल व्याहको अब झट ॥

ऊर्मिला।

लेखक पं० मक्खनलाल जैन, कलकत्ता।

बसंत ऋतुका मौसम है। रातके बारह बज चुके हैं। तमाम शहरमें प्रायः सन्नाटा छागया है। सिवाय गस्तीवानोंके अन्य किसीकी भी आवाज सुन नहि पडती परंतु उनकी आवाजसे भी यह साफ जान पड़ता है कि निद्रा देवीका कुछ कुछ प्रभाव उनपर भी जम चुका है। वे आलसके मारे अपनी जगहसे जरा भी आगे नहि बढते, इसलिये जाने आनेवालोंकी जांच करना उनकी शक्तिके बाहर हो गया है। कुछ कुछ रिम भिम रूपसे पानी भी बरस रहा है जिससे सोने वाले और भी गाढ़ नींदके खुर्राटे भर रहे हैं। एक युवति जिसकी उम्र १६ वर्षकी है अपने कमरेमे बैठी हुई है। इसका कमरा सड़कके किनारे पर है जिससे सड़कपर आने जाने वालोंकी आवाज अच्छी तरह इसके कान तक पहुंच जाती है। कुछ ही समय पहिले इसने अपना ट्रंक संभाल लिया है। कीमती जेवर स्वयं पहिन लिये है। बाकी मुहर जवाहिरात आदिक चीजें कमरमें भर ली हैं। [illegible] और भले आदमियोंकी पोशाक पहिन ली है, यह युवति किसी व्यक्ति की बाट जोह रही है। [illegible] आवाज आती है तो एकदम खिड़की पर आजाती है अपने मकानसे आगे गाड़ीके चले जानेपर फिर अपनी जगह पर बैठ जाती है और सामने रक्खी हुई लेंपकी ओर टकटकी लगाकर विचार सागरमें मग्न हो जाती है। इसका चेहरा देखनेसे इस बातका पता लगता है कि अब यह एक क्षण भी अपने कमरेमें रहना नहि चाहती। गाड़ीकी खड़खड़ाट सुनते ही इसके चेहरे पर कुछ खुशीके चिह्न झलक निकलते हैं किंतु गाड़ीके आगे चले जाने पर यह एक दम निराश हो कुम्हला जाती है। और कुछ गुन गुनाहट कर निकलती है।

वायदेके ठीक एक घंटे बाद गाड़ीका फिर शब्द सुनाई दिया। बहुत देरी हो जानेके कारण अबके युवति अपनी जगहसे न उठी। उसने विचार कर लिया था कि यदि यह गाड़ी मकानके नीचे ठहर गई तो उठूंगी वर्ना उठना व्यर्थ है। यह गाड़ी युवतीके मकानतक ही लाई गई थी इसलिये वह वहां ठहर गई। युवति भी यह समझ कि मेरे लिये गाड़ी आगई एकदम उठ कर खड़ी होगई किंतु न मालूम किस कारणसे उसका शरीर थर थर कांपने लगा। भय और [illegible] उसकी एक विचित्र ही दशा कर डाली। उसकी आखोंके नीचे झाई आगई जिससे वह एकदम पलंग पर गिर पड़ी। जो व्यक्ति उस गाड़ीको लाया था उसने उतर वह सीधा युवतीके कमरा की ओर चल दिया। कमरेके किवाड़ों को उसने दो तीन बार खट खटाया परंतु युवतीने न सुन पाया। चौथी बार युवतीके कान तक आवाज पहुंची पर किसी विलक्षण भयने उसे पलंगसे न उठने दिया। आगंतुक व्यक्तिके कई बार खट खटानेपर युवती बड़ी हिम्मतसे उठी और बड़ी मुश्किलसे दरवाजा खोल मुह फेर निगाह नीची कर दरवाजेकी ओटमे खड़ी हो गई। जिसप्रकार चोर और लुटेरेके डरसे मुहसे आवाज नहि निकलती उसीप्रकार उस पुरुषके आनेसे युवतिके मुहसे आवाज न निकल सकी। आगंतुक पुरुषने चलनेके लिये कहा परंतु युवतिने कुछ उत्तर न दिया। बहुत कुछ कहने सुननेके बाद जब उसने यह धमकी दी कि "यदि तुझे नहि चलना था तो ऐसा क्यों कराया ? बस अब जल्दी चलदो नहि तो सब बात यही खतम करे देता हूं" तब युवती चलनेको राजी होगई। सामान गाड़ी पर चढ़ा दिया गया, कंप २ कर पैरोंको रखती हुई युवती गाड़ीके पास आई। मेरा

सर्वस्व लुटा जा रहा है यह विचार बार बार युवतिके मनमें उठने लगा। गाड़ीमें बैठकर जिस समय उसने अपने आलीशान मकानकी ओर निगाह डाली उसका हृदय भर आया, गाड़ी चलदी। युवती बार बार अपने कमानकी ओर देख २ कर आखोंमें आंसू भर लाई गाड़ी स्टेशन पर आगई । मार्ग में आगंतुक पुरुषके बार २ समझाने पर युवतिका हृदय कुछ पक्का होगया वह बग्गीसे उतर पड़ी । आगंतुक पुरुष झट जाकर टिकट कटा लाया और ठीक ढाई बजे जानेवाली गाड़ी से दोनो व्यक्ति नेपालकी ओर रवाने होगये।

पाठक! आप अवश्य इस बातकी चितामें पड़गये होंगे कि वह युवती और आगतुक पुरुष कौन थे और यह मामला कैसे हो बीता? इसलिये हम इस बातका खुलासा किये देते हैं -

बंगाल-मोहन नगरमें बाबू यतीन्द्रनाथ बड़े भारी जमींदार हैं, यतीन्द्र बाबूको वर्तमानमें अच्छी प्रतिष्ठा है। धर्म कार्योंमें समय समय पर उदारता का परिचय देते रहते हैं। बाबू साहबके पुत्र कोई नहीं। एक मात्र कन्या है और इसीको इन्होंने पुत्र समझ लिया है। इस कन्याका नाम ऊर्मिला है। इस समय इसकी अवस्था ११ वर्षकी है। यतींद्र बाबू वैसे तो बड़े बुद्धिमान थे परंतु उनके मनमें यह बुरा आग्रह जम गया था कि चाहे वर छोटा ही क्यों न हो मैं अपने ही समान कसी जमींदार के लड़केको यह कन्या दूंगा इसलिये उन्होंने जिला रंगपुरके प्रतिष्ठित बाबू गिरींद्रकुमार के ज्येष्ठपुत्र महेन्द्रकुमारको यह देनी निश्चित करदी है।

रंगपुरमें बाबू गिरींद्र कुमार भी एक बड़े प्रतिष्ठित जमींदार हैं। गिरींद्र बाबूके पास जितना रुपया और जमींदारी है उससे उन्हें खूब मिजाजमें रहना चाहिये परन्तु मिजाज उनके पाससे भी नहिं निकला। वे बड़े सरल परिणामी, उदार, सदा त्यागी व्यक्ति हैं। दीनोंके उद्धार करनेमें धन खर्च करना वे सार्थक समझते हैं। एक दिन वे गाड़ीमें बैठकर शहर करने जा रहे थे कि शहरसे बाहर उन्हें एक ८ वर्षका रोता बच्चा मिला। गिरींद्र बाबूको उसपर बड़ी दया आगई। पूछने पर उसने अपने मा बापको मरा बतलाया। वे उसे घर ले आये और उसे पालने लगे। उसे कुछ पढ़ाया लिखाया जब वह बड़ा होगया तो घरमें खाने पीनेका सामान लाने लेजानेका प्रबंध उसके हाथमें सौंप दिया। तब तक बाबू साहबके कोई सन्तान न थी कुछ दिनके बाद एक लड़का हुआ। लड़के के जन्मसे उन्हें बड़ी खुशी हुई। उस लड़के के बाद दो लड़के और एक कन्या भी हुई। जब बड़ा लड़का करीब आठ वर्षका हुआ तो बाबू साहबके घरवाले रात दिन विवाहकी रट लगाने लगी। बाबू साहबने बहुत समझाया कि बालकपनका विवाह अत्यंत हानिकारक है परन्तु उनकी एक बात भी न सुनी। आखिर बाबू साहबको घरवालीकी सुननी पड़ी। अपने ज्येष्ठ पुत्र महेंद्रके विवाहका उन्होंने पक्का विचार करलिया।

जिस प्रकार अन्यजातिओंमें लड़कीके बापको कुछ रुपये देनेकी प्रथा जारी है उसप्रकार बंगालमें लड़के के बापको रुपये देने पड़ते हैं। गिरींद्र बाबू भी जमींदार और प्रतिष्ठित पुरुष थे इसलिए यतींद्र बाबूने उन्हें पचास हजार देना स्वीकार किया। महेन्द्रकी उम्र उस समय ८ वर्षकी थी और लड़की की ११ वर्ष की इसलिये गिरींद्र बाबूने उस लड़कीसे महेन्द्रका विवाह करनेकी स्वीकारता न दी परन्तु घरवालीकी यह बात सुन कि—"क्या है यदि वह कुछ बड़ी आवेगी तो काम काजमें मदद देगी अच्छी लगेगी खुराक खाकर लड़का भी जल्दी समर्थ हो जायगा"

उन्हें विवाहकी स्वीकारता देनी पड़ी। बड़े आनन्दसे विवाह होगया। वह घरमें आगई। परन्तु ज्यों ज्यों वह समर्थ होती गई महेन्द्रकी शक्ति घटती गई। कच्ची अवस्थामें विषय भोग भोगनेसे वह सैकड़ों रोगोंका घर बन गया। गिरींद्र बाबूसे द्रव्यकी कमी न थी इसलिये बहुतसे हकीम डाक्टरोंने महेन्द्रका इलाज किया परन्तु उसके शरीरसे रोग नहिं गए। वह नितांत असमर्थ होगया और उसे अपनी स्त्री विष भरीसी मालूम होने लगी।

यद्यपि महेंद्रकी स्त्री उर्मिलाका पिता धर्मात्मा जमींदार था और उसने अपनी पुत्रीको कुछ २ धर्म शिक्षा दी थी परंतु कामके उग्र वेगके सामने बहुत थोड़ी धर्म शिक्षा काम नहिं देती इसलिये उसके परिणाम चंचल होने लगे. उसने अपने को बहुत सम्भाला परन्तु न सम्भल सकी। आखीरको गिरींद्र बाबूके घरमें वह ... अतएव ... जिसका नाम नलिन था और रसोईका प्रबंध जिसके हाथमें था उससे ऊर्मिला का मेल जोल हो गया और वे दोनों गुप्तरूपसे अपने मन माने करने लगे। कुछ दिन बाद गिरींद्र बाबूकी घरवालीको जब इस षट् मंत्रका पता चला तो उसने गिरींद्र बाबूसे कहा। गिरींद्रको बड़ा दुःख हुआ। घरवालीकी भर्त्सना पर बहुत कुछ पश्चात्ताप कर। उन्होंने नलिनको रसोईका प्रबन्ध करना छुड़ा अन्य कार्य सुपुर्द कर दिया। नलिनको बड़ा दुःख हुआ परन्तु नलिनकी वह वासना न छूट पाई वह रोज न जाकर जब कभी मौका पाकर ऊर्मिलाके पास जाने लगा। निरंतरके भोग विलासमें विच्छेद पड़ जानेके कारण नलिन और ऊर्मिलाको बड़ा कष्ट होने लगा इसलिये उन दोनोंने परदेश जाना निश्चित कर लिया वही नलिन आज बारह बजे गाड़ी लाकर ऊर्मिलाको उसमें बैठाकर रेलवे पर आया है और दोनोंके दोनों नेपालको ओर रवाने होगये हैं। यद्यपि कुछ धर्मकी शिक्षाने ऊर्मिलाको चलते समय रोकनेका प्रयत्न किया परन्तु परिपूर्ण न होनेसे वह अपना काम न कर सकी। प्रातःकाल नलिन और महेंद्रको स्त्रीको लापताई का पता चला, इधर उधर उसे तलाश किया पर कहीं पता न चला। अपने ऊपरसे बलाय टल जाती देख महेन्द्र बड़ा खुश हुआ, उस खुशीमें उसे अपनी इज्जतके धक्केका भी खेद न हुआ। अब पाठक ! जरा नलिन और ऊर्मिलाका भी चरित्र सुने -

नेपालमें जाकर नलिनने एक बहुत सुन्दर हवादार मकान भाड़े लिया ऊर्मिला और वह दोनों आरामसे रहने लगे। ऊर्मिलाके पास जो कुछ ... जवाहिरात थी बेच बेच २ कर नलिन खूब खर्च करने लगा। आलसी विलासी नलिन रात दिन घरमें ही पड़ा रहता था जरा भी रोजगार की फिक्र नहीं करता था। धीरे धीरे जवाहिरात मुहरोंके खतम होजानेपर ऊर्मिलाका जेवर बेचकर काम चलाया गया, अन्तमें वह भी खतम हो गया नलिनने ऊर्मिलासे और जेवर आदि मांगा तो उसने मना करदी। अब वह देती भी कहां से? नलिन और ऊर्मिलामें झगड़ा होने लगा। ऊर्मिला कुछ कमानेकी कहे तो नलिन उसे पीटनेको तयार होजाय जिससे वह बिचारी चुप रहजाय। अन्तमें वे खाने पीनेसे मुहताज होगये तो नलिनने ऊर्मिलाको छोड़ दिया और वहां से कहीं वह चला गया।

नलिनको भी अपनेको छोड़ता देख अब ऊर्मिलाको दुःख ... न रहा उसको अपनी पहिली हालत याद आई और बाप और श्वसु

रकी इज्जत और रहासाईका ... कर बहुत रोने पछिताने लगी परंतु वह सब व्यर्थ था। क्योंकि वह समझती थी कि जो मैंने घोर दुष्कर्म किया है इससे मैं किसीको मुह दिखाने लायक न रही। दो महिनाका किराया चढ चुका था। मकान वालेने उससे मागा परंतु उसके पास होता तो वह देती। जब मकान वालेने इसकी असली हालत जानी तो उसे बड़ा ... हुई। उसने उसी समय उसे मकानसे निकाल दिया जिससे ऊर्मिलाको अत्यन्त कष्ट मालूम पड़ने लगा।

ऊर्मिला सुन्दरी अधिक थी। जिस समय वह अपने मकानमें रहती थी तभी कुछ बदमाशोंकी निगाह उसपर पड़ चुकी थी परंतु उस समय वह उनके काबू में नहीं आई थी इस समय जब वह सर्वथा निराश्रय होगई तो बदमाशोंकी बन पड़ी। वे उसे लेगये और मनमाना करने लगे। ऊर्मिलाको उनके यहां अच्छा नहीं लगा वहांसे चली आई और विषय लालसाके शांत न होनेसे वेश्या हो गई। उसने नेपाल छोड़ दिया कलकत्ते आ गई। कुछ दिन बाद उसको अनेक रोगोने दबालिया उसका सारा शरीर सड़ गया और कुत्तेकी मौत मरने लगी।

॥ जैन जातिरुदन ॥

लेखक — ... लाल न्यायतीर्थ बनारस

हाय अब क्या विधि मुझपर वाम।

जो थे मेरे पुत्र अलौकिक विद्या धीयागार ॥
सत्यप्रिय निज जाति हितैषी करते धर्मा ... र।
जिन्होंका देश विदेशो नाम—
हाय अब क्या विधि मुझपर वाम ॥ १ ॥

कुंद कुंद भगवान कहां हैं जिनवाणी ...
और समंतभद्र प्रभु कहं हैं विद्वद्गण अवतंस।
जिन्होंने रचे ग्रन्थ गुणधाम।
हाय अब क्या विधि मुझपर वाम ॥ २ ॥

उमास्वामि न ... प्रकाशक ... नंद।
वादिराज अकलंक कहां हैं जिनका ज्ञान ... मंद ॥
जिन्होंने किये अलौकिक काम।
हाय अब क्या विधि मुझपर वाम ॥ ३ ॥

इत्यादिक आचार्य कहां हैं ... वीर।
शत्रु देख जिनको यों भगते ज्यों आंधी ... ।
अकेले करतेथे संग्राम—
हाय अब क्याविधि मुझपर वाम ॥ ४ ॥

वही वीर सन्तान आज हा गृहिणी सन्मुख वीर।
कर मटकाना नाच दिखाना और दिखाऊ धीर।
यही है सतयुगके श्रीराम—
हाय अब क्याविधि मुझपर वाम ॥ ५ ॥

कहो दलालो करं व्याहकी बने तुम्हारे दूत।
कन्याका बलिदान करें हम सच्चे आय सुपूत ॥
यही है याज्ञिक जनके काम—
हाय अब क्याविधि मुझपर वाम ॥ ६ ॥

मनमाना खंडन कर डाले दिखलावे पांडित्य।
सत्य समीक्षा नाम धरावें यही ... ॥
देखलो इनके काम तमाम—
हाय अब क्या विधि मुझपर वाम ॥ ७ ॥

प्रेम भंग ... हमारी जैनधर्म हो नाश।
विधवा ... करेंगे कोई प्रकतलाश ॥
... बहुत लगेगे दाम—
हाय अब क्या विधि मुझ पर वाम ॥ ८ ॥

अब हो दोनो बीच लड़ाई है विष पतिको मार।
... विधवा ... बैठे ... कोई नार।

किसीविधि चले हमारा काम—
हाय अब क्या विधि मुझ पर वाम ९ ॥
हन्त वीर सन्तान यही क्या यही धर्म आधार।
तब फिर इसमें शंका कैसी हुआ धर्मका छार ॥
अरे भ्रम छोड़ करो कुछ काम।

न होवे जिससे विधि अब वाम ॥ १० ॥
विद्याका प्रकाश फैलाओ हरो हमारी पीर।
माताकी इस अश्रुधारको पोंछ बनो सब वीर।
काम होवे अरु होवे नाम—
न होवे जिससे विधि अब वाम ॥ ११ ॥

विगत आमदनी श्रीपद्मावतीपुरवाल परिषद मालवा माह फाल्गुन वीर निर्वाण सम्वत २४४५

२५) श्रीयुत देवबगसजी साहेब धामदा
२०) श्रीयुत ऊंकारजी साहेब लसूडल्या सेम्व
२०) श्रीयुत मोतीलालजी झागरया
५) ,, गनपत लालजी जामनेर
६) ,, सेवारामजी जोरावरजी जामनेर
५) ,, बालमुकंदजी दिगंबरदास सीहोर(छा.)
२) ,, मोतीलाल बगलीलालजी जामनेर
२) ,, बालमुकंदजी गोपालजी जामनेर
२) ,, मन्नुलालजी पाडल्या
२) ,, सेवारामजी जामनेर
२) ,, देवबगसजी तिलावद
२) ,, सेवारामजी देवालालजी सतपीपल्या
१) ,, छोगमलजी चाकरोद
१) ,, मनसुकलालजी दूधडिया
१) चन्दुलालजी शुजालपुर
१) ,, कंचनलालजी चाकरोद
१) ,, भवानीरामजी तलैन
१) ,, हजारीलालजी गनपतलाल खमलाय
१) ,, बूलचन्दजी माऊखेडी
१) ,, कुंवरजी चंपालाल भवरा
१) श्रीयुत हरलालजी मथरामलजी खमलाय

१) ,, भैरवगसजी केशरीमलजी शुजालपुर
१) ,, शंकरलालजी चाकरोद
१) ,, सेवारामजी बरनावद
१) ,, भवानीरामजी जामनेर
१) ,, भूचरा[illegible]जी माऊखेडी
१) ,, कन्हैयालालजी हीरालाल कोठडी
१) ,, हीरालालजी पन्नालालजी ,,
१) ,, मथरामलजी मैना
१) ,, प्यारेलालजी घनखेडी
१) ,, पन्नालालजी सुन्दरलालजी ऐमला
१) ,, मुन्नालालजी कन्हैयालालजी नगर
१) ,, दोलतरामजी बेंदरमलजी मैना
१) ,, मुन्नालालजी हजारीलालजी न[illegible]
१) ,, गेंदालालजी भभराम
१) ,, [illegible]छारामजी लाडखेडा
१) ,, सुकलालजी बुडलाय
१) ,, भवानीरामजी किलोदा
१) ,, सेवारामजी हजारीलालजी कनाडिया
१) ,, सेवारामजी गोपालमलजी हराजखेडी
१) ,, ऊँकारजी बोडा
१) ,, जंवरचन्दजी हडलाय

वर्तमान अवस्था का एकचित्र।

("भारतीय" —अटरू)

(१)

है प्रबल इच्छा कि जगमें मान हो अति नाम हो।
बैठे रहें, हम हैं धनिक बस कामसेही काम हो ॥
जाति-उन्नति की सभामें यदि चला चाहा कहीं।
तो प्राण लेती है सुखा 'चन्दे' की आशंका वहीं ॥

(२)

क्या करें? अब फंसगये, जावें किधर? पथ है कहां?
अह! हर्ष से क्या एक पैसा भी दिया जाता यहाँ
हाँ बात है यह दूसरी ही—नाच है—यह रंग है।
उड़ जाय लाखों भी तऊ इसका न कुछ आतंक है ॥

(३)

लोक लाज न मानती है, नाम भी हो जायगा।
दस पाँच देनेसे, मगर घाटा अवशि होजायगा ॥
लो! 'धर्म वीर' बने! हुई 'वाह वाह' चारों ओर से
धन्य! मंडप गूँजता है 'धन्य' के ही शोर से ॥

(४)

सबके वदन हैं हर्ष युत लाला ने "पन्द्रह सौ" दिये।
बस, इसी आमोद में हमने सभापति वे किये ॥
व्याख्यान, या निज जीभको वे कष्ट, मुंह पर दे रहे?
लो योग्यता उनकी वचन उनके कर्मोसे कह रहे?

(५)

यदि हिचकते ठहरते यों त्यों वह पूरा होगया।
तो जन्म भर के पाप मानो आज ही वह धोगया ॥
मुख्य कारण है यही हम इसमें मस्त होते नहीं।
होते सभाओंके सभामें दीखते सोते वहीं ॥

(६)

यदि बाल्य-वृद्ध-विवाह के होवें प्रचारक आज ये।
आश्चर्य क्या? कहला रहे हैं आपके शिरताज ये ॥
हे जाति, यदि तू चाहती हो, तो इन्हें खुश आज रख।
कोई न कुछ इनको कहे? प्रति लेखनी को बांध रख ॥

(७)

अब है समय कुछ और ही अब आंख खोलो देखलो।
काम बिन सब नाम होगा धूलि जग में लेखलो ॥
धनिकगण! तन मन व धन से जाति की सेवा करो,
आर्थिक दरिद्र दशा तुरंत ही जाति की वीरो हरो।

(८)

नाम भी होगा तभी संमान भी होगा तभी,
जातीयताका भाव मनमें जग उठेगा जब कभी।
जैसे योग्य हो, सेवा करो, बस जाति के हित ही जियो।
सम भावसे मिलि "भारतीय" बस प्रेम अमृत ही पियो ॥

घोंटू मार दिया।

(ले०—"भारतीय" अटरू)

पचास सालमें केवल हमने अपने पाँच विवाह किये।
छठा अभी कर डालें, वरनें जाने अधिकजिये न जियें ॥
बुड्ढे, बच्चेसे भी लघु बनि, दूल्हा बनकर आज चले।
बरात 'में' मिष्टान्नके कारण, सभीलोग हैं जुड़े भले!!

बूढ़ी ऊँट गलेमें बंधकर, अपने रँग पर जब आई।
कुलका कालो 'बदन किया' तब बुड्ढेकी मति पछिताई ॥
बोला, "जातिकी नैयाका कैसा मैंने अपकार किया—
'भारतीय'-डगमग लखि चलते २ घोंटू मार दिया

सम्पादकीय वक्तव्य।

[illegible]का रुपया।

पद्मावती पुरवाल जातिमें यह प्रथा जारी है कि लड़कावाला जिससमय लड़कीवालेके यहां व्याह करने आता है उस समय लगुन दरवाजेपर लड़की वालेकी तरफसे कुछ रुपया दिया जाता है और लड़कावाला उसे और अपनी ओरसे कुछ ज्यादह मिलाकर मंदिरजीको दे जाता है। यद्यपि यह रुपया पंचोंको सुपुर्द कर देना चाहिये परंतु कुछ दिनसे कुछ गावोंमें यह प्रथा जारी होगई है कि लड़कीवाला ही उस रुपयेको ले लेता है और अपने खचमें ले आता है। पंचोंके मांगने पर यदि उसकी इच्छा हुई तो रुपया दिया वर्ना साफ मनाई कर देता है और उसे यह समझकर कि यह मेरा ही है हजम कर डालता है। बहुतसे गावोंमें बहुतसे मनुष्योंके पास अभी रुपया बकाया है वे देना नहिं चाहते। बहुतसे हजम करके मर चुके है। तथा वहांके मंदिरोंकी बड़ी बुरी दशा होगई है। फूटे पड़े है। उनमेंअच्छी तरह पूजाके वर्तन तक नहीं। इसलिये जिन गावोंमें जिन जिन महाशयोंके पास रुपया बकाया हो वे मंदिर का देवें मंदिरोंकी दुर्दशाकर वृथा पापका बंध न करें। यह निर्माल्य धन है इसका अपने स्वार्थके लिये स्पर्शतक न करना चाहिये। वहांके पंचोंको चाहिये कि वे उस रुपयेको वसूल करें। और जिस निमित्तसे वह रुपया आया हो उसीमें उसे खर्च करें। मुफ्तके रुपयोंसे किसीका कल्याण नहिं होता बीसों नौहोंकी कमाई से ही कार्य चल सकता है।

अजीब नाराजी।

दिल्ली—धर्मपुरामें पं० [illegible] लालजी जिनवाणी करते है। जिस समय उन्होंने पोथियोंकी दुकान जारी की थी उस समय पद्मावती पुरवालको सहायताके लिये आपने ५) रुपया भेजा था, किंतु जब दूसरे सालका अंक उनको सेवामें भेजा गया तो उन्होंने साफ मना करदी और यह नाराजी प्रगट की है कि जब तक उपदेशक विभाग और विरोध नाशक विभाग ठीक न होंगे और अपना कार्य न करेंगे तब तक मैं पद्मावती पुरवालका ग्राहक नहीं बन सकता। हमें यह जान बड़ा आश्चर्य हुआ कि पद्मावती पुरवाल और उपर्युक्त दोनों विभागोंसे क्या संबंध ? यदि उन दोनो विभागोंके संचालक जरा भी ध्यान नहिं देते तो उसमें पद्मावती पुरवालके संचालकों पर क्यों नाराजी ? यह तो ऐसा होगया कि अपराध है दूसरेका और दण्ड मिल रहा है दूसरेको। हम पंडितजीसे प्रार्थना करते है कि वे पद्मावती पुरवाल पर इस प्रकार व्यर्थकी नाराजी न दिखावें। पद्मावती पुरवालकी उन्नत दशा मे जिसप्रकार अन्यलोग हर्ष प्रगट कर रहे हैं वैसा वे भी हर्ष मनावें। उक्त दोनों विभागके संचालकोंसे पत्र व्यवहार करें। उक्त दोनों विभागोंके संचालकोंसे हमारी भी यह प्रार्थना है कि वे शीघ्र दोनों विभागोंका ठीक प्रबन्ध करें। आशा है हमारी प्रार्थना पर ध्यान दिया जायगा।

सूरजभानकी लीला।

दूसरी वर्षके दूसरे अङ्कसे बाबू सूरजभानकी लीला निकल रही है और यह बराबर निकलती रहेगी। पाठक इसका मनन करें और जो भी इसके अन्दर उन्हे अनुचित जानपडे हमें सूचनादें।

समालोचना—

जैसवाल जैन—यह पत्र बराबर दो वर्षसे निकल रहा है, इसके दूसरो वर्षके तीन अङ्क हमारे पास आये हैं। लेख इसके समयोपयोगी ओर जात्युपयोगी है। इसमें धार्मिक लेखोंको और स्थान मिलना चाहिये। इस पत्रके आनरेरो सम्पादक बाबू महेंद्र कुमार हैं । हमारे पास आनेवाले उनके प्राइवेट पत्रोंसे यह पता लगता है कि वे एक प्रयत्नशोल व्यक्ति हैं। हम सम्पादकजीसे अनुरोध करते है कि वे इस पत्रको धार्मिक लेखोंसे अवश्य विभूषित करते रहें। जैसवाल जातिमें उपरों-चिया और नरोंचिया दो भेद है उपरोंचिया लोग इस पत्रसे घृणा करते है क्योंकि उनका ख्याल है यह पत्र नरोंचियोंका है। किंतु उनका वह ख्याल अयुक्त है उपरोंचिया नरोंचियाका इसमें कोई जिक्र नहीं, यह तमाम जैन समाजके पढ़ने योग्य पत्र है, उपरोंचिया महाशयोंको अवश्य इसका ग्राहक होना चाहिये—अन्य जैनियोंको भी इसका ग्राहक होना बहुत जरूरी है। छपाई सफाई अच्छी है । वार्षिक मूल्य सिर्फ १) और सभासदों-से ॥) है मिलने का पता—

जैसवाल जैन—कार्यालय मानपाड़ा, आगरा।

खंडेलवाल जैन—यह पत्र गौतम पुरा मालवासे प्रकाशित होता है इसके सम्पादक बाबू जवरचंदजी सेठो है। खण्डेल वाल जातिके लिये यह बहुत उप-योगी पत्र है। इसमें लेख समाज सुधार विषयक अत्युपयोगी रहते हैं । धार्मिक लेखोंको अवश्य इसमें स्थान मिलना चाहिये हर एक खण्डेल वाल महाशय को इसका ग्राहक होना चाहिये. छपाई सफाई ठीक है मूल्य इसका केवल १) है। मिलने का पता—

खंडेलवाल जैन कार्यालय गौतमपुरा मालवा।

आसपासके ग्राम वासियों और दूर २ से इलाज करानेके लिये आये हुए रोगियोकी भी प्रतिदिन परीक्षाकर चिकित्साकी जाती है। आराम हुए रोगियोंके सैकडों प्रशंसा पत्र मौजूद है। इस औषधालयमें हैजा, प्लेग, इन्फ्लूएंजा, राजक्षमा, संग्रहणी, सन्निपातादि अनेक कठिन व साधारण रोगोंकी अनुभवी तत्काल गुणकारी औषधियां हर समय तैयारकी जाती है पशुओंके रोगोंकी भी औषधियां तैयार है। ग्वालियर स्टेटके अनेक उच्च कर्मचारियोंने यहांका कार्य निरीक्षण कर बडा ही संतोष प्रगट किया है। यहांका कार्य अति उपयोगी समझकर श्रीमत श्री १०८ हिज हाईनेस महाराजा सिंधिया आलीजा बहादुर ग्वालियर गवर्नमेंटने श्रीमान् एन एन बुल सा० एम. ए. (केन्टव) केसर हिन्द इनस्पेक्टर जेनरल एजुकेशन व म्युनिसिपालटीजको ता० १२।१।१९ को निरीक्षणार्थ भेजा था जिनके द्वारा उक्त श्रीमंत महाराजा सा०ने यहांकी अन्तरंग व्यवस्था ज्ञात कर वडनगरमें एक बडा अस्पताल होते हुए भी इस परोपकारी संस्थाको ३०) तीस रुपया मासिक सहायता प्रदानकी है अतः भारतके सम्पूर्ण राजा महाराजाओं और धनिक पुरुषोंसे निवेदन है कि वे उक्त श्रीमंत महाराजा सा०का अनुकरण कर इस सर्वोपयोगी औषधालय को अपनावे और शक्ति अनुसार मासिक,वार्षिक इकमुश्त सहायता प्रदान कर इसका कार्य स्थायी कर देवे ताकि भारतके ग्राम २ घर २ में यहां की औषधियोंका विनामूल्य प्रचार होसके। औषधिदान शरीर निरोगताका प्रधान कारण है और उभयलोकमें यश और सुखका देनेवाला है। अतः यहांकी औषधि मंगाकर भी प्रचार करें

भगवानदास जैन महामंत्री

पत्र व तारकापता जैन औषधालय बडनगर(उज्जैन)

Regd. No. C. 888

आवश्यकता।

श्रीपद्मावतीपुरवाल परिषद् मालवाकी श्रीपद्मावती दि: जैन पाठशाला महौर छावनीके लिये, प्रवेशिका पास व उसकी योग्यता रखनेवाले, एक सुयोग्य अध्यापककी आवश्यकता है मासिक वेतन १५) से २०) तक दिया जावेगा। पद्मावती पुरवाल और ४० वर्षसे ऊपरकी वय वाले हों तो अच्छा, जो महाशय आना चाहें वे निम्नलिखित पतेपर दरखास्त भेजें-मन्त्री आनरेरी सेक्रेटरी, श्रीपद्मावती दि: जैन पाठशाला, छावनी महौर ठि: नं०८७ बजाजखाना

कविराज हजारीलालजी वैद्यशास्त्री आमावालेने एक नवीन निर्मदा पूजन बनाई है जो महाशय कोई पूजन संग्रह आदि छपवावें वे कृपाकर मुझसे उक्त पूजन मंगवाकर उस संग्रहमें छपवा देवें।

विनीतः—बालमुकंदजी दिगम्बरदास, छावनी मोहौ

दु: नं० ८७ बजाजखाना

धन्यवाद।

भंडारा निवासी से० बाजीरावजीका सुपुत्री चिरंजीविनी रत्नी बाईका विवाह श्रीयुक्त पं० मक्खनलालजी न्यायालंकार चावलीके साथ होगया है। उक्त सेठ साहबने पद्मावती पुरवालके लिये ५) को सहायता प्रदानकी है। इस समयोपयोगी दानसे उक्त सेठ साहबको धन्यवाद देते हुए हम अन्य महाशयोंसे भी प्रेरणा करते हैं कि वे भी इसी प्रकार पद्मावती पुरवाल पर कृपा करते रहें।

श्रीधन्यकुमार,

आनरेरी मेनेजर।

श्रीलाल जैनके प्रबंधसे जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,
८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार कलकत्तामें छपा।

पद्मावती परिषद्का सचित्र मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल ।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा चित्रोंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

विषय सूची ।

वर्ष. २ अंक. ६

वार्षिक मू० २)

आनरेरी मैनेजर—
श्रीधन्यकुमार जैन, 'सिंह'

१ अंक का ≡)

पद्मावती पुरवालके नियम।

१ यह पत्र हर महीने प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य २)रु० पेशगी लिया जाता है।

२ इस पत्रमें राजविरुद्ध और धर्मविरुद्ध लेखोंको स्थान नहिं दिया जाता।

३ इस पत्रके जीवनका उद्देश्य जैन समाजमें पैदा हुई कुरीतियोंका निवारण कर सर्वज्ञप्रणीत धर्मका प्रचार करना है।

४ विज्ञापन छपाने और घटवानेके नियम निम्नलिखित पतेसे पत्र द्वारा तय करना चाहिये।

श्री "पद्मावतीपुरवाल" जैन कार्यालय

नं० ८ महेंद्रबोस लेन, श्यामबाजार, कलकत्ता।

संरक्षक, पोषक और सहायक।

२५) ला० शिखरचंद्र वासुदेवजी रईस, टूंडला।
२५) पं० मनोहरलालजी, मालिक—जैनग्रंथ उद्धारक कार्यालय, बंबई।
२५) पं० लालारामजी मक्खनलालजी न्यायालंकार चावली।
२५) पं० रामप्रसादजी गजाधरलालजी (संपादक) कलकत्ता।
२५) पं० मक्खनलालजी श्रीलाल (प्रकाशक) कलकत्ता।
२५) सेठ रामासाव बकारामजी रोडे, वर्धा।

१२) पं० फुलजारीलालजी धर्माध्यापक जैन हाईस्कूल, पानीपत
१२) पं० अमोलकचंद्रजी प्रब-धकर्ता जैनमहाविद्यालय, इंदौर।
१२) पं० सोनपालजी जैन पानीगांव वाले, पाढम।
१२) पं० वंशीधर खूबचंद्रजी मंत्री जैनसिद्धांतविद्यालय, मोरेना
१२) पं० शिवजीरामजी उपदेशक बरार मध्य प्रादेशिक दि० जैन सभा
१२) पं० कुंजविहारीलालजी जैन अटोवा निवासी।

५) ला० धनपतिरायजी धन्यकुमार 'सिंह' (मैनेजर) उत्तरपाड़ा।
५) पं० रघुनाथदासजी रईस, सरनौ (एटा)
५) ला० बाबूरामजी रईस बीरपुर।
५) ला० लालारामजी बंगालीदासजी पेपर मर्चेंट, धर्मपुरा-देहली।
५) ला० गिरनारीलालजी रईस, टेहरी (गढवाल)
५) शेठ बाजीराव देवचंद्र नाकाडे, भंडारा (वर्धा)

नोट—जिन महाशयोंने २५) रु० दिये हैं वे संरक्षक, जिनने १२) दिये हैं वे पोषक और जिनने ५) दिये हैं। वे सहायक हैं। इन महानुभावोंने पिछली सालका घटा पूराकर इस पत्रको स्थिर रक्खा है। आशा है इससाल भी वे कृपा दिखलावेंगे। पत्रका आकार आदि बदल जानेसे अबकी बहुत घटा पडेगा पर हमारे अन्य २ भाई भी ऊपर लिखे तीन पदोंमेंसे किसी एक पदको स्वीकार कर लेनेकी कृपा दिखलावेंगे तो आशा है अवश्य हम सफल प्रयत्न होंगे।

पद्मावतीपरिषद्‌का मासिक मुखपत्र ।

पद्मावतीपुरवाल

"जिसने की न जाति निज उन्नत उस नरका जीवन निस्सार"

२ रा वर्ष } कलकत्ता, भाद्रपद, वीर निर्वाण सं० २४४५ सन १९१९. { ६ ठा अंक

सुधारक बाबू ।

है यथार्थ श्रद्धान और सद्ज्ञान जिन्हे नहिं निज मतका ।
समझ निडर वक्ता अपनेको शरण गहें वे उत्पथका ॥
देखें अपने मनकी नीती कथनी यदि वे परमतमें ।
करें पुष्टि तब तन अरु मनसे दोष लगावें निज मतमें ॥
नहीं दिगंबर मतमें मानी शूद्र और स्त्रीजन की—
मोक्ष, तथापि अज्ञानी जन सिद्ध करें मुक्ती उनकी ॥
ज्ञानवृद्ध, आचार्य वर्गकी नहीं युक्तियां अपना कर ।
बेपेंदीके लोटा सम वे ढुलते फिरें भूमि ऊपर ॥

प्रतिमा पूजन ।

(लेखक—श्रीयुत पं० अजितकुमार कौंदिया, मुरैना)

संसारकी वारगतिमें बहुत परिवर्तन होगया है प्रत्येक क्षणकी गति विलक्षण रूपसे परिणमन करती हुई दृष्टिगोचर होरही है। यह सारी बात संसरण (परिवर्तन, शील संसारके लिये अत्यावश्यक हैं इसी नियमसे नियमित होकर धार्मिककार्य भी अपना स्वरूप बदल रहे हैं।

परिवर्तन किसी पदार्थका हितकर और किसी का हानिकारक होता है। यह किसीसे अज्ञात नहीं है। तदनुसार ही हमारे भारतवर्ष और हमारी समाज में विपरीत नामके धारक आर्यसमाज द्वारा कुछ समयसे देवालयोंके वैयर्थ्यकी रुचि साधारण व्यक्तियोंके हृदयमें तथा कुछ बाबू पार्टी के विद्वानोंके हृदय में उत्पन्न होगई है और वह वाचनिकरूपसे परिणमन कर रही है।

इनका कहना है कि जड़ पत्थरकी मूर्ति चैतन्य रूप हमारी आत्मापर आनन्द प्राप्तिके कारण शुभ कर्मोंके आस्रवको कैसे कर सक्ता है. जैनसिद्धान्तानुसार जब हमारा आत्मा भी परमात्माके समान है तब अन्य किसी परमात्माकी पत्थरमें कल्पना कर उसकी पूजना कहांतक ठीक है? और यदि उस पत्थरके दर्शनही से परमानन्दकी प्राप्ति है तो उसके समीपमें उड़नेवाली तथा रहनेवाली मक्खियोंको भी सुखकी प्राप्ति क्यों नहीं होती आदि। परंतु ये उन लोगोंके प्रश्न विचार शीलता प्रगट नहीं करते है। क्योंकि थोड़ी भी गांठ की बुद्धि रखनेवाले मनुष्यको इनका समाधान स्वयं हो जाता है।

संसारका नियम है कि प्रत्येक पदार्थ आत्मा पर अपना कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य डालता है। वह चाहे जड़ हो चाहे चेतन। और उसी प्रभावसे आत्मा तदनुसार परिणमन करता है। जैसे एक मनुष्य प्रत्येक दिन एक सिंहके चित्रको ध्यानपूर्वक देखता है तो उसके शरीरमें सिंहकीसी क्रूरता तथा बलवत्ता कुछ न कुछ अवश्य प्रतिदिन आता जाती है। यह बात आपको मालूम ही है कि गर्भिणी स्त्रीको जैसी सन्तान उत्पन्न करनी हो वैसे चित्र वह अवश्य देखती रहे यदि उसके शयनागारमें काले बौने पुरुषके चित्र हैं तो उसके देखनेवाली वह स्त्री अपने तथा अपने पतिके गौर वर्ण और सरलस्वभावादि होने पर भी काले, दुष्ट तथा बौने पुत्रका प्रसव करेगी क्योंकि उस चित्रका असर उसके गर्भ पर नित्य पड़ता रहा है अतएव उसका गर्भ उस रूपमें परिणत होगया है। यह बात प्रसिद्ध ही है कि नैपोलियनकी माताने वीरपुत्र उत्पन्न करनेकी इच्छासे गर्भकी हालतमें वीर पुरुषोंके चित्र देखकर तथा उनके जीवनचरित्र पढ़कर अपने गर्भ पर वैसा असर डाला था जिससे कि ऐसे पुत्रका प्रसव किया जिसने यूरोपमें अपनी जयका झण्डा उड़ाया था। आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि एक पुरुष बहुमूल्य रत्नजड़ित सुवर्णके हार, मुकुट आदि भूषणोंको लिये हुए एक अटवीमें जारहा है उस समय उन जडरूप आभूषणोंका प्रभाव उसकी आत्मा पर कैसा पड़ता है। उसको आत्मा डाकू आदिसे भयभीत हो जाती है जिससे कि उन आभूषणोंके ले चलनेके आनन्दको आफत मानकर लुटेरों आदि द्वारा लुट जानेके भयसे दुःखी होता है।

यह बात जंगलकी रही। किन्तु घर भी मनुष्य धन-धान्य इत्यादि वस्तुओंकी चोरी डकैतीके भयसे भीत

होकर दुःख, चिन्ताओंसे अपने शरीरको कृश कर देते हैं। आदि अनेक आत्मामें भयको पैदा करनेवाले कारणों के दृष्टान्त हैं। एवं एक अश्वारोही वीर (घुड़सवार) भाला, तलवार, बन्दूक आदि अस्त्रशस्त्रोंसे वीरवेषमें सुसज्जित हो एक गहनवनमें बड़ी निर्भीकता [निडरता] से गमन करता है। वहां पर उसको आत्मा पर निर्भयतारूप असरको पैदा करनेवाले घोड़ा, तलवार, भाला, बन्दूक चेतन अचेतन दोनों पदार्थ हैं॥

आत्माके परिणाम पलटनेका कारण यह है कि आत्माका उपयोग एक समयमें एक विषय पर ही लगता है उसके उपयोगको अपने २ विषयमें लगानेके लिये इन्द्रियां हमेशा तयार रहती हैं जिससे कि आत्मा उस उपयोगके अनुसार परिणमन करता रहता है। जैसे एक मनुष्य किसी चित्रको ध्यान लगाकर देख रहा है तो उसका उपयोग उस चित्रमें लग रहा है। इसलिये उस चित्रका अच्छा या बुरा असर उसकी आत्मा पर आजाता है। इसके उदाहरण पीछे दिये जा चुके हैं। इसी तरह अरहन्त मूर्तिका दर्शन आत्माके ऊपर वीतराग परिणामोंका उत्पन्न करनेवाला है जो कि वास्तवमें आत्माका स्वभाव तथा आनन्दोत्पादक परिणाम है। क्योंकि यह बात देखी जाती है कि संसारके भोगोंसे विरक्त होकर विवेकी पुरुष राग भाव घटाकर अनन्त सुखके लिये मुक्ति मार्गका अनुसरण करते हैं। इस तरह आत्माके परिणमनमें आत्माके परिणाम उपादान कारण तथा मूर्ति निमित्त कारण है और यह नियम है कि उपादान कारण रहते हुए भी निमित्त कारणके न होनेसे कोई भी कार्य उत्पन्न नहीं हो सकता। जैसे कपड़ा बनानेके लिये उसका उपादान कारण सूत सतमान भी हो और यदि उसके बनानेवाले निमित्त-कारण जुलाहे तथा औजार मशीन आदि नहीं हों तो कपड़ा कदापि नहीं बनसक्ता।

इसी प्रकार आत्माका शुभ परिणमनरूप कार्य निमित्त कारण मूर्ति (अरहन्त) के बिना नहीं हो सक्ता। इससे अच्छी तरह सिद्ध होगया कि अरहन्त मूर्ति अथवा अन्य मूर्ति अच्छी तरह देखी गई तथा स्तवनादिकसे भावना की गई, आत्माके ऊपर विरागादिक भावोंकी उत्पन्न करनेवाली है। इस विषयमें और भी बिजली, शराब, विष आदि अचेतन पदार्थोंका चैतन्य आत्मा पर कितना प्रभाव पड़ता है? आदि अनेक दृष्टान्तोंसे हमारे विज्ञपाठक सुपरिचित ही हैं।

अब जो यह शङ्का है "कि अरहन्तमूर्तिकी समीपता मक्षिकादि जन्तुओंको भी है उनपर उस मूर्तिका प्रभाव पड़कर उन्हें सुखप्राप्ति क्यों नहीं होती?" तो इस शङ्काको इस तरह समझना चाहिये जैसे कोई कहे कि बन्ध्या स्त्री भी तो स्त्री है उसके अन्य स्त्रियोंकी तरह सन्तान क्यों नहीं होती? काच सभी काच हैं किन्तु एक काच सूर्यके तेजको एकत्र करके वस्त्र क्यों जला देता है? अन्य काच क्यों नहीं जलाते? क्योंकि वे भी तो कांच हैं। पत्थर सभी पत्थर हैं फिर एक पत्थरमें (चुम्बकमें) लोहे खींचनेकी शक्ति क्यों? अन्य पत्थरोंमें वह शक्ति क्यों नहीं? तथा चौपाया होने पर भी गधेके सींग क्यों नहीं? अन्य चौपाये बकरी, गाय भैंस आदिकेही क्यों" इन प्रश्नोंका उत्तर आप यही बतलायेंगे कि उनमें वह शक्ति नहीं है इसलिये स्त्री, कांच पत्थर, चौपाया होने पर भी पुत्रप्रसवादि नहीं कर सक्ते। ठीक इसी प्रकार मक्खियोंके पास होने पर भी उन्हें सुखप्राप्ति नहीं होती क्योंकि उस मूर्ति पर उपयोग लगानेकी शक्ति उनमें नहीं है। तथा उसमें उपयोग लगाकर उसके महत्वको जानकर पूजने

वाले पुरुषोंको ही सुख प्राप्ति होती है। दवा देनेवाला नौकर डाक्टर नहीं बन जाता, ऐंजिन चलानेवाला ड्राइवर कुछ इंजीनियर नहीं हो जाता। क्योंकि यद्यपि वे उस कामको करते हैं तो भी उनको उसका परिज्ञान नहीं है। चक्रके पासमें खड़ा हुआ गधा घड़ेका बनाने वाला नहीं है क्योंकि पासमें खड़ा रहा तो क्या? घड़ा बनानेमें तो वह गधा ही है। इसी तरह मक्खियां मूर्तिके समीप रहीं तो क्या? उनका उपयोग (ध्यान) तो मूर्ति पर नहीं है। उपयोग न लगाने पर मनुष्य तथा पञ्चेन्द्री संज्ञी तिर्यञ्चोंके भी शुभ परिणमन नहीं होसक्ता तब मक्खियोंकी बात तो दूर रही। इसलिये सिद्ध होगया कि उपयोग शक्तिका अभाव ही मक्खियों के शुभपरिणमन न होनेमें कारण है। किसी ने कहीं नहीं देखा होगा कि शक्तिके अभावमें भी कार्य पैदा होजाय। क्योंकि शक्ति न होने ही से बालू तेल पैदा नहीं कर सक्ती है। भस्मरूप मिट्टीसे चतुर भी कुम्हार घड़ा नहीं बना सक्ता। क्या सुशिक्षित भी [अच्छी तरह सीखा हुआ भी] नट अपने कन्धेपर चढ़ सक्ता है? क्योंकि उस मिट्टीमें तथा उस नटमें वह शक्ति नहीं है आदि पाठक महोदय भलीभांति समझ सक्ते हैं।

अब यदि किन्हीं महाशयोंकी वाणी इस तरह खिरै 'कि जैन सिद्धान्तानुसार संसारी आत्मा और परमात्मा समानशक्तिके धारक हैं तो अरहन्त मूर्तिको पूज्य मानकर उसकी अर्चनादि सेवा क्यों की जाय?" तो यह प्रश्न उनकी ऐसी अविचारकताका प्रकाशक है "कि एक मनुष्य अपने नौकरसे कह गया कि काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' अर्थात् कौओंसे दहीको बचाना तो उसने उसका मतलब यह समझकर कुत्ते, बिल्ली आदि को खा जाने दिया कि मालिक तो कौओंसे बचानेकी आज्ञा दे गये हैं"।

उपर्युक्त उनका प्रश्न इसी सड़क पर दौड़ लगा रहा है क्योंकि संसारी आत्मा तथा परमात्मा को निश्चय नयसे समान बतलाया है और यदि उसी नयको पकड़े रहें तब तो आप सर्वज्ञ होगये फिर क्या आवश्यक्ता पुस्तकें रटकर परीक्षा पास करनेकी? इस कारण निश्चय नयको चित्तमें रखकर व्यवहार नयकी अपेक्षासे कार्य करना चाहिये क्योंकि व्यवहार नयके बिना सरागी पुरुषोंका कार्य नहीं चल सक्ता इस कारण सांसारिक आत्मा और परमात्मा दोनों आत्मा होने पर भी समान नहीं है। जैसे कोकिल और काक दोनोंका रङ्ग काला होने पर भी कोकिल प्रशंसनीय क्यों? काक क्यों नहीं? इङ्गलैन्डमें रहने वाले सभी अंग्रेज हैं तो भी पञ्चमजार्ज, लायडजार्जादि व्यक्तियोंहीको आधिपत्य सम्मान क्यों? औरोंको क्यों नहीं? आदि प्रश्नोंका उत्तर उनमें उस गुणका न होना ही है उसी तरह कर्म बन्धनमें बद्ध सांसारिक आत्मा की अपेक्षा कर्मोंसे निर्मुक्त परमात्मा गुणाधिक होनेसे वीतराग निर्दोष हितोपदेशक होनेसे पूज्य है यह सज्जन विचारचतुर महाशय क्यों न स्वीकार कर लेंगे?

परमात्मा (अरहन्त) की पूज्यतासिद्ध होजाने पर उस रूपमें स्थापित मूर्ति भी पूज्य, स्तवनीय है इस विषयमें कौन विवाद करेगा? क्योंकि गृहसम्बन्धी कार्यबन्धनसे परिभ्रांत पुरुष शांति चाहता है। यदि उसे शांति न मिले तो दुःख, चिंताओंसे दुःखित होता हुआ पागल बनकर यमराजका कवल (कौर) बन जाय, तो संशय नहीं। इसके अनेक उदाहरण सज्जन प्रायः देखा करते हैं।

तथा शांति शांतिस्थानमें ही मिलेगी। जैसे कामी पुरुषों की काम वासना रतिरूपधारिणी वेश्याके गृहमें

पूर्ण होती है। उसी प्रकार शांतिरूपधारक जिनालयमें जैसा पुरुषको शांति मिलेगी वैसी शांति मिलना अन्य किसी स्थानमें असम्भव है। क्योंकि साक्षात् शांतिके उपदेशक अरहन्त भगवान् पाषाणचित्रमें विराजमान हैं उनका दर्शन ही शांतिदायक है। तथैव उसी जिनालय में दिगम्बर मुनि आचार्यादिके भी चित्र हैं जो कि सांसारिक अशान्तिको असारता दिखलाकर शांति मार्गको भली तरहसे बतला रहे हैं। भला ऐसी मूर्तियोंका दर्शक तथा स्तवनादिसे भावना करनेवाला पुरुष शान्तिका पात्र क्यों नहीं हो सक्ता?

सांसारिक आत्मा भी यद्यपि उन गुणोंका धारक है तौ भी उसके गुण कर्मपटलोंसे ढके हुए हैं जिससे अनंत सुख ज्ञानादि गुण अपने कार्यसे आत्माको निराकुल नहीं बनासक्ते। जैसे कीचड़में दबा हुवा शीशा पदार्थोंको नहीं झलका सक्ता, किसी उन्नत राष्ट्रका शासक भी सम्राट् कैदी दशामें अपने आज्ञा आदि अधिकारोंसे मनुष्योंको दण्ड, अनुग्रह नहीं करसकता चूंकि वह इस समय कैदी है यदि किसी कारणसे कैद मुक्त होजाय तो उसकी आज्ञा फिर वही कार्यकर सकेगी।

बड़ा बलिष्ठ भी पहलवान यदि ज्वरसे पीड़ित है तो वह अपने बलसे शत्रुपर विजय नहीं पासक्ता क्योंकि उसका बल अव्यक्त (छिपा हुआ) है उसी तरह संसारी आत्माओंके गुण कर्म पटलोंसे ढके हुए हैं। जब कि उनके गुण प्रगट नहीं तब उनमें क्या पूज्यता हो सक्ती है?

तथा उनमें अपने दर्शनसे दर्शकोंको वीतरागता (शान्ति सुख) दान करनेकी भी शक्ती नहीं है चूंकि स्वयं वी राग नहीं। जो स्वयं रोगी है वह दूसरेको अपने दर्शनसे तथा उपदेशसे पवित्र नहीं बना सक्ता। मूर्ख पुरुषसे पढ़कर अभीतक कोई विद्वान नहीं हुआ है।

जैसे—"एक आंखका रोगी मनुष्य एक डाक्टरके पास गया उसने डाक्टरसे कहा कि मुझे एक मनुष्य के दो दीखते हैं किन्तु डाक्टर उससे दूना रोगी था उसने कहा यह बात तुम्हारी ठीक है किन्तु तुम यहां चार मनुष्य क्यों आये हो? उस मनुष्यने डाक्टरको उत्तर दिया कि मुझे तो एक मनुष्य दोही रूप में दीखता है और आपको चार दीखते हैं। आपसे तो मैं ही अच्छा हूं। आप मुझे क्या अच्छा करेंगे!"

इसी तरह रागादिक दोषोंसे मलिन तथा क्रोधादि कषायोंसे कपैली हमारी आत्मा निर्दोष वीतराग अरहन्तमूर्तिके तुल्य वीतरागरूप सच्ची शान्तिका उपदेश अपने दर्शनसे अन्य पुरुषोंको तथा अपने आप को कैसे दे सक्ती है? जो स्वयं भूखा मरता है वह दूसरेको भोजन नहीं करा सक्ता। इसलिये सज्जन महोदय वीतराग मूर्तिके समान अपनी आत्माको सुखदायिनी न स्वीकार करें। तथा इस बातका इस तरह निश्चय हो जाने पर सुख प्राप्तिके निमित्त शुभकर्मबन्धकेलिये निर्ग्रन्थ अरहन्त प्रतिमाकी पूजा अवश्य करनी चाहिये यह अपने आप सिद्ध होगया।

मैं पीछे आत्मापर प्रभाव डालनेकी शक्ति जड पदार्थोंमें युक्तियों तथा उदाहरणोंसे सिद्ध कर चुका हूं। अब यह बतलाता हूं "कि वह परिणाम परिवर्तन करने की शक्ति प्रतिमामें जैसी है वैसी अन्य जड पदार्थों में क्यों नहीं है? और उसके भेद प्रभेद क्या है?

संसारमें स्वार्थ सिद्धि केलिये दो प्रकारकी मूर्ति से काम लिया करते हैं। एक तदाकार मूर्ति तथा दूसरी अतदाकार मूर्ति। जिस वस्तुका आकार असली वस्तुके समान न हो वह अतदाकार मूर्ति है। जैसे सतरंजको गोटोंमें राजा, मंत्री, पदाति, हाथी, घोड़ा, ऊंट, आदि मानकर खेला करते हैं। अथवा सारे

संसारके काम चलानेमें विशेष कारणभूत अक्षरोंमें उच्चरित शब्दोंका आरोप करते हैं। क्योंकि मुखसे जो शब्द उच्चारण किये जाते हैं वे ही शब्द तो लिखे नहीं जासक्ते क्योंकि जैसे धूप और अन्धकारको इकट्ठा करके कोई सन्दूकमें बन्दमें नहीं करसक्ता उसी तरह उच्चरित शब्द भी नही लिखे जासक्ते हैं। खेलका काम चलानेकेलिये जैसे गोटमें हाथी, घोड़ा, आदिका आरोप है उसी तरह कार्य चलानेकेवास्ते शब्दोंका भी अक्षरोंमें आरोप करलिया है। तदनुसार ही किसी देशमें अ, क, च, ट त आदि वर्ण किसी देशमें A B C D आदि चिन्होंमें तथैव कहीं पर अलिफ बे, पे ते आदि चिन्होंमें शब्दोंका संकेत कर लिया है। और उनके द्वारा भी आत्मा पर बड़ा असर पड़ता है। यदि वर्णों (संकेतों) में शब्दोंका आरोप न होता तो इतनी विद्या को प्राप्ति मनुष्योंको किसी तरहसे नहीं होसक्ती थी तथा प्राचीन विद्वानोंका जाना हुआ आध्यात्मिक तत्व तथा इतिहासादि पदार्थ आज हम नहीं जान सकते थे। व्यवहारमें भी देखते हैं कि एक मनुष्य अपने पिताको व्यापारमें लाभ होने, उच्च परीक्षामें उत्तीर्ण होने तथा अपने पुत्रप्रसवादिके शुभ समाचारोंको पत्रमें लिख भेजता है तो उसके पिताको हर्ष होता है यदि वह अपने बीमारी आदिके समाचारोंको लिख भेजे तो दुःख होता है यहां पर उसकी आत्माको सुख दुःख रूप परिणमन करानेमें अतदाकार मूर्तिरूप वर्णहीं तो हैं।

अब तदाकार मूर्तिकी शक्ति पर ध्यान दीजिये। फोटोग्राफरसे खींचा गया जो अपने पिता, गुरु, इष्टदेव आदि का चित्र है उस चित्रका यदि कोई मनुष्य उसीके सम्मुख अनादर करै तो वह मनुष्य उस तिरस्कारको न सहता हुआ मरने मारनेको तयार हो जाता है क्योंकि उस अनादरको सच्चा अपने गुरु, पिता आदिका तिरस्कार मानता है उस चित्रका नहीं मानता यही समझकर गवर्नमेन्ट सरकारने अपने तथा विक्टोरिया, सप्तमएडवर्डके चित्रवाले रुपये आदि सिक्कोंका गलाना तथा मन्दिरोंकी जमीनमें कीलों द्वारा गाढ़ना बन्द करा दिया है। आपको मालूम होगा कि बनारसमें विक्टोरियाके मुखपर (जोकि पत्थरकी बनी तस्वीर है) किसी दुष्ट मनुष्यने डामर (कालारोगन) पोतदिया था तो सरकारने उस अनादरको अपना अपमान मानकर उस पुरुषको तलाश करके कड़ा दण्ड दिया था।

पत्थरके चित्रमें आरोप होनेहीसे सम्राट् पञ्चम जार्ज विक्टोरियाकी तस्वीरके सामने विनयसे अपना टोप उतारते हैं। मूर्तिको शक्तिका निषेध करते हुए मूर्ति पूजनको न माननेवाले आर्यसमाजियों हीके सामने यदि दयानन्द सरस्वतीके चित्रका अनादर किया जाय तो उस समय आर्यसमाजीही काले सर्पका रूप धारण करलेते हैं। आदि युक्तियों तथा दृष्टान्तोंसे तदाकार मूर्ति में जैसी शक्ति सिद्ध होती है अन्य जड़ पदार्थों में नहीं मालूम होती।

अब यह बतलाना आवश्यक है कि सुख साधन केलिये कैसी मूर्ति पूज्य होनी चाहिये, किन्तु इसके प्रथमही यह जानना आवश्यक होगा कि सुख क्या पदार्थ है? सुख वही है जिसके प्राप्त होजानेसे आत्माको निराकुलता मिल जाय। वह निराकुलता आत्मिक स्वभाव ही है इसलिये आत्माका असली स्वभाव ही सुखरूप हुआ क्योंकि सुखकी सत्तामें जो निराकुलता चाहिये वह उसके स्वभाव होजाने पर मिलजाती है। अब ज़रा इतना और विचारना है कि भोग्य तथा उपभोग्य पदार्थोंका भोग तथा उपभोग

सुख है या नहीं। तो विचार तराजूपर चढ़ानेसे इसका पलड़ा बहुत ऊंचा होजाता है इसलिये ये सुखाभास ही हैं। क्योंकि उन पदार्थों का अति भोग तथा उपभोग अरुचि उत्पन्न कर देता है जैसे सुन्दर स्त्रीका उपभोग करने वाला पुरुष कभी न कभी ऐसा विरक्त होता है कि स्त्रीको प्राणनाशिनी तथा शुभाशुभविचार नाशिनी राक्षसी ही मानता है। उनके अति उपभोक्ता सत्यंधरादि राजाओं की कथा उसकी असारताका अच्छा उपदेश देरही है।

मकान, धन, वस्त्र, घोड़ा आदि पदार्थ भी अति उपभुक्त होने पर अरुचिकारक हो हैं।

इसी तरह भोग्य पदार्थोंमेंसे रसनाके विषयोंको देखिये। यदि मिष्ट रसकोही उत्तम मानकर केवल मिठाईही खाई जाय तो नियमसे २-३ दिनमेंही तबियत मिठाईसे बिलकुल हट जायगी इसीरीतिसे प्रत्येक इंद्रियका विषय अरुचिका उत्पन्न करनेवाला समझना।

संसारका नियम है कि पदार्थोंका भोगोपभोग भले प्रकार होने पर अवश्य विरक्ति करदेता है यदि मनुष्यको उस पदार्थसे विरक्ति नहीं हुई तो जानना चाहिये कि वह पदार्थ उसने पूर्ण रीतिसे नहीं भोगा है पूर्ण रीतिसे अनुभव होजाने पर नियमसे उससे उपेक्षा वृद्धि हो हो जायगी। सज्जन पुरुष इसको अनुभव से जान सकते है।

उनसे विराग होनेमें कारण केवल यह है कि वे आत्माके स्वभाव नहीं है आत्माके स्वभाव ज्ञान, दर्शन, निराकुलता, वीर्यादिक हैं अत एव आत्माके सुखरूप वे ही है अन्य नहीं। एक धनिक पुरुषको जितना १० कोटि रुपयोंके लाभमें आनंद नहीं होसक्ता जितना कि एक विद्वान् को एकनया आविष्कार करनेमें होता है इस बातको विद्वान महाशय युक्ति, और अनुभव पूर्वक मान लेंगे। यदि धनादिक ही आत्माके स्वभाव होते तो मनुष्य उत्पन्न होते समय दिगम्बर वेषमें [नग्नभेषमें] क्यों आता तथा मरते समय परभवमें सुखके लिये धन क्यों न लेजाता मरते समय तथा पर्याय धारण करते समय शुभाशुभ कर्मानुसार ज्ञानादि गुणों सहित ही आता तथा जाता है। यदि धनादिक आत्माके स्वभाव होते तो एकेंद्रियादिक जीवोंमें धनके अभाव होनेसे जीव न रहना चाहिये था इसलिये ज्ञानादिक ही आत्मा के स्वभाव है।

भारतवर्षमें प्रत्येक मतानुसार बडे२ राजा चक्रवर्ती विवेकज्ञान होने पर बडी २ भोगोपभोग सामग्रीको तृणवत् मानकर मुनि होकर वनमें अपने आत्माका ध्यान लगानेके लिये बड़े २ कष्टोंका सहते थे तथा आजकल भी बड़े २ धनिक पुरुष धनको सोनेकी बेड़ी जानकर आत्मज्ञानके अनंतर मुनिमार्ग पर चलते हैं दृष्टांतमे मुनि अनंतकीर्तिजी ही बहुत है जिन्होंने लाखों रुपयोंकी स्टेटको छोडकर आत्मध्यान द्वारा आत्मिक सुख पानेके लिये वनकी गुफामें रहकर उपवासादिकोंसे शरीरको कृश किया था। इसको पुष्ट करनेके लिये यवन बादशाह सिकंदरका अंतिम वाक्य भी काफी होगा जिसने कि भारतवर्षमें सबसे अधिक लूटकी थी उसको मरते समय बड़ा वैराग्य हुआ था इसलिये उसने कहा था कि मरते समय मेरा समस्तधन मेरे साथ श्मशान तक पहुंचाना तथा इस वाक्य से सब लोगोंमें जाहिर करना "सिकंदर शहंशाह जाता, सभी हालो व हाली थे। सङ्गमें थी सभी दौलत मगर दो हाथ खाली थे।"

इस वाक्यसे भी दिगंबरता ही आत्माका स्वभाव निश्चित होता है। क्योंकि उस दशामें कोई आकुलता नहीं रहती।

अब केवल यह देखना है कि उस दिगंबरताकी दात्री (देनेवाली) कौन मूर्ति है। कृष्ण महेश ब्रह्मा आदिकी प्रतिमा तथा उनका स्तवनादि कामादि भावको उत्पन्न करनेवाला है। दुर्गा, काली, भैरों, हनुमानादि कोप भावके उत्पादक हैं इत्यादि सभी मूर्तियां अरहंत मूर्तिके अतिरिक्त संसारकी झंझटमें फसानेवाली है।

दिगंबर वीतराग अरहंत मूर्ति ही वीतराग, दिगंबर भावको उत्पन्न करनेवाली है। और दिगंबरता ही असली सुखोत्पादिनी है क्योंकि उसमें निराकुलता है। इस कारण सुखसाधनके लिये "केनाप्युपायेन फलं हि साध्यम्" अर्थात् किसी न किसी उपायसे स्वार्थ सिद्ध करना चाहिये, इस वाक्यानुसार अरहंत प्रतिमा का पूजन ही अति आवश्यक है। इसलिये शांति सुखके लिये अरहंतको दिगंबर [नग्न] मूर्तिमें स्थापन करके पूजा करनी चाहिये। श्रद्धा अवश्य रहनी चाहिये क्योंकि मनकी श्रद्धा बड़ी काम करती है जिसका दृष्टांत केवल एक ही बहुत होगा कि—

एक भीलने मिट्टीके टीलेमें द्रोणाचार्यकी स्थापना करके गुरुकी श्रद्धासे उस टीलेहीसे धनुर्विद्या ऐसी सीखी थी जिससे अर्जुनके समान धनुर्धर हो गया था। उत्तम औषधिमें भी यदि रोगीको श्रद्धा न हो तो वह औषधि रोगीको अच्छा नहीं कर सकती श्रद्धाका न होना ही उसमें कारण है। श्रीकुमुदचंद्राचार्यका वाक्य है—"पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं किं नाम नो विषविकारमपाकरोति" अर्थात् पानीको पूर्ण मनकी श्रद्धासे अमृत मानकर पिया जावे तो वह अवश्य विषके विकारको दूर कर देता है। पर श्रद्धा पक्की होनी चाहिये। इसलिये मूर्तिको समवसरणमें स्थित अरहंत ही समझकर पूजना चाहिये पाषाण नहीं मानना चाहिये क्योंकि पाषाणकी श्रद्धा पत्थरके गुण ही पैदा कर सक्ती है न कि अरहंतके। यह देखनेमें आता है कि जिसकी पूजा की जाती है तो उसीकी प्रशंसाकी जाती है जैसे गधेकी प्रशंसामें उसके बोझ लादनेकी, चोरकी प्रशंसामें चोरी करनेकी चालाकीकी प्रशंसाकी जायगी उसी तरह यदि हमारी पूजा पत्थरके लिये होती तो पत्थरके गुण कहे जाते किंतु प्रतिमा पूजनमें अरहंतका गुणगायन किया जाता है इसलिये हमारी पूजा अरहंतकी पूजा है। और तभी वे वीतराग भाव हमारी आत्मामें आसक्त है। इसलिये प्रत्येक श्रावकको तथा सुखाभिलाषी मनुष्य को प्रतिमा पूजन अवश्य करनी चाहिये। आपका पूजन तथा दर्शनादिक सुख शांति शुभ परिणाम, तथा शुभकर्मबंधका कारण अवश्य होगा व्यर्थ नहीं जा सक्ता "यस्मात्क्रियाः प्रतिफलंति न भावशून्याः" अर्थात् कोई भी शुभाशुभ क्रिया फल रहित नहीं होती।

इसलिये प्रत्येक महानुभावको प्रतिमा पूजनके विषयमें किसी प्रकारकी शङ्का न करके नित्यनियम रूपसे पूजन दर्शनादि करना चाहिये। किसी सज्जनको प्रतिमा पूजनके विषयमें यदि किसी तरहकी शङ्का हो तो कृपया मुझे सूचित करें मैं उसका यथार्थ उत्तर दूंगा।

भ्रमरोपदेश।

(लेखक—श्रीयुत पं० दरबारीलाल न्यायतीर्थ)

एक समय मैं पुष्करिणी तट बैठा मन बहलाता था।
देख प्रकृतिकी अनुपम शोभा हर्षित होता जाताथा॥
कहता था मनमें प्रसन्न हो, नाच रहा है अहा शिखी।
पर मनमें जब मैंने देखा ये विचार आवली दिखी॥१॥

चञ्चरीकजी मन्दस्वर से हमको शिक्षा देते हैं।
"हैं हम कृष्ण तदपि उज्ज्वल हैं गुन गुन गुण गा लेतेहैं
हो तुम मनुज सबमें उत्तम उत्तम कुलमें जन्म लिया
जैनी होकर विद्या पाई तदपि द्वेषमय हृदय किया॥२॥

विद्यामें लवलीन हुए तो विद्योन्नतिमें चित लाओ।
ज्ञानभानुसे जनता जगमें छटा अनोखी दिखलाओ॥
देखो हम इसजगके भीतर कमललोलुपी कहलाते।
तो स्वनाम सार्थक करके हम अब्ज बीचही मरजाते॥३॥

है जो कोमल और गुणी जो वे जगमें जय पाते हैं।
देखो कोमल कमल बीच पड़ हम कठोर मरजाते हैं॥
जगमें देखो विना परीक्षा हम षट्पद कहलाते हैं।
किन्तु आप सब हम लोगोंको क्यों नहिं बड़ा बताते हैं॥४॥

हां! हां! ज्ञान हुआ मुझको अब पदसे कुछ नहिं होना है
विनकर्तव्य पदोंको रख कर कर मल मल कर रोना है
यदि तुम मान वृद्धिके अर्थी बन कर मान बढ़ाओगे
तो फिर मान नहीं बढ़ने का नीचे गिरते जाओगे॥५॥

इतर मनुजको कठिन हृदय बन मन माना दुख देते हो
किन्तु विचारो जरा हृदय से उन्नति क्या करलेते हो
अपने मुखको अपने करसे काला तुम्हीं बनाते हो।
रख कर ज्ञान मूर्ख होकर तुम पाप बढ़ाते जाते हो॥६॥

बन्धु बन्धुओं में ही तुमने नकुल नाग सम बैर किया
मोका पड़ने पर ही तुमने अहो बन्धु सिर काट लिया
इतने पापी होकर के भी कुछ भी नहीं लजाते हो
होकरके निर्लज्ज हाय तुम अपना मुख दिखलाते हो ७

कभी भाग्यवश जग देशको यदि ऊँचापद पाते हो
अपने को जगनाथ समझकर होते तुम मदमाते हो
जिसको छोटा देख रहे तुम वह भी [illegible] देख रहा
इसकेबाद भ्रमरजीने फिर एक सुगम दृष्टान्त कहा ८

'भूधर पर आरूढ़ मनुज ज्यों सबको छोटा देखरहा
हो पुलकित निज मनमें करता हमीं सब में बड़े अहा
पर नीचेके नर गणको वह पक्षीरूप दिखाता है
देखै सबको एक दृष्टि से वह नर बड़ा कहाताहै॥९।

तू अपने आश्रित जनगणको भूल कभी दुख नहिं देना
अपने बन्धु समझ कर इतनी मेरी बात मान लेना
यदि उद्दंडता करे कोई उसे शान्तरससे सींचो
ऐसे में जैसे में तैसा बन नहिं ज्ञाननयन मींचो १०

तेरी देख अवस्था मेरे नयन अश्रु बरसाते है
मानो घनको बरसाकर वे शान्त्युपदेश सुनाते हैं
ऐसी शिक्षा देकर के वे मेरे मस्तकके ऊपर
बैठ गये आशिष देने को आ पुन बैठ गये भू पर ११

यों सुनके उपदेश हितकर मनमें [illegible] किया
इसी समयमें भ्रमरराज ने अपने घर का [illegible]
शिक्षक हों तो ऐसे ही हों [illegible] शिक्षा देवें
जिससे सुने वचन ऐसे हम [illegible] १२

यों विचार कर [illegible] किया
भ्रमरराजको उसशिक्षा का [illegible] भाग में [illegible] किया
उस हितकारी शिक्षाका तो आपलोग भी मनन करें
करके वैसे कार्य आप सब पूर्ण प्रेम [illegible] करें १३

सच पूछो तो जनता जगको प्रेमहि स्वर्ग बनाता है
दीन और भिक्षुक के घरमें अनुपम सुख फैलाता है
प्रेम नामकी माला जप कर प्रेम सबमें फैलाओ
प्रेम प्रभो! तुम जग कृपा कर प्राणिमात्रमें आजाओ १४

इत्यादिक हम भ्रमर देव के वचनोंपर भी करें विचार
अब पतित यह जाति प्यारी क्यों न होय उन्नतिके पार
भ्रातृवर्गो! सोचो हम सब हैं उन्नति रूपी फल के फूल
अथवा कहिये जाति नदीके हैं हम बने विलक्षण कूल १५

इत्यादिक सब सोच समझ कर देखो जगमें प्यारा क्या
संसारस्थ पदार्थवृन्दमें न्यारा और हमारा क्या ?
कर्म क्षेत्रमें शस्त्र बांधकर ऊंचा मुखकर खड़े हुए।
कसो कमर क्यों बने आलसी दीनदशा में पड़े हुए ॥१६॥

स्वावलम्बन

सुखप्रद क्या है ? यो क्यों हमें नहीं दिखाता ?
निजकारज करना क्यों हमें नाहि भाता ॥
इस सबका उत्तर एक है ठीक प्यारा।
हां हा छूटा है स्वावलम्बन हमारा ॥ १ ॥
हम बलको रखकर आलसी बन रहे हैं।
निबलों को दुख दे पापमें सन रहे हैं।
तिस पर हम कहते स्वावलंबी हमी हैं।
हमको बतलाओ कुछ किसकी कमी है ॥ २ ॥
पहिले तो मित्रो स्वावलम्बन समझलो।
जो कुछ कर सको आपही आप करलो ॥
इस मनुजपनेको शीघ्र सार्थक बनाओ।
दीनों दुखियों के चित्त से चित्त मिलाओ ॥ ३ ॥

तुम च्युत नहिं होना भूल कर सत्यनय से।
कारज मत छोड़ो संकटों के कुभयसे ॥
इस विध अपनेको स्वावलम्बी बनाओ।
फिर सत्सुख रूपी आपगाको बहाओ ॥
कहने के पहिले आपही कर दिखालो।
पीछे से उसको सर्व से ही करालो ॥
अपने अनुयायी यों घना लो बनालो।
करके दिखलाओ लाभ दूना उठालो ॥ ५ ॥
यदि जगमें अपनी कीर्ति विस्तारना है।
आलस वैरी को शीघ्रही मारना है ॥
मो बोलो हम सब स्वावलम्बन धरेंगे।
जब तक हममें दम है जाति के दुख हरेंगे ॥ ६ ॥

एकता

भारत की भूके पुत्र मातके प्राणोंसेभी प्यारे।
तुम थे पहिले एक आज क्यों रहते न्यारे न्यारे ॥
कहां आज वह गुणगरिमा है कहां आज वे मन हैं।
जीवन के वे प्राण कहां हैं कहां आज वे तन हैं ॥
धर्म मूल सिद्धान्त छोड़ कर आपसमें लड़ते हो।
पूर्ण शान्तिसाम्राज्य छोड़ कर विपदामें पड़ते हो ॥
जीते जी हा! मृतक हुए हो तदपि नहीं शर्माते।
देशबन्धु के निकट अकड़ते बाहर ठोकर खाते ॥२॥
क्या नव ये ही उचित काम हैं ये ही तुमको करना।
नहीं नहीं इससे अच्छा है अंजुलि जलमें मरना ॥

भारतको निज देश समझकर सबको गले लगाओ।
आओ आओ बन्धु मनोमन्दिर में आओ आओ ॥३॥
मन्दिरके अन्दर हो चाहे मन्दर के अन्दर हो।
वन हो वा उपवन हो चाहे मन्दर की कन्दर हो ॥
सभी जगह यह मन्त्र फूंकदो आओ प्यारे आओ।
वैर विरोध छोड़कर मनका उन्नत हृदय बनाओ ॥४॥
सर्व धर्मका सार अहिंसा धर्म इसी पर मरना।
सब कुछ करना किन्तु अहिंसाधर्म विरुद्ध न करना ॥
जैनी हो वा बौद्ध शैव वा वैष्णव वा ईसाई।
सभी परस्पर मिलो यथा मिलते हैं भाई भाई ॥५॥

भावजका हृदय।

(गल्प)

(लेखक—श्री धन्यकुमार जैन 'सिंह' उत्तरपाडा।)

डालचंदजीका बड़ा लड़का लालचंद वकील है, और छोटा दुलीचंद अभी एफ० ए०में पढ़ रहा है। लालचंदके ब्याहके एक वर्ष बाद डालचंदजीका स्वर्गवास हुआ। और मा, मा तो विवाहके पाँचवर्ष पहिले ही से दूसरा शरीर धारण कर चुकी थी। दुलीचंद अभी अवि-वाहित है। लालचंद अपने छोटे भाईकेलिये एक सु-योग्य कन्याकी तलाशमें है। मरते समय बाल विधवा सुशीला (लालचंदकी छोटी बहन) का अन्तिम अनु-रोध यही था कि—" भैया, दुलीचंदका ब्याह किसी गरीब घरकी लड़कीसे करना।" इसीलिये लालचंद बड़ी द्विविधामें पड़ गये हैं। एक तरफ स्त्रीका आग्रह और दूसरी ओर भाईके कल्याणकेलिये बहनका अन्तिम अनुरोध!

(२)

घरमें दुलीचंदको प्यार करनेवाला एकमात्र बड़ा भाई लालचंद, पर वह भी उससे उदास रहता है। कारण संसारमें स्त्री विषबेल होती है और उसका प्रेम विषका बुझा कटार होता है नहीं भला! स्त्रीके प्रेममें फंसे और उसकी छाया मान लालचंद अपने इकलौते छोटे भाईसे प्यार करनेमें कृपणता क्यों करते!

लालचंद जब कभी अपनी बहनका अन्तिम अनु-रोध पालन करनेकेलिये उत्साहित होते हैं, तब ही उनकी स्त्री सुकेशी अपने तुच्छ प्रेम युक्त तिरस्कार से उन्हें दबा देती है। परंतु काम भी कोई चीज है, जिससे संसारकी सबही भोगोपभोगकी सामिग्रियां मिलती और बिछुरती रहती हैं। दुलीचंदके भी किसी शुभ या अशुभ कर्मके उदयसे लालचंद अपने कर्तव्य पथ पर आ गये।

उन्होंने अपने छोटे, पर विवाहके सर्वथा योग्य भाईके विवाहकेलिये यत्न करना प्रारंभ करदिया। वे अपनी बहिनका अंतिम अनुरोध पालन करनेके लिये किसी साधारण स्थितिके मनुष्यकी कन्याकी तलाश करने लगे। सुकेशी यह जानकर कि मैं धनिककी पुत्री हूं, और मुझमें कोई बड़ा भारी अवगुण समझकर ही ननदने मरते दमतक अपने भाईसे गरीबकी कन्याके साथ विवाह करनेकेलिये कहा था मारे क्रोधके उबल उठी। उसके हृदयमें विद्वेषकी अग्नि धां धां कर जलने लगी। उसने अपने पतिको पहिले तो मीठी मीठी बातोंसे फुसलाकर अपनी ननदका आग्रह छुड़वानेकी कोशिश की पर जब लालचंद को अपने काबूमें सर्वथा आते न देखा तो उसने दूसरी चाल चलना प्रारंभ किया। एक दिन लालचंदको प्रसन्न चित्त देखकर पहिले तो गलेमें हाथ डालकर अपना पूरा प्रभाव उनपर डाल लिया और फिर हंसते हंसते कहा— "अच्छा! आपको यदि गरीब घर ही दुली-चंदका विवाह करना है तो मेरे [illegible] एक [illegible] का वर संधान मिला है। उसके पिता आदि कोई नहीं है देखनेमें भी सुन्दर है। उसके साथ ही विवाह कर दीजिये!"

अबकी बार लालचंद अपनी पत्नी–धर्मपत्नीकी

---

१ 'भारतवर्ष' पत्रकी एक कहानी का छायानुवाद।

आग्रह न डाल सके । वे एक ढेलेसे दो पक्षी मरते देख—एक तो बहिनका अंतिम अनुरोध और द्वितीय पत्नीकी प्रेम पूर्ण बात सिद्ध होते जान सर्वथा राजी होगये और नितांत असहाय विधवाकी एक मात्र कन्यासे दुलीचंदका विवाह कर दिया ।

घरकी वर्तमान दशा, विशेष कर अपनी भौजाई का व्यवहार देखकर दुलीचंद विवाह करना नहीं चाहता था परंतु जब लालचंदने यह कहा कि—"पिता जी मर गये हैं; इससे तुम अपनेको स्वाधीन समझते हो ? मेरा क्या तुम्हारे ऊपर जरा भी जोर नहीं है ?" तब उसे लाचार हो व्याह करना ही पड़ा ।

विवाहके बाद ही दुलीचंद बहू लेकर घर लौटा । किंतु इस व्याहमें जो आनंद मानने वाले थे; वे एक एक कर सब चले गये थे–जननीका एक बूंद आनंदाश्रु इस व्याहमें न गिर पाया; पिताका सस्नेह असीस भी इस विवाहमें न थी जिससे कि वह इस निर्जीव विवाह को सजीव बना सकी; स्नेहमयी बहनके सर्व अमंगलोंको दूर करने वाले मंगल—गीत भी इस करुण विवाहमें न हुये ।

(२)

विवाहके बाद दुलीचंद एफ. ए. पास हो बी० ए० में पढ़ने लगा । ससुरालमें केवल एक बुढ़ियाके और कोई न था यह पहिले कहा जा चुका है और सो भी उसकी अवस्था शोचनीय । बुढ़िया बड़ी मुश्किलसे अपना और लड़की दोनोंका पेट भरती थी । इसीलिये विवाहके दो—एक माह बाद ही चिरदुःखिनी विधवा माताने अपने चिर-संचित आंसुओंसे भीजा हुआ आशीर्वाद मात्र देकर कन्याको पतिके घर विदा कर दिया ।

गरीबके घर विवाह हो जानेसे परलोकगत पिता और भगिनीका अंतिम अभिप्राय तो पूर्ण होगया; परंतु उसमें एक बड़ा भारी अनर्थ दिखाई देने लगा । दुलीचंदकी सहधर्मिणी सरला यदि गरीब घरकी लड़की न होती; तो शायद सुकेशीके प्यारसे वञ्चित न रहती एक-आध बूंद स्नेह तो अवश्य ही टपकता । परंतु—सुकेशी देवराणी सरलाको अवहेलनाकी दृष्टिसे देखने लगी । वह तो गरीब, अनाथा विधवा की लड़की है ! धोखा देकर उसके घरमें घुस आई है यह बात सुकेशी प्रायः सरलाको समझा दिया करती । इस प्रकारकी मीमांसाके विरुद्धमें उसके पास कुछ भी प्रमाण नहीं था क्योंकि वह दरिद्रकी कन्या है, यह बात किसीसे छिपी न थी । इसलिये वह बड़ी दीनतासे रहती है और घरके कामोंमें ज़रा भी आलस्य वा उदासीनता नहीं करती । वह जिठानीजीको संतुष्ट करनेके लिये उनकी आज्ञाको यथावत् यथाशक्ति पालनके लिये प्रयत्न करती; परंतु वह सब प्रयत्न उसकी जिठानी सुकेशीके धनगर्वकी प्रबल धारामें बिना किसी विघ्न बाधाके ही बह जाता । सुकेशी समझती है इतनी सेवा तो इसे मेरी जरूरी करनी ही चाहिये क्योंकि एक तो मैं जिठानी हूं । दूसरे मेरे पतिकी कमाई से ही तो इसका और इसके पतिका पेट भरता है । ऐसा न करने से भला इसका अन्यत्र कहीं ठिकाना हो क्या लग सकता है ? अतः सिया अपने कर्तव्यके यह प्रशंसाके योग्य करती ही क्या है ?

कभी कभी दुलीचंद घर आकर भौजाईका अनुचित व्यवहार देख दुःखित होता; परंतु इस विषयमें किसीसे कुछ न कहता । सिर्फ जाते समय सरलासे कह जाता—" भौजाई जी जो कुछ कहें सुनना, कभी भी उनका कहना न टालना ।"

अपने एक मात्र स्नेही पतिके कलकत्ता चले जाने

पर सरलाके प्राण कभी कभी हांपने लगते। किसी के पास वह अपने मनका भाव प्रकट न करती और प्रकट ही किसके पास करे? घरके आदमियोंमें, एक बड़ी बहू और दूसरी दासी; वह भी बड़ी बहूके मायके की थी। अतएव उससे भी सहानुभूति की आशा न थी।

दुलीचंदका घर आना, सरलाकेलिये अगाध सागरमें काठका टुकड़ा मिलनेके बराबर होता। उस को एक मीठी बात सुनाने वाला भी घरमें कोई नहीं था, इसलिये थोड़े ही दिनोंमें दुलीचंदको ही वह एक मात्र अपना समझने लगी। पितृहीन दरिद्र बालिका अब सर्वदा स्वामी-चिन्तामें ही मग्न रहने लगी। उसे अब और कोई दुःख ही न लगता।

(४)

दूर समयकी मनोवेदनासे सरलाका स्वास्थ्य क्रमशः बिगड़ने लगा। विवाहके एक वर्ष बाद से ही उसे ज्वर आना प्रारंभ होगया। आज वही ज्वर महान ज्वरमें दीखने लगा। डाकर-वैद्य-हकीम इसे आराम न कर सके। पुत्रीकी विषम बीमारीका समाचार पाते ही विधवा मा देखनेकेलिए दौड़ी आई; पर बड़ी बहूके व्यवहारने उसे दो—एक दिनसे अधिक न रहने दिया—वह तीसरे दिन ही लौट गई।

एक दिन रोग बहुतही बढ़ गया। खबर पाते ही दुलीचंद घर आया। सरलाकी यह अंतिम दशा जान दुलीचंद ने लगातार पंद्रह दिन तक बहुतसे प्रयत्न किये; पर कर्मोंके सामने किसीकी भी नहि चलती. आखिर सोलहवें दिन, इस दुःखमय पर्यायसे सरलाने अपना जीवन उठा ही लिया।

दुलीचंद जब शुश्रूषा करता था, सरला तब लज्जा त्यागकर कई दिन बोली थी—"तुमसे मेरी कुछ भी आशा पूर्ण न हुई।" बड़ी मुश्किलसे आंसुओंको रोक कर दुलीचंद ने कहा था—"तुम अबको बार स्वस्थ हो जाओ, तुम्हें अब मैं अपने पास ही रक्खूंगा।" आनंदसे सरलाकी दोनों आंखें भर आई थीं। उसने अपने दुबले पतले हाथोंसे दुलीचंदके गलेमें लिपट कर कहा था—"तो मुझे बचाओ! तुम्हारे पैर छूती हूं मुझे बचाओ!! मर जानेपर तो तुम्हारे पास न रह सकूंगी।"

परंतु मरनेके पहिले उसके कानमें न मालूम किसने कहा था—"अरे संसारी जीव! तुझे तो अभी जन्म लेना है।" बुझनेवाले प्रदीपकी तरह अंत समय देदीप्यमान हो कर सरलाने स्वामीकी चरण-धूलि सिर पर लगाकर कहा—"मैं तो चली. मेरी माका और कोई नहीं हैं, उसकी ओर तुम देखना!"

इस मृत्युने दोनों हृदयोंमें गहरी चोट पहुंचाई। दुलीचंदका हृदय भग्न होकर गिर पड़ा। गांवके बाहर एक छोटीसी झोपड़ीमें रहनेवाली, हमेशा विदेश वासिनी कन्याकी कुशलता चाहनेवाली विधवा बुढ़ियाका सारा सुख, समस्त आशा-भरोसा हमेशाके लिये चला गया।

दुलीचंद विचारने लगा—"विवाह करके मैंने बड़ी भूल की। एक तुच्छ प्राणीको भी सुखी करनेकी मुझमें ताकत नहीं। धिक्कार है ऐसे जीवनको! छि छि, इस से तो यही अच्छा था कि, मैं कहीं नौकरी करता और उसे अपने पास रखता!"

कलकत्ते पहुंचते ही दुलीचंदने बोर्डिंगके एक मित्रसे दस रुपये उधार लेकर अपनी सासके पास मनीआर्डर द्वारा भेजे। साथ ही एक पत्र लिखा—

"मा! मेरी स्नेहसे दी हुई सेवा लौटाना नहीं। बिना किसी द्विविधाके ले लेना। तुम्हारे लड़का नहीं है, मुझेही अपना लड़का समझना। पुत्रको मा की सेवा करने का सर्वथा अधिकार है।"

इसके बाद शीघ्रही उसने एक सेठके यहां लड़के पढ़ानेका काम करना प्रारंभ कर दिया। वहांसे उसे बारह रुपये माह मिलने लगे। दस रुपये माह सासको भेज कर सरलाका अनुरोध पाल रहा हूं, समझकर दुलीचंदको कुछ शांति मिली।

(५)

छह माह बाद दुलीचंद बी० ए० परीक्षा देकर घर लौटा। पहिले-पहिल तो उसका शोकार्त मन सरला की मृत्युके लिये भाई और भौजाईको ही दोषी ठहराने लगा। बाद उसके क्षमाशील स्वभावने सबको छोड़ कर अपनेको ही स्त्रीकी मृत्युके लिये एकमात्र दोषी समझा। वह यदि अपने कर्त्तव्य संपादनमें त्रुटि न करता; तो शायद यह अनर्थ न हो पाता। वह जैसे एकका छोटा भाई था, वैसे ही एकका पति भी तो था फिर एक कर्त्तव्यके अनुरोधसे दूसरेकी उपेक्षा करने का उसे क्या अधिकार था?

घर आकर उसने अबकी बार एक सान्त्वनाकी चीज पाई, वह लालचंदका एक वर्षका लड़का है। दुलीचंद उसे लेकर सुखसे-दुःखसे छुट्टीके दिन बिताने लगा। यथा समयमें परीक्षा-फल निकला। मालूम हुआ कि, दुलीचंद परीक्षामें कृतार्थ नहिं हुआ। गरमी की छुट्टी खतम होनेपर भाईके कहनेसे दुलीचंद पुनः कलकत्ते जाकर बी० ए० में पढ़ने लगा।

अबकी बार कलकत्तेमें उसका मन नहीं लगा। उसी दुधमुंहे बालकने उसके शून्य हृदयमें एक अधिकार सा जमा लिया था। वह जाड़ेकी छुट्टिओंके दिन गिनता रहा।

जाड़ेकी छुट्टिओंमें दुलीचंद घर आया। लल्लूको गोदमें लेकर उसने बड़ी शांति पाई।

अबकीबार घर आकर दुलीचंदने सुना कि, फिर उसके विवाहका संबंध ठीक हो रहा है। उसने भाई को नम्रता और दृढ़तासे कहा—"मैं अब विवाह न करूंगा" लालचंदने पहिले तो उसे बहुत कुछ समझाया; परंतु फिर अधिक उसका आग्रह देख वह संबंध स्थगित रक्खा।

(६)

आज दुलीचंद आनेवाला है। सातबजेकी गाड़ी निकल गई; पर दुलीचंदका पता भी नहीं। नव बज गये। अभी तक दुलीचंद नहिं आया; शायद सुबहकी गाड़ीसे आवे यह सोचकर लालचंद सोने चले गये।

दुलीचंदका एक मित्र उसी स्टेशन पर असिस्टेंट स्टेशन मास्टर था। आज उसकी डिउटी छह बजेसे बारह बजे तककी थी। वार्त्तालाप करते २ प्रायः ग्यारह बज गये; तो उसने एक साथ ही चलनेके लिये आग्रह किया। इसीलिये आज वह बारह बजेके बाद घर पर आया। भीतर भाई-भौजाई बात चीत कर रहे थे। सुननेकी इच्छा न होने पर भी--भौजाईकी एक बात उसके कानमें पड़ गई। सुकेशी नव पतिसे कह रही थी--

"अपने भाईके लिये तो खूब रुपये खर्चकर सकते हो, और मुझे कुछ देनेमें तुम्हारा सर्वनाश होता है। और भाई ऐसे हैं जो केवल परीक्षामें फेल ही होरहे हैं! इतनी उमर हुई, आजतक कमा कर एक पैसा भी न ला सके।"

पत्नीको प्रसन्न करनेकेलिये लालचंद बोले-"सो तो ठीक है, पर क्या किया जाय? उसे अभी नहिं पढ़ानेसे लोग क्या कहेंगे।"

दुलीचंद क्षण भर भी खड़ा न रह सका; ललकारे हुये कुत्तेके समान वह वहांसे चल दिया।

दूसरे दिन सबेरेकी गाड़ीसे दुलीचंद कलकत्ते रवाना होगया।

(७)

आज दो माहसे नौकरीके लिये पत्रव्यवहार करने पर भी दुलीचंदको नौकरी न मिली एक बाल्य-बंधुके पत्रोत्तर की आशामे आज दुलीचंद पोष्टआफिस में गया। पोष्टमैनसे उसका परिचय था; उसने घरसे एक स्टूल लाकर बैठनेकेलिये कहा; और चिट्ठियोंमें से एक अखबार और एक लिफाफा निकालकर दिया। दुलीचंदने लिफाफा खोला। उसमें लिखा था—

"भाई दुलीचंद, तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे लिए एक नौकरी स्थिर की है। वेतन अस्सी रुपये माहवारी है। पर पाँच दिनके भीतर न आनेसे नौकरी हाथसे निकल जायगी।"

दुलीचंदने बोर्डिंगमें आकर भाईको पत्र लिखा—"पूज्यवर भाई, सविनय प्रणाम!

मेरा उत्साह घट गया है। पढ़नेमें अब मन बिलकुल नहि लगता। अतएव मैं अस्सी रुपये माहवारी वेतन पर नौकरी करनेकेलिये आसाम जाऊँगा। पाँच दिनके भीतर यदि न पहुँच सका; तो नौकरी रद्द हो जावेगी। अतएव मेरी प्रार्थना है कि, आप इस में कुछ बाधा न डालें। भौजाईजी को प्रणाम और लल्लू को प्यार कह दें। दर्शनाभिलाषी—

दुलीचंद।"

जानेके पहिले दुलीचंद ससुराल गया। नौकरी केलिये आसाम जानेकी बात सुनकर सास बड़ी दुखित हुई। वहाँसे विदा होकर घर गया। उसके पहुँचने के एकदिन पहिलेही भौजाई अपने लल्लूको साथ ले मायके चली गई थी। इससे दुलीचंदको बड़ा कष्ट हुआ। वह यह नहीं समझा कि उसके पत्र आने पर लालचंदने अपनी स्त्रीसे कुछ कहा सुना—इसीलिये गुस्सा हो कर सुकेशी मायके चली गई है!

इतनी दूरकी नौकरी न करनेकेलिये भाई ने बारबार कहा और अन्तमें यह भी कहा—यदि नौकरी ही करना है; तो यहीं कहीं आस-पास में क्या नहि मिल सकती? और वर्ष छह महीनेकेलिये क्यों पढ़ना छोड़ते हो?"

परंतु दुलीचंदने एक न मानी। दूसरे दिन जाते समय वह भाईके सामने आकर खड़ा हुआ। उसकी आखोंसे टप टप आँसू गिर रहे थे। लालचंदका हृदय सुकेशीका होने पर भी, बालकपनसे पितृ-मातृ-हीन अभिमानी भाईको सुदूर प्रवासमें विदा देते समय अपनी आंख सूखी न रख सके। वे आंसु रोककर बोले—"जाते समय लल्लूको वहाँसे देखते जाना। और पहुँचते ही पत्र देना।"

(८)

आज शामको पांच बजे आसाम जानेका जहाज छूटेगा। कुछ खिलौने और थोड़ीसी मिठाई लेकर दुलीचंद करीब तीन बजे लालचंदकी ससुराल पहुँचा पहिले दरवानके पास उसे अपना परिचय देना पड़ा। दरवान की आज्ञासे वह एक कोठरीमें बेंचके उपर बैठ गया। प्रायः आध घंटा बैठा रहा; पर किसीने कुछ न पूछा। आखिर हिम्मत बाँधकर एक दासीसे अपना परिचय देकर बोला—"भौजाईजीसे कहकर एकबार लल्लूको ले आओ। मैं आज ही विदेश जारहा हूं, एक बार देख कर जाऊँगा।"

भौजाई के साथ मिलूँगा—इतने कहने की उस की उस समय हिम्मत ही न हुई। बड़े आदमीके घर की दासी होने पर भी वह बड़ी भली आदमिन थी। दुलीचंदके कहनेसे वह उसी समय सुकेशीके पास पहुँची।

आशा और उद्वेगसे दुलीचंदका हृदय काँपने लगा। पहिले उसने सोचा था; शायद बड़े आदमी

के घर जाकर वह अपने भतीजेको देख न सकेगा। अभी लल्लू आवेगा, अभी वह उसे गोदमें लेगा; किंतु आसाम जाकर लल्लूको बहुत दिन तक नहिं देख सकेगा—यह सब सोचकर आनंद और दुःखसे दुलीचंद की आखोंमें आँसू भर आये।

थोड़ी ही देरमें दासी लौट आई; परंतु उसकी गोदमें लल्लू नहीं! शायद भौजाईजी ने अपने पास बुलाया होगा—इस आशासे उसका हृदय फूल उठा। दासीने कहा—"बाबूजी, लल्लू सो रहा है, इस समय उसे आप नहिं देख सकते।"

दुलीचंदने डरते हुए पूँछा—"तुमने मेरी बात भौजाईजीसे कही थी?"

दासीने कहा—"हां, कही तो थी; पर उन्होंने कुछ ध्यान ही नहीं दिया—कहा, फिर कभी आनेको कह दे।"

दुलीचंदका मुंह क्षणभरमें विवर्ण होगया। हताश हो वहासे उठा। दासीको खिलौने और मिठाई देकर बोला—"ये सब तुम लेजाओ; लल्लू जगने पर उसे देदेना।" इतना कह कर दुलीचंदका गला रुंध गया।

दुलीचंदकी दशा देखकर दासीको कुछ करुणा आगई। मिठाई और खिलौने हाथमें लकर दासीने कहा—"अच्छा बाबूजी तुम और ज़रा बैठो, मैं और एकबार देख आऊँ।

दुलीचंद फिर बैठ गया।

थोड़ी देरमें दासी खिलौने और मिठाई वापिस लेकर लौट आई। बोली—"नहीं बाबूजी, उन्होंने लल्लूको नहिं जगाने दिया।" फिर कुछ समय तक दासीने इधर उधर कर कहा—"और कहा है कि यह सब उनको लौटा दो। कौन जाने बाबा कैसी चीजें हैं?"

दासीके इस अंतिम वाक्यने तो दुलीचंदके हृदयमें पैनी कटार कासा काम किया। उसने सोचा—हाय! मैं तो भतीजेके प्रेमसे खिंचकर उसे केवल देखने की इच्छासे आया और भौजाईजीने मुझसे उसका यह बदला निकाला। मै उस अजान बच्चेसे मिलने न पाया, उसके लिये खेलने खानेकी भी जो दो एक चीज लाया था वह भी लांछन लगाकर मुझे ही लौटा दीं। हा! स्त्रीका हृदय कितना नीच और वीभत्स द्वेषका स्थान होता है। सुकेशी! तूने यह न सोचा दुलीचंद आज यहां तेरे लिये नहीं तेरे पुत्रके लिये—अपने भाईके पुत्रकी स्नेह रज्जूसे बद्ध होकर आया है। उसका कुछ भी तो तुझे अहसान रखना था! पर यह सब कुछ न कर उल्टी यह तौमद लगा दी कि बाबा! न जाने वह सब कैसा है? क्या मेरा हृदय भी तेरे ही समान है? क्या मैं भी तुझसे वैर कर एक डेढ़ वर्षके बच्चे पर जादू टोना करनेके लिये यह सब खिलौना ला सकता था! पर हा! स्त्रीजन सुलभविद्वेष! तुझे धन्य है! तेरी ही कृपासे आज सैंकड़ों घर हजारोंकी संख्यामें विभक्त हो गये! भाई २ जानी दुश्मन बन गये! बाप बेटे एक दूसरेका खून करनेकी फिकरमें घूमते दीख पड़ते हैं और मुझे जो आज आसाम जाना पड़ रहा है वह भी तेरी ही कृपासे!

दुलीचंद इस तरह विचारते २ और संसारकी दशा चित्तमें विचार कर संतप्त होते हुये आसाम जाने के लिये जहाज पर सवार हो गया।

उपसंहार।

पाठको! इस छोटीसी गल्पमें आपको आपके घरोंका एक भीतरी सूक्ष्म दृश्य झलकाया गया है। इसका मनन कीजिये और फिर सोचिये कि छोटी २ बातों की आड़में मूर्खता वश हमारे भाई बहिन किस तरह सर्व नाशिनी फूट पैदाकर अपने आपको तहस नहस कर रहे हैं।

वृद्ध विवाह।

(लेखक—श्रीयुत रामस्वरूप जैन 'भारतीय' जारखी।)

[१]

कितने हैं नर नारि ? जिन्होंने आंखि उघारी। बाल-व्याहका दृश्य देख करुणा उर धारी ॥
जननीका दारुण दुख लखि कर दया विचारी। बाल-व्याहके नाश करनकी करी तयारी ॥
कितने हैं नर रत्न अब ? कितने पले झाड़ हैं ?
कितने सहृदय हैं यहां ? कितने हृदय उजाड़ हैं ?

[२]

हे नर रत्नो ! आवो नूतन दृश्य दिखावें। देखो ! बुड्ढे बुड्ढे दुलहिन को ललचावें ॥
कन्या विक्रेता, दलाल अति मौज उड़ावें। निर्दोषी अवलाओंको आजन्म रुलावें ॥
मनकी ज्वाला दाबि कर, कब तक वे जीती जलें ?
हैं अशिक्षिता, बालपन से, किमि इस पथ पर चलें ?

[३]

दिये हजारों, कहीं किसी ने लिये हजारों। मरे हजारों पापी, विधवा बनीं हजारों ॥
सभी कुरीति हुई, जिनमें व्यय हुए हजारों। बंद सुधारक संगति में हैं जुड़े हजारों ॥
पांडे जी सिर पाग धार, आये हके कमायंगे।
क्या आशा है शेष ? ये व्याह बंद हो जायंगे ॥

[४]

वर्ष वर्ष की विधवायें ! व्यभिचार बढ़ा है। रहत कुआरे कितने ? यह भी प्रश्न कड़ा है।
सर्वनाश ले कृपाण सिरपर आन खड़ा है। संख्या दिन दिन न्यून होत, दुर्भाग्य अड़ा है ॥
बूढ़े दुलहा नाहिं बनें; वृद्धव्याह यदि बंद हो।
"भारतीय" जो जाति में फिर नूतन आनंद हो ॥

पावन प्रतिज्ञा।

वृद्ध वरनोंने जाती को यूं सता रक्खा है। कातिलोंने माता को गाय बना रक्खा है ॥१॥
जैन माताकी सुताओंको ये क्रय करते हैं। अपना जीवन, कल वेश्याओं का बना रक्खा है ॥२॥
पांति इनकी भी अगर खायें तो तुफ है हम पर। पांति को पापका तस दराड बना रक्खा है ॥३॥
पांडेजी आजसे हरगिज न जायंगे इस में। जातिने इन हीं को तो खम्भ बना रक्खा है ॥ ४ ॥

विचित्र निष्पक्षता।

निष्पक्षताका अर्थ किसीबातका पक्ष-हठका न करना है। यदि किसी बातकी हठ की जायगी तो यह निश्चय है कि वहांपर सत्यासत्यका विवेक न हो सकेगा। यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि, जो मनुष्य जूआका खिलाड़ी है और उसी मार्गसे उसने दस बीस हजारकी पूंजी भी जमा कर रक्खी है, यदि उससे धन कमानेका उपाय पूछा जाता है तो वह जूआके दोषों को जानकर भी उसीको सिर्फ धन कमानेका उपाय बतलाता है। तथा अन्य धनके कमानेके मार्गोंसे जूआ ही धन कमानेका मार्ग अत्यंत सरल है ऐसा कह कर जूआको ही अन्य धनके कमानेके उपायोंमें अत्यन्त उत्कृष्ट प्रसिद्ध करनेका घोर प्रयत्न करता है, तो वह उसकी हठ है। क्योंकि उसकी बुद्धिपर बलवान अज्ञान का परदा पड़ा हुआ है। इसलिये सत्यासत्यका विवेक करना उसकी शक्तिके सर्वथा बाहिर है। इसी प्रकार जो मनुष्य ऊंचे दर्जेका चोर है और चोरीके द्वारा उसके पास कुछ द्रव्य जमा हो चुका है, यदि द्रव्यके कमाने के उपाय पूछने पर वह चोरीको ही धनके संचयका एकमात्र उपाय बतलाता है; तो समझना चाहिये उसका वैसा बतलाना हठ पूर्वक है। अच्छे बुरेके विचार करनेकेलिये उसने कभी अपनी बुद्धिको तकलीफ नहि दी। उसी प्रकार जिस मनुष्यने अच्छी तरह धर्म शास्त्रोंका परिशीलन नहि किया, किसी विद्वानसे उस विषयके जाननेकेलिये भी अपनी प्रतिष्ठाकी हीनता समझी, यदि न बकी न जानकर वह धार्मिक तत्त्वके विषयमें ऊटपटांग लिखता है, धर्मके स्तंभ आचार्योंको बुरा भला कहता है, ध्यानके अमूल्य समयका कुछ भी ध्यान न कर सिर्फ अन्य जीवोंके हितार्थ रची हुई उनकी कृतियोंका जरा भी मूल्य नहि समझना, दूसरोंके द्वारा सुझाने पर भी अपनी भूलपर कुछ भी पश्चात्ताप न कर अपनी दुष्ट बुद्धिसे कल्पित तूतीकोही दनादन बजाता चला जाता है तो यह निश्चय है कि, उसका वैसा करना हठ है, अज्ञानरूपी रतौंदने उसके नेत्रों पर वह विलक्षण प्रभाव जमा रक्खा है, जिससे वह रंचमात्र भी सत्यासत्यका विवेक नहि कर सकता।

लेकिन हां! सभी हठ बुरी नहीं होतीं। जो हठ धार्मिक सूत्रसे विरुद्ध और राग द्वेषसे पुष्ट है, वह हठ अत्यंत हानि कारक है। किंतु जो हठ धार्मिक सूत्रके अनुकूल धर्मपर पूर्ण श्रद्धा जतलाने वाली धर्मकी प्रभावना आदि करनेवाली है वह हठ लाभ दायक है, क्योंकि वह शुभोपयोगमें कारण है। यह कथा प्रायः सभी जैनियोंमें प्रसिद्ध है, तथा आत्माभिमान और गौरव उत्पन्न करनेवाली है कि, जिस समय भारतवर्षमें बौद्ध धर्मका प्रचार था उस समय बौद्ध धर्मका सच्चा सेवी कोई साहसतुंग नामका राजा मौजूद था। उसकी दो रानियां थीं; जो एक बौद्ध धर्मकी भक्त और दूसरी जैनधर्मकी भक्त थी। फाल्गुन अष्टान्हिका पर्वमें जैन धर्मकी भक्त रानीने अपना रथ चलानेका विचार किया परंतु ज्यों ही बौद्धधर्मकी भक्त रानीने यह समाचार सुना कि जैनका रथ निकलेगा, त्योंही वह जलके खाक हो गई और यह शर्त कायम कर कि जो मेरे गुरुको कोई तेरा जैनका गुरु शास्त्रमें हरा देगा, तो तेरा रथ चलेगा नहीं तो पहिले मेरा रथ निकलेगा राजा भी बौद्ध धर्मका भक्त था, इसलिये उसने भी यही शर्त कायम रक्खी। बस राजा साहसतुंगकी वह रानी जो जैनधर्मकी भक्त थी, एक दम हताश होगई। क्योंकि उस समय बौद्ध धर्मका घोर प्रचार होनेके कारण जैनाचार्योंकी एक प्रकारसे नास्ति हो सी थी। इसलिये उस

जैनधर्मकी भक्त रानीको यह विश्वास कम था कि कोई जैन गुरु आकर इस बौद्ध गुरुको शास्त्रार्थमें परास्त करेगा। इसलिये उससे और कुछ न बन सका। भगवान जिनेंद्रके मन्दिरमें जाकर उसने इस बातकी हठ करली कि, जबतक मेरा रथ आगे न चलेगा तब तक मेरे अन्न पानका सर्वथा त्याग है। उसकी हठ धर्मकी संजीविनी हठ थी. शुभोपयोगके उपार्जनकी पूर्ण सामर्थ्य रखती थी। इसलिये रानीको उस हठसे उत्पन्न शुभोदयकी कृपासे आचार्य प्रवर भगवान अकलंक देवका वहां शुभागमन हुआ और उन्होंने बौद्ध गुरुके अभिमानको चूरकर सबलोगोंके हृदयोंमें जैन धर्म की असलियत जमादी; जिससे वहां मय राजाके बहुतसी प्रजाने जैन धर्म धारण किया और बड़े ठाट बाटसे जैन धर्मका ही रथ चला।

जैनसमाजमें आचार्यप्रवर स्वामी समंतभद्रका परम आदर है। उनके विषयमें यह गौरव वचन—

अवटुतटमटति झटिति स्फुटपटुवाचाटधूर्जटेर्जिह्वा।
वादिनि समंतभद्रे स्थितवति सति का कथान्येषां॥

(अर्थात् वादी जिस समंतभद्रका मौजूदगीमें स्फुट और अत्यंत बोलनेवाले महादेवकी भी जीभ जब शीघ्र ही कूपमें प्रवेश करने के लिये उसके किनारे पर चक्कर लगाती है—जिसके सामने महादेवकी भी बोलती बंद होजाती है, तब अन्य मनुष्योंको क्या बात है? वे तो सामने ठहर ही नहि सकते) प्रत्येक धर्म पर गाढ़ श्रद्धा रखने वाले जैनोंके हृदयमें बीजली दौड़ा देता है। इन्हीं आचार्य प्रवर समंतभद्रको अशुभकर्मकी कृपासे जब भस्मव्याधि - रोग होगया था. उससमय वे अविनयके भयसे मुनिवृत्ति त्यागकर और ब्राह्मण बन कांची आदि देशोंमें जहां अन्यधर्मके मंदिरोंमें विशेष भोग चढ़ता था, डोले थे। अन्तमें वे शिवमन्दिर बनारसमें अधिक भोग चढ़ता सुन वहां आये और राजा शिवकोटिके सामने यह वायदा कर कि मैं समस्त भोग महादेवको खवा सकूंगा. मन्दिरके पुजारी नियत होगये। इनके पुजारी होनेपर जिनपंडोंकी आजीविका छूटगई थी उन्होंने परीक्षाकर इनको शैव मतका विरोधी पाया। शीघ्र ही राजाके कानतक यह समाचार पहुंचाया; जिससे राजा को इनसे शिवपिंडीको नमस्कार करनेका आग्रह करना पड़ा। परंतु भगवान समंतभद्र पक्के श्रद्धानी थे उन्होंने राजाके वचनानुसार पिंडीको नमस्कार नहि किया। किंतु राजाके कार्य को अज्ञानजन्य समझ वहांकी समस्त जनताके सामने अपने आगे पिंडी रखवाई, बृहत्स्वयंभूस्तोत्रकी रचनाकर भगवान चंद्रप्रभका आह्वानन किया; जिससे पिंडीके भीतरसे भगवान चंद्रप्रभकी प्रतिमा निकली और खुले मैदान यह कहकर कि "राजन्! मेरा नमस्कार झेलना महादेवकी पिंडीको सामर्थ्यके बाहिर था। मेरा नमस्कार यह जिनेंद्रकी प्रतिबिंब झेल सकती है, इसलिये मैंने पिंडीको नमस्कार नहि किया। अब मैं इन जिनेन्द्रकी प्रतिबिंबको सविनय नमस्कार करता हूं, एकमात्र जिनेन्द्र प्रतिबिंब ही मेरा नमस्कार झेल सकती है" चंद्रप्रभ भगवानकी प्रतिबिंब को साष्टांग नमस्कार किया। इस घटना और धार्मिक हठका परिणाम यह निकला कि आचार्य प्रवर महात्मा समंतभद्रने मय राजा शिवकोटिके अनेकों को जैनी बनाया और सबलोगोंको जैन धर्मकी असलियत जमा दी। इसी प्रकार की और भी अनेक घटनायें हैं जिनमें धार्मिक हठका फल बहुत ही मीठा निकला है। इसलिये यह बात निश्चित हो चुकी कि सभी हठ बुरी नहीं; किंतु धार्मिक हठ अत्यंत हितकारिणी और धर्मकी रक्षा करनेवाली है। इसलिये प्रत्येक आस्तिक का यह कर्तव्य है कि वह धार्मिक हठको अपना कर्तव्य

समझे। जहांपर धर्मपर किसी प्रकार आघात पहुंचता हो वहां उसके हटानेकेलिये ओर धर्मको रक्षाकेलिये अपना सर्वस्व अर्पण करदे, जरा भी किसीके मुखका लिहाज न करे। मौन भी धारण न करे क्योंकि धर्म पर आघात पहुंचता देखकर भी उसके दूर करनेकेलिये किसी प्रकारका प्रयत्न न करना महा मायाचारी है। वह सच्चा धर्मात्मा नहीं किंतु लोगोंको रिझानेकेलिये धर्मको चादर ओढने वाला धार्मिक ज्ञानसे शून्य एक मात्र अपनी कीर्ति का चाहनेवाला धर्मका नाशक है।

पहिले हमारे पूर्वजोंमें यह रीति प्रचलित थी कि वे अपनी संतानोंको सबसे पहिले धार्मिक शिक्षा देने पश्चात् लौकिक शिक्षाकी और झुकाते थे। परिणाम यह होता था कि, वे संतान अविचारी मनुष्यों द्वारा धर्मपर आये हुए आघातों से जीजानसे रक्षा करती थीं। निकट संबंधी किंतु धर्मके विरोधियोंको जिस किसी भी उपायसे वे धर्मानुकूल बनाती थीं। मुखका लिहाज कर मौन किम्वा उपेक्षा दृष्टिको काममें नहिं लाती थीं। किंतु कुछ दिनसे जबसे कि पाश्चात्य विद्याका प्रभाव पड़ा है, लोगोंका धन कमानेकी ओर जल्दी विचार दौड़ जाता है। इसलिये शुरूमें धार्मिक शिक्षाका ख्याल न कर वे अपनी संतानोंको लौकिक शिक्षाकी ओर झुका देते हैं। किम्वा व्यापारमें लगा देते हैं; जिससे उनके हृदयोंमें धर्मका गौरव नहिं रहता। लोक लिहाज किम्वा किसी अन्य कारणसे वे धर्म को ढपली पीटते हैं परंतु अन्तरंग उनका सर्वथा छूंछा रहता है। परिणाम यह निकलता है कि, जब कोई स्वार्थी धर्मद्वेषी अपने निन्दित विचारोंके लिये धर्मपर आघात करता है; तो वे मौन धारण करलेते हैं। यदि कोई उन्हें उन आघातों को रोकने केलिये उसकाता है; तो वे यह कहकर 'भाई हमें इस दंदेमें नहिं पड़ना है' वे मुंहका लिहाज करजाते हैं। हमारी समझसे ऐसी कहनेवाले महाशयोंका शायद यह खयाल हो सकता है कि, वृथा किसी से रागद्वेष न करना चाहिये। परंतु ऐसा कहना उनका गलती खाना है। उन्होंने राग और द्वेषका स्वरूप ही नहीं समझा। क्या यह राग और द्वेष नहीं कि जो अपना कुछ अनिष्ट करता है वा गाली आदि देता है उसपर वह वार किया जाता है कि, जिससे उसकी जान भी चली जाय तो कुछ आश्चर्य नहीं? दो भाइयोंमें जब कि एकको दूसरेके वैभवसे कुछ जलन पैदा हो जाती है. उससमय वह सगा भाई भी अपने भाईका बुरा चीतने लग जाता है क्या यह घटना राग द्वेषके अन्दर शुमार नहीं! हमारा यह पक्का श्रद्धान है कि उक्त रूपसे कहने वाले महाशय दिनमें चार छै मनुष्योंसे अवश्य ही राग और द्वेष करते होंगे। परंतु आश्चर्य है, वे धर्मपर आघात पहुंचाने वालोंसे राग द्वेष करनेसे क्यों घबराते हैं! बस ऐसे महाशयोंके विषयमें यही कहना उचित है कि धर्मकी असलियतमें इन्हें संदेह है, अपनी व्यर्थ तारीफ की भी इन्हें भूख है। भला इस विचित्र निष्पक्षताका ठिकाना है?

धार्मिक सिद्धांतोंकी ओर मनुष्योंका ध्यान आकृष्ट करना, इससमय पंडित व्याख्याता समाचार पत्रोंके संपादकोंके आधीन है। यदि ये हृदयसे धर्मविरुद्ध बातोंपर मुखका लिहाज न कर निष्पक्षतासे टीका टिप्पणी करें नामकी पर्वाह न कर शास्त्रीय बातोंका मनन कर अच्छीतरह उनका प्रचार करें; तो यह निश्चय है कि धर्म पर कभी आघात नहिं पहुंचे। परंतु हम देखते हैं हमारे पंडित आदि महाशयोंका इस ओर जरा भी ध्यान नहीं। हमारे पंडित और व्याख्याता महाशय इस समय घोर निद्रामें मग्न हैं। यह देखकर भी कि शास्त्रीय बातोंका उल्टा तात्पर्य समझाया जा रहा

है, उन्हें कुछ ख्याल नहिं होता। समाचार पत्रोंके संपादकोंमें जो योग्य हैं वे मौन साधे बैठे हैं या समयका ध्यान नहिं रखते। और जो महाशय ऐसे हैं जिन्हें कुछ लिखनेका शौक है वे चटकीली बातों पर लेखनी चटकानेके सिवाय धर्म विरुद्ध बातों पर कुछ टीका टिप्पणी करना नहिं चाहते। प्राइवेट तौरसे हमें यह जानकर बड़ा दुःख हुआ है कि जिस किसी महाशयने इन संपादक महाशयोंसे यह कहा है कि आप इन धर्म विरुद्ध बातोंका खंडन करिए; तो उसका उन्होंने उत्तर यह दिया है कि—'भाई हम इस झगड़ेमें पड़ना नहिं चाहते।' मालूम होता है ये लोग इस बातसे घबड़ाते हैं कि यदि धर्मविरुद्ध बातोंका खण्डन किया जायगा तो जो महाशय धर्म विरुद्ध बातोंके लिखनेवाले हैं बुरा मान जायंगे। परंतु यह उनकी भूल है। मित्रता का यह लक्षण नहिं कहा जा सकता। मित्रता का अर्थ यही है कि यदि अपना मित्र प्रमाद वा अन्य किसी कारणसे गलती पर हो; तो उसकी गलती उसे सुझाई जाय और उसे सन्मार्ग पर लाया जाय। बल्कि इस विषयमें मित्रता रखते हुए कुछ न कहना, मित्रको गहरे गढ़े में डालना है। यह तो सब स्वीकार करेंगे कि धार्मिक बातोंको काट छांट करना भूल है; परंतु न मालूम हमारे संपादक महाशय क्या झंझट समझ रहे हैं। हां यदि धर्मविरुद्ध वक्ताओंके मतका सहमतपना हो तो दूसरी बात है; परंतु वहां भी स्पष्टरूपसे सब बात होनी चाहिये। धर्मविरुद्ध बातोंका खंडन करनेसे उनके वक्ता चिढ़ जायंगे, यह भूल है। क्योंकि यथार्थ बातको वे अवश्य मानेंगे और भूल सुझाने वालेको अपना हितैषी समझेंगे। यदि धर्मविरुद्ध बातों पर टीका टिप्पणी न की जाय और व्यर्थ निष्पक्षता दिखलाई जाय तो वैसी विचित्र निष्पक्षताके लिये सहस्रवार नमस्कार है।

क्या समय है ?

(लेखक—"भारतीय" जारखी।)

तजो द्वेष धार्मिक, करो जाति उन्नत, ये अनमेल के मारने का समय है।
हरो सब कुरीतें, रहें बस सुरीतें, कि बाजी को ये मारने का समय है॥
हैं होते जहां चार बरतन खटकते, मगर अपने मालिकका हैं काम देते।
मगर जैन माताकी हालत निहारो, कि अब तो कलह मारने का समय है॥
दुनियां में तब्दीलियां होना वाजिब है जब उसके मौजूं समय आन पहुंचे।
अविद्याकी लातों व बूढ़ोंकी घातों के कष्टों के संहारने का समय है॥
न हारे कोई, सब गले से मिलें, प्रेम रस में पगें, मात हों "भारतीय"।
ये तो झगड़े निपटते रहेंगे, मगर अब ये विद्या के परचारने का समय है॥

फूट दुष्टिनी अति भयकारी।

जगमें फूट महा दुख दाई, होते भिन्न कुटुंब अरु भाई।
माता पिता मित्र अरु नारी, होंइ प्रेम तजि वैरी भारी॥
जिनके धन लाखोंका खामा, उनके घर भूतोंका वामा।
हुआ फूटसे यह सब जाने, तो भी फूट रांडको माने॥
कौरव और पांडवोंमें जब, फूट पडी होगया नष्ट सब।
डोले पांडव भिक्षुक होकर, रहे न कौरव भी सुख पाकर॥
आज कालभी फूट रांडका, जिन जिन घर साहस प्रचारका।
तितर बितर होकर वह नसते, वैरिष्टर वकील घर बनते॥
है यह सत्य कहावत जगमें, कुल नाशिन इस फूट विषयमें।
खेतमें होइ तौ सब कोइ खावें, घरमें हो तो घर मिटि जावें॥
पाठक यही भाव सब लेखो, चित्र माहिं दो भाई देखो।
हो अज्ञानी दोनों लडते, पिठलगुआ इनको उकसाते॥
पिठलगुओंकी बात मानकर, घर मरगट हो गये उजड़कर।
तबभी होकर सबमें अगुआ, फूट करावें नित पिठलगुआ॥

जैनियोंमें स्त्रियें अधिक क्यों मरती हैं और बंध्या क्यों होती हैं।

(लेखक—श्रीयुत पं० मक्खनलालजी शास्त्री, टेहू ।)

मनुष्य गणना और जन्म मृत्युकी रिपोर्ट देखनेसे ज्ञात होता है कि दक्षिण प्रांतकी अपेक्षा उत्तर प्रांतमें स्त्रियें कम हैं और मृत्यु संख्या भी स्त्रियोंकी अधिक होती है। इसके अतिरिक्त पुत्र संतानकी अपेक्षा कन्या संतानकी उत्पत्ति अधिक होती है; तो भी स्त्रियोंकी संख्या दिनों दिन कम होती जाती है। इसके कारणोंपर अनेक महाशयोंने विचार करके प्रायः यही निश्चय किया है कि—बाल्यविवाह, वृद्ध विवाह और अनमेल विवाह ही इसके कारण हैं यद्यपि ये भी इसके प्रधान कारण हैं तथापि इन कारणोंमें भी एक अंतरंग कारण और है—उसपर किसीकी दृष्टि नहिं गई है। हमारी समझमें वही इन सब खराबियोंका प्रधान कारण है। वह कारण वैद्यक ग्रन्थानुसार स्त्रियोंकी योग्य अवस्था प्राप्त होनेसे पूर्वही सहवास प्रथाका जोरके साथ जारी हो जाना है।

हमारे पूर्वाचार्योंने कन्याका १२ वर्ष बाद और पुत्रका १६ वर्ष बाद विवाह कर देनेकी आज्ञा दी है। और विवाहके पश्चात् जिस समय स्त्रीके रजो दर्शन होने लगता है, तब उसको द्विरागमन करनेकी व पतिके साथ एक शय्या शयन करने वा सहवास करनेकी आज्ञा प्रदान की है। पूर्वकालमें सर्वत्र यही प्रथा जारी थी और दक्षिण प्रांतमें अब भी यही प्रथा बंबई मद्रास प्रांतमें जारी है। परंतु उत्तर प्रांतमें मुसलमानी राज्यके समय स्त्रियोंपर विशेषतया अत्याचार होनेसे १२ वर्षसे पहिले ही कन्याओंकी सगाई कर देनी पड़ती थी। क्योंकि मुसलमानी धर्ममें किसीकी विवाहित स्त्रीको हरण करना बड़ा पाप समझा जाता था। परंतु जब देखा गया कि यह सगाई करना वास्तवमें विवाह नहीं है क्योंकि एककी सगाई तोड़कर दूसरेने सगाई की हुई १२-१३ वर्षकी कन्याओंको भी छीनने लगे तब हिंदुओंने ज्योतिष शास्त्रोंमें "अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा तु रोहिणी-" इत्यादि नियम बनाकर ८-९ वर्षकी कन्याओंका विवाह करना प्रारंभ किया। परन्तु विवाह करने पर—उन अप्राप्त यौवन कन्याओंके साथ पतिसहवास भी शुरू होगया और उससे स्त्रियोंका स्वास्थ्य बिगड़कर प्रदर बंध्यात्व आदि अनेक रोगोंका खूब समाजमें प्रचार होने लगा तब प्रथम रजोदर्शनके पश्चात् द्विरागमन (गौना) करनेकी प्रथा जारी कीगई। परंतु उत्तर हिन्दुस्थानमें मुसलमानी विलासप्रिय राज्यके प्रभावसे हिन्दुस्थानियोंमें भी विलासिता बढ़गई। इस कारण रजोदर्शनसे पूर्व स्त्री सहवास करना अन्याय है, यह भूलगये और रजो दर्शनपर गौना करनेकी प्रथा भी उत्तर हिन्दुस्थानसे सर्वथा उठगई। दक्षिणमें शैत्य प्रधान होनेसे विलासिता कम होनेसे वह प्रथा जारी रही और अबतक वह मध्यप्रदेशसे लगाकर मैसूर प्रांत तक जारी है।

रजोदर्शनसे पहिले स्त्री सहवासके जारी होनेसे शारीरिक कितनी ही हानियां होती हैं। उनकी गिनती नहीं है। परंतु जो प्रत्यक्षमें दृष्टिगोचर हैं, उनमें प्रधान तया—स्त्रियोंको बंध्यात्व प्राप्त होना. और प्रदर होकर नाताकतो मंदाग्नि होना प्रधान हैं। येही मृत्युके निकट पहुंचाने वाले कारण हैं। ऐसी रोगसहित अवस्थामें पुरुषकी तरफसे सहवासका आधिक्य होना और भी भयंकर है। कोकशास्त्र वा वैद्यक शास्त्रके अनु-

सार रजोदर्शन के ३ दिन छोड़कर बारकी तेरह रात्री गर्भ संचार होनेकी मानी गई है। इन १३ रात्रियोंमें भी अष्टमी चतुर्दशी एकादशी अमावस्याको रात्रिमें स्त्री सहवासकी सर्वथा मनाई है। और रजोदर्शनसे लगाकर १६ रात्रियोंमेंसे समरात्रियोंमें सहवास करनेसे पुत्र संतान और विषमरात्रियोंमें कन्या संतान होनेका कारण है। अतएव पुत्र संतानकी इच्छा रखने वालोंको १३ रात्रियोंमेंसे जितनी रात्रियें सम हों, उनमेंसे अष्टमी चतुर्दशी, एकादशी, अमावश्यादि निषिद्ध रात्रियें छोड़कर, शेष रात्रियोंमेंही स्त्रीसहवास करना, सो भी पश्चिम रात्रिमें एकबार स्त्रीकी प्रबल इच्छा हो तो करनेकी आज्ञा है। परंतु खेद है कि इन शारीरिक रक्षाके समस्त नियमोंको उल्लंघन करके प्रायः सब ही पुरुष रत्न महीनेकी एक भी रात्रिको कोई संयमसे नहि रहता और तिस पर भी एक रात्रिमें दोचार दस बार की भी गिनती नहि रखता—ऐसी अवस्थामें प्रकृति और कोकशास्त्र विरुद्ध अत्याचार करनेसे पुरुषोंका और खास करके स्त्रियोंका स्वास्थ्य किस प्रकार स्थिर रह सकता है! ऐसी अवस्थामें क्यों न हमारे घरके घर खाली हों? क्यों न हम लोग निर्बल हो? पुराने विद्वानोंने—" पिंगल बिन जो छंद रचै, गीता बिन जो ज्ञान। कोक बिना जो रति करै, सो नर पशु समान।" यह उक्ति कही है सो क्या झूठ है? कदापि नहीं! गत वर्षके इनफुलियंजा ज्वरमें अधिकतर स्त्रियें हो मरीं। इसका कारण उक्त अत्याचारोंसे स्त्रियोंका निर्बल होनेके कारण प्रदर मंदाग्नि आदि रोगोंका होना ही है।

किसी मेलेमें दक्षिणी और हिन्दुस्तानी या मारवाड़ी स्त्रियें बहुतसी आई हों; तो दोनोंको अलग २ खड़ी करके एक तरफसे १०० स्त्रियां दक्षिणी व १०० स्त्रियां उत्तर हिन्दुस्तानी या मारवाड़ीकी अलग करके उनको देखेंगे तो उनमें दक्षिणी स्त्रियें निरोगी, हृष्ट पुष्ट, संतानवती की अधिक संख्या निकलेगी और उत्तर हिन्दुस्तानकी स्त्रियें रोगिनी, निर्बल, बंध्या अधिक निकलेंगी और संतानवती जो होंगी उनको संतानें भी प्रायः निर्बल रोग युक्तवाली निकलेंगी। कारण उसका यही है कि दक्षिणमें पुरुष या स्त्री दोनों ही प्राकृतिक वा शास्त्रीय नियमोंसे इतने गिरेहुये नहीं हैं, जितने कि उत्तर हिन्दुस्तानके गिरे हुये हैं। दक्षिणमें जैनियोंमें स्त्रियें अधिक क्यों मरती हैं और बंध्या अधिक क्यों होती हैं ऐसा लिखनेका खास कारण यह है कि तीनबारकी मनुष्य गणनामें अन्य समस्त जातियां तो बढ़ी हैं और जैन जाति प्रति १० वर्षमें लाख १॥ लाख घटती गई हैं क्यों कि—सब जातियोंसे जैन जाति अधिकतर असंयमी होगई है। तथा स्त्रियां उक्त प्रकारकी निर्बलता होते हुये भी शास्त्रीय नियमसे विरुद्ध तेला चौला अठाई आदि उपवास अधिकतया करती हैं, जिससे संतानोत्पत्ति शक्तिके कम होनेमें संतान वृद्धि प्रायः रुकगई है।

धनी व्यक्ति वा विषयाभिलाषी कामी पुरुष एक विवाहके पश्चात् दूसरा तीसरा चौथा विवाह करते हैं। उनमें यदि पुरुष अधिक कामी होकर रजोदर्शनसे पहिले स्त्री सहवास करैगा तो वह स्त्री शीघ्रही मरजायगी, यदि अन्यान्य कारणोंसे स्त्री नहिं मरैगी तो वह बंध्या हो जायगी, यदि बंध्या न होगी तो निर्बल संतान या अल्पायु संतान उत्पन्न करैगी। यदि-स्त्री अधिक उमरवाली विवाह होते ही मासिकधर्मको प्राप्त होगी तो पुरुष निर्बल रोगी होजायगा वा वृद्ध होगा तो शीघ्र ही मरजायगा क्योंकि-'वृद्धस्य तरुणी विषं" यह कहावत प्रसिद्ध है। अगर संतान होगी तो निर्बल वा अल्पायु होगी। स्त्री हृष्ट पुष्ट वा अधिक कामवाली

होगी तो उसके पुत्र संतान अधिक होगी। पुरुष हृष्ट पुष्ट वा अधिक कामी होगा तो उसके कन्या संतान अधिक होगी। ये सब प्राकृतिक व कोकशास्त्रीय नियम हैं। इनके विरुद्ध करनेसेही सब जगह विपरीत फल दृष्टिगोचर होते हैं।

यदि आपको गार्हस्थ्य सुख भोगना है, वंशकी रक्षा व वृद्धि करना है और आत्मीय बल बढ़ाना या अपने पैरों आप खड़े रहना है तो प्राकृतिक व शास्त्रोय नियमानुसार विवाह गौना आहार विहारका प्रचार बढ़ाना चाहिये।

हमारी समझमें पंचायतियोंको दृढ़ करके पंचायती नियम बनाये जावें कि—विवाहसे दो चार वर्ष पहिले सगाई करनेकी प्रथा सर्वथा उठा दी जाय। लड़की जब १२ वर्षकी हो जाय तब शरीरमें हृष्ट पुष्ट १६-१८ या २० वर्षका लड़का देख कर महीने दो महीने में विवाहका मुहूर्त देख कर सगाई करके नियत मिती पर बहुत थोड़े खर्चसे विवाह कर दें। विवाह के पश्चात् जब तक कि लड़कीके रजोदर्शनका प्रादुर्भाव न हो, तबतक न तो गौणा (मुकलावा) किया जावै और न वरकन्याकी एक शय्या होने दें। मारवाड़ी भाषामें गौणेको मुकलावा कहते हैं मुकलावे शब्दका अर्थ—पुत्र वधुका एक शय्या सोनेकी मोकली यानी छुट्टी देना है। प्रथम रजोदर्शनसे पहिले यह छुट्टी कदापि नहिं देना चाहिये। दक्षिणमें रजोदर्शनसे पहले एकशय्या होना तो दूर रहै पुत्र वधुको परस्पर वार्त्तालाप करनेकी भी आज्ञा नहीं है कारण विशेषसे लड़कीको गौनेसे पहिले विवाह या बीमारी आदिके कारणसे सुसरालमें आना वा रहना पड़ता है तौ सास जिठानी बहूको अपने पास ले कर सोती है। वा हर तरहसे उसकी रक्षा रखती हैं। इसके सिवाय विवाहके पश्चात् वर कन्या दोनोंको ही कोकशास्त्र व शारीरिक स्वास्थ्य रक्षाके नियमोंकी शिक्षा देने वाली पुस्तकोंके मनन करने व नियमानुसार चलने की शिक्षा देना चाहिये। और जहांतक बने २५-३० वर्षसे अधिक उमरवाले दूज या तीज वरको कन्या देनेका नियम सर्वथा उठा देना चाहिये। जबतक पंचायती प्रबंध ठीक नहिं होगा और पुरुष स्त्री स्वयं इस अत्याचारमें अपनी हानि समझ कर संजमसे नहिं रहेंगे, तब तक जैन जातिका क्षय होना कदापि न रुकेगा। वृद्धि होना तो बहुत दूर है।

प्रार्थना।

(श्रीजौंहरीलाल जैन, करहल।)

विनती सुनिये कृपानिधान ॥ टेक ॥

भारतपर संकट है भारी मरी करोड़ों जान।
पड़ै बीमारी ऐसी भारी होय गया घमसान ॥
प्रकाशन करो दयाका भान ॥ १ ॥ विन०

लाखों वीर युद्धमें खप गये भारत है वीरान।
हर महीनेमें घटते लाखों मिला किया मीजान ॥
बचावो हमरी प्रभुजी जान ॥ २ ॥ विनती०

काल पड़त हैं ऐसे भारी ज्यों आता शैतान ॥
घटी अबादी भई बर्बादी थोड़े दिन दर्म्यान ॥
भारती होय रहे बेजान ॥ ३ ॥ विनती०

भारतवासी करें प्रार्थना भारत हो उत्थान।
काटो संकट श्रीजिनदेवा होवे स्वर्ग समान ॥
'जौंहरी'को दो प्रभुजी ज्ञान ॥ ४ ॥ विनती०

स्त्री-मुक्तिपर विचार.

यह प्रायः सभी शास्त्रकारोंका मंतव्य और वक्तव्य है कि बहुतसी बातें ऐसी हैं जो हेतुवाद परिपुर्ण है – युक्तियोंका विना अवलंबन लिये उन वस्तुओंकी यथाथ सत्ता निश्चय रूपसे नहि कही जासकती। तथा बहुतसी ऐसी बातें हैं जो हेतुवादसे वहिर्भूत हैं, यदि उनकी सिद्धिमें हेतुवादका अवलंबन लिया जाय तो उनकी असलियतही नहि सिद्ध होसके। ऐसी बातोंको केवल सर्वज्ञ ज्ञान गम्य वा आगमगम्य भी कहा जाता है। तथा बहुतसी बातें ऐसी हैं; जिनका उल्लेख आगममें भी है और उनका विचार युक्तियोंके बलसे भी कर सकते हैं। परंतु वहां कुतर्कका सहारा न लिया जाना चाहिये।

सत्योदय अंक ४ वर्ष २ से स्त्रीमुक्ति नामका लेख जारी है। लेखकने अपने सहधर्मियोंके रिझाने और दीर्घकालसे अपने हृदयमें संचित किंतु अप्रतिष्ठा किंवा स्वार्थ पुष्टिमें खलल न पड़े इस भयसे अन्य मनुष्यों द्वारा गुप्त भावोंके प्रसार केलिये बड़ीही लंबी प्रस्तावना लिखी है। यद्यपि हम भी उससे कई गुणी अधिक प्रस्तावना और साहित्यकी छटा छटका सकते है परंतु हमें वैसा लिखना युक्ति परिपूर्ण नहि जान पड़ता। क्योंकि किसी विषयकी व्यर्थ तारीफकी ढपली पीटना किसी भी सुचतुर विचार शीलको आनंद दायी नहि हो सकता। हमने तो जो इस विषयमें आगमानुर समझ रक्खा है वही उल्लेख किया जाता है।

यह बात तो युक्त है ही कि यदि कोई मनुष्य उल्टा सीधा कुछ भी विचार करै, उसका मुह नहि पकड़ा जाता। जो धर्म श्रद्धालु होगा, वह प्रायः धर्मविरुद्ध लिखनेके लिये लेखनी न उठायगा; किंतु जो ऊपरसे धर्म श्रद्धालुपना जाहिर करने पर भी द्रव्यलिंगी मुनि वा ढोंगी प्रतिष्ठा लोलुपी श्रावकके समान अंतरंगमें धर्म श्रद्धासे शून्य होगा, वह सब कुछ लिख सकता है इसलिये इस लेखके विषयमें बहुतसे लोगोंका खयाल है कि यह लेख बा. सूरजभानुजी वकीलका लिखा हुआ है। बहुतसे लोगोंका खयाल है कि बाबू जुगलकिशोरजी मुख्तारका लिखा हुआ है। परंतु हमारी राय इस विषयमें विरुद्ध है। हमें जहांतक विश्वास होता है यह लेख एक ऐसे व्यक्तिका लिखा हुआ होना चाहिये कि जिसने कुछ समय तक गोम्मटसारके ज्ञाता विद्वानका या वता धारणकी है, गोम्मटसारका अवलोकन भी किया है। इस समय उसे अजीविका आदिकी कुछ भी चिंता नहीं है। संसारमें क्या हो रहा है इस बातका भी उसे पूरा पता नहीं। और निराकुलता पूर्वक किसी बंद मकानमे बैठ कर गोम्मटसारके प्रत्येक अक्षरके पलटनेका सौभाग्य प्राप्त है। इसलिये उसके विचारोंमे कहीं कहीं पर मनीषिताका परिचय मिलता है। परंतु ऐसा पुरुष यदि इन शास्त्र विरुद्ध तुच्छ बातोंपर ध्यान न देकर प्रकट रूपमें प्रकाश डालनेके योग्य किसी शास्त्रीय विषय पर ही विचार करे; तो यह विश्वास है, वह जैन धर्मका बहुत कुछ ऊंचे दर्जेका कार्य कर सकता है। लोगोंके हृदयमें निज धर्मकी असलियत पूर्ण रूपसे जमा सकता है। इस तरहसे धर्मविरुद्ध विषय पर नोट करना अनुचित है। अस्तु ऐसा कोई भी व्यक्ति हो, किसीका यह लेख लिखा हो, हमें इस बात पर व्यर्थ विचार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। हमें तो प्रकृत विषय पर ही ध्यान देना योग्य है।

स्त्री मोक्ष यह विषय विवादास्पद है श्वेतांबर संप्रदायमें स्त्रियोंको मोक्ष धर्मानुकुल मानी है। परंतु दिगं-

बर संप्रदायमें स्त्री मोक्ष धर्म विरुद्ध है। दिगंबर संप्रदायके आचार्य प्रवर प्रभाचन्द्रजी विरचित प्रमेयकमल मार्तंड नामक ग्रंथमें स्त्री मोक्षका खण्डन है। और श्वेतांबर सम्प्रदायके श्रीरत्नप्रभाचार्य विरचित रत्नाकरावतारिकामें उस विषयका मण्डन है। प्रमेयकमल मार्तण्ड बहुत ही ऊंचे दर्जेका न्यायका ग्रंथ है। विधर्मी विद्वान भी इस ग्रंथको देखकर दांतों तले उंगली दबाते हैं। यह अपनी शैलीका विशाल और अनुपम एक ही ग्रंथ है सत्योदयके वाक्योंपर तो हम क्रमशः विचार करेंगे पहिले दिगम्बर सम्प्रदायके प्रवर आचार्य प्रभाचंद्रजीने स्त्रीमुक्तिके विषयमें क्या कहा है और श्वेतांबर संप्रदायके रत्नप्रभाचार्यजीने क्या कहा है वह हम यहां उद्धृत करते है।

प्रमेयकमलमार्तण्ड —

शंका—अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन आदि स्वरूपकी प्राप्ति रूप मोक्ष पुरुषको ही प्राप्त हो सकता है स्त्रियोंको नहीं यह बात अयुक्त है क्योंकि स्त्रियां भी उसे प्राप्त कर सकती हैं और वे इस अनुमान प्रकारसे। स्त्रियां भी मोक्ष प्राप्तिकी अधिकारिणी हैं क्योंकि पुरुषोंकेसमान उनमें मोक्ष प्राप्तिके समस्त कारण मौजूद हैं?

उत्तर—यह बात अयुक्त है क्योंकि पुरुषोंके समान स्त्रियोंमें मोक्ष प्राप्तिके समस्त कारण मौजूद हैं यह हेतु असिद्ध है और वह इसप्रकार है—

जिस प्रकार स्त्रियोंमें सातवें नरकमें लेजानेवाले तीव्रतर पापकी उत्पत्ति नहीं; जिससे वे सातवें नरक जासकें। उसी प्रकार मोक्षके कारण सर्वोत्कृष्ट ज्ञान—केवल ज्ञान आदिकी उनके प्राप्ति नहीं, जिससे वे मोक्ष पा सकें क्योंकि जिस प्रकार सातवें नरककेलिये तीव्रतर पाप कारण है उसी प्रकार मोक्षकी प्राप्तिकेलिये ज्ञानादि गुणोंकी प्राप्ति असाधारण कारण है—मोक्ष केवल ज्ञानादिकी अविनाभावी है।

शंका—सातवें नरककी प्राप्तिका कारण तीव्रतर पाप यदि स्त्रियोंमें नहीं है; तो मोक्षके कारण केवल ज्ञानादि भी उनके नहीं, यह कैसी बात? सातवें नरकका कारण तीव्रतर पाप उनके न हो केवल ज्ञानादिकी प्राप्ति तो उनके हो सकती है क्योंकि यह नियम है जहांपर कार्यकारणभाव वा व्याप्यव्यापक भाव होगा, वहां एकके अभावमें दूसरेका अभाव हो सकता है यहांपर तो 'सप्तम नरक लेजानेमें कारण तीव्रतर पाप' और 'मोक्षकी प्राप्तिमें कारण केवल ज्ञानादि गुण' इन दोनोंमें कार्यकारण किंवा व्याप्यव्यापक कोई संबंध नहीं अतः स्त्रियोंमें सातवें नरकके कारण तीव्रतर पापके अभावसे मोक्षके कारण केवल ज्ञानादिका अभाव है यह बात सर्वथा अयुक्त है। यदि यह निर्हेतुक बात भी स्वीकार कर ली जायगी तो यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि घड़ेके न होनेसे तीन लोककी सत्ता भी नहीं हो सकती क्योंकि यहां पर भी सातवें नरकके कारण तीव्रतर पाप और मोक्षके कारण केवल ज्ञानादिके समान कार्य कारण किंवा व्याप्य व्यापक सम्बन्ध नहीं।

उत्तर—यह बात ठीक है घटाभाव और त्रैलोक्याभाव इन दोनोंमें उक्त कोई सम्बन्ध नहीं; परन्तु मोक्षके कारण केवल ज्ञानादि गुण और सातवें नरकका कारण तीव्रतर पाप इन दोनोंमें व्याप्य व्यापक भाव सम्बन्ध है क्योंकि यह नियम है—जिसके मोक्षके कारण केवल ज्ञानादि गुण हैं उसके सप्तम नरकका कारण तीव्रतर पाप भी है। पुरुषमें ये दोनों बातें मौजूद हैं इसलिये इस अनुमानसे—पुरुषमें सातवें नरकके कारण तीव्रतर पापकी उत्पत्तिकी सामर्थ्य है

१ धूम और अग्निका कार्यकारणभाव है इसलिये अग्निके अभावमें धूम नहीं हो सकता। वृक्ष और आम्र (वृक्ष) इन दोनोंके व्याप्य व्यापक भाव संबंध है इसलिये जहां आम (वृक्ष) है वहां वृक्षसामान्य नियमसे है और वृक्ष सामान्यके अभावमें आमका अभाव है।

क्योंकि उसमें मोक्षके कारण केवल ज्ञानआदि की उत्पत्तिकी सामर्थ्य है। उक्त सप्तम नरकका कारण तीव्रतर पाप व्यापक और मोक्षके कारण केवल ज्ञानादि व्याप्य सिद्ध हैं तब स्त्रियोंमें व्यापक (सप्तम नरकका कारण तीव्रतर पाप) के अभावमें व्याप्य मोक्षके कारण केवल ज्ञानादि) का अभाव सिद्ध हो चुका। स्त्रियां साक्षात् कभी मोक्ष प्राप्त नहिं कर सकती।

शंका—जो महात्मा चरम शरीरी हैं-उसी शरीरसे मोक्ष प्राप्त करनेवाले हैं। वहां मोक्षके कारण केवल ज्ञानादि रूप हेतु व्यभिचारी होगा। क्योंकि वहां यह हेतु तो मोजूद है परन्तु सातवें नरकका कारण तीव्रतर पाप नहीं। वे नरक जा ही नहीं सकते।

उत्तर—नहीं क्योंकि वहांपर पुरुष वेद सामान्यकी अपेक्षा कथन है, चरम शरीरी रूप व्यक्तिकी अपेक्षा नहीं। पुरुष सामान्यमें साध्य साधन दोनों मोजूद हैं।

शंका—यहांपर यह विपरीत नियम क्यों नहि स्वीकार किया जाता कि जहांपर सातवीं पृथ्वीका कारण तीव्रतर पाप होगा, वहींपर मोक्षके कारण केवल ज्ञानादि गुण रहेंगे और जहां मोक्षके कारण केवल ज्ञानादिका अभाव होगा वहाँ सप्तम नरकके कारण तीव्रतर पापका भी अभाव होगा, स्त्रीको तो मोक्षकी सिद्धि इस व्याप्तिसे भी न हो सकेगी।

उत्तर—नहीं इस विपरीत व्याप्तिको स्वीकार करने से नपुंसक भी मोक्षका पात्र होजायगा। क्योंकि नपुंसकके सप्तम नरक लेजानेका कारण तीव्रतर पाप तो मोजूद है परन्तु उसके मोक्षके कारण केवल ज्ञानादि गुणोंकी उत्पत्ति नहिं होती किन्तु पुरुषमें ही ये दोनों बातें होती हैं। इसलिये 'शब्द प्रयत्न निष्पाद्य है क्योंकि अनित्य है। यहांपर जिसप्रकार प्रयत्न निष्पाद्यपना व्यापक और अनित्यपना व्याप्य है, उसी प्रकार मोक्षके कारण ज्ञानादि व्याप्य और सप्तम पृथ्वी के ले जानेमें कारण तीव्रतर पाप व्यापक है। यदि कदाचित् विपरीत नियम स्वीकार कर मोक्षके कारण केवल ज्ञानादिका सद्भाव स्त्रीमें माना ही जायगा तो वह जबर्दस्ती स्वीकार करना हुआ तथा वैसा स्वीकारनेसे और भी दूसरा अनिष्ट स्वीकार करना पड़ेगा और वह यह कि पुरुषमें भी मोक्ष हेतु केवल ज्ञानादि गुण नहिं माने जा सकेंगे। [क्रमशः]

केशलोंच—

श्रीमान् ऐलक पन्नालालजी महाराजका केशलोंच अगहन वदि ६ गुरुवार वीर सं० २४४६ ता० १३ नवंबर सन् १९१९ को शोलापुरमें होगा। मार्गशीर्ष वदि २ को श्री जिनेन्द्र देवकी सवारी रथमें विराजमान हो कर उत्सव सहित चंदूलालके बगलेके मंडपमें जायगी। वहांपर चार दिन पूजा मंडल विधान होता रहेगा। उससमय त्यागी ब्रह्मचारी और विद्वानों के उपदेशमय व्याख्यान तथा कीर्तन भजन आदि होंगे। दो दिन तक महिला परिषद् भी होगी इत्यादि बातोंसे अपूर्व आनंद रहेगा। इसलिये सर्व भाइयोंसे प्रार्थना है कि इस अवसरका लाभ उठावें।

आवश्यकतायें—

जैनपाठशाला, राँचीके लिये एक अच्छे पढ़े लिखे अध्यापक की आवश्यकता है। वेतन योग्यतानुसार ३०) से ४०) तक दिया जायगा। पत्र व्यवहारका पता—सेठ रतनलाल सूरजमलजी जैन, राँची।

टूंडलामें जैनपाठशाला खोलनेका विचार है। वहांके लिये भी एक अध्यापककी जरूरत है। पत्र व्यवहार इस पते से करें—लाला श्योप्रसादजी जैन,

पो० टूंडला (आगरा)

परवार महासभा के लिये एक और उपदेशककी आवश्यकता है। वेतन योग्यतानुसार ५०) तक दिया जायेगा। पत्र व्यवहारका पताः—कुंवरसेनजी जैन,

मंत्री—परवार महासभा, सिवनी सी० पी०

"पद्मावतीपुरवाल" का उपहार!

समयसार ग्रंथ !!

श्रीयुत पं० मनोहरलालजी शास्त्री सूचित करते हैं कि "पद्मावतीपुरवाल" के ग्राहकोंकी हमारे पास लिख भेजिये हम उनको समयसार ग्रंथ (खुले पत्र) स्वाध्यायके लिये बिना मूल्य भेट देंगे। अतः जिन २ महाशयोंको मंगाना हो, वे शीघ्र ही पोष्टेज के लिये एक आनेकी टिकट भेजकर इस पतेसे मंगालें—

मैनेजर—जैन ग्रंथ उद्धारक कार्यालय,
खत्तरगल्ली, हीराबाड़ी पो० गिरगांव-बंबई।

इस उदारताके लिये हम पं० मनोहरलालजी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि आप हमेशा इस पत्र पर ऐसी ही कृपादृष्टि रक्खेंगे। औरोंको भी इनका अनुकरण करना चाहिये।

नूतन मासिक पत्र—

यह सुन कर पाठकोंको बड़ा हर्ष होगा कि, शास्त्रीय परिषद् की तरफसे शोलापुर से एक "जैनदर्शन" नामक मासिक पत्र दिवालीसे निकलेगा। इसके संपादक श्रीयुत पं० वंशीधरजी न्यायतीर्थ होंगे। आशा है, यह पत्र निश्चित समय पर निकल कर समाजोन्नतिमें पूर्ण सहायक होगा।

पालेज (भड़ोंच) में मंदिरकी आवश्यकता—

यहां पद्मावतीपुरवाल जैनियोंके १०-१२ घर हैं। यहांके भाइयोंमें एकता और सहयोगिता देख कर बहुत हर्ष होता है। सब बातों का सुभीता होने पर भी यहां एक मंदिरको बहुत ही आवश्यकता है। मंदिर का न होना बाल बच्चोंके लिये बहुत ही दुःख का कारण है। धर्मकी ओर रुजू करनेके लिये मंदिर एक प्रधान कारण है। अतएव यहांके मुखिया लाला नन्नूमलजी आदि से हमारा नम्र निवेदन है कि, वे इसका शीघ्रही उचित प्रबंध करें। पाठशालाकी भी स्थापना होनी चाहिये।

श्री मालवा प्रांतिक पद्मावती परिषद्—

का वार्षिक अधिवेशन सीहोर-छावनी में भाई हजारीलाल मूलचंदजी कराने वाले हैं। इसका समय नियत होने पर सर्व भाइयों को सूचना दी जायगी। इस शुभ अवसर पर आगरा यू० पी० के पद्मावतीपुरवाल भाइयों को अवश्य पधारना चाहिये, जिससे एकता होकर परस्पर व्यवहार जारी हो सके।

पाठकों और सम्भदारोंसे—

सविनय प्रार्थना है कि वे हर महीने अपनी २ शक्ति अनुसार समय निकाल कर कमसे कम जातिकी उन्नति करने वाले एक या दो लेख अवश्य भेज दिया करें और जिस गांव वा शहरमें कोई नई बात अपनी बिरादरी के संबंधमें गुजरी हो, उससे भी हमें सूचित कर दिया करें। जिससे उसपर विचार कर हम अपनी राय लिख सकें, तथा समस्त जाति भाइयों के सामने वह बात आजानेसे वे भी अपना विचार प्रकट करसकें।

अनुकरणीय दया—

मैहर में शारदा देवी के मंदिर में ४००० हजार बकरों का बलिदान होता था। हर्ष है कि श्रीमान त्यागी गोकुलप्रसादजी, उपदेशक मौजीलालजी, कन्हैयालाल गिरधारीलालजी मास्टर बाबूलालजी और कटनी के दो ब्राह्मणों की विशेष चेष्टा और परिश्रमसे यह हृदय विदारक बलिदान बंद हो गया है। राज्यकी तरफ से यह आज्ञा निकली है कि जो कोई देवी पर बकरा काटेगा उसे ५) जुर्माना और छह महीने की सजा दी जावेगी। इस दयाके लिये हम हीनहीं; वरन् समस्त जैन जाति श्रीमान् मैहर स्टेटके महाराजा श्री १०८ बृजनाथसिंहजी को कोटिशः धन्यवाद देती है। आशा है सभी राज्यके राजा और राज कर्मचारी इनका अनुकरण करेंगे।

—मैनेजर.

Regd. No. C 888.

शोक! शोक!! महाशोक!!!

यह लिखते हृदय विदीर्ण होता है, हृदयमें सन्नाटा छा जाता है और लेखनी थर थर कांपती है कि हमारे मित्र पं० श्रीलालजी काव्यतीर्थ प्रकाशक "पद्मावती पुरवाल" की सहधर्मिणीका अचानकही स्वर्गवास होगया। उनके लड़की पैदा हुई थी। कन्याजन्मके दो घंटे बाद ही दुष्ट कालने उन्हें खा लिया। यह दुष्ट काल किसीके मुखका लिहाज नहीं करता। चाहे कितना भी धर्मात्मा सुशील और सदाचारी मनुष्य क्यों न हो, उसे दुख पहुचाने से काम, यद्यपि यह मौत बड़ी ही भयंकर दुखावह है; परंतु संसारका विचित्र चरित्र देख धैर्य ही धारण करना उचित है। हमारे मित्र पं० श्रीलालजी योग्य और समझदार विद्वान हैं। हमें विश्वास है संसारकी दशाका अनुभव कर वे दुःखके जालमें न फसेंगे। उनके कुटुंबी जनोंसेभी हमारा सादर निवेदन है कि वे भी संसार की दशा विचार किसी प्रकार से दुखित न हों। चित्तमें धैर्य धारण करें।

खैरगढ़में रथोत्सव—

खैरगढ़ [मैनपुरी] में ता० ६-६-१६ को रथयात्रा का उत्सव हुआ। बाहरके भी बहुत भाई आये थे। स्थानीय ला० रूपारामजी के सुपुत्र ला० भगवानदास मुन्शीलालजीने अस्सी, ला० श्रीपालजी के सुपुत्रोंने सोलह, ला० लखमीचंद बाबूरामजीने चालीस और ला० चुन्नीलालजीने चालीस रुपये प्रदान कर खवासी की बोली पूरी की। पं० बाबूलालजी नगलेस्वरूप ने शास्त्रजी बाँचे। शामको उपदेश भी दिया, अच्छा असर पड़ा। दूसरे दिन भी ऐसा ही आनंद रहा। खवासी में ६०) ला० हुब्बलाल बेनीरामजीने और २१) ला० लखमीचंदजी बाबूरामजीने दिये। रात को भजन आदि भी खूब उत्साह के साथ हुए।

उडेसर (मैनपुरी) में जैन औषधालय—

पं० अमोलकचंदजीकी विशेष प्रेरणासे ला० मुन्नीलालजीकी तरफसे उडेसरमें जैन औषधालयकी स्थापना हो गई है। बड़नगरसे औषधियाँ मंगा कर अभी कार्य प्रारंभ कर दिया है। अनुभवी वैद्य मथुरादासजी अभी इस कार्य को संपादन करते हैं। इस उदारता के लिये हम लाला मुन्नीलालजी और वैद्यजी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं; एवं आशा करते हैं कि, ऐसे ही उत्साहसे हमेशा कार्य चलता रहेगा।

श्रीलाल जैनके प्रबंधसे जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,

८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार कलकत्तामें छपा।

पद्मावती परिषद्का सचित्र मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा चित्रोंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्री[illegible]लाल '[illegible]'

विषय सूची।

वर्ष. २ — अंक. ७

वार्षिक मू० २)

आनरेरी मैनेजर—
श्रीधन्यकुमार जैन, 'सिंह'

(१ अंक का ≡)

पद्मावती पुरवालके नियम।

१ यह पत्र हर महीने प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य २) रु० पेशगी लिया जाता है।

२ इस पत्रमें राजविरुद्ध और धर्मविरुद्ध लेखोंको स्थान नहिं दिया जाता।

३ इस पत्रके जीवनका उद्देश्य जैन समाजमें पैदा हुई कुरीतियोंका निवारण कर सर्वज्ञप्रणीत धर्मका प्रचार करना है।

४ विज्ञापन छपाने और बटवानेके नियम निम्नलिखित पतेसे पत्र द्वारा तय करना चाहिये।

श्री "पद्मावतीपुरवाल" जैन कार्यालय

नं० ८ महेंद्रबोस लेन, श्यामबाजार, कलकत्ता।

संरक्षक, पोषक और सहायक।

१) शेठी मोहनलालजी दुर्ग।
२५) ला० शिखरचंद्र बासमेलजी रईस, टूंडला।
२५) पं० मनोहरलालजी मालिक—जैनग्रंथ उद्धारक कार्यालय, बंबई।
२५) पं० लालारामजी मक्खनलालजी न्यायालंकार चावली।
२५) पं० रामप्रसादजी गजाधरलालजी (संपादक) कलकत्ता।
२५) पं० मक्खनलालजी श्रीलाल (प्रकाशक) कलकत्ता।
२५) सेठ रामासाव बकारामजी [illegible], वर्धा।
१२) पं० फूलचारीलालजी धर्माध्यापक जैन हाईस्कूल, पानीपत
१२) पं० अमोलकचंद्रजी प्रधानाध्यापक जैन [illegible] विद्यालय, इंदौर।
१२) पं० सोनपालजी जैन शास्त्री [illegible], पटना।
१२) पं० वंशीधर खूबचंद्रजी मंत्री सिद्धांतविद्यालय, मोरेना
१२) पं० शिवजीरामजी उपदेशक [illegible] मध्य प्रदेशिक दि० जैन सभा
१२) पं० कुंजविहारीलालजी जैन जटौआ निवासी।
५) ला० धनपतिरायजी ध्यानकुमार (मिल मैनेजर) उत्तरपाड़ा।
५) पं० रघुनाथदासजी रईस, सरनो (एटा)
५) ला० बाबूरामजी रईस वीरपुर।
५) ला० लालारामजी बंगालीरामजी [illegible] मर्चेंट, धर्मपुरा-देहली।
५) ला० गिरधारीलालजी रईस, टेहरी (गढ़वाल)
५) शेठ बाजीराव देवचंद्र नाकाड़े, भंडारा (वर्धा)
५) पं० हीरालालजी फतहपुर।

नोट—जिन महाशयोंने २५) रु० वा अधिक दिये हैं वे संरक्षक, जिनने १२) दिये हैं वे पोषक और जिनने ५) दिये हैं वे सहायक हैं। इन महानुभावोंने पिछली सालका घाटा पूराकर इस पत्रको स्थिर रक्खा है। आशा है इस साल भी ये कृपा दिखलावेंगे। पत्रका आकार आदि बदल जानेसे अबकी बहुत घाटा पड़ेगा पर हमारे अन्य २ भाई भी ऊपर लिखे तीन पदोंमसे किसी एक पदको स्वीकार कर लेनेकी कृपा दिखावेंगे तो आशा है हम फलीभूत होंगे।

पद्मावतीपुरवाल

पं० जिनेश्वरदासजी पद्मावतीपुरवाल ।

मार्गशीर्ष कृष्णा ११ ।

पद्मावतीपरिषद्का मासिक मुखपत्र ।

पद्मावतीपुरवाल

"जिसने की न जाति निज उन्नत उस नरका जीवन निस्सार"

२ रा वर्ष } कलकत्ता, क्वार, वीर निर्वाण सं० २४४५ सन १९१९, { ७ वां अंक

परिवर्तन ।

है परिवर्तन अतिआवश्यक सबको देश काल अनुसार ।
किंतु उचित धर्माविरुद्ध वह विज्ञोंने माना शुभ सार ॥
पूर्वकालमें आर्यवृंदने कर वैसा परिवर्तन कार्य ।
कायम रक्खा श्रेष्ठ धर्मको जनताको भी रक्खा आर्य ॥ १ ॥
धूम मची है वर्तमानमें भी परिवर्तनकी सब ओर ॥
शिक्षक और युवकगण डोलें करते परिवर्तनका शोर ।
करें कार्य वे परिवर्तनका दिलसे, हमें नहीं कुछ रोध ॥
किंतु प्रार्थना है उनसे वे मनमें रखें धर्मका बोध ॥ २ ॥

आदर्श विवाह पद्धति।

जैनियोंमें मुख्यतया ८४ जाति हैं। पंचामृताभिषेकके अन्तमें जो फूलमाल पचीसी पढ़ी जाती है उसमें उन जातियोंके प्रायः समस्त ही नाम लिखे हैं। ८४ जातियां जो अधिककी संख्यामें जीवित हैं उनमेंसे खंडेलवाल, अग्रवाल, परवार, पद्मावती पुरवाल आदि कुछ एकका ही नाम सुननेमें आता है। अन्य जैनजातियोंके विवाह संस्कार रीतियोंका तो हमें विशेष हाल नहीं मालूम है; पर जितनीं जातियोंका मालूम है, उनमें सर्वश्रेष्ठ जैन शास्त्रानुसार यह संस्कार पद्मावती पुरवाल जातिमें जैसा होता है, वैसा किसीमें नहीं होता। किसी जातिमें शादी [वाग्दान] के समय गणेशकी पूजा होती है तो किसीमें ब्राह्मणों और नाइयोंका द्रव्यसे घर भरा जाता है। किसीमें लड़की पसंद करनेमें नाई ही सर्वमान्य होता है तो किसीमें ब्राह्मण देवता ही लड़का लड़की पसंद कर जोड़ेको जीवन संगी बनानेका आर्डर दे देते हैं और किसीमें सिर्फ मा बाप ही अपने वधू वरको पसंद करलेते हैं। किसी जातिमें विवाहको ब्राह्मण देवता पढ़ते हैं तो किसी २ जातिमें उपस्थित जैनी भाई ही मंगलाचार आदि पढ़ अपने मनसे 'विवाह होगया' मानलेते हैं-आदि अनेक बातें धर्मसे अधिकांश विपरीत व्यर्थ व्ययको बढ़ाने वाली होती हैं। परंतु पद्मावतीपुरवालोंमें इन सब बातोंका बहुत ही सुधार है। आजकलके सुधारक जिन बातोंका जोर-शोरसे खंडन कर रहे हैं और व्यय अधिक न हो, गरीब अमीर सबका एकसा ही कार्य चले आदि बातोंके लिये जीजानसे कोशिश करते नजर आते हैं, एवं कोड़ियोंके कोड़ियों प्रस्ताव प्रतिवर्ष प्रतिसभा में पास कर डालते हैं। उनही बातोंका सरल और सुंदर सुधार पद्मावती पुरवालोंके पुरखा पहिले ही से अपनी जातिमें चला गये हैं। हमारे आजकलके सुधारोंमें तो धर्मशास्त्रकी विरुद्धताकी कुछ गंध भी आजाती है परंतु इन सुधारोंमें उन सब बातोंके लिये कुछ भी जगह नहीं दिखलाई पड़ती।

जिसप्रकार अन्य जातियोंमें लड़का या लड़कीको देखकर वाग्दान करदेनेकी प्रथा है उस प्रकार इस जातिमें नहीं है। यहां अधिक तर तो सगाई मेलाओंमें पक्की हुआ करती है। जहां वर वधू पक्षके प्रायः सब लोग नाते रिस्तेदार आया करते हैं; जो कि भावी अपने जामाता या वधूको देख पसंद किया करते हैं—दोनोंका शील कुल आदि गुण कैसे हैं? इत्यादि बातोंका भी पता लगा लेते हैं एवं परस्पर एक दूसरेके सुखमें सुख दुःखमें दुःख मनानेवाले दाम्पत्य प्रेम सूत्रसे बद्ध होनेके लिये तत्पर वर वधू भी एक दूसरेको देख लिया करते हैं। ऐसे मेले प्रतिवर्ष कहीं न कहीं हुआ करते हैं और जो नियमसे होते हैं वे मरसलगंज (फरिहा, मैनपुरी) तथा फिरोजाबाद के हैं।

यदि कारणवश इन मेलोंमें जाना नहीं हुआ या जाकर भी संबंध ठीक न हुआ तो लोग नाइयोंका इधर उधर भेजते हैं और उनसे यह खबर मंगाते हैं कि अमुक जगह लड़का या लड़की है या नहीं; है तो कितना बड़ा है और घर कैसा है? जब उपर्युक्त बातोंका निबटेरा नाईके मुखसे और अन्यान्य लोगोंसे होजाता है तो फिर लड़काको लड़कीवाला अपने घर पर बुलाता है और अपने कुटुंब परिवारके लोगोंको दिखा भला कर पसंद करा लेता है। पसंद आगया तो कुछ वस्त्र मिठाई और अंगूठी आदि भूषण या एक या दो नगदी रुपया देकर सगाई पक्की कर देता है, नहीं तो फिर इन खबर भेजेंगे आदि मीठी पर उदासीनता

भरी बातोंसे आगंतुक महाशयोंको विदाकर देता है और फिर दूसरी जगह वरको तलाश करने लगता है। यह तो हुई लड़कीवालोंकी बात, पर लड़का वाला भी लड़की पसंद करनेमें कम प्रयास नहीं करता। वह भी अपने हितू या दोस्तों और लड़केके साथ लड़कीके घरपर आता है और सब साथियों को लड़की पसंद आजाती है तो उसकी गोद भर देता है, नहीं तो ऊपरी सभ्य बातों से टाल मटोल बता देता है। लड़की की गोद भरनेमें अधिक लोग तो २००-३००) के अंदाजके आभूषण और कीमती गोटे जड़े करीब ५०-६० रुपयेकी लागतके कपड़े चढ़ाते है और कुछ लोग सिर्फ वस्त्र मिठाई ही दे सगाई पक्की कर देते हैं। गहना चढ़ानेको रिवाज आज कल कुछ बढ़ चली है क्योंकि अब लोग देहली कलकत्ता आदि बड़े२ शहरोंमें रह अन्य धनिक पर व्यर्थव्ययसे भरी पूरी जातियोंके साथ वास कर उनकी नकल करना सीख रहे हैं परंतु साथ ही जातिके शिक्षित इन बातोंका विरोध भी करने लगे हैं। अभी थोड़े ही दिनोंकी बात हैं कि फिरोजाबादमें एक पद्मावतीपुरवालोंके धनिक प्रतिष्ठित पुरुषके यहां अवागढ़ [एटा] के एक उनके जोड़दार महाशयकी बरात आई थी, वर और वधू दोनों पक्षवालोंने इसमें खूब ही धनकी मिट्टी पलीद की। परंतु बिरादरीके प्रायः समस्त भाइयोंने उन दोनोंको घृणाकी दृष्टिसे देखा। इसी प्रकार जब जब कोई आवश्यकतासे अधिक खर्च कर नामवरी लूटनेका प्रयत्न करता है तभी तभी बदनामीकी रस्सीसे उलझकर उल्टे मुंह गिरता है।

सगाई हो चुकनेके बाद लड़कीवाला, जब विवाह करना होता है उससे दो ढाई माह या और कुछ अधिक दिन पहिले सगाईकी चिट्ठी लड़केवालेके यहां भेजता है, इसको नाम उतारनेकी चिट्ठी भी कहते हैं। इसमें लड़कीवाला अपने गांवके पंचोंकी साक्षीपूर्वक समस्त कुटुंबके छोटे बड़ोंका नामोल्लेख कर लड़के वालोंके कुटुंबके लोगों तथा उस गांवके पंचोंको सूचना देता है कि मैं अपनी पुत्रीकी शादी अमुक आपके यहांके पुरुष या लड़केके साथ करता हूं। इस चिट्ठीके देनेका यह अर्थ होता है कि मैंने जो कुछ कहा है वह मुझे मंजूर है और उसके प्रमाणमें मैं आपको अपने कुटुंब तथा पंचोंके समक्ष यह लिखित स्वीकारता भेजता हूं; जिससे जिस किसी मा बापके मनमें शायद कभी कुछ विपरीत भाव भी आजाय तो वह न आ पावे। परंतु समयके प्रभावसे आजकल बहुतसे ऐसे भी पापी इस जातिमें होगये हैं जो अपनी मौखिक तथा लिखित स्वीकारता देने पर—मुंह और हाथसे अपनी पुत्रीका एक 'वर' नियत करदेने पर भी नामंजूर हो जाते हैं।

इसके बाद विवाहके जब १५-२० दिन शेष रह जाते है उस समय नाई लग्न लेकर जाता है। इसमें हलदी, अक्षत (हलदी चूना या केशरसे रंगे हुये चावल) सुपारी दोअन्नी, चौअन्नी, अठन्नीमेंसे कोई एक और आगरेका कच्चा पैसा (यह बादशाही जमानेका बना अधेला है और आजकल शायद २ पैसेमें ३ तीन तक मिलते हैं. इसकी कमताइस होनेसे लोग इनकी जगह आजकलके पैसेका भी उपयोग करते हैं, इत्यादि मंगलीक चार पांच चीज रहती हैं। इसमें विवाह किस दिन होगा ? कौनसे दिन तेल चढ़ेगा, कब बरात आवेगी आदि समस्त बातोंका उल्लेख रहता है और दोअन्नी से यह अभिप्राय प्रगट किया जाता है कि-बरात कम संख्यामें हलकी लाइये; मैं विवाह रुपये में दो आनेभर करूंगा, चौअन्नीसे मध्यम दर्जेका करूंगा और मध्यम

ही वरात लाइये एवं अठन्नोसे यह द्योतित किया जाता है कि मैं विवाह पूरा करूंगा, आप वरात यथाशक्ति लाइये । इन तीनमेंसे किसी एकके सिवा यदि कोई भाई यह चाहै कि मैं लखपती वा करोड़पती हूं रुपया या उससे अधिक भेजदूं तो नहीं भेज सक्ता । अन्य अन्य जातियोंमें ६, ११, १३ या इससे भी अधिक अधिक रुपयोंके भेजनेकी रिवाज है पर इससे सरल और सुंदर रिवाज न तो कोई हो सक्ती है और न है। लग्न लेकर पहुंचनेवाले नाईको लड़का वाला दोअन्नी पर सात रुपये, चौअन्नीपर ६) और अठन्नीपर ११) रुपये देता है एवं इस नगदीके साथ पहिरने ओढ़नेके पांचो वस्त्र चांदीके कड़े भी यथाशक्ति अधूरे पूरे विवाहके अनुसार हलके भारी दिया करता है। परंतु आजकल इस रिवाजमें और भी संकोच किया जा रहा है । महंगी और स्वार्थचातुर्य बढ़ जानेसे नाई लोग ठीक ठीक काम नहीं करते इसलिये लोग अधिकतर अपने भावी संबंधी को पत्र लिख दिया करते हैं कि इसको एक या दो रुपये से अधिक कुछ न देना या इतना देना । लग्न पहुंचनेपर लड़केवाला गांव या पंचायतके लोगोंमें सिर्फ बतासे बांटा करता है सो भी दस दस या बीस बीस, गिनती कर या अधिक खुशी समझी गई तो विना गिनती मुट्ठियां पसों भरकर लेकिन यह व्यर्थ व्यय में ही संभाला जाता है क्योंकि ऐसा न करने परभी लड़केवालेकी कोई किसी तरहकी वदनामी नहिं होती ।

लग्न पहुंची, विवाह का दिन निश्चित हुआ तो वर वधू दोनों पक्षमें मंगल गान प्रारंभ होने लगे और जब तक लड़की लौटकर आई या वधू विदा होचुकी तबतक हुआ करते है ।

विवाहके नियत समयसे दो दिन पहिले लड़के वाला अपने यहां जोनार करता है जिसमें वरातमें साथ जानेवाले नाते रिस्तेदार और अपने पंचायतके तथा व्यवहारी अजैन लोगों को निमंत्रण कर बुलायाजाता है । इस जोनारमें पूड़ी कचौड़ी साग तरकारीके सिवा कोई पक्की मिठाई नहीं बनती और यदि कोई बनाना चाहे तो उसके लिये कोई मनाई भी नहीं है । परंतु ऐसा बहुत कम लोग करते हैं और कभी कभी एक आदिका नाम सुनाई पड़ता है इस तरह बहुव्ययसाध्य मिष्टान्नोंकी इस जातिमें रिवाज न होने पर भी एक रिवाज है और वह यह कि—खाजा सबको करना होता है । यह मैदाका बनता है और करीब करीब मैदाकी बराबर या उससे अधिक ही घी इसमें लग जाता है । यह मीठा नहीं होता, दही और बूरे [कूटी या पीसी हुई चीनी] के साथ खाया जाता है, यह प्रायः हर एक मनुष्यको एक एक ही परोसा जाता है अधिक शक्ति और खुशहाली होने पर कोई कोई दो दो भी परोस दिया करते हैं परंतु ऐसा क्वचित् होता है । आजकल बहुतसे लोग इन खाजोंकी जगह फेनी भी बनाने लगे हैं: जिनमें घीका कम खर्च होता है और बहुतसे बाजारू मैदा अच्छी नहीं मिलती इनके बनानेवाले कम पाये जाते है, खर्च अधिक पड़ता है पर स्वादिष्ट नहीं होते, आदि अनेक कारणोंसे इनका विरोध करने लगे हैं और सबसे पहिले एमादपुर (आगरा) के ला० बुद्धसेनजी ने अपने यहां किसी विवाहमें सर्वथा कराये ही न थे । वे बड़े आदमी थे इसलिये लोगोंने भीतर ही भीतर इसके न करनेका विरोध कर भी कुछ कहा सुनी नहीं की और बहुतसे समझ चुपकी साध गये थे। जो हो, यह खाजेकी पृथा किसी समयमें घी सस्ता होनेसे अच्छी थी पर अब उसका सुधार हो जाना चाहियें। पद्मावती परिषद् के आगामी अधिवेशनमें इस विषयका प्रस्ताव भी पास होना उचित है ।

इस तरह लड़के वालेके यहां ज्योनार हो चुकने पर लड़की वालेको जितनी भीड लानेकी सूचना होती है उसीके अनुसार बरात दूर जानेको हुई तो रात्रिके इसी पहरसे और समीप जानेको हुई तो दूसरे दिन खूब सबेरे ही अल्प बहुत को संख्या में बैल गाडी घोडोंकी सवारीके साथ रवाना होजाती है जिससे अपने निर्दिष्ट स्थान पर इतने दिनसे पहुंच जाती है कि वहां रोटी दाल बाटी आदि बनाकर सब बराती खालें। इस जगह कच्ची रसोई ही होती है बराती लोग अपने हाथोंसे ही बनाते हैं और जो कुछ भी दाल आटे घी मे खर्च पड़ता है सब वर पक्षकी तरफसे ही होता है. लड़की वालेकी तरफसे सिर्फ ईंधन बर्तन जल आदि ऊपरी ही खर्च होता है। इसको लोग 'वृक्षोंके नीचे गांवसे बाहिर बगीचे आदि सुहानेके स्थानपर बनाई जाती है इसलिये रूखरोटी कहते हैं।'

इस प्रथाका यह मतलब है कि लड़के वाला या जिसके साथ विवाह किया जारहा है वह पात्र जाति से बहिष्कृत तो नहीं है। जो लोग इसके साथ आये हैं उनकी और मेरे भावी संबन्धीकी कच्ची रोटी एक होती है, एक पंक्ति भोजन तो होसकता है, आदि ज्ञातव्य बातें मालूम हो जांय।

इसके बाद सांझ हो जानेपर जब कि दीपकोंका प्रकाश अपना कुछ कार्य करने लायक हो जाता है उस समय लड़की वाले की तरफसे बार बार शीघ्रताकी प्रार्थना किये जानेपर बरात गांवमें प्रवेश करने चलती है और इच्छा एवं मौका होनेपर गांवकी प्रदक्षिणा कर या योंही लड़की वाले द्वारा पहिले ही से तयार कर रक्खे गये चौपार, धर्मशाला, घर वगैरः मेह बूंद आदि की बाधासे रहित स्थानमें आठहरती हैं। बरातियोंके यथायोग्य स्थानपर ठहरजानेके बाद वर अपने पक्ष सहित गाजे बाजे के साथ वधूके दरवाजे पर आता है। इससमय श्वसुर जामाता को सांथियासे सुशोभित आटा छू रापू गये चौकपर खड़ा करता है और दो या चार पीतलके कलशोंसे उसका मंगल सत्कार करता है कलशोंके मुह पर लोटे ढके रहते हैं और उनके भी ऊपर कंद (लाल कपड़ा) सूतेसे लिपटे हुये नारियल रक्खे जाते हैं ऐसे समय जामाता को अंगूठी आदि कुछ न कुछ सुवर्ण या चांदीका भूषण और लग्न के अनुसार गिनतीके रुपये भी भेंट स्वरूप दिये जाते हैं। भूषण प्रदान करनेमें अंगूठी का रिवाज ही आजकल अधिक देखनेमें आता है और अधिककीमती लर आदि देना कम सुननेमें आता है। इस प्रकार श्वसुरसे सत्कार पा वर साहब अपने डेरेपर चले जाया करते हैं और फिर उसरात्रि का ऐसा कोई नेग (चलन) नहीं रहजाता जिसमें वरको आना पड़ता हो।

हां! एक बातकी भूल हो गई और वह यह कि-बारौटी से पहिले लड़की वाला अपनी तरफसे एक नेग करता है जिसे लग्न कहते हैं। इसमें एक खजूरके पत्तोंसे बुने गये ढरे (यह इतना बड़ा होता है कि एक मनसे भी अधिक चांवल आजाते हैं। कहीं कहीं टीन या पीतल या लोहेका भी यह देखागया है) में कुछ कपडे और पहिले यदि दोअन्नी दी गई हैं तो दो रुपये से लेकर सत्तरह १७ तक चौअन्नी गई हैं तो २७ से लेकर ३३ तक और अठन्नी गई है तो ५१ नगदी रुपये भेंटस्वरूप रखकर भेजे जाते हैं इसके बदलेमें प्रत्युपहारस्वरूप लडकेवाला ढरेमें जितने चावल समासकते हैं उतने मन, दो मन भरता है और उनके ऊपर ३१ मोतीचूरके लड्डू रख वापिस कर देता है। पहिले लड्डुओंकी जगह गुड़की भेलियां रक्खी जाती थीं परंतु आजकल कुछ लोग व्यर्थ व्ययकी तरफ अधिक अग्रसर

होते नजर आते हैं इसलिये सर्वत्र लड्डुओंको ही चाल हे गई है। इस रिवाजका यह तात्पर्य है कि यदि लड़कीवालेके यहां हम लोग जो बरातमें आये हैं उनके लिये कुछ खाने पीनेका सामान न जुट सके तो इन चावलोंका भात बना देना और गुड मिला देना। परंतु आजतक कोई भी व्याह ऐसा सुनने या देखनेमें नहीं आया जिसमें ये चांवल काममें लाये गये हों। यह रिवाज हर गरीब अमीर को करना पड़ता है। कोई भाई यह इच्छा करे कि लडके की यह देन हमें न चाहिये वापिस करदें सो नहीं हो सक्ता क्योंकि यह रिवाज पहिले पुरुषाओंने कन्याविक्रयको कुत्सित पृथाको दूरकरनेकी दूरदर्शिनी बुद्धिसे बनाया था और उसे यदि धनको सत्तामें कोई बिरादरी का भाई न पालेगा तो जिसके पास धन नहीं है और अपनी वात ऊंचा ही रखना चाहता है तो गुप चुप लडके वालेसे रोकड़ा मनावेगा। परंतु दुःखके साथ लिखना पडता है कि इस रिवाजका पालन करभी लोग कन्या विक्रयका निंद्य पृथासे वाज नहीं आते। बहुतसे अधर्मी कन्याओं को गायके समान सैकडों रुपयों से बेच पाप कमाते हैं यह बड़ी ही लज्जाकी वात है।

इसके वाद उस रातको बरातमें कोई नेग नहीं होता। लड़कीवाले के यहां ही सारी रात काम काज हुआ करता है। लड़की का मामा भात पहिनाता है। वह अपनी वहिनकी दोरानी जिठानी को भी अपनी सगी वहिन ही मानता है और वहिनका जिसतरह वस्त्र आदिसे सत्कार करता है उसी तरह उनका भी करता है। अपने वहनोई भानेज आदिकोंका भी वस्त्रादिसे सम्मान कर वह कुछ नगदी ६) ११) रु. आदि शक्तिके अनुसार १०१) रुपये तक देता है। इस समय का वहिन भाईका मिलन बहुतही आनंददायक होता है; और खूब ही मंगलीक हर्षोत्पादक गीत गाये जाते हैं भातई पंचोंका भी सत्कार करता है और वह या तो रूमालसे या विलांद भर गजो या मलमलके टुकड़े से हो पूराकर छुट्टी हो जाती है।

भात पहिन चुकनेके वाद वधूपक्षके लोग घंटे दो घंटे के लिये सो जाते हैं और रात्रिके करीब २-३-बजे हो काम करने पर उतारू होजाते हैं कोई आटा मांडता है; कोई आग सुलगाता है और कोई घी आदि सामानोंको एकत्र कर पूरी सेकनेमें लगजाता है।

रातमें पूरी सेकनेको रिवाज यद्यपि ठीक नहीं है परंतु समस्त दिन अन्य २ नेगोंमें ही गायब हो जाता है इसलिये जब तक कोई और अच्छी तरकीब न निकल आवे तबतक जहांतक बने सावधानी पूर्वक यह काम किया जाना चाहिये जिससे जीवोंकी हिंसा का यथा शक्ति बचाव होजाय। यद्यपि हलवाइयों द्वारा दिनमें पूड़िया तयार कराकर इसका सुधार किया जा सक्ता है परंतु गावोंमें एकतो वे अकसर मिलते ही नहीं हैं और मिलभी जांय तो उनकी मिहनत मजूरीका खर्च वहुत पड़े। आज कल जो आपसके लोग रहते हैं वे ही सेक दिया करते हैं और औरतें पूड़ियां बेल दिया करती हैं।

इस जगह हमारे पाठकोंको यह न भूल जाना चाहिये कि यह जाति अधिकतर गावोंमें ही वसी हुई है और वहां सब लोग भाई भाईकी तरह मिल जुलकर काम काज करलिया करते हैं। लड़के या लड़कीवालेको शक्तिसे अधिक काम नहीं करना पड़ता; यहां तक कि जितने विरादरीके घर उस गावमें होते हैं वे दस २ या वीस वीस सेर गेंहू पीस दिया करते हैं, सोधने वीननेका भार भी अपने ऊपर ही लेलेते हैं। शहरोंमें इस पृथाका ह्रासता हो

गया है, परंतु कलकी बत्तियोंके होनेसे यहां विशेष दिक्कत नहीं उठानी पड़ती।

अब मंदिरकी बारी आई। लोग सज धजके दूल्हा साहबके साथ जिनदर्शन करने चलते हैं। मंदिरमें बिछौना वगैरः पहिले होसे बिछाकर रक्खा जाता है। दर्शन पाठ कर चुकने पर सबलोग एकत्र बैठते हैं और वरका पिता अपने वृद्धों से सलाहकर जैसा विवाह होता है और अपनी शक्ति होती है उसके अनुसार रुपये धर्मार्थ प्रदान करता है। लग्न दरवाजे पर जितनी रकम वधूपक्षसे मिली होती है उसके जोड़से कुछ अधिक ही रुपया दिया जाता है।

फिरोजाबादके पंचों ने अपने यहां यह भी कायदा कर रक्खा है कि लग्न दरवाजेकी रकमसे अधिक न न दे कम या उतनाही रुपया दिया जाय। यदि वरके पिता की अधिक धर्मार्थ द्रव्य लगानेकी इच्छा हो तो मंदिर केलिये तो जितने चाहे उतने उपकरण और पाठशालादिकेलिये जितनी चाहे रकम प्रदान कर सक्ता है। इस तरहके नियम करनेमें वे लोग यह कारण बतलाते हैं जोकि बहुत कुछ अंशोंमें ठीक भी है कि- अधिकतर गावोंमें जिनके घर विवाह होता है उनके ही यहां आया हुआ द्रव्य जमा किया जाता है और वे महाशय (लड़कीका पिता) उन रुपयोंसे ही अन्य माल खरीद बरातको विवाह हो जानेके बाद भी रख लेते हैं जिसको कि बराढ कहते हैं और ऐसा होना सर्वथा अनुचित है।

फिरोजाबादके पंचोंके इस प्रबंधसे यद्यपि कुछ लाभ हो सक्ता है परंतु जैसा चाहिये वैसा नहीं होता इस विषयमें और भी सुधार होना उचित है और सुधार कैसा क्या होना चाहिये वह समाजके मुखियाओंको एकत्र हो विचारना चाहिये जिससे लड़के के पितासे तो अधिककी संख्यामें द्रव्य हाथ आजावे और उसका उपयोग सुचारु रूपसे विद्याखाते आदि अत्यधिक उपयोगी कार्यमें किया जासके।

पद्मावती पुरवालोंमें यह एक ऐसी उपयोगी रिवाज है कि विवाह सरीखे मंगलीक कार्य में होनी ही चाहिये थी। अन्य जातियों में तो एक या दो रुपये देकर ही अपनेको धर्म क्रियाका पालक लोग समझ लिया करते हैं परन्तु इस जातिमें कोई बहुतही अभागा विवाह होता होगा जिसमें कमसे कम पचास रुपये न धर्मार्थ व्यय किये जाते हों। यह सुनकर आप लोगों को आश्चर्य होगा यदि कोई घटिया से घटिया विवाह करे तो लड़के का विवाह ४००-५००) रु० में ही कर सक्ता है पर उसी मनुष्य को धर्मार्थ ५०-७५) रुपये देने होंगे। समस्त विवाहमें जितना व्यय हो उसमें पांचवां या छठा हिस्सा धर्मार्थ अर्पण कर देना कुछ कम प्रशंसा की बात नहीं है इसी अनुकरणीय रिवाज का ही यह फल है कि पद्मावतीपुरवाल प्रायः बहुत साधारण स्थितिके गृहस्थ है हर एक गांवमें दश दश पांच पांच घर से अधिक घर नहीं हैं और कहीं कहीं तो एक एक ही है परन्तु प्रायः सब जगह ही जैनमंदिर कायम हैं और वे भी ऐसे वैसे नहीं, पक्की ईंटों के मजबूत बने हुये विस्तृत हैं इनके खजानों में भी सौ दोसौ रुपये सर्वदा स्थित रहते हैं और प्रति वर्ष आया ही करते हैं।

यदि यह ही रीति सुधार के साथ समस्त जैन जातियों मे होजाय तो हमे दृढ विश्वास है कि आज कल जो संस्थायें विना सहायताके नहीं चल रहीं हैं या जिनके लिये सहायता एकत्र करने के लिये डेप्युटेशन घूमा करते हैं वे विना प्रयास ही चल निकलें जिन गावों में जैन मंदिर नहीं हैं वहां भी वे बन जांय। स्थानीय मंदिर के सिवा सोनागिर, महावीर, अहिक्षेत्र, पद्मा-

वतोपरिषद्, फिरोजाबादकी जैन पाठशाला आदि धार्मिक क्षेत्रों और कार्यों को भी सहायता पहुचाई जाती है पर वह गौणतया एक एक या दो दो रुपये की संख्या में। मुख्यता वर वधू दोनों पक्षके मंदिरों को ही रक्खी जाती है और उस में भी वधू पक्ष के मंदिर को ही। दर्शन हो चुकने बाद बरात एक जगह बिछौना पर बिठाई जाती है और सरबत पिलाकर उसका सत्कार किया जाता है। इस तरह आज दिनका मुख्य नेगकर बरात अपने स्थान पर (जनमासे लौट जाती है।

इसके बाद घरातके मुख्य मुख्य लोग सजन मिलाये। (सज्जनमिलाप) केलिये जाते हैं और संबंधी संबंधी से ममियाससुर ममियाससुर से ननिया ससुर ननिया ससुरसे आदि लोग रिस्तेमें जो जिसके समान होता है मिलते है साथमें एक पीतलकी बट-रिया और विवाहके अनुसार ५-७-६—११ रुपये और एक मलमलका थान भेंटस्वरूप दिया जाता है और जलपान केलिये चमेनी करीब आधपाव या पाव भरके प्रति बरातीको लड़केवालेकी तरफसे बांटी जाती है जिसमें जीनारके समय तक किसीको घबडाहट न हो। चमेनीमें मेव इलायची दाने छुआरे मखाने खीलदाने, सकलपारे रहते हैं और चनाके भीजे नमकदार दौल अलहदे दिये जाते हैं।

साथमें कोई तमासा हुआ तो वह, या कोई पंडित आया तो उसका उपदेश घंटे दो घंटे होता है और करीब ११—१२ बजे अजैन कामवाले और व्यवहारी लोग जीमने केलिये बुलाये जाते हैं। उनके आजाने पर वधू पक्षसे कुछ थालियां या डरे वर पक्षमें भेज दिये जाते हैं और उनमें छिपुरी, हलदी, आदि मंगलीक द्रव्ये रखकर लड़कावाला जीमनेकेलिये अपने जैनी भाइयोंके साथ आता है। यहां इतनी बात और उल्लेखनीय है कि बरातके जैनी भाइयोंसे पहिले वधू पक्षके पंच तथा व्यवहारी लोग जिमा दिये जाते हैं जिसका प्रधान अभिप्राय यह होता है कि हम (वधूपक्ष) किसी भी जाति भाईसे पृथक् नहीं हैं या हममें कोई विछेप नहीं है। घर आ बरात कुछ देरतक तो अपने साथ लाये हुए मन बहलावके कारणों से मन बहलाया करती है और फिर लड़की वाले के प्रार्थना करने पर जीमने बैठती है। जीम चुकनेके बाद सामतक फिर कोई नेग नहीं होता।

गोधूलिसे पहिले ज्योतिषी पंडित बुलाकर विवाहका मुहूर्त सुधवाया जाता है और जिस समयके विवाह होते हैं उसी समय वृद्धोंके साथ वर विवाह मंडपमें आता है और वहां सिद्धोंकी पूजाकर हवन पूर्वक शुभ मन्त्रोंसे विवाह पढ़ा जाता है।

(क्रमशः)

नवधुनि।

(लेखकः—से० रा० म० भारतीय, जारकी)

[१]

हे भगवान! मैं पापी हूं वो हे जिसका बाल्य विवाह हुआ हा! मुझसे जातिकी हानि हुई दुखकर मरा उत्साह हुआ हा उस अबलाका जीवन भी शिक्षासे शून्य बना वोही हा हितैषियोंने रिपु बनकरके जातिकी हानि करी स्वेही

[२]

व्यभिचारका राज्य बढा मुझसे, रोगोंको जगह मिली मुझसे देशकी हानि हुई मुझसे, पर नाम हुआ नहि कुछ मुझसे हा! मैं, ब्याहकी सम्मति, गई न थी ली कुछ मुझसे लेते किसते, जब अर्थ न थक उसके हल होते नहि मुझसे

[३]

बस समाप्त करि निज खेलसभी, वेदूर भये, हम दूर हुये
गुड्डा गुडियोंकी आदीमें तब अपार रुपये चूर हुये
यों जातिकी आर्थिक हानि हुई, अपनाभी हाल हुवा ऐसा
बलवीर्य गया, ऋण खूब बढा, पर पास रहा नहि इकपैसा

[४]

बस घरमें आओ तो लावो गाने पाय पेड पहिले ही
वरना कुशल पूछने से भी हानि खडी है पहिले ही
जब उनको बिलकुल ज्ञान नहीं तो शांन्ति कहांसे बरसावैं
पूर्व भांति पति देवों को आते ही कैसे हरषावैं ॥

[५]

क्यों मात पिताको बुरा कहूं? क्या ऐसा करनेमे होगा?
जो जान बूझकर बुरा करे ऐसा क्या कोई पिता होगा?
बस उचित यही मुझको अब है अब शिक्षाका परचार करूं
अपने घरमें ही पहिले अपना आशातीत सुधार करूं

[६]

जो हुआ, हुआ अब आगेकी विपदा करें निवारण हम
ज्ञान करावें, शिक्षा देवें, घरमें सुखका कारण, हम
बस तबही होगा भला सुनो ये मित्रो अवसर मत खोना
'भारतीय' नवयुगमें मित्रो! नवधुनि सुनि कर मत सोना

हमारी दशा।

प्रकृति नटीका रंग देखकर उभय नयन सुख पाते हैं।
देखो पक्षी किलोल करते कैसे आते जाते हैं ॥
वृक्षोंमें वल्लियां लिपटतीं वृक्ष उन्हें लिपटाते हैं।
अपने सुखमें सुखी बनाते दुखमें दुखी बनाते हैं ॥ १ ॥
वृक्षोंका तो वही रंग है वही ढंग है वही सभी।
किन्तु हमारे कैसा परिवर्तन नहि होगा कहीं कभी ॥
जहां पूर्ण दाम्पत्यभाव थे वहां कलह की बातें हैं।
जहां प्रेमसे गले मिले थे वहां मिल रहीं लातें हैं ॥ २ ॥
विमल वारिमें देखो दिन दिन विष ही घुलता जाता है।
गहरी हुई निशा हा तो भी अन्धकार ही आता है ॥
फिसले थे हम फिसल रहे हैं मर कर मरते जाते हैं।
तौभी अपनी शान सब जगह बातोंमें बतलाते हैं ॥ ३ ॥
जगमें बात बनाते हमको लज्जा जरा न आती है।
किन्तु देख कर दशा भीतरी सहसा फटती छाती है ॥
सीता और अञ्जना कैसी सती नारियां यहां हुईं।
मनोरमा द्रौपदी सरीखी पतिव्रता ये कहां हुईं ॥ ४ ॥
वही आज रमणी कुल देखो कैसा गिरता जाता है।
पातिव्रत्यधर्म भी उसका दिन दिन झिरता जाता है ॥
कार्यकुशलता आदिक गुणका समुदय खिरता जाता है।
इसीलिये तो हृदय हमारा प्रतिपल चिरता जाता है ॥
गाली देना सीख गईं वे उनको लड़ना आता है।
मरनेका डर दिखा दिखा कर खूब झगड़ना आता है ॥
वस्त्राभूषण न्यून रहें तो उनको अड़ना आता है।
उसी मूर्खताकी कीचड़में उनको सड़ना आता है ॥ ६ ॥
तब कैसे उत्पन्न हों यहां शूर वीर दानी मानी।
पर उपकारी सत्यव्रती वे विपत्कालमें भी ज्ञानी ॥
सोनेकी जो खानि उसीमें सोना निकला करता है।
जो है गजका भार उसे गज छोड अन्य नहि धरता है ॥ ७ ॥
अतः जातिके वीरो तुमको यदि कुछ लज्जा आती है।
गिरती हुई जाति यदि मनको कुछभी आज दुखाती है ॥
तो फिर क्यों सोते रोते हो क्यों जीवन को खोते हो।
दुःखबीज क्यों बोते, खाते अवनति जलमें गोते हो ॥ ८ ॥
उठो उठो गौरव दिखलावो उन्नति पथमें आ जाओ।
वीर हृदयसे वीर मार्गमें शूर वीर बन कर आओ ॥
भूल भुलइयामें मत भूलो दुरभिमानमें मत फूलो।
वायु महलमें कभी न झूलो विपदा देख नहीं कूलो ॥ ९ ॥
ये बने सब कुछ किया किंतु इससे तुमको क्या करना है
देख परोन्नति जन्मभर तुम्हें झूर झूर नहि मरना है ॥
करती जैसे काम प्रकृति है उसी तरहसे किया करो।
अपनी माता बहिन पुत्रियोंको भी शिक्षा दिया करो ॥ १० ॥

माताका प्रेम।

(लेखक-श्री धन्यकुमार जैन 'सिंह' उत्तरपाड़ा।)

प्रथम दृश्य।

स्थान—सेठ नाथूरामजी का घर।

समय—रात्री।

(सेठजी और सेठानीजी बैठे हैं।)

सेठानी—क्यों जी? मैं कई बार कह चुकी हूं कि रमणीभूषणका गौना कर दो, पर तुमने ध्यान ही न दिया। मैं जब कहती हूं, तभी तुम हँसीमें उड़ा देते हो।

सेठ—देखो, फिर तुमने अपनी हठ न छोड़ी? परंतु याद रक्खो! पीछे से पछताओगी! तुम्हारी ही हठने रमणीका व्याह कराया—

सेठानी—क्यों? मैंने क्या किया?

सेठ—कुछ नहीं रमणीका व्याह। यदि तुम्हें सुख की अभिलाषा है, यदि भविष्यमें तुम संतानको सुखी देखना चाहती हो; तो रमणीके गौनेकी हठ छोड़ो। वैसेही उसका मन पढ़नेमें बिलकुल नहीं लग रहा है, गौना हो जाने पर तो कहना ही क्या है?

सेठानी—मैं तुम्हारी शिक्षा सुनना नहीं चाहती। मैं चाहती हूं-रमणीका गौना। तुम्हारी इच्छा हो कर दो नहीं तो मैं खुद कराऊंगी।

सेठ—फिर भी कहता हूं, हठ छोड़ दो।

सेठानी—इसमें हठ काहे की है? भला व्याह हुए तीन वर्ष बीत चुके, अभीतक गौना नहीं कराया। कहो! इसमें तुम्हारी नाक बची या कटी?

सेठ—नाक कटे, कटने दो, परन्तु मैं रमणी का पिता होकर उसकी गर्दन काटना नहीं चाहता। मैं उसका भविष्य जीवन निरुद्देश्य करना नहीं चाहता। मैं अपने वंशको जड़से उखाड़ कर नहीं फेंक सकता। और सब कुछ कर सकता हूं मुझे माफ करो—मुझसे यह अमैनीपने का काम न हो सकेगा।

सेठानी—क्या मज़े की बात! तुमसे नहीं हो सकेगा तो हमसे तो होगा। कुछ परवाह नहीं, मैं अपनेही ऊपर इस काम का भार लेती हूं। जाओ तुम घूंघट मारकर घरमें बैठो! (सेठानीजीका प्रस्थान)

सेठ—क्या करूं? (उठकर टहलने हैं) सच है, "यदि औरतों की नाक न होती; तो वे विष्ठा खानेमें भी संकुचित न होतीं"—पर अब क्या करूं?

(दीनबंधुका प्रवेश)

दीनबंधु—जयजिनेन्द्र साहब! कहिये! किस चितामें मग्न हैं? क्या किसीके ऊपर झूंठी नालिश ठोकनेकी मनशाह है?—हा! हा! हा! ठोको; ठोको भैय्या खूब ठोको, परन्तु उसमें मुझ गरीबको—

सेठ—कौन! दीनबंधु! आओ भैय्या, आओ! कहो घरमें सब कुशल है न?

दीनबंधु—घरमें तो कुशल है; पर बाहर की खबर नहीं। हा! हा! हा! बड़ा मज़ा आता है!

सेठ—किसमें?

दीनबंधु—झूंठी नालिशमें—

सेठ—सो कैसे?

दीनबन्धु—कैसे भी नहीं! कुछ नहीं, कुछ नहीं। हां! फिर क्या हुआ?

सेठ—होता क्या? कुछ नहीं।

(मित्र नेमिचंद्रका प्रवेश, दीनबंधुका प्रस्थान)

नेमिचंद्र—सावधान, नाथूरामजी ! सम्हलकर आगे बढ़ना स्त्रीके कहनेमें आकर तुमने रमणीका जीवन बरबाद कर दिया है, परन्तु याद रक्खो ! अब उसकी गर्दन पर छुरी फेरनेका साहस मत करना। वह एक होनहार बालक है। उसे इस तरह गला घोंटकर मत मारो, दयाकरो ! दया करो ! भूलकर भी यदि इस उमरमें उसका गौना कर दिया तो, तुम्हारा एक मात्र पुत्र रमणीभूषण तुम्हें छोड़कर और ही कहीं चल देगा। अब भी समय है। मानो कहना ! उसे पढ़ने दो ! पढ़ने दो ! (प्रस्थान)

द्वितीय दृश्य।

स्थान—स्कूलका बगीचा।

समय—संध्या

[रमणीभूषण अपने मित्रोंके साथ टहल रहा है]

रमेशचंद्र—रमणी ! मैंने पहिले ही कहा था—आखिर वही हुआ न ?

रमणीभूषण—होनहार रुकती नहीं बंधु !—

विभूति—लेकिन, स्तनोंमें दूध दुह कर कर्मोंको दोष देना भी तो ठीक नहीं। जब तुम राज़ी ही नहीं होते; तो क्या माता पिता जबर्दस्तीसे तुम्हारा ब्याह करते ? कभी नहीं।

रमेश—ब्याहको तो जाने दो, तब इतनी समझ नहीं थी। परन्तु अब समझ बूझकर भी कुऐ में गिरना—

विभूति—सो भी कब ! परीक्षाके समय आप सुसरालमें रहकर गुलछर्रे—नहीं नहीं, भूल गया—वहां पर आप हिस्ट्री याद कर रहे थे।

रमेश—शायद इसीलिए आपने ५०० हेडमार्कमें से ४१ नंबर ही पाये हैं !

रमणी—क्या करता मित्र ! माता-पिता की आज्ञा शिरोधार्य है।

रमेश—ठीक है ! हायरी मातृ-भक्ति !!

विभूति—वाह ! तुम सरीखे मातृ भक्त यदि संसारमें १०—२० और पैदा होगये; तो शायद भारत का शीघ्र ही पतन—अहा ! भूलगया उद्धार हो जायगा—

रमेश—खैर, जो हुआ सो तो हो चुका परन्तु अब क्या विचार है ? कुछ पढ़ लिखकर मनुष्योंमें नाम लिखाओगे, या सच्चे मातृ-भक्त बनोगे ?

रमणी—मित्र ! माता पिताकी आज्ञा उलंघन न करूंगा, और जो कहो सो करनेके लिए तैयार हूं। परन्तु माता पिताकी आज्ञाके विरुद्ध एक पैर भी आगे या पीछे न हटूंगा—

विभूति—ठीक है- वाह ! वाहजी मातृ-भक्त ! तुम ही धन्य हो !

रमेश—मैंने समझा था कि यह शायद इनके माता पिताकी ही जबर्दस्ती थी, पर निकला कुछ और ही ! हाय रे दैव !

विभूति—परन्तु मास्टर साहब तो यह कहते थे कि इनके वंशमें परंपरासे एक दिग्गज विद्वान होता चला आरहा है। यह भी एक होनहार लड़का है।

रमेश—पर काबुलमें सब घोड़ेही नहीं होते भाई !

तृतीय दृश्य।

स्थान—नाथूरामजीका घर।

समय—प्रातःकाल।

(सेठानीजी बैठी हैं।)

सेठानी—चलो अच्छा हुआ, लड़केका गौना हो गया। पर कसर रही तो इस बातकी, कि उसके स्वसुर अपनी लाढ़ली लड़की को यहाँ नहीं भेजते। मैं कई वार चिट्ठी लिखवा चुकी हूं, दो तीन वार रमणी भूषणको भी भेज चुकी हूं; परन्तु वह भेजते ही नहीं !

देर तक स्थिर रहकर] कभी नहीं, वह ऐसा विश्वास घातक नहीं है। उसके प्रति मेरा पूरा विश्वास है। [कुछ देर तक चुप रह कर] फिर क्यों व्यर्थको चिंता करना?—आओ, आओ बहिन, मैं पागल नहीं हूं, डरो मत, आओ बहिन। [घुटने टेक देती है] एकवार...

सुनंदा—यह क्या! जीजी! मुझे समस्यामें क्यों डाल रही हो? यह पहेली समझमें नहीं आती! क्या स्वप्न देख रही हो या सत्य?

सेठानी—सत्य, बिलकुल सत्य है बहिन! आँखें खोलो! यह स्वप्न नहीं है, समस्या नहीं है, पहेली नहीं है, यह है—सत्य!!

[दौड़ते हुए नेमिचंद्रके पुत्रका प्रवेश]

बालक—मौसीरी! यह ले, तेरे लल्लूकी चिट्ठी।

सेठानी—[चिट्ठी लेकर] किसने दी बेटा?

बालक—बापूजीने। कहा कि रमणी भैयाकी चिट्ठी आई है, सो मैं झटसे छीनकर भागता हुआ चला आ रहा हूं।—देख मौसी! आज मुझे लड्डू देना होगा, तैने कहा था—हां!

सेठानी—अच्छा बेटा! [गोदमें लेकर चुंबन]

सुनंदा—जीजी! चिट्ठी खोलो, पढ़ो तो सही [चिट्ठी लेकर] यह तो उसीके हाथकी लिखी हुई मालूम पड़ती है [चिट्ठी खोल कर पढ़ती है] बस, जो सोचा था वही क्यों न हुआ—जीजी!

[रोने लगती है। उसे देखकर सेठानी जी भी रोने लगती हैं। बालक भाग जाता है।]

षष्ठ दृश्य।

स्थान—सुजालपुरमें रमणीभूषणकी सुसराल।

समय—रात्रि।

[एक खाटपर रमणीभूषण बीमार पड़ा है, पास ही उसके पिता, स्वसुर, साले आदि कई पुरुष और स्त्रियां भी बैठी हुई दुखप्रकाश कर रही हैं]

रमणी—[क्षीण स्वरसे] हाय! बड़ी, बड़ी ज्वलन है... ।

स्वसुर—क्या है बेटा? कैसी तबियत है, क्या दर्द हो रहा है?

रमणी—(कातर कण्ठसे) हे प्रभो! . वैद्यजी, वैद्यजी कहाँ हैं?

पिता—क्या है? क्या है? बेटा! मैं तुम्हारे सामने बैठा हूं घबरावो मत। वैद्यजी अभी आते ही होंगे, तेरे नेमि कक्का बुलाने गये हैं।

रमणी—क-ब?-कि-त-नी दे-र हैं?

पिता—ये लो, वे आभी गये।

(नेमिचंद का वैद्यके साथ प्रवेश)

वैद्य—लल्लू की कैसी तबियत है?

नेमिचंद—देखने से मालूम पड़ेगी।

(एक स्त्री मूढ़ा डाल देती है, वैद्यजी उसपर बैठ कर नबज देखते हैं)

स्वसुर—कुछ आराम है?

वैद्यजी—[दीर्घनिःश्वास लेकर] हां! आराम है। [जानेकी जल्दी करते हुये] यह औषधि लो, और अभी दे दो फिर दो घंटे बाद हमें बुलाना।

पिता—[व्यग्रता से एकान्तमें जाकर] क्यों? क्या? क्या तबियत कुछ ज्यादा खराब है?

वैद्यजी—[पुनः श्वास लेकर] क्या कहूं —

पिता—ऐं!!! [रोने लगता है]

वैद्यजी—रोना फिजूल है, किसी के हाथ की बात नहीं है। दुःखसे डरना हो तो उसका पहिले ही से प्रबन्ध करना चाहिये। पानीमें कूदकर न भीगनेकी उम्मेद करना-मूर्खता है।

पिता—वैद्यजी! आपका कहना ठीक है। मैं यह

सब कुछ समझता हूं। मैंने पहिले कोशिश भी इस बातकी पूरी पूरी की थी; पर हमारे देशकी स्त्रियां इतनी मूर्ख हैं कि उनके सामने किसी की नहीं चलती।

वैद्यजी--यह तो मैं भी जानता हूं कि हमारा आधा अंग आवश्यकतासे अधिक अज्ञान मय लकवेसे जिकड़ा हुवा है और उसके अधीन हो हमें तरह तरहके दुख उठाने पड़ते हैं। परंतु यदि हम भी उन [स्त्रियोंकी] हीके समान अपनी हठ पर दृढ बने रहें तो विश्वास है कि, ज्ञान शक्तिसे प्रेरे हुये ही कार्य हों।

पिता--खैर ! अब पछतानेसे क्या होता है ? जो भाग्य में है या जैसे पहिले सुख दुख के कारणों को जुटा रक्खा है उनका वैसा फल भोगना ही होगा।

वैद्यजी--अच्छा ! अब आप वापिस जाइये और औषधि दीजिये [प्रस्थान]

पिता--[आंखोंमें आंसू भर कर] बेटा ! कैसी तवियत है ?

रमणी--अ-च्छी है--रो-ते क्यों हैं ?

पिता--नहीं, कुछ नहीं। तुम्हारी तवियत अधिक खराव देख कर हृदय भर आया है। बेटा कहे तो तेरी माको बुला दूं।

रमणी--बु-ला दी-जि-ये। उ-स-से भी (मृत्यु)

सप्तम दृश्य।

स्थान--नाथूरामजी का घर।

(गांवके लोग सेठजीको समझा रहे हैं)

पहिला--सेठजी ! जो होना था सो होगया, अब शोक छोड़िये ! उसका [रमणीका] आपका इतना ही पिता पुत्रका संबंध था शोक करनेसे असातावेदनीय कर्म का बंध होगा और उसके उदयसे फिर दुःखका सामना करना पड़ेगा-इसलिये फिर शोक का सामना न करनेकी इच्छा हो तो इस समय भी शोक न कीजिये।

दूसरा--ठीक है। भाग्यकी बाततो सबसे बढकर है ही, परंतु पौरुष भी कुछ चीज है। देखिये-दीपक को हवासे बचाने के लिये हाथकी ओट करते हैं क्योंकि बिना वायुका प्रतिरोध किये दीपक बुझ जा सक्ता है इसी प्रकार दैवके प्रकोप से बचने के लिये बुद्धिमान लोग नाना तरह के उपाय काममें लाया करते हैं। और जगह क्यों ? आप अपने ही ऊपर देख लीजिये यदि आप रमणी भूषण का विवाह अल्पवयसमें न करते तो कभी संभव न था कि उस वियोगसे आज आपको इस तरह खिन्न होना पड़ता।

औरलोग-वाह ! छोटी उमरमें विवाह कर देनेसे क्या हुआ ? क्या विवाह कोई भूत है जिसने उसे मार डाला ?

पंडितजी--हां ! आपका कहना ठीक है। अल्पवयका विवाह वास्तव में भूतही क्यों भूतसे भी बढकर है। भूत तो केवल दुःखही देता है और यह प्राण तक ले डालता है।

औरलोग--सो कैसे ?

पंडितजी--सुनिये, शास्त्रमें लड़कीका १२-१३वर्ष की उम्रमें और लड़के का १६-१७ वर्षसे अधिक की उम्र हो जानेपर विवाह संबंध होना उचित लिखा है। वैद्यक शास्त्रके मतसे भी उक्त कालही समुचित है क्योंकि विवाहका उद्देश्य संतानोत्पत्ति है और संतानके पैदा करनेकी शक्ति उसी समय हो सकती है जब कि शरीरका संगठन संपूर्ण हो चुकता है। यदि विवाह उक्त समयमें किया जाय और उसके बाद गोना-तीन वर्ष बाद होकर दंपतीका परस्पर संयोग हों, तो स्वास्थ्य को कुछ भी हानि न पहुंचे और संतान भी शुद्ध हो पर जब तक लड़के लड़कियोंके शरीरमें वीर्य रज हो उत्पन्न नहीं हो पाता और न संगठनका समस्त कार्य ही प्रकृति कर पाती है, उससे पहिले ही उसके ढानेका

कार्य प्रारंभ कर दिया जाता है तो कहांसे तो स्वास्थ्य ठीक रहे और कैसे फिर संतान की उत्पत्ति कर बालक बालिकायें अपने मा बापको प्रसन्न कर सकें ?

सेठजी--[सब लोगोंसे] पंडितजी ठीक कह रहे हैं। मैं भी इस बातको समझता था; पर स्त्री की हठने ऐसा किया। यदि मैं अपनी समझके अनुसार कार्य करता तो अपने प्यारे बेटेके लिये आज मुझे क्यों पछताना पड़ता ? उसका ८-६ वर्ष की उम्रमें विवाह कर १२-१३ की उम्रमें ही गौना करा दिया और तिसपर भी उसे श्वसुराल में ही छोड़ दिया। वहां रह औरतोंने समझा कि अमुकका पुत्र स्वर्गसुख भोग रहा है; पर मैं समझता था कि कालका ग्रास बन रहा है और सो ही हुआ शरीर के सारभूत वीर्यके परिपक्व होनेसे पहिले ही उसका नाश होना प्रारंभ होगया, वीर्यके नाशसे नाताकती बढ़ने लगी, नातकती बढ़नेसे मंदाग्नि हो खाना पीना हजम न होने लगा और उसके होने से ज्वर हो गया। उस हड्डीमें प्रवेश करने वाले ज्वरका ही प्रभाव यह हुआ कि हकीम वैद्य डाक्टर सब हार गये, हजारों रुपये फूंक दिये गये पर कोई कुछ न कर सका।

पंडितजी--जब शरीरमें सार ही न रहा तब औषधि क्या करती ? औषधि सदोषको निर्दोष कर सकती है पर जहां कुछ तत्त्व ही नहीं है वहां वह क्या कर सकती है।

और लोग--तब तो बाल अवस्थाका विवाह बड़ा ही भयंकर है, लोगोंको इससे खूब ही बचना चाहिये।

पंडितजी--बेशक ! सबको प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम ऐसे विवाहोंको मन वचन कायसे न करेंगे और न करनेकी सलाह देंगे।

भ्रमर।

हे भ्रमर ! तुझको देखकर होता बड़ा विस्मय मुझे
फूले कुसुमपर बैठकर आनन्द क्यों होता तुझे ॥
जो हो तुम्हारे योग्य उन पर बैठना तो योग्य है।
पर बालकन्या तुल्य ये छोटे कुसुम नहिं भोग्य है॥१॥
किस मान से तू मस्त है क्यों बेशरम तू होगया।
जिस पर पड़ी तव दृष्टि वह कल्पान्त तकको सोगया॥
तू छीन कर मधु पुष्पका बनता बड़ा क्यों वीर है।
जगमें कहाना 'वीर' या 'गम्भीर' टेढ़ी खीर है॥२॥
तूने अनेकों पुष्प चूसे पर रही तृष्णा तुझे।
तो जन्मदिन नहिं खागई क्यों सर्पिणी तृष्णा तुझे॥
तेरे जिये से देख जगमें पुष्प दल बेकार है।
है जोरसे वह कह रहा धिक्कार है धिक्कार है ३॥
तू गुन गुनाता है कभी अरु भुनभुनाता है कभी।
पर देख तेरी गुनगुनाहट चौंक पड़ते हैं सभी।
तू दीन बाला तुल्य पुष्पों के लिये तो काल है।
या यों कहें मृगके लिये विकराल हरि का गाल है॥
मुझको यही आश्चर्य है ये मिलगई शिक्षा कहां।
क्या तू गया था जैनियों के वृद्ध रहते हैं जहां॥
ऐसा सिखापन दे सके वह और जगमें कौन है।
उत्तर कहीं इसका नहीं सर्वत्र केवल मौन है॥५॥
वे पुष्प होते नष्ट हैं तू चूसता है इसलिये।
पर खेद कन्या राशिको वे नष्ट करते किसलिये॥
है कुछ नहीं अब शक्ति उनमें भोग जिससे कर सकें।
बाला हृदय है अति प्रबल वे शान्ति कैसे धर सकें ६॥
ऐसा यदपि अनमेल, पर वे वृद्ध नहिं कम दुष्ट हैं
धनमानसे परिपूर्ण हैं अज्ञानता कर पुष्ट हैं॥

मैं यह नहीं कहता कि सारे वृक्ष ऐसे हो गये।
हैं वे बहुत जो नाश कर कन्या जनकको, सोगये ७
हे भ्रमर! अब भ्रम दूरकर जो कुछ कहा मैंने अभी
सो सत्य क्या उनसे गया तू पाठ पढ़नेको कभी॥
पर याद रख जब फँस रहेगा तू कमल भीतर कभी
तब नर्कके से दुःख होंगे याद करलेना सभी॥८॥

विफल जीवन।

होकरके जो मनुज, नहीं हैं सत्पथगामी।
करते हैं अन्याय निरन्तर रहते कामी॥
नहीं छोड़ते स्वार्थ कभी क्षण भर जीवनमें।
दीन हीनकी दया नहीं धरते हैं मनमें॥
वे जगमें आते नहीं तो हो जगका था भला।
उनके जीवनसे भला कौन काम जगका चला॥१॥

जिसने जीवन काल निरन्तर सोकर खोया।
केवल धनके लिये निरन्तर जग कर रोया॥
पाप कार्यके बीच जन्म भी पूर बिताया।
जिसने विद्या हेतु एक भी मिनिट न पाया॥
जो न करे शुभकार्य को किन्तु कार्य जिससे रुका।
यह जगमें आया नहीं आया है तो मर चुका॥२॥

पं० दरबारीलाल न्यायतीर्थ।

स्त्रीमुक्तिपर विचार।

(गतांकसे आगे।)

शंका-मोक्षके कारण ज्ञानादिकका परम प्रकर्ष-केवलज्ञानादि गुण और सप्तमनरक ले जाने वाला पापका परमप्रकर्ष—तीव्रतम पाप इन दोनों में आपस मे तादात्म्य और तदुत्पत्ति दोनोंही प्रकारका संबंध सिद्ध नहिं हो सकता इसलिये जहां पर मोक्षके कारण ज्ञानादिका परम प्रकर्ष होगा वहां सातवें नरक को ले जानेवाले पापका भी परम प्रकर्ष होगा तथा सातवें नरक ले जानेवाले तीव्रतम पापके अभाव में मोक्षके कारण केवल ज्ञानादिका भी अभाव होगा यह व्याप्ति नहिं बन सकती और इस व्याप्तिके न बनने से पुरुष ही मोक्ष पा सकते हैं स्त्रियां नहीं, यह कहना भी युक्त नहिं हो सकता।

उत्तर—तादात्म्य तदुत्पत्ति संबंध मत हो तथापि कृत्तिकोदयादि के समान वहां अविनाभाव संबंध है जिस प्रकार अश्विनी भरणी कृत्तिका रोहिणी इन क्रमसे आनेवाले नक्षत्रों में [अश्विनीके बाद] भरणी का उदय होगा क्योंकि इस समय अश्विनी का उदय है इस तरहका यहां अविनाभाव संबंध मौजूद है—अश्विनीके अनंतर नियमसे भरणीकाही उदय होता है उसी प्रकार जहां जहां मोक्षके कारण केवलज्ञानादि गुण प्राप्त होनेकी शक्ति रहती है वहां वहां नियमसे सप्तम नरकके कारण तीव्रतम पाप पैदा करनेकी भी शक्ति रहती है इस तरहका वहां पर भी अविनाभाव संबंध मौजूद है इसलिये स्त्रियोंको जो मोक्ष की प्राप्ति के निषेध करने के लिये ऊपर अनुमान का प्रयोग किया है वह निर्दोष है और उसके निर्दोष होनेसे स्त्री पर्यायसे कभी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकती यह सिद्ध हो चुका।

शंका-पुरुष में जिस प्रकार सप्तम नरकके कारण तीव्रतम पाप उपार्जन करनेकी शक्ति होनेसे मोक्षके कारण केवल ज्ञानादि गुणोंके प्राप्त करनेकी सामर्थ्य का सद्भाव माना है उसी प्रकार नपुंसक में भी

मोक्ष पानेकी शक्ति क्यों नहीं है ? क्योंकि उसके भी सातवें नरकके कारण तीव्रतम पाप पैदा करनेकी शक्ति है अथवा नपुंसक के समान पुरुषमें भी मोक्षके कारण केवल ज्ञानादि गुणोंके प्राप्त करने की सामर्थ्य नहीं है। अथवा नपुंसक में सातवे नरकके कारण तीव्रतम पापका प्रादुर्भाव ही नहीं जैसा कि स्त्रियों में नहो। ये बातें मनगढंत होनेसे श्वेतांवर दिगंवर दोनोंके लिये समान हैं क्योंकि दिगंवर यदि पुरुष में मोक्षके कारण गुणोंका सद्भाव कहेंगे तो श्वेतांवर नपुंसकमें उनका सद्भाव सिद्ध करेंगे यदि दिगंबर नपुंसकमें गुणोंका अभाव सिद्ध करेंगे तो श्वेतांवर पुरुषमें उन गुणोंका अभाव सिद्ध कर सकते हैं विना प्रमाण के एक कोई बात का मानना अयुक्त है इसलिये जिस प्रकार पुरुषोंको मोक्ष प्राप्तिका अधिकार हैं वैसे स्त्रियां भी मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं।

उत्तर—यह बात नहीं, क्योंकि उपर्युक्त मनगढंत बात आगम प्रमाण से बाधित है। दिगंबर और श्वेतांबर दोनो संप्रदायों में पुरुष के लिये मोक्षका विधान हैं नपुंसकके लिये नहीं। यदि पुरुष के समान नपुंसक को मोक्ष किंवा नपुंसक के समान पुरुषको मोक्षका अभाव माना जायगा तो आगम झूठा मानना पड़ेगा। इसलिये ऊटपटांग शंका कर जो स्त्री को मोक्षका अधिकार सिद्ध किया था विफल हुआ। तथा स्त्रियोंमें मोक्षके कारण केवल ज्ञानादि गुणोंका सद्भाव श्वेतांबर मानते हैं इसलिये उन्हीं के मतानुसार उनमें सातवे नरकके कारण तीव्रतम पापका भी सद्भाव सिद्ध होता है परंतु दिगंबर सातवे नरकके कारण तीव्रतम पापका स्त्रियों में निषेध करते हैं इससे मोक्ष तथा केवल ज्ञानादि गुणों के सद्भाव का भी उनमें निषेध मानते हैं अतः श्वेतांबर दिगंबर दोनों मतोंमें विशेषता है समानता नहीं।

अथवा हम (दिगंबर) सातवे नरक का कारण तीव्रतम पाप और मोक्षके कारण केवल ज्ञानादि गुणों का सद्भाव इन दोनो बातों का पूर्वोक्त अनुमान से निषेध नहि करते किंतु जो जो हद दर्जे की उत्कृष्टता (तीव्रतम पाप वा केवलज्ञानादि गुण) होती हैं। वह वह कोई भी स्त्रियों में नहि होती इस व्याप्ति से उनमें सातवे नरक के कारण तीव्रतम पाप और मोक्ष के कारण केवल ज्ञानादि गुण दोनों का निषेध करते हैं इस तरहसे स्त्रियोंको मोक्षका निषेध सिद्ध हो जाता है। यहां पर किसी प्रकार व्यभिचार नही आता क्योंकि स्त्रियों में हद दर्जे की किसी बातकी उत्कृष्टता स्वीकार नहि की गई है।

शंका—स्त्रियों में मायाचारी हद दर्जे की मानी गई है इसलिये जो जो हद दर्जे की उत्कृष्टता है वह वह स्त्रियों में नहीं यह व्याप्ति दुष्ट है।

उत्तर—पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों में मायाचारी की कुछ अधिकता है इसलिये आगम में स्त्रियों के अंदर मायाचारी की अधिकता कह दी है हद दर्जे की उत्कृष्टता नहीं। यदि हद दर्जे की मायाचारी स्त्रियों में स्वीकारकी जायगी तो उसके अविनाभावी अन्य हद दर्जे के दोष भी उनमें उत्पन्न हो सकेंगे और उनके होनेसे स्त्रियों में पुरुषोंके समान सातवें नरक जानेकी शक्ति भी माननी पड़ेगी किंतु सातवे नरक वे जाती नहीं इसलिये उनमें हद दर्जे की मायाचारी नहीं मानी जा सकती।

अथवा मायाचारी के सिवाय और किसी प्रकार की हद दर्जे की उत्कृष्टता स्त्रियों में नहीं ऐसा कहने से पूर्वोक्त अनुमानमें किसी प्रकार का व्यभिचार नहि आता। इसलिये जब यह बात सिद्ध हो चुकी कि मोक्ष के कारण केवलज्ञानादि गुणों का सद्भाव स्त्रियों में

सिद्ध नहिं हो सकता तब स्त्रियों को मोक्ष सिद्ध करने के लिये जो यह हेतु दिया था कि "पुरुषों के समान स्त्रियों में भी मोक्ष प्राप्ति के समस्त कारण मोजूद हैं वे भी मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं" वह हेतु असिद्ध हुआ। तथा यह बात सभी के प्रमाण गोचर है कि ज्ञानादि गुणोंका प्रकर्ष जिस प्रकार पुरुषोंमें दीख पड़ता हैं वैसा स्त्रियोंमें नहीं है। यदि हटात् पुरुषों के समान स्त्रियोंमें भी ज्ञानादि गुणों का प्रकर्ष माना जायगा तो नपुंसक में भी मानना पडेगा तथा वैसा मानने से उसको भी मोक्ष माननी पडेगी इसलिये यह बातनिश्चत होचुकी कि स्त्रियाँ स्त्री पर्याय से कभी मोक्ष नहि जा सकती।

यदि कदाचित् यह शंका हो कि मोक्ष प्राप्ति का असाधारण कारण संयम है सो तो स्त्रियों में मौजूद है फिर वे मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं तो उसका समाधान यह है कि जो संयम मोक्ष प्राप्ति में असाधारण कारण है वह स्त्रियों में असंभव ही है और वह इस अनुमान से—स्त्रियों का संयम मोक्ष ले जानेवाला नहीं क्योंकि वह किसी प्रकारकी ऋद्धिका उत्पन्न करने वाला नहीं है। जो संयम ऋद्धि विशेषका उत्पन्न करने वाला है वही मोक्षका कारण होता है इसलिये इस बातको हर एक स्वीकार कर सकेगा कि जो स्त्रियों का संयम संसारसे संबंध रखने वाली न कुछ ऋद्धियों का भी कारण नहीं, वह मोक्ष का कारण कैसे हो सकेगा? कभी नहीं।

तथा यह बात मनगढंत नहीं है किंतु अच्छी तरह सिद्ध है कि-पुरुष जिस चरित्रका आराधन करते हैं उसीसे ऋद्धि विशेषकी प्राप्ति होती है स्त्रियोंके संयमसे नहीं। यदि ऋद्धि विशेष का न पैदा करने वाले किसी संयम से कहीं मोक्ष प्राप्त हुई हो तो उस दृष्टांतके बलसे हम मान सकते हैं कि ऋद्धि विशेषका न भी कारण स्त्रियों का संयम उन्हें मोक्ष प्राप्त करा सकता है परन्तु ऐसा कहीं देखा नहीं गया कि ऋद्धि विशेष के न भी कारण संयम ने किसी को मोक्ष प्राप्त कराई हो यदि हठात् यह मान लिया जायगा कि ऋद्धि विशेष का न भी कारण संयम मोक्ष प्राप्त करा सकता है तो गृहस्थावस्थासे गृहस्थ भी मोक्ष पा सकेंगे क्योंकि उनके संयम से भी किसी प्रकार कीऋद्धि प्राप्त नही होती तथा इस तरह भी यदि मोक्ष मिलने लगेगी तब मुनिलिंग धारण करना व्यर्थ होगा इसलिये 'इस अनुमान से' भी यह बात सिद्ध हुई कि स्त्रियां मोक्ष नहि पा सकती।

शंका—स्त्रियां जिस संयमको धारण करती हैं उसीसे उन्हें मोक्ष मिल सकती है।

उत्तर—जिस प्रकार तिर्यंच और गृहस्थोंका संयम मोक्षका कारण नहीं उसीप्रकार स्त्रियोंका संयम भी मोक्षका कारण नहीं। और वह इस अनुमानसे-स्त्रियों का संयम मोक्षका कारण नहीं क्योंकि वह संयम सचेल अर्थात् कपडोंके परिग्रहके साथ धारण किया जाता है। जो संयम कपडोंके परिग्रहके साथ धारण किया जाता है उससे मोक्ष प्राप्त नहि होती जैसे गृहस्थके संयमसे। स्त्रिया कपडोंके परिग्रहके साथ संयम धारण करती हैं इसलिये वे मोक्ष नहि प्राप्त करसकतीं। यहांपर 'कपडोंके परिग्रहके साथ संयम होनेसे' यह हेतु असिद्ध नहि कहा जासकता क्योंकि स्त्रियोंका कपड़ोंके विना संयम न देखा गया है न आगममें ही कहा है। स्त्रियोंको कपडोंके परिग्रहके साथ संयम धारण करनेका अधिकार है ऐसा आगममें कहा है।

शंका-मोक्ष सुखकी अभिलाषासे यदि वे कपडेका त्यागकर संयम धारण करें तो क्या हर्ज है?

उत्तर—कपड़ेका त्यागकर संयम धारण करना

उनका आगमसे बाधित होगा क्योंकि आगममें कपडेके साथ संयम धारण करनेको ही उनकेलिये आज्ञा है यदि वे कपडेका त्यागकर नग्न हो संयम धारण करेंगी तो उनका वह स्वेच्छाचार हुआ. स्वेच्छाचार करनेसे वे मिथ्यादृष्टी सिद्ध होंगी और मिथ्यादृष्टिको मोक्ष होती नही इसलिये उन्हें इस तरह भी मोक्ष नहि प्राप्त होती।

शंका—स्त्रियां कपडेके साथ संयम धारण करने पर मोक्ष प्राप्त करतीं हैं और पुरुष कपडोंसे रहित नग्न अवस्थासे मोक्ष प्राप्त करते हैं ऐसा भेद मानलेनेमें कोई दोष नही है इसलिये स्त्रियोंको मोक्ष मिलनी ही चाहिये।

उत्तर—नहीं, यदि इसप्रकार मोक्षके कारणोंमें भेद माना जायगा अर्थात् स्त्रियोंको वस्त्र सहित संयमसे और पुरुषोंको वस्त्ररहित संयमसे मोक्ष मानी जायगी तो पहला स्वर्ग, दूसरा स्वर्ग जिसप्रकार स्वर्गोंके भेद हैं उस प्रकार मोक्षके भी भेद मानने पड़ेंगे तथा कपडोंके परिग्रहके साथ संयमको धारण करने वाली यदि स्त्रियां मोक्ष पालेंगी तो गृहस्थ जो सवस्त्र संयमके ही धारण करनेवाले हैं वे मोक्ष जासकेंगे। एवं मोक्षकेलिये जो निर्ग्रंथलिंग—मुनिलिंग धारण करना पड़ता है व्यर्थ होगा इसलिये यह अवश्य मानना पड़ेगा कि वस्त्रसहित संयमको धारण करनेवाली स्त्रियां कभी मोक्ष नहि प्राप्त करसकतीं।

तथा यहां पर यह भी एक बात पूछनेके लायक है कि आप (श्वेतांबरों) ने जो वस्त्रसहित संयमको मोक्षकी प्राप्तिका कारण माना है वह किस आधारसे? यदि यह कहा जायगा कि हमारे शास्त्रमें वस्त्रसहित संयमसे भी मोक्ष होती है यह लिखा है इसलिये आगमप्रमाणसे वस्त्रसहित संयमको मोक्षका कारण कहना हमारा [श्वेतांबरोंका] युक्त है तो यहां हमारा [दिगंबरोंका] यह कहना है कि—हमें आपका वह आगम प्रमाण नहीं है क्योंकि जिस प्रकार यज्ञका अधिकार देने वाला वेद आगम आपके सिद्धांतके विरुद्ध होनेसे आपको प्रमाण नहीं उसीप्रकार आपका भी आगम हमारे सिद्धांतके विरुद्ध है इसलिये हमें वह प्रमाण नहीं है। एवं स्त्रियां मोक्षके कारण संयमको धारण कर ही नहि सकती यह बात इस अनुमान प्रमाणसे भी सिद्ध होती है कि—

स्त्रियां मोक्षके कारण संयमको धारण नहि कर सकतीं क्योंकि वे साधुओंसे अवंद्य हैं अर्थात् साधु उन्हें नमस्कार नहि करते जैसे गृहस्थोंको। यहां पर 'साधुओंसे अवंद्य' यह हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि श्वेतांबरोंका यह आगम वचन है कि—

"वरिससयदिक्खियाए अज्जाए अज्ज दिक्खिओ साहू।
अभिगमणवंदणणमंसणविणएण सो पुज्जो॥ १॥"

अर्थात् आर्यिका सौवर्षकी दीक्षित हो और साधु आजका दीक्षित हो तो वह आर्यिका ही जो सौ वर्षकी दीक्षित है आजके दीक्षित साधुका सामने जाकर वंदना नमस्कार और विनयसे सत्कार (पूजा) करती है। तथा स्त्रियां मोक्षके कारण संयमको धारण नहि करसकती यह बात नीचे लिखे हेतुसे भी सिद्ध होती है—

स्त्रियां मोक्षके कारण संयमको धारण नहि कर सकतीं क्योंकि वे बाह्य आभ्यंतर दोनों परिग्रहको धारण करनेवाली हैं जैसे गृहस्थ। यहांपर भी 'बाह्य अभ्यंतर दोनों परिग्रहके धारण करनेवाली' यह हेतु असिद्ध नहीं है क्योंकि उनके बाह्यपरिग्रह कपडेका धारण करना तो प्रत्यक्षमें देखा ही जाता है और उसीसे अन्तरंग परिग्रह शरीरमें अनुराग आदिका भी अनुमान करलिया जाता है।

शंका—शरीर में गर्मी अधिक है अतः वायुकायिक

आदि जिन जीवों का शरीर के साथ सबंध होता है उनका विघात गर्मी से हो सकता है अतः उनकी रक्षाके लिये वस्त्र धारण किया जाता है, शरीरमे विशेष अनुराग आदि है इसलिये वस्त्र धारण किया जाता है यह बात नहीं है अतः वस्त्र धारण करने से वाह्य अभ्यंतर दोनो परिग्रहों का सभव जो ऊपर वत लाया वह अयुक्त है।

उत्तर—नहीं यदि शरीर की गर्मी से मरने वाले जीवों की रक्षा के लिये वस्त्र धारण करना निर्दोष समझा जायगा तो जो महात्मा नग्न बाह्य अभ्यंतर दोनों परिग्रहों से रहित हैं वे हिंसा करने वाले समझे जांयगे तथा इस रूपसे वाह्य अभ्यंतर दोनों परिग्रहों के त्यागी अर्हंत भगवान मोक्ष के पात्र और उस के उपदेशक न सिद्ध हो सकेंगे किन्तु वस्त्रों के धारण करने वाले गृहस्थों को ही मोक्ष प्राप्त हो सकेगी। श्वेतांबर लोग नग्न अवस्था को निर्दोष स्वीकार नहि करते यह भी ठीक नहीं है क्योंकि जहांपर आचेलक्य औद्देशिक आदि दश प्रकार का संयम बतलाया है वहां पर 'आचेलक्कुद्देसिय सेज्जाहररायपिंड किदिकम्म' इस वचन में आचेलक्य- नग्न अवस्था का विधान मोजूद है तथा यह भी एक बात विचारने योग्य है कि यदि शरीर की गर्मी से मरने वाले जीवोंकी रक्षा के लिये वस्त्र धारण किया जाता है यह बात है तोभी तो जीवोंकी रक्षा नहीं हो सकी क्योंकि जितने शरीर पर वस्त्र रहेगा उतने शरीर की गर्मी से तो जीव न मरेंगे परंतु जो हाथ पैर आदि शरीर के अवयव खुले रहेंगे उनकी गर्मी से तो जीवों का अवश्य विध्वंस होगा। एवं इसके साथ एक बात यह भी है कि वस्त्रों में जूआं लीख आदि जिन जीवों की उत्पत्ति होती है सो वे तो अवश्य ही मरेंगे इस रूपसे मुनि अवस्थामें वस्त्र धारण करनेसे हिंसा न होगी यह बात कभी स्वीकार नहीं की जा सकती। यदि वस्त्र धारण करनेसे हिंसा नही होगी यह बात हठ से स्वीकार की जायगी तो जूआं आदि जीवोंकी हिंसासे बचने के लिये ही केश-लोच आदि क्रियायें की जाती हैं वे व्यर्थ होंगी तथा जिस प्रकार वीजना से आकाश की इधर उधर की पवनके रुक जाने से जीवों का व्याघात होता है उसी प्रकार यदि मुनि अवस्था में वस्त्र धारण किया जायगा तो उसके फैलाने और सिकोड़ने में भी पवन कायके जीव मरेंगे फिर वस्त्र धारण करने से हिंसा का वचाव कहां रहा ? इसलिये यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि मुनि अवस्था में वस्त्र धारण करने पर कभी मोक्ष प्राप्त नहि हो सकती। स्त्रियां विना वस्त्र के साधु अव-स्था धारण नहि कर सकतीं इसलिये वे तो कभी मोक्ष पाही नहीं सकती।

अच्छा! यदि जीवोंकी रक्षाकी बुद्धिसे ही मुनि अवस्थामे वस्त्रका ग्रहण किया जाता है यह ठीक समझा है तब मुनियोंका विहार भी न करना चाहिये क्योंकि वस्त्रके रखने पर जैसी जीवोंकी रक्षा होती है वैसे विहारके न करनेपर भी जीवोंकी रक्षा होगी। यदि यह कहा जायगा कि प्रयत्नसे चलनेपर जीवोंके मरनेपर भी हिंसा नहि होसकती क्योंकि उस समय प्रमादका योग नहीं तब यहभी मानलेना चाहिये कि नग्न अवस्था में भी प्रमादके अभावमें हिंसा नहि होसकती इसलिये पशुओंकी हिंसाके कारण जिसप्रकार यज्ञको अकल्या-णका करनेवाला माना है और वह किया नहि जा सकता उसी प्रकार वस्त्र धारण करनेसे अनेक जीवों का विध्वंस होता है इसलिये वह भी अकल्याण कारी है अतः वस्त्रधारण मुनि अवस्थामें मोक्षका कारण सिद्ध नहि हो सकता।

शंका—वस्त्रका धारण संयममें सहायता पहुंचाने वाला है क्योंकि वस्त्र धारण करनेसे जीवोंका विघात न होगा इसलिये संयम अच्छी तरह बन सकेगा।

उत्तर—उपर्युक्त युक्तियोंसे जब वस्त्र धारण करना हिंसाका कारण सिद्ध होचुका तब वह जीवोंकी रक्षा करनेसे संयममें सहायता पहुंचायेगा यह बात अयुक्त है। तथा यह भी बात है कि बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रहोंका त्याग संयम माना है यदि वस्त्र धारण किया जायगा तो गृहस्थोंसे वह मांगा जायगा, सीना धोना सुखाना रखना लाना आदि कार्य करने पडेंगे कोई चुरा भी ले जा सकेगा उससमय मुनिके क्षोभ भी होगा इसलिये वस्त्र रखने पर कभी संयम न पल सकेगा। बल्कि उससे संयमका नाश ही होगा क्योंकि वस्त्र धारण करनेसे बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकारके परिग्रह बदस्तूर बने रहेंगे—दोनों परिग्रहोंका त्याग न हो सकेगा। तथा इस विषयमें कुछ श्लोक भी जानने के योग्य हैं—

ह्रीशीतातिनिवृत्यर्थं वस्त्रादि यदि गृह्यते।
कामिन्यादिस्तथा किन्न कामपीडादिशांतये ॥ १ ॥
येन येन विना पीडा पुंसां समुपजायते।
तत्तत्सर्वमुपादेयं लावकादिपलादिकं ॥ २ ॥
वस्त्रखंडे गृहीतेऽपि विरक्तो यदि तत्वतः।
स्त्रीमात्रेऽपि तथा किन्न तुल्याक्षेपसमाधितः ॥ ३ ॥
नापि तत्स्त्रीमनःक्षोभनिवृत्यर्थं तदाहृतं।
तद्वांछाऽहेतुकत्वेन तन्निषेधस्य संभवात् ॥ ४ ॥
चक्षुरुत्पाटनं पट्टबंधनं च प्रसज्यते।
लोचनादेस्तदुत्पत्तौ निमित्तत्वाविशेषतः ॥ ५ ॥
चलचित्तांगना काचित्संयतं च तपस्विनं।
यदीच्छति भ्रातृवत्किं दोषस्तस्य मतो नृणां ॥ ६ ॥
बीभत्सं मलिनं साधुं दृष्ट्वा शवशरीरवत्।
अङ्गना नैव रज्यंते विरज्यंते तु तत्वतः ॥ ७ ॥
स्त्रीपरीषहभग्नैश्च बद्धरागैश्च विग्रहे।
वस्त्र..दीयते यस्मात्सिद्धं ग्रंथद्वयं ततः ॥ ८ ॥

अर्थात् लज्जा और शीतकी पीडाकेलिये यदि वस्त्र धारण करना उचित समझा जायगा तो काम पीडा की शांतिकेलिये स्त्रीका भी ग्रहण करलेना चाहिये। क्योंकि जिस २ के विना मनुष्योंको तकलीफ जानपडे वे सब ग्रहण करलेना चाहिये इस तरह लावा पक्षी का मांस भी ग्रहण करलेना उचित होगा क्योंकि वह फायदा मंद माना है। थोड़ा सा भी वस्त्र धारण करने पर यदि किसी को विरागी समझा जायगा तो स्त्री के ग्रहण करने पर भी वह विरक्त कहा जा सकेगा क्योंकि जिस प्रकार उसका वस्त्र में राग नही माना जाता उसप्रकार स्त्रीग्रहण करनेवालेका स्त्रीमें भी राग सिद्ध नहि हो सकता दोनों बातें समान हैं। कदाचित् यह कहा जाय कि नग्न होनेसे स्त्रियोंमें चित्त न चल जाय इसलिये वस्त्र धारण उचित है सो भी ठीक नहीं क्योंकि जब स्त्रियोंको इच्छा ही नहीं तब क्षोभ होना असंभव है यदि यही मत हो कि क्षोभ होना ही है तो आखोंके देखने और कान आदि से सुनने आदि से भी मनको क्षोभ होता है इसलिये आख आदि को फोड़ डालना चाहिये या पट्टी बाध देना चाहिये क्योंकि मनः क्षोभके वे भी कारण है। नेत्र आदिक फूट जानेपर वा पट्टी बंधने पर क्षोभ नही होगा यदि कदाचित् कोई व्यभिचारिणी स्त्री किसी तपस्वीको जो कि 'उस स्त्री में निस्पृह होनेसे भाईके समान है' इच्छा करे तो उसमें तपस्वीका क्या दोष है? वास्तवमें तो मलिन और दुर्गंधित साधुका शरीर मुर्दा के समान होता है अतः स्त्रियां उस पर अनुराग नही करेंगीं विरक्त ही रहेंगीं इसलिये नग्न किंतु मलिन दुर्गंधित साधुओंके वेषसे

स्त्रियोंको कोई भी विकार नहीं होसकता तथा यह भी बात है कि जो मनुष्य स्त्रियोंका परोषहसे डर कर किंवा किसी रागवश वस्त्र धारण करते हैं उनके दोनों परिग्रह सिद्ध होते हैं इसलिये कभी वे मोक्ष नहिं पा सकते।

शंका—मुनिगण जीवोंकी रक्षा या रोग विशेष के नाश के लिये पीछी या औषध ग्रहण करते हैं इस तरह वे परिग्रही हुए इसलिये जिस प्रकार वस्त्रके ग्रहण करने में दोष बतलाया उसी प्रकार इनके ग्रहण करने में भी दोष क्यों नहीं ?

उत्तर—नहीं, पीछी का ग्रहण जीवों की रक्षाके लिये किया जाता है उसके ग्रहण करने में मुनि का ममत्व नहिं जाना जाता। तपस्याके बाधक रोग के दूर करने में समर्थ दवा भी रोगका नाश करती है उससे भी निष्परिग्रहता में किसी प्रकार का विरोध नहि आता। इसलिये पीछी आदि निर्ग्रंथ लिंगको हानि पहुंचाने वाले नहीं परंतु वस्त्र के धारण करनेमें दोष है क्योंकि उससे जीवों की रक्षा नहीं होती पर ममत्व जान पड़ता है एवं तपस्याके बाधक किसी रोगको उससे शांति नहि होती।

तथा यह भी बात है कि जिस समय परम निर्ग्रंथपना होता है उससमय औषधके समान पीछी का भी त्याग हो जाता है इसलिये औषध और पीछी कभी ममत्व के कारण नहिं हो सकते किंतु रोग नाश और जीव रक्षा के ही कारण होते हैं। इसलिये यह बात निश्चित है कि आगम के अनुसार उद्गम आदि मुनि अवस्था के दोषों से रहित सम्यग्दर्शनादि रत्न त्रय के कारण आहार औषध आदि किसी को मोक्ष में बाधक नहीं क्योंकि जिस प्रकार वस्त्र के धारण करने में राग आदि अंतरंग, मंडन करना वेष बदलना आदि बाह्य दोनों प्रकारसे परिग्रहों का संभव जान पड़ता है वैसा पीछी भोजन औषध आदि के ग्रहण करने में नहीं इसलिये पीछी आदि मोक्ष प्राप्तिमें उपकार करने वाले हैं यह बात निर्विवाद सिद्ध है। तथा यदि आहार ग्रहण न किया जायगा तो आयु पूर्ण होने से पहिले ही मरण हो सकता है इसलिये वे आत्मघाती सिद्ध होंगे किंतु वस्त्र के न ग्रहण करने पर उनका मरण नहीं हो सकता। तथा मोक्षके अभिलाषी मुनिगण बेला तेला आदि उपवास कर भोजन का भी त्याग बीच बीच में करते रहते हैं परंतु स्त्रियां कभी भी वस्त्र का त्याग नहिं करती इसलिये कपड़े के साथ संयम धारण करने वाली स्त्रियां मोक्ष प्राप्त करसकें यह कोई भी विद्वान स्वीकार नहिं कर सकता।

शंका—स्त्रियों के वस्त्र के सिवाय अन्य समस्त वाह्य परिग्रह का त्याग है इसलिये पूर्ण निर्ग्रंथलिंग इनके मौजूद है।

उत्तर—यदि इस प्रकार कपडे कीमौजूदगी में भी पूर्ण वाह्य निर्ग्रंथलिंग माना जायगा तो लोभ कषाय के सिवा और कषाय के त्याग से पूर्ण अंतरंग निर्ग्रंथ लिंग भी मानना पडेगा। कदाचित् यह कहो वस्त्र के ग्रहण करने पर भी ममत्व न रखने से निर्ग्रंथलिंग सिद्ध हो सकता है। सो नहीं, वस्त्रके रहने पर ममत्व न हो यह झूठ बात है। क्योंकि शरीरसे वस्त्र के गिर जाने पर समझ बूझकर उसे हाथ से पहिना जाय और ममत्व न हो यह किसी भी विद्वान को रुचिकर नहि हो सकता। यदि यह बात हठ से मान ली जायगी तो स्त्री के आलिंगन करने पर भी यह कहा जा सकेगा कि स्त्रीसे कोई ममत्व नहीं इसलिये यह बात अब अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी कि वस्त्र के ग्रहण करने पर वाह्य अभ्यंतर दोनों परिग्रहों का त्याग नहिं हो

सकता। परिग्रहों के त्याग के अभाव में निर्ग्रंथपना नहिं बन सकता-मोक्ष के परम कारण निर्ग्रंथ लिंग को स्त्रियां धारण कर नहीं सकती अतः स्त्रियां स्त्री पर्याय से किसी तरह मोक्ष प्राप्त नहिं कर सकतीं। जिस प्रकार चावल आदिका पकना बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकार के कारण मिलने पर होता है क्योंकि वह कार्य है उसी प्रकार मोक्ष भी कार्य है वह भी बाह्य अभ्यंतर दोनों प्रकार के कारणों के रहने से प्राप्त होगी तथा वह बाह्य अभ्यंतर कारण आकिंचन्य—मेरा कुछ भी नहीं, इस प्रकारका परिणाम है। वस्त्र रखने पर यह परिणाम हो नहिं सकता इसलिये मोक्ष हो नहीं सकती इस प्रकार "पुरुषों के समान स्त्रियों में समस्त कारण मौजूद हैं" जो यह हेतु स्त्रियों को मोक्ष सिद्ध करने के लिये श्वेतांबरों की ओर से दिया गया था वह असिद्ध होगया इसलिये स्त्री पर्याय से स्त्री को मोक्ष सिद्ध नहिं की जा सकती।

आगम प्रमाण से भी स्त्रियां मोक्ष नहिं प्राप्त कर सकतीं क्योंकि आगम में स्त्री पर्यायसे मोक्ष नहीं होती ऐसा लिखा है जैसा कि—

पुंवेदं वेदंता जे पुरिसा खवगसेढिमारूढा।
सेसोदयेण वि तहा झाणुवजुत्ताय ते दु सिज्झंति १

अर्थात्-जो पुरुषवेदी और क्षपक श्रेणी के चढ़ने वाले हैं अथवा भाव से स्त्री नपुंसक वेदी होकर भी जो पुरुष वेदी और क्षपक श्रेणी चढ़नेवाले हैं तथा ध्यान करने वाले हैं वे ही मुक्ति पाते हैं अन्य नहीं। इस आगम से स्त्रियोंको स्त्रीपर्यायसे मुक्तिका निषेध है। यहां पर पुंवेदके समान स्त्री और नपुंसक वेदोंसे भी मुक्ति मानी है परंतु दोनों जगह पुरुष का संबंध होने से द्रव्य पुरुष लिंगसे ही मुक्तिका विधान है क्योंकि उदय से भाव का उदय है द्रव्य का नहीं इसलिये इस आगम से यह बात सिद्ध हो चुकी कि द्रव्यपुरुषलिंगसे ही मुक्ति प्राप्त होती है। द्रव्य स्त्री वा नपुंसक से नहीं। तथा स्त्रियों के द्रव्यस्त्रीलिंगका सद्भाव है इसलिये भी वे मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकतीं। क्योंकि आगम में रत्नत्रयके आराधन करने वाले जीवको यह लिखा है कि वह जघन्य रूप से सात आठ भवोंसे और उत्कृष्ट रूपसे दो तीन भवोंसे मुक्ति प्राप्त करसकता है। तथा यह बात भी बतलाई है कि जब से सम्यग्दर्शनका उदय हो जाता है तबसे किसी भी स्त्री पर्यायमें उत्पन्न नहिं होता होता तब स्त्री पर्यायसे कैसे मुक्ति प्राप्त हो सकती है? कभी नहीं।

शंका—पहिले भव में समस्त अशुभ कर्मोंके नष्ट करने वाले मिथ्यादृष्टि भी पहिले रत्नत्रयका आराधन करते हैं पीछे उसी भव से मोक्ष चले जाते हैं जैसेकि भरत चक्रवर्ती के पुत्रों को मुक्ति मानी है उसीप्रकार स्त्रियां भी एक ही भव में रत्नत्रय प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं उनके लिये मुक्ति का निषेध क्यों?

उत्तर—पहिले भव में अशुभ कर्मों के नाश करने वाले जीवके स्त्री वेदकी उत्पत्ति ही नहिं हो सकती क्योंकि स्त्री वेदको भी अशुभ कर्म माना है इसलिये अशुभ कर्मोंके साथ यह भी नष्ट हो जाता है।

शंका—स्त्री वेद क्यों अशुभ कर्म है?

उत्तर—सम्यग्दृष्टिके स्त्री वेदकी उत्पत्ति नहिं होती इसलिये, यदि वह शुभ कर्म होता तो अवश्य सम्यग्दृष्टि के उसकी उत्पत्ति होती। इसलिये यह बात सिद्ध हो चुकी कि जिस प्रकार नपुंसक, पुरुष से अन्य हैं इस लिये वह मुक्त नहीं होता उस प्रकार स्त्री भी पुरुषसे अन्य है उसे भी मोक्ष नहिं मिल सकती। यदि स्त्री को मोक्ष मानली जायगी तो नपुंसक को भी माननी पड़ेगी।

शंका—जिस प्रकार नपुंसक स्त्रीसे अन्य है इसलिये

उसे मुक्ति प्राप्त नहिं होती उस प्रकार पुरुष भी स्त्रीसे अन्य है उसे भी मुक्ति नहिं मिल सकती।

उत्तर—पुरुषको मुक्ति दिगंबर श्वेतांबर दोनों संप्रदाय वाले मानते हैं इसलिये कुतर्क से पुरुष का मुक्ति का निषेध नहिं हो सकता। यदि श्वेतांबर आगमसे स्त्रियों को मुक्ति सिद्ध होती है तो दिगंबर उन्हें प्रमाण नहि मान सकते। तथा इस अनुमान से भी स्त्रियों का मुक्ति का निषेध होता है—

स्त्रियां मुक्ति नहि पा सकती क्योंकि मुक्ति उत्कृष्ट ध्यान का फल है जो जो उत्कृष्ट ध्यान का फल होता है वह वह स्त्रियोंको प्राप्त नहि होता जिस प्रकार सातवां नरक। मुक्ति उत्कृष्ट ध्यानका फल है। स्त्रियां उत्कृष्ट ध्यान का आराधन कर नहीं सकती इसलिये उन्हें मोक्ष नहिं मिल सकती इसलिये अनंत चतुष्टय का लाभ रूप मोक्ष सिवाय पुरुष के और किसी को प्राप्त नहि हो सकती यह बात युक्ति और आगम दोनोंके बल से सिद्ध हो चुकी।

अपूर्ण

मनो विनोद

(दो भाइयोंका वार्तालाप)

एक—क्यों भाईसाहब! मैंने बालकपनमें स्वास्थ्य रक्षाकी पुस्तक में पढा तथा वैद्य डाक्टरों की जबानी भी सुना है कि—कुएकी अपेक्षा नदीका और नदीकी अपेक्षा तालावका पानी खराब बादी अस्वास्थ्य कर होता है। और जिस तालाब में बाहर बालू रेतमें बहा हुआ पानी न आवे बरसाती पानी ही भरा रहे ऐसे गंदे गढेका पानी तो बहुत ही खराब होता है परंतु आश्चर्य है कि कलकत्तेके वेलगछिया के पुराने गड्ढे का पानी इतना पाचक क्यों है? मैंने आज खूब माल उडाया तौभी मेरा खाया हुआ सब हजम होगया!

दूसरा भाई—तुम्हारा कहना ठीक है-गंदे गड्ढे का पानी बहुत ही खराब होता है परंतु इस वेलगछिया के तालाब में विशेषता है।

एक—वह विशेषता ही तो मैं जानना चाहता हूं। इसीका ही तो मुझे आश्चर्य है।

दूसरा—भाई तुम जानते नहीं कि दया धर्मके पालने वाले जैनियों का तालाब है इसमें प्रतिवर्ष सैकड जीवित मछलियां बंगालियों के खानेसे बचाकर डाली जाती हैं यह मच्छियों का पिंजरा पोल है। इसमें कमसे कम छोटी मोटी लाख मच्छियां तो होंगी वे रोज चार पांच दफे हंगती होंगी पांच सात दफे मूतती होंगी यदि कमसे कम प्रत्येक मच्छी एक तोला-गू मूत क्षेपण करै तो प्रति दिनका ३१] मन मच्छियोंका गू मूत इसमें होता है। एक वर्षमें करीब साढे ग्यारह हजार मन गू मूत होता है और सैकड़ों वर्षोंका गू मूत इसमें संग्रहीत है पानी तो जितना वर्षामें आता है उतना सूरज की किरणोंसे बाफ होकर उड जाता है यह जो कुछ दीखता है इसमें हरा हरा रंग तो मच्छियों की विष्टा है और पानी मूत है। इसीलिये यह अत्यंत पाचक है। इसके सिवाय इसमें सब मच्छियां मरती हैं सड़ती हैं उनका भी बहुत भाग घुला रहता है।

एक—वाह भाई साहब! आपने तो बड़ा अच्छा तत्व निकाला! मान लिया जाय कि इस तालाबमें जो कुछ है वह सबका सब गू मूत ही है परंतु वह पाचक या स्वास्थ्यकर ही है यह कैसे मालूम हुआ?

दूसरा—भाई मैंने मच्छी खाने वाले बंगालियों से सुना है कि मच्छियें बड़ी गर्म होती हैं मच्छियें या मच्छियों का गू मूत बड़ा पाचक है।

एक—भाई तुम ठीक कहते हो। परंतु जैनी तौ बड़े पवित्र दयावान मद्य मांसके त्यागी हैं, वे इस तालाब के पानी को कैसे पवित्र मानते हैं और पीते हैं? क्या यहां मंदिर बनवाने में लाख रुपया लगाते हैं तो एक दो नल नहिं लगा सकते? जिसका पानी नहाने वा पीने में आवे-या एक दो बडे गहरे कुए नहीं बना सकते?

दूसरा—कूआ बना तो देते और एक कूआ बना हुआ भी है। परंतु उसमें भी तो इस तालाब का ही नीचेसे गंदा पानी आवैगा वह कौनसा पवित्र होगा?

एक—ठीक कहते हो! दूसरे यहांके जैनियों में ऐसा कौन जैनी है जो डाक्टरी दवाई जो कि प्रायः मांस या मद्य से अविनाभाव संबंध रखने वाली हैं नहीं खाते यद्यपि नलका पानी भी महा अशुद्ध है तथापि यह पानी छूटना आवश्यानुष्ठान है इसलिये नल तौ जरूर ही बना देना चाहिये। यदि नलके पानीसे घृणा है तौ एक बहुत गहरा कुआ बनवा दें और प्रतिवर्ष उसके पानी को म्यूनिस्पिलटीसे साफ कराते रहें तौ नलकी अपेक्षा वह पानी साफ मिल सकता है। तालाब में डालने से मच्छियों की दया पलती है या नहीं इस विषयमें भी मुझे संदेह है परंतु अभी मुझे एक जगह जाना है फिर कभी समय मिलने पर पूछूंगा। जै जिनेन्द्र।

दूसरा—जै जिनेन्द्र भाई साहब! कभी २ जरूर मिला करें।

विनोदी

संपादकीय विचार

जैन नेताओंकी शक्तिका अपव्यय।

यों तो जैन समाजमें पढे लिखे अच्छे समझदार लोगही बहुत कम हैं पर जो कुछ हैं भी, वे दो पार्टों में विभक्त हो जानेके कारण बहुत ही हीनशक्तिवाले हो गये हैं यही कारण है कि आजकल समाजमें एक विलक्षण तरह की खलबली मची हुई है और जिसके मनमें जो आता है वही करता दृष्टिगोचर होरहा है। यद्यपि इस तरह समाज संगठनका शैथिल्य वर्तमानमें कोई बड़ी हानि करता नहीं दिखलाई पड़ता परंतु ऐसा कोई भी दूरदर्शी समाजहितैषी न होगा जो भविष्यमें एक गहरी हानिका चित्र खींच कर न क्षुब्ध-हृदय होता हो।

समाजकी अवस्था का इस प्रकार संशयात्मक परिवर्तन करदेनेमें कारण हमारे अपनी कर्मठताद्वारा नेता बन बैठनेवाले कुछ लोग हैं। ऐसे मनुष्यों की शक्ति यदि जिस प्रकार पहिले कुछ दिनोंतक सर्व समाज सम्मत कार्य करती रही थी वैसा ही आजकल भी करती होती तो इसमें संदेह नहीं, जैन समाज की हालत कुछ और ही होती। पर समय चक्रका माहात्म्य समझिये, या पड़ौसियोंकी संगति का असर जानिये या फिर प्रारंभिक संस्कार के आविर्भूत हो प्रबलता धारण करने का फल कहिये. पाश्चात्य सभ्यताके प्रेमी लोगों का कार्यक्षेत्र दूसरा ही होगया है उनके इस तरह धार्मिक प्रतिद्वंद्वताके भावों को रोकने के लिये पौरस्त्य [भारतीय] शिक्षाके अभिभावक लोगों को अपनी शक्ति का झुकाव भी उसी तरफ करना पड़ा है इस तरह शताब्दियोंसे पारस्परिक झगडों द्वारा नष्ट भ्रष्ट हुई जैन समाजकी शक्ति दिनपर दिन क्षीण होरही है। समाजके मध्यस्थ लोग चुप चाप इस तमाशे को देख रहे हैं कोई किसीको कुछ नहीं समझाता, बुझाता और न इन्हें ही स्वयं कुछ ध्यान होता है।

समाचारपत्र।

यदि हम स्थिर चित्त हो बैठकर इस बातका विचार करें कि जितने समाचार पत्र इस समय जैनियोंद्वारा परिचालित हो रहे हैं उनमें कितने अपनी सेवाद्वारा समाजका हित कर रहे हैं तो एक शोक पूर्ण स्वांसके सिवा कुछ भी नजर नहीं आता। आज कल कागज आदिका महंगी से प्रायः प्रत्येक समाचार पत्रके प्रकाशन का कार्य पूर्वका अपेक्षा दुगुणा हो गया है और अनुमानतः छोटे से छोटे पत्रका एक मासका खर्च ५०] रु० से कम नहीं है। इस हिसाब से सर्व समाजके जितने भी पत्र हैं उनमें ५००]रु० मासिक से कम व्यय नहीं होता और लाभ जो उनसे समाज को हो रहा है वह यह कि–'अपना मार्ग ही ढूंढ़ना मुश्किल होगया है।' वैर विरोध दिनपर दिन उन्नति कर रहा है और वत्सलता धीरे धीरे विदा हो रही है।

ऐसी दशामें नेताओं को क्या करना उचित है यह खूब सोच विचार लेना चाहिये एवं समाचार पत्रके संपादकों को भी अपने गौरवान्वितपद की मर्यादाका ध्यान रखना उचित है।

धार्मिक शिक्षाके अभावमें हानि।

सहयोगी 'जैनमार्तंड' हाथरस से यह जानकर हमें बहुत खेद हुआ कि हाथरसके प्रसिद्ध वकील बाबू विद्याप्रशादजी के सुपुत्र एल. एलबी. परीक्षा पास हो कर वकालात करने लगे हैं परंतु युवावस्था के मध्य पहुंचने पर भी धर्म विद्या से एक दम कोरे हैं। पाश्चात्य शिक्षाके गहरे प्रभावमें पड़े हुये उक्त बाबू साहब को यह भी नहीं मालूम है कि हमारे बाप दादे किस धर्मको पालते हैं और उस धर्मका तत्व क्या है? आपने इसी अज्ञानताके वशीभूत हो जैनधर्मके विषयमें अदालतमें खड़े हो कर जो बात कही है उससे सामान्य धर्मतत्वका ज्ञाता मनुष्य भी हंस सकता है। आपने कहा है कि–'जैनी ईश्वर नहीं मानते उन्हें ईश्वरके अस्तित्वका विश्वास नहीं।' आदि, क्या खूब! जगह जगह ईश्वरके मंदिरों को प्रतिष्ठापन करने वाले जैनी ईश्वर नहीं मानते! विना ईश्वर की मूर्तिके दर्शन किये भोजन न करने वाले जैनी ईश्वरके अस्तित्वमें विश्वास नहीं रखते! इसमें बाबू साहबका दोष नहीं है, यह आजकल की शिक्षा प्रणाली और उनके मा बापका दोष है। जिन्होंने अपने पुत्रका भविष्य केवल रुपया कमाने मात्रसे ही उज्वल समझा! और कुछ भी धर्म विद्याका पाठ न पढाया।

केवल अंग्रेजी शिक्षाके अतिभक्त लोगोंसे हमारा कहना है कि वे अपनी ध्येय शिक्षाका फल देखें और परखलें कि वह कितना मीठा है? समाजमें एक उक्त बाबू साहब ही क्या? सैकड़ों इसी तरह की शिक्षासे दीक्षित आत्मायें हैं जिन्हें अपने घर की खबर नहीं परंतु केवल राजसम्मान पानेसे ही सम्मानित बने हुये हैं। यदि ऐसे २ लोग ऊपर को चटक मटकमें आकर विधवा विवाह, निरबाध भोजन [वर्णभंग] आदि धर्म विरुद्ध परंतु आज कल कम देख शिक्षा जाने वालों विषय वासना की पोषक सुखातादायक बातों को स्वीकार करलें तो क्या आश्चर्य है? इसी तरहके हिमायतियोंकी प्रशंसा पूर्ण चिट्ठियां पाकर ही तो—

जातिप्रबोधकके

नवीन संपादक जी फूले नहीं समाते। उन्होने 'अहो रूपमहो ध्वनिः' के अनुसार धन्यवाद रूपी फूलोंकी

द्वितीय अंकमें ढेरी लगादी है । क्यों न हो ? दूसरे को अपनी विद्वत्ता के सामने (जब कि स्वयं किसी भी विद्यामें परिपक्व नहीं है) तुच्छ गिनने वाले मनुष्यको संपादक सरीखे पदका प्राप्त होना और तिस परभी प्रशंसा का सार्टीफिकट मिलजाना क्या कम सौभाग्य की बात है ?

पद्मावती-परिषद् ।

फिरोजाबाद का मेला चैत्रमें होनेवाला है और उसी समय सदैव की भांति पद्मावती-परिषद् का वार्षिक उत्सव भी होगा परन्तु उत्सवके समय पर ही जागने वाले उक्त परिषद् के मंत्री महोदय आलस्य में पड़े बेखबर हो रहे हैं । उन्हें चाहिये कि वार्षिकोत्सव एक महत्व पूर्ण असर जाति पर डाल सके इसकेलिये अभी से आंदोलन करना प्रारंभ करदें । प्रस्तावों की सूची और उनकी विवेचना करनेका लोगों को अवसर देवें एवं जाति में नाना उपाय कर ऐसा जोश भरदें कि लोग अधिक संख्यामें एकत्र हों । क्या ? साल भर में एक बार तीन दिनके लिये जगने वाले मंत्री महाशय और उनही के संग करवट बदलने वाले अन्य विद्वान धीमान उत्साही महोदय अभी से कुछ प्रयत्न करना प्रारंभ न करदेंगे ?

व्यक्तिगत आक्षेप ।

आज कल नवीन सभ्यता के सांचेमें ढले लोग इस बातको दुहाई दिया करते हैं कि-पंडित लोग बिलकुल देशकाल के अनभिज्ञ होते हैं , वे किसी प्रकार का मौका आनेपर झट आक्षेप कर बैठते हैं और आक्षेप भी ऐसा वैसा नहीं, जिनका दोष या अपराध समझते हैं उसका नाम लेकर कलई खोल दिया करते हैं । ऐसा किया जाना सर्वथा अनुचित है परंतु ऐसे महाशयों से हमारा पूछना है कि 'आप मौका पड़नेपर और क्या करते हैं ? यही न कि—'सिर्फ नाम नहीं लेते वा लिखते , पर और सब कुछ तो झूठा सांचा नमक मिर्च मिलाकर अपना दिलका गुबार निकालही लिया करते हैं । यदि नाम न लिख ' किसी या कोई ' शब्द लगादेने से ही सभ्यता वा प्रशंसा समझी जाती है और व्यक्तिगत आक्षेप नहीं समझा जाता तो धन्य है ? लेकिन इससे लाभ ही क्या होता है ? समझनेवाले तो समझ ही जाते हैं कि अमुकके ऊपर यह बाण वर्षा हो रही है । दृष्टांतकेलिये इस तरहकी सभ्यता के संचालकों का कोई भी पत्र देख लीजिये, बराबर अपने विरुद्ध पक्षवालों पर सभ्यता (मायाचारी) की बोली में नाना तरहके निंदात्मक घृणोत्पादक वाक्योंकी वर्षा करता नजर आता है । लोग चाहे सरसरी निगाहसे देखने पर यह कह सकें कि उन पत्रों में कुछ नहीं है। परन्तु गहरी दृष्टिसे देखने पर कोई भी हमारी बात अस्वीकार नहीं कर सकता ।

वैक्रियिक शरीर ।

जैनधर्मके तत्वोंसे अनभिज्ञ लोग जो देवों की विक्रिया के विषय मे शंका उठाते हैं उसमें तो उनका कुछ दोष नहीं है क्यों कि वे विचारे उसके स्वरूपको नहीं समझते परंतु सब समझ बूझकर भी भोले भाले लोगोंको भ्रममें डालकर धार्मिक श्रद्धासे भ्रष्ट करने वाले लोग भी अजैनों की भांति वे शिर पैरकी असंबद्ध बातें कहते और लिखते हैं यह बड़े आश्चर्यकी बात है । वैक्रियिक शरीरके विषयमें जो लोग शंकायें उठाते हैं और देवोंकी नाना चेष्टाओंपर तर्क वितर्क करते हैं वह अपने औदारिक शरीरके समान हाड़ मांस मय ही देवोंके वैक्रियिक शरीर को समझते हैं वे यह ख्याल नहीं करते कि जिस प्रकार दीपक का

प्रकाश या धूप दृष्टिगोचर होनेपर भी पकडे नहीं जा सकते और न एक दूसरे का अवरोध ही करते हैं उसी प्रकार के पुद्गल परमाणुओंसे बना हुआ उनका वैक्रियिक शरीर परस्पर में किसीका प्रतिरोध नहीं करता और न स्वयं ही प्रतिरुद्ध होता है और जब यह बात है तब ऐरावत हाथीका विशाल शरीर असंख्यों देवोंका एक छोटेसे नगरमें समाजाना क्या आश्चर्य की बात है ?

जातिप्रबोधक और संस्कृत के विद्वान्।

कुछ दिनोंसे अंग्रेजी पढे लिखे बाबू और संस्कृत तथा धर्मशास्त्रोंके ज्ञाता पंडितोंमें एक विलक्षण तरह का असामंजस्य फैल गया है। दोनो पक्षके लोग एक दूसरेका दोष प्रगट किया करते हैं परंतु जो अधिकतासे इस असामंजस्य को समाज में प्रगट कर अपना कार्य साधना चाहते हैं वे बाबू लोगोंके प्रतिनिधि कुछ समाचार पत्र हैं ऐसे ही पत्रोंमें एक झांसीसे निकलने वाला 'जातिप्रबोधक' नामका भी पत्र है इसके दूसरे अंकमें संस्कृत विद्या की उन्नति को तुच्छ दृष्टिसे परखनेवाले संपादकने 'विरोधके कुछ कारणों पर विचार' शीर्षक अपने वक्तव्यमें आजकलके संस्कृतज्ञ विद्वानोंकी समालोचनाकर खूब ही अपने भीतरी हृदयका परिचय दिया है। आप सबसे पहिले तो फर्माते हैं कि-'आजकल के पंडित उच्च कोटिके ग्रन्थ पढकर भी समाज सेवा परोपकार क्यों नहीं करते ? मिथ्यारूढियोंको छोडनेके भाव उनमें क्यों नहीं होते ? फिर आपही इसका उत्तर इस प्रकार देते हैं कि-'यह सब शिक्षकोंका दोष है जो शिक्षक सदा गंगाके तटपर यजमानोंके पारितोषिक की आशामें रहते हैं वे स्वभावसे डरपोक संकुचित विचारवाले महा अभिमानी असहिष्णु दीन हीन और कायर होते हैं उनके पास भले घरोंके बालक अपना घरबार छोडकर क्या मायावी भगवन बननेके लिये आसकते हैं ? इन शिक्षकोंको पाठशालाओंमें एक तो गरीब घरोंके बालक बैठेही जाते हैं ...' आदि जितनी भी निंदा तथा घृणाकी उत्पन्न करानेवाली बातें होसकती हैं सब लिख डाली हैं। उन्हें यहां संपूर्ण उद्धृतकर हम अपनी लेखनी को पापिनी और पत्र को अपवित्र नहीं बनाना चाहते। आज कई मास पहिले बा० अजितप्रशादजी लखनऊ ने जो बात अंग्रेजी जैनगजटमें संक्षेपमें कही थी उसी का आप ने भाष्यस्वरूपमें व्याख्यान किया है हमें इस विषयमें विशेष लिखकर अपना समय और शक्ति व्यय नहीं करना है और फिर गालियों का जवाब गालियोंसे देना भी तो अनुचित समझते हैं इसलिये अंग्रेजी शिक्षाविधि के फल की तरफ भी आप की दृष्टि पहुंच जाय अतः इतना लिखदेना आवश्यक समझते हैं कि-संस्कृत के पंडित तो संसार भरके दोषोंसे लिप्त गुरुओंके शिष्य होनेसे लोभी संकुचितहृदय आदि समस्त दोषोंकी खानि हैं परन्तु अंग्रेजी के शिक्षक तो समस्त गुणोंके खजाना हैं फिर वे विना पैसालिये एक पैसेका कार्ड भी क्यों नहीं लिखते ? दिनभर व्यर्थकी बातोंमें समय बर्बाद करने परभी विना महनताना [ट्यूशन] लिये क्यों नहीं पढाते ? डिग्री हासिलकर अपने अधीनोंका गालियोंके सिवाय अन्यसे सत्कार क्यों नहीं करते ? मौका मिलने पर मीठी मीठी बोलीमें क्यों भिक्षा मांगते हैं ? गरीबोंकी सहायता करने के बदले उन्हें क्यों तंग करते है ? और आपही कहिये ? आपने जो इसप्रकार गालियां [सभ्यतामें चाहे आप इन्हें अपने निर्भीक विचार कहें] दे अपना दिलका गुबार निकाल संस्कृत शिक्षाके प्रति घृणा और संस्कृतज्ञोंको निंदा की है वह किस स्वभावसे प्रेरित हो की है ?

Regd. No. C 888.

यदि आप गुणग्राहकता और निष्पक्षपातताकी दृष्टिसे देखेंगे तो संस्कृतज्ञ विद्वानके समान शायद ही आप उच्चहृदय उदारव्यक्ति अंग्रेजी का विद्वान पावेंगे। यह हम अभिमान और कषायपुष्टि या अन्य किसी कारणसे नहीं कहते, वस्तु स्वरूप कह रहे हैं? संस्कृत विद्याका इतना अनादर होने पर भी, संस्कृतज्ञों के सर्वथा दीन हीन होने परभी संस्कृत विद्या को पढनेका इच्छुक कोई भी व्यक्ति यदि काशी कलकत्ता आदि किसी भी जगह जाय और पैसा भी खर्च न करे तो भी अच्छी तरह पढ कर विद्वान हो सकता है आप जिनको भिखमगे लालची समझते हैं उनके दरवाजे अपने पास विद्याभ्यास करनेके इच्छुक लोगोंके लिये चौवीसों घंटे खुले रहते हैं। हमने बनारसमें रह यहां तक देखा ही क्या? स्वयं अनुभव किया है कि विना संकोच और लालचके संस्कृतज्ञों ने विद्यादानके साथ साथ छात्रोंका भरण पोषण भी किया है। और आप को क्या किसी को भी इस विषयमें झूठ जान पड़े तो स्वयं जाकर रहकर सोधे सोधे ढंगसे [मायाचारी वा आज कल की सभ्यता से नहो] देख सकते हैं।

परन्तु इसके विपरीत अंग्रेजी के हजारों विद्वान रहने पर भी कोई भी गरीब विद्यार्थी बिना पैसा दिये अंग्रेजी नहीं पढ सक्ता उस विचारेको पैसा देकर ज्ञान मोल ही लेना होगा। एवं अन्य भी बातें जिन्हे वास्तविक गुणको दृष्टिसे देख सकते हैं वे पक्षपात का चश्मा उतार देने पर संस्कृत वा अंग्रेजी के पढे लिखे लोगोंमें भली भांति देख सकते हैं।

धन्यवाद।

दुर्ग निवासी श्रीयुत मोहन लालजी सेठी ने हमारे पास ३०) रुपये इसलिये भेजे हैं कि जो आर्थिक असमर्थता के कारण पद्मावती पुरवाल के ग्राहक हो लाभ नहीं उठा सक्ते ऐसे १५ व्यक्तियों को हमारी तरफ से वह बिना मूल्य भेजा जाय। तदनुसार हम सूचित करते हैं कि जो भाई असमर्थ हों वे हमारे पास पत्र डालकर ग्राहक श्रेणी में नाम लिखालें। सेठीजी को इस बड़ी भारी उदारता और धार्मिक प्रियता के लिये धन्यवाद।

सहायता।

फतहपुर निवासी पं० हीरालाल जी ने सहायतार्थ ५) रु. भेजे हैं इस उदारताके लिये पंडितजीको शतशः धन्यवाद।

चित्र परिचय।

पंडित जिनेश्वरदासजी का जन्म स्थान उमसगढ और निवास स्थान सरनौ था आपने किसके पास कितने दिन तक विद्या पढी इसका सम्पूर्ण वृत्तांत तो ज्ञात नही हुआ पर उन्होंने जो कार्य वा ग्रंथ रचना की है उससे यह अच्छी तरह सिद्ध होता है कि वे एक बहुत अच्छे धर्मशास्त्र के ज्ञाता विद्वान थे। आप सुजानगढ कुचामन आदि मारवाडके नगरोंमें वर्षों रहकर धर्मप्रचार किया शिथिलाचारी भट्टारकों के प्रभाव को नहस नहस कर जैनियों में ढूढाचारियों के पक्षपाती होनेका भाव बढाया। अपने उपदेश और शिक्षणसे सैकडों और हजारों जैनकुलके उत्पन्न बच्चे जैनी बनाये। मारवाडमें आपका बडाही आदर है। पंडितजीका अंतिम जीवन कुचामणमें ही बीता। आपके चरित्र आदि गुणोंसे प्रसन्न हो वहां के धनकुबेर सेठ चैनसुख गंभीरमलजी ने दशहजार का दानदे आपके नामसे ही जिनेश्वर पाठशाला खोली है। इस समय इसका कार्य सुचारु रूपसे चला रहा है। आप कविता करनेमें बहुत ही निपुण थे। कोई ५००-६०० पदों और एक या दो नाटककी रचना आपनेकी है जिसमें ६०-७० पद जिनेश्वर पदसंग्रह प्रथमभागके नामसे छपचुके हैं। पं० जीकी योग्यता जाननेके इच्छुक उन्हींसे उनके ज्ञान और धार्मिकप्रेमका पता लगासक्ते हैं। मारवाड़ी भाई अधिकतर आपके बनाये भजन ही बोला करते हैं। मृत्यु समय ५५ वर्षके करीब उम्र थी। आपके अभाव से जैनसमाज—विशेषतः मारवाड़ी जैनसमाज को बडीहानि पहुंची है। आपके कोई पुत्र नहीं था इसलिये अपने छोटे भाई पं० चंपालालजीके पुत्रको गोद रक्खा जो कि इस समय एक अच्छे व्यापारी हैं।

इस संख्यामें जो चित्र छपा है उसको प्राप्ति तथा व्यय पंडितजीके गुणोंसे भारावनत सेठ चैनसुख गंभीरमलजीके लघुभ्राता सेठ मदनचंदजीकी कृपासे हुई है इस कृतज्ञताके लिये उन्हें धन्यवाद।

श्रीलाल जैनके प्रबंधसे जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,
८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार कलकत्तामें छपा।

पद्मावती परिषद्का सचित्र मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल ।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा चित्रोंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

विषय सूची ।

वर्ष. २ अंक. ८

वार्षिक मू० २)

आनरेरी मैनेजर—
श्रीधन्यकुमार जैन. 'सिंह'

१ अंकका ≡)

पद्मावती पुरवालके नियम।

१ यह पत्र हर महीने प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य २)रु० पेशगी लिया जाता है।

२ इस पत्रमें राजविरुद्ध और धर्मविरुद्ध लेखोंको स्थान नहिं दिया जाता।

३ इस पत्रके जीवनका उद्देश्य जैन समाजमें पैदा हुई कुरीतियोंका निवारण कर सर्वज्ञप्रणीत धर्मका प्रचार करना है।

४ विज्ञापन छपाने और बटवानेके लिये कोई महाशय तकलीफ न उठावें।

श्री "पद्मावतीपुरवाल" जैन कार्यालय नं० ८ महेंद्रबोस लेन, श्यामबाजार, कलकत्ता।

संरक्षक, पोषक और सहायक।

३०) शेठी मोहनलालजी डुग।

२५) ला० शिखरचंद्र वासुदेवजी रईस, टूंडला।

२५) पं० मनोहरलालजी, मालिक—जैनग्रंथ उद्धारक कार्यालय, बंबई।

२५) पं० लालारामजी मक्खनलालजी न्यायालंकार चावली।

२५) पं० रामप्रसादजी गजाधरलालजी (संपादक) कलकत्ता।

२५) पं० मक्खनलालजी श्रीलाल (प्रकाशक) कलकत्ता।

२५) सेठ रामासाव बकारामजी रोडे, वर्धा।

१२) पं० फुलजारीलालजी धर्माध्यापक जैन हाईस्कूल, पानीपत

१२) पं० अमोलकचंद्रजी प्रबन्धकर्ता जैनमहाविद्यालय, इंदौर।

१२) पं० सोनपालजी जैन पानीगांव वाले, पाढम।

१२) पं० वंशीधर खूबचंद्रजी मंत्री जैनसिद्धांतविद्यालय, मोरेना

१२) पं० शिवजीरामजी उपदेशक बरार मध्य प्रादेशिक दि० जैन सभा

१२) पं० कुंजबिहारीलालजी जैन अटौवा निवासी।

५) ला० धनपतिरायजी धन्यकुमार 'सिंह' (मेनेजर) उत्तरपाडा।

५) पं० रघुनाथदासजी रईस, सरनौ (एटा)

५) ला० बाबूरामजी रईस बीरपुर।

५) ला० लालारामजी बंगालीदासजी पेपर मर्चेंट, धर्मपुरा-देहली।

५) ला० गिरनारीलालजी रईस, टेहरी (गढ़वाल)

५) सेठ बाजीराव देवचंद्र नाकाडे, भंडारा (वर्धा)

५) पं० हीरालालजी फतहपुर।

५) छुट्टनलालजी पोस्टमास्टर, चाला

५) ला० मन्नूलाल हरिमुखलालजी पालेज।

नोट—जिन महाशयोंने २५) रु० वा अधिक दिये हैं वे संरक्षक, जिनने १२) दिये हैं वे पोषक और जिनने ५) दिये हैं वे सहायक हैं। इन महानुभावोंने पिछली सालका घाटा पूराकर इस पत्रको स्थिर रक्खा है। आशा है इस साल भी ये कृपा दिखलावेंगे। पत्रका आकार आदि बदल जानेसे अबकी बहुत घाटा पड़ेगा पर हमारे अन्य २ भाई भी ऊपर लिखे तीन पदोंमेंसे किसी पदको स्वीकार कर लेनेकी कृपा दिखावेंगे तो आशा है हम फलीभूत होंगे।

पद्मावतीपरिषद्का मासिक मुखपत्र।

पद्मावतीपुरवाल

"जिसने की न जाति निज उन्नत उस नरका जीवन निस्सार"

२ रा वर्ष | कलकत्ता, कार्तिक वीर निर्वाण सं० २४४५ सन १९१९, | ८ वां अंक

मायाचारीकी महिमा।

स्वार्थ और मायाचारीका भाव कभी नहिं छिप सकता।
जलमें डूबे काष्ठ सदृश वह अवसर पाय उदित होता॥
बन पंडित विदेश भाषोंमें निजको जिन माना धर्मज्ञ।
असली भाव प्रकट होने पर वे निकले परमत मर्मज्ञ॥ १॥

यदि यह बात झूठ होवे तो कर विचार जाती देखे।
थे उपदेशक समिती पालक उनकी ओर खूब पेखे॥
धर्म कार्यके बन सेवक जो जाती बीच पुजे भारी।
वेही जिन विरुद्ध लेखोंको करें धर्मकी अति ख्वारी॥ २॥

आदर्श विवाह-पद्धति।

(गत अंकसे आगे)

विवाह किन मंत्रोंसे पढाया जाता है या उस समय क्या क्या द्रव्य आवश्यक होता है आदि समस्त विवरण हो सका तो आगामी किसी समय प्रकाशित किया जायगा। यद्यपि इसीके साथ साथ लिखा जाता तो अधिक उपयोगी होता परंतु हमारे प्रयत्न करने पर भी उन द्रव्यों की सूची तथा मंत्रोंको प्राप्ति न हो-सकी। अस्तु।

रात्रिके समय [सायंकालसे लेकर प्रातःकाल के भीतर] विवाह संपन्न हो जाने पर बधू जनमासेमें जाती है और वहां उसका यथायोग्य सत्कार किया जाता है।

लड़को वालेको यदि बरात दूसरे दिन [बराढ] रखनी होनो है तो वह नाई तथा कुछ निजी आदमी भेज लडकी को वापिस बुला लेता है और बराढ नहीं रखनी होती है तो कागज कलम दावात भेजकर पहिले यह सूचित कर देता है कि 'कल हम आप लोगोंको विदा कर देंगे, आप अपनी पक्षके लोगोंके नामोंकी एक सूची बना लोजिये जिसमें पहरावनी पहिनानेके समय सुभीता हो फिर लडकी बुला लेता है।

वर पक्षको ज्योंहीं अपने कूंच करने की इत्तला मिलो कि सामान एकत्र कर बांधना बूंधना प्रारंभ कर देते हैं और साथमें यदि कोई तमासा हुआ तो वह उसी समय या अधिक राति रही तो घंटे आध घंटे पीछे लडकी वालेके दरवाजे पर पहुंच जाता है।

पोरो फटने पर जब कि कुछ कुछ विना प्रकाशके भी दृष्टिगोचर होने लगता है लोग लडकी वालेके घर भीतर जहां मांड़ा गढा होता है उसके नीचे जाते हैं ओर पहिरावनी पहिनना प्रारंभ होना है। सबसे पहिले पांडेजी पहिरावनी पहिनते हैं उनके बाद सिगई शिरमौर [यह एक तरह का गोत्र या पदवी है जो किन्ही २ को प्राप्त है परंतु इसकी जातिके साधारण व्यक्तियों से इज्जत अधिक है) और फिर वरके कुटुम्बका सबसे छोटा लडकासे लेकर उपस्थित लोग एवं अन्य २ बराती।

यहां जो वर पक्षका सबसे छोटा लडका पहिले पहिरावनी पहिननेके लिये खड़ा किया जाता है इसका मतलब यह है कि सबसे पिछाड वह इस पर्यायमें आया है और अत एव उसके अधिक दिनतक जीवित रहने की आशा होनेसे वह सबसे बडा है।

इसके उपरांत गूथ छुडाई आदि अन्य कई नेग होते हैं जिन्हें पांडे लोग यथावसर बताते रहते हैं।

बरातकी खातिर करनेमें वा लडकीवालेके यहां काम काज करानेमें सहायता करने वाले धीवर, चमार मिहतर, आदि शूद्रों, और ब्राम्हण आदि अन्य नेगियोंको वर पक्षसे इस समय हलके भारी विवाह उत्सवके अनुसार कुछ द्रव्य और कपडे दिलाये जाते हैं जिसमें सब मिलाकर कुल अनुमानतः ७०-८० रु० खर्च हो जाते हैं। किस कामवालेको कितना देना चाहिये यह पहिले ही से निश्चित किया हुआ है तो भी पांडे लोग उस समय स्मृति दिला दिया करते हैं।

बरात विदा होते समय गरीब कंगलोंको भी दान दिया जाता है और वह गांवके वाहिर निकल कर जब कि दोनों पक्षके लोग आपसमें गलेसे गले मिल विदाई [जुदे] लेते हैं उस समय एक पंक्तिमें इकट्ठे हुये कंगलोंको विठला कर बांट दिया जाता है। यहां ही लडकीके वापिस आनेका मुहूर्त निकलवा लिया करते हैं जो कि ८-१०-१२ दिनसे अधिक बड़े अंतरका नहीं होता।

लडकीके साथ जैसा कि अन्य बहुतसी जातियों में रिवाज है नाइन आदि कोई दासी जाया करती है वैसा इस जाति में नहीं। यहां लडको ही सिर्फ जाती है और मार्गमें देवर वगैर: उसके खाने पीने का ध्यान रखते हैं।

मुहूर्तका दिन आनेसे दो दिन पहिले लडकीके भाई भतीजे उसे लिवानेके लिये सज धजके जाते हैं और साथमें यदि लडकीका बाप समर्थ हुआ तो लड्डू खुरमा, पींड, मीठी तथा फोकी दो तरहको पूडी इस तरह पांच तरहका अथवा पेडे और खाजे इस प्रकार सात तरहका पकवान ले जाते हैं। इन पकवानोंकी संख्या प्रत्येककी ३१ से कम और बढ नहीं होती। वजनमें चाहे कितने भी भारी कर दिये जांय। और असमर्थ लडको का पिता उन पकवान की जगह ४) रु० भेज कर हो छुट्टी पा लेता है।

यहां पर भी यह बात स्मरणोय है कि मंदिर को कमसे कम १) या २) रु० लडकी वाला अवश्य भेजता है। हर एक कार्यके समय धार्मिक अनुष्टान को न भूलना इस जातिका अनुकरणीय और प्रशंसनीय कार्य है।

लडकी वापिस लोट आई, विवाहके समस्त कार्य हो चुके अब गौनेकी बारी समझिये। लडकी का यदि समर्थ १३ या १४ वर्ष की अवस्थामें विवाह हुआ है तो उसका गौना पहिली सालमें कर दिया जाता है और यदि कम होती है तो तीसरी या पाचवीं वर्षमें। परंतु आजकल बालविवाहकी पृथा उठतीसी चलती है इसलिये पांचवी सालतक के लिये कम ही लडके लडकियोंके गौने रह जाते हैं।

गौनेके समय भी मंदिर की याद नहीं भुलाई जाती यह जाति इस समय भी यथाशक्ति कुछ न कुछ दान दिया ही करती है। फिजूल खर्ची भी कुछ नहीं होती। कपडे वगैरः सब गणना के अनुसार शक्त्यनुसार दिये जाते हैं।

पांडोंकी उत्पत्ति।

पहिले लिखा जा चुका है कि इस जातिमें विवाह संस्कार धर्मशास्त्रानुकूल सिद्धोंकी पूजापूर्वक किया जाता है। इस संस्कारको संपन्न करने वाले जातिके नायकों द्वारा निश्चित किये गये पांडे लोग हैं। इन लोगों की उत्पत्तिके विषयमें यद्यपि कोई लिखित प्रमाण नही मिलता परंतु जो लोगोंके मुखसे दन्तकथा सुनाई पडती है वह प्रायः एकही है। उस कथाको ये [पांडे] लोग भी स्वीकार करते हैं और उसके सत्य न मानने में कोई विरुद्ध प्रमाण भी नहीं मिलता इसलिये दन्त कथाकी सत्यता स्वीकार करना ही उचित है।

प्रसिद्ध है कि, एक जगह गौड गोत्रीय ब्राह्मणों के चार घर थे। उन्हें उपदेश देकर किसी महात्माने जैनी बनाया। जब ये लोग जैन धर्मके श्रद्धानी होगये तो अन्य उनके सजातीय लोगोंने विरोध खडाकर उनके सामने पंक्ति भोजन निषेध, विवाहबंधन आदि नित्यप्रति काममें आने वाली दिक्कतें खडी कीं और धार्मिक विरुद्धता हो जानेसे स्वयं इन्हें भी वैसा करना दिक्कत मालूम पडने लगा तो इस जातिके नेताओंने उन्हें अपने साथ मिला लिया उनके साथ एक पंक्तिमें बैठ कर भोजन करना स्वीकार कर लिया, उनकी बेटी अपने यहां और अपनी उनके यहां देने लेने लग गये।

इसके सिवा उन ब्राम्हणोंको गृहस्थाचार्य स्वीकार कर उनही के द्वारा विवाह-संस्कार आदि कार्य कराने लगे दक्षिणा भी हलके भारी विवाहोत्सवके अनुसार गिनती में घट बढ निश्चित करदी और तबसे अबतक ये ही इस जातिमें कार्य करते आ रहे हैं

जिससे कि इस जाति को मिथ्यात्वियोंके द्वारा विवाह पढानेके लिये नहीं बाध्य होना पडा है।

सुधार सुधारका शोर करने वाले लोग इस ब्राह्मणोंको अपनेमें मिला गृहस्थाचार्य के पदपर स्थापित करने वाले इस जातिके पुरिखाओंकी दूरदर्शितापर ध्यान दें। उन्हें देखना चाहिये कि जैन ब्राम्हणोंका अजैनोंके साथ खान पान आदिका संबंध ठीक न समझ उन्होंने अपने साथ कर लिया जिससे कि फिर उनकी संतानको अजैन होनेका भय ही न रहा। अगर जिस प्रकार अग्रवाल जैनोंका अजैनोंके साथ संबंध है उसी प्रकार इनका भी रखखा जाता तो इसमें संदेह नहीं, जैन अग्रवालोंका वैष्णव रूपमें परिणत हो जाने के समान इनमें भी अजैनत्व संख्या का संयोग हो जाता इससे धार्मिक नातेकी कुछभी अपेक्षा न कर विषम वर्ण और भिन्न धर्मावलंबियोंमें विवाह आदिका संबंध जोड जो जैनसंख्याके बढनेका स्वप्न देख रहे हैं उन्हें शिक्षा लेनी चाहिये।

'सबमें सब दोष और सब गुण नहीं होते' की नीतिके अनुसार हम यह नहीं कहते कि समस्त जैनजातियोंकी विवाह—संस्कार विधिमें दोषही दोष है और पद्मावतीपुरवाल जातिमें गुणही गुण। हमारे कहनेका मतलब यही है कि जैसा गरीब अमीर सबके काम चलाने लायक खर्चेका प्रबंध हिसाब सिर इस जातिमें है वैसा सबमें नहीं पाया जाता और वह धर्मशास्त्र तथा देशकालके सर्वथा अनुकूल होनेके कारण अनुकरणीय है। जैनियोंकी समस्त जातियोंमें इसी विधिका प्रचार हो जाना उचित है।

आजकल जैनोंकी कई जातियोंमें समाचार पत्र निकल रहे हैं उनके संपादकोंसे हमारी प्रार्थना है कि इस लेखको ध्यान पूर्वक पढें और अपनी सम्मति दे कृतार्थ करें। यदि उचित समझा जाय तो इसी जैन विवाहपद्धतिके अनुकूल विवाह संस्कार करानेका आन्दोलन उठावें। इसमें एक सुभीता यह भी होगा कि जो विवाह करानेवाले लोग जगह जगह नहीं मिलते तथा बहुत ही कम-दो एकही मिलते हैं वे भी पांडे लोगोंकी संख्या काफी होनेसे मिल जायाकरेंगे।

हमारे अभिप्रायकी सिद्धि यदि कुछ भी अंशमें हमें दीख पडी तो बहुत ही शीघ्र मंत्र क्रिया वस्तु-सूची आदि समस्त ज्ञातव्य विषयोंसे पूर्ण एक पुस्तक प्रगट करनेका उद्योग करेंगे।

जैन्टिलमैन।

अनुकरण यूरुप वेषका करि बने जैन्टिलमैन।
ज्ञान लासानी हमारा, कसर कुछ भी है न ॥ १ ॥
बूट टेबकी नित सफाई फैल (fileo), के सम होत।
पतलून की पाकिटमें सड़ते जाति, पाँति औ गोत ॥ २ ॥
कटि कसी, बंधे बंधे, गरदन बंधाई आज।
'नाक कटवाई' लगाकर त्यागे सब शुभ काज ॥ ३ ॥
नेत्र शीशोंसे छुपाये, सिर पै रक्खा टोप।
बलवालक पग चाटते, दोनों पै करते कोप ॥ ४ ॥
या कोप्र जनका नारि पर बढ़ता है अपने आप।
"मांगा" 'वाटर" दोन्हा पाथर "फूल"! करती पाप॥ ५॥
और उसमें भी "हाथ धोना" कहि लगावत देर।
आज 'हैं! 'उपवास' के झगडेमें करती बेर ॥ ६ ॥
"हाँ, तुझसे भूखा मरना हो तो रोज करि उपवास।
यह भ्रम ऐसो चोर हैं लखि जाति! दृष्टि पसार ॥७॥
केश शिरके काड़कर, सिगरेटको मुख गाड़।
"नक्काल अद्भुत" मिलेंगे बस हिन्दमें ही आइ ॥ ८ ॥
गुणकी नकल करना कहो क्यों सीखे विपदा पाइ।
अब नामसे 'मिस्टर' कहाते 'भारतीय' सुख पाइ ॥ ९ ॥

मानुषीय भेद।

—⊂o⊃—

(लेखक—पं० बाबूलालजी नगलै ारूप वर्तमान प्रबंधकर्ता सुमेरु ंद्र जै० बोर्डिंग हाऊस अलाहाबाद)

दुनियांके आदमियोंको उनके स्वभाव देख कर चार हिस्सोंमें और फिर चारको १२ हिस्सोंमें तकसीम किया जा सक्ता है याकि बांटा गया है यानो १ उत्तम २ मध्यम ३ जघन्य ४ निकृष्ट। फिर इन चारको १ अव्वल २ दोयम् ३ सोयम्, इस तरह बारह हो जाते हैं अब नंबर १ से इनके स्वभाव भेद लिखना शुरू करते हैं इसै सोच कर हर एक आदमी विचार सक्ता है कि मैं किस दर्जेका आदमी हूं और मेरे चाल चलन रीतिरिवाज तथा मनोभाव मुझको नीचे दर्जेको तरफ ले जा रहे हैं या ऊपरको तरफ। अगर हमारे काम और परिणाम हमको नीचे गिरा रहे हैं तो प्रत्येक आदमी का यह कर्तव्य है कि नीचे की तरफ गिरनेसे बचकर ऊंचे दर्जे का आदमी बनने की कोशिश करें।

उत्तम नंबर अव्वल—वह आदमी हैं जोकि कुल दुनियां के सुख दुख को छोड़कर गृह कुटुम्ब का त्यागकर तमाम दुनियां की ख्वाहिसों को लात मारकर भगा चुके हैं और अपने आत्मध्यान [निज स्वभाव] में लीन तिल तुषमात्र भी परिग्रह नहीं, प्राणीमात्रके हितचिन्तक तलवारसे मारनेवालेका भो कल्याण चाहने वाले बिना किसो मतलबके सच्चा उपदेश देकर सच्चे रास्ते पर लगानेवाले है।

उत्तम नम्बर दोयम्—वह मनुष्य हैं जो अपने आत्महित और पर कल्याणकेलिये सब तरहको तकलीफें सहते हैं मोह और ममताको जिन्होंने यहां तक घटा दिया है कि सिर्फ एक लंगोटा और एक वक्तके खाने पर गुजर करते हैं इससे भो ऊंचे चढ़ने के जिनके भाव हैं खुद तकलीफ सहते हैं मगर अपनी वजहसे किसीको दुख और तकलीफ न पहुंचा कर औरोंको सुख और शांति पहुंचाते हैं।

उत्तम नम्बर सोयम्—वह पुरुष हैं जो हिंसा झूठ, चोरी कुशील, अन्याय, अत्याचार, कृपणता मनोगत दुष्टता आदि पापोंके त्यागी हैं। अपना तन मन धन सब कुछ हर समय परोपकारके लिये अर्पण करनेको तय्यार रहते हैं। जान व माल पर जोखम आने पर भी अपने विश्वास सचाई और ईमानदारीके खिलाफ नहीं करते। अपने देश और भाइयों को सेवा करनेमें ही जिनका जोवन व्यतीत होता है, न्याय और स्वतन्त्रताके लिये प्राण देते हुये उफ् तक नहीं करते अपने आत्मिक शक्ति ज्ञान ही को अपना खजाना समझते हैं।

मध्यम नम्बर अव्वल—वह नर हैं जिनको अपनी दृढ़ता वीरता धर्म परायणता और अपने ईमान व सचाई पर पूरा भरोशा है। उत्तम दर्जे पर पहुंचने को जिनकी हमेशह नीयत रहती है। न्याय पूर्वक आजीविका कर किसीके जान व मालको कभी खतरेमें नहीं डालते अपने सुख दुखके समान औरोंका सुख दुख समझते हैं स्वदेश और धर्मके लिये अपने स्वार्थ को त्याग कर सब कुछ देनेको तयार रहते हैं और देते हैं अपने थोड़े से लाभ या अधिक फायदेकी गर्जसे किसीके सुख स्वार्थ पर कभी हमला नहीं करते।

मध्यम नम्बर दोयम्—वह आदमी हैं जो कभी झूठ और बेईमानीसे काम नहीं लेते उनके तमाम व्यवहार सचाई और ईमानदारीके होते हैं खुद या और दूसरों पर भरोसा करने वाले होते हैं कभी कोई

दुराचार नहीं करते सत्सङ्गतिमें रहते हैं। धर्म और देश सुधार की जिनकी भावना रहती है। अपने थोड़े से फायदे के लिये दूसरे को ज्यादा नुकसान नहीं पहुंचाना चाहते, अनाथ और विधवाओं गरीबों की मदद करते हैं।

मध्यम नम्बर सोयम्—वह मनुष्य हैं जो स्वावलम्बी होते हैं दूसरे आदमियों का सहारा नहीं तकते सच्चे वीर और धीर नहीं होते तो ऐसे कायर और कमजोर भी नहीं होते कि किसी असहाय की मदद न कर सकें। धर्म और देश की भलाई के लिये कहने सुनने समझाने से तयार हो जाते हैं कभी किसी की बहू बेटी को बुरी निगाहसे नहीं देखते। उनके साथ जो भलाई करता है उनके साथ यह भलाई और बुराई व बेईमानी करने वाले के साथ बुराई और बेईमानी से पेश आते हैं कुसङ्गति से अगर इनका चाल चलन बिगड़ने लगे तो किसी के चेतावने पर या खुद नुकसान देख कर संभल जाते हैं और उन बुराइयों को छोड़ देते हैं स्वभाव के सीधे मगर कुछ सख्त होते हैं। परन्तु अपने कर्तव्यका बराबर ध्यान रखते हैं दूसरों को सुधार नहीं सकें तो बिगाड़ते भी नहीं।

जघन्य नम्बर अव्वल—वह शख्स हैं जिन्हें खुद को धर्म और आत्मा का ज्ञान नहीं देखादेखी अथवा अपने मा बाप बाबा दादों की रीति रिवाज के अनुसार धर्म कर्म पर विश्वास होता है न किसी को सचाई न झुठाई। जो कुछ व्रत पूजा आदि में उनने समझ रक्खा है ठीक है बिना मतलब किसी को कभी नुकसान नहीं पहुंचाते और अपने एक पैसे के लिये भी दूसरे का एक रुपये का नुकसान नहीं करते जिधर दुनियां क बहुत से आदमियों की देश सेवा आदि कार्यों में गति देखते हैं उनके साथ हो लेते हैं समझाने पर समझ भी जाते हैं। कहते सुनते बहुत हैं बड़ों की डांगे मारते हैं परन्तु करते बहुत कम हैं कभी २ अन्याइयों के दबाव से अन्याय भी कर बैठते हैं और मौका पाकर दूसरे के किसी माल पर भी कब्जा कर लेते हैं परन्तु दण्ड आदि के भय अथवा उपदेश से बुराई छोड़ देते हैं जो काम करते हैं जाति से या जन साधारण से वाह वाह लूटने के लिये करते हैं अंदर से मूर्ख और ना समझ रहते हैं मगर ऊपर ठाठ कुछ समझदारों कासा रखते हैं, राज काज समाज सुधार के बखेड़े में पड़ना पसंद नहीं करते तकदीर के भरोसे पर भी रहते हैं॥

जघन्य नम्बर दोयम्—यह वह आदमी हैं कि गङ्गा गये तो गङ्गादास, जमना गये तो जमनादास। इनको मत्था नमाते कहीं देर नहीं लगती। अरहन्त देव से लेकर भवानी शी..ला पीर पैगम्बर मीयां मठ शठ जिसे कहिये एक बार नहीं, हजार बार नमस्कार करवालो और जिसको चाहो इनसे पुजवालो। खोटा साथ लग गया तो व्यभिचारी ज्वारी रन्डीबाज बन गये और अगर कोई सुधारने वाला या चूतड़ों पर कोड़ा लगाने वाला मिल गया तो बुरे काम छोड़ कर भले बन गये। सांची झूठी हां से हां मिलाना खुशामद करना कथा वार्ता में सब कुछ ठीक है कह देना जी हां जी हुजूर कहते रहना इनका स्वभाव होता है। अपने मतलब के लिये बड़ी मीठी २ बातें बनाते हैं काम निकलने पर बात भी नहीं करते अगर अपना मतलब बनता हो तो बुरा भला सब कुछ करने को तयार हो जांय। स्वार्थी होते हैं इनसे सावधान रहने की उतनी आवश्यता नहीं जितनी कि बेईमान दगाबाज अधर्मी राक्षस और दुराचारियों से रहने की है। यह सुधारकों के हाथ से सुधर कर अच्छे बन कर नेक चलन भी हो जाते हैं।

जघन्य नम्बर सोयम्—इनको आदमी और पशु मिलता जुलता कहना चाहिये—पूरे स्वार्थी पापी व्यभिचारी अपने स्वार्थके लिये अनाथ और विधवाओंका भी सब कुछ हड़प कर जांय अपने एक पैसेके फायदेके लिये दूसरेका दस रुपयेका नुकसान करदें—दगाबाजी और चालाकी बेईमानी करना तो इनके बायें हाथका खेल हैं हमेशह दूसरेकी बहूबेटी और दौलतकी ताक में लगे रहते हैं हाथसे पैसा कमाकर खाना बहुत कम जानते हैं कुछ जेलखाने और बेंतोंको सजाके डरसे छिप २ कर दुराचार करते रहते हैं यही जेल खानोंकी हवा खाकर नम्बर १०के पक्के बदमास बनजाते हैं जिनका कि जिकर आगे आता है।

निकृष्ट नम्बर अव्वल—इन लोगोंको अगर पशुओंसे भी बदतर कहा जाय तो हानि नहीं इनकी ज्यादा तारीफ करना फिजूल है दुराचार करके जेलखाने में जानेसे इनके दुराचारों पर इनके साथ पक्की छाप लगजाती है चोरी करना डांका डालना जुलम जबर जिनाह करना भले मानस औरत और मर्दोंकी बेइज्जती करना वगैरह २ कोई अत्याचार इनके हाथसे पवित्र हुये बिना नहीं रहता।शुक्र इतनाही है कि फांसी चढ़नेका मौका अपनी जिन्दगी में बहुत कम आने देते हैं याकी एक नम्बरके बदमास सराबी ज्वारी लफंगे—धूर्त बेईमान अधर्मी अन्यायी दुराचारी आदिका पूरा सार्टीफिकट हासिल किये हुये होते हैं जेलखानेको ससुराल समझते हैं वहां जाने में इनको न रञ्ज है न खुशी हैं।

निकृष्ट नम्बर दोयम्—इन राक्षसोंका जिकर करते कलम थर्रा जाती है—जुलम अन्याय और दुराचार करते २ इनकी आत्मा इतनी नीच और पतित बन जाती है कि भलाई करना—धर्म कर्मका तो यह नाम भी नहीं जानते। बिना मतलबके दूसरोंका नुकसान करना इनका मनोविनोद हैं। मा बाप बहन भाई लड़का लड़की किसहीसे भी इनकी मुहब्बत नहीं होती हमेशह इनका चित्त दूसरेकी जान और मालके खूनसे रंगाहुआ रहता है मनुष्यता [इंसानियत] का इनके अंशतक नहीं होता।नर्कसे यह नहीं डरते दुनियाकी लानत मलानत की यह परवाह नहीं करते आदमियोंको मारते हुये उनपर घोर अत्याचार करते हुये जब फांसी चढ़नेसे भी खौफ नहीं खाते तो यह जो कुछ करें थोड़ा है।

निकृष्ट नम्बर सोयम्—अत्याचार घोर अत्याचार जुलमोंके जुलमसे स्याहकागे इन दुष्टतर आत्माओंको हम क्या कह कर पुकारें।इन नीचाति नीचोंके लिये संसारके किसी भी कोष में कोई घोर नीचसे ज्यादा नीच शब्दही नहीं जिस नामसे कि इनको पुकारा जाय यह हैं कौन ? यह वो जालिम हैं जो परमयोगी मुनिराजोंका घात करते हैं। असहाय। अबला अर्जिकाओं और सतियोंका शील नष्ट करते हैं या करने का उपदेश देते हैं निरपराध भाइयोंका गर्दनोंपर छुरी फेरते हैं सचाई ईमानदारी और विश्वासका खून करते हैं हजारोंको विधवा अनाथ और असहाय बनाते हैं मनुष्योंको पकड़ २ कर अन्याय और जुलमकी भट्टी में झोंकते हैं। ताज्जुब है कि इन अन्याइयोंके घोर अत्याचारको देखकर जमीन फट क्यों नहीं जाती जिसमें कि यह समा जांय और ऊपरसे आस्मान टूट क्यों नहीं पड़ता जिससे कि यह दब जांय ताकि जुल्म और घोर अत्याचारका संसारसे नामही मिटजाय।

—:०:—

मित्र।

(लेखक—से० रा० स० भारतीय जारखी)

(१)

दो अक्षरोंके मध्य विश्वको मानो सारी माया है।
साहित्यक-संसारमें इनको सुवर्णमय शुभकाया है॥

(२)

है सुफल जन्म उसका जगमें जिसने इसको अपनाया हो
निज मित्रकी स्वेदबिंदुके बदले जिसने निजरक्त बहाया हो

(३)

मित्र-प्रेमजिसको न मिला उसको क्यामिला?कुछभीनमिला
ऐसे भाग्य हीन दुखियाको 'उसका जन्म' मिला न मिला

(४)

मात पिताका प्रेम जगतमें किसके मन नहिं भाया है
(पर)संकोच त्यागिकर किसने उनको गुप्त-भेद बतलाया है?

(५)

अपने मनकी सब बातें कहते हैं, मित्रसे होइ निशंक
मित्र महात्मको पेखि सभी रह जाते हैं, सज्जनगण दंग

(६)

अहो! मित्रके लिये मित्र वह शीस कटाने आया है
जाति, पांति और धनिक रंकका भेद-भाव न समाया है

(७)

हतभाग्य जाति! तुझमें सद्‌मित्रोंका अभाव सर छाया है
बस फूटने तुझको फोड़ फाड़कर अपना महल बनाया है

(८)

'मित्र' वस्तु क्या है? बस इसका अनुभव वे स्वयंकरलेंमित्र
'भारतीय' जिनके हृदयस्थ रहता हो सदा मित्रका चित्र॥

समाजकी सार्थकता।

लेखक—पं० मक्खनलालजी प्रधानाध्यापक महावीर जैन विद्यालय कलकत्ता।

मनुष्योंके समूहका नाम समाज है पशुओंके समुदाय को समज कहते हैं यद्यपि साधारण रीतिसे आज कलके लोग जो विचार करें वा कर सके उनको मनुष्य कहते हैं तथापि पहिले के आचार्योंने कुछ विशेष कहा है और वह यह है -

प्रण्णंति जदो णिच्चं मणेण णिउणा मणुक्कणा जह्मा।
मणुब्भवा य सव्वे तह्मा ते माणुस्सा भणिदा।

अर्थ-जो नित्यही हेय-उपादेय तत्वका धर्म-अधर्म का विचार करें और जो मनके द्वारा गुण दोषका विचार कर सके अथवा जो पूर्वोक्त मनके विषयमें बड़े-चढ़े थे वा हों उन युगकी आदि में होने वाले मनुओंकी संतान हैं उनको मनुष्य कहते हैं इसीलिये समाजका दूसरा नाम पंचायत भी है अथवा सभा भी कह सक्ते हैं सभा अनादि से है अबसे नहीं हुई है। हां! देशकालके हिसाबसे नूतन ढंगसे बदलती रहती है व भिन्न भिन्न मनुष्योंका समुदाय भिन्न भिन्न होनेसे समाजके अनेक भेद हो सक्ते हैं जैसे जैन समाज वैष्णव समाज दयानंद समाज आदि। जो कोई महाशय आर्य समाजको केवल समाज कहते हैं वह उनकी भूल है। इस समय हमें जैन समाज के ऊपर विचार करना है क्योंकि पूर्व कालमें जैन समाज का डंका सारे भारतवर्ष में ही नहीं प्रायः सर्वत्र बजता था-लेकिन अब नहीं? इसका कारण विचार करनेसे मालूम पड़ता है कि इस समाजके मनुष्योंमें अब समाज-पना

नहीं रहा है अथवा मनुष्य शब्दका जो ऊपर अर्थ कह आये हैं वह नहीं रहा है। जितनी भी योनि और गतियां हैं उन सबमें मनुष्य योनि और मनुष्य गति को ही श्रेष्ठ माना है इसका कारण भी वही उपर्युक्त है। संसारी जीवको जैसा मनुष्य पर्याय में अपने ज्ञानादि गुण विकसित करने का अवकाश और सहकारी कारणों का संयोग मिलता है वैसा किसी अवस्था या पर्याय में नहीं। मनुष्य पर्याय ही एक ऐसी है जिसमें यदि यह आत्मा अपने सुधारका बोझा उठाये तो यहां तक सुधर सकता है कि फिर कभी दुःख भोगने का मौका ही न आने दे मनुष्य पर्याय में मिलने वाले सुभीते और अन्य २ उन्नति साधक कारणों की तरफ दृष्टि लगाकर ही पूर्व काल में होने वाले ऋषि महर्षि मुनि साधु आचार्य नाना सम्मान वाचक विशेषणों से विशिष्ट मनुष्य अपना कुछ भी समय व्यर्थ अनादिकालीन प्रवाह में फंसाने वाले मोह ममता के जाल में पड़ न बिताते थे। परंतु समयके हेर फेर से वैसी आत्मायें वा वैसी शक्तियां हम लोगों से एक एक कर विदा होती गईं और आज ऐसा समय आ पहुंचा है कि हम सर्वथा आपे (आत्मत्व) को भूल गये हैं अब हमारा प्रधान ध्येय परलोक सुख प्राप्ति की सामग्री जुटाना नहीं रहा है, हम मुख से कहते हुये भी व्रत उपवास शास्त्रस्वाध्याय आदि धार्मिक क्रियायों को अंतरंग से उपादेय नहीं समझते। हमारा एक लक्ष्य लक्ष्मी-सेवा या धन उपार्जन कर ऐहिक सुख सामिग्री एकत्र कर उसी में मगन रहना हो गया है। पहिले जब कि इस भारत वर्ष में भौतिकता का अधिक प्रसार न था, आध्यात्मिकता की ही तूती सर्वत्र बोलती थी उस समय सब कुछ करते हुये भी लोग पंच पापों से डरते थे। हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी कर पेट पालना, पर-स्त्रियों से सहवास की इच्छा करना और अधिक तृष्णा कर अपरिमित परिग्रह रखना शिक्षित अशिक्षित सब ही व्यक्तियोंके लिये हेय था इसी कारण मौर्य सम्राट् पाटलिपुत्र (पटना) के अधिपति श्रीचंद्रगुप्त के शासन काल में वा उससे पहिले सर्वत्र ही भारतभूमि में उक्त पापों का खूब ही अल्प प्रचार था। उस समय इस देश में यात्रा के लिये आये हुये एक विदेशी ने अपने भ्रमण वृत्तांत की पुस्तक में लिखा है कि यहां सालभरमें कुल अस्सी चोरी हुईं। लोग घरों का ताला नहीं लगाते टटियां लगी रहती हैं और कुत्ता बिल्ली आदि से रक्षा करना ही उनका तात्पर्य होता है। इत्यादि उस समय के अनेक वृत्तांतों से मालूम पड़ता है कि जिस समय यहां के लोगों में सामाजिकता वा मनुष्यता थी उस समय क्या दृश्य था और आज कल क्या दृश्य है ?

हम लोग पशुओंको अपने से नीच श्रेणी का अज्ञानी समझते हैं, परन्तु विचार करने से हम ही पशु सिद्ध होते हैं। पहिले जमाने के पशुओं और आज कल के पशुओं के स्वभावमें वा कर्तव्य में कुछ भी अंतर नहीं दीख पड़ता। वे जिस प्रकार का आहार विहार और व्यभिचार (स्त्री सहवास) पहिले करते थे उसी प्रकार का आज कल भी कर रहे हैं। किसीने न देखा होगा और न कोई यह प्रमाणित ही कर सकता है कि पहिले जो पशु शाकाहारी थे वा प्रकृतिद्वारा जिनके शरीर संगठन का हिसाब शाक भोजन के अनुकूल रचा गया है वे अब मांसाहारी हो गये हों, जो पशु पहिले नियंत्रित ऋतुओं में विहार वा व्यभिचार (स्त्री-सहवास) करते थे [जैसे कि तोते चैत्र वैशाख बसंत ऋतु में कुत्ते वगैरह शिशिर आदि ऋतुओं में] वे अब उन ऋतुओं का उल्लंघन कर चाहें जब और चाहें जिस ऋतुमें करते नजर आते हों। परन्तु मनुष्यनामधारी यह जीव

समस्त प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर चुका है। जिसमें हेय-उपादेय ज्ञान की शक्ति समस्त संसारी जीवों की अपेक्षा अधिक मानी गई है वही मनुष्य अब सबसे निकृष्ट पशुओं से भी बदतर करम करने लग गया है।

इस समस्त वैपरीत्यका कारण सद्‌ज्ञान का अभाव और कुज्ञान का प्रचार है। जिस ज्ञान से आत्मा का वास्तविक हित हो, अहित की प्रवृत्ति रुक जाय उसे सद्‌ श्रेष्ठ ज्ञान कहते हैं और जिस से तत्काल तो सुख ज्ञात हो परन्तु फलमें या कुछ काल बाद दुःख मालूम पड़ने लगे उस प्रवृत्ति को कराने वाला कुज्ञान या अज्ञान कहलाता है आजकल इसी तात्कालिक सुखदायक अज्ञान को ही लोग उपादेय समझ रहे हैं और उसी के अनुसार बल प्रकृति-विरुद्ध और धर्म-विरुद्ध कार्यों का अनुसरण कर प्रचार कर रहे हैं। यही कारण है कि जहां पहिले साल भर में अस्सी चोरी होने का प्रमाण है वहीं अब हजारों और लाखों ही नहीं बल्कि करोड़ों चोरियां हो रही हैं ऐसा कोई भी (अपवाद को हम कहते नहीं) नवीन शिक्षित दृष्टिगोचर नहीं होता जो चोरी का त्यागी हो जो न चोरी करता हो-कोई रिश्वत लेता है-कोई रिश्वत देता है, कोई रेलगाड़ी आदि मे नियम-विरुद्ध भाड़ा कम दे माल ले जाता है और कोई अन्य प्रकार लोभ के वशीभूत हो दूसरे के हक और धन पर अन्यायसे अपना कब्जा जमाता है। कोई ऐसा शीलधारी नहो दीखपड़ता जो मन वचन काय से पर स्त्री का त्याग कर स्व-स्त्री में ही अनुरक्त हो बल्कि यहां तक देखने में आता है कि नव्य सभ्य और शिक्षित कहलाने के लिये जो जानसे प्रयत्न करनेवाले छात्र और पूर्ण शिक्षा पाये हुये उनके अध्यापक प्रकृति द्वारा सर्वथा विरुद्ध पशुओं में भी दृष्टि गोचर न होने वाला पुरुष-मैथुन करते और कराते हैं। हमारे देशके जीवन भूत नव युवकता में पदार्पण करने के लिये अग्रसर और यौवन को प्राप्त लोग इस प्रकार का अन्याय व अत्याचार कर शरीर और स्वास्थ्यका नाश करें यह कितने दुःख की बात है जिस? शिक्षाका आज कल समस्त देश में प्रचार हो रहा है जिसको उन्नत करने के लिये अपने को समाज हितैषी समझने वाले लोग गला फाड़ फाड़ कर चिल्ला रहे हैं उसी शिक्षा के अभिभावक और आराधक लोग भारतीय ऋषि महर्षियों द्वारा सर्वथा निषिद्ध विपरीत कामुकता को अपना केंद्र बना उसमें इस तरह विलास कर देशका भविष्य चौपट करने की कृपा दिखलावें यह किसे चिंताजनक न होगा। सैकड़े पीछे ५०-६० बल्कि ७०-८० तक देश और समाज की जीवनाधार शिक्षित या शिक्षा पानेवाली आत्मायें इस प्रकार कुचेष्टापूर्वक अपने ब्रह्मचर्यका नाश करनेवाली हैं तो भी कोई किसी शिक्षालय या सुधारकालय का स्वामी इस विषय को सुधारने का उद्योग नहीं करता और करे भी तो क्यों करे? चारित्रशुद्धि में ब्रह्मचर्यका उनके यहां महत्व ही क्या है? वे अपने सहधर्मियों में उसका होना न होना कोई महत्व या हानिकर नहीं समझते। इसी प्रकार अन्य अन्य पापों के विषय में भी है।

इस प्रकार समाज के अंगभूत शिक्षित और अशिक्षित मनुष्यों का हाल है तब पहिले जो मनुष्य शब्द का अर्थ बतला कर समाज का अर्थ लिख आये हैं उसकी सार्थकता कहां तक हम में मिलती है यह पाठक गण स्वयं विचार लें। हम लोगोंमें सामाजिकता जिस प्रकार आ सकती है उसका प्रधान कारण पहिले (श्रेष्ठ ज्ञानका प्रचार) कह ही आये हैं अतः उसका अपने में प्रचार करना सर्वथा उचित है। सद्‌ज्ञान के प्रचार से तो हम मनुष्य कहलावेंगे, वास्तविक सुख प्राप्त कर सकेंगे और नहीं तो भौतिक सभ्यता के गहरे

प्रवाह में फंस रही ठहीं आध्यात्मिक सभ्यता को भी तिलांजलि दे मांसाहारी मद्यपायी आदि पापों के घर हो जांयगे। इसमें कुछ भी संदेह हो तो जहां भौतिक ही भौतिक सभ्यता है या जहां इसका प्रसार बढ रहा है वहां के अधिवासियों की तरफ दृष्टि दे विचार कीजिये अथवा दूर न जाकर अपनी समाज के भौतिक सभ्यता में पले और बढे लोगों की कृति तथा विचार पंक्ति की ही तरफ दृष्टि दौड़ाइये।

स्त्रियोंके अधिक मरने और बंध्या होने का कारण।

(लेखक—सवाई सिंगई पं० बाबूलाल जैन राजवैद्य नरसिंहपुर।)

पाठक महाशय "जैनियोंमें स्त्रियें अधिक क्यों मरती हैं और बंध्या क्यों होती हैं।" इस विषयका एक लेख श्रीयुत पं० मक्खनलालजी के द्वारा लिखित इसी पत्रके ६ ठे अंकमें प्रकाशित हो चुका है उसमें कई कारण दिखाये गये थे वास्तवमें वे ठीक थे। मैं भी उसी विषयमें शास्त्रीय और अपने अनुभूत कुछ कारण लिखता हूं। आशा है कि अपना व अपनी स्त्री का स्वास्थ्य ठीक रखने व सुसंतान की इच्छा रखनेवाले लोग ध्यानसे पढकर इनके अनुसार ही अपनी प्रवृत्ति करेंगे। वैद्यक शास्त्रमें लिखा है कि—

> मासेनोपचितं काले धमनीभ्यां तदार्तवम्।
> ईषत्कृष्णं विदग्धं च वायुर्योनिमुखं नयेत्॥

अर्थात् यह तो सबही जानते हैं कि स्त्रीके उदरमें एक स्थान गर्भाशय है जिसको आर्तव धारण करनेका काम कहते हैं यह फूल कमल क्रम से २७-२८-२९-३० दिनमे आर्तव से भर जाता है और फूल व कमल (कोष) की तरह खिल जाता है तब तीन दिन तक रज निकलता रहता है। चौथे दिनसे स्त्री के कामेच्छा (पुरुष सहवास की इच्छा) उत्पन्न होती है और उसके बाद वह (कामेच्छा) तेरह रात्रि तक रहती है इन्हीं दिनों में ही गर्भ धारण करने की शक्ति उस फूलमें रहती है तेरह रात्रि [दिन] बाद रजका आधिक्य होनेके कारण वह बंद होजाता है और ११-१२-१३ या १४ दिन में फिर वह रजसे भर जाता है। यह क्रम प्रकृति द्वारा बारह वर्षकी अवस्थासे लेकर ५० वर्षकी उम्रतक जारी रहता है—

इस प्रकार गत मासके रजोदर्शन से २८ वें से तीसवें दिनके भीतर फिर खुल कर वह रज बह जाता है और तीन दिनमें साफ हो जाता है। इस तरह महीने के भीतर १३ दिन तो गर्भ धारण के हैं और शेष १७ दिन ऐसे हैं कि इन दिनों में सहवास करने से स्त्री पुरुष दोनों के ही शरीरमें नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं।

प्रकृतिद्वारा नियमित दिनोंके अतिरिक्त दिनोंमें सहवास करनेवाले स्त्री पुरुष में से यदि स्त्री कमजोर होती है तो वह अनेक रोगोंकी (प्रदर निबलता आदि गर्भनाश करनेवाले रोग) खानि हो जाती है और अगर पुरुष स्त्री की अपेक्षा कमजोर होता है तो वह अनेक रोगों के मूल कारण प्रमेह, धातु-दौर्बल्य, मंदाग्नि, आदि विषम व्याधियोंका घर बन जाता है। इसलिये १७ दिन तो किसीको भी कदापि सहवास नहिं करना चाहिये। इन १७ दिनोंमें स्त्रीके कामवासना सर्वथा नहिं होती।

१ नियतं दिवसेऽतीते सकुचत् बुजो यथा। ऋतावतीते नार्यास्तु योनिः संव्रियते तथा॥

२ तद्वर्षाद्द्वादशात्काले, वर्तमानमसृक्पुनः। परिपक्वशरीराणां याति पंचाशतः क्षयम्॥

किन्तु एक शय्यापर सोनेसे तथा पुरुषके द्वारा अनेक स्पर्श कुचेष्टा आदि करनेसे किसोके हो भी जाती है, तो यह कृत्रिम वासना हैं, प्रकृति-विरुद्ध है। इस अवस्थामें विना स्त्री की इच्छाके सहवास करना स्त्रीके लिये बहुत ही भयंकर हानिका वा बंध्या होनेका कारण है। इसपर भी कोई २ महापापी एक रात्रिमें एकवारके सिवाय अधिकवार सहवास करते हैं वे और भी अधिक मृत्युके कारण पैदा करते हैं। अधिक विषयी श्रीमान् . वा बलिष्ठ पुरुषोंके एक दो तीन चार तक स्त्रियां मर जाती हैं उनका स्त्रीको विना इच्छाके १७ दिन वा सबही दिनोंमें अधिक सहवास करना ही प्रधान कारण है और यही कारण अधिक बंध्या होनेका है। इसके सिवाय सहवास को १३ रात्रियोंमें भी अष्टमी चतुर्दशी एकादशी वा अमावस्या पूणमासी ये ५ दिन तो कामशास्त्र में निषेध दिन हैं। इन ५ दिनोंमें सहवास महापापका कारण है। शेष दिन ही सहवास करनेके वा गर्भ धारण के लिये उत्तम गिने गये हैं।

उपर्युक्त सहवास करनेके लिये निर्दिष्ट दिनोंमें भी रजोदर्शनके [४-६-८-१०-१२-१४-१६] सम दिनके सहवास में यदि गर्भ धारण होगा तो लड़का पैदा होगा और विषम ५ वे ७ वें ९ वें ११ वें १३ वें और १५ वें दिनमें गर्भ धारण होगा तो लड़की पैदा होगी, अतएव जिनको लड़की पैदा करना इष्ट नहीं, वे ए ऽ दिन भी टाल दें मगर ये ७ दिन भी टालने इष्ट न हों वा असह्य ही हो तो उनकी इच्छा है परन्तु महीने के ९ दिनसे अधिक तो दोनोंको रक्षा तथा हृष्ट पुष्ट दीर्घजीवी संतान चाहने वालों को कदापि स्त्रीसहवास नहि करना चाहिये।

इस प्रकार जब रजोदर्शन के ३० वे दिन पुनः रजोदर्शन न हो और १० दिन निकल जांय तो फिर कदापि स्त्री पुरुषों को एकांत में रहना नहिं चाहिये बल्कि या तो आप परदेश चला जाय या स्त्री को पीहर में [माता के घर] भेज दे तो उसके ९ वें या १० वें महीने हृष्ट पुष्ट निरोगी दीर्घजीवी संतान होगी। क्योंकि गर्भ रहने के पश्चात् स्त्री सहवास काम शास्त्र वैद्यक वा डाक्टरी शास्त्र और प्राकृतिक नियमों से सर्वथा निषिद्ध है। फक्त शास्त्रमें ही मनाही नही हैं बल्कि पशु प्रकृति से भी मना ही है पशुओंके बारह महीने में से एकवार दो वार ही सहवास होता है गाय घोडी बकरी वगैर: को एक दो दिन ही सहवास कराया जाता है जब वे ग्याभिन हो जाती हैं तो फिर न तो वे ही सांड घोडे वा बकरेसे सहवास कराती हैं और न सांड वगैरा ही उनको छूते हैं। आपने गउओं में रहने वाले सांडको देखा होगा कि वह उनकी योनिको सूंघा करता है जब उसको विशेष गंधसे मालूम हो जाता है कि इसके गर्भ रह गया, तो फिर वह उस गइयाके पीछे नहि पडता है और जो गर्भ शून्य गाय होती हैं तो उसीके पीछे पडता है। गर्भ धारण होने के पीछे सहवास करना जब पशुओं की प्रकृति से भी विरुद्ध है तो मनुष्यों के स्वभावसे विरुद्ध होनाही चाहिये क्योंकि पुरुष ज्ञानी हैं वि.कशक्ति वा अपने हिताहित को समझने वाला हैं उसको क्यों न अपने व स्त्री के हित वा सुखपर विचार करना चाहिये। परन्तु अत्यन्त खेद वा आश्चर्य है कि मनुष्य जाति पशुओं से भी गई बीती और इतनी विलासिनी होगई है कि प्रकृति के नियमों का उल्लंघन कर रात दिन विषय भोग में

---

१ युग्मसु तु पुमान् प्रोक्तो दिवसेष्वन्यथाऽबला । पुण्यकाले शुचिस्तस्मादपत्यार्थी स्त्रियं व्रजेत् ॥

लग रही हैं फिर क्यों नहीं हमारे बच्चे कमज़ोर नपुंसक नालायक पापी व महापापी होंगे। यही तो कारण हमारे देशके अधोगति पहुंचानेका है।

इस समय हमारे घरों की युवती स्त्रियां १००० में ६६५ प्रदर मंदाग्नि व रक्त की न्यूनता (बाधक रोग) बल नाश की बीमारी से पीड़ित होंगी।१००० में ३००-४० नि.सन्तान होंगी। उसके लिये चिकित्सा [इलाज] भी प्रायः डाक्टरी वैद्यकी [आयुर्वेदीय] यूनानी सदैव होती रहती है परन्तु फल उसका कुछ भी नहीं होता तब अनेक तो नसीवको दोष देकर निराश हो जाते हैं और अनेक भाई डाक्टर वैद्यों को कसाई या बेवकूफ बनाते हैं परन्तु हमारी समझमें न तो कर्मका ही दोष है और न वैद्य डाक्टर ही कषायी हैं किन्तु उन रोगिनी स्त्रियों के पति ही महाकषायी वा महा मूर्ख वा महापापी हैं क्योंकि प्रदर नाशकनी और मंदाग्निका प्रधान पथ्य रोगका इलाज कराते समय तथा उसके बाद च्यारि छह महीने स्त्रियोंको पृथक रखने का है उसका कुछ ध्यान ही नहि रखते तब वैद्य डाक्टर हकीम विचारे क्या करें ? हम निश्चय से कहते हैं कि जिन स्त्रियों को प्रदरादि रोग १ वर्षका है उनको एक मास औषधि सेवन और कमसे कम तीन महीना पीहरमें प्रसन्नतासे रखना चाहिये, यदि दो वर्षका हो तो दो महीने दवाई खिलाने के बाद ६ मास तक पृथक और ४-६ वर्षका हो तो ४ महीने दवाई व कमसे कम एक वर्ष तक पीहर में या अच्छे आबहवा वाले स्थान में रखना उचित है यदि रोग आराम न हो तो वैद्य डाक्टरों [चिकित्सकों] को कषाई या मूर्ख बताइये, नहीं तो आपही कषाई और आप ही मूर्ख व अपनी संतान स्त्री व कुलके नाशक महापापी हैं।

और बंध्या रोग तो हम कहते हैं कि हजार में किसी एकाध स्त्री को भी नहिं होता बल्कि सब स्त्रियें गर्भाधान करनेवाली सुसंतान वाली होती हैं। मासिक धर्मके बाद चौथे दिन से १३ वें दिन तक सब स्त्रियोंके गर्भ धारण अवश्य होसक्ता है परन्तु आपलोग १३ दिनके बाद भी सहवास को छोड़ते नहीं, छोड़ना तो दूर रहा एक रात्रिमें दो चार बार का भी ठिकाना नहीं रखते वरके एक महिने दो महिने का गर्भ धारण की मालूम होनेपर भी ६ महीने तक यह कषायीपन करते रहते हैं। ध्यान रहे कि योग्य समयमें ही गर्भ स्थिति होती है शुद्ध रज वीर्यकी उपयोगतासेही गर्भ ठहरता है यदि गर्भ न ठहरे या कुसमय मे सहवास हो तो एक बारमें २ दो तोला वीर्य क्षय होकर १ बालक की हत्या होती है और आयु तीन मासका क्षय होती है।

कोई स्त्री एक महीनेके ऊपर १० दिन तक कोई स्त्री १५ २० दिन तक कोई दो महीने तक रजस्वला नहीं होती और स्त्रीके साथ विपरीत सहवास [विनियम] होने से स्त्री का गर्भ स्राव हो जाने से गर्भाशय मे पीड़ा वगैरह होने से डाक्टर वैद्य के पास दौड़ते हैं और कहते हैं कि घरमें मासिक धर्म [स्त्री रोग] ठीक नहिं होता दवा दीजिये, लोभी डाक्टर वैद्य अपनी पाकेट [जेब] गर्म करने के लिये असली परहेज से विरक्त न करके दवाई देना और ठगना शुरू कर देते हैं इस प्रकार प्रति मास १० । १५।२० । ३० दिन के बीच गर्भश्राव होना जारी होजाता है। और फिर गर्भधारण करने की शक्ति सर्वथा नष्ट होकर स्त्री बंध्या हो जाती हैं इसके सिवाय बंध्या होनेका और दूसरा कोई कारण नहीं है।

अतः यदि संतान सुख चाहते हो और स्त्री का जीवन चाहते हो तो रज शुद्धिके पश्चात १३ रात्रिके बाद

स्त्री को अपनी माता, दादी और कोई बड़ी बूढ़ी स्त्री के समीप शयनकी व्यवस्था करदो १३ दिनके बाद घरमें शयन करना ही महापाप का कारण व कुलनाशक समझना यदि फिर भी स्त्री १० दिन तक मासिक धर्म से न हो तो समझ लो कि गर्भ धारण हो गया ।

फिर तो १२ महीने के लिये स्त्री को पीहर भेज देना उचित है और बाल तंत्र वैद्यक के अनुसार ६ महीने तक गर्भ रक्षा के उपाय कराते रहना चाहिये फिर देखो कि संतान कैसी हृष्ट पुष्ट नीरोग दीर्घ जीवी होती है कि नहीं !

इस लेख को बांचकर अनेक भाई व खास कर बाल विवाह अनमेलविवाहादि कुप्रथाओं की हानिसे अनभिज्ञ पुरुष प्रश्न करेंगे कि यह बात बिलकुल असत्य है ।

इस देशमें सब कोई छह महीने तक गर्भावस्था में बराबर स्त्रीसहवास करते रहते हैं और संतानें होती रहती हैं । इसका समाधान इतना ही है कि ऐसी अवस्था [बीज सत्ता] होने परभी संतान होती रहती है सो उसका कारण स्त्री की अवस्था आर्तव शुद्धि की सबलता है परन्तु वे स्त्रियें भी शीघ्र ही निर्बल होजाती हैं वा शीघ्रही मर जाती हैं । एक दो ही सन्तान पुण्य योग से बचती है । परन्तु अनेक दुष्टात्मायें तो सन्तान की इच्छा नहीं रखतीं बल्कि गर्भ धारण होने परभी स्त्री सुख [सहवास] कम हो जाने के भयसे दवाई देकर गर्भश्राव करवा देते हैं । और जान बूझकर बंध्यत्व करा देते हैं । ऐसे कुलनाशक महापापी दुष्टों के लिये तो हम दूरसे नमस्कार करते हैं उनके लिये हमारा यह उपदेश कदापि नहीं है वे तो इसी प्रकार देश कुल का सत्तानाश करतेही रहेंगे ।

हमारे लिखे नियम से चलनेवाले भाइयों को विषय सुख भोगने में कमी कभी नहीं होगी और न वे कभी रोगी व निर्बल होंगे । सिंह वर्ष भर में एक बार ही विषय सेवन करता है उसीकी तरह वे वा उनकी संतान हमेशाह सबल रहेंगे यदि सौ में पचीस जन भी हमारे इस उपदेश को ग्रहण करेंगे तो फिर भीम अर्जुन सरीखे बली दृष्टिगोचर होने लगेंगे । और फिर भी समंतभद्र अकलंक देव सरीखे दिग्गज उत्पन्न होंगे इसमें जराभी संदेह न करें ।

विवाह गृहसुख और कुलरक्षार्थ सन्तानोत्पत्ति के लिये ही किया जाता है न कि विषयलोलुपता के लिये, यही समस्त दर्शनों का एक मात्र सिद्धांत है ।
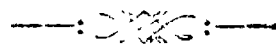
फिरोजाबादमें पढ़नेवालोंको वजीफे ।

मुंशी वंशीधरजी हेडमास्टर टाउन स्कूल फिरोजाबाद अपने पाससे तथा अन्य कई भाईयों से जुटाकर १५ विद्यार्थीयोंको ढाई ढाई रुपयेके वजीफे देंगे । वैद्यक तथा धर्मशास्त्रके पठनेच्छुओंको ऊपर लिखे पतेसे पत्र व्यवहार करना चाहिये । मुंशीजीको इस प्रयत्नके लिये धन्यवाद ।

जैनियोंके ह्रासके कारणों पर एक दृष्टि।

यह एक सामान्य सी बात है और प्रायः हर एक जीव जंतु के स्वभाव में पाई जाती है कि अपने समान गुण शील वाले जीव जंतुओंको वृद्धि से हर्ष और उनके ह्रास से दुःख उत्पन्न होता है। इसी स्वभाव की तरफ लक्ष्य देकर एक कविने कहा है—

' स्वपक्षवर्धनात्कस्य न प्रीतिरुपजायते '

अर्थात् अपने सरीखे पदार्थों को बढ़ती से किसे हर्ष नहीं होता। आज कल इसी नीति के अनुसार सर्वत्र अपने से गुण स्वभाव में समानता रखने वाले व्यक्तियों को उन्नति और अवनति के कारणों पर विचार होता दृष्टि गोचर हो रहा है। जैन समाज में भी इस बात की कमी नहीं है। यहां भी समाचार पत्रों में संपादक गण, व्याख्यानको देते समय उपदेशक वा व्याख्याता लोग और सुधार की लंबी चौड़ी बातोंको हांकनेवाले सुधारक महाशय अपनी (जैन) समाज के ह्रास के नाना कारण लिखते बतलाते है। कोई वृद्ध विवाह जैनोंको संख्या में कमी होने का कारण मानता है कोई बाल-विवाह को उसकी घटती में सहायक समझ कोसता है और कोई विधवा एवं विधुरों के परस्पर विवाह सूत्रों में न बद्ध होने की पद्धतिको ही उल्टी सीधी सुना अपने दिल का जोश निकालता है। अनेक लोगों का कहना है कि जैनियों में जितनी भी जातियां हैं उन सबका परस्पर रोटी बेटी व्यवहार हो जाय तो जैन समाज की वर्तमान संख्या में बहुतसा सुधार हो जाय अनेकों की उक्ति है कि जो दुरागमन (गौने) से पहिले विधवा हो चुकी हैं उनका फिर विवाह हो जाय तो जैनियों की संख्या बढ जाय, बहुत से लोग इस बातकी सम्मति ही नहीं देते बल्कि कोशिश करते हैं कि जितनी भी जैनियों में विधवा [बेचारी] हैं वे सब एक एक पति कर डालें तो एक दम जैनियों की संख्या अधिक हो जाय और बहुतेरे इस बात का भी उपदेश देते हैं कि समस्त वर्णों के साथ यदि विवाह संबंध हो निकले तो कोई भी अविवाहित न रहने पावे एवं विवाहित होने से जो संतान पैदा होगी उससे जैनों की संख्या बढ़ने में आशातीत सहायता प्राप्त होगी। गरज यह कि जितने भी समाज के सुधारक वा शिक्षित हैं सब एकही तरफ अपना मगज खर्च किये हुए और जैन संख्याके बढ़नेमे एक मात्र स्त्री पुरुषोंके संयोग को ही कारण माने हुये हैं। उन लोगोंका ख्याल है कि लड़का लड़की पैदा हुये कि मर्दुमशुमारी में जैनोंकी संख्याका नंबर बढ़ा। इसलिये वही कराना सच्चा सुधार और इसलोक परलोकका समस्त प्राणियोंको सुखास्वादन कराना है।

आत्मामें अनंत गुण हैं, जीवका सर्वज्ञपना असली स्वरूप है यह अनंत सुखका केंद्र है, इसकी शक्ति सर्वतोधिक है। यह नित्य अविनाशी अप्रतिहत स्वभाव वाला है परन्तु अनादि कालसे कर्मावृत होनेसे छोटे बडे यथा प्राप्त शरीरका धारक है। जिन्होंने कर्मोंके फंदसे सर्वथा छुटकारा पा अपना संपूर्ण विकसित स्वभाव प्राप्त कर लिया है वे तो सिद्ध परमात्मा और जिन्होंने अनंतज्ञान आदि घातिया कर्मों के नष्ट हो जाने से कतिपय गुण हो सर्वथा प्राप्त किये हैं वे जिन परमात्मा कहे जाते हैं। जिन्होंने कुछ (चार) गुण सर्वथा प्राप्त करलिये हैं वे भी अल्पकालके बाद सिद्ध

परमात्मा हो जानेसे सिद्ध और सिद्ध पहिले अनंतज्ञान आदि कतिपय गुणोंकेही सर्वथा स्वामी रह चुके हैं इसलिये जिन भी कहे जा सक्ते हैं।

उपर्युक्त गुणोंके धारक आत्माको लक्ष्य बनाकर जो चलते हैं, जिनकी अभिलाषा कर्मोंके जालमें फँसने की जगह छूटने की है, जो सांसारिक या आत्माकी शक्तिको ढकने या रोकने वाले झंझटोंसे यथाशक्ति दूर रहनेका प्रयत्न करते हैं अपने संपूर्ण शक्तिमय स्वभाव प्राप्तिकी आकांक्षाके वशंभूत हुये जो दूसरें की विकसित शक्तिको—एकेंद्री आदि किसी भी पर्यायके धारक जीवकी उस अवस्थामें अपने भले बुरे कर्मोंके द्वारा उपार्जन की गई सामर्थ्य को विघटित करनेका कभी ध्यान वा मन वचन काय जन्य किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करते अपनी पौद्गलिक आत्मिक शक्तिका उपयोग दूसरों की पौद्गलिक वा आत्मिक शक्ति को घटाने में या विकृत कर देने में नही लगाते वे सर्वदा आत्मस्वरूप के प्राप्त करने की चेष्टा करनेवाले सब से श्रेष्ठ जैन-जिनके उपासक हैं। इनको मुनि कहते हैं और इनमें भी आत्मिक परिणामों की शुद्धता से जो जितना अधिक अपने सर्वथा विकसित स्वभाव के पास पहुंच चुका है वह उतना ही श्रेष्ठ जिनका उपासक जैन है। शास्त्रों में छठे गुण—स्थान से लेकर बारहवे पर्यंत परिणामों की तर तमता से ६-७ प्रकार के जैन कहे हैं और तेरहवे गुणस्थान में जब कि आत्मा के अनंत ज्ञान आदि कतिपय गुण सर्वथा विकसित हो जाते हैं उस समय जैन विशेषण दूर कर जिन कहा है। क्योंकि आत्मा के अनंत ज्ञान आदि गुणों की प्राप्ति के लिये जिस ध्येयका ध्यान धरना था वह वहां उसे अपनेमें ही सर्वथा प्रगट हो चुका है।

ऊपर जिन जैनों की बात कही गई है वे तो घर गृहस्थी के त्यागी, रागद्वेष के निवारण करने में सर्वथा दत्तचित्त वीतरागी सांसारिक समस्त व्यवहारों और झंझटों से परे रहने वाले, केवल उदर रूपी गढ्ढे को भरने के लिये ही गृहस्थों के घर अपना चांदनी के समान बिना किसी विशेष इच्छा के रूप दिखा संबंध रखने वाले जीवन मरण शत्रु मित्र आदि पौद्गलिकता के संबंधी भावोंमें उदासीन होते हैं और ऐसे महात्मा साक्षात् जिन स्वरूपको प्राप्त कराने वाले पथके पथिक आज कल बहुत ही कम क्या हैं ही नही ' कहे तो भी अत्युक्ति नहीं है ऐसे जैनोंकी संख्याका ह्रास तो आज बहुत वर्षों से क्या शताब्दियों से हो गया है और उस ह्रास के कारण अनेक हैं जो कि आगे स्वयं ज्ञात हो जावेंगे।

प्रथम में गुणस्थान या आत्मा के स्वरूप की विकसिताके १४ प्रकार कहे गये हैं। जिस समय तक जीव अपने स्वत्वको नहीं पहिचानता या नाना प्रकार उसके स्वत्व के प्राप्त करने की चेष्टा करने पर भी सच्चे असली मार्ग पर नहीं पहुंच पाता, पूर्व की तरफ जाने के बदले पश्चिम आदि अन्य दिशाओं की तरफ भ्रांति से गमन करता रहता है तब तक सबसे निम्न गुण स्थान की श्रेणी में पड़ा रहता है। उस अवस्था का उल्लंघन हुआ– सच्चे स्वरूप की तरफ कुछभी झुकाव हुआ कि वस्तु स्वरूपके सिद्धांतानुसार उसकी अवस्था बदलती गई–जीवकी अनंत सुख स्वरूप शक्ति व्यक्त होने लगी, गुणस्थान बढ़ने लगे। अनादि काल से सर्वथा अपना प्रभुत्व जमाये हुये कर्मोंका यद्यपि बीच बीच में अधिक ज़ोर हो जाने से स्वरूपानुभूतिमें बाधा पहुंचती रहे यह बात दूसरी है परंतु एक बार प्रथम निम्नता छोड़ने मात्र से ही अंतिम उन्नत दशा प्राप्त होना अवश्यंभावी हो जाता है इसी प्रथम स्वस्वरूपानभिज्ञता–मिथ्यात्वके छूट जाने पर आत्माकी जो अवस्था होती है उसका आत्मस्वरूप के विकासक्रम–गुणस्थान श्रेणी में चौथा दरजा है। इस चौथे दरजे के विकसनसे नीचे उतरने या विकास के बाद संकोच होने के पूर्व निम्नावस्था तक पहुंचने के बीचमें दो दरजे और हैं जो दूसरा तीसरा गुणस्थान नामसे पुकारे जाते हैं। आत्मा के स्वस्वरूप का आंशिक अनुभव प्रारंभ होते ही सार्थक 'जैन' विशेषण इस जीवके साथ लग जाता है। पर स्वरूप की एकता का अज्ञान दूर होते ही पर पौद्गलिक अचेतन कर्म स्कंध चेतन आत्मा से अपना पूर्वकी भांति संबंध रखना छोड़ देते हैं या हीनता से संबंध करने लगते हैं यहीं से सच्चे जैन कहलाने का सौभाग्य प्राप्त होता है इस स्वस्वरूपानुभूति की आंशिक प्राप्ति होना जैनत्व और संपूर्ण अनुभूति होना जिनत्व है। आंशिक आत्मानुभूतिके साथ साथ ज्यों ज्यों स्व और पर के अहित करने की प्रवृत्ति कम (व्रत धारण) होती जाती है त्यों त्यों जैनत्वमें विशेषता आती चलती है। जो जितनी कम प्रवृत्ति बाह्य पर पदार्थ में कर स्व पर का अहित नहीं करता स्वहित साधनमें सचेष्ट हो जाता है वह उतना ही ऊंचे दर्जे का जैन कहलाता है।

इस प्रकार सबसे नीचेका सच्चा जैनी वह प्रमाणित हुआ, वा समस्त जैनाचार्यों द्वारा निर्धारित किया गया है जो आत्मानुभूतिसे युक्त चौथे गुणस्थानवर्ती हो एवं किसी अपेक्षा दूसरे तीसरे गुणस्थान वर्तीको भी जैन कह सकते हैं परन्तु वैसा जैन बहुतही कम समय (अंतर्मुहूर्त) तक रहता है इसलिये उसका यहां उल्लेख करना न करना बराबर है।

अब हम यदि ऊपर लिखे गये जैनोंकी संख्याका उनकी उन्नति अवनतिका विचार करने बैठते हैं तो जिनकारणोंसे जैनसंख्याका ह्रास होना आजकलके नेता व सुधारक लोग मानते हैं वा जिन बातोंको हटा कर उनकी जगह दूसरे उपायोंका अवलंबन करना चाहते हैं उनके द्वारा न तो अवनति होना ही साबित होता है और न उनके द्वारा उन्नतिकी आशा हो की जा सकती है।

हमने माना कि–जितने अविवाहित जाति या समाजमें हैं वे सब विवाहित हो जानेसे संतान उत्पन्न करनेमें सहायक हो सकेंगे। हमने माना कि जितनीभी विधवायें हैं वे सब पतिसमन्वित हो जानेपर साल साल दो दो सालके अंतरसे टकसालकी भांति लड़के वा लड़कियां ढालना प्रारंभ कर देंगी, परंतु इन

सब बातोंसे क्या जैन समाजकी संख्या बढ़ जायगी ? क्या जैन नामधारी (जब कि मा बाप स्वयं कुशील में प्रवृत्त होनेसे अजैन हो गये) लोगोंकी उत्पन्न संतान सबही जैनत्व विशिष्ट हो स्व और परका हित करनेमें तत्पर होगी ? क्या जितनी भी विधवायें या विधुर हैं वे सब विवाहित हो जानेपर संतान उत्पन्न कर ही कर सकेंगे ? क्या आजकल जितने भी मनुष्य या स्त्रियां विवाहित हैं वे सब लड़के लड़कियां पैदा कर संख्या बढ़ा ही रहे हैं ? आदि अनेक प्रश्नों और उलझनोंको सुलझानेकी तरफ विचार बुद्धि लगाई जाती है तो जितने भी उपाय आजकल सुधारक जैन समाजके उन्नत होनेके बतलाते हैं वे सबही होनाधिक रूपमें उसके ह्रास करनेवाले ही सिद्ध होते हैं।

विधुर विधवायें और अविवाहित, विवाहित हो जानेसे कितना भी क्यों न हो तो भी वर्तमानकी अपेक्षा लोगोंकी संख्या बढ़ जायगी यह हम मानते हैं परंतु क्या इससे जैनोंकी संख्यामें अधिकता हो जायगी यह हमारा प्रश्न विचारणीय नहीं है ?

अनंतानुबंधी क्रोधादि कषायोंका जब तक इस जीवके साथ संबंध रहता है तब तक सच्चा जैन कहलानेका किसीको सौभाग्य नहीं प्राप्त होता यह जैनशास्त्रोंका सामान्य ज्ञाता भी जानसका है तब जो विषय वासनाको दबानेमें एकदम असमर्थ है, जिसे हेय उपादेयका ज्ञान सर्वथा नहीं रहा है, जो परस्त्री संगको न्याय और धर्मशास्त्र द्वारा निषिद्ध होने पर भी ग्राह्य मानता है, वह कैसे जैन कहा जासकता या हो सका है ? और जब जिससे आगामी कालमें जैन संख्याके बढ़नेकी आशाकी जाती है वह ही पहिले जैनके अयोग्य कर्म करनेसे अजैन होगया तो वह अपनी संतानको भी जैन बना देगा या उसकी संतान जैन ही होगी यह ठीक २ नहीं कहा जा सका।

इसके सिवा यह भी एक बात है कि विधवा और विधुर आजकल ही नहीं होते हैं पहिले भी होते थे। आजकल जिस प्रकार अविवाहित लोग हैं उसी प्रकार पहिले भी होते थे परंतु जैनाचार्योंने कहीं भी जैन बढ़ानेका उपाय उनका विवाहित करदेना नहीं लिखा। अमुक आचार्यने इतने अजैन जैन बनाये आदि अन्यमतावलम्बियोंको जैन बनाकर जैनसंख्या बढ़ानेका उद्योग किया और वैसाही दूसरोंको भी करना बतलाया पर एक भी शास्त्रमें ऐसा लेख नहीं मिलता कि जैनियोंकी संख्या कमती होती देख अमुक आचार्यने फलाने विधवा या विधुरका परस्पर संबंध करा दिया वा अविवाहितको लड़की दिला विवाहित कर 'उनसे उत्पन्न संतान भविष्यमें जैनी होगी इसलिये' महान् पुण्य वा उपकार किया।

इस बातसे भी यही सिद्ध होता है कि विवाह द्वारा भावी संतान होने न होनेका जैनसंख्याकी उन्नति वा अवनतिके साथ कोई निश्चित वा अविनाभावी संबंध नहीं है।

(क्रमशः)

प्रण।

कहे बुरा कोई अरु भला बतावै कोई। मगमें आधि व्याधि वा विपद सतावै कोई॥
प्राण रहैं अरु जांय घुड़कि दिखलावै कोई। दई शान्ति अथवा अति द्वंद मचावै कोई॥
पर हम सच्ची बातको सदा साफ बतलायंगे। जैन, जातिकी सेवकर, "भारतीय" सुख पायंगे॥

पद्मावती–परिषद्का अधिवेशन।

परिषद् को हुवे ६ माह व्यतीत होने आये तबसे परिषद्की कोई कारवाई नही हुई, परिषद् का अपने कर्तव्य की तरफ कुछ ध्यान नही है ऐसा मालूम पड़ता है। जिस राजाको अपनी प्रजाकी परवाह न हो वह अपने को राजा कहलानेका अधिकारी नहीं हो सका, न उसे राजारूप माननेके लिये प्रजा ही तय्यार हो सकी है। यही हाल परिषद्का है। परिषद् जाति की राजा है अगर वह अपनेको राजा कहलानेका अधिकारी होना चाहती है तो उसे अपना कर्तव्य पालन करना पड़ेगा। परन्तु हम देखते हैं कि वह अपने कर्तव्य से पिछड़ी हुई है उसे समाजकी चिंता नहीं, समाजकी आवश्यकताओंकी पूर्तिका उसे ध्यान नहीं, तब कहिये समाज उसे राजारूप माननेके लिये क्यों कर तय्यार होवे। यही वजह है कि परिषद्का जन्म हुए कितनेही वर्ष हो चुके किंतु अब तक भी बहुतसे जाति भाइयोंको उसका नाम भी नहीं मालूम है।

गतवर्ष चैत्रमें मरसल गंजमें परिषद् का अधिवेशन हुवा था उसके बाद परिषद् ऐसी गाढ़ निद्रा में मग्न हुई हैं कि अभी तक उसकी तरफसे कोई भी कारवाई नहीं हुई परिषद्ने क्या क्या प्रस्ताव किये न उनका उसकी तरफसे प्रचार ही हुवा, परिषद्की पाठशाला वर्षों से अव्यवस्थामें हो रही है न उसके सुधारनेके कोई यत्न किया गया आज तीन वर्ष होने आये परिषद्की रजिष्ट्री का कार्य भी अभी तक नहीं हो सका है। जिन महाशयोंने परिषद्की सहायताके लिये चंदा दिया है उसकी वसूली की कोई तजवीज नहीं हुई और समाजकी उन्नतिके लिये किन बातों की आवश्यकता है न उनका कोई विचार ही हुवा है। गर्ज यह है कि परिषद् सुख को निद्रा में मग्न है और अब परिषद्के सुयोग्य मंत्री उपमन्त्री महोदय तथा अन्य विभागीय कार्य कर्ता अपने कर्तव्योंको भूल अपने अपने स्वार्थके कार्यों में संलग्न हैं तब उन्हें परिषद्के जगानेका ध्यान कहांसे होवे। परंतु उन्हें मालूम होना चाहिये कि सभाने आपको कार्यकर्ता इस लिये नहीं चुना कि आप कानोंमें तेल डाले हुवे बैठे रहें और अपने कर्तव्यको भूल जावें। प्रत्येक कार्यकर्ताको अपने अपने कर्तव्यका ध्यान होना आवश्यक है।

क्षमा करें; मैं हदसे ज्यादा लिख गया हूं परंतु भाव जातीय प्रेमको लिये हुवे सेवा करानेका ही है। और आपका हमारा ध्येय यही है कि जातिकी उन्नति होवे अतः अन्यथा ख्याल न कर अपने कर्तव्यका विचार करें और "गई सो गई अब राख रहीको" के अनुसार अपने कर्तव्यको पूरा करें।

इसके लिये हम अपने परिषद्के मंत्रि-मंडलसे सानुनय प्रार्थी हैं कि अधिवेशन होनेमें अब सिर्फ २ माह बाकी है अतः अधिवेशनका आन्दोलन शीघ्र प्रारंभ करें अधिवेशन शायद फिरोजाबादके मेले पर ही होगा, फिरोजाबाद में स्वागत–कारिणी समितिका संगठन होकर उसके सभापति और मंत्री का चुनाव किया जावै। अधिवेशनके सभापतिका भी चुनाव होकर शीघ्र नाम निश्चय किया जावे क्योंकि सभापतिका भाषण भी उन्हें तयार करना पड़ता है प्रस्तावों. और प्रतिनिधियोंका भी संगठन करना चाहिये यह अधिवेशन बिलकुल नियमानुसार होवे और इस वर्ष अधिवेशनमें कोई नवीन अनुकरणीय बात होवे ताकि समाज पर परिषद्का प्रभाव पड़े।

अधिवेशनको महत्वशाली बनाने के लिये पूर्ण

आन्दोलन होना चाहिये और खास तौरसे पंचायतों को मेलेमें आनेके लिये निमंत्रित करना चाहिये। ताकि अधिवेशनमें सर्व स्थानोंके भाई ज्यादा संख्या में आ सकें। अधिवेशनके सभापति होनेके लिये हम नीचे लिखे महाशयों को चुनते हैं। इसपर विचार करें।

१ सेठ रामासावजी वकारामजी गोडे रईस वर्धा
२ सेठ बाजीरावजी नाकाडे रईसभंडारा
३ लाला भगवानदासजी रईस बडनगर
४ लाला शिखरचंदजी रईस बैंकर टूण्डला
५ लाला बंशीधरजी रईस शिकोहाबाद
६ सेठ मगनमलजी रईस सुजालपुर
७ ला० मुंशीलालजी सुपुत्र लाला बुद्धसेनजी रईस एत्माद्पुर
८ लाला मुन्नीलालजी रईस उडेसर
९ मास्टर बंशीधरजी रईस फिरोजाबाद

अमोलकचंद उडेसरीय इन्दौर

चिंता।

क्या कभी भगवान हम सुख पायंगे ?
या मौततक योंहो बिलखते जायंगे ? ॥ १ ॥
कौमके दुश्मन बने बूढ़े बढे,
क्या ये दिन दूनेही बढते जायंगे ? ॥ २ ॥
थोंदवाले वृद्ध करते हैं विवाह,
नव बधूओं से न क्या अकुलायंगे ? ॥ ३ ॥
रो रहीं विधवा हजारों ज़ार ज़ार,
सर्द आहें क्या न ये सुन पायंगे ? ॥ ४ ॥
बनती हैं वरना कमर बल खारही,
डर है कपड़ों से ही ये दब जायंगे ॥ ५ ॥
चार दिन को हैं जहां में, " भारतीय "
क्या मज़ा शादी का पत्थर पायंगे ? ॥ ६ ॥

विद्या।

विद्याकी हो तरक्की तो हम हरे भरे हों।
दुखिया सुखी हों सारे खोटे भी सब खरे हों ॥१॥
जब ज्ञान रवि प्रकट हो अज्ञानतम मिटे सब।
नव जन्म पावे तब वे जो दुख से अधमरे हों ॥२॥
है मूर्ख अरु पशूमें आकारका ही अंतर।
है जाति मृत सा उसमें जाहिल अगर निरे हों ॥३॥
चमने समाजके सब मुरझा रहे हैं पौधे।
विद्याका नीर पावें तो क्यों न ये हरे हों ?॥ ४ ॥
विद्यामें श्री लगाकर धनिको ! धरम कमाओ।
किस काम आयंगे वे जो भूमिमें धरे हो ॥ ५ ॥
विद्या पढ़ें अगर हम सब " भारतीय " मनसे।
वे सुख मिलें हमें फिर जो ध्यानसे परे हों ॥६॥

—:०:—

सहायक बनिये।

हमें लिखते हर्ष होता है कि हमारे भाई समाचार पत्रके महत्वको धीरे धीरे समझने लगे हैं। उन्होंने अब इसको सहायता करना प्रारंभ कर दिया है। हालही में जिन नीचे लिखे महाशयोंनें पांच पांच रुपये की सहायता दे सहायक पद स्वीकार किया है उन्हें धन्यवाद है और अन्य भाइयोंसे भी इनके अनुकरण करनेकी प्रार्थना करते हैं। इस साल आकार चित्र आदि गत साल की अपेक्षा बढ जानेसे विशेष घाटा पडेगा इसलिये यथाशक्ति सहायता करना उचित है। ऐसा न हो कहीं घाटेकी पूर्ति न होनेके सबब आपका एक मात्र जाति सेवक समाजका सच्चा हितैषी यह पत्र उत्साह हीन हो जाय।

इस मासमें हुये सहायक।

बा० छुट्टनलालजी ष्टेशनमास्टर चोला। ला० मन्नूलाल हरिसुखलाल पालेज

स्त्रीमुक्तिपर विचार।

आचार्यप्रवर श्रीप्रभाचंद्रस्वामी द्वारा विरचित प्रमेयकमलमार्तंडमें स्त्री मोक्षके विषयमें क्या लिखा है वह संक्षेपसे पाठकोंके सामने उपस्थित कर दिया गया अब श्वेतांबर मतके श्रीमान् रत्नप्रभाचार्यजीने रत्नाकरावतारिकामें स्त्री मोक्षका किस रूपसे मंडन किया है वह लिखा जाता है इसके बाद हम अपना विचार प्रकट करेंगे।

उनने लिखा है कि अब दिगंबर मोक्षके विषयमें यह कहते हैं-

प्रश्न-समस्तकर्मोंके नाशसे उत्पन्न होनेवाला परम सुखका अनुभवस्वरूप मोक्षका होना ठीक है परन्तु वैसा मोक्ष वह आत्मा जिसने स्त्री शरीरको धारण कर रक्खा है अर्थात् जो द्रव्य स्त्री है वह प्राप्त करता है यह बात ठीक नहीं क्योंकि स्त्रियां मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकती। दिगंबर आचार्य प्रभाचंद्रजी का यह वचन भी है-

स्त्रियां मोक्ष नहीं पा सकतीं क्योंकि वे पुरुषोंसे बल आदि बातोंमें हीन है जिस प्रकार नपुंसक। अर्थात् जिस प्रकार नपुंसक बल आदिमें पुरुषोंसे कम हैं इसलिये वह मोक्ष नहीं पा सकता उसी प्रकार स्त्रियां भी पुरुषोंसे बल आदिमें हीन हैं इसलिये वे भी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकतीं।

उत्तर-[श्वेतांबरोंकी ओरसे] स्त्रियोंको जो मोक्षका निषेध किया गया है वह सामान्यरूपसे सभी स्त्रियोंका है या कुछ एक स्त्रियोंका ? यदि सामान्य रूपसे सभी स्त्रियोंका निषेध किया जायगा तो पक्षके एक देशमें सिद्धसाध्यता हो जायगी क्योंकि भोग भूमिकी स्त्री, दुःषम आदि कालमें उत्पन्न होनेवाली स्त्रियां, तिर्यंचणी देवी अभव्य आदि बहुतसी स्त्रियोंको मोक्ष नहीं प्राप्त होती ऐसा हम (श्वेतांबर) भी मानते हैं। यदि यह कहा जायगा कि कुछ एक स्त्रियोंको ही मोक्षका निषेध कहा गया है तो पक्षके प्रयोगमें कमी हो जाती है क्योंकि जब तक जिन स्त्रियोंको मोक्ष नहीं होती उनको उक्त अनुमानमें जो स्त्री पक्ष माना है उसका विशेषण न किया जायगा तब तक विशेषणके असिद्ध होनेसे विशेष्य भी असिद्ध समझा जाता है इस न्यायसे स्त्री पक्ष ही न हो सकेगा तथा पक्षके अभावमें उपर्युक्त अनुमान का प्रयोग ही दुष्ट हो जायगा। यदि यह कहा जायगा कि जिन स्त्रियोंको मोक्षका निषेध है प्रकरणसे वे ग्रहण करली जांयगी, पक्षका विशेषण करनेसे क्या प्रयोजन ? तब उसका समाधान यह है कि प्रकरणसे स्त्री रूप पक्षका भी ग्रहण हो जायगा फिर उक्त अनुमानमें स्त्री रूप पक्षकी भी आवश्यकता नहीं। अच्छा खैर ! यदि स्त्री रूप पक्षका प्रयोग किया ही जायगा तो जिसप्रकार जो मनुष्य आसन माड़कर हाथमें धनुषबाण लेकर बैठा है उसीको निशाना दिखाया जाता है कि यहां पर बाण मारो किंतु जो धनुष चलाना जानता है परन्तु उस समय उसके हाथमें न तो धनुष ही है और न बाण छोड़नेके आसनसे ही वह बैठा हुआ है उसको नहीं। उसीप्रकार जिन स्त्रियोंको मोक्ष नहीं हो सकती उन्हींको उक्त अनुमानसे मोक्षका निषेध युक्त है किंतु जो स्त्रियां मोक्ष जा सकती हैं उनका निषेध नहिं हो सकता। इसलिये यह बात सिद्ध हुई कि सामान्यसे स्त्रियोंको मोक्षका निषेध नहीं किया जा सकता किंतु भोग भूमि आदिकी स्त्रियां जो मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकती उन्हीको मोक्षका निषेध हो सकता है

१ जिसमें साध्य रहे वह पक्ष कहा जाता है तथा यहां स्त्री पक्ष है। २ जो बात सिद्ध है उसीको सिद्ध करना

शंका—स्त्रियां पुरुषोंसे बल आदिक में हीन हैं इस लिये वे मोक्ष नहीं पा सकतीं।

उत्तर—पुरुषोंसे बल आदिकमें स्त्रियां कैसे हीन हैं? क्या उनमें मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रयका अभाव है? वा विशेष सामर्थ्यका अभाव है? वा पुरुष उन्हें नमस्कार नहिं करते यह बात है? वा विचारशक्ति का अभाव है? वा उन्हें विशाल ऋद्धियां प्राप्त नहिं होती यह बात है? अथवा उनमें मायाचारी आदि दोषोंकी प्रधानता है?

यदि उनमें रत्नत्रयका अभाव है यह पहिला पक्ष स्वीकार किया जायगा तो वहां पर यह प्रश्न होता है कि उनमें क्यों रत्नत्रयका अभाव है? यदि यह कहा जायगा कि वे वस्त्रसहित संयम धारण करती हैं इस लिये उनके परिपूर्ण चारित्र नहिं पल सकता तो वह अयुक्त है क्योंकि शरीरके संबंधमात्रसे वस्त्र परिग्रह माना जायगा? या वह परिभोगमें आता है इसलिये परिग्रह माना जायगा? या वह ममत्वका कारण है इसलिये उसका धारण करना परिग्रह समझा जायगा? यदि शरीरके संबंध मात्रसे वस्त्रको परिग्रह माना जायगा तो नग्न अवस्था रखने पर भी पृथ्वीसे शरीरका संबंध होता है इसलिये वह भी परिग्रह समझा जायगा परंतु पृथ्वीको परिग्रह माना नहिं गया है। यदि वस्त्र परिभोगका कारण है इसलिये वह परिग्रह है यह द्वितीय पक्ष माना जायगा तो वहां पर ये दो प्रश्न होते हैं। क्या स्त्रियां वस्त्रका त्याग कर नहीं सकती इसलिये वे वस्त्र धारण करती हैं? अथवा गुरुके उपदेशसे वस्त्र धारण करती हैं? यदि यह माना जायगा कि वे वस्त्र का त्याग नहिं कर सकती इसलिये वस्त्र धारण करती हैं तो वह ठीक नहीं क्योंकि अद्वितीय आत्यंतिक आनंद-रूपी संपदाको चाहने वालीं स्त्रियां जब अपने प्राणोंको भी न्योछावर करते नहिं चूकतीं तब वे बाह्य परिग्रह वस्त्रको क्यों न त्याग सकेंगी? तथा यह भी बात है कि नग्न साध्वियां भी आजकल देखनेमें आती हैं इसलिये वस्त्रके विषयमें उनका राग भाव सिद्ध नहिं होता यदि दूसरा पक्ष स्वीकार किया जायगा कि गुरुके उपदेशसे वे वस्त्र धारण करती हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि समस्त लोकके हितकारी परमगुरु सर्वज्ञ भगवानने जो वस्त्र उपकरण संयममें उपकार करनेवाला है उसीको 'नो कप्पदि णिग्गंथिए अचेलाए होत्तए, इत्यादि आगमसे आज्ञा दी है। जैसी कि उन्हीं भगवानकी पीछी कमंडलु आदिके रखनेकी आज्ञा है इसलिये वस्त्र परिभोगका कारण है इसी कारण वह धारण किया जाता है यह अयुक्त है क्योंकि यदि वस्त्रका परिग्रह समझा जायगा तो पीछी कमंडलु आदि भी परिग्रह समझे जायंगे तथा इस न्यायसे जो नग्न तपस्वी हैं वे भी परिग्रही सिद्ध होंगे। यहांपर प्रमाण भूत एक श्लोक भी है—

यत्संयमोपकाराय वर्तते प्रोक्तमेतदुपकरणं।
धर्मस्य हि तत्साधनमतोऽन्यदधिकरणमाहार्हन्॥१॥

अर्थात्—जो चीज संयममें सहायता पहुंचाने वाली हो वह उपकरण है क्योंकि वह धर्मका साधन है और उससे भिन्न जीवोंको घात करनेवाला अधिकरण है ऐसा अर्हन्त भगवानका उपदेश है।

प्रश्न—पीछी तो संयममें सहायता पहुंचाने वाला है इस लिये भगवानने उसके रखनेका उपदेश दिया है। वस्त्रका उपदेश किस लिये?

उत्तर—वस्त्रका उपदेश भी संयमके पालनेके ही अर्थ है। क्योंकि जिस प्रकार घोड़े, घोड़ियोंको नग्न देखकर उनपर असवार कर निकलते हैं उसी प्रकार

पुरुषमें इस समय सामर्थ्य कम है इसलिये नग्न स्त्रियोंके विह्वल अंगोपांग देखकर चित्तोंके चलायमान हो जानेके कारण पुरुष स्त्रियोंपर अत्याचार कर निकलते हैं इसलिये स्त्रियोंका नग्न रहना अयुक्त है।

प्रश्न—जब स्त्रियां इतनी कमजोर हैं कि हर एकप्राणी उनपर अत्याचार कर सकता है तब जिसका लक्षण तीनोंलोकके तिरस्कार करनेवाले कर्मोंके सर्वनाशरूप है और जो अधिक सामर्थ्यसे प्राप्त होनेवाली है ऐसी मोक्षको वे कैसे प्राप्त कर सकतीं हैं?

उत्तर—यह बात अयुक्त है क्योंकि यह नियम नहीं कि जिसमें निराली जातिको सामर्थ्य हो वही मोक्ष प्राप्त कर सकता है अन्य नहीं अन्यथा जो पुरुष पंगुले बौने और अत्यंत रोगी हैं जो थोड़ी सामर्थ्यके धारक हैं जिनका स्त्रियां भी तिरस्कार करती हैं वे भी मोक्ष न प्राप्त कर सकेंगे। इस लिये यह बात सर्वथा युक्त है कि जिस प्रकार पंगुले बौने और अत्यंत रोगी मनुष्योंमें शरीरकी सामर्थ्य न होने पर भी मोक्षकी सामर्थ्य विद्यमान है वे मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं उसी प्रकार वस्त्रसहित संयमको धारण करनेवाली स्त्रियां भी मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं उनके लिये मोक्षकी रुकावट नहिं हो सकती।

प्रश्न—वस्त्र सहित संयमके धारक गृहस्थ क्यों मोक्ष प्राप्त नहीं करते हैं।

उत्तर—गृहस्थको ममता रहती है इसलिये वह मोक्ष प्राप्त नहिं करता क्योंकि ममताको ही परिग्रह माना है। तथा ममता करनेपर नग्न भी परिग्रही समझा जाता है क्योंकि शरीरमें ममता हो सकती है तथा जिस प्रकार नग्न अवस्थामें कोई वस्त्र शरीरपर डाल दे तो मुनि उस वस्त्रमें ममता नहिं रखता उसे उपसर्ग समझता है इसलिये वह परिग्रही नहिं माना जाता उसी प्रकार आर्यिकाकी भी वस्त्रमें ममता नहिं इसलिये वह परिग्रहयुक्त नहिं समझी जासकती। वास्तवमें तो जो यति गांव वा वनमें रहने वाले हैं उनके ममताका त्याग ही शरण है। तथा जिन महात्माओंने अपनी आत्माको वश रक्खा है उनकी किसी भी पदार्थमें ममता नहीं हो सकती। यहांपर प्रमाणरूप एक श्लोक भी है—

> निर्वाणार्थं प्रभवपरमप्रीतितीव्रस्पृहाणां।
> मूर्छा तासां कथमिव भवेत्क्वापि संसारभागे॥
> भोगे रोगे रहसि सजने सज्जने दुर्जने वा।
> यासां स्वांतं किमपि भजते नैव वैषम्यभावं॥१॥

अर्थात जिन स्त्रियोंकी अभिलाषा मोक्षरूपलक्ष्मीके प्रेममें अत्यंत तीव्र है और जिनके चित्तकी वृत्तिभोग रोग एकांत मनुष्योंकी गोष्ठी सज्जन और दुर्जनमें विषमताको धारण नहिं करती, सम ही बनी रहती हैं वे स्त्रियां संसारके किसी पदार्थमें कभी ममता धारण नहिं कर सकतीं। और भी कहा है—'अपि अप्पणो वि देहमि नारयंति ममाइयंति' अर्थात् अपने शरीर में भी यह मेरा है ऐसा राग नहिं करतीं। इसलिये यह बात सिद्ध हो चुकी कि स्त्रियां आर्यिका अवस्थामें वस्त्र धारण करने पर उसमें ममता नहिं रखतीं और ममताके अभावसे वे मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं। तथा इस बातके सिद्ध हो जानेसे जो पहिले यह पक्ष लिखा जा चुका है कि वस्त्र मूर्छाका कारण है इसलिये वह परिग्रह है यह बात भी खंडित हो चुकी क्योंकि उपर्युक्त युक्तियोंसे भली भांति सिद्ध हो चुका कि वस्त्र ममता का कारण नहीं क्योंकि कोई भी साध्वी शरीरके समान वस्त्रमें ममता नहिं रखती इसीलिये वस्त्र परिग्रह नहिं हो सकता। इसलिये सम्यग्दर्शन आदि

रत्नत्रयके अभावसे स्त्रियां मोक्ष नहिं प्राप्त कर सकती यह जो कल्प किया गया था वह खंडन हो चुका।

यदि यह दूसरा कल्प स्वीकार किया जायगा कि पुरुषोंके समान स्त्रियोंमें सामर्थ्य नहीं इसलिये वे मोक्ष प्राप्त नहिं कर सकतीं तो यहां पर भी ये प्रश्न खडे होते हैं कि क्या स्त्रियोंमें सातवे नरक जानेकी सामर्थ्य नहीं है इसलिये वे सामर्थ्यमें कम हैं ? वा वाद आदि लब्धियोंकी उन्हें प्राप्ति नहिं होती इसलिये ? वा अल्प शास्त्रकी वे जानकार होती हैं इसलिये ? वा स्त्रियां अनुपस्थाप्यता पारांचिमक-विशुद्धि रहित हैं इसलिये ? यदि यह पक्ष माना जायगा कि स्त्रियोंमें सातवे नरककी जानेकी सामार्थ्य नहीं इस लिये वे पुरुषोंसे सामार्थ्यमें कम हैं तो भी ये शंकायें हो सकती हैं कि क्या जिस जन्ममें स्त्रियां मोक्ष जाती हैं उसी जन्ममें उनके सातवे नरके जानेका अभाव कहते हो ? या वे मोक्ष जाही नहिं सकती यह कहते हो ? यदि यह कहा जायगा कि जिस जन्ममें वे मोक्ष जाती हैं उस जन्ममें उसभवसे उनके लिये सातवे नरकका जाना मना है इसलिये उनमें विशिष्ट सामर्थ्य नहीं तो जो महात्मा चरम शरीरी हैं उसी शरीरसे मोक्ष जाने वाले हैं उनमें भी विशिष्ट सामर्थ्य न सिद्ध हो सकेगी। क्योंकि उस जन्मसे वे भी सातवे नरक नहिं जाते। यदि यह कहा जायगा कि वे सातवे नरक जाही नहि सकती तो वहां पर यदि यह आशय प्रगट कर उत्तर दिया जाय कि सातवें नरक लेजानेवाले तीव्रतर पापके उपार्जनमें स्त्रियोंकी जिस प्रकार सामर्थ्य नहीं इस लिये वे विशिष्ट सामर्थ्यमें हीन हैं तो मोक्षके कारण उत्कृष्ट शुभपरिणामोंके उपार्जन करनेमें भी उनकी सामर्थ्य नहीं इसलिये वे विशिष्ट सामर्थ्यमें हीन कही जा सकती हैं तथा चरमशरीरी प्रसन्नचंद्र राजर्षि आदिमें तो समानरूपसे सातवे नरक और मोक्ष दोनों जगह जानेकी सामर्थ्य है इसलिये उनमें विशिष्ट सामर्थ्यका अभाव नहिं कहा जा सकता सो ठीक नहीं क्योंकि जहां अशुभगतिमें लेजानेवाले तीव्रतर पापके उपार्जन करनेकी सामर्थ्य नहीं वहांपर शुभगति पहुचानेवाले तीव्रतर शुभ परिणामके उपार्जनकी भी सामर्थ्य नहो यह नियम कभी प्रमाण नहिं किया जा सकता यदि विना प्रमाणके यह नियम स्वीकार कर ही लिया जायगा तो यह भी नियम जबरन स्वीकार करना पडेगा कि जहांपर शुभगतिके उपार्जन करनेवाले प्रकृष्ट शुभपरिणामोंके उपार्जनकी सामर्थ्य है वहीं अशुभगतिमें पहुचानेवाले तीव्रतर पापके उपार्जनकी भी सामर्थ्य है फल यह निकलेगा कि जो अभव्य सातवे नरक जा सकते हैं वे न जासकेंगे।

यदि यह दूसरा पक्ष स्वीकार किया जायगा कि स्त्रियां वादि आदि लब्धियां प्राप्त नहीं कर सकती इसलिये उनमें विशिष्ट सामर्थ्य नहीं और ठीक भी है कि जिन स्त्रियोंका संयम इस लोकमें होनेवाली वाद विक्रिया चारण आदि ऋद्धियोंकी प्राप्तिका कारण नहीं वह उनका संयम मोक्षका कारण किस प्रकारसे हो सकता है यह भी ठीक नहीं क्योंकि माषतुष (माष भिन्न तुष भिन्न इतना ही ज्ञान रखने वाले) आदिकी संयमके अभावमें भी विशिष्ट सामर्थ्य शास्त्रमें सुनी गई है तथा यह भी वात है कि लब्धियां संयमसे होतीं हैं यह भी वात अयुक्त है और न इसवातमें शास्त्र ही प्रमाण है क्योंकि शास्त्रमें लब्धियोंकी प्राप्तिमें कर्मका उदय क्षय क्षयोपशम और उपशमको कारण कहा है इस वात में प्रमाण भूत यह गाथा भी है—

उदयखयखओवसमोवसमसमुत्था बहुप्पगाराओ ।
एवं परिणामवसा लद्धीउ हवंति जीवाण ॥ १ ॥

अर्थात् कर्मोंके उदय क्षय क्षयोपशम और उपशम से जायमान जो कोई परिणाम हैं उन्हीके आधीन जीवों को अनेक प्रकारका लब्धियां प्राप्त होती हैं। तथा चक्रवर्ती बलदेव वासुदेवपना आदि भी लब्धियां हैं परन्तु वे संयमसे होती हैं यह बात नहीं अथवा वे हों संयमसे, तो भी वहां पर ये दो प्रश्न उठते हैं कि क्या स्त्रियोंमें सभी लब्धियोंका अभाव है? या कुछ एकका? यदि यह पक्ष स्वीकार किया जायगा कि सभी लब्धियोंका अभाव है सो ठीक नहीं क्योंकि चक्रवर्ती आदि लब्धियोंका तो स्त्रियोंमें निषेध माना है पर आमर्षसर्वौषध आदि लब्धियां स्त्रियों को भी प्राप्त होती हैं। यदि यह दूसरा पक्ष स्वीकार किया जायगा कि कुछ एक लब्धियां उन्हें प्राप्त नहीं होती सो भी व्यभिचार दोष आनेसे ठीक नहीं, क्योंकि सर्व वाद आदि लब्धियोंकी प्राप्ति न होनेपर भी पुरुषोंमें यह विशिष्ट सामर्थ्य मानी गई है। शास्त्रमें यह उल्लेख भी है-जिनको वासुदेव तीर्थकर चक्रवर्तिपना आदि लब्धियां प्राप्त नहीं होती तो भी वे मोक्ष जाते हैं इसलिये चक्रवर्ती आदि लब्धियोंके प्राप्त न होनेपर भी जिसप्रकार पुरुष मोक्ष प्राप्त करलेते हैं उसीप्रकार चक्रवर्ती आदि लब्धियोंको न भी प्राप्त करनेवाली स्त्रियां भी मोक्ष जा सकती हैं। यदि यह तीसरा पक्ष स्वीकार किया जायगा कि वे थोड़े शास्त्रको जानकार हैं इसलिये उनमें विशिष्ट सामर्थ्य नहीं, सो भी ठीक नहीं क्योंकि माषतुष आदि भी अल्प शास्त्रके जानकार थे परंतु उनमें विशिष्ट सामर्थ्य मौजूद थी इसलिये जहां २ अल्पशास्त्रकी जानकारी है वहां २ विशिष्ट सामर्थ्यका अभाव है यह नियम नहिं बन सकता। यदि यह चौथा कल्प स्वीकार किया जायगा कि स्त्रियोंमें अनुपस्थाप्यता पारांचितक-विशुद्धि नहीं इसलिये उनमें विशिष्ट सामर्थ्य नहीं, यह भी अयुक्त है क्योंकि विशुद्धिके निषेधसे विशिष्ट सामर्थ्यका निषेध नहिं होसकता शास्त्रमें जो विशुद्धिका उपदेश है वह योग्यताकी अपेक्षा है। इसी बातका प्रमाण भूत श्लोक भी है—

> संवरनिर्जररूपो बहुप्रकारस्तपोविधिः शास्त्रे।
> रोगचिकित्साविधिरिव कस्यापि कथंचिदुपकारी॥

जिसप्रकार कोई रोगका इलाज किसीको किसी प्रकारसे उपकार करता है सबको एक प्रकारसे नहीं उसीप्रकार संवर निर्जरा रूप अनेक प्रकारकी जो तपकी विधि है वह भी किसीको किसी प्रकारसे उपकार करती है। इसलिये यह बात सिद्ध होचुकी कि विशुद्धि न होने पर भी स्त्रियोंमें विशिष्ट सामर्थ्य हो सकती हैं और विशिष्ट सामर्थ्यकी कृपासे वे मोक्ष प्राप्त करसकती हैं।

यदि उपर्युक्त छह पक्षोंमें यह दूसरा पक्ष स्वीकार किया जायगा कि पुरुष स्त्रियोंको नमस्कार नहिं करते इसलिये स्त्रियोंमें पुरुषोंकी बराबर विशिष्ट सामर्थ्य नहीं सो भी ठीक नहीं क्योंकि पुरुष स्त्रियोंको नमस्कार नहिं करते यह कथन सामान्यतासे है? वा पुरुष उनसे गुणोंमें अधिक हैं अतः वे उन्हें नमस्कार नहिं करते इसलिये? यदि यह पक्ष स्वीकार किया जायगा कि सामान्यरूपसे कोई भी पुरुष किसी भी स्त्री को नमस्कार नहिं करता तो ठीक नहीं क्योंकि तीर्थंकरकी माता आदिको इंद्र आदि तक नमस्कार करते हैं तब अन्य पुरुषोंकी तो क्या बात है? यदि यह द्वितीय पक्ष स्वीकार किया जायगा कि पुरुष स्त्रियोंसे गुणोंमें अधिक हैं इसलिये वे स्त्रियोंको नमस्कार नहिं करते सो भी ठीक नहीं क्योंकि आचार्य भी शिष्योंको नमस्कार नहिं करते परंतु शिष्य मोक्ष जाते हैं चंड रुद्र आदि शिष्यों को शास्त्रमें मोक्षका विधान है। यदि पुरुष गुणमें अधिक हैं इसलिये वे स्त्रियोंका नमस्कार नहिं करते यह स्वीकार किया जायगा तो गुणोंमें अधिक आचार्यको नमस्कार करनेवाले शिष्य भी स्त्रियोंके समान मोक्ष न जा सकेंगे। अतः पुरुष स्त्रियोंको नमस्कार नहिं करते इसलिये वे मोक्ष नहिं जातीं यह बात युक्त नहीं।

इसी उपर्युक्त कथनसे जो यह चौथा कल्प किया गया था कि स्त्रियां विचारपूर्वक कार्य नहीं करती इस लिये वे मोक्ष नहिं जाती यह भी बात खंडित होचुकी क्योंकि स्त्रियोंमें परिपूर्ण विचार रहता है।

प्रश्न—स्त्रियोंमें पुरुषके विषयमें विचारशक्ति नहिं रहती पुरुषका ध्यान करते ही वे जल्दी फिसल जाती हैं किंतु पुरुष विषयके सिवा और विषयका विचार उनमें रहता है। तथा स्त्रियां कभी भी पुरुषोंका विचार नहि करती यह बात मिथ्या नहीं है इस लिये यहां पर कोई दोष भी नहीं।

उत्तर—तब स्त्रियां विचार पूर्वक कार्य नहि करतीं इस कल्पमें 'पुरुषके विषयमें' स्त्रियां विचार पूर्वक कार्य नहिं करतीं इतना और जोड़ देना चाहिये यदि कदाचित् यह कहो कि जोड़ दो क्या हानि है तब भी ठीक नहीं क्योंकि जिन स्त्रियोंकी नस नसमें पूर्णरूपसे आगमका रहस्य भिद चुका है यदि उन्हें किसी उच्छृंखल प्रवृत्तिके साधुके साथ मुकाबिला हो जाय तो वे उसका परिपूर्ण विचार रखती हैं—साधुकी वैसी चेष्टा देख अपने शीलसे नहिं फिसलतीं इसलिये स्त्रियां विचार पूर्वक कार्य नहिं करतीं इसलिये वे मोक्ष नहिं जाती यह बात अयुक्त ठहरी।

यदि यह पांचवा कल्प स्वीकार किया जाय कि स्त्रियां पुरुषोंके समान महान ऋद्धिकी धारक नहिं होती इसलिये वे मोक्ष प्राप्त नहि करतीं सो भी अयुक्त है क्योंकि यहां दो प्रश्न खड़े होते हैं कि स्त्रियां आंतरंगिक महान ऋद्धिको प्राप्त नहिं होती? कि वाह्य महान ऋद्धिको? यदि यह स्वीकार किया जायगा कि वे अंतरंग महान ऋद्धिको प्राप्त नहि होती तो ठीक नहीं क्योंकि सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय आदि अंतरंग ऋद्धियां उनके होती हैं। यदि कहोगे कि बाह्य महान ऋद्धिको वे प्राप्त नहिं होती सो भी ठीक नहीं क्योंकि तीर्थंकर आदिकी महान लक्ष्मी गणधरादिकी, चक्रवर्ती आदिकी लक्ष्मी अन्य क्षत्रियोंको प्राप्त नहि होती इसलिये महान ऋद्धिको प्राप्त न होनेके कारण गणधरादिक और चक्रवर्तीके सिवाय अन्य क्षत्रिय भी मोक्ष न प्राप्त कर सकेंगे।

प्रश्न—पुरुषोंको जो तीर्थंकर स्वरूप महान लक्ष्मी प्राप्त होती है वह स्त्रियोंको नहीं इसलिये जब वे महान ऋद्धिकी धारक नहीं हुई तब मोक्ष कैसे पासकती हैं?

उत्तर—किन्ही २ परमपुण्यात्मा स्त्रियोंको भी तीर्थंकर ऋद्धिकी प्राप्ति होजाती है। स्त्रियोंको तीर्थंकरत्वकी प्राप्ति नहि होती ऐसा कोई विरोधी प्रमाण अनुभवमें नहिं आता। आजतक यह विषय विवाद ग्रस्त हो पड़ा है। कोई अनुमान भी इस बातको सिद्ध करनेवाला नहीं कि स्त्रियां तीर्थंकरपनेको प्राप्त नहि होती।

यदि यह छठा कल्प स्वीकार किया जायगा कि स्त्रियोंमें मायाचारी विशेष होती है इसलिये वे मोक्ष नहि प्राप्त करतीं यह भी ठीक नहीं क्योंकि मायाचारी स्त्रीपुरुषोंमें समानरूपसे देखनेमें आती है। तथा आगममें भी यह उल्लेख मौजूद है कि चरमशरीरी भी नारद हद दर्जेके मायाचारी थे इसलिये मायाचारीको अल्पधिकतासे स्त्रियां पुरुषोंसे हीन हैं यह बात युक्ति और प्रमाणसे बाधित होचुकी।

तथा—मोक्षका कारण ज्ञानादिका परमप्रकर्ष—हद दर्जेका ज्ञान आदि स्त्रियोंमें नहीं है क्योंकि परमप्रकर्ष होनेसे जिस प्रकार सातवे नरक ले जाने वाले पापका परम प्रकर्ष-तीव्रतर पाप स्त्रियोंमें नहि है, यह जो दिगंबर आचार्य प्रभाचंद्रने कहा है वह भी अयुक्त है क्योंकि मोहनीयका परमप्रकर्ष और स्त्रीवेद आदिका परमप्रकर्ष दोनों ही स्त्रियोंमें मौजूद हैं इसलिये हेतुके चले जानेसे और साध्यके न रहनेसे अनेकांत दोष आजाता है।

तथा यह जो प्रमाचंद्रने कहा है कि स्त्रियां मोक्ष प्राप्त नहिं करसकतीं क्योंकि वे परिग्रहयुक्त हैं जिस प्रकार गृहस्थ। यह भी ठीक नहीं क्योंकि यह विस्तार से सिद्ध करदिया जा चुका कि वस्त्र धर्मका उपकरण है इसलिये वह परिग्रह नहीं हो सकता। इस प्रकार यहांतक स्त्री मोक्षके विषयमें जो भी बाधक बातें थी उन सबका उद्धार होचुका अब स्त्रीमोक्षको सिद्ध करने वाले प्रमाणोंका उल्लेख करते हैं—

कोई कोई मनुष्य स्त्री मोक्षप्राप्त करती है क्योंकि उसके मोक्ष प्राप्तिके समान कारण मौजूद हैं जिस प्रकार पुरुषके। तथा मोक्ष प्राप्तिका असाधारण कारण सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय है वह स्त्रियोंके है ही यह पहिले सिद्ध किया जा चुका है इसलिये इस अनुमान में हेतु असिद्ध नहीं। तथा मोक्ष प्राप्तिके समस्त कारण मौजूद है यह हेतु विपक्ष जो नपुंसक उसमें नहीं इस लिये वह विरुद्ध और व्यभिचारी भी नहीं। तथा—

मनुष्य स्त्रियोंमें कोई स्त्री मोक्ष प्राप्तिके असाधारण कारणोंकी स्थान होनेसे मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं क्योंकि उसे दीक्षा लेनेका अधिकार है जिस प्रकार पुरुषको। यहां पर उसे दीक्षा लेनेका अधिकार है यह हेतु असिद्ध नहीं क्योंकि—

गुव्विणी बालवच्छाय पव्वावेउं न कप्पइ।

अर्थात् जो स्त्री गर्भिणी किंवा बालवत्सा अर्थात् जिसका बालक बिल्कुल छोटा हो वह दीक्षा धारण नहिं कर सकती इस सिद्धान्तके बलसे उन्हें दीक्षा का अधिकार है तथा यहां गर्भिणी और बालवत्सा का निषेध किया गया है इससे अन्य स्त्रियोंको दीक्षाका अधिकार सिद्ध होता है। क्योंकि आज कल भी शिर-केश लोंच किये और पीछी कमण्डलु आदि यतियों के चिन्होंको धारण किये साध्वी देख पड़ती हैं इस लिये उनको दीक्षाका अधिकार क्योंकर नहिं हो सकता जिससे उनको मुक्ति प्राप्त न हो? इसलिये यह बात सिद्ध हो चुकी कि स्त्रियां अवश्य मोक्ष प्राप्त करती हैं उनकी मोक्ष प्राप्तिमें किसी प्रकार बाधा नहिं पहुंच सकती। (क्रमशः)

---:o:---

पद्मावती परिषद्के आगामी अधिवेशनमें पास करने योग्य प्रस्ताव।

श्रीयुत सम्पादक जी महाशय!

गत अंकमें मैंने आपका परिषद्के अधिवेशन विषयका नोट पढ़ा। तदनुसार मैं नीचे लिखे प्रस्ताव भेजता हूं कृपाकर प्रगट कर दीजियेगा।

प्रस्ताव पहिला।

इस जातिमें अन्य २ बहुतसी रिवाजें क्या प्रायः सबही धर्मानुकूल हैं परन्तु एक यह रिवाज बहुतही अनुचित मालूम पड़ती है कि लोग वृद्ध पुरुष के मरने के बादकी तो बात जाने दीजिये युवा और असहाय पुरुष स्त्रियोंकी मृत्युके बाद भी दावत (कारज) करने कराने पर बाध्य होते या किये जाते हैं। यह कहां तक ठीक है सो आपही विचारिये एक तरफ तो विधवा व असहाय लोगोंका दीन आर्तनाद और आगे कैसे क्या होगा आदि जीवन बिताने की चिंता और दूसरी तरफ पंचों तथा अन्य २ लोगोंका पूड़ी कचौड़ी उड़ाकर द्रव्य खर्च कराना! यद्यपि शक्तिके माफिक पंचायत के समस्त आदमी वा हर एक घरका एक २ आदमी आदि हलका भारी भोजको जिमाकर भी मृत्यु

के बादका दस्तूर पूरे किये जानेकी रिवाज है परंतु मेरी समझसे उसका भी बंद हो जाना जरूरी है। परिषद्को इस विषय पर विचार करना चाहिये और विद्वान लोग जो उचित समझें वैसा सुधार कर देने की कृपा करें।

दूसरा प्रस्ताव।

अन्य समाजोंको देखा देखी कन्याओंकी कमनाई और कन्याद्वारा धन कमाने के लोलुपियोंकी अधिकता से हमारे समाजमें भी लड़कियोंका वेचना और खरीदना दिनपर दिन बढ़ता जा रहा है। अभी तक लोग केवल लड़कीके मा बापको ही दोषी और बुरा समझ घृणा की दृष्टिसे देखते हैं। परन्तु जिस प्रकार मांस का बेचने और खरीदने वाला दोनो समान पापी है क्योंकि यदि खरीदने वाला न हो तो वेचने वाला किसे वेच अपना मतलब गांठेगा इसी प्रकार लड़कियोंके वेचने वाले और खरीदने वाले दोनो ही घृणा और अपमानकी दृष्टि देखे जाने चाहिये लोग जिस प्रकार लड़कियोंको वेचनेवालोंके यहां खाने पीने का विचार करते है उसी प्रकार खरीदने वालेके यहां का भी विचार करें। क्योंकि लड़कियोंके बिकानेमे येही दुष्ट कारण है। खरीददार ही यदि अपनी २ विषयाभिलाषाओं को दबा थैलियोंका मुंह न खोलें तो क्या लड़की वाला हाट या पैंठमें लड़की वेच आवे? या कुआमें डाल वहांसे दौलत निकाल लावे? इसलिये परिषद् को इस विषयका प्रस्ताव पासकर अमलमें लानेका प्रयत्न करना चाहिये।

प्रस्ताव तीसरा।

परिषद्के कई विभागोंके मंत्री अपना ठीक ठीक काम नहीं करते इसलिये उनकी जगह उत्साही और विद्वान नियत होना चाहिये जिससे पास हुए प्रस्ताव कागजमें लिखेही न रह जांय, जातिमें भी उनका कुछ फल हो।

समाज सेवक—
पं० कंचनलाल जैन देहली।

नोट—पहिला प्रस्ताव जो पंडितजीने पेश किया है उसपर संभव है सब लोगोंका एक विचार न बैठे परन्तु कोटला और फिरोजाबाद आगरा की पंचायतने ने अपने अपने यहां ३० वर्ष से कम उम्रके मरने वाले पुरुष और स्त्रियोंका कारज न करनेका नियम आज कई वर्षोंसे जारी कर रक्खा है तदनुसार अधिक नहीं तो इतना ही कायदा सब जगह प्रचलित हो जाना जरूरी है। यदि किसी भाईको कुछ इस विषयपर अधिक प्रकाश डालना हो तो कृपया लिखें हम छाप देंगे।

—संपादक

—:०:—

संपादकीय विचार।

पद्मावती परिषद्का मंत्रिमंडल।

हमने गत ७ वें अंकमें परिषद् का सालाना जल्सा समीप बताकर उसके मंत्री तथा अन्य विद्वानोंको उत्साहित हो आंदोलन करने कहा था। हर्ष है कि हमारी प्रार्थना मंत्री महाशयने तो नहीं सुनी, पर अन्य उत्साही सज्जनोंने सुनली। इसी संख्यामें पं० अमोलक चंद्रजी उडेसरीयका लेख छपा है। उनने परिषद् तथा उसके भिन्न भिन्न विभागीय मंत्रियोंकी जो त्रुटि दिखलाई है वह सच है। हम भी समय समय पर हमेशा लिखते आये हैं पर मंत्रिमंडलके दरबारमें उन बातों की कोई पेश नहीं है, बहुत कुछ कहने सुनने पर वि-

शोधनाशक विभागके मंत्री श्रीयुत महावीरसहायजी पांडे महाशयने दो एक मास रिपोर्ट भेजी थी पर फिर वे भी सो गये। इधर कई महीनों से कैसा भी समाचार नहीं है। उपदेशक विभागके मंत्री महाशयका तो (और किसी की तो क्या बात) हमें भी पता नहीं है कि वे महाशय कौन हैं? कहां रहते हैं? महामंत्री बा० बनारसीदासजी को अपने कारबारसे ही छुट्टी नहीं मिलती, कई बार लिखने पर भी कोई उत्तर न मिला। रहे पटा पाठशालाके मंत्री और परिषद् के सहायक महामंत्री साहब सो खुद वेही जब कर्ता धर्ता हैं तब उन्हें क्या फिक्र है? उनके जाने समाज का धन पानी की तरह फिजूल खर्च हो, चाहे समाज के लड़के मूर्ख रह जांय उन्हें तो अपने कामसे काम। कौन जानता है महीना पंद्रह दिनमें समाजहित २४ घंटे खर्च करदेनेसे उनको आयुका बहुत बड़ा हिस्सा फिजूलमें निकल उनकी बड़ी भारी हानि कर डाले। खैर! जो कुछ भी हो परिषद्का मंत्रि-मंडल सालभर बराबर काम करे, चाहे न करे पर यह अधिवेशनके समयपर तो जी जानसे तयारी करने लग जाता है और जब यह बात है तब जलसे का—

सभापति कौन होना चाहिये?

यह विचार भी होना अभीसे जरूरी है।

परिषद् का उद्देश्य जाति की हीन दशा का उद्धार कर उसकी उन्नति करना है इसलिये जिसने अपना तन मन और धन जातिमें सबसे अधिक परोपकारार्थ प्रदान किया हो उसीको सभापति बनाना उचित है। जातिके जितने भी परिचित हितैषी परोपकारी व्यक्ति हैं उन सबमें इस सालके जलसेके सभापति पद को सुशोभित करनेके लिये सर्वथा उपयुक्त फिरोजाबाद टाउनस्कूलके हेडमास्टर मुंशी वंशीधरजी ही हैं। मुंशीजी ने अपने जीवनका समस्त परिश्रम और परिग्रह जातिके उद्धारार्थ उसके बालकोंको ज्ञानदान देने के लिये अर्पण कर देने का संकल्प कर लिया है जिसका समाचार हम एकबार प्रकाशित कर चुके हैं। मुंशी जी के समान उदार और परोपकाररत व्यक्तियां हमारी जातिमें दिन दिन बढ़ें, लोग उनका अनुकरण करना सीखें, हमारे आगामी जातिके नेता होने वाले युवकोंके चित्तमें मुंशीजीका उदाहरण अंकित हो जाय इसलिये अबकी उन्हें ही सभापति बनाना उचित और न्याय्य जंचता है।

अन्य अन्य महाशयोंने और भी अनेक महाशयोंके नाम भेजे हैं और लोगों को भी अपनी रुचिके सभापति चुननेका अधिकार है। परन्तु हमारी समझसे जो सभापति होनेके योग्य थे वे लिख दिये। ध्यान रहे कि हम जबरन किसीको अपनी रायमें राय देनेकी नहीं कह रहे हैं, जिनकी समझमें आवे वे यह राय दें और जो योग्य न समझे वे दूसरे किसी महाशय को सभापति चुनकर भेजें पर अपनी सम्मति भेजें अवश्य, जिससे सभापति के चुनावमें सुभीता हो।

जातिप्रबोधक और पं० माणिकचंद्रजी न्यायाचार्य।

जैनसमाजके सुप्रसिद्ध विद्वान, मुरैना जैन सिद्धांत विद्यालयके प्रधानाध्यापक, अनेक जगह अन्यमतियोंको विवादमें परास्त कर जैनधर्म की प्रभावना करनेवाले और समाजके भावी स्तंभोंको सच्चे जैनी बनानेमें दत्तचित्त पं० माणिकचंद्रजी का सुनाम किसे नहीं मालूम है? आजकल जितने भी विद्वान दृष्टिगोचर हैं उनमें आपका आसन बहुत कुछ ऊंचा है। आप हरसाल दशलक्षण पर्वके समय किसी न किसी जगह जाकर धर्मोपदेश दे भूले भटकी आत्माओं का कल्याण किया करते हैं इस साल दक्षिण जो दक्षिण गये थे। वहां आपने

Regd. No. C 888

अविश्रांत १५ दिन तक अपना काम जारी रक्खा। चलते समय भक्तिवश वहांके लोगोंने कुछ भेंट लेनेका आग्रह किया और पंडितजी को वह जबरन लेनी पड़ी। जोकि भारतीय सभ्यताके अनुसार उचितही समझी जाती है।

इस पर ' चिरंतनाभ्यासनिबंधनेरिता गुणेषु दोषेषु च जायते मतिः " के अनुसार जातिप्रबोधक के नव्य संपादक बेतरह बिगड़े हैं। उन्होंने पंडितजीके इस कार्यका बदला उनकी अपरिमित समाज सेवा पर कुछ भी ध्यान न देते हुये उनका समाजमें अपयश फैलाकर निकालना चाहा है। खैर! इस पर हमारा कहना इतनाही है कि इस तरह छलपूर्वक बार २ विद्वानों की निंदा होनेसे उनका मन अत्यल्प आर्थिक सहायता पाकर जो धर्म सेवा कर रहे है उससे हट सक्ता है। और वैसा होनेसे जो कुछ आजकल उन्नतिके कार्य हो रहे हैं वे सब बंद हो जाने का भय है। यह हम मानते हैं कि आप सरीखे कुछ लोगों को ऐसा करना भी अभीष्ट है और इसीलिये बैठे ठाले कभी हस्तिनापुर के उपअधिष्ठाताकी और कभी किसी संस्कृत विद्वान् के द्वारा संचालित संस्थाकी बुराई किया करते हैं, परंतु साथ ही यह भी समझे रहिये कि अब संस्कृत के विद्वान् पहिलेकी सी चुप चाप सहने वाले नहीं हैं और क्षुब्ध हो समाज सेवाका काम छोड़ने वाले भी नहीं हैं जिससे कि आपको अपने मनचीते पाप प्रचार करने का यथेष्ट मौका मिल जाय। समाज भी अब ऐसी भोली भाली नहीं रही है जो कौन कितना निःस्वार्थ काम कर रहा है और किसका क्या मतलब है आदि बातें न समझे।

जारखीमें विरोधाग्नि।

लोगोंमें अज्ञानता बढ़ जाने से समाज की शक्ति दिन पर दिन क्षीण हो रही है। दुनियादारी के कामों से उत्पन्न हुये बैर को लोग धार्मिक कार्यों के समय निकालते हैं। हमें कई बार समाचार मिले हैं कि जारखीमें मंदिरों का बहाना लेकर लोग अलहदे २ दल बांध रहे हैं। कई पंचायतें होगई हैं एक दूसरेसे खान पान का संबंध छोड़ रहे हैं। जारखीके पंचोंकी इस बुद्धिपर हम शोक प्रगट करते हैं और प्रेरणा करते हैं कि वे शीघ्रही आपसमें सुलह कर पहिलेकी भांति एक दूसरेसे मिल जांय जिससे जारखी का जो नाम अभी तक कायम है वह उसी तरह [illegible]।

स्त्री मुक्तिपर विचार।

उक्त नामका लेख कई [illegible] से चालू है। सत्योदय में सूरजमल छाबड़ाकी ओट लेकर जो लेख (?) ने लिखा है उसी पर प्रकाश डालने के लिये यह है। पाठक गण इसे ध्यानपूर्वक पढ़ें।

आगे चलकर हर विषय पर गवेषणा पूर्ण विचार प्रकट किये जायेंगे और किस जगह किस तरह बाबू साहब ने धोखा दिया या खाया है सब समझाया जायगा। हम अपनी समस्त शक्ति केवल एक विषय की तरफ ही लगाना उचित नहीं समझते क्योंकि सब लोग एक रुचिके नहीं होते इसलिये बहुत दिनोंमें यह लेख पूर्ण निकलेगा तथा जब तक इस विषयको पूरा न करलेंगे तब तक सत्योदय या अन्य पत्रों की विचारणीय बातोंपर भी कम प्रकाश डाले जाने की संभावना है। आशा है पाठक गण इस त्रुटिको क्षमा करेंगे।

अनुकरणीय प्रतिज्ञा।

पद्मावतीपुरवालके ७वें अंकमें जो बाल विवाह की बुराई दिखलाने वाला " माता का प्रेम " नामका प्रहसन छपा है उसे पढ़कर मरसेना निवासी कंचनलालजी देहलीने अपने पुत्र पुत्रियोंकी अल्प उम्रमें शादी न करनेकी प्रतिज्ञा की है। अन्य भाइयों को भी इनका अनुकरण करना चाहिये।

श्रीलाल जैनके प्रबंधसे जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,
८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार कलकत्तामें छपा।

पद्मावती परिषद्‌का सचित्र मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल ।

(सामाजिक धार्मिक, लेखों तथा चित्रोंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

विषय सूची ।

वर्ष. २ — अंक. ९

लेख	पृष्ठ
१ आजकलकी अमीराई	[illegible]
२ जैनियोंके ह्रासके कारणोंपर एक दृष्टि	२४९
३ पद्मावती परिषद्के लिये प्रस्ताव	२५२
४ हिसाब प. प. मालवा	२५४
५ फूटकी जड	२५५
६ परिषद्के विद्या विभागीय मंत्रीजी का पत्र	२६३
७ स्त्रीमुक्तिपर विचार	२६४
८ कारजकी प्रथा विविध विषय	२६९

कविता	पृष्ठ
१ चेतावनी	२४३
२ शिशिर	२४८
३ समय	२६१
४ प्रभात	२६१
५ एकता	२६२
६ ब्रह्मचर्य	२६२
७ जननी विलाप	२६२

वार्षिक २)

आनरेरी मैनेजर—
श्रीधन्यकुमार जैन. 'सिंह'

१ अंक का ≡)

पद्मावती पुरवालके नियम।

१ यह पत्र हर महीने प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य २) रु० पेशगी लिया जाता है।

२ इस पत्रमें राजविरुद्ध और धर्मविरुद्ध लेखोंको स्थान नहिं दिया जाता।

३ इस पत्रके जीवनका उद्देश्य जैन समाजमें पैदा हुई कुरीतियोंका निवारण कर सर्वज्ञप्रणीत धर्मका प्रचार करना है।

४ विज्ञापन छपाने और हटवानेके लिये कोई महाशय तकलीफ न उठावें।

श्री "पद्मावतीपुरवाल" जैन कार्यालय नं० ८ महेंद्रबोस लेन, श्यामबाजार, कलकत्ता।

संरक्षक, पोषक और सहायक।

३०) शेठी मोहनलालजी दुग।

२५) ला० शिखरचंद्र वासुदेवजी रईस, टूंडला।

२५) पं० मनोहरलालजी, मालिक—जैनग्रंथ उद्धारक कार्यालय, बंबई।

२५) पं० लालारामजी मक्खनलालजी न्यायालंकार चावली।

२५) पं० रामप्रसादजी गजाधरलालजी (संपादक) कलकत्ता।

२५) पं० मक्खनलालजी श्रीलाल (प्रकाशक) कलकत्ता।

२५) सेठ रामासाव बकारामजी गोडे, वर्धा

१२) पं० फूलजारीलालजी धर्माध्यापक जैन हाईस्कूल, पानीपत

१२) पं० अमोलकचंद्रजी प्रबन्धकर्ता जैनमहाविद्यालय, इंदौर।

१२) पं० सोनपालजी जैन पानीगांव वाले, पाढम।

१२) पं० वंशीधर खूबचंद्रजी मंत्री जैनसिद्धांतविद्यालय, मोरेना

१२) पं० शिवजीरामजी उपदेशक बरार मध्य प्रदेशिक दि० जैन सभा

१२) पं० कुंजविहारीलालजी जैन जरौवा निवासी।

५) ला० धनपतिरायजी धन्यकुमार सिंह (मैनेजर) उत्तरपाड़ा।

५) पं० रघुनाथदासजी रईस, सरनौ (एटा)

५) ला० बाबूरामजी रईस वीरपुर।

५) ला० लालारामजी बंगालीदासजी पेपर मर्चेंट, धर्मपुरा-देहली।

५) ला० गिरनारीलालजी रईस, टेहरी (गढ़वाल)

५) शेठ बाजीराव देवचंद्र नाकाडे, भंडारा (वर्धा)

५) पं हीरालालजी फतहपुर।

५) छुट्टनलालजी एस्टेशन मास्टर, चोला

५) ला० मन्नूलाल हरिसुखलालजी पालेज।

जिन महाशयोंने २५) रु० वा अधिक दिये हैं वे संरक्षक, जिनने १२) दिये हैं वे पोषक और जिनने ५) दिये हैं वे सहायक हैं। इन महानुभावोंने पिछली सालका घाटा पूराकर इस पत्रको स्थिर रक्खा है। आशा है इस साल भी ये कृपा दिखलावेंगे। पत्रका आकार आदि बदल जानेसे अबकी बहुत घाटा पड़ेगा पर हमारे अन्य २ भाई भी ऊपर लिखे पदोंमेंसे किसी एक पदको स्वीकार कर लेनेकी कृपा दिखलावेंगे तो आशा है हम फलीभूत होंगे।

पद्मावतीपरिषद्का मासिक मुखपत्र ।

पद्मावतीपुरवाल

"जिसने की न जाति निज उन्नत उस नरका जीवन निस्सार"

२ रा वर्ष } कलकत्ता, मार्गशीर्ष, वीर निर्वाण सं० २४४६ सन १९१९. { ९ वां अंक

चेतावनी ।

पा थोडासा ज्ञान और धन जो नर मदमें होकर चूर ।
धर्म मार्गसे उच्छृंखल हो निंदित कार्य करें भर पूर ॥
वर्तमानमें धर्म कार्यके परिपोषक जो पंडित जन ।
कर उनकी मनमानी निंदा डाह करें उनसे भर मन ॥
ऐसे नीच कृतघ्नी नर गण धर्म नष्ट करने वाले ।
निरख बाह्य आंडबर इनका री समाज! तूने पाले ॥
लाड लडाया कर कर आदर अब तू फल इनका चख ले ।
ये हर लेंगे धर्म प्राण सब तेरा खूब परख तू ले ॥

भेदज्ञ—

आजकलकी अमीराई।

अमीराई शब्दका सम्बंध धनसे है जो जितना धनी होता है वह उतना ही अमीर समझा जाता है। पूर्वकालमें जिन मनुष्योंके पास धन था वे अमीर कहे जाते थे और अपनी अमीराईके अनुसार वे अपना ठाट बाट रखते नजर पड़ते थे। आजकल भी जिनके पास धन है वे अमीर गिने जाते हैं और उसीके अनुसार अपना ठाट बाट भी रखते है। यहांपर सामान्यतासे उनको विना ही तकलीफ दिये यह विचार उठ सकता है कि पूर्वकालके अमीर और आजकलके अमीर बराबर हैं क्योंकि जैसा पूर्वकालमें अमीर अपना ठाट बाट रखते थे वैसाही आजकलके अमीर अपना ठाट बाट रखते हैं परन्तु सो नहीं। पूर्वकालके और अबके अमीरोंमें जमीन आसमानका फर्क है पूर्वकालके अमीरोंके ठाट बाटका खर्च उनकी आमदसे बहुत ही कम संख्यामें था। उनका खाना पीना पहिरना शारीरिक हिफाजतके लायक हुआ करता था। वे भीतरमें सब बातोंसे खरे होकर अमीराईके ठाट बाटमें मस्त न रहते थे। अमीराईके मदमें आकर धर्मसे मुख न मोड़ते थे देश और जाति की हीन दशा देखकर चुपचाप न बैठते थे परंतु आज कलके अमीरोंमें बहुतसे अमीरोंका खर्च उनकी आमद से कई गुणा अधिक है।

जो जमींदार अमीर है उनकी जमींदारीपर जमींदारी की कीमतसे अधिक करज हो चुका है परंतु उनकी अमीराईका खरच कम नहीं होता। उनका खाना पीना पहिरना बिलकुल शौकियानी चालका है। यदि ज्या दह घी खा लेते है तो पचता नहीं, कुछ गरिष्ट भोजन कर लेते हैं तो हकीम डाक्टरोंको तलाश करवाते हैं और यदि कुछ मोटा कपड़ा पहिन लेते हैं तो शरीर छिल जाता है। यदि उनके शरीर की सामर्थ्यकी ओर देखा जाय तो उन्हें दो आदमी उठाते है तब उठते हैं धन कितना भी कम होता जाता है पर अमीराईसे मुख नहि मोड़ते धरम की उन्नति करने वाली सभाएं या अन्य कार्य जमानेमें धसक जांय आजकलके अमीरोंका उनसे कोई सरोकार नहीं देश और जाति मध्य समुद्रमें जाकर डूब जांय उसको उन्हें कोई परवा नहीं जो मनुष्य अनेक प्रकारकी कलाओंमें निपुण हैं उनको उत्साह देना अमीरोंका कार्य है परंतु अमीर लोग उन का उत्साह देना तो दूर रहा उनके अपमान करने मे भी जरा सरम नहि खाते। कानों के इतने कच्चे होते हैं कि चापलूस मनुष्य यदि किसी सदाचारी विद्वानकी चुगली खा दे तो वे सच मान लेते है मस्तकको जरा भी विचार करने के लिये तकलीफ न देकर विद्वान महाशयके लिये तुम हरामका खाते हो इत्यादि शब्द कहनेको तो अपने मुखारविंदका भूषण समझते हैं असली बात यह है कि अमीराईकी हद यहांतक बढ गई है कि सिवा अपने शरीर को चटक मटक बनानेके जाति और देशोद्धारक कार्य मे भाग लेनेके लिये उनका हृदय ही गवाही नहि देता।

यह तो रही जो वास्तविक अमीर हैं उनकी अमीराई की बात। किंतु आजकलके सभ्य जमानेमे एक विलक्षण जाति की और अमीराई भी चल पड़ी है और उसका यह मुख्य रूपसे पहिचान करानेवाला चिन्ह है कि जो महाशय सादे किंतु साफ सुथरे कपड़े पहिनने वाला हो हाथमें हाथघड़ी और छड़ी, आंखोंपर ऐनक और पेरोंमें काली पालिसका बूट और सुन्दर धार धोती पहिनने वाला हो वही अमीर और सभ्य

गिना जाता है। जो करोड़पती है वह भी इस पोशाक को प्रायः पहिनता है और जो २०-२५) का नौकर है वह भी उतनी ही शान शौकतसे पहिनता है यहां तक कि जबतक घरपर वह रहता है तब तक तो गरीब अमीरोंमें भेद रहता है और घरसे बाहर हुए कि फिर अमीर गरीब का जरा भी भेद नहि जान पड़ता।

पहिले जमानेमें यह बात न थी। उससमय बाह्य आडंबरसे अपने शरीरको भूषित करनेमें लोग लीन न रहते थे किंतु बहुतही सादा पोषाकमें रहते थे उनके चेहरोंसे कोई यह नहि जान सकता था कि यह कितने द्रव्यका धनी है किंतु जिस समय उनकी इज्जतपर आपड़ती थी वा कोई धार्मिक कार्य आ अटकता था उस समय वे अपनी छाती खोलते थे अपने कमाये हुए द्रव्यका सदुपयोग करते थे तब लोग उनके वैसे उदारतापूर्ण कार्यके देखनेसे उस महापुरुषके धनके विषयमें अनुमान लगा सकते थे।

किसी कविका यह सुवर्ण वचन है कि अंतः सारविहीनस्य प्रायेणाडंबरो महान् अर्थात् जो मनुष्य सारहीन होता है वही बहुत ढोंग रचकर अपने को सारवान कहलाने के लिये विशेष प्रयत्न करता है। यह अक्सर मुकाबला कर देखा गया है कि जिस समय पहिलवान और एक निहायत कम ताकतके पुरुष चंडूबाज दोनों में किसी प्रकार की अनबन होती है उस समय ताकत रखने वाला पहिलवान जल्दी क्रोध नहि करता परन्तु चंडूबाज उस समय आपे से बाहर हो जाता है। गाली गलौज और मारने के लिये सामने आ अड़ता है। वह यह सोच सकता है कि मैं इसके एक भी हाथका नहीं परन्तु उस की निस्सारता उसे उस बातका सोचने के लिये अवसर नहि देती। एक मनुष्य कुछ धन पात्र है और परिमित खर्च करने वाला है और दूसरा मनुष्य खोमचा आदि बेचकर आठ आने के पैसे कमाने वाला और चाट आदि चाटने वाला है यदि कभी खोमचा करने वाले मनुष्य को कुछ धन पात्र मनुष्य से अनबन हो जाती है तो वह बड़ा सेकामें आकर यह कहनेमें जरा भी नहि सकुचाता कि ये क्या खाना पीना जानते हैं? रूखा सूखा रोटा खाकर जन्म बिताते हैं। हां वो दरिद्र मनुष्यको यह मालूम है कि मैं इसकी किसी प्रकार की चोट को नहि झेल सकता परंतु उसकी निस्सारता धनरहितपना उसे जबरन वैसा कहलवाता है। बस यही बात आजकल की अमीराई की है। लोगोंके पास धन रहा नहीं, जो धन है वह उसके ऐश आराम के सामने न कुछ है। शरीरमें भी उतना बल नहीं जिससे उनके चेहरोंसे अमीराई झलके इसलिये सब बातसे खाली हो जानेके कारण उन्हें जबरन अमीर कहलवानेकी कोशिश करनी पड़ती है वे बेचारे दूसरों के सामने अपनी पोषाकसे अमीराई झलका अपने निर्वाहका प्रबंध करते फिरते हैं परंतु सिंहका चमड़ा ओढ़कर खेतमें चरनेवाला गदहा कब तक निर्विघ्न रूपसे सुखी रह सकता? उसकी पोल अवश्य किसी दिन खुलेगी।

बहुतसे पाठक इस अमीराईकी दशा को हँसीके तूफानमें उड़ा सकते हैं परन्तु यह बात बिलकुल सच है इस अमीराई-सभ्य अमीराईका प्रचार आजकल बड़े जोरों पर है यदि यही हालत रही तो यह अमीराई ले डूबेगी-किसी कामका न रहने देगी। इस अमीराई [illegible] कौन मरा और कौन जाया [illegible] बातका खबर भी पता नहि लगता उसी प्रकार इस सभ्य नाशिनी अमीराईने कितने घर चौपट कर दिये यह बात भी जानी नहि जा सकती है परंतु दश पांच वर

चौपट तो नजर पड़ते ही हैं इसलिये अनुमान कर लिया जा सकता है कि आज कल की अमीराई का भविष्य बड़ाही भयंकर है इसके फंदमें फसने वाला धन बल दोनों से ही वंचित रहेगा।

मैं यह असत्य नहिं कह रहा हूं किंतु आजकलका जमाना ही इस बातका है कि जो मनुष्य चटक मटक शान शौकतमें नहिं रहता उसको कोई पूछता नहीं लोग उसे घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं यहां तक कि उस के बाल बच्चों का विवाह तक रुक जाता हैं। मैंने बहुत से घर ऐसे देखे हैं जिनके पास रुपया है पर तूल तमोल नहिं जानते इसलिये उनके लड़के क्वारे हैं और जिन पर शिरके बालोंकी बराबर कर्ज है खूब चटक मटक करना जानते हैं उनके घरोंमें दो साल तक के बच्चों की सगाई टूट टूट कर पड़ती है इसलिये प्रायः मनुष्य यह करते हैं कि अपने पास जितना रुपया होता है उसका तो वे गहना गढ़ा लेते हैं बढ़िया कपड़े बनवा लेते हैं यदि विवाह की नौबत आई तो कर्ज लेकर और हाथका भी धन खोकर खूब विवाह करते हैं पीछे उनका व्यापार शिथिल हो जाता है तब वे निहायत ही नीचे दर्जे की आजीविका से अपना पेट भरते दीख पड़ते हैं इस तरह उनकी अमीराई से उनका सर्वनाश हो जाता है और वे दाने दाने के लिये मुहताज हो जाते हैं. यदि वे महाशय गहना न गढ़वाते और बढ़िया कपड़े आदि पहिन कर नकली अमीराई जाहिर न करते तो वे अपने पासके ही द्रव्यसे अच्छा व्यापार कर सकते परन्तु फिर बिचारोंको पूछे कौन? उनके विवाह कैसे हों?

मैंने कहीं २ पर तो यहां तक देखा है कि बहुतसे लोग जो कमाते हैं वह कपड़ों की चटक मटक और हारमोनियम आदि के खरीदनेमें ही खर्च करदेते हैं चाहे घरमें कुछ खाने को न हो परंतु बाहिर जाने के लिये चटकीले कपड़े और नुकीले जूते जरूर ही होने चाहिये। और २ देशों में तो घरमें कांसे पीतलके बर्तन भी लोग रखते हैं जिससे काम पड़ने पर गिरवी रख कर दश बीस रुपये मिल जानेपर अपना मौका भी टाल सकते हैं परंतु कहीं २ पर वह भी नहीं। लोग चीनी और कांचके प्रायः बर्तन रखते हैं खाना कलोंके पत्तों पर खाते हैं। इसलिये यदि इन्हें कुछ काम पड़ जाता है तो वे उस समय दो चार रुपये तकका कर्ज लेते हैं और तब कहीं अपना काम निकालते हैं। और यदि किसी ने कर्ज न दिया तो हाथ मलते हैं। सच बात यह है कि इस समय हर एक बातसे सारी दुनिया खोकी हो चली इसलिये वह किस न किसी रूपसे अपनेको अमीर सिद्ध करने की कोशिश में रहती है और व्यर्थ खर्चकर अपने को लुटवाये डालती है ऐसी हालतमें हमारा भविष्य कैसा है यह सहजहीमें जाना जा सक्ता है।

मैं नहीं कहता कि सभी लोग नकली अमीराई को अपनाने वाले हैं। नहीं अभी ऐसे भी मनुष्य हैं जो मोटे मजबूत कपड़े पहिननेवाले और सादा परन्तु पुष्ट भोजन करने वाले हैं जिनके शरीर तंदुरस्त चेहरों पर कांति और शरीरमें नीरोगता का संचार है। यदि उन मनुष्यों पर भी नकली अमीराई का असर पहुंच जायगा जैसा कि इस समय मालूम हो रहा है तो निस्संदेह हमारी बहुत बुरी दशा हो जायगी और आज कल जैसी भी हमारी परिस्थिति है वह भी न रहने पावेगी।

यहां पर यह शंका उठाई जा सकती है कि यह नकली अमीराई की शिक्षा मिली हमें कहांसे? क्यों हम ऐसे विह्वल हो गये जो हमे नकली अमीराईके चक्रमें अपने सर्वस्व नाशका ध्यान न रहा परन्तु इस प्रश्नका

हल हो जाना कठिन नहीं, कारण हमारी जो भी वर्तमान की शिक्षा प्रणाली है उसीके साथ हमें नकली अमीराईकी शिक्षा भी मिलती चली जा रही है। पहिले हमारे पूर्वज कपडों में सिर्फ धोती दुपट्टा ग्रहण कर शिखा धारण कर ब्रह्मचर्य को अपना सर्वस्व मानकर जंगलमें तपस्वियोंके आश्रमों में विद्याभ्यास करते थे उनका विद्याभ्यास व ज्ञान प्राप्तकर व्यापार आदि कार्यो के ही लक्ष्यसे होता था। परंतु आजकल इंग्रेजी फर्स्ट रीडर शुरू हुई कि बूटच मा आदि का भी उसी समय से शौक शुरू हो जाता है। ब्रह्मचर्यका तो कुछ भी महत्व नहीं गिना जाता और नोकरीकी लालसा ही उनको ऊंचे दर्जे तक लेजाती है तब सर्वस्व खोकर ऊंचे दर्जे के अभ्यासी मनुष्यों को नकली अमीराई न सूझे तो क्या हो? असली बात यह है कि नकली अमीराईकी यहां तक लोगों पर छाप लगी हुई है कि जहां देखा जाता है वहां उसीकी कदर दीख पड़ती है। यदि हम घरके भले भी आदमी हैं सभ्य शिक्षित और सदाचारी हैं तो भी यदि मैले कपडे पहिन किसी पुलिसके सिपाईके सामने खडे हो जाते हैं तो वह धक्का लगाता है और बहुत ही भयानक अपमान करने पर उतारू हो जाता है। मैली ही पोषाकसे रेलमें बैठने जाते हैं तो वहां टिकट कलेक्टर भीतर नहीं घुसने देता। कुछ निवेदन करते हैं तो वह लाट साहब बन या दुनिया का अपने को बादशाह मान हमारी निवेदन सुनता ही नहीं उस समय हमें जो कष्ट भोगना पड़ता है उसे हमी जानते हैं। परंतु जो लोग बदमाश और जूआ चोर भी होते हैं परंतु साफ सुथरी पोशाक पहिने होते हैं तो उनसे सब लोग अदबसे पेश आ निकलते हैं।

यद्यपि नकली अमीराई का दूसरों पर बहुतही जल्दी प्रभाव पड़ता है इसलिये बहुतसे महाशय यह कह सकते हैं कि जमाने का ख्याल कर इस समय नकली अमीराई भी कामकी है, हम भी कहते हैं कि यह ठीक है परंतु जिस समय कोई काम किसी डाक्टर या वैद्य से पड़ जाता है उस समय यदि गरीबी हालतसे जाया जाय तो जल्दी आराम व कम खर्च होता है और यदि नकली अमीराईकी हालतमें जाया जाता है तो वैद्य किंवा डाक्टर उसे बड़ा आदमी समझता है दूनी फीस दूने दवाई के दाम चार्ज करता है परिणाम यह निकलता है कि वह नकली अमीराईके भक्त महाशय अपने घरकी बुन्याद देखकर उतना खर्च कर नहिं सकते इसलिये उस उत्पन्न हुए रोगके विना कारण भक्ष्य बन जाते हैं। इसी प्रकार गरीबी हालतमें वकील आदि भी से कम खर्चमें काम चल सकता है परंतु चटकीली पोशाक वा चेहरे की शानसे वे भी अधिक मांगते हैं इसलिये वहां हानि भी उठानी पड़ती है और सबसे बड़ी बात यह है कि नकली अमीराई से हम एकदम खोखे होते जा रहे हैं।

यहांतक नकली अमीराईके गुण और दोषोंपर बहुत कुछ ज्यादह ऊहापोह हो चुका अब प्रश्न यह है कि हमें किस ढंगसे रहना चाहिये? तो हमारी इस विषयमें यह राय है कि हमें अपनी आयके मुताबिक खर्च करना चाहिये यदि हमारे पास अच्छी आय हो और खर्च कम हो तो उस बाकी बचे रुपयेको देशोद्धार के कार्य वा धर्म कार्यों में खर्च करना चाहिये इसके अलावा जिन कार्यों के करने से हम अपने जीवन को सुखमय बिता सकें वैसे कार्य करने चाहिये किसीकी देखादेखी अपने जीवनकी दशा न ढालनी चाहिये इसका यह परिणाम निकलेगा कि समझदारीसे चलनेसे हमारे पास बहुत कुछ बच रहेगा हममें गंभीरता उदारता आदि गुणों का उदय होने

लगेगा । अपनी उन्नतिके कारणों की ओर हमारी दृष्टि मुड़ेगी किन्तु यदि हम दूसरों देखा कार्य करेंगे अमीराईके प्रवाह में बहेंगे तो यह निश्चित बात है

हम अपना सर्वस्व खो देंगे और शिरपर करज हो जानेसे रात दिन धन कमानेकी ज्वालासे जलते रहकर मनुष्य जीवनके फल धर्मसे हाथ धो बैठेंगे ।

शिशिर ।

शीतल हो पर शिशिर ! हाय तो भी तुम देह सुखाते हो ।
ओस बूंदको दिखा दिखा कर मेरा मन दहलाते हो ॥
आते हो जब हा दीनोंका रोदन बहुत कराते हो ।
कंपकर और सिकुड़ कर रहनेकी विद्या सिखलाते हो ॥ १ ॥
जिनके पास नहीं है कपड़ा उनपर जोर जनाते हो ।
वसन सहितको देख देखकर उलटे ही भग जाते हो ।
अथवा वस्त्र अस्त्र जो वेही तुमको मार भगाते हैं ।
किन्तु विचारे दीन व्यर्थ ही जीते जी मर जाते हैं ॥ २ ॥
जरा हवा लगते ही देखो पानी भी जम जाता है ।
उससे भी डर लगता सब जन इसमें तब यश गाता है ॥
शीतल वायु अंगमें सबके काटेसे वो देती है ।
तदपि विचारा कृषक खेतपर रखा रहा निज खेती है ॥ ३ ॥
उसको भी तुम निर्दयतासे बहुत दुःख ही देते हो ।
पिसे हुएको पीस पीसकर लाभ उठा क्या लेते हो ॥
इतना दुःख देख करके भी तुमको दया नहीं आती ।
वज्रमें नाराच संहनन देख लजाता यह छाती ॥ ४ ॥
किन्तु शिशिर यह भूल हमारी तुमको यदि दोषी बोलें ।
समझ जांय हम भूल अभी यदि ज्ञान नयन अपने खोलें ॥
तुमतो जड़हो तुम्हें दुःख सुखका भी तो कुछ ज्ञान नहीं ।
किन्तु हमारे सदृश मूर्ख जगमें भी होगा नहीं कहीं ॥ ५ ॥
यों तो बनी हमारी सूरत सुन्दर भोली भाली है ।
सम चतस्र संस्थान प्रकृति भी जिसके लिये निराली है ॥
किन्तु हमारा हृदय सरोवर देखो बिल्कुल खाली है ।
बाहर हमपर लाली है अरु भीतर भी चण्डाली है ॥ ६ ॥

पत्थर भी पसीज जाताहै लोहाभी गल जाता है ।
किन्तु बज्रसे बज्र हमारा हृदय दया क्या लाता है? ॥
" अकड़े हैं सबअंग किन्तु निज वच्चोंको चिपकाती है ।
फटा हुआ साड़ीका टुकड़ा बार बार सरकाती है ॥ ७ ॥
हा वच्चेके लिये नग्न है तदपि नहीं शर्माती है ।
तोभी देख दुखी वच्चेको हाय आंस भर लाती है ॥
ऐसी नारी दशा देखकर हमको दया न आती है ।
अतः नहीं फटती हा दुष्टा मदमाती यह छाती है ॥ ८ ॥
किन्तु दुःखोंसे भरी आह वह हमको शीघ्र जलावेगी ।
अपने किये दुष्टकर्मों का फलभी हमें चखावेगी ॥
इससे अच्छा यही कि उनको बन्धु जानकर अपनाओ ।
कूक सुनादो सब दीनोंको आओ बन्धु यहां आओ ॥ ९ ॥

दरबारीलाल न्यायतीर्थ
धर्माध्यापक स्या० वि० काशी ।

जैनियोंके ह्रासके कारणों पर एक दृष्टि ।

(आठवें अंकसे आगे)

हमने जो ऊपर भावी संतानकी उत्पत्ति अनुत्पत्ति के साथ जैनियों की संख्या के घटने और बढ़नेका कोई निश्चित (अविनाभावी) संबंध नहीं है ऐसा सिद्ध किया है उसे पढ़कर बहुत से पाठक चौंकेंगे और कहेंगे कि यह कभी नही हो सक्ता । हम यदि जैन हैं तो हमारे लड़के भी जैन धर्मको अवश्य ही पालन करेंगे जैसे कि हमारे माता पिता के जैनी होने से हम आजकल उसका पालन कर रहे हैं । परंतु थोड़ा सा विचार करने मात्र से ही इस महती शंका का समाधान हो जाता है। हम मानते हैं कि भारतवर्ष की रीति नीति के अनुसार जो मा बाप का धर्म होता है वही पुत्र पुत्रियों का भी होता है। हम मानते हैं कि मा बाप जिस बातसे अपनी संतान का हित समझते हैं उसी की शिक्षा पुत्र पुत्रियों को दिया करते हैं। परंतु आज कल जो लोगों की प्रवृत्ति देखनेमें आती है उसके अनुसार विचार करने से मालूम पड़ता है कि भेड़ियाधसान की गंध सब समाज और समस्त भारत में ही दिन दूनी रात चौगनी बढ़ती जा रही है या बढ़ गई है। यद्यपि कुछ लोग यह भी कहते सुनाई देते हैं कि हिन्दुस्तान में विचार स्वातंत्र्य की दिन दिन तरक्की हो रही है और यह शायद किसीअंश में सच भी हो परंतु स्वतंत्रविचारियों में ही जब परतंत्रता की गहरी गंध आती दीखती है तो उस पर सर्वथा विश्वास करने को जी नहीं चाहता। इसलिये

जब कि लोगों की देखादेखी भौतिक सभ्यता को ही कल्याण करने वाली समझने वालों की गिनती दिन दिन बढती जा रही है और उसी के पक्षपाती हो लोग अपनी संतान को भी उसी [भौतिक] की शिक्षा से शिक्षित करने में दत्तचित्त हो रहे हैं तब आध्यात्मिक सभ्यता के बल पर जिसकी न्यू जमी है और सिवा आत्मोन्नति के जिसका अन्य कोई स्वरूप ही नहीं है उस जैन धर्मका प्रचार मा बाप जब कि वर्तमान संतान में ही नहीं करते तब अपनी भावी संतान में करेंगे यह कैसे कहा जा सकता है ? और जब भविष्य संदेह की अंधेरी कोठड़ी में बंद है तब बादल उमड़े देखकर पहिले दिनका भरा हुआ बासा जल कैसे फैला दिया जाय ? वर्तमान मे जो जैन नामधारियों की प्रचलित रीति नीतियां हैं जिनके भले बुरे होने में एक मत नहीं है उनका सुधार कैसे कर देनेके लिये तयार हुआ जाय ?

हां ! यदि आज इसबातका सर्वथा निश्चय नहीं, तो कुछभी आशा हो जाय कि हमारी भावी संतान अवश्य जैन धर्मके पालने वाली होगी समाजमें भविष्यतके युवकों को अपने धर्मका भक्त बनानेके लिये यथेष्ट साधन मौजूद हैं उनका जीवन धर्म अर्थ काम तीनों पुरुषार्थोंका एक दूसरे से बिना बाधा दिये व्यतीत होगा उनमें वास्तविक स्व परहित करनेकी शक्ति व्यक्त हो जायगी तो हम सब प्रकारके रीतिरिवाजोंको बदलनेके लिये तयार हो सके हैं। परन्तु जब इस प्रकारकी आशा फली भूत होनेका कोई कारण नहीं दीखता तब जो धर्मप्रचार वा धार्मिक लोगोंकी वृद्धिके लोभसे अपने अनुभव और धर्मशास्त्रोंकी आज्ञाके विरुद्ध अपने सरीखे रागिये की बात मान कोई कानून पास कर डालें और उसपर चलनेके लिये तयार हो जाय तो यह बुद्धिमानी का काम नहीं कहा जा सकता और न इससे कोई सुफल निकल सकता है।

स्वर्गीय पंडित टोडमरलजी ने अपने मोक्ष मार्ग प्रकाशक ग्रंथमें वास्तविक जैन कौन है आजकल जो जैनी हैं वे किस प्रकारके है और एक सच्चे जैन कहलाने वाले को कैसा बनना चाहिये आदि बातों पर विवेचन करते हुये लिखा है कि—

" इहां कोई जीव तो कुल क्रमकरि ही जैनी है जैन धर्मका स्वरूप जानते नाही। परंतु कुलविषै जैसी प्रवृत्ति चली आई, तैसें ही प्रवर्त्तै है। सो जैसे अन्य मती अपने कुल धर्म विषै प्रवर्त्तें है तैसें ही यहु प्रवर्त्तै है। जो कुल क्रमही तैं धर्म होय तो मुसलमान आदि सबही धर्मात्मा होइ। जैन धरमका विशेष कहा रह्या सोई कह्या है—

लोयम्मि रायणीई णायंण कुलकम्म कइयावि।

किं पुण तिलोयपहुणो जिणंदधम्माहिगारम्मि॥

लोक विषै यहु राजनीति है—कदाचित् कुलक्रम करि न्याय नाही होय है। जाका कुल चोर होइ ताकौ चोर करि पकरै तो वाका कुलक्रम जानि छोडै नाही दंडही दे। तौ त्रिलोक प्रभु जिनेंद्र देवके धरमका अधिकार विषै कहा कुलक्रम अनुसार न्याय संभवे ?"

इन पंक्तियों से बिल्कुल साफ हो जाता है कि कुल क्रमसे चले आये जैन और अन्य मिथ्यात्वियों में कोई अंतर नहीं है। जिस प्रकार अजैन जैन धरमके तत्वों से अज्ञात होने के कारण अपनी आत्माका वास्तविक स्वरूप नहीं जान सकता और इसलिये मनुष्य जन्मका सुफल नहीं पा सकता उसी प्रकार बाप दादे जैनी होने से उनका सिर्फ रीति रिवाज मंदिर जाना आदि कर लेने वाले परंतु तत्वज्ञानसे सर्वथा अनभिज्ञ मनुष्य जैनी नहीं कहला सकते और जैनी कह

लावें तो भी उनसे जैन समाज वा उनकी आत्माका कोई सच्चा हित नहीं हो सकता। इसलिये यह भी कदाचित मान लिया जाय कि विधवा विवाह या अन्य किसी अवैध उपायों से बढ़ाई गई जैननामधारियों की संतान जैनी ही होगी; तो भी उसके कुलक्रमी तत्वज्ञानसे विमुख जैनी होनेके कारण जैन समाज की उनसे उन्नति हुई—यह नहीं कहा जा सकता।

जैन समाजकी अवनति होनेका कारण उसमें सद्ज्ञानके प्रचार का अभाव ही है लौकिक भाषा वा अन्य बातोंका ज्ञान प्राप्त करने में तो मनुष्य स्वयं ही अग्रसर हो जाता है। अनादि कालसे लगे हुए काम क्रोध मान माया लोभ आदि कषायों की प्रेरणासे उनके अनुसार प्रवर्त्तन करनेमें किसी भी विशेष सहायक की आवश्यकता नहीं पड़ती। जीवने कोई पर्याय धारणकी, उसमें मिलनेवाले सुभीतों को अपना सहायक बना विषय वासना को पुष्टि करनेमें अपनी सामर्थ्य लगाना प्रारंभ कर दिया यही कारण है कि मनुष्य पर्याय धारी जीव भी देश कालानुसार अपने कषाय पोषक पदार्थोंको अपनानेमें ही अपना हित समझता है। अंग्रेजी राज्यके आनेके समयसे लेकर अब तकको गति और वर्तमान घटनाओं के साथ मिलान करनेमें स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि पहिले लोग फारसी और उर्दू भाषा साहित्य ज्ञानसे अपनी जीवन यात्रा व विषय वासनाकी पूर्ति निर्विघ्न समाप्त हो जाती समझते थे। इसलिये उस जमानेके लोग वही पढ़ना लिखना पसंद करते थे। उसी साहित्य-ज्ञानसे अपने को ज्ञानी मानते थे और आजकल अंग्रेजी राज्य होने के कारण अंग्रेजी भाषाका ज्ञान व उसका साहित्य-मनन ही अपनी विषयपोषकतामें सहायक माना व देखा जाता है। इसलिये लोग उसका संपादन करना ही अपना ध्येय समझते हैं। यही कारण है कि मा बाप करज लेकर, भूखों रहकर भी अपने संतान को अंग्रेजी पढ़ाना ही मुख्य कर्तव्य समझते हैं। समाजके धनी व्यापारी गण भी इसी राजकीय भाषाका ज्ञान अपने व्यापार व धन कमानेमें सहायक समझ अपनी संतान में उत्पन्न करनेकी चेष्टा करते हैं। और यही संस्कृत प्राकृत भाषा; जो कि भारतीय राज्यके साथ नष्ट प्राय हो चुकी हैं, जिनके ज्ञानपर ही धार्मिक तत्व ज्ञान अवलंबित है, उसका ऐहिक सुख सामग्री जुटाने में कोई उपयोग होता न देख लोगोंने आज कल नहीं सुहाने अनादर करना शुरू कर दिया है। उसके ज्ञाता अनुभवी इने गिने रह गये हैं और दिन दिन क्षीण होते जा रहे हैं। भारतकी पुरातन सभ्यता और तत्व ज्ञान इनही (संस्कृत प्राकृत) भाषाओंमें संगृहीत होनेके कारण लोग अपनी पूर्वजों की ज्ञानसंपदासे कोसों दूर होते जा रहे हैं। एक जैनधर्मकी ही क्या; हिन्दुस्तानके किसी भी प्राचीन धर्मकी उन्नति इस समय नहीं होती दिखलाई देती। परम्परासे जिन तत्वज्ञानकी बातोंका उपदेश अपने अपने मतानुयाइयों की संतानमें उस उस मतके अनुभवी ज्ञाता उपदेश दे संस्कारयुक्त करते थे। उनका उक्त कारणों से सभ्य संसारमें सम्मान न होने से ह्रास होता गया। वे एक एक कर अनादर की दृष्टिसे देखे जाने के कारण अपना पद आगामी संतानको देनेसे हिचकिचाने लगे और उनके अनुयायी भी अपनी संतान में उस उस मतकोई विशेष प्रष्ट सांसारिक फल उस ज्ञानसे न फलता देख वैसी शिक्षा दिलानेसे हाथ खींचने लगे। इन सबका फल यह हुआ कि थोड़ेही दिनों बाद जो बातें युक्ति प्रयुक्त द्वारा वाद विवाद पूर्वक निश्चित हो अपने २ अनुयाइयोंमें प्रचलित की गई थी वे रूढि रूपमें परिणत हो गईं। लोग उनको अपने २

बाप दादोंसे प्रचलित रीति होने के कारण सम्मानकी दृष्टिसे यद्यपि देखने और करने लगे; परन्तु वास्तविक उन रीतियों के आचरण प्रचालनका क्या कारण था वह सब भूल गये। कारण भूल जानेपर बिना अभिप्राय जाना हुआ आचरण कितने दिन तक ठहर सक्ता है? बिना किसी विशेष प्रयोजनके कौन नाना तरह के नित्य झगड़ोंमें पड़ना पसंद करेगा? इसलिये जो तत्व ज्ञानकी बातों के अनुसार आचरण करना जारी था धीरे धीरे कम होने लगा। लोग अपने २ दिमागकी ताकतके अनुसार उनमें दोषपूर्ण ऊहापोह निकाल हेय समझने लगे और इस तरह तमाम अच्छे २ आचरण शिथिल हो चौपट हो गये। जो कुछ भी बचे खुचे रहे वे यथावत् पाले न जानेके कारण सुख शांति उत्पन्न करनेवालों की जगह दुःख अशांति पैदा करने वाले हो गये। और उनका नंबर आज इतना नीचा हो गया कि आज कल के शिक्षितों को गिनतीमें गिने जाने के तीव्र अभिलाषी लोग उन्हें अवनतिका हेतु कह छुड़ाने के लिये बाध्य करने लगे हैं। जो लोग उन बातोंका आचरण करते हैं और उनसे कोई लाभ नहीं तो हानि होती हुई भी नहीं देखते हैं उन्हें भेड़िया धसान में पड़े हुये, भोले बच्चा, रूढ़िबाज आदि तरह तरहके विशेषण दे घृणा पैदा कराने की चेष्टा करते हैं। (क्रमशः)

पद्मावती परिषद्के लिये प्रस्ताव।

(१)

हमने गत अंकमें अधिवेशन के लिये सभापतियों के नाम चुनकर उपस्थित किये थे सभापति का चुनाव शीघ्र होना चाहिये। फीरोजाबाद के भाइयोंको चाहिये कि स्वागत कारिणी कमेटी स्थापित कर परिषद्के अधिवेशन का आन्दोलन करें। और उसके लिये प्रबंध करें। इस वर्ष परिषद फीरोजाबाद नगरमें हो रही है फीरोजाबादके भाइयों को उसके स्वागत करने और उसकी सफलता होने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना आवश्यक है। हम अधिवेशन के लिये प्रस्ताव करते हैं आशा है कि परिषद इनपर विचार कर उचित प्रबंध करेगी :

(१) परिषद्की पाठशाला (जो एटामें स्थापित है) की अवस्था शोचनीय है उसको उचित व्यवस्था होने के लिये निम्न लिखित बातें निश्चित की जावें।

(क) इसकी आमदनी कम है इसलिये यह नियम सब पंचायतोंमें प्रचलित किया जावे कि प्रत्येक विवाह में दश रुपया सैंकड़ा के हिसाबसे इस पाठशाला के लिये रकम दी जावे इस नियमका पालन वर पक्ष और लड़की पक्ष वाले दोनोंको करना चाहिये। वरपक्ष वाले मंदिर देनके अनुसार और लड़की पक्ष वाले लगन दरवाजे की देन के अनुसार देवें।

(ख) प्रत्येक पद्मावती पुरवाल जैन गृहस्थको अपनी आमद के ऊपर एक पैसा रुपया इसकी सहायता के लिये देना चाहिये। जो किसीको असह्य नहीं हो सक्ता है।

[ग] पाठशालाके साथ एक छात्रालय भी रक्खा जावे जिसमें हर गांवके विद्यार्थियों के रहन सहन खान पानादिक की उचित व्यवस्था की जावे।

(घ) जो अध्यापक हों वे ही सुपरिन्टेंडेंटोंका कार्य करें।

(ङ) परगांवके विद्यार्थी पेड, हाफ पेड, अनपेड रक्खे जावें।

(च) असमर्थ छात्रोंके लिये जहां तक हो सके ऐसा किया जावै कि जिस जगहका विद्यार्थी होवे उसके लिये उसी जगहकी पंचायतसे स्कालरशिप लेनेकी व्यवस्था की जावै।

(छ) पाठशालाके स्थानका विचार किया जावै।

२ परिषद्के पास हुवे प्रस्तावोंको अमलमें लानेके लिये पंचायतियोंको प्रेरणा की जावै।

३ परिषद्की सहायतार्थ जिन सज्जनोंने चंदा स्वीकार किया है उनसे रुपया वसूल होनेके लिये मिती मुकर्रर की जावै। मुकर्रर मिती तक रुपया अदा हो जाना चाहिये। अगर मुकर्रर मिती तक किसीका न आवै तो उनसे जवाब लिया जावै।

४ परिषदका रुपया जो एकत्रित होवे उसमे १०००) तकको कोषाध्यक्ष अपने पास या कहीं भी ब्याजके उपर लगाता रहे। एक हजारके उपरकी रकम से किसी मिल्स या कंपनीके सेयर खरीद लिये जावे या उनमे ब्याज पर जमा किया जावे।

५ कमसे कम एक उपदेशक अवश्यक नियत किया जावे जो सब जगह भ्रमणकर परिषद्के प्रस्तावोंका प्रचार करे।

६ सभाके सब विभाग प्रबंध विभागमें अंतर्गत किये जावें।

७ महामंत्रीकी सहीसे कोषाध्यक्ष रुपया किसीको देवेंगे विना महामंत्रीकी सहीसे जो रुपया कोषाध्यक्ष देंगे उसके जोखमदार कोषाध्यक्ष होवेंगे।

८ परिषद्के कार्य कर्ता वो ही नियत किये जावें जो कार्य करनेके उत्सुक और उत्साही हों।

९ 'पद्मावती पुरवाल' के संपादक और प्रकाशक महोदयोंने इस पत्रकी उन्नतिके लिये पूर्ण परिश्रम उठाया है इसके लिये सभाकी तरफसे उन्हें धन्यवाद दिया जावे।

निवेदक—

अमोलकचंद उडेसरीय, इन्दौर।

(२)

१ परिषद्की रजिष्टरी का प्रस्ताव आज कई वरससे चला आरहा है पर अभी तक कार्य रूप में परिणत नहीं हुआ इसलिये पुनः उसको अमलमें लानेकी कोशिश करना चाहिये।

२ परिषद्के पत्रका मासिक से पाक्षिक हो आकार बढ जाना चाहिये और इसके घाटेका कोई अच्छा सुलभ प्रयत्न कर देना उचित है।

३ जातीय पत्रके प्रचारार्थ और समाजकी उन्नति के लिये १ या २ उपदेशक नियत होने चाहिये। यदि कोई महाशय यह काम विना वेतन स्वीकार करले तब तो ठीक नहीं वेतनिक नियत कर हर एक गांवमें उपदेशकका भ्रमण कराना चाहिये।

४ पुरानी प्रथा जो पंचायतों द्वारा सब झगडे फैसल होनेकी थी उसका पुनरुद्धार होना चाहिये और इसके लिये पंचायतों को दृढ होनेकी प्रेरणा की जाय।

५ विरोधनाशक विभाग का काम दृढताके साथ किया जाय इसके लिये उसके मंत्री को प्रेरणा की जाय और पंचायतों को अपने फैसले पहिले तो स्वयं तय कर लेने चाहिये यदि कदाचित् वे न कर सकें तो इस परिषद् द्वारा फैसला कराने की प्रेरणा की जाय।

६ मुझे ख्याल पडता है कि प्रथम सालकी नियमावलीमें यह रोक लगाई गई थी कि समाजमेंसे कोई भाई द्रव्य लेकर [तनखा ले] जिनेंद्रकी पूजन न करे और जहां २ करते हों उनको रोक दिया जाय। लेकिन

न मालूम फिर अगले सालकी नियमावली में यह प्रस्ताव क्यों रद्द किया गया और आजतक उसकी कोई अमली कार्यवाही देखनेमें न आई। इसलिये फिर इसका आन्दोलन होना चाहिये।

७ जिन २ गावों में मुद्दत से आपसी झगड़ों के कारण वैर विरोध चला आ रहा है उनकी फिहरिस्त बनाई जाय जिससे विरोध मेटने में सुभीता हो।

८ इस सालके जल्से के सभापति श्रीमान् हेडमास्टर बंशीधरजी चुने जांय।

९ जातिके रसमों की एक पुस्तक तयार की जाय और उसके अनुसार ही सब लोगोंको प्रवर्त्तने की प्रेरणा की जाय।

१० परिषद्की पाठशाला एटासे उठाकर फिरोजाबादमें स्थापित की जाय क्योंकि यह स्थान रेल आदिके होनेमें अधिक सुभीतेका है।

समाज सेवक—पं० कञ्चनलाल, देहली।

(३)

१ परिषद्के सभापतिका आसन परोपकारी उत्साही विद्वान तथा सब जातिसे परिचित हों उन्हें दिया जाय। मेरी राय में निम्न लिखित महानुभाव इस पदके योग्य हैं—

(क) श्रीमान् मुंशी बंशीधरजी जैन हेडमास्टर टौन स्कूल फिरोजाबाद।

(ख) श्रीमान भगवानदास जी जैन बड़नगर

२ परिषद्के कार्यकर्त्ताओंका चुनाव फिरसे किया जाय और वे उत्साही विद्वान व समाज हितैषी हों।

३ परिषद्की पाठशाला रेल्वे स्टेशन के समीप फिरोजाबाद शिकोहाबाद, टूंडला, एत्मादपुर आदि किसी स्थानमें रक्खी जाय।

समाजहितैषी—फूलचन्द जैन शिकोहाबाद।

विगत आमदनी श्रीपद्मावती (पुरवाल) परिषद् मालवा माह चैत्रसे भाद्रपद तक मास ६ की

१) श्रीयुत ताराचंदजी इछावर
२) " सिंगई गनपतलालजी सारंगपुर
२) " दौलतरामजी गुवाड़या
२) " बाबलरामजी खेड़ाबद
२) " सुकदेवजी कस्तूरचंदजी बुड़लाया
१) " मथरामलजी सारंगपुर
३) " प्यारेलालजी धनखेड़ी
२) " हजारीलालजी कन्हैयालालजी बोडा
७) " मोहनलालजी सर्दारमलजी
२) " नारयालुकमचंदजीगेंदालालजीहोशंगाबाद
१) " मोतीलालजी जैनेंद्रकुमारजी सुजालपुर
२) " चंपालालजी गबेलालजी सुजालपुर
॥) " सर्दारमलजी छावनी सोहौर
॥) " मन्नूलालजी " "
॥) " ज्ञानलालजी " "
॥) " बाबलरामजी आष्टे वाले
॥) " बा: दिगम्बरदास "
५) " लच्छीरामजी होशंगाबाद
१) " कपूरचंदजी बकसोलालजी छावनी सोहौर

कुल ३५॥) और भाई चुन्नीलालजी हेमराजजी साहेब आष्टेवालेने २५) स्थायी फंडमें दिये हैं इस प्रकार ६०॥) की सहायता प्राप्त हुई जिसके वास्ते दातारोंको बहुत धन्यवाद है और आशा है सदैव इसी प्रकार इस सभाको तन मन धनसे सहायता देते रहेंगे।

मंत्री—जबरचंद मोतीलाल (भोपाल)

फूटकी जड।

(गल्प)

—~—

(लेखक— श्रीयुत धन्यकुमार जैन 'सिंह' ।)

(१)

संध्याका समय है। कलकत्तेके डिडिन स्क्वायर बागमें हमारे पड़ोसी बाबू खूबचंद्रजी टहल रहे हैं। सरकारी बत्ती सब जल चुकी समय भी साढ़े सात बजे के करीब हो चुका। परंतु और दिनकी तरह आज वे बत्ती जलने से पहिले घर नहीं लौटे! घरके लोगों को चिन्ता हुई। जब घड़ीमें टन टन करके नव बज गये तो उनका (खूबचंद्रजीका) बड़ा लड़का सुशीलाल अपने दरवानके साथ पिताकी खोजमें निकला।

इधर बा० खूबचंद्रजी अपने अनन्य मित्र बाबू जुगलकिशोरजी के घर कुछ परामर्श करनेके लिये चले गये थे। सुशीलाल, डिडिनस्क्वायर आदि जहां जहां वे जाया करते थे, ढूंढ आया कहीं भी उनका पता न चला। आखिर करीब ११॥ बजे वह घर लौट आया। सारी रात घरमें किसीको भी नींद नहीं आई। बाहर रात बिताना यह खूबचंद्रजी के लिये पहिला ही मौका था। इसीलिये घर के लोग और भी घबराये।

पाठकगण बा० खूबचंद्रजी और बा० जुगलकिशोर जी से अपरिचित हैं, अतएव उनका परिचय देना हम अपना फर्ज समझते हैं। बा० जुगलकिशोर जी कलकत्ता हाईकोर्टके एक प्रधान वकील हैं। आप M. A. B. L. उपाधिके अधिकारी हैं। आपकी वार्षिक आय कमसे कम दस हजार की समझनी चाहिये पर वह वकालातसे नहीं। आप वकालात को आजीविका को —कुछ या अपरिमित धन हड़पकर दोषीको निर्दोष और निर्दोषका दोषी बतानेकी कोशिशको न्यायकी जड़ धनकी सेवामें अर्पण कर देने की घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं और न्यायकी पक्ष लेकर बिना फीस लिये ही गरीब निरपराधियोंकी रक्षा किया करते हैं। पाठकोंके आश्चर्य निवारणार्थ इतना और भी कह देना आवश्यक है कि—आपको धर्म-शास्त्रका भी अच्छा परिज्ञान है। उनको लौ हमेशा धर्म की ओर लगी रही है। इसका कारण, उनको केवल अंगरेजी-शिक्षा ही नहीं मिली। स्कूली शिक्षाके साथ साथ धार्मिक शिक्षासे भी दीक्षित होनेका उन्हें सौभाग्य प्राप्त हुआ है। और खूबचंद्रजी के बाप दादोंके अनेक परिश्रमसे प्राप्त की हुई कुछ जमींदारी है उसीसे वे आज तक सानंद जीवन यापन करते आये हैं। आज उनकी सानंदतामें उनके छोटे भाई बिमलचंदने कुछ बाधा पहुंचाई है। इसी मारे आज उन्हें शीत ऋतु की रात्रि दूसरोंके घर बितानी पड़ी है।

कौन जानता था कि श्रीमाला के आ जानेसे खूबचंदजी को आज इतनी अशांति भोगनी पड़ेगी, अपने परम स्नेही भाई को आज उन्हें दूसरी दृष्टिसे देखना पड़ेगा! यह कौन जानता था कि बिमलचंद बड़ा हो कर अपने भाई के आंखोंका कांटा बन जायगा! किसे मालूम थी कि देशका हित चाहने वाले देशके लिये बड़ी बड़ी सभा सोसाइटियोंमें बेधड़क व्याख्यान देने

वाले, अपनेको परोपकारकी बहती हुई धारामें बहाने वाले और अपने को समाज का नेता मान कर सामाजिक कार्योंमें हाथ डालकर उसे बड़ी सावधानी से पूरा करने वाले ही आज अपनी स्त्री (श्रीमाला) की बात को सर्वज्ञके वाक्य समझ, उस पर विश्वास कर अपने स्नेही, छोटे भाई को भी शत्रु समझने लगेंगे !

(२)

खूबचंद्र—'मित्र ! मैं यह नहीं कह रहा हूं कि विमलको घरसे निकाल दो। मेरी यह इच्छा है कि वह अपना आधा हिस्सा लेकर पृथक रहे।"

जुगलकिशोर—"यह तो मेरे अनेक समझाने-बुझाने पर आपकी इच्छा हुई है। आप घरसे तो यही मनसूवा बांध कर चले थे ?"

खूबचन्द्र— किसी अंशमें वैसी भी इच्छा थी; पर अब वैसा करनेमें मेरा हृदय गवाही नहीं देता। मैं चाहता हूं वह पृथक हो रहे; जिससे घरमें किसी प्रकार की कलह न होने पावे। हम कलह से बहुत घबराते हैं।"

जुगल०—'कलह से घबराते हैं—इस पर तो यह हाल, कहीं कलह-प्रिय होते तो न मालूम क्या कर डालते।"

खूबचंद्र—'खैर, अब आप क्या राय देते हैं? क्या करनेसे मेरा इस आफतसे पिंड छूट सकता है ?"

जुगल —"सबसे बढ़िया राय तो यही हो सकती है कि आप अपना दूसरा विवाह किसी सुशिक्षिता से करलें ; और अपनी वर्तमान श्रीमतीजीके लिये एक 'श्रीमती विद्यालय' खोलकर उसमें उन्हें भर्ती कर दें अथवा यावज्जीवनके लिये उन्हें पेन्सिन दे दें।"

खूबचंद्र—'यह दिल्लगी का मौका नहीं है।—सचमुच मुझे इस कलहसे बड़ा दुःख होता है।"

जुगल०—"मैं यह कब कहता हूं कि आपको सुख होता है?—भाई जी! इन औरतोंके झगड़ोंमें जब आप सरीखे भी उलझने लगेंगे तो . . . . "

खूबचंद्र—"बस, रहने दो ! मैं चला, इस समय आपको कुछ अन्यमनस्क देख रहा हूं, फिर किसी समय आऊंगा।"

जुगल०—"अजी जनाब, जरा ठहरिये तो सही—मैं आपको वह सलाह दूंगा कि जिससे दोनो हाथ लड्डू हों !"

खूबचंद्र घर जाना चाहते थे ; पर मित्र के अत्यंत आग्रहसे आज उन्हें उन्हींके घर सोना पड़ा। रातभर खूबचंद्रको निद्रा नहीं आई, वह सोचने लगे—'जुगलने कहा तो ठीक, वास्तवमें स्त्रियोंके अशिक्षित रहनेसे ही घरेलू झगड़े हुआ करते हैं। उनकी मूर्खतामें शिक्षित पुरुष भी फंस जाते हैं—इसका एक दृष्टांत तो खुद मैं ही बन गया हूं। ओः! घरसे चलते समय मेरे विचार कैसे घृणित थे ! यदि जुगल भी मेरी तरह अविचारितरम्य होता तो शायद विमल को सचमुच ही गली गली भीख मांगनी पड़ती ! और श्रीमालाकी कुटिल-प्रतिज्ञा भी पूर्ण हो जाती !"

(३)

प्रातःकाल ही जब खूबचंद्रजी घर लौटे तब श्रीमालाने बहुत ही करुण स्वरसे रात भर का किस्सा सुनाया। जब खूबचंद्र को उसने अन्य मनस्क देखा तो उसे मालूम होगया कि कुछ दालमें काला है। वह उस समय तो कुछ न बोली रात्रि को सोते समय उसने प्रश्नों की लड़ी बांध दी—'रातभर कहां सोये थे कहां गये थे क्या बात थी ?" इत्यादि इन। प्रश्नोंका उसे एक भी उत्तर न मिला। उसने बहुतसे मायाजाल रचे ; पर सब व्यर्थ हुए। बहुत आग्रह करनेपर

खूबचंद्रने केवल इतना ही कहा कि—'तू क्या चाहती है?" इसका अर्थ मूर्खा कुछ न समझ सकी। रातभर दोनो ही चिन्तामें रहे।

सवेरा हुआ शौच स्नानादि करनेके बाद खूबचंद मंदिर गये। आज उनका स्वाध्यायमें खूब चित्त लगा करीब ११ बजे तक स्वाध्याय करते रहे। इसके बाद जब वे घर पहुंचे; तो उन्होंने वहांके ढंगही न्यारे पाये चौका सूना पड़ा है, मुन्नीलाल बिना खाये ही स्कूल गया है, विमलचंद अपने कमरेमें बैठा हुआ रो रहा है श्रीमाला कोठार का ताला बंद कर ताली ले अपनी भायली कान्ता के घर चली गई है!—इन सब बातों से खूबचंद को पहिले तो कुछ संसारसे घृणा उत्पन्न हुई। बाद मोहनीय कमकी तीव्रतासे भाईके दुःखमें दुःख हुआ। वे घर से निकले और टहलते टहलते स्कूल तक पहुचे; जहां मुन्नीलाल पढ़ता था। हेडमास्टर से कहने पर मुन्नीलालको छुट्टी मिली, वह पिताके साथ घर लौटा। खूबचंदने बाजारसे सामान मंगा कर अपने हाथसे जैसा बना वैसा भोजन बनाया और भाई तथा पुत्रको खिलाकर खुद भी थोड़ा सा खाया। बाद वे फिर जुगलकिशोरजी के घर जाने के लिये तैयार हुए। जूता पहिन कर एकही कदम बढ़े थे कि, उनकी स्त्री श्रीमालाने आकर उनको रोक दिया।

श्रीमालाका आज बड़ा विलक्षण भेष है। उसके मस्तक के केश सूखे और बिखरे हुये थे! उसकी भौंहें चढ़ रहीं हैं। उसकी दृष्टि पागलकी भांति अर्थशून्य है! इस आश्चर्यजनक परिवर्तनने खूबचंदके हृदयपर पर्देका काम किया। खूबचंद विह्वल हो कर बार बार यही पूछने लगे—"माला! आज तुम्हारा यह क्या हाल है?" परन्तु श्रीमालाने कुछभी उत्तर नहीं दिया। वह उनका हाथ पकड़ कर जीना पर चढ़ी। धीरे धीरे अपने सोनेके कमरे तक आई। कमरेका ताला खोल कर भीतर जाकर खड़ी हो गई। खूबचंदने अपना हाथ छुड़ाना चाहा; पर उसने न छोड़ा। उसकी इन चेष्टाओं से खूबचंदको कुछ भय हुआ। वे श्रीमालासे फिर पूछने लगे "क्या बात है? क्यों तुम्हारी ऐसी दशा है?—आज रोटी भी नहीं की!—क्या मुझे इन सब बातोंका भेद नहीं बताओगी?"

श्रीमाला—'बताऊं किसे? कोई सुनने वाला ही तब न? हाय भगवान! मुझको इतने दुखमें भी जीती छोड़ी—" इतना कह कर आखोंमें आंसू भर लाई।

वाह! वाहरी औरतो! तुम्हारी तारीफ किये विना लेखनी नहीं मानती। मूर्ख होने पर भी तुम लोगों में इतनी मायाचारी! इतनी चालाकी!! इतनी वाक्यपटुता!!! हे मूर्खाओ! तुम्हें ही धन्य है! यदि तुममें भी ये बातें न होतीं तो पुरुषों का भी कल्याण होना असंभव था। न तुम्हारे ये मायाजाल दीख पड़ते और न पुरुषों को संसारसे घृणा होती। अतएव तुम्हें बारंबार धन्यवाद!!!

(४)

पाठकोंको आश्चर्य होगा कि श्रीमाला युवती होकर [क्योंकि कुछ प्रौढ़ता भी आनी चाहिये] इस प्रकारके बनावटी ढंग क्यों फैलाती है? क्या उसे अपने बराबरके पुत्रका जरा भी लिहाज नहीं?—इन प्रश्नों के उत्तर से पाठकोंको एक और नवीन बात मालूम होगी! वह यह कि—खूबचंद्रजीकी यह द्वितीय पत्नी है। हालहीमें नव हजार रुपये लेकर किसी धनके भूखे कसाई बापने अपनी लड़की इनके सुपुर्द की है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि श्रीमालाकी सुंदरताने खूबचंद्र सरीखे शिक्षित पुरुषको भी हिताहित ज्ञान शून्य कर दिया है।

पाठकोंको उस दिनकी घटना याद होगी । उसके बाद और भी बहुत सी घटनायें घट चुकी हैं । श्रीमाला जैसे बने वैसे खूबचंद्रके हृदयसे विमलचंद्र और मुन्नीलालको उठा कर दूर फेंकना चाहती है—यही उन सब घटनाओंका सारांश है । विमलचंद्रके माथे उसने बहुतसे दोष मढ़े; जिनका उल्लेख करते हुए भी हमें घृणा और दुख होता है । पाठक उसका स्वयं अनुमान कर हमें मुक्ति देंगे ऐसी आशा है ।

(५)

जिस प्रकार संसारकी गति विचित्र है, ठीक उसी तरह मनकी गति भी विलक्षण होती है इसमें संदेह नहीं ! बा० जुगलकिशोरजी से विदा होते समय खूबचंद्रने मनही मन प्रण किया था कि—'श्रीमाला की बातका विश्वास नहीं करूंगा, वह मायाका जाल है ।'—आश्चर्य है, उस पुरुषके प्रणको स्त्रीने अपने मायाचारीके व्यवहारसे पास तक न भटकने दिया !

विलासी खूबचंद्रने समाज देश और परोपकारको जहन्नम भेज दिया है ! भाई और पुत्रको हृदयसे उठा कर कांटोंके जंगलमें फेंक दिया है ! और खुद पवित्र गृहस्थाश्रमसे उठकर विलास—वनमें वायु सेवन कर रहे हैं ।

खूबचंद्र ! यदि तुमसे कोई यह प्रश्न करे कि—"विलास-वनकी वायुका तुम किस अभिप्रायसे सेवन कर रहे हो ?" तो तुम शायद उत्तर दोगे "यह संसारका सुख है । संसार में रह कर जिसने इस मजे को न चखा, उसमें मनुष्यत्व ही नहीं ।" यदि कोई यह पूछे कि—"तुमने संसारमें कौनसा पुरुषार्थ किया है ?" तो तुम यही न कहोगे कि—"जिससे जितना बने उसे उतना अवश्य करना चाहिये । मुझसे जितना बना 'धर्म' किया, यथा शक्ति 'अर्थ' भी उपार्जन किया और 'काम' में तो मेरा नम्बर अव्वल है ही । बस, जगत्के ये ही तीन पुरुषार्थ हैं ।"

परन्तु याद रक्खो ! तुम्हारे इन उत्तरोंसे विचारवान, श्रीमान् मनुष्योंका हृदय कदापि तुमसे द्वेष भाव न धरेगा, वह केवल यही चाहेगा कि, तुम्हारा यह सिद्धांत किसी दिन तुम्हें ही 'झूठा' और 'भ्रम' मालूम पड़ने लगे; जिससे तुम अपने मनुष्य जन्मको सफल बना सको ।

(६)

विमलचंद्र की अवस्था कैसी है—यह पाठकों को विना जताये ही ज्ञात हो चुकी होगी । आजका दिन विमलके लिये अमावस्याकी रात्रि है ! उसे चारों ओर घोर अंधकार सा दिखाई दे रहा है ! उसके नाम आज ही 'वारंट' निकला है ! कारण—उसके ऊपर एक अभियोग लगाया गया है । "किसने लगाया और किस दोष से ? अभियोग सच्चा है या झूठा ?"—यह प्रश्न हर एक विचारवान व्यक्तिके हृदयमें उत्पन्न होगा यह हमें विश्वास है । परन्तु इसका उत्तर सुनते ही जिनके हृदयमें जरा भी मनुष्यत्व की झलक मौजूद है, उनका कलेजा अपना स्थान छोड़ देगा, हृदय का चकनाचूर हो जायगा, आंखोंके सामने घोर अंधकार छा जायगा और फिर इस असार संसारसे कमसे कम इतनी घृणा तो अवश्य ही उत्पन्न करा देगा; जो उनके आत्म कल्याणमें 'कारण' का काम दे सके ।

अभियोग चलाया है—सहोदर बड़े भाईने ! अपनेको शिक्षित, देश हितैषी और समाजका नेता समझने वाले पुरुषने ! किसकी सलाह से ?—अपनी नव विवाहिता द्वितीय पत्नी, स्त्री की परामर्श से ! कैसा ? झूठा !! किस पर ?—अपने सहोदर छोटे भाई पर !!! किस लिये ?—संसारके सुखका छोर ढूढनेके लिये ! संसार में विलासिताका उच्च आदर्श बननेके लिये ।

इससे लाभ ?—इस प्रश्नका उत्तर विलासी खूबचंद्र के पास नहीं है है हृदयवान मनुष्यके हृदयमें ! प्रत्येक 'मनुष्य' के हृदय से इसका यही उत्तर मिलेगा कि—"अपनी एक मात्र 'अंग्रेजी शिक्षा' का आखिरी दृश्य दिखा कर शिक्षा-विभाग के कार्य कर्त्ताओं का भ्रम दूर करदेना, भविष्यमें गृहणी बनने वाली कन्याओंको मूर्ख रखने वाले पिताओंके हृदयमें प्रकाश डालदेना और पूर्वाचार्यों की आज्ञा उल्लंघन करने वाले आधुनिक शिक्षितोंके सिद्धांतानुसार चलने वालों का एक दृष्टांत दिखाकर उनकी 'भूल' जतलादेना ' ' जाने दो पाठक इन सब बातों को पढ़ते २ अकुला गये होंगे।

अभियोग है—' विमलचंद्रने श्रीमाला पर बलात्कार किया !'—बस, हाथ कांपता है लेखनी अब काम नहीं देती।

(७)

आजकलके जमाने में रुपये से विवेकका मूल्य बहुत ही कम है । रुपयेके लोभसे लोग बहुत ही जल्दी मनुष्यत्वको खो बैठते हैं और रुपये के लोभसे ही लोग अपनी प्यारी जान तकसे हाथ धो बैठते हैं। इसमें संदेह अंधेको ही होगा।

आज खूबचंद्रके पास रुपया है, चाहे अपना कमाया हुआ हो और चाहे बाप दादेका पर है तो 'रुपया' ही ! वह चाहे तो दस बीस हत्या करके खुद निर्दोषी बन सकते हैं और चाहे तो दूसरों को वा निरीह भोले भाले भाईको झूठा दोष लगाकर उसे राजदण्ड दिलवा सकते हैं। यह उनके रुपयोंमें करामात है कि वह जब चाहें, जितनी चाहें साक्षियों को एकत्र कर सकते हैं। उनकी गवाहीमें भी इतनी ताकत है कि वे रुपये के सामने धर्म-कर्म सबको जलांजली देकर एक निर्दोषी, गरीब, असहाय व्यक्तिका प्राण-संहार तक कर सकते हैं। फिर खूबचंद्रको किसकी परवाह है।

पाठकोंका संदेह होगा कि, जुगलकिशोर सरीखे जिनके मित्र हैं, उनकी ऐसी दशा क्यों ? इस संदेहके मेटनेके लिये इतना ही कह देना काफी होगा कि यह कार्यवाही उनसे छिपा कर की गई है । श्रीमालाके मुख होनेसे क्या ? आत्मीय-कुटिलताके सहारेसे उसने अपने भक्त पतिदेव को पहिले ही से अपने उपदेश द्वारा दूक्षित बना रक्खा है। यही कारण है कि यह अभियोग कलकत्तेके बाहर किसी अर्थलोलुपी वकील के द्वारा कराया गया है। इसमें खूबचंदका रुपया धूलि की तरह उड़ा है इसमें शक ही क्या है।

(८)

चाहे जैसे समझो विमलचंद आज एक वर्षसे कैदमें सड़ रहा है। इसी एक वर्षके बीचमें खूबचंद्र के मित्र बा० जुगलकिशोरजीका देहांत हो चुका है। मरते समय वे अपनी धन-संपत्ति विद्या-दानमें लगा गये हैं । कारण, उनकी कोई सन्तान नहीं थी पहिली स्त्रीकी मृत्युके बाद उन्होंने अपना द्वितीय विवाह नहीं किया था । मुन्नालालका विवाह हो चुका है साथ ही उसके गुजर लायक कुछ आर्थिक सहायता देकर वह पृथक कर दिया गया है। इसमें भी श्रीमालाने बहुत कुछ बाधा पहुंचाई थी; पर होनहार रुकती नहीं।

मुन्नीलालने गुप्त रीतिसे बहुत कोशिश की कि विमलचंद्र कैदसे छूट जाय परंतु 'रुपया' के बिना इन कामोंमें हाथ डालना ही भूल है—यह समझकर उसके मनकी मनहीमें रह गई।

(९)

अर्थका लोभ बुरा होता है—यह बात सबही मानते हैं। आज दो वर्षसे खूबचंद्रको जुआ खेलने का

चस्का पड़ गया है। कई बार उन्होंने हजारों रुपये इसीसे पैदा किये हैं। आज दिवाला है। आज उनके उत्साह का पारावार नहीं। शाम न होते होते ही वे वहीं पहुंचे, जहां जुवाड़ियों का प्रधान अड्डा था।

सब दिन किसीके भी समान नहीं जाते। सबेरे खूबचंद घर लौटे। उनकी दशा देख कर श्रीमाला पहिले तो कुछ घबराई फिर धैर्य धारण कर पूछने लगी—"आज क्या हुआ?"—इतना कह कर फिर उसे कुछ कहने का साहस न हुआ। सचमुच आज कीसी दशा खूबचंदकी कभी न हुई थी। बहुत देर पीछे श्रीमालाको यह उत्तर मिला—"आज तेरह हजार रुपये नगद हार गये है। यह मकान भी गहने (बंदक) रख चुके है।"

श्रीमाला—"कितने में?"

खूबचंद— पंद्रह हजारमें—"

श्रीमाला—"इसके रुपये?"

खूबचंद्र उत्तर देनाही चाहते थे कि इतने में उन्हें बाहरसे किसी ने बुलाया। वे चुपचाप बाहर गये। बाहरका दृश्य देखते ही उनके छक्के छूट गये। पुलिसने उनका मकान घेर रक्खा है! दरवाजे के सामने घोड़ेपर सवार दो अंग्रेज सार्जन खड़े हैं! बाहर निकलते ही खूबचंद्रके दोनों कर कमल हथकड़ी में घुसेड़े गये। खूबचंद को चारों ओर अंधकार दीखने लगा, उनका कुछ करनेका साहस न हुआ। उनको चुपचाप लालबाजार की ओर जबरन जाना पड़ा।

शत्रुता करना बुरा है—इस बातको कौन भला आदमी नहीं मानेगा। खूबचंदने धनके मदमें अनेकोंके साथ बुरा वर्ताव किया है। जो बेचारे गरीब थे, वे तो पड़े २ कैदमें सड़ रहे हैं और जिनके पास गुजर लायक कुछ था, वे जुर्माना देकर छूट तो गये, पर बेचारे रोटियों से भी तवा हैं। हां, जिनके पास घरकी अच्छी हैसियत थी वा जो खूबचंद्र से अपनेको कुछ कम नहीं समझते थे, वे बदला लेने के लिये मौका देख रहे थे। उन्हें यह अवसर खूब अच्छा मिला।

(१०)

अन्त सबका है। खूबचंद्रके विलास—सुखका भी यहीं अंत है। न्यायालयने खूबचंद्रको तीन साल की कड़ी कैद की सजा मिली है। एक दिन विमलचंद्र रो रहा था, आज श्रीमाला पागल की भांति सिर धुन रही है—इतना ही समयका फेर वा परिवर्तन समझिये।

पाठकोंको एक खुश खबरी सुनाते हैं। खूबचंद्रके किसी अशुभ कर्म के उदयसे उनकी पहिल की सब कलई खुल गई। विमलचंद्र आज डेढ़ वर्ष बाद निरपराधी प्रमाणित हुआ है। डेढ़ साल कठोर कारादण्ड भोगकर आज वह मुक्त हुआ है।

समय।

समय में अविरल दृढ़ बल है।
समय चंचल बल निश्चल है॥
समयने गिरे उठाये हैं। दौड़ते हुये गिराये हैं।
दुखी रोते से हंसाये हैं। सुखी भर पेट रुलाये हैं॥
दिखाया विचित्र कौशल है।
समय में अविरल दृढ़ बल है॥ १॥
घमंडीका सिर नीचा कर। चिनाये नाक चने मन भर॥
पतितको पावन कर दुखहर। बनाया जीवन सुखकर॥
समयका क्या कोई दल है?
समयमें अविरल दृढ़ बल है॥ २॥
नाश अत्याचारोंका कर। दंत तिहि कुचल २ छलकर॥
पामरको दिया फेंक कमकर। नचाया नाच अजब मनहर॥
न इसमें कोई भी छल है।
समय में अविरल दृढ़ बल है॥ ३॥
वीरगण! मिलहु समय से जा। चाहते यदि उन्नति सुखदा॥
भाग्यके खुद हो निर्माता। कर्म शुभ करते रहहु सदा॥
विकलको "भारतीय" कल है।
समय में अविरल दृढ़ बल है॥ ४॥

प्रभात।

यह प्रभातका समय भाग्यसे हमें मिला है।
रविकर निकर विलोक कमल भी अभी खिला है॥
पक्षी गण भी मगन गगनमें घूम रहे हैं।
चूम रहे हैं कहीं वृक्ष पर झूम रहे हैं॥
भीतर बाहर सब कहीं अंधकारका नाश है।
छिपें कहां अब सब जगह फैला सूर्य प्रकाश है॥१॥
इसी समय श्रीमान पलंग पर पड़े पड़े हैं।
सेवामें कहते "हुजूर" दासादि खड़े हैं॥
किन्तु विचारे दीन पेट चिन्तामें जाग।
करने लगे कठोर परिश्रम हाय अभागे॥
किन्तु पुंजी की है कमी करें कौनसा काम वे।
ऋण मिलना भी है कठिन जावें किसके पास वे॥२॥
यदि ऋण भी मिल गया किन्तु फिर कैसे देंगे।
साहुकार दर व्याज व्याज दूना धर लेंगे॥
इसी फिकरमें विवश विचारे दुख पाते हैं।
देख [illegible] यह दशा अश्रु धारा लाते हैं॥
उनकी चिन्ताकी हमें कुछ भी [illegible] है नहीं।
तो बोलो क्या इसतरह जात्युन्नति होती कहीं॥ ३॥
बन्धु हमारा मरे किंतु हम मौज उडावें।
उसे नहीं है खुशी किंतु हम मोदक खावें॥
इतने पर भी हो सगोत्र [illegible] लात लगावें।
और बनें धर्मावतार कुछ लाज न लावें॥
करते ऐसे काम हैं बनते फिरभी मनुज हैं।
किंतु जानते हैं सभी मनुज रूपमें दनुज हैं॥ ४॥
हो करके भी मनुज दनुज क्यों होते प्यारे?
एक जाति इक धर्म किंतु क्यों न्यारे न्यारे?
पाई है यदि शक्ति उसे अब व्यर्थ न खोना।
लगी सदनमें अग्नि भूल सुख नींद न सोना॥
पर दुखको निज जान कर करना भारी काम है।
हो हताश कहना नहीं 'हमपर विधि अब वाम है॥'
यह प्रभात का समय प्रमाद कभी न होना।
बोना कोना दूर बंधुओं का दुख खोना॥
निज हिताके साथ दूसरों की भी करना।
करना पर उपकार, झरना सुखका झरना॥
किसी तरहसे जातिके दीनों के दुख दूर हों
हम कर्मोंमें शूर हों निर्दयता पर क्रूर हों॥ ६॥

पं० दरबारीलाल न्यायतीर्थ।

एकता।

प्रियवरो ऐक्य विन है क्या दशा हमारी।
इसके विन है सब देश व जाति दुखारी ॥ १ ॥
जिस जाति देशमें नहीं ऐकता होती।
फिर वही जाति है सदा कालको सोती ॥ २ ॥
जो ऐक्य शरण ले फूट छोड़ देते हैं।
वेही जगमें निज उन्नति कर लेते हैं ॥ ३ ॥
जापान चीनने उन्नति कीनी किससे।
ना फूट उनोंमें लेस मात्र भी इससे। ४ ॥
विन दर्शन ज्ञान चरित्र मोक्ष नहि होई।
ये अलग अलग हों मुक्ति न पाता कोई ॥ ५ ॥
जब तीनों का समुदाय एक हो जाता।
बस उसी समय यह जीव मोक्ष को पाता ॥ ६ ॥
भारतमें जो जो होती अत्याचारी।
इसकी है जड़ यह फूट महा हत्यारी ॥ ७ ॥
हे ऐक्य! कहां तक गाऊं सुयश तुम्हारा।
तुमरे विन सहता भारत दुःख अपारा ॥ ८ ॥
जिस देश बीच हर समय ऐक्य रहता है।
बस वही देश निज उन्नति को करता है ॥ ९ ॥
अब उठो मित्रवर ऐक्य भाव दरशाओ।
तुम फूट छोड़कर सदा एकता ध्याओ ॥ १० ॥

ब्रह्मचर्य्य।

ब्रह्मचर्यकी महा प्रशंसा ऋषियोंने मित्रो गाई।
अकथनीय गुण ब्रह्मचर्य्यमें धारण करलो सब भाई ॥ १ ॥
जो इसको पालन करते आराम सदा वे पाते हैं।
कीरति पाके इस जगमें वे अन्त श्रेष्ट गति जाते हैं २
दुष्ट काममे जिस जनने है पीछा अपना छुड़ा लिया।
मानों उसने जीत कर्म सब महा परमपद प्राप्त किया
दुष्ट काममें जो फंसते वे दुःख सामना करते हैं।
अज्ञानी नर वशीभूत हो नरक मांहि हो परते हैं ॥ ४ ॥
ब्रह्मचर्य्य नालोने पाला जगमें कीरति पाई थी।
इसकी महिमा बड़े २ मुनियोंने प्रियवर गाई थी ॥ ५ ॥
इससे च्युत हो कोतवाल यम दंड बड़ाही दुःख सहा।
तीभा लीन होत मूरख नर देखो यह आश्चर्य अहा ॥ ६ ॥
काम विवश हो नीलकंठने ब्रह्मचर्य्य को खोय दिया।
इसके वशहो विष्णु विधाता निज लज्जा का त्याग किया
मदन ज्वरसे पीड़ितहो नर पागल सम हो जाता है।
चाहे जिससे कुकर्म करता क्या रिश्ता क्या नाता है॥
दुखदाई है जगत मांहि यह इससे ऋषिवर त्याग गये।
दुष्ट कामका जिसने त्यागा जग दुखों से मुक्ति भये॥
ब्रह्मचर्य्यको धारण करलो मुक्ति मार्ग जो पाना है।
पाकर मुक्ति मार्ग उन्नत हो यदि शिव पदको जाना है॥

श्रीसुरेन्द्रचंद्र जैन, नगलेसरूप।

जननी-विलाप।

मेरे हा पुत्र ही मुझ पर दुर्गति वार करते हैं।
गले मिलने मगर दिलमें जखम तयार करते हैं ॥ १ ॥
'हितैषी' 'सत्य' बनते हैं, बनाते मिष्ट बातें वे।
कि मानो मेरे ऊपर जान ही को निसार करते हैं ॥ २ ॥
मगर देखा? छिपा रक्खे हैं कैसे शस्त्र बगलोंमें।
जो कृतई जगसे चट नामोनिशां बरबाद करते हैं ॥ ३ ॥
समझ रक्खा है मुझको पातकी क्या जानका दुश्मन।
जो मुझको मार नाशीके लिये शुभकार करते हैं ॥ ४ ॥
बना रक्खे हैं कुछ अड्डे कि धोका खायें मेरे सुत।
उन्हीं पर नाज करते हैं गजबका प्यार करते हैं ॥ ५ ॥
बचो अज्ञान से तुम खुद बचाओ दूसरोंको भी।
देखें अब कौनसे सुत "भारतीय" उद्धार करते हैं ॥ ६ ॥

परिषद्के विद्याविभागीय मंत्रीजीका पत्र।

श्रीयुत सम्पादक महाशय! आपने अपने पत्रके आठवें अंकमें जो परिषद्के मंत्री मंडलके ऊपर नोट दिया है वह ठीक है परंतु हमारे लिये आपका आक्षेप करना ठीक नहीं क्योंकि जो कुछ पाठशाला की अवस्था पहिले से रही है और अब है वह इस प्रकार है—

पद्मावती परिषद् की स्थापना १९६९में बा० बनारसीदासजी वकील पं० गौरीलालजी की कोशिशसे हुई व उक्त बाबू साहब मंत्री, सभापति ला० हीरालालजी एटा बनाये गये जलेसरमें पाठशाला पं० गौरीलालजी की अध्यापकीमें चली। मेला उड़ेसर वाली सभामें बाबत चंदा पाठशाला के बाबू बनारसीदास ने खड़े होकर कहा फिर हमने उसका समर्थन किया व ५०) चंदाके लिखाये इसके विरुद्ध कुछ भाई उडेसर के व अन्य भाइयों का ऐसा विचार हुआ था कि इस मेलेमें चंदा न हो चन्दासे मेला हलका हो जाता है भीड़ इकट्ठी होती नहीं एक नोटिस इस मजमूनका लिखकर हमारे चन्दे के पीछे अमोलकचंद उडेसरीय से सुनवा दिया बादको हम सबका उन लोगोंसे विवाद हुआ लोगोंको चन्देसे बचना था। फिर यह बात तय हुई कि पार्टी जाकर चन्दा लिखा कर पाठशाला को मजबूत कर देवे ये सब बातें दिखानेकी थीं साल भर तक कुछ न हुआ हम बीरपुर किसी कामको गये वहां पर हमने बाबूलाल से भ्रमण बाबत छेड़ा बहुत कुछ बात चीत हुई आखीर हमने ५००) ध्रुव फंडमें उनसे लिखाये १) माह छोटेलालभाई से ५ सालको १) महीने हमने लिखा विवाहों में रुपया पाठशाला का निकलवाना शुरू किया गया ये समाचार ऐटा वालों को मिले ला० हीरालालजी ने चिट्ठी हमे दी पाठशाला ऐटेमें खोलिये। हमारी ऐसीही राय हुई मगसरमें पाठशालाका मुहूर्त हुआ बैसाखमें मेला फफोतू में हुआ वहां हमने व हीरालालजी ने चंदा लिखाया। पाठशाला जलेसरमें टूट ・ई थी उसके बहुत रोज बाद ऐटेमें स्थापित हुई मेला फफोतूमें हुआ उससे साल भर बाद मेला दूसरा उडेसरमें हुआ ला० बाबूलालने अपने ५००) पहिले और ५००) हाल एक हजार ध्रुव फंडमें लिखे व प्रेरणा कर औरोंसे लिखाये। पं० चम्पालालको हमने हमेशाको पक्का कर दिया था कारण वश इस्तीफा दे गया फिर तबसे योग्य अध्यापक मिला नहीं। अध्यापकोंको बड़ी कमी है। अध्यापकोंके विना कई पाठशालायें बंद है यह हमे खूब अनुभव है आप इसे पढ़कर समझ लेवें गौरीलालजी से पूछ सकते है यह राम कहानी आपको लिखदी यह भी खयाल नहीं दूसरों की बदनामी हमारे लेख से होवे। हमें मान की पाग नहीं चाहिये, कामसे काम, पद व विना पद हम एकसा काम करते हैं बाबूलालसे ५००) लिखाये तब हम साधारण सभासद थे।

नोट—पंडितजीके उक्त पत्रसे ज्ञात होता है कि पाठशाला योग्य अध्यापकके न होनेसे गड़बड़में है। अच्छे उत्साही अध्यापक आजकल सब व्यावहारिक वस्तुओंके तेज होजानेके कारण कम वेतनमें मिलते नहीं, और अधिक वेतन पाठशाला चंदा की कमी होनेसे दे नहीं सकती उडेसर के मेला मे जिस समय चंदा की बात उठाई गई थी हम भी वहां उपस्थित थे। उस समय वहांके मुखियाओंने चंदेकी मनाही कर वास्तवमें पाठशालाको धक्का पहुंचाया था। पं० अमोलकचंदजीने भी उन लोगोंकी हां में हां मिला उचित न किया था, उन्हें उस समय समझा बुझाकर अपील करनेका अवसर अवश्य देना था. खैर। अब पाठशालाकी आयका कोई अच्छा प्रबंध होजाना जरूरी है। विद्वान और धनिक

कुछ जातिके नेता महाशय यदि अपने जीवनके कमसे कम १५ दिन भी इस पाठशालाकी सेवामें अर्पण करदें और मुख्य २ जगहोंमें जाकर लोगोंसे चंदा भरवानेका प्रयत्न करनेका कष्ट उठावें तो एक अच्छी रकम इकट्ठी होजानेकी उम्मेद है।

मुंशी बंशीधरजीने जो दान दिया है, पाठशालाके ध्रुव फंडमें जो रुपया लोगोंने भरा है, तथा और २ जगह पाठशालाके लिये द्रव्य तो एकत्रित है पर कार्य नहीं होरहा है वह सब एकसाथ मिला देना चाहिये एवं शिक्षापद्धतिमें सुधारकर समस्त जातिका एक विद्यालय ठीक मध्यस्थलमें खोलनेका बीड़ा उठाना चाहिये जिससे समाजमें न तो केवल पंडित ही तयार हों और न बाबू ही बाबू हो जांय बल्कि व्यापार निपुण धर्मशास्त्रज्ञ व्यक्तियां उत्पन्न हों।

—संपादक।

स्त्रीमुक्ति पर विचार।

(गत अंकसे आगे)

स्त्रीमुक्तिका निषेध और विधानके बारेमें दिगंबर और श्वेतांबर दोनों संप्रदायोंके प्रचंड विद्वानोंकी युक्तियां गत अंकोंमें प्रकाशित की जाचुकी हैं। समझ दार किंतु नकली विद्वत्ता और कदाग्रहका घमंड न रखनेवाले पाठकोंने कौन युक्तियां सबल और कौन निर्बल हैं? इस बात पर परिपूर्ण विचार भी किया होगा हमें इस बातका खेद है कि समयकी पूर्ण दरिद्रतासे हम दोनों आचार्योंकी युक्तियोंका मिलान विस्तृतरूपसे नहिं कर सकते तथापि प्राप्त समयके अनुसार हमें विचार करना पड़ता है—

यह प्रायः सर्व शास्त्र सम्मत और हरएक व्यक्तिके स्वानुभव गोचर बात है कि राग और द्वेषकी सत्ता मोक्ष प्राप्तिमें प्रतिबंधक है। जबतक राग और द्वेषकी सत्ता जराभी आत्मामें मौजूद रहेगी कभी तब तक मोक्ष नहिं प्राप्त होसकती। तथा राग और द्वेषकी सत्ताका अविनाभाव परिग्रहके साथ है जहां थोड़ासा भी परिग्रह दीखेगा वहां अवश्य राग और द्वेषकी थोड़ी बहुत मात्रा रहेगी क्योंकि जैसा कार्य होता है कारण भी उसीके अनुकूल होते हैं। जिस समय हम मकान बनानेको तयार होंगे हमें उसीके अनुकूल कारण ईंट चूना आदि जुटाने पड़ेंगे। जिस समय हम कपड़े बनानेको तयार होंगे हमें कपड़ेके अनुकूल कारण तंतु वगैरह इकट्ठे करने पड़ेंगे यह नहीं होसकता कि उतारू हों कपड़ा बनाने और सामग्री इकट्ठी करें ईंट चूना आदि। बनावें मकान, प्रयत्न करें तंतु आदि पटके कारणोंके जुटानेका। इसलिये यह बात निर्विवाद है कि जैसा कार्य होगा उसीके अनुकूल कारण जुटाना उस कार्यकी उत्पादक सामग्री हो सकती है। राग और द्वेष इन दोनों कार्योंके उत्पादक कारण परिग्रह है जब हम वस्त्र आदि रक्खेंगे उनके मैले होने वा पुराने होनेपर हमारी छोड़नेकी इच्छा होगी बस यही द्वेषभाव है। कपड़ा पुराना होगा उस समय हम उसे छोड़ दूसरा नवीन धारण करेंगे बस यही रागभाव है। इसलिये परिग्रहके रखने पर उससे किसी क्षणमें राग और द्वेष न होगा यह बात सर्वथा अनुभवके अगोचर है।

यहां पर यह शंका हो सकती है कि कोई २ मनुष्य लाखोंकी संपत्तिके स्वामी हैं परंतु निरीहवृत्तिसे रहनेके कारण वे उस संपत्तिसे जरा भी संबंध नहिं रखते उसे विपत्ति समझते हैं उसी प्रकार वस्त्र आदि

धारण करनेपर भी जब साधुओंकी उनमें निरीहवृत्ति है तब वे रागी और द्वेषी नहिं कहे जा सकते परंतु यह बात ठीक नहीं हमभी स्वीकार करते हैं कि साधुओंकी वस्त्र आदिमें निरीहवृत्ति है परंतु वह चौबीसो घंटे रहती हैं यह नहिं माना जासकता अवश्य कभी न कभी राग किंवा द्वेष भाव होसकता है। बल्कि हमारा तो यहां तक अनुभव है कि घंटे आध घंटे ही निरीहवृत्ति और बारह घंटे सरागवृत्ति रह सकती है परंतु मोक्ष कोई ऐसा सरल पदार्थ नही जो इतनी निरीहवृत्तिसे वह मिलसके यह हमारा प्रत्यक्ष अनुभव है और सुनाभी गया है कि संसारसे भयभीत भी मनुष्य जिससमय सामायिक करने बैठता है तो यदि वह एक घंटा सामायिक करता है तो उसके परिणाम ध्येय पदार्थको और २-४ मिनटके ही लिये जाते हैं बाकी और और विचार मनके अंदर उछल कूद करने लगते हैं इसलिये यह बात ठीक ही जचती है कि परिग्रहका संपर्क रखनेपर कभी राग द्वेषका अभाव नहि किया जासकता है किंतु जहां जहां परिग्रह [ममेदं] का संपर्क होगा अवश्य वहां राग द्वेषकी सत्ता रहेगी।

यह भी सब लोग मानते हैं कि जिस नावके अंदर कोई छेद नहीं यदि उसे किसी दरियावमें रक्खा जाय तो उसमें पानी तो न भरेगा परंतु उसका भाग पानीसे आर्द्र रहेगा जिससे वह अवश्य गीली रहा करेगी उसी प्रकार किसी साधुकी सर्वथा निरीह भी वृत्ति रहेगी तथापि वस्त्रकी तरफसे उसका भाव तो गीला रहेगा ही अन्यथा वस्त्रके जीर्ण होनेपर उसका त्याग और अन्यका ग्रहण न बन सकेगा।

इसलिये जो मनुष्य संसारकी समस्त वस्तुओं का यहां तक कि शीत आदि शरीर की बाधाओं को मिटाने में कारण वस्त्रतक का सर्वथा त्याग कर देता है वही सांची वैराग्य अवस्था धारण करता है उसके बाह्य पदार्थोंमें ममता न होनेकी सामग्री मालूम पड़ती है और बाहिरी ममताके अभावमें भीतरी (अंतरंग) ममताकी नास्ति भी समझी जाती है क्योंकि बाहिर से जब लकड़ी जलाकर पाक करते देखते हैं तभी चावल दाल आदि सीझ गये होंगे या सीझ रहे हैं ऐसा अनुमान करते हैं और बिना आग जलाये केवल चूलेपर वर्तन रक्खे हुये देखनेसे कोई पाक हुआ नहीं समझता इसी प्रकार ममताके कारण अचेतन पदार्थोंके संसर्ग रखनेवाले साधुको देखकर उसके भीतरी ममता भी है ऐसा जाना जाता है। और जो भीतरी बाहिरी किसी भी ममताके वशीभूत नहीं है वही मोक्षके असाधारण कारण संयमको धारण करनेवाला संयमी कहा जासका है ऐसे विरागीको ही मोक्ष होसकता है-इसलिये वस्त्र आदि परिग्रह मोक्ष प्राप्तिमें बाधक ही है साधक नहीं।

यहां यह शंका कोई कर सकता है कि जब परिग्रह का संबंध राग द्वेषका उत्पादक है तब पीछी कमंडलु भी न रखने चाहिये परंतु यह ठीक नहीं वस्त्रके और इसके परिग्रहमें बड़ा भेद है पीछी कमंडलु संयमके साधक हैं वस्त्र आदि बाधक हैं। कमंडलु और पीछी मात्र परिग्रहके धारक मुनिगण कमंडलुके पानी को पीते नहीं शौच आदि के काममें लाते हैं। पीछी को जीवों की विराधना से बचने के लिये रखते हैं इस लिये सांसारिक किसी सुखके लिये कमंडलु पीछी नहिं हो सकते परंतु वस्त्रका धारण शरीर रक्षा के लिये ही हो सकता है इसलिये शरीरमें ममत्व रखने पर वस्त्र में अवश्य ही ममत्व सिद्ध हो जाता है। हम इस विषयमें विशेष नहिं लिखना चाहते। पाठक हो पक्षपात किंवा कदाग्रहसे हटकर विचारलें कि वस्त्र धारण

करना मोक्षकी प्राप्तमें बाधक है कि पीछी कमंडलु। तथा पीछी कमंडलु के रखने पर निरीह वृत्तिमें व धा आती है कि वस्त्र धारण करने पर। यदि कोई हठकर वस्त्र और पीछी कमंडलुओंमें फर्क न माने तो उसकी मर्जी किसीका जोर नहीं वास्तवमें तो अंत अवस्थामें पीछी कमंडलु भी छूट जाता है इसलिये वह ममत्व का कारण नहि हो सकता।

यदि यहां पर यह शंका हो कि अंतिम अवस्था में पीछी कमंडलु के समान वस्त्र भी छूट जाता है इस लिये वस्त्र धारण करना राग और द्वेषमें कारण नहि हो सकता सो ठीक नहीं क्योंकि ऐसा मानने से वस्त्र सहित अवस्थामें ममत्व सिद्ध होता है न ही तो फिर अंतिम अवस्थामें वस्त्रका छोडना व्यर्थ है क्योंकि जैसा ही वस्त्र संयुक्त अवस्थामें ममत्व नहि माना जाता वैसा वस्त्रके छोड़ने पर भी ममत्व न होगा दोनो अवस्थाओंमें ममत्वका अभाव समान है। पीछी कमंडलुके विषयमें यह शंका नहि हो सकती कि जब वे अंतिम अवस्था में जाकर छूट जाते हैं तब पहिले से ही उन्हें न रखना चाहिये क्योंकि वे संयमके साधक हैं और वस्त्र धारण संयमका विराधक है।

कदाचित यह कहो कि अंतिम अवस्थामें संयमके साधक पीछी कमंडलु के छूट जाने पर उसमें बाधा आजायगी तो इसका यह उत्तर है कि जिस अवस्थामें वे (पीछी कमंडलु) छूट जाते हैं उस समय उनसे हटाये जाने वाली संयममें बाधाऐं ही नहीं उपस्थित होतीं क्योंकि कमंडलु शौचादि निवृत्ति के लिये जल भरने के लिये होता है सो आहार नीहार के न होने से अशौच होता ही नहीं। पीछी अपने से जीवों का वध न हो सके इसलिये रक्खी जाती है और वह उस समय परमौदारिक कायके तथा सर्वथा प्रमाद एवं इच्छाके अभाव हो जानेसे नहीं होता।

तथा यह बात सर्वानुभव गोचर है कि जो मनुष्य अपने शरीरको उज्वल रखना चाहता है वह धूलि या कीचड़का संबंध अपने शरीरसे नहि होने देता क्योंकि धूलि किंवा कीचड़के संपर्क होने से कभी उज्वलता रह नहीं सकती यदि ऐसी दशामें भी कोई जबरन इस बात का आग्रह करे कि नहीं;—धूलि और कीचड़के रहने पर भी शरीर की उज्वलतामें किसी प्रकारकी हानि नहिं आ सकती तो उसकी बलिहारी है क्योंकि शरीर की उज्वलता और धूलि किंवा कीचड़ इनका आपस में सहानवस्थान लक्षण विरोध है। कभी ये दोनो एक स्थान पर रह ही नहि सकते उसी प्रकार जो मनुष्य अपनी आत्माको सर्वथा राग किंवा द्वेषसे रहित करना चाहता है उसका भी कर्तव्य है कि वह राग द्वेषके उत्पादक वस्त्र आदि का जरा भी शरीरसे संपर्क न होने दे क्योंकि वस्त्रकी मौजूदगी में राग किंवा द्वेष न होगा यह असंभव है यदि कोई जबरन यह स्वीकार करे कि वस्त्र धारण करने पर भी उस ओर ख्याल ही न जायगा इसलिये राग द्वेष नहीं हो सका सो भी ठीक नहीं, राग द्वेषका अभाव और वस्त्र धारणदोनोंमें सहानवस्थान लक्षण विरोध है जिस आत्मामें वस्त्र धारण करनेकी लालसा होगी उस आत्मामें राग द्वेषका कभी अभाव नहिं हो सकता। दोनों एक जगह रह ही नहिं सकते। इसलिये यह बात सिद्ध होचुकी कि सवस्त्र अवस्थामें कभी राग द्वेषका अभाव नहि होसकता राग और द्वेषके अभावमें केवल ज्ञान और उसका अविनाभावी मोक्षस्थान भी प्राप्त नहि होसकता।

सवस्त्र अवस्थामें जब राग द्वेषका रहना सर्वथा अनुभवमें आता है तब केवलज्ञान नहिं हो सकता इसलिये वर्तमानमें जो मनुष्य इस बातका हठकर रहे हैं कि घरमें भी केवली होजाते हैं यह निर्मूल है हां वस्त्रके उतारनेके अंतर्मुहूर्तबाद ही केवल ज्ञान हो

हो सकता है और सवस्त्र अवस्थामें उसकी प्राप्ति होना तो सर्वथा असंभव है। मोक्ष किसी वंशकी या कोई बाप दादेकी संपत्ति नहीं है जो उस वंशके लड़केको जरा ही निर्ममत्व जाहिर करनेसे प्राप्त हो जायगी किंतु यह आत्मज्ञानपूर्वक नग्नतलवार की धार पर बेधड़क चलने के समान दुर्धर निर्ममता धारण करने पर ही प्राप्त होगी उसके लिये आत्माको सर्वथा सबल बनाना पडेगा अन्य संप्रदायका आगम सवस्त्र अवस्था और घरमें रहने पर केवलज्ञान किंवा मोक्षका उपदेश दे तो दे परंतु दिगंबर संप्रदायका आगम और निष्पक्ष पात दृष्टि कभी वैसी इजाजत नहि दे सकते क्योंकि जब यह बात सभी लोग मानते हैं कि मोक्ष निवृत्ति मार्गसे ही मिल सकती है तब उस निवृत्ति मार्गके अवलंबनमें लल्लोपुचोंकी क्या आवश्यकता? घरमें रहकर और सवस्त्र होनेपर भी केवलज्ञान किंवा मोक्ष प्राप्त हो सकती है यह आलस्यका पाठ पढ़ानेवाला उपदेश क्यों? घूस पत्ती देकर रायबहादुर आदि पद प्राप्त करनेके समान मोक्ष नहीं है किंतु सर्वथा निवृत्तिमार्ग के आधीन है।

जिन आगमोंमें वैसी अवस्थासे भी मोक्षकी आज्ञा दी है उनके विषयमें कुछ आश्चर्य नहीं क्योंकि अपने २ ख्यालात हैं परंतु मन चले कुछ मनुष्य दिगम्बर संप्रदाय में सवस्त्र अवस्थासे मोक्ष सिद्ध करते हैं यह बड़ा आश्चर्य है अस्तु यह जमाना ही ऐसा है पहिले लोग देव पूजा गुरु उपासना स्वाध्याय आदि षडावश्यक कार्य कर पीछे अपना गृह कार्य करते थे जिससे लोगों को कष्ट अवश्य होता था परंतु साथही नीरोगता आदि लाभों की प्राप्ति भी होती थी किंतु जबसे पाश्चात्य शिक्षाका असर पड़ा लोगों ने सबको वाहियात समझ लिया और बजारका खाना होटल आदि में मय बूटके माल उड़ाना अभक्ष्य भक्षण आदि प्रारंभ हो गया इतना ही नहीं अब लोग ऐसे कार्यों की पुष्टि भी करने लगे ठीक भी है हाथसे रोटी बनाना और शुद्धता पूर्वक खाना आदि अत्यंत कठिन है इसलिये इसका प्रतिरोध करना ही आवश्यक है मुक्तिके लिये आगम में निवृत्ति मार्गका कड़ा उपदेश है लोगों की इच्छा तो यह थी कि इसी संसारमें मुक्तिकी भी कल्पना कर लेनी चाहिये क्योंकि मुक्ति पदार्थ अन्य कोई दीख पड़ता नहीं परन्तु समस्त आगम और लोगों के मुखसे मुक्ति की सत्ताका निश्चय हो जाने से वे उसकी कल्पना न कर सके इसलिये उन्होंने यह सरल मार्ग निकाल दिया कि घर बैठे भी मोक्ष हो सकती है नग्न अवस्था आदि रखकर जंगलमें रहना व्यर्थ है। इस विद्वत्ताकी बलिहारी है!

खैर! सवस्त्र अवस्था से मोक्ष मानो पर हमारा यह प्रश्न है कि जिन्होंने सवस्त्र अवस्थासे मोक्ष माना है उन्होंने आचेलक्य (नग्न) किंवा परम हंस अवस्था को क्यों उत्तम माना है? आचेलक्य और परम हंस अवस्थाकी स्वीकारता से क्या यह प्रतीत होता है कि जो साधु सवस्त्र संयमके धारक हैं वे ही वीर हैं क्योंकि वस्त्र आदि परिग्रहके रखनेपर भी उनके राग और द्वेष नहि होते और जो आचेलक्य किंवा परम हंस अवस्था को धारण करने वाले हैं वे पोच हैं क्योंकि वस्त्रोंके रहने पर वे राग द्वेषका अभाव नहिं कर सके इसलिये यह समझ कर कि अब वस्त्र ही न होंगे तब राग और द्वेष कैसे होगा? उन्होंने वस्त्र छोड़ दिये! लोकमें जैसी कि प्रसिद्धि है कि जिसके जोड़ी घोड़ा और गाड़ी है यदि वह उसमें नहिं बैठता-बैठनेका त्याग कर दिया है वह वीर धर्मात्मा समझा जाता है और जिसने गाड़ीमें बैठनेका तो त्याग कर दिया है क्योंकु

यदि घरमें गाड़ी रहेगी तो कभी परिणाम बैठने के हो जायंगे यह समझ उसने गाड़ीको बेच डाला है वह पोच समझा जाता है। इसलिये इस युक्तिसे तो सवस्त्र संयमके धारक ही वास्तविक साधु ठहरे और नग्न साधु अवास्तविक ?

यदि यह कहा जाय सर्वथा वस्त्रसे रहित नग्न साधु गण वस्त्र धारक साधु गणोंसे पोच नहीं किन्तु नग्न साधुओंका सर्वथा ममत्व भाव हट गया है इस लिये उन्होंने वस्त्र भी धारण करना संयम में आघात पहुंचाने वाला समझ लिया है तब यह बात जबरन सिद्ध होती है कि सवस्त्र अवस्थामें ममत्व भावका त्याग नहिं हो सकता है इसलिये निग्रन्थ लिंगही मोक्ष का कारण होता है सवस्त्र लिंग नहीं। आग्रह और हठकी बात दूसरी है परंतु हमारा तो यहां तक ख्याल है कि आंख मीचकर स्वानुभवसे विचारने पर आत्मा में यही झलक निकलती है कि निवृत्तिमार्ग को अवि-नाभावी मोक्ष है और निवृत्ति मार्गका पालन केवल नग्न अवस्था के आधीन ही हो सकता है सवस्त्र अव-स्था के आधीन नहीं।

हमें एक और प्रश्न उठता है कि जो मनुष्य सवस्त्र लिंग अवस्था से मोक्षके पक्षपाती हैं वे निवृत्ति मार्ग के अवलंबन के समय क्यों वस्त्रका आग्रह करते हैं ? क्या कोई कुवाक्य कहेगा इस भयसे ? वा उन्हें नग्न होने में लज्जा आती है इसलिये ? यदि कुवाक्यों का भय है तब आक्रोश आदि परीषह न पलीं इसलिये मोक्षको पात्रता नहीं आ सकती। लज्जाके भयसे कहा जायगा तब भी मोक्ष प्राप्त नहि हो सकतो क्योंकि लज्जा मोह-नीय कर्मका कार्य है वह सतत आत्मामें उदित रहता है। कुछभी हो, अंतमें निग्रन्थ लिंग ही मोक्षका कारण हो सकता है सवस्त्र नहीं दुराग्रह कुछ भी किया जाय अस्तु, निर्दिष्ट ऊहापोहसे अब यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी कि सवस्त्र लिंग मोक्षका कभी साक्षात्कारण नहि हो सकता तब स्त्रियां कभी निर्वस्त्र लिंगका धारण नहीं कर सकतीं इसलिये वे स्त्री पर्यायसे मोक्ष की अधिकारिणी नहिं बन सकतीं।

यदि यह कहा जाय कि एक पंक्तिमें बैठकर खूब गहनेसे लदा हुआ अमीर भी वही भोजन करता है और जो चिथड़े पहनने वाला गरीब है वह भी भोजन करता है भोजनके विषयमें कुछ भी भेद नहि दीख पड़ता उसी प्रकार मनुष्योंको निर्ग्रंथ लिंगसे और स्त्रियों को सवस्त्र अवस्थासे मोक्ष प्राप्त हो सकती है-मोक्ष प्राप्ति में किसी प्रकारका भेद नहि पड़ सकता तो उसका समाधान यह है कि राग द्वेष आदि समस्त कर्मोंका नाश होना ही मोक्ष है और उनका नाश उसी समय हो सकता है जिस समय कि परिग्रह का सर्वथा त्याग कर दिया जाय तथा परिग्रह का त्याग उसी समय माना जा सकता है जबकि शरीरके सिवाय अन्य परिग्रह न धारण किया जाय इसलिये यही बात निर्दोष रूपसे सिद्ध होती है कि सवस्त्र लिंग चाहे पुरुष धारण करे चाहे स्त्री, वह मोक्षका साक्षात कारण नहि हो सकता। यदि यह कहा जाय कि परम्परा से मोक्षका कारण है तो हम भी इस बातको स्वीकार करते हैं कि कुछ परिग्रह के धारक ब्रह्मचारी क्षुल्लक एलक स्वग आदि स्थानों के अधिकारी होते ही हैं। परंतु उस लिंगसे वे मोक्ष नहिं प्राप्त कर सकते।

अब रत्नाकरावतारिकामें स्त्रियोंके लिये जो मुक्ति का मंडन किया गया है उस विषयमें जो हमें प्रश्न उठते हैं उन पर विचार करते हैं—

(क्रमशः)

कारजकी प्रथा।

पद्मावती पुरवाल अंक ८ में इस विषय पर पं० कंचनलालजी देहलीका १ प्रस्ताव पेश हुआ है। पाठक उसे १ बार फिर ध्यानपूर्वक पढ़ने को कृपा करें। मैं प्रस्ताव से पूर्ण सहमत व अहसमत नहीं हूं इस प्रथाका वर्तमान ढंगसे परिवर्तन किया जाना आवश्यक है किन्तु इस प्रथाका बंद हो जाना बहुत हानिकारक होगा। पहिले मैं अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार इस प्रथाकी वर्तमान रूपमें होने वाली हानियोंका और फिर इससे होनेवाली व होसकने वाली खूबियोंका संक्षेपसे वर्णन करूंगा। तब क्या २ परिवर्तन होने चाहिये ? इस प्रश्नको उठाना पसंद करूंगा।

विचार शील महानुभावो! एक युवकके विरहसे दुखी माता पिता और युवती विधवा आदि लोगोंको उनके आर्तनादको ओर दृष्टि न दे पंचों व अन्य लोगों को पूड़ी कचौड़ी खिलाने के लिये कर्ज लेनेको बाध्य होना एक बड़ा करुणाजनक दृश्य है। इस प्रथाके वर्तमान रूपमें यह बड़ा भारी दोष है। समाजके निर्धन भाइयोंको इसके पीछे बड़ा २ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वर्तमानमें इस प्रथाके मानी समझने में हम लोग बहुत भूल रहे हैं किसीके दुखमें सहानुभूति प्रकट न कर केवल पेट भरने के लिये खाना यह गरीब अमीर सभी लोगोंके लिये समानरूप से हानिकारक है। मैंने बहुतसे लोगोंको कारजकी पांति खाने के लिये सुबह से बिल्कुल भूखे रहते [किसी २ को नमक तक पीते] केवल माल उड़ानेके उद्देशसे ही देखा है। इससे उन लोगोंके त्याज्य विचारोंका अच्छा पता चलता है। मैंने कई अजैनों को जैनियों की मृत्यु की कामना करते हुये भी १ दिन कटनेके लिये हो देखा है। ऐसे लोग धनिकोंकी मृत्युकी चाहना किया करते हैं। इसका क्या असर पड़ सकता है ? इस प्रश्नको इस समय न उठाइयेगा। आप विचारें कि यह बात यदि दूषित नहीं कही जा सकती तो बुद्धि इसे निर्दोष भी स्वीकार नहीं करेगी। ऐसी २ इस प्रथाके वर्तमानरूपमें हानियां दीखती हैं। अब प्रश्न उठता है कि इससे क्या लाभ है व हो सकते हैं इसके लिये कहना होगा कि इसके वर्तमान रूपसे कई लाभ विशेष उल्लखनीय दीखते हैं वह यह हैं हमारे सभी भाई इस बातको स्वीकार करेंगे कि किसीकी मृत्यु हो जाने पर उसके घरवालोंके दुखमें भाग लेनेके लिये उसके सम्बधियोंका आना बुरा नहीं है। पाठको! विचारिये कि आपका वह रिश्तेदार जो आपके विवाहादि शुभ कार्य्य में तथा मृत्यु आदि दुखके अवसर पर सहयोग नहीं दिखलावेगा आपको अच्छा लगेगा या बुरा और फिर इस पर भी ध्यान दीजियेगा कि आये हुओंका यथाशक्ति आदर सत्कार करना आपकी प्राचीन सभ्यताके लिये कितना आवश्यक है अब आप सरलता से दुखमें सहयोग देने वालोंकी १ तिथि नियत होनेकी आवश्यकताका अनुभव करने लगेंगे क्योंकि २ भिन्न तिथियों पर भिन्न २ सम्बधियों के सत्कारका प्रबंध करना गरीबोंके लिये सबसे अधिक और अमीरोंके लिये भी असुविधाजनक हैं ऐसे समय सम्बधियोंको देखकर रोज छूटता ही है अतः यह आवश्यक है कि ऐसे दुखमें सहयोग देनेके लिये आनेवाला सम्बंधी एक नियत तिथि पर या तक आलें। वरने संसारमें बड़ी गड़बड़ फैले। अपने अशुभ कर्मों के कारण या किसी कारणसे लोग सूतक आदिका जो विचार मानते हैं उनकेलिये भी १ तिथि

नियत होनेकी आवश्यकता है इन सब आवश्यकताओं को कारज की प्रथा पूर्ण करती हैं। और इन लाभोंका पल्ला निस्संदेह भारी कहा जावेगा इन लाभोंके अतिरिक्त इस प्रथाके वर्तमानरूपसे निम्न ढंगसे लाभ उठाये जा सकते हैं जैसे किसीकी मृत्युके बाद घरवालों में परस्पर यदि धन संबंधी झगडे उठें तो उक्त तिथि पर सभी पंचादि एकत्रित होते हैं और वे ऐसे झगडों को आसानी से निपटा सकते हैं। जिससे इस प्रकार अदालतोंमें व्यर्थ खर्च होनेवाले रुपये बच सकते हैं और शत्रुताके भावों का भी अन्त हो सकता है पारिवारिक प्रेम इस प्रथासे खूब बढ सकता है। एक बहुत दुखी मनुष्य जब यह देखता है कि उसके जाति भाई उसके दुखमें शामिल हैं तो निस्संदेह उस धीरज बंधता है। पंच तथा अन्य लोग ऐसे अवसर पर असमर्थों को यथाशक्ति सहायता करना सीख जांय तो जाति को बड़ा लाभ हो। जैसे अनाथोंका, विधवाओंका सुप्रबंध करदें और असमर्थकी आर्थिक सहायता कर दिया करें। इसर प्रकार के अनेक लाभ इस सुप्रथा से उठाये जा सकते हैं। अतः यह प्रथा बन्द न होनी चाहिये।

अब प्रश्न यह है कि इसमें क्या परिवर्तन होने चाहिये ?

इस प्रश्नका उत्तर भिन्न भिन्न सज्जन भिन्न२ देंगे किन्तु मेरी रायमें इसका निम्न रूप होना आवश्यक है-

१—तिथि नियत करनेकी रीति वर्तमानमें ठीक है।

२—इसी प्रकार सम्बधियोंके आदर व यथाशक्ति नौता देकर जाति भाइयों को खाने के सिवाय निम्न बातोंका ध्यान रखना चाहिये।

अ—उसके यहां कोई विधवा व अनाथ तो नहीं है ? यदि है तो उसको किसी विधवाश्रम या अनाथाश्रम में भेज देना चाहिये।

ब—धनके बटवारा संबंधी कोई ऐसा झगडा तो नहीं है जोकि अदालतमें जाकर सैकड़ोंका स्वाहा करादे यदि है तो पंच लोगोंको निष्पक्ष होकर उसे निपटाना चाहिये।

स—उसकी आर्थिक व्यवस्थाका क्या प्रबंध है ? कारज उसने कर्ज लेकर तो नहीं किया ? यदि हां तो उसे चुकानेका सुप्रबंध करना चाहिये। कहीं ऐसा तो नहीं है कि धनाभावसे विजातीय होने व जीवनको ही खोनेका इरादा करने पर बाध्य हो। यदि हां ! तो सबको यथाशक्ति उदारता दिखलाना चाहिये।

द—उसके रंजमें हमदर्दी प्रकट करके उसे धीरज बंधाना चाहिये।

३—यदि कोई कारज न करे तो उसे हेय दृष्टि से न देखना चाहिये। जैसा कि प्राय आजकल होता है हां ! कारज करनेके लिये उसे सहायता देनी चाहिये।

४—कारजमें जितना साधारण भोजन बने उतना ही अच्छा है। धनवानों से व सबसे इच्छा और शक्तिके अनुसार धर्म कार्यमें स्मारक स्वरूप इस समय भी द्रव्य दिया जाना चाहिये।

जातिसेवक—रामस्वरूप भारतीय (जारखी)

परिषद् और पंचायतियां।

जातिके प्रेमी पाठकों को याद होगा कि पद्मावती परिषद्के ५वें अधिवेशन में बाबू बनारसीदास जी वकील द्वारा प्रस्तावित एक निम्न लिखित प्रस्ताव पास हो चुका है।

"वर्तमानमें पंचायतियों के शिथिल हो जाने से समाज में बड़ी हानि हो रही है इस लिये यह सभा प्रस्ताव करती है कि उन पंचायतियोंको दृढ किया जावे और उनके द्वारा धर्म का व्यवहार का सुधार कराया जाय।"

पाठको! विचारिये कि उक्त प्रस्ताव कितना महत्व पूर्ण है इस प्रस्तावको कार्य रूपमें परिणत करना जातिके हितकी दृष्टिसे कितना आवश्यक है। किन्तु खेद होता है कि जब हम देखते हैं कि इस उपयोगी प्रस्तावके लिये न पंचायतियों ने ही कुछ किया है और न हमारी परिषद्ने ही कुछ प्रयत्न किया है यदि आप ध्यान पूर्वक विचारेंगे तो अवश्य ही इस नतीजे पर पहुंचेंगे कि परिषद्के प्रस्तावोंका प्रचार करने के लिये पंचायतियोंका सुसंगठन होना चाहिये और उनके सच्चे प्रतिनिधियोंको परिषद् में स्थान मिलना चाहिये।

इसी बात पर ध्यान रखकर हम परिषद्से प्रार्थना करते हैं कि आगामी अधिवेशनमें इस आशयका प्रस्ताव अवश्य पास करें और उस पर बड़ी सरगरमीके साथ अमल किया जावे।

प्रस्ताव १—

यह प्रस्ताव नं० ७ सम्वत् १९७३ को अमल में लाने के लिये विरोध नाशक कमेटीसे १ ऐसा उत्साही डेपुटेशन नियत करनेको कहती है जो प्रान्त २ जाकर वहांकी पद्मावती पुरवाल पंचायतको सुव्यवस्था करे उस डेपूटेशनका खर्च विरोधनाशक कमेटीके बजटमें से दिया जावे।

प्रस्ताव २—

पद्मावती परिषद् श्री भा० दि० जैन महासभा के अजमेरमें पास हुए प्रस्तावोंका स्वागत करती है और चाहती है कि महासभाकी प्रबंधकारिणीमें परिषद्के भी कुछ प्रतिनिधि रक्खे जाया करें।

इस प्रस्तावकी १ नकल महामंत्री साहब महासभा को भेजी जावे और इस संबंधमें बातचीत करनेका अधिकार मंत्रीजी को दिया जावे।

हितैषी- ग० स्व० भारतीय जारकी।

विविध विषय।

श्रीमती जैनधर्म संरक्षणी परिषद्।

मुरैना जैनसिद्धान्तविद्यालयमें जो विद्यार्थी पढते हैं उनमेंसे कुछ एकने उक्त नामकी परिषद् करीब ६ माससे कायम की है इसका कार्य नामसे ही मालूम हो सका है।

अबकी बार भाद्रपद तथा क्वारमें छुट्टीके समय विद्यालयकी उक्त परिषद्के मंत्री तथा सभासदों ने बहुत से छोटे बडे गावों मे भ्रमण कर लोगों को संबोधा, रात्रि भोजन हुक्का पीना आदि निषद्य बातोंका त्याग कराया तफसील वार हमारे पास सब रिपोर्ट आई है पर स्थानाभावसे हम उसे प्रकाशित नहीं कर सके विद्याध्ययन की अवस्था में भी धर्म प्रचारकी रुचि इनकी सराहनीय है। छुट्टी के दिनों को ऐश आराम करने के लिये रिजर्व समझनेवाले छात्रों को इनका

अनुकरण करना चाहिये और जाति प्रबोधक के संपादक जिन्हें समस्त दोषों की खानि समझते हैं उन संस्कृत के विद्यार्थियों के हौंसले को देख कुछ शिक्षा लेनी चाहिये ।

भक्तामरका माहात्म्य।

उक्त परिषद्के अन्यतम सदस्य श्रीयुत जयचंद्रजी भ्रमणके समय खांडा (आगरा) गये थे वहां एक अजैन औरत प्रेतबाधा से दुख पा रही थी। भक्तामर के काव्यों को पढ़ इन्होंने उसे दूर कर दिया जिससे जैन अजैन सभी पर जैन धर्मका अधिक महत्व पड़ा।

प्राप्ति-स्वीकार ।

नीचे लिखे महाशयोंने इस जातीय पत्रको अपना कर जो सहायता दी है उसके उपलक्षमें यह पत्र समस्त जातिको तरफसे धन्यवाद देता है और अपने अन्य प्रेमियों से प्रार्थना करता है कि वे भी इसकी तरफ दृष्टि दें ।

१०) ला० पन्नालाल बाबूराम जी शिकोहाबाद (बाबूरामजी की माताने मरते समय दान दिया)

१२) जैनहितैषी मित्रमंडली करजन [बड़ौदा]

१) शकरौली के पंचोंकी तरफसे मा० पं० फूलजारीलालजी शास्त्री ।

जैनसिद्धांतविद्यालयका ९ वां वार्षिकोत्सव-

फाल्गुन वदी ८-६-१० ता० १२-१३-१४ फरवरी को मोरेनामें ही होना निश्चत हुआ है। इसमें विद्यालय को कार्यवाहीकी देख भाल और नवीन सुधारों के लिये विचार किया जावेगा। यह अवसर विद्यालय की भीतरी तथा बाहिरी अवस्था देखनेके लिये और विद्वानोंके महत्वपूर्ण व्याख्यान सुननेके लिये बहुत अच्छा है इसके सिवाय विद्यालयका ध्रुव फंड एक लाख का हो गया है। संभव है इसका नाम बदल कर "पं० गोपालदासजैन विद्यालय" रक्खा जाय। और रुपयों के वृद्धिका भी विचार किया जाय। अतः सर्व साधारण तथा विद्यालयके हितैषियों और कमेटीके मेम्बरों से सविनय और पूज्य पंडितजीके मित्रोंकी सेवा में विनय अनुनय के साथ प्रार्थना है कि, वे इस शुभ अवसर पर पधार कर उत्सवको अलंकृत करने की अवश्य ही कृपा करें ।

प्रार्थी—खूबचंद्र जैन मंत्री, मोरेना ।

"परवार महासभा" का द्वितीय अधिवेशन ।

अकलतरा (बिलासपुर) में मिती फागुन वदी १४ से उक्त सभाका २य अधिवेशन और श्रीपंचकल्याणक महोत्सव होगा। पंडित, उपदेशक, जातिके नेता आदि सर्व सज्जन पधारें। प्रस्ताव और उपयोगी सम्मतियाँ जल्दी भेजें ।

कुंवरसैन जैन

मंत्री—परवार महासभा, सिवनी ।

आवश्यकता—

नागोर [मारवाड़] जैन पाठशालाके लिये एक ऐसे अध्यापककी जरूरत है जो सहनशील हों, व्याकरण तथा अंग्रेजी भाषाके जानकार और उपदेश भी दे सकें। वेतन योग्यतानुसार ४०) से ५०) तक ।

पत्र व्यवहारका पता—चांदमल जैन
ठि० पोस्ट आफिस पो० मैमनसिंह ।

श्रीलाल जैनके प्रबन्धसे जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,
८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार कलकत्तामें छपा ।

पद्मावती परिषद्का सचित्र मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल ।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा चित्रोंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

वर्ष. २ | अं. १०-११

विषय सूची ।

वार्षिक मू० २)

आनरेरी मैनेजर—
श्रीधन्यकुमार जैन. 'सिंह'

१ अंक का ≈)

पद्मावती पुरवालके नियम।

१ यह पत्र हर महीने प्रकाशित होता है। इसका वार्षिक मूल्य २)रु० पेशगी लिया जाता है।

२ इस पत्रमें राजविरुद्ध और धर्मविरुद्ध लेखोंको स्थान नहिं दिया जाता।

३ इस पत्रके जीवनका उद्देश्य जैन समाजमें पैदा हुई कुरीतियोंका निवारण कर सर्वज्ञप्रणीत धर्मका प्रचार करना है।

४ विज्ञापन छपाने और बटवानेके लिये कोई महाशय तकलीफ न उठावें।

श्री "पद्मावतीपुरवाल" जैन कार्यालय नं० ८ महेंद्रबोस लेन, श्यामबाजार, कलकत्ता।

महासभाके नाम खुली चिट्ठी।

सर्वकार्याध्यक्ष व सभासद! जुहार, जयजिनेंद्र।

महासभाके हम सं० १९५३ से सभासद हैं और हमने यथा शक्ति अपने लेखों द्वारा व यथा शक्ति हर फंडमें चंदा देकर सहायता दी है। सं० १९६७ में महाविद्यालयको जैन हाईस्कूल बनानेकी चेष्टा कुछ बाबू लोगोंने की थी। उससमय स्व० पं० गोपालदासजी वरैया पं० पन्नालाल बाकलीवाल पं० धन्नालालजी व हमने लेखों द्वारा व चिट्ठी आदि अनेक परिश्रम करके महाविद्यालय की रक्षा की। इसविषयके जैनमित्र व जैन गजटके अंक हमारे पास मौजूद हैं और सं० १९६२ में महाविद्यालयको हाईस्कूल बनाही डाला तब भी उसी प्रकार कोशिश करके महाविद्यालय की रक्षाकी। जिनको संदेह हो वह उससालके जैनगजट और जैनमित्र देखलें सं० १९६९ में स्व० मुंशी चम्पतरायजी महामंत्री महासभाने हमें सहायक महामंत्री तीर्थक्षेत्र कमेटीका बनाया उस कमेटीकी भी हमने तन मन धनसे सहायता की और मुकद्दमों में पैरवी की। और तीर्थक्षेत्र कमेटी पर आघात किया गया बाबू बनारसीदास सहायकमहामंत्री महासभा की तरफसे तब भी बड़ी कोशिश करके हमने व स्व० पं० गोपालदासजी वरैया सं० जैनमित्र ने तीर्थ क्षेत्र कमेटीकी रक्षाकी और छोटे मोटे कामों की हम लिखते नहीं और एक महीना महासभाको आनरेरी उपदेशकी की। सं० १९७३ कातिक महासभाके अधिवेशन मथुराजीमें जैन गजट की सम्पादकी हमें दी गई उस वक्त जैन प्रभात जैनहितैषी ज्ञानप्रबोधक पत्र महासभा व तीर्थ क्षेत्र कमेटी पर मिथ्या दोष लगाते थे यहां तक कि दोहादकी सभामें इस प्रस्ताव को पास करानेकी चेष्टा की गई थी कि महासभा जुदा स्थापन करली जावे और जुदे कार्यकर्ता भी चुनलिये जावें और यह महासभा तोड़ दी जावे। उस समय महासभाके महामंत्री श्रीमान लाला जम्बूप्रसादजी रईस सहारनपुरने हम चार आदमीको उस प्रस्तावके विरोधमें पैरवी करनेकेवास्ते भेजनेकी सलाहकी। कारण वश तीन महाशय न पहुंच सके। हम वहां पहुंचे और उस प्रस्तावको सबजेक्ट कमेटीमें रद्द कराया और हमारी सम्पादकी में तीन वरस से जैन गजट चला और चौथा सालके ५ अंक निकले। अब महामंत्री महासभा की कृपासे दो तीन हफ्ते से जैनगजट बंद है। यह हमारा अन्तिम निवेदन है शरीर हमारा शिथिल हैं परिश्रम होता नहीं महासभा व तीर्थक्षेत्र कमेटी हमें पैंसन दे और हमारे जिम्मे कसूर हो तो वरखास्त कर दें और मंत्री स्या म० विद्यालय ने महाविद्यालय व उक्त पाठशालाको संस्कृत विभाग जैन कालेज बनाने की चेष्टा की थी तब उसका खंडन हम ने जैन गजटमें किया था।

द० रघुनाथदास सम्पादक जैनगजट।

कृपाकर इसे मंदिरजी में लगादें।

पधारिये! अवश्यपधारिये!! जरूरही आइये!!!

पद्मावतीपरिषद्का ८ वां वार्षिक अधिवेशन समारोहके साथ

चैत सुदी ११ मंगलवार ता० ३० मार्चसे

फिरोजाबादके मेलामें

आरंभ होगा।

श्रीयुत जातिहितैषी भाई .... शुभस्थाने विराजमान ....

.... को सादर जयजिनेन्द्र!

आपको यह बतलानेकी जरूरत नहीं है कि पद्मावती पुरवाल जाति किस कदर अवनत दशामें पडी २ अपने जीवनके दिन बिता रही है? विद्याकी कमी, विधवाओंकी करुणाजनक दीनावस्था, व्यापारका अभाव, कुरीतियोंका दिन पर दिन बढाव, युवकोंका धर्ममार्गसे हटना, आदि अनेक कारण ऐसे हैं जिनके वशीभूत हो यह जाति नाना प्रकारके भयंकर दुखों और त्रासोंको सहन करती हुई अपने अस्तित्वको भी शीघ्रही मिटा देगी ऐसी आशा करनेका मौका आ गया है इसलिये—

इस अवसर पर हर गावके पंचोंको, सामान्य भाइयों और बहिनोंको शामिल होनेकी प्रार्थना है। पद्मावती परिषद् तमाम पद्मावती पुरवालोंकी एक बडी पंचायतके समान है जिस में अच्छी २ बातोंको सोचकर जातिमें प्रचलित करनेकी तरकीब सोची जायगी और उनके प्रचार से आपकी संतान पीढी दर पीढी तक सांसारिक व पारमार्थिक सुख भोगेगी।

नागपुर व मालवा प्रांतके पद्मावती—पुरवालोंको भी इस अवसर पर आशातीत संख्यामें पधार कर अपने चिरकालके भूले भटके भाइयोंसे फिर मिलजाना चाहिये।

नोट—फिरोजाबाद ई० आर० रेलवेका ष्टेशन है। वहांसे मेला १ मीलके करीब है। आनेवाले भाइयोंके लिये सब तरह का प्रबंध किया गया है। अपने आनेके समयकी पहिले से सूचना दे देने से और भी सुभीता रहेगा।

प्रार्थी—

पं० संतलाल जैन

पद्मावतीपरिषद् स्वागतकारिणी समिति

फिरोजाबाद सिटी।

पद्मावतीपरिषद्का मासिक मुखपत्र ।

"जिसने की न जाति निज उन्नत उस नरका जीवन निस्सार"

२ रा वर्ष } कलकत्ता, पौष, माघ वीर निर्वाण सं० २४४६ सन १९१९. { १०-११ वां अंक

बड़ा कौन हो सकता है ?

झूठी कीर्ति रटानेवाला बड़ा न जगमें हो सकता ।
बे मर्याद होनेवाला भी नहिं बड़ा कहा सकता ॥
रह भीति से बिलकुल कोरे जो नर करें यत्न भारी ।
बाहिरमें विद्वान कहानेका, वे भी हैं भयकारी ॥ १ ॥
किंतु जो नहीं इच्छुक यशका अरु वक्ता सीमा भीतर ।
भीतरमें विद्वत्ताका घर बाहिर श्रेष्ठ किया तत्पर ॥
बड़ा कहानेका ऐसे ही नरको जगमें है अधिकार ।
जैन जातिमें हों ऐसे नर तब उनसे हो बेड़ा पार ॥२॥

स्त्रीमुक्ति पर विचार।

(६ वे अंकसे आगे)

स्त्रियां मोक्षकी अधिकारिणी नहीं क्योंकि वे पुरुषोंसे हीन हैं नपुंसकके समान यह जो दिगंबर आचार्य प्रभाचंद्रजीका अनुमान आकार पहिले लिख आये हैं उसपर श्वेतांबर मतके श्री रत्नप्रभाचार्यजीने ये दो कल्प उठाये हैं कि क्या सामान्यसे सभी स्त्रियां मोक्षकी अधिकारिणी नहीं या जिनके विषयमें विवाद है वे स्त्रियां मोक्षकी अधिकारिणी नहीं। तथा यहां पहिले कल्पमें सिद्धसाध्यता और दूसरेमें पक्षन्यूनता ये दो दोष दिखाये हैं जो कि पहिले स्पष्ट रूपसे लिखे जा चुके हैं परंतु वे दोष विचारने पर ठीक नहीं जचते कारण जब यह बात पूर्ण ऊहापोहसे सर्वथा सिद्ध हो चुकी कि राग और द्वेषका सर्वथा अभाव मोक्षका कारण है वस्त्र धारण करनेसे राग द्वेषका अभाव कदापि नहि हो सकता और स्त्रियां विना वस्त्रके संयम धार नहि सकतीं तब उन्हें कैसे मोक्ष प्राप्त हो सकती है? इसलिये ऐसी दशामें सिर्फ अपने आगमपर दृढ होकर यह कहना कि देवांगना आदि स्त्रियां मोक्ष नहि पा सकतीं और मानुषी मोक्ष पा सकती है' हमारी समझमें ऐसा ही मालूम होता है जैसे कि कोई उपवास करनेवाला मनुष्य है उससे यह कहना भाई रोटी दाल मत खा, दूध मलाई खाले क्योंकि ऐसा कहने वाला यह समझता है कि अन्नका त्याग होनेसे उपवास बन जायगा परंतु उसको यह नहीं मालूम कि दूध मलाई खानेसे भी तो प्रमाद आने की संभावना है और उसके होनेसे उपवास करनेका तात्पर्य जो धर्म क्रियाओं में सावधानता बनी रहे यह है उसमें व्याघात हो जायगा और तब उपवास न बन सकेगा। इससे बढ़कर और आश्चर्यकारी बात क्या हो सकती है कि जब इस सिद्धांतको निर्विवाद रूपसे माना जाता है कि राग द्वेषका सर्वथा अभाव ही मोक्षका कारण है तब रागद्वेष के कारण वस्त्र सहित संयमको स्वीकार कर भी रागद्वेषका सर्वथा अभाव सिद्ध किया जाता है और अतएव स्त्रियां भी मोक्षकी पात्र बतलाई जाती हैं। हमारी समझसे तो यह पूर्वापर विरुद्ध बात हो नहि सकती इसलिये ऊपर लिखे दो कल्पोंसे जो स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्तिका मंडन किया गया है वे दोनों कल्प युक्तिसे संबंध नहि रखते, निज आगमसे संबंध रखते हैं तथा अपना आगम विरुद्ध होनेसे दूसरा कभी स्वीकार नहि करसकता यह युक्त ही है।

तथा उपर्युक्त अनुमानमें जो स्त्री पुरुषोंसे हीन हैं यह हेतु है उसे भ्रष्ट करनेके लिये श्रीरत्नप्रभाचार्यजीने यह लिखा है कि—क्या स्त्रियोंमें रत्नत्रयका अभाव है इसलिये स्त्रियां पुरुषोंसे हीन हैं वा उनमें पुरुषोंके समान विशिष्ट सामर्थ्य नहीं वा पुरुष उन्हें वंदना नहि करते यह बात है वा परिपूर्ण विचार नहीं रहता यह बात है वा उनके विशिष्ट ऋद्धि नहि होती यह बात है वा उनमें मायाचारी हद दर्जेकी है यह बात है? तथा पहिले कल्पमें स्त्रियां सवस्त्र संयमकी धारक होती हैं इसलिये उनमें रत्नत्रयका अभाव है ऐसा कहे जानेपर श्रीमान् रत्नप्रभाचार्यजीने यह भी लिखा है कि क्या वस्त्र शरीरके संपर्क मात्रसे परिग्रह गिना जायगा वा परिभोगका कारण वा मूर्छाका कारण होनेसे? तथा इनका परिहार भी उन्होंने लिखा है जैसा कि

पहिले लिखा आचुका है परंतु उस परिहारसे हमारी शंकाएं निवृत्त नहिं होतीं। क्योंकि यह पहिले ही लिखा आ चुका है कि राग द्वेषका अन्त व मोक्ष प्राप्तिका कारण है। जबतक वस्त्रका त्याग न होगा तब तक कभी राग द्वेषका अभाव नहिं हो सकता रागद्वेषके अभावमें अखंड सम्यग्दर्शन प्राप्त भी हो जाय किंतु अखंड ज्ञान केवलज्ञान [मन पर्ययज्ञान भी] वा अखंड चारित्र कभी प्राप्त नहिं हो सकते और रत्नत्रय स्वरूप ही मोक्ष माना है इसलिये इस बातके कहनेमें जरा भी संकोच नहीं होसकता कि रत्नत्रयके अभावसे ही स्त्रियां मोक्ष प्राप्त नहिं कर सकतीं। शास्त्रमें अखंड रत्नत्रय स्वरूप ही मोक्ष माना है और अखंड रत्नत्रयकी प्राप्ति रागद्वेषका सर्वथा हानि स्वरूप है। रागद्वेषकी हानि वस्त्र आदि परिग्रहके अभावमें हो सकती है इस लिये सवस्त्र संयम कभी मोक्षका कारण नहिं बन सकता।

तथा शरीरके संपर्क मात्रसे यदि वस्त्र परिग्रह माना जायगा तो शरीरका स्पर्श तो पृथिवीसे भी होता है इसलिये वह भी परिग्रह हो जायगा यह जो श्रीमान रत्नप्रभाचार्यजीने लिखा है वह एक हास्य जनक उत्तर है क्योंकि पृथिवी अशक्यानुष्ठान है उसका संपर्क छूट नहिं सकता फिर भी संपर्क मात्रसे पदार्थको परिग्रह किसने स्वीकार किया है। दिगंबर संप्रदायमें 'ममेदं' ऐसी बुद्धिको ही परिग्रह माना है। हजार बार संपर्क होनेपर भी पृथ्वीमें तो वैसी बुद्धि हो नहीं सकती सिद्धोंका भी आकाशसे संपर्क है इस लिये वे भी परिग्रही माने जायंगे इसलिये हमारी समझमें नहिं आता यह कैसा उत्तर दिया गया है।

तथा क्या वस्त्र परिभोगका कारण है? इस कल्पका जो खंडन किया गया है वह भी ठीक नहीं कारण वस्त्र बार बार भोगनेमें आता है इसलिये वह उपभोग ही है। तथा क्या वस्त्र मूर्छाका कारण है? इस कल्पका जो खंडन किया गया है वह भी अयुक्त है क्योंकि साधुगण जीर्ण होनेपर उसे छोड़ते हैं और नवीन धारण करते हैं इसलिये मूर्छा प्रत्यक्ष ही प्रतीत होती है। क्योंकि यह मेरा है इस बुद्धिको ही मूर्छा कहा गया है वस्त्र धारण करनेपर यह बुद्धि अनिवार्य है इसलिये यह बात अच्छी तरह अनुभवमें आती है कि वस्त्र धारण करने पर विशिष्ट ज्ञान और चारित्र नहिं प्राप्त हो सकते और उनकी प्राप्ति न होनेसे रत्नत्रय स्वरूप मोक्ष कभी प्राप्त नहिं हो सकता।

दूसरा कल्प क्या उनमें पुरुषके समान विशिष्ट सामर्थ्य नहीं इसलिये वे मोक्ष नहिं प्राप्त कर सकती यह है। यद्यपि उसका खंडन किया है परंतु ठीक नहिं जचता कारण आजकलकी स्त्रियोंको देखकर ही (स्त्री पुरुषोंमें समान सामर्थ्यको देखकर) स्त्रियोंमें विशिष्ट सामर्थ्यकी सिद्धिके लिये प्रयत्न किया गया है लेकिन विशिष्ट सामर्थ्यमें वज्रवृषभ नाराच संहनन ग्रहण किया गया है सो तो आजकल क्या पुरुष क्या स्त्री किसीमें नहिं दीख पड़ता किन्तु स्त्री पुरुषोंका संहनन इस समय एकसा दीख पड़ता है इसलिये किन्हीं स्त्रीके शरीरके अवयव ताकतवर होते हैं तो किन्हीं पुरुषके शरीरके अवयव ताकतवर होते हैं किंतु बहुत कर पुरुष ही ताकतवर दीख पड़ते हैं इसलिये यह अनुमान नहिं किया जा सकता कि जिस प्रकार पुरुषोंका वज्रवृषभ नाराच संहनन होता है वैसा स्त्रियोंका भी होता है वास्तवमें तो जिस प्रकार पुरुषमें स्त्रियोंके भाव देखनेसे यह माना जाता है कि इसके भाव स्त्री वेदका उदय है उसी प्रकार पुरुषोंके समान कार्य स्त्रियोंमें देखनेसे भी यही माना जा सकता है कि यह भी भाव

पुरुष वेदका कार्य है। अस्तु । वज्रवृषभ नाराच संहनन स्त्रियोंके होता है या नहीं इस विषय पर आगे विस्तृत विवेचना की जायगी ।

तीसरा कल्प 'क्या पुरुष उन्हें नमस्कार नहिं करते इसलिये स्त्रियां मोक्ष नहिं प्राप्त करती।" यह है परन्तु इसका उत्तर भी ठीक नहीं दिया गया । कारण प्रमेयकमलमार्तंडके कर्त्ताने जो श्वेतांबर आगमका प्रमाण देकर यह सिद्ध किया था कि "सौ वर्षकी दीक्षित भी साध्वी एक दिनके दीक्षित साधुको नमस्कारादि द्वारा पूज्य मानती है वह अपने चारित्रसे पुरुषके चारित्रको उत्कृष्ट मान कर ही ऐसा करती है इससे स्त्रीके संयमसे पुरुषका संयम श्रेष्ठ सिद्ध हो जाता है और संयमकी श्रेष्ठतापर ही मुक्ति—प्राप्ति निर्भर है।" इसका कोई युक्ति संगत उत्तर नहीं दिया बल्कि उस आगम वाक्यको एकदम भुलाकर अन्य २ कल्पित बातें खड़ी की गई हैं ।

चौथा कल्प क्या स्त्रियां पुरुषके विषयमें परिपूर्ण विचार नहिं रखतीं इसलिये वे मोक्ष प्राप्त नहिं कर सकतीं यह है इसके उत्तरमें श्रीमान रत्नप्रभ आचार्यने यह सिद्ध भी किया है कि वे परिपूर्ण विचार रखती हैं परंतु इससे वे मोक्षकी अधिकारिणी नहिं बन सकती क्योंकि उनका ब्रह्मचर्य अखंड रहे भी तथापि सवस्त्र होनेसे उनकी ममता नहिं छूट सकती तथा ममताकी विद्यमानतामें वे मोक्ष प्राप्त नहिं कर सकतीं ।

पांचवा कल्प 'क्या उन्हें ऋद्धियां प्राप्त नहिं होती इसलिये वे मोक्ष नहिं जा सकती' यह है । श्रीमान रत्नप्रभाचार्यने स्त्रियोंमें ऋद्धियोंकी सत्ता सिद्ध की है परन्तु हमारा ध्यान इस विषयमें यही है कि मन वचन कायकी गुप्तिके अधीन विशिष्ट ऋद्धियों की प्राप्ति है । बिना गुप्तियोंके अवलंबन कोई भी ऋद्धि प्राप्त नहिं हो सकती तथा सवस्त्र अवस्थामें काय गुप्ति का न होना तो सबहीके दृष्टि गोचर है अन्य मनोगुप्ति और वचन गुप्तियोंका सर्वथा पालना भी असंभव ही है इसलिये महान ऋद्धियां कभी स्त्रियोंको प्राप्त नहिं हो सकतीं ।

छठा कल्प 'स्त्रियोंमें हद दर्जेकी मायाचारी है जिससे वे मोक्ष प्राप्त नहिं कर सकतीं' यह है इस कल्पका खंडन किया गया है परंतु विचार करने से यही प्रतीत होता है कि स्त्रियोंमें पुरुषोंकी अपेक्षा अवश्य अधिक मायाचारी है यहां तक कि मायाचारी करनाउन्हें अपना कर्तव्य सरीखा प्रतीत होने लगता है और मायाचारीके अविनाभावी दोषोंमें कोई कोई दोष अधिक परिणामों की उज्वलतामें भी उनका नहिं छूटता इसलिये स्त्रियां मोक्ष प्राप्त नहिं कर सकतीं ।

तथा स्त्रियोंको मोक्षकी प्राप्ति सिद्ध करने के लिये यह जो अनुमान प्रकार है कोई मनुष्य स्त्री मोक्ष प्राप्त करती है क्योंकि पुरुषोंके समान कारण विद्यमान हैं सो भी ठीक नहीं क्योंकि मोक्षका अविकल कारण रत्नत्रय बतलाया गया है सो उनमें उपर्युक्त युक्तिबलसे कभी सिद्ध नहिं हो सकता क्योंकि क्षायिक सम्यग्दर्शन क्षायिक सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र इन तीनोंका नाम रत्नत्रय है सवस्त्र अवस्थामें क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त भी हो जाय पर क्षायिक सम्यग्ज्ञान सम्यक चारित्र कभी नहीं प्राप्त हो सकते ।

वास्तवमें मोक्षका अर्थ छूटना है और राग द्वेष आदि वैभाविक परिणतिका छूटना ही मोक्षमें कारण हो सकता है । सवस्त्र अवस्थामें उस वैभाविक परिणतिका कभी नाश हो नहिं सकता इसलिये सवस्त्र संयम कभी मोक्षका कारण नहिं बन सकता जिन्होंने स्त्रियों को मोक्ष मानी है वे अपने आगमों के भक्त हैं

और उनके आगममें स्त्रियोंको मोक्ष होना स्वीकार किया गया है इसलिये हम उनको रोक नहिं सकते परंतु कुछ मन चले मनुष्य दिगम्बर संप्रदायसे भी स्त्रियोंको मोक्ष होना सिद्ध करते हैं क्योंकि सर्वथा निर्ममता को ही जब मोक्ष प्राप्ति मे असाधारण कारण माना है तब सवस्त्र अवस्थामे निर्ममताके अभावमे कभी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकती। स्त्रियां कभी नग्न अवस्था धारण कर नहि सकतीं इसलिये जिस प्रकार वंध्याके पुत्र गधेके सींग आकाशके फूल आदि असंभव बातों को संभव करने की चेष्टा प्रमत्त चेष्टा समझी जाती है उसी प्रकार स्त्रियोंके लिये मोक्ष सिद्धिकी चेष्टा करना दिगम्बर सिद्धांतसे प्रमत्त चेष्टा समझी जायगी दिगम्बर सिद्धांतसे स्त्रियां साक्षात् कभी मोक्षप्राप्ति की अधिकारिणी नहि बन सकतीं।

कुछ आधुनिक तत्त्व वेत्ताओंका यह भी सिद्धांत है कि प्राचीन आचार्योंने स्त्रियों की मोक्ष प्राप्तिका निषेध नहि किया किंतु नवीन आचार्यों ने स्त्रियोंकी मोक्ष प्राप्तिका निषेध किया है परंतु यह बात सर्वथा झूंठ है। दिगम्बर संप्रदायके भगवान कुन्द कुन्द जो वि॰ सं॰ ४९ में प्रखर आचार्य हो गये हैं। शास्त्रकी आदि में जिनकी मंगलं कुंदकुंदार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलं' यह भक्तिपूर्ण यशोगाथा गाई जाती है उन्हीं भगवान ने अष्ट पाहुड में यह लिखा है—

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिओ जिणवयणे परिगहरहिओ निरायारो॥

अर्थ—जाके मतमें लिंग जो भेष ताकै परिग्रहका अल्प तथा बहुतका ग्रहण कह्या है सो मत तथा तिसका श्रद्धावान गर्हित है निंदा योग्य है जातैं जिन वचन विषै परिग्रह रहित है सो निराकार है निर्दोष मुनि है ऐसा कह्या है। भावार्थ—श्वेतांबरादिकके कल्पित सिद्धांत सूत्रनिमें भेषमें अल्प बहुत परिग्रहका ग्रहण कह्या है सो सिद्धांत तथा ताके श्रद्धानी निंद्य हैं जिन वचन विषै परिग्रह रहितकों निर्दोष कह्या है। आगैं कहैं हैं जिन वचनविषै ऐसा मुनि वंदने योग्य कह्या है—

पंच महव्वयजुत्तो तिहि गुत्तिहि जो स संजदो होई।
णिग्गंथ मोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य॥२०॥

अर्थ—जो मुनि पंच महाव्रत करि युक्त होइ अर तीन गुप्तिकर संयुक्त होइ सो ही संयत है संयमवान है। बहुरि निर्ग्रंथ मोक्ष मार्ग है बहुरि सो ही प्रगटपणै निश्चयकरि वंदिवे योग्य है। भावार्थ—अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह इनि पांच महाव्रतनि करि सहित होइ बहुरि मन वचन कायरूप तीन गुप्तिनि करि सहित होइ सो संयमी है सो निर्ग्रंथ स्वरूप है सो ही वंदिवे योग्य है जो किछू अल्प बहुत परिग्रह राखै सो महाव्रती संयमी नाहीं यह मोक्षमार्ग नाहीं गृहस्थ वत् है आगैं कहै है जो पूर्वोक्त तौ एक भेष मुनिका कह्या अब दूसरा भेष उत्कृष्ट श्रावकका ऐसा कह्या है—

दुइयं च उत्तलिंगं उक्किट्ठ अवर सावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्ते समदो भासेण मोणेण॥ २१॥

द्वितीय कहिये दूसरा लिंग भेष उत्कृष्ट अपर श्रावक कहिये जो गृहस्थ नाही ऐसा उत्कृष्ट श्रावक ताका कह्या है सो उत्कृष्ट श्रावक ग्यारमी प्रतिमाका धारक है सो भ्रमणकरि भिक्षा करि भोजन करै बहुरि पत्ते कहिये पात्रमें करे तथा हाथमें करै बहुरि समितिरूप प्रवर्त्तै भाषा समितीरूप बोलै अथवा मौन करि प्रवर्त्तै भावार्थ—एक तौ मुनिका यथा जात रूप कह्या बहुरि दूसरा यह उत्कृष्ट श्रावकका कह्या सो ग्यारमी प्रतिमा का धारक उत्कृष्ट श्रावक है सो एक वस्त्र वा कोपीन

मात्र धारे है बहुरि समितिरूप वचन भी कहे है अथवा मौन भी राखे ऐसा दूसरा भेष है । आगे तीसरा लिंग स्त्रीका कहे हैं—

लिंगं इत्थीण हवदि भुंजइ पिंडं सु एयकालम्मि ।
अज्जियवि एयवत्था वत्थावरणे ण भुंजेइ ॥ २२ ॥

अर्थ—लिंग है सो स्त्रीनिका ऐसा है एक कालविषै तौ भोजन करै बार बार न खाय बहुरि आर्यिका भी होइ तौ एक वस्त्र धारै बहुरि भोजन करतैं वस्त्रके आवरण सहित भोजन करै नग्न न होइ । भावार्थ—स्त्री आर्यिका भी हो है क्षुल्लिका भी होइ है सो दोऊ ही भोजन तो दिनमैं एकवार ही करै अर आर्यिका होइ सो एक वस्त्र धारै ही भोजन करै नग्न न होइ ऐसा तीसरा लिंग है । आगे कहै हैं वस्त्र धारकके मोक्ष नाहीं मोक्ष मार्ग नग्न पणा है हो है—

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासण जइवि होइ तित्थयरो ।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥ २३ ॥

अर्थ—जिन शासनविषै यह कह्या है जो वस्त्र का धारण वाला सीझै नाही है मोक्ष नाही पावै है तीर्थंकर भी होय तौ जेतैं गृहस्थ रहैं तेतै मोक्ष न पावै दीक्षा ले दिगम्बर रूप धारै तब मोक्ष पावै जातैं नग्न पणा है सोई मोक्ष मार्ग है अवशेष-बाकी सब ही उन्मार्ग है । भावार्थ—श्वेताम्बर आदिक वस्त्र धारीके भी मोक्ष होना कहै हैं सो मिथ्या है यह जिनमत नाही आगै स्त्रीनिकूं दीक्षा नाही, ताका कारण कहै हैं—

लिंगम्मिय इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु ।
भणिओ सुहुमो काओ तासिं कह होइ पव्वज्जा ॥२४॥

स्त्रीनिकै लिंग कहिए योनि ताविषैं तथा स्तनांतर कहिए दोऊ कुचनिके मध्य प्रदेशविषैं तथा कुक्षि देश कहिये कांखविषैं सूक्ष्मकाय कहिए दृष्टिके अगोचर जीव कहे हैं सो ऐसी स्त्रीनिकै प्रव्रज्या कहिए दीक्षा कैसे होई ? भावार्थ—स्त्रीनिकै योनि स्तन कांखविषैं पंचेंद्रिय जीवनिकी उत्पत्ति निरंतर कही है तिनकैं महाव्रत रूप दीक्षा कैसे होइ ? बहुरि महाव्रत कहे हैं सो उपचार करि कहे हैं परमार्थ नाही, स्त्री अपनी सामर्थ्यकी हद्दकूं पहुंचि व्रत धारै तिस अपेक्षा उपचारतै महाव्रत कहे हैं । आगे कहै है जो स्त्री भी दर्शन करि शुद्ध होइ तौ पाप रहित है भली है—

जइ दंसणेण सुद्धा उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता ।
घोरं चरिय चरित्तं इत्थीसु ण पावया भणिया ॥२५॥

अर्थ—जो स्त्रीनिविषैं जो स्त्री दर्शन कहिए यथार्थ जिनमतकी श्रद्धा करि शुद्ध है सो भी मार्ग करि संयुक्त कही है जो घोर चारित्र तीव्र तपश्चरणादि आचरणकरि अर पापतैं रहित होइ अर तपश्चरण करै तौ पाप रहित होय स्वर्गकूं प्राप्त होय है तातैं प्रशंसा योग्य है अर स्त्री पर्यायतैं मोक्ष नाहीं । आगे कहै हैं जो स्त्रीनिकै ध्यानकी भी सिद्धि नाही—

चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लंभावं तहा सहावेण ।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणं ॥२६॥

तिन स्त्रीनिकै चित्तकी शुद्धता नाही है तैसैं ही स्वभाव ही करि तिनकैं ढीला भाव है शिथिल परिणाम है बहुरि तिनकैं मासा कहिये मास मासमैं रुधिरका स्रवण विद्यमान है ताकी संका रहै है ताकरि स्त्रीनिविषैं ध्यान नाहीं है । भावार्थ—ध्यान होय है सो चित्त शुद्ध होय दृढ परिणाम होय काहू तरहकी शंका न होय तब होय है सो स्त्रीनिकैं तीनूं ही कारण नाहीं तब ध्यान कैसैं होय ? अर ध्यान विना केवल ज्ञान कैसैं उपजै ? केवल ज्ञान विना मोक्ष नाहीं ऐसैं स्त्रीनिकैं मोक्ष नाहीं श्वेतांबरादिक कहैं सो मिथ्या है ।

हम ऊपर लिख चुके हैं कि बिना निर्ग्रंथ लिंगके मोक्ष नहिं प्राप्त हो सकती क्योंकि निर्ममत्व जो कि प्रधान मुक्तिका कारण बतलाया गया है उसकी सत्ता निर्ग्रंथ लिंगके ही आश्रित है यही प्रातः स्मरणीय भगवान कुंदकुंदने २० वीं गाथामें प्रकट किया है। स्त्रियां निर्ग्रंथ लिंग धारण कर नहीं सकतीं इसलिये वे मोक्षकी भी अधिकारिणी नहिं बन सकतीं।

फिर भी भगवान कुंदकुंदने ही स्त्रियोंका लिंग जुदा बतलाया है और स्त्रियोंमें सबसे उत्कृष्ट पद आर्यिकाका बतलाया है जिसमें एक वस्त्रका अधिकार दिया गया है। यदि स्त्रियां मोक्ष जाती हैं यह उन्हें अभीष्ट होता तो वे स्त्रियोंको भी निर्ग्रंथ लिंग धारण करनेकी आज्ञा देते अथवा एक वस्त्र धारण करने पर भी उन्हें मोक्ष प्राप्तिके अधिकारका उल्लेख करते।

प्रव्रज्या और ध्यान भी मुक्तिमें प्रधान कारण है परंतु भगवान कुंदकुंदने २४ वीं गाथामें यह साफ लिखा है कि स्त्रियों के योनि आदि स्थानोंमें निरंतर जीवोंकी उत्पत्ति होती है इसलिये उनके महाव्रत रूप दीक्षा कभी नहिं हो सकती।

भगवान कुंदकुंदने ध्यानका बलवान प्रतिबंधक मासिक धर्म आदिका उल्लेखकर ध्यानकी भी नास्ति २६ वीं गाथासे बतलाई है क्योंकि बिना ध्यानके मोक्ष कभी प्राप्त नहिं हो सकती। यह सब सिद्धांत सम्मत बात है इसलिये दिगंबर सिद्धांतसे स्त्रियोंको जो मोक्ष बतलाते हैं वह प्रकल्पना मात्र है। यदि कोई युक्तिबाज यहांपर भी यह शंका कर बैठे कि भगवान कुंदकुंदका ऐसा वचन नहिं मिला कि स्त्रियां मोक्ष प्राप्त नहिं कर सकतीं। तो उनका कहना वैसा ही समझा जायगा जैसा कि 'नो एडमिसन' भीतर जाना मना है जहांपर यह लिखा है वहां कोई अपरिचित विशेषनामधारी मनुष्य यह कहे कि वाह ! मेरा नाम लिखकर तो मनाई है ही नहीं, मैं भीतर जा सकता हूं। विचारनेकी बात है कि मोक्ष प्राप्तिमें जो कारण संभव हैं और ग्रंथकारोंने जिनका उल्लेख किया है वे स्त्रियोंमें जब नहिं संभव हो सकते तब वे कैसे मोक्षकी अधिकारिणी बन सकती हैं ? कभी भी नहीं। आचार्यवर अमितगतिने भी अपने अनुपम ग्रंथ योगसारमें यह लिखा है—

यत्र लोकद्वयापेक्षा जिनधर्मे न विद्यते।
तत्र लिंगं कथं स्त्रीणां सव्यपेक्षमुदाहृतं॥ ४३॥

ग्रंथमें ऊपर मोक्षके कारणोंपर ग्रंथकार श्री अमितगति आचार्यने विवेचन किया है उस समय उन्हें स्त्रियोंको मोक्ष प्राप्तिके विषयमें विचार उद्भूत हुआ इसलिये उन्होंने यह शंका स्पष्ट लिखा है। अर्थ-जिस जैनधर्ममें मोक्षके संबंधमें दोनों लोककी अपेक्षा भी हानिकारक समझी गई है—इस भव वा परभव संबंधी किसी पदार्थकी अपेक्षा होनेपर कभी मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता उस जैनधर्म में स्त्रियोंका वेष सव्यपेक्ष कुछ वस्त्र आदिसे विशिष्ट क्यों माना गया ? उत्तर—

नामुना जन्मना स्त्रीणां सिद्धिर्निश्चयतो यतः।
अनुरूपं ततस्तासां लिंगं लिंगविदो विदुः॥ ४४॥

अर्थात् स्त्रियोंको इस जन्मसे—स्त्रीपर्यायसे कभी भी मोक्ष नहिं प्राप्त हो सकती इसलिये लिंगवेत्ता भगवान् सर्वज्ञने उनका वेष अनुरूप—कुछ वस्त्रका प्रमाण लिये कहा है।

प्रमादमयमूर्त्तीनां प्रमादोऽतो यतः सदा।
प्रमदास्तास्ततः प्रोक्ताः प्रमादबहुलत्वतः॥ ४५॥

विषादः प्रमदो मूर्छा जुगुप्सा मत्सरो भयं।
चित्ते चित्रायते माया ततस्तासां न निर्वृतिः ॥४६॥

अर्थात् स्त्रियां प्रमादकी मूर्ति हैं इसलिये उन्हें प्रमदा शब्दसे पुकारा गया है। तथा विषाद हर्ष ममता ग्लानि ईर्षा भय और माया सदा उनके चित्तपर अंकित रहती हैं इसलिये उन्हें मोक्षकी प्राप्ति नहिं होती।

न दोषेण विना नार्यो यतः संति कदाचन।
गात्रं तु संवृतं तासां संवृतिर्विहिता ततः॥ ४७॥

बिना दोषोंके स्त्रियां कभी नहिं हो सकतीं सदा वे दोषोंकी पुंजस्वरूप रहती हैं इसलिये उनका शरीर सदा वस्त्रसे ढका रहता है इसीलिये विरक्त अवस्था में भी उन्हें वस्त्र विशिष्ट लिंग धारण करनेका उपदेश है।

शैथिल्यमार्तवं चेतश्चलनं श्रवणं तथा।
तासां सूक्ष्ममनुष्याणामुत्पादोऽपि बहुस्तनौ॥४८॥
कक्षाश्रोणिस्तनाद्येषु देहदेशेषु जायते।
उत्पत्तिः सूक्ष्मजीवानां यतो नो संयमस्ततः॥४९॥

स्त्रियोंमें शिथिलता ऋतुधर्म चित्तका चांचल्य और अधिक श्रवण शक्ति होती है। उनके शरीरमें बहुत से सूक्ष्म-मनुष्योंकी उत्पत्ति होती है तथा उनके कांख योनि और स्तन आदि शरीरके अवयवोंमें भी बहुत से सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते रहते हैं इसलिये उनके पूर्ण संयम नहिं पल सकता।

(१) बहुतसे पाठकोंने अभी इस योगसारके दर्शन न किये होंगे इस ग्रंथमें गूढ गूढ बातोंपर विचार किया गया है। यह अध्यात्मका ग्रंथ है। जब इस प्रकारके ग्रंथराजका केवल आगमके आधार पर ही नहीं अकाट्य युक्तियोंके आधार पर यह लेख है कि स्त्रियां कभी मोक्ष प्राप्त नहिं कर सकतीं तब यदि कोई मनुष्य अपनी विद्वत्ताका घमंड कर उनको मोक्ष माने तो यही कहना चाहिये कि वह दिगंबर जैनसिद्धांतका अनुयायी नहीं अन्य सिद्धांतका अनुयायी है या अपना कोई और ही मत प्रकाशित करना चाहता है जोकि सांसारिक लालसाओंका पोषक अज्ञानयुक्त होना चाहिये।

यह बात सभीको स्वीकार होगी कि जो महात्मा सांसारिक वासनाओंसे सर्वथा बहिर्भूत वीतराग स्वपरहितैषी होगा उसका वचन जिसप्रकार प्रमाणीक और कल्याणकारक होगा वैसा रागी द्वेषी विषय वासनाओंके अनुयायी सत्पथको अपनी विषय लालसाओंसे कभी भी उत्पथ सिद्ध करनेवाले मनुष्यका वचन प्रमाणीक नहिं गिना जासकता। वीतरागी आचार्योंने स्त्रियोंको मोक्षका निषेध किया है और उनका कथन केवल आप्तवाक्यके आधार पर ही नहीं युक्ति पूर्वक भी है इसलिये उनके वचन यथार्थ और अटल हैं किंतु कुछ मनुष्य जो दिगंबर जैन धर्मकी आडमें बैठकर स्त्रियोंको मोक्ष सिद्ध करनेका साहस कर रहे हैं विषय वासनामें मग्न हैं संसारमें अपना महत्त्व जमाना चाहते हैं उनका वचन कभी प्रमाणीक नहिं हो सकता उनका सिद्धांत सबको खुश करनेवाला किंतु परिणाममें कटुक है।

—:०:—

(१) भारतीयजैनसिद्धांत प्रकाशनी संस्था ८ महेन्द्रबोस लेन, श्यामबाजार कलकत्तासे यह १॥) रु० में मिलता है।

विजया।

(लेखक—जयचंद्र छात्र जैनसिद्धांतविद्यालय मुरैना।)

पुरुष—आज मैं काम करनेके लिये भूखाही चला गया, तूने रोटी नहीं बनाई। मुझ पर आज कौनसा वैर निभाया है? अब तू मुझे विष सरीखी मालूम पड़ती है तेरा सुबह मुह देखलेनेसे रोटी मिलना मुश्किल है। हा! बड़ी हत्यारी दुष्टिनी है! कलसे मुह नहीं दिखलाना। चल हट यहांसे!

स्त्री—कुछ धन्धा तो करते नहीं हैं खानेके लिये कहांसे आवे। आज तो घरमें नाज नहीं है रोटी किसकी करूं? मेरे पास इतना रुपया और गहना था सो बैठे ही बैठे खा गये, अब मैं कहांसे लाऊं? मकानका किराया तीन माह का देना है सो कहांसे दोगे। जबसे मैं राम नगर से तुम्हारे साथ आई हूं तबसे दो मास भी तो मेरे सुखसे व्यतीत हुए, नहीं तो प्रतिदिन मार उठाना पड़ती है। अब मेरे पास कुछ नहीं। सो नाना तरहकी गालियां दे मुह तक देखना पाप समझते हो। तुम्हें कुछ शर्म नहीं! मनुष्य होकर स्त्रीकासा काम करते हो ऐसे नर पिशाचोंसे तो कुत्ते अच्छे जो अपना पेट भर लेते हैं।

पुरुष—अरी डाइन तू बड़ी पापिनी है तूने अपने मालिकको मार डाला अब मुझे मारनेके लिये उतारू हुई है मालूम पड़ता है कि तू दूसरेसे फंसी है।

स्त्री—खबरदार! ऐसे वचन मुहसे नहीं निकालना, नहीं तो जबान मुहसे खींच लूंगी। अरे हत्यारे! तू बड़ा धोकेबाज निकला। पहिले मैं तेरे गुणोंको नहीं जानती थी जिसका फल मुझे अब चखना पड़ा। खाली मौज उड़ाना रह गया है खा खा कर हट्टा कट्टा हो गया है! काम कुछ नहीं करता, खाना कहांसे आवे?

ये बातें सुनकर पुरुषसे नहीं रहा गया उसने स्त्री को खूबही मारा। यहां तक कि स्त्रीके प्राण पखेरू निकलनेवाले ही थे इतनेहीमें रास्तेसे गश्त देते हुये सिपाही ने आकर उसके किवाड़ खुलवाये और आकर देखा तो स्त्री बेहोश है पुरुष खाटपर बैठा है पुरुषसे सिपाहीने तीन चार हण्टर दिये और स्त्रीके मुहमें पानी डाल उसके प्राणोंकी रक्षा की। सिपाहीने पुरुषको गिरफ्तार कर लिया और थानेमें जाकर उसे हवालात में बंद कर दिया।

(२)

यहांसे ५०० कोसकी दूरीपर 'रामनगर' नामक शहर है। उसमें धवलकिशोर सेठ प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। इनकी उदारता देखकर समाजने दान वीर पदसे विभूषित किया है। किंतु इनमें केवल दोष इतना है कि, ये कोरे निरक्षर भट्टाचार्य हैं। इनकी उम्र इस समय ६० वर्षके ऊपर है। और इन्होंने अपनी तमाम जिंदगीमें चौथाई दरजनसे भी अधिक विवाह किये हैं, इससमय आपके न तो कोई स्त्री है और न कोई संतान। जब किसी काममें इन्हें दिक्कत मालूम पड़ती है उस समय ये विचार सागरमें गोता खाने लगते हैं। कभी यह विचारते

हैं, कि मुझे धनसे कुछ भी सुख नहीं; मेरे पास इस समय इतना धन है कि चाहूं तो अपना विवाह कर सक्ता हूं लेकिन लोकलाजसे डरता हूं मैंने ही वृद्धविवाह-निषेधक प्रस्ताव सभाओंमें पास कराये; अब क्या मैंही विवाह करलूं ? नहीं, कभी नहीं। यदि मैं अपना व्याह करलूं तो मुझे राजदंड अवश्य मिलेगा और मेरा अन्यलोग भी अनुकरण करेंगे ? क्या करूं ? इधर सुख देखता हूं तो मुझे अन्य बातोंको तिलांजलि देनी पड़ती है और अन्य बातोंकी ओर देखूं तो मुझे तिल भर भी सुख नहीं; शरीरसे अब कुछ होता नहीं। क्या करूं ?। इस प्रकार हृदयमें विचार सागरकी लहरें टकरा टकरा कर विलीयमान होने लगीं। रात्रि को निद्रादेवी तिरस्कृत हो अलग ही खड़ी रही। सेठजीने अपना पक्का विचार विवाह करनेका कर लिया। सुबह हुआ दर्पण पासकी टेलबार में रक्खा था उठाकर देखा तो विचारने लगे कि मेरी अवस्था विवाहके योग्य है मैं ज्यादा वृद्ध नहीं हुआ सिर्फ बाल सफेद होगये हैं सो आजकल छोटे-लड़कोंके हो जाया करते हैं फिर इनको काला करना ही कौन कठिन है। जरा खिजाब लगाने भरकी देर है बस फिर तो अवश्य सब लोगों का युवा जंचने लगूंगा; इसके सिवा मेरे पास इतना रुपया है कि मैं स्त्रीके बराबर रुपया कर सक्ता हूं चांदीका जूता किसे वशमें नहीं करता। मैं अपने परममित्र छेदालालजी से अपना विचार प्रगट करूंगा, वे मेरे इस विचार को कार्यमें परिणत करनेमें अवश्य सहायता देंगे।

"छेदालाल" एक प्रसिद्ध विवाह-दलाल हैं ये इनके यहां प्रतिदिन प्रायः आया करते हैं अतः आज भी आये। धवलकिशोरने उनसे अपना कुल विचार प्रगट किया। उत्तर में छेदालाल बोले—

सेठजी! आपने बहुत अच्छा विचार किया है सब सकलोफें विवाह करने से दूर हो जावेंगी, आप अवश्य विवाह कर डालिये।

धवल किशोर—आपकी तलाशमें कोई लड़की है?

छेदालाल—लड़कियोंका क्या है? गाय भैंस की तरह वे चाहें जहां मोल लो जा सकती हैं रुपये चाहिये।

धवलकिशोर—हां! सो तो ठीक है पर मैं कितना खर्च कर सकता हूं यह आप तो जानते ही हैं। लेकिन किसी दलालसे ही यह काम हो सकेगा।

छेदालाल—अजी आपको दलालकी कोई जरूरत न पड़ेगी।

धवल किशोर तो फिर ढूंढनेका भार आपके ऊपर छोड़िये। व्याह मैं जल्दी ही करूंगा।

छेदालाल—वाह! यह भी कोई कहना है!

धवलकिशोर लड़का कुछ बड़ी हो तो ठीक है नहीं तो

छेदालाल—बड़ी आते ही आपके कुल घरका काम सम्भाल ले तब तो आप खुश होंगे।

धवलकिशोर—आप सब कुछ जानते ही हैं।

(३)

मनुष्य १५ दिन तक हवालात में रक्खा गया। एक दिन घुड़सवार सिपाही रामनगरसे उस शहर की कचहरी में उपस्थित हुये और अपने मालिक का लाया हुआ पत्र महाराजके सामने रख दिया। उनने भी मंत्री की ओर पढ़नेका इशारा किया। पत्रमें लिखा था—
श्रीयुत मान्यवर राजा साहिब!

हमारे राज्यके दो स्त्री पुरुष जिनकी उम्र २० और २३ वर्षकी है आपके यहां किराये पर रहते हैं ये लोग एक मनुष्यका प्राण और धन लेकर रात्रिमें ही हमारे यहां से कूचकर आये हैं। अतः सेवामें निवेदन है कि इनका अन्वेषण करा इन सिपाहियोंके

साथ भिजवा दीजिये ताकि उनको प्रजाके सामने उचित दण्ड दिया जा सके।

भवदीय—

महाराणा प्रतापसिंह

पत्र पढ़कर राजासाहिबने अपने कोतवालको अपराधियोंके ढूंढनेकी आज्ञा दी और उसने भी पता लगा आये हुये सिपाहियोंके साथ उन्हें भेज दिया।

(५)

"बैरगढ़ नगरमें झंडूलाल नामके एक बनिये रहते हैं इनका हालत बहुत खराब व शोचनीय है आपके पास न जाने रुपया क्या नहीं ठहरता—आया और पानीके प्रवाहकी तरह चला गया! इससे इनके पेटमें शोकाग्नि सदा धधकता रहता है इनके एक पुत्र और तीन पुत्रियां हैं। पुत्र क्वांरा है। लड़कियोंमें दो तो पूरा पूरा रुपया लेकर बुड्ढोंके घर हांकदी गई हैं तीसरी शादीके लिये बाकी है। उसकी अवस्था १६ वर्षके ऊपर होचुकी है। झंडूलालकी अफवाह दूर २ तक फैली हुई थी अतः छेदालालको भी खबर लगी और वह उनके यहां आकर बोले—

आप अपनी लड़की की शादी अभी करेंगे या फिर कभी?

झंडूलाल—ललीका ब्याह तो मैं अभी करदूं किंतु अच्छा वर ढूंढ रहा हूं यदि अच्छा वर मिलेगा तो अभी कर लूंगा, नहीं तो फिर कभी देखा जायगा।

छेदालाल—ब्याह अभी कर लीजिये, वर मेरी तलाशमें है।

झंडूलाल—कहां है?

छेदालाल—रामनगरमें।

झंडूलाल—नाम क्या है और उनके घरकी परस्थिति कैसी है? और उम्र क्या है?

छेदालाल—वरका नाम सेठ धवलकिशोर है, घरके करोड़पती हैं। अवस्था बहुत ही छोटी सी ४५ वर्षकी है।

झंडूलाल—[मनही मनमें] वर लली के योग्य है घर अच्छा है बड़े हर्षकी बात है अन्य लड़कियोंसे यह लली बड़ी भाग्यशाली है (बाहिर) मुट्ठी भी कुछ गरम कराओगे?

छेदालाल—जिस तरह आप कहें?

झंडूलाल—रुपये मैं पांच हजार लूंगा इससे एक पैसा कम नहीं होगा।

छेदालाल—एक पैसा कम नहीं होगा सच कहो!

झंडूलाल—हां! यदि आप इतने रुपये दिलवानेमें राजी हों तो पक्की शादी है, नहीं तो नहीं।

छेदालाल—जैसी आपकी इच्छा। खैर! ब्याहका मिती निश्चय करनेके लिये पंडित बुलवाइये।

पंडित बुलवानेके लिये झंडूने अपना लड़का भेज दिया पंडितजी आये। और बोले—झंडूलाल! तुमने शादी कहां पक्की कर दी और लड़केका नाम क्या है?

झंडूलाल—ललीकी शादी रामनगरमें ठीक की है लड़केका नाम धवलकिशोर है।

पंडितजी—ललीका नाम तो विजया ही है न?

झंडूलाल—जी हां!

पंडितजीने पत्रा खोला विवाह सोधा और ब्याहकी मिती बैसाख बदी १५ जैमाकी जेठ बदी ११ बतलाई। इसके बाद पंडितजी तो दक्षिणा लेकर चले गये और दोनोंमें यों बात चीत हुई।

झंडूलाल—आधे रुपये जैमाके दिन और आधे ब्याहके दिन देने होंगे।

छेदालाल—आपकी जैसी मर्जी। हमें पैसा ही प्रमाण है अब जानेकी छुट्टी दीजिये।

झंडूलाल—बहुत देर होगई है, जाइये। ये कुल बातें कल्लू से कह देना।

छेदालाल कुल कारवाही पक्की कर रामनगर पहुंचे और सबसे पहिले धवलकिशोरसे मिले ।

धवलकिशोर-कौन छेदालाल !

छेदालाल-जी हां ! मैं ही हूं ।

धवलकिशोर-सब ठीक है न ? कहिये विवाह व जेमाकी मिती क्या है ?

छेदालाल-विवाहकी मिती वैशाख वदी १५ और जेमाकी मिती चैत बदी ११ है ।

विवाह की दोनों तरफ तयारियां हो गई । आज भंडूके बरात आवेगी तमाम गांवमें शोर मच गया । शाम के समय बरात आई । स्त्रियां बरात देखनेकेलिये अपनी २ छत पर चढ गई और पालकी देखकर इस प्रकार कहने लगीं—देखो ! दूल्हा दूरसे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि ३०-३५ वर्षका होगा किन्तु इस समय देखो तो ठीक ६० उम्र का सा है । विचारी विजयाकी तमाम जिन्दगी दुखमयी होगी । यह युवा अवस्थाके सुखों से रहित हो गई ! क्या किया जावे, माता पिता के सामने किसी का वश नहीं चलता । कन्या और गायकी एक राह होती है जिस तरफ चाहो उसी तरफ हांक दो वह वहीं चली जायगी । ऐसे अज्ञानी मा बापको धिक्कार है जिसको अपने पेटमें नव मास पाला और जिसका छोटी अवस्थासे बड़ी अवस्थातक पालन पोषण किया । हाय ! वे हो पापी फिर यह नहीं सोचते कि इसे दुख होगा या सुख ? उन्हें रुपयों से काम रहता है ऊंट के गलेमें बकरी बांध देते हैं । अब नही मालूम विजयाकी क्या दशा होगी ? इस प्रकार विचार कर रही थीं कि उनके नीचेसे बरात निकलगई और एक चौपा-लमें जाकर ठहर गई । रात्रिको बारोटी हुई और विवाह हुआ । छेदालालने तीन हजार ले २॥ हजार भंडू कोदे बाकी के रुपये अपने पास रख लिये । सुबह बरात कलेवा कर विदा हुई ।

[५]

शेठ धवलकिशोरके पड़ोसमें वैश्य बसंतीलाल रहता था । यह अविवाहित नवयुवक अतीव सुंदर था । रुपये पैसे उधार लेने यह अक्सर शेठजीके घर आया करता था । नवीन शेठानी भी इससे अपरिचित न थीं । धीरे २ उनका बसंतीमें अत्यधिक प्रेम होगया । बसंती अपने घरमें अकेलाही था, इसके कोई वंशमें न था । एक दिन विजयाने उससे मौका पाकर कहा—

अब यहांसे दूसरी जगह चलना ठीक होगा क्योंकि यह दुश्मन मुझे विष मालूम होता है । इसके देखनेसे आत्माको अतीव दुख होता है इससे कोई ऐसा उपाय विचारो, जिससे कि कुल रुपया ले, यहां से कूंच कर चलें ।

बसंती—इन बातोंमें मेरी बुद्धि ज्यादह काम नहीं करती । तुमही कुछ उपाय विचारलो ।

विजया-मेरी समझमें तो यह आता है कि इस बैरीका प्राण और धन ले यहां से चलना चाहिये ।

बसंती—तुम्हारे इस विचारसे ही काम तो । चलेगा इसका प्रयोग कैसे किया जायगा ?

विजया—यह बात कोई कठिन नहीं है—पलंगके ऊपरकी खुटी पर तलवार लटकती रहती है इससे सुप्त अवस्थामें बैरीका नाश करदूंगी और इसकी लाशको चादरामें बांध शिर पर रखकर अलग्रून्य कुएमें जंगलमें जा डाल आऊंगी । आजकल अंधेरी रात भी है । कोई मुझे देख भी न सकेगा ।

बसंती-क्या तुम मेरी और अपनी फांसी दिलाना चाहती हो ! यदि यह बात किसीको जाहिर होगई तो समझलेना कि हम और तुमको लोग शूलिपर टंगा देंगे ।

विजया—तुम नपुंसक हो, भयभीत क्यों होते हो ? अब मैं यह कृत्य करूं तो तुम उस समय मेरे

पास ही न आना। कुछ मनुष्यकासा काम करो, निरे नपुंसक हो मत बनो।

बसंती—भय तो कुछ नहीं है किंतु मालूम हो गया तो!

विजया—पहिले रुपयोंसे और गहनेसे थैली तो भरलो। फिर देखा जायगा।

बसंती—अच्छी बात है।

(६)

आज दश बजे कचहरीमें उन घुड़सवार सिपाहियोंने विजया और बसंतीको पेशकिया। न्यायाधीशने उनसे इस प्रकार पूछा—विजया! धवलकिशोर कहां है? और साथमें यह तेरा कौन है? ठीक २ बतलाओ! विजया—हजूर मुझे नहीं मालूम धवलकिशोर कहां है! और यह मेरा कोई नहीं है।

न्यायाधीश-धवलकिशोरको तैने या अन्य किसीने मारा?

विजया—मैंने नहीं मारा। मैं अबला कहलाती हूं भला! ऐसे घोर पापको कैसे करसक्ती!

न्यायाधीशने समझा कि विजया इस समय सरासर झूठ कह रही है तब अंतिम उपाय[पिटवाने]से काम लिया। अब तो विजयाने कुल बातें कह दीं। फलमें विजयाको कुत्ताफांसीको और बसंती को कालेपानीकी सज़ा दीगई। जेलरने चंडाल व सिपाहियोंको बुलवाया एवं चाण्डालोंसे कहा कि विजयाको आज समस्त प्रजाके सामने कुत्ता फांसी होगी अतः तुम लोग कुल सामान ठीक कर तैयार होजाओ और सिपाहियोंसे कहा कि तमाम शहरमें और राज्यमें यह ड्योढ़ो पिटवादो कि कचहरी पर तमाम नरनारी हाजिर हों? क्योंकि आज विजयाको फांसी होगी।

ड्योढ़ो पिटवा दीगई और चांडालोंने बड़े कड़के चार कुत्ते हृष्ट पुष्टसे निकाले और गर्त खोदा। विजया आधी उस गड्ढेमें गाढ़दी गई और उसके ऊपर पिठाई लपेट दी गई। तमाम नरनारी इकट्ठे होगये।

महाराजने अंतमें यह उपदेश देकर कि—"अयि नरनारियो! मेरे इस परमराज्यमें आजसे कोई अनमेल विवाह, वृद्ध विवाह नहीं करे। करनेवालेको विजयाके समान सज़ा दी जायगी। जो स्त्री अपने पतिको छोड़कर अन्य पुरुषको चाहेगी अथवा पुरुष उसको, तो बसंती से भी ज्यादा दण्ड मिलेगा। इस वास्ते ये अनर्थकार्य स्वप्न में भी नहीं करना।" चांडालोंने कुत्ते छुड़वा दिये। देखते २ विजया अंतर्हित होगई। बसंतीको काला पानी भेज दिया और इनके मकान नीलाम करादिये गये। समस्त नरनारी छिः छिः कहकर अपने अपने घर लौट गये और इन दोनोंकी निंदाकर भविष्यमें ऐसे कार्यों के न करनेकी प्रतिज्ञा ले सुखसे रहने लगे।

कृतघ्नी।

(लेखक-रा. स. भारतीय)

[१]

उपकारीका सदैव जो उपकार भूलि अपकार करे।
उस जननीसे बांझ भली है जो ऐसा सुत गोद धरे॥
भाररूप जगती तल पर हैं ऐसे दुरजन मिटैं अरे!
लाभरहित दुखकारी ऐसे जीवनवाले भले मरें॥

[२]

जिसने इनका तन मन धनसे करुणावश उपकार किया।
अपने आप बनाया रिपु इनको, अहिको अनु दूध दिया॥

जिनको थे प्राणोंसे प्यारे थे उनका ही रक्त पिया ।
'भारतीय' क्या पत्थरका होता है इनका वज्र हिया ?

[३]

नाम चाम अरु कंठ मनोहर देखि न भूलो केकोको ।
मायाचारी भोले दीखत करत अहित तजि नेकोको ॥
रतन अमोलिक नाम हुआ या कुछ २ सुंदर चाम हुआ।
लाभ नहीं कुछ, अगर दुष्टका दुरजनकासा काम हुआ ॥

[४]

करो प्रार्थना—हे भगवन ! हम कृतज्ञ हो नहिं कृतघ्न हों ।
अपने हितकारीके प्रति कर बदी हृदयमें न मग्न हों ॥
सुपात्र ही को दान देंइ अरु दया सुजनहीको चाहें ।
करें निरंतर उन्नति अपनी 'भारतीय" हम सुख पावें ।

ध्यानमें रखने योग्य पद्मावती परिषदकी सूचना ।

१ धर्मात्मा सज्जनो ! जहां आप अपने खाने पीने ओढने पहिरने व्यवहार और सांसारिक अनेक कार्यों में हजारों लाखों रुपया खर्च करते हैं वहां इस परिषदुका भी आपको ख्याल रखना चाहिये । परिषद् द्वारा जैन धर्म की रक्षा और जाति उन्नति के लिये कार्य हो रहे हैं । इसके लिये प्रत्येक भाई बहिनों को कम से कम एक पैसा रोज अलहदा निकालते रहनेकी प्रतिज्ञा लेनी चाहिये । एक पैसा रोज किसी को भारी नहीं हो सक्ता है । परंतु आपकी एक पैसा रोज की सहायता से धर्म का कार्य बहुतसा हो सक्ता है।

२ आज कल विवाह शादियोंके दिन हैं इन मौकों पर भाईयों को चाहिये कि इस परिषदुके लिये अच्छी रकम निकालें ।

३ उत्साही जैन भाईयों को यह काम करना चाहिये कि अपने २ स्थानों के भाईयों से प्रयत्न व प्रेरणा करके परिषद् के लिये द्रव्य निकलवावें । और निकाला हुआ द्रव्य इकट्ठा कर परिषद् आफिसमें भेजते रहना चाहिये ।

४ धर्म की रक्षाके लिये जो द्रव्य दिया जावेगा वही सार्थक और सफल होगा धर्म कार्योंमें दिया हुआ धन खूब फलता फूलता है इसमें द्रव्य देने वालों को संसारमें कीर्ति होती है और दोनों लोकोंमें पूर्ण सुख प्राप्त होता है अतः प्रत्येक जैन बन्धु और बहिनों को यथाशक्ति इसमें द्रव्य देकर अपनी लक्ष्मी सफल करना चाहिये ।

५ सहायताका रुपया इस पते पर भेजना चाहिये ।

पं० वंशीधर जैन
मंत्री—पद्मावती परिषद् शोलापुर ।

हृदय की तरंग ।

हैं मनके भाव हमसे छुपाये नहीं जाते ।
बेकस व बेकसूर सताये नहीं जाते ॥ १ ॥
जो साफ पाक हैं जो सुनाते खरी हमें ।
बदनाम करि वे दिलभी दुखाये नहीं जाते ॥ २ ॥
स्वीकार सच सदा है हो किसीकी वह कही ।
गलतीमें थोर-शोर झुकाये नही जाते ॥ ३ ॥
मत भेद हैं मुफीद अगर हठसों हों बरी ।
ऋषियोंके वाक्य हमसे भुलाये नहीं जाते ॥ ४ ॥
जो हैं निपट अजान, वे चेहा हैं, न विद्वान ।
विद्वान हमसे मूर्ख बताये नहीं जाते ॥ ५ ॥
आखिरमें सत्यकी विजय होती है "भारतीय" ।
झूठसे दिल पाक लुभाये नहीं जाते ॥ ६ ॥

वर्तमानके नेता बन बैठनेवालोंका मत भेद।

(लेखक— पं० रघुनाथदासजी सरनौ संपादक जैनगजट)

अंग्रेजी शिक्षाकी बहुलता और मोहनीय कर्मकी प्रबलतासे जैन नाम धारियोंमें अनेक कुयुक्तिबाज पैदा हो गये हैं। इन लोगोंने पहिले तो धर्मानुकूल कुछ कार्यकर भोले भाले जैन समाज पर अपना सिक्का जमा लिया फिर ये ही उनको श्रद्धान भ्रष्ट करने पर उतारू हुये हैं। ये जितने भी लोग हैं सबका अंतिम ध्येय तो एक [ऐहिक सुखसाधना] ही है और उपाय भी प्रायः एकसा ही करते हैं परन्तु विद्याकी हीनता समझिये या और कुछ कारण समझिये उनसे उन लोगोंकी बातें एक दूसरे से अधिक परिमाणमें भिन्नता लिये रहती हैं यहां तक कि मद्यपायी मनुष्यकी भांति इनके वाक्य अपनेही पूर्व वाक्योंसे नहीं मेल खाते। जिन लोगोंको इनके लिखे मासिकपत्र बांचनेका मौका पड़ा करता है वे तो पूर्वापर विचार करनेसे सहजही इनकी असंबद्ध प्रलापनाको समझ जाते हैं पर जो विशेष ऊहापोह नही कर जानते, इनकी पेचदार बातों में आ जाते हैं या जिनके आ जानेका डर है उनके सुभीतेके लिये यहां हम कुछ लिखते हैं जैसे कि—

वर्ण व जाति पर मतभेद

सत्योदय अं १२ सफा ३६० शूद्रमुक्तिशीर्षक लेख में लिखा है—

"उच्चगोत्र और नीचगोत्र किसी वंश व जातिमें परम्परागत नहीं होता है एकही पिताके दो पुत्र ऐसे होसकते हैं जिनमें एक उच्चगोत्री हो और दूसरा नीच गोत्री। गोमट्टसारमें 'संतानकमेणागय' पद गोत्रके वास्तविक लक्षणसे विरुद्ध है। हां! जीवका आचरण गोत्रका द्योतक है परंतु आचरणसे मतलब पेशेका नहीं। पेशोंमें उच्च व नीचगोत्रत्व नहीं है उच्च व नीचगोत्रत्व मनुष्यके उन भावों और बाह्य निमित्तोंसे सम्बन्ध रखता है जिनसे वह उन समुदायका अङ्गीभूत होकर स्वतन्त्र समाजहित व्यापक दृष्टिसे पेशा करता है या नहीं करता इसलिये एकही पेशेमें कोई जीव उच्चगोत्री होते हैं और कोई नीच गोत्री। जो लोग किसी भी विशेष पेशेको नीच गोत्रीका और किसी दूसरेको उच्चगोत्रीका कहते हैं वे एकांतवादी हैं और अनेकांत मय जिनधर्मका विपरीत स्वरूप समझे हैं और समझाते हैं। चाहे तो कोई क्षत्रिय हो चाहे कोई नाई धोबी माची भंगी हो, यदि वह अपना पेशा व जिंदगीका हर एक काम व्यवस्थित समाजका अङ्ग होकर करता है और अपनेको अंग होनेका अनुभव करता है पर भय या त्रासके वशीभूत कार्य नहीं करता तो वह उच्चगोत्री है। वह जीव इसका पात्र है कि षष्ठ गुणस्थानी हो मुनिधर्म ग्रहण करे और मुक्त हो। जो जीव व्यवस्थित समाजके अंग होनेका अनुभव नहीं करता किंतु जीविका कर्मको स्वपिंड या कुटुम्बकी व्यक्तिगत पृथक्दृष्टिसे करता है पराभूत होकर समाजका नियम पालता है वह नीचगोत्री है। वही स्वार्थी कुकर्मी अन्यायी अत्याचारी विषय लम्पटी होता है। क्योंकि उसकी दृष्टि अपनी ही गरज और रक्षापोषण

की तरफ हैं वह उदार और विशालदृष्टि नहीं होता ऐसे लोग हजारों हरएक देश व जातिमें होते हैं और उनके आचरण नीच होते हैं यानी उच्चविकासी नहीं। भारतके हजारों क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य नीच गोत्री हैं, उच्च गोत्रका उनमें लेशांश भी नहीं और बोसियों नाई धोबी कुम्हार आदि ऐसे हैं जो उच्चगोत्री हैं।"

इस लेखके लेखक सूरजमल छावड़ा हैं परंतु लेख बा० अर्जुनलालजी सेठीका लिखा है।

इसके विरुद्ध बा० सूरजभानु वकील वर्ण जाति पेशे परसे ही मानते हैं कुल खानदानसे कुछ सम्बंध नहीं है [जैनप्रदीपपृष्ठ-१७।१८]

वर्णव्यवस्थाके विषयमें पहले लेखक गोमट्टसार की गाथामेंसे संतानक्रमशब्द निकालते हैं। आप आर्ष वाक्यों को काटना छांटना लड़कोंका खेल समझते हैं। दूसरे वर्ण जाति केवल पेशे पर ही से मानते हैं जो आदि पुराणमें कुल परम्पराय व पेशा दोनोंसे ही सिद्ध की गई है। जो महाशय केवल आचरण पर गोत्र मानते हैं उनको गोमट्टसार कर्मकांड उदयाधिकारके इस कथन पर विचार करना चाहिये नीचगोत्रमें आदि के पांच गुणस्थान होते हैं उच्चगोत्रमें चौदह गुणस्थान। सारांश यह है पांचवें गुणस्थानमें ग्यारह प्रतिमारूप श्रावकका धर्म है वहां नीचाचरण कुछ भी नहीं, सात व्यसनका त्याग है हिंसा झूंठ चोरी कुशील बेईमानी आदिका त्याग है मांस मदिरा खानेका त्याग है तब नीचाचरण पंचम गुणस्थानमें तो किसी तरह नहीं हो सकता। जब ऐसा, नीचगोत्र ऊंचगोत्र दोनोंमें पंचम गुणस्थान होता है तब गोत्रकर्म संतानक्रम कुल परंपरायसे ही सिद्ध होता है। चरणानुयोग द्रव्यानुयोगसे ऐसा ही पाया जाता है। व्याकरणसे भी ब्राह्मण क्षत्रिय व गोत्र शब्द कुलक्रमसे बने हैं वहां जाति वाचक ही माने गये हैं। रत्नकरंडश्रावकाचारमें सम्यक्त्वकी महिमामें ऐसा वर्णन है सम्यग्दृष्टी मर कर खोटे कुलमें जन्म नहीं लेता है इत्यादि अनेक प्रमाण हैं। लेखक महाशयने एक बात बड़ी विलक्षण कही है जिसके उदारता हो वह ऊंचगोत्री जिसके उदारता न हो नीचगोत्री! इसके सिवा यह भी समझमें नहीं आता कि रुजगार परमार्थके लिये कौन करता है, सब ही अपने व कुटुम्बके भरण पोषणको ही करते हैं॥

स्वर्ग नरकके विषयमें।

बाबू सूरजभानुजी वकील [जैनगजट अं० ४२ सन १९०७] मूढ़भक्ति शीर्षक लेखमें लिखते हैं 'आदिनाथ महाराजको राजा श्रेयान्सने दान दीया था उस समय स्वर्गके देवोंने रत्नवर्षाकी व राजाकी पूजा की थी' ऐसी आपको श्रद्धा थी। अब ऐसी श्रद्धा जैनग्रन्थों पर है-आप जैनप्रदीप अं १९-२० सन १९१८ में इलजामातकी सफाई शीर्षक लेखमें लिखते हैं 'जैन जैसा देवनारकोंका स्वरूप मानते हैं वैसा हमें मान्य नहीं है'॥

* मूर्तिपूजा पर।

बाबू सूरजभानुजीने जैनतत्वप्रकाशिनी सभा इटावामें मूर्तिपूजन पर व्याख्यान दिया था (जैन मित्र अं १८ सं० १९१२) सम्पादक सत्योदय अं० ११ स० १९१६ में मूर्तिपूजनका निषेध करते हैं॥

× सर्वज्ञ के विषयमें।

जैन गजट अंक २० सन् १९०८ में सफा ४ पर बाबू जुगलकिशोर संपादक लिखते हैं-"इस स्थान पर हम

* इसी पत्रका अंक छठा पृष्ठ १५८ देखो।

× सर्वज्ञसत्ता निश्चय, सर्वज्ञसिद्धि आदि ग्रंथ देखो।

बड़े ही गौरवके साथ यह प्रगट करते हैं कि वह केवल मात्र जैन तीर्थंकर हुये हैं जिन्होंने इस सिद्धांतका आश्रय नहीं लिया है। जिन्होंने तप और ध्यानके बलसे अपनी आत्मासे मोह आदिक मैलेको धोकर आत्मा की निजशक्ति अर्थात् पूर्ण ज्ञानको प्राप्त किया है और अपने केवलज्ञानके द्वारा चराचर सर्व वस्तुओं को पूर्ण रूप से जानकर अपनीही सर्वज्ञताका नाम लेकर सत्य धर्मका प्रकाश किया है" इसके विरुद्ध सत्योदय अं० १२ सं० १६१६ में स्त्रीमुक्ति शीर्षकके लेखक लिखते हैं—'जितने ज्ञानसे केवली होते हैं उतनाही ज्ञान रहता है सर्वज्ञ सर्व पदार्थोंको जानना ऐसा नहीं होता है वा सर्वज्ञका ज्ञान सर्व पदार्थोंको जानने वाला नहीं होता है उपयोगका अभाव होनेसे जैसे इन्द्र जम्बूद्वीप को उठाता नहीं उसमें ऐसी शक्ति है सम्भावना है उपमासत्यवत्, तैसेही केवलीका सर्वज्ञपणा उपमा सत्यवत् है वास्तवमें सर्व पदार्थोंका जानपणा नहीं है। इसका निषेध सम्पादक जैन मित्रने अं०१० सं० १६ १६ में किया है और भगवानदीनजी कहते हैं— 'सर्वज्ञ कोई हो नहीं सकता।'

÷ सम्यग्दर्शनके विषयमें।

बाबू सूरजभानुजी जैन गजट अं० ३८ स० १६०७ अव्रत सम्यक्त्व शीर्षक लेख सफा ५ पर लिखते हैं— 'श्रीपरोपकारी आचार्यों ने जो अव्रती सम्यक्दृष्टीकी भी बहुत कुछ महिमा लिखी है और निःसंदेह वह महिमा योग्य ही है क्योंकि बीमारी दूर होनाही मुश्किल होता है और इसही का फिकर होता है बीमारी दूर होने पर ताक तका आना व काममें लग जाना तो आसान ही है अव्रत सम्यक्त्व ग्रहण करनेकी अवस्थामें गृहस्थको किसी भी काममें बाधा नहीं आती है और किसी प्रकार की मजबूरी नहीं होती है परन्तु फल इससे बड़े २ प्राप्त होते हैं इस कारण सर्व मनुष्योंको उचित हैं कि इसके ग्रहणमें उद्यम करें। इसके विरुद्ध स्त्री मुक्ति शीर्षक लेख सत्योदय अंक ११ सफा ३३७ पर लिखते हैं—"सम्यक्त्व के स्वरूपको शास्त्रकारोंने लिखा है वह कितना पेचीदा और असमंजस में डालनेवाला है इसके लिये तो एक अलहदाही वृहत् लेखकी जरूरत है। जैन शास्त्रों में सम्यक्त्वको एक ऐसा हौवा बनादिया है कि कुछ कहा नहीं जाता इसी तरह श्रुतज्ञान और द्वादशांग की कथा समझिये।" इसका सार यह है जैनग्रंथोंमें सम्यक्त्वका स्वरूप मिथ्या है द्वादशांगी वाणी कुछ नहीं, आप यहां तक बढ़े चले गये कि आप खुले मैदान लिखते हैं। सत्योदय अंक ११ सफा ३३६--लोकाकाशमें अनन्त जीव व पुद्गल परमाणु हैं इनका विचार कीजिये लोकान्तमें सांन हो जांयगे यह तो सिद्धांतही का स्वयं विरोध है।' आप जैन मतको असत्य सिद्ध करने चले हैं आप सच्चे और जैनाचार्य दिगम्बर निष्पक्ष निरलोभी त्यागी झूठे। वास्तवमें आपने जैनधर्म के तत्त्वों को समझा नहीं। लेखककी वुद्धि भ्रांतरूप होरही है।

उपर्युक्त विषय पर हम लिख चुके हैं बा० सूरज भानुजी केवल पेशे पर वर्ण जाति मानते हैं कुल परम्परायसे नहीं। इसके विरुद्ध एक लेख उक्त बाबू साहबका कुल परम्परायसे वर्ण जाति सिद्ध करता है जैन-प्रकाशक अंक १० स० १६०६ ई० लेखक बा० सूरजभानु सम्पादक ४ "इस कथा के लिखने से श्री आचार्य महाराजका अभिप्राय यह है कि श्री जिनवाणी जीव मात्रका कल्याण करनेवाली है ऊंच व नीच कुलमें जीवका जन्म पूर्वके उपार्जे हुऐ पुन्य वा पाप कर्मों के अनुसार होता है परन्तु यदि ऊंच कुल पाकर किसी जीवको मिथ्यात्व सीखने ही का समागम मिले

÷ मोक्षमार्ग प्रकाशक देखो।

और श्रीजिनवाणी उसको प्राप्त न हो तो वह आगामी को नीच योनिको प्राप्त होगा। और यदि नीच कुलमें उत्पन्न हुये पुरुषको श्री जिनवाणी प्राप्त हो जावेगी तो वह आगामीको पुन्यवान और अपना कल्याण कर लेवेगा। दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि श्रावकको कोई जाति नहीं है ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य जो उत्तम कुलके मनुष्य गिने जाते हैं उनमें बहुत मिथ्यामती हैं और अनेक पाप करते हैं इसही प्रकार नीच जातिके बहुत मनुष्य जो जैन धर्मपर श्रद्धा रखते हैं और जैन धर्मके अनुसार आचरण करते हैं और व्रत नियम पालते हैं वह श्रावक हैं आचार्य इस कथाके द्वारा सिद्ध करते हैं कि जैन धर्म पर श्रद्धा रखने और व्रत आदिक पालने से नीच चाण्डाल भी उत्कृष्ट श्रावक हो सकता है। वास्तव में गोत्र कर्मका लक्षण यही है जिसके उदयसे ऊंच कुलमें जन्म पावे सो ऊंच गोत्र जिसके उदयसे नीच कुलमें जन्म पावे सो नीच गोत्र व गोत्र कर्मके उत्तर भेद वर्ण जाति उपजाति हैं गोत्र कर्म अघातिया कर्मों में है इससे आचरण उसका उपादान कारण नहीं हो सकता है आचरणका उपादान कारण है मोहकी मन्दता तीव्रता व उपशम क्षय क्षयोपशमादि। हां गोत्र कर्म भी एक सहकारी उदासीन रूप कारण है प्रेरक नहीं।

स्वमुख विरुद्धता।

सत्योदय अंक ७ सं० १६६६ में परस्पर विरुद्ध लेख। एक लेखमें वैक्रियक शरीर सिद्ध किया है दूसरे लेखमें उसका खंडन। इसीप्रकार अं० १० में एक लेख पूजनका निषेध करता है दूसरा पूजनका विधान। इत्यादि।

वर्ण जातिके विषयमें एक विरोध और भी पाठकों को सुनाते हैं। प्रेमी नाथूराम जैन हि० ने अपने पत्रमें लिखा था जैनियोंने वर्ण व्यवस्था वैष्णवोंसे सीखी है सारांश जैन धर्ममें वर्ण व्यवस्था नहीं थी इसके खंडनमें आपहीका लेख क्या कहता है- जैन मित्र अं० ११ सं० १६६१ सम्पादक गोपालदासजी लेखक नाथूराम प्रेमी "जातिव्यवस्था (सफा ७) भारतवर्षकी जाति धर्म व्यवस्थाको देखकर विदेशी तथा वे भारतवासी जिनके मगजमें विदेशियोंके कदाचारों ने स्थान पा लिया है न जाने क्यों उसे सर्वथा उठा देनेका उपदेश तथा प्रयत्न करते हैं क्या वे इसे बुरा समझते हैं। अभी थोड़े दिन हुये कि दक्षिणके सुप्रसिद्ध गणित शास्त्रज्ञ प्रोफेसर मि० परांजपेने एक लेख लिखा था कि यहांके धर्म व जाति बंधनोंमें अब भारतका उद्धार करने की शक्ति नहीं है और इन बंधनोंके तोड़े बिना यह राष्ट्र पूर्ण उन्नति नहीं पा सकता यहांके धर्मानुयायी पेपरों ने उक्त लेखका प्रतिवाद किया था और मि० परांजपे सरीखे विद्वान को एक ऐसा धर्म च्युत लेख लिखनेका हौसिला होनेका कारण केवल यही बतलाया था कि मि० परांजपे धर्मके विषयोंसे डाकूरो विद्या से इंजियनके समान अनभिज्ञ हैं जो हो। परन्तु यह स्पष्ट है कि सुधारक लोग विदेशियोंके चेले बनकर उनके प्रयोजनीय गुणोंको छोड़कर ऐसे ही नास्तिक और भ्रष्ट विचारोंका अनुकरण करते हैं जिससे धर्मभ्रष्ट होनेके सिवाय देशका किञ्चित भी कल्याण नहीं होता। यदि विदेशी लोग भारतवासियोंसे स्पर्धा करके अथवा अपने मत प्रचारकी अभिलाषासे यहांके जातिबन्धनोंको ढीला करनेका प्रयत्न करें तो ठीक हो सकता है परंतु ये भारत-जननीके सपूत भी ऐसा प्रयत्न करते हैं यह खेद की बात है।" इस लेख पर पाठकों को विश्वास लाना उचित है क्योंकि इस लेखके छापनेवाले प्र

सिद्ध स्व० पं० गोपालदासजी वादीभकेशरी मजिष्ट्रेट थे वे महा प्रमाणीक समाजमें गिने जाते थे। मोरेना की पाठशाला आपने ही स्थापन की थी। अजमेर का शास्त्रार्थ आर्यसमाज से आपने ही जीता था। समाज उनसे अपरिचित नहीं है पुरुषके प्रमाणीकपने से उसके वचन की प्रमाणता होती है।

मोक्ष व अरहंतके विषयमें।

जैन धर्म का मूलवात पर भी आजकलके इन नेताओंको विश्वास नहीं है और अभिमान वश बनते हैं समाजके गुरु! आचार्यों की बुद्धिको तुच्छ समझते हैं बलिहारी ऐसे अभिमान पर!! प्रमाण नय निक्षेपसे अनभिज्ञ हैं। देखिये सत्योदय अं० १० सफा ३३५ '४५ लाख योजनकी सिद्धि शिला और उसमें अनंत सिद्ध का आवास होना उनका भिन्न २ अस्तित्व फिर एकमें एक का समावेश तदुपरि चरम देहानुसार अवगाहना ये सब बातें ऐसी हैं जो हम पराधार माने हुये हैं और हम हमारे दिमाग पर दूसरेका बोझा रखकर पर तन्त्र रहते हैं अतएव सिद्धावस्थाके पर दश स्थान पर संसार दुःखविमोचन की चर्चा करना स्वतन्त्र विचार वालोंके लिये तो व्यर्थ है दूसरों का सिखाई हुई बातों पर मन कल्पना करनेवालोंकी बात दूसरी है अब रही अरहंत पदवी उसका भी यही हाल है।' यह हमने स्त्री मुक्ति शीर्षक लेख पर से लिखा है। लेखककी आदिमें यह प्रतिज्ञा थी कि हम स्त्री की मुक्ति उसी भवसे दिगंबराम्नायके ग्रंथ गोम्मटसारसे सिद्ध करेंगे लेखकको जब सिद्ध करनेमें कठिनाई पड़ी तब जिन गोमटसारकी गाथाओंने उनको पक्षको रोका उन ही गाथाओंको मिथ्या कहने लग गये। फिर हम अपने विचारशील पाठकों के आगे इस बातको भी प्रगट करते हैं कि जैन मतके अनुकूल मोक्ष व मोक्ष जीवों का स्वरूप व अरहंत व केवल ज्ञानका स्वरूप तुमको (लेखकको) मान्य नहीं था फिर स्त्री मोक्ष शूद्र-मुक्ति पर लेख देना ट्रेक्ट बनाना सब कुछ परिश्रम व्यर्थ हुआ वृथा पत्रों के कालम बिगाडे गये पहले उपर्युक्त बातें सिद्ध करनी थीं पीछे जब मोक्ष अर्हंत व केवलज्ञान का स्वरूप सिद्ध हो जाता तब चर्चा स्त्रीमुक्ति शूद्रमुक्ति पर चलाना थी 'मूलं नास्ति कुतः शाखा' ये सब चर्चाएं विना नीवकी दीवार उठानेके समान हैं। अथवा ऊपर जो दृष्टांत दिया गया है कि जिसप्रकार इंजिनियर डाकटरी विद्यासे अनभिज्ञ होते हैं उस ही प्रकार लेखक महाशय जैन न्याय ग्रंथोंसे अनभिज्ञ हैं सिद्ध शिला ४५ लाख योजन की होना असंभव नहीं है। इस प्रकार कोई शंका करे वह निराधार किसके सहारे पर ठहरी है तब हम यह तार्किकसे पूछते हैं सूर्य चन्द्रमादि किसके सहारे ठहरे हैं जिसके सहारे वे ठहरे हैं उसीके सहारे हमारी सिद्धशिला ठहरी हुई है। तार्किक महाशय कहें-सिद्ध शिलाका प्रत्यक्ष नहीं, हम कहते हैं राम रावण सिकंदर महमूद गजनवी इनको तुम मानते हो या नहीं या वास्कोडिगामा यूरोपसे पहले जहाज लेकर हिन्दुस्थानमें आया था। ये बातें हमारे प्रत्यक्ष नहीं तुम किस आधार पर मानते हो? यदि आप कहें हम इतिहास के आधार पर मानते हैं तब तो आगम प्रमाण सिद्ध हो गया। हमभी जैन इतिहासके आधार पर मानते हैं। आप कहें जैन इतिहास असत्य हैं हम कहते हैं तुम्हारे इतिहास असत्य हैं। अनुमान इस प्रकार बनता है सिद्ध सिलाका अस्तित्व है आगमप्रमाणसे वेदनीय कर्मकी स्थिति ३० कोड़ा कोड़ी सागरवत्। जो पदार्थ प्रत्यक्ष व अनुमानके विषय नहीं वे आगम प्रमाण से माने जाते हैं आगम आप्तके उपदेश से प्रगट होता है जैसे कर्मों की

स्थिति प्रत्यक्ष व अनुमानसे सिद्ध नहीं होती वा तीर्थंकरों का अस्तित्व प्रत्यक्ष अनुमानसे सिद्ध नहीं होता है। धर्म अधर्मका फल प्रत्यक्ष है ऐसा सिद्ध नहीं होता है एक आदमी मांस खाता है शराब पीता है वर्तमान में सुखी है धनी है पुत्रवान है नीरोग है इत्यादि बातों पर जब हम विचार करेंगे तब धार्मिक विषय व लौकिक कार्य प्रत्यक्ष ज्ञान पर नहीं चल सकते हैं श्रुतज्ञान का सहारा अवश्य लेना पड़ता है। धार्मिक विषय में दि० जैनाम्नायका श्रुतज्ञान चार अनुयोगके शास्त्र हैं, वैशेषिक के चार वेद व पुराण, अद्वैतवाद का गीता मुसलमानोंका कुरान, ईसाइयों को इंजील है। सब मत वाले अपने मतका आधार उपर्युक्त ग्रंथ पुस्तकादि को मानते हैं। अब लौकिक विषय पर भी इसही तरह समझिये। न्यायालयोंका श्रुतज्ञान कानून की किताबें, वैद्यकका वैद्यक ग्रंथ, निमित्तके ज्योतिष ग्रंथ ये ही श्रुतज्ञान हैं इनके जाने विना अपने २ कार्यों को कोई भी नहीं कर सकता है न करनेका अधिकारी हो सकता है और प्रत्यक्ष ज्ञानसे श्रुतज्ञान [आगम] को महत्व [तरजीह] है इसका प्रत्यक्ष दृष्टांत लीजिये। अदालतमें कानूनी अमर [आगम] वाकआतसे प्रधान माना है वैद्यकमें भी यही बात है वैसेही आगम विरुद्ध अनुमान मिथ्या है ऐसा न्याय ग्रंथोंका मत है। परीक्षा पदार्थोंकी न्यायसे होती है। एक सिद्धकी अवगाहना में अनेक सिद्ध हैं यह बात संभव है प्रदीपवत्। एक कोठरीमें १०० दीपक जलाकर रख दीजिये हमें प्रत्येक दीपककी ज्योतिका यह ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है कि कौनसे दीपकके प्रकाश के कौनसे परमाणु हैं प्रकाशके परमाणु सब दीपकोंके ऐसे घनिष्ट मिल रहे हैं जो प्रत्यक्ष इंद्रिय ज्ञानसे प्रत्यक्ष नहीं होते हैं तथापि वास्तविक दृष्टिसे व जुदे २ अवस्थ हैं अतींद्रिय प्रत्यक्षज्ञानी अवधिज्ञानी वा केवल ज्ञानीके प्रत्यक्ष हैं सूक्ष्म पुद्गल परमाणुओं में परस्पर अवगाहना देनेकी शक्ति पाई जाती है ऐसा जैन सिद्धांत का मत है एक घट पानीमें खांड आदि पदार्थ समा जाते हैं सूक्ष्म रूपी पुद्गलों में जब हम ऐसा प्रत्यक्ष देखते हैं तब जीव तो अमूर्तीक अरूपी सूक्ष्म है उसमे एक अवगाहना में अनेक तिष्ठना संभव है व प्रमाण से सिद्ध है। वास्तविक जैन तत्त्वों पर पूर्ण विचार न कर पश्चिमीय विद्याके चक्करमें पड़कर जैन ग्रंथोंको मिथ्या सिद्ध करनेकी चेष्टा करना ऐसा है जैसे चंद्रमा पर धूलि फेंकना।

पूजाके विषयमें।

जिन पूजाधिकारमीमांसा नामकी पुस्तक बाबू जुगलकिशोर मुख्तार देवबंदने लिखी है सं० १९१३ ई० में। उसमें लेखकने नित्य पूजा नंदीश्वरपूजा ऐंद्रध्वज पूजा सर्वतोभद्र कल्पद्रुमादि पूजनके भेद वा नाम पूजा स्थापना पूजा द्रव्य क्षेत्र पूजा कालपूजाके भेद स्वरूप विस्तार पृथक कई श्रावकाचार ग्रंथोंसे सिद्ध किये हैं और नित्य पूजनका स्वरूप वर्णन किया है। यह भी लिखा है महत् पूजन प्रतिष्ठादि करानेका अधिकारी शूद्र नहीं है सफा ३६, ३७, ३८ पर। धर्म संग्रह श्रावकाचार जिनपूजनसंहिताके श्लोक प्रमाणमें दिये हैं। पुस्तकमें पूजन विधानको महिमा फल बड़े ही विस्तारसे लिखा है। वास्तवमें गृहस्थोंके षट् कर्मों में पूजन एक मुख्य कर्म महान् पुण्य बंधका कारण है। इसके विरुद्ध सम्पादक सत्योदय अं० १० में पूजनका निषेध करते हैं यह निषेध जैन धर्मके विरुद्ध है मिथ्या है धर्मकी निंदा की गई है। ऐसे भी जीव जब समाजके नेता बननेको तयार बैठे हैं तब जिन धर्मकी इतिश्री हो समझिये। यह सब

पंचम कालका ही प्रभाव नहीं तो क्या है? और बाबू सूरजभानु वकील प्रतिष्ठाकी मिथ्या सिद्धि करते हैं कि मंदर प्रतिष्ठा वेदी प्रतिष्ठा बिम्बप्रतिष्ठायें सब कार्य व्यर्थ हैं। सिद्धांत किसीका किसीसे मिलता नहीं अपनी २ बेस्वर रागें आलाप रहे हैं। वृथा समाजको संभ्रममें डाल रहे हैं। सिद्धांतविरुद्ध कहनेमें कुछ भी भय नहीं, अजैनवत् जैन धर्मकी निंदा करते हैं तिसपर छाप यह कि-हम नेता हैं। समाजको अपने परम पूज्य आचार्य महाराजके वाक्यों पर दृढ श्रद्धा रखनी चाहिये। खुद शास्त्रोंकी स्वाध्याय करना चाहिये इसीमें कल्याण है। यह मनमानी कल्पना व स्वतंत्र विचारोंकी अधिकता जैन धर्मका अधःपतन कर मटिया-मेट कर पीछा छोडेगी। परोपकारी धर्मात्मा पुरुषोंका कर्तव्य है-उपदेशद्वारा लेखोंद्वारा ट्रैक्ट बनाकर वितरण करना इत्यादि उपायोंसे जैन समाजकी रक्षा करें। यह छप्पर एकके उठानेका नहीं, सब विद्वान इस उपायमें तन मन धनसे चेष्टा करें। धनिक धनसे ट्रैक्ट तयार कर अल्प मूल्य वा विना मूल्य सब जगह वटवावें। देखें कौन २ महाशय इस समाज रक्षाके मैदानमें आकर जैन धर्मकी रक्षा करते हैं। यह आश्चर्य जैनी हो बनकर जैन धर्म पर कुठाराघात कर रहे हैं। शोक! शोक!! महाशोक!!!

आवश्यक निवेदन।

धर्म साधन और धर्म साधनोंके अविरुद्ध अर्थ तथा काम साधन करानेके लिये गुरु जनोंको कैसा विकट परिश्रम और चातुर्य्य करना होता है। भावि युवाओंके हृदयोंमें उपयुक्त साधन उसीप्रकार संलग्न किये जाते हैं जिस प्रकार मातायें अपने बच्चोंके नेत्रोंमें कज्जल डालती हैं। जिस प्रकार कज्जल डालते समय बालक रोता है थप्पड़ घूंसा लात मारता है काटता है रोता है और उससे बचनेके लिये जितना उस बालकसे बनता है काजल लगवानेमें बाधा डालता है जिसको देखकर अनेक बालक प्रेमी उस कज्जल लगाने वालेको उलटा धमकाते हैं और इसके काममें बाधा डालकर दयालु बननेका साहस करते हैं परंतु जो यथार्थ बालहितैषी होते हैं वे उस माताके कार्यमें सहायक बनते हैं उस बच्चेके हाथ पैर पकड़ कर कज्जल डालनेमें सहायक बनते हैं इसी प्रकार सज्जन पुरुष जब जातीय धार्मिक दैशिक और आर्थिक व्यवस्था देनेके लिये प्रयत्न करते हैं तब युवक जन उनपर अनेक प्रहार करते हैं अपनी पूर्ण शक्ति भर उससे बचनेके लिये प्रयास करते हैं धार्मिक शिक्षकोंको जातीय वृद्धोंको दैशिक नेताओंको और आर्थिक गुरु जनोंको हस्तप्रहार गालिकादान और मनसे क्रोशन करते हैं उसको देखकर बहुतसे प्रियभाषी होकर उन शिक्षकादिकोंके कार्यमें विघ्न दायक बनते हैं लेकिन ऐसे विरले ही होते हैं जो उन भावी युवकोंको हितकारी शिक्षा दिलानेमें सहायक बनते हैं इसीसे जातीय सभाऐं (पंचायतें) गुरुकुल विद्यापीठ और कलाभवन नष्ट भ्रष्ट अथवा अकिंचित्कर हो रहे हैं। वर्तमानमें अनेक संस्थायें स्थापित होती हैं परंतु उनका फल अनुकूल नहीं होता। यदि कहीं पर कभी हुवा भी तो पहाड़ तोड़ अंजलिमात्र जल प्राप्तिके समान होता है इसीसे कार्य कर्ता मध्यस्थ बन जाते हैं।

जब पद्मावतीपरिषत्‌की पाठशाला जलेसरमें स्थापित हुई थी तब उसमें २५ छात्र विदेशी बोर्डिङ्गमें रहते थे और ७ छात्र स्थानीय थे जिसका खर्चा २५) रु० से अधिक नहीं था पढाई हिन्दी भाषा गणित महाजनी संस्कृत पूजन पाठ और संस्कृत व्याकरण धर्मशास्त्र तक की होती थी जिसके संचालक, अधिष्ठाता, प्रधानाध्यायक और सुपरिटेन्डेन्ट पदके कार्य विधायक पं० गौरीलालजी थे जो कि अपना बहुसमय इसीमें व्यतीत करते थे। वे नाम मात्रको ही अपनी दुकानका काम करते थे और अहोरात्र इसी संस्थाके काममें लीन रहते थे। वह आजकलकी तरह लिफाफा—प्रिय न थे और न नोटिस प्रिय थे उसीका फल यह है कि कई ग्रामोंमें अनेक पुरुषोंको धर्म वाक्य सुनाने वाले कई युवक तयार हुये प्रतीत होते हैं जबसे पं० गौरीलालजीने अपना संबन्ध उस पाठशालासे हटा लिया है तबसे अधिक व्यय होनेपर भी और अनेक कार्य कर्ताओंके बनने पर भी उसका अंश मात्र भी कार्य दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः परिषत्‌को ध्यान देना चाहिये।

एक पारिषद.

दो विद्वानोंके नाम खुली चिट्ठी।

(श्रीमान् विद्वज्जनशिरोमणि वयोवृद्ध प्राज्ञावकाश सुप्रसिद्ध पंडित नरसिंहदासजी चावली, व पं० गौरीलालजी बेरनीकी सेवामें सादर समर्पित)

पूज्यवर! आपलोग मुझसे वयोवृद्ध हैं, विद्या वृद्ध हैं और साथ ही अनुभवशाली भी हैं। आपने जैन धर्मके प्रभावसे सब कुछ ऐहिक व पारमार्थिक सुख प्राप्तकर यह अवस्था प्राप्तकी है। आपने अपनी युवावस्थाके दिनोंमें अनेक भूलीभटकी आत्माओंको सुराह पर लगा अपना तथा परका कल्याण किया है जिसके यहां उल्लेख करनेकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती कारण जो सब लोगोंको ज्ञात है उसको दुहराना ठीक नहीं। परन्तु आज जो आपकी सेवामें यह प्रार्थना सुना कष्ट देना विचारा है उसका हेतु केवल आपकी जो भक्ति चिर दिनसे हृदयमें बसी हुई है वही है। आपने दीन हीन पर धर्मनिष्ठतामें अप्रतिम पद्मावतीपुरवाल जातिको अलंकृत किया है इसका उसे घमंड है परन्तु साथही आपने इस वृद्धावस्थामें उसे अपने कृपाकटाक्षोंसे तिरोहित कर दिया है उसका भी बहुत ही दुःख है। पद्मावती पुरवाल जाति इससमय सुयोग्य अनेक नेताओंके होते हुये भी नेताविहीन है। जिसप्रकार किसी शत्रुपर विजय करनेकी पूर्ण अभिलाषिणी सेना सेनापतिके अभावमें शक्ति होते हुए भी कुछ नहीं करसक्ती उसके समय और शक्ति दोनों व्यर्थ चले जाते हैं उसी प्रकार इस जातिके बालकों युवकों और वृद्धोंमें सब तरहके उन्नतिसाधक कारणोंकी मौजूदगी रहते हुये भी वे अकर्मण्य बने हुये हैं। क्या आपने अपनी संतानसे भी प्यारी, मातासे भी पूज्य और गुरु से भी अधिक आराध्य जातिकी दशाको एकबार

भी विचारनेका कष्ट उठाया है! क्या आपने अपने पूर्वजोंके ही अंशसे बने हुये, उनकीही मानसिक व शारीरिक उन्नति को पैरोंसे रूंदनेवाले अपने जाति भाइयोंके चित्रका सार खींचकर कभी दो आसूं बहाये हैं? नन्नी २ विधवाओं अशिक्षित कलहप्रियतामें सबसे अग्रणी, नाना तरह के उपद्रव कगदेनेमें प्रधान कारण अबला हो कर भी सबलाओंकेसे काम करनेवाली सधवाओं तथा शिक्षाका कोई भी साधन न होने से व्यर्थही समय बरबाद करनेवाली कन्याओंकी वर्तमान और आगामी दशाको विचार कर क्या आपका हृदय कभी क्षुब्ध हुआ है? सब तरहसे योग्य होने भी एक विद्याके न होनेसे अपना जीवन पशुओंकी तरह केवल पेट भरनेकेलिये बिताने वाले कला कौशलसे शून्य, व्यापारके अभावमें दर दर ठोकरें खाते फिरनेवाले युवकोंका दयावह दृश्य देख क्या उनके सुखी करनेका भी कुछ उपाय सोचनेमें समय बिताया है? हम मानते हैं कि आपके जीवनका बहुभाग विस्तृत जैन समाज की सेवामें व्यतीत हुआ है पर प्रश्न यह है कि अपनी जातिके उपर्युक्त प्रश्नोंको भी हल करने का कभी कुछ प्रयास किया है?

एकांतमें निश्चित हो सोचनेमें तो मुझे मालूम पडता है और मैं समझता हूं प्रायः हर एक जाति भाईको यही ज्ञात होगा कि आज तक इन बातोंका कभी विचार ही नही हुआ और विचार किया हो तो कुछ कार्यमें वह परिणत नही हुआ। आपमेंसे जिनने थोडा बहुत किया भी, वे उसे पर्याप्त दशातक न पहुंचा कर ही छोड बैठे। खैर! अब इन गई गुजरी बातोंके विचारनेसे कोई लाभ नही। कृपाकर अब मैदानमें आ जाइये। अपने विशाल और उदार हृदयका परिचय दीजिये। आप दोनों महाशय जितने गार्हस्थ्य कार्योंसे निराकुल हैं उतना दूसरा इस समय कोई अनुभवी विद्वान नही। बस, अब अधिक समयकी अपेक्षा न कीजिए। अपने २ जिलोंके निवासी जातिभाइयोंकी दशा सुधारने का बीडा उठा कार्य करना आरंभ कर दीजिये।

देखिये! आपमेंसे एक जो जिला आगरा के हैं उनके गांवके पास ही एत्मादपुरमें मुंशी वंशीधरजीने अपने जीवनका समस्त सार (उपार्जित द्रव्य) अर्पण कर पाठशालाकी नीव डाल दी है वहां आप अन्य कुछ नहीं, सिर्फ अवशेष जीवन देकर ही उसपर जाति सुधाररूपी मकान खडा कर दीजिये। मुंशीजीके द्रव्य का उपयोग तो अपने नीचे अन्य विषयका अध्यापक रख कीजिये और आप तन मनसे धर्मशास्त्रका पाठ पढाइये। दूसरे जो जिला एटाके हैं उनके लिये भी उनके ही हाथका लगाया हुआ पौधा एटामें है उसकी दशा इससमय बहुत ही खराब है उसमें पूर्वकी भांति तन मन समर्पण कर हरा भरा कर दीजिए। परिषदके ध्रुवफंडमें जो रुपया जमा है उसके व्याजसे अन्य आवश्यकीय कार्यों की पूर्तिकी जा सकती है।

इस प्रकार आप दोनों पूज्यवरोंके गांवके पासही जब दो कार्य टूटी फूटी दशामें पडे विद्यमान हैं तब उनके नाम शेष होजानेसे आपकी कीर्तिमें कितना बडा धब्बा लग जायगा, विचारिये

तो सही ! अतः आपकी सेवामें तुच्छ प्रार्थना निवेदन कर विश्राम लेता हूं और साथही आप अवश्य इसको सफल करेंगे ऐसी आशा करता हूं।

पद्मावती परिषदका अधिवेशन फिरोजाबाद के मेलामें चैत सुदी ११ से प्रारंभ होगा उस समय यदि इसका उत्तर सहर्ष कार्य स्वीकार कर दिया जाय तो वह दिन पदमावतीपुरवाल ही क्या समस्त जैन जातिके इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंमे लिखा जाने लायक होगा।

प्रार्थी—एक जाति भाई।

मुंशी बंशीधर जी द्वारा धर्मार्थ प्रदत्त स्थावर संपत्तिकी रजिष्टरी की नकल।

मैं कि लाला वंशीधर वल्द लाला अकबर प्रसाद कौम बनियां जैनी साकिन नगलासिकन्दर परगना फिरोजाबाद व हाल वारिद कस्बा फिरोजाबाद जिला आगराका हूं। जो कि मैं मुकिर मजहब जैन रखता हूं और उसका मौतकिद व मुकल्लिद हूं और हमेशा सिलसिले मुलाजिमतमें रहा हूं और इस वक्त तक हूं। मेरे घरमें असा हुआ कि इन्तकाल हो चुका है, औलाद जुकूर व उनास जो पैदा हुई वह भी फौत हो गये इस सबब कोई दुनियवी इखराजात व जुज अपने गुजारे के नहीं रहे इस सबबसे जो सरमाया मेरे पास पस अन्दाज हुआ उससे अक्सर सकनी जायदाद मैंने बमुकाम ऐत्मादपुर खरीदकर बना रक्खी है। चुनान्चे कस्बा ऐत्मादपुरमें दो दूकानात पुख्ता व खाम दोमंजिला और एक मंजिल मकान पुख्ता व खाम मुलहिक दूकानात मजकूर वाकै बाजार कस्बा ऐत्मादपुर मय चबूतरा पेश दूकानात तामीर करदा व मिलिकियत मेरी मौजूद है। जिनकी हुदूद जैल में दर्जको जाती है उसकी खरीद व तामीरमें इस वक्त तक मेरा मुबलिग तीन हजार रुपया सर्फ हुआ है। मैं उनकी यही कीमतका अन्दाज करता हूं दूकानात व मकान मजकूर सदर इस वक्त ११) महावारी किरायेपर उठे हुये हैं। चूंकि दुनियां में सिवात है अपनी हयात का भी कुछ इतबार नहीं है पैमानये उम्रभी करीब करीब लबरेज हो चुका है लिहाजा मैं मुनासिब समझता हूं कि अपनी मकसूबा जायदादको व स्थाद अपने मजहबके किसी नेक कामकी तरफ मुंतकिल करदूं और जायदाद मजकूर पैदा कर दो जाती है मौरूसी नहीं है जिसमें शाखन किसीका कुछ हक पैदा नही हो चुका है अब मैं जायदाद मजकूरको ब वजह लावल्द होनेके मेरे नेक काम मजहबी खैरातों में सर्फ करना चाहता हूं जो बाइस बकाय नाम व हयात रूहीका हो और मवाबदारैन ताबकाय जायदाद मजकूर मिलता रहे। पसबई खयाल मैंने जायदाद मजकूरै बाला को बा जमोअ हक हुकूक मगफिग मय जमीअ मौजूदा व आयंदा के अमूगत जैलकी अंजामदिहीके वास्ते व रजामंदी व हक धर्म करके पुन्य किया और आजकी तारीखसे अपने कबजये मिलिकियतको मुतवलियाना हैसियत से तबदील कर लिया ताहयात अपनी मैं मुतवल्लियाना इन अमूरात मुतर्रि हुये दस्तावेज के मुताबिक आमदनी को सर्फ करता रहूंगा और माबाद मेरे कौमी सभा पद्मावती परिषद् वाकै हाल कस्बा एटा जिला एटा रहेगी अगर किसी वजहसे यह सभा मजकूर ठीक इन्तिजाम न करे या सभा मजकूर ही कायम न रहे

तो लाला जुगलकिशोर पिसर मुतवन्ना लाला बुधसेन जैनी साकिन कस्बा ऐत्माद्पुर व लाला शिखरप्रसाद वल्द लाला जौहरीमल कौम वैश्य जैनी साकिन टूंडला परगना ऐत्मादपुर व लाला वंशीधर वल्द वैनीराम कौम वैश्य जैनी कस्बा शिकोहाबाद जिला मैनपुरी व लाला राजाराम वल्द लछमनदास कौम वैश्य जैनी साकिन कस्बा फिरोजाबाद व लाला बाबूराम वल्द श्रीपाल कौम वैश्य जैनी साकिन नगला सिकंदर परगना फीरोजाबाद अपने इन्तिजाममें लेकर मिसल मेरे आमदनीको सर्फ करते रहेंगे और बाद उनके ताकयाम जायदाद हमेशा वैश्य जैनियोंमें से सरगना पांच कस मुहतमिमान इंतखाब होते रहेंगे और वह कुल कामके जिम्मेदार रहेंगे हिसाब आमदनी मौक़ूफा जायदादका या जाबता मुरत्तब हुआ करेगा और कमेटी औकाफ़ के देखनेके लिये मुरत्तब रक्खा जायेगा व सूरत खिलाफ़ व रजी हर वैश्य जैनी पद्मावती पुरवालन को अदालत से इस्तिमदाद लेकर मुहतमिमानको हटानेका इख्तियार है कोई पंच या मुतवल्ली किसी वक्त जायदाद मौक़ूफा को बै व रहन व हिबाके तौर पर मुंतकिल न कर सकेगा न किफालत व जमानतमें सुमूल कर सकेगा मगर किराये पर देनेके लिये कुबूलियत व पट्टा साल व साल लिखनेके मुजाज होंगे वो अमूरात जिनमें आमदनी सर्फ की जावैगी हस्ब जैल हैं (१) यह कि मिन जुम्ला २० हिस्सेके चहारम आमदनी मौक़ूफा बकाय जायदाद यानी मरम्मत शिकिस्त व रेख व तामीर के सर्फ की जावैगी (२) यह कि मुगलिग पांचवा हिस्सा आमदनी का जैन मंदिर जदीद लाला बुधसेन वाला वाके कस्बा ऐत्मादपुरके पूजाके वास्ते सर्फ हुआ करेगा (३) यह कि बकिया ११ हिस्से आमदनी सर्फ तालीम जैन गरीब तुलबाके वजीफों में या जैन पाठशालामें जिस जगह जरूरत हो सर्फ हुआ करेगी व इत्तिफाक राय यह वजीफे दिये जांयगे इस वास्ते यह पुन्यनामा मालियती ३०००) लिख दिया कि सनद हो और वक्त पर काम आवे—फक्त हुदूद अरबा—पूर्व रास्ता बागचा, पश्चिम मकान बहादुर रंगरेज मुतवफ्फा, दक्खिन दूकान रामप्रसाद कोटको व तोताराम साकिन मुहम्मदाबाद व सड़क पुख्ता, उत्तर बागचा—फक्त तहरीर तारीख २१ सितम्बर सन् १९१६ ई० ।

नोट—सर्व सज्जन पाठकोंसे प्रार्थना है कि इस रजिस्टरीकी नकलको अपने पास रक्खें क्योंकि सर्व बन्धु वर्गही इस जायदादके प्रबन्धकर्ता हैं ।

स्त्रीशिक्षाकी जरूरत ।

वर्तमान समयमें सब तरफ शिक्षाकी ध्वनि सुनाई दे रही है और यह ठीक भी है कि शिक्षासे ही उन्नति होगी । अब तक जिस देश जिस धर्म और जिस जातिको उन्नति हुई है उस सबका कारण शिक्षा ही है। स्त्री जाति आज कल बड़ी अधोदशामें पड़ी हुई है अपने कर्तव्य का हेय उपादेयका और कुटुम्ब प्रेमका ज्ञान नहीं है इसीसे यह जाति दुखका घर बन रही है । घरोंकी तरफ आप निगाह डालें—घरमें फूट और लड़ाई ठनी रहती है सास बहूमें नन्द भोजाईमें देवरानी जिठानीमें आपसमें नहीं बनती । पति पत्नीमें मन मुटाव रहता है जिस कारण घर नरकके समान बना रहता है ।

बहिनो ! गृहस्थीको सुखोंसे स्वर्ग समान बनाना स्त्री का काम है अगर स्त्री सुशिक्षित होवे तो गृहको स्वर्ग सही बना सक्ती है । सुशिक्षित स्त्री सासका अठानी

का ननदका और अन्य कुटुम्बियोंका यथा योग्य विनय सेवा कर उनको सुखी बना सक्ती है। पतिकी आज्ञानुगामी बनकर उनको सुखी बना सक्ती है उस घर में दुखका नाम निशान भी नहीं रह सक्ता है सुशिक्षित स्त्री की संतान सदाचारिणी विनयी और विदुषी बन सकती है इसलिये मेरी सब माता और बहिनों से प्रार्थना है कि अपनी २ कन्याओं को सुशिक्षित बनावें और खुद भी कुछ शिक्षा समय २ पर लेती रहें। अगर कन्याएं सुशिक्षित बन जावेंगी तो आगामी संतान सुशिक्षित बनकर सुखका कारण बन सकती है इसलिये बालकों के समान कन्याओं को शिक्षा देनेका हर गांव और हर घरमें प्रबंध होना चाहिये और प्रत्येक माता बहिनों को शिक्षा ग्रहण करनेका अवसर प्राप्त करना चाहिये।

सौ० भूदेवीबाई जंवरीबाग इन्दौर

विद्वत्समाज और प्रेमीजी।

विचारशीलजनता यह बात भलीभांति जानती है कि सभी समाजोंमें अल्पज्ञोंकी अपेक्षा विशेषज्ञोंकी संख्या अल्प [कम] होती है। यह कोई नई बात नहीं है चाहे पुराने देश और काल पर दृष्टि डाली जाय और चाहे नवीन पर, उक्त बातकी प्रामाणिकतामें संदेह नहीं होसकता, साथही इसके यह बात भी निर्विवादरूपसे मानी हुई है, कि अल्पज्ञ जनता सार बातों पर अपेक्षाकृत कमलक्ष्य देती-और समझती है। उपन्यास और नाटकोंकी रचना खास कर इसी उद्देश्यसे होती और हुई जान पड़ती हैं। प्रायः अल्पज्ञोंको रिझाने, अपने विचारोंके अनुकूल करने एवं धन और यश—नामवरी कमाने आदि [एक या अनेक] के लिये ही बहुतसे लोग उपन्यासादि रचनेके यंत्रको अपने हस्तगत करनेका प्रयास किया करते हैं, इन्हीं यंत्रोंमें एक यंत्र उक्त कार्योंकी सिद्धिके लिये कुछ लोगोंने इस तरह का भी बना रक्खा है कि स्वतंत्रविचार, अन्वेषण, खोज, आविष्कारादि संज्ञा रखकर किसी भी—देव शास्त्र और इनके स्वरूपको समझने—समझानेवाले-व्यक्ति पर मनमानी कपोलकल्पनाओंका संग्रह कर उसे लेख या पुस्तकादिका रूप दिया जाय आदि"

आज कल ऐसे यंत्रोंसे काम लेनेवालोंकी संख्या अन्यसमाजोंकी भांति जैनसमाजमें भी कम नहीं। इन यंत्रोंसे कार्यकरनेवाले महाशय कहां तक सफल होते हैं—इस बातको, पूर्णरूपसे लिखनेका अभी हमारे पास समय नहीं, हां! इतना अवश्य लिखेंगे कि इनके सतत प्रयत्नका उनपर-जिनकी कि संख्या स्वत एव अधिक होती है—कुछ कुछ असर पड़ जाता है और इन्होंसे इन्हें अंशतः स्वकार्य सिद्धिका भी बहुत कुछ आसरा रहता है। यंत्रवालोंके यंत्र कौशल का परिचय समाजके विज्ञपाठकोंको बहुत अंशोंमें तो हो जायाही करता है—परन्तु कभी २ ये लोग पैंतरा बदलकर कोई कोई हाथ इस सफाईका भी दिखाते हैं कि जिससे पहिले पहल तो प्रायशः सर्व साधारण चकित और स्तब्ध होजाते हैं—हां! विचार करने पर उसका भी गुल खिल ही जाता है। यंत्रवाले महोदय अपने यंत्रकौशलको दिखानेकेलिये कभी २ हो एक ऐसी बातोंका भी सहारा लेलेते हैं—कि जिनकी आड़ में यंत्र बहुत दूर तक चले जानेका अवसर पा लेता है।

बहुसंख्यक जनतामें एक इस प्रकारकी धुन भी

पाई जाती हैं कि वह दूसरों पर उचित-अनुचित आक्षेपोंको देखकर हर्षित सी होजाती है—और अनेक बार उनको उस तरहकी धुनमें आहुति देनेवाली व्यक्तियां उनके विचारोंमें उच्च लेखक और विचारक समझी जाती हैं। अतः विज्ञों पर अपना प्रभाव न पड़ता देख कर भी बहुसंख्यक जनताका ध्यान [अल्पज्ञोंका अपने विषयमें सत्कार] उन्हें उस यन्त्र संचालनके लिये बाध्य करता रहता है।

आधुनिक वायुमण्डलमें इस प्रकारके यंत्र चलाने और कौशल दिखानेकी न जाने कौनसी हवाने इतना जोर पकड़ा है कि अच्छे और नामी लेखकोंको भी अपने चुंगलमें फंसाकर उक्त यंत्र चलानेके लिये बाधित करडाला है। हम अन्य लेखोंके विषयमें इस समय कुछ न कह केवल " जैनहितैषी " के २-३ अङ्कमें प्रकाशित ' जैनसमाजके पण्डित " शीर्षक लेखके विषयमें कुछ निवेदन कर देना आवश्यक समझते हैं। यह लेख श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमीका लिखा हुआ है।

इस बातको सब लोग जानते और मानते हैं कि प्रेमीजी समाजके अच्छे हिंदी लेखकोंकी गणनामें गिने जाते हैं-उनका हिंदी साहित्य और ऐतिहासिक ज्ञान भी अपनी समाजमें ऊंचा समझा जाता है, वैसे तो प्रायः आपके लेखादि समाजहितकी दृष्टिसे ही लिखे जाते हैं—परंतु कभी २ उक्त वायुके झपेटेमें आकर यंत्र भी चलानेको बाधित होकर ऐसे २ एक दो लेख लिख देते हैं। और कुछ निवेदन करनेके पूर्व ही हम यह लिख देना भी अनुचित नहीं समझते कि यह निवेदन हम इसलिये नहीं करते कि जिससे प्रेमीजीके चित्तको कष्ट पहुंचे या उन्हें किसी कषाय विशेषका सामना करना पड़े-किंतु हमारा आन्तरंगिक अभिप्राय यही है कि वे समाजके पण्डितोंके विषयमें अपनी अश्रद्धा दृष्टि न रक्खें-कारण अश्रद्धादृष्टिसे देखी—कही और लिखी हुई बातका प्रभाव समुचित और वांछितरूपमें न पड़कर एकदम विपरीतताका रूप धारण करलेता है, जैसा कि ' अश्रद्धादृष्टि केवल दोषोंका ग्रहण करती और गुणोंमें दोषोंका उद्भावन किया करती है " स्वयं हितैषीने ही स्वीकार किया है। अस्तु.

हम लेखमें लिखी हुई कतिपय बातोंको यथार्थ मानते हैं-हम यह कहनेको तैयार नहीं कि प्रेमीजी ने सब ही बातें बे सिर पैर की लिखी है क्योंकि यदि सभी बातें एक दृष्टिसे लिखी गई होतीं तो यंत्रका यंत्रत्व ही क्या रहता? लोग कुछ सत्य और मिथ्या मिश्रित बातोंमें आकर ही 'सर्वमनवद्य' का पाठ पढते हैं यह प्रेमीजीसे छिपा नहीं है।

कई बातें तो प्रेमीजीने ऐसी भी लिखी हैं-जिन के विषयमें वे दूसरोंपर लांछन देते हुए स्वयं भी लांछित हुए बिना नहीं रहसकते. त्रिवर्णाचार और संहिता आदिका नामोल्लेख करके पण्डितों पर जो भट्टारकी विचारोंकी छाया और स्वयं नैतिक साहसके अभावका प्रदर्शन करनेका साहस किया है-वह भी केवल दूसरोंकी कहासुनी अथवा विचारोंकी छाया मात्र है। पण्डितदल तो बहुत पहिलेसे यह कहने और माननेको तैयार है कि उन ग्रन्थोंमें जितना कुछ मेटर आर्षविरुद्ध या जैनधर्मके प्रतिकूल एवं अन्यान्यग्रन्थोंका है-वह सब लेखक-तथा अन्यान्य लोगोंकी कृपाका ही फल है उनके साथ हम उसके असलीतत्त्वको भी झूठा या नकली नहीं कह सकते और न असलीके साथ नकलीकोभी सत्य-सिद्ध कहते हैं। और जिनको स्वयं पण्डित मानकर भी आपने अध्ययन और विचार आदि-को शक्तिसे शून्य बताया है—यह केवल अश्रद्धादृष्टिका

हो फल कहा जासकता है। सच्ची बातके विरुद्ध जाना नैतिक साहस नहीं कहलाता।

समाजमें संस्कृतज्ञ पण्डितोंके प्रति निराशाकी आशंकाभी, केवल आप तथा आपके इनेगिने मित्रोंको छोड़कर दूसरों पर करना सामाजिक दशाके अज्ञानके सिवाय और कुछ नहो कहा जासकता। जिन लोगोंको समाजमें जाने आने मिलने जुलनेका काम पड़ता है-जो लोग स्वयं जन साधारणमें सम्मिलित होते-उनके विचारोंको जानते और उनकी हार्दिक अभिलाषाओंको सुनते एवं "किन २ के प्रति क्या २ भाव हैं" इसका पता चलाते या इन बातोंके ज्ञातालोगोंसे कुछ जान नेके अभिलाषी होकर प्रयत्न करते हैं-उनमेंसे शायदही कोई विचक्षण बुद्धिशाली व्यक्ति पण्डितोंके प्रति निराशाका स्वप्नसंदेश कहनेको उद्यत होवे। हां! जिन लोगोंके विकृत विचारोंको (कपोलकल्पित कल्पनाओंको और अविचारितरम्य हार्दिक उद्गारों को) संस्कृतज्ञ पण्डितदल समाजहित, धर्मभाव और अन्याय्यमार्ग पर दुलक जानेवाली समाजको रोकनेके लिये परिष्कृत या खण्डित कर देता-उसके लिये सदा उद्यत रहता है, वे लोग तो अवश्य पण्डितोंको अपने कार्यमें बाधक होनेकी वजहसे निराशाभरी दृष्टि से ताकते हैं-और उसी निराशासे समुत्पन्न अश्रद्धा दृष्टिको स्वयं काममें लाते तथा दूसरे लोगोंको वैसा करनेके लिये फुसलाया करते हैं। समाजकी आशा और निराशाका पता चलानेके लिये केवल सामाजिक-नवीन और प्राचीन-संस्थाओं-कार्यों की जिम्मेदारी उत्तरदायित्वका विशेष भार और आधार जानलेनेसे ही सब बखेड़ा निबट जाता है। यदि समाजको उनसे हितकी आशा न होवे-तो कभी सम्भव नहीं कि समाज अपने सब कार्यौका भार उन्हें सौंपनेको तत्पर रहै सामाजिक कार्यों का भार प्रायशः इन्हीं लोगों के हाथ है जिनके प्रति आपको निराशा जान पड़ती है। शायद ही समाजका कोई कार्य ऐसा होगा कि जिस में समाजने इन्हें उत्तरदायित्व न सौंपा हो अथवा जो दो एक व्यक्ति इस दलसे बाहरवाले भी समाजहित या समाज सेवाके कार्यो मे दत्त चित्त हैं—उसमें भी इन लोगोंकी सिफारसें और सहायताएं ही मुख्य मानी गई हैं।

"नई पौध" के पण्डितों की उम्र कम है—इस लिये वे अपरिपक्वबुद्धि हैं, उनकी शिक्षा प्रणाली बहुत अनुदार है-उम्र बढने पर संसारको गतिका ज्ञान कट्टरता और अनुदारताका कम होना, सोचना विचारना और विचार परिवर्तन होने पर समाजकी मानसिक और बौद्धिक उन्नतिमें सहायक होना असंभव है इत्यादि भावप्रदर्शक वाक्योंका लिखना कहा तक सहानुभूति और विचारकताका परिचय देता है इसको हम प्रेमीजी तथा अन्य स्वच्छ हृदयवाली जनताके सम्मुख रखकर ही उनसे पूछ लें तोभी हमें योग्य उत्तर मिलनेकी बहुत अंशोंमें आशा है।

उक्त वाक्य लिखते समय न जाने क्यों प्रेमी (जो) होने पर भी सर्वथा प्रेमको दुतकारा है? यदि उनके प्रेम कोषमें ऐसे ही वाक्य भरे हुये हैं तो उन्हें शीघ्र स्वयं सुधारने तथा सुधरवानेका प्रयत्न करना चाहिये। उनके लिखे हुये प्रत्येक वाक्य और शब्दसे जो भाव टपक रहा है वह कभी हितकारक नहीं हो सकता प्रथम तो यही निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि नई "पौध" या नई उम्र वाले सर्वथा अविचारक निर्बुद्धि और अनुदार ही होते हैं। क्या लिखते समय यह बात ध्यान में नहीं लाना चाहिये था कि—

नवं वयो न दोषाय न गुणाय दशांतरम्।
नवोपोन्मुर्जमाल्हादो दहत्यग्निर्जरन्नपि ॥

दूसरे जब स्वयं लेखक महोदय ने यह बात स्वीकृत की है कि आगे चलकर येही उन्नति में सहायक बनेगें तथा समाजका बहुत बड़ाभाग पण्डितोंको ही अपनी डगमगाती हुई नैयाका पार लगानेवाला समझता है "समाज बाबुओंकी अपेक्षा पण्डितोंसे कुछ विशेष आशा रखता है" तब फिर उन्हींके प्रति अश्रद्धा दिखलाना या उन लोगों के हृदयको कुण्ठित करनेका प्रयास करना कहां तक शोभा दे सकता है ? इसको विचारक लोग स्वयं विचारलें। यदि आपकी सुदूरदर्शिनी दृष्टि से यह लोग कुछ अयोग्य तथा अपूर्ण या अनुदार भी दिखाई दिये हों तो भी आपको इन पर इस भांति प्रहार करना शोभा नहीं देता क्योंकि आप स्वयं अपनेलिये जैनहितैषी कहते और समाजभी अधिकांशमें आपको ऐसाही समझती है साथमें इतनी विशेषता यह है कि जिस पत्र (जैन हितैषी) में आपने यह सब विचार प्रगट किये हैं उसके सम्पादक महाशयने स्पष्ट रूपमें आदिमें ही घोषित कर दिया है कि "जैनहितैषी किसी स्वार्थबुद्धि से प्रेरित होकर निजी लाभके लिये नहीं निकला जाता है। इसके लिये जो समय शक्ति और धन का व्यय किया जाता हैं वह केवल निष्पक्ष और ऊंचे विचारोंके प्रचारकेलिये।" ऐसी दशामें क्या हम विनीत भावसे यह नहीं पूछ सकते कि पंडितोंके प्रति प्रेमीजीने जिन भावोंका प्रदर्शन किया है वे कितने ऊंचे विचारोंका प्रचार करेंगे ? तथा उन भावोंसे पत्र और प्रेमीजीके प्रति पाठकों के हृदय पर कितना और कैसा असर पड़ेगा ? अन्य अपेक्षा न होने पर भी कम से कम लेखक महोदयका इतना कर्तव्य अवश्य था कि नई 'पौध' पर तुषार डालने की कोशिश इस समयसे हो न करते जब उनमें वे स्वयं "अपरिपक्व" आदि शब्दों से धीरता साहस आदि बातों(गुणों)काअभाव बतलाते हैं तब कौनसा समाजहितैषी या विचारशील और शुभचिन्तक इस बातको मान लेगा कि ऐसे व्यक्तियों (जिनके विषयमें प्रेमीजीने अपनी प्रेमभरी लालसायें और समीक्षायें प्रदर्शित की हैं) के लिये वे बातें उत्तम और योग्य हैं ? हमने प्रेमीजी द्वारा सम्पादित और प्रकाशित 'मानवजीवन' नामक हिन्दी ग्रंथके तीसरे प्रकरणमें एक स्थान पर यह वाक्य पढ़े हैं कि "जो मनुष्य सदा दूसरों के दोष ही ढूंढा करता है, जो सदा दूसरोंको जली कटीही सुनाता रहता है, वह समाजका बड़ा भारी शत्रु और उसकी उन्नतिका बड़ा भारी बाधक होता है। ऐसे लोग सदा संसारमें दोषों और दुखोंकी वृद्धि करते हैं और कभी सफलमनोरथ या सर्व प्रिय नहीं हो सकते" आदि। अतः यदि इन बातों पर भी लक्ष्य देनेका कष्ट उठाया जाता तो क्यों उन बातोंके लिखने का अवसर आता ? जिन प्रेमीजी महाराजने पण्डितों पर ग्रंथों के मनन और अध्ययनकी त्रुटिका दोष लगाने का साहस किया है क्या वे स्वयं उक्त दोषसे सर्वथा अलिप्त हैं ? जिस ग्रंथका स्वयं सम्पादन किया तथा इसलिये प्रकाशित किया सब साधारण जनता का उपकार हो—अन्य लोग इस ग्रंथ (मानवजीवन) में लिखी हुई बातोंको पढ़कर उसके अनुसार आचरण करके स्वयं सुखी बनें और दूसरोंको भी सुखी बनाने का प्रयत्न करें किंतु फल हम उलटा (प्रतिकूल) ही पाते हैं एवं "दियातले अंधेरा" की कहावत का एक नवीन उदाहरण पाते हैं।

क्या प्रेमीजीको इस वातका लिखते समय भान नहीं हुआ था कि हमारी यह कृति पण्डितदलको अनुत्साहित करनेका प्रयास करेगी। पण्डितदल—खास कर नई 'पौध' के विद्वत्समाज के नव उद्गमोन्मुख हृदय कमलों पर इसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा। हमें एक पुरानी घटनाका स्मरण है कि इन्हीं प्रेमीजी महाराजके कृपाकटाक्षों (दृष्टिदोषों) ने विचारे जैन सिद्धांतभास्कर (जिससे कि लोगोंको बहुतही अच्छी आशा थी) को द्वितीयवर्ष में भी पैर न रखने दिया था—अब फिर आप समूचे पण्डितदल पर हाथ चलाने का साहस कर रहे हैं। हम उनके लेख में जब इन शब्दोंको देखते हैं तब और ही दया आती है आप ने लिखा है कि 'यह हम जानते हैं कि हमारे पण्डित मित्र इस लेखको पढ़कर प्रसन्न नहीं होंगे उनके कृपा प्रसाद की वृष्टिके थोड़े बहुत छींटे भी हमारे ऊपर अवश्य पड़ेगें। फिर भी हमें परवा नहीं हमारी समझ में इस पर विचार करने से समाजका बहुत कुछ उपकार हो सकता है आदि" इन वाक्योंसे लेखक का आन्तरङ्गिक भाव बहुत अंशोंमें झलक जाता है दूसरों को दुखी करना या निरुत्साह करनेकी कोशिश करना ही आप अपना बड़प्पन मानबैठे हैं। साथमें आपने यह भी निश्चय कर लिया था कि जब हम दूसरों को गढ़ेमें ढकेलना चाहते हैं तो छींटें अवश्य पड़ेंगा। हां! कृपा प्रसाद शब्दका लिखना उनके साहित्यज्ञान का प्रदर्शक हो सकता है किंतु 'परवा नहीं, यह आपके सौज्यन्य, सहानुभूति और समाज हितैषी एवं समाजोन्नितीषिताका पूर्ण परिचय देना है।

सबही पण्डितोंको निर्धन कुलका बतला देना भी केवल स्वात्मपरिचय मात्र है। अनेक पण्डित ऐसे हैं कि—जिन्होंने केवल अपने घरके खर्च से ही विद्याध्यन किया है औरअनेक ऐसे भी, जिन्होंने पठन काल में भी स्वयं परिश्रम करके धन संग्रह किया और विद्या प्राप्तिमें लगे रहे और इससमय समाज सेवा कर रहे हैं। दूसरे यदि थोड़ी देरके लिये आपको परितोष हो—इस वजहसे आपकी बात मान ली जाय तो भी जिन ग्रंथोंका आप अपाठ्य बतलाने की धुनिमें मस्त हैं उनमें इस धनका मूल्य जैसा बतलाया है—वैसा पण्डितदलके हृदय पर अङ्कित रहता है। आप संस्कृत ग्रंथोंकी बात जाने दीजिये हिंदी वाले "मानवजीवन" के इस वाक्य परही ध्यान दे लीजिये कि 'कठिनाइयों और विपत्तियों की तरह प्रायः दरिद्रता मनुष्य के अभ्युदयका कारण होता है। मनुष्यको परिश्रमी और कर्तव्य परायण बनानेमें जितनी अधिक सहायता दरिद्रतासे मिलती है उतनी सम्पन्नता से नहीं अत: दरिद्र होने या दरिद्र घराने में परिवर्गित पानेके कारण उन पर जो नैतिक साहस उत्पन्न न होने का घटाटोप बांधना चाहा है वह विचार स्वातंत्र्य नहीं कहलाया जा सकता। यदि दूसरोंका बुरी भली सुनाने अप्रसन्न करने और झूठे दावोंका आरोप करके समाजको भड़काने का प्रयत्न ही स्वतंत्र विचार कहलाते हैं तो ऐसे विचार स्वातंत्र्यकी छाया भी पण्डितदलपर पड़ना भला नहीं।

जब समाजका यह उद्देश है कि हमारी सामाजिक संस्थाओं से शिक्षा प्राप्त विद्वान हमारे कार्यों का संचालन करें, हमें योग्य कार्यों का आदेश दें उन्हे हमसे चलवावें या चलावें तब समाजके कार्य—विद्यालयादि की उपेक्षा करना क्या कृतज्ञता समझा जा सकता है? जिसके लिये आप संकेत करने को उद्यत हुये हैं! जरा देरके लिये मान लीजिये कि आपकी मस्तिष्कशक्ति द्वारा प्रकाशित तत्त्व पर

विद्वत्समाज चलने लगे अर्थात् जिस अध्यापन संपादन आदि कार्यों को आप बुद्धि विकासके योग्य नहीं समझते तथा हेय मानते हैं वैसेही पण्डित समाज मानले और आजसे उक्त कार्यको छोड़दे तो "कितना लाभ" समाजको पहुचेगा? तथा पण्डित दल को समाज क्या कहेगी, समझेगी? और पण्डितों को विकसित बुद्धिभी समाज सेव में किस भांति लग सकेगी कारण कि जिन कार्यों को पण्डितदल आज सम्पादित कर रहा है वह कार्य तो करेगा ही नहीं। साथही जब हम इस बात पर लक्ष्य देने-गौर करते हैं कि यदि समाज और उसके नेता विद्यालयादि कार्यों से लाभ न समझें तो क्यों विद्यालय और पाठशालादि को जन्म देवें, क्या समाज और उसके नेताओं को आपने बिलकुल निर्बुद्धि मान रक्खा है अब यदि प्राचीन तथा खुलने वाली नई नई संस्थाओंमें यह पण्डितदल कार्य न करे तो समाजकी क्या दशा होगी? इसका ध्यान कीजिये संस्कृत शिक्षा प्रणाली पर एक संस्कृत शिक्षा सम्बंधी बातोंसे सर्वथा अपरिचित व्यक्ति जैसो भी कुछ टीका टिप्पणी कर सकता है प्रेमीजीने उससेभी आगे हाथ मारना चाहा है ऐसी दशामें पण्डितोंके प्रति उनकी लेखनीसे जो कुछ भी लिखा जाय वह कितना मूल्यवान होगा इसे विचारशील सज्जन विचारलें। "पण्डितोंमें कट्टरता और संसारके विविध विषयों सम्बंधी घोर अज्ञानता बनी रहे तो इसमें आश्चर्य ही क्या हो सकता है?" इन बातोंको लिखकर स्वयं सर्वज्ञ होने तककी डींग मारना नहीं तो और क्या कहलाया जा सकता है? क्या ऐसे वाक्योंसे ही समाजोद्धार करना विचारा है?

क्या समाज की बड़ी से बड़ी संस्थाओंमें अजैन ग्रंथ नहीं पढाये जाते? आपने क्या स्याद्वादमहाविद्यालय को कोई भी रिपोर्ट पढनेका आजतक कष्ट किया है? क्या आपने उसमें "कीन्सकालेज बनारस" की आचार्य विशारद आदि परीक्षाओंमें उत्तीर्णछात्रों के नाम नहीं पढे यदि नहीं तो कृपया एक रिपोर्ट मगाकर पढनेका कष्ट उठाइये तद्विषयक आपकी भड़की हुई ईर्ष्याबुद्धि शांत हो जायगी। आप समझने लगेंगे कि वहां पर मुख्यतया जैनाचार्यों की परमोदार कृतिके साथ अन्य अजैनाचार्य विरचित न्याय, साहित्य, व्याकरण और वैद्यक आदिको भी यथासंभव और योग्यायोग्य का पूर्ण विचार करके स्थान दिया जाता है। हां! यह अवश्य है और होना भी चाहिये कि जो ग्रंथ जैनाचार्यों ने जिस विषयके रचे हैं पहिले उन्हें स्थान दिया जाता है। तथा इसमें एक और भी भीतरी तत्त्व है कि जैन ग्रंथ ही विद्यार्थियों को पढाये जांय, इस तत्त्वको आप भी अनुभव बढाने पर स्वयं जानलेंगे।

"पण्डित लोग हिन्दी भी नहीं जानते-न हिन्दी लिख सकते-न बोल सकते हैं-न समझते हैं-न समझा सकते हैं" फिर भी यदि हम नहीं भूलते तो इस बात का मानने में प्रेमीजी भी आनाकानी न करेंगे कि जिस शक्ति द्वारा पण्डितदल पर आज आक्रमण करनेका साहस हुआ है वह भी पण्डितोंकी कृपा का ही फल है-बहुत दिनों तक पण्डितोंकी सेवा करके ही कुछ ज्ञान पाया है-तथा संस्कृत भाषा द्वारा नहीं-किन्तु हिन्दी भाषा द्वारा ही उनसे बहुत कुछ सीखा है। फिर भी वे हिन्दी नहीं जानते! खैर, सार्वजनिक सभाओंमें, मेलोंमें, उत्सवोंमें मन्दिरोंमें और इतस्ततः आवश्यकीय अवसरों पर सम्पूर्ण पण्डित समाज प्रेमीजीके हिन्दी ज्ञानके प्रतापसे ही अच्छीसे अच्छी वक्तृताएं (व्याख्यान) देते हैं- शास्त्रार्थ करते और सर्वसाधारणको शंका-

ओंका समाधान करते हैं। तथा उन्हींके हिन्दी ज्ञानकी कृपासे ग्रन्थलेखन [अनुवाद या स्वतंत्र] पत्र-सम्पादन आदिमें कृतकार्य और सफल मनोरथ होते हैं, क्योंकि उनका निजी हिन्दी ज्ञान तो है ही नहीं, न पण्डित लोग-अध्यापक होनेपर भी "पढ़ाना" ही जानते हैं आजतक जितनी पढ़ाई हुई है-तथा अबसे आगे जो कुछ होगी वह भी सब प्रेमीजीके आशीर्वादों का ही फल है। न जाने समाज और नेताओंको ऐसा कौनसा रोग लग गया है-जिससे बाधित होकर उन्हीं पण्डितोंको अध्यापन आदि प्रतिष्ठित कार्यों' पर नियुक्त कर लेते हैं-जिनमें पण्डित लोग बिल्कुल भी ज्ञान नहीं रखते ?

हां ! संस्कृत पण्डितों का साहित्य-कूप बहुत छोटा है उनके साहित्यमें संसारकी कोई भी बात है ही नहीं, फिर भी न जाने क्यों उनके पठनपाठनके ग्रन्थोंमें "त्रिलोकसार" त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति" आदि ऐसे ग्रन्थोंके नाम पाये जाते हैं कि जिनके नाम तक इस बातके साक्षी हैं कि उन ग्रन्थोंमें न केवल एक दो देशोंको, किन्तु अधोलोक, मध्यलोक, और उर्ध्वलोक तककी बातोंका सविस्तर और सप्रमाण वर्णन होना चाहिये तथा जहांतक हमें मालूम है वहांतक हम यह भी कह सकते हैं कि गणित आदि एवं कालसम्बन्धी (भूत वर्तमान और भविष्यत्) नियम, उपनियम, व्यवस्था आदिका वर्णन उन संस्कृत ग्रन्थोंमें भी पूर्णरीत्या पाया और पढ़ाया जाता है जो कि संस्कृतके पण्डितोंका रात्रिदिवा अध्ययन-अध्यापन आदिका मुख्य तथा प्रारम्भिक ग्रन्थ है। जैन ग्रन्थोंमें इन बातोंकी कमी नहीं है, हां ! पण्डितोंसे उन देशों या समाजोंका साहित्यसागर किसी २ अंशमें छिपा हुआ है कि जिनके बाबत "मानवजीवन" के सातवें प्रकरणमें एक स्थल पर लिखा हुआ है कि "यहांका बहुत कुछ कारबार केवल झूंठ बोलकर ही चलाया जाता है लोग अपनी चीजोंकी बिल्कुल ही झूंठी प्रशंसा करते हैं आदि" ऐसे देशोंके "साहित्य सागर" में आपही लोग डुबिये-गोते लगाइये, तथा उनको स्वयं न जान सकते हों-तो अनुवाद करवा २ के उन बातोंका परिशीलन और मनन कीजिये, पण्डित लोग उसे देख और जानकर भी उससे बचे रहें-इसीमें समाजका हित है ऐसी २ बातोंके न जाननेसे यदि पण्डित समाज हिन्दी तकसे अपरिचित कहा जाय तो आश्चर्य ही क्या है ? आश्चर्य इस बातका है कि हम प्रेमीजीकी लेखनीसे भी लिखे हुए ऐसे अनेक वाक्य पाते हैं कि "पदवियां पण्डितोंको 'अभिमानिनी' बना देती हैं" यह केवल 'हिन्दी साहित्यसागर' की एक बहुत ही छोटी हल्की लहरकी झलकमात्र है। जैसे प्रेमीजीने यह लिखनेका कष्ट किया कि 'पदवियोंसे कोई विद्वान् नहीं होजाता' वैसे ही यह भी लिख देते तो अच्छा था कि 'विद्वानोंको कोई पदवी ही नहीं मिलती' अस्तु

यदि अध्ययन और मननका इन लोगोंमें बिल्कुल अभाव ही है-तो पठन-पाठन आदि क्या सब आपके ही भरोसे होते हैं ?

जब कि लेखक महोदय समस्त जैन समाजसे पूर्णरीत्या परिचित हो नहीं तब कब यह सम्भव हो सकता है कि 'जैन समाजमें ऐसे विद्वानोंका प्रायः अभाव है जो जैन धर्मके मर्मज्ञ कहे जासकें-जिन्होंने जैन धर्मका हृदय जान लिया' उनकी यह बात प्रमाणित माना जाय, दूसरे यह भी एक विचारणीय बात है कि इस समय जैन धर्मका या अन्य बातोंका मर्म-रहस्य तत्त्व या सिद्धान्त जाननेके लिये मुख्य कारण

ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय-कर्मोंका क्षयोपशम है उसके अनुसार ही मर्मका ज्ञान होता है, इसलिये इस बातको हम भी कह सकते हैं और पण्डित समाज भी स्वीकार करनेमें आना-कानी न करेगा कि 'पण्डित समाज पूर्णरीत्या जैन धर्मका मर्म या हृदय नहीं जानता है"। जैन धर्मका पूर्ण तथा स्पष्ट मर्म और हृदय जाननेके लिये केवल ज्ञानकी ही आवश्यकता होती है बिना केवल ज्ञानके जैन धर्मका पूर्ण स्पष्ट मर्म जानना असंभव है। हां! क्षयोपशमके अनुसार पण्डित समाज कुछ आवश्यक और सम्भावित ज्ञेयको अवश्य जानता-निरूपण करता और उसे ही बढ़ाने की कोशिश करता रहता है। उसीपर तुलनात्मक पद्धतिसे विचार करता और यथायोग्य क्रमविकास पद्धतिको भी काममें लाता है। परन्तु बहुत सी बातें ऐसी भी हैं जिसमें तुलनात्मक पद्धति या क्रमविकास पद्धतिकी दाल नहीं गल सकती जिस बात पर लक्ष्य देकर आपने इस लेखमें "क्रमविकास पद्धति" का नामोल्लेख किया है-उसपर भी विद्वानोंके युक्तियुक्त विचार प्रगट होगये तथा होते जा रहे हैं, हम उसपर इस समय टीका टिप्पणी न करके केवल इतना ही लिख देना काफी समझते हैं कि 'कर्मविकास' और 'कर्मसिद्धांत' में बहुत अन्तर है, उसको जानने वाले ही जान सकते है—हां! प्रयत्नशील होकर आप भी बहुत कुछ जाननेके अधिकारी हो सकेंगे।

सामयिक बाह्य परिस्थितिओंके कारण मूलसिद्धान्तों या-धर्म विचारोंमें अनेकों परिवर्तन कदापि नहीं हो सकते। क्या कभी बाह्य परिस्थितिओंके चक्रके निरंतर चलने पर भी न्यायदृष्टिसे मांसभक्षण, सुरापान और स्वपुत्रीका अपने साथ भोगादि करना भी धर्म विचारोंमें सम्मिलित हो सकता है? या सदाचारादि अधर्म रूप गिना जा सकता है? कभी नहीं। हां! मूलबातोंको स्थिर मानकर ऊपरी बहुत छोटी २ बातोंमें देश, काल तथा भाषादिकी अपेक्षा फेर फार करके निरूपण होना या करना सम्भव है जो कि सर्वमान्य और सर्व कार्य है।

परंतु प्राचीन और नवीन ग्रन्थोंके इस तुच्छ भेद को भी हम असल भेद नहीं कह सकते, जो सिद्धांत बातें हैं—उन्हें जैसी ही प्राचीन महर्षिओंने मानी हैं उनसे बाद वालोंने भी ठीक वैसी ही मानी हैं, हां! उदाहरण भाषा आदिमें अवश्य अन्तर है। जिसको पूर्वाचार्योंने धर्म माना उसे ही दूसरोंने भी, जिन बातोंमें उन्होंने वचनेका आदेश दिया दूसरोंने भी उन्हींमें कहनेका तात्पर्य यह है सिद्धांतमें किसीको परिवर्तन या फेर-फार करनेकी प्रमाण दृष्टिसे आवश्यकता या सत्ता प्रतीत नहीं हुई ऐसी अवस्थामें दोनोंका अभिप्राय एक ही हो जाता है यह कहना नासमझी या अन्याय नहीं है। जिन ऊपरा-ऊपरी उदाहरणादि बातोंमें परिवर्तन हुआ या किया जाता है वह केवल अपेक्षा दृष्टिका ही फल नहीं तो और क्या हो सकता है? क्या इस बातको माननेमें कोई विज्ञ-विचारक आगा पीछा सोचेगा कि 'अश्व, घोड़ा, होर्स आदि शब्दोंके वाच्योंमें अंतर नहीं केवल संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी भाषाकी अपेक्षासे वाचक-शब्दोंमें भेद है? अब यदि किसीने इन शब्दोंका 'एक अभिप्राय' कह दिया या 'अपेक्षा भेद' भी बता दिया तो कौनसा अन्याय किया, या उसके समझानेमें उसने कौनसी लीपापोती करके अपने लिये बाधा डालदी? जरा विचारिये तो सही!

साथ ही जब यह विचार होता है कि मर्म आदि

का ज्ञान क्षयोपशमके अधीन है और क्षयोपशम किस किस जीवके कितना है? यह बात साधारण ज्ञान-वाले (अस्मदादि-प्रेमीजी भी) जान नहीं सकते हैं तब फिर प्रेमीजीने यह बात किस दिव्यज्ञानसे जानकर लिखी? सो समझमें नहीं आता!

प्रेमीजी महाराज बड़ी दूरकी सोचनेवालोंमें भी पक्कही हैं अपने लेखमें बिलकुल नई २ बातों को ही स्थान देते हैं "पुनरुक्त" तो उनके लिये बड़ा भारी दोष है यही कारणहै कि जिन पण्डितोंके विषय में एक बार यह लिख दिया है कि परीक्षा देने या नौकरी मिल जाने पर यह लोग (पण्डित लोग) आगे योग्यता बढ़ाने का ताला बंद कर देते हैं ग्रंथोंका मनन अध्ययन नहीं करते उन्हींके विषयमें आप दूसरे स्थान पर लिखते हैं—"यह एक बड़ा भारी दुःख है और इस दुखको वे लोग बड़ी तीव्रतासे अनुभव करते हैं जिन्हें जैन साहित्य के अध्ययन और अन्वेषण का व्यसन लग गया है आदि" इसको हो तो पूर्वापर—अविरुद्ध की उपमा देकर "सदागमत्व" सिद्ध किया जायगा।

पण्डितोंको तो पैसों से बड़ा मोह है वे अपनी कमाईके पैसाको ग्रंथ संग्रहमें नहीं लगा पाते किंतु प्रेमीजी अपनी निष्कपट वृत्ति से कमाई हुई सम्पत्ति को अहर्निश खुले हाथों सत्कार्यों में लगाया करते हैं उन्हें पैसाही क्या, किसी भी वस्तुसे मोह नहीं? फिर भी न जाने जैनी लोग उन्हें क्षीणमोहकी उपमा पदवी देनेमें क्यों विलम्ब कर रहे हैं?

महाशय! आपके दिलमें पण्डितोंके प्रति क्यों ऐसे उच्च विचार हो गये हैं अपनी दशाका पूर्ण पूर्वापर विचार कर दूसरे पर कृपा कटाक्ष क्षेपण करना शोभा देता है। तथा यह बात भी नहीं है कि सबही पण्डित लोग पुस्तकें ग्रंथ नहीं खरीदते—हां! यह हो सकता है कि वे सीधे आपके ही पक्के ग्राहक न हों और आपकी छपाई हुई पुस्तकों को भी दूसरे पुस्तक विक्रेताओं (बुकसेलर) से मंगवा लेते हों। और जबकि आपके लेखानुसारही यह बात मानलें कि प्रायः सब ही पण्डित अध्यापकी करते हैं तब यह कब संभव है कि उन्हें नवीन २ ग्रंथोंके अवलोकनका अवसर न मिले क्योंकि प्रायः सबही स्थानों पर जहां पर विद्यालय या पाठशालायें हैं—छोटे या बड़े पुस्तकालय अवश्य हैं। और उनमें आवश्यकता तथा उपयोगी ग्रंथोंका यथासाध्य संग्रह भी किया ही जाता है।

"परिस्थितियोंके सुधरनेसे पंडित संस्था बहुतही कल्याण कारिणी सिद्ध हो सकती है" इस ही बातको मानते हुये लेखक प्रेमीजीने परिस्थितियां सुधारनेके-लिये जैनहितैषीमें अपनी ऊर्ध्वभावनाओंका प्रदर्शन किया है हम नहीं कह सकते कि प्रेमीजी अपने इस प्रयास में कहां तक सफल मनोरथ होंगे, उन्होंने यह प्रयास किसी कषायसे प्रेरित होकर किया है या किसी शुभाकांक्षासे प्रेरित होकर, इस बातको तो वे स्वयं जानते होंगे किंतु पढ़नेवाले विचारक लोगों पर अच्छा प्रभाव पड़ना सर्वथा असंभवसा जान पड़ता है।

"तथा ये न्याय शास्त्रको जाननेवाले भी युक्तियोंका गुलाम अपने मनको नहीं बनाते" यह भी लिखना कहां तक युक्तिसंगत है इस बातको वे लोग भली भांति कह सकते हैं कि जिनका न्यायशास्त्रोंसे परिचय है। जब कि न्यायशास्त्रोंका मूल प्राण ही 'युक्ति' है तब कैसे माना जा सकता है बिना प्राणके ही पण्डित लोग उस [न्यायशास्त्र] से काम लेते होंगे। क्या निष्प्राण शरीरसे भी तत्सम्बन्धिनी क्रियाओंका होना संभव है क्या कोई भी न्यायशास्त्रवेत्ता यह कह

कहता है कि न्यायशास्त्रमें युक्तियोंके अनुसार ही प्रायः सब बातोंकी सिद्धि करनेकी शिक्षा नहीं है ऐसी दशामें भी वे [पण्डित लोग] "युक्तियों को अपने विचारोंका गुलाम बनाने के प्रयत्नमें रहते हैं" यह लिखना सरासर आंखोंमें धूल झोंकने के कार्यसे कम साहसका कार्य नहीं। महाशय! क्या आपका और उनका न्याय शास्त्र भिन्न २ है? जो उनका न्याय शास्त्र तो कट्टरता सिखाता है और आपका सारल्य, उदारता तथा प्रेमादि। कृपया अपने न्याय शास्त्रसे समाजको भी सूचित कर दें कि वह अभीतक कौन-सी गुफामें गुप्त है? उसका प्रकाश कीजिये तब मालूम पड़े कि किसका न्यायशास्त्र क्या सिखाता है? तब ही मालूम पड़ेगा कि कौन दूसरेकी क्यों और कैसी बात नहीं सुनता या सुननेका प्रयत्न नहीं करता। हां! जो बातें सुनने योग्य नहीं हैं जिनमें सार नहीं हैं और जो किसी प्रकार कार्यसिद्धिमें सहायक नहीं हो सकतीं-उनपर लक्ष्य न देना बुरा नहीं है। तथा आपका यह लिखना भी ठीक हो सकता है कि "जो संस्कृतका पण्डित नहीं है वह ऐसी बात कह ही नहीं सकता जो उनके सुनने योग्य हो" किन्तु कब? जब कि आप साथमें इतना और लिख देते कि 'संस्कृतके विषयमें' तब इस वाक्यका ठीक और सर्वमान्य भाव हो जाता, क्योंकि जो व्यक्ति जिस विषयसे अपरिचित है-वह उस विषयके पूर्ण परिचित व्यक्तिके सम्मुख पहिले तो उस विषयमें मुख ही नहीं खोलेगा और यदि प्रमादवश उस विषयमें अण्ड-बण्ड धींगा-धींगी करना भी चाहे तो परिचित व्यक्ति उसकी बातोंको सुननेका प्रयास न करेगा और उसका यह न सुनना कट्टरतामें गर्भित नहीं कहलाया जा सकता, मान लीजिये कि मैं डाक्टरोंकी सब बातोंसे अपरिचित हूं और ऐसी दशामें भी किसी योग्य डाक्टर [सिविलसर्जन आदि] के सामने डाक्टरी बातोंमें बोलनेके लिये उद्यत होकर कुछ बोल बैठूं-तो क्या मेरी उन बातों पर लक्ष्य न देने वाले डाक्टर महाशयमें "कट्टरता" है? और उस हालतमें मैं बहुत हो योग्य और डाक्टर सर्वथा अयोग्य कहलाये जा सकते हैं?

साथही असहिष्णुता और जो उनके [पण्डितों] विचारोंके अनुयायी नहीं है उनसे घृणाका प्रतिपादन करके भी प्रेमीजी ने अपने मनः पर्यय ज्ञानका परिचय दे डाला है। तथा स्वयं पूर्ण श्रद्धा और सहिष्णुताके अवतार स्वरूप बनकर अपने भाव प्रदर्शित किये हैं। क्या आपको यह नहीं मालूम कि पण्डित समाज-समस्त जैन समाजसे पूर्ण सहानुभूति रखता है, नहीं तो कब सम्भव हो सकता है कि जैन समाज उन्हें अपना साथी और कार्यकर्त्ता बनाये रहता? यह बात तो प्रत्येक व्यक्ति मान लेगा कि जिनकी जिनसे सहानुभूति नहीं होती-ईर्ष्या घृणा या निरादर आदि होता है वे उन्हें अपना कार्य नहीं सौंपते। उनसे अपने कार्योंमें स्वयं सहायता नहीं लेते देते। तथा यह बात भी नहीं है कि असहिष्णुतादि बुरे भाव पण्डितोंमें होने पर भी समाज उनसे प्रेम करता ही रहता कारण कि यह सब भाव द्विस्थ माने गये हैं एकस्थ नहीं। अतः जब प्रायः समस्त जैन समाज [जिसमें कि पण्डित-दल भी सम्मिलित है] में पारस्परिक सहिष्णुता है तब पण्डितों में असहिष्णुता का लांछन लगाना शोभा नहीं देता दूसरे यह बात भी है समाजके व्यक्ति चाहे बाबू हो या अन्य—अपनी कालयापना जिस आधार पर जिस रूपमें कर रहे हैं पण्डित समाज उसे अच्छा भी नहीं समझ रहा है जिससे कि उसके उप-

लब्ध न होनेसे असहिष्णु भावका अवलम्बन करें दूसरे पण्डितदल उन लोगोंसे जिनके प्रति आप असहिष्णुता बता रहे हैं—किसो भी बातमें कम नही प्रत्युत दो एक बातोंमें ऊंचा ही अवश्य कहलाया जा सकता है फिर कैसे मान लिया जाय कि पण्डितोंमें कट्टरताके साथ असहिष्णुता भी है ?

रही विचारोंके अनुयायी होनेसे समाजके कार्य में एक रूप हाकर कार्य न करनेकी बात, सो इसमें भी इतना निवेदन तो अवश्य करेंगे कि कई कार्य समाजमें ऐसे भी अभी तक चालू हैं कि जिनके असली रूप रखने और उन्हें एकदम विपरीत कर देनेवाले उस कार्य में सहयोगी होकर कार्य नही कर सकते। जहां पर दोनों ही प्रकारके व्यक्ति समबल होकर आपसमें एक दूसरे को दबाना चाहें वहां पर किसीकी भी दाल नही गल सकती। हां ! किसी भांति विषम बल होकर विशिष्ट उठा रहता तथा हर्षित होता हुआ आगेके लिये कार्य का निश्चय कर उसमें अपनी शक्तियोंका सदुपयोग करने लगता है—किंतु तिरस्कृत या पराजित अथवा यों कहिये कि जो अपनी वाक्पटुता या धींगा-धांगोसे सहयोगी बनकर भी बहिष्कृत और निर्वासित हुआ है वह उस विजेता-जय प्राप्त किये हुये व्यक्ति पर लांच्छन लगाने बुरा भला कहने और उसके गुणोंको भी अवगुण रूपमें प्रगट करने एवं उसके कार्यों या बातों पर औंधी सीधी टीका टिप्पणी करने में अपनी शक्तिका दुरुपयोग करने लगता है। इस बातके एक दो नही किंतु बीसों प्रत्यक्ष सिद्ध उदाहरण दिये जा सकते हैं। समाज इस बातसे भलीभांति परिचित है कि समाजके उन्नतीषु पूर्व नेताओं-जिनमें से अब भी कुछ अवशिष्ट हैं-ने महासभा या तदाश्रित महा विद्यालयका जन्म धार्मिक भावोंके जाग्रत होकर बढने और समाजमें धार्मिक-संस्कृत विद्याका प्रचार करनेके लिये ही किया था किन्तु बीचमें कुछ मन चले लोगोंके सम्मिलित हो जाने से उसके रूप पलटनेमें बहुत ही कम संदेह रह गया था-उस दशामें यदि पण्डितदल विद्यालय हितैषी, एवं उसके संरक्षक लोग उन मनचलोंकी हां में हां मिलाते या चुप्पी भी साध लेते तो आपके विचारमें पारस्परिक प्रेमकी वृद्धि होती किन्तु उन लोगोने मनचलोंका साथ नहीं दिया उन के विकृत विचारों को दबा दिया-इसलिये पण्डितोंने बुरा किया उनके साथ समाजका काम नहीं किया। यदि ऐसेही कार्यों से मन चले लोग पण्डितोंसे विगाड़ घृणा करनेलगे हैं तो कोई हानि नहीं। समाजके किसी भी कार्यमें क्षतिकी सम्भावना नहीं।

एक और बात मुझे काशीस्थ स्याद्वाद महाविद्यालय की मालूम है कि उसकी प्रबन्धकारिणी कमेटी में भी दो तीन बार मनचलों का प्रवेश हो जाने से उसे बहुत ही शीघ्र विद्यालयसे कालेज या हाईस्कूलके रूपमें कायापलट के अवसर आ चुके हैं-किन्तु उस समय भी पण्डित लोग तथा विद्यालय हितैषी पुरुषों के प्रयत्न से ही यह अवस्था न हुई जिसके देखनेका स्वप्न उन मनचले लोगों ने कई बार देखा था, यही अवस्था और भी दो एक संस्थाओंके सामने आ चुकी है। समाजके दानी लोग तो संस्कृत विद्या तथा धर्म विद्याके लिये धन देते हैं किन्तु यह मनचले लोग न न जाने क्यों दानारोंकी इच्छाके सर्वथा प्रतिकूल कार्य करने पर उतारू हो जाते हैं ? इन मनचले लोगों का कर्तव्य होना चाहिये कि समाजसे कालिज या हाईस्कूल आदिके लिये ही अपील करके धन संचय कर अपनी भावनाओं को फलीभूत करें किन्तु खेद ! कि ऐसा न करके दूसरों द्वारा सञ्चित द्रव्यको अपनी

भावनाओंके फलीभूत करने केलिये समाजके धार्मिकभावों पर गहरी छाप मारना चाहते हैं।

ऐसी २ अनेक बातें ही पण्डितदल और बाबूदलमें भेद डाले हुये हैं। जब २ संस्थाओंके मूल रूपको जिन लोगोंने विकृत करना चाहा तब २ ही पण्डितलोगोंने उसके मूलरूपकी रक्षामें शक्तिभर प्रयत्न किया। और समाजकी योग्य सहायतासे सफल-मनोरथ हुये और वे लोग ताकते ही रह गये कि जो दूसरी भांति के भ्रान्तस्वप्नोंका अवलोकनकर रहे थे अपने मनोरथ की निष्फल होते देख पण्डितोंने घृणा पैदा करली, उनकी निन्दामें प्रयत्नशील हो गये। विचारा जाय कि पण्डितदलका कितना और क्या दोष है मुख्यतया ऐसे ही कारणोंसे बाबू लोग पण्डितोंके साथ काम करनेके लिये तैयार नहीं होते। हां! यदि संस्थाओं के मूलरूपको जैसेका तैसा बनाये रह कर सतत उन्नति की ओर ही बाबू लोगोंका भी ध्यान होवे तो कब सम्भव है कि पारस्परिक मेल न बढ़े साथमें यह लिखना भी अनुचित न होगा कि जो प्रेमीजी महाराज पण्डित और बाबुओंमेंसे घृणादि बुरे भावोंको पृथक देखना चाहते हैं वे भी स्वयं अपने लेखमें कई स्थानों पर उससे उल्टा ही लिख गये हैं। इसीलिये कहना पड़ता कि जिस अच्छी बातको हम दूसरोंमें देखना चाहते हैं या जिस शुभकार्यके लिये हम दूसरोंसे प्रेरणा करते हैं-बहुत अच्छा हो कि पहिले हम स्वयं अपने में वह बात पैदा करें या उस शुभकार्यके लिये पहिले अपने आप प्रेरित होकर लग जांय, खाली बातें बता देना कार्यकारी नहीं!

जिन प्रेमीजी महोदयने एक बार यह स्वीकार किया है पंडितोंमें साहसकी कमी है। वे ही यह भी स्वीकार करते हैं कि पण्डितों के साहस का कोई सीमा नहीं। बलिहारी है लेखनशक्ति की!

खण्डन-मण्डनके विषयमें भी इतना तो जरूर कहेंगे कि आर्ष विरुद्ध कपोल कल्पनाओं एवं अविचारित रम्य भावनाओंका खण्डन न करने से सामान्य जनता पर बुरा असर पड़ जाता है—तथा उन उन सिद्धान्त सारोंका सयुक्तिक मण्डन न करना भी साधारण लोगोंको धार्मिक भावों से गिराने लगता है जिनका कि शास्त्रोंमें पूर्वाचार्य महर्षियोंने बड़े गहरे मनन और अन्वेषणसे निरूपण किया है अतएव यदि उन शास्त्रोंको जानने वाले पण्डितलोग उन २ विषयों का सयुक्तिक खण्डन मण्डन करते हैं तो कोनसे अपराधके भागी होते हैं जो व्यक्ति जिस बातकी जानकारी रखता है जिस व्यक्तिका जिस बात पर सप्रमाण श्रद्धान है वह व्यक्ति कभी भी उससे उल्टे विचार वाले व्यक्तिके विचार परिवर्तन कराने एवं उसके विचारों को त्रुटि पूर्ण सिद्ध कर सद्विचारानुयायी बनाने की पूर्ण चेष्टा किये विना नहीं रह सकता। साथमें उन पण्डितोंका इस बातका भी ध्यान रहना और रहना भी चाहिये कि खण्डितु मानिनां मानं मण्डितु जिनधर्मिणां। विदुषां प्रीतये भूयाद्विद्यानन्दिकृता कृतिः" हमारा भी उद्देश लगभग ऐसा ही है-कि जब कि तार्किकचक्रचूड़ामणि विद्वद्वर्य विद्यानन्दिस्वामी तथा तत्कालीन उनके अनुयायियोंका पूर्वोक्त सिद्धान्त समाजोंमें प्रचरित किया गया था तब आजभी उनके अनुयायियों एवं उन लोगों की ही समुज्वलकृतिका अध्ययन अध्यापन करनेवालोंके हृदय पर वैसे भावका अङ्कित रहना क्यों अनुचित बतलानेका प्रयत्न किया जाता है और जैन न्यायशास्त्र तथा नयशास्त्र तो हैं ही इसलिये कि कुवादियोंके मिथ्या मत का खण्डन करके तत्त्वोंका यथार्थ निरूपण किया जाय क्या आपको नहीं मालूम है कि एक प्रौढ़ जैनाचार्यने एक स्थल पर लिखा है कि—

"अत्यन्तनिशितधारं दुरासदं जिनवरस्य नयचक्रं ।
खंडयति धार्यमाणं मूर्धानं झटिति दुर्विदग्धानाम्" ॥
अतः यदि जैनविद्वानों को इस बातका ध्यान रहता है तो क्या दोष है ? जितना २ यह भाव जैन विद्वानोंमें विशेषरूपसे जाग्रत रहेगा उतना लाभहो है। आजकल आप सरीखे दो चार महात्माओंकी कृपासे जितना भी कुछ उक्त भाव पण्डितोंके हृदयोंमें दब गया है उतनी ही हानि हो रही है अर्थात् जब तक पण्डितोंके हृदयोंमें उक्त भावका तिरोभाव है तबही तक इधर उधरके मनचले लोग शास्त्र आदि पर अंडबंड बकवाद करते दिखाई दे रहे हैं जिस दिन पण्डितदलके दिलमें उक्त भाव का आविर्भाव हो जायगा उस दिन बहुत कम सम्भावना है कि-कोई भी माईका लाल मैदान में दिखाई दे।

अन्तमें हम प्रेमीजीसे इतना और निवेदन करते हैं कि वे हमारे लेखसे हम पर विशेष कोप न करें— यदि इस (हमारे निवेदन) में कोई भी बात उचित जंचे तो कृपया उसे ग्रहण कर अनुगृहीत करें और अनुचित समझें तो हमे वापिस कर दें। क्योंकि गत बातोंसे रुष्ट हो समष्टि पर लाञ्छन देनेका कष्ट उठाना समुचित मालूम नहीं पड़ता।

जिनेश्वरदास जैन, बिलराम (एटा)।

शोकजनक मृत्युएं।

स्वरूपनगला (आगरा) निवासी ला० रघुनाथदासजी के सुपुत्र पं० श्रीलालजी, फरिहा निवासी ला० चेतरामजीके सुपुत्र राजकुमारजी, और नावकी सराय निवासी ला० दीपचंदजीके सुपुत्र रामस्वरूपजीकी अकाल मृत्युके समाचार हमने बडे दुखके साथ पढे हैं। ये तीनों नवयुवक और विवाहित थे। इनके कुटुम्बियोंके साथ सहानुभूति प्रकट करते हुये धैर्य धारण करनेकी प्रार्थना करते हैं।

फिरोजाबादके पंच ध्यान दें।

पद्मावती पुरवालोंका मुख्य स्थान फिरोजाबाद है। प्रायः समस्त ही जाति यहांके पंचोंकी नियत रीतियों का अनुकरण करती है। यहां जो पाठशाला अनेक वर्षोंसे स्थापित है उसमें पद्मावतीपुरवालोंकेही लड़के अधिक पढते हैं इसलिये जातिने पाठशालाके जन्मकालसे ही प्रति विवाहके समय कम से कम १) रु० इसमें प्रदान करनेकी पद्धति कायम कर रक्खी है इसका हिसाब जब तक पं० धूरीलालजी जीवित थे तब तक तो नियमानुसार उन्होंने रक्खा परन्तु उनके स्वर्गवासके बाद आज तकका हिसाब किसके पास है ? कौन रखता है ? इसकी कुछ भी खबर नहीं है। हमारे पास श्रीचंद्रप्रभ मंदिरके प्रबंधकर्त्ता ला० प्यारेलाल जी अग्रवालका एक पत्र आया है और वे इसकी शिकायत करते हैं। यदि यह बात सच है तो क्यों नहीं फिरोजाबादके पंच ध्यान देते ? जातिके साथ ऐसा क्यों विश्वासघात किया जाता है। आशा है मेलाके समय इसका पूरा २ विचार किया जायगा।

प्राप्ति-स्वीकार।

निम्न लिखित महाशयोंने इस पत्रको अपना कर जो सहायता दी है, उसके लिये हार्दिक धन्यवाद!

२) हीरालाल सुवालालजी (पुत्रके विवाहमें)
१) नाथूराज चिरंजीलालजी [पुत्रीके विवाहमें]
१) भीमसेनजी जैन [पुत्रके विवाहमें]

ये तीनों रकम पं० जिनेश्वरदासजी, बिलराम [एटा] के मार्फत रेवाड़ी (गुड़गांव) से प्राप्त हुई।

१०) बा० कमलापत पुत्तूलालजी जैन, इटावा।
५) मुंशी वंशीधरजी, फिरोजाबाद।
५) सेठ बाजेराव [illegible] भण्डारा।

श्रीलाल जैनके प्रबन्धसे जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,
८ महेंद्रबोसलेन श्यामबाजार कलकत्तामें छपा।

ॐ

पद्मावती परिषद्का सचित्र मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा चित्रोंसे विभूषित)

संपादक-पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक-श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

वर्ष. २   अं. १२

विषय सूची।

वार्षिक मू० २)

आनरेरी मैनेजर-
श्रीधन्यकुमार जैन. 'सिंह'

१ अंक का ≡)

ताऊजीके नाम खुली चिट्ठी।

परम पूज्यवर ताऊजी !

सविनय प्रणाम।

मैंने सुना है कि आप अपना विवाह करना चाहते हैं। यद्यपि आपकी उमर अभी चालीसके करीब है और स्वास्थ्य भी उत्तम है, तौ भी मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि-आप विवाह करके अपने घरको अशांति मय न बनावें। नयी ताईजीके आनेसे मेरी विधवा चाची से अनबन होनेकी संभावना है और उस अन बनके कारण उसके बच्चेको भी अत्यन्त कष्ट पहुंचने की संभावना है। आपका दादीजीसे भी प्रेम घटेगा और मेरे ऊपर भी अकृपा दृष्टि पड़ेगी। इस सबका फल यही होगा कि, यहाँ वंशका अंत हो जायगा। इसके सिवा समाजकी निगाहसे भी आप उतर जांयगे। गली गली, घर घर आपकी निन्दा सुनते हुए मुझे सिर झुकाना पड़ेगा।

दूसरी बात यह है कि—अभी आप निश्चिंत होकर शुद्ध परिणामोंसे नित्य पूजा-पाठ, दोनों बखत शास्त्र-स्वाध्याय कर; अपनी आत्माको निर्मल बनाते हुए सच्चा सुख भोग रहे हैं परंतु नयी ताईजीके आजाने से आपके पीछे नाना तरहकी चिन्ताएँ लग जायगीं और वे चिन्ताएँ आपको नाना तरहके अन्याय कार्य करनेके लिये प्रेरणा करेंगी, आखिर इनका नतीजा यही निकलेगा कि ताईजीकी मृत्युके बाद २० वर्षमें आपने जो ब्रह्मचर्य रखकर कुछ पुन्य कमाया है वह सब विफल जायगा और उल्टे पापके बोझेसे दब कर संसार—वनमें और भी अधिक दिन तक भ्रमण करना पड़ेगा। आप स्वयं विचारवान हैं, संग दोषसे आपके हृदयमें ऐसा भाव उत्पन्न हुआ है। आशा है आपका यह विचार—यदि अभीतक नष्ट न हुआ हो तो-अब मेरी दीन प्रार्थनासे नष्ट हो जायगा।

प्रार्थी—

आपका दुःखित भतीजा

विद्यार्थियोंको खुश खबरी !!!

जिन विद्यार्थियोंकी अर्जियां कई कारणोंसे वापिस करनी पड़ती थीं, जिनकी अर्जियां समयके निकल जाने आदिके कारण गतवर्ष मंजूर नहीं की गई थीं, तथा और भी जो विद्यार्थी अब भरती होना चाहते हैं उनको अपनी दरख्वास्त विद्यालयके दफ्तरसे प्रवेश फार्म मंगाकर उसे भर कर भेजना चाहिए।

जिन विद्यार्थियोंकी प्रवेशफार्म पर भरी हुई अर्जियां ता० ३० जून सन २० ई० तक आजांयगी उन्हींको योग्यतानुसार भरती किया जायगा।

मंत्री श्रीगोपाल दि० जैन सिद्धांत विद्यालय,

मोरेना (ग्वालियर)

आवश्यक सूचना।

बुंदेलखंड और मध्यप्रांतांनगर्त प्रदेशोंमें जहां २ जैन मंदिरोंमें द्रव्याभावसे पूजन की व्यवस्था न हो अर्थात् पूजन न होती हो और जहां जहां परवार जातिके बिलकुल अनाथ बालक तथा विधवायें हों जिनका कोई संरक्षक नहीं तथा उनके भोजनके प्रबंधकी जरूरत हो—इन सबकी सूचना आप मुझे देवें; जिससे उन मंदिरोंका तथा अनाथोंका सभा से उचित प्रबंध किया जा सके। पता—

कुंवरसेन जैन मंत्री,—

परवार सभा सिवनी सी० पी०।

मुंशी वंशीधरजी जैन रईस. नगला सिकंदर।

पद्मावतीपरिषद्के अष्टम वार्षिकोत्सवके सभापति।

पद्मावतीपरिषद्‌का मासिक मुखपत्र ।

"जिसने की न जाति निज उन्नत उस नरका जीवन निस्सार"

२ रा वर्ष } कलकत्ता, फाल्गुण, वीर निर्वाण सं० २४४६ सन १९२०, { १२ वां अंक

धर्मकी निंदा करने वालोंका भविष्य ।

(१)

शुरू आतमें जिसप्रकार थोडा झूठा अर थोडा चोर ।

काल पायकर होजाता है पक्का झूठा पक्का चोर ॥

उसी तरह जो नर निंदक है जैन धर्मका थोडासा ।

वह अवश्य आगे होवेगा पक्का यह पूरी आशा ।

(२)

वर्तमानमें जो नर हैं कटिबद्ध धर्मकी निंदापर ।

उनकी मन चीती नहि होगी तौ ये निश्चय होंगे पर ॥

हो यदि नहि विश्वास जातिको तो वह आंख गढा देखे ।

तन मन धनका था व्यय जिसकी रक्षा हेतु उसे पेखे ॥

पद्मावती–परिषद्के अष्टम वार्षिक अधिवेशनके सभापति नगला सिकंदर निवासी मुंशी बंशीधरजीका व्याख्यान।

जिनके वचनविनोदतैं, प्रगटै शिवपुर राह।
ते जिनेंद्र पद सुहित नित, प्रणमौं चित उत्साह॥१॥
शिवपुर राह प्रकाशकरि, कर्मभराधर नाश।
विश्वतत्त्व जान्यौ सु जिन, प्रणमौं तुवगुणआश॥२॥

उपस्थित समस्त भाई और बहिनों! यद्यपि मैं इस योग्य नहीं हूं कि आप द्वारा प्रदत्त इस अतिशय सम्मानास्पद पदका अधिकारी हो सकूं तथापि उदार और महत्त्वपूर्ण अपने विशुद्ध हृदयों से जो आप सज्जनोंने मेरे लिये इस पदका प्रेमपूर्वक प्रस्ताव उठाया है उसे मैं 'बड़ोंकी आज्ञा शिरोधार्य है' यह समझकर ग्रहण करता हुआ आपका आभार मानता हूं और आशा करता हूं कि आप लोग सब तरहसे मेरी सहायता कर इस कार्यको पूर्ण करा देंगे।

प्रिय भ्राताओ! हम सब लोग आज किसलिये इकट्ठे हुये हैं? नाना गांव और भिन्न २ देशोंसे केवल एक सामान्य सूचना पाकर ही इतने मनुष्योंका एकदम एकत्र होजाना किसलिये हुआ है? इसपर विचार करते हैं तो इस प्रश्नका उत्तर देनेकेलिये हृदय गद्गद्होजाता-है। भाइयों! हमारा यह सम्मेलन किसी अन्य ऐहिक कार्यके लिये न होकर केवल धर्म अर्थ और काम ये मनुष्यके तीन जो पुरुषार्थ आचार्योंने बतलाये हैं उनकी पूर्ति करनेके उपाय ढूंढनेके लिये है। हम आज सैकड़ों वर्षोंके घोरातिघोर अंधकारमय मार्गको तय करते हुए, अपनी असली सुखदायक सामग्रीको अज्ञान आदि लुटेरों द्वारा लुटवाते हुये इस अवस्थामें आ प. हुंचे हैं कि एक भी सत्कर्मका हममें पूर्णतया सद्भाव नहीं दीखता। हम लोगोंकी जो यह अवनत दशा हो चुकी है और घोरैर होती जारही है उसके विचारने मात्रसे हृदय कंप जाता है, बुद्धि चक्कर खा निकल ती है और मस्तक विचार शून्य हो जाता है। जो लोग ज्ञातिहितैषी हैं जिन्होंने अपना कर्तव्य अपने भाइयोंका उद्धार करना ही समझ लिया है उनसे तो कोई भी बात छिपी नहीं है किंतु जिनलोगोंने अभी ही करवट बदली है या जो पूर्णरीतिसे समाज सेवा करनेके लिये आगे नहीं खड़े हुये हैं उन लोगोंकी दृष्टि इस तरफ पहुंच जाय, वे लोग शीघ्र ही मैदानमें आकर अपना कार्य करना प्रारंभ करदें, अपनी समस्त शक्तिको जातिसेवारूपी हवनकुंडमें होमनेकेलिये सर्वथा तयार होजांय इसलिये संक्षेपसे मैं कुछ ऐसी बातोंका उल्लेख करूंगा जिनने मेरे हृदयमें चिरकाल से स्थान पालिया है और अब ऐसी मजबूत हो जम-गई हैं कि बिना उनके परिवर्तन हुये निकलना ही असंभव होगया है।

मान्यवरो! जिन कारणोंसे हमारी यह दशा होगई है और जिसके सुधारके लिये हम और आप सब आज एकत्र हुये हैं वे मुख्यतया तीन विभागोंमें बांटे जासक्ते हैं, धार्मिक क्रियाओंकी न्यूनता, व्यापारके ज्ञानका अभाव और कुरीतियोंका प्रचार। इसके उत्तरोत्तर अनेक भेद होसक्ते हैं परंतु उन सबका अंतर्भाव इन तीनोंमें ही होजाता है।

धार्मिक क्रियायोंका अभाव।

हमारे जीवनका मुख्य उद्देश्य और फल भगवान् जिनेंद्र द्वारा अपने समस्त ज्ञेयोंको जानने वाले ज्ञान

द्वारा कहे गये धर्मका पालन करना है। संसारके अन्य अनंते सुखोंका हम प्रति दिन भोग करें और नाना तरहसे अपनी इंद्रियोंकी प्रवृत्तिको तृप्त करें परन्तु यदि एक उक्त धर्मका साधन हम नहीं कर रहे हैं तो वह सब मिथ्या है। क्योंकि उससे सुखके बदले दुःख ही उत्पन्न होगा। हमारे आचार्योंने कहा है और हमें भी अनुभव करनेसे यही मालूम पड़ता है कि इस संसारमें जो कुछ सुख प्राप्त हो सकता है वा होता है वह सब धर्मके ही प्रभावसे है और जब यह बात है तब धर्मका पालना सर्वदा सुखकी लालसामें ही लालायित रहनेवाले इस जीवको कितना जरूरी है यह आप लोग स्वयं समझ सकते हैं। धर्म पालनके लिये मनुष्य पर्याय जितनी हितकर है उतनी तिर्यंच नरक और देव कोई नहीं, यह किसीसे छिपा नहीं है। एक जगह मनुष्य और पशुओंकी तुलना करते हुये किसी कविने सच कहा है कि—

"आहारनिद्राभयमैथुनं च
सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ॥"

अर्थात् खाना पीना सोना उठना आदि अन्य व्यावहारिक कामोंमें मनुष्य और पशु समान हैं यदि केवल एक भेद है तो धर्म साधनसे ही भेद है— मनुष्य धर्मका आचरण कर सके हैं और पशु नहीं— उन्हें धर्माचरणकी सामग्री नहीं मिल सकी। इसलिये जो लोग धर्मका आचरण नहीं करते वे पशु हैं यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है। हिंदीमें भी एक कहावत है

"धर्म पन्थ साधे विना नर तिर्यंच समान।"

अर्थात् धर्माचरणहीन मनुष्य पशुसे कम नहीं क्योंकि गाय भैसोंके सींग पूंछ होते हैं और मनुष्योंके दाढी मूंछ।

धर्मक्रियायें जो हम लोगोंको प्रतिदिन करनी चाहिये वे ज्ञान वृद्ध आचार्योंने छह बतलाई हैं—

देवपूजा गुरूपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट् कर्माणि दिने दिने।

वीतराग अरहंत देवकी पूजा करना, निर्लोभी परिग्रह रहित गुरुकी सेवा शुश्रूषा करना, शास्त्रोंका स्वाध्याय करना, इंद्रियोंको वशमें कर—व्यर्थ ही स्थावर और संकल्पी त्रसकी हिंसा न करना उपवास आदि धारण करना, और पात्रमें श्रद्धा भक्ति पूर्वक दान देना ये गृहस्थके प्रति दिन करने लायक छह कर्म हैं।

अब हमें क्रमसे इन छहों बातोंपर विचार करना चाहिये कि हममें-हमारे भाइयोंमें ये कितनी हैं और किस कदर बढती या घटती जा रही हैं। सबसे प्रथम कर्म देवपूजा है। हमारे पूर्वजों (पुरिखाओं) की सुदूरदर्शिनी बुद्धि द्वारा बांधी गई विवाहके समय दानकी प्रवृत्तिसे-हमारे भाग्योदयसे प्रत्येक गांवमें जिनमंदिर मौजूद हैं कहीं कच्चे, कहीं पक्के और कहीं चैत्यालयके रूपमें। परंतु उनमें विराजमान जिनप्रतिमाओंकी सेवा भक्ति हम जिस प्रकारसे करते हैं उसे विचार कर ही दांतोंतले उंगली दबानी पड़ती है। यद्यपि हमारे भाई प्रतिदिन नियमसे दर्शन अवश्य करते हैं और इस भांति अन्य बहुतसी जैनजातियोंकी अपेक्षा हमारी जातिकी अवस्था बहुत अंशोंमें संतोषजनक है परन्तु जब असली तत्त्वपर दृष्टि डाली जाती है तो बहुत खेद और निराशा दीख पड़ती है। हमारे बहुतसे गांव ऐसे हैं जहां प्रतिमाजी का पूजन प्रक्षाल तक नहीं होता, महीनों मंदिर-

जीमें बुहारी तक नहिं लगती। लोग कोई सवेरे कोई दुपहरको और कोई २ दुपहर लौटे दर्शन करने जाते हैं। प्रत्येक जैनीका हर रोज पूजन करना कर्तव्य आचार्योंने बतलाया है सो तो जहां तहां रहा, सप्ताहमें एक घरका एक आदमी भी पूजन करनेमें आना कानी करता है! लोगोंमें धार्मिक भावोंकी शिथिलता होनेसे ही तो पूजनकी बारी बांधी जानेकी रिवाज है परंतु उसका भी यथावत् पालन करना हम लोगोंने छोड दिया है यह कितने दुःखकी बात है।

दूसरा कर्म गुरुसेवा है। आजकल शारीरिक मानसिक शक्तिका ह्रास होजानेसे चौथेकालकेसे गुरु-साधुओंका तो अभाव ही हो गया है परंतु इस समयकेसे भी नग्न दिगंबर साधु बहुत ही कम क्या दश पांच भी नहीं हैं। दक्षिणमें दो एक सुनाई पडते हैं उनका जब हमें दर्शन होना ही दुर्लभ है तब होना न होना बराबर है और उनके अभावमें आहार आदि चार प्रकारके दान आदि पूर्वक गुरुसेवन करना कैसे संभव हो सका हैं. इस लिये उत्कृष्ट गुरुसेवा-रूप जो गृहस्थोंका दूसरा कर्तव्य है उसका सर्वथा पालना तो देशकालके अनुकूल न होनेसे बन नहीं सका परन्तु जैसा कुछ भी इस समय बन सकता हैं वह भी हम लोग नहीं करते। यदि हमारे यहां कोई व्रती त्यागी ब्रह्मचारी भाग्योदयसे आजाते हैं तो उनका आदर सत्कार करना तो दूर रहा, परीक्षाप्रधानी हो नाना तरहके नुक्स निकालकर तिरस्कार करना प्रारंभ कर देते हैं। हम लोग अपने आचरणोंकी तरफ तो देखते नहीं, हम श्रावक कहलाते पर भी अहिंसा आदि व्रतोंका पालन तो दूर रहा उनका तात्पर्य तक समझते नहीं परंतु अपनेसे उच्च आचरण और व्रत धारक मनुष्योंके विषयमें कैसी २ बुरी भावनाओंकी कल्पना कर बैठते हैं इसका ठिकाना नहीं। हमें चाहिये कि अपने मान्य त्यागियोंका हम सत्कार करें, उनको यथाशक्ति सब तरहसे सहायता कर उनके ध्यानमें आते हुये विघ्नोंको शांति करें।

तीसरा कर्तव्य स्वाध्याय है। शास्त्रोंका पढना, सुनना और उनके अर्थका विचारना—मनन करना ही स्वाध्याय है। इसीकी सिद्धिकेलिये प्रायः हरएक मंदिरजीमें छोटा बड़ा शास्त्र भंडार रहा करता है। हम जिनवाणीका रोज नमस्कार पूजन आदि द्वारा कितना ही क्यों न सत्कार करें परंतु जब तक उसके अर्थको न समझ सकेंगे तबतक वह सच्चा सत्कार नहीं कहलाया जासक्ता। शास्त्रोंमें क्या लिखा है? जैनधर्म क्या चीज है? हमें क्या करना चाहिये? आदि बातोंका जानना हमारेलिये खाने पीनेके समान जरूरी है। यदि हम अपने धर्मशास्त्रोंका मर्म नहीं जानते तो जैनी कहलानेके पात्र ही नहीं होसक्ते। अतः पवित्र दोनों लोकोंके हितकारक जैनधर्मके धारण करनेका हमें फल पाना है—हम जैन कुलमें उत्पन्न होनेके लाभको हांसिल करना चाहते हैं और पशुओंकी भांति अज्ञानसे ही अपना जीवन न वितानेकी इच्छा करते हैं तो शास्त्रोंका प्रत्येक भाईको प्रतिदिन स्वाध्याय करना चाहिये मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि आप बड़े २ कठिन ग्रंथोंका पठन तात्पर्य बिना समझे ही किया करें, मेरी प्रार्थना है कि जैसी जिस भाईकी समझने और पढनेकी सामर्थ्य हो वह उसीके अनुसार इस पवित्र कार्यमें अवश्य घंटा आधघंटा विताया करे। अलीगढ निवासी पं० प्यारेलालजीने स्वाध्यायकी प्रतिज्ञा लोगोंका दिलानेके लिये फार्म छपाये हैं उन्हें उनके पाससे मंगाकर शक्तिके माफिक साल दो साल चार सालतकका (स्वाध्याय कर-

नेको) प्रतिज्ञा स्वयं ले और अपने इष्ट मित्रोंको भी दिला कर उनके पास वापिस भेज देना चाहिये। इस स्वाध्याय करनेसे यह भी एक बड़ाभारी लाभ होगा कि जिस समय हमारे बच्चे हमें धर्मकी चर्चा करते देखेंगे तो उनके हृदयोंमें अटलरूपसे धर्मका जोश जमजायगा वे आगे धर्मको अपना प्राण मान उसकी रक्षा करेंगे उन्हें पढ़ने लिखनेका खुदबखुद शौक होगा जिससे जैन धर्म और जाति दोनोंकी अमिटरूपसे दशा स्थिर रहेगी हमारे पुरिखाओंमें स्वाध्याय आदिकी प्रथा जोरी थी जिससे वतमानके कुछ भाइयोंके हृदयमें धर्मका जोश है लेकिन अब हमारे भाइयोंने स्वाध्यायको एकदम भुला दिया है जिससे धर्मकी नास्ति सी होती जाती है आगेकी संतान धर्मका नाम तक नहिं जानती, मन आया तो वह धर्मकार्य करती है नहिं तो नहीं इससे बढ़कर हमारी और धर्मकी क्या दुर्दशा होगी ? शास्त्रोंके स्वाध्यायसे इस लोक पर लोक संबंधी बहुतसी बातोंका हमें ज्ञान होता है। हम क्या हैं यह भी स्वाध्यायसे ही मालूम होता है इसलिये यह बहुत ही पुण्य और उपकारका कार्य है। संसारमें भूली भटकी आत्माओंका इस जिनवाणीके ज्ञानसे ही कल्याण होसक्ता है।

चौथा कार्य संयम है। यह शास्त्रकारोंने इंद्रिय संयम और प्राणि संयमके भेदसे दो प्रकारका कहा है। आंख कान नाक आदि जो पांच इंद्रियां हैं उनको वशमें करना इंद्रिय संयम है। जब हाथी आदि जीव एक २ इंद्रियके ही वशीभूत हो अपने प्राण गंवा बैठते हैं तब हमारी जब पांचों इंद्रियां प्रबल हो अपना कार्य करने पर उतारू होंगी—हम उनका दमन न कर उनकी ही आज्ञा में चलने लगेंगे तब क्या दशा होगी इसका समझना कठिन नहीं है। हमको चाहिये कि अपनी २ इंद्रियोंकी प्रवृत्तिको रोकें, उनसे जहां तक बने धर्मकार्योंके करनेमें सहायतालें, आजकल जो हमारी इंद्रियोंकी कुमार्गमें विशेषरीतिसे प्रवृत्ति होजानेके कारण नाना तरहके पापोंका प्रादुर्भाव हो-गया है और होता जारहा है उसको हमें शीघ्र ही सुधारना चाहिये।

प्राणियोंकी हिंसा न करना प्राणिसंयम है। हम चींटी आदि सूक्ष्मजीवोंकी प्रतिपालनाका उद्योग अवश्य करते हैं परंतु स्थूल जीवोंकी विराधना बराबर करते ही रहते हैं। मिथ्या बोलना, झूठे तमस्सुक आदि बनाना बिना कसूर ईर्ष्या द्वेष वश मुकद्दमा दायर कर दूसरोंको तंग करना-अपने और दूसरोंके भावोंकी हिंसा करना हमारे प्रतिदिनकेसे काम होगये हैं। चींटी आदिके मारनेसे जिस जीवके प्राणोंकी विराधना की जाती है उसीको दुःख होता है परंतु मनुष्योंके ऊपर मिथ्या दोषारोपण करने-उन्हें अपनी कषाय पुष्टिके लिये नाना तरहसे तंग करनेके कारण उनके समस्त कुटुम्बको, नाते रिस्तेदारोंको कष्ट होता है। एकके साथ अनेक मनुष्योंके प्राण हते जाते हैं इसलिये हमारे भाइयोंको ऐसे काम कदापि करने उचित नहीं हैं। दुःखके साथ कहना पड़ता है ऐसी महती हिंसा करने वाले लोगोंकी संख्या हममें दिन पर दिन बढ़ती जा रही है जिससे कि हमारी जाति और धर्मपर लोग अनेक तरहके कलंक लगाने लगे हैं।

पांचवां गृहस्थोंका कर्तव्य तप है। एकाशन उप-वास आदि व्रतोंके सिवा हम लोगोंको मुख्य तप सामायिक-एकाग्र चित्त हो, आत्मस्वरूपका विचारना भी करना चाहिये। आजकलकी जो जाप देनेकी प्रवृत्ति है उससे वचन द्वारा तो जिनेंद्र भगवानका

स्मरण होता है परन्तु मन इधर उधर भ्रमण किया करता है। लोगोंको सामायिक करनेकी विधितक नहीं मालूम है जो कि हर जैनीका मुख्य कार्य है अतः जिन अच्छी २ बातोंकी रिवाज पहिलेसे हममें चालू है पर रूप बदल गया है उनका पूर्वकी भांति सुधार होजाना चाहिये।

अंतका छठा कर्तव्य दान है। भाइयो! इस विषयपर मुझे कुछ विशेष कहना है। दानका लक्षण हमारे पूर्वजोंने "जिस प्रकार अपना और दूसरोंका आत्मकल्याण हो उस तरह द्रव्यका देना" बतलाया है। हम लोगोंमें दान देनेकी प्रथा सर्वथा उठसी गई है। कहीं कहीं कोई कोई भाई अधिक इच्छा होनेपर अपने आस पासके भाइयोंको नोता दे आहार करा दिया करते हैं जिसे 'आहारदान' कहते हैं। परन्तु इस प्रकारके दानसे जैसा फल और लाभ होना चाहिये नहीं होता। भूखेको भोजन, त्रसितको अभय, रोगीको औषध और विद्यार्थीको ग्रंथ देनेसे जो लाभ होता है वह उन उन चीजोंकी आवश्यकता न रखने वालोंको देने से नहीं हो सक्ता और ज्यादा लाभके न होनेसे दान देनेका जो फल गृहस्थको मिलना चाहिये नहीं प्राप्त हो सक्ता। पहिले जमानेमें जब कि दातार अधिक और उसके लेनेवाले कम थे उस समय अपने साधर्मी भाइयोंको बुलाकर आदर सत्कार पूर्वक विना आवश्यकताके भी भोजन करा आहारदानका कार्य पूरा कर लिया करते थे परन्तु आजकल दानके पात्र बहुत हैं दाता लोग नहीके समान हैं। ऐसे समयमें एक पैसाका दान भी समझ सोचके साथ होना चाहिये। हम आहारदान करनेके लिये तयार हों और अपने आस पासके सौ दोसौ साधर्मियोंको एक दिन खूब बढ़िया २ भोजन कराना चाहते हों तो क्यों नहीं उसमें लगने वाले द्रव्यको ज्ञान दानमें लगादें। एक दिनका आहार दान उतना पुण्य पैदा नहीं कर सक्ता जितना कि साल भर या छह या तीन महीने तक दाता की द्रव्यसे चली हुई पाठशालामें दिया जाने वाला ज्ञानदान पैदा कर सक्ता है। आहार दानका फल शरीरको सुख पहुंचाना है, क्षुधा पिपासाकी आगे बाधा न होना है परन्तु ज्ञान दानका फल आत्माको सुख पहुंचाना है—ज्ञान पैदाकर हिताहितका विवेक करा देना है जिसकी कि सबसे अधिक आवश्यकता इस संसारमें है। यदि हमारी उत्कट इच्छा आहार दानकी ही हो तो जैन समाजमें स्थापित विद्यालयों, ब्रह्मचर्याश्रमों, और अनाथालयोंमें द्रव्य भेजकर पढने वाले विद्यार्थियों को वह कराना सबसे पहिला हमारा कर्तव्य है। यदि वह भी किसी कारण वश करना पसंद न हो तो जो जातिमें सैकडों अनाथ विधवायें हैं, जिनका दिन रात पेट भरनेकी चिंतामें ही बीतता है, अतः धर्मध्यानसे वंचित रहती हैं उनको मासिक वृत्ति देकर करना चाहिये। इससे आपका नामका नाम और जातिकी दशाका उद्धार भी होगा। दानके सर्वथा योग्य विधवाओंकी आपकी जातिमें कमी नहीं है। वे प्रति गांवमें दो एक पाई जाती हैं। समर्थ पुरुषोंकी अपेक्षा असमर्थ विधवाओंकी सहायता करना कई गुणा पुण्यदायक है।

इस प्रकार गृहस्थके छह कर्तव्य और वे कितने २ किस २ भांति जातिमें आजकल चालू हैं यह आप लोगोंके सामने निवेदन करदिया गया। अब हमारी अवनतिका दूसरा कारण जो व्यापारके ज्ञानका अभाव है उसपर कुछ कहता हूं।

व्यापारकी न्यूनता।

भाईयो! आजकलके जमानेमें जब कि बिना धनके कुछ भी काम नहीं होसका तब धनका उपार्जन करना कितना जरूरी है यह आप लोगोंके दिनरात काममें आनेवाली बात है। धन बिना व्यापारके किसी भी प्रकार अपरिमित रूपसे नहीं आता। व्यापार किसी जमानेमें गांवोंमें थो पर आजकल वह स्थान छोड़ शहर और कस्बोंमें आगया है। कल पुर्जों द्वारा बनाई जानेवाली चीजें जिनका कि हमें पल२ पर काम पड़ता है गांवोंकी अपेक्षा शहरोंमें ही अधिक और सुगमतासे मिलती हैं। अतः उनके व्यवहार करनेवाले लोग भी शहरोंमें आ आकर बस गये हैं, व्यावहारिक वस्तुओंका अल्पमूल्यसे लेना, तयार करना और कुछ विशेष मूल्य से दूसरोंको देना ही व्यापार है। इसलिये जहां जितने अधिक मनुष्य होंगे वहां उतनी ही चीजोंकी विक्री ज्यादा होगी। चीजोंकी अधिक विकवालीसे ही धन अधिक पैदा होता है इसलिये जिन लोगोंका काम धनके विना गांवोंमें सुगमतासे नहीं चलता या जिनका जैसा भी कुछ व्यापार है वह पर्याप्त रूपमें नहीं होता उन्हें अपने २ पासके या दूरके सुभीतेके अनुसार शहरोंमें स्थान बदल डालने चाहिये। हमारे बहुतसे भाई गांव छोड़कर परदेश जानेमें डरते हैं परंतु उन्हें इस विषयमें मारवाडी भाईयोंका अनुकरण करना चाहिये। ये लोग व्यापारके लिये अनंत कष्ट सहते हैं अपने प्राणोंकी भी पर्वा नहिं करते ऐसी जगह जहां कोसोंकी दूरीपर कोई गांव नहीं सब ओर पर्वत हैं किंतु सड़कका वा दड़ेका किनारा है वहां पर भी अपनी दुकान रक्खे नजर पड़ते हैं यही कारण है कि यह जाति आज व्यापारका पुतला बन रही है हमें भी मारवाड़ियोंके समान धर्मपरिणतिके साथ व्यापारसे भिड़ जाना चाहिये देश परदेश जानेमें आनाकानी न करनी चाहिये शास्त्रोंमें भी लिखा है कि सेठ चारुदत्त आदिको व्यापारके कारण परदेश जाना पड़ा था।

इसके सिवा नाना वस्तुओंके तयार करने वाले कल कारखाने जाति के धनिकों को चलाने चाहिये जिनमें अपने गरीब भाई ही काम करने वाले हों जिससे व्यापारको उन्नति और जातिका उद्धार हो।

निर्धन भाईयों के सुभीतेके लिये इस परिषद् द्वारा कई बार बैंक खोलनेका प्रस्ताव पास हो चुका है जलेसरनिवासी मुंशी हरदेवप्रसादजी आदि कई महानुभावोंको यह काम सुपुर्द किया गया था परन्तु सिवा वार्षिक जल्सोंके समय कभी भी उसका नाम नहीं सुना गया। मैं उक्त मुंशीजी से आग्रहपूर्वक कहता हूं कि वे इस कामको अपनी वृद्धावस्थाके इस अवकाशमें तन मन लगाकर चलावें आपको आपके सुपुत्र बा० बनारसीदासजी बी० ए० वकील भी यथेष्ट सहायता दे सकते हैं।

कुरीतियोंका प्रचार।

तीसरी जातिकी अवनति का कारण कुरीतियोंका प्रचार है पहिले कहे गये दो कारणोंमें जो हमारी हानि हुई है वह तो हुई ही है पर उससे भी कई गुणी हानि हममें कुरीतियोंके प्रचार से हुई है। जिस प्रकार अजीर्ण पर गरिष्ठ भोजन करने वालेका अधःपात वा मृत्यु निश्चित है उसी प्रकार पूर्वोक्त दो कारणोंसे अवनति की तरफ ढुलकने वाली इस जाति का सर्वनाश इस कुरीतियोंके प्रचारसे निश्चित सा हो गया है। अधिकतासे जिन कुरीतियोंने हममें जड जमा ली है, जो वड़के पेड़की जटाओंके समान सर्वत्र फैल गई हैं वे बाल-विवाह, वृद्ध विवाह व फिजूल खर्ची

आदि हैं। हमारे लड़के लड़कियोंको पैदा होनेकी तो देर नहीं होती हम उनके लिये विवाह करनेकी तयारी करने लगते हैं। जातिका ऐसा कोई विरला ही धनिक परिवार होगा जिसमें योग्य अवस्था तकका अविवाहित लड़का एक भी पाया जाय। १८-१९ सालकी अवस्था तक तो किसी २ के दो दो किसी किसीके तीन २ विवाह तक हो जाया करते हैं। लड़कपनमें शादी कर देने और अपक्व अवस्थामें ब्रह्मचर्य भंग कर देने से जो हानि होती है वह हम लोगों की जड़ काट रही है। बहुत से नव युवक लड़के और लड़कियां नाना तरहके रोगोंसे ग्रस्त हो अपने मा बापको कोसते फिरते हैं।

लोगोंमें जानकारीके साथ साथ बालविवाहको बुरा बतलानेकी आदत तो आगई है पर वचनके अनुकूल न चलनेकी जो पुरानी आदत है वह भी नहीं छूटपाई है। इसलिये जैसा चाहिये वैसा बालविवाहके निषेधका फल नहीं दिखलाई देता। उपस्थित भाइयोंको इस पर ख्याल करना चाहिये और लड़कोंकी शादी ११ वर्षसे कम, लड़केकी १८ वर्षसे कममें न करनेकी प्रतिज्ञा लेनी चाहिये।

वृद्धविवाह और उसके साथ ही कन्याविक्रयकी प्रथायें भी दिनदूनी रात चौगुनी इस जातिमें बढ़ती जारही हैं। इंद्रियोंकी शिथिलता होजानेसे सांसारिक समस्त वासनाओंके पूर्ण करनेमें असमर्थ बुड्ढोंकी विवाह तृष्णाकी तरफ दृष्टि डालनेसे एक विलक्षण घृणाकी लहर उठती है। १०-११ वर्षकी अबोध बालिकाको विधवा बनानेकी धुनमें मस्त रहनेवाले इन निर्दयी बुड्ढोंको किस नामसे पुकाराजाय? ये जवानीके दिनोंमें भांति भांतिके अन्यायों द्वारा कमाये गये द्रव्यका इस प्रकार उपयोग करते हैं! लड़कीको मा जिसने नौ महीना अपने पेटमें रख, तरह तरहके कष्ट सह उसे पाला है इसलिये वह विचारी तो लड़की बेचनेका विरोध भी करती है पर लोभी बाप अपने मनकी चीती बिना किये नहीं छोड़ता। यद्यपि ऐसे नितांत अधर्मी बुड्ढोंकी संख्या हमारी जातिमें कम है लेकिन वह बड़े जोरोंके साथ बढ़ रही है। जातिमें लड़कियां एक तो वैसे ही कम हैं जिससे बहुतसे योग्य योग्य लड़के अविवाहित रह जाते हैं तिसपर धनिक बुड्ढे उन्हें खरीदकर और भी कम कर देते हैं। इसके सिवा लड़कियोंकी संख्या एक और तरह कम होरही है। वह यह कि दूजिया तीजिया लोग भी विवाह करनेके तीव्र अभिलाषी रहते हैं। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि जिस लड़के की उम्र १८—१९ वर्षके ही करीब है या विवाह या गौना होते ही जिसकी स्त्री मर गई है, कोई संतान पैदा नहीं हुई है वह विवाह न करे। नहीं, वह खुशीसे करसक्ता है पर जिसके विवाह और गौने को हुये १०—११ वरस बीत गई, जो चार छह संतानका बाप होचुका और जिसके दो एक जीवित पुत्र हैं वहभी फिर विवाह करनेकी धुनमें मस्तरहता है एवं यहां तकही नहीं, रुपये देदेकर लड़की के बापसे अपने लिये स्त्री लानेकी कोशिश करता है यह बहुत ही चिंताजनक है। विवाहका फल संतान होना है और वह जब मौजूद ही है तब जातिके अन्य नवयुवक जिनका विवाह नहीं हुआ है उनका हक छीनकर विवाह करना सर्वथा अयुक्त है दूसरे पहिली संतान पर विमाता प्यारकी जगह अधिकतर द्वेषही रखती हैं इसलिये अपने घरमें फूटकी जड़ लाना भी हानिकारक ही है। जातिको सबसे पहिले बालविवाह, वृद्धविवाह और इस अंतिम विवाहको रोकनेका प्रयत्न करना चाहिये अन्यथा इन तीनों प्रकार के

विवाहोंसे बढती हुई विधवाओंकी संख्या अनेक प्रकारके और भी अत्याचारोंका जातिमें प्रादुर्भाव करेगी इसमें रंचमात्र भी संदेह नहीं है।

व्यर्थ या फिजूल खर्ची हम लोगोंमें दिन दिन बढती जा रही है। हम धन जनसे जब पूर्ण थे तब तो हमारे पूर्वजों ने गरीब अमीरकेलिये एकसी विवाह शादी आदि व्यवहारोंकी रीति रश्म बांधी थी जिससे बहुत ही सुभीते के साथ काम होता था और उनके अनुसार चलने से अब भी होता है। आजकल व्यापार आदिके एक तरहसे अभाव हो जानेके कारण धन कम हो गया है तो भी खर्च हमने पहिले से कई गुणा कर लिया है। सगाई के समय ही हम इतना खर्च कर देते हैं जितना पहिले एक अच्छे विवाह में होता था। गहने कपड़ोंकी रिवाज इस कदर बढ रही है कि एक सामान्य और साधारण मनुष्यका विवाह होना ही कठिन हो गया है। आज कल जिस बिचारे के घरमें ४-६ लड़के और दो चार लड़कियां हैं उसे प्रति साल एक विवाह और एक गौना करना पड़ता है अतः खर्चकी अधिकता हो जानेसे धन कमाने की चिंता पीछा नहीं छोड़ती। इसलिये हमारे जो रीति रिवाज हैं उनके अनुसार ही चलते रहनेका प्रयत्न करना चाहिये और जो इधर उधर शहरोंमें जा वसनेवाले वा जिनके पास धन काफी है वे लोग फिजूल खर्ची बढा रहे हैं उसको बंद कर देना जरूरी है।

विधवाओंकी तरफ लक्ष्य देना भी हमारा प्रधान कर्तव्य है। बाल विवाह आदि कुरीतियों द्वारा और दैवी घटनाओं से जो बहिनें अपने पतियोंसे वियुक्त हो गई हैं जिनकी खबर लेनेवाला कोई नहीं रहा है जो अपने गुजारेका कोई खास व्यापार नहीं कर सकतीं उन दीन हीन विधवाओंकी खबर लेना भी हमलोगोंको जरूरी है। जैसी अवस्था हमारी विधवाओंकी है उसका विचार करते ही हृदय दयासे भर जाता है। हमें उनकी सहायताके लिये सब तरह कटिबद्ध हो जाना चाहिये। उनके धार्मिक भावोंको जागृतिके लिये पढाने लिखानेका प्रबंध कर देना बहुत ही जरूरी है इसके सिवा कोई ऐसा तरीका भी निकाल देना बहुत ही आवश्यक है जिससे सुभीतेमें उन लोगोंकी आजीविका चल सके।

अब मैं आप लोगोंका ध्यान एक बहुत ही जरूरी विषयकी तरफ आकर्षित करता हूं। वह यह कि—हमारे यहांके मंदिरों की व्यवस्था ठीक नहीं है। प्रत्येक गांवमें यद्यपि पंचायत है, हिसाब के लिये बही खाते रक्खे जाते हैं, पर जब लेन देन ही ठीक नहीं है तब वह सब किस कामका? जिसकी लड़कीका विवाह होता है वह ही जब दानमें आई द्रव्यको अपनी संपत्ति समझता है तब लड़केवालेने जो द्रव्य मंदिरमें चढाया उसका क्या फल निकला? इसलिये मंदिरोंका हिसाब ठीक रखनेके लिये पंचायतोंको प्रयत्न शील होना चाहिये और हमारे भाइयोंको भी धर्मादेका द्रव्य सर्वदा बढता रहे ऐसा उपाय करते रहना चाहिये।

भाइयो! मैंने जो आपके सामने अपनी जातिमें लगे हुये दोषोंका वर्णन किया है उनके एक दम नष्ट होनेका उपाय भी बहुत सोच समझनेके बाद एक निश्चय किया है और वह यह है कि हमारा गांव गांवकी पंचायतें पहिलेके समान मजबूत होजांय, हर एक मनुष्य उनकी आज्ञा शिरोधार्य समझे, आपसी ईर्ष्या द्वेष छोड़कर न्यायकी तरफ ही दृष्टि देना प्रारंभ करदे। जिसप्रकार कचहरीमें जज द्वारा किया गया फैसला मुद्दई मुद्दालह दोनोंको मानना पड़ता है उसी प्रकार हमारे भाई भी अपनी २ पंचायतोंद्वारा

गये न्यायको शिर माथे रक्खें। जिस भाईको अपनी पंचायतके फैसले पर संदेह हो वह इस समस्त जाति की पंचायत (पद्मावती परिषद्) में अर्जी करे इस तरह समस्त जातिके झगड़े मिट सक्ते हैं और द्वेष भी निकल सक्ते हैं। यदि हमें अपना हित साधना है तो चाहिये कि इस विरादरीके मुखियाओंकी पंचायत का हुक्म मानें, इसमें पास हुये प्रस्तावोंको जी जान से पालें।

अब मैं अपनी न्याय प्रिय सर्कारको धन्यवाद देता हुआ अपने वक्तव्यको समाप्त करता हूं और इसमें जो कुछ त्रुटि या कटुक शब्द अज्ञान व प्रमादवश निकल गये हों उनको क्षमा चाहता हूं।

होवे सारी प्रजाको सुख, बल युत हो धर्मधारी नरेशा।
होवै वर्षा समैप तिलभर न रहै, व्याधियोंका अंदेशा॥
होवे चोरी न जारी सुसमय वरतै, हो न दुष्काल भारी।
सारे ही देश धारें जिनवर वृषको जो सदा सौख्यकारी॥

सूरजभानी लीला।

सत्योदय वर्ष दूसरा अंक सातमें 'वीतरागमूर्ति की पूजा और प्रतिष्ठा, नामका एक लंबा चौड़ा भाष्य-स्वरूप लेख प्रकाशित होचुका है। जैनियोंमें जो पंच कल्याण पूर्वक प्रतिष्ठा करानेकी विधि जारी है उसी पर वकील साहबने हदसे ज्यादह लिखडाला हैं उनके तमाम लेखका सिर्फ यह सार है कि जैनी लोग वीत-रागताके उपासक है और वीतरागता ही स्वपर कल्या-णकी करनेवाली है, इसलिये गर्भ जन्म कल्याण मानने को क्या आवश्यकता है? गर्भ जन्म कल्याण राग वर्धक हैं, उनका जैनधर्मसे कोई संबंध नहीं। तथा जिन शास्त्रोंमें इन कल्याणकोंका उल्लेख है वे शास्त्र आचार्य प्रणीत नहिं हो सकते, किसी ढोंगीके बनाये हुए हैं, एवं जैन विद्वानोंसे यह प्रार्थना की है कि यदि आचार्यों द्वारा लिखित कोई शास्त्र इसविषयमें हों तो कृपाकर वे हमें सूचित करें।

उत्तरमें निवेदन है कि वकीलसाहबने जो शुद्ध निश्चयनयको ही जैन सिद्धांतका मूल तत्त्व समझ रक्खा है यह भ्रम है। साध्यावस्थामें व्यवहार नय भी कार्यकारी माना है। हम और आप सरीखे मनुष्य यदि एकांत रूपसे शुद्ध निश्चय नयके विषयको ही उपादेय मानेंगे तो मोक्षमार्गके पात्र सम्यक्त्वी नहिं गिने जांयगे किंतु संसारमें घूमनेवाले मिथ्यादृष्टि ही कहे जांयगे। यह प्राय सबही मनुष्य जानते हैं कि जो घटना होचुकी सो होचुकी और वह घटना उस समय में रहनेवाले ही मनुष्योंके प्रत्यक्ष गोचर थी, उस काल के बाद में होनेवाले मनुष्य उस घटनाका साक्षा-त्कार नहिं कर सकते। किंतु उनकी लालसा उसके कुछ स्वरूपको अपने आंखोंसे देखनेकी अवश्य होजाती है इसीलिये वे उसी रूपसे उस घटनाको देखनेके लिये प्रयत्न करते हैं। उस घटनाको देखनेसे उनके आंखोंके सामने जैसी कि वह घटना हुई थी वैसीही थोड़ी देरके लिये नजर पड़ने लगती है तथा जिस विषयकी वह घटना होती है उसीके अनुकूल भावोंका उनके हृदय पर पूरा प्रभाव पड़ जाता है। यह हमने अच्छी तरह अनुभव किया है कि जिस समय हम मेवाड़ पतन नाटकको देखते हैं उस समय यद्यपि उसका असली दृश्य हमारे सामने उपस्थित नहीं तथापि नाटकके देखनेसे भी मुगल सम्राटकी नीचता

और राणा प्रताप आदिकी वीरता से पद पद पर हमारे चेहरोंसे हर्ष विषाद टपकते रहते हैं। तथा यह हमारी बहुत थोड़े दिनकी सुनी हुई बात है कि एक जगह आल्हखंड बंच रहा था। जिस समय आल्हखंडमें पृथ्वीराज और चंदेलोंकी कटाकटी का वृत्तांत आया उससमय कुछ ठाकुर लोग जिनका कि आपसमें द्वेष था अपने २ शत्रुओंपर तलवार और लाठी लेकर खड़े होगये। मारामारी की भी नौबत आगई थी, जिससे फिर वहां उस रूपमें आल्हखंडको मनाई करदी गई। तीर्थंकरोंके विषयमें भी यही बात है जिससमय उनके गर्भ आदि कल्याणोंका समारोह सामने दीखता है उस समय उपस्थित जनोंको उस साक्षात् घटनाका अनुभव होने लगता है और उसके अनुसार उनके परिणामोंकी निर्मलता स्पष्ट रूपसे नजर पड़ने लगती है। नाटक या प्रतिष्ठा आदिके देखनेवालोंको इस बातका अच्छी तरह अनुभव है। परंतु न मालूम हमारे वकील साहबकी इन धर्मकार्योंकी निंदाकी क्या धुनि सवार होगई है। हां वकील साहब देशकालकी पद्धतिको देखकर यह लिख सकते हैं कि इस समय प्रतिष्ठा आदिकी भरमारकी जरूरत नहीं परंतु 'यह बात सर्वथा फिजूल है ऐसा कभी हुआ ही न था' यह उनकी बात कभी ठीक नहिं मानी जा सकती। क्या वकील साहब सर्वज्ञ हैं? अथवा भगवान ऋषभ देवके जन्मकालसे वे इसी पर्यायमें जिसमें कि आजकल हैं बराबर मौजूद रहे हैं। जिससे उनकी बातपर विश्वास किया जाय? वकील साहब तो ऐसी येतुकी हांक देते हैं मानों सब युग इनके सामनेसे ही गुजरे हैं। हमें नहिं जान पड़ता ऐसे कहनेमें क्यों उन्हें संकोच नहिं होता। ऐसा निडर वक्तापन किस कामका जहां जरा भी बुद्धिका काम न हो। जिन मनुष्योंके हृदयमें ऐहिक सुख ही सुखकी पराकाष्ठा है, विषय भोगोंमें मस्त रहना ही अपने जीवनका सर्वस्व समझते हैं, वे भले ही वकील साहबको अपना अगुआ समझें। किंतु जिनको जरा भी बुद्धि और धार्मिक श्रद्धान है वे कभी वकील साहबकी बातको नहिं मान सकते। गर्भ आदि तीर्थंकरोंके कल्याण इसरूपसे हुए ही नहीं, वकील साहबकी इस ध्वनिसे तो यही प्रतीत होता है कि वकील साहब और चार्वाक-नास्तिकमें कोई भेद नहीं क्योंकि नास्तिक भी अपने आंखों देखी बात मानता है और वकील साहबका भी यही मंतव्य है।

वकील साहब प्रायः इस बातको हर समय लिखते हैं कि इस विषयमें किसी आचार्यके बनाये ग्रंथोंके नाम विद्वान बतावें। इस लेखसे हमें यही प्रतीत होता है कि जिन आचार्योंने गर्भादि कल्याणोंका अपने ग्रंथोंमें उल्लेख किया है, उन समस्त आचार्योंने वकील साहबकी परीक्षा दी थी और वकील साहबने उनको फेल कर दिया था इससे वकील साहब उन्हें आचार्य नहि समझते। क्योंकि वकील साहब इस पर्यायमें अनादि कालीन अजर अमर हैं न!

खैर यदि आप आचार्योंके बनाये ग्रंथों ही की तलाशमें हैं तो आप समंतभद्र आदि आचार्योंको मानते हैं या नहीं? यदि समंतभद्र आचार्यको आप आचार्य मानते हैं तो उनके आप्तमीमांसा—देवागम स्तोत्र जिस पर भगवान अकलंक देवकी बनाई आठसौ श्लोकोंमें अष्टशती टीका है। आचार्य प्रवर विद्यानंदिने अष्टशती पर आठ हजार श्लोकोंमें अष्टसहस्री टीका रची है उसी आप्तमीमांसाके 'देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः' इत्यादि प्रथमश्लोकको विचारिये, और भी आगेके श्लोक देखिये, आपको पता लग जायगा कि

समंत भद्र आचार्यको पंचकल्याणकको विभूति इष्ट थी या अनिष्ट ? जिनेन्द्र भगवान के शरीर आदिके लक्षणोंका जो भी अतिशय शास्त्रोंमें वर्णित है वह उन्हें मान्य था या नहीं? जनावमन्! यहां पर हमने ऐसे एक आचार्यका प्रमाण दिया है कि जिसके वचनोंका आदर दिगंबर ही नहीं श्वेतांबर भी करते हैं और जिसको वचन रचनाको विधर्मी विद्वान भी अपनाते हैं। यदि आप इतनेमें संतोष करलें तो ठीक है जिससे हमें और ग्रंथ न देखने पड़ें। यदि भगवान समंतभद्रको आप आचार्य ही न मानें, अपनी हो हांके चले जावें, तब फिर हांके चले जाइये; कोई आपका मुंह नहि पकड़ता।

इहां पर यह भी समझ लेना चाहिये कि आज कल के जमाने और पहिले जमाने में बहुत बड़ा भारी अंतर है। पहिले का जमाना धन धान्यसे समृद्ध था और आजकल का जमाना दरिद्र प्राय हैं, इसलिये यह सुलभ रूप से अनुमान हो सकता हैं कि पहिले कल्याणकों का समारोह बड़े ठाठ बाट से होता था। तिसपर भी यह और विशेष बात थी कि उस समय साक्षात् तीर्थंकर मौजूद थे और देव आदिके हाथोंमें भी समारोह का कार्य था इसलिये कल्याणकोंका अभाव कहना कभी युक्तियुक्त नहिं हो सकता।

वकील साहबने इस बातपर भी खूब जोर दिया है कि गर्भ अवस्थामें भी वह मूर्ती वीतरागाकार हो रही एवं अन्य अवस्थाओंमें भी वैसी हो रही इसलिये उसके गर्भ आदि संस्कार मानने व्यर्थ हैं। इसके उत्तरमें यह निवेदन है कि कोई प्रतिष्ठाकारकोंके पास ऐसी कल नहिं हैं जो वे हर एक अवस्थामें मूर्तिको तदाकार ढाल सकें। वे तो अपने भावोंसे ही काम लेते हैं। आप कोई ऐसे यंत्रका आविष्कार करें जिससे यह शिकायत न रहे तो ठीक हो किंतु इस बातको झूठ कहनेसे कोई आपकी बातको वैज्ञानिक बात नहिं मान सकता।

आपका मंतव्य तो यह है कि जो तीर्थंकर हों वे एक दम आकाशसे गिर कर बनमें विरागी ही हों तभी आपका शुद्ध निश्चय नयका विषय-सिद्धांत ठीक हो सकता है परंतु यह सृष्टि विरुद्ध कार्य हो नहिं सकता। आप कोई ऐसी तरकीब निकालें जिससे गर्भ आदिके विना भी मनुष्य पैदा हों तब हम आपके मतको युक्तियुक्त मान सकते हैं। बस विशेष हमारा इस विषयमें लिखना व्यर्थ है परंतु वकील साहबसे यह विनयान्वित प्रार्थना है कि जो भी बात वे लिखें कुछ अनुभव कर लिखें। ऊटपटांग लिखनेमें कोई मजा नहीं।

---

१ सत्योदय वर्ष २ अंक १० में उक्त बाबू सूरजभानजी द्वारा लिखित विविध विषयके अंतर्गत 'बीजसे वृक्ष और वृक्षसे बीज उत्पन्न होनेकी व्याप्ति' नामका एक नोट प्रकाशित हुआ है।

सस्यान्यकृष्टपच्यानि यान्यासन् स्थितये नृणां।
प्रायस्तान्यपि कालेन ययुर्विरलतां भुवि। १३१। पर्व १६

अर्थात्—'मनुष्योंको शरीरकी स्थितिके लिये जो विना बोये अपने आप ऊगे हुए धान्य थे वे भी काल के प्रभावसे प्राय: पृथ्वीमें ही नष्ट हो गये हैं' यह जो भगवान ऋषभदेवके सामने अपने दुःखका वर्णन करती हुई प्रजाका वचन आदि पुराणमें लिखा है उसी पर हमारे वकील साहब चौंक पड़े हैं। वकील साहबने लिखा है कि बीजसे वृक्ष और वृक्षसे बीज उत्पन्न हो सकता है; किंतु विना वृक्षके बीज और विना बीज के वृक्ष कभी नहिं हो सकता फिर यह भगवान जिन सेनाचार्यने क्या गजब लिख डाला ? उन्होंने "विना

बोये अपने आप ऊगे हुये' धान्योंका उल्लेख कर तो अनादि सिद्ध एवं सर्व सम्मत नियम पर सर्वथा पानी ही फेर दिया। तथा-इसके सिवाय वकील साहबने यह भी लिखा है कि जो महाशय ईश्वरको सृष्टिका कर्ता हर्ता विधाता मानते हैं वे उपर्युक्त नियमको तो स्वीकार करते हैं किंतु सृष्टिकी आदिमें यह नियम लागू नहिं हो सकता, उस समय कालके माहात्म्यसे विना बीज आदिके भी वृक्ष आदि उत्पन्न हो सकते हैं, वे ऐसा मानते हैं। परंतु उनके इस कथन पर हमारे जैन सिद्धांतके अनुयायी विद्वान यह युक्ति प्रदान कर कि 'विना उपादान आदि कारणोंके कभी कार्य नहि हो सकता, सृष्टिकी आदिमें विना बीजादिकके कभी वृक्षादिक नहिं हो सकते' उनका खंडन करते हैं। आश्चर्यकी बात है जब आदि पुराणमें यह लिखा है कि कर्म भूमिकी आदिमें विना बीजके वृक्ष किंवा विना वृक्षके बीज भी उत्पन्न होता है तब हमारे जैन विद्वान न मालूम क्यों अन्य मतियोंका खंडन करते हैं हमारी (वकील साहबकी) रायसे तो जैन और अन्य मतियोंका समान ही सिद्धांत प्रतीत होता है तथा आदि पुराणका यह कथन अन्य मतियोंके ग्रंथसे सर्वथा मिलता जुलता है अर्थात् अन्य मतियोंके देखा देखी है-बिल्कुल झूठ है।

उत्तरमें निवेदन है कि आपने 'विना बोये अपने आप ऊगे हुए धान्य' इस वाक्यका यह अर्थ कहां और किस गुरुदेवके बलसे जान लिया कि आदि पुराणमें 'विना बीजके वृक्ष और विना वृक्षके बीज भी उत्पन्न होता है' यह लिखा है? बलिहारी!!! महानुभाव! यह आपको मालूम है कि नीव आदि वृक्षोंके नीचे निबोलियोंकी गुठिलियोंके ढेरके ढेर इकट्ठे हो जाते हैं और जिस समय एक महिने वा दो महिने बाद वर्षा होती है उससमय उनसे वृक्ष उत्पन्न हो जाते हैं। वे किसीके बोये हुए नहिं होते और कोई उनको उगानेकी कोशिश भी नहिं करता; इसलिये वहां पर यह बाल गोपाल तक कहते हैं कि ये नीवके वृक्ष विना बोये अपने आप ऊगे हुए हैं। लेकिन वहांपर यह आपके समान कोई कल्पना और अपनी बुद्धिको नहिं दौड़ाता कि ये विना बीजके उत्पन्न हुए हैं। यही अर्थ आदि पुराणके वाक्यका है। हमारी समझमें तो कोई भी उस वाक्यका यह भाव लगा ही नहिं सकता कि विना वृक्षके बीज किंवा विना बीजके वृक्ष उत्पन्न होते हैं, यह आदि पुराणमें लिखा है। महानुभाव! तारीफकी धुनिमें फूलकर; अपनी वासनाओंके पोषणार्थ; घोर अज्ञानसे शास्त्रोंके वाक्यका यह अनर्थ करना; धर्मसे भीतरी द्वेष रखने के सिवाय और क्या कहा जा सकता है?

शायद आपको यह शंका भी होगी कि जब बीज थे ही नहीं तब धान्य ऊगे कहांसे? क्योंकि उस समय बीजोंकी स्थितिका कोई भी साधन न था। परंतु इसका उत्तर यह है कि जिस समय कल्प वृक्ष नष्ट होने लगे उस समय वे जिस जातिके थे उसी जातिके उनके विकार अवश्य पृथ्वीपर फैल गये और उनसे यथा जाति धान्य आदि ऊगने लगे। आदि पुराणमें यह लिखा भी है कि-

विभो! समूलमुच्छिन्नाः पितृकल्पा महांघ्रिपाः।
फलंत्यकृष्टपच्यानि सस्यान्यपि च नाधुना १३७पर्व१६

अर्थात्—हे प्रभो! पिताके समान पालन करनेवाले कल्प वृक्ष सब मूल रहित नष्ट हो चुके हैं और विना बोये जो धान्य ऊगे थे वे भी अब नहीं फलते हैं अर्थात् उनसे अब धान्य उत्पन्न नहिं होते हैं। इससे आचार्य महाराजने स्पष्ट कर दिया है कि जैसे जैसे कल्प वृक्ष नष्ट होते गये उनके विकार धान्य ऊगने

लगे, इसलिये वे धान्य कल्प वृक्षोंके विकाररूप बीजों से ही उत्पन्न सिद्ध होते हैं। बिना बीजके नहीं। मूलमें 'अकृष्ट पच्यानि' यह पद है और उसका वाच्य अर्थ 'बिना बोये अपने आप ऊगकर पके हुए' यह होता है। किंतु बिना बीजके उत्पन्न हुए यह अर्थ तो ध्वनिसे भी नहिं निकलता परंतु वकील साहबने भाषामें लिखे हुए 'अपने आप ऊगे हुए' इस वाक्यपर ही जबरन अड़ बैठकर 'बिना बीजके भी वृक्ष हो जाते हैं, यह अनर्थ अर्थ कर डाला और आदि पुराण एवं उसके कर्ता भगवान जिनसेनको कलंकित करनेका प्रयत्न किया है। यदि वकील साहब संस्कृतके पदकी ओर जरा भी दृष्टि डाल देते तो उन्हें यह अनर्थ अर्थ न सूझता। परंतु संस्कृत भाषाका उतना ज्ञान और मग-जको उतनी तकलीफ देनी हो तब न ? वकील साहब ने जो 'अकृष्ट पच्यानि' इस पदका अर्थ किया है उससे वे अपनी संस्कृत भाषाकी विज्ञता समझलें। और वे तथा संस्कृत भाषा ज्ञानसे कोरे उनके अनुयायी जो यह डींग हांकते हैं कि—"संस्कृत भाषाके अभ्यास किये बिना भी शास्त्रोंपर अपनी राय पेश कर सकते हैं" वे वकील साहबके संस्कृत भाषाके पांडित्यकी ओर निहार कर कमसे कम अपने हाथोंसे ही अपना मुह ढांकनेकी कोशिश करें। वकील साहब ! आचार्य महा-राजको इस बातका पता न था कि आप सरीखे चम त्कारिणी बुद्धिके धारक भी मनुष्य उत्पन्न होंगे जो मेरे वचनोंको न समझ कर अर्थ का अनर्थ कर डालेंगे नहिं तो वे और भी सरल शब्दोंमें अपने वाक्योंका उल्लेख करते।

शायद आपको यह संदेह और सतायेगा कि जब धान्योंका फलना बंद होगया तब उनके बीज कहांसे आये ! तो उसका समाधान यह है कि उनके फल नेकी एक दम ही नास्ति नहिं होगई थी नहिं तो सब लोग ही मर जाते किंतु कर्म भूमिके कालके प्रभावसे स्वभावतः उनका फलना कुछ कम हो गया था इसलिये प्रजाको चिंता होगई थी। तथा यह भी एक बात है जब चीज अधिक फलती है तब वह जमीन पर गिर जाती है और जिस समय उनको उत्पत्तिके योग्य हवा पानी आदि सामग्री प्राप्त हो जाती है तो वह उगने लगती है। उस समयके जीवोंको पानी आदि-का जरा भी ज्ञान न था, इसलिये भगवान ऋषभदेवने उनको उसकी तरकीब बतला दी थी। इसलिये आदि पुराणकी पंक्तियोंको न समझ कर जो आपने अर्थका अनर्थ किया है वह—, धर्मसे घृणा पक्षपात और घोर अज्ञानका ही कार्य है। इस बातको हम ही नहिं कहते. किंतु निष्पक्ष विद्वानोंके सामने भी आदि पुराणकी पंक्ति और आपका समझा भाव रखते हैं वे भी वि-चार लें कि वकील साहब कितने भारी विद्वान हैं और जैन धर्म पर उनकी कितनी श्रद्धा है।

हमें आश्चर्य होता है कि पंडित समाजके किसी व्यक्तिसे ऐसी गलती: जो गलती नहिं कहा जा सकती और उसके हो जाने से सम्यक्त्व आदिकमें कोई क्षति नहिं पहुंच सकती, उसपर तो कुछ मन चले बाबू लोग अपनी कषाय वासनाको दबानेमें असमर्थ हो कर: कलम तोड़ डालते हैं और अपनेको अभिमानके सिंहासन पर बैठा हुआ अनुभव कर; उस विद्वानको एक दम मूर्ख समझ लेते हैं। परंतु स्वयं तीव्र अज्ञान और अपनी कषाय वासनामें लिथड़ कर शास्त्रोंकी पंक्ति-योंको हड़प जाते हैं। कुछका कुछ अर्थ कर डालते हैं तिसपर भी अपने निडर वकापना और विद्वताकी शान चमकाते हैं। क्या उन्हें अपने दुष्कर्म पर पश्चात्ताप नहिं होता ? हाय रे अज्ञान !!!

विविध विषयके अंतर्गत वकील साहबने श्रृंगा-रस इस विषयपर भी नोट किया है। तथा पद्मनंदि पंचविंशतिकाके उन श्लोकोंको उद्धृत किया है जिनमें श्रृंगाररसका सर्वथा निषेध किया गया है और उसे हेय बतलाया है। वकील साहबने अपनी ओरसे इस विषयपर कुछ टीका टिप्पण नहि किया तथापि उनकी उद्धृतिसे यह मालूम पड़ता है कि-जब श्रृंगार रसको इतना बुरा माना है, तब शास्त्रोंमें उसकी कोई जरूरत नहीं तथा जिन शास्त्रोंमें उसका वर्णन है वे शास्त्र नहीं। इस विषयमें हम भी कुछ नहिं लिखते, सिर्फ इतना निवेदन करें देते हैं कि-वास्तवमें श्रृंगार रस हेय है और हेयत्वेन ही ग्रंथकारोंने उसका उल्लेख किया है। परंतु आदिम अवस्था जहांपर जैन कथाओंके पढनेका लोगोंको शौक ही नहि होता वहांपर उसका कुछ उल्लेख किया गया है वह दोषावह नहीं। तत्त्वज्ञान हो जानेपर श्रृंगाररसको और ध्यान ही नहि जाता। तत्त्वज्ञानी श्रृंगाररसको सर्वथा अयुक्त समझते हैं। पद्मनंदि पंचविंशतिकामें भी तत्त्वज्ञान हो जानेके बाद श्रृंगाररसको हेय माना है। इसलिये जरा प्रकरण और ग्रंथके भावको देखकर आप कुछ लिखा करें। वृथा समय व्यतीत करना अयुक्त है। आप तो ऐसा मामला उपस्थित कर देते हैं कि— बालक जरा मीठेके साथ कड़वी दवा खाते हैं और बडे कड़वी ही दवा खालेते हैं, वहांपर यह कहना कि बालकोंको केवल कड़वी ही दवा खानी चाहिये मीठेके साथ नहीं। धन्यभाग!!!

विविध विषयके अंतर्गत 'देवी देवताओं आदिका पूजन' एक यह भी नोट निकला है। वकील साहबने जो यह उल्लेख किया कि— यक्ष आदिको अपनी मनोरथ सिद्धिका सर्वथा पूर्ण करने वाला समझ लोग उनको भक्ति भाव और विशुद्ध सामग्रीसे पूजन करते हैं यह अन्याय है। हम भी वकील साहबके इस सिद्धांतसे सहमत हैं और वास्तवमें अज्ञानी लोग जो देवी देवताओंका इस प्रकार उच्च समझ कर उनको परमदेव मानते हैं यह उनका अज्ञान है। परंतु वकील साहबके लेखसे जो यह बात प्रकट होती है कि उनको सर्वथा मानना ही न चाहिये यह ठीक नहीं उनका उनकी योग्यताके अनुसार अवश्य सत्कार होना चाहिये। यह हम प्रत्यक्ष देखते हैं जो पुरुष गांवका स्वामी भी होता है, उसका भी हमें परिपूर्ण सत्कार करना पड़ता है और 'आपही मालिक हैं इत्यादि चाटु' वाक्य उसके सामने कहने पड़ते हैं। उसके साथके ५) रुपयेके वेतन भोगी सिपाहीके भी कभी कभी हाथ जोड़ने पड़ते हैं। तब जो देव गण सम्यग्दृष्टि हैं, जिनेंद्रके सेवक हैं और रागद्वेषके धारक होनेसे जिनसे कुछ विघ्न उपस्थित होजानेकी भी संभावना है उनका सत्कार अवश्य होना ही चाहिये, यही शास्त्रोंका तात्पर्य है। प्रतिष्ठा सारादि ग्रंथोंमें भी प्रायः यही उल्लेख है कि अमुककार्यमें आने वाले विघ्नकी शांतिके लिये मैं अमुक देवका पूजन सत्कार करता हूं' इसलिये किसी मंदिर आदि कार्यके बनाते समय वहांके निवासी देवोंका सत्कार न करना, यह कहांका न्याय है? हां जो लोग यक्षादिकको अपना सुख दुःखका कर्ता हर्ता समझ उन्होंको देव सर्वस्व मान लेते हैं, यह उनका पूर्ण अज्ञान है।

विविधविषयके अंतर्गत वकील साहबने 'कृष्ण कन्हैयाका बालपन शीर्षक दो अंकोंमें समाप्त होनेवाला एक लेख और लिखा है। वकील साहबकी बुद्धिमें यह

बात अटलरूपसे जम गई है कि जो कुछ भी जैनग्रंथोंमें कथा भाग है, प्रायः वह सब हिंदू धर्मसे लिया गया है। इसलिये अष्टम नारायण कृष्णने जो भी कार्य किये हैं वे संभव हैं तथापि हिंदुधर्ममें वर्णन किये गये कार्यों के समान उन्हें वकील साहबने सर्वथा असंभव मान लिया है। हम पहिले लिख भी चुके हैं कि-कर्मोंको क्षयोपशम शक्ति सबकी समान नहि होती। यह अक्सर कर देखनेमें आता है कि कोई २ बालक अपनी छोटी उम्रमें ही तेजस्वी और बुद्धिमान दीखता हैं और ऐसा बुद्धिमान कि बडे लोग भी उसके सामने दांतों तले उंगली दबाते हैं। किंतु दूसरा बालक सर्वथा उसके सामने मिट्टी जान पड़ता है। कृष्ण अष्टम नारायण थे, और महापुरुषोंके संरक्षक और सेवक: देव रहा ही करते हैं यह आस्तिक सम्मत. बात हैं, तब कृष्णके कृत्योंको असंभवित कृत्य कहना न मालूम वकील साहबका किस विचित्र अनुभवकी छटा छटकाना है। हम समयाभावसे उनकी लिखी हुई बातोंका उल्लेख और खंडन नहि करना चाहते और न उसके उल्लेख और खंडनसे कोई सार वा जैन धर्मके महत्त्वका घटना बढना ही हो सकता हैं क्योंकि ऐसी बातें ऐसी ही समझी आती है जैसे कि-विधर्मी धर्म द्वेषी मनुष्य यह कहा करते कि-'जैनी लोग नंगेको पूजते हैं उससे क्या मिल सकता है इत्यादि। किंतु हम वकील साहबसे यह नम्र निवेदन करते हैं कि वे कृपाकर ऐसी अविचारित रम्य बातोंके लिये विचारी लेखनीको न घिसा करें और कागजोंको वृथा काला न किया करें। किंतु जरा अपनी बुद्धिको विचारके लिये तकलीफ दे दिया करें क्योंकि ऐसी बातोंसे विधर्मी विद्वान आपकी लेखनीसे सिवाय हंसीके और कुछ तत्त्वज्ञान नहिं प्राप्त कर सकते। संसारके मनुष्योंके स्वभाविक कार्यों पर आप ध्यान दीजिये तब आपको पता लगेगा, कि कोई कोई व्यक्ति ऐसे हैं; जिनके कार्य सर्वथा सुननेसे तो असंभव मालूम पड़ते हैं परंतु आंखसे देखने पर वह असंभवता न मालूम कहां विदा हो जाती है। यह आंखसे देखा गया है कि प्रोफेसर मनहर वर्वेकी उम्र बहुत छोटी है। वह सातही वर्षका हर एक प्रकारके गाने जानता है। हर एक बाजेको बडे ही चातुर्यसे बजाता है। जो लोग गान विद्यामें बुड्ढे हो चुके हैं उनके दोष निकालता है। कहिये वकील साहब! यह आश्चर्यकारी बात नहीं? प्रोफेसर मनहर वर्वेके रक्षक तो कोई देव भी नहीं किंतु सिवाय क्षयोपशमकी तीव्रताके और कोई भी कारण प्रतीत नहि होता। यदि प्रोफेसर मनहर वर्वेकी यह १०० २०० वर्षकी पुरानी बात होती तो आप सरीखे मनुष्योंको इस बातको भी असंभव कह डालनेमें जरा भी संकोच नहि होता। तिसपर भी जब धर्म शास्त्रकी बातोंपर और महापुरुषोंकी बातोंपर इस कदर शंकाओंका ढेर है तब प्रोफेसर मनहर वर्वेकी बात आपके मस्तिष्कमें कभी संभव होनेका सौभाग्य प्राप्त कर ही नहीं सकती थी।

यदि आपको उक्त प्रोफेसरके कार्य असंभव मालूम होते हों तो कृपया उसे आखोंसे देखनेका कष्ट उठाइए। आपके चर्म चक्षु उक्त प्रोफेसरके कार्यको अच्छी तरह देख सकते हैं परंतु महापुरुष कृष्णको और उनकी चेष्टाओंको वे नहिं देख सकते।

महानुभाव! देव सेवित महापुरुष कृष्णकी कार्य शृंखलाको कृपया आप 'आस्तिक्यको हृदयमें धारण कर' विचारिये। आपको खुद बखुद कोई शंका न उठेगी क्योंकि कोई विद्वान आपके समान वृथा कालम कालेकर समझावेगा तो उसका प्रयत्न व्यर्थ

हो आयगा । आप अपनी ही हांकेंगे, कभी उसको न सुने'गे । यह आपको मालूम होगा कि-यद्यपि है तो यही ठीक कि-दो और दो चार होते हैं परंतु जो मनुष्य हठी होनेके कारण इस बातको स्वीकार नहि करता, तो चाहे उसे कितना भी समझाया जाय: वह कभी भी सत्यबातको ग्रहण नहि करेगा. अस्तु ।

सत्योदयमें सत्यभक्त संदिग्ध सत्यार्थी आदि बनावटी नामोंसे भी लेख निकलते हैं। इन महाशयोंकी शंकाए साफ इसवातमें प्रमाण हैं कि इन्होंने मनन पूर्वक जैनशास्त्रोंका अवलोकन नहि किया। आजकल जब कि कुछ पाश्चात्य विद्याके विद्वानोंने यह मोटो गढ लिया है कि-- अपने स्वतंत्र विचार प्रकट करनेका सबको अधिकार है तथा उनको कार्यशैलीमे यह बात भी अब अच्छी तरह जच चुकी है कि चाहे संबद्ध हो चाहे असंबद्ध, जो जितना अधिक प्रलाप करने और लिखने वाला होता है वही निडर वक्त और आज कलके जमानेमें विद्वान गिना जाता है शायद इसी भावनासे हमारे उक्त नाम धारियोंके हृदयोंमें निडर वक्तापना और विद्वान बननेकी भावना उमड़ पड़ी है। भला इस बातका कुछ ठिकाना हैं कि आचार्यों के एक वाक्यका भी तात्पर्य समझनेकी तो योग्यता न रखना और उनकी योग्यताकी समीक्षा कर डालना ! कृपाकर पाठक ! इन महाशयोंके प्रश्नोंको निष्पक्ष दृष्टिसे वांचकर इस बातकी जांच करें कि जितने ये लिखनेमें शूर हैं उतनी इनमें विद्वत्ता है या नहीं। हमारे परम माननीय बाबू चंपतरायजी वैरिस्टर हरदोईने कुछ महाशयों के प्रश्नोंके उत्तर रूपमें जो लेख जैनमित्र आदिमें प्रकाशित किये हैं, पाठक उन्हें पढें और विचार करें कि पाश्चात्य विद्याके दुर्धष भी विद्वान किंतु अहोरात्र जैन शास्त्रोंके मनन करने एवं उसकी खुबसूरतीको पहिचानने वाले उक्त महानुभावको जैन धर्मपर कितनी प्रगाढ भक्ति है ? और वृथा जैन धर्मपर आक्षेप करने वाले महाशयोंके प्रश्नोंके उत्तरमें उन्होंने जैन धर्मको निंदासे उत्पन्न होनेवाले दुःखसे मिश्रित किंतु विद्वत्ता पूर्ण अपने लेखोंमें कैसे वचनोंका प्रयोग किया है ?

इसी तरह परमसज्जन धर्मात्मा बाबू ऋषभदासजी वकील मेरठने जो विधवा विवाह स्त्री मुक्ति आदि निंदित बातोंके खंडन स्वरूप लेख जैनमित्र आदिमें प्रकाशित किये हैं और यथावसर जैन शास्त्रोंका स्वाध्याय मनन किया करते हैं। जैन धर्मपर उनकी कैसी प्रगाढ श्रद्धा और भक्ति है? इस बात पर भी पाठक पूर्ण ध्यान दें।

वास्तवमें तो यही बात सत्य है जो मनुष्य कदाग्रह और सुघडवडाईके जालमें न फसकर तत्त्व बुभुत्सासे जैन शास्त्रोंका अवलोकन करता है उसे कभी उसके अंदर दोष नहि दीख पडते किंतु जो मनुष्य तत्त्वबुभुत्सासे संबंध नहि रखते, न च प्रवृत्ति और कदाग्रहसे अपनी उन्नति मानते हैं वे जो कुछ कहें थोड़ा है। उनका कौन क्या कर सकता है ! हमारा वकील साहब और उनके सहधर्मियोंसे यह नम्र निवेदन है कि वे पंडितोंकी बातको निकम्मी समझे। उनकी प्रकृति और प्रवृत्तिका अनुसरण न करें किंतु कमसे कम उक्त वैरिस्टर महानुभाव और वकील महानुभावकी प्रकृति और प्रवृत्तिका तो अनुसरण करैं ही।

हमें विश्वास है कि यदि वकील साहब और उनके सहयोगी इन महाशयोंके समान जरा भी जैन शास्त्रोंको निष्पक्ष बुद्धिसे मनन और परिशीलन करेंगे तो उन्हे ऐसी ऊटपटांग बाते न सूझेगी और उनको

लेखकोंने जो धर्मात्मा जैन समाजका व्यर्थ हृदय दुःखित होना है वह न होगा। क्योंकि वकील साहबने प्रायः यहा विशेष मनन किया है कि 'यह कैसे हो गया ? आचार्योंने ऐसा कैसे लिख दिया ?' इत्यादि, जिससे कि कोई तरह विचारणा को संभावना नहिं को जा सकती।

परमात्मा ।

किन्हें ! परमात्मा ऐ मित्र ! सच्चे मनसे मानै हम ।
परस्पर भिन्न सब मतके हैं किसको सत्य जानै हम ॥
महा अंधेर है यदि इस विषयमें भूलकर बैठे ।
यही उत्तम, अगर निष्पक्ष हो अब भी विचारै हम ॥
हँसी आती है ईसाकी कहानी सुनके, ऐ यारो !
किसी इन्सानके बालिदको कैसे ! ईश मानै हम ॥ ३ ॥
जो चढवाता हो अपनी भेंट अपने ही निबल सुतको ।
दयामय और करुणानिधि उसे किस भांति ! जानें हम ॥
फरिश्ते जिसके हों सेवक, जो शैतांसे भी डरता हो ।
किसीके कुरवकाको न 'जाते पाक' माने हम ॥ ५ ॥
शिरको गिरि व बामी कंठको कहना नहीं वाजिव ।
भरत कारण, सिरेशंकरसे गंगोत्पति मानै हम ? ॥ ६ ॥
त्रिशूलादिक जो रखते हैं वे शंकर कामके किंकर ।
उन्हें निर्भय व स्वामी कौनसे मुहसे ! बतावैं हम ॥
जो मानै विश्वव्यापी, ईशको, करता तथा हरता ।
तो चल फिरकर कुचलकर क्यों ! सतावैं क्यों ! घिनावैं हम ८।
जो देता दूसरोंको कर्मका फल परवरी खुद हैं ।
तो स्वेच्छाचार--करताको, भला न्याय: बतावैं हम ! ॥
करता कर्मके कैदी हो होते हैं सभी दोषी ।
महा अज्ञान है उसको अगर निरदोष मानें हम ॥१०॥
हरे हरि ! हरि न हरता बुद्धिको स्वीकार होता है ।
बहुत अच्छा हो भ्रम तजि शक्ति अपनी यदि विचारैं हम
हमारी आत्माओंमें छुपा हैं शक्तियां सारी ।
बनें ईश्वर हमी, यदि कर्म सारे अब खिपावैं हम ॥१२॥
नजर आती है श्रेणी तीन आतमकी, सुनो चितला ।
बहिर अंतर व परमातमको परिभाषा बनावैं हम ॥१३॥
शरीरो जीवको जो एक ही गिनते, हैं बहिरातम ।
अन्तरातम तथा गिनते पृथक बिल्कुल न हैं या हम ॥१४॥
वही करिनाश कर्मोंका हैं होते मुक्त भवदुखसे ।
उन्हें परमात्मा, क्यों कर न सच्चे मनसे मानें हम ॥१५
वेही सर्वज्ञ सुख सागर कहाते शंकरोब्रम्हा ।
उन्हीको सच्चे दिलसे 'भारतिय' सिरको झुकावैं हमे १६

बगुला ।

अरे बगुला ! मत मनमें फूल ॥ टेक ॥

दीन मीनको नील भगतमति बनहु समय अनुकूल । अब समझते भोले भाले तव तपका प्रतिकूल ॥ १ ॥
जो तुझ तक आती हैं, भ्रममें पडि अरु मनमें फूल । उनका जीवन नष्ट करत तू डालि प्रेम पर धूल ॥ २ ॥
जलमें तपत अरे पाखंडो ! मत मल बदन त्रिशूल । 'भारतीय' यह भींति टिकै कब ? बालू जिसकी मूल ॥

---

१ सनातनधर्मवालोंकी ¹)॥ में मिलनेवाली पुस्तकसे इस की कच्ची पोल भलीभांति ज्ञात होगी

पद्मावतीपरिषद्के अष्टम वार्षिक अधिवेशनके सभापति मुंशी वंशीधरजीका संक्षिप्त जीवन परिचय।

(लेखक पं० संतलालजी जैन, जैनपाठशाला—फीरोजाबाद ।)

प्रायः संसारमें जन्म धारण करके सबही मृत्यु कवलित होते हैं। परन्तु संसारमें उन्हींका जन्म लेना सफल है, जो स्वार्थकी बहुलताका परित्याग कर परोपकारमें दत्तचित्त रह सर्व प्रिय हो मरनेके पश्चात् अपना सुयश छोड़ जाते हैं। अभी संसार ऐसे सुव्यक्तियोंसे नितान्त शून्य नहीं, शतोंमें नहीं परन्तु सहस्रों में एकादि निकल ही आते हैं। आज हम परोपकारी एवं अपनी गाढ़ कमाईको जाति के हित सहर्ष उत्सर्ग करने वाले एक महानुभाव का जीवन वृत्तान्त आपके कर्णगत कराने के लिये प्रस्तुत हैं,—जिसे पढ़कर जैन जनता उक्त महोदयके शुभकार्योंसे परिचित हो एवं उनके अनुकरण करनेका सौभाग्य प्राप्त करे।

जिन महाशयके सबंधमें कुछ लिखना है उन महाशय का नाम मुंशी वंशीधरजी है। मुंशी वंशीधर जी मास्टरका जन्म मिती अगहन सुदी १ सं १९१४ विक्रमी अर्थात् ता० ३ दिसम्बर सन् १८५७ ई० में मुकाम छोटी अरानी तहसील जलेसर जिला एटामें हुआ था। आपकी बुद्धि प्रखरता प्रतिभातीव्रता इतनी थी कि अल्प समयही में विद्यामें प्रवीणता और विचक्षणता प्रकट करने लगे। इनके पूज्य पिता श्रीयुत लाला अकबर लालजीने सन् १८५७ ई० के विप्लव कारियोंके विप्लव और उपद्रवसे भयभीत हो अपने निवास स्थान छोटी आरानीका परित्याग कर दिया और मौजा नगला सिकंदर तहसील फीरोजाबाद जिला आगरा जहां कि उनकी श्वसुराल थी वहां रहने लगे। उक्त मास्टर साहबने यहां आठ वर्षकी अवस्थामें ही विद्याध्ययन आरंभ किया। सन् १८७२ ई० में अपने परिश्रम का प्रतिफल स्वरूप हिन्दीका मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की अच्छे नम्बरोंसे उत्तीर्ण होनेके कारण गवर्नमेन्टने छात्र वृत्ति देकर उन्हें रुड़कीके स्कूलमें पढ़नेके लिये भेजना चाहा परन्तु मोहकी तीव्रता होनेके कारण उनकी माताने मास्टर साहबको पढ़नेके लिये न जाने दिया, नहीं तो उक्त व्यक्ति न जाने कितनी विद्या प्राप्त करते। वे पिताके आग्रहसे दूकान करने लगे किंतु दूकान करते हुए भी अध्ययन करनेमें उन्होंने शिथिलता न की। वे बराबर यावनी भाषा और वैद्यकका अभ्यास करते रहे और उसमें निष्णात होगये। अगस्त सन् १८७६ ई० में मौजा महुआ तहसील बाह जिला आगरेमें हैडमास्टरी पर नियुक्त हुये। वहांसे प्राइवेट योग्यता कर अदना व आला दर्जा नौर्मल स्कूल पास किया। पुनः परिवर्तित होकर जनवरी सन् १८८२ ई० को होलीपुरामें मिडिल स्कूलमें मुख्याध्यापकी पर आरूढ़ हुए। वहां वेंच पोस्टमास्टरीका काम किया। और अपने गाढ़ परिश्रमसे उन्नति पर उन्नति प्राप्त करते रहे। पश्चात् तहसीली स्कूल बाहमें मुख्याध्यापकी की, वहां २६ साल रहकर जौलाई सन् १९१४ ई० में टाऊन स्कूल के हैडमास्टर हो आप फीरोजाबाद आगये। आजकल भी आप फीरोजाबाद ही में हैं। यहां आपके परिश्रमसे सर्व शिक्षा विभागके लघु दीर्घ निरीक्षक नितान्त प्रसन्न रहते हैं। आपके पाठन और प्रबंध पर

हर्ष प्रगट करते हैं । आपकी सदाचारिता, मृदुता और सरलता पर सर्व फीरोजाबादी जनता प्रसन्न है । आप एक खासे वैद्य और दीन दुखियोंको चिकित्सा करने में अद्वितीय हितकारी असाधारण बन्धु हैं । बाहमें एक जैन औषधालय खोल रक्खा था जिसमें निज पाकटसे औषधी बना बना कर बीमारोंको आप स्वास्थ्य प्रदान करते थे । अमीर-गरीब-हिंदू और मुसलमान सब आपके स्वभाव और मिलनसारीको गुणमाला गाते थे । यद्यपि आजकल आप फीरोजाबादमें ही अपना हितवर्षण कर रहे हैं परन्तु बाह वालोंके लिये अब भी वैसेही प्रातः स्मरणीय प्रेम पात्र बने हुए हैं । आपकी रची हुई भौगोलिक और गणित सम्बन्धी कतिपय पुस्तकोंने स्कूलोंके असंख्य पाठक और पाठ्योंको लाभ पहुंचाया है। आपने अध्यापकीके साथ सूत व सर्राफाका काम और कपड़ा बुननेके करघोंका कारखाना खोलकर भी धन संग्रह किया है । आपके तीन पुत्र और दो पुत्री उत्पन्न हुई थी । आपकी अर्द्धांगिनीका और पुत्र पुत्रियोंका देहावसान हो जानेके कारण आपके चित्तमें विरागता और उदासीनताका अंकुर चिरकालहीसे अंकुरित हो रहा था परन्तु अपनी अंतिम पुत्री धनवंतीबाई जिसकी उम्र बास वर्षकी थी क्षय रोगसे मृत्यु कवलित होजानेके कारण आपके परिणाम बिलकुल विरक्त हो गये। आपकी स्त्रीका १९६४ वि० में और श्रीमती धनवंती पुत्रीका वैसाख सं० १९७६ वि० में शरीर पात हुआ था । आप जैनपाठशाला फीरोजाबादके निरीक्षण और आवश्यकीय सहायक होनेमें सर्वदा सहर्ष अग्रसर रहते हैं । आपकी आय इस समय स्थित रूपसे ८०) रु० मासिक है । आपने अपनी संचित द्रव्यका व्यय भी सुबुद्धि पूर्वक कर दिया और करनेके लिये प्रयत्न शील रहते हैं । आपने ५२५) रु० और उनकी पुत्री धनवंतीने अपने मरण समय ५०१) रु० विद्यादानके लिये वितरण किये हैं और उसी विद्यादान के लिये ११) रु० मासिक आमदनीकी जायदाद जो एत्मादपुरमें स्थित है रजिस्ट्री करादी है जो पहले अंकमें प्रकाशित हो चुकी है ।

फीरोजाबादकी पाठशालामें प्रविष्ट होकर पढ़ने वाले विद्यार्थियोंको २) रु० ॥) आना महीनेकी छात्र वृत्ति देनेका आश्विन वदी ९ सं० १९७६ वि० से मन्तव्य प्रकट कर दिया है । इस द्रव्य सूचीका विवरण पद्मावती परिषदके मासिक पत्रके पूर्वांकमें मुद्रित हो चुका है । आपकी धर्ममें और धर्मात्माओंमें गाढ़ भक्ति है । जैन जातिकी विशेषतः पद्मावती पुरवाल जातिकी उन्नति पर आपका विशेष ध्यान है । ऐसे सुज्ञ व्यक्ति इस धरातल पर विशेष रूपसे जन्म धारण करें । और चिरकालतक अवस्थित रहें ऐसी हमारी प्रार्थना है ।

शिक्षा ।

(लेखक पं० दरबारीलाल जैन न्यायतीर्थ,)

यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि कोई भी समाज अब ही उन्नत होता है जब कि उसके अंगस्वरूप युवक शिक्षित होते हैं । हम यह नहीं कहते कि ज्ञान ही समाजोन्नति कर डालता है । किन्तु ज्ञान समाजोन्नतिमें एक मुख्य साधन है । इसलिये प्रत्येक देश व समाजको शिक्षा उतनी ही आवश्यक है, जितनी कि प्राणियोंको प्राण की चाह, परन्तु वह शिक्षा देशकालके योग्य होनी चाहिये "जैसे वहै बयारि पीठ पुन तैसहि दीजै" पुराना समय ऐसा था जब कि लोगोंको आजीविकाकी चिन्ता बहुत कम रहती थी विद्वानोंके

भोजनोंकी चिन्ता अन्य जनताको रहती थी किन्तु समयने पल्टा खाया अब तो मूर्ख हो या विद्वान् जो करेगा सो खायगा नहीं तो हाथ मलते रह जायगा—

अतः प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है कि वह अपनी सन्तानको इस तरहसे शिक्षित बनावे जिससे वे समयकी चालके साथ चल सकें।

बहुतसे लोग सन्तानको उन्नत बनानेके लिये इंगलिश शिक्षा शिक्षित करते हैं किन्तु अन्तमें उसका यही फल देखा गया है कि–वे छात्र क्लासोंमें लुढ़कते लुढ़कते करीब एक युग बीतने पर बड़ी कठिनतासे मेट्रिक पास होकर दफ्तरोंके द्वार छानते फिरते हैं। जो कोई किसी तरहसे उपाधि प्राप्त कर लेते हैं उनके हृदय भी गजभुक्त कपित्थकी तरह धार्मिक ज्ञान शून्य होनेके कारण उस शान्ति सुखसे वञ्चित रहते हैं जिसका कि सम्बन्ध आत्मासे है। मैं इस बातको नहीं कहता कि इंगलिश शिक्षा ग्रहण ही न करना चाहिये, करो, मनमाना करो, किन्तु अपने हृदयको उसी रंगसे मत रंग डालो—हृदयका आधेसे भी अधिक भाग धर्मके लिये रक्खो। सम्भव है कि–इससे बहुत से महाशय यह समझे हों कि संतानको संस्कृतके सूत्र रटाना चाहिये। किन्तु ऐसा करनेसे भी मनुष्य बहुत निकम्मा रहता है। जिनका दिमाग सूत्रोंको रट रटकर सड़सा गया है भला वे क्या जातिकी उन्नति करेंगे? उनकोतो अपना ही सम्हालना कठिन हो जायगा। तब भी बहुत लोग पूछेंगे कि–उनको आप क्या हिन्दीके सवैया रटवाना चाहते हैं? नहीं नहीं। ऐसी भी शिक्षा उनको मनुष्य जीवनमें जीवित नहीं रख सकी। इस भाट वृत्तिसे जीवनमें भारी कठिनता झेलनी पड़ेगी। इसलिये शिक्षा ऐसी हो जिससे मनुष्य अपने जीवनको आनन्द पूर्वक बिताकर समाजके हितमें भी अग्रसर हो सके।

जिस तरह जल मसाला और ईंटा इन चीजोंके मिलनेसे मकान बनता है, यदि कोई केवल जलसे ईंटसे व केवल मसालेसे मकान बनाना चाहे हो उसका प्रयत्न विफल जायगा, उसी तरह जब तक मनुष्यके हृदयमें धार्मिक शिक्षा अपनी मातृभाषा हिन्दी तथा इंगलिशका अस्तित्व नहीं है तब तक मनुष्य शिक्षित नहीं हो सकता; अतः प्यारे जाति नेताओ! छात्रोंको ऐसी धर्म शिक्षाका प्रबन्ध करो जिससे उनके रोम रोममें धार्मिक भाव झलकें। वे अपनी मातृ भाषाकी सेवाका आदर करें। आगे संसारमें उसका महत्व फैलावें, तथा उनको ऐसे बुद्धिमान और कार्य चतुर बनाना चाहिये जिससे उन्हें दो रोटियोंके लिये किसीका मुख न ताकना पड़े। मैं मानता हूं कि आप लोगोंने इस तरफ ध्यान दिया है और बहुतसे विद्यालय भी स्थापित किये हैं, किन्तु उनपर कितनी दृष्टि आपकी है? यह बात आप अपने हृदयसे पूछ सकते हैं।

जरा नेत्र उघाड़िये देखिये बहुतसी पाठशालाएं ऐसी हैं जहांपर योग्य अध्यापकोंकी आवश्यकता है परन्तु मिलते नहीं, इसका कारण क्या है? कारण यही है कि संस्थाएं काम करनेमें बहुत पीछे हैं, किन्तु संस्था कोई खास सूरत शकल वाली औरत नहीं है जिससे वह आपके मनोनुकूल चले। आप लोग शिक्षा पर ध्यान दीजिये आपको कई एक संस्थाएं ऐसी मिलेंगी जो मनुष्यको मनुष्यत्व प्राप्त करानेके लिये धार्मिक शिक्षा आवश्यकही नहीं समझतीं। समाजके नेताओ! आप उन छात्रोंका क्या करेंगे जो "इकोयणचि" का रटना, अंग्रेजी के शब्दों का बोलना जानते हैं तथा जिनका विद्या पढ़ना केवल आजीविकाके ही निमित्त है कृपाकर इनके साध्य विद्याकी अपेक्षा साधन विद्या पर लक्ष्य दीजिये। इंगलिश न्याय व्याकरणके साथ

उनको आत्मज्ञान प्राप्तिका पूर्ण प्रबंध कर दीजिये, तथा उनको देश कालका ज्ञान कराइये। व्यवहार चतुर बनाइये। उनके हृदय ऐसे बनाइये जिससे दीन हीन जीवोंके सामने मोम हो जावें और धर्म द्वेषीके निकट इन्द्रका वज्र होकर अधर्मका लोप करें।"

जब तक इस ओर संस्थाओंके कार्य कर्ता तथा जातिके नेता लोगोंका ध्यान नहीं जावेगा तब तक वास्तविक विद्वानोंकी समाजमें कमी बनी रहेगी।

आप लोग संस्थाओंकी रुपयोंसे ही सहायता न करें किंतु तन मन वचनका भी उपयोग करना आपका कर्तव्य है।

बहुतसे महाशयोंकी छात्रोंके ऊपर उपेक्षा रहती है किंतु यह एक बड़ी भारी भूल है। आप यह न समझिये "कि ये छात्र इसी अवस्थामें पड़े रहेंगे और इनसे समाजको कुछ लाभ न होगा" किंतु एक दिन वह आवेगा जब येही छात्र समाजके स्तंभ होंगे आपको और आपके धर्मको डूबनेसे बचांयगे। भगवान अकलंक भी छात्र थे किन्तु यह कौन जानता था कि इसी छात्रके द्वारा बौद्धमेघ पटल उमड़ेगा? किन्तु थोड़े ही समय बाद उसी वीर छात्रने जैन धर्मका उद्योत कर डाला। सच पूंछिये तो हम आजतक उसीकी कृपासे जीवित हैं नहीं तो अभीतक हम कभीके रसातल चले गये होते। लेकिन ये सब बातें तब ही कह सकते हैं जबकि आप छात्रोंको देशकालके अनुसार शिक्षा देवें।

चन्द्रमा।

(लेखक 'भारतीय' जारखी।)

अहो चन्द्र! तुम फूलि रहो हो खूब गगनमें।
हेतु? दिवाकर नहीं दीखते आज सदनमें॥
छुपे, देखि संसार—ताप धरि करुणा मनमें।
सरोज सकुचे बढ़ा तिमिर जगमें बन २ में॥
ऐसे संकटके समय, तुम सजि धजि आगे बढ़े।
क्यों दिनकरके सामने हे शशि! इतने नहिं चढ़े?॥ १॥

ठीक; सदा शठ कायर पीछे जोर जनाते।
पर सन्मुख मृदुबात बना छिपकर भगजाते॥
हे शशि! क्यों सज्जन चकवाकी शोक बढ़ाते।
क्यों भोले भालोंको बनि निर्मल बहकाते॥
मूर्ख भले ही फंस रहे तेरे माया जालमें।
किन्तु सुजन सब देखते कलंक-टीका भालमें॥ २॥

निस्संदेह सुशीला तेरी प्रिया चांदनी।
धन्य भाग्य है मिली तुझे गुणवती भामिनी॥
चोरोंको दुखकर, अरु साहोंको सुखकारी।
कलंक तेरा छिपा रही है तेरी प्यारी॥
धिक प्रभातमें तजि उसे कायर तुम ता छिप चले।
जिसके कारण रात भर सबको थे लगते भले॥ ३॥

कहो? कहाँ पर छुपी तापसे प्रिये! चाँदिनी।
प्रिय-वियोगमें बीता क्या? ऐ चन्द्र-भामिनी!
निठुर जगत भी सूरजसे मिलि, बिमुख हुआ था।
विष या थी? खाई या इधर व उधर कुआ था॥
किन्तु धन्य है! चन्द्रसे पतिसे इतना नेह है।
सन्ध्याको आकर मिली, शिवपुर सम तव-गेह है॥४॥

अहो चन्द्र! यदि तुम भी सच्चे प्रेमी होते।
शील धुरंधर तथा कर्मके नेमी होते॥
तब तुम होते निष्कलंक, सब शीष झुकाते।
मन भाते सबके सब तेरे सद्गुण गाते॥
"भारतीय"! क्यों बह रहे? आज विचार-तरंगमें।
क्षण-भंगुर संसारमें होत भंग है रंगमें॥ ५॥

विद्यानुराग और पुस्तकपठन।

(लेखक पं० मुन्नालालजी काव्यतीर्थ इंदौर।)

विज्ञ महानुभाव! संसार एक बड़ा ही विचित्र भवन है। इसमें विहार करने वाले जितने भी उच्च कक्षासे लेकर नीच कक्षा तकके प्राणी आपके दृष्टि पथ होंगे वे सब अपने २ पूर्वोपार्जित कर्म द्वारा प्रेरित होकर नाना प्रकारके दुःख सहन करते हुए दिखाई पडेंगे। यद्यपि प्राणी मात्रका उद्देश्य यदि रहता है तो यही कि हम संसारमें हर एक तरहसे सुखोपार्जन करते हुये अपनी जीवन यात्राको सफल करें और तदनुकूल उपाय भी जोड़ते हैं, परंतु फिर भी उनकी अभिलाषा पूर्ण नहीं होती है इसका यदि मूल कारण पूछा जावे तो कहना पडेगा कि मनुष्य अपनी बुद्धि द्वारा जिसको भी योग्य समझ बैठता है उसमें न तो वह ऊहापोह करता है और न उसको अपनेसे बडे और बुद्धिमान पुरुषोंकी संमति अच्छी लगती है और जब तक वह ऐसा करेगा तब तक उसके उद्देश्यकी सफलता होना नितान्त असंभव है। आज मैं आप लोगोंकी सेवामें इस लेखको लेकर उपस्थित होता हूं और इसमें आपको यह बात बतलाऊंगा कि विद्यानुराग और पुस्तकपठनसे क्या २ फायदे हैं और उसमें कौन २ गुण हैं—किसी कविका कहना है कि—

यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते ॥

अर्थात् मनुष्य जैसे २ शास्त्रावलोकन करता है उसी २ तरह उसको पदार्थविषयक विशेष ज्ञान होता है तथा विज्ञानके तरफ उसकी रुचि झुकती है इसी संबन्धमें महाकवि श्रीहरिश्चन्द्र अपने चंपूमें लिखते हैं—

विद्यावल्ली प्राप्तसुक्षेत्रदत्ता।
प्रज्ञासिक्ता सूक्तिभिः पुष्पिता च ॥
आशायोषित्कर्णभूषायमाणां।
कीर्तिप्रोद्यन्मञ्जरीमादधाति ॥

इन दो प्रमाणोंसे आपको अच्छी तरह पता लग सक्ता है कि ग्रंथावलोकन और विद्याभ्याससे हमको कितना फायदा होता है, मनुष्यमात्रको यदि मनुष्यता प्राप्त हो सक्ती है तो एकमात्र विद्यासाधनसे ही, क्योंकि विद्या नाम ज्ञानका है और ज्ञान यह आत्माका खास गुण या धर्म है क्योंकि "वत्थु सहावो धम्मो" अत एव धर्म विहीन यदि आत्मप्रभाव है तो जो आहार निद्रा, भय मैथुन इन कृत्योंसे समानता रखने वाले पशु हैं उनसे मनुष्यमें कुछ भी फरक नहीं रह सक्ता मनुष्यमें यदि प्राणी मात्रसे विशेषता है तो केवल हेयोपादेय स्वरूप ऊहापोहात्मक धर्मसे ही है। अतः जिस तरह हम लोग इतर नैमित्तिक क्रियाओंका करना अपना आवश्यक कर्तव्य समझते हैं उसी तरह बल्कि उससे भी कहीं अधिक विद्याभ्यासको आवश्यक कर्तव्य समझ कर उसकी तरफ अपनी प्रवृत्ति झुकानी चाहिये। यदि मनुष्यमें ज्ञान नहीं है तो उसको इंद्रियां एक दम उच्छृंखल हो जायगी। मन वशमें नहीं रहेगा और संसारमें योग्य रास्तेका सुझानेवाला कोई नहीं रहेगा, वयो वृद्ध होनेपर भी यदि विद्या नहीं है तो मनुष्य हमेशह बालकोंके समान अज्ञानी और चंडालोंके समान पापी होता है। विद्या मनुष्यको बुद्धिमान बनाती है। और सत्पथगामी करती है, जीव-

नकी उत्तमताका प्रारंभ विद्यासे ही होता है, जो बलहीन हैं उनको बलका काम देती है, जो दरिद्र हैं उनके लिये कल्पवृक्षपनेको प्राप्त होती है। वास्तविक प्रकृतिके नियम बिना विद्याके नहीं पल सक्ते हैं। जीवनका कर्तव्य और उसके उद्देश्य विद्या ही बतलाती है।

परंतु दुःख है कि इस समयमें जिस तरह हमारे भाई अपनी शक्तिका दुरुपयोग करते हैं उसी तरह विद्याका भी दुरुपयोग कर बैठते हैं जिससे अनेक घृणित दोष पैदा होरहे हैं। मेरी समझमें जो विद्या मनुष्यको नीति न सिखला सके सत्पथगामी न बना सके उसको विद्या कहना निरी भूल है। विद्या वह होनी चाहिये जो हमारे हृदयमें धार्मिक रीति रिवाजों पर अटल श्रद्धान रक्खे, अन्य भी सद्भाव पैदा करे, नीतिपथ पर चलावे, परोपकारिता, व्यवहार चतुरता, विचक्षणता, उद्योग, विनय, धैर्य, संतोष, कृतज्ञता, धर्मभाव, स्वावलंबनादि उत्तमोत्तम गुण उत्पन्न करावे, इत्यादि २। विद्याके प्रभावका जानना हरएक मनुष्यका मुख्य कर्तव्य है। बहुतसे हमारे भाई ऐसे भी मिलेंगे जो दिन रात सांसारिक धंधोंमें फंसे रहनेके कारण अपनी प्रवृत्तिको विद्या तरफ बिलकुल भी नहीं झुकाते हैं, ऐसे मनुष्योंका संसारमें जन्म लेकर भी मनुष्यत्वका दावा रखना क्या प्रशंसनीय है? उनके अंदर धनके आवेशसे जितने भी दुर्गुण पैदा होजावें थोड़े ही समझना चाहिये, मद, मात्सर्य, असंयम लोलुपता स्वार्थ, अहितकरण आदि जितने भी अनर्थ हैं वे सब इनके यहां हारकी माला स्वरूपमें होकर गलेके नीचे हृदयभागमें लटकते रहते हैं। ऐसे लोगोंके द्वारा सांसारिक जनताका अनुपकारके सिवा उपकार नहीं होसकता। विद्यापठनमें भी बहुतसे मनुष्योंका उद्देश्य या तो मनोविनोदके लिये होता है या कीर्ति और धन कमानेका होता है परंतु ये उनके विचार अत्यंत निंद्य और गंदे हैं। विद्यापठनका जो निजस्वरूप प्राप्त करना तथा संसार मात्रके उपकार करने तरफ अपनी प्रवृत्ति लगाना, अपने धार्मिक भावोंकी उज्ज्वलता प्रगट करना इत्यादि लक्ष्य है वेही होने चाहिये।

विद्याका यथार्थ महत्व समझनेके बाद इस बात की जिज्ञासा होती है कि उसकी प्राप्तिके उपाय क्या हैं? और वे किस ढंगसे प्राप्त होसक्ते हैं? इन प्रश्नोंका समुचित यही उत्तर होगा कि संसारमें जो २ भी अपूर्व पदार्थ आपके दृष्टिगोचर होवें उनको अच्छी तरह देखना और समझना चाहिये बादमें उन पर युक्ति प्रत्युक्ति द्वारा पूर्ण विचार करना चाहिये ऐसा करनेसे हमारा ज्ञान उत्तरोत्तर उन्नतिगत होता है और अनुभव में विशेषता होती है क्योंकि जिस २ तरफ जैसी २ आपकी प्रवृत्ति होगी उससे उसी तरहकी आपको कुछ न कुछ अपूर्व ही शिक्षा मिलेगी, लेकिन सामान्य रीतिसे सब लोग ऐसा नहीं कर सक्ते हैं इसके लिये हमारे पूज्य पूर्वाचार्योंने जो अपना अनुपम परिश्रम संसारी प्राणियोंके हितार्थ ग्रंथ रचनामें किया है उसको सफल करना चाहिये अर्थात् प्राचीन ग्रंथोंका अवलोकन अच्छी तरह चाहिये क्योंकि जो पुरुष विद्वान होते हैं वे अपने अनुभवोंका संग्रह करके धर्माविरुद्ध लोकोपकाराविरुद्ध ग्रंथ रचकर तैयार कर देते हैं। हर एक देश तथा हर एक जातिका इतिहास ऐसे २ उत्तम ग्रंथोंमें भरा हुआ है कि जिनके बांचनेसे हमको बहुत ही अनुपम सदुपदेश मिलता है और उसके द्वारा मनुष्य अपने उद्देश्यको सार्थक कर सक्ता है, अपनी जीवन यात्रा सुखसे वितीत कर सक्ता है. आजकल। हमारे बहुतसे भाई धनहीन होकर नाना प्रकारके दुःख भोगते हुए हमेशह आर्त रौद्र ध्यानके शरणागत

होते हैं और सांसारिक नाना कष्टोंको उठाते हैं, छोटे२ गावोंमें निवास करते हैं, जहां रहते हैं; उस स्थानको छोड़नेमें अपनी मृत्यु समझते हैं, साहसहीन होजाते हैं, इत्यादि २ कई दुर्गुणोंके कारण ही उनके पास लक्ष्मी नहीं बसती परंतु पुस्तकोंके पढनेसे सब सद्गुण होजाते हैं। जो मनुष्य पुस्तकोंको पढ़ता है वह साहसी निर्भीक अतन्द्रालु और कार्य तत्पर होजाता है। उसको देश भी देश है और परदेश भी देश है। जिन्होंने चारुदत्त चरित्र श्रीदत्तचरित्र आदि व्यापारी सेठोंके चरित्र पढे होंगे उनको इस बातका पता लग जायगा कि देश छोड़कर परदेश जानेसे धन कितना और किस रीतिसे प्राप्त होता है? कहा भी है "व्यापारे वसते लक्ष्मीः"

यद्यपि संसारमें मनुष्यके हितैषी उसके माता, पिता बंधु मित्र आदि बहुतसे संबंधी होते हैं परंतु ग्रंथके सदृश कोई भी हितैषी नहीं होता उपर्युक्त संबंधी कभी धोका भी दे देते हैं, कभी साथ भी छोड़ देते हैं, पूर्वोपार्जित कर्मोंके निमित्तसे उत्पन्न हुए स्वाभाविक द्वेष द्वारा नाना प्रकारके दुःख भी दे देते हैं, इनके संबंधसे किंचित सुख होता है तो फिर सुख दुःख दोनों अवस्थाएं आती हैं, ये हमको सुपथ पर बहुत कम लगानेवाले होते हैं, पर कुपथ पर अधिक चलाते हैं, मित्र लोग भी संपत्ति रहने पर साथ देते हैं, अनुगामी बनते हैं, पर विपत्तिमें वे भी साथ छोड़ देते हैं। परंतु हमारे ग्रंथराज हमको हमेशह सुख ही देते हैं दुःख कदापि नहीं, ये हमको सुमार्ग बतलाते हैं, मनुष्य परिश्रम द्वारा कितना ही थकित क्यों न हो इनके दर्शन मात्रसे उसका श्रम शांत होजाता है। ये कभी हमसे असंतुष्ट और अप्रसन्न नहीं होते और न कभी हमारी निंदा ही करते हैं। दुःख सुखमें हमारा साथ देते हैं तथा सदुपदेशसे हमको कभी सुपथ च्युत नहीं करते। हमको कर्तव्य सुझाते हैं और मनोविनोद कराते हैं। मित्र लोग कुसंगतिमें भी लगा सक्ते हैं। हमारे आचरणोंको दुराचरण भी बनासक्ते हैं पर ग्रंथ हमको सदा सुमार्ग ही दिखलावेंगे, तथा हमारे आचरण और विचारोंको सुधारेंगे। मनुष्यमात्र का यदि अंतिम ध्येय सिद्ध होता है तो एकमात्र ग्रंथावलोकनसे ही; चाहे वह ध्येय ऐहिक हो या पारमार्थिक। धर्मशास्त्रोंमें लिखा है कि-परमपुरुषार्थ का साधन तप है क्योंकि तपसेही नवीन कर्मोंके आगमनका निरोध और पूर्व संचित कर्मोंकी निर्जरा होती है वह तप क्या है? "स्वाध्यायः परमं तपः" अर्थात् ग्रंथोंका परामर्श करना ही उत्कृष्ट तप है। इससे आपकी समझमें यह बात अच्छी तरह आसकेगी कि अंतिम ध्येय भी जिससे सिद्ध होजाता है तो क्या ऐहिक तुच्छ कार्य सिद्ध नहीं होंगे।

प्राचीन समयमें तथा आधुनिक समयमें जिन महानुभावोंने संसारमें अपने परोपकृत्यादि सद्गुणों द्वारा जो कुछ मनुष्यतिलक पद पाया है तो ये सब कृपा हमारे ग्रंथ महाराजोंकी ही है। इस समय आपकी दृष्टिमें जो लोग सभ्य और आश्चर्यकारक बन रहे हैं वह भी इन्हींकी कृपा कटाक्षका फल है। हम लोग "सोया सो खोया" इस कहावतको चरितार्थ कर रहे हैं। और आश्चर्यकारक गण "जागा सो पाया" इसको चरितार्थ कर रहे हैं। इस लिये महोदयो! यदि आप अपनी जीवनी शांति तथा सुखमय बिताना चाहते हैं तो अपना मुख्य कर्तव्य समझ कर २४ घंटोंमेंसे जरूर थोड़ा समय निकाल कर ग्रंथावलोकनमें लगाइये और प्राप्त शिक्षाके अनुकूल अपनी प्रवृत्ति कीजिये.

बाबू अर्जुनलालजी सेठी

श्रीमान् बाबू अर्जुनलालजी सेठीको जिस समय कारावासका दंड मिला था उस समय उन्हें समस्त जैन समाज नहि जानती थी, किंतु जिस समय उनकी मुक्तिके लिये उनकी परिचित जैन समाजने तन मन धनसे आंदोलन किया और उनके स्त्री बच्चोंकी रक्षार्थ अपीलें की गई उससमय समस्त जैन समाज उनसे परिचित होगई। सबको यह विश्वास होगया कि हमारा धर्मका उद्धार करनेवाला एक रत्न जिसके प्रकाशसे जैन समाज बहुत कुछ अपना हिताहित जान सकती थी गाढ अंधकारसे आच्छन्न किसी पर्वतको गुफामें डालदिया इसलिये उनकी मुक्तिके लिये उसका बेहद दिल छट पटाया। भिन्न समाजके नेताओंके सामने भी जैन समाजके कुछ महानुभावोंने छुटकारेमें सहायता मांगनेके लिये आंसू बहाये और जिसने जो कहा वही कार्य तुरंत अमलमें लाया गया।

'मारे और रोने न दे' की कहावतके अनुसार बलवानके सामने निर्बलको चल नहि सकती। जैन समाजके घोर प्रयत्न करने पर भी उस समय सेठीजी का छुटकारा न हो सका किंतु अन्य नेताओंके साथ जिस समय उनके छुटकारेका समाचार जैन समाजमें फैला, उसके आनंदका ठिकाना न रहा। जगह २ सभा कर उनके लिये खुशियां मनाई गईं। उनसे मिलने भेटनेके लिये अति उत्कंठित हो बहुतसी जनताने उन्हें अपने २ यहां बुलाकर उनका वचनागोचर आदर सत्कार किया। हित जनाया। और उनके भोगे हुए दुःखपर समवेदना प्रगट की।

पर यह किसको विश्वास था कि जैन समाजकी हरी भरी फूली फली इच्छापर तुषार आकर पड़ जायगा? उसकी इच्छारूपी अभेद्य किलेपर वज्र पड़कर उसे छार छार कर डालेगा। वह एकदम निराश होजायगी। अपना किया हुआ प्रयत्न बिकल समझेगी और उसके कुछ अगुओंको जनताके सामने लज्जित होना पड़ेगा।

यह हमें और हमारी समाजका जरा भी ख्याल न था कि सेठीजी साहब इसरूपसे जैन धर्मसे बहिर्भूत होजायगे। वे जैन धर्मको धर्मही न समझेंगे। किंतु यह विश्वास था कि सरकारका संदेह जनक कोई भी कार्य न कर वे अब जैन धर्मकी उन्नतिपर ही अपना जीवन सर्वस्व न्योछावर कर देंगे और जैन जनताके कृतज्ञ बनेंगे। अस्तु

सेठीजीके जैसे भाव घटित होचुके हैं उनका पता सेठीजीसे खुद मिलनेसे, प्राइवेट पत्रोंसे और समाचार पत्रोंसे अधिकांश जैन जनता उनके धर्मविरुद्ध भावों को जानचुकी है और उनसे हताश होचुकी है किंतु दिल्लीके किसी मित्र मंडलके सदस्य द्वारा सेठीजीके वैसे भावोंका प्रतिवाद जैन मित्रमें प्रकाशित हुआ है और उसने साफ यह लिख दिया है कि—'सेठीजीके विषयमें जो भी अफवाह हैं। यह गलत हैं किसीने दुश्मनीसे लिखदी हैं। सेठीजी जैन धर्मके अनुयायी हैं किंतु वे अंध श्रद्धारूपसे जैन धर्मका पालन करना अनुचित समझते हैं।" परंतु हमें यह विश्वास नहि होता कि यह बात सच होगी, क्योंकि यह हमारी प्रत्यक्ष रूपसे जांच की गई बात है कि सेठीजीका जैन धर्मपर जरा भी आदर नहीं। वे भगवद्गीताको ही शास्त्र सर्वस्व और असलीतत्त्वका प्रकाशक मानते हैं। हा कृष्ण! हा कृष्ण!! यही उनका ध्यातव्य मंत्र है। वे

इस्लाम धर्मवालोंके सामने इस्लाम धर्मको निंदा करते हैं। यज्ञोपवीत धारियोंका यज्ञोपवीत तुड़वाते हैं और 'एकं ब्रह्म द्वितीयं नास्ति, यह उनका सबके कानोंको तृप्त करनेवाला मुखसे वाक्य निकलता है।

उक्त मित्रमंडलके अन्यतम सदस्यने जो यह लिखा है कि 'वे अंध श्रद्धासे जैन धर्मका पालन करना अनुचित समझते हैं' इससे, एवं सेठीजीकी मनगढंत पुस्तकोंसे यही प्रतीत होता है कि वे नाममात्रके जैनी बनकर अपने मंतव्यका प्रसार करना चाहते हैं परन्तु ऐसा विचारका मनुष्य जैन नहि कहा जा सकता। जैन धर्मके अहितके सिवाय उससे क्या हित हो सकता है? इस प्रकारके विचारोंके रखते भी किसीको जैनी कहना समाजको धोखेमें डालना और उससे पुजाने का ढोंग रचना है।

उक्त मित्र मंडलके सदस्यने यह भी लिखा है कि 'दुश्मनीसे लिख दी है, परंतु यह ठीक नहीं। वे जंची बात हैं। क्योंकि सदस्य महाशयने यह नहि पढा कि खुद बा० अजित प्रसादजी तकने (जिनके कि अपने समयका बहुभाग सेठीजीके छुटकारेके लिये प्रयत्न करनेमें ही बीता था और जो सेठीजीके अभिन्न हृदय हैं) सेठीजीके भाव धर्म विरुद्ध होचुके हैं यह लिखा है।

मित्र! चापलूसी कर व्यर्थ समाजको धोखे में डालना ठीक नहीं, कितनी भी ढाँको पोल न छिपेगी।

हमें यह भी उड़ती हुई खबर मिली है कि सेठीजी के हृदयमें यह विश्वास जम गया है कि जैन समाजने मेरे छुटकारेके लिये कुछ भी प्रयत्न न किया' इसलिये वे जैन धर्मसे विमुख होगये हैं परंतु यह बात निर्मूल है। अविश्वसनीय है। क्योंकि यदि सेठीजीका यही ख्याल है कि जैन जनताने मेरा कुछ भी उपकार नहि किया तो वे समाजको उल्टी सीधी सुनावें उससे घृणा करें। स्वपर हितकारक जैन धर्म पर उनकी क्यों ऐसी नाराजी! उसने उनका क्या बिगाड़ा है? हमें तो यह जच चुका है कि सेठीजी शायद यह समझते हैं कि यदि मैं जैन धर्मका ही भक्त बना रहूंगा तो जैन धर्मावलंबी ही मेरा सत्कार कर सकेंगे जो कि बहुत ही परिमित हैं किंतु यदि मैं चटकीले गीताके श्लोक सुनाऊंगा तो तमाम हिन्दू समाज मेरा आदर सत्कार करेगी, परंतु यह उनकी मन गढंत श्रद्धा व्यर्थ है। सेठीजी यह निश्चय समझें कि अब वह हवा वह चुकी है कि जो मनुष्य अपने निजी धर्मको छोड़कर स्वार्थ वासनासे दूसरे धर्मको ग्रहण करता है वह अप्रतिष्ठित समझा जाता हैं, वर्तमानके शिक्षितगण उसका आदर सत्कार नहिं करते। किंतु अपने धर्ममें दृढ रहकर जो पब्लिक कार्योंमें भाग लेता है वही वीर प्रतिष्ठित समझा जाता है। सेठीजीको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि-जैन धर्मके धारकोंने भी वह कार्य कर दिखाया है जो सर्वथा आश्चर्य कारक प्रतीत होता है। हमारी यह बात कोरी अनुमानके आधार पर ही नहीं है किंतु हमें पक्के सूत्रसे यह पता लग चुका है कि एक प्रतिष्ठित श्वेतांबर मतावलंबीके सामने उन्होंने यह जिक्र किया है कि हमने स्त्री मुक्तिका मंडन किया है जिससे उस महानुभावने हमें यह झलका दिया था कि वे दूसरी समाजको रिझानेकी कोशिश करते हैं परंतु वह व्यर्थ है ऐसा करनेसे कोई समाज नहि रीझ सकती।

सेठीजीकी चित्तवृत्तिकी ओर ख्याल कर हमें यह लिखना भी योग्य है कि हमने जो भी ऊपर लिखा है मित्र भाव और उनकी जैन धर्मकी विमुखताकी ओरसे दुःखित हो लिखा है क्योंकि सेठीजी अपने वचनोंसे उन मनुष्योंसे घृणा करते सुने गये हैं जि-

न्होंने उनके विषयमें कुछ लिखा है । हमें विश्वास है सबसे पहिले सेठीजी अब पक्के जैन धर्मके श्रद्धानी होंगे । जैन शास्त्रोंका अच्छी तरह फिरसे मनन परिशीलन करेंगे जिससे जैन जनताका उनकी ओर से दुःख दूर होगा और उनके लिये जो उसने सच्चे हृदयसे अपना तन मन धन व्यय किया है और अनेक प्रयत्न किये हैं वे विफल न जांयगे ।

सेठीजीके हितैषी—जैन पंच ।

संपादकीय आवेदन ।

अनुपम अनिवर्चनीय शक्तिशाली चिदानंद चैतन्य स्वरूप उस परम ब्रह्म परमात्माको अनेकानेक धन्यवाद हैं, जिसका मानसिक संताप संहारिणी, सुस्निग्ध शीतल छाया तुल्य किंवा परमपावनी मलक्षालिनी भागीरथी—गंगा समान अनुपम कृपासे आज हम पद्मावतीपुरवालके दूसरे वर्षका अंतिम अंक पाठकोंके सामने भेंट स्वरूप रखनेके लिये समर्थ होसके हैं और आगामी तीसरे वर्षमें भी बिना किसी रुकावटके पद्मावतीपुरवाल पदार्पण करेगा । यद्यपि बारह मास के विशाल कालको धारण करनेवाली दूसरी साल हमें मानसिक किंवा शारीरिक क्लेश स्वरूप फूलोंकी माला पहिनाती रही है । मध्ये मध्ये यहांतक क्लेशमालाओंने हमारा कंठ अवरुद्ध कर दिया था कि शायद हमें पद्मावतीपुरवालकी सेवासे वंचित होना पड़ता, किंतु उस क्लेशमालाके प्रभावकी बौछार यहांतक ही हमारे ऊपर पहुंच सकी—कि हमें पौष माघका एक संयुक्त अंक निकालना पड़ा और हमारा अंतिम अंक सालके अंत फाल्गुनमें ही प्रकाशित होना चाहिये था, परंतु वह चैतके अंतमें पाठकोंकी सेवामें भेंट होसका, जिसका कि पूर्ण पश्चाताप करना आवश्यक है किंतु लाचारीसे हमारा हृदय उस पश्चातापको अनुभव करनेमें असमर्थ प्रतीत होता है ।

जो महाशय पद्मावतीपुरवालके नामसे ही नाराजियोंका ढेर लगा देते हैं । किंवा हृदयमें धर्म विरुद्ध प्रवृत्तिका समावेश होजानेके कारण उसके लेख वाक्यों का मूल्य समझने या विचार करनेमें द्वेषके पुतले हैं वे पद्मावतीपुरवालके लक्ष्य किंवा उद्देश्योंको भले ही अनुचित समझे क्योंकि पद्मावतीपुरवाल ऐसे मनुष्योंके स्वभावकी कोई पर्वाह नहिं करता । उनकी उच्छृंखल धर्मविरुद्ध प्रवृत्तियोंके मुंह तोड़ उत्तर देनेमें अपना सौभाग्य समझता है । किंतु जो मनुष्य उसके प्रत्येक वाक्यको आदरकी दृष्टिसे देखते हैं । अपनाते हैं । उसके उद्देश्यों पर ध्यान देते हैं । उनसे यह बात छिपी नहीं है कि—पद्मावतीपुरवाल धर्माविरुद्ध बातोंका वर्तमानमें एक खासा उपदेशक है । धर्म निंदकोंको झाड़ने वाला और बिना किसी पक्षपात किंवा राग द्वेषके उन्हें धर्मके असली तत्त्व समझानेकेलिये प्रेरणा करने वाला है ।

यद्यपि जो मनुष्य वीतरागताका अभ्यास करने वाले हैं उन्हें भी धार्मिक बातोंपर पहुंचते हुए आघातोंसे नितांत कष्ट होता है और उनके मुखसे कोई भी कटु शब्द निकल जाय तो वह आश्चर्यकारक नहिं गिना जाता क्योंकि धर्मकी प्रगाढ़ श्रद्धासे उन्हें वैसा करना पड़ता है, व्यर्थ किसीके चित्तको दुखानेके लिये उनका

कटुक वाक्योंका प्रयोग नहीं। हम लोग वीतराग नहीं, अहोरात्र सांसारिक वासनाओंमें मस्त रहते हैं इसलिये धार्मिक बातोंके मंडन करते समय यदि हमसे कुछ कटुक शब्दोंका उपयोग होगया हो वा आगे हो तो पाठक वह हमारा दोष न समझें। हम कटुक वाक्योंकी रक्षा और शांतिका भरसक प्रयत्न करते हैं परन्तु ऐसी बातें जो शास्त्रोंमें दूसरे रूपसे वर्णित हैं परंतु सुझाई जाती हैं अन्यरूपसे, एवं शास्त्र वाक्यके अर्थका अनर्थ किया जाता है उस समय जबरन हमारी शांति भंग हो जाती है। तथा धर्मपर वार करनेवाले महाशय आचार्योंके लिये बहुत ही तुच्छ शब्दोंका उपयोग कर डालते हैं जितना कि हम वार करनेवालोंके लिये नहिं करते तिसपर भी जहांतक होता है उत्तर देते समय शांतिका पूरा ध्यान रक्खा जाता है।

समाजमें कुछ समाचार पत्र ऐसे हैं जो दूसरोंको आजकलकी सभ्यताकी बोल चालमें गालीगलौज करना ही संपादकोंकी पराकाष्ठा मानते हैं। संपादकीय योग्यता न रखनेपर भी जबरन अपनेमें उसे चिपकाते हैं। तथा योग्यता रहनेपर भी उसका उपयोग न कर कोरा डाह या परोत्कर्षासहिष्णुतासे सामान्य रूप वा व्यक्तिरूपसे आक्षेप कर डालते हैं। हम उनको बदलेमें लिखना अपने समयका दुरुपयोग समझते और उनका उत्तर भी नहि देते किंतु जब बहुत ही असह्य क्षुब्ध होजाता है तब देना पड़ता है वह भी बाह्य लेखोंके आधार पर। इसलिये इस गतवर्षके अंकोंमें जो ऐसे कुछ लेख निकले हैं पाठक उन्हें बदलेमें ही समझें किंतु हमारी ओरसे आग सुलगाई न समझें।

पद्मावतीपुरवाल अखबारमें उसके पाठकोंकी और देशकालकी परिस्थिति पर लक्ष्य रखकर लेख प्रकाशित किये जाते हैं। इसलिये जहांतक बनता है कुछ उर्दू शब्दोंके साथ सरल भाषा पर ध्यान रखना पड़ता है। हमारे बहुतसे पाठक और संपादक यह लिखकर कि-'पद्मावतीपुरवालकी भाषा कुछ कम परिमार्जित रहती है' अपनी सम्मति और समालोचनाका गौरव समझते हैं। उनसे हमारी प्रार्थना है कि हमें कोष सामने रखकर ढूंढ २ कर 'निरपेण गवेषण' आदि शब्दोंका उपयोग करना पसंद नहीं और न अखबारमें ऐसे शब्दोंका उपयोग कर गंभीर साहित्यकी छटाका छटकाना है, क्योंकि यदि पद्मावतीपुरवालके पाठक हमारी हिंदीको समझलें किंतु अन्य लोग उसे टूटी फूटी भी हिंदी कहें तो हमें मंजूर है। वैसा होनेमें हम अपना सौभाग्य ही समझेंगे। असलियतमें देखा जाय तो हमारे लिये अधिक गंभीर संस्कृतके शब्दोंका उपयोग भी असंभव होगा क्योंकि लोगोंका ख्याल है कि उन्हें कुछ संस्कृत आती है इसलिये हिंदी आदिमें संस्कृत शब्दोंका उपयोग कर वे अपनी विद्वत्ता प्रगट करते हैं [illegible] सब तरह हैं [illegible]--

नास्ति नास्ति न हि कश्चिदुपायः।
सर्वलोकपरितोषकरो यः॥

इस नीतिका अनुसरण कर विशेष हितकारी मार्गका अनुसरण करना ही आवश्यक है। यदि उसे कोई अनुचित कहे तो कहो, परिमार्जित हिंदी जैसी कि लोग समझते हैं यदि हम लिखना जानते ही नहीं ऐसा श्रद्धान हो तो वे महाशय संस्थासे प्रकाशित हरिवंशपुराण आदि ग्रंथ देखकर निश्चय करलें। खैर!

खंडन मंडन किंवा लेखरूपमें किसी विषयका खास विचार कुछ अवकाशसे संबन्ध रखता है। अवकाश मिलनेपर मोटा किन्तु प्रांजल भाषामें उदारताके साथ झलकाया जाता है। हम कई दफा निवेदन कर चुके हैं कि हम अवकाशके विषयमें दरिद्र हैं। इसलिये

Regd. No. C. 886

धर्म विरुद्ध बातोंके खंडनमें प्रमाणस्वरूप यदि एक ही ग्रंथका हम उल्लेख करें तो पाठकोंको समझलेना चाहिये कि सब ग्रंथोंमें यही बात है कारण जैन ग्रंथ पूर्वापर विरुद्ध नहीं—विरुद्धताकी भ्रांति है, क्योंकि कई ग्रंथोंके प्रमाण देनेके लिये अवकाशकी आवश्यकता होती है।

विद्वत्समाजसे हम बहुतबार प्रार्थना कर चुके हैं और आज भी करनेके लिये प्रस्तुत हैं कि पद्मावतीपुरवाल का योग्यरूपसे सुंदर बनाना यह एक दोका काम नहीं, समष्टिका कार्य है। इसलिये आप महानुभाव थोड़ा समय इसके लिये भी उत्सर्ग कर दिया करें कुछ समयोपयोगी लेख भेजकर इसपर कृपा करनेसे मुंह न मोड़ें। हमारा श्रद्धान है कि यह पद्मावतीपुरवाल आपके लेखरूपी सुस्वादु किंतु पवित्र भोजनसे पुष्ट हो समाजको पवित्रभावसे सेवा कर सकेगा और मात पांचके हाथोंमें आपके पला हुआ समझ सानंद इसका जीवन यापन होगा, बहुत अंशोंमें इसे अपनी चिंता न करनी पड़ेगी।

तृतीयवर्षके प्रथमांकमें प्रकाशित होनेवाले हिसाबसे पाठकोंको पता लगेगा कि इसमें इस वर्ष कितना घाटा रहा है। हम आपसे अपील करना नहिं चाहते परंतु इस ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं कि इसपर आप कृपा रखते रहें, यह आपका ही सेवक उपदेशक है। जिन महाशयोंने इस वर्ष इस पर अपनी कृपा रक्खी है—इसे सहायता पहुंचायी है उन्हें हम हृदयसे धन्यवाद देते हैं और हमें विश्वास है कि पद्मावतीपुरवालका जो भी साहस बढ़ा और आगें बढ़ेगा उन्हीकी कृपाका फल है। यह आप निश्चय समझें पद्मावती पुरवालसे स्वार्थ पाईका भी नहीं, परोपकारार्थ ही इसका जीवन है।

अंतमें अपने आवेदनको समाप्त करते हुए हम यह विनम्र प्रार्थना करते हैं कि यदि हमसे व्यर्थ किसीको कष्ट पहुंचा हो किंवा हमसे पद्मावतीपुरवालके संपादनमें कोई विशेष अभावग्रस्तो हुई हो अथवा अन्य किसी कारणसे हमारा अपराध प्रतीत हुआ हो तो आप महानुभाव हमें क्षमाकरें। हमें बालक समझें परंतु इस नीति पर अवश्य कृपा रक्खें। 'सुधि बारेकी लीजे'

श्रीयुत वीरभानुजीसे प्रश्न।

महोदय! आपने दिगम्बर जैन शास्त्रियोंसे सत्योदयके तीसरे वर्षके अंक १ में ४३ प्रश्न किये हैं सो कृपाकर आप निम्नलिखित प्रश्नोंका उत्तर दें। ताकि आपके प्रश्नोंका उत्तर दिया जाय।

(१) आप जैन हैं या नहीं?

(२) यदि हैं तो दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासीमेंसे किस फिरकेके अनुयायी हैं?

(३) आप अनुमान, प्रत्यक्ष, और आगम प्रमाणको मानते हैं या नहीं?

(४) आप आगम प्रमाणको मानते हैं तो कौनसे कौनसे शास्त्र आपको प्रमाण हैं उनका नाम लिखिये और वे कोनसे संघके मान्य हैं?

(५) अनुमान प्रमाणके भेद प्रभेद कौनसे जैन न्याय ग्रन्थके अनुसार मानते हैं?

(६) यदि जैन नहीं हैं तो किस धर्मके अनुयायी हैं और आगम प्रमाणका कौनसा ग्रन्थ आपको मान्य है उनका नाम लिखें।

ठाकरसीदास जैन,
ठि॰ गुरुमुखराय निहालचन्द
४२—४४ कुम्भा मोदीखाना, बम्बई

श्रीलाल जैनके प्रबन्धसे जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,
८ महेंद्रबोसलेन, श्यामबाजार कलकत्तामें छपा।

पद्मावती परिषद्का मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा चित्रोंसे विभूषित)

संपादक-पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक-श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

वर्ष ३ | अं. १-२

विषय सूची।

नोट—विधवा विवाह-खंडन और ईश्वर-सृष्टिकर्तृत्वमीमांसा आदि लेख बहुत परिश्रमसे लिखे गये हैं पाठक इनका मनन करें।

वार्षिक मू० २)

आनरेरी मैनेजर-
श्रीधन्यकुमार जैन, 'भिंड'

१ अंक का ≡)

आगेका अंक वी० पी० से भेजा जायगा।

यह संयुक्त अंक पाठकोंकी सेवामें नमूनाके बतौर भेजा जाता है ग्राहक बननेकी मनाई न आनेसे तीसरा अंक दो रु० एक आनेकी वी० पी० से भेजा जायगा। आजकल जैन शास्त्रों पर कैसे २ मिथ्या आक्षेप स्वयं जैन कुलके पैदा हुये लोगों द्वारा हो रहे हैं और उन सबका खंडन इस पत्रमें कैसा रहता है सो सब आप लोगोंसे छिपा नहीं है। अतः इसके जितने भी ग्राहक बढाये जांय उतने परिश्रम कर बढाने उचित हैं।

कागजकी महंगी होनेसे और सब ग्राहकोंसे मूल्य न आनेके कारण गत साल २२५) रु० के करीब घाटा पडा है जिसका हिसाब आगेके अंकमें छपेगा। इस साल कागज और भी तेज होगया है अधिक घाटा पडनेकी उम्मेद है। जो लोग इस पत्रको अतिनत्व लाभदायक समझते हैं उन्हें ग्राहक बढाकर तथा अपने इष्ट मित्रोंसे शुभ कार्योंके समय सहायता दिलाकर घाटा पूरा करा देना चाहिये।

जो महाशय ग्राहक न रहना चाहें या मूल्य न देना चाहें वे एक पैसाका पोष्टकार्ड खर्च कर मनाई करदें जिससे हमारा फिजूल पांच पैसा न खर्च हो।

मालवा प्रांतिक दिगम्बर जैन [illegible] सभाका वी० सं० २४४५ का हिसाब।

२५०॥।=)॥। गत वर्षका पौने बाकी।

१,२[illegible]) आमदनी चंदा एक मुश्त।

८०॥।=)॥। आमदनी बाईंग।

३०॥)॥। उपदेशक विभाग खाते जमा।

६।=) । आमदनी ब्याज।

२०७॥।) वार्षिक चंदेकी आमदनी।

२०२५) स्थाई फंडमें जमा।

२०००) सेठ हुकमचंदजी बालमुकुंदजी साहेबके।

२५) से० चुन्नीलालजी हेमराजजी आगराके।

२०२५)

२७७६॥।=)।

१२३) उपदेशक विभागमें तनखा उपदेशक, सफर खर्च।

२१३॥)॥ विद्या विभाग खर्च पाठशाला और बोर्डिंग।

२३६३)। बाकी निकल कार्तिक सुदी १

५॥।=)॥ मंत्री मोतीलालजीके पास।

३) सबल पंच अरम्यामें बाकी।

२३५६=) । बालमुकुंदजी दिगम्बरदासके यहां ब्याज ।=)॥। पौने आठ आने पर।

२३६३)।

२७७६॥।=)।

नोट आडीटर्ज — हिसाब जांचा ठीक पाया कार्तिक सुदी १ द० सोहनलालजी सरदारमलजी द० हरकालजी मन्नूलालजी।

महामंत्री—जवरचंदजी मोतीलाल।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदं

३ रा वर्ष } कलकत्ता, चैत्र वैशाख वीरनिर्वाण सं० २४४६ सन १९२० { १-२ रा अंक।

उद्‌बोध।

गज सर्पादिक पूर्वभवोंमें दिया कष्ट जिसने भारी।
असुर होइ तीर्थंकर—जगमें बैर निभाया भयकारी॥
ऐसे भी शठ कमठ दलन हित जग न शांती बिसराई।
वे लोकोत्तर सुभट पार्श्व जिन करें शांति जो सुखदाई॥ १॥

दुष्ट असुर मम कुछ नहिं करता यह था ज्ञान जिनेश्वरको।
इसीलिये कुछ यत्न उन्होंने किया न उसके नाशनको॥
किंतु देख अन्याय भयंकर नाग इंद्र पद्मावतिने।
दमा असुरको किया प्रभावन जैनधर्मका सब जगमें॥ २॥

शास्त्र पठनसे है यह निश्चय किया कमठका कुछ नहिं दोष।
पूर्वभवोंमें श्रीजिनवरने किंतु उसी खलका सब दोष॥
बैर निभाया तदपि दुष्टने वृथा भयंकर जिनवर संग।
नहीं छोडत दुष्ट दुष्टता नीति बचन यह बना अभंग॥ ३॥

जैनधर्म यह अति सुखकारी शांति मार्गका पोषक है।
विषय मलिन जो निंद्यमार्ग हैं उनका बिल्कुल शोषक है॥
इसीलिये कुछ वर्तमानके नरगण होकर विषयाधीन।
इसे मलिन करनेकेलीये दोष खोजनेमें अति लीन॥ ४॥
यद्यपि दिव्यज्ञानके धारक श्रीजिनेंद्र द्वारा उपदिष्ट।
विषय मस्त अज्ञानी नरगण नहिं कर सकते इसको नष्ट॥
किंतु देख अन्याय भयंकर विज्ञवृंद मत ढील करो।
कर प्रहार इनकी कुयुक्तिका जैनधर्म उद्धार करो॥ ५॥

ईश्वरसृष्टिकर्तृत्वमीमांसा।

लेखक—न्यायाचार्य पं० माणिकचंद कौंदेय प्रधानाध्यापक
श्रीगोपाल दि० जै० महाविद्यालय मोरेना।

इस भारत वर्षमें बहुत दिनसे एकान्त नयके कारण अतीन्द्रिय विषयोंमें वादानुवाद होता चला आ रहा है। अतः बहुत दिनोंसे दैशिक प्रेम और धार्मिक संस्कारवश अनेक विद्वानोंके स्थूल मन्तव्यानुसार इस देशमें बहुतसी समाजें प्रचलित हो रही हैं।

भारत वर्षके अन्य सनातनधर्मी (हिन्दू) आर्य्यसमाजी, ईसाई, और मुसलमान भाइयोंसे जैन समाजका बहुत मोटा अन्तर सृष्टिकर्तापनेसे है अर्थात् हिन्दू आदि ईश्वर (परमात्मा) को सृष्टिका कर्ता मानते हैं और जैनी लोग परमात्मा (ईश्वर) को कर्ता नहीं मानते। यद्यपि यह कर्तापन प्रत्यक्ष प्रमाणसे बाधित हो जाता है, और साइन्सने भी इसकी नींवको उखाड़ दिया है तो भी मैं आप आस्तिक लोगोंके सामने युक्तियोंसे यह विषय सिद्ध करूंगा कि जड़ तत्त्व और जीवात्माओंसे ही सम्पूर्ण सृष्टि बन जाती है, परमात्मा तो अपने स्वाभाविक चैतन्य और आनन्दमें निमग्न रहता है।

भूमण्डलमें अनेक प्रकारके जमाने गुजर चुके हैं, एक जमाना ऐसा भी था कि तत्कालीन मनुष्य अपने सम्पूर्ण कर्तव्योंको (यहां तक कि खाना, पीना बाल बच्चे, जानवर, धर्म कर्म,) ईश्वरकी तारीफमें न्यौछावर कर दिया करते थे, जैसे कि भाट लोग अपने ठाकुर की बड़ाईमें बड़े २ तूफान बांध दिया करते हैं कि तुम्हीं हमारे मा बाप हो, अन्नदाता हो, रक्षक हो, राजराजेश्वर हो इत्यादि। इससे भी बढकर लोगोंने परमात्माके विषयमें भी बड़े २ स्तोत्र बना डाले हैं। कुछ दिन तो यह बातें भक्तिरूप (अर्थवाद) में रहीं, लेकिन बादमें लोगोंने उन तारीफोंको यथार्थ समझा यह मामला यहां तक बढा कि तलवार, तोप, चाक, कूप, नदी, समुद्र, राजा आदिमें भी लोग ईश्वरका अंश मानने लगे। किसीमें भी कुछ करामात (शक्ति) देखी झट देवता मान लिया,। इसके अतिरिक्त सर्प, नीलकंठ, गौ, आदि जानवरोंको भी ईश्वरका अंश बखानने लगे और हेतु देने लगे कि यदि

ईश्वरका अंश नहीं होता तो सर्प मनुष्यको कैसे मार डालता, तोपसे सैकड़ों आदमी कैसे मारे जाते इत्यादि।

"सज्जनो! ऐसे आदमियोंने दुनियांको कर्महीन (अपुरुषार्थी) ही बना दिया और किसी भी जमीन, पानी, अग्नि, सूर्य आदि, जड़ पदार्थोंमें कोई गांठकी शक्ती ही न रहने दी।

शायद ऐसी कल्पना करने वाले दिमाग सरीफ आज होते तो रेलगाड़ी वायुयान, टेलीग्राफ, वेतारका तार, थरमामेटर आदिमें भी ईश्वरको बैठा देते।

बहुतसे लोगोंको ऐसी धुनि सवार है कि विना चैतन्यशक्तिके कोई काम हो नहीं सक्ता, घड़ा, घड़ी, कपड़े, मकान, आदि सभी चेतन आदमीके बनाये हुये हैं इसी तरह यह दुनियां भी किसी खास परमात्माकी बनाई हुई है। इसपर अब हमें यह दिखाना है कि—संसारके कार्य किस प्रकार होते हैं कुछ कार्य तो ऐसे हैं जो केवल जड़ (माद्दा) से ही बन जाते हैं जैसे मेघ, हवा, गर्मी, शर्दी, पर्वत, आदि। कोई कार्य ऐसे हैं कि—जिनको जीवात्मा ही करता है जैसे खाना, पीना, हिंसा करना, चोरी करना, पढ़ना, विचारना, मकान बनाना आदि,। इन सभी कार्योंमें किसी ईश्वरकी मदद नहीं देखी जाती और न है ही।

यदि इन कार्योंको भी ईश्वर करता है तो दुनियां भरके कुकर्मोंमें ईश्वरका हाथ समझा जायगा और यह परमात्माके विषयमें एक प्रकारका लाञ्छन है।

क्या आप जड़ और जीवात्मामें कम शक्ति समझते हैं? मैं कहता हूं कि संसारमें जड़ बहुत ही काम कर रहा है। एक मलहमको ही लीजिये जो कि घावमें से कीटाणुओंको निकालता है और मांस, चमड़ा, खून, नसें बनाकर जगहको पूर देता है। दूध, घी, दवाई, रसायन आदि जड़में वह शक्ति है कि चेतनको नचा देते हैं, तोलनेके कांटे (तराजू) को ही लीजिये जिस चीजको आप प्रयत्न करने पर भी आधा नहीं कर सक्ते उसको वह कांटा रत्ती, खस, के फर्कसे बिलकुल ठीक आधा कर देता है। आप कहेंगे कि कांटा भी तो हमारा बनाया हुआ है? जरूर कांटेके बनाने वाले आप हैं लेकिन कमती बढती होनेपर सुईका ऊंचा नीचा होना और ठीक वजन होनेपर सुईका बीचमें खड़ा रहना आपकी तदबीरसे बाहिर है।

आपतो अपने खाने, पीनेके कार्यको भी नहीं कर सक्ते, क्या आप अपने प्रयत्नसे खाये हुए भातका रस रुधिर मांस चर्बी हड्डी वीर्य अपनी इच्छा पूर्वक शक्तियोंसे बना सक्ते हैं? या उन चीजोंको जगह व जगह भेज सक्ते हैं? नहीं। यह सब कार्य पित्ताशय, आमाशय आदि कारण तथा सूक्ष्म शरीर करता रहता है और हमें कुछ भी मालूम नहीं पड़ता वलिक हम चाहें भी कि अन्न अच्छी तरह पक जाय या खाई हुई भंग, अफीमका नसा न आवे, खून ज्यादा बने, मल कमती बने तो प्रकृति अपने अपने अनुसार ही कार्य करती है और हमारी पुकारको जरा भी नहीं सुनती।

इसलिये आपको यह मालूम हुआ कि जिन कामोंके करनेमें चेतन अपनी डींग मार रहा है उनमें भी जड़का ही कर्तव्य विशेष है। मुझसे कोई जड़ और चेतनके कार्योंकी गणना पूछे तो मैं यह कहूंगा कि फीसदी कार्योंमें निन्यानवे कार्य जड़के हैं और एक कार्य जीवात्मा चेतनका है। जिस समय हम पढ़ रहे हैं उस समय प्रकृति क्या कर रही है इसको विचारिये—प्रथम तो हमारे शरीरमें ही सैकड़ों मशीनें चल रहीं हैं जिनका कि हमें इल्म भी नहीं है. बाहरकी

तरफ देखते हैं तो कहीं बादल बनते हैं; कहीं मेघ वर्षता है, बिजली चमकती है, जमीनमें बीज सड़कर अङ्कुर निकल रहे हैं। गंदी जगहमें अनन्ते कीटाणु बन रहे हैं कहांतक कहें ईश्वर वादी अपने अति साहस से उक्त कार्यों में भी ईश्वरकी कल्पना कर लेते हैं। महाशयो! विचारिये कि कौन आंधी चलाता है, कड़ी धूप गिराता है, मेह बरषाता है. छै ऋतुओंको बनाना और फलफूल लगाना यह सब प्राकृतिक काम है, आंधीमें एक जगहसे उठकर दूसरी जगह रेतके पर्वत बन जाते हैं, ज्वालामुखी पहाड़ अग्नि वर्षा कर देते हैं. भूकम्प होता है, जंगलमें बांसके रगड़नेसे आग पैदा होजाती है और जंगलको दग्ध कर देती है यह सब प्रकृतिका ही तमाशा है।

आप कहेंगे कि इन सबका भी व्यवस्थापक [नियम करने वाला] कोई ईश्वर जरूर है, लेकिन कहना पड़ता है कि पानी ठंडा है, अग्नि गर्म है, सूर्य से धूप निकलती है, गाड़ीर वजनको साथ रहे हैं इन कार्यों में उसकी व्यवस्था ही क्या है? और व्यवस्था ही आप कहेंगे तो ज्ञानवान्‌के कार्यमें गलती क्यों? हम देखते हैं कि गत वर्ष पानी न पड़नेसे दुष्काल होगया और कहीं २ अधिक बरसनेसे दुष्काल ही नहीं बल्कि सैकड़ों मनुष्य भी दबकर, बहकर मर गये।

यदि कोई व्यवस्थापक माना जाय तो सैकड़ों कार्य दुनियांमें व्यर्थ क्यों हो रहे हैं? समुद्रमें पानी क्यों बरसता है? मूड़ मुड़ाने वालेके बाल क्यों उगाये जाते हैं? जंगलोंमें व्यर्थ फल फूल क्यों पैदा किये जाते हैं? जिनका कि भोक्ता मनुष्य तो दूर रहे क्वचित् पशु पक्षी कीट तक भी नहीं है।

इन बातोंसे आपको मानना पड़ेगा कि संसारके कार्य अपने २ कारणोंके मिलने पर स्वतन्त्र रूपसे पैदा हो जाते हैं। आजकल कई विद्वानों [साइन्टिफिक] और मालियोंने तो उस व्यवस्थापककी व्यवस्थाको यहांतक पलट दिया है कि अनेक प्रयोगोंसे बबूलके पेड़में कांटे होना, और नीम [निंबवृक्ष] से कडुवापन निकाल दिया है। गेहूं कई तरहके पैदा कर दिये हैं आदि।

एक माली अपनी युक्तियोंसे कलमें लगाकर एक पेड़मेंसे चार तरहके फल पैदा कर लेता है इन बातोंसे आपको मानना पड़ेगा कि जड़ कारणोंमें भी बड़ी भारी शक्ति है जिसके विचारनेसे हमारा दिल कह उठता है कि प्रकृतिसे बने हुए कार्योंमें व्यवस्थापककी कोई आवश्यकता नहीं है।

इसी तरह जीवात्मामें भी यह स्वतन्त्र कार्य करनेकी शक्ति है कि अपने पुरुषार्थसे स्वर्ग, नरक, मोक्ष को स्वतन्त्रतासे पैदा कर लेती है।

यदि आप कहेंगे कि जीवात्मा कर्म करनेमें तो स्वतन्त्र और फल भोगनेमें परतन्त्र है. यानी पुण्य पापके अनुसार ईश्वर उसको फल दिया करता है।

क्यों साहब! आप बतलाइये कि एक आदमीके कलम बनाते हुये चाकू लग गया उस समय वही कर्ता और वही स्वतन्त्र भोक्ता है या नहीं। एक चोर और सिपाहीके दृष्टान्तसे ही दुनियां भरकी फल भोगनेमें परतन्त्र मान लिया जाय तो सब मनुष्योंका भोगोपभोग सामग्री इकट्ठा करना व्यर्थ हो जायगा।

इस मौके पर अब हमें ईश्वरकी कार्रवाईका विचार करना है कि यह कौन शक्ति प्रेरणा करती है कि जिससे वह अपने चिदानन्दमय स्वभावको छोड़कर दुनियां भरके झंझटोंमें फंसा रहता है। जब कि वह कृतकृत्य हो चुका है। और जब वह फल भोगनेमें स्वतन्त्र ही है तो पुण्य पापकी अपेक्षा क्यों करता है?

और प्राणियोंको दुःख देने वाला उसने पाप ही क्यों बनाया? जब कि वह दयालु है।

सृष्टिको आदिमें जब कि आप किसी भी कार्यको नहीं मानते तब विना निमित्त ईश्वरको इच्छा ही क्यों हुई कि मैं सृष्टिको बनाऊं। खैर किसी तरह इच्छा भी मानली जाय तो ईश्वरने सृष्टि बनानेमें प्रयत्न क्या किया! क्या परमाणुओंको कह दिया कि तुम सूर्य, जमीन रूप बन जाओ या स्वयं अपने हाथोंसे उन परमाणुओंको इकट्ठा करके चांद, तारे बना डाले, यदि आप पहला पक्ष लेंगे-तो ईश्वरके शरीर वचन, मानने पड़ेंगे और परमाणुओंमें कर्ण इन्द्रिय (कान) ज्ञानका प्रसङ्ग आवेगा। दूसरे पक्षमें याना ईश्वर खुद सृष्टि बनाता है ऐसा आप मानेंगे तो ईश्वरके शरीर मानना पड़ेगा यदि ईश्वरके शरीर माना जायगा तो शरीरके बनानेके लिये दूसरा शरीर चाहिये इस तरह अनवस्था नामक दोष आता है। और यदि ईश्वरके शरीर ही नहीं मानें तो वह उक्त मूर्तिमान् कार्योंको बना ही नहीं सक्ता जैसे कि आकाश घटपटादिको नहीं बना सक्ता। दूसरी बात यह है कि ईश्वरके क्रिया बन भी नहीं सक्ती क्योंकि वह व्यापक है जितने जगहमें जो चीज भरी हुई है उसमें क्रिया (हरकत हलन चलन) नहीं कर सक्ती, कितनी ही पैनी तलवार क्यों न हो खुद अपनेको नहीं काट सक्ती, कितना भी सीखा हुआ नट हो अपने ही कंधे पर आप नहीं बैठ सक्ता। इस ही तरह जब कि दुनियां भरमें ईश्वर ठसाठस भरा हुआ है तो कहांसे परमाणुओंको लावै? तथा कहां इकट्ठो करै? ईश्वरने किन कारणोंसे कहांपर बैठकर, अथवा किनके लिये, सृष्टिको बनाया इन बातोंका सूक्ष्म विचार करनेपर अनेक दोष आते हैं जैसे कि लुहार हथौडा, निहाई, सडांसीसे हरएक चीजको बनाता है लेकिन इन कारणोंके बनानेके लिये भी तो तीनोंकी जरूरत पड़ती है याना यदि उसने पहले हथौड़ा बनाया तो हथोड़ाके लिये भी हथौड़ा, सडांसा, निहाईकी जरूरत पड़ी, ऐसे ही सडांसीके लिये भी हथोड़ा सडांसीको जरूरत है आदि इससे मानना पड़ता है कि भागप्रवाहसे अपने २ कारणोंसे कार्य पैदा होते हुये चले आ रहे हैं। कोई खास समय ऐसा नहीं है कि सब कार्य नष्ट होकर प्रलय होजाय और फिर सिलसिले वार सृष्टि बनाई जाय अत एव गीतामें लिखा है।

"न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः,
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैवं सुकृतं विभुः
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः"

अर्थात् परमात्मा न तो सृष्टिको करता है और न किसीके पुण्य पापको बनाता है केवल अज्ञानसे लोग मोहित हो रहे हैं।

यदि सृष्टि करना ईश्वरका स्वभाव है तो हमेशां सृष्टि बनती ही रहे प्रलय कभी होना ही नहीं चाहिये। क्योंकि सृष्टि करना और प्रलय करना ये दोनों विरुद्ध हैं, एक वस्तुमें पाये नहीं जाते। यदि ये दोनों ईश्वरके विभाव हैं तो वह स्वतन्त्र कर्ता नहीं ठहरा क्योंकि जीवोंके पुण्य पापके अनुसार सृष्टि बनावेगा या विगाडैगा? तथा च ईश्वरपना और दयालुपना दोनों ही नहीं ठहरेंगे। एक अपराधीने ऐसा कार्य किया जिससे कि उसे छः महीनेकी सजा होना चाहिये मजिस्ट्रेटने उसको छः महीनेकी सजा दे दी तो क्या वह मजिस्ट्रेट दयालु और सर्वशक्तिमान् कहा जा सक्ता है? कभी नहीं।

बुद्धिमान् लोग जो कोई भी कार्य करते हैं स्वार्थ या करुणासे ही करते हैं। ईश्वर जब कृतकृत्य हो

चुका है तो उसे स्वार्थ ही क्या? यदि कहोगे कि वह क्रीड़ासे करता है तो बच्चेकी तरह मोही ठहरैगा, यदि करुणासे कहोगे तो उसने गरीब, लंगड़, लूले प्राणियोंको क्यों बनाया? तथा हिंसक जानवर और राक्षसोंको क्यों तैयार किया? क्या कोई पिता ऐसा देखा है जो कि अपनी सन्तानमेंसे एक दूसरेको मरवा डाले और आप मौजसे देखता रहे? किन्तु देखते हैं कि प्रतिदिन हजारों पशु पक्षी लाखों ही कीट पतंगादिको मारकर खा जाते हैं इस बातसे ईश्वरके कर्तृत्व, दयालुता ज्ञान और सावधानी आदि गुणोंमें कर्तावादियोंके मतसे बट्टा लगता है, नीति भी है कि—

"विषवृक्षोपि संवर्द्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतम्"

अर्थात् बुरा पेड़ (धतूरादि) भी बढ़ाकर अपने हाथसे काटना नहीं चाहिये। प्राणियोंको बनाकर पुनः मारनेसे ईश्वरको अधर्म लगना चाहिये 'मित्रों'! इतना विचारशील परमात्मा क्यों हजारों प्राणियोंको पैदा करता और मारता है। यूरुपीय युद्धमें लाखों आदमी मर गये इन्फ्ल्यूइन्जामें सैकड़ों कुटुम्ब बरबाद होगये, क्या यह विचारे परमात्माका कर्तव्य है? नहीं। यह सब हम लोगोंकी कुमति और जड़ पदार्थोंका विपरीत विकास होनेका ही फल है। प्रत्येक आत्माके साथ सूक्ष्म शरीर (पुण्य पाप) भी लगा हुआ है उससे ही जीना, मरना, जवानी बुड्ढापन आदि व्यवस्थित हैं। पुरुषार्थ और जड़विकाससे पदार्थोंकी अनेक अवस्थायें होती रहती हैं।

यदि एक बच्चा पैदा हुआ तो पैदा होनेके माने क्या? इसको विचारिये माता, पिताके रज वीर्यसे उसका शरीर बना। दूसरी योनिसे उसमें जीव आया, फिर खाने पीनेसे शरीरमें अनेक अवस्थायें हुई, बादमें समय पाकर वह आदमी मर गया अर्थात् जीव दूसरी योनिमें चला गया उसका मृत शरीर जला दिया गया जिसके अंश पृथ्वी, जल वायुमें मिल गये।

इसलिये पैदा होना, जिन्दा रहना, मरना, केवल पदार्थोंका विकार है, इस तरह सृष्टि, प्रलय दुनियांमें रोज क्या हर एक मिनट और सैकिण्डमें होते रहते हैं। हर समय सैकड़ों पैदा होते हैं और सैकड़ों मरते हैं। बीसियों जगह आग लगती है और पचासों जगह सर सब्ज हो रही हैं आदि कहांतक कहैं यह सृष्टि और प्रलयका जोड़ा अनादि कालसे अनन्त काल तक हर वक्त कायम है।

जैनसिद्धान्तमें पदार्थकी क्रमशः छै अवस्थायें बतलाई हैं जायते, अस्ति, विपरिणमते, वर्द्धते, अपक्षयते, विनश्यति पहले पदार्थ (पर्याय) पैदा होता है, आत्मलाभ करता है, परिणमन करता है, बढ़ता है कम होने लगता है और आखीरमे बिलकुल नष्ट होजाता है, इस तरह प्रत्येक पदार्थका परिणमन हो रहा है।

प्रायः सब लोग जानते हैं कि जेठ वैशाखमें खूब गर्मी पड़ती है और आंधियां चलकर भूलण्डलमें खात लग जाता है। बादमें मेह गिरता है तो पृथ्वीमें फिर अन्न पैदा करनेकी ताकत पैदा हो जाती है। बीज मिलने पर हजारों, लाखों मन अन्न पैदा होजाता है जिससे कि हम सब लोग जीवित हैं। इसी तरह समय पाकर स्त्री पुष्पवती [रजस्वला] होती फिर वीर्यका सम्बन्ध होनेपर बालक पैदा हो जाता है, फिर घी, गुड़ आदिसे पुनः सन्तति प्रसवकी शक्ति हो जाती है, इस तरह जड़, चेतनसे ही तमाम सृष्टि बनती रहती है। तथा प्रकृति ही चौमासेमें मेह बरसाकर असंख्याते सूक्ष्म जन्तु पैदा कर देती हैं, वे जन्तु कड़ी धूप पड़ने और मेह बरसनेसे नष्ट भी हो जाते

हैं, एवं एक हत्यारा मनुष्य या जानवर सैकड़ों और हजारों पशु पक्षियोंको मार डालता है तब विचारें कि ईश्वर विचारा इसमें क्या मीन मेख लगाता है ?

सर्वत्र अन्वय और व्यतिरेकसे कारणका निश्चय किया जाता है यदि अन्वय व्यतिरेक होते तो "ईश्वर के होने पर ही कार्यका होना" और न होनेपर कार्य का न होना यह बात पाई जाती किन्तु यहां अन्वय तो प्रत्यक्षसे ही बाधित है क्योंकि कार्योंकी उत्पत्ति अपने २ कारणोंसे ही देखी जाती है न कि ईश्वरसे।

यदि आपके कहने मात्रसे ईश्वरके साथ अन्वय मान लिया जाय तो आकाशको भी कारण मानना पड़ेगा।

व्यतिरेक दो तरहका होता है एक देशकृत और दूसरा कालकृत, । जब कि ईश्वर व्यापक है तो यह देश कृत व्यतिरेक नहीं बनेगा कि 'जहां २ ईश्वर नहीं है वहां २ कार्य नहीं होता' क्योंकि ईश्वरको सब जगह आप मानते हैं। और जब कि ईश्वर नित्य है तो यह काल व्यतिरेक भी नहीं बनेगा कि 'जब २ ईश्वर नहीं है तब २ कार्य नहीं होते" मित्रो ! आप ईश्वरको परिणामी मानते हैं या अपरिणामी ! यदि परिणामी (कार्य) मानते हैं तो ईश्वरको या उन परिणामों को किसने बनाया ! यदि अन्य ईश्वरने बनाया तो दो, तीन, चार ईश्वर मानने पड़ेंगे यदि विना अन्य ईश्वरकी सहायतासे वे बन गये तो उसी तरह सूर्य चन्द्रमा आदि भी विना ईश्वरकी सहायताके अपने २ कारणोंसे ही बन सकेंगे ! व्यर्थ ही बीचमें ईश्वरके माननेकी क्या जरूरत है ! यदि ईश्वरको आप अपरिणामी [कूटस्थ नित्य] कहेंगे तो वह कुछ भी कार्य नहीं कर सक्ता, पानीका नीचे बहना, और अग्निका ऊपर जाना, वायुका तिरछा चलना ऐसे विरुद्ध कार्योंको एक कारण कभी नहीं कर सक्ता क्या आपने कोई ऐसा इन्जिन देखा है ? जो एक जगह चुपका खड़ा होकर गाड़ियोंको चारों तरफ चला देवे। बहुतसे मनुष्य, जीवोंके शरीर बनानेकी अपेक्षासे ही ईश्वरको महान् और पूज्य समझते हैं किन्तु देखा जाता है कि छोटे बालक भी प्रयोगोंसे मेंढकियां बना लेते हैं बेसन और दहीके मिलानेसे या सिरकामें लट आदि कीड़े बना लेते हैं, तथा आम, अमरूद रोटी दालके सड़ जाने पर स्वयमेव हजारों जानवरोंके शरीर बन जाते हैं। एतावता वे लोग जीवात्मा और प्रकृतिको ही क्यों नहीं महत्व देते। वस्तुतः देखा जाय तो बात यह है कि इतने संसारी जीव जिनकी गणना नहीं कर सक्ते हैं अनेक योनि योंमें जन्म मरण करते हुये परि भ्रमण करते रहते हैं आटा, दाल, बेसन, अमरूद आदि बाह्य निमित्त पाकर सड़ जाते हैं और कई निमित्तसे ही सम्मूर्छन शरीर बन जाते हैं तब ही दूसरी योनियोंसे आकर जीव उनमें जन्म ले लेते हैं बादमें लट, कीड़े, बिच्छू, मेंढकी आदिकी सूरतमें नजर आते हैं। अब वे बत लावें कि इसमें ईश्वरने क्या किया ?

कोई भोले लोग कहा करते हैं कि जड़ कारणों को इल्म नहीं है इसलिये उनको ठीक २ कार्य रूप करनेके लिये चेतन कर्ताकी आवश्यकता है। यदि ऐसा ही माना जाय तो पेटमेंसे ही अन्धे, कुबड़े, बौने पैदा नहीं होना चाहिये क्योंकि पेटमें ईश्वर बैठा हुआ है। कुदरती [प्राकृतिक] कार्योंमें भी हम कई तरहकी गल्तियां देखते हैं जैसा कि—

"गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदण्डे
नाकारि पुष्पं खलु चन्दनेषु,
विद्वान् धनाढ्यो न तु दीर्घजीवी
धातुः पुरा कोपि न बुद्धिदोभूत्"

और भी लीजिये पापी लोग पुज रहे हैं धर्मात्मा दुःख झेल रहे हैं । भ्रूण हत्या करने वालियोंके गर्भ रहते हैं और पुत्र चाहने वालियोंकी कोखें खाली हैं—

मेवा आदि उत्तम चीजें म्लेच्छ खण्डोंमें पैदा होती हैं, जरूरतके वक्त पानी नहीं बरसता, इत्यादि सैकड़ों गलतियां प्रकृतिके कार्योंमें भी हो रही हैं, यदि इन सब कार्योंको सम्भालने वाला सर्वशक्तिशाली ईश्वर होता तो क्या गलतियां हो सक्ती थीं ?

जिस आफिसमें ज्ञानवान और शक्तिशाली अफसर बैठा हुआ है क्या उस दफ्तरके भी कागजात आप गलत पावेंगे ! कभी नहीं ।

यदि यही नियम मान लिया जाय कि विना चेतन कर्ताके जाने हुये कारणोंसे कार्य हो ही नहीं सक्ता तो सोती हुई दशामें हमारे हाथ पैर नहीं चलना चाहिये किन्तु हम देखते हैं कि एक सोता हुआ आदमी हाथ, पैरोंको इधर उधर रखता है, करवटें लेता है लेकिन उसको कारणोंका परिज्ञान नहीं है, इसलिये मानना पड़ता है कि कार्य अपने कारणोंसे ही हो जाते हैं, नर्मदा नदीके कंकड़ पानीके टक्करसे परस्पर में नोंक घिसते २ गोल हो जाते हैं उनके गोल करनेके लिये हजारों संगतराश वहां नहीं बैठे हैं । मैं तो यहां तक कहता हूं कि आप जिन कार्योंमें खाना पीना, फैसला देना, घड़े, कपड़ा बनाना आदिमें) जीवात्माको कर्ता कहते हैं उन कार्योंको बहुभाग जड़ प्रकृति ही संभालती है, कुंभार भी घड़ेको हाथ, पैर दण्ड और चालसे बनाता है मरे हुये कुंभारकी (शरीर रहित) आत्मा घड़ेको नहीं बना सकती ।

मजिस्ट्रेट भी चोरको सजा देता है उसमें भी सनद अदालत आदि कारण हैं, यदि मजिस्ट्रेटकी आत्मा ही सजा दे देती तो नौकरीसे छूटने पर या घरमें बैठे हुए सजा क्यों नहीं कर देते ! अत एव गीतामें लिखा है कि—

'प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ।
अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते" ॥

यानी कृष्णजी कहते हैं कि प्रकृतिके बनाये हुये कार्योंको ही यह मूढ जीव अपने बनाये हुये मान रहा है ' मित्रो" इस तरह ईश्वरको कर्ता माननेमें अनेक दूषण आते हैं यदि हर एक कार्यका कर्ता ईश्वर मान लिया जाय तो दीक्षा लेना, सत्य बोलना, आदि पुण्य कर्म व्यर्थ होजायंगे और उल्टा पाप करना ईश्वरके जिम्मे पड़ेगा । यदि आप कहेंगे कि जीवात्मा कर्म करनेमें स्वतन्त्र है और फल भोगनेमें परतन्त्र है तो आप विचारिये कि एक आदमीको ऐसा फल देना है जिससे कि उसका धन चुराया जाय, ईश्वर खुद तो धन चुराने आवेगा ही नहीं किन्तु किसी चोरको भेजेगा, चोरने आकर धन चुराया और सिपाहीने पकड़ लिया । चोरको एक वर्षको सजा होगई ऐसी दशामें आपका उक्त सिद्धांत बिगड़ जाता है, दूसरे हम देखते हैं कि कांटा, जहर, बिजली, जाल आदि जड़ पदार्थ, और सर्प मच्छर बिच्छू सिंह आदि चेतन दुःख भुगाते हैं । तथैव दूध, घी, तकिया बिस्तर आदि जड़ पदार्थ और घोड़ा, गाय, बैल, सज्जन, दास, आदि चेतन हमें सुख भुगाते हैं इसमें ईश्वर का फल देना क्या रहा ?

यदि आप कहेंगे कि सम्पूर्ण दुनियांके कार्योंका एक अधिष्ठाता जरूर होना चाहिये जैसे कि कुटुम्ब पति, ग्रामपतिके आधीन और ग्रामपति नगर पतिके आधीन, नगरपति राजाके आधीन और राजा महाराजाके आधीन होते हैं । या मकान बनाने वाले सब कारीगर एक स्थपतिके आधीन होते हैं उसी तरह सबका अधिष्ठाता एक ईश्वर है ।

प्रथम तो यह बात विचारनेकी है कि सबको अधिष्ठाताके आधीन रहनेकी व्याप्ति नहीं है। हवा बहती है, नदी गिरती है, सूर्य चन्द्रमा तारे चमकते हैं इन कार्यों में अधिष्ठाताकी कोई जरूरत नहीं है ।

भारतवर्षमें भी ही कुछ दिन पहले एक जमाना गुजर चुका है जब कि सम्राट नहीं था तो भी प्रत्येक प्रान्तमें योग्य रीतिसे शासन होता था। दूसरा यह भी नियम नहीं है कि एक मकानके लिये मुख्य स्थपति होवे ही। हम मकानके एक २ विभागको भिन्न २ समयमें भी अनेक कारीगरोंसे इनमें ज्यादा बढ़िया तैयार करा सक्ते हैं।

आप कहेंगे कि बनवाने वाला तो सेठ एक ही है लेकिन ऐसा भी कोई नियम नहीं है। हम देखते हैं कि कई पार्टियोंसे एक मकान तैयार होता है। अजमेर में एक मकान तीन पार्टियोंसे बराबर बन रहा है।

इस प्रकार कार्य कई तरहके किये जाते हैं। एक कार्यके अनेक भी कर्ता होते हैं जैसे कि मकानके बढ़ई, लुहार, संगतराश, मजदूर वगैरः। और अनेक कार्यों का भी एक कर्ता देखनेमें आता है जैसे घड़े, कुल्हड़ आदिका एक कुंभकार, जैसे ही एक कार्यके अनेक कर्ता और अनेक कार्यों का एक कर्ता भी होता है। अतः दुनियां भरके लिये एक अधिष्ठाताकी भी कोई आवश्यकता नहीं।

अनादिकालसे भिन्न २ कारणोंसे कार्यों की उत्पत्ति होती आ रही है तिलोंसे ही तेल क्यों बनता? बालूसे क्यों नहीं! कारणोंके विषयमें यह नहीं पूछा जा सकता कि अमुक कारणसे ही यह कार्य क्यों हुआ? क्योंकि "स्वभावोऽतर्कगोचरः" स्वभावमें तर्क नहीं चलती यदि ईश्वर सब ही कार्यों का कर्ता माना जाय तो वह अपना ही खंडन क्यों करवाता है! ईश्वरको उचित था कि दुनियां भरमें अपनी पूजा करवाता, लेकिन हम देखते हैं कि आधीसे ज्यादा दुनियां ईश्वरका कर्तृत्व स्वीकार नहीं करती। हम आप लोगोंसे बड़े जोरसे इस बातको कहते हैं कि हर एक कार्यमें चेतन को निमित्त कारण मानना उपयुक्त नहीं है। क्या आप खांसी, डकार लेते हैं उसमें आपकी कोई इच्छा है? बुखार, कै [वमन] सन्निपात आदि अनेक रोग शरीरको होजाते हैं तथा फोड़ा, फुंसी, तिल, मसे, खाल आदि निकल आते हैं उनमें क्या आपके ज्ञान इच्छा और प्रयत्न काम देते हैं! प्रायः कोई भी जीव फोड़ा हैजा, सन्निपातके लिये प्रयत्न इच्छा करता हुआ नहीं देखा जाता।

इसके विपरीत लोग यह बोलते हैं कि हमें कभी बुखार, सन्निपात वगैरः न हो। अगर हमारे प्रयत्न आदिसे कार्य होता तो हम कभी बीमार ही न होवें समझो! यह कार्य जड़ पदार्थके ही कार्य हैं। जीवके पास आकर जड़ पदार्थ अनेक तरह विपरिणाम (परिवर्तन) किया करता है, आगके पानीसे बकबक करता है आदि। मेरे कहनेका भाव यह नहीं है कि मैं चेतनको किसी कार्यका कर्ता न मानूं ध्यान करना व्याख्यान देना अध्ययन करना, आदि ऐसे अनेक कार्य हैं जिनके कि हम और आप कर्ता हैं। हां, परमात्माको कर्ता माननेमें मैं सर्वथा सहमत नहीं हूं. अब मैं इस विषयमें भारत वर्षके दार्शनिक ऋषियोंके मन्तव्य प्रमाण भी बतलाता हूं।–चार्वाक दर्शनके प्रणेता बृहस्पति आदि, ईश्वरको कर्ता नहीं मानते किन्तु पृथ्वी, अप, तेज, वायु इन चार तत्वोंसे ही सम्पूर्ण सृष्टिका तैयार होजाना स्वीकार करते हैं। इसी तरह सांख्यमतके प्रणेता कपिल ऋषि भी ईश्वरको कर्ता नहीं मानते प्रत्युत (बल्कि) "ईश्वरासिद्धेः" इस

सूत्रसे चेतन उदासीन भोक्ता पुरुषके अतिरिक्त ईश्वर को ही नहीं मानते हैं, सांख्य लिखते हैं कि "नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः"

अर्थात ईश्वरके विचारानुसार सब कार्य नहीं होते हैं किन्तु कर्म [सूक्ष्म शरीर या अच्छे बुरे काम] से ही सम्पूर्ण कार्य हो जाते हैं आगे लिखते हैं कि—

"कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यं
अहंकारः कर्ता न पुरुषः"
"अहंकारकर्त्रधीना कार्यसिद्धिर्नेश्वराधीना
प्रमाणाभावात्"

इन सूत्रोंसे बतलाते हैं कि कर्मोंकी विचित्रतासे नानाप्रकारकी सृष्टि बन जाती है अतः अहंकार ही कर्ता है चेतन कर्ता नहीं है और अहंकार [जड] रूपी कर्त्ताके अनुसार ही कार्य बना करते हैं, ईश्वरके आधीन नहीं क्योंकि इस बातका कोई सबूत नहीं है. अंतमें जाकर फैसला कर दिया है कि—

'अचेतनमपि प्रधानं वत्सविवृद्ध्यर्थं
क्षीरमिव सृष्ट्यर्थं स्वयमेव प्रवर्तते"

भावार्थ यह है कि जैसे गाय अपनी कोशिश और तवियतसे दूध नहीं बढा सक्ती किंतु बच्चा पैदा होनेपर बच्चेके पुण्यानुसार थनोंमें दूध बढ जाता है— इसी तरह अचेतन भी प्रकृति संसारकी रचनाके लिये अपने आप प्रवृत्ति करती है। योग लोगोंने भी ईश्वरको सर्वज्ञ माना है मोक्ष मार्गका उपदेष्टा भी माना है लेकिन स्वर्गादिककी प्राप्तिके लिये यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि, आदि को ही कारण बताया है।

मीमांसा दर्शन तो खुलासा तौरसे कर्मको ही कारण मानता है।

"कर्मसिद्धन्तिनो हि मीमांसकाः"

यानी स्वर्ग, नरक और पुण्य, पाप ज्योतिष्टोम, अग्निहोत्र आदि, सत्कर्मों और झूठ बोलना, चोरी करना, अभक्ष्य भक्षण करना, आदि, कुकर्मोंसे हो जाते हैं कोई ईश्वर सहायक नहीं है।

वेदान्त दर्शन यानी अद्वैतवादमें तो कर्ता बन ही नहीं सक्ता जीवात्मा, ईश्वरात्मा, स्वर्ग, नरक, पुण्य, पाप, ज्ञान अज्ञान, वेदान्तियोंने माने ही नहीं हैं वे तो केवल शुद्ध आत्माको ही जगत्में व्यापक मानते हैं। कहांतक हम दार्शिनिक ऋषियोंके प्रमाण देवें! बहुतसे ऋषि ईश्वरको शुद्ध, बुद्ध चिदानन्द मय मानते हैं। दुनियांका कार्य भार जीवात्मा और पुद्गलतत्त्व पर निर्भर है, गीतामें श्रीकृष्ण खुद कहते हैं कि हम किसीको कुछ देते लेते नहीं हैं। जिन सत्कर्मोंसे ब्राह्मण मोक्षगामी हो सक्ता है उन सत्कर्मोंसे एक वेश्याकी भी गति सुधर सक्ती है; पुरुषार्थियोंके लिये कैसा अच्छा गीता वाक्य है।

"उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मना बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धने."।

यानी अपने सत्कर्मोंसे ही अपनी आत्माका उद्धार करो तुम्हारे पैदा किये कर्मोंके छूटनेपर ही तुम्हें मोक्ष मिलेगी।

कर्मयोग प्रतिपादन करनेवाले अनेक वाक्य गीतामें हैं इसलिये आगम प्रमाणसे भी कर्ता सिद्ध नहीं हो सक्ता किन्तु जमीन, सूर्य, चन्द्रमा, तारा, आदि तो हमेशासे मौजूद हैं इसलिये इनके बनाने वालेको ढूंढना व्यर्थ है। आप कहेंगे कि हमारे शरीरको किसने बनाया? इस बातका संक्षेपमें खुलासा इसप्रकार है।

जाति रूपसे संसारमें दो पदार्थ हैं एक जीव और

दूसरा अजीव, लेकिन व्यक्ति रूपसे अनन्त ही तो जीव हैं और अनन्त ही अजीव हैं। अजीवमें कुछ ऐसे पदार्थ हैं जो कि जीवसे मिलकर सुख दुःख पहुंचाते हैं जैसे कि शराब बोतलको नहीं नचाती लेकिन पीने वालेको नचा देती है। इसी तरह अनादिकालसे धारा प्रवाह रूपसे लगे हुये कर्मोंके वशीभूत होकर यह संसारी जीव ही अपने सुख दुःखको बनाता है कायम रखता है और अन्तमें नष्ट करदेता है, जैसे कि सुवर्ण खानिमेंसे सौ टंचका नहीं निकलता बल्कि प्रयत्न करनेसे शुद्ध होजाता है इसी तरह हर एक जीवात्मा यदि प्रयत्न करे तो जड़के सहारेसे बनाये हुये अपने संसारको नष्ट कर मोक्ष प्राप्त कर सक्ता है।

कर्म जिनको कि सूक्ष्म शरीर कहते हैं ठसाठस दुनियामें भरेहुये हैं जैसे कि हम छातीकी धोंकनीसे हवाको खींचकर श्वासोच्छ्वास बना लेते हैं या प्लेग, हैजाके स्थानमें जानेपर प्रयत्न और इच्छाके बिना भी रोगके कीटाणु हमारे शरीरमें घुस जाते हैं या बगीचे में जाने पर बिना कोशिशके भी हमारे शरीर, आंख, दिमागको प्रसन्न करनेवाले परमाणु (जर्रे) शरीरमें घुस जाते हैं वैसे ही इल्म, इच्छा और कोशिश न होते हुये भी पुण्य, पाप कर्म हमारी आत्मामें प्रविष्ट (जज्ब) होजाते हैं। जब हम पूजन, दान करते हैं सच बोलते हैं तब हमारी आत्मामें पुण्य कर्म खिंच आते हैं और झूठ बोलते और चोरी करते हैं तब पाप कर्म चुपट जाते हैं, लोहे का चुम्बक पत्थरके साथ जैसा खींच लेने और खिंचजानेका आकर्ष्य और आकर्षक सम्बन्ध है उसी तरह कर्म नोकर्म और आत्माका आकर्ष्य आकर्षक संबंध है। हम देखते हैं कि पेटमें जाकर भातके रस, रुधिर, मांस, मेदा, हड्डी, चर्बी, वीर्य बन जाते हैं और अपनी अपनी जगह पहुंचकर आत्माको सुख दुःख देते हैं, इस शरीर और खाने पीने का, मृत्युपर्यन्त सम्बन्ध है यानी पहलेके भोजनसे पित्ताशय और लार बनी, उसके सबबसे आज खाते हैं और आजके भोजनसे पित्त और लारसे फिर खावेंगे, बीज और अंकुरकी तरह पित्त, लार और भोजनका सम्बन्ध धाराप्रवाहसे चला आता है उसी तरह आत्मा और कर्म (जड़पिण्ड) का भी अनादि काल से सम्बन्ध है।

आप लोग आत्माको तो नित्यमानते ही हैं क्योंकि आपके यहां लिखा है कि—

"न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे"

यानी आत्मा नित्य है अजर, अमर है लेकिन हमेशासे बंधा हुआ है। यदि आत्माको पहलेसे शुद्ध माना जावे तो फिर बीचमें बंध होनेका कोई कारण नहीं दीखता तथा च सभी आत्मा मुक्त होजायंगे, संसारका नाम ही मिट जायगा, लेकिन हम देखते हैं कि असंख्यात जीव परतंत्र होकर हजारों योनियोंमें दुःख भुगत रहे हैं इससे मालूम हुआ कि संसारीजीव अपने गुणोंसे नहीं, किंतु दूसरे पदार्थसे बंधा हुआ है क्योंकि अपने गुणोंसे न कोई बंधता है और न पराधीन होता है, बल्कि अपने गुणोंसे तो पदार्थ स्वतंत्र होजाता है इससे सिद्ध हुआ कि जीव भी विजातीय परद्रव्यसे बंध रहा है। जैन सिद्धांतमें उस परद्रव्यको कर्म कहते हैं।

एक कुलीन ब्राह्मण वीर्यके उद्रेक या वशीकरण चूर्णके आधीन होकर जैसे परस्त्रीके घरमें चला जाता है उसी तरह कर्मोंके चक्करमें पड़कर संसारी जीव भी अनेक योनियोंमें भ्रमण करता है।

आत्मासे स्थूल शरीरको तो सम्बन्ध आप देखते

ही रहे हैं उसी तरह प्रतिक्षण सूक्ष्म शरीरका भी सम्बन्ध होता रहता है भातके दृष्टांतमें जो बात हम कह चुके हैं वे सब बातें कर्ममें भी लगालेना अर्थात् जैसे भातका रस, रुधिरादि होकर कान, नाक, हाथ, पैर छोटी नसें आदिके लिये उपयोगी द्रव्य बनता है उसी तरह आत्माके परिणामोंसे कर्मद्रव्यके भी ऐसे टुकड़े बनजाते हैं कि फल काल आने पर आत्माको सुख दुःख देनेके लिये अङ्ग, उपाङ्ग तैयार करदेते हैं। जिस तरह अपथ्य पदार्थ खानेसे या ज्यादा खाजानेसे पेटमें दूषित परमाणु जमजाते हैं, हमे नहीं मालूम पड़ता कि कितने २ दिनमें किस प्रकारका बुखार आवेगा ? लेकिन उन दुष्ट परमाणुओंके फल कालमें बुखार जरूर आता है वैसे ही कर्मोंमें भी स्थिति पड़ता है और अपने २ समय आने पर वे आत्माको रस देते हैं। यह कर्मोंका सिलसिला भी बीज वृक्षकी तरह अनादिकालसे ही चला आरहा है यानी कर्मोंसे आत्माके परिणाम क्रोध, मान, माया, लोभ काम आदि बनते हैं और इन परिणामोंसे पुनः दूसरे कर्मोंका बंध होजाता है और उनसे फिर राग द्वेष भाव होते हैं कर्म सिद्धांत (Filosofy) विषय गहन है स्वतंत्र ही इसका विवेचन किया जासक्ता है। हम जानते हैं कि आप लोग इस कथनसे समझ चुके होंगे कि शरीरादिकका बनना कर्मोंसे ही सम्बन्ध रखता है, ईश्वरसे नहीं।

संसारमें सभी पदार्थ अनादि निधन हैं केवल भिन्न २ कारणोंके सबब अवस्थासे अवस्थांतर होता रहता है अर्थात् द्रव्यकी अपेक्षासे सब ही पदार्थ नित्य हैं और पर्यायरूपसे सब ही अनित्य हैं, लोक या दुनियां जिसका कि आप ईश्वरको कर्ता, रक्षक, संहारक मानते हैं वह लोक भी कोई एक चीज नहीं है किंतु जिस तरह वृक्ष, मकान, आदमी गली, कूंचा और जानवरोंके समुदायका नाम ही ग्राम है किसी एक ही वस्तुका नाम नहीं ठीक उसी तरह लोक भी अनेक द्रव्यों (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म आकाश, काल) का समुदाय है।

सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो लोकमें हजारों चीजोंका हरवक्त उत्पाद व्यय होता रहता है इसलिये वह लोक (दुनियां) अनित्य है और लोकका स्थूलाकार कभी नष्ट नहीं होता इसलिये नित्य है, इस विषयमें ऋषियोंका भी मत है कि—

"असृष्टोऽयमसंहार्यः स्वभावनियतस्थितिः"

अर्थात् इस दुनियांको न कोई बनाता है और न कोई उसका संहार करता है अपने २ स्वभावसे हर एक पदार्थ नियतकाल तक कायम रहते हैं। अब आप युक्तियोंसे समझ चुके होंगे कि ईश्वर सृष्टिका कर्ता नहीं है—जैन न्याय शास्त्रोंमें बड़ी प्रबल युक्तियोंसे ईश्वर कर्तृत्वका निषेध किया है और जैनसिद्धांत शास्त्रोंमें पुष्ट प्रमाणोंसे जीवात्मा और पुद्गल तत्त्वसे सृष्टिका विकास सिद्ध करदिया है। मैंने जहा तक हो सका सरलताके साथ ही उस विषयका प्रत्यक्षप्रमाण, युक्तिवाद (अनुमान) तथा आगम प्रमाणसे विवेचन किया तथा बतलादिया है कि जैन लोग ईश्वरका निषेध नहीं करते हैं किन्तु उसके सृष्टि कर्तृत्वकी सप्रमाण समालोचना करते हैं-जैन लोग ईश्वरको मानते हैं और जैनियोंका श्रद्धान है कि परमात्मा इन संसारी झगड़ोंसे बिलकुल अलग है और अपने अ-

स्तित्व, चैतन्य, अनंतसुख, सम्यक्दर्शन, सर्वज्ञता, आत्मनिष्ठा, आदि गुणोंमें ही तल्लीन है. पूज्यपाद स्वामीने लिखा है कि,,

"निर्मलः केवलः सिद्धो विविक्त प्रभुरक्षयः।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिनः"

आशा है पाठक मेरे इस लेखका मनन करेंगे ।

भू-पर्यटन।

(लेखक-श्रीयुत धन्यकुमार जैन 'सिंह')

साहित्यमें अमरता।

जीवित अवस्थामें अतुल यश और मृत्युके बाद अमर कीर्तिके लोभसे साहित्य क्षेत्रमें प्रवेश किया था। किंतु कुछ दिन मनःस्वच्छतनोंके कमल काननमें मद माते हाथीके समान निरंकुश भावसे घूम फिर कर देखा गया कि-यशकी दीवाल बहुत ही ऊंची है। और वहां पहुंचनेका मार्ग भी अत्यन्त दुर्गम है। निराशासे हृदयको बहुत ही कष्ट पहुंचा। वहांसे लौटना ही चाहता था कि, इतनेमें आशा-देवीने अपना सूक्ष्म प्रकाश डाल ही तो दिया।

थोडे ही दिन हुए विलायतसे भूतपूर्व प्रधान मंत्री लार्ड रोजबेरी अपने जातीय साहित्यका विभाग करते हुए असार और क्षणस्थायी साहित्यमेंसे सारवान और चिरस्थायी अंश पृथक कर रहे थे। इसी विषयमें उनने कहा था—

अर्थात्—भ्रमण संबंधी पुस्तकोंकी एक तरहसे मृत्यु नहीं है यह कहा जा सकता है। अतएव यदि सस्तेमें साहित्यिक अमरता प्राप्त करनी हो, तो सिर्फ एक भ्रमण वृत्तांत लिखना आवश्यक है। कवि शायद किसी दिन शरीर छोडेगा, गल्प लेखक कालस्रोतमें बुदबुदेके समान उठकर शीघ्र ही उसीमें मिल जायगा, दार्शनिक, ऐतिहासिक और औपन्यासिक भी विस्मृतिके गहरे गड्ढेमें डूब जायंगे. परंतु भ्रमण-कहानी-लेखक क्षण भंगुर देहके विनाशके बाद भी काफी ऊंची शिखर पर बैठकर चिरकाल अविनश्वरताके पवित्र और उज्वल आलोकसे सुशोभित रहेगा। यशके मंदिरकी ऐसी सुगम रास्ता [Short cut] आविष्कार कर लार्ड बहादुरने साहित्यजगतको सचमुच ही चिर कृतज्ञताके जालमें फंसा लिया है।

और भी एक सुविधा यह है कि लेखन शैली अच्छी हो या बुरी, उससे ऐसी कोई हानि नहीं होती जो साहित्यिक-अमरतामें विघ्न डाल सके। कारण स्वयं लार्ड बहादुर कहते हैं -

अर्थात्—उनकी रायमें भ्रमण-कहानी कितनी ही नीरस क्यों न हो वह अपाठ्य नहीं हो सकती।

जो एक दिन समग्र अंग्रेज-राजत्वके, अर्थात् समस्त भूमण्डलके चौथाई हिस्सेके भाग्य विधाता थे, उनकी राय कभी अग्राह्य नहीं की जा सकती।

---

१ न्यायाचार्य श्रीयुक्त पं० माणिक्यचन्द्रजीने १९७६ के वैशाखमें जो हिमामें व्याख्यान दिया था उसीका यह लिखित विवरण है। इस विवरणमें विशेष उर्दू शब्दोंका उपयोग उस प्रांतके भाइयोंके समझनेकेलिये किया गया था क्योंकि वहां उर्दूकी चाल विशेष है, सब लोग संस्कृत शब्द नहिं समझ सकते।

संपादक

सोच विचार करना व्यर्थ है। बस ऐसा खूब सोच समझ कर उसी समय मैं टेबिल पर जाकर बैठ गया और श्रीमान् लाट बहादुरको एक परोक्ष सलाम ठोंक कर नवीन उत्साहसे साहित्य-क्षेत्रमें पदार्पण कर डाला।

उपाय चिंता और विवेक-दंशन।

प्रारंभमें ही एक अन्तराय उपस्थित हुआ। अचानक याद आई कि, भ्रमण विवरण लिखनेमें पहिले साधारणतः कुछ भ्रमण करना आवश्यक है। उसके लिये तो बहु-परिश्रम समय और अर्थ व्ययकी जरूरत होगी। अब उपाय क्या है?

इतनेमें हमारे एक मित्रकी बात याद आई। वे एक सुप्रसिद्ध पर्यटक हैं। इस पृथ्वीके प्रायः सब स्थानोंकी वे चर्चा करते हैं। आज इटालीके मिनिस नगरी—"गंडोला" पर चढ़कर विचरण, कल साईबेरियाके तुषार प्रान्तमें "स्काई" [Ski] पर परिभ्रमण, कभी पारस्य देशमें ईरानी सुन्दरियोंसे प्रेमालाप और कभी [फ्रांस] पश्चात्य विलासिताका केन्द्र "पैरी" नगरीके सुरम्य "होटल" में बास; इत्यादि नाना विषय वर्णनमें वे हमेशा ही मशगूल रहते हैं। और पाठक भी उनकी अपूर्व भ्रमण-कहानी अत्यन्त लालसाकी दृष्टिसे पढ़ते हैं।

परंतु श्रोताओंमें सुजन कुजन दोनों हैं; इसीसे मित्रवरको कभी कभी जरा दिक्कत उठानी पड़ती है। जैसे-मेसोपटेमिया प्रदेशमें उल्लूक-शिकारका वर्णन पढ़कर कोई धृष्ट व्यक्ति बोल उठी, "सो कैसे? तुम जिस तारीखकी बात लिख रहे हो, उस दिन तो तुम्हें मैंने सोनागाछीको मोड़पर घूमते देखा है!

आखिर दुष्ट प्रकृतिके लोगोंने यह कहना शुरू किया कि, उनकी समस्त कहानी अमूलक हैं। घर बैठे २ बहुतसे भ्रमण-वृत्तांत पढ़कर कल्पनाकी सहायतासे यह सब सृष्टि की है।

तब मित्रवरने और एक उपाय निकाला। उन्होंने नाना स्थानोंके दृश्योंकी तशवीर-सहित पोष्टकार्ड खरीदे। किसी विख्यात जहाज कंपनीके एक कर्मचारीसे उनकी मित्रता उपयुक्त थी। वे उसी कर्मचारी द्वारा उन पोष्टकार्डोंको नाना सुदूर देशोंके उपयुक्त स्थानोंको डाकसे अपने बन्धु वर्गोंपर प्रयोग करने लगे। हस्ताक्षर सहित कार्ड और पोष्ट आफिसकी मुहर-इससे बढ़कर विश्वास योग्य प्रमाण और क्या मिल सकता है? "लिखित-प्रमाण" के आगे किसीकी भी नहीं चलती। अतएव उनकी पर्यटनकी ख्याति थोड़े ही दिनोंमें प्रभात-सूर्यके समान लोगोंके मनको लुभाने लगी।

मन ही मन स्थिर किया कि, भ्रमण-वृत्तांत लिखनेके लिये यही पन्थ समीचीन है। विशेष कोई कष्ट व अर्थव्यय नहीं है। घरके कोनेमें बैठकर, केवल मात्र भ्रमण संबंधी दो चार पुस्तकोंका आडंर लिखकर उसकी V. P. छुड़ा लेनेसे ही काम चल जायगा।

प्रथम श्रेणीके मासिक पत्रोंमें प्रकाशित 'हमारा भ्रमण' 'तीर्थ-पर्यटन' 'मेरी सोनागिर-यात्रा' 'मेरा दक्षिण प्रवास' इत्यादि सुविख्यात लेखकोंके लिखी हुई अनेक भ्रमण-कहानियोंके पढ़नेसे मालूम हुआ कि, रास्ते मित्र दोस्तोंके साथ क्या रसिकता हुई, रेल गाड़ीमें कितनी बार 'सिगरेट सुलगाई' भ्रमण कालमें कितने लोगोंने मुझे एक देशमान्य महत् व्यक्ति जानकर अपनेको कृतार्थ समझा इत्यादि बातोंको मय कामा, फुलिस्टप, डैस आदिके लिख देनेसे ही यह एक उच्च श्रेणीका भ्रमण वृत्तांत समझा

आवेगा। इसके अतिरिक्त यदि स्थानीय दो चार चित्र दे दिये जांय। और कहीं कहीं दो एक लाइन अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, हिन्दी वा बंगला कविता उद्धृत कर दी जाय तब तो वह सोनेमें सुगंध ही है।

बस पत्रमें प्रथम दिन डेट कर कागजके शिरोभाग पर "वंदे जिनवरम्" लिखकर ग्रन्थारम्भ कर ही रहा था कि—ठीक उसी समय अकस्मात सोई हुई विवेक शक्ति जाग उठी। सहसा हृदय कह उठा— इतना बड़ा एक महान कार्य- अपना जीवन जिसका फल है—वह क्या एक मात्र जुआ चोरीके आधार पर रहेगा

विवेक बोला— कभी नहीं।

तब सुदृढ़ प्रतिज्ञा की—"पहिले भ्रमण, पीछे लेखना आरम्भ।"

भ्रमण- यात्रा।

मैं देश भ्रमणमें जाऊंगा यह बात मित्र समाजमें शीघ्र ही प्रचारित हो गई। भ्रमणके लिये दो जन साथी भी मिले। एक तो मेरे पड़ोसके ही उदीयमान कवि (अधमी लड़के उदीयमान कवि कह कर खूब ही हंसा करते हैं) गयाराम, और दूसरे सर्वशास्त्रवित् मिष्टर गिडहो। दोनोंका कुछ परिचय देना आवश्यक है।

गयाराम गांवका रहने वाला था। अब अंग्रेजी पढ़ लिखकर सभ्य-भव्य-नव्य बनकर गांव छोड़कर शहरमें रहने लगा है। चापलूसी-चक्रका वह पूर्ण रूपसे जानकार है। इसी चक्रके सहारे थोड़े ही दिनोंमें वह साहित्य-जगतमें आ कूदा है। अब वह एक सुप्रसिद्ध कवि, समाज-संशोधक आदि विशेषणोंका पात्र है। इसके सिवा उसने नगद ४॥=) खर्च करके कहींसे "कविता-सागर" नामकी एक उपाधि संग्रह की है। उसमें कई गुण ऐसे भी हैं; जिनके कारण वह समाजका प्रेमी बन बैठा है।

मेरे द्वितीय संगी मिष्टर गिडहो भी एक असाधारण पुरुष हैं। सिक्स फीट चार चेहरा है मूंछोंके दोनों किनारे रेजरसे साफाचट करा लिये हैं सदा [illegible] सिर [illegible] से शोभित हैं। मुंह पर एक विलक्षण गंभीरताकी छाया घरसे बाहर निकलते ही पड़ जाती है। सौभाग्य है तो नहीं; पर अधिकांश समय आपका "क्रिकेट" पार्टीमे व्यतीत होता है। हावभावमें "अंग्रेजी" पना संपूर्ण रूपसे जाहिर होता रहता है।

इनके सिवा गुण भी बहुतसे हैं। निखिल ब्रह्माण्डमें ऐसी कोई विद्या वा विषय नहीं है, जिसमें वे टांग लगानेमें असमर्थ हों। पूर्वाचार्यकृत पवित्र आगमोंकी समालोचना और अपने बाप दादोंको ले लेकर राजनैतिक जगतकी खबर और घुड़दौड़की "टिप" Tip पर्यन्त समस्त ही उनके फाउन्टेनपेनके अग्र भागमें भरा है।

लड़कपनमें उनकी सूरतकी आकृति अपने देशके मनुष्यों जैसी थी पर युवावस्थामें एक नवशिक्षिता युवती के प्रेमपाशमें उलझ कर "विदेशी मैम" से कुछ मिलती जुलती सी हो गई है। नामके परिवर्तनसे ग्रामवासियोंको तो बहुत ही सुभीता हुआ। पहिले उन्हें 'नृपेन्द्र बाबू' के उच्चारणसे रसनाको बहुत ही टेढ़ा साधा हांकनी पड़ती थी, पर अब 'गू' हो सा'ब' कहनेमें बड़ी सरलता पड़ती है।

जो हो, मुझे तो दो अमूल्य साथी मिल जानेसे उत्साह दूना बढ़ गया। भाग्य वश वा कारुणिक पूर्व पुरुषोंकी अनुकंपासे हम तीनोंमेंसे किसीको भी

अर्थ वा समयका अभाव नहीं था। अत एव संघटना हुई भी भली।

उद्योग पर्व।

कब, किस समय, किस ओर, किसप्रकार यात्रा की जावेगी, यह निर्णय करनेके लिये हमारी पर्यटन समितिकी एक मीटिङ्ग [Meeting] हुई।

मि० गिडहोने कहा—"साधारण जनोंकी तरह केवल देश-दर्शनके लिये भ्रमण करना संपूर्ण ही निरर्थक है। सब देशोंमें ही मनुष्य, पशु, वृक्ष, लता, घर द्वार, बगीचे आदि हैं। इनके देखनेके लिये भिन्न देशोंमें जानेकी कोई जरूरत नहीं। जिससे मानव-जातिके ज्ञान और विज्ञानकी उन्नति हो सके, ऐसे उद्देश्यसे भ्रमण करना चाहिये। अत एव इस विशाल भूमण्डलमें जो जो देश अभी तक संपूर्ण आविष्कृत नहीं हुए हैं, अथवा जिन जिन देशोंके विषयमें मनुष्योंका ज्ञान अभीतक असंपूर्ण है, ऐसे देशोंमें भ्रमण करना ही हमको उत्कृष्ट प्रतीत होता है।"

मैंने और गयारामने इस प्रस्तावको संपूर्ण रीतिसे पुष्टि की। और बहुत ही कृतज्ञता जाहिर करते हुए ऐसे देशोंके निर्वाचनके लिये उन्हें उत्साहित किया। इसपर अनेक तर्क वितर्क हुए। विद्वान मि० गिडहोने अपना विचार यह प्रकट किया।

"परंपरासे सुना गया है कि, कलकत्ते शहरके दक्षिण दिशामें भवानीपुर नामक एक समृद्धिशाली देश है। उसका वास्तविक इतिवृत्त किसी प्रचलित इतिहासमें वा भूगोलमें नहीं पाया जाता। इसलिये यही उचित प्रतीत होता है कि सबसे पहिले भवानीपुर आविष्कार और वहांका इतिहास संग्रह करनेके उद्देश्यसे, यात्रा की जाय। तदनंतर वहांसे अन्यान्य गंतव्य देशोंमें भ्रमण करेंगे।"

यही राय मान्य रही। उसी समय सभापति (मिष्टर गिडहो) की आज्ञानुसार बिलायतकी रोयल जौग्राफिकल सोसाइटी (Royal Geographical Society) की सेवामें निम्न लिखित पत्र लिखा गया:—

प्रिय महाशय,

आपकी समितिकी अवगतिके लिए लिखते हैं कि, कलकत्ते शहरको दक्षिण दिशामें 'भवानीपुर' नामक एक प्रदेश है। किसी भी प्रचलित 'भूगोल' वा आपके समितिकी ओरसे प्रकाशित मानचित्रमें उसका कोई निर्देश नहीं पाया जाता। हम [निम्न-स्वक्षरी तीनों युवक,] मानव जातिके ज्ञानप्रसारके अभिप्रायसे उक्त प्रदेशका सम्यक् रीतिसे आविष्कार और वहांके अधिवासियोंके विवरण संग्रह करनेकी वासना रखते हैं। आपकी माननीय समिति यदि हम लोगोंका व्यय भार ग्रहण करे, तो सेवामें समय पर इसकी रिपोर्ट पहुंचती रहेगी। पत्रके साथ ही व्ययका एक एष्टिमेट भेजा जाता है। चेक मिलते ही यात्रा की जावेगी।

आपके विश्वास-पात्र—

गयाराम "कविता सागर"

सी० सी० गिडहो

सी० एस० गुप्त"

पत्रके साथ १५५२॥) का एक आनुमानिक व्ययका हिसाब भेजा गया।

प्रायः डेढ़ महीने बाद देरीके बाद लंडनके पोष्ट-मार्क सहित एक लम्बे चौड़े लिफाफेमें इसका जवाब आया। बड़ी सावधानीसे लिफाफा खोला गया; परन्तु उसमें चेकका नामानिशान भी नहीं। सिर्फ एक पत्र है।

प्रिय महाशय गण !

आप लोगोंका पत्र समितिके अधिवेशनमें पेश किया गया था। आपके लिखे हुए प्रदेशका नाम समितिको ज्ञात न होने पर भी, कलकत्तेके दक्षिणमें बंगोपसागर पर्य्यन्त कोई भी स्थान अनाविष्कृत है' यह समिति विश्वास नहिं करती। यह समिति आप लोगोंको किसी प्रकारकी आर्थिक सहायता देनेमें असमर्थ है।

आप लोगोंका विश्वस्त रुपमे—

(हस्ताक्षर अपाठ्य हैं)

संपादक-Royal Geographical Society सोसाइटीकी भूर्त्सना और नाचना पर बहुत सी निष्फल गाली-वर्षा की गई। आखिर स्थिर हुआ कि, इतने बड़े एक महत् कार्यसाधनके लिये दूसरोंका मुंह ताकना ठीक नहीं, आत्म निर्भरता ही उत्तम है। समस्त विषय व्यवस्था करनेके लिये पर्य्यटन समितिको पुनरपि एक मीटिङ्गका आविर्भाव हुआ।

गयारामने पहिला प्रस्ताव किया कि, "मिष्टर मी॰ गुप्त M. S. A. D. C. (अर्थात् Member of the Shyambazar Amateur Dramatic club अर्थात् मैं स्वयं) भ्रमण-समितिके सभापति नियुक्त किये जांय।"

सर्व सम्मतिसे (करतलध्वनि सहित) प्रस्ताव गृहीत हुआ।

मि॰ गिडहोने द्वितीय प्रस्ताव पेश किया कि, "भ्रमणमें जितना व्यय हो; उस सबका भार फिलहाल सभापति महोदय ही ग्रहण करें भ्रमण समाप्त होने पर उस व्ययके तीन हिस्से किये जांय; जिसका एक एक हिस्सा हम तीनों पर लगाया जाय।"

इसमें भोट लीगई; जिसका फल निम्न प्रकार हुआ:— प्रस्तावके पक्षमें—२

विपक्षमें—१ (मैं स्वयं)

अनुकूल भोट संख्या अधिक होनेसे प्रस्ताव गृहीत हुआ। और अन्तमें सभापतिको-व्ययभार ग्रहण करनेके उपलक्षमें—"आन्तरिक धन्यवाद" प्रस्तावित भी गृहीत होकर, सभा भंग हुई।

इसके बाद श्यामबाजारसे — भवानीपुर आनेके लिये कौनसा मार्ग ठीक है, इस विषयमें भ्रमण-समितिकी बहुत सी बैठकें हुईं। निदान तीन मार्गोंका संधान मिला।

[१] बग्गीमें या टैक्सीमें बैठकर उत्तरकी ओर दमदमा वा घुघुडांगा ष्टेशन जाना। वहांसे रेलमें बैठकर शियालदह स्टेशन। वहां ट्रेन बदल कर बेलेघाटा स्टेशनमें कालीघाट स्टेशन। वहांसे फिर बग्गीमें बैठकर भवानीपुर।

[२] श्यामबाजारसे घोड़ा गाड़ीमें बैठकर नीमतल्ला घाट। वहांसे नौकामें बैठकर गंगापार होकर के शलकिया। वहांसे कुछ ट्राममें और कुछ पैदल चलकर तेलकल घाट। वहांसे फिर गंगापार होकर हाईकोर्टके पास ही बाबूघाट। फिर हाईकोर्टसे कालीघाटकी ट्राममें बैठकर भवानीपुर।

(३) घोड़ा गाड़ीकी सहायतासे बाया ग्रे ष्ट्रीटसे मछुआ बाजार होकर जगन्नाथ घाट। वहांसे स्टीमर पर सवार होकर खिदिरपुर और खिदिरपुरसे पुनः घोड़ा गाड़ीमें बैठकर भवानीपुर।

अनेक वाद विवादके बाद, कागजपर नकसा बना

÷ श्यामबाजारसे भवानीपुरका सीधा रास्ता यह है— श्यामबाजार ट्राममें बैठकर हाईकोर्ट पहुंचना, वहांसे कालीघाटकी ट्राममें बैठ जाना और भवानीपुर आते ही उतर पड़ना। कुल दस पैसेका खर्च है।

कर देखनेसे तृतीय मार्ग ही उपादेय समझा गया। तदनुसार किसी एक अंग्रेज-सौदागर कंपनीका १००) रुपये रोजपर एक स्टीमर भाड़े किया गया। यह भी ठहरा लिया गया कि, ष्टीमर खिदिरपुर पहुंचनेके बाद वहीं खड़ा रहेगा और हम सब सामान तथा नौकरोंको ष्टीमर पर ही छोड़कर पैदल ही मार्च करके भवानीपुर आविष्कार करने जांयगे।

इसमें भी हमारे प्रेमी गयारामने एक खलबली मचा ही दी। वह मछुआबाजारमें अपनी बुआके यहां पंगत जीमने गया था, वहांसे यह गुप्त संवाद लाया कि, जगन्नाथ घाट और हवड़ा-ब्रिजके मध्यमें जर्मन सब मेरिन (पानीके अंदर रहकर जहाजोंके तले फोड़ने वाले) गुप्त रीतिसे घूम रहे हैं। यह संवाद खास मछुआ बाजारका है।

इसमें अविश्वास असभ्य, कट्टर और आलसियोंको ही होगा, भ्रमण समितिके कार्यकर्त्ता, सभ्य और प्रेमियोंको नहीं।

हम लोगोंके हृदयमें कुछ 'भय' का संचार भी हुआ। परन्तु मि० गिउहोने यह कहकर कि, "मानव समाजके हितार्थ जीवन उत्सर्ग कर चुके हैं, इसमें प्राणोंकी आशंकासे काममें ढील डालना महा पाप है।" हमारे हृदयोंमें पुनः उत्साह डाला।

शुभ मुहूर्त्त देखकर हम लोग घरसे निकल पड़े।

मार्गमें।

ग्रे ष्ट्रीट पार होकर चितपुररोड पर पहुंचते ही एक उपद्रव उपस्थित हुआ। सहसा कवि गयारामके हृदयमें न मालूम किस लिये और क्यों-भावलहरी उछल उठी। यात्राके पहिले ही कविवरने यह ठहरा लिया था कि, देश भ्रमण करते समय किसी चीजको देखकर जब उनके कवित्व-सागरमें उफान आवेगा तब ही वे कविता लिखने बैठ जावेंगे। इसके लिये पीछेकी भैंसा गाड़ीमें अन्यान्य आवश्यकीय वस्तुओंके सिवा दो रीम रूलदार कागज और ढाई दर्जन पेन्सिलें रख लाये थे। परंतु घरसे निकलते ही यह 'विपद' आवेगी-यह स्वप्नमें भी नहीं सोचा था।

बड़ी मुश्किलसे गयारामको गाड़ीमें बिठाला। इसके बाद जगन्नाथ घाट तक ऐसी कोई घटना नहीं हुई जिसका उल्लेख करनेसे हिन्दी-साहित्यका महत्त्व बढ़े।

जगन्नाथ घाटके पास जेटीसे लगा हुआ ष्टीमर हम लोगोंकी प्रतीक्षा कर रहा था। पहुंचते ही सारेन आदिने हम लोगोंको खूब आदर सत्कारके साथ ष्टीमरमें बिठाया। नौकर चाकर और माल-मसाला सब नीचे रहा और हम तीनों दूतल्ले पर चढ़ गये। कवि गयाराम अपनी कवि कल्पनाओंमें ही मस्त रहे, नहीं तो जर्मनके सब मेरिनके भयसे शायद तीनमेंसे एक यहीं घट जाता।

ष्टीमर चलने लगा। दोनों किनारे खूब भीड़ देखकर मि० गिउहो कहने लगे—"देखा! हमारे लेखका लोगोंपर कितना असर पड़ता है! कलकत्ते भरके स्त्री पुरुष, बालक बालिकायें हमारे भू-पर्यटनकी प्रारंभिक यात्रा देखनेके लिये दौड़े आये हैं!" इससे कवि गयाराम बहुत ही बिगड़े, कहने लगे—"जाने दो यार! झूठ मूठका महत्त्व मत गांठो। मान ला सवेरे अखबारमें छप भी गया, तो क्या ये सब मूर्ख समाज अंग्रेजी अखबार पढ़कर ही यहां आये हैं?"—इतनेमें एक खल्लासी बोल उठा- 'बाबू! आज माघी पूर्णिमा [बंगालियोंका गंगा-स्नान पर्व] है, इसी लिये ये लोग आज सब गंगा नहा रहे हैं।

करीब शामके चार बजे ष्टीमर खिदिरपुरकी जेटी-

पर आ लगा । विलायतके प्रत्येक उपन्यासोंमें जल पथका भीषण चित्र खींचा जाता है। परंतु हमारी जल-पथकी यात्रामें न तो जहाज पहाड़से टकराया और न चुम्बक पत्थरने ही खींचा। और तो क्या, एक ऐसी आंधी तक नहीं आई, जो हमारे प्रेमी गया राम 'कविता सागर' महाशयकी कविता रचनामें सहायता देती! मेरी समझमें विलायतके उपन्यास लेखक अपने अपने पात्र पात्रियोंका शुभ मुहूर्त शोधकर नहीं भेजते ।

देश आविष्कार ।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही हम लोग भवानीपुर आविष्कार करनेके लिये रवाना हुए। साथमें 'नोटबुक' 'दूरवीक्षण' और 'कम्पास' के सिवा और कुछ नहीं लिया। कुछ चलनेके बाद एक पथिकसे भवानीपुरका रास्ता पूंछा। उसने अंगुली दिखाकर रास्ता बताया। मैंने जल्दीसे 'कम्पास' निकाल देखा, तो वह पूर्व और ईशान दिशाके मध्य निकला। दूरवीक्षणसे देखा रास्ता कुछ दूर तो सीधी है, फिर घूम गई है। जो हो, हम लोग 'कम्पास' के सहारे चलने लगे।

करीब दो माइल चलनेके बाद एक चौरास्ता मिला, अब तो हम तीनों घबराये। 'कम्पास' की बताई हुई दिशामें तो कोई मार्ग ही नहीं, मकानात खड़े हैं। एक भद्र व्यक्तिसे विनीत भावसे हम तीनोंने प्रश्न किया—"महाशय! क्या आप बतला सकते हैं कि, यहांसे भवानीपुर कौनसी दिशामें है—उत्तरमें, या पूर्वमें वा—"

जरा कड़ुवे मिजाजसे महाशयने उत्तर दिया—"उत्तर दक्षिण पूर्व पश्चिम किसी दिशामें जानेकी जरूरत नहीं।"

विस्मित होकर पूंछा—"सो कैसे महाशय?"

उत्तरमें—'जहां खड़े हैं, उसीका नाम भवानीपुर है।"

अहो भाग्य! तो क्या हम लोगोंने कविवर रवीन्द्रनाथके पागल सन्यासीके पारस पत्थर निकालने की भांति किसी अज्ञात मुहूर्तमें अन्य मनस्क अवस्था में भवानीपुर आविष्कार कर लिया? गद्गद होकर गयारामने कहा—"भाई! संसारके जितने महान् कार्य हैं, वे सब इसी तरह संसाधित होते हैं। सचमुच, जो कार्य हम लोगोंको इस नश्वर जगतमें अमर बनावेगा, उसे हम लोगोंने कब और किस भांति किया—यह खुद हम लोगोंको ही नहीं मालूम!"

आविष्कृत देश ।

सबसे पहिले एक आश्चर्यकी बात यह देखी कि, अन्यान्य आविष्कृत देशोंकी भांति यहां भी मनुष्य रहते हैं! यहां के मनुष्य तीन जातिमें विभक्त हैं।

[१] सभ्यः—जिनके वस्त्रादि अपेक्षाकृत सफेद और चमकते हुए हों। घरसे बाहर पैर धरते ही जिनके शरीर पर कोट, वास्कट आदिके ऊपर एक देखनेके काबिल चादर सुशोभित हो तथा सिरपर असली फिल्टकैप विराजमान हो और हाथमें रिष्टवाचके सिवा एक बेंत भी मौजूद हो। चाहे इनकी पहिलेकी जाति ब्राह्मण हो वा धोबी, भंगी हो वा चमार ये सब बातें संपूर्ण निरर्थक और निष्प्रयोजन हैं। ऊपर लिखे हुए गुण जिसमें भी पाये जांयगे, वे 'सभ्य' कहलांयगे।

[२] असभ्यः—जिनकी स्थिति हीन है, परिच्छद मलिन है, और अंग्रेजी भाषामें जिनका कुछ भी अधिकार नहीं है, वे 'असभ्य' पद वाच्य हैं। चाहे वे संसार

से उदासीन और सर्वलोक धर्मके स्तंभ ही क्यों न हों।

[३] वकोलः—इनमें कुछ सभ्योंके गुण मौजूद रहने पर भी ये 'सभ्य' नहीं कहलाते। कारण सुनने में आया है कि, इनकी जाति व्यवस्थामें पड़ कर सरकारको भी दिक्कत उठानी पड़ी है। प्रत्यक्षमें इनको 'असभ्य' नहीं कह सकती पक्षांतरमें 'सभ्य' कहनेको भी तैयार नहीं। और भी सुना गया है कि, भवानीपुरके निकटवर्ती किसी अदालत-भवनके एक तरफ सरकारी शौचागार है। उसमें यह सरकारी नोटिश है कि,' 'वकील और सभ्योंके लिये'' इससे मालूम होता है कि, सरकार भी इनको सभ्यश्रेणीके अन्तर्गत नहीं मानती।

नाना विषय परिदर्शन करते हुए और उनका नोट-बुकमें नोट करते हुए सागकी मंडीमें आ पहुंचे। पहिले ही एक केलेकी दूकान मिली। हम लोगोंको आते देख उसने समझा कि ये खरीददार हैं, वह केले दिखाने लगा। हमने पूंछा-"भाई! यहां केलेके वृक्ष तो विल्कुल नजर नहीं आते, ये केले कहांसे पैदा हुए?" प्रश्न सुनते ही उसने मुंह फेर लिया और उत्तर दिया "आसमानसे।" हमने उसी समय नोट-बुक निकालकर नोट कर लिया—

"भवानीपुरमें केले आकाशसे पैदा होते हैं।"

घूमते घूमते नदीके किनारे आये। पूंछने पर मालूम हुआ—इसका नाम 'आदिगंगा" है। इसका "आदिगंगा" क्यों नाम पड़ा—इस विषयमें बहुमत पाया। कुछ दूर चलने पर एक बाबाजी मिले। उनसे पूंछने पर मालूम हुआ कि, "अंग्रेजोंके कलकत्ता दखल करनेसे कुछ दिन पहिले दो अंग्रेज सैनिक मार्ग भूलकर दोपहरको घाममें प्यासके मारे भटकते फिरते थे, इस नदीको देख कर वे बड़ी खुशीसे चिल्ला उठे—"Ah! The Ganga!" तब ही से इसका नाम "आदि गंगा" पड़ गया है।

ताम्रलिपिकी प्राप्ति और उसका फलाफल।

बहुत घूम-फिर कर सबही हार गये थे। इसीलिये नदीके किनारे एक जगह बैठकर तीनों बिस्कुट खा कर थकावट दूरकर रहे थे। इतनेमें एक अपूर्व घटना घटी। मैं इधर-उधरकी गप-सप करता हुआ अन्यमनस्क भावसे अपने बेंतसे सामनेकी नदीके जलसे भीजी हुई नरम मिट्टी खोद रहा था। दो एक इञ्च खुद जानेपर बेंतमें एक कठिन पदार्थ लगा। कौतूहल वशतः उसे उठा लिया। देखा तो; एक गोलाकार ताम्रखंड है। अच्छी तरह देखनेसे मालूम पड़ा कि उसमें कुछ लिखा है।

सहसा जमीनमेंसे इस ताम्रलिपिकी प्राप्तिसे—तीनों आनंदसे फूले न समाये। ताम्रखंड यत्न पूर्वक साफ किया गया; फिर म्यागनिफाइन्' कांचकी सहायतासे उसकी लिपि पढनेकी चेष्टाकी। "East Indian Company" और "1854" ये दो बातें बड़ी मुश्किलसे पढी जा सकीं। जो हो; इनही दो बातोंसे निम्नलिखित विषय प्रमाणित हुआ।

(क) भवानीपुर शहर ईस्वी सन् १८५४ में भी विद्यमान था।

(ख) इष्ट इन्डियन कंपनीका प्रभुत्व भवानीपुर तक विस्तृत था।

(ग) सन् १८५४ से अबतक यहांकी भूमि पौने दो इञ्च मात्र ऊंची हुई है।

(घ) ६६ वर्षमें भवानीपुरकी जमीन यदि १॥ इञ्च ऊंची हुई है; तो संभव है १६२०० वर्षमें भवानीपुर शहर संपूर्णरूपसे मिट्टीके नीचे दब जावेगा।

ताम्रलिपि पर वादानुवाद कर रहे थे कि, इतनेमें

राह चलकी एक दरिद्र लड़की आकर रोनेके स्वरसे कहने लगी—"मेरा घिसा हुआ पैसा, परसों यहां खो गया था—मुझे दो।" किसी तरह उसे भगानेके लिये उसी वक्त जेबसे १ रुपया निकाल कर उसको दिया; वह भाग गई। हम लोगोंने पुनः गवेषणामें मनोनिवेश किया।

थोड़ी देर बाद फिर वह लड़की एक १८—२० वर्षके युवकके साथ आई। युवकने बड़ी जोरसे चिल्ला कर कहा—"कहांके जुआचोर हो तुमलोग, जो छोटी सी लड़कीसे पैसा छीनकर उसे कांसेका रुपया दे दिया है? जल्दी पैसा निकालो; नहीं तो थानेदारको बुलाता हूं।"

मानसम्मानके रक्षार्थ मैं जेबसे दूसरा रुपया निकाल कर देनेवाला ही था कि, मि० गिउहाने रोक दिया और उस उद्दण्ड युवकको मारनेके लिये हाथ उठाया। युवक "पुलिश, पुलिश" चिल्ला कर दूर हट गया।

उसी समय एक सिपाहीने आकर दोनों पक्षका वृत्तांत सुनकर कहा—"यह तो बड़ा जबर 'केश' नु भयल, बड़ा भारी 'केश' अब थानानु जाएके होई। चालो लोग, दरोगा बाबू जौन कहिहें ओहि होई। हमार हाथ एमें नइखे।"

चुपचाप थाना जाना पड़ा। हम लोगोंकी तलाशी ली गई। नाम धाम लिखा गया। तदनंतर दरोगा साहबके सामने हम तीनों एक साथ पेश किये गये। गंभीर भावसे दरोगा साहबने सिर हिलाकर कहा—"कलकत्तेसे कांसेका रुपया चलानेके लिये आये हो भवानीपुर? बड़े बदमाश मालूम पड़ते हो। रुपये खुद बनाते हो या दूसरोंके बने हुए चलाते हो सच सच कहो?" हम लोगोंने इस अमूलक अभियोगके विरुद्ध बहुत कुछ कहा, पर कुछ न हुआ। रुपया टकसालके धातु-परीक्षकके पास परीक्षार्थ भेजा गया।

दूसरे दिन करीब ४ बजे बड़े साहबकी कचहरीमें भेजे गये। करीब एक डेढ़ घंटा खड़े रहनेके बाद हुकम सुनाया गया कि, 'तुम लोगोंका रुपया असली ही प्रमाणित हुआ है। परंतु एक पैसेके बदले जो एक रुपया देता है, या तो वह पागल होना चाहिये, नहीं तो उसका रुपया खोटा होना चाहिये। रुपया तो ठीक निकला। अब तुम लोगोंका मस्तक 'पुलिस-सार्जेन' के पास परीक्षाके लिये भेजना जरूरी है।

भाग्यमें और भी कुछ गड़बड़ देखकर, लड़खड़ाती हुई जबानसे गयाराम ने पूछा—'तो क्या आज ही हम लोग 'पुलिस-सार्जेन' के पास भेजे जावेंगे?'

बड़े साहबने उत्तर दिया—मस्तक तो आज ही भेजे जायगे, भेजे जाना न जाना आप लोगोंकी इच्छा पर निर्भर है।'

अब समझमें आया कि, यह व्यंग है।

साहब पुनः कहने लगे—'परंतु तुम लोगोंके 'केश' का रहस्य हम कुछ भी न समझ सके। आज बीस वर्ष हुए, कभी ऐसा 'केश' हमारे हाथमें नहीं आया। क्या तुम लोग खोलकर बतलाओगे?'

मि० गिउहाने ज्वलन्त भाषामें सब वृत्तांत सुनाया ऐसा उच्च भावयुक्त भाषा साहबने शायद पहिले कभी सुनी नहीं थी। इसीलिये गुस्सेमें आकर एक सिपाईको बुलाकर हम लोगोंको अपनी कचहरीसे निकाल देनेकी आज्ञा दी और कहा—"बिना रक्षकके इनलोगोंको घरसे बाहर निकलने देना—ठीक नहीं, जाओ इनको ट्राममें बैठाकर इनके घर पहुंचा आओ।"

करीब ६बजे रातके अपने अपने घर पहुंच पाये। दूसरे दिन रातके चार बजे उठकर "भू-पर्यटन"

लिखने बैठ गये । क्योंकि सुबह जो बातें मस्तिष्कमें आती हैं, दूसरे वक्त किसी हालतमें नहीं आ सकती। बस, पाठक माफ करें; अब मेरे पास व्यर्थ समय नहीं है—एक विशाल कार्य हाथमें ले रक्खा है। इसीसे दुनियांमें "अमर" बनना है।*

विधवा विवाह खंडन।

(लेखक-तर्कतीर्थ पं० झम्मनलालजी, कलकत्ता।)

सर्व साधारण जनताको विदित हो कि इस अलीक असार संसारमें एक मात्र धर्म्म ही शरण है उपादेय है, ध्येय है, प्राणी मात्रका सर्वस्व है, आत्माका निज स्वभाव है और वह सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप है। यह जीव संसारी अवस्थामें उसको भूले हुये है उन्हीं दर्शन ज्ञान चारित्रको मिथ्या दर्शन ज्ञान चारित्र रूप विकृत अवस्थाका स्वाद लेता हुआ अनुभवता हुआ उसी में मग्न होके उसी मिथ्या चारित्र रूप (कषायाध्यवसायस्थानोंके) क्रोधादि भावोंके कारण ज्ञेय रूप परपदार्थोंकी प्राप्ति अप्राप्तिमें यह अपने आत्माकी लाभ और हानि समझता इसीसे सुखी दुखी होता है। इसी भ्रम को दूर करनेके लिये अर्थात् अनन्त सुखमयी शुद्धात्माकी प्राप्तिके लिये श्री अर्हंत सकल परमात्माने इसी रत्नत्रयकी अपूर्ण अवस्थामें साधन और मार्ग रूपसे अनुभव कराया है और इन्हींकी पूर्णता को साध्य तथा निजात्म स्वरूपकी प्राप्ति रूप मोक्ष बताया है। वह निज स्वरूप परम उदासीन वीतराग रूप है वही उपादेय है; प्राणी मात्रका मुख्य ध्येय है चाहैं इस आत्माकी शुद्ध अवस्था हो या अशुद्ध, मुक्त अवस्था हो या संसार, परमार्थसे विचारिये या व्यवहारसे सदा सर्वदा श्रेयस्कर स्वपर कल्याण कारक एक वीतराग धर्म्म ही है। इतना विशेष है कि अशुद्ध अवस्था में अनादि कालसे इस असार संसारमें रुलते (भ्रमते) हुवे प्राणीको उस परमार्थ स्वरूपकी प्राप्ति एक साथ नहीं होती क्योंकि प्रत्येक पदार्थ अनन्तधर्मात्मक है यह आत्मा भी अनन्तधर्मा है ;अनन्त गुणोंका पिण्ड है और उन अनन्त गुणोंकी पर्य्यायें भी अनन्तानन्त हैं और उन गुण पर्यायोंको व्यक्ति होनेमें तत्तत् प्रतिबन्धक कर्म्म भी नाना है इसी हेतु जब तक इस जीवको परमार्थकी प्राप्ति न हो तबतक व्यवहारावस्थापन्न जीवको व्यवहार ही शरण है अर्थात् उस परमार्थकी प्राप्तिका कारण परमार्थ पोषक व्यवहार ही है इसलिये निकृष्टसे निकृष्ट अवस्थासे प्रारंभकर परमार्थकी प्राप्ति पर्यन्त उत्तरोत्तर परमार्थ का पोषक व्यवहार है वह तो परमार्थका कारण है इसीसे नीचली दशामें उपादेय है सद् व्यवहार है उत्तरोत्तर सांसारिक सुख तथा पारमार्थिक सुखका हेतु है और जो परमार्थ विध्वंसक और केवल ऐहिक विषय पोषक व्यवहार है वह व्यवहाराभास है सुखाभासरूप दुःखका कारण है हेय है त्याज्य है अनादरणीय है क्योंकि जो परमार्थका निषेधक व्यवहार है वही अधर्म है पाप है दुःखका कारण है इसलिये हेय है।

यद्यपि व्यवहार धर्म्म प्रवृत्ति मार्ग है सराग है रागांश लिये हैं और वीतराग धर्म्म निवृत्ति मार्ग है वस्तुतः ये दोनों विरुद्ध पदार्थ हैं परस्पर विरोधी हैं इनका एकत्र युगपत् एक आत्मामें समावेश कैसे बने तथापि व्यवहार अवस्थामें विशुद्धावस्थाका [निवृत्तिका] कारण जो प्रवृत्ति है उसमें निवृत्तिका उपचार है जैसे [आयुर्घृतं] घी ही आयु है अर्थात् घी आयु पूर्ण रखनेका साधक है इसलिये घी को ही आयु कह दिया इतने कहनेका तात्पर्य यह है कि

* श्रीयुत बाबू मनोजमोहन बसू बी० एल० के एक लेखका छायानुवाद।

जैन धर्म निवृत्ति मार्ग है और निवृत्ति स्वरूप आत्मा का खास निज स्वभाव है और संसार प्रवृत्ति रूप है गृहस्थाश्रममें रहते हुये प्राणीको इसका साधन अशुभ परिणाम, निवृत्ति स्वरूप शुभ परिणामको प्रवृत्ति देव पूजा विद्याध्ययनाध्यापन गृहस्थाचार्यत्व दयाशील दान सत्य परोपकारता न्यायोपात्तधनार्जन न्याय पूर्वक राज्य शासन दास कर्मादि स्वस्वयोग्य वर्णाश्रमानुसार श्रेष्ठ जीविका सदाचारादि द्वारा सर्वज्ञोपदिष्ट सदा काल योग्यतानुसार एक आत्मामें युगपत् सम्भवित है कोई बाधा नहीं है क्योंकि शुभ परिणाम स्वयं प्रवृत्ति स्वरूप होनेपर भी हिंसादि अशुभ परिणामोंकी निवृत्ति स्वरूप ही है यदि ऐसा न हो तो शुभाशुभ एक ही वस्तु ठहरें। यद्यपि शुद्ध अपेक्षा से दोनों हो राग हैं एक हैं हेय हैं तथापि व्यवहारमें दुःखकारक अशुभ रूप पाप परिणाम अपेक्षा शुभ परिणाम एक देश निवृत्ति स्वरूप हैं। वीतरागांश धर्मको लिये हैं सुखकारक हैं शुद्धका कारण उपादेय स्वरूप हैं ऐसा कहनेका यहांपर ऐसा आशय है कि प्रत्येक प्राणी हीनसे हीन अवस्थामें हो या उत्कृष्टसे उत्कृष्टमें हो ज्ञात अवस्थामें या अज्ञातमें, मिथ्यात्व अवस्थामें या सम्यक्त्वमें हो जितने अंश निवृत्ति है उतने अंश वीतरागता है वह तादृश दुःखोत्पादक कर्मके अबन्धका कारण होनेसे श्रेयस्कर और सुखका कारण होती है। यहां इतना विशेष है कि मिथ्यात्व अवस्थामें वह परिणाम अकामनिर्जरावत् तत् स्वरूपका अबोध होनेसे निरतिशय होता है, क्योंकि उसका फल जो इन्द्रिय जनित सुख उसके लोभमें अनन्त संसारानुबन्धीकषायोंको गठरी पुनः बांध लेता है इस हेतु वह अकार्यकर है तब भी निवृत्ति परिणामका फल सुख है यह अबाधित हो रहा और इसके साथ साथ लाघव गौरव चर्चाका भी आदर हुआ कि जिसमें निवृत्ति तो थोड़ी और अनन्त संसारानुबन्धिनी प्रवृत्ति बहुत हो वह कार्य त्याज्य और जिससे निवृत्ति बहुत और प्रवृत्ति अल्प हो वह ग्राह्य है। यद्यपि बहुत कार्य ऐसे हैं कि वर्तमानमें जिन्होंमें प्रवृत्ति बहुत मालूम होती है और निवृत्ति थोड़ी परंतु परिणाममें निवृत्ति बहुत है ऐसे ही कार्य उपादेय होते हैं परन्तु जिन कार्योंसे वर्तमानमें निवृत्ति बहुत मालूम होती है और परिणाममें अल्प अथवा निवृत्तिका छल है निवृत्याभास है ऐसे कार्य कदापि उपादेय नहीं हो सक्ते। वे सदा सर्वथा हेय ही रहेंगे जैसे एक मनुष्य शुद्ध क्रियासे हाथोंसे रसोई बनाकर खाता है उसमें पचन आदि आरंभ जनित हिंसादि तथा खेद श्रम आदि नाना झंझटें दिखती है और केवल यथेष्ट भोजनका मिलना तथा स्वधर्म रक्षण आरोग्य आदि अव्यक्त अल्प फल दिखता है और होटलमें या बाजारमें पैसा फेंका और शीघ्र भोजन मिला खड़े बैठे खाया चल दिया समय नहीं लगा बनानेका श्रम खेद नहीं हुआ आरंभ भी नहीं किया एक प्रचुर प्रगटमें बड़ा भारी फल मालूम भया परन्तु वास्तवमें किसी समय अनारोग्यता अशिष्ट भोजन पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त त्रसादिका घात जब कभी अनुभवमें आजाता या जब कभी घरकी रसोई मिलनेसे जो सुख आरोग्यता आदि अनुभवका बोध होता है उस समय वही मनुष्य मुक्त कण्ठसे कहने लगता है कि वाह! घरकी रसोईकी क्या बात है? खावेको खावेकी चीज है। कहते भी हैं—

दाम लगे अवगुण करै पुरी पराई नार।
सदा सुहागिनि हे सखो इक रोटो इकदार॥

इसीप्रकार अनेक निदर्शन है (दृष्टांत) हैं यहांपर

हमको एक प्रकृत विषय पर विवेचन करना है जिससे कि आर्ष प्रणीत विधिपर आघात पहुंचता है और उस आघातका फल सारे मानव धर्मका सर्वस्व स्वरूप चारित्र धर्मका घात होना है और उससे चतुर्गति परिभ्रमण रूप दुःखका होना है वह विधवा विवाह है। इस विषय पर हमारे धर्मस्नेही धर्मपरायण विद्वद्वर कतिपय भाई महती गवेषणा पूर्वक विवेचन कर रहे हैं और उनकी मनो भूमिमें अद्यावधि पर्यंत विधवा विवाह वर्तमानमें श्रेयस्कर प्रतीत हो रहा है और उनकी दृष्टिमें शास्त्रीय प्रमाण भी निषेध पथ प्रदर्शन नहीं है तथा विधवा विवाह युक्त स्त्री पुरुष भी शील लक्षण युक्त हैं और अपनी बुद्धि से कल्पित शीलका लक्षण भी रचा है। वर्तमानमें बाल्य विवाह वृद्ध विवाह माता पिताओंकी स्वार्थपरायणता अयोग्य सम्बन्ध इत्यादि सामाजिक अन्यायसे विधवा वृद्धि तथा विधवाओंकी दुर्दशा भ्रूणहत्यादि पातकादि घृणित कार्य देख उनके हृदयमें आघात बहुत पहुंचा है वास्तविक दशा विचारणीय है और समाज इस विषयमें आंखोंमें पट्टा बांधके सो भी रहा है। बाल्य विवाह वृद्ध विवाह धड़ाधड़ हो ही रहे हैं कन्या विक्रय होता ही है और कन्या बेचने वालेके यहां समाज लड्डू खानेके लिये पहुंच ही जाता है। अब घृणा किस बातकी लज्जा किसकी? जब सब नककटे होगये तब एक नककटेको कौन पूछे जब सब ही अपराधी होगये तब दण्ड किसको और कौन देवै? जब बाढ ही खेतको खाजावे तब रक्षा कौन करै? भला ऐसे जन्म भरके लिये अपनी लड़कीके गले काटने रूप अन्याय करने वालेके शामिल होने वाला समाज क्या भलाई कर सकता है? कृत कारित अनुमोदनका फल भगवतने समान बतलाया है जिस समाजमें कन्या विक्रय वालेको दण्ड नहीं उसके साथ खान पान बन्द नहीं वह समाज समस्त अपराधी है या नहीं। जो प्रधान या पञ्च किसी मुलाहिजेसे या लोभसे क्रोधसे मानसे उत्सूत्र वचन बोलता है वह महा पातकी है।

> क्रोधाद्वा यदि वा लोभान्मानाद्वा यदि वा भयात्।
> यः पुरुषोऽन्यथा ब्रूते स याति नरकेऽधमे ॥

समाज इन पातकियोंको दण्ड नहीं देता पापोंका तिरस्कार नहीं करता, इन्हीं घोर पापों की प्रेरणाओं से उनकी आधि (मानसी व्यथा) जोर पकड़ कर करुणासे इस विधवाविवाह रूप अति घोर अन्यायसे अत्याचार करनेके लिये तय्यार हुई है परन्तु उन अन्याय रूप कुप्रथाओंके मेटनेका यह उपाय नहीं है, अन्यायनाशके लिये अन्यायकी आराधना नहीं करनी चाहिये, अंधकार दूर करने के लिये अंधकार की उपासना नहीं की जाती किंतु तद्विरोधी प्रकाशकी ही आवश्यकता होती है इसलिये बाल्यविवाह वृद्धविवाह भ्रूणहत्यादि पातक व अनाचारादि मेटनेके लिये विधवाविवाह रूप चारित्रघातक पातक समर्थ नहीं हो सक्ता प्रत्युत बाल्य विवाह वृद्धविवाह के बदले में वेश्याविवाह नानापतिविवाह पतिपरदेश जानेपर अन्यपुरुषके साथ नियोग विवाह और भ्रूणहत्याके बदले में पतिहत्या और अनेकतर हत्यादि महापातक व समस्त चारित्र को जड़मूल से उत्पाटन करनेवाले अनाचारादि ही अधिक हो जायेंगे। स्वयं अनाचार स्वरूप है वह सदाचारका बढानेवाला कैसे हो सक्ता है और कैसे होगा? आचार अनाचार में वध्य घातक विरोध है और जिन म्लेच्छ तथा शूद्र तथा वर्ण संकरादि जातियों में धरावने व (करावेकी) विधवाविवाह की प्रथा है उनमें शीलत्व सदाचारताकी पराकाष्ठा का

एक भी निदर्शन भूत व वर्तमानकी अपेक्षा कराइये सो नहीं। न हुआ न होगा और न है क्योंकि पूर्वोक्त आचार अनाचारमें वध्य घातक विरोध है। शीत उष्णका एकत्र समावेश कैसे बन सकता है तथापि हमारे दयार्द्र दयालु कुछ भाई वर्त्तमानमें विधवाओंका दुःख देखि उस दुःखको दूर करनेका उपाय विधवाविवाह रूप उत्कटरागादिके प्रवृत्ति मार्गको निवृत्तिमार्ग बतलाकर शील बतलाते हैं और उस शीलका लक्षण। [स्वचतुष्टयभिन्नत्वे सति मैथुनाभिलाषित्वं व्यभिचारित्वं तद्भिन्नत्वं शीलत्वं] अर्थात् धर्म अर्थ काम मोक्ष इनसे भिन्न जो मैथुनाभिलाष है सो व्यभिचारीपन है और उससे विपरीत शीलपना है ऐसा करते हैं। और इसी लक्षण द्वारा विधवा विवाहमें जो मैथुन कर्म है वह धर्मादिका पोषक है बाधक नहीं, क्योंकि भ्रूण हत्या व्यभिचारादि निवृत्ति रूप धर्मादि इनसे सधते हैं [वैधिकविवाहवत्] शास्त्रीय विवाहकी तरह। इसलिये विधवा विवाहमें शीलपना है ऐसा कहते है। फलतः विधवा विवाहके पक्षियोंका अनुमान इस प्रकार ठहरता है कि—

"विधवाविवाहः शीलं. भ्रूणहत्याव्यभिचारादिनिवृत्तिपरत्वे सति स्वचतुष्टयधर्मादिपोषक मैथुनाभिलाषविषयत्वात्, वैधिकविवाहवत्। यन्नैवं तन्नैवं यथा वेश्यापरस्त्रीसंसर्ग इति।" परन्तु यह विधवाविवाह पक्षक, शीलत्वसाध्यक भ्रूणहत्याव्यभिचारादिनिवृत्ति परस्वचतुष्टयधर्मादिपोषकमैथुनाभिलाषविषयत्वहेतुक, वैधिकविवाहदृष्टान्तक अनुमिति बाधित है क्योंकि बाध दोषसे दूषित है। विधवा विवाहमें शीलत्वरूप, साध्य प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा बाधित है अर्थात् विधवा विवाह यह पक्ष ही नहीं बनता बल्कि यह पक्षाभास है सो ही श्रीमाणिक्यनन्दि स्वामीने परीक्षामुखमें कहा है।

[इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यं] साध्य वह है जो इष्ट अबाधित और प्रमाणान्तरसे सिद्ध न हो अर्थात् साध्य यदि इष्ट न हो तो "विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरं।" जैसे मनमें गणेश बनाने का विचार किया और बन गया बन्दर, तब कुछ प्रयोजन सिद्ध न हुवा व्यर्थ ही प्रयास हुआ अथवा अनिष्ट सिद्ध हो गया भलेकी जगह बुरा हो गया इसलिये साध्य वही होता है जो वक्ताको इष्ट हो और जो प्रत्यक्ष अनुमान आगम प्रमाणादि द्वारा बाधित हो संभवित न हो अथवा लोक रीतिसे वा अपने वचनों से ही बाधित हो वह बाध दोष है जो बाध दोषसे दूषित है वह भी साध्य नहीं होता एवं प्रत्यक्षादि अन्य प्रमाण द्वारा जो सिद्ध हो तो फिर अनुमानको क्या आवश्यकता इसलिये असिद्ध होना चाहिये। यहां पर शीलत्व धर्म विधवा विवाहमें शास्त्र द्वारा निषिद्ध है बाधित है तथा अनुमानसे भी बाधित है और स्ववचन विरोध भी है लोक रीतिसे भी विरुद्ध है यह सब हम आगे शास्त्रीय प्रमाण देते हुवे दिखाते हैं। जब शीलत्व साध्य विधवा विवाह रूप पक्षमें बाधित हो गया तब विधवा-विवाह यह पक्ष सिद्ध नहीं हुआ किंतु पक्षाभास हो गया सो ही स्वामीजीने कहा है "तत्रानिष्टादि पक्षाभासः बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः।" जिस पक्षमें साध्य अनिष्टादि दोषोंसे दूषित हो वह पक्षाभास है पक्षसरीखा मालूम होता है परंतु वास्तव में पक्ष नहीं तथा प्रत्यक्ष अनुमान आगम लोक स्ववचनादिसे बाधित है वह बाधित है बाध दोषसे दूषित है। दूसरा अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है (सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिञ्चित्करः) जब साध्य प्रत्यक्षादि प्रमाणद्वारा बाधित हो तो अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है क्योंकि जब

अनुमान आगम लोक स्ववचन विरोधादि द्वारा विधवा विवाह में शीलत्व ही बाधित है अथवा विधवा विवाह यह पक्ष ही असिद्ध है तब हेतु क्या साधे क्या करै कुछ नहीं कर सका और पक्ष असिद्ध होनेसे पक्षासिद्धि भी दोष है। अब हम उपर्युक्त यह पक्ष ही असिद्ध है यह पक्षासिद्धि दोष और विधवा विवाहमें शीलत्वरूप साध्य प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा बाधित है यह दिखाते हैं—विधवा विवाहमें शीलत्वरूपसाध्य प्रत्यक्षादि प्रमाण से बाधित है क्योंकि अविगीत शिष्टाचार इसमें नहीं है अविगीतत्व नाम-बलवान् अनिष्ट जो नरकादि अशुभगति तिसका करने वाला न हो ऐसे कार्यको अविगीत कहते है और जो परापर गुरु प्रणीत आचार हो उसे शिष्टाचार कहते हैं। ये दोनों विषय जिस चारित्रमें हों उसीको अविगीतशिष्टाचार चारित्र कहते हैं। इस कल्पित विधवाविवाहपक्षक शीलत्व रूप चारित्रमें अविगीतशिष्टाचारत्व शास्त्रीय प्रमाण द्वारा तथा अनुमान व प्रत्यक्षादि प्रमाण द्वारा बाधित है। शास्त्रीय प्रमाण तो इस प्रकार है-जिस जगह (ब्रह्मचर्य) स्वदारसन्तोषाणुव्रतके पञ्च अतीचार वर्णन किये हैं वहांपर श्रीराजवार्तिकजी में परविवाहकरणेत्यादि सूत्रमें विवाह शब्दकी निरुक्ति करते हुए लिखा है (सद्वेद्यस्य चारित्रमोहोदयस्य चोदयात् विवहनं कन्यावरणं विवाहः) साता वेदनीय और चारित्र मोहनीय के उदयसे जो कन्याको वरना सो विवाह है यहांपर कन्या शब्द स्पष्ट रूपसे अविवाहित कुमारी लड़की का विवाहमें विधान और विवाहित विधवाका निषेध दिखला रहा है नहीं तो श्रीआचार्य प्रवर अकलङ्कदेव स्वामीने (सद्वेद्यचारित्रमोहोदयाद्विवहनं विवाहः) इस वार्तिकको लिखकर पुनः समझानेके लिये स्पष्ट रूपसे विवहनं का कन्यावरणं विवाहः ऐसा स्पष्ट अर्थ क्यों लिखा? इसके दिखानेका प्रयोजन विधवा विवाहका निषेध ही है अन्यथा 'स्त्रीवरणं विवाहः' ऐसा कहना था, प्रत्येक शास्त्रमें कन्या शब्दका ही प्रयोग क्यों किया? विवाह कन्याका ही होता है औरोंके धरावने या करावे होते हैं। शूद्रोंके विवाह नहीं कहलाते शूद्रोंमें भी कन्याका ही विवाह होता हैं औरोंके धरावने या करावे, इसीको हम स्पष्ट प्रकरणान्तर तथा ग्रंथान्तरोंसे अगाड़ी दिखावेंगे। दूसरे इसी जगह स्वामी पञ्च अतीचारोंमें परिगृहीता अपरिगृहीताका अर्थ दिखाते हुये लिखते हैं—'या गणिकात्वेन वा पुंश्चलीत्वेन परपुरुषगमनशीला अस्वामिका अनाथा अपरिगृहीता या पुनः एकपुरुषभर्तृका सा परिगृहीता] यहांपर अपरिगृहीता स्त्रियें दो प्रकारकी ली हैं एक तो [गणिका] वेश्या और दूसरी अनाथ विधवायें। अस्वामिका शब्दसे इसीका खुलासा दूसरे ग्रंथोंसे इसप्रकार होता है। सागारधर्मामृतमें लिखते हैं 'अस्वामिका असती गणिकात्वेन पुंश्चलीत्वेन वा परपुरुषान् प्रति गच्छतीत्येवंशीला इत्वरी तथा प्रतिपुरुषमेतीत्येवंशीलेति व्युत्पत्त्या वेश्यापीत्वरी।' अनाथ व्यभिचारिणी दो प्रकारकी हैं एक अनाथकुलाङ्गना और दूसरी वेश्यायें। तथा स्वदारसन्तोषाणुव्रत दिखाते हुये लिखा है—

सोऽस्ति स्वदारसन्तोषी योऽन्यस्त्रीप्रकटस्त्रियौ।
न गच्छत्यंहसो भीत्या नान्यैर्गमयति त्रिधा॥

इसकी टीकामें स्वदारेषु सन्तोषोऽस्यास्तीति स्वदारसन्तोषी यः; किं न गच्छति न भजति के अन्यस्त्रीप्रकटस्त्रियौ अन्यस्त्री- परदाराः परिगृहीता अपरिगृहीताश्च तत्र परिगृहीता सस्वामिका अपरिगृहीता स्वैरिणी प्रोषितभर्तृका कुलाङ्गना वा अनाथा. कन्या तु भावि-

भर्तृकत्वात् पित्रादिपरतन्त्रत्वात् वा सनाथेत्यन्यस्त्रोतो न विशिष्यते। यहांपर लिखते हैं कि स्वदारसन्तोषाणुव्रती अर्थात् विधिविहित विवाहित पुरुष परिगृहीता और अपरिगृहीता अर्थात् जिनका स्वामी है वे स्त्रियें और जिनका स्वामी नहीं है वे स्त्रियें इन दोनों प्रकारकी व्यभिचारिणी स्त्रियोंका सेवन न स्वयं करता है और न दूसरोंको प्रेरणा करता है और न परस्त्रीगामियोंको अनुमोदना करता है। भावार्थ-कृत कारित अनुमोदित मन वचन काय नव कोटि विशुद्धिसे जो वेश्या व परस्त्रीत्यागी है वह स्वदारसन्तोषाणुव्रती है यहांपर अपरिगृहीत जिनका पति नहीं है एक तो वेश्या ली है दूसरी वे स्त्री हैं स्वेच्छाचारिणी और तीसरी कुलस्त्रियें अनाथ विधवायें। अब यहांपर शंका होती है कि कन्यायें किसमें रहीं ? परिगृहीताओंमें या अपरिगृहीताओंमें ? तब लिखते हैं [कन्या तु भाविभर्तृकत्वात् पित्रादिपरतन्त्रत्वाद्वा सनाथा] कन्या तो अगाड़ी विवाहित हो जायगी इस कारण और पितादिकके आधीन है इसलिये सनाथा ही है अनाथा नहीं यहांपर जिस तरह कन्या विवाहित हो जायगी अर्थात् भविष्यमें पतिसहयोगिनी बनेगी इसलिये अपरिगृहीताओंमें ग्रहण नहीं किया तब प्रियमित्रो ! यदि अनाथ विधवाओंका विवाह आचार्योंको स्वीकृत होता अर्थात् वैधिक विवाह होता तो उसके विषयमें भाविभर्तृकत्वात् क्यों न लिखते ? तीसरे भगवतीआराधनासारमें पतिव्रताओंकी शीलमहिमा लिखते हुवे कहते हैं कि जो शीलवती स्त्रियें होती हैं वे वैधव्यजनित अति तीव्र दुःखको नहीं पातीं यदि विधवाओंका विवाह शास्त्रविहित होता तो फिर वैधव्यजनिततीव्र दुःखकी संभावना ही क्यों होती ? जैसाकि कहा है— गाथा

एकपदे वहकण्णावयाणिधारिंतिकित्तिमहिलाओ।
वेधव्वत्तिव्वदुक्खं आजीवण्णेनिकाऊ वि ६८ ॥
एकपत्नी व्रते कन्या व्रतानि धारयन्ति कियंत्यो महिला.
वैधव्यतीव्रदुःखं आजीवनं नैति कायेनापि॥

कितनी स्त्रियायें एक पतिव्रत करि सहित अणुव्रतने धारण करे हैं और विधवापणाका तीव्र दुःख जीवें जितने नहीं प्राप्त होय हैं। यह गाथा श्रीभगवती आराधनासारमें अर्थ सहित देखलें। स्पष्ट विधवा विवाहका निषेध होरहा है। श्री सर्वार्थसिद्धिमें श्रीपूज्यपाद स्वामी भी लिखते हैं [कन्यादानं विवाहः] कन्यादानको विवाह कहते हैं. 'या एक पुरुषभर्तृका सा परिगृहीता' एक पुरुष ही भर्ता जिसका है वह परिगृहीता अर्थात् विवाहिता स्त्री है यदि दूसरे पतिके साथ विवाह करने पर भी स्त्री परिगृहीता कहलाती होती तो एक पुरुषभर्तृका कहनेका क्या प्रयोजन था ? कदाचित् यहांपर कोई ऐसा कुतर्क करै कि विधवाने यदि दूसरा विवाह कर लिया तो भी जीवित पति तो एक ही रहा यदि पति जीनेपर दूसरा पति करै तब या पति रहनेपर भी दूसरे पुरुषोंसे व्यभिचार करै तब एकपुरुषभर्तृका नहीं कहला सक्ती सो यह तर्क ठीक नहीं क्योंकि जब एकपुरुषभर्तृकाका अर्थ यह रहा कि जब कोई स्त्री कुछ काल के लिये एक पतिको परिगृहीत कर ले तबतक वह एकपुरुषभर्तृका है या जब एक पति मर जावै तब दूसरा पति कर लेवै वह भी एकपुरुषभर्तृका है तब तो स्त्रियें मन माने चाहैं जितने पति एक मरनेके बाद दूसरेको कर सक्ती हैं या जीवित होनेपर भी एकको छोड़ दूसरेको कर सक्ती हैं फिर भी व्यभिचारिणी नहीं कहला सक्तीं. दूसरे कोई भी स्त्री एक कालमें एक पुरुषके साथ ही संभोग कर सक्ती है न

कि अनेकोंके साथ क्योंकि युगपत् एक स्त्री के साथ अनेक पुरुषोंका संभोग असंभव है। प्रत्यक्ष दृष्टान्त हैं यद्यपि एक कुत्तीके साथ अनेक कुत्ते धावा करते हैं परंतु रति किया एक ही के साथ देखनेमें आती हैं भ्रातृवर! फिर तो कूकरी शूकरी तिर्यञ्चिणी मनुष्यिणी सब ही स्त्रीमात्र पतिव्रता और शीलवती ठहरीं फिर यह उपदेश और व्रतोपदेश सब व्यर्थ हैं एवं आगम भी व्यर्थ है और आपकी यह विधवा विवाह व्यवस्था भी व्यर्थ है क्योंकि शीलत्व तो स्वयं विना व्यवस्था ही वर्तमान है इसलिये आपको स्वपर हितार्थ दुरभिनिवेशयुक्त मिथ्या शंकायें हृदयसे निकाल देनी चाहिये।

और फिर भी कोई शङ्का करै कि आपने यह घसोटकर अर्थ निकाला है आचार्यों का यह अभिप्राय नहीं है कहीं विधवा शब्दका नाम तक तो आया नहीं इसलिये हम स्पष्ट इन्हीं शब्दोंमें प्रबल प्रमाण देते हैं—श्रीश्रुतसागर आचार्य श्रीतत्त्वार्थसूत्रकी श्रुतसागरि टीकामें साफ साफ शब्दोंमें लिखते हैं (पर विवाहकरणेति सूत्रकी व्याख्या) कन्यादानं विवाहः उच्यते परस्य स्वपुत्रादिकादन्यस्य विवाहः परविवाहः परविवाहस्य करणं परविवाहकरणं। पति गच्छति परपुरुषानित्येवंशीला इत्वरी कुत्सिता इत्वरी इत्वरिका एकपुरुषभर्तृका या स्त्री सधवा विधवा सा परिगृहीता संबद्धा कथ्यते। वराङ्गनात्वेन पुंश्चलीभावेन परपुरुषानुभवनशीला निःस्वामिका सा अपरिगृहीता असंबद्धा कथ्यते। भावार्थ—कन्यादान को विवाह कहते हैं स्वपुत्रादिकसे अन्यका विवाह सो परविवाह कहलाता है और जो परपुरुषगामिनी व्यभिचारिणी स्त्री हैं वह इत्वरिका कहलाती हैं। इत्वरिका व्यभिचारिणी दो प्रकारकी स्त्रियें हो सक्ती हैं-एक परिगृहीता और दूसरी अपरिगृहीता। परिगृहीतायें वे कहलाती हैं जो एक पुरुष भर्ता वाली हैं वे सधवा जीवितपति वाली और विधवा मृतपति वाली दोनों ही परिगृहीता हैं और अपरिगृहीतायें वे हैं जिनके कोई पति निश्चित नहीं वेश्यादिक, इनके गमनादि करना अनाचार हैं यहां पर साफ विधवाको परिगृहीता बतलाया हैं अर्थात् वह अन्यस्त्री परस्त्री हैं पति मर जानेपर भी दूसरेकी स्त्री है उसके यहां जाने आने या एकवार भी सेवन करनेमें परस्त्रीगामी है कुशीली है और घरमें जो हमेशहके लिये रख लेवे तो अनाचारी है यह सिद्ध हुवा। विधवाका फिर विवाह हो ही नहीं सक्ता कन्यादान ही विवाहका लक्षण है और विधवा परिगृहीता स्त्री है उसका ग्रहण करना कुशील है स्पष्ट शब्दोंसे प्रगट है। जहांपर इसको अपरिगृहीतामें लिखा है वहां पर भी (अनाथत्वेन परदारत्वात्) अनाथ होनेसे ही पर स्त्री है ऐसा लिखा है कन्या तो उत्तर कालमें विवाहिता हो जायगी इसलिये भाविभर्तृकत्वात् ऐसा लिखा है परंतु विधवाका विवाह होता तो उसको भी (भाविभर्तृकत्वात् सनाथा) ऐसा लिखने सो नहीं इससे उभयतः पाशारज्जू है कोई प्रकार भी विधवाका विवाह आगमसे सिद्ध नहीं तथा कन्या देय वस्तु है सो दातारविना देयवस्तु चैतन्य होनेपर भी स्वयं दूसरोंके पास नहीं जा सक्ती है, इसके दातार उसके पितादि कुटुम्बी जन हैं जब उन्होंने किसी त्रैवर्णिक समान धर्मी समान कुलवाले सुपात्रको प्रदान कर दी फिर दानकी हुई वस्तुका पितकों देनेका अधिकार रहा नहीं और उसका कोई दातार नहीं और जब कोई देनेवाला नहीं तो वह वस्तु अदत्त है पर द्रव्य है इस लिये उसका ग्रहण करनेवाला चोर और परस्त्री

सेवो है कन्या देय वस्तु है यह बात कन्यादानं विवाहः इत्यादि उपर्युक्त वाक्योंसे ही प्रमाणित है तथा और भी सागारधर्मामृतमें लिखा है ।

निस्तारकोत्तमायाथ मध्यमाय सधर्मणे ।
कन्याभूहेमहस्त्यश्वरथरत्नादि निवर्तयेत ॥ ५६ ॥
आधानादिक्रियामंत्रव्रताद्यच्छेदवांछया ।
प्रदेयानि सधर्मेभ्यः कन्यादीनि यथोचितम् ॥५८॥

यद्यपि इन श्लोकोंका संस्कृत टीकामें बहुत खुलासा है और बहुत है परंतु लेख बढ़ जानेके भयसे हम संक्षेपसे तात्पर्य लिखते हैं-संसारार्णवोत्तारक गृहस्थियोंमें प्रधान और क्रिया मंत्र व्रतादि लक्षण रूप धर्म धारक अर्थात् गर्भाधानादि संस्कार धारक उत्तम श्रावकके लिये कन्या भू हेम हस्ती घोड़ा आदि त्रिवर्गका धर्मसाधक चीजें देवै किस लिये कि आधानादिक्रिया मंत्र व्रतादिकका उच्छेद न हो जावै इसलिये, यथोचित सहधर्मी भाईको कन्यादिक देना चाहिये और चारित्रसारमें भी कहा है (समदत्तिः स्वसमक्रियामंत्राय निस्तारकोत्तमाय कन्याभूमिसुवर्णहस्त्यश्वरथरत्नादिदानम् स्वसमानाभावे मध्यमपात्रस्यापि दानमिति)

गृहस्थके षट्कर्मोंमें दानके चारभेदोंमें पात्रदत्ति दयादत्ति और अन्वयदत्ति वर्णन की है। उसमें समदत्ति वर्णन करते हुवे कहा है-कन्याभूमिसुवर्णादि सहधर्मियोंको धर्ममें स्थित रहैं इस हेतु देना चाहिये इसका अर्थ पूर्वोक्त श्लोकोंके समान ही है। कन्या देय वस्तु है। दातार विना देय वस्तु ग्रहण करनेमें चोरी और पर स्त्रीका दोष है। और भी सागारधर्मामृतमें कहा है।

निर्दोषां सुनिमित्तसूचितशिवां कन्यां वराहैं गुणैः स्फूर्जन्तं परिणाय्य धर्मविधिना यः सत्करोत्यंजसा दम्पत्योः स तयोस्त्रिवर्गघटनात्त्रैवर्णिकेष्वग्रणीः भूत्वा सत्समयास्तमोहमहिमाकार्ये परैप्यूर्जति ॥१॥

इस श्लोकको टीकामें लिखते हैं [वराहैं गुणैः] वरके योग्यगुणों सहित [कन्यां] कुमारीको [धर्मविधिना परिणाय्य) धर्मयुक्त आर्षविधिसे परिणाय करके (अंजसा) श्रद्धापरक होनेसे सहधर्मीको सत्कृत करता है यहांपर साफ कन्या कुमारीका दान लिखा है विधवाका तथा विवाहिताका नहीं तथा वरके योग्य कन्याके गुण त्रैवर्णिकके लिये लिखे हैं (कुलशीलसानाथ्यविद्याविभवसौरूप्ययोग्यवयोर्थिभिः] कुल शील स्वामित्व विद्या तथा धन सुन्दरता योग्य अवस्था इन गुणोंसे सहित हो। विधवामें ये गुण कहां रहे ? जो दूसरे पुरुषका संयोग है सो ही कुशील है। यदि ऐसा न होता तो पद्मपुराणजीमें सीताजी अग्नि कुण्डमें प्रवेश करती हुई क्यों कहती--

मनसि वचसि काये जागरे स्वप्नमार्गे
मम यदि पतिभावो राघवादन्यपुंसि ।
तदिह दह शरीरं पावके मामकीनं
सुकृतविकृतनीतेदेव साक्षी त्वमेव ॥ १ ॥

मनमें वचनमें शरीरमें जागृत अवस्थामें तथा स्वप्नमें भी यदि मेरे राघव जो रामचंद्रजी हैं उनसे अन्य पुरुषमें पतिभाव हो तो इस अग्निकुण्डकी अग्निमें मेरा शरीर भस्म हो जावो। हे देव हे अरहंत भगवन्! सुकृत पतिव्रत रूप धर्म पुण्य परिणाम तथा कुशीलरूप पापविकारी परिणामके गवाही आपही हैं।

इससे स्पष्ट है कि एक पुरुषभर्तृका ही शीलवता होती है। ऐसा हम ऊपर स्पष्ट दिखा चुके हैं अन्यथ कुकरी शूकरी तक शीलवती स्वयं सिद्ध हो जायेंगी क्योंकि एक समयमें एक ही पुरुषसे संयोग संभव है अन्यथा नहीं। यदि कुछ काल परिगृहीता

भी शीलवती ठहरै तो एक स्त्री दश पति अंतर २ से करती रहैगी तब भी शीलवती ही ठहरैगी तब कुल शीलादि गुणोंकी योग्यताकी क्या आवश्यकता ? और भी सागारधर्म्मामृतकसे कई शताब्दीपूर्व श्रीजिनसेनस्वामीने महापुराणमें लिखा है—

ततोस्य गुर्वनुज्ञाना दिष्टा वैवाहिकी क्रिया ।
वैवाहिके कुले कन्यामुचितां परिणेष्यतः ॥ १ ॥

तिस कारणसे वैवाहिक कुलमें (त्रैवर्णिकमें) गुरुकी आज्ञासे उचित कन्या परिणयन करने वालेको वैवाहिकी क्रिया इष्ट है। इन वाक्योंसे हमको यह दिखाना है कि (वैवाहिके कुले उचितां कन्यां] ऐसे कहनेका आचार्यप्रवरका क्या आशय है ? समझना चाहिये इसका मतलब यही है नियमित विवाहविधि आर्षोक्त ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन वर्णोंमें ही होती है यह त्रैवर्णिक ही विवाह कुल है और शूद्रोंमें नहीं। शूद्र संस्कार हीन हैं उन्होंके संस्कार नियमसे नहीं होते है इसीको जिनसंहिता (एक संधि संहितामें) में स्पष्ट दिखाया है। जैसे कि—

मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा ।
वृत्तिभेदा हि तद्भेदाच्चातुर्विध्यमिति स्मृताः ॥२१॥
न चैवं क्षत्रियत्वादिर्जातिः काल्पनिको भवेत् ।
तत्तज्जातेर्यतो जातिः तत्तद्वृत्त्युचितान्वये ॥२२॥
क्षत्रियाद्यास्त्रयोप्येषु मता वर्णोत्तमा यतः ।
केवलार्को दुगतेर्योग्यसंतानाः श्लाघ्यवृत्तयः ॥२३॥
तत्राप्यल्पं विशो विप्रस्तत्रापि क्षत्रिया वराः ।
वृत्तयो हि तदेतेषामवसेयास्तथाविधाः ॥ २४ ॥
नीचास्युग्वगन्तव्याः शूद्रा ह्येते ह्यभूमयः ।
उद्गतेः केवलार्कस्य नान्यवृत्ति विनान्वयाः ॥२५॥
तेषां नानाविधानां तु तारतम्यं तथाविधम् ।
यथाविधा मतास्तेषां वृत्तयस्ता ह्यनेकधाः ॥२६॥
शूद्राणामुपनीत्यादिसंस्कारो नाभिसंमतः ।
यन्नैते जिनदीक्षार्हा विद्याशिल्पोचितान्वयाः ॥२८
अयोग्यता च तत्रैषामभूमित्वात् सुसंस्कृतेः ।
नोचान्वये हि संभूतिः स्वभावात्तद्विरोधिनी ॥२८
त्रैवर्णिकेन वोढव्याः स्यात् त्रैवर्णिककन्यकाः ।
शूद्रैरपि पुनः शूद्राः स्वा एवान्या न जातुचित् २९
स्वामिमां वृत्तिमुत्क्रम्य यस्त्वन्यां वृत्तिमाचरेत् ।
स पार्थिवैर्नियन्तव्यो वर्णसंकीर्णिरन्यथा ॥ ३० ॥

इन श्लोकोंका यह तात्पर्य है कि मनुष्यगति पञ्चेन्द्रिय जाति नामक नाम कर्मके उदयसे मनुष्य जाति एक ही है तथापि उच्च नीच वृत्तिभेदसे अर्थात् उच्चाचरण और नीचाचरण द्वारा जीविकादि वृत्ति करनेमें तथा सदाचार और कदाचारके भेदसे वर्णाश्रम विधि होती है। कोई यहांपर यह शंका करे कि यह क्षत्रियादि वर्णाश्रमविधि तथा जाति भेद काल्पनिक हैं मन माना है सो नहीं है किन्तु सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रादि आत्माके स्वाभाविक गुणोंके तत्तत्प्रतिपक्षी कर्म्म मिथ्यात्व कषाय अव्रतादिक जन्य उदय क्षयोपशम जनित परिणामों द्वारा तथा उच्चनीचादि वंश परंपरयागत संस्कार जन्य उनकी वाह्यप्रकृति श्रेष्ठ अथवा नीच होनेसे स्वामीने वर्णाश्रमविधि प्रतिपादनकी है जो कि नाना योगस्थान और कषायाध्यवसायस्थान द्वारा अनादि प्रवाहसे इस असार संसारमें अनादिसे चली आ रही है भगवान् सर्वज्ञ देव तो केवल मार्गदर्शक और प्रकाशक हैं न कि किसीके करता धरता हों तब यही सिद्ध हुवा तत्तत्पुरुषीय कर्म्मके उदय क्षयोपशम जन्य जहां तहा सामिग्री मिलती है वहां वहां उस उस सामिग्री सम्पन्न पर्यायमें श्रेष्ठाचरणरूप श्रेष्ठकुल (वैवाहिक अर्थात् त्रैवर्णिक कुलमें उत्पत्ति होती है और जिन्होंने पूर्व भवमें नीचाचरण द्वारा नीचकर्म-

आदि बन्धन किया है वे नीच कुलमें अर्थात् नीचा-चरण वाले शूद्र अन्त्यजादि कुलमें उत्पन्न होते हैं इससे यह भी सिद्ध हुआ कि शूद्रादि शुभ कर्म्म करनेसे इसी जन्ममें वैश्य आदि नहीं हो जाते क्योंकि उनके माता पितादिके रक्त वीर्यका संस्कार रहनेसे इस जन्ममें एक साथ वर्ण नहीं बदल सकता यदि शुभ कर्म करैगा तो एतज्जन्मीय संस्कारोंका संसर्ग छुटते ही अगले जन्ममें शीघ्र उच्चताको प्राप्त होगा और इस जन्ममें वर्तमान वर्णाश्रम या जातिमें प्रशस्त गिना जायगा इसीसे उन्होंने २३ वें श्लोकमें लिखा है चातुर्वर्ण्य आश्रममें क्षत्रियादिक तीन वर्ण वर्णोत्तम हैं श्रेष्ठ वर्ण हैं क्योंकि इन तीनों ही वर्णोंमें केवलज्ञानरूपी सूर्यके उदय होने योग्य श्रेष्ठाचरण वाली प्रशंसनीय सन्तान होती है शूद्रोंमें नहीं अर्थात् इन तीन वर्णोंमें ही केवलज्ञान उत्पन्न करने वाले पुरुष उत्पन्न होते हैं शूद्रोंमें नहीं इनमें भी वैश्योंमें बहुत कम केवली होते हैं और उनसे ज्यादा ब्राह्मण वर्णमें और सबसे ज्यादा क्षत्रियोंमें मोक्ष जाने वाले होते हैं और इसीसे तीर्थंकर जितने होते हैं वे भी क्षत्रिय कुलमें ही होते हैं और वास्तवमें इन क्षत्रिय वैश्योंमें ही विशेष कोमल परिणाम वाले भरतमहाराजने ब्राह्मण माने थे अनादि प्रवाहमें तीन वर्ण ही हैं उनमें क्षत्रियत्व ही पूज्य है और क्षत्रियत्वके प्रशस्त होनेका कारण यह है कि वैश्य रुपये आदि बाह्य परिग्रह परद्रव्याराधक सारे दिन रहनेसे आत्महिताचरणी बहुत कम होते हैं और रुपये पैसे कुटुम्बादिमें मोही भी विशेष होते हैं काम पड़ने पर आत्मोत्सर्ग नहीं कर शक्ते और ब्राह्मण परदुःखापहरणार्थं दान जपादि रूप कार्य करनेसे विशेष मोहाविष्ट होते हैं पर दुःखेन दुखित होते हैं अनुष्ठानादिसे आर्त परिणामी दान प्रतिग्रहादि लेनेकी इच्छासे पर चाहंदाहसे तप्त रहनेसे ममत्वत्याग रूप परिणामको भूमि बहुत कम होते हैं। हां! पूर्वमें जो भी उत्कृष्टता वर्ण धर्ममें बतलाई है वह सन्तोषवृत्ति और परोपकारता तथा ब्रह्मज्ञानाराधकतासे थी सो बहुत कम व्यक्तियोंमें होती है तो भी आत्मोत्सर्ग करनेके लिये बहुत कम मिलेंगे परन्तु क्षत्रियत्व (धर्म) स्वभाव ही एक ऐसा है कि रणसंग्राममें तो अपने आत्माको अजर अमर समझते हुवे शरीरको कटते छिदते हुवे भी जरा भी नहीं डरते उससे मस्त नहीं होते और मोक्षाभिलाषी होते हुवे मुनिपदमें कर्म शत्रुओंसे लड़ते हुए शरीरसे ममत्व त्याग परीषहोपसर्गोंसे नहीं डरते। मासोपवासी तथा वार्षिक योग धारण कर शुद्ध परिणामको अटल रख निर्विकल्प दशाको प्राप्त हो शुक्ल ध्यानसे केवल ज्ञानरूपीसूर्यको उत्पन्न कर असिधारासदृश निर्मल और अतिदृढतर उपदेश देते हुवे नानाजीवोंका उद्धारकर मुक्ति साम्राज्यके सम्राट् होते हैं और अपने परिणामोंमें जैसे क्षत्रिय बहुलतासे दृढ होते हैं वैसे ब्राह्मण वैश्य नहीं इसीसे एक संधि आचार्यने कहा है कि मोक्षके पात्र सबसे अधिक क्षत्रिय और क्षत्रियोंसे कम ब्राह्मण और ब्राह्मणोंसे कम वैश्य होते हैं परन्तु शूद्र नहीं शूद्र केवलज्ञानके योग्य पूर्वोपार्जित अशुभोदयसे विशुद्ध परिणाम विशुद्धाचरण रूप सामग्री सम्पन्न नहीं होनेसे ही नीच वृत्तिवाले हैं क्योंकि नीच वृत्ति रहित कुलवाले पुरुष ही केवल ज्ञानरूपी सूर्यके उदय होनेकी भूमि हैं नीच वृत्ति वाले नहीं और उन तीन वर्णोंमें भी नाना जातियोंका भेद तथा अनेक प्रकारकी वृत्तियां उनके नाना भिन्न २ कर्म्मोंके उदयादि भेदोंके तारतम्यसे भेद है और शूद्रोंके इसी कारण यज्ञोपवीत संस्कारादि विधिकी योग्यता न हो-

जैसे यज्ञोपवीतादि संस्कारके होनेका नियम नहीं इसीसे वे जिनदीक्षा मुनिपदके योग्य नहीं क्षुल्लक तक होने योग्य हैं। शूद्रोंके मुनिपदकी योग्यता क्यों नहीं इसमें आचार्यप्रवर हेतु देते हैं—सुसंस्कृतेरभूमित्वात् यज्ञोपवीतादि संस्कारोंकी अभूमि होनेसे मुनिपद योग्य नहीं क्योंकि [नीचान्वये हि संभूतिः] नीच कुलमें उत्पत्ति जो है वह (स्वभावात्सद्विरोधिनी, स्वभावसे ही श्रेष्ठाचारकी विरोधिनी है अर्थात् नीच कुलोत्पन्न जीवोंके पूर्व जनित संस्कारोंके उदयसे श्रेष्ठाचारमें उनकी परणति होती ही नहीं इसमें किसीका वल नहीं चलता। इसकी एक प्रसिद्ध शास्त्रोक्त कथा है कि एक ब्राह्मणके एक पुत्र था और एक दासी पुत्र था दोनोंको ही उस ब्राह्मणने पढ़ाया। दैव योगसे ज्ञानावरणके विशिष्ट क्षयोपशमसे दासी पुत्र विशेष विद्वान् हो गया सो उस ब्राह्मण पुत्रकी प्रतिष्ठा इस दासी पुत्रसे न होने पावै तब उस ब्राह्मणने उसको निकाल दिया वह देशान्तरमें जाकर एक राजाके यहां गया गुणकी प्रधानतासे राजाने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री परणादी परन्तु रतिकालमें राजपुत्रीने इसकी कुचेष्टासे नीच कुली जाना और मनमें उस बातके निर्णयार्थ शोचती रही। एक समय ब्राह्मण दैवयोगसे वहां आया और उस लड़केने समझा ये मेरा वृत्तान्त प्रकट न करदें इससे उसने अपने पिताका बहुत आदर किया और अपना पिता कहकर घरपर रक्खा जब उस पुत्रीने एकान्तमें लोभ देकर उससे पूछा तो उसने सब वृत्तान्त कह दिया। इस कथाके कहनेका तात्पर्य यह है कि नीच संस्कारका असर एक साथ जाता नहीं और भी एक प्रसिद्ध दृष्टान्त लीजिये कि वसुदेवके पुत्र जरत्कुमार कुल शुद्ध होनेपर भी भीलिनीका पुत्रीसे उत्पन्न होनेसे मातृपक्ष शुद्ध न होनेसे आखेटके (शिकार] कर्म करनेमें तत्पर हुवे और कृष्णके पदमें तीर मारा यह संस्कारका ही फल था जो बधकका काम किया। इसीप्रकार वर्तमानमें भी अनुभव करनेसे आपको बहुत स्थल मिलेंगे इसी हेतु आचार्यप्रवर लिखते हैं कि त्रैवर्णिक पुरुषोंको त्रैवर्णिककी कन्यायें परणानी चाहिये अर्थात् क्षत्रिय क्षत्रियकी ब्राह्मण ब्राह्मणकी और वैश्य वैश्यकी परणें। इसीको खुलासा इस प्रकार लिखा है—"एवं कृते विवाहे स्युः क्षत्रियाः क्षत्रियात्मजाः। विप्रस्य तनया विप्राः वैश्या वैश्यस्य सूनवः॥ ३६॥ इसप्रकार विवाहमें क्षत्रिय क्षत्रियकी लड़की और विप्र विप्रकी तथा वैश्य वैश्यकी लड़की को परणें और [शूद्रैरपि पुनः शूद्रा] शूद्र शूद्रोंकी कन्या परणे [अन्या न जातुचित्] अन्य वर्ण वाला अन्य वर्ण वालेकी कभी नहीं परणे तथा वर्णाश्रमानुसार अपनी २ वृत्तिको यदि कोई अन्यथा करै अर्थात् अन्यकी अन्य परणे तो वर्ण संकरता हो जावे इसलिये राजाको चाहिये यदि अन्यथा करै तो उसको दण्ड दे। यह नियम प्रजाके लिये है राजाओंको नहीं, कारण राजाओंकी क्रिया मुनिवत् प्रजाबाह्य है जैसे राजाओंको सूतकपातकादि नहीं उसी प्रकार यह नियम भी लागू नहीं। यहांपर पटेलबिलका भी विरोध सिद्ध होता है परंतु यह अनधिकृत विषय है इसलिये इस विषयको नहीं छेड़ते। उपर्युक्त कथनसे यह सिद्ध हुआ कि वैवाहिक कुलमें अर्थात् तीनवर्णोंमें वैवाहिक क्रिया नियमसे इष्ट होती है और शूद्रोंका वैवाहिक कुल नहीं इसलिये विवाहादि संस्कारोंका नियम नहीं इससे यह आया कि तीन वर्णोंमें विवाह संस्कार नियमसे है और विवाह संस्कारमें मुख्य सप्तपदी है सात भामरी हैं ६ भामरी होने पर भी कन्या है जब सातमी भामरी अर्थात् सातवा फेरा परै

तब विवाहिता कहलावे सो ही लिखा है "वेदिकायाः सप्तपरमस्थानप्राप्तिसूचनार्थं सप्त प्रदक्षिणाः दद्यात्तां" सप्तपरमस्थान सूचनाके लिये सात प्रदक्षिणा (सात भमरी) यन्त्रस्थापित वेदोको देवे [यावत्प्रदक्षिणा न स्यात् सप्तमो तावद्दुच्यतां । कन्येतिनाम्ना पत्नाज् जायेतिनामभागिनी १ । और जबतक सातवो भामरी न होवे तब तक उसका कन्या कहै जब सातवीं भामरी हो जावै अर्थात् सातवो भामरो जब होतो है उसके पहले छठवो भामरो होनेपर वर कन्याके परस्पर व्रत प्रतिज्ञाके सप्त सप्त वाक्य हैं । कन्याके सात वाक्य हैं कन्या कहतो है परस्त्रोभिः क्रीड़ा न कार्या १ वेश्यागृहे न गन्तव्यम् २ द्यूतक्रीड़ा न कार्या ३ उद्योगाद् द्रव्योपार्जनेन भमाशनभरणानि रक्षणीयानि ४ धर्म्यस्थाने न वर्जनीया ५ अनुचितकठिनदण्डो न दातव्यः ६ जोवनपर्यन्तं निरपराधं न त्यजनीया ७ अर्थात् परस्त्री सेवन नहीं करना १ वेश्यासेवन नहीं करना २ जुआ न खेलना ३ व्यापारसे जो द्रव्य उपार्जन करो उसमें से मेरे वस्त्र आभूषण बनवा कर मेरे स्त्री धनकी रक्षा रखना सब नहीं खा उड़ा डालना ४ मेरेको और सब जगह वर्जना परन्तु धर्म्म स्थान देवदर्शन पूजनादिकेलिये जानेमें नहीं वर्जना ५ अनुचित कठोर दण्ड नहीं देना ६ और जोवन पर्य्यन्त अपराध विना पृथक् [अलहदा] न रखना ७ इमानि सप्तवाक्यानि स्वीकरोषि तदा वामभागिनो भवामि (ये सात वाक्य प्रतिज्ञापूर्वक स्वीकार करते हो तो वामभागिनो होती हूं तब वर कहता है कि ये सप्त वाक्य मुझे प्रतिज्ञापूर्वक स्वीकार हैं परन्तु तुम भी मेरे सप्त वाक्य स्वीकार करो तो । वे ये हैं-मम गुरोस्तथा कुटुम्बिजनानां यथायोग्यं विनयशुश्रूषा करणीया-मेरे गुरु [पूज्य पुरुष] पिता माता आदि कुटुम्बि मनुष्योंको जिसकी जैसी चाहिये तदनुसार सेवा करना १ ममाज्ञा न लोपनीया मेरो आज्ञा भंग नहीं करना २ कठोर वाक्यं न वक्तव्यम्-कठोर परुष अविनयादिरूप अनुचित स्नेहाबाह्य वचन नहीं बोलना ३ ममहितैषिसत्पात्रा द्विजनानां गृहागमे सति आहारादिदाने कलुषितमनो न कार्य-मेरे हित् हित चाहने वाले मुनि अर्जिका श्रावक श्राविका तथा धर्मस्नेही व मित्रादिका घरमें आगमन हो तो उनके लिये भोजनादि देनेमें सङ्कुचित मन नहीं करना ४ अभिभावकस्याज्ञां विना परगृहे न गन्तव्यम्-स्वश्रू श्वसुरपतिआदि रक्षकको आज्ञा बिना पर घरमें नहीं जाना ५ बहुजनसंकोर्णस्थाने कुत्सितधर्मे तथा व्यसनाशक्तजनानां गृहे न गन्तव्यम्-बहुत लोगों करके व्याप्त क्षेत्रमें तथा खोटे अनायतनोमें व व्यसनी पुरुषोंके घरमें नहीं जाना ६ गुप्तवार्ता न रक्षणीया तथा मम गुप्तवार्ता अन्याग्रे न कथनीया-मेरो गुप्त बात किसीके सामने न कहना और न मुझसे छिपाकर कोई गुप्त बात रखना एतानि सप्तवाक्यानि यदाङ्गीकरोषि तदा वामभागिनो भव-जो ये सप्त वाक्य तेरेको स्वीकार हैं तो वामभागिनो बन। जब वर कन्या परस्पर प्रतिज्ञापूर्वक स्वीकार करते हैं तब सप्तमी भामरो होके कन्या वधू होकर वामभागिनी होती हैं और वर दक्षिणभागस्थ। इसलिये सप्तपदी का होना विवाहमें मुख्य है (सप्तपदीके मन्त्र तथा पूजन और विधि प्रचलित विवाह पद्धतिसे पृथक् लिखित वर्त्तमान हैं इसके सिवा सप्तपदो सप्तपरमस्थान सूचनार्थं है इसलिये हो विवाहमें मुख्य है। सप्तपरमस्थान ये हैं—सज्जातिः १ सद्गृहस्थत्वं २ पारिव्राज्यं ३ सुरेन्द्रता ४ साम्राज्यं ५ आर्हन्त्यं ६ निर्वाणम् ७। अब सज्जातिका अर्थ कहते हैं—

सन्नजन्मपरिप्राप्तौ दीक्षायोग्यसदन्वये।

विशुद्धं लभते जन्म सैष सज्जातिरिष्यते ८२ पर्व
३९ वां महापुराणे।
विशुद्धकुलजात्यादि सम्पत्सज्जातिरिष्यते। (रुच्यते)
उदितोदितवंशत्वं यतोऽभ्येति पुमान् कृती ॥ ८३ ॥
पितुरन्वयशुद्धिर्या तत्कुलं परिभाष्यते।
मातुरन्वयशुद्धिस्तु जातिरित्यभिलप्यते ॥ ८४ ॥
विशुद्धिरुभयस्यास्य सज्जातिरनुवर्णिता।
यत्प्राप्ती सुलभा बोधिरयत्नोपनतैर्गुणैः ॥ ८५ ॥
सज्जन्मप्रतिलंभोयमार्यावर्तविशेषितः।
सत्यां देहादिसामग्र्यां श्रेयः सूते हि देहिनाम् ॥८६॥
शरीरजन्मना सैषा सज्जातिरुपवर्णिता।
एतन्मूला यतः सर्वाः पुंसामिष्टार्थसिद्धयः ॥ ८८ ॥

श्रेष्ठ मनुष्यगतिमें दीक्षायोग्य कुल जाति और शुद्ध वंशमें उत्पन्न होना सज्जाति है पिताकी वंशशुद्धि का होना शुद्धकुल कहलाता है और माताका वंश शुद्ध होना शुद्ध जाति कहलाती है और दोनों जिसपुरुषके शुद्ध होवें उसे सज्जाति कहते हैं इस सज्जातिके पानेसे ही रत्नत्रयकी प्राप्ति होजाती है और इसकी प्राप्ति आर्यक्षेत्रमें ही विशेष कर होती है यह शरीरजन्मसे सज्जाति वर्णनकी। यहां पर देश कुल जाति शुद्धवंश ही दीक्षायोग्य कहा। सोही श्रीजयसेनाचार्यजीने पञ्चभक्तिपाठमें भी आचार्यभक्तिमें श्रीआचार्यमुनिको देश कुल जाति शुद्धवंशका होना लिखा है—देसकुल जाहि सुद्धा विसुद्धवयणमणकायसंजुत्ता। तुम्हं पायपयोरुहमिह मंगलमत्थु मे णिच्चं ॥१॥ और देशशुद्धि आर्यक्षेत्रोत्पन्नके लिये ही है क्योंकि म्लेच्छोंके पंचम गुणस्थानसे ऊपर गुणस्थान नहीं और कुलशुद्धिमें पिताके वंशकी शुद्धि लिखी और जाति शुद्धिमें माता की वंशशुद्धि लिखी है। अब यहां विचारनेका स्थल है कि पुनर्विवाहिता स्त्रोकी सन्तान जाति कुल शुद्ध ठहरै तो अशुद्ध कौन ठहरैगा क्योंकि स्त्री अपनी इच्छासे जिसको पति स्वीकार करै वही पति है तो एकवार दोवार चार वार कालान्तरसे नियोग करने पर भी सुशीला है क्योंकि तीसरीवार विवाहके रोकनेका नियामक कारण कौन और जो एकवार पुनर्विवाह करके फिर न करै या पति मर जाने पर ही पुनर्विवाह करै जीते पर न करै इसका नियामक कारण कौन और हमारे सिद्धान्तानुसार कन्याका ही विवाह होता है विधवाका नहीं इसपक्षमें [विधवा विवाह] पुनर्विवाहको रोकनेमें या दोवार रोकनेमें कन्यात्व धर्म कारण है जोकि एकवार विवाह होनेपर फिर नहीं रहता है। इसलिये कारणके अभावमें कार्यका भी अभाव है यह सुगम सिद्ध है और जहां एकके सिवाय दूसरेका संयोग है वही कुशील है जहां दूसरे का संयोग नहीं वहां ही शील है जैसे कर्मोपाधि निरपेक्ष शुद्ध निश्चयनयसे आत्मा जबतक परद्रव्यसे संयोग रखता है तबतक कुशील है और जहां अपने स्वभावमें लय होके एक है केवल है वही शुद्ध है शील है इसी प्रकार दूसरे पतिका संसर्ग करनेवाली स्त्री की सन्तान कभी कुल जाति शुद्ध नहीं कहला सकती कोषकार अमरसिंह भी लिखते हैं—

अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलकः ॥

यदि पति बना हो और वह स्त्री दूसरा पति करले उसकी सन्तान हो तो उस लड़केको कुंड कहते हैं और भर्ता मरने पर दूसरे पतिसे सन्तान हो तो उसे गोलक कहते हैं यदि पुनर्विवाहित स्त्रीको सन्तान कुलीन कही जाती तो कुंड गोलक ये कुत्सित नाम धरनेकी क्या आवश्यकता था। कोई शंका करै कि यह कथन व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी संतानका है पुनर्विवाहित स्त्रीने एक मनुष्यसे निश्चित करलिया है तो हमारा

कहना है कि उसने भी अपना मानसिक संकल्प कर लिया हैं दूसरे पतिके साथ रमण नहीं करना ऐसा रोकनेका नियामक कारण कौन है? दूसरे बार ग्रहण करनेको आपके मनमें व्यभिचार ही नहीं जैसा दूसरे बार ग्रहण किया वैसा ही तीन चार बीस बार भी एकसा है। 'जैसे नारि दूसरें फंसी, जैसे सत्तरि वैसे असी ॥' जिस स्त्रीके दूसरे पति करनेमें ग्लानि न रही वैसे ही फिर अनेकोंके करनेमें भी ग्लानि नहीं। दूसरी बात यह है कि यदि पुनर्विवाहादि प्रथा होनेपर भी कुल शुद्ध है जाति शुद्ध है तो फिर अशुद्ध कुल जाति कोई ठहरते ही नहीं, कारण कि जो स्त्रियें विधवा या सधवा होनेपर पर पुरुषको लेके बैठेंगी वे पतिव्रताओंमें सामिल रहीं और जो प्रगट व्यभिचार कराती है वे वेश्यायें ठहरीं उनके वंश चलते ही नही क्योंकि उनके पतिका निश्चय नहीं और स्त्रियोंके वंश चलते नहीं और जो छुप छुपके व्यभिचार कराती हैं उनका दोष कोई उद्भावन करने नहीं शक्ता न कोई जानही शक्ता है फिर देश कुल जातिके शुद्ध कहनेका तात्पर्य क्या है? इसका मतलब यही है कि प्रगटमें कुलमें कोई कलंकित वर्णसंकरी प्रथा न हो वही कुल जाति शुद्ध है [धरावने] करावेको पुनरविवाहको तथा अभक्ष्य भक्षण खानपानादि कुप्रथाओंको रीति शूद्रोंमे तथा अन्त्यजोंमें होती है। ज्योतिष शास्त्र भी कहता है—

"प्रायेण संकरभुवामशुभक्षपक्षक्रूरक्षणे शुभकृत्करपीडनं स्यात् कृष्णपक्षे शनिभौमावारे विवाहोक्तनक्षत्रादिभिन्ननक्षत्रेषु चकारात् व्याघातशूल इत्यादि दुष्टयोगेष्वपि यदि संकीर्णानां अनुलोमप्रतिलोमजानां करपीड़ा विवाहः स्यात् तर्हि सुतायुर्धनलाभप्रीतिप्राप्त्यै भवति।' इसका मतलब यह है कि संकर जातियोंके विवाह शनिवार मंगलवारादि तथा विवाह नक्षत्रोंसे भिन्न अशुभ नक्षत्रोंमें व्याघातादि दुष्टयोगों में भी कल्याणकारी होता हैं और त्रैवर्णिकका नहीं अर्थात् संकर जातियोंमें पुनर्विवाहादि प्रथा होती है उनके शीलादिका नियम न होनेसे विधवादिका भय नही और त्रिवर्णमें विधवा होनेका भय है। इसीसे लिखते हैं—

अवैधव्यकरैर्योगैर्विवाहपटलोदितैः।
वरायायुष्मते देया कन्या वैधव्ययोगजा ॥

विवाह पटलमें वर्णन किये हुये विधवा नहीं करनेवाले नक्षत्र योगादिमें दीर्घजीवी वरको विधवा योगवाली कन्याको देवै इत्यादि बहुत लिखा है परन्तु लेख बहुत बड़ा होगया है इसमें दिग्दर्शनमात्र है।

इसी हेतु तीन वर्णोंका देश कुल जाति संस्कार शुद्ध है अन्य नहीं इसी कारण आचार्य मुनिको देश कुल जाति शुद्ध होना लिखा है कारण जो और पुरुषोंका जन साधारणको आदर्श तुल्य होवे वही धर्मका धारी और उपदेष्टा गुरु होसक्ता है और उसीके उपदेशसे असंख्य जीव शिक्षाको पाकर अपने आत्माका उद्धार कर शक्ते है जो स्वयं हीनकुली हीनाचारी हो और पश्चात् वह उपदेष्टा गुरु बने तो वह लोगोंसे उपहास्यास्पद होता है और वह वास्तविक उपदेष्टा हो ही नहीं शक्ता उसके पूर्वसंस्कार डुबो देते हैं और अन्योंको भी डुबाते हैं। लोग कहते भी ऐसा हैं कि अजो सौ को मारि सती हुई है।' सो प्रालूवर बिधवा बिवाह कभी भी त्रिवर्णको हितकर नहीं लोकमें भी लोकोक्ति चली आरही है—

सिंहगमन सुपुरुषवचन कदली फरत एकबार।
तिरिया तेल हमीर हठ चढै न दूजी बार ॥

सिंहविशेष जो तिर्यंचोंका चक्रवर्ती होता है वह

सिहनीके साथ एक बार ही गमन करता है और संभोगानन्तर उसी समय मर जाता है ऐसी किंवदन्ती है और उस सिहनीके नर मादा एक साथ जुगलिया होते हैं दोनों बालक परिपूर्ण होनेपर स्वयं माताका उदर विदार कर निकलते हैं इस तरह पृथ्वीपर वे इस क्षेत्रमें दोही रहते हैं दूसरे सत्पुरुषोंके वचन जो एकबार कहते हैं वे बदलते नहीं प्रतिज्ञारूप रहते हैं क्यों कि लोकमें भी कहते हैं कि जिसके दो बात उसके दो बाप। तीसरें केला एकही बार फलता है फिर दुबारा कलम करनेसे फलता है।

इसी प्रकार स्त्री के तेल एक ही बार चढता है अर्थात् एक ही बार विवाह होता है और राणा हमीर को प्रतिज्ञा एक ही होती थी उपर्युक्त समस्त कथनसे भली भांति शास्त्रीय आगम प्रमाण तथा अनुमानसे सिद्ध हुवा कि स्त्रीका पुनर्विवाह असिद्ध है और प्रत्यक्ष अनुभव प्रमाणसे भी पहले तो कुलस्त्रियोंके तथा पुनर्विवाहित स्त्रियोंके परिणाम में ही महदन्तर अनुभव सिद्ध है तथा प्रत्यक्षमें [चोडेमें , बात चीत वेष (पहराव , चाल चलनमें ही तफावत मालूम होती है सो सर्व साधारणको अनुभव है कोई हठात् न माने तो मत मानो अब और भी युक्ति प्रमाण लीजिये। बहुतसोंका कहना है कि शास्त्र पुरुषोंके ही बनाये हुये हैं इसलिये पुरुषोंके अनेक विवाह होनेमें भी दोष नहीं और स्त्री के दूसरे विवाहमें भी दोष बताते हैं सो नहीं वास्तविक कथनमें किसीके दोष लगानेसे नहीं लगता परन्तु पदार्थ ही वैसा हो तो क्या करै जैसे कोई कहै कि मदिराको ही सब लोग बुरा क्यों कहते हैं दूधको क्यों नहीं तो इसका जवाब यही मिलेगा कि इसमें कहने वालेका क्या दोष वह पदार्थ ही वैसा है इसीप्रकार पुरुष और स्त्री पर्यायमें बहुत अन्तर है जिसको लाला लाजपतिरायने एक पाश्चात्य विद्वान्का मत लेकर भले प्रकार स्त्रियोंसे पुरुषोंमें श्रेष्ठता और अन्तर दिखलाया है और वह लेख वर्तमानमें ही दो चार अंक पहले जैन मित्रमें छप चुका है अतः इस समय अनुवादकी आवश्यकता नहीं जो चाहैं देख सक्ता हैं। और शास्त्रमें तो बन्धोदय सत्तादि कर्म प्रकृति द्वारा जो भेद वर्णन किया है वह प्रायः अधिक मनुष्योंको विदित ही है और अवसर मिलने पर हम भी कभी लिखेंगे।

इस समय लेख बढ जानेके भयसे और रही बात दिखाते हैं तीन वर्णोंमें षोडश संस्कार तथा विवाह प्रथा क्यों है ? इसका कारण देखिये तो अनादि संसारी जीव अनादि मिथ्यात्व कषाय अव्रत संज्ञा भय रूप ज्वरादिसे संतप्त हैं और विषयवासना रूप तृषासे तृषित हैं अपने हित अहितका नहीं विचार करते हुवे विषयोंसे शांति और सुख चाहते हैं और विषयोंसे सुख है नहीं परंतु ज्वरातको तृषाकी शान्ति यद्यपि ज्वर नाश होनेसे ही और दोष पाचनसे ही होगी तो भी रोगी अधीर न हो जावे इस हेतु पक्का जल प्रासुक ठंडा कर थोड़ा देते हैं जिससे प्यासको तृष्णा धीरे २ शान्त होती है और साथ २ दोष पाचनकी दवाई भी देते हैं जिससे दोष पचता है मूलमें प्यास शांति ज्वर शांतिसे होती है इसीप्रकार आत्माका एक मात्र हित रूप वीतराग धर्म्म ही औषधि है उसका मात्रा अधिक न हो जाय क्योंकि गुणकारी औषधिकी अधिक मात्रा भी बिना पात्र देखें हानि कारक हो जाती है इसलिये गृहस्थाश्रम रागियोंको उनके योग्य अनाचारनिवृत्ति रूप स्वदार संतोष व्रतकी मात्रा सद्गुरु रूप वैद्यने बतायी है। आत्माका सर्वस्व सारभूत शुद्ध परमात्मस्वरूपका पथप-

दर्शक वीतराग धर्म है और उसकी प्रवृत्ति हो वृद्धि हो तो संसारी जीवोंका कल्याण हो इस प्रकारकी तीर्थंङ्कर प्रकृतिके बंध समयमें षोड़श भावनांत भूतवत्सलत्वभावनासे भावित परिणामसे परमकारुणिक हो कारण समयसार रूप भगवानने तीर्थंकर प्रकृति बंध किया था उसके उदय तथा भाषा वरगणाओंके उदयसे दिव्यध्वनि द्वारा विवाह संस्कार का उपदेशदिया कि जिससे वीतराग धर्म वासना वासित व्रती स्त्री पुरुषोंसे जो सन्तान हो वह व्रतीरूप बने और मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति हो तो उत्तरोत्तर जीवों का कल्याण हो श्रेष्ठकुल योनि सामिग्री पाकर श्रेष्ठपुरुषोत्तम पुरुष उत्पन्न हों और परम्पराय मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति हो एतदर्थ श्रेष्ठसन्तानार्थ गर्भाधानादि संस्कार पूर्वक [सन्तानार्थमृतावेव कामसेवां मिथोभजेत] ऋतुमें एकवार ही गमन करै जिससे श्रेष्ठ बलिष्ठ दीर्घ जीवी सन्तान हो इसीसे स्त्रीको धर्मपत्नी कहा (धर्मार्थ पत्नी धर्मपत्नी) व गृहियोंके त्रिवर्गसाधन भूत स्त्री है इतने सब कहनेका तात्पर्य यह हुवा धर्ममार्ग चलानेवाली उत्तमसन्तान हो एतदर्थ विवाह विधि है न कि विषयसेवनार्थ क्योंकि ऋषि मुनि आचार्य महत्पुरुषोंका यह बड़ाभारी प्रयास विषय वासनायें संसारी जीवोंकी पूरीहों और उनसे विषय सुख मिले इसलिये नहीं है जिन्होंने अपने चक्रवर्त्तियोंकोसी संपत्ति छोड़ विषय सुख छोड़ दिया आत्म कल्याणकारक वीतरागधर्म ग्रहण किया उन्होंने कांचके बदले रत्न बेंचने सदृश केवल विषय सुखार्थ यह विवाह विधि वर्णन करनेका प्रयास नहीं किया है। तब यह बात सिद्ध हुई कि व्रतियोंके वंश बढे और मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति अनंतकाल ताईं चली जाय एतदर्थ प्रयास ठहरा तब विचारना चाहिये कि एक स्त्री यदि दश दश विवाह करै तो उनके जो संतान भिन्न २ पुरुषीय होगी वह एक वंश या एक कुलकी कैसे हो सक्ती है नहीं कदापि नहीं किंतु प्रत्युत (उलटे) दश पुरुषोंकी संतानसे या तो वरण संकर कहलावेंगे और या दशभेद संतानके रहैंगे क्योंकि पुरुषके वीर्यमें मनुष्यका आकार होता है जैसे अमिलीके वियामें या आमकी गुठलीमें अमिली या आमका आकार होता है न कि जल मिट्टी रूप योनि स्थानमें इसीप्रकार स्त्रीके रक्तमें या रजमें मनुष्यका आकार नहीं किंतु मनुष्यके वीर्यमें मनुष्यका आकार होता है इसीसे वह अपने तदनुरूप स्त्री या पुरुषको पैदा करता है इसी लिये वह शक्ति स्त्री में नहीं यद्यपि भूमि में जल पवनादिका संयोग होते ही अमिलीके बीजसे अमिलीका वृक्ष पैदा होता है तथापि अमिलीके वियामें ही वह उपादान शक्ति है और वह अमिलीके वृक्षका आकार सूक्ष्मरूपसे अमिलीके बीजमें दोनों फाँकके बीचमें सुनका रहता है वही सूक्ष्मरूपसे अमिलीका पेड़ है इसी प्रकार मनुष्यके वीर्यमें मनुष्याकार है जो कि गत्यन्तरसे आये हुये जीवके पूर्व पर्य्यायाकारका ध्वंसकर मनुष्याकाररूप आत्मप्रदेश होते हैं और उसी समय रजवीर्यरूप आहार वर्गणाओंको ग्रहण करता है तब आहारक कहलाता है और छहो पर्य्याप्ति का प्रारंभ रूप सूक्ष्मसे शरीररूप मंदिरका नकशा खिच जाता है उपरान्त छहो पर्याप्ति (आहार शरीर इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास भाषा मन) पूरी करता है अर्थात् मर कर दूसरी पर्यायको छोड़ जब ज्यादेसे ज्यादा तीन समयके पश्चात् माताके गर्भमें रजवीर्य मिश्रयोनि स्थानमें पर्याप्ति नामा कर्मोदय द्वारा रज [रक्त] वीर्यको ग्रहण करता है तब पर्याप्ति नाम कर्मोदय समुद्भूत चिच्छक्ति विशेषका निमित्त पाकर मनुष्याकार रूप वीर्यको उपादान कारणभूत पारिणामिक

शक्तिसे रक्त वीर्यादि परमाणुओंका अन्तर्मुहूर्तमें मनुष्याकार परिणमनेकोही पट्पर्याप्तिकी पूर्णतारूप पर्याप्त अवस्था कहते हैं इससे चरकसुश्रुतादि वैद्यक ग्रंथोंमें जो तीन मास पश्चात् जीव आना लिखते हैं वह खंडित होता है संभोगानन्तर रक्तवीर्यका जमाव तथा तीन मास तक पिंडवृद्धि संभोगानन्तर रजवीर्यमें जीव आये बिना असंभवित है आध्यात्मिक वायुबिना जीवन नहीं और जीवन बिना वृद्धि नहीं। इसलिये उपर्युक्त कथनसे योनिभूत गर्भस्थलोंमें संचित रजो रक्तादिको मनुष्याकार परिणमावनेमें प्रधान कारणता वीर्यकी होरही इसी हेतु एक मनुष्यकी दश स्त्रियोंसे उत्पन्न हुई सन्तान तदनुरूपता लिये एक कुल कहलाता है परन्तु दश पुरुषोंके संसर्गसे एक स्त्रीको सन्तान एक कुल नहीं होता कारण योनिभेद कुलभेदक नहीं किंतु वीर्यभेद ही कुल भेदक है वनस्पतिमें भी कुल भेदक बीजही होता है एक क्षेत्रमें अमिली आम बीज भेदसे ही द्विधा परणवते हैं दो क्षेत्रमें एक ही जातिके बीजके एकही जाति वृक्ष उत्पन्न होते हैं अन्यथा क्षेत्र भेदसे वृक्ष भेद होना चाहिये सो नहीं होता इसी कारण वंश वृद्धिके लिये एक पुरुषके अनेक विवाह इष्ट हैं परन्तु स्त्रीके नहीं और स्त्रीवंश परंपरा चलानेमें कारण नहीं मनुष्याकार परिणमानेकी रजमें शक्ति नहीं स्त्रीके वंश चलते नहीं इसीसे स्त्रीके अनेक विवाह इष्ट नहीं और विवाह विधि विषय सुखार्थ है नहीं यद्यपि विवाहमें (स्वदारसन्तोष व्रतमें] विषय सुख है परन्तु विवाह विधि विषय सुखके उद्देशसे नहीं जैसे खेती करता है वह अन्नके उद्देशसे न कि करबीके उद्देशसे परन्तु करबी भी होती है अर्थात् ऐसा नहीं है कि ओहो! संसारी जीव विषय सुखकी अप्राप्तिसे दुःखी हैं इससे इनको विषय सुख सामग्री जुटा दो जिससे ये सुखी हो जावैंगे जैसे आप लोग आख्यायिकायें लिख लिखकर विधवाओंके दुःख दिखाते हो बिचारीने पतिका मुखतक नहीं देखा विषय सुखके लिये तरसती हैं और उसका श्वसुर विषय सुख भोगता है वह बिचारी सांसे भरती है यह करुणा नहीं है यह उस विधवाको संसार समुद्रमें मझधार डुबानेका कार्य है यदि यही करुणा ठहरै तो एक पुरुष विषयकी अप्राप्तिसे बहुत दुःखी है चाहिये अपनी स्त्रीको भेजकर उसका दुःख दूर करैं तो बड़ी दया होगी तब तो व्यभिचार भी धर्म ठहर गया यह तो संसार चाहता ही है किसीने कहा कि खाते पीते विषय सुख भोगते तपश्चरणादि कष्ट बिना उठाये ही परमात्मपद मोक्ष मिले तो हमे भी बताना। सो तो है नहीं यह तो स्वयमेव ही बनरहा है आप क्या व्यवस्था करेंगे। सोही यशस्तिलक चंपूमें लिखा है—

> भवभ्रान्तिनिर्मुक्तिहेतुर्धोस्तत्र दुर्लभा।
> संसारव्यवहारे तु स्वतः सिद्धे वृथागमः ॥ १ ॥
> स्वजात्यैव विशुद्धानां वर्णानामिह रत्नवत्।
> सत्क्रियाविनियोगाय जैनागमविधिः परम् ॥ २ ॥
> सर्व एवहि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।
> यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम् ॥ ३ ॥

इनका तात्पर्य यही है कि लौकिक क्रिया सब प्रमाण है जिसमें सम्यक्त्वको तो हानि न हो और व्रतोंमें दोष न लगे। अपनी जाति होसे विशुद्ध ऐसे वर्णाश्रमियोंको अपने २ वर्णानुसार क्रियाके लिये जिन शास्त्र कथित विधि रत्नकी तरह ग्राह्य है इसको हरएक ग्रहण नहीं कर शक्ता कारण भवभ्रमणसे छूटने की बुद्धि संसारमें अति निकट भव्यके ही होती है हर एकके होना दुर्लभ है। कोई शंका करै कि फिर ऐसा उपदेश क्यों दिया जो हरएक ग्रहण न कर शके तब

आचार्य कहते हैं संसार व्यवहारका मार्ग तो स्वतः सिद्ध है उसके सिखानेकी किसीको आवश्यकता नहीं संसार मार्गके लिये शास्त्रारंभ वृथा है क्योंकि जैसे बालकको विद्या पढानेके लिये बडा प्रयास करना पड़ता है परंतु कुक्रिया सिखानेके लिये किसीने भी पंडित नहीं बैठाया तो भी स्वयं सीख जाते हैं सो भ्रातृवर! विधवा विवाह स्वदार सन्तोषव्रतकी मर्यादा भंग रूप अन्यायके उपदेशार्थ क्या प्रयत्न किया? कन्यायें विधवायें न होने पावें विधवाका कारण बाल्य विवाह और वृद्ध विवाह है उनके रोकनेमें कमर कसिये तो लौकिक परमार्थ दोनों धर्म सिद्ध हों। जिसका मा के स्तन चूसनेसे पेट नहीं भरता वह मूत्र नहीं पीता जिसको रोटी नहीं मिलती वह मलभक्षण नहीं करता इसलिये विचारवानोंको अन्याय युक्तिकी ध्वजा नहीं उडाना चाहिये। आपलोगोंको ज्ञानावरणके क्षयोपशममें विशेष बुद्धिका लाभ हुवा है यथार्थ धर्मसाधक बनिये बाधक नहीं। यह थोड़ी देरकी मदांधतासे परमारथ नहीं बिगाड़िये जो हमारे पूर्वज ऋषि मुनि आचार्य अपना अमूल्य समय परोपकारमें लगा दूरदर्शितासे लिख गये हैं न तो हमारे उतनी परिणाम विशुद्ध है और न उतनी निराकुलता है और न प्रकारपक्षयोपशम है ऐसा न विचार उनके वाक्यों पर हड़ताल फेरना बुद्धिमानी नहीं है कुछ गंभीरतासे भोतर पेठके शब्दोंका अरथ विचारिये अनुभव कोजिये तब कुछ कहें और लिखें। उत्सूत्रता नरक निगोदादिकी दाता है यदि आपलोग, जिन धरमके मरमी हैं तो आप साहबोंमें ऐसा कहना है नहीं तो ऋषिमुनियों तकको गालियां दे हो रहे हैं आप लोग दीजिये। यह संसारी प्राणी मिथ्या-त्वकषायादि कर्मोदयवश हंसहंस कर कर्मबन्धन करता है और रोरोकर भोगता है किसके वशकी बात है परन्तु खेद इतना हो है जिन धरम धोरोकी ध्वजा उड़ाते हुये भी जिन धर्मोच्छेदक बनना जिनशास्त्रके ऊपर कुढाली लेकर खड़े होना जिन भगवत् प्रणीत चारित्रका सर्वस्व विध्वंस करना जैनियोंका मुख्य कर्तव्य हो गया है! नहीं २ यह कलिकाल होंका काम है स्वयं जड़ होनेसे चिच्छक्ति प्रेरितकी है क्योंकि चेतनका विकार चेतनसे ही होता है इसलिये यह अपराध आपका नहीं है आपको भी दोष नहीं देते समयका ही फेर है तथापि हमारा प्रार्थना है कि विधवा विवाह पक्ष समर्थक भ्रातृगण इस लेखपर विचारकर सन्तोष-प्रद उत्तर देंगे।

जिन शास्त्रोंके हमने प्रमाण दिये हैं उनका युक्ति संगत अर्थ बदलके या अन्य शास्त्रों द्वारा स्पष्ट शब्दोंमें (विधवाका विवाह) इन स्पष्ट शब्दोंमें शास्त्र विहित है ऐसा किसी भी आप्तप्रणीत ग्रंथसे सिद्ध कर देंगे तो हम क्या सारा समाज स्वीकार करेगा और श्रीसमन्तभद्र पूज्यपाद अकलङ्कदेव जिनसेन वीरनन्दि यशोनन्दी गुणभद्र प्रभाचंद सोमदेव श्रीश्रुत सागरि, श्रीकुन्दकुन्द अभयचन्द्र अमृतचन्द्र अमितगति आदि प्रामाणिक आचार्यो का सर्व सम्मत सर्वकाल सम्मत प्रमाण देकर सिद्धकर दिखावेंगे तो मानेंगे और स्वकपोल कल्पित गप्प नहीं माने जा शक्ते और भी एक बात है यद्यपि देशकुल जाति धर्म चारित्र का अभिमान रखनेवाली त्रैवर्णिक वीर्य जात कुलांगनायें विधवा होनेपर भी अखण्ड शीलव्रत धरम-रक्षा करती हुई त्याग व्रत विद्या सम्पन्न होकर उपदेशादिमें स्त्री जातिका उद्धार कर मोक्ष मारगमें प्रवृत्त होती थीं परंतु समयके फेरसे स्त्री शिक्षा उठ गई प्रायः स्त्रियें नितान्त मूर्खा होगईं और पुरुषोंमें भी

१०० में ६० विद्या विनय सत्संगति सभ्यता धर्माचरण व्रतादि शिक्षासे हीन होगये इसलिये पुरुषोंमें तथा स्त्रियोंमें धार्मिक व बाह्य व्यावहारिक शिक्षा प्रचारका सरवथा अभाव होगया इससे सधवा तथा विधवा कुलाङ्गनाओंको अशिक्षित पुरुष और स्त्रियें बिगाड़ती हैं और उनके पति पुत्र पितादिकोंको अज्ञानतासे बोध नहीं होता पीछे खोटे अभ्याससे दोष बढ़ जानेपर खराबी होती है यहांतक कि सधवा स्त्रियें भी दूसरेके साथ भाग जाती है तो विधवाओंकी क्या कथा यदि वे भ्रूणहत्याकर बैठती हैं। यह उनके पूर्व व्यभिचार परिणामोंके अभ्यासका तथा कुसंगतिका फल है और उनके पतिपुत्र पितादिके अज्ञान तथा अशिक्षाका दोष है यदि उनके दश विवाह भी करा दिये जांय तब भी व्यभिचारी परिणामकी निवृत्ति नहीं हो सक्ती किन्तु भ्रूणहत्याके प्रत्युत (बदले) पति हत्या करनेको तत्पर हो जांयगी उन्होंके व्यभिचार परिणामकी निवृत्ति का कारण ज्ञानाङ्कुश (हिताहित विवेकही) हो होगा यदि हटात् ऐसाही कहो कि कोई हृदयके कामकी तीव्रतासे ज्ञानादि शिक्षाका कुछ भी असर नहीं होता ऐसे परिणाम वाली भी विधवायें होती हैं तो वे यथेष्ट दूसरा पति करलें कौन रोकता है परंतु वे स्त्री पुरुष स्वयं विचार करलें कि जब हम त्रैवर्णिक धर्म परिणाममें च्युत होगये तो त्रैवर्णिक वरण जाति संस्कार हीन होगये अपने परिणामानुसार दशा विनयिकादि जाति व्यवहारमें रहकर धर्म साधन करते हुये रह सक्ते हैं और यह प्रथा अब भी वरतमान है इसके लिये प्रयासकी क्या आवश्यकता? आवश्यकता तो उन बातोंकी है बाल्य विवाह रोकना वृद्ध विवाह रोकना अशिक्षित स्त्री पुरुषोंको शिक्षित करना अक्षण कुशीलादिकका परित्याग कराकर सदाचारी बनाना न कि ऐसा करना रहे बचे सदाचारियोंको भी अनाचारी बना देना हम आप लोगोंसे पूछते हैं कोई आचार्य संघाधिपति ऐसा होगा कि मुनियोंके संघमें कोई मुनि शिथिल परिणामी द्रव्यलिङ्गी मुनिपदमें रहता हुआ शिथिल परिणामोंके कारण श्रावकोंके व्रत पालनेकी इच्छा प्रगट करै और मुनिपदमें रहना चाहै तो सङ्घाधिपति आचार्य उन मुनिके लिये इस अभिप्रायसे कि शक्ति हीन है विचारेसे मुनिपदकी क्रियायें कठिन हैं पालन न हो शकेंगी चलो श्रावककी क्रियायें ही पालने दो और मुनि बने रहने दो ऐसी आज्ञा देंगे या और मुनि आचार्यसे मुनियोंके संघमें रहनेकी प्रेरणा करेंगे कदापि नहीं यदि ऐसा करें तो उन आचार्य की वह आज्ञा तथा और मुनियोंकी वह प्रेरणा मुनि पदोच्छेदक होगी या नहीं इसी प्रकार स्वदार संतोष व्रतोच्छेदक यह विधवा विवाह प्रथा है मुनि पदमें रहते हुये श्रावक परिणाम तो फिर भी व्रती परिणाम हैं परन्तु उच्च पदमें नीचाचरण निंद्य और अनिष्टका कारण है मायाचार है और विधवा विवाह तो विषयानुरंजित अव्रतपरिणाम है क्योंकि स्वदार सन्तोष व्रत तो सन्तानोद्देशसे है और यह विषयाभिलाषसे है स्वदार संतोषव्रत सदाचारी कुलीनव्रती संतानका उत्पन्न करनेवाला है और विधवा विवाह वर्णसंकरी होनाचारी नीचकुली संतान उत्पन्न करनेवाला है क्योंकि ऊंची दशासे नीचा गिरा है इससे।

इसलिये विधवा विवाह कदापि श्रेयस्कर नहीं तथा विधवी शब्दका अर्थ जिसका पति मर गया हो ऐसी स्त्री और विवाह शब्दका अर्थ [विशेषेण आर्ष विधिना वहनं उद्वहनं स्वीकरणं विवाहः] विशेष कर अर्थात् ऋषिप्रणीत (केवलिप्रणीत) विधिसे

वेश्यानृत्य।

(लेखक–बा० पन्नालालजी जैन, सिवनी)

थियेटर ताल कहरवा:–

मत वेश्या नचावो मत वेश्या नचावो। वेश्या नचाके क्या दुर्गत कमावो ? । मत वेश्या०

वेश्याके नचवानेवाले हैं नरकोंको जाते। छेदन भेदन ताडन तापन सूलीका दुख पाते ॥ मत वे० १

वेश्या शर्मी और साजिन्दे मदरा मांस खाते। फिर तुम उनको पैसा देओ पापमें भाग बटाते ! ॥ २ ॥

जातिकी विधवा यदि दूषित हुई हरे मढ न लाते। क्या वेश्या हैं सती शिरोमणि सो उनको बुलवाते।३।

पुत्र जन्म, शादी, द्विरागमन इत्यादि कामोंमें। वेश्या बिन सब सूना कहते धृग है परनामोंमें ॥ मत० ४

बच्चोंका है हृदय मुलायम शिक्षाभरदो भैय्या। अपने आगे मत बैठाओ वेश्या नृत्य दिखैया ॥ ५ ॥

खूनका होवे पानी मित्रो जब है पैसा मिलता। कंकर पत्थर सदृश फेंको जो वेश्याका झिलता ॥ ६ ॥

ईशभजन और ईशकीर्तन आतमपद ना भावें। बम्ल इन्तजारी, आशिक, माशूकको सुन लहरावें ॥ ७ ॥

धिक धिक कहता तबला तुमको कहे मंजीरा किनको ? अंगुलीसे वेश्या संकेत धिक है इन पापिनको ॥८॥

भिक्षुक आते दरवाजेपर हमसे खाते गाली। हमहैं कहते हट बे साले हाथ नहीं हैं खाली ॥ ९ ॥

हावभाव तिरछी चितवनमें कई उल्लू फसजाते। अतिथियोंको आमंत्रित करके कौन पुन्य उपजाते ? ॥१०॥

वेश्यानृत ही है यारो वेश्यासेवनका पेड। वेश्यानृतमें तीर लगे कि करे मदन मुटभेड ॥ ११ ॥

वेश्यानृत करवानेवाले वेश्या वेशक सेवी। ऐसी पूजा आदर करते जैसे हो कुलदेवी ॥ १२ ॥

निज नारीसे कन्या उपजे लाजशर्म पलवाओ। वेश्यासे वो कन्या उपजे चूना नाक लगवाओ ॥ १३ ॥

पिता पुत्र दोनों निरखत हैं होकर आप कमीना। एककी माता बहू एककी लानत ऐसा जीना ॥१४॥

नंबरदारी गई कइयोंकी भये "भूखे बंगाली"। सोनेकी चिडिया भारत था छाई अब कंगाली ॥ १५ ॥

वेश्यारानीने देखो कइयकके हैं घर घाले। फिर अचेत क्यों पडे हो जैसे तेल कानमें डाले ॥ १६ ॥

किसी व्यसनसे वेश्याप्रेमी देखो नहीं है डरता। मांस अरु मदरा खूब उडावे जूवा चोरी करता ॥१७॥

वेश्यारक्तोंको देखा है "नीमकी डाल हिलाते"। प्रमेहातिशक होय भगंदर बिना मौत मरजाते ॥ १८ ॥

आर्यसमाजी, हिंदूभाई मुसलमान भी त्यागें। मेघनादकी नींदसे जैनी भाई जरा न जागें ॥ १९ ॥

वेश्यासेवी उन्नति करते सप्त व्यसनको धरता। कुबचन कष्ट यहां सहके मरके दुर्गतमें परता ॥ २० ॥

जैनधर्म और योनि मनुषकी देवोंको भी दुर्लभ। जो आतमहित अबना करहो करहो भैया फिर कब ॥ २१ ॥

नियम धर्म उपवास जो करते पानी पीते छान। आंख खोलकर वेश्यानृतका पाप भी लो पहिचान ॥२२॥

पिता पुत्रकी आमनायमें विनय रही क्या भाई ! । दोनों मिल वेश्या देखत हैं बुद्धि गई बौराई ॥ २३ ॥

ताऊन हैजा और देखो लालबुखार सताते। इनके कारण हमही हैं जो निशदिन पाप कमाते ॥ २४ ॥

है जमाना नाजुक भैया दिलमें जरा विचारो। अंधे लंगड़े बेवा पालो उनपर करुणा धारो ॥ २५ ॥
वेश्यानृत्त देखकर कबहू होवो न खुशी अपार। ऐसी खुशीको अब धिक्कारो दो लानत फटकार ॥ २६ ॥
निजनारीको पतिव्रता पा हम सौभाग्य मनाते। वेश्य नृत उनको दिखला क्यों व्यभिचार सिखलाते ! ॥ २७ ॥
पुरुष धर्मपर काजल पोतें मुंहमें तिनका ओट। कौनसा अचरज नारी बिगड़ें खाय मदनकी चोट ! ॥ २८ ॥
पतिव्रता यदि स्त्री ना हुई तो पुकारते "रंडी"। फिर हम वेश्यासेवी हों तो सौडमीके डंडी ॥ २९ ॥
तिलक लगाऊ, माला फेरूं जैनी मेरी जात। इनसबको खुद ही डोबूं वेश्यासे कर बात ॥ ३० ॥
वेश्याओंकी ओर अबभी मतलो गोत और कन्ना। बचे खुचे दस तीनलाखको करो ना गारत 'पन्ना' ॥३१॥

लालबुजक्कडाचार्यकी गप शप।

[१]

वर्धा [सी० पी०] के जैनी भाई बड़े ही दीर्घदर्शी और परीक्षक भक्त हैं, महात्मा भगवानदीनजी और बा० अर्जुनलालजी शेठीको उन्होंने शुद्ध तपोधनी और छठे गुणस्थानवर्ती होनेका लिखित सार्टीफिकट देडाला हैं। सुनते है बहुत ही शीघ्र उनकी मूर्तिका प्रतिष्ठापन उत्सव होगा। साथमें दोनों महाशयोंकी धर्मपत्नी भी रहेंगी। जो लोग घरबार छोड़कर भी घरबार [लुगाई लड़के] छोड़ना नहीं चाहते पर मुनि कहलाकर समाजमें पुजनेके साथ साथ बिना कुछ कमाई धमाई किये ही अपना जीवन मौजसे उड़ाना चाहते हैं उनके लिये खासा अवसर है। सेवा करानेवाले कलियुगी छठे गुणस्थानवर्ती बननेके इच्छुक लोगोंको शीघ्र ही नीचे लिखे पतेपर सूचना भेज अपना नाम रजिष्टरमें लिखालेना चाहिये।

मुनि बनानेके ठेकेदार

सी० एल० सद्गुणोपासक अनुयायी जैन, वर्धा

[२]

यदि आपको धार्मिक क्रियायोंके करनेमें झंझट मालूम पड़ता है, वीतराग जिनमूर्तिके दर्शन करनेके लिये घरसे दूर जाते जाते उकता गये हैं तो शीघ्र ही बहुत अच्छा सिर्फ लेखनी और जिव्हा दोके बलसे ही सिद्ध होजानेवाला एक कार्य करना आरंभ कर दीजिये वह कार्य सिर्फ यही है कि आजकल जो कुछ भी शारीरिक उपसर्ग सहन कर सम्यक् चारित्रके पालन करनेमें दत्तचित्त असली तपस्वी हैं, सम्यग्ज्ञानका प्रसार करनेवाले गृहस्थाश्रमके योग्य कुछ बचेले राति दिन जैनी बच्चों जवानों और बुड्ढोंको धार्मिक शिक्षा देनेवाले पंडित हैं एवं विशेष ज्ञाता न होने पर भी जिन वचनोंके पक्के श्रद्धानी अपने भाई हैं उनके लिये नाना तरहकी नई नई गालियोंका आविष्कार कीजिये और उनके छपानेमें मन बचन कायसे सहायता दीजिये।

[३]

बाबू नाथूरामजी प्रेमी बड़े ही निपुण हिन्दी लेखक हैं उनकी व्याकरणाऽव्याकरणमिश्रित भाषाका रसास्वाद लेना है तो विद्वद्रत्नमाला आदि पुस्तकों और जैनहितैषीके गतवर्षोंके अङ्कोंका पाठ कर

जाइये। दश पांच नमूने ही देखनेका आग्रह हो तो लीजिये नीचेके वाक्य पढ़ डालिये।

विद्व० पृ० पं०

१० ३ जिसने इस टीकाको संपादनकी है।

३२ १२ श्रीजयसेन गुरुने····जयधवल टीका को पूर्णकी।

४७ १० उसने····वसुंधराको वशमें करली।

६२ ५४ कविने····अनुयोगोंके विषयोंको संग्रह कर दिये हैं।

८६ ८ जिसने····राजाओंको····आज्ञानुवर्ती किये थे।

[४]

जैन समाजमें विधवा विवाहके पक्षपाती यदि सब रंडुवे वा विधुर ही हैं तो क्या बुरा बात है? और लोग तो विवाहकर मौज उड़ावें और ये लोग खटिया पर अकेले पड़े २ आह भरें। इनकी और कोई नहीं सुनता तो क्या ये अपने आप भी विधवाओंको अपने साथ संबंध करलेना धर्मसिद्ध अधिकार न बतलावें? न जाने समाजके पंच और पंडितगण कैसे निर्दयी हैं जो इनके कार्यमें रोड़े अटकाते हैं।

[५]

भाई! धरेजे (विधवा विवाह) में बड़ा ही आनंद है। विवाह करो तो छोटी लड़की मिले, बरात ले आनेमें खर्च पड़े और फिर मन मिले न मिले। पर इसमें तो अपटू डेट (तत्काल कामदायी) स्वामिनी हाथ लग जाती है इसीलिये मैंने अपने सब केश पक जाने पर भी समाज सुधारकके लंबे पुंछल्लेके लिहाजसे अभी एक विधवा ब्राह्मणीको सधवा बना दिया है। मेरे इस पुण्य कार्यका बहुत कुछ श्रेय एक वैद्यराजजी को हैं। रंडुओ और क्वारो! यह आदर्श देखो भूल न जाना!

(६)

पत्रोंके संपादकों! क्यों व्यर्थ ही दिन रात माथा पच्ची कर लोगोंको विचार चातुर्यमें डालनेवाले लेख लिखते हो? क्या तुम्हारी आंखे अब भी नहीं खुलीं? देखो भैया! अपने और पराये दोनोंके कल्याणके लिये जाति प्रबोधक व सत्योदयकी नकल करना सीखो। खूब बढ़िया २ गालियां लिखा करो, धर्म प्रेमियों पर लांछनोंकी बौछार किया करो और दूसरोंको व्यक्तिगत आक्षेपकी मनाई कर स्वयं खूब ही द्वेषाग्नि भभकाया करो। तभी महावीर प्रभुके सच्चे अनुयायी और वीतरागोपासक जैनी कहलाओगे। दो चार अक्षर लिखना आता है तो क्या यह भी न कर सकोगे?

(७)

संपादकजी! मालूम पड़ता है जैन—हितैषीका असर आप पर भी आगया। वह तो प्रकाशक प्रेमी और संपादक जु [यु] गल होनेके कारण (दो के विना प्रेम नहीं होता और अपना नाम सार्थक कैसे हो? इसलिये) युगलरूप निकलता है पर आपमें तो कोई भी गुण नहीं है फिर आपका 'पुरवाल' युगलरूप में क्यों?

नव वर्षका स्वागत ।

स्वागत ! स्वागत !! आओ ! आओ !! बाल छटा मनहर छटकाओ ॥
जिनमाताको शीष नवाओ, हरषाओ, पुरवाल ! ॥ १ ॥
प्रेम-जलद बनिकर घिर आओ । सुखकर प्रेम-सुधा बरसाओ ॥
जैन-भूमिकी प्यास बुझाओ । द्वेष-धूलि पामाल ! ॥ २ ॥
धर्म-प्रेम का पाठ पढाओ, निडर ! सत्य-दुन्दभी बजाओ ॥
धर्म-द्रोहियों की अवनी-तल पर न गले यों दाल ॥ ३ ॥
सत्य बात का मंडन करना, द्वेष-चक्रमें किन्तु न पडना ॥
इसी नीति से व्यतीत करना, लाल तीसरा साल ॥ ४ ॥
मार्ग अधिक कंटक मय तेरा, घिरा द्वेषका चहुंदिशि घेरा ॥
धर्म-प्रेमके पावन रंगमें, रंगे तुम्हारा भाल ॥ ५ ॥
" भारतीय " तुम एक दुलारे, हो 'पुरवाल' -जातिके प्यारे ॥
हृदय-प्रेम है भेट तुम्हारे, स्वागत ! स्वागत !! लाल ! ६ ॥

—०—

पद्मावतीपरिषद्के आठवें अधिवेशनका

संक्षिप्त विवरण ।

सर्वदाकी भांति फिरोजाबादका मेला इससाल अधिक महत्त्वका हुआ । प्रथम दिन ही खासी भीड़ होगई थी । कोई नव दश स्थानोंके मंदिर आये थे । पद्मावतीपरिषद्का अधिवेशन भी अन्य सालोंकी भांति विशेष प्रशंसनीय और लाभदायक हुआ । जातीय समस्त ही पंडित पधारे थे । शोलापुरसे पंडित वंशीधरजी [सहायक महामंत्री] न्यायतीर्थ, इंदौरसे पंडित लालारामजी धर्माध्यापक तिलोकचंद जैन हाईस्कूल, ईडरसे पं० नंदनलालजी वैद्य विशारद, मुरैनासे पं० खूबचंदजी मंत्री गोपाल जैन सिद्धांत विद्यालय, मथुरासे पं० गोगीलालजी व्याकरण केशरी, उपमंत्री जैन महाविद्यालय चौरासी, पानीपतसे पं० फुलजारीलालजी व्याकरणशास्त्री धर्माध्यापक जैनहाईस्कूल देहलीसे पं० मनोरामजी भंडारासे शेठ बाजीरावजी नाकाडे, सीहोरसे शेठ बालमुकुंद दिगंबरदासजी बंबईसे पं० रामप्रसादजी व जौहरी श्रीलालजी प्रभृति दूर दूरके गण्य मान्य श्रीमान् और धीमान् पधारे थे हमें भी (प्रकाशक) जातीय इस सभामें भाग लेनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था ।

ता० ३० मार्च सन् १६२० प्रथम दिवस,

प्रथम बैठक ।

आज दिनके १२ बजेसे परिषद्का कार्य प्रारंभ हुआ। पं० बाबूलालजी सुपरिन्टेन्डेन्ट सुमेरुचंद्र जैन बोर्डिंग हाउस इलाहाबादने मंगला चरण किया। पं० संतलालजी सभापति स्वागत कारिणी समितिने आये हुये लोगोंका आभार मानते हुये जातिमें जोर शोरसे प्रचलित कन्या विक्रय आदि कुरीतियोंके नाशकी तरफ लक्ष्य देनेको कहा।

हमारे प्रस्ताव, पं० लालारामजी इंदौरके समर्थन और लाला जयंतीप्रसादजी फिरोजाबादके अनुमोदन से मुंशी बंशीधरजी हेड मास्टर टाउनस्कूल फिरोजाबादने सभापतिका आसन ग्रहण किया। और अपनी लघुता दिखलाते हुये अपना मुद्रित व्याख्यान पढकर सुनाया। सब्जेक्ट कमेटीका चुनाव होकर प्रथम बैठकका कार्य समाप्त हुआ।

द्वितीय बैठक ।

आज रातिको सात वजेसे ६ बजे तक शास्त्रसभा का कार्य समाप्त कर परिषद्की द्वितीय बैठक हुई। पं० फुलजारीलालजीके मङ्गलाचरण करनेके बाद पं० बंशीधरजी न्यायतीर्थने परिषद्की आवश्यकता बतलाई और "जैनधर्म क्या चीज है?" इस विषयपर न्यायाचार्य पं० माणिकचंद्रजीका सार गर्भित व्याख्यान हो बैठक समाप्त हुई। इसके बाद डेढ बजेतक सबजेक्ट कमेटीकी बैठकका जमाव हुआ।

तृतीय बैठक ।

तारीख ३१की दुपहरके ११ बजेसे परिषद्का कार्य प्रारंभ हुआ। प्रथम डा० पं० अजितकुमारजी कांदेयने मङ्गलाचरण किया इसके बाद परिषद्के सहायक महामंत्री पं० बंशीधरजीने अपनी रिपोर्ट मौखिक सुनाई जोकि लिखित सुनानी चाहिये थी। तत्पश्चात् हमने समाचार पत्रके मंत्रीकी हैसियतसे उसका [समाचारपत्रका] लिखित हिसाब सुनाते हुये घाटे की पूर्तिकी तरफ लक्ष्य न देनेकेलिये कह प्रत्येक भाईको पढनेकेलिये प्रेरणाकी जिससे उपस्थित भाइयोंमेंसे कुछने तो सहायता दी और कुछने ग्राहकोंमें नाम लिखाया। तत्पश्चात् विरोधनाशक विभाग व विद्याविभागके मंत्रियोंने अपने अपने कार्योंका सुचारु रूपसे संचालित न होनेका कारण कहा। इसके बाद रातिको सबजेक्ट कमेटीसे मनोनीत प्रस्ताव पास हो बैठकका कार्य समाप्त हुआ।

चौथी बैठक ।

आज रातिको शास्त्र सभा होनेके पश्चात् अजैन लोगोंकी अधिक उपस्थिति होनेके कारण 'जैन धर्मका महत्व' विषय पर पं० माणिकचंद्रजी न्यायाचार्यका विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यान हुआ। सभामें स्थानीय वैष्णव लाला कन्हैयालालजी रईस भी पधारे थे। पंडित जीके व्याख्यानका उपस्थित जनतापर अच्छा असर पडा। इसके बाद सब्जेक्ट कमेटीका कार्य प्रारंभ हुआ और वह तीन बजे तक होता रहा।

पंचवीं बैठक ।

ता० १ अप्रेलको दिनके १२ बजेसे सभाका कार्य प्रारंभ हुआ और गत सब्जेक्ट कमेटीके मनोनीत प्रस्तावोंको विवेचन कर पास किया गया। देहलीके भाइयोंने सोनागिरिजी पर अपनी बिरादरीका मंदिर अपूर्ण पडा है उसके तयार करनेकी अपीलकी और उसमें आंशिक सफलता भी प्राप्त हुई।

अन्तमें उपस्थित सभ्य मण्डली और बाहिरसे

आये हुये लोगोंका आभार मानते हुये परिषद्का कार्य समाप्त हुआ।

आज रात्रिको स्थानीय लाभजइय मुंशी मगनबिहारीलालजीने एक "मांस भक्षणके आदि प्रचारक जैनी ही हैं" नामकी पुस्तक छपाई थी उसका खंडन करनेके लिये सभा हुई। सभापति पं० पन्नालालजी न्यायदिवाकर हुये। आपने यद्यपि सभाकी पति होना असंभव बतलाया तो भी आसन ग्रहण पूर्वक क्रियासे संभव कर दिखलाया। पं० मक्खनलालजी वादीभकेशरीने पुस्तकके समस्त विषयोंका युक्ति पूर्वक खंडन किया। पश्चात् पं० खूबचंदजी सिद्धांत शास्त्री और बा० बनारसी दासजीने पूर्वोक्त विषयपर ही मार्मिक विवेचन किया। आज सर्व साधारणको नोटिस दिया गया था इसलिये खासी भीड़ थी। खंडनका लोगोंपर अधिक महत्व पड़ा।

शास्त्रिपरिषद्का अधिवेशन।

आज ता० २ को शास्त्रिपरिषद्का अधिवेशन नाना विद्यालयों और पाठशालाओंसे समागत छात्रोंकी परीक्षार्थं व उत्साह वर्धनार्थ हुआ। सभापति पं० रघुनाथदासजी संपादक जैनगजट हुये। व्याख्यान साधारणतया योग्यतानुसार अच्छे हुये और जनतापर असर भी खासा पड़ा।

आज मेलाका अंतिम दिन था। रातको सभा फिर हुई। सभापतिका आसन बा० बनारसीदासजी वकील जलेसरने सुशोभित किया था औपदेशिक व्याख्यानोंके होनेके बाद जयध्वनिके साथ सभा विसर्जित हुई।

सभापति मुंशी वंशीधरजी और पं० सतलालजी व जयंतप्रशादजी आदि महानुभावोंकी कृपासे यद्यपि बाहिरसे आये हुये परिषद्के सहायकोंको अधिक आराम मिला तथापि मेलाके प्रबंधकर्ता ला० कुन्दनलालजीने तम्बू तक देनेके लिये इन्कार कर दिया। इस पंडितोंके प्रति सहानुभूति दर्शनको सहस्त्रशः धन्यवाद!

संदेश

पावन पवन! उन्हें तू संदेश यह सुनाना। जो जागते हैं लेकिन बेसुधि है सो रहे हैं॥ १॥
उन लीडरोंको सादर यह पाठ तुम सिखाना। जो जातिके लिये ही सिर धुनेके रहे हैं॥ २॥
कहते हैं:-'है न फुर्सत' उनको जरा बताना। आलस्यनींदमें ही नर-भव वे खो रहे हैं॥ ३॥
उन धर्म-द्रोहियोंको तुम प्रेमसे जताना। जो कालिमाको अपनी, काजलसे धो रहे हैं॥ ४॥
बूढ़ोंको शादियोंके सहयोगियों से कहना। जो नीच लड्डुओंमें उन्मत्त हो रहे हैं॥ ५॥
बदला समय है इतना पर तुम अभी वही हो।
अब "भारतीय" जगले जो सुप्त होरहे हैं॥ ६॥

संपादकीय विचार।

श्रीवीतराग जिनेंद्र भगवानकी भक्तिके प्रसादसे हमारी जाति और धर्मसेवाका द्वितीय वर्ष समाप्त हो गया। प्रारंभिक सालसे गतसाल तकके १२ महीनोंके बीच पुरवालने कितनी उन्नतिकी, किन २ विषयोंकी तरफ अधिक ध्यान दिया और वह दिया सो उचित या अनुचित आदि समस्त बातोंका उत्तर हम अपने विचार शील पाठकों पर ही छोडते हैं। यद्यपि जिस समय हम सेवाधर्मकी वेदीपर यथाशक्ति और भक्ति पूर्वक फलं पुष्पं तोयं लेकर उपस्थित हुये थे उस समय अपनी समस्त बहिरंग और अंतरंग सामिग्री जाति भाइयोंकी सेवामें ही अर्पण करनेके लिये विचारा था परंतु समय भी कोई चीज है, कालके प्रभावने— बीसवीं शताब्दीके चकाचौंधमें चुंधियाये हुये कुछ नवजात शिशुओंके निरर्थक किंतु भयावह कोलाहल ने हमारा चित्त अपनी तरफ खींच लिया। हमें अपनी शक्ति और सामर्थ्यके दो विभागकर देने पड़े। बस! इसीलिये पद्मावती पुरवाल जाति वाचक नाम होनेपर भी करीब २ आधे भागमें कोलाहल (अधार्मिकता) शमन करनेवाले लेख रखने पड़े और आगे भी रखने पड़ेंगे ऐसी आशा है।

इसके सिवाय गत वर्ष समय पर पाठकोंकी सेवामें उपस्थित न हो दोमहीनेके अंतरसे उपस्थित होते रहे हैं और उसी अंतरालकी पूर्ति न कर सकनेके कारण यह संयुक्त अंक भी देरीसे पहुंच रहा है। इस विलंबके अपराधी हमारा दैव और प्रेसके कर्मचारियोंकी न्यूनता है। गार्हस्थ्य अनेक विपत्तियोंके कारण एक तो हमें ही अवकाश कम मिला, और दूसरे इस बंगाल देशमें हिंदीके कंपोजीटर बहुत ही कम मिलते हैं इसलिये उनका प्रेसमें आवश्यकता बनी रही और अब तक चला आरहा है।

इस साल यदि किसी प्रकारका विघ्न न आया तो अवश्य यथासमय पाठकोंकी सेवामें उपस्थित होते रहनेकी आशा करते हैं। प्रेसके कर्मचारियोंकी न्यूनता पूर्ण करनेका भी उद्योग चल रहा है आशा है शीघ्र ही सफल होगा।

ऋषभब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनागपुर।

जो लोग नहमें बैठकर समाचार पत्रोंका अध्ययन करते हैं उनसे छिपा नहीं है कि जिससमय आश्रमकी नींव डालनेका प्रयत्न किया गया था उससमय जैन समाजने धार्मिक भावसे प्रेरित हो धर्मांगोंकी वृद्धयार्थके लिये नाना तरहकी आशाओंको उज्जीवित कर वर्णी भागीरथजीका वेष और भाव देखकर धन दान दिया था। यद्यपि भगवानदीनजी और गेंदनलालजी भी इस कार्य प्रारंभमें सहमत एवं उद्योग शील थे परंतु समाजका समस्त विश्वास उक्त वर्णीजीके ऊपर ही था। इसके बाद आश्रमका प्रारंभ हुआ, चटकीले भड़कीले नोटिस दे समाजसे समंतभद्र स्वामी, अकलंकदेव प्रभृति त्यागी वीतरागी

मनुष्योंके उत्पन्न होनेकी आशा से धन संग्रह किया गया। परंतु वाहिरी ढपान अधिक दिन न रह सका। कोई तीन वर्षके भीतर ही भीतर समाजको अपने धनका उपयोग मालूम पड़ने लगा। आश्रमके कपोल कल्पित पद्धतियोंसे विभूषित अन्तरंगमें जैन चारित्रके विरोधी लोगोंकी कलई वहांके शिक्षित बालकों द्वारा अपने आप ही खुल पड़ी। इस सब तमासेको देख कुछ धर्म हितैषियोंको चिंता हुई और उनने पूर्ण प्रयत्न कर उस बाधाको दूर किया।

बाधा तो दूर होगई परंतु बाधकता न छूट पाई। अपनी कूटनीतिके द्वारा जो बालकोंमें, अपढ कर्मचारियोंमें और कुछ स्वसमान विचारधारी प्रबंध कारिणीके मेम्बरोंमें महत्त्व जमा लिया था उसने असर करना शुरू किया। एक एक कर लोग नये प्रबंधके दूषण और पुरातनके गुण बखानने लगे। जब किसी तरह भी पार न पड़ी तो निरीह धर्मवत्सल पंडित मक्खनलालजी पर ही बौछार डालनी प्रारंभ कर दिया। समाजमें तरह तरहकी अफवाह उड़ाकर विरोधियोंने अपना कार्य सिद्ध करना चाहा और अब भी चाहते हैं। जातिप्रबोधक और सत्योदय दोनों पत्रोंका तो आश्रमके संचालकोंको नाम ले लेकर गाली देना ही एक काम होगया है। जिस व्यक्तिगत आक्षेपका दूसरोंके लिये लोग निषेध करते हैं उसे ही स्वयं काममें लाते हुये नहीं लजाते इससे बड़ा 'पर उपदेश कुशल बहुतेरेका' कौनसा उदाहरण मिल सकता है? परंतु समाज अब ऐसा भोला नहीं रहा है जो अपना हित अहित न समझे वह सब लोगोंकी नस नस जान गया है और सदा चौकन्ना रहता है। किसे नहीं मालूम है कि जिस समाजने आज कल विष उगलनेवालोंको कुछ दिन पहिले बिना सोचे समझे अपना भाई समझ कर पाला था वही अब इतना समझदार होगया है कि समस्त संसारमें घोषणा पूर्वक कहता है कि—

सत्योदय और जाति प्रबोधक जैन पत्र नहीं हैं।

कलकत्ता और अन्य बहुत सी जगहकी पंचायतोंने उपर्युक्त मजमूनका एक प्रस्ताव पास कर प्रगट किया है कि जो भाई इन पत्रोंके संपादकोंके पिछार जैन शब्द देख, उनके लेखोंको भी जैन धर्मानुगत समझते हैं वे भूलते हैं। भाइयो! ये पत्र आस्तीनकी कटारी हैं विश्वास में धर्म प्राण लेलेनेका सुगम साधन हैं। परंतु 'अर्थी दोषं न पश्यति' के अनुसार उक्त सुंदर अभिप्रायको विपरीत सुझाने वाला सत्योदय, (जिस का धोखा देना ही काम होगया है)

सत्यका खून कर

लिखता है कि कलकत्ता आदिके पंचोंने लोगोंको सत्योदय व जातिप्रबोधक पढनेकी मनाई की है वाह! क्या ही बढिया सत्यका उदय हुआ है। लोग धर्म उद्धारका छलकर व्यर्थ ही रागद्वेष बढा स्वपरकी शक्तिका इस तरह अपव्यय करते हैं और सभ्य शिक्षित बननेकी डींग मारते हैं। और भी ये लोग इतनेसे ही तृप्त होकर नहीं रहते। पुरातन शास्त्रोंका, और नवीन वचनोंका अर्थ बदल देना तो इनके बांये हाथका खेल है ही, परंतु अब इनहीके गुरुघंटालने अपनी और अपने अनुचरोंकी ख्याति पूजाके लिये एक रास्ता और निकाला है। इन लोगोंके मलीमस हृदयोंको कषाय रंजित वासनाने यहां तक जोर पकड़ा है कि ये अपने आपको अपने अंध भक्तोंसे महावीर स्वामी तुल्य कहलवाते हैं और सार्टीफिकट पर समस्त जैन समाजको

नाम छपा धोखा देते हैं। अभी इसी तरहकी जाल-साजीका एक ताजा उदाहरण मिला है और वह

भगवानदीनजीको दिया गया अभिनंदन पत्र है ।

वर्धा (सी० पी०) का छपा हुआ एक लंबा चौड़ा चिट्ठा हमें मिला है। उसमें षष्ठ गुणस्थानवर्ती आदि एक निस्पृही वीतरागी मुनिको सुशोभित होनेवाले विशेषण उक्त गृहस्थ व्यक्तिको दिये गये हैं नाना तरहसे यत्परो नास्ति प्रशंसा कीगई हैं। लेखकको इतनेसे ही तृप्ति नहीं हुई है उसका हृदय समाजके सभी धीमान् और श्रीमानोंको यहां तक कि मुनि पलकों तकको कोसनेकी तरफ उमड़ पड़ा है मनमाना खूब ही गालिवर्षण किया है। जो एकबार भी इसको पढ लेगा उसको खूब ही भक्ति स्रोत प्रवाहित हो निकलेगा। इसमें केवल उक्त व्यक्तिका ही नहीं उसके परिवारका भी गुणगान है। चाहिये भी यही, एकका स्तवन करनेमें मजाही क्या आता ?

हमें भगवानदीनजीसे कोई द्वेष नहीं है बल्कि वे हमारे एक मित्रोंमेंसे हैं परंतु अनुचित कार्यवाही सबको खटक जाती है। यदि वर्धाके किसी अतिभक्तने उनके प्रति अतिशयोक्तिपूर्ण अपना हृदयोद्गार कुछ लोगोंके बीचमें निकाला था तो उन्हें अवश्य रोक देना था। अपनी प्रशंसा सुननेकी इच्छा दबाना यदि असाध्य था तो कमसे कम परनिंदा तो न सुननी था ? लेकिन हां ! यदि किसी गुरुके अंकुशसे ही यह सब करनेमें परवश हुये हों और गुरुप्रशाद लेनेके लिये बाध्य हुये हों तो बात दूसरी है !

अनुपम युक्ति ।

द्वेषसे लबलबाते हुये हृदयमें जब युक्ति पूर्वक बातोंका उत्तर देनेकी शक्ति प्राकृतिक नियमसे नष्ट करदी जाती है तब उसे इधर उधरकी बातोंको कह कर ही अपनी निर्दोषता सिद्ध करनेकी सूझती है इसी प्रकारकी एक घटना अभी जातिप्रबोधकके संपादक साहबने भी कर दिखलाई है। हमने गत किसी अंकमें "आश्रमके उपअधिष्ठाताके विषयमें जो अफवाहें विरोधियों द्वारा उड़ाई जारही है" उनका कुछ सत्य विवेचन किया था। उसका उत्तर सयुक्तिक कुछ न बन पड़नेके कारण जातिप्रबोधक लिखता है कि पं० मक्खनलालजी पद्मावतीपुरवाल हैं अत: पद्मावती पुरवाल उनका पक्ष करता है। देखो ! क्या बढिया युक्ति है ? मानो अब जितने पद्मावतीपुरवाल कार्यकर्ता हैं उनकी सदा बुराई ही छापनी चाहिये, अन्यथा पक्षपाती ठहरेंगे। ठीक है ! इसी तरहके निष्पक्ष बननेके लिये जैनी होकर जैनधर्मकी निंदामें आप लगे रहते हैं और भारतकी अवनतिका उसे कारण बताते हैं। साधु !

परिषद्के जन्मदाता महामंत्री बनारसीदासजीकी हृदयविदारक मृत्यु ।

हमारी परिषद्के प्रतिष्ठापक बा० बनारसीदासजी अब इस मनुष्य पर्यायमें नहीं है। चैत्र सुदी ११ से प्रारंभ होनेवाले इस वर्षके अधिवेशनमें बाबू साहब सामिल हुये थे। अंतिम दिन सभापतिका आसन भी सुशोभित किया था। परंतु कौन जानता था कि आगामी अधिवेशन ये न देख सकेंगे इनके सभापतित्वका अंत भी आज ही हो गया ! आप मेलासे आकर करीब आठ दिन सामान्य ज्वर प्रसित रहे। आपके पिताजीको और स्वयं बाबू साहब तकको रोग की असाध्यताका भान न हुआ था परंतु दैवके सामने किसकी चलती है। वैशाख वदी १५ को बाबू साहबका

प्राण पखेरू इस शरीरको छोड़कर वृद्ध माता पिता और पत्नी पुत्रको शोक सागरमें डुबाता हुआ उड़गया। आपके अभावसे जैन समाजकी विशेषकर पद्मावती पुरवाल जातिको जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना कष्ट साध्य है। संसारकी दशाका विचारकर बाबू साहबका परिवार शोक भूल पूर्वकी तरह धर्म कर्म रत होगा ऐसी हम आशा करते हैं और वीतराग देवका आदर्श परलोक गत आत्माको शांति प्रदान करेगा ऐसी भावना भाते हैं।

आगामी संख्यामें आपका विस्तृत जीवन चरित और फोटू पाठकोंकी सेवामें अर्पण करेंगे।

वेश्या नृत्यकी धूम।

अन्य सालोंकी अपेक्षा इस साल विवाह शादियों को खूब ही धूम रही। परंतु इस वर्ष एक विलक्षण बात यह हुई कि जो वेश्याओंका नाच एक तरह इस अवसर पर बंद होगया था उसका फिर उद्धारसा हो गया। आधेके करीब विवाहोंमें रंडियां नाचीं। इस में वरपक्षको तरफसे कुछ ढीलढाल भी रही पर कन्या पक्षके लोगोंने कह २ कर बरातमें इनको बुलवा कर अपना द्वार पवित्र कराया!

हमारे पास बहुत जगहके समाचार आये हैं उन्हें हम स्थानाभावसे नहीं छापते परंतु लोगोंको स्वपर हित विचारकर जो कुप्रथा उठ गई उसको फिर चला देना न चाहिये।

कन्या-विक्रय।

लेखक-श्रीयुत.... ....

स्वार्थ बुरा बला है। उसके वशीभूत हो मनुष्य अपना कुछ हित अहित नहीं देख सक्ता। अपनी प्राणोंसे प्यारी संतानके गलेपर छुरी चलानेमें भी नहीं हिचकता। ९-१० वर्षकी अज्ञान बालिकाको विषय वासनाकी बलती हुई अग्निसे संतप्त एक बुड्ढेकी इच्छा पूर्तिके लिये धनके लोभसे दे देना भी इसी स्वार्थसे अंधे हुए नर पिशाचोंका काम है। जब किसी चीजके बदलेमें चीज लेनी होती है तो यह सामान्य बात है कि लेने और बेचनेवाला एक दूसरेको ठगनेकी जोभर कोशिश करता है। अपना ही सिर्फ मतलब देखता है। इसी प्रकार लड़की बेचनेवाला भी रुपयोंकी तरफ ही ध्यान रखता है और वर कैसा है? लड़की सुखी रहेगी या दुःखी, आज ही विधवा बन जायगी या कुछ काल बाद आदि बातोंको कुछ नहीं विचारता। लोकमें जो निंदा कन्या विक्रेताकी होती है वह भी इसीलिये कि अपने अंश से समुत्पन्न एक पंचेंद्री जीवको जाते हुये भी मृत्यु समान दुःख भोगनेके लिये अनुचित मनुष्यके सुपुर्द कर देता है। आचार्योंने कन्याको देय वस्तु लिखा है विक्रेय [बेचने योग्य] नहीं, और पुरातन पद्धतिभी कन्याके दानकी चली आ रही है। उस सबका भी केवल यही तात्पर्य है कि दाता अपनी वस्तुको पात्रके लिये दे। अपना कुछ भी मतलब न देख 'पात्र उचित है या अनुचित, इसकेलिये जो दान दिया जायगा वह सार्थक होगा या निरर्थक' आदि बातोंको खूब ही विचार ले।

परंतु अब कालकी पलटनसे लोगोंमें वर्वरता असभ्यता उत्तरोत्तर बढ जानेसे यहां तक अत्याचार करनेकी प्रवृत्ति होगई है कि अपनी गोदमें १०-१० १२-१२ वर्ष तक खिलाई हुई अपनी दिन रातकी

गाढी कमाईसे प्राणोंको भी तुच्छ समझ कर पाली हुई नन्ही बच्चोंको सर्वदाके लिये दुःखी-धर्म कर्म हीन कर देनेमें भी नहीं आगा पीछा सोचा जाता ! लोग पैसोंके लाभमें फंसकर समस्त कर्तव्य अकर्तव्यके विचारसे रहित होगये हैं और ऐसे लोगोंकी संख्या दिन पर दिन बढ रही है। यह जानकर किसे दुःख न होगा कि जहां सौ दोसौ रुपयेमें एक लड़की बेची जाती थी और ऐसे भी नराधम हजारोंमें एक दो ही कभी कहा सुन पडते थे वहीं आज सैकडे पीछे दस पांच हो गये हैं। कोई ऐसा गांव नहीं बचा है जहां किसी न किसीने गुप्त या प्रकट रूपमें इस पापका उपार्जन कर जाति और कुलको कलंकित न किया हो। इस पर भी आश्चर्यकी बात तो यह है कि यह पेशा जोरोंके साथ बढ रहा है। लोग दुब छुपके नहीं खुलम खुल्ला सौदा पटाते देखे जाते हैं। गांव और जातिके मुखिया तथा पंच कुछ भी अपना जोर नहीं बतलाते। जहां कहींके बतलाते भी हैं तो वहां उसी समय दो धड़े हो जाते हैं और कन्या बेचनेसे कलंकित हुये पुरुषकी हिमायत करनेके लिये उसके नाते रिस्तेदार खड़े हो जाते हैं जिससे पापीको पाप करनेमें डर पैदा नहीं हो पाता। बल्कि उसकी हिम्मत और भी बढ जाती है। जो पहिले एक दो जगह जिस किसी तरह रुपये लेनेकी बात चलाता था वही अब अपने ओर पास हिमायतियोंको देख बेधड़क बढ २ के दाम मांगने लगता है।

हम एक दो नहीं, दस बीस जगहके उदाहरण बता सकते हैं जहांके कुछ समझदार पंचों तथा दो एक व्यक्तियोंने तो इस पाप कमानेवालेके रस्तेमें रोड़े अटकाये पर नाते रिस्तेदारों तथा अपने समान ही अन्य लोगोंने उसकी पीठ ठोंकी एवं अपनो पक्ष प्रबल देख वह कुछ भी उससे मस न हुआ।

जिस प्रकार पशु मारकर बेचनेवाला और खरीद कर मांस खाने वाला दोनों हिंसाके भागी होते हैं क्योंकि यदि खरीददार न खरीदें तो बेचे कौन? इसी प्रकार रुपयोंकी थैली सौंपकर लड़की मोल लेने वाले और स्वार्थांध हो जिस किसीके हाथ कन्या सौंप देनेवाले मा बाप या अन्य कुटुंबी लोग दोनों ही अबोध बालिका पर अत्याचार कर पाप कमाते हैं।

यद्यपि लड़कियोंकी कमिताईके सबब बहुतसे लोग ऐसा भी कहते हैं कि-वैसे तो लड़की कोई देता नहीं, और रुपये देकर भी खरीदें नहीं तो फिर क्या कुआरेही रहें? ऐसे लोगोंसे हमारा कहना है कि अभी लोग ऐसे पतित नहीं होगये हैं जो विवाहके योग्य और वरके गुणोंसे भूषित मनुष्यका भी विवाह रुपया देकर ही करना पड़े। साथमें कुछ न कुछ न्यूनता वर बननेके अभिलाषामें भी होना जरूरी है। यह बात दूसरी है चाहे वह न्यूनता अधिक उम्र हो, अथवा पहिले निधनता और पीछे २२-२५ वर्षकी उम्र हुये बाद सधनता हो। या इसीप्रकार का अन्य कुछ अपवाद हो। नहीं तो यहां तक देखनेमें भी आता है कि एक कुलीन धनी मनुष्यके दो दो तीन तीन तक विवाह उचित उम्रके रहते स्त्री मरजानेसे बिना कुछ लिये दिये ही बल्कि सत्कार पूर्वक होजाते हैं और अधिक उम्र होने पर लखपती को भी रुपया देकर विवाह करना पड़ता हैं, सो न देखा जाता।

इसलिये अपनी अवस्थाका पूर्वापर विचार कर सर्वथा इंद्रियोंके ही गुलाम न होकर लड़की खरीदना उचित है। और बेचने वालेको तो किसी प्रकार भी बेचना योग्य नहीं है। देय वस्तुसे दाम वसूल करना धर्म शास्त्र और लोक दोनोंके विरुद्ध है और सबसे अधिक संतान सुखकी रक्षा करना मा बाप का प्रधान कर्तव्य है।

इस प्रकार दोनों कन्या बेचने और खरीदने वालोंको अपने दिलमें विचार कर कन्या जातिके प्रति अत्याचार न कर दया दृष्टि दिखलानी चाहिये और इस पर भी कोई माई का लाल धनके पीछे धर्म को ताक पर रख देने वाला पुरुष न माने और अपनी लड़कीसे रोकड़ा भनानेकी इच्छा करे तो उस गांवके पंचों को तथा बिरादरीके प्रसिद्ध प्रसिद्ध मुखियाओं को बीचमें पड़ उचित दंड दे रोक देना चाहिये इस पर भी न माने तो न्यायालय (कचहरी) का सहारा लेना उचित है। अभी कुछ दिन पहिले ही एक ऐसा मामला गुजर चुका है कि लड़कीका चाचा उसे बेचना चाहता था और उसके एक रिश्ते दारने सर्कारसे अपील कर उसे रुकवा दिया एवं बिना कुछ लिये दिये एक योग्य वरके साथ उसका विवाह करा दिया।

हमारी बिरादरीमें भी जब तक ऐसे कर्तव्यपरायण निःस्वार्थी लोग न होंगे तब तक इस कुप्रथा का उठना मुश्किल है वरंच जैसी अब बढ रही है उसीप्रकार वल्कि उससे भी ज्यदा बढनेकी उम्मेद है इसलिये जातिके हित चिंतक और समझ दारलोगोंको इसके रोकनेमें कमर कस कर प्रयत्न करना चाहिये

नोट—इस लेखको पढते समय पाठक 'कन्या गाय दुहोरे भाई' नामकी कविता जो गत वर्षके तीसरे अंकमें और "कन्या बेच निखट्टू खांय" पांचवें अंकमें छपी हैं अवश्य पढ़े।

प्राप्ति-स्वीकार।

जिन महाशयोंने गत वर्षके घाटेमें इस पत्रको नीचे लिखी सहायता दी है, उनके लिए उन्हें हार्दिक धन्यवाद! अन्य भाइयोंसे यही प्रार्थना है कि वे विवाह शादी आदि शुभ कार्यों में इस "पद्मावती-पुरवाल" को भी न भूला करें जैसी बने वैसी सहायता देकर इसकी नींव दृढ करते रहें।

१२) पं० अमोलकचंदजी उडेसरीय, इन्दौर।
५) ला० शिवचंदजी टूंडला (पुत्रके विवाहमें)
५) ला० गुलजारीलाल देवकीनंदन जैन सर्राफ। अवागढ़ (पुत्रके विवाहमें)
२) ला० श्रीपाल बाबूरामजी सिकंदर।
५) ला० बंशीधरजी, टेहू (पुत्रके विवाहमें)
३) पांडे महावीरप्रसादजी (पुत्रके विवाहमें)
७) कालूराम मोतीलालजी, हाथरस सिटी। (मोतीलालजीकी पूज्य माताजीके मृत्यु समय)

निम्न लिखित सहायताएं घाटा-पूर्तिके लिये फिरोजाबादके मेले पर पद्मावती परिषदके अधिवेशन में प्राप्त हुई।

५) ला० बनारसीदासजी. चांदनी चौक देहली।
१०) ला० बंगालीदास लालारामजी. देहली।
१०) बा० छुट्टनलालजी. बद्रीप्रसाद कोला।
१०) मुंशी वंशीधरजी फिरोजाबाद।
५) ला० मोतीराम देवसेनजी देहली।
२) ला० श्रीपाल छुन्नूलालजी अतार, एटा।
१) ला० लालारामजी लाहोरी, तिखातर।
१) ला० छुंडीलाल भोलानाथ, कल्याण-गढी।
४) दि० जैन पंच, उलायनी।
२) सेट मथुरादास पदमचंदजी, आगरा।
२) पं० सोनपालजी, सरनौ।
२) ला० बांकेलाल ज्वालाप्रसादजी, मथुरा।
२) ला० हजारीलालजी, बेलनगंज आगरा।

उपर्युक्त महाशयोंमेंसे बहुतोंके पास पता न मा-

लूम होनेके कारण 'पत्र' नहीं पहुंच पाता था, अब उन सबको सेवामें बराबर पहुंचता रहेगा।

मैनेजर।

धर्म जिज्ञासुओंको सुअवसर !

जो महाशय पद्मावती पुरवालके जोशीले निष्पक्ष और मिथ्यात्वखंडक लेखोंको पढना चाहते हैं पर मूल्य न देसकनेके कारण पढ नहीं सके ऐसे ५५ भाइयोंको हम बिना मूल्य, २५ को आधे मूल्य और २५ को पौन मूल्यमें ग्राहक बनाना चाहते हैं। अपनी २ स्थिति और योग्यताके अनुसार ग्राहक गण शीघ्रता करें।

शोक जनक मृत्यु।

वादोभ केशरी पं० मक्खनलालजी न्यायालंकारको धर्मपत्नो और भंडारा निवासी बाजीराव नाकाडेकी सुपुत्री सौ० रत्नोबाईका स्वर्गवास ता० २० मई सन् १९२० को मोतीझरा निकलनेके कारण होगया। आपके वियोगसे शोकाकुल दोनों परिवार संसारकी दशाका परिज्ञान कर पूर्ववत् शांतचित्त होंगे ऐसी आशा है।

भेजनेवाले भी पता लिखें।

डांकखानेसे सूचना निकली है कि लोग चिट्ठियों पर अब तक पाने वालेका ही पता लिखते हैं लेकिन अबसे एक तरफ भेजनेवालेका भी पूरा पता लिखा करें क्योंकि पाने वालेका पता न चलनेमें चिट्ठियां वापिस करनेमें कठिनाई होती है और अक्सर रद्दीमें डालदी जाती हैं।

विवाहमें दान।

पद्मावतीपुरवाल जातिकी अनुकरणीय विवाह पद्धतिके नियमानुसार विवाह मंगलके समय अन्य जैन जातियोंकी अपेक्षा अधिक द्रव्य धर्मार्थ निकाला जाता है। तदनुसार अवागढके लाला गुलजारीलालजीने अपने पुत्रके विवाहमें मंदिरजीके लिये २४१) रु० नगद सिंहासन चांदीका १, थाल चांदीका १, गिलास चांदीके २, चमर १, छत्र १ और मुरादाबादी थाल १ तथा अन्य २ संस्थाओंको ८०) तरह ३२१) रु० बाबूलालजी रईस बोरपुरने १०२६) रु० और उपकरण तथा टूंडला निवासी ला० शिखरचंद्रजीने १६५) रु० मरसेना वाले पन्नालालजीने १३४ रु० दिये। प्रायः इसी प्रकार सब विवाहवालोंने दान दिया है।

इमलियामें फूट।

यहां बिरादरीमें दो धडे होनेके कारण मंदिरजी टूटे पडे हैं और भी दशा शोचनीय है। इसी प्रकारकी हालत बहुतसे गांवोंमें है इसका सुधार होना जरूरी है।

अनाथालयकी स्थापना।

बड़नगरमें ला० भगवानदासजीके उद्योगसे एक गरीब अनाथ बच्चोंको शिक्षित करनेके लिये अनाथालय खुला है। अपाहिज बच्चोंको भेज लाभ उठाना चाहिये और यथाशक्ति मदत भेजना भी जरूरी है।

सब अंक पूरे कर लीजिये।

जिन ग्राहकोंके पास गत सालके पद्मावतीपुरवालके सब अंक नहीं पहुंचे हैं उन्हें हमारे पाससे शेष अंक मंगाकर शीघ्र ही अपनी फाइल पूरी कर लेना चाहिये। पद्मावतीपुरवाल अन्य अखबारोंकी तरह पढ कर फाड या फेंक देनेकी चीज नहीं है इसमें गवेषणा पूर्ण महत्त्वशाली लेख रहते हैं। जिल्द बंधाकर रखनेसे संतान दर संतानका कल्याण होगा।

श्रीलाल जैनके प्रबन्धसे जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस,
८ महेंद्रबोसलेन, श्यामबाजार कलकत्तामें छपा।

जुगलकिशोर मुख्तार

पद्मावती परिषद्का मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा चित्रोंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

विषय सूची।

वर्ष. ३ अं. ३

नोट—"स्त्रीमुक्तिपर विचार" शीर्षक लेख २ रे वर्षके ६ ठे अंकसे छप रहा है, पाठकोंको आदिसे अंत तक मनन करना चाहिये। कवितायें और गल्प इस अंकमें नहीं दे सके, क्षमा करें।

वार्षिक मू० २) | आनरेरी मैनेजर— श्रीधन्यकुमार जैन. 'सिंह' | १ अंक का ≡)

समाचार संग्रह ।

बनरहा है—सोनागिरि दि. क्षेत्रपर जो जिन मंदिर अधूरा पड़ाथा जिसकेलिये फिरोजाबादके मेलामें अपील हुईथी उसका कार्य प्रारंभ होगया है। सहायताका रुपया पद्मावती परिषद् कार्यालयमें या ला० हीरालालजी पटाके पास भेजना चाहिये ।

निकलेगा--कलकत्ता ८३ लोअरचितपुर रोडसे जैन परिवार नामका एक मासिक पत्र शीघ्र ही निकलेगा । संपादक पं० लोकमणिजी जैन वैद्य होंगे । इसकी नीति जैन शास्त्रों पर जो मिथ्या आक्षेप व कुतर्कणाएं हो रही हैं उनके निरसन पक्षमें होगी । वार्षिक मूल्य २) रु० और पृष्ठसंख्या ४०० तक पहुंच जायगी । शीघ्र ही ग्राहकश्रेणीमें नाम लिखाइये ।

सहायता दीजिये—बड़नगरमें दि० जैन अनाथालय आजकल अच्छा काम कर रहा है। प्रतिदिन १०) रु० का ख़र्च है, हरएक धर्मात्मा भाईको कमसे कम एक दिनका खर्च अपने जुम्मे लेलेना चाहिये । ला० देवीसहायजीकी तरफसे नगलेसरूप (आगरा) की एक विधवा माता को ५) रु० मा० सहायता दी जाती है। मातापिता हीन अनाथ लड़के लड़कियोंका जिन महाशयोंको पता हो वे उक्त अनाथालयके मैनेजरसे पत्र व्यवहार करे ।

खान पान बंद— जयपुरके अर्जुनलालजी सेठीने अपनी लड़कीका विवाह हूमड जातीय लड़केके साथ करदिया है और बंबई निवासी उदयलालजी काशलीवालने अज्ञात द्विज विधवाको अपने घरमें पत्नी बना रखलिया है इसलिये दोनों को बंबईकी जैन खंडेलवालसमाजने वहिष्कृत कर साथमें खान पान और मंदिर व्यवहार बंद कर दिया है। अन्य जगह की खंडेलवाल जैन पंचायतोंको इस पर विचार करना चाहिये ।

त्यागियोंके चतुर्मास—ऐलक श्री १००८ पन्नालालजी ने आलद (शोलापुर) में ब्रह्म० सीतलप्रसादजीने देहलीमें पं० गणेशप्रसादजी और ज्ञानानंद जी वर्णीने बनारसमें बा० भागीरथने जयपुरमें छोटेलालजीने जेवर (बुलंदशहर) में चतुर्मास किया है ।

शोक—टूंडला (आगरा) के प्रसिद्ध रईश लाला शिखरप्रशादजीकी मृत्यु ता० १६ सन् १६२० को सिर्फ ४७ वर्षकी उम्रमें होगयी आप पद्मावती परिषद् के सभापति और धर्मात्मा सज्जन थे । हम आपके वियोगसे संतप्त कुटुंबी जनोंको संसारकी दशाका ध्यान कर धमरत होनेका आग्रह करते हैं ।

चाहिये—शिखर जीकेलिये दो जैन शास्त्रीय परीक्षा पास या उसकी योग्यता रखनेवाले पं० चाहिये वेतन १०० रु० मासिक तक । पत्र व्यवहार तनसुखलालजी पांड्या मंत्री सं० शि० दानप्रचारकसमिति ८१ लोअर चितपुररोड कलकत्तासे करना चाहिये ।

जैन पत्र नहीं हैं—कलकत्ताकी दि० जैनसमाज ने प्रस्ताव किया है कि जातिप्रबोधक और सत्योदयके समान जैनहितैषी भी जैनशास्त्रानुयायी पत्र नहीं हैं । उसे भी जैनपत्र समझकर कोई जैनी न पढ़े न खरीदे ।

प्रतिनिधि भेजिये- दि० जैन महासभाका अधिवेशन अबकी शरद् ऋतुमें कानपुर होगा । सब जगहकी पंचायतोंको अपने प्रतिनिधि चुनकर भेजना चाहिये। जैन साहित्य प्रदर्शन महत्तवशाली होगा औरभी अनेक लाभदायक कार्य्य होंगे ।

मंगाइये—हस्तलिखित ग्रंथ मंगाना हो तो जैनमहासभाकार्य्यालय बड़नगर (मालवा) को लिखिये ।

चूरू (मारवाड) निवासी

स्वर्गीय पं० अर्जुनदासजी, कलकत्ता ।

जन्म— वि० सं० १८८६
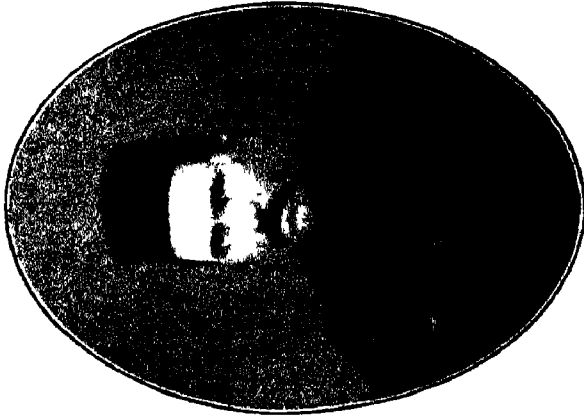
मृत्यु— वि० सं० १९७७

श्रीयुत बाबू बनारसीदासजी बी० ए०

एल० एल० बी० जलेसर (एटा)

जन्म पौष सुदी २ सं० १९३२

मृत्यु वैशाख वदी १५ संवत् १९७७

महसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदं

३ रा वर्ष — कलकत्ता, जेठ वीरनिर्वाण सं० २४४६ सन १९२० — ३ रा अंक

कलियुगकी महिमा ।

शक्ति हीन होनेके कारण भोगोंमें होकर तत्पर ।
  हुए मलच्छे [illegible] जिसकी यह हस्ती ऊपर ॥
कभी करें हम उसकी निंदा कभी प्रशंसा देख समय ।
  निज ख्यातीपर फिरै न पानी इसका रखकर पूरा भय ॥ १ ॥
किंतु कलममें है यह शक्ती लेख लिखें हम चटकीला ।
  मुखमें भी वह अपूर्व शक्ती व्याख्यान दें भड़कीला ॥
सुनकर वचन हमारे मीठे भोलेजन फस जाते हैं ।
  हम भी सुन तारीफ उन्हींसे फूले नहीं समाते हैं ॥ २ ॥
कलियुग देव ! तुम्हारी माया यह हममें होगई जारी ।
  हितकर धर्ममार्गके होते जो हम चाल चलैं न्यारी ॥
जान बूझकर भी हम पडने अंधकूपके मध्य अहो ।
  यदि यह दोष न कलियुगका तो मित्रो ! किसका जरा कहो ॥ ३ ॥

स्त्रीमुक्ति पर विचार।

(११ वे अंकसे आगे)

स्त्री-मुक्ति-खंडन लेखके प्रारंभमें ही हम पाठकोंसे यह निवेदन कर चुके हैं कि स्त्रीमुक्ति मंडनके लेखकने चुने-चुने शब्दों का उपयोग कर कई पृष्ठोंमें अपने मनोनीत समान चारित्री महाशयों की तारीफकी सीमाके बाहिर इपलो पीटी है। चिरकालसे संचित अपने उद्गारका प्रकाश डाला है और वृथा पाठकोंका समय नष्ट किया है। हम वैसा करना उचित नहीं समझते। लेखकने जो भी युक्तियां स्त्रीमुक्तिकी सिद्धिमें दी हैं उन्हींपर विचार करते हैं — गोम्मटसारमें

अंतिमतियसंहडणस्सुदओ पुण कम्मभूमिमहिलाणं।
आदिमतिगसंहडणं णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं॥ ३२कर्म

अर्थात् अंतके तीन अर्धनाराचादि संहननोंका उदय कर्मभूमि की स्त्रियोंके होता है और आदिके तीन वज्रवृषभनाराचादि संहनन कर्मभूमि की स्त्रियोंके होतेही नहीं ऐसा जिनेंद्रदेवने कहा है। यह गाथा है। यहांपर जो कर्मभूमिकी स्त्रियोंके एकदम पहिले तीन संहननोंका अभाव वर्णन किया है अर्थात् पहिले संहननके बाद दूसरे तीसरे आदि क्रमसे स्त्रियों के संहननका विधान न करि जो एकदम चौथे संहननका विधान माना है उसीपर बाबू अर्जुनलाल जी सेठी उछल पड़े हैं और विकास सिद्धान्त और परमाणु वादसे इस कथन को असत्य सिद्ध कहडाला है क्योंकि संसारमें समान्य रूपसे यही सिद्धान्त प्रचलित हैं कि एकके बाद दो उसके बाद तीन आदि आते हैं एकके बाद उछल कर तीन या चार नहीं आ सक[ते]

[इसलिये वैसा] ही क्रमिक नंबर उन्होंने यहां भी लगा लि[या किन्तु उ]न्होंने यह विचार नहीं किया कि बलवान [कारण] अविरुद्ध रूपसे नियमको उलट पुलट कर देता है [और] कारण कार्यका परिपूर्ण ज्ञान रखने वालों को वह वैसा ही स्वीकार करना पड़ता है यहांपर पक्षपात और खिंचानेकी रसायन जरा भी अपना असर नहीं करती, सब व्यर्थ जाती है अस्तु पहिले संहनन के बाद चौथे संहननका होना संभव है या असंभव हम इसीबातपर विचार करते हैं। यह सर्वमान्य और अकाट्य सिद्धान्त है कि सजातीय पदार्थसे सजातीयकी और विजातीय पदार्थसे विजातीय की ही उत्पत्ति होती है किन्तु ऐसा नहीं कि सजातीयसे विजातीय या विजातीयसे सजातीय की उत्पत्ति हो अन्यथा चेतनसे अचेतनकी या अचेतनसे चेतनकी उत्पत्ति होने लगेगी और ऐसा होनेसे केवल चेतनात्मक या अचेतनात्मक एकही तत्त्व के सिद्ध हो जानेसे स्वर्ग मोक्षादि व्यवस्था ही लुप्त हो जायगी परन्तु हां! यह कोई नियम नहीं कि सजातीय किंवा विजातीय कार्य क्रमिक नंबर वार ही होवें किन्तु नियोग अथवा विलक्षण द्रव्य क्षेत्र काल भाव की सामग्रीके अनुसार क्रमिक वा अक्र[मिक] ...[अ]क भी कार्य उत्पन्न हो जाते हैं।

विचारणीय बात है कि जि[स] ... [जि]स समय मनुष्य हिन्दुस्तान से अमेरिका जाता है उस ... समय हिन्दुस्तान से जो अ-

---

* स्त्रीमुक्ति लेखपर बाबू अर्जुनलालजी सेठीने अपना नाम नाहं दिया किन्तु बलन ... दूसरेका ... का नाम डाला है इसलिये पहिले हमने स्त्रीमुक्तिका लेखक ... लिखा है कि वह लेख मेरा ही है इसलिये आगे स्त्रीमुक्तिके लेखककी ... [अप]ने स्वार्थमें हानिकी संभावना देख ... यही नाम रक्खा है अब उक्त सेठीजीने ... जगह सेठीजीहीका नाम लिखा जायगा।

मेरिकाका मार्ग चालू है उसके प्रत्येक स्थानको तय करता हुआ पहुंचता है किंतु जिस समय अमेरिकामें जन्म लेने वाला हिन्दुस्तान का मनुष्य आयुके अंत में मरता है उससमय वह अपनी विग्रहगतिके अनुसार अमेरिका में जाकर जन्म धारण करता है और उस देशमें जैसा शरीर का आकार प्रकार किंवा रंग आदि का विभेद होता है उसके अनुसार उसके शरीर की रचना हो जाती है। वहां ऐसा तर्क कोई भी नहीं उठाता कि वह मनुष्य इस तरह मार्ग तय किये विना ही वहां एक दम कैसे चला गया? किंवा हिन्दुस्तानमें वह रंगका काला था और अमेरिका में क्रमसे रंग में फर्क न हो कर एकदम गोरा कैसे हो गया? वा हिन्दुस्तान में वह हिन्दुस्तानी भाषा बोलना जानता था अमेरिका में एक दम उसके मुखसे अमेरिकाकी भाषा ही क्यों निकली? क्योंकि यह बात मूर्ख से मूर्ख मनुष्य भी जानता है कि अमेरिकाका क्षेत्र जुदा है और हिन्दुस्तान का जुदा और अमेरिकाके क्षेत्रकी सामग्री जुदी है और हिन्दुस्तानकी जुदी। एवं जो अमेरिका में उत्पन्न होगा उसकी चाल ढाल उसी देशके अनुसार होगी और जो हिन्दुस्तान में पैदा होगा उसकी चाल ढाल हिन्दुस्तान के अनुसार। क्योंकि यह नियम है जो मनुष्य जिस क्षेत्र में उत्पन्न होगा उसका आकार प्रकार उस क्षेत्र की सामग्री के अनुसार जैसा निश्चित है वैसा ही होगा। उसमें फर्क नहीं पड़ सका।

इसी तरह जो भरत क्षेत्र में छह खंड की पृथ्वी का स्वामी सुलभ उत्तमोत्तम भोग भोगने वाला चक्रवर्ती है वह तीव्र पाप के उदय से सातवें नरक में नारकी होजाता है चक्रवर्ती अवस्था में जो उसका सुन्दर बलिष्ठ शरीर होता है वह एकदम दुर्गंधमय और निंदित होजाता है। चक्रवर्ती अवस्थामें जो अनुपम सुख भोग मिलता है उसको जगह नरकमें उसे ... क में अनुपम दुःख भोगना पड़ता है। वहां पर कोई यह शंका करने नहिं बैठ जाता कि चक्रवर्ती की विभूति का एक दम नाश कैसे होगया? चक्रवर्ती छै खंडकी पृथ्वीका स्वामी था वह क्रमसे पांच छै का पृथ्वीका स्वामी होना चाहिये था फिर क्रमसे तीन दोय एकका मामूली राजा जमींदार आदि किंतु वह राजा तो राजा रहा एक दम नारकी कैसे होगया?

इसीतरह तीसरे नरकसे आकर एकदम तीर्थंकर हो जाते हैं नारकी भी जहां उनके मित्र होना पसंद नहीं करते वहां तीर्थंकर होने के लिये गर्भ में आते हीं सब लोग उन्हें मस्तक नमा कर नमस्कार करते हैं वहां पर यह शंका करने कोई भी कमर नहीं कसता कि तीसरे नरक से एक दम जीव तीर्थंकर कैसे हो गया? तीसरे से दूसरे नरक फिर दूसरे पहिले आदि क्रमसे तीर्थंकर होना था सो क्यों न हुआ? एक दम नारकी से तीर्थंकर कैसे होगया इत्यादि।

इसी तरह जब मनुष्य देव गतिमें रहता है तब वहां के दिव्य भोग भोगता है किन्तु जिस समय वह तीव्र पापका पोटला लाद मरताहै उस समय एकेंद्री हो जाता है उसके सब सुख वहां के वहीं रह जाते हैं और जड़ तुल्य सैकड़ों वर्ष पर्यंत वह पृथ्वी पर खड़ा रहता है वहां कोई यह शंका नहीं करता कि देव जो वृक्ष हुआ है उसकी विभूति क्रमसे नष्ट होनी चाहिये थी एकदम कैसे नष्ट हो गई?

इसीतरह मनुष्य पर्यायमें तीव्रपापके उदयसे स्वयंभूरमण समुद्र में उत्कृष्ट अवगाहना का धारक मत्स्य हो जाता है उसका शरीर मनुष्यके शरीरकी अवगाहना से कई गुणा विशाल होता है वहां पर यह शंका ...

सी क्यों नहीं होती कि उसका एक दम इतना बड़ा शरीर कैसे होगया। अनेक पर्यायमें क्रमसे वृद्धि होती होती मत्स्य के शरीर की बराबर वृद्धि होनी चाहिये सो एकदम वैसी कैसे होगई!

क्योंकि विचारशील इसबात को विचार लेते हैं कि स्वर्ग नरक मनुष्यक्षेत्र स्वयंभूरमण आदि क्षेत्र भिन्न २ हैं उनकी सामग्री भी भिन्न २ है जो जीव जिस क्षेत्रमें उत्पन्न होगा विकास सिद्धान्तवा परमाणुवाद आदिकी जरा भी अपेक्षा न कर उसक्षेत्रके अनुसार उसका आकार प्रकार होगा ही उसमें फर्क नहीं पड़ सकता है। उसी प्रकार विचार करने से यह बात सुलभ रूपसे समझमें आजाता है कि कर्मभूमिका क्षेत्र उसमें होनेवाली सामग्रीकी अपेक्षा भिन्न है और भोग भूमिका क्षेत्र उसकी सामग्रीकी अपेक्षा भिन्न है भोग भूमिमें यह नियम होता है कि जो जीव उत्पन्न होते हैं वे युगल रूपसे होते हैं सात दिनपर्यंत उत्तानशय होकर वे अपने पैरका अंगूठा चूसा करते हैं सातदिन तक रेंगते फिरते हैं सात दिन अस्थिररूपसे गमन और सात दिन स्थिर रूपसे गमन करते हैं एवं सातदिनमें युवा और दर्शन के ग्राहक हो जाते हैं। उस समय विलक्षण भूमि की रचना होती है दशप्रकार के कल्प वृक्ष रहते हैं जिनके आधार पर भोगभूमिमें उत्पन्न होने वाले मनुष्यों की आजीविका चलती है असि कृषि आदि का भोगभूमिमें प्रचार नहीं रहता इसके विपरीत कर्मभूमिमें युगलियों का कोई नियम नहीं रहता और न सात २ दिन की व्यवस्था पूर्वक वह अंगूठा चूसना आदिका नियम होता है कर्म भूमिमें भोगभूमि की सी भूमि भी नहीं रहती कल्प वृक्षोंकी नास्ति हो जाती है और असि मषी आदि कर्मोंका प्रचार होने लगजाता है जब ऐसी व्यवस्था है कि भोगभूमि के कार्य कर्म भूमिमें और कर्म भूमि के कार्य भोगभूमिमें नहीं हो सकते तब भोग भूमिमें स्त्रियों के वज्रवृषभ नाराच संहनन का विधान है और कर्म भूमिमें नहीं इसमें क्या आश्चर्यकारी बात हुई? क्योंकि जिसप्रकार कल्पवृक्षोंकी कर्मभूमिमें सत्ता न होनेपर भी वृक्षों की सत्ता मौजूद है उसी प्रकार स्त्रियों के वज्रवृषभ नाराचसंहनन न होते भी अंतके तीन संहनन होते हैं यदि एकदम कर्मभूमि की स्त्रियोंके तीनों संहननों का कैसे अभाव होगया? यह कुतर्क सामने ही रक्खा जायगा तब यह भी कहा जासकता है कि दश प्रकारके कल्पवृक्षोंका एकदम कर्मभूमिमें कैसे अभाव होगया? एक दो जातिका तो रहना चाहिये था परंतु इसका उत्तर यही है कोई २ भोग भूमिका कार्य प्रायः कर्मभूमिमें और कर्मभूमिका भोग भूमिमें नहीं होता तथा भोग भूमिकी हानि वृद्धि क्रमिक रूपसे भोग भूमिमें और कर्मभूमिकी कर्मभूमिमें होती है। भोग भूमिका क्रमिक हानि वृद्धिका हिसाब कर्मभूमिमें और कर्मभूमिकी क्रमिक हानि वृद्धिका हिसाब भोग भूमिमें नहीं लगाया जासकता लेकिन हां! भोगभूमिका मरा हुआ जीव अपने नियोगका भव तयकरि फिर भोग भूमिमें उत्पन्न होगा तो अवश्य उसके भोगभूमिकी ही सामग्री की अपेक्षा प्रकार आकार होंगे और वहां क्रमिक हानि वृद्धि का हिसाब लगाया जा सकेगा उसी प्रकार कर्मभूमिका मरा हुआ जीव जिस समय कर्मभूमिमें उत्पन्न होगा उस समय कर्मभूमि सरीखा ही उसका आकार प्रकार होगा और वहां हानि वृद्धिका क्रमिक सम्बन्ध बराबर कायम रहेगा इसलिये जिस प्रकार सातवें नर्ककी आयु बांधने वाला भरतक्षेत्र का जीव जिस समय सातवें नरकमें उत्पन्न होता है उस

१ आदस्सुमसेहु तिवग्गा पुम सप अंसुकुडेहरंमिदए। अविरयविरयविकलायुणजोवणदंसणगाहे सांति॥ ७८९॥ त्रिलोकसार

समय यह तर्क नहीं की जाती कि वह सबसे पहिले प्रथम नरकमें फिर दूसरे आदिमें उत्पन्न होनाथा एकदम सातवेंमें कैसे होगया? उसीप्रकार भोगभूमिमें स्त्री के प्रथम संहनन होता है कर्मभूमिमें एकदम चौथा आदि क्यों? यह तर्क भी निरर्थक है क्योंकि जिसप्रकार मध्य लोक और नरक का क्षेत्र भिन्न है उसीप्रकार भोगभूमि और कर्मभूमिभी भिन्न है एककी रचनाका संबन्ध दूसरीमें लागू नहि हो सकता। यह बात अपने २ कर्माधीन है अतः स्त्रियोंके भोगभूमिके संहननका विधान कर्मभूमि में लगाना और अपनी युक्तिकी बहार बतलाना अविचारितरम्य ही है। हां यदि भरत ऐरावत क्षेत्रमें भोगभूमिके बाद कर्मभूमिकी रचना होनेपर ही यह होता कि भोगभूमिमें स्त्रियोंके पहिला संहनन और कर्मभूमि में चौथा, तब तो यह बात आक्षेपके और पक्षपातकी बोहारकी लिये मानी जाती किन्तु सामान्यसे जब यह नियमही है कि भोगभूमिमें स्त्रियों के पहिला ही संहनन होता है और कर्मभूमिमें चौथेसे लेकर संहनन होते हैं जैसा कि भरत ऐरावत के अतिरिक्त भी कर्मभूमि और भोगभूमियोंमें विधान है तब यह तर्क कि एकदम संहनन पहिलेसे चौथा कैसे होगया? व्यर्थ ही है क्योंकि जो जीव कर्मभूमिमें उत्पन्न होंगे उनके कर्मभूमि सरीखे और जो जीव भोगभूमिमें उत्पन्न होंगे उनके भोगभूमि सरीखे आकार प्रकार होंगे ही. उन्हे कोई टाल नहि सकता और न वहां तर्क लडानेकी गुंजाइश रहती है। यह बात कर्म सिद्धान्त पर निर्भर है अन्य सिद्धान्त पर नहीं।

दूसरे यदि भोगभूमिमें जो वज्रवृषभनाराच संहनन के परमाणू थे उन्होंसे यदि कर्म भूमि के अर्ध नाराच आदि संहननों की रचना होती—प्रथम संहनन के परमाणुओंसे एकदम चौथा संहनन बन कर तयार होता तब तो यह तर्क ठीक होता कि पहिले संहननमें एकदम चौथा संहनन कैसे होगया। किन्तु यहां तो यह विधान शास्त्र सम्मत है कि भोग भूमिके जीव मर कर देव गतिमें जाते हैं फिर अपने कर्मानुसार कर्म भूमि में उत्पन्न होते हैं और अपने २ कर्मानुसार उन्हें कर्म भूमि के आकार प्रकार धारण करने पड़ते हैं तब पहिले संहनन से कर्म भूमिमें स्त्रियों का एक दम चौथा संहनन कैसे हो गया इस तर्क को जगह ही नहीं मिलती।

तीसरे जब शास्त्र में यह लिखा है कि सम्यग्दृष्टि भोगभूमियां सौधर्म ईशान स्वर्ग के देव और मिथ्यादृष्टि भोगभूमियां भवनत्रिकों उत्पन्न होकर देव होते हैं और देव गति से च्युत होकर उनमें बहुतसे देव एकेंद्री वृक्ष तक हो जाते हैं। तब पहिले संहननसे कर्मभूमिकी स्त्रियों के एकदम चौथा संहनन कैसे हो गया जिस प्रकार यह तर्क उठाया जाता है उसी प्रकार यह तर्क भी उठाना उचित है कि भोग भूमि में जिन को वज्रवृषभ नाराच संहनन था उनका एकेंद्री वृक्ष का शरीर कैसे होगया? क्योंकि तर्क और समाधान दोनों ही तुल्य हैं। क्योंकि जिस प्रकार वृक्ष का शरीर देव गति से आये जीव का होता है और भोग भूमि से उसका कोई संबंध नहीं, उसी प्रकार देवगति से आई स्त्रियोंके कर्मभूमि मे अर्धनाराच आदि संहनन हैं उनका भी भोगभूमिसे कोई संबंध नहीं। न मालूम सेठीजीने इस कर्म सिद्धान्त की बात पर क्यों नहीं विचार किया लोगोंको भ्रम जाल में फसाने दूसरों को दिखाने एवं अपने मनोनीत निर्दिन बातों के प्रसारने के लिये क्यों निर्मूल विचार कर डाला?

१ सम्मे खवजंभवसा पुरणारि विलीय सरदमेवं वा। भवणतिगम्मो मिच्छा सोहम्मदुगाइगो सम्मा ॥ ७९१ ॥ त्रिलोकसार

यहां पर यह कहा जा सकता है कि-भोग भूमिमें स्त्रियोंके तो पहिला संहनन माना फिर कर्मभूमिमें चौथा आदि, परंतु पुरुषोंमें सब संहननों का विधान मान लिया यह तो सरासर पक्ष पात है। पुरुषोंके लिये भी संहननों में भो कमी वेशी होनी चाहिये परंतु यह कहना अयुक्त है कारण शास्त्र में यह उपदेश है कि विदेह क्षेत्र में सदा चौथा काल रहता है सदा तीर्थंकर उत्पन्न होते रहते हैं एवं उस क्षेत्र के शूद्र तक मोक्ष के अधिकारी हैं परंतु भरत ऐरावत में यह विचार नहीं यद्यपि क्षेत्रत्वेन विदेह क्षेत्र और भरत ऐरावत समान है एवं भरत ऐरावत में भी शूद्र मनुष्य हैं परंतु विदेहवालों के लिये वैसा विचार है और भरत ऐरावतवालों के लिये नहीं। यदि कर्म भूमि की स्त्रियों में चौथे आदि संहननों के विचार से पक्ष पात समझा जायगा तब विदेह क्षेत्र में चौथे काल का विधान एवं शूद्रों तक को मोक्ष का अधिकार और भरत ऐरावतमें नहीं यह भी पक्षपात कहना पड़ेगा एवं सर्वज्ञों का रागी द्वेषी ठहराना होगा क्योंकि उन्होंने एक क्षेत्र के लिये वैसा उपदेश दिया और दूसरे के लिये भिन्नरूपसे।

यदि यह कहा जाय कि वहां की द्रव्य क्षेत्र काल भाव की सामग्री ऐसीही है कि वहां सदा चौथा काल रहता है एवं वहां के शूद्रों के कर्म सत्ता इतनी अवशिष्ट रहती है कि वे एकही भव धारण कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं तब यहां भी यह कहने में कोई संकोच नहीं होसकता कि भोगभूमि की सामग्री ऐसी है कि उसमें स्त्रियों के पहला ही संहनन होता है और कर्म भूमि में चतुर्थ आदि होते हैं। एवं भोग भूमिकी स्त्रियोंके पुण्यकी तीव्रता रहती है इसलिये उनके उत्तम संहनन होता है और कर्म भूमि की स्त्रियों के वैसे पुण्य की तीव्रता नहीं होती इसलिये उनके चतुर्थ आदि संहनन होते हैं।

कर्म भूमि की स्त्रियों के एक दम पहिलेसे चौथे संहनन के सद्भाव को सेठीजीने विकाससिद्धान्त और परमाणुवाद के विरुद्ध बतलाया है। परंतु यह ठीक नहीं क्योंकि विकास का अर्थ प्रकट होना है। जिस प्रकार तिल से तेल दूध से मक्खन मिट्टी से घड़ा आदि नमकीले पानी से नमक सुवर्ण पाषाणसे सोना मिट्टी के तेल आदि से गैस आदि। तथा यह नियम है कि जिससे जो विकसित होता है अर्थात् जिस कारण से जो कार्य होता है कार्य के वैसे होनेमें उस कारण का मथन करना पड़ता है अर्थात वह कारण ही कार्य बन जाता है किन्तु अपेक्षित कारण पड़ा रह जाय कहीं और कार्य दूसरे कारण से हो जाय तो वह अपेक्षित कारण का कार्य - विकास नहीं माना जाता। जिस प्रकार गुण से मीठे पदार्थ की उत्पत्ति होती है किंतु जिस समय गुड़ के परमाणु संखिया या अफीम रूप परिणत हो जाते हैं उस समय उनसे मीठे पदार्थोंकी उत्पत्ति नहीं होती क्योंकि मीठे पदार्थकी उत्पत्तिमें अपेक्षित कारण मीठा वहां न रहा अन्य ही कारण होगया।

प्रथम संहननसे कर्मभूमिकी स्त्रियों के जो चतुर्थ संहनन आदिका विधान है यहां पर विकास सिद्धान्तसे विरोध नहि आसकता क्योंकि प्रथम संहननके जो परमाणू हैं उन्हीके मथन पूर्वक चतुर्थ संहनन की उत्पत्ति नहिं हुई किन्तु वे कहीं पड़े रहगये उसके बाद देवगति में वैक्रियिक शरीर धारण करना पड़ा फिर कहीं कर्मानुसार कर्म भूमिमें स्त्री पर्याय धारण करनेसे निज नाम कर्मानुसार चतुर्थ आदि संहननों की स्त्रियोंके उत्पत्ति हुई। हां! यदि पहिले संहननके परमाणुओंसे ही कर्म-

भूमिकी स्त्रियों के संहननकी रचना होती तब परमाणुओंमें कुछ फर्क पड़जाने से द्वितीयादि संहनन शायद क्रमसे होते परन्तु वैसा नहि हुआ किंतु भोगभूमियोंकी स्त्रियोंके उनके नाम कर्म के अनुसार पहिला संहनन और कर्मभूमि की स्त्रियोंके उनके नामकर्म के अनुसार चतुर्थ आदि संहनन हुए इसलिये वहां विकास सिद्धान्तके विरोधको जगह ही नहीं मिल सकती।

परमाणुवादसे तो प्रथम संहननसे कर्मभूमिकी स्त्रियोंके एकदम चतुर्थ संहनन आदिका विधान कभी विरुद्ध नहि हो सकता क्योंकि कुछ विकृत अवस्था लिये किसी स्कंधके उन्हीं परमाणुओंका दूसरे स्कंधानुसार परिणत हो जाना परमाणु वाद का तात्पर्य है प्रथम संहननसे एकदम कर्मभूमिकी स्त्रियोंके चतुर्थ संहननका विधान माना नहीं किंतु वहां तो परमाणुओंकी कुछ भी अपेक्षा न करि नाम कर्माधीन व्यवस्था मानी है इसलिये परमाणुवादसे विरोध की वहां गुंजाइस हो ही नहि सकती।

हमारी समझसे तो सेठी जी ने विकास सिद्धान्त और परमाणुवादका नाम ही नाम सुन लिया है उनके अर्थके विचारने के लिये प्रयत्न नहि किया। किसीसे पूछने में भी अपनी विद्वत्तामें बट्टा लगता जाना इसलिये उन्होंने विना ही विचारे वेधड़क लिख डाला कि कर्मभूमिकी स्त्रियोंके जो एकदम पहिले संहननसे चतुर्थ आदि संहननोंका विधान है वह विकास सिद्धान्त और परमाणु वादसे विरुद्ध है। अस्तु,

एक जानने लायक यह भी बात है कि भरत और ऐरावत क्षेत्रमें जो भोगभूमिके बाद रचना हुई है और पहिले संहननसे एकदम कर्मभूमिकी स्त्रियोंके चौथे संहननका विधान है उसीपर हमारे सेठी जी आपेसे बाहर होगये हैं और उनको इस टंटाने एक दम दबा लिया है कि भोगभूमिमें स्त्रियों के पहला संहनन और कर्म भूमि में चतुर्थ आदि संहनन कैसे होगये; यदि वे इस बात को विचार लेते कि कर्मभूमिकी द्रव्य क्षेत्र काल भाव की सामग्री अनुसार वहां स्त्रियों के चतुर्थ आदि संहननोंका विधान है और भोग भूमि की उक्त सामग्री अनुसार वहां पहिले ही संहनन का विधान है। भरत ऐरावत क्षेत्रों से भिन्न कर्म भूमि भोग भूमियों में भी यही विधान है वह टल नहीं सकता अथवा इस ओर भी उनका ध्यान चला जाता कि भोगभूमियां मर कर स्वर्ग जाते हैं पीछे निज कर्मानुसार कर्मभूमिमें आकर उत्पन्न होते हैं कर्म भूमि में भोग भूमि की बातोंकी कोई अपेक्षा नहीं रहती निज २ नाम कर्माधीन सब व्यवस्था है तो उनकी कलम स्त्रीमुक्तिके मंडन करने के लिये कभी न उठती परंतु इतना विचार कौन करे? ऐसा करने से स्वार्थ मे कमी पड़ेगी न! अस्तु हमने यहां तक यह सिद्ध कर दिया कि कर्मभूमिकी स्त्रियों के जो एक दम पहिले से चतुर्थ आदि संहनन होते हैं सो असंभव नहीं। अब हम पृथक रूपसे सेठीजी के वचनों पर विचार करते हैं——

जैन धर्म प्राणिमात्र का हितकारी है इत्यादि लम्बी चौड़ी प्रस्तावनाके बाद सेठीजीने यह अपना मत निदर्शन किया है कि जब स्त्रियां बल बुद्धि साहस धैर्य आदि किसी भी बातमें मनुष्यों से कम नहीं सब बातोंमें बराबरी रखती हैं तब जैन धर्म उन्हें भी मोक्ष की आज्ञा देकर क्यों उनका हित करना नहीं चाहता प्राणी मात्रके हितकारी धर्म का पुरुषोंकी बराबरी करने वाली स्त्रियों को मोक्ष सुख से वंचित रखना शोभा नहीं देता।

इसके बाद आपने यह लिखकर कि इससे तो

गीताके भगवान अच्छे जो ब्राह्मणोंको महापुण्याधि-
कारी उच्चतम बतलाते हुए भी सबको मोक्ष प्रदान
करनेका समान वचन देते हैं और कहते हैं कि मेरी
शरणमें आजाओ सबको परमगति दूंगा।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परां गतिं॥

गीताको शास्त्र सदैव माना और उसपर अपनी प्र-
कांड भक्ति प्रगट की है। उससे निवेदन है कि—

सेठी जीका पुरुष और स्त्रियोंको समान मानना उन्हीं
का मत स्वतंत्र सिद्धान्त है शास्त्र और लोक दोनोंके
आधारसे स्त्रियां पुरुषोंके बराबर सिद्ध नहिं होतीं क्यों
कि हम पहिले विस्तारके साथ सिद्ध कर चुके हैं कि
स्त्रियां कभी पुरुषोंकी तुलना नहिं कर सकतीं कदा-
चित अज्ञान उदय क्योंकि वे पुरुषोंकी तुलना करभी
लें तथापि सम्यग्ज्ञान पूर्वक कार्योंमें वे पुरुषोंकी तुल-
ना नहिं कर सकतीं मोक्षकी प्राप्ति सम्यक् ध्यान अ-
वस्था पर निर्भर है विचार करनेसे यह अच्छी तरह
ज्ञात पड़ता है कि स्त्रियोंकी निसर्ग अधिक चंचल
होती हैं उनमें स्वभावतः लोभ आदि होते हैं इसलिये
वे मोक्षका परमकारण ध्यान नहिं करसकतीं। शायद
सेठीजी यह देखकर कि स्त्रियां एक एक मासका उप-
वास और व्रतादिक करडालती हैं उन्हें मोक्ष प्राप्तिकी
अधिकारिणी कहते हैं सो आश्चर्य नहीं यदि उस
हालतमें स्त्रियोंका चित्तवृत्तिकी परीक्षा की जायगी तो
यह साफ मालूम होजायगा कि उनका वैसा व्रत कि-
सी मोक्ष अतिरिक्त आशाओंके लिये है तथा जहां आशा
है तहां मोक्ष नहीं इसलिये आज कल समसंहननधारी
पुरुषोंकी तुलना स्त्रियां निंदित कार्योंमें कर भी लें
तथापि वे सम्यक् कार्य में बराबरी नहिं कर सकतीं।

आश्चर्य की बात है कि लोकमें विचार करनेसे यह
प्रत्यक्ष अनुभव होजाता है कि सम्यक् ध्यानादि कार्योंमें
स्त्रियां पुरुषोंकी बराबरी नहिं करसकतीं और शास्त्र
मोक्ष प्राप्तिमें स्त्री पुरुषों की समानताका निर्भयतासे
निषेध कर रहा है तब ज्ञात नहिं पड़ता है सेठीजी दो-
नों की समानता का उल्लेख कर कौनसा विजातीय पु
ण्य कमाना चाहते हैं? अच्छा दिगंबर जैन शास्त्रोंसे
घृणा करने वाले सेठी जी उनके वाक्यों को न मानें
एवं रिझानेकी रसायनमें फसकर स्त्रियोंकी अंतरगत
क्रियाओंपर विचार न कर दूसरे लोगों के अनुभवों
को भी झूठा समझें परंतु मोडर्न रिव्यूमें निकले हुए
लाला लाजपतिराय के लेखका सेठी जी क्या प्रतीकार
करेंगे क्योंकि उक्त लालाजीने लिखा है कि, प्रोफेसिस
का मत है—स्त्रियां कभी पुरुषोंकी बराबर नहिं होस-
कतीं। विचारने की बात है कि सेठी! सेठी जी इस बात
को कह सकते हैं जैनाचार्योंका स्त्रियोंपर द्वेष था इस-
लिये उन्होंने स्त्रियों को मोक्षका अधिकार नहिं दिया
परंतु उक्त प्रोफेसर महाशयका क्या द्वेष है? वह तो
विरागी भी नहीं परंतु स्वाईसके आधारसे जैसा उन्हे
जंचा वैसा उन्होंने कहदिया और लाला लाजपतिराय
जीने इस सिद्धान्तको मान्य समझ कर उसे प्रकाशित
कर दिया।

दुःखकी बात है कि हम लोग ऐसे कृतघ्न, भक्ति
शून्य स्वार्थी होगये कि हमें अपने परम हितकारी शास्त्रों
के वाक्य झूठ जंचने लगे और पर मतके तत्त्व असली
मालूम पड़ने लगे, नहीं तो क्या वनस्पतीमें जैन शास्त्र
डंकेकी चोट जीव सिद्ध कर रहे हैं उनकी कुछभी ग-
णना नहीं और प्रोफेसर जगदीशचंद्र वसुने उसमें
जीव सिद्ध कर दिया उनका वह प्रकाण्ड विश्वास!
गणना हो कैसे? हमतो मनचले होगये अच्छा हो
हुआ जो वसु महाशयने वनस्पतिमें जीव सिद्ध कर-

लिया नहीं तो हमारी समाजके कमजोर वनस्पतिको अचेतन ही मान बैठते । अस्तु

मां हि पार्थ ! व्यपाश्रित्य येपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परां गतिं ॥

अर्थात् हे अर्जुन ! तीव्रपापकी खानि भी चाहैं स्त्री चाहैं वैश्य चाहैं शूद्र कोई भी हो जो मेरा आश्रय करते हैं उन्हें परां गति प्राप्त होती है । सेठीजीने गीता का यह पद्य उद्धृत कर जो यह लिखा है कि इसके गीताके भगवान अच्छे जो सबको परांगतिका उपदेश देते हैं वह विचारणीय है । कारण—

उक्त पद्यका यही तो भाव है कि स्त्री वैश्य शूद्र कोई भी जो परमात्माके स्वरूपमें लीन होता है उसे परांगति मिलती है । जैनसिद्धांत भी इससे विरुद्ध नहीं कहता, वह भी स्त्री आदिको मोक्षका पात्र बतलाता है । स्त्री आदिको ही क्या ? जैनसिद्धांत तो यहां तक उदारता प्रकट करता है कि तिर्यंच उनमें भी निगोदिया तक जिस समय शुद्ध स्वरूपके ध्यानकी योग्यता प्राप्त करलेता है तब परमात्मा बन जाता है । यदि यह कहा जाय कि जैन सिद्धांत स्त्री आदिको साक्षात् मोक्षका पात्र नहीं बतलाता परंपरासे बतलाता है, सो ठीक नहीं क्योंकि गीताका उल्लिखित पद्य भी स्त्री आदिको साक्षात् मोक्षका अधिकारी नहि बतलाता। उसका भी तात्पर्य परंपरामें ही संघटित है । अन्यथा श्लोकमें साक्षात् पद दिया होता । कदाचित यह कहाजाय कि वहांपर साक्षात् लगालेना चाहिये सो भी ठीक नहीं क्योंकि गीताके वचन भगवान श्रीकृष्णके वचन समझे जाते हैं उसमें संदेहास्पद कमी रहजानी असंभव है ।

दूसरे गीताके उल्लिखित पद्यसे ब्राह्मणोंको परम पुण्याधिकारी और उनसे अन्यों को पाप योनि बतलाया है यह कथन बड़ा आश्चर्यकारक है क्योंकि हरएक मनुष्य इस बातको स्वीकार कर सकता है कि ब्राह्मणों की जाति उत्तम है परंतु कर्मसिद्धांतवादी यह कभी स्वीकार न करेगा कि ब्राह्मण हो जानेके कारण वे परागतिके भी अधिकारी होगये । यह कथन पक्षपात परिपूर्ण है और ब्राह्मणों पर यह बुरा प्रभाव डालनेवाला है कि वे कितना भी घोर पाप करैं उनका सब माफ हो जाता है । कर्मसिद्धांतपरक मनमें पलनेवाले सेठीजीको न मालूम यह पक्षपातपूर्ण वचन कैसे तथ्य ज्ञात पड़ा ? स्त्रियोंके परांगतिकी छूटपट्टी देख यदि सेठीजीने गीताके मतको अपनाया है तो वे उन ब्राह्मणोंको जो प्रेतभूमिमें डोम आदिका कर्म करते हैं पर अपनेको मानते परम ब्राह्मण हैं उन्हें भी ईश्वरके मंत्री मानें, एवं उनकी पूजा उपासनामें जो लगावें, कल्याण होजायगा ।

कदाचित यह कहाजाय कि—नहीं, गीता के भगवानने उन ब्राह्मणोंको पुण्याधिकारी बतलाया है जो ब्राह्मण क्रियामें तत्पर और ईश्वरके उपासक हैं परंतु यह भी भगवानका वचन होकर शोभा नहीं देता किंतु उनका वचन यही शोभा देसकता है कि जो उत्तम कुलमें जन्मे होकर तप आचरण करनेवाले हैं वे परांगतिके अधिकारी हैं क्योंकि जब गीताके भगवानको सब को परांगति देना इष्ट है तब ब्राह्मणों को उत्तम वर्णका कहने पर भी उन्हें परांगतिका स्वभाव सिद्ध अधिकारी बताना पक्षपात पूर्ण कथन नहीं तो क्या है ? मेरे और मेरे कुनबाको छोड़कर जीवमात्र भक्ष्य हैं जिसप्रकार यह स्वार्थपरिपूर्ण कथन है उसीप्रकार ब्राह्मण स्वभावतः परागतिके अधिकारी हैं यह कथन भी स्वार्थपरिपूर्ण ही प्रतीत होता है ।

हमारा तो ख्याल यह है कि उल्लिखित पद्य, विधायक नहीं प्रशंसावाचक है क्योंकि हिंदुओंके सर्वोच्च

सिद्धांत वेदांतसिद्धांतके अनुसार मोक्षका स्वरूप यह है कि मायाके जालसे निकलते ही जीवात्मा परम ब्रह्म परमात्मा कहाजाता है। सांख्य सिद्धांतके अनुसार प्रकृति पुरुषका विवेक ही मोक्ष है। नैयायिक और वैशेषिक बुद्ध्यादि गुणोंके उच्छेदको ही मोक्ष मानते हैं। यहांपर इस बातका कोई जिक्र नही है कि ब्राह्मण ही मायाके जालसे हटकर परम ब्रह्म अवस्था धारण करते हैं। किंवा ब्राह्मण ही प्रकृति पुरुषका विवेक अथवा बुद्ध्यादिगुणोंका उच्छेद कर सकते हैं।

जैनमतका जब यह अकाट्य सिद्धांत है कि जो जीव अमुक आत्मीय अवस्था प्राप्त करलेगा चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष या तिर्यंच, तब स्त्रियोंमें साक्षात उस अवस्थाकी प्राप्तिकी असंभवतासे जैनसिद्धांतको दोषी बतलाना किसीतरह युक्तियुक्त नही हो सकता। आश्चर्य तो इस बातका है कि सेठीजी अपने लेखको शुरुआतमें इस बातकी डींग मारते हैं कि तर्क पूर्वक हमें निष्पक्ष रूपसे विचार करना है-किसी खास सिद्धांतका मुंह नहीं देखना है तब न मालूम उल्लिखित पदार्थों विचारनेमें उनकी निष्पक्षता और तर्कणा कहां छिप गई। धर्म सिद्धांतपरक सिद्धांतके अंदर जन्मसे पलने वाले सेठीजीको निर्युक्तिक ब्राह्मणोंकी पारंगतिका अभिप्राय न मालूम क्यों न खटका ? खटके कहांसे, सेठीजीको तो स्त्रियोंको सीधा मोक्ष पहुंचाना है, गीताके भगवानने स्त्रियोंको परांगतिको पहुंचना लिखा है फिर सेठीजी अन्य बाते चाहे निर्युक्तिक ही क्यों न हो उनपर क्यों ध्यान देने चले। ठीक है जिस समय मनुष्यकी बुद्धि किसी कुवासनाकी ओर आरूढ हो जाती है उस समय उसे असली तत्त्वके विचारनेके लिये अवकाश नहीं मिलता, उस मनुष्यको अपने कावकर्मका कुछभी ध्यान नहीं रहता।

परागति शब्दके अर्थ प्रशस्त गति और मोक्ष दोनो होते हैं। गीताके भगवानको परागतिकी जगह अपुनर्भव आदि मोक्षबोधक शब्दोंका उपयोग करना उचित था संदेहात्मक परागति शब्दका नहीं कुछभी हो युक्तियुक्त कथन तो यही है-जो जीव अपनी किसी भी पर्यायमें अखंड रत्नत्रयका अधिकारी है वही मोक्ष प्राप्त कर सका है। स्त्रीका जीव भवांतरमें उक्त रत्नत्रयका अधिकारी हो सकता है ध्यान आदिकी योग्यता न होनेसे साक्षात् नही। यदि कोई अपने मन गढंत कल्पनाको यह बहार बतलाकर कि-जिसप्रकार मेलके फर्स्ट क्लास में बैठनेका पुरुषको अधिकार है उस प्रकार स्त्रीको भी है उसी प्रकार जैसे पुरुषको मोक्ष प्राप्तिका अधिकार है वैसे स्त्रीको भी, यह जबरन कहे तो उसका कोई मुंह नहीं पकड़ सकता। अस्तु यह बात अच्छीतरह सिद्ध हो चुकी कि स्त्रियां पुरुषोंके समान ध्यान आदिकी योग्यता न रखनेके कारण पुरुषों की बराबर नहीं हो सकतीं तथा सेठीजीने जो यह लिखा है कि 'स्त्री अपनी तद्भव पर्यायसे मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकतीं ये वचन सर्वज्ञके नही' सो व्यर्थ है क्योंकि प्रबल युक्तिसे जब स्त्रियोंमें तद्भव मोक्षका निराकरण होजाता है तब सर्वज्ञके भी वैसे वचन होनेमें कोई बाधा नही आ सकती। (क्रमशः)

जैनियोंका भक्तिमार्ग।

(लेखक--पं० अजितकुमार कौंदेय, मुरैना।)

हिन्दु (ब्राह्मण) धर्म में जब अधिक अंग्रेजी शिक्षाका प्रचार होने लगा और उसके प्रचारसे लोगोंमें पुरातन क्रियाकांडके उद्देश्यका अज्ञान और उसका अभाव होने लगा तो जो लोग क्रियाकांडके पक्षपाती एवं उसके प्रचारक थे उन्होंने अंग्रेजी शिक्षासे शिक्षितोंको निंदा करना प्रारंभ किया लेकिन राजकीय भाषा और उसकी ही मुख्यता होनेसे अंग्रेजी शिक्षा रुकी नहीं प्रत्युत उस के प्रभावसे क्रियाकांड की ही गौणता होती गई। लोग अनेक तर्क निकाल उसका आचरण करना निरर्थक और मूर्खताका कार्य बताने लगे। इसका फल भी शीघ्र ही यह हुआ कि एक विचार के बहुत मनुष्य होजानेसे प्रतिपक्षी जो निंदा करते थे वे बंद होगये और बेधड़क हो सर्वथा क्रियाकांडको तिलांजलि दे बैठे। इस फिरके के कुछ लोग तो अपनेको निर्भय बतला आर्यसमाजी नाम से अभिहित कहाने लगे और कुछ एक भीतर में वैसे होकर भी ऊपरसे उस क्रियाकांडके प्रति भक्ति प्रकाश कर अपनेको पुरातन हिन्दुधर्मका पक्षपाती ही प्रकट करने लगे। इस प्रकार धार्मिकताले सर्वथा शून्य अंग्रेजी शिक्षाने अपना अड्डा भारत की भावी नवयुवक जनताके हृदयोंपर उत्तरोत्तर अधिकतासे जमाना प्रारम्भ कर दिया। जैनी लोग इससे कब बच सकते थे। उनने जो राजकीय पदवियों और पेशोंके मोहमें फंस अपनी संतानको स्कूलों और कालिजों शिक्षासे सुसंपन्न कराना शुरू करा दिया उससे हिंदु बच्चोंके साथ जो नौबत गुजरी थी वह ही धार्मिकताके विषयमें इन लोगोंके साथ भी गुजरने लगी। ये पारलौकिक और ऐहिक जैनशास्त्रसम्मत आचरणोंका पालन तो दूर रहा, जानना भी व्यर्थ समझने लगे। भारतवर्ष धर्माचरणकेलिये प्रसिद्ध है ही, बस! इसलिये इनकी धार्मिक अज्ञानता और अनाचरणता देख लोग निंदा करने लगे। निंदा का प्रचार होने से जिस आंतरंगिक भक्तिसे विवश हो लोग सांसारिक किसी प्रकार का भय और आशा न होते हुये भी एक निष्परिग्रही साधु धर्मोपदेशक पंडित का सत्कार करते हैं उस प्रकार से इनका आदर सत्कार होना भी बंद होगया। जहां कहीं जो कोई सत्कार करता वह भी दिखानेकेलिये या किसी प्रलोभन के वशीभूत हो। अब तो इन लोगों की आंखे खुलने लगीं और इनमें से कुछ एक विचक्षण बुद्धि अपना उक्त निंदाके परिमार्जनका उपाय सोचने लगे। ये लोग धीरे २ प्राकाश्यमें आ अपने भीतरी हृदय का परिचय समाजको कराने का उद्योग करने लगे और आज, प्रति दिन जिन मंदिर जा वीतराग मूर्ति के दर्शन न करने से जो निंदा लोगोंमें फैल गई या फैलती जा रही है उसका परिमार्जनस्वरूप लेख तक लिखने लगे हैं अप्रेल मासके सत्योदय और जनवरी के जैनहितैषी में उक्त अभिप्राय को पुष्ट करनेकेलिये 'जैन धर्म अनीश्वरवादी है और शंकितहृदय की शंका, ये दो लेख प्रकाशित हुये हैं आज हम उनही विषयों पर कुछ प्रकाश डालते हैं।

ईश्वरवादका लक्षण।

अनेकांत वा स्याद्वाद अथवा नय विभाग की अपेक्षा का आश्रय कर जैन धर्म एक वस्तुमें अनेक धर्म

यां एक वस्तुको नाना नामोंसे पुकार सका है और इसीलिये जो परस्पर विरुद्ध बातें है वे एक ही जगह वास्तविकताके साथ प्रत्यक्ष सिद्ध करा दी जाती है इस अखंडनीय और साक्षात् वा परंपरया सब मान्य वस्तु स्वभाव सिद्धिके प्रकार को जो नहीं मानता अथवा विपरीत अपेक्षा का आश्रय कर किसी गुणको किसी वस्तुमें किसी प्रकार मान बैठता है वह भ्रांत कहलाता है ऐसी ही व्यक्तियोंकेलिये मिथ्यादृष्टि एकांतवादी आदि रूढि शब्द जैन शास्त्र में जगह २ उपयोग में लाये जाते हैं और विस्तारके साथ इनके मान्य तत्वों की समालोचना की जाती है। सर्वथा एक नय का आश्रय कर पदार्थ सिद्धिको सत्य मानने वालोंके स्थूल भेद तीन सौ त्रेसठ हैं। उन ही में जो आत्माके जीवात्मा और परमात्मा ये दो भेद मान परमात्माको सबका प्रेरक कर्ता हर्ता और जीवात्मा को प्रेर्य कार्य हार्य मानते हैं वे ईश्वरवादी हैं। प्रसिद्ध सिद्धांत ग्रंथ गोम्मटसारजीमें इनका लक्षण जो लिखा है वह यह है——

अण्णाणी हु अणासो अप्पा तस्स य सुहं च दुक्खं च
सग्गं णिरियं गमणं सवं ईसरकयं होदि ॥ ८८० ॥
(कर्म कांड)

अर्थात् आत्मा ज्ञानरहित है अपने आप कुछ भी करने को असमर्थ है उसको जो सुख दुःख होता है वा वह जहां कहीं स्वर्ग नरकमें गमन करता है वह परमात्मा (ईश्वर) का प्रेरणासे प्रेरित हो ही करता है इस प्रकार जो मनुष्य मानते हैं ईश्वरवादी हैं।

उक्त ईश्वरवादी का जो लक्षण कहा है और उसको भ्रांतकी पंक्तिमें बिठलाया गया है वह सिर्फ एकांत वादकी कृपासे— जिस नयकी अपेक्षा ऐसा मानना चाहिये था उसकी अपेक्षासे न मान अन्य नयकी अपेक्षासे माना है और वह भी सर्वथा, इसीलिये। नहीं तो व्यवहार और निश्चय नयका आश्रयकर एक वस्तु में अनेक धर्म स्वीकार कर यदि यह अर्थ किया जाय कि संसारी आत्मा (ज्ञानावरणीय कर्मके उदयसे आवृत होनेके कारण) अज्ञानी है, (जड़ कर्म शक्तिके वशीभूत होनेके सबब) स्वयं कुछ भी करनेको असमर्थ है उसको जो कुछ भी सुख दुःख होता है वा स्वर्ग नरकमें गमन करना पड़ता है वह ईश्वर निश्चय नय से जितने जीव हैं सब ईश्वरके समान गुणी हैं इसलिये सब ईश्वर हैं और अपनी मन वचन कायकी क्रियासे बद्ध हुये कर्मोंके वशीभूत हो सुख दुःखका अनुभव करते हैं एवं स्वर्ग नरकादि गतियोंमें जाते आते हैं इसलिये) की कृपासे वा उसकी प्रेरणासे, तो कोई विरुद्धता नहीं आती। इस हिसाबसे ईश्वरवादी होना कोई किस्म की गलती नहीं है, गलती है सिर्फ नय निक्षेप की अजानकारी होनेसे सर्वथा एक प्रकार किसी वस्तुको माननेकी।

जैनहितैषीमें जो तूलतमालके साथ जैन धर्म की अनीश्वरवादिता दिखलाई गई है वह भी अनेकांत वादका विस्मरण कर, जैन शास्त्रका मूल प्राण स्याद्वाद नय को ताकमें उठाकर। नहीं तो भला "वास्तव में जैनधर्म अनीश्वरवादी है और यह उसकी अस्थि मज्जागत प्रकृति है। वह न छुपायेसे छुप सकी है और न बदलने से बदली जा सकती है। जब तक जैन धर्म और जैन विज्ञानका आमूल परिवर्तन न कर दिया जाय, तब तक उसमेंसे अनीश्वरवाद पृथक नहीं किया जा सकता।" यह कैसे लिखा जाता ? जैन धर्म को हम सर्वथा किसी एक वस्तुको एक ही धर्मात्मक माननेवाला नहीं कह सक्ते। वह कथंचित् का बिना आश्रय लिये किसी भी पदार्थ का स्वरूप वर्णन

नहीं कर सका। इसलिये जैनधर्म ईश्वर विशेषको सृष्टि कर्ता न मानता हुआ भी सर्वथा अनीश्वरवादी नहीं कहला सका।

अब रही यह बात कि जब किसी ईश्वरविशेष का या जैनशास्त्रसम्मत ईश्वरसमूह का जीवोंको सुख दुःख देने में हाथ ही नहीं है तब जो आज कल जैनी मंदिरोंको प्रतिष्ठा कर उनमें सुख प्राप्ति और दुःख नाश केलिये मूर्तियोंका पूजन करते हैं वह क्यों? उनके सामने " स्वामी जैसे बने तैसे तारो, मेरी करनी कछु न विचारो। आदि ईश्वर सृष्टि कर्तृत्व बोधक वचनों से अपनी आंतरंगिक अभिलाषा प्रगट करते हैं यह भी क्यों? और चौबीस तीर्थंकरों तथा सिद्ध गति- ईश्वरत्व को प्राप्त हुये सभी जीवात्माओंको भक्ति भावसे प्रणमन असन आह्वानन आदि करते हैं यह भी क्यों?

बहुतसे नव्य सभ्योंका उपयुक्त प्रश्नोंके उत्तर में कहना है कि-- 'मूर्तियों का पंचामृत अभिषेक, उनका आह्वानन स्थापन... .... आदि पर हिन्दुधर्म के क्रियाकांडका और ईश्वरवाद का रंग चढ़ा है।" मानो जैनियों का निजी कोई तत्त्व ही नहीं है। उनने सब इधर उधर से हो लिया है। खैर! यह मान भी लिया जाय तो क्या जिस प्रकार आज कल पद्धति जिन पूजनको है वह अयोग्य है और जैनदर्शन इसे अस्वीकार कर सका है? यह बहुत ही तहमें बैठकर विवेचनीय है।

जैन न्याय के धुरंधर विद्वान आप्त (ईश्वर) के स्वरूप की मीमांसा (आप्त-मीमांसा) और परीक्षा (आप्त-परीक्षा) करनेवाले तीक्ष्ण बुद्धि आचार्य स्वामी समंतभद्र और विद्यानंदि प्रभृति जिस समय इस भूमंडल पर थे उस समय हिंदू धर्म और उसके सृष्टिवाद का कुछ कम जोरशोर न था। उन्होंने उसी भ्रांति को दूर करनेलिये अपने २ ग्रंथोंकी रचना की थी जिनमें विस्तार के साथ समालोचित ईश्वर सृष्टि वाद के विरुद्ध युक्तियोंका खंडन उस समय और इस समयके किसी भी विद्वान से न हुआ और न हो सका है। लेकिन उन हीं आचार्योंके उक्त ग्रंथों तथा अन्य ग्रंथोंमें जो अर्हंत आदि पूज्य आत्माओंकी स्तुति कीगई है उनसे याचना की गई है उससे यह मतलब कदापि नहीं निकल सका कि उन पर सृष्टि वादका असर पड़गया था और जो कोई ऐसा पूर्वापर विरुद्ध तात्पर्य निकाले भी तो वह मिथ्या नय निक्षेपसे अनभिज्ञ होनेके कुछ हो नहा सक्ता।

चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति करनेवाले " स्वयंभूस्तोत्र ,, ग्रंथमें स्वामी समंतभद्राचार्यने लिखा है कि—

स विश्वचक्षुर्वृषभो ऽर्चितः सतां
समग्रविद्यात्मवपुर्निरंजनः।
पुनातु चेतो मम नाभिनंदनो
जिनो जितक्षुल्लकवादिशासनः॥

अर्थात् ज्ञानस्वरूप शरीरके धारक, कर्ममल रहित सज्जनों के पूज्य, अन्य समस्तवादियोंके जेता और समस्त संसारके दर्शक आदिनाथ जिन मेरे मनको पवित्र करें।

स्वामी जी इतना ही लिखकर चुप नहीं हुए हैं वे इससे भी बढ़कर आज कलके कुछ शिक्षितंमन्य और अपनेको अमर्यादित निष्पक्षपातियोंकी पंक्तिमें बैठालने के तीव्र अभिलाषुकोंको अधिक अवसर देनेके लिये कहते हैं कि "ममाय! देयाः शिवतातिमुच्चैः,, मुझे हे आर्य श्रेष्ठ कल्याण(मोक्ष)दीजिये। 'श्रेयसे जिनवृष प्रसीद नः।, हे श्रेष्ठ जिन हम पर प्रसन्न हो कल्याण करिये।

विद्यानंदिस्वामी भी इसीप्रकार लिखते हैं कि—

सुखमनघमनंतं स्वात्मसंस्थं महात्मन्

जिन ! भवतु महत्या केवलश्रीविभूत्या ॥३०॥

अर्थात् मुझे केवलज्ञानके साथ होनेवाली लक्ष्मी की विभूतिके साथ २ अपनी आत्मामें अच्छी तरह स्थिर रहने वाला अनंत निरवद्य सुख प्राप्त हो ।

यह तो दृष्टांत ऐसे धुरंधर नैयायिकोंके हुये जिनने अपनी बहुतसी शक्ति ईश्वरके माथेसे सृष्टि कर्तृत्वके मिथ्या कलंकको धोनेमें ही खर्च कर दी थी और उसमें वे बहुत कुछ सफलप्रयत्न भी हुये थे। अब हम उनही आचार्यके वचनोंका प्रमाण देकर सिद्ध करते हैं कि जिन मूर्तिका स्तवन आदि स्वयं महावीर स्वामी द्वारा उपदिष्ट भक्तिमार्ग है ।

विद्यानंदिस्वामी अपने पात्रकेशरी स्तोत्रमें लिखते हैं कि —

त्वया त्वदुपदेशकारिपुरुषेण वा केनचित्

कथंचिदुपदिश्यते स्म जिन ! चैत्यदानक्रिया ।

अनाशकविधिश्च केशपरिलुंचनं चाथवा

श्रुतादनिधनात्मकादधिगतं प्रमाणांतरात् ॥

अर्थात् चैत्य—मूर्ति और चैत्यालय—जिनमंदिर दान, उपवासविधि, और केशलोंच आदि क्रियायें तुमने अथवा तुम्हारे उपदेशको प्राणियोंतक पहुचानें वाले गणधरादिक किन्हीं-पुरुषों नें कथंचित्-किसी नयका आश्रयकर उपदेशी हैं अथवा द्रव्यरूपसे कभी नष्ट न होने वाले (अनादि निधन) आगमसे जानली है ।

इन पंक्तियोंसे स्पष्ट सिद्ध होता है कि जो कुछ भक्ति मार्ग जैनियोंमें प्रचलित है उसका हिंदुओंसे आगमन नहीं हुआ बल्कि जैनों से ही हिंदुओं ने लिया। इस बातको बड़े २ अजैन ऐतिहासिक विद्वान मानते हैं और आज तक जितने भी प्राचीन मंदिर मूर्ति आदि मूर्तिपूजनके साधन भूमिके अंतर्भाग से निकले हैं उनमें सबसे प्राचीन जैनोंके ही हैं। यही कारण है कि बहुतसे लोगों के मुखसे मूर्तिपूजाके आदि प्रचारक जैन हैं ऐसा अक्सर सुननेमें आता है। साधु जिनविजयजी ने भी जैनहितैषीके गत किसी अंकमें यह स्वीकार किया है ।

यहां तक तो यह बतलाया गया कि जैनी अपने ईश्वरसमूहको रागद्वेषरहित सृष्टिमें कुछ भी दखल न देने वाला मानते हुये भी उसका स्तवन पूजन आदि करना स्वीकार करते हैं अब रहा यह बात कि जब उसका कुछ सृष्टिकर्तापनेमें हाथ ही नही है, वह निंदा करनेसे अप्रसन्न हो अनिष्ट नही कर सकता और प्रशंसा चापलूसी करनेसे कुछ प्रसन्न हो दे नही सकता तब उससे क्यों तो किसी प्रकारकी याचना की जाय और क्यों उसको बड़े २ अलीसान मंदिर बनवा ठाठ बाटके साथ मूर्तिका प्रतिष्ठापन किया जाय एवं अन्य भी यत्परो नास्ति खुशामद की कार्यवाई की जाय तो उसका उत्तर इस प्रकार है—

संसारी आत्मा अनादि कालसे ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मोंसे बद्ध होनेके कारण मूर्तीक है, परतंत्र है और अपने स्वभावको विभावरूपसे धारण किये हुये हैं। हर द्रव्यकी पर्याय सर्वदा पलटती रहती है इस नियम के अनुसार इसकी पर्याय भी पलटती रहती है और वह स्थूलपने शुभ अशुभ और शुद्धरूपसे कोई न कोई हुआ करती है इन पर्यायोंके होनेमें अंतरंग और बहिरंग अनेक कारण है एवं अशुभ पर्यायरूप परणत होनेके संसारमें अधिकतम कारण मिलनेसे अशुभ पर्याय ही अधिक होती है और शुभ तथा शुद्ध बहुत ही कम। शास्त्रमें इन उपयोगोंका, पर्यायोंका लक्षण क्रमशः कहा है—

जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तधेव अणगारे।
जीवे य साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स ॥६५॥
विसयकसाओगाढो दुस्सुदि दुच्चित्तदुट्ठगोट्ठिजुदो।
उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो ॥
(प्रवचनसार)

अर्थात् — जो घातिया कर्म रहित अर्हंत देव और समस्त कर्म मल रहित सिद्ध गण एवं अन्य आचार्य उपाध्याय व साधु गणको जानता है देखता है और सब प्राणियों पर जो दया भाव रखता है उस के शुभ उपयोग है।

इंद्रिय विषय और क्रोधादि कषायोंसे जिसका आत्मा लिप्त है दुःशास्त्र, दुर्ध्यान, दुर्जन संगतिमें जिसका मन लगारहता है, हिंसादि पापोंके आच-रण करनेमें सदा उद्यमी रहता है और जो मिथ्या मार्गपर चलता है वह अशुभ उपयोगवाला है।

इन दोनो प्रकारके भावोंसे जो भिन्न शुद्ध आत्माके स्वरूपका विचार करनेवाला है वह शुद्ध उपयोगी है।

उपर्युक्त उपयोगके भेद और उनके लक्षणोंसे हमारे पाठकोंने भली भांति जानलिया होगा कि संसारी आत्माकी जो तीन पर्यायें होती हैं उनमेंसे शुद्धता बिना किसी परपदार्थ की अपेक्षा कर स्वरूपके चिंतन से ही होती है शेष दो शुभ अशुभ पर पदार्थको सहा-यता से होती है और वह परपदार्थ अचेतन जड़ है जिसमें स्वयं पर्याय पलटाने की इच्छाका सद्भाव तो नहीं है पर चेतन—संसारी आत्मा पर अपना असर डाल उसको सुख दु:ख पहुंचानेमें कारण हो ही जाता है क्योंकि यह बात प्रतिदिन अनुभवमें आती है और अनेक दृष्टान्त देखनेसे उसकी सचाईका गहरा सबूत भी मिलता है एवं आज कलकी साइंससे भी सिद्ध होती है कि—

प्रत्येक पुद्गल पदार्थ अन्य पुद्गल पदार्थ व संसारी आत्मापर अपना स्थूल और सूक्ष्म असर डालता ही है जैसे बिजलीके सम्बन्धसे एक शब्द लाखों मीलपर पहुंच सकता है बिजलीसे मोटरादि गाड़ियां कैसी तीव्र गतिसे चलती है? भाफसे रैलगाड़ी लाखोंमन बोझ को लाखों मील तक अल्पदिनोंमें पहुंचा देती है यन्त्रसे कठपुतले भी चलने लगते हैं। यह तो स्थूल असर रहा अब सूक्ष्म प्रभाव भी देखिये-एक दीपकके जला देनेपर वहांके परमाणु प्रकाशरूपमें परिणत हो जाते हैं रात्रिमें दीपक न होने पर वे ही परमाणु अन्धकाररूपमें परिणत हो जाते हैं आदि असंख्य दृष्टा-न्तोंसे पुद्गलका पुद्गलके प्रति असरको आप निश्चय करसकते हैं जिससे यह जैनसिद्धान्त भली भांति पुष्ट होता है कि एक परमाणु एकसमयमें चौदह राजूतक गमन कर सकता है। अस्तु अब चैतन्य शरीरको त-रफ दृष्टि लेजाइये कई शारीरिक रोग ऐसे हैं जिनका इलाज़ केवल मालिशसे किया जाता है और वे मा-लिशसे दूर हो जाते हैं तो वहां पर देखिये एक निरोग शरीरके सम्बन्धसे अन्य रोगी शरीर भी निरोग हो जाता है एक मनुष्यको बीचमें खड़ा करके उसके चारो तरफ वाले यदि दश मनुष्य अपने हाथोंको ५ मिनट रगड़ कर उस बीच वाले मनुष्यके मस्तकपर लगादें तो उस मनुष्यके शरीरमें चक्कर आजायगा और बेहोश हो जायगा रोगी मनुष्यके शरीरका यदि नीरोगी मनुष्य स्पर्श करते रहें तो उनकी नीरोगता उसके शरीरमें पहुंच जायगी और उसके रोगके अंश उन मनुष्योंके शरीरमें पहुंच जायेंगे आदि दृष्टान्तोंसे पाठकों को मालूम होगया होगा कि चैतन्य शरीर अन्य शरीरके प्रति अपना प्रभाव डालते हैं।

अब नेत्रका असर देखिये-यदि कोई रुग्ण पुरुष तन्दु-

सन्त पुरुषको अथवा उनके फोटोको देखता रहे तो वह नीरोग हो जाता है एक पुरुष यदि किसी सुन्दर अवयव वाली कामिनीको देखे तो उसपर कामदेव सवार हो जाता है शान्त मुनिके दर्शनसे मनुष्य शान्ति रसमें डूब जाता है यहां तककि तीव्र कषायवाले तिर्यञ्च भी शान्त हो जाते हैं एक दुष्ट मनुष्य यदि किसीके शरीरको बुरी दृष्टिसे देखले तो उसके शरीरमें कोई न कोई रोग आजाता है यहां तक देखागया है कि मनुष्य की दृष्टिसे पत्थर तक फट जाते हैं इन बातोंसे नेत्रेन्द्रियका अचिन्त्य असर ज्ञात होता है। वचनकी शक्ति जरा विचारिये एक मनुष्य किसी सुरीले गानेसे लाखो तिर्यञ्चों तकको वशमें करलेता है यह वचनकी ही अचिन्त्य शक्ति है कि एक व्यक्ति लाखो मनुष्योंको रुला सक्ता है तथा प्रसन्न कर सक्ता है और किसी कार्यकेलिये उत्तेजित कर सक्ता है। यदि कोई जितेन्द्रिय उन्नतात्मा किसी व्यक्तिका बुरा अथवा भला कहदे तो उस व्यक्तिका वैसा ही हो जाय प्रसन्न होकर यदि गुरु शिष्यको आशीर्वाद दे दे तो वह शिष्य तदनुसार विद्वान हो सक्ता है ये सब बातें विज्ञानसे सिद्ध हो चुकी हैं और आप भी इन बातों को अनुभवद्वारा जानते ही हैं और शंका होनेपर जान भी सक्ते हैं।

अब मैं आपके मानसिक विचारोंको मानसिक भावनाकी ओर आकर्षित करता हूं पश्चात अपने प्रकृत विषय पर आऊंगा। मानसिक भावना वास्तवमें सबसे प्रबल इन्द्रियोंको अपने २ विषयमें चलानेके-लिये एक असाधारण यंत्र है। पुण्य पापादि का मुख्य हेतु मानसिक व्यवहार ही है इन्द्रिय पराजयमें मनका पराजय ही सबसे कठिन है मौनी निश्चल बैठा हुआ एक पुरुष अपनी शुभमनोभावनासे अपने प्रिय मित्र और पुत्रादिकी सुख वृद्धि कर देता है अपनी मानसिक भावनाको यदि कोई मनुष्य केवल अपने रोगपर ही लगादे तो धीरे २ उसका रोग दूर हो जाता है मौनी दूसरोंके ऊपर अपना अचिन्त्य प्रभाव डालता है देशका कोई नेता यदि कारागारमें भेजदिया जाता है तो उसको मानसिक भावना ही से राजनैतिक कार्य उसके स्वातंत्र्य समय से दश गुणे हो निकलते हैं स्त्री यदि अपने पतिको शुभभावनासे भोजन कराती है तो उसका परिपाक बहुत अच्छा होता है उसी भोजनको यदि विकृत मनसे वह करावे तो वही भोजन उस परिपाकको न करके विकार उत्पन्न कर देता है। गूढ तत्वका पता लगानेकेलिये मानसिक भावना ही काम देती है। बाबर का लड़का हुमायूं जब अधिक बीमार होगया था तब बाबरने अपनी मानसिक भावनाको ऐसा कियाथा कि मेरा लड़का चंगा हो जाय और मैं बीमार होजाऊं जिसका फल यही हुआ हुमायूं स्वस्थ हो गया और बाबर बीमार हो गया प्रत्येक रोगकी चिकित्सा केवल मानसिक भावनासे हो सकी है यह बात अनुभूत है तथा विज्ञान सम्मत है इसकी साक्षी आपको योग चिकित्सा नामक पुस्तक देती है अस्तु इन सारी बातोंसे निश्चय होता है कि मानसिक भावना अपना अचिन्त्य प्रभाव चेतन अचेतन समीपस्थ तथा दूरस्थ पदार्थों पर डालता है।

इस प्रकार अचेतन और चेतन शक्तिसे मिश्रित चेतनाचेतन पदार्थों का एक दूसरे पर विलक्षण प्रभाव पड़नेसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि किसी पदार्थको पर्याय पलटनेमें पलटानेवालेकी इच्छा और तदनुरूप उसकी प्रवृत्तिका कोई कार्यकारण संबंध नहीं है इच्छा पूर्वक ही समस्त पदार्थों की पर्यायें हुआ करें तो मेघों का बर्सना, गर्जना आदि भी किसी न किसीकी इच्छापूर्वक किया हुआ होना चाहिये और ऐसा होनेपर

संसारस्थपदार्थोंको पर्यायोंका प्रवर्तक एक चेतनस्वरूप व्यक्ति विशेष ही सिद्ध होजाता है जिसका अन्य लोगोंने ईश्वर नाम रख रक्खा है। जैनशास्त्रोंमें जो संसारके प्रवर्तक किसी ईश्वर विशेषका खंडन किया है उसमें सबसे प्रबल दलील और उसका जवाब यही है—पहिला कहना है कि—बिना इच्छा और तत्पूर्वक प्रयत्न के कोई कार्य नहीं हो सकता अतएव वृक्ष पर्वत आदि बडे २ कार्योंके उत्पन्न करनेके इच्छुक किसी व्यक्ति विशेष का सद्भाव जरूर है दूसरे (जैनी वा जो सृष्टि कर्ता नहीं मानते थे) कहते हैं कि बिना इच्छा और तदनुसार प्रयत्नके भी निमित्त मिलजाने पर कार्य हो ही जाते हैं जैसा कि हम पहिले दिखा आये हैं एवं इसी पत्रके १—२ रे अंक में न्यायाचार्य पं० माणिकचंद्रजीने विस्तारके साथ सिद्ध किया है। और जब यह बात है कि बिना इच्छाके भी एक पदार्थकी पर्याय दूसरे पदार्थका निमित्त मिलजाने पर पलट जाया करती है तब यह भी जरूरी नहीं है कि अर्हंत सिद्ध आदि जैन शास्त्र सम्मत ईश्वर बिना इच्छाके भी सुख दुःख देने में कारण न हो सकें। स्वामी समंतभद्राचार्यने इसी शंकाको उठाते हुये क्या ही बढ़िया स्वयंभूस्तोत्रमें लिखा है कि—

> न पूजयार्थस्त्वयि वीतरागे
> न निंदया नाथ! विवांतवैरे।
> तथापि ते पुण्यगुणस्मृतिर्नः
> पुनातु चित्तं दुरितांजनेभ्यः ॥ ५७ ॥

अर्थात् तुम्हारे राग नही है इसलिये तुम स्तुति करनेसे प्रसन्न नहीं हो सक्ते, द्वेष नहीं है इसलिये निंदा करनेसे नाराज नही हो सक्ते तो भी तुम्हारा जो स्तुति करते हैं वह इसलिये कि पवित्र गुणोंका स्मरण हमें दोषोंसे बचावे।

इन पंक्तियों से भी यही सिद्ध होता है जिनेंद्र भगवान यद्यपि जीवोंको सुख दुःख देनेकी इच्छासे रहित हैं तो भी उनके गुण स्मरणमें जो मानसिक भावना लगाई जाती है उससे सुख की प्राप्ति हो ही जाती है। इसी अभिप्रायको श्रीविद्यानंद स्वामी पात्रकेशरी स्तोत्रमें और भी स्पष्ट करते हैं कि—

> ददास्यनुपमं सुखं स्तुतिपरेष्वतुष्यन्नपि
> क्षिपस्यकुपितोऽपि च ध्रुवमसूयकान् दुर्गतौ।
> न चेश! परमेष्ठिता तव विरुध्यते यद्भवान्
> न कुप्यति न तुष्यति प्रकृतिमाश्रितो मध्यमां॥

"हे देव! यद्यपि आप स्तुति करनेवाले लोगों पर संतुष्ट नहीं होते, तथापि उन्हें उपमारहित मोक्षरूप सुख देते ही हैं जो आपके साथ ईर्षा करते हैं—आपके गुणोंको सहन नहीं करसकते उनपर आप कभी क्रोध नहीं करते तथापि उन्हें निश्चयसे दुर्गतिमें जानेकेलिये प्रेरणा करते ही हैं। हे ईश! यद्यपि आप इसप्रकार निग्रह अनुग्रह करते हैं तथापि आपके परमेष्ठीपनेमें कोई किसी तरहका विरोध नहीं आता। क्योंकि आप न तो किसीसे क्रोध करते हैं, न किसीपर संतुष्ट होते हैं। केवल मध्यस्थरूप अपने स्वभावको धारण करते हैं।"

स्वामीजीके इस प्रकार कहनेका भी अभिप्राय यही है कि इच्छा न होनेसे (राग द्वेष न होनेके कारण) सुख दुःख भगवानको नहीं होते परंतु उन (भगवान) की प्रशंसा निंदा करनेसे संसारी जीवोंको वे (सुख दुःख) होते ही है। कारण हमारा लिखा पूर्वोक्त ही है।

इसीप्रकार अन्य बहुतसे आचार्योंने स्तुतिकी है और प्रायः उनमें वीतराग जिनका स्मरण उक्त कारणसे ही निमित्त माना है जिनको विशेष देखना हो

वे एकी भाव स्तोत्र आदिमें भली भांति देख सकते हैं।

हमारे यहां तकके अवतरणसे यह भली भांति सिद्ध होता है कि जैनहितैषीकी यह बात "पिछले जैन साहित्यमें तो कहीं कहीं भक्तिगंगा ऐसी तेजीसे बही है कि उसके प्रवाहमें बेचारे अनीश्वरवादकी कल्पना ही नहीं होती,, सर्वथा मिथ्या है हम कहते हैं कि आपने जो दृष्टान्त में "स्वामी जैसे बने तैसे तारो मेरी करनी कछु न विचारो" यह लिखा है उसे जैन दर्शन यद्यपि ईश्वरका सृष्टिमें कुछ भी दखल नहीं स्वीकार करता तो भी सच्चा समझता है। इसप्रकारकी भक्ति गंगा पिछले जैन साहित्यमें नहीं बल्कि ऊपर दिये हुये प्रमाणों द्वारा सर्व प्रथमके जैन साहित्यमें भी बही है, सिद्ध होता है। स्वामी विद्यानन्द के और सबही जैनाचार्यों के मतसे उक्त रीतिद्वारा वा उससे भी बढी बढी भक्ति द्वारा अपनी पवित्रताकी याचना करना स्वयं महावीरस्वामी वा जितने भी सर्वज्ञ हुये हैं वा होंगे उन सब द्वारा आज्ञापित वा सम्मत है। यही नहीं बल्कि कर्म सिद्धान्त और आज कलके वैज्ञानिक मत द्वारा भी अनुमोदित और प्रत्यक्ष सिद्ध सत्य है। वैज्ञानिक (साईंस) रीतिसे जिस प्रकार अचेतनका व चेतनका परस्पर असर पड़ता है यह हम स्पष्टतया दिखला चुके हैं अब कर्मसिद्धान्त द्वारा जैनशास्त्र सम्मत ईश्वर इच्छारहित होने परभी संसारी जीवोंको सुख दुःख देनेमें कारण हो सकता है या नहीं यह बतलाते हैं।

पहिले जीवात्माकी पर्यायोंका वर्णन करते हुये उसकी शुभ अशुभ उपयोग मयी पर्यायोंका उल्लेख लक्षणसहित कर आये हैं उन शुभ अशुभ के होनेमें कारण मन वचन काय की प्रवृत्ति है। मन वचन काय की जैसी प्रवृत्ति होगी उसके अनुसार कर्मोंका आस्रव होगा अतः यह बात सिद्ध हुई कि शुभ कर्मोंका आस्रव हो इसलिये शुभ और अशुभ कर्मोंका आगमन हो अतः अशुभ मन वचन कायकी प्रवृत्तिकेलिये प्रयत्न करना चाहिये और जिसको किसी भी कर्मके आस्रव की इच्छा न हो उसे शुद्ध आत्माके स्वरूपका चिंतवन करना चाहिये परंतु ऐसा होना बहुत ही कठिन बल्कि आज कल असंभव सरीखा है इस लिये आत्माकी प्रवृत्ति अशुभ कर्म की जगह शुभमें लगजाय इसकेलिये शुभ उपयोग रूप पर्यायमें कारण जो पहिले जिनेन्द्र भगवान के गुण आदिका स्मरण एक गाथा द्वारा बतला आये हैं उनका होना जरूरी है वीतराग देवके स्वरूपका चिंतवन और अपने शुद्ध स्वरूप का चिंतवन निश्चय नय से समस्त आत्माओंके स्वरूपमें समानता होनेके कारण एक सरीखा आनन्द प्रदान करनेवाला है अंतर सिर्फ यही रहता है कि वज्रवृषभनाराचसंहनन धारी पुरुषका ध्यान भी एक अंतर्मुहूर्त्तसे ज्यादा किसी एक पदार्थ पर नहीं ठहर सकता इस लिये जिनने शुद्ध स्वरूप प्राप्त करलिया है उनकी प्रशंसा, स्तुति आदि कर अपने परिणाम उस स्वरूप प्राप्ति की तरफ उन्मुख किये जाते हैं।

षष्ठ गुण स्थानवर्ती मुनिको भी षडावश्यकमें स्तव वंदना आदि करने का विधान कहा है। यह भी इसी उद्देश्य को लिये हुये है कि शुद्ध स्वरूपीको वे अपना आदर्श मानें उन्हें ही संसारमें सबसे श्रेष्ठ समझें और वार २ उनके गुणोंकी प्रशंसा कर तद्नुरूप स्वयं हो जानेकी कोशिश करें। इस प्रकारकी मानसिक भावना और अहर्निश चिंता होते २ वचन कायकी प्रवृत्ति भी उसी स्वरूपकी प्राप्ति करनेमें लगजाती है और यही कारण है कि एक मुनि कई २ महीनों के उपवास कर डालता है मृत्युदायी उपसर्ग आजाने पर भी अपने

ध्येय साम्यभाव और स्वरूप चिंतनसे नहीं चिगता।

गृहस्थावस्थामें सांसारिक अगणित झंझट लगे रहते हैं उनसे प्रतिकूल हो कुछ समयके वास्ते शुद्ध आत्मस्वरूप वा जिन्होंने स्वरूप प्राप्त कर लिया है उनके रूपका विचार करना बहुत आवश्यक होजाता है। एक वस्तुकी सिद्धिमें अनेक कारणों की आवश्यकता पड़ा करती है इसलिये पूर्वोक्त आत्मरूपके चिंतनमें वाह्य कारण जिनमूर्ति जिनमंदिर आदिकी भी आवश्यकता होती है और इसीलिये उनके प्रतिष्ठापन निर्मापण आदिका ईंट चूना पत्थर आदिके संग्रह करने आदिमें जीवोंकी हिंसा होते हुये भी शास्त्रोंमें जोरके साथ विधान है। स्वामी समंतभद्राचार्यने इसी मन्तव्यका हृदयंगम कर स्वयंभू स्तोत्रमें ५८ वां श्लोक लिखा है।

> पूज्यं जिनं त्वार्चयतो जनस्य
>
> सावद्यलेशो बहुपुण्यराशौ।
>
> दोषाय नालं कणिका विषस्य
>
> न दूषिका शीतशिवाम्बुराशौ॥ ५८॥

अर्थात् जिस प्रकार बहुतसे ठंडे अमृतमें थोड़ासा विष कुछ अपना प्रभाव नहीं फैला सकता उसी प्रकार जिनेन्द्र भगवान की पूजा करनेमें जो थोड़ासा पाप होता है वह पूजकके पुण्य समूहमें कुछ दोष पैदा नहीं करता।

इस प्रकार कर्म सिद्धान्त के अनुसार वीतराग देवका पूजन अर्चन और उनसे अपने शुद्ध स्वरूपका याचन किसी प्रकार भी विफल नहीं जाता। बल्कि जो लोग ईश्वरको सृष्टि कर्ता मानते हैं उनके मतमें अर्चन याचन आदि एक तरहसे ठीक नहीं बनता क्योंकि इच्छावान ईश्वर अपने मनके माफिक स्तुति करने पर तो भक्तको सुख देगा और थोड़ी या प्रतिकूल प्रशंसा करनेसे दुःख या अल्प सुख। परंतु ईश्वरकी इच्छाका कुछ भी दुःख सुखमें दखल न माननेवाले सृष्टिकर्तृत्व गुणके प्रतिपक्षी जैनियोंके मतमें ईश्वरका अर्चन याचन बहुत ही अच्छी तरह संघटित होता है। वे अपने परिणामोंकी निर्मलता समलता पर सुख दुःखका उदय होना मानते हैं और वह जितनी भी गहरी भक्तिके साथ शुद्ध स्वरूप परमात्माके गुणोंका उस द्वारा वीतरागताके सहायक आचरित क्रियाओंका स्मरण किया जाता है उतनी ही विशेषताके साथ निर्मलताकी प्राप्ति होती है एवं तदनुसार अर्चन पूजनके समय जो सुख प्राप्त होता है वह तो सबकी प्रत्यक्ष ही है उसके सिवा उस समय बद्ध हुये शुभ कार्माण परमाणुओंके उदयमें आनेपर भविष्यमें भी सुख मिलता है यह निःसंदेह है। इस प्रकार कर्म सिद्धान्त और आधुनिक विज्ञान (साइंस) द्वारा भली भांति सिद्ध जैन भक्ति मार्ग को न समझ कर नाना तरह की असंगत और स्व बुद्धि कल्पित कल्पनाओं का उठाना और बड़े घमण्डके साथ पड़ौसी ईश्वर सृष्टिवादी थे अतः जैनियों पर भी उनकी छाप पड़नेसे उनने मंदिर आदिका निर्माण करना पूजा पाठ करना आरंभ करदिया, आदि कहना कितनी बुद्धिमत्ता का काम है सो हम अपने समझदार पाठकों पर ही छोड़ देते हैं और एकवार हिन्दुओंके मंदिरोंपर पंडा (जाति विशेष) ओं का एकाधिपत्य, अर्चित द्रव्यका स्वात्मीकरण आदि एवं जैनियोंके मंदिरोंमें देवद्रव्य आदिका सर्वसाधारणके उपकारार्थ विसर्गीकरण, एक पैसा भी हजम करना महादुःखद, सर्वत्र, शास्त्रभंडार, प्रतिव्यक्तिका प्रतिदिन अष्ट द्रव्यसे नियमित पूजन अर्चन आदि प्रायः समस्त ही परस्पर की विभिन्न क्रियाओं पर ध्यान देनेका आग्रह करते हैं।

हिंदुओंके मंदिर जबकि ब्राह्मणोंके निवास स्वरूप हैं तब जैनियोंके मंदिर तीर्थंकरोंके उपदेश गृह (समवसरण) की नकल हैं। स्त्री पुरुष अपने २ उचित गृहमें बैठकर एक साथ धर्मोपदेश सुनते हैं। प्रति दिन सामायिक आलोचना प्रतिक्रमणादि भी भिन्न प्रणालीसे करते हैं। स्तोत्रोंमें भी बहुत बडा अंतर है हिंदुगण जबकि असुरोंका बध, गोपियोंका झगडा, स्वर्गका संचालन आदि रागद्वेष बातों को याद कर अपने ईश्वरकी तारीफ बखानते हैं तब जैनियोंके स्तोत्रों में वीतरागताकी साधक क्रियायोंका घोरातिघोर उपसर्ग सहकर भी आत्मध्यान की निश्चलताका और अन्य २ स्वाभाविक अनंत ज्ञानादि आत्मिक गुणोंकी उत्कर्षताका वर्णन रहता है। सादृश्य यदि किसी अंशमें करसकते हैं तो यही कि हिंदु ऐहिक सुखोंकी भी याचना करते हैं और जैनी पारलौकिक—मोक्ष सुख की, सोभी हमारे परिणाम शुद्ध होने पर वह मिलेगा ऐसी आशाकर। बस! इतने मात्रसे ही यदि कोई हिंदुओं की छाप पडना बतलावे तो उसकी बुद्धिकी बलिहारी है।

हां! एक बातहैं और वहकि हमारे बहुतसे भाई निदान पूर्वक आजकल पूजन करते हैं सो वास्तवमें—अनुचित है। शास्त्रोंमें भी इस ढंगसे पूजन करनेको हेय कहा है और प्रत्येक जैनशास्त्रका विद्वान भी इसे बुरा ही कहता है। परंतु इस प्रकार कुछ अज्ञानी जैनकुलमें उपजे मनुष्योंद्वारा पूजन होते देख यह नहीं कह सकते कि जैनियोंने ईश्वरवादका अनुकरण किया क्योंकि जैना सच्चा वही है जो जैनशास्त्र प्रतिपादित देव शास्त्र गुरु और गृहस्थके षडावश्यकोंका स्वरूप समझै एवं आजकलके या पहिलेके जितने भी शास्त्रज्ञ जैनी हैं वा हुये हैं वे कदापि हिंदुओंके समान ईश्वरवादी नहीं है।

अंतमें हम अपने भाइयोंको यह संकेत कर कि—"आज कल भौतिक (युरोपीय) विद्याका प्रचार अधिकताके साथ हो रहा है, उसके प्रेमी नाना तरहके लालचों और वाक्छलों द्वारा भारतकी आध्यात्मिक सभ्यताकी नींव उखाडनेका प्रयत्न कर रहे हैं इसलिये अपने आचार्योंके शास्त्रोंका खूब मननके साथ आप अर्थ विचारलें और तब कहीं किसीकी विपरीत बातका विश्वास करें।" विश्राम लेते हैं।

विचित्र समाचार की विरसता।

कलकत्ता तथा अन्य बहुतसी जगहकी जैन पंचायतोंने सत्योदय जैनहितैषी और ज्ञातिप्रबोधक जैन धर्मके विरुद्ध लेख छापते हैं इसलिये उन्हें जैन पत्र समझकर पढने तथा खरीदनेकी मनाईका प्रस्ताव पास किया है। इस कारण अपने स्वार्थमें हानि देख सत्योदयके संचालक बुरी तरह खफा हुये हैं। उन्होंने इसे अपनी माया प्रकट हो जानेके भयसे अप्रेल १९२०के अंकमें उक्त प्रस्तावको पंचायतोंकी कमजोरीका फल बतलाया है परंतु जो लोग तहमें पैठकर सब बातोंको पढते जानते हैं उनकी दृष्टिमें यह प्रस्ताव कमजोरी जाहिर नहीं करता है जैसा कि आपने लिखा है आपने उद्भट सेनापर विजय नहीं पाया है सिवाय ऋषि मुनि पूर्वपुरुषोंको गालीगलौज तथा ऋषिप्रणीत ग्रंथोंपर कुठाराघातके कोई बहादुरीका काम नहीं किया है, कोई तीर्थ नहीं चलाया है और सिवाय स्वयं जैनधर्मसे श्रद्धान भ्रष्ट होके और बचे खुचे जैनियोंको भ्रष्टकरनेके म

कोई सदुपदेशद्वारा दो चार हजार जैनधर्मे श्रद्धालु बनाकर जैनसमाजकी उन्नतिकी है जो समाज डरै किन्तु यह प्रस्ताव सभाने इसलिये पास किया है कि सत्योदय जातिप्रबोधक और जैनहितैषी तीनों पत्रोंके सम्पादक श्री १०८ नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती जिनसेन अकलङ्कदेव समन्तभद्र प्रमुख प्राय सबही मुनि श्रेष्ठ महानुभावोंके वचनोंपर कुठाराघातकर सबकी हंसी उड़ाते हुये जैनधर्मका अंशमात्र हृदयमें न रख करभी अपनेको सत्यवक्ता और सत्यके खोजी बतलाते हैं अपने मुह मियामिट्ठू बन जैनधर्मकी जड़ काटते हैं और बाह्यमें रंगरंजित बनावटी मिलवन जैनधर्मी बनहम सत्यासत्यका निर्णय करते हैं सत्यकी खोजकरते हैं इत्यादि मोटे २ आश्वासन देते हैं। जिससे समाजके भोले अज्ञ भाई ठगे जारहे हैं एवं जैनधर्मियोंसे ही पत्रों द्वारा पुस्तकोंद्वारा सहस्राधीश लक्षाधीश बन उन्हीं की जड़काटते हुये कृतघ्नताका प्रगटपरिचय देतेहुये भी जैनत्वकी तथा सत्यकी पताका उडातेहैं और जैन समाजको धोखा देकर ठगरहेहैं सो आप लोगोंसे समाज सचेत हो जाय न कि कमजोरीसे। यह सत्यकी अग्नि को कपड़ेमें छिपानेका प्रयत्न नहीहै किन्तु असत्य काष्ठ भस्मकरनेका तथा जैसा देवो वैसी पूजाका प्रयत्न है।

आप लोग इस बातका अभिमान रखते है कि हमारे मनमें जो आजाता है सो ही लिख मारते हैं या आचार्य हो या मुनि हो या चाहे तीर्थंकर क्यों न हों वचनमें दरिद्रता क्यों? चाहे जिसे झूठा बतादिया गालियां दे डालीं सो इस प्रकार (रथ्या पुरुष) रास्तेगीर के कुवाक्योंसे किसी सत्पुरुषका बिगाड़ सुधार नही हो सका, सूर्य पर धूल फेकनेसे सूर्य मलिन नही होता किन्तु फेंकनेवालोंके मुखमें ही धूल भर जाती है जिन जैनसिद्धान्तके अकाट्य तत्त्वोंका पट दर्शन वादियोंने तथा जैनाभासोंने एकांश भी खंडन न कर पाया उन तात्त्विकसिद्धान्तोंका तुम्हारी कुयुक्तियों द्वारा क्या खंडन हो सकता है? भण्ड वचनोंके द्वारा उन साक्षाद्देव अकलङ्कदेव सदृशोंके वचनों पर पानी फेरनेका साहस दु:साहस है।

आपने जो गोम्मटसारके पाठियोंको तोता बतलाया है ब्रह्मचारियोंको हस्तमैथुनक्रियाकुशल बनलाकर गालियां दी हैं और प्रतिष्ठापाठादि कर्ता आचार्यों पर तो और भी अधिक असभ्यता बतलाई है सो ये सब जन्मपत्रियां आपलोगोंकी हमलोगोंके पास रक्खी हैं आपलोगोंके मान प्रतिष्ठाके स्वरूपका तथा दुर्मद विद्याध्येतृत्वरूप धर्मको खूबही दिखला रहा है। क्या इसी तरहसे अकलंकदेव सदृश महानुभावोंके वचनोंपर विजयपताका फहरानेका साहस कर रहे हैं। और अपनेको निडर होनेकी घोषणा करते हैं?

सत्यासत्यका निर्णय वहांपर होता है जहां आगम अनुमान प्रत्यक्षादिप्रमाण द्वारा पदार्थ विवेचन किया जाय सो तो आपलोग करते नहीं। आगमको तो आप ताखमें रखते हैं क्योंकि उनके प्रणेता सब ही आचार्योंके माथे असत्यका कलंक मढते हैं और अन्य प्रमाणों द्वारा विद्वानोंने सन्तोष प्रद उत्तर दिया है उसपर आचार्योंके बाधा वश विचार करनेका कष्ट नहीं उठाते। अब बतलाओ सत्यासत्यका निर्णय कहांसे हो? जिनके हृदयमें त्रिलोकविजय चाहनेका अभिमान रूप गुव्वर (गोबर) भरा हुआ है वहां सत्यासत्य निर्णय कदापि नही होसक्ता जो शिष्य उद्दण्डतासे गुरुके हितरूप वाक्योंको नही मानता उसपर शिक्षाका असर नही होता और वही शिष्य गुरुकी अवहेलना तथा अपमान करता है इसलिये जब आपलोग उन उप-

कारिकाकार्यचिराभ्यसित योगियोंकी अवहेलना और अपमान करने लगे तब आपके हृदयमें उन वचनोंकी तथा तद्वाच्य जैनधर्मकी कोई श्रद्धा नहीं, जब जैन धर्मकी श्रद्धा नहीं तब जैनधर्मी नहीं फिर जैनधर्मकी ओटमें जैनसमाजको ठगना यह नीचताका कार्य है इस घृणित कार्यसे आपलोगोंको भी बचना है इसलिये यह प्रस्ताव कमजोरीसे नहीं किन्तु स्वपरहितार्थ है। यहांपर कोई शंका करै कि हम समस्त वचनोंको खंडित नहीं करते किन्तु जो असङ्गत मालूमहोते हैं उनको खंडित करते हैं मित्रवर सा भी नहीं, जिसका एक वाक्य असंगत गिना जाता है वह समस्त ही असंगत समझा जाता है दूसरे जिस पुरुषकी दश बातें प्रमाणीक होती हैं और एक बात समझमें नहीं आती वहां उसको गालियां नहीं दी जातीं। इससे जैनविद्वानोंने तथा समाजके लोगोंने अच्छीतरह ताड़ पर ताड़ लिया है कि आपके हृदयमें जैनधर्मका अंश भी नहीं है तब आप जैन धर्मका तथा सत्यका जामा उतार डालिये खुल्लमखुल्ले मैदानमें आजाइये एक अपने विकास सिद्धान्त नवीन फेसनका जुदा दर्शनशास्त्र बनाकर स्वमत स्थापन कीजिये क्योंकि जबतक कोई पुरुष अपने पिताका परिचय न दे तबतक उसके कुल गोत्र वंश शील आदिका वर्णन कोई विद्वान नहीं कर सकता और न पिताके परिचयका ठिकाना न होनेके सबब उसका और उसके कुलगोत्रादिको तथा वचनोंकी प्रमाणताका विश्वास होसक्ता है और न वह किसी कुलीन और प्रमाणीक पुरुषकी विवेचना तथा अवहेलनाका दम भरसक्ता है इसलिये जबतक स्वसिद्धान्त और तत्त्वोंका स्थापन न करलोगे तबतक तुम उन पूज्यपाद आचार्यों पर टीकाटिप्पणियां करनेके अधिकारी नहीं हो सकते।

दयानन्दादि मतोंने भी जो हिंदुधर्मके वेदादि शास्त्रोंमें कुछ अंश हिंसादिभाग क्षेपक (मिला दिया) है ऐसा कहकर उसमेंसे कुछ अंश लिया है कुछ नहीं लिया है परन्तु उन वेदादिकर्ता आचार्योंको अवहेलना नहीं की है तथा स्वमत स्थापन कर खंडन किया है। तुमने तो ग्रंथोंके मूल कारण उन आचार्योंको ही अपने हृदयमें अविश्वस्त बना लिया है तुम्हारा कहना ऐसा नहीं है कि कुछ लोगोंने मिला दिया है किन्तु आचार्योंको ही झूठा बनाया है तब पूर्वाचार्योंके अभिमत तत्त्व तथा लक्षणशास्त्र और प्रमाण नयविवेचन वचनों द्वारा एक अक्षर कहनेका साहस नहीं करसक्ते। अभी तक जिस पत्तलमें खाया है उसीमें छेद किया है यदि चतुरताका घमंड रखते हो तो नया विकाश सिद्धान्त थापन कर स्वाभिमत आगम प्रमाण बनाइये। अभीतक तुम्हारे पास स्वाभिमत आगम है नहीं और सर्वज्ञागत पूर्वाचार्यप्रणीत आगमका आप खंडन ही कर रहे हैं और स्त्रीमुक्ति शूद्रमुक्ति ललिताङ्गादिदेवोंके पूर्वभवादि तथा समन्तभद्रादिचरित्र (वृत्तान्त) प्रत्यक्षप्रमाणके विषय नहीं और अनुमानादि प्रमाणके अंगभूत व्याप्तिज्ञान तथा पक्षसाध्यहेत्वाभासादिज्ञानका तुम्हारे स्पर्श भी नहीं है फिर आपने आजतक खण्डन क्या किया? जैनविद्वान् सत्यासत्यनिर्णय करनेकेलिये क्या माथा पचावें? नहीं तो मुक्तिपदार्थ क्या घरकी खिचड़ी है जो घी डालकर चाटगये बिना पेंदीका लोटा कहां स्थित रहै तुम्हारे स्वमतस्थापन नहीं और पराभिमत सिद्धान्त स्वीकृत नहीं उनके वाक्योंका क्या ठिकाना?

जिन स्त्रियोंके संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति इत्यादि दोष स्वाभाविक होते हैं तत्प्रतिपक्षी द्रव्यकर्मके सद्भावसे पर-

मनुष्यार्थरूपकार्य समयसारभूतशुद्धस्वभावके आविर्भावको स्त्रीपर्याय अभूमि है जैसे मनुष्य मनुष्यायुके बन्धकरने पश्चात पञ्चम गुणस्थानादि परिणामको उसी मनुष्यपर्यायमें अभूमि है अर्थात् जैसे एककर्मभूमीके मनुष्यने आगामिभवकी मनुष्यायुका बन्ध करलिया तो मनुष्यायुके बन्ध पीछे उसका परिणाम व्रतधारणका कभी न होगा कारण व्रती आत्माका उत्पाद नियमसे स्वर्गमें ही होगा इसलिये वह पुनः देवायुका बन्ध नहीं करशक्ता कारण चारों आयुमेंसे किसी एकका बन्ध होते फिर वह बन्ध छूट नहीं शक्ता स्थिति कमज्यादा होशक्ती है ये सब बातें सहेतुक हैं यह सब स्त्रीमुक्तिखण्डनमें दिखलाई जांयगी यहां अनधिकार चर्चा है जैसे मनुष्यायुबन्ध पीछे कर्मभूमिके मनुष्यके व्रत परिणाम के आविर्भावको अयोग्यता है वैसे ही द्रव्यस्त्रीके तथा शूद्रके छट्ठे गुणस्थानादि तथा मुक्तिकी अयोग्यता है इस प्रकार ऋषिप्रणीतवाक्योंके अनुभवकरनेका कौन प्रयास करै? सत्यासत्य निर्णय करनेकी धुनि सवार है।

हमें तो आश्चर्य और भय है कि सत्यासत्यनिर्णय कर्त्ता अपनी धुनिमें कहीं अपने वंशधरों पर दावा न कर बैठें कि हम लोग तुम्हारे ही वंशज नहीं हैं क्योंकि गर्भाधानादि स्त्रीमुक्त्यादिवत् प्रत्यक्षके विषय नहीं और आगम प्रमाण नहीं क्योंकि अमुक महापितामहके अमुकपितामह और अमुकपितामहके अमुकपिता और अमुकपिताके अमुक सुपुत्र हम ये सब बातें जबानी जमाखर्च है इन जनश्रुतिरूप आगमवचनोंमें कोई प्रमाणता नहीं अतएव यदि यहांपर व्यभिचार शंकाका उत्थापन होजाय कि अमुकमहापितामहके अमुक पितामह और उत्तरोत्तर उनके वंशज सुपुत्र हम न होंय तो इसशंकाका निवर्तक कोई प्रबल प्रमाण नहीं क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण है नहीं और साक्षी-कोई है नहीं और अनुमान यों नहीं कि स्वगृत्तिरूप शूद्राचरणतासंस्कार शूद्रोंकी पर्यायमें मुक्तिका बाधक हम मानते नहीं तब उत्तरोत्तर संस्कारजन्य कुलाचार परम्परा वासना संक्रमणरूपहेतु ही वंशपरम्परारूपसाध्यका गमक था सो मान्य न होनेसे अनुमान प्रमाणसे वंशजता सिद्ध नहीं होती हमारे पूर्वज वंशधर जिनधर्म श्रद्धानी अन्धविश्वासके लकीरके फकीर थे हम नवीन फेसनके विकाशसिद्धान्तके माननेवाले निष्पक्ष सत्यखोजी पुराणादिगपोड़खोचड़ोंरहित नीरससाहित्यप्रेमी सत्यके अभ्युदयमें सत्यवक्ता इत्यादिगुण सम्पन्न हैं ऐसा विचारते हैं तो हमारे पूर्वजवंशधरोंका और हमारा न तो साक्षात् परम्परा कार्यकारणभाव बनता है और न उपादानोपादेयभाव। ऐसा करनेसे तो बड़ी गड़बड़ीमच जायगी व्यवहारका ही लोप हो जायगा सो नहीं। ऐसे कुतर्कोंसे जैसे वंशपरम्पराका खण्डन एक अंशभी नहीं होता उसीप्रकार उस अनादिसिद्ध अकाट्य जैनसिद्धान्तका एक अंशभी खण्डन इन तुम्हारे कुतर्कोंसे अभी तक न हुआ है न होगा। तुम्हें जो इसबातका अभिमान है कि हम बराबर जोचाह सबसे मनमें आया सोही लिखते आरहे हैं और साधारण जनता (जैनसमाज) खूब खुशीसे आर्य ऋषि मुनी पूर्वजोंको झूठे फरेबी मायावी इत्यादि गालियां दिवारही है और सिवाय दोचार विद्याप्रेमियोंके अवशिष्ट सारी जनता इससे मस्त नहीं होती। मौनात् अर्द्ध स्वीकृति समझी जाती है सो नहीं जैनतत्व जवाहारात तुल्य हैं इनके परीक्षक विशेषज्ञानी तो सौ दो सौ पांचसौ मनुष्य और जनता भोली उसमें तुमने हुल्लड़ मचाके कुतर्करूपी कांचखंडोंको दिखाकर उन अमूल्य रत्नोंको हड़पकरनेका साहस किया है सो जानकार लोग अभीतक इसलिये मन्दोद्यमी रहे कि तुम्हारी धर्ममें श्रद्धा कहां तक है जनता भले प्रकार समझ ले क्योंकि पहले ही यदि कोईखण्डन करता तो बहुतसे सज्जन

पुराणके खण्डनसे श्रद्धाच्युत न समझते और बीचमें बोलनेवाला हो द्वेषी समझा जाता अब तो गोम्मटसारादि का खण्डन होनेसे अन्तर्मल बाहिर आगया कलई खुल गई जनताको भी मालूम हो गया अब बहुत भूभर मूती अर्थात् अनि की अब भूभर नहीं मूतने पाओगे। घबड़ाइये नहीं स्वमतस्थापन न करने पर भी तुम्हारे ऊटपटांग कुतर्कोंका दमन लेखों द्वारा भी क्रमशः किया जायगा।

याद रक्खो "केवलिश्रुतसंघदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य,, यदि यह सूत्र श्रीउमास्वामिभगवत्का कहा हुआ तुम्हारे हृदयमें सत्य है तो सहायक प्रेरक तथा अनुमोदक जैनी समझलें कि इनके साथ २ हम भी केवली श्रुतकेवली तथा शास्त्र और चारप्रकारके संघका अवर्णवाद अर्थात पूज्यपुरुषोंके लिये जो अक्षर निकालने लायक नहीं और निकाले जांय उन निन्दाजनक वाक्योंके उच्चारणसे दर्शन मोहनीय कर्मका आश्रव होता है और उसका फल नरक निगोदादि तथा बड़ पीपलादि बनना है सो बनना होगा इसलिये जनता ऐसे पापकार्यमें भूल कर भी सामिल न हो तथा पूर्वाचार्य परोक्ष और वीतराग हैं इसलिये हम चाहैं जो कुछ कह डालें कोई न बोलेगा ऐसा न समझना। यह जैन समाज उन वीतरागका उपासक होने पर भी उद्दण्ड बहुरागियोंका परिहार जिसतरह होगा उसकेलिये सदा उद्यत रहैगा तभी श्रीवीतरागधर्मका सच्चा उपासक और कर्तव्यपरायण समझा जायगा क्योंकि अनर्थकारक कषायादिराग और रागियोंका परिहारक ही वीतराग और वीतरागी शब्दका वाच्य समझा जाता है मैं ऐसा समझताहूं इसलिये उपर्युक्त उपयोगार्थ यह प्रस्ताव पास कियागया है न कि कमजोरीसे, सो अच्छी तरहसे समझ लेना चाहिये।

निवेदक

झम्मनलाल जैन तर्कतीर्थ

प्रकीर्णक विचार।

पंचमकालमें उत्कृष्ट मनुष्यायु।

लोगोंमें किंवदंती है और हमारे शास्त्रोंमें भी लिखा है कि मनुष्यकी उत्कृष्ट आयु इसकालमें १२० वर्षके लगभग होगी। इसी बातकी प्रामाणिकतामें यूरोपके सुप्रसिद्ध विद्वान फारसाहबने एक तालिका प्रकाशित की है और उसमें एक लाख लड़का लड़कियोंमें ९५ वर्षतक ९१ पुरुष और १०५ स्त्रियां, १०० वर्षतक ७ पुरुष ६ स्त्रिया और १०५ वर्षकी उम्रतक सिर्फ एक स्त्री ही पहुंच पाती है यह सिद्ध कियाहै। अपने पुरातन आचार्योंकी बात पर विश्वास न करनेवालोंको उक्त साहबकी तालिका पर ध्यान देना चाहिये।

स्त्रियोंके स्वभावपर चाईना विद्वानोंका मत।

अन्य लिपियोंकी भांति चीन देशकी लिपि सरल और सिर्फ शब्दबोधक ही नहीं है उसकी लिखावट और शैली विद्वत्ता जनक एवं बहुत ही भीतरी मर्मज्ञापक है। हमलोग जिस प्रकार 'मनुष्य' शब्दवाच्य अर्थ प्रगट करनेके लिये म, नु, और ष्य तीन अक्षर लिखते हैं उसप्रकार चाइना नहीं लिखते। वे उस अर्थको जतलानेकेलिये दो हाथ पांव और मस्तकवाली एक तस्वीर खींच देते हैं। इसीप्रकार प्रायः सब अभिप्रायोंको वे लोग तस्वीर रूपी अक्षर बना २ करही परस्पर प्रगट

करते हैं इसलिये यहांके पूर्व विद्वानोंके किस पदार्थके विषयमें कैसे भाव थे सो स्पष्ट आज भी मालूम पड़ जाते हैं। स्त्रीशब्दवाच्य अर्थ बतलानेके लिये वे लोग एक विलक्षण अर्थहीन तस्वीर खींचते हैं और उससे 'स्त्रियश्चरित्रं निहितं गुहायां' अर्थात् स्त्रीका चरित्र कोई नहीं जान सक्ता इस नीतिको प्रगट करते हैं। विवाद-लड़ाई झगड़ा कहना होता है तो दो स्त्रियोंकी गप्पें करना कहना होता है तो तीन स्त्रियोंकी तस्वीर तर ऊपर खींच देते हैं जिससे स्त्रियां स्वभावतः कलह प्रिय और बकवाद होती है ऐसा ज्ञान कराते हैं।

हमारे आचार्योंने स्त्रियोंको तद्भवमुक्तिका जो निषेध किया है वह विना किसी पक्षपात और द्वेषके पदार्थकी हीनाधिक शक्ति देखकर ही किया है ऐसा उक्त प्रकरणसे सिद्ध होता है।

विजातीय विवाह।

बा० अर्जुनलाल सेठीने अपनी मध्यमा कन्याका विवाह एक हूमड़ युवकके साथ किया है। इस कारण बंबईकी खंडेलवाल समाजने उन्हें बहिष्कृत करनेका प्रस्ताव पास किया है। कलकत्तामें भी उस का अनुमोदन किया गया है। खैर! जो कुछ भी हो। जब खंडेलवालोंमें वैसे ही लड़कियां कम हैं और उस के शिक्षित युवक कई २ हजार रुपये नहलेमें देनेके लिये कटिबद्ध होनेपर भी अविवाहित रहजाते हैं तब अपनी जातिके लिये एक लड़की को कमीकर और दूसरेको भी उस क्षतिकरनेके लिये प्रेरणाकर खंडेलवाल समाजके प्रति सेठीजीने कृतघ्नताका परिचय दिया है। और समाजने शक्त्यनुसार उचित दंड किया है जो लोग उनके इस कृत्यको धार्मिक वृद्धिका कारण मान फूले नहीं समाते और अनुकरण करनेकेलिये तैनात हो रहे हैं उन्हें पहिले अपनी और दूसरे जाति को अविवाहित लड़के लड़कियोंकी संख्यापर विचार करलेना उचित है।

पद्मावती जैन पाठशाला एटा।

परिषद्‌के शिक्षाविभागीय मंत्री पं० रघुनाथ दास जीके पत्रसे मालूम हुआ है कि पाठशालाका कार्य फिर प्रारंभ होगया है। पं० चेतनस्वरूपजी अध्यापक नियत हुये हैं। हमारे भाईयोंको तन मन धनसे इस पाठशालाकी उन्नति करना चाहिये और सुभीतेके अनुसार बालक पढ़नेकेलिये भेजना जरूरी है। जो महाशय मासिक और वार्षिक चंदा देते थे उन्हें अब फिर अपनी सहायता चालू करदेना चाहिये जिससे पाठशालाके संचालनमें किसीप्रकारका भय न हो। एटाके जैन पंचोंका कर्तव्य है कि वे इसका निरीक्षण करते रहे और सब प्रकारके विघ्न दूरकर उन्नति करें। विना शास्त्र पढे सब धन और जन्म निरर्थक है।

चित्र परिचय।

इस संख्यामें दो चित्र प्रकाशित किये गये हैं उनमें पहिला कलकत्ताके सुप्रसिद्ध अनुभवी पं० अर्जुनदास जी चुरुवालेका है। आपकी वयोवृद्धताका पता चित्र दर्शनसे ही होरहा है पंडितजीका जन्म वि० सं० १८८६ में चुरु (मारवाड़) ग्राममें हुआथा महाजनी व्यापार ज्ञानके सिवा आपने धर्म शास्त्र का महत् ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया था। गोम्मटसारजी और आध्यात्म ख्याति समयसार ग्रंथोंका करीब ५० वर्षतक स्वाध्याय करनेका सौभाग्य आपको मिला। सं० १९१७ से मरण पर्यन्त एकवार भोजन करनेका प्रतिज्ञा निवाही संवत १९७० से व्यापारका आपने त्याग कर दिया था सुबह और साम दोनो वक्त आप नियमित स्वाध्याय

करते व इन्द्रियां शिथिल होनेपर अपने शिष्योंद्वारा शास्त्र पचवा उसके अर्थका मनन व उपदेश देतेथे। आप सर्वदा खड़े रहकर ही जिन भगवानके सामने स्तुति आदि पढ़ते और बहुत समय तक भगवानकी शांत मूर्तिका अपने अंतरात्मामें प्रतिबिम्ब डालते रहते। आप बीमारी और कमजोरीके अंतिम दिनोंमें भी खड़े रह कर ही दर्शन करते रहे। इसी भक्तिके प्रसादसे मृत्यु दिनसे एक दिन पहिले तक जिनबिम्बदर्शन कर पुण्य कमानेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपने उसी (रविवार) दिन अपना मरण समय बतला दिया था आपने समस्त परिग्रहका त्यागकर मोह छोड़ आषाढ़ बदी १२ सं० १९७३ में ६१ वर्षकी आयु भोग सोमवार के दिन प्राण त्यागे।

पंडितजीका कलकत्ताकी जैनसमाजमें अच्छा सम्मान था धार्मिक कार्य्य प्रायः आपकी सम्मत्यनुसार ही होते, बाहिरके लोगभी सिद्धान्तकी शंकाओंको भेजते और पं० जी से समुचित सरल उत्तर पा धर्ममें दृढ़ होते थे। प्रसिद्ध आध्यात्मिक पं० भागचंद्रजीका आपको कुछ दिन तक सहवास रहा था। आपके अभावसे जैनसमाजको अनुभवी श्रद्धानी पंडितकी हानि उठानी पड़ी है।

दूसरा चित्र श्रीयुत बाबू बनारसीदासजी बी० ए० एल० एल० बी० वकील हाईकोर्ट अलेसर निवासी का है आपका जन्म पद्मावतीपुरवाल जातिमें लाला हरदेव प्रसादजीके यहां पौष सुदी १ सं० १९३२ मंगलवारके दिन हुआथा। जिस समय आप ६ वर्ष के हुये तभीसे योग्य पिताने उन्हे स्थानीय तहसीली स्कूलमें उर्दू हिंदी पढ़ाना प्रारंभ किया और सन् १८९० में मिडिल पास हो आगरा विक्टोरिया हाईस्कूलमे अंग्रेजी पढ़ने लगे। १० वर्ष परिश्रम करनेके बाद आगरा कालिजसे बी० ए० पास किया।

इसके बाद आपने महकमे परभरमें नौकरीकर वकालत का कोर्स पढा और एल० एल० बी पास किया सर्कारने आपके लिये डिपुटी इन्स्पेक्टरी आवकारी की जगह देनी चाही पर स्वतंत्र व्यापार प्रिय होनेके और पिताजीकी आज्ञा न होनेके कारण आप वहां नहीं गये ८ जून सन् १९०८ से आपने वकालत निवास स्थान जलेसरमें ही प्रारंभ की। आपकी तीक्ष्ण बुद्धि और परिश्रम शीलताके कारण अच्छी उन्नति हुई। रियासत अवागढ़का और गवर्नमेंटका समस्त कचहरी संबंधी कार्य आपकी वकालतमें ही होताथा। राजा और उनकी विधवा रानी साहबा दोनोंही आपकी सम्मतिसे बहुत से राजकीय कार्य करते थे। जलेसरकी म्युनिस्पल-बोर्डके मेंबर होनेके कारण स्थानीय जनता को भी आपने बहुत लाभ पहुंचाया था।

इसके सिवा पद्मावतीपरिषद्की नीव भी आपने ही डाली थी जिसका फल स्वरूप यह मासिक पत्र एटाकी जैन पाठशाला आदि हैं। परिषद्के समस्त ही अधिवेशनोंमें आप सामिल हुये व योग्य सम्मति द्वारा लाभ पहुंचाया। पाठशालाके ध्रौव्य फंडमें एक अच्छी रकमका और बोर्डिंग बननेपर एक कमरा बनवानेका वचन दिया था जिसे उनके पूज्य पिता और सुयोग्य पुत्र पूर्ण कर बाबू साहब की धार्मिकप्रियता सर्वदा केलिये कायम करदेंगे ऐसी उम्मेद हैं।

आपके वियोगमें लौकिक और धार्मिक शिक्षा सम्पन्न कर्मण्य योग्य पुरुषका जातिमेंसे अभाव हुआ है जिसकी पूर्ति होना फिल हाल बहुतही कठिन मालूम पड़ती है। आप एकके पुत्र हैं जो कि अंगरेजी पढ़-

रहे हैं आशा है पिताजीका अनुकरण कर धार्मिक और लौकिक शिक्षामें पारंगत होंगे।

जैनहितैषीकी छानबीन ।

इसीपत्रके गत १२ वे अंकमें मेरी परमात्माके विषयमें एक कविता प्रकाशित हुई है । उसका एक खंड लेकर जैन हितैषीने अपनी योग्यता और गहरी गवेषणाका विलक्षण परिचय दिया है। कविताका सम्पूर्ण पद्य-वाक्य इसतरह है—

हंसी आती है ईसाकी कहानी सुनके ऐ यारो।
किसी इन्सानके वालिदको, कैसे ! ईश मानें हम॥

जिसका भावार्थ सीधी साधी बुद्धिवाला भी यही कहसक्ता है कि—क्वारी मेरीके गर्भजात ईशुखृष्टने जो यह प्रगट किया है कि मैं ईश्वरका साक्षात पुत्र हूं परम पिताने जीवोंके हितार्थ दुनियांमें मुझे पैदा कर अपना प्रतिनिधि बना भेजा है सो ऐसा इन्सानका साक्षात पैदा करनेवाला उस अवस्थामें ईश्वर नहीं होसक्ता।

परंतु आजकलकी स्वतंत्र गंभीरबुद्धिधारी जैन हितैषी उक्त वाक्यके निम्न भागमात्रको उद्धृत कर लिखता है कि—

" इस युक्तिपरसे क्या हम यह समझें कि श्री ऋषभदेव भगवान् जो भरत बाहुबलि आदि मनुष्योंके पिता थे परमात्मा नहीं थे ?; उत्तरमें इतना कह देना ही काफी है ' हां ! भरत आदि मनुष्योंके पिता उस अवस्थामें निःसंदेह परमात्मा नहीं थे। समस्त परिग्रह त्याग पूर्ण ब्रह्मचारी हो जब घातिया कर्मोंसे मुक्त हुये तब सकल और सर्वथा कर्म रहित हुये तब निकल परमात्मा हुये। इस बातको पहली जैन पुस्तकका ज्ञाता भी जान सक्ता है और कुछ बुद्धिपर जोर देनेसे आप भी। —रामस्वरूप भारतीय।

समालोचना।

जैसवालजैन— यह मासिक पत्र मानपाड़ा आगरासे प्रकाशित होता है । संपादक— श्रीयुत महेन्द्र हैं। पत्रकी नीति जातिमें फैली हुई कुरीतियों का नाश कराना, और धार्मिक जागृति कराना है जो कि योग्यलेखों द्वारा बहुत कुछ अंशोंमें साधित होती है। मूल्य १) रु० है। प्रत्येक जैनीको इसका ग्राहक बनना चाहिये।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका— यह नये ढंगसे नये उद्देश को धारणकर त्रैमासिक रूपसे निकलने लगी है। हिन्दीमें ऐसे पत्रकी बहुत आवश्यकता थी। इस में सब लेख ऐतिहासिक ही हैं और वे भी बहुत ही गवेषणा पूर्वक अनुभवी विद्वानोंके। इसके संपादकोंसे हमारी प्रार्थना है कि— हिन्दी, संस्कृत और प्राकृतग्रंथोंकी प्रशस्ति प्रस्तावना आदिका उल्लेख करते हुये जैनग्रंथोंका स्मरण रखनेकी भी कृपाकरें। जैन और बौद्ध साहित्यका अच्छीतरह अध्ययन विना किये भारतका इतिहास अपूर्ण ही रहेगा । वार्षिक मूल्य ३) रुपया और इस अंकका १) रु० है। प्रत्येक भाईको इसका ग्राहक बनना चाहिये। मिलनेका पता— नागरीप्रचारिणी कार्यालय काशी ।

ज्ञान शक्ति— यह दार्शनिक और नैतिक लेखोंसे विभूषित हो गोरखपुरसे प्रतिमास प्रकाशित होती है।संपादकीय लेख बहुत ही विद्वत्ता और गवेषणा पूर्वक लिखे जाते हैं जैन दर्शन सम्बन्धी लेखभी इसमें रहते हैं। वार्षिक मूल्य ३) है। हरएक जैनी भाईको इस का ग्राहक बन अजैनोंके जैन दर्शनके प्रति उच्चभाव जानना चाहिये। पता। पंडित शिवकुमारजी शास्त्री गोरखपुर।

श्री 'पद्मावतीपुरवाल' जैन कार्यालयका दूसरे वर्षका हिसाब।

जमा—

५१२॥) ग्राहकोंसे वार्षिक मूल्य आया
३) कार्तिक महोत्सव पर २रे अंक बिके
५॥) पोष्टेज (टिकटादि) बिका
१॥।-) फुटकर अंक बिके
२५॥≋) कागज बिक्रीके जमा
१२) विज्ञापन छपाई आई
३॥) ग्राहकोंके पते बिके

सहायता प्राप्त हुई—

३०) सेठ मोहनलाल चौथमल डूंग
२५) सेठ रामासाव बकाराम गोंड वर्धा
२२॥) सेठ मदनचन्द्र प्रभूदयालजी
(फोटो—स्व० पं० जिनेश्वरदासजी)
१५) ला० शिखरचन्द्र वासुदेव रईस टूंडला
१५) से० बाजीरावजी नाकाडे भण्डारा
१५) पं० मनोहरलालजी पटम
१२) जैनहितैषी मित्रमंडली करजन
१२) पं० सोनपालजी पानीगाव
१२) पं० फुलजारीलालजी सकरौली
१२) पं० शिवजीरामजी नागोर
१०) ला० कमलापत पुन्नूलाल इटावा
७) पंडित अमोलकचन्द्रजी उड़सर
७) उपदेशक बाबलरामजी
५) ला० धनपतराय धन्यकुमार उत्तरपाड़ा
५) पं० मक्खनलालजी चावली
५) लालाराम बंगालीदास देहली
५) ला० नाथूरामजी वसुंदरा (पटा)
५) पं० हीरालालजी फतहपुर

नामे—

१२३)॥। गत वर्षका घाटा

११०≋) पहिले अंकमें व्यय पड़ा—
५०≋) कागज ४॥ रीम लगा १ हजार प्रतियोंमें मय टायटल पेजके।
३०) छपाई १ हजार प्रतिका
३) बंधाई—भंजाई
२) ब्लाक (चित्र) बनवाई
१५) पोष्टेज रवानगीमें

१५०॥≋) दूसरे अंकमें व्यय हुआ।
५१॥।-) कागज ४॥ रीम आया जिसमें ८ सौ प्रतियोंमें मय मुखपृष्ठके ३॥ रीम लगा बाकी बचा पौनरीम।
३६) छपाई ८ सौ प्रतिकी
२) बंधाई भंजाई
२) ब्लाक (चित्र) बनवाई
५८॥।-) पोष्टेज ७५३ वी० पी० रवानगीकी गई प्रत्येक वी० पी० में -)॥ आनेका पोष्टेज लगा।

६४) तीसरे अंकका हिसाब—
२४) कागज २ रीम आया साढ़े पांचसौ प्रतियोंमें मय कव्हरके २॥ रीम लगा ५ दिस्ता पहिलेके कागजोंमेंसे लगा, बचा आधारीम
३३) छपाई साढ़े पांचसौ प्रतिकी
२) बंधाई भंजाई
२) ब्लाक 'कन्या गायका'
७) पोष्टेज रवानगीमें

५) बा० छुट्टनलालजी एं शनमास्टर खोला
५) नन्नूलाल हरसुखलाल पालेज
५) पन्नालाल बाबूराम शिकोहाबाद
५) मुंशी वंशीधरजी फिरोजाबाद
५) ला० गिरनारीलालजी रईस टेहरी
२) रामस्वरूप भारतीय जारखी
२) सेठ चिरंजीलालजी वर्धा
२) हीरालाल सुवालाल इगमारा (अजमेर)
१) वेदी प्रतिष्ठा सकरौली
१) नाथूराम चिरंजीलाल मुस्तापुर
१) भीमसेनजी जैन

८१७॥)
२१५)॥ घाटारहा

१०३२॥)॥

६६) चौथे अंकका खर्च—
२४) कागज लगा २ रीम
३२) छपाई ५ सौ प्रतिकी
२) मंजाई बंधाई
२) ब्लोक 'बालविवाह' का
६) पोष्टेज (रवानगी) में

६४) पांचवे अंकमें खर्चपड़ा—
२४) कागज लगा २ रीम
३२) छपाई ५०० प्रतिका
२) बंधाई
६) पोष्टेज लगा

६६॥) छठा अंकका हिसाब
२४) कागजलगा २ रीम
३२) छपाई ५०० की
२) बंधाई
२) ब्लाक 'फूटदुष्टिनी अति भयकारी'
६॥) पोष्टेज रवानगीमें

८६) सातवें अंकमें व्यय हुआ
२३) कागज २ रीम
३२) छपाई ५०० की
२२॥) फौटो छपाई ५०० पं० जिनेश्वरदासजीकी
२) बंधाई
६॥) पोष्टेज रवानगीमे

६२॥) आठवें अंकका खर्च
२२) कागज २ रीम
३२) छपाई ५०० की
२) बंधाई
६॥) पोष्टेज रवानगी

Reg. No. C 888

नाट—कागजबिक्री के जो २५॥≡ जमा हैं, वह २ रीमबचे हुए कागजके ही दाम हैं। आफिस खर्चमें १०=)॥ हैं, उसमेंसे ५॥।) पोष्टेज बिक्रीके जमा होनेसे ४॥।=)॥ ही समझना चाहिये।

इसवर्ष २१५)॥ घाटेके रहे। हम अपील घाटेके रुपयोंकी नहीं करते। हमारी केवल यही प्रर्थना है कि लोग इसको अपनावें, पढ़ें और दूसरोंको पढ़नेकी प्रेरणा करें।

प्राप्ति-स्वीकार और धन्यवाद !

१०) लाला गिरनारीलालजी जैन रइस, टेहरी।
५) सेठ गुलाबचंद मोतीचंदजी, मोहोल।
३३) मुंशी बंशीधरजीजैन, फिरोजाबाद।
२) ला० ख्यालीरामजी बांदा (पुत्रकेविवाहमें)

इन महाशयोंने इस पत्रको अपनाकर जो सहायता दी है, उसके लिये हार्दिक धन्यवाद! आशा है अन्य महाशय भी पुत्रजन्म, विवाह शादी आदि शुभ कार्योंमें इस "पद्मावतीपुरवाल", सेवकको न भूलेंगे।

—मैनेजर।

६४) नववें अंकका हिसाब
- २४) कागज लगा २ रीम
- ३२) छपाई ५०० की
- २) बंधाई
- ६) पोष्टेज रवानगी

२४॥~) दशवें ग्यारहवें अंकमें लगा
- ४४॥~) कागज आया ४ रीम जिसमेंसे २॥ रीम लगा बाकी बचा कुल २ रीम
- ३०) छपाई ५०० की
- २॥) बंधाई
- ७॥) पोष्टेज रवानगी

६३) बारहवें अंकका हिसाब-
- २२) कागज २ रीम
- ३२) छपाई ५०० की
- २) बंधाई
- ७) पोष्टेज रवानगी

२०॥=)॥ आफिस खर्च—
- २०॥=)॥ आना चिट्ठी पत्रोंमें और फुटकर अंक तथा नमूना आदि भेजनेमें व्यय हुआ जिसमें अंक रवानगीका बचाहुआ पोष्टेज भी सामिल है और ५॥।) पोष्टेज बिक्रीके जमा भी शामिल है।

१०३२॥।)॥

जैनसिद्धांतप्रकाशकप्रेस
८ महेंद्रबोसलेन, श्यामबाजार कलकत्तामें छपा।

पद्मावती परिषद्का मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा चित्रोंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

वर्ष. ३ | अं. ४

विषय सूची।

नोट—"स्त्रीमुक्तिपर विचार"—शीर्षक लेख २ रे वर्षके ६ ठे अंकसे छप रहा है, पाठकोंको आदिसे अंत तक मनन करना चाहिये।

वार्षिक मू० २)

आनरेरी मैनेजर—
श्रीधन्यकुमार जैन. 'सिंह'

१ अंक का ≡)

समाचार संग्रह।

खुला है— सिलवांमें सेठ रोशनलालजीने एक मुफ्त औषधालय खोला है जिसका १५०) महीनाका खर्च है ८० — ६० रोगी प्रतिदिन लाभ उठाते हैं। चंचल लक्ष्मीको स्थिर करनेका यही उपाय है। वैद्य शास्त्री पं० हरिप्रसादजी हैं। मद्य मांस मधुके अतिरिक्त औषधियों से काम लेना जरूरी है।

निकालेंगे—काशीसे ब्रह्मचारी ज्ञानानन्दजी शीघ्र ही एक साप्ताहिक 'अहिंसा' नामका पत्र निकालेंगे इसका विषय नामसे ही ज्ञात हो जाता है। मूल्य साल भरके ४८ अंकोंका ३॥) रु० है। पता—स्याद्वादमहाविद्यालय, भदैनी घाट बनारस सिटी। ग्राहकोंको शीघ्रता करनी चाहिये। आदर्श त्याग — उच्चवर्णीजोने सौ आदमियोंका मांस भक्षण और सौको चमड़ेका जूता पहिननेका जब तक त्याग न करा लेंगे मोठा खानेका त्याग किया है।

अधिवेशन — नागपुर प्रांतीय दि० जैन खंडेलवाल सभाका वार्षिक अधिवेशन ता० २५–२६–२७ अक्टूबर १९२० मिती आसोज सुदी १३—१४—१५ को छिंदवाड़ेमें होगा। स्वागत कारिणी सभाका संगठन हो कार्य प्रारम्भ हो गया है। विद्वान और समाज हितैषी भाईयोंको प्रस्ताव भेजने चाहिये। पता—चैनसुख छावड़ा सिवनी।

खंडेल वाल जैन समाजको सूचना—

मेरे भाणजी जवाई भदाण निवासी श्रीमान् किसनलाल जी पहाड्या की सगाई कुचामण निवासी पलुरामजी छावड़ा की पुत्री मनभराके साथ समाजकी रीति रिवाजके मुताबिक, पंचोंकी साक्षी पूर्वक हो गहना रुपैया ६०००) के लगभग हमारी मारफत घाल चुके हैं।

लेकिन मेरे दिलमें यह संशय उत्पन्न हुआ है कि लड़कीके काकाने वृथा ही उछल कूद तो मचा ही रक्खी है यदि वो सम्बन्धके होते हुए दूसरा सम्बन्ध करना चाहे। इसलिये मैं प्रत्येक स्थानोंकी पंचायतियोंको तथा दिगम्बर समाजको सूचित करता हूं कि उपर्युक्त सम्बन्ध पर कोई भी ठहराव नहीं करे।

मैं इस सम्बन्धमें एक लेख जैनमित्र जैनगजटमें दे चुका हूं उसे पाठक महाशयोंने पढ़ा ही होगा नहीं तो अवश्य पढियेगा।

निवेदक—

चैनसुख गंभीरमल पांड्या।

४६ स्ट्रांडरोड कलकत्ता

रतौना- में जो कसाई खाना खुलने वाला था वह फिलहाल स्थगित कर दिया है। एक कमेटी सर्कारी गैर सर्कारी मेंबरोंकी बैठेगी। उसमें विचार होने पर पूरा निश्चय होगा।

एक जैनवीर- बेलगांवके चौगले वकीलके भतीजे फडप्पा चौगुले दि० जैन अभी यूरोप देशके बेलजियम देशमें सर्व राष्ट्रीय शर्तोंमें शामिल होनेके लिये गये हैं लंडनमें १० मीलकी दौड़में आप सर्व प्रथम हुये हैं। मनुष्य गणना -अगामी माच मासमें मनुष्योंकी गिनती होगी हमारे भाईयोंको चाहिये कि जातिके खानेमें पद्मावतीपुरवाल आदि और धर्मके खानेमें दि० जैन लिखावें। विनामूल्य--सब औषधियां पोष्टेज मात्रकी वी० पी०से दि० जैन औषधालय बड़नगरसे मंगाइये।

पास होगया—कलकत्ताकी स्पेशल कांग्रेस सफलताके साथ हो गई उसमें गांधी महाराजका असहयोग प्रस्ताव पास हो गया।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदं

३ रा वर्ष } कलकत्ता, अषाढ, वीरनिर्वाण सं० २४४६ सन १९२० { ४ था अंक

हठ

हठसे होता नाश धर्मका हठसे कर्म सभी नसते

करके नष्ट निरभिमानीको बुरी तरह भवमें फसते ।

नष्ट होइ निजजीवन केवल हठसे तो भी आसानी

किंतु किसी हठसे बहुतोंके जीवनपर फिरता पानी ॥ १ ॥

नश जानेसे विचारबलके चित्तवृत्तियां हुईं चपल ।

धर्म मार्गसे होकर उन्मुख होतीं डोलें उधर पृथक ॥

ऐसेमें निदिन मन मानी रीतीका प्रचारकर हठ—

करनेवाला मनुज बनाता बहुतोंको अज्ञानी शठ ॥ २ ॥

वर्तमानमें कुछ जैनी नर होकर मत्त कदाग्रहमें ।

दोष ढूंढते अरु प्रकटाते सर्वज्ञोक्त क्रियाओंमें ॥

इससे बहुत मनुज अज्ञानी इनके वचनोंपर विश्वास—

कर अरु भोगोंमें हो रंजित अर्जित करें कुगतिका वास ॥ ३ ॥

स्त्रीमुक्तिपर विचार।

(३ रे अंकसे आगे)

गुणस्थानोंका क्रम तीर्थंकर केवलियोंने अपने प्रत्यक्ष अनुभव और ज्ञानसे प्रकट किया था इत्यादि लिखकर सेठीजीने लिखा है कि कर्मभूमिकी स्त्रियोंके तीन संहनन नहीं होते जिनमें वज्र वृषभनाराच पहिला और प्रशस्ततम हैं यह कथन गुणस्थानोंके बंधोदय उदीर्णादिसे कुछ संबंध नहीं रखता, मार्गणाओंके बंधोदयसे संबंध रखता है।

उत्तरमें निवेदन है कि ' गुणस्थानोंके बंधादिसे कुछ संबंध नहीं रखता' इत्यादि लिखना व्यर्थ है। वहां तो सिर्फ इतनाही तात्पर्य है—जिसप्रकार विना तेरहवें गुणस्थानके केवलज्ञान नहीं होता, तेरहवें गुणस्थान और केवल ज्ञानका अविनाभाव संबंध है उसीप्रकार विना वज्रवृषभ नाराच संहननके तेरहवां गुणस्थान हो नहीं सकता , वज्र वृषभ नाराच संहनन और तेरहवां गुणस्थान दोनोंका अविनाभाव संबंध है। तथा जिस प्रकार देवगति और नरकगतिमें तत्तन्नाम कर्मके उदय से वैक्रियिक शरीर होता है उसीप्रकार स्त्रियोंके कर्मभूमिमें निजनाम कर्मानुसार अंतके ही तीन संहनन होते हैं। वज्रवृषभ नाराचके विना स्त्रियोंके तेरहवां गुणस्थान नहीं हो सक्ता एवं अंतके तीन संहननोंसे मोक्षका अविनाभावी ध्यान नहीं हो सकता इसलिये स्त्रियां अपनी द्रव्य स्त्री—पर्यायसे कभी मोक्ष नहीं प्राप्त कर सकतीं।

सेठीजीने जो यह लिखा है कि श्वेतांबराम्नायी स्त्रियोंके वज्र वृषभ संहननके निषेधको दिगंबरियोंकी कल्पना एवं गणधरोंके रचे हुए सूत्रवचनोंके विरुद्ध बताते हैं। यह अयुक्त है। एवं यह युक्ति, स्त्रियोंके वज्र वृषभ नाराच संहननके विधानमें पुष्ट युक्ति नहीं समझी जा सकती क्योंकि यह कायदा ही है कि किसी खास कारणसे जो मनुष्य जिस किसी बातका प्रचार करना चाहता है अपने प्रचारमें बाधा देनेवाले वचनोंकी निन्दा करता ही है।

मांस खाना अत्यंत पापोत्पादक है, अनेक प्राणियों का मारना ही मांस प्राप्तिका उपाय है। दयाजनक सिद्धांतोंमें उसका निषेध है, यदि ऐसी अवस्थामें एक मांस लोलुपी मांसकी कुछ स्वादिष्टता आदिका लक्ष्य कर मांस निषेधक सिद्धांतोंकी निन्दा करे तो उसका कथन युक्तियुक्त नहीं गिना जा सकता। शास्त्र और साइंस दोनोंसे पुरुषोंकी समानताका जब स्त्रियोंमें निषेध सिद्ध है तब यदि कोई उसकी पर्वा न कर स्त्रियोंको पुरुषोंकी बराबर ही माने तब वह उसीका मत है युक्ति और शास्त्र दोनोंका नहीं।

आलोचनाकी प्रत्यालोचना

सेठीजीने लिखा है कि— तीर्थंकरोंकी दिव्यध्वनियोंसे जो जो उपदेश तथा पदार्थोंका स्वरूप प्रगट हुआ है वह यथार्थ विना फेर फारके ज्योंका त्यों किस आम्नायमें अबतक मौजूद है और ऐसा होना संभव भी है क्या ? इत्यादि

उत्तरमें निवेदन है कि—इस समय भी कोई केवली नहीं कि जो निश्चय रूपसे कह सके कि अमुक मतका सिद्धांत ही यथार्थ है किंतु सब लोग अल्प ज्ञानी हैं और जिसबातकी जिद पकड़ लेते हैं उसका छोड़ना पसंद नहीं करते ऐसी दशामें जो सिद्धांत लोक और शास्त्र दोनोंसे सम्मत होता है वही यथार्थ स-

समझा जाता है। स्त्रियां पुरुषों की बराबर है यह बात लोक और शास्त्र दोनोंके विरुद्ध है इसलिये एक संप्रदायमें किसी अनिर्वचनीय स्वार्थसे प्रेरित हो स्त्रियों को पुरुषोंकी बराबरीका हक सुन उस संप्रादयको यथार्थ एवं अन्य संप्रदायको निर्युक्तिक समझना सर्वथा अन्याय है।

" जैन धर्मानुसार इस भरत क्षेत्रमें पहिले दूसरे तीसरे काल (अरे) में भोग भूमिकी रचना थी " यहांसे लेकर अत: परमाणुवाद इस उत्तम संहननाभाव के हेतुका कुछ भी मंडन नही कर सक्ता, यहां तक सेठीजीने यह दर्शाया है कि विकास सिद्धान्तके अनुसार जिसप्रकार भोगभूमि और कर्मभूमिमें काय प्रमाण आयु प्रमाण आदिका वृद्धि ह्रास माना है अर्थात पहिले कालमें आयु तीन पल्य काय तीन कोस दूसरे कालमें आयु दो पल्य काय दो कोस इत्यादि नियमानुसार वृद्धि ह्रास स्वीकार किया है उसप्रकार शरीरोंके अंदर क्यों वृद्धि ह्रास नियमानुसार नही माना? क्यों स्त्रियोंके एकदम पहिलेसे चतुर्थ आदि संहननोंका निर्युक्तिक विधान माना? तथा वृद्धि ह्रासको प्रक्रिया समझानेके लिये एक मनगढंत लंबा चौड़ा दृष्टांत भी दिया है एवं पहिले संहननसे एकदम कर्मभूमिमें स्त्रियोंके चौथे आदि संहननोंको परमाणुवादसे विरुद्ध भी बतलाया हैं।

उत्तरमें निवेदन है कि हम पूर्ण विस्तारसे इसबातको सिद्ध कर चुके हैं कि भोगभूमि कर्मभूमिकी प्रक्रिया कर्मसिद्धांत पर निर्भर हैं। नरक स्वर्गादिके समान दोनो क्षेत्र भिन्न २ हैं। सामग्री भी भिन्न २ हैं। इस लिये भोगभूमिका समस्त क्रम कर्मभूमिमें नही लगाया जा सकता।

यहांपर यह शंका हो सकती हैं कि यदि भोगभूमिका क्रम कर्मभूमिमें नहीं लगता तब आयु और शरीरके प्रमाणका भी क्रम लागू न होना चाहिये परंतु इसका समाधान यह हैं कि भोगभूमिका क्रम कर्मभूमिमें लागू होना ही चाहिये यह नियम नही बन सकता अन्यथा पहिले दूसरे तीसरे तीनों कालमें वज्रवृषभ नाराच एकही प्रकारका संहनन क्यों रहा? आयु और शरीरके प्रमाण आदिके समान संहननोंमें भी परिवर्तन होना जरुरी था किन्तु वैसा न हुआ। इसलिये यही स्वीकार करना पड़ेगा कि जिस क्षेत्रकी उसकी सामग्रीके अनुसार जैसी व्यवस्था होगी वैसी ही स्वीकार करनी पड़ेगी। भोगभूमिमें तीव्र पुण्योदयके कारण स्त्रियोंके प्रथम संहनन ही होता है और कर्मभूमिमें चौथा आदि है। यदि यह कहाजाय कि भोगभूमि में जिसप्रकार स्त्रियोंके पहला संहनन होता है उस प्रकार कर्मभूमिमें भी होनी चाहिये तो वहांपर हमारा इतना ही कहना बस होगा कि सेठीजी भी इसबातको स्वीकार करेंगे ही कि कर्मभूमियोंकी स्त्रियोंकी अपेक्षा भोगभूमियोंकी स्त्रियोंका पुण्य अत्यन्त तीव्र है और भोगभूमिकी स्त्रियोंको जो अनुपम सुख प्राप्त है कर्मभूमिकी स्त्रियोंको उसका शतांश भी नही तब भोगभूमिकी स्त्रियोंके समान कर्मभूमिके स्त्रियोंके भी वज्रऋषभ नाराच संहनन होना चाहिये यह कथन कभी युक्तिरूपी खड्गधारा पर ज्योंका त्यों कायम नही रह सकता।

अगणित स्त्रियां भोगभूमिमें उत्पन्न होती है अगणित देवांगना होती हैं अगणित राजाओंकी रानी आदि होती हैं और अगणित स्त्रियां यहां दरिद्र बदसूरत भी होती है। वहांपर यह कोई भी तर्क नहिं उठा सकता कि सब भोग भूमिकी ही वा देवांगना ही आदि क्यों नहिं हुई? भेद क्यों हुआ? क्योंकि उपार्जित कर्म किसीका सगा नहीं जैसा कर्म होगा उसीके अनुसार फल भोगना होगा। भोग भूमिकी स्त्रियोंके विशिष्ट शरीर नाम

कर्मका उदय होता है इसलिये उनके वज्र ऋषभनाराच संहनन होता है। कर्म भूमिकी स्त्रियोंके उतना विशिष्ट शरीर नाम कर्मका उदय नहिं होता इसलिये उनके अंतके तीन ही संहनन होते हैं। यहांपर यह भी तर्क नहिं उठाई जासकती कि भोग भूमिकी स्त्रियोंके वज्र ऋषभ नाराच और कर्म भूमिकी स्त्रियोंके ऊपरके तीनों संहननों का अभाव यह बात कर्म प्रक्रिया पर निर्भर नहीं, क्योंकि शास्त्रोंमें यह लिखा है कि अमुक अमुक उत्तमोत्तम आचरणोंसे भोगभूमिकी प्राप्ति होती है इत्यादि अन्यथा यह विधान नहि होना चाहिये था।

असली बात यह है कि इस समय प्रायः पुरुष और स्त्रियां समान संहननके धारक हैं तथा प्रत्येक संहनन में उत्तम मध्यम जघन्यका विभाग कायम रहनेके कारण कुछ विशिष्ट नामकर्मके उदयसे एकही संहननमें स्त्रीका संहनन उत्तम और कुछ हीन नाम कर्मके उदय से उसी संहननमें पुरुषका संहनन जघन्य होनेसे स्त्रियोंमें कुछ बलवत्ता और पुरुषोंमें कुछ निर्बलता दीख पड़ती है इसलिये हमारे संठाजीके मस्तक पर यह भूत सवार होगया है कि जब स्त्रियोंमें पुरुषोंकी अपेक्षा कुछ भी कमी नहि मालूम पड़ती है तब स्त्रियोंको संहनन आदि शक्तियोंमें पुरुषोंकी बराबर न बतलाना जैनाचार्योंका घोर पक्षपात है परंतु शांतिपूर्वक यदि वे यह विचार करलें कि प्रायः इस समयमें स्टपाटिक संहननकी अधिकता है और उसके उत्तम मध्यम जघन्य भेद होनेके कारण किसी स्त्रीके उत्तम स्टपाटिक संहनन तो किसी पुरुषके जघन्य स्टपाटिक संहनन रहनेके कारण स्त्री पुरुषोंमें समानता किंवा स्त्रियोंमें पुरुषोंकी अपेक्षा कुछ सबलता और पुरुषोंमें स्त्रियोंकी अपेक्षा निर्बलता है तो उनको कभी पुरुष स्त्रियोंको समान कहने का अवसर न मिले। क्योंकि समान संहननमें ऐसा होना संभव है। दूसरे यह कोई नियम भी नहीं कि स्त्रियां समान संहननमें पुरुषसे कम हो हों किंतु यह नियम है कि कर्म भूमिका पुरुष छहो संहनन प्राप्त कर सकता है और स्त्री तीनसे अधिक नही इसलिये जिस तरह एक ही सीटपर बैठने वाला एक पवित्र ब्राह्मण पुरुष और दूसरा चांडाल पुरुष आकार प्रकार आदिसे समान मालूम पड़ता है किंतु ब्राह्मण कहलवानेका सौभग्य ब्राह्मण ही को हो सकता है चांडाल को नही क्योंकि ब्राह्मणके उच्च गोत्रका बंधन और चांडालके नीच गोत्रका बंधन पड़ा हुआ है उसी प्रकार संसारमें प्रायः साथ रहनेवाले स्त्री पुरुषके जोड़में तीव्र नाम कर्मके संचयकी योग्यता रहनेके कारण पुरुष छहों संहननका धारक हो सकता है और स्त्री उतना तीव्र नाम कर्मके संचयकी योग्यता न रखनेके कारण कर्म भूमिमें तीन संहननोंसे अधिक संहनन प्राप्त नहि कर सकती।

स्त्री क्यों छहों संहननके योग्य कर्म भूमिमें नहीं हो सकती इस प्रश्नका समाधान यही है कि स्त्री पर्याय पुरुष पर्यायसे निंद्य है। भगवान समंतभद्रका वचन है कि—

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि
दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रतां च ब्रजंति नाप्यव्रतिकाः

अर्थात्—जो जीव व्रतका न भी आचरण करनेवाला है परंतु है सम्यग्दृष्टी, वह नारकी तिर्यंच नपुंसक स्त्री खोटे कुलोंमें जन्म लेनेवाला लूला अपाहिज आदि अल्पायु और दारिद्री नहि हो सकता। इसलिये पुरुषके जिस प्रकार शुभ कर्मका उदय हो सकता है उस प्रकार स्त्री के नहीं। यदि स्त्रीके पुरुषकी बराबर शुभ कर्मका उदय होना होता अथवा उसे मोक्ष प्राप्त होनी होती तो वह स्त्री ही क्यों होती? पुरुष होजाती। इसलिये जिस प्रकार घोड़ा गधा सिंह गीदड़ आदि स-

मान जातीय तिर्यंच होनेके कारण समान पुण्यात्मा नहिं गिने जाते गधा गीदड़ आदि घोड़ा सिंह आदिकी सामर्थ्य को नहिं प्राप्त कर सकते उसी प्रकार मनुष्य त्वकी समानता रहनेपर भी स्त्री पुरुषके समान अधिकारिणी नहिं हो सकती। स्त्री की अपेक्षा अधिक पवित्र पर्यायके धारण करनेके कारण पुरुष छहों संहननोंकी प्राप्ति की योग्यता कर्म भूमिमें रखता है और पुरुष की अपेक्षा निंद्य पर्याय को धारक स्त्री कर्म भूमिमें तीन ही संहननों की प्राप्तिकी योग्यता रखती है। इसलिये स्त्रियां भी पुरुषोंकी बराबर मोक्षकी अधिकारिणी हैं यह बात युक्तिकी कसौटीपर घिसनेपर झूठी ही साबित होती है।

आगे चलकर सेठीजीने लिखा है "कि वज्र ऋषभ नाराच तो पुण्यवानोंको ही दिगम्बर मतसे प्राप्त हो सकता है जन साधारणको नहीं किन्तु स्त्रियोंमें भी अभिमत अर्धनाराच कील और सृपाटिक तीनोंमें अल्प बहुत्व मानना पड़ेगा और इसके साथ यह भी लाजमी तौरसे स्वीकार करना पड़ेगा कि जो स्त्रियां अर्धनाराच संहनन वाली होंगी वे कीलकी और स्रपाटिका संहनन के धारक पुरुषोंसे संहनन शक्तिमें बढ़ी हुई थी और हजारों पुरुष उससे हीन बली थे तदुपरांत कर्म भूमिमें तीन काल होते हैं ४ था ५ वा ६ ठा परंतु पांचवे और छठे कालमें तो ऊपरके तीन संहननों का विच्छेद पुरुषके भी माना है यहां तो स्त्री पुरुष दोनों बराबर हैं। तब स्त्रियां पुरुषोंसे हीन संहनन वाली ही होंगी ऐसे मतको तो कहीं भी ठहरने को जगह नहीं रही" इत्यादि

उत्तरमें निवेदन है कि ऐसा कोई नियम नहि माना कि संहननोंमें समान योग्यताके रखनेवाले पुरुष स्त्रियोंमें पुरुषों की संहनन शक्ति उत्तम ही हो और स्त्रियों को जघन्य ही हो किंतु एकही इसी संहननमें पुरुषकी जघन्यता और स्त्रियोंके उत्तमता भी हो सकती है परंतु इस तरहका मेल मिलाने या स्त्रीकी अपेक्षा पुरुषमें संहनन शक्ति कम सिद्ध करनेसे यह कभी सिद्ध नहिं हो सकता कि पुरुषोंके समान स्त्रियां भी छहों संहननोंकी धारक हैं किंतु छहों संहननों को प्राप्तिका सौभाग्य पुरुषको ही प्राप्त हो सकता है स्त्रियों को नही। लोढ़ घरानेका ही लोढ़ हो सकता है लोढ़ जातिसे अतिरिक्त जातिका पुरुष लोढ़ घरानेवाले पुरुषसे अधिक भी क्यों न योग्यता रखता हो बिना लोढ़ घरानेका कुछ सम्बन्ध रक्खे वह लोढ़ नहिं हो सकता। पुण्यकी तीव्रता वा प्रशस्त पर्यायकी प्राप्ति भी तो कोई चीज है। स्त्री साधारण पुरुष साधारणके समान पुण्यशाली तो युक्तिसे भी सिद्ध नहिं हो सकती। आगे चलकर सेठीजी ने लिखा है कि।

'अब हम आम्नाय ग्रन्थ-प्रमाण पर विचार करते हैं १४ गुणस्थान, जीवसमास, मार्गणा, कर्मोंकी मूल और उत्तर प्रकृति एवं उनके बन्धोदय सत्त्व इत्यादि का सविस्तर वर्णन कर्णानुयोगके शास्त्रोंमें है। वर्त्तमानमें दिगम्बराम्नायमें 'गोम्मटसार' ही इस विषय का उपलब्ध है, जो नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्त्ती का रचा हुआ है। उसी की दो तीन टीका टिप्पणियां तो अन्य विद्वानोंने लिखी हैं परन्तु उपर्युक्त विषयों पर किसी और आचार्य्य वा विद्वान्का लिखा हुआ स्वतन्त्र ग्रन्थ अभी तक प्रगट नहीं हुआ। पाठकोंको यह प्रगट ही है कि जीव और कर्म्मका विषय न तो कोई कथा ही है न जीवन चरित्र ही, इसमें काव्यालङ्कार को जरा भी जगह नहीं। जैनधर्म्म की यह कर्म फिलासफी है, जैनके तीर्थंकरों ने लोकके ज्ञानविकास में स्वानुभव प्राप्त इस सूक्ष्म तत्त्वज्ञानको प्रगट करके मानव समाजका जो अनन्य कल्याण किया उसका

प्रमाण इसी जीव और कर्म्म विषयक करणानुयोग कथनसे मिलता है। प्रथमानुयोगके ग्रन्थ जैसे पद्मपुराण महापुराण आदिमें रात दिन का फर्क है एवं असम्बद्ध बातोंसे भरे हुए हैं वह बात यहां नहीं है। यह शृङ्खलाबद्ध तात्त्विक विषय है जिसमें कोईभी बात बेजोड़ और बिना सिर पैरके नहीं हो सकती। हर एक बात के हेतु और सम्बन्ध मिलते हुए जायंगे। तो भी इसमें छद्मस्थों का छाप न लगी हो अथवा अन्य मतावलम्बियोंके प्रभाव और संसर्ग तथा प्रचलित ज्ञान विज्ञान का असर बिल्कुल ही न आया हो ऐसा सर्वथा नहीं है। इसमें आचार्यों का मतभेद कई बातोंमें होता रहा है। अतः इस मतभेद और मेल मिलावका ऐतिहासिक पता लगाना कारणानुयोगमें बहुत ही कठिन है, क्योंकि जितना बारीक और सूक्ष्म—बद्ध यह विषय है उतनी ही बारीकीसे इसमें पर संस्कार और ज्ञान तथा स्वेष्टमत का मिश्रण हुआ है एवं उसका सम्बन्ध मिलाया गया है। यह कठिनता ऐसी अवस्थामें और भी अधिक बढ़जाती है जब कि इस विषयका एकही आचार्य्यका रचा हुआ ग्रन्थ प्राप्त हो और उसके पहिले वा पीछे किसी अन्य का लिखा हुआ तद्विषयक कोई भी ग्रन्थ न मिले। यद्यपि खूब मनन करनेसे इसका तो अनुभव रूप निश्चय हो जायगा कि अमुक २ बातें अन्य मतावलम्बियोंसे समाविष्ट हुईं, अथवा प्रभावशाली आचार्योंने स्व—कषाय वश निजमत ही का पोषण किया अन्याचार्य्य के मत को गौणत्वमें रख दिया तथा दो मत भेदोंमें बहु—मान्य और अल्पसंख्यामान्य कौनसा था, तथापि यह निर्णय होना तो दुःसाध्य है कि ऐसा कब हुआ, उसके पूर्व में क्या तत्त्व-ज्ञान था और यह मिश्रण वो भेद कैसे? आम्नाय—भेद की बातों को निकालदें तोभी करणनुयोगमें कई बातें ऐसी हैं जिनका मेल कर्म—तत्त्व ज्ञानसे नहीं मिलता।"

उत्तरमें निवेदन है कि आपने जो यह लिखा है कि 'वर्तमानमें दिगंबराम्नायमें गोम्मटसार ग्रंथ ही इस विषयका उपलब्ध है जो नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्तीका लिखा हुआ है उसीके ऊपर भिन्न २ आचार्यों की टीका टिप्पणियां तो मौजूद हैं परंतु किसी आचार्यका स्वतंत्र ग्रंथ नहीं इसलिये नेमिचंद्र आचार्यके पहिले वा पीछे बना सिद्धांतका कोई ग्रंथ न होनेसे नेमिचंद्र आचार्यके वचनोंपर विश्वास करनेमें कठिनाई उपस्थित होजाती है' यह बात सर्वथा अयुक्त और आंख मूंदकर लिखी गई है। क्या सेठीजी! आपने धवला जयधवला आदि टीकाओंका नाम नहि सुना? ये टीका किन ग्रंथोंपर हैं? और उन ग्रंथोंके कर्ता तथा इन टीकाओंके विधाता कौन २ आचार्य हैं? और वे नेमिचंद्राचार्यसे पूर्वकालीन हैं वा उत्तर कालीन? इस बातपर जरा भी विचार नहि किया! धन्य है। कर्मकांडकी भूमिका लिखते हुए श्रीयुक्त पं० मनोहरलालजी शास्त्रीने लिखा है कि (नव) भद्रबाहु स्वामीके शिष्योंमेंसे एक धरसेन नामके मुनि हुए जिनको आग्रायणी नामक दूसरे पूर्वमें पंचम वस्तु महाधिकारके महाप्रकृति नाम चौथे प्राभृत अधिकारका ज्ञान था सो इन्होंने अपने शिष्य भूतबली और पुष्पदंत इन दोनों मुनियोंको पढाया इन दोनोंने षट् खंड नामकी सूत्र रचना कर ग्रंथमें लिखी फिर उन षट् खंड सूत्रोंपर अन्य आचार्योंने उनके अनुसार विस्तारसे धवल महाधवल जयधवलादि टीका ग्रंथ रचे। उन सिद्धांत ग्रंथोंको प्रातः स्मरणीय भगवान नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य महाराजने पढकर श्रीगोम्मटसार लब्धिसार क्षपणासारा-

दि ग्रंथोंकी रचना की। यही बात चर्चासमाधानमें विस्तारसे लिखी है और विद्वद्रत्नमालाके रचयिता श्रीयुक्त पं० नाथूरामजी प्रेमीने भी लिखा है कि कषाय प्राभृतपर ६०००० श्लोकोंमें वीरसेन आचार्यने जयधवला टीका रची। उसी कषाय प्राभृतपर गुणधरमुनिकृत ५०३ श्लोकोंमें विवरण सूत्र, ६००० श्लोकोंमें यतिवृषभाचार्यकृत चूर्णिसूत्र और ६००० श्लोकोंमें प्रायः बप्पदेवकृत वार्तिक हैं इसलिये यह बात सर्वथा निश्चित है कि गोम्मटसारके जन्म के पहिले अन्य आचार्योंके स्वतंत्र सिद्धांत ग्रन्थ किंवा टीका टिप्पणी बन चुके थे तथा उन्हींको पढ़कर नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्तीने गोम्मटसारका संग्रह किया था फिर न मालूम गोम्मटसारके सिवाय समस्त सिद्धांतोंका अभाव बतलानेमें क्या गौरव समझा? क्या सेठीजीने इस बातपर विचार न किया कि प्रायः बहुतसे लोग सुनकर वा मूडबिद्री जाकर स्वाध्याय कर यह जानते हैं कि जयधवल आदि हमारे सिद्धांत ग्रंथ मौजूद हैं और पुष्पदंत भूतबलि आदि धुरंधर महामुनियोंकी वे कृतियां हैं तब मैं कैसे उनको नास्ति बतलाऊं? ठीक ही है जब मनुष्य कदाग्रहकी धुनिमें मस्त हो जाता है तब उसकी बुद्धि निहायत संकुचित हो जाती है उसे पूर्वापरका कुछ भी ध्यान नहि रहता। सेठीजीपर स्त्री मुक्ति सिद्ध करनेका भूत सवार हो गया भला वे अन्य सिद्धांत ग्रंथोंके पते लगानेका ख्याल क्यों करने लगे?

तथा गोम्मटसारके अंदर ही श्रीमान् नेमिचंद्राचार्यने माधवचंद्र त्रैविद्य देव आदिकी गाथाओंका उल्लेख किया है इससे भी यह बात सिद्ध है कि गोम्मटसारका सिद्धान्त केवल नेमिचंद्र आचार्यका सिद्धान्त नहीं वह गुरुपरंपरा उनके समानकालीन आचार्य और पूर्वाचार्योंद्वारा रचित सिद्धांत ग्रंथोंका भी सिद्धांत है तब न मालूम सेठीजीने गोम्मटसारके सिद्धांतको केवल नेमिचंद्राचार्यका सिद्धांत बतलाकर गोम्मटसारके सिद्धांतको झूठा करनेके लिये क्यों नीच साहस कर डाला?

तथा गोम्मटसार संग्रह ग्रंथ है और इसका दूसरा नाम पंच वस्तु भी है। संग्रह ग्रंथका अभिप्राय यही है कि जिसमें अनेक आचार्योंके मतका संग्रह हो। इस रीतिसे भी गोम्मटसार संग्रह ग्रंथ होनेके कारण आचार्यवर नेमिचंद्रका स्वतंत्र ग्रंथ नहि हो सकता। कई आचार्यों द्वारा निर्मित होगा फिर न मालूम गोम्मटसार केवल नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्तीका मनोगढंत सिद्धांत है इस बातके लिखनेके लिये सेठीजीकी कलम क्यों आगे बढी। संग्रह ग्रंथ समझकर भी उसे एकही आचार्यका सिद्धांत बतलानेमें क्यों उनका दिल न दहलाया।

यह बात नहीं कि सेठीजीको इस बातका पता न हो कि यह संग्रह ग्रंथ है क्योंकि उन्होंने खुद उल्लेख किया है कि यह संग्रह ग्रंथ है। इसलिये जब यह बात सर्वथा निर्विवाद सिद्ध है कि गोम्मटसारके जन्मके पहले और पीछे भी सिद्धांत ग्रंथोंकी रचना हुई है। स्वतंत्र किंवा अकेला गोम्मटसार ही सिद्धांतका ग्रंथ नहीं तब सेठीजीका अपने निंदित उद्देशकी पुष्टिकेलिये किंवा जैनमात्र को रिझानेके लिये आंखमूंदकर गोम्मटसार को स्वतंत्र ग्रंथ बतलाना उसके आगे पीछे धुरंधर विद्वानोंके बने हुए ग्रंथोंका लोप कर देना अविचारित रम्यता है।

सेठीजी! आपने तो जैनहितैषीके संपादकसे भी जोरदार काम कर डाला क्योंकि—

तत्त्वार्थसूत्रव्याख्यानगंधहस्तिप्रवर्तकः

स्वामी समंतभद्रोऽमूहेवागमनिदर्शकः । वि० कौ० महाभाष्यस्याद्वादाप्तमीमांसा प्रस्तावे स्वामिसमंतभद्रा . न्या. दी.

"शास्त्रावताररचितस्तुतिगोचराप्तमीमांसितं" अष्टसहस्री आदि प्रधान विद्वानोंके मतानुसार गंधहस्तिमहाभाष्यका अस्तित्व सिद्ध होता है किंतु विशंकट यवन राज्य आदि की कृपाके कारण उपलब्धि-न होनेसे उन्होंने उसका सर्वथा अभाव सिद्ध करदिया और अपनी चटकीली लेखनीसे यह जोरदार जाहिरात करदी कि समंतभद्राचार्यका गंधहस्ति महाभाष्य नामका कोई ग्रंथ था ही नहीं किंतु आपने तो जयधवल महाधवल आदिसिद्धांत ग्रंथराजोंके मोजूद होनेपर भी गोमट सारके सिवाय समस्त सिद्धांत ग्रंथोंका अभाव कह डाला। शाबास !!! श्रद्धा ऐसी ही होनी चाहिये। स्वतंत्र विचार भी ऐसेही होने चाहिये नहि तो दिगंबर जैनाचार्योंको निर्बुद्धिबतलाने और उनकी कृतियोंके वेधडक अभाव सिद्ध करनेके लिये कलम कैसे चलेगी ?

गोम्मटसारमें अन्य अन्य सिद्धांतोंके तुलनात्मक सिद्धांत चाहें अन्य ग्रंथोंमें न मिलें क्योंकि इस समय बहुतसे ग्रंथोंकी उपलब्धि नहीं किंतु स्त्रीमुक्ति के निषेधका सिद्धांत आगे पीछेके समस्त आचार्यों द्वारा सम्मत है । इस लिये चाहें किसी ग्रंथका लोप और किसी ग्रंथको अप्रमाण बतलावें दिगंबर संप्रदाय से कभी स्त्रीमुक्तिकी सिद्धि नहि हो सकती ।

करणानुयोगकी तारीफ करते हुए सेठीजीने आगे चलकर लिखा है—"प्रथमानुयोगके ग्रंथ जैसे पद्मपुराण महापुराण आदिमें रातदिनका फर्क है एवं असंबंध बातोंसे भरेहुए हैं वह बात करणानुयोगमें नहीं। यह शृंखलाबद्ध तात्त्विक विषय है तो भी इसमें छद्मस्थोंकी छाप न लगी हो अन्य मतावलंबियोंका प्रभाव संसर्ग प्रचलित ज्ञान विज्ञानका असर बिलकुल ही न आया हो ऐसा सर्वथा नहीं है । क्योंकि जितना बारीक और सूक्ष्म बद्ध यह विषय है उतनीही बारीकीसे इसमें परसंस्कार और ज्ञान तथा स्वेष्टपतका मिश्रण हुआ है" इत्यादि

देखो पाठक ! लिखने की छटा ! उत्तरमें निवेदन है कि आपने जो प्रथमानुयोगको असंबद्ध बतलाया है यह आपका भ्रम है । यदि गहरा विचार किया जायगा प्रथमानुयोगका क्या उद्देश है ? किस अनुपम प्रभाव डालनेके लिये प्रथमानुयोगकी संकलना हुई थी ? उसके साथ तात्त्विक संबंध कितना है ? जिस समय यह बात ध्यानमें लाई जायगी उससमय आपकी भ्रांति दूर हो जायगी । बाबू सूरजभानजी वकील प्रथमानुयोगके शास्त्रोंके बारेमें क्या लिख रहे हैं उनका लिखना कहांतक सत्य है और उनका उत्तर किस छानबीनके साथ दिया जाता है । उस पर जरा ध्यान देना होगा। सूरजभान जी वकीलकी सीमासे बाहिर तारीफ और वीतरागी आचार्योंकी निंदा जैसी कि स्त्रीमुक्ति लेखकी शुरुआतमें आपने लिखी है, आंख मूंदकर करनी नितांत अज्ञानता है। प्रथमानुयोग कहते ही कहा है कि जो स्वपरका ज्ञान रखते हैं वे हमें पढ़ें । समयसार आदि ग्रंथ उनके लिये तो पठनीय हैं किंतु जिनको कुछ भी ज्ञान नहीं केवल संसारकी विभूतिको ही परमात्माकी विभूति समझते हैं उनके लिये प्रथमानुयोग कार्यकारी है, प्रथमानुयोगसे उन्हें चक्रवर्ती आदिकी विभूति सुन अपनी विभूति तुच्छ जान पड़ती है, तीर्थंकरोंके ममत्व त्याग का उपदेश सुन चित्तमें धनादिकसे वैराग्य भावना उत्पन्न हो जाती है। महापुरुषोंके चरितसे आत्मीय गौरव जागृत होता है । यद्यपि कुछ २ आचार्यों के मतभेद उनमें बेशक हैं परंतु उन मतभेदोंमें आचा-

योंका दोष नहीं उनकी स्मृतिका दोष है। जिसको स्वयं आचार्य भी स्वीकार करते हैं। इससे बढ़कर हृदय की क्रूरता और भ्रष्टता क्या होगी कि जिस दोषका स्वयं आचार्य स्वीकार करते चले जाते है तो भी उन्हें निर्बुद्धि समझा जाता है और उनके विषयमें ऊटपटांग लिखकर ही अपनी विद्वत्ताका अंत समझा जाता है। महानुभाव सेठीजी! जरा विचारो कि प्रथमानुयोग किनके लिये है? उनसे क्या हित है? किसी की देखा देखी उनकी निंदापर कमर कसना घोर अन्याय है। फिर भी हम इस बातको जब ठीक माने कि दिगंबर संप्रदायमें ही प्रथमानुयोगके शास्त्र हों किंतु जिस मत का आपके हृदयमें गौरव है उस मत की पहिली सीढी प्रथमानुयोग ही है तथा जैनेतर शास्त्रभी प्रथमानुयोगके हैं। एवं बहुतसे मत तो ऐसे हैं जिनकी नींव प्रथमानुयोगपर ही है तत्त्वचर्चाका कोई ग्रंथ नहीं इसलिये प्रथमानुयोगको असंबद्ध और अकार्यकारी बतलाना ठीक नहीं। हमारा तो यह पक्का ख्याल है कि प्रथमानुयोगके द्वेषी जिस समय अन्य मतोंके प्रथमानुयोग और दिगंबर जैन मतके प्रथमानुयोगोंकी तुलना करेंगे उस समय उन्हें दिगंबर जैन मतके प्रथमानुयोगोंका महत्त्व जान पडेगा परंतु उन्हें कुछ परिश्रम करना होगा। कायदे की बात है छिद्रान्वेषी मनुष्योंको थोडाभी दोष महादोष जानपडता है और उस थोडे दोषके ज्ञानसे समस्त आम्नायको खराब बतलानेमें उन्हें संकोच नहिं होता। पंजाब मेल किंवा हवाई जहाजमें बैठनेवाले यात्रियोंको उसकी इतनी देरी खटकती है वे भी तो आंख खोलते ही जिस प्रकार दिनमें प्रकाश दीख पडता है उस प्रकार कलकत्तेसे पंजाब पहुचना चाहते हैं। अस्तु।

सेठीजीने जो यह लिखा है कि ज्ञान विज्ञान या स्त्रैष्ट मतका मिश्रण हुआ है यह बातभी अयुक्त है क्योंकि मिश्रण उस समयमें स्वीकार किया जा सकता है जब गोम्मटसार का अभिमत सिद्धांत दूसरे सिद्धान्त ग्रंथों में न हो, केवल गोम्मटसार ही में हो सो तो है, नहीं जो बात गोम्मटसारमें है वही उसके पहिले वा पीछेके सिद्धान्तोंमें निर्धारित है कारण गोम्मटसार संग्रह ग्रंथ है जबरन मिश्रणकी डींगमारनेसे आस्तिकोंको गोम्मटसार पर अविश्वास नहिं हो सकता। बात असली यह है कि स्त्रियोंके तीन ही संहनन होते हैं यह बात सेठीजी को सिवाय गोम्मटसारके और किसी ग्रंथमें नहिं मिली इसीलिये उन्होंने गोम्मटसारमें परमतका मिश्रण सिद्ध करडाला किंतु जयधवल आदि ग्रंथोंका सेठीजीको स्मरण न रहाकि उसमें यह विषय है अथवा गोम्मटसार जिस प्रकार स्त्रियोंको मुक्तिका उपदेश नहिं देता उसी प्रकार गोम्मटसारके आगे किंवा पीछेके ग्रंथभी स्त्रियोंको मुक्तिका उपदेश नहिं देते आश्चर्य है विचार अथवा अन्य ग्रंथोंका अवलोकन न कर लोगोंको क्यों इसप्रकार लिखनेमें संकोच नहिं होता।

आपने यह जो लिखा है कि—यद्यपि खूब मनन करनेसे इसका तो अनुभव रूप निश्चय हो जायगा कि अमुक अमुक बातें अन्य मतावलंबियोंसे समाविष्ट हुई अथवा प्रभावशाली आचार्योंने स्वकषायवश निजमत ही का पोषण किया अन्याम्नायके मतको गौणत्वमें रख दिया तथा दो मत भेदोंमें बहुमान्य और अल्प संख्या मान्य कौनसा था? इत्यादि।

उत्तरमें निवेदन है कि आप हजार बार मिश्रण को कहैं, हम कभी नहिं स्वीकार कर सकते क्योंकि गोम्मटसारका कोई वचन हमें केवल नेमीचंद्र आचार्य

ही को कृति नहिं मालूम होगी, गोम्मटसारके पूर्वोत्तर आ ग्रंथ है गोम्मटसारका सिद्धान्त उनमें भी उसी रूपसे निर्दोषित है। फिर तोभी आप गहरा अनुभव क्यों न करो सिद्धान्त बातें असंबद्ध नहिं मालूम पड़ सकती। आचार्यों को जो आपने स्वपायका पोषक ठहराया है यह बात अत्यन्त हठग्रस्त है क्या आपके मतानुसार वे स्त्रियों को मोक्षकी आज्ञा दे देते अथवा आपके समान चारित्री मित्रोंके अनुसार विधवा विवाह वर्ण संकरका उपदेश अथवा चमार भंगी चूहरों को ब्राह्मण वैश्य आदिके समान पूजाधिकार आदिका उपदेश देते तब आप उन्हें निष्पक्षपात मानते? धन्य है आश्चर्य है जिस प्रकार अन्य मतावलंबी मुनि जिसभी ग्रंथका निर्माण करते हैं उसपर अपना कब्जा रखते हैं अपने मुखसे निकले हुए वचनोंको हो सर्वज्ञका वचन मनाना चाहते हैं। और अपने समान धर्मी आचार्योंका मत भी अहंकारमें मग्न हो खंडन कर डालते हैं किन्तु जैनाचार्य अपनी गुरु परंपराको हो आश्रय करि ग्रंथका निर्माण करते हैं। जो बात समझमें नहिं आती उसे साफ लिख देते हैं कि यह समझमें नहिं आई। स्मृति दोषसे दो आचार्यों के मतभेद पर अपनी राय नहि देते भूल होनेमें अपनी स्मृतिका दोष बतलाते हैं उनपर भी जबरन लांछन लगाया जाता है। हमारा विश्वास है हमारे आचार्यों सरीखे वीतराग ग्रंथकार शायद ही किसी संप्रदायके होंगे। परंतु इस समय लोग इन ग्रंथकारोंको भी अपनेसे अधिक बुद्धिमान न मानने लगे तब इन विचारोंको विद्वत्ता क्यों उनको आंखपर आने लगी?

(क्रमशः)

आखिर सुधरे!

(लेखक—श्रीयुत धन्यकुमार जैन 'सिंह')

वीरभानुजी इकतीस वर्ष नौकरी कर पेन्सन प्राप्त हो बंबई आ डटे। छब्बीस वर्ष मुन्सिफी और अंतके पांच वर्ष सबॉर्डिनेट जजीयती की थी। अतएव इनने बहुत कुछ द्रव्य संचय किया है इसमें संदेह नहीं।

इन इकतीस वर्षोंमेंसे उनने सिर्फ एक बार कन्याके विवाहके समय डेढ़ महीने की छुट्टी ली थी—और नहीं। किसीने कभी उनको अस्वस्थ होते नहीं देखा, इसका कारण लोग कहते हैं, वह अत्यधिक मितव्ययी हैं। निन्दक गणोंने उनका नाम "कंजूस मक्खीचूस" रख छोड़ा है। आहार-व्यवहार चाल-चलन उनका ऐसा साधारण नहीं है जिसमें किसी भांतिका अपरिमित धन खर्च करना पड़े। इसीलिए ही शायद कभी उन्हें 'डाक्टर' को आमंत्रण करनेकी जरूरत नहीं पड़ती है।

सागर जिलेमें किसी छोटेसे गांवमें उनकी एक मढ़ैया है। वह कभी घर नहीं जाते हैं। बंबईके निकटवर्ती किसी स्थानमें उन्होंने चार कट्ठा जमीन खरीदकर एक छोटासा मकान बना लिया है। मित्र दोस्त जब छोटे मकानकी बात छेड़कर कुछ कहते हैं तब वीरभानुजी यह उत्तर देते हैं–'अब किसके लिये बड़ा मकान बनवाऊं। लड़की तो पार उतार ही दी एक मात्र लड़का है उसके लिये यही काफी है।' शायद लड़कीके ब्याहके बाद वे इसको भी बनवाते या नहीं संदेह था क्योंकि वे कहा करते हैं कि, लड़कीके विवाहमें उनका सर्व-

स्व चला गया ! उनके सर्वस्वकी जांच हमने नहीं की पर उनके आत्मीय अंतरंग तो यही कहते हैं कि 'वीरभानुजीने अपनी लड़कीके विवाहमें पांच-सौसे अधिक नहीं लगाये और मकान बनवानेमें बहुत लगा होगा तो तीन चारहजार रुपये लग गये होंगे।

उनके यार दोस्तोंके हिसाबसे जब उनने पेन्शन ग्रहण की थी, तब उनका संचित अर्थका परिमाण अस्सी हजार रुपया होगा। और दुष्टजनोंके गीतोंकी व्याख्या यदि सच है तो सातहजार रुपये और समझा लकर कुल सत्तासी हजारकी हैसियत समझिये।

अवसर प्राप्त वीरभानुजी सब-जज महाशय जब 'पेन्शन' लेकर अपने बनाये हुए नये मकानमें बैठे तब लोगोंकी धारणा थी कि अब जज साहब धर्म कर्म में मन देंगे, दिल खोल कर खर्च करेंगे। परंतु उसका कोई चिन्ह ही नजर न आया। वही पुराना कायदा ज्यों का त्यों ही विद्यमान रहा। खुद चारसौ रुपये पेन्शन पाते हैं। पुत्र सुदर्शनको भी हाईकोर्टमें एक नौकरी लगा दी है। वह भी मास बीतते ही दोसौ रुपये घर लाता है। परिवार भी ऐसा कुछ ज्यादा नहीं है स्वयं उनकी गृहिणी पुत्र और पुत्रवधू वह भी प्रायः वर्ष में पांच महीने मायके रहती है। रही लड़की सो वह वर्ष छह महीनेमें एक आध बार दस पांच रोज रह कर अपने घर चली जाती है। खर्च वही पहिलेकी भांति वही मुफ्लसी चाल !

वीरभानुजीकी गृहिणी हाकिमकी पत्नी हैं। पर वे बिलकुल ही पुराने ढंगकी हैं। स्वामी इतने रुपयेका रुजगार करते हैं पर स्त्रीके हाथ पर किसी दिन एक फूटी कौड़ी भी नहीं रखते। घरका खर्च सब स्वयं कर्त्ता करते हैं कर्म (गृहिणी) भी स्वाधीन भावसे दो चार पैसे खर्च कर सकती है-यह विचार जज साहबने कभी नहीं किया। गृहिणी भी ऐसी हैं कि इस सुदीर्घ कालके किसी एक समयमें उनको पैसाकौड़ी मांगनेकी जरूरत भी नहीं पड़ी। कभी किसी मेला-ठेलामें भी जजसाहबने फूटी कौड़ी नावेंकी तरफ नहीं लिखी खर्च की तो क्या बात ? धर्मकर्मका उनके ऊपर कुछ दावा ही नहीं था; अदालतमें मुन्सफी करना, घरमें थोड़ा आहार करना और सोना, यही उनके जीवन का कर्त्तव्य कर्म था। पाठ-पूजनादिक कोई भी आफत उनके ऊपर सवार नहीं थी; इनको ये सब झंझट पसंद तो क्या स्वीकार ही नहीं थे। भगवान हैं तो वे अपनी तरह रहें, उनके नाम लेने वा पूजा-स्तुति करनेकी आवश्यकता क्या ? गृहिणीने भी किसी व्रत-उपवासमें दान-ध्यानके लिये उनसे कुछ चाहा नहीं और साहस ही हुआ। जजसाहबने इन इकतीस वर्षोंमें कमसे कम पंद्रह सोलह जिलोंमें भ्रमण किया गृहिणी भी साथमें रहती थीं। उन्होंने अपने मुंहसे यह कभी नहीं कहा कि— 'आज फलाना चीज लाना।" उनकी ऐसी प्रकृति ही न थी। सौभाग्यसे ऐसी गृहिणी मिल गई थी -इस लिये वीरभानुकी जिन्दगी भी अच्छी तरह बीत रही है।

(२)

सुदर्शनकी स्त्रीके बाल बच्चा होने वाला था, इससे उसे अपने मायके भेज दिया। कारण, पहिला संतान होगी, पिता-माताके पास रहना ही अच्छा है। सुदर्शनका व्याह बंबईमें किसी श्रीमन्तके घर ही हुआ था। इस लिये बहूको खूब यत्नसे रक्खेंगे—यह जज साहबको भरोसा था।

इसी समय (तीन युग बीते बाद) गृहिणीने गृहकर्त्तासे एक अनुरोध किया। एक दिन रातके ८-९ बजे वीरभानु अपने पुत्र सुदर्शनसे बात चीत कर रहे थे,

इसी समय गृहिणीने वहां आकर कहा—"सुनते हो, अब तक मैंने तुमसे किसी दिन कुछ भी कहा नहीं है कोई भी चीज कभी तुमसे मांगी नहीं है। अब एक बात कहूंगी, रक्खोगे या नहीं बताओ ? ,,

वीरभानु सच मुच ही अवाक् हो गृहिणीकी ओर देखने लगे-"यह क्या ! स्वप्न है या—

गृहिणी— 'स्वप्न नहीं है मैं जो कहूंगी मानोगे?'

वीरभानु—'ऐसी कौनसी बात तुम्हें याद आगई?'

गृहिणी— 'मेरी बात रक्खोगे-कहो, तो मैं कहूं नहीं तो जो मैंने आज तक किया नहीं, उसे नहीं करूंगी तो क्या ?'

वीरभानु — 'ऐसी क्या बात है ? पहिले कहो भी तो सही। करने लायक काम होगा तो क्यों न करूंगा,

गृहिणी —"सुनो ! इकतीस वर्ष हुए, ऐसी जगह नहीं जहां तुम्हारे साथ मैं नहीं गई। परन्तु कभी कोई तीर्थ यात्रा मेरी नहीं हुई और न व्रत उपवास ही हुआ। दूसरे जन्मकी बात भी कभी नहिं विचारी। अब तीसरापन आया इसीसे कहती हूं।'

वीरभानु—'अच्छी बात है तुम्हारा मतलब क्या है कहो न !'

गृहिणी— 'और कुछ भी नहीं मेरे बड़ी मनमें है कि इस साल शिखरजी की यात्रा कर आऊं। आज तक तो कुछ कर न सकी आगेकी अब आशा भी कम है।'

वीरभानु-हूं तुमने तो बड़ा जबर प्रस्ताव पेश कर डाला ! यह सब धर्म कर्मका खयाल कभी तो तुम्हारे मगजमें नहीं घुसा था, आज यह क्या कह डाला ? मेरा खयाल था जैसा मैं हूं धर्म-कर्म कुछ नहीं मानता - वैसी ही तुम होगी अच्छा तीर्थ क्या है ? कुछ नहीं। झूठ मूठको फिजूल खर्च करना और तकलीफ उठाना। तुम्हारे भगवान यदि होंगे भी तो क्या वे एक जगह बैठे होंगे ? हां ! यदि लूले लंगड़े होते तो बात दूसरी थी। तुमतो उनमें अनंत शक्ति बतलाती थी, फिर वे तुमको यहां आकर दर्शन नहीं दे सकते"

गृहिणी— "मैं क्या तुमसे तर्क कर रही हूं ? मैंने एक बात कही है, मनमें आवे तो रक्खो, नहीं तो—

वीरभानु — "मैं भी तो बातका जबाव दे रहा हूं। — मुझे तो जानती ही हो, मैं उन सब झगड़ेसे बिलकुल अलग हूं। मैं तो यही पसंद करता हूं —अगर भगवान हैं; और उनका नाम लेने या उनका गुण स्मरण करनेसे कुछ अपना भला होता हो; तो उनका नाम घर बैठे लो—इसमें दमड़ी खर्च नहीं और न कोई तकलीफ ही है। अपने आरामसे जी चाहे जैसे 'भगवान' 'भगवान' करो— मैं नहीं रोकूंगा।'

गृहिणी—'तुम यह सब कह कर टाल दोगे इसी से तो मैं कह नहीं रही थी। मान लिया, तुम ही कुछ नहीं मानते पर मैं तो सब कुछ मानती हूं। मेरा तो तीसरा पन (बुढापा) भी बीत चला, कुछ भी आत्म-कल्याण नहीं कर सकी। इसलिए बड़ी हिम्मत बांध कर तुमसे आज कही थी। यदि तुम्हारी इच्छा नहीं है तो जाने दो, नहीं जाऊंगी !'— इतना कह कर अपनासा मुंह लिए बैठ गई।

वीरभानुजी कुछ विचार कर बोले—हूं ! तुमने तो मुझे खूब उलझनमें डाला ! कभी कुछ कहा नहीं-यह ठीक है; पर अभी जो कह डाला, वह तो असल में ब्याज और ब्याजको ब्याज सब दूसरे जन्मकी जेब बाकी तक जोड़ कर कह डाला। इस ठेलीको कौन सम्हाले !,

गृहिणी—'मैं क्या कुछ-जबरदस्ती कर रही हूं ? तुम्हारी राजी हो—

वीरभानु—'राजी तो अब मेरे वश नहीं रही ' तुमने कभी आग्रह नहीं किया, कभी कुछ कहा नहीं ।' वीरभानु बड़ी कठिनाईमें पड़े उनको झकमार कहना ही पड़ा—''विना कारण सौ डेढ़ सौ रुपये खर्च कराओगी ? सुदर्शनकी मा ! जरा सोचो ! अच्छा अचानक यह इच्छा कैसे हुई, कह सकती हो ?'

गृहिणी--'सुदर्शनकी सासु कल मंदिरमें मिल गई थीं। वे जायगीं, साथमे अपने बड़े लड़केको ले जांयगी और मुझे भी ले जानेके लिये पीछे पड़ी है। इसी लिये तुमसे कह रही हूं, ऐसा मौका तो फिर मिलेगा नहीं।''

वीरभानु—'ऐसी बात है तो तुम अकेली ही जा सकती हो। तुम्हारी तीव्र इच्छा को मैं जबरन रोकता नहीं पर जहां तक बने सोच समझकर खूब सावधानीसे खर्च करना सुदर्शनकी तनखा कल आजायगी, उसीसे—'।

गृहिणी—'मैं अकेली तो जाउंगी नहीं; साथ तुम्हें भी चलना पड़ेगा और सुदर्शनको छोड़ कर भी नहीं जा सकती- ,,

वीरभानु—'' मैं तो उन सबको मानता ही नहीं मैं जाकर क्या करूंगा ? तुम्हारे 'भगवान' पर मेरा विश्वास नहीं , भक्ति भी नहीं। जिसमे मेरी श्रद्धा ही नहीं , वह काम कैसे करूं ?'

गृहिणी—'' मेरी ओर देखकर करो। और क्या कहूं इसमें तो कुछ अधर्म नहीं होगा , कुछ नहीं तो मधुवन जगह तो देख लोगे।''

वीरभानु कुछ देर तक विचारते रहे, बाद बड़ी कठिनाईसे बोले--'' अच्छा, कभी कुछ अनुरोध नहीं किया ; आज एक बात न रक्खूं तो क्या करूं ! जाने दो , कुछ खर्च होगा तो क्या; पर वहां जाकर इसको दो उसको दो मत लगाना। इतने कष्टसे कमाया हुआ रूपया भेषधारी चोर और लुटेरोंको लुटाऊं , यह नहीं होगा !

गृहिणी— ''मैं कुछ भी नहीं कहूंगी। जैसी जैसी तुम्हारी इच्छा होगी वहीं करूंगी-इतने दिन तो ऐसे ही जीवन बिताया है।''

(३)

सुदर्शनकी ससुरालमें खबर पहुंची, वहां सब तैयार ही थे। सेकेण्ड क्लासका एक डब्बा रिजर्व कराया गया। वीरभानु कुटुम्बियोंके सामने इस अतिरिक्त व्ययके लिए कुछ भी आपत्ति नहीं कर सके !

स्टेशनसे गाड़ी छुटी। गाड़ीमें नाना विषयोंकी आलोचना होने लगी। किसी बातकी जिक्रमें वीरभानु ने कहा — 'देखिये, बहुत दिनोंकी एक बात आज अकस्मात मुझे याद आई है। वह बड़े मजेकी बात है। तब मैं श्रवनबेलगोलामें मुन्सिफ था। मैं कचहरीसे आ रहा था , रास्तेमें एक ज्योतषी मिल गया। मुझे देख कर उसने लोभ वश कहा-मुन्सिफजी साहब , मैं आप ही की सेवामें आया था पर आप मिले नहीं। मैंने कहा—'कहिये क्या काम था ?' आगंतुकने अपनी विद्या बुद्धिका परिचय देकर मेरा हाथ अपने हाथमें लेकर कहा—मुंसिफजी ! आपके और सब सुख तो हैं ही पर एक बड़ी ही विलक्षण घटना आपके अंतिम जीवनमें घटेगी। मैंने कहा वह क्या ?' ज्योतिषीजी बोले-'वह यह कि-उस समय आपके श्रद्धानमें एक विलक्षण परिवर्तन होगा और उससे आप समस्त मोह ममता छोड़ आदर्श साधु हो अपना और पराया कल्याण करनेमें सफल प्रयत्न होंगे।

ज्योतिषी जी की बात सुन कर मैं ने अपनी भी- तरी भावकी झलक चेहरे पर ला दो आने पैसे उन्हें दे विदा किये और देखा जायगा, कह सीधा घर आ पहुंचा। तबसे आज तक इतनी उम्र हुई कभी भी उस बातकी याद नहीं आई आज अचानक हो उठ आई है। मैं जब छोटा था तो मेरे पिताजी भी एक ऐसी ही कहानी कहा करते थे। शायद वह किसी पुराणमें लिखी होगी क्योंकि मेरे पिताजीको मंदिर जा प्रति दिन शास्त्र पढनेका बड़ा शौक था और जब कभी मुझे खाली देखते पासमें बुला बडी ही दिलचस्प कथायें कहा करते थे उन्होंने कहा था कि—एक साधूने (जिसका नाम मुझे याद नहीं पर पिताजी लेते थे) किसी सेठसे कहा था कि यह जब अपने पुत्रका मुंह देख लेगा उसी समय विरक्त हो साधु होजायगा। यह जान कर सेठानीने हरचंद कोशिशकी पर जभीं सेठके पुत्र हो गया वे साधु होगये। इसीतरहकी और भी कथायें कहा करते थे परंतु मैं तब भी गप्प समझता था और ज्योतिषीके कहे बचन आज तक भी कार्यमें परिणत नहीं हुये इस लिये अब और अच्छी तरह।

इस प्रकार भांति २ की बातें आपसमें होते हवाते ईसरी ष्टेशन पर गाडी आ पहुंची और पर्वतराजके दर्शन कर मुंसिफ और उनके सुपुत्रके सिवा सबने हाथ जोड भक्तिसे नमस्कार किया।

बैलगाडी कर सब लोग मधुवन पहुचे। शीतकालका उस समय मौसम था इसलिये यात्रियोंके झुंड के झुंड वहां इकट्ठे थे। बीसपंथी और तेरह पंथी दोनो ही धर्मशालाओंमें भक्तगण खचाखच भरे थे। हमारा यह परिवार भी तेरह पंथी कोठीके मैनेजरसे एक कोठरी पर अपना दखल कर निश्चिंत हुआ।

[४]

रात्रिके बारह बजेसे ही पर्वत वंदनाके लिये लोग तयारियां करने लगे। धार्मिक प्रेम और पूर्वकालीन बडे बडे महात्माओंको तपस्या-स्मृति, तीर्थंकर और उनके अनंत अनुयायियोंको मुक्ति प्राप्तिके प्रति भक्तिकी हृदयमें लहर उठ २ कर दूना उत्साह बढाने लगी। पानीको विना किसी प्रकारके यंत्रकी सहायताकी अपेक्षा कर ही बर्फ रूपमें परिणत कर देने वाले शीतकी कुछ भी पर्वा न कर छोटे २ बालकोंसे ले ८० और ९० वर्षके बुढों तक निर्बल और सबल सभी किस्मके लोग स्नान करनेमें लग गये। पहाड पर चढ अपने अतीत पुरुषाओंको गौरव स्मृति और उनके चिन्होंका निरीक्षण विना किसी प्रकारके सम्मान सूचक द्रव्यके करना ठीक नहीं इसलिये बाह्य शुद्धिसे शुद्ध अक्षत आदि प्रासुक द्रव्योंका संग्रह साथमें ले केवल धोती और दुपट्टे से गात्र संवृत कर लोग पर्वतराज पर चढने लगे 'सम्मेद शिखरकी जय' 'अनंत मुनि महाराजोंकी जय' आदि भक्तिके शब्दोंसे लोग पर्वतराजकी गुफा और कंदराओंको शब्दायमान करने लगे। लोगोंकी आनंद धुनि नीचे तलहटी तककी गुंजायमान करने लगी।

हमारे परिचित अवसरप्राप्त मुंसिफ साहब नीचे मधुवनमें ही रहगये थे और परिवारके लोग जब पहाड़ पर चढ़नेकी तैयारीमें लगे थे तबसे निद्रा भंग हो जाने के कारण इसीं दृश्यकी तरफ दृष्टि लगा रहे थे। प्रातःकालका सुहावना समय, भक्तोंकी उत्साह पूर्ण जयध्वनि यात्रियोंके प्रातः कालीन स्तुति पाठ देश देशकी स्त्रियोंके आध्यात्मिक गीत आदि सब ऐसे कारण थे कि मुंसिफ साहब का चित्त एकदम भक्तिरस और धार्मिक प्रश्न जिज्ञासासे पूरित हो गया। छापेके प्रभाव

से छह ढाला आदि कुछ धार्मिक पुस्तकें मुंसिफ सा हबके घरमें भी थीं और वे उनकी पत्नीकी बालकालीन संस्कारके कारण आई थीं। मुंसिफ साहबने उन्हींमें से छह ढाला निकाला और और ज्यों ही पढना प्रारम्भ किया हृदयमें तीरके मानिंद अपना काम करता चला गया। कुछ पद्योंके बाद मुंसिफ साहबने यह पढा कि-

बालपनेमें ज्ञान न लह्यो,
तरुण समय तरुणीरत रह्यो।
अर्धमृतक सम बूढा पनो
कैसे रूप लखै आपनो॥

बस, वीरभानुजीकी आखें खुल गईं, वें सोचने लगे— इस पुस्तकका एक एक अक्षर सत्य है। अपनी अवस्थाका मिलान कर और उसकी सब गई गुजरी बातोंका ध्यान कर उनके विचारोंका पारावार न रहा। अब तक जो ऐहिक मोह ममता और शारीरिक वाह्य आडंबरमें ही फंस रहे थे एवं धर्मकर्मको ढकोसला और भारतीयोंकी बेवकूफी समझते रहे उसमें अब उन को धीरे धीरे कुछ तत्व दिखाई पड़ने लगा। वे ज्यों ज्यों छह ढालाको आगे पढ़ने लगे, उसके अर्थका मनन करने लगे त्यों त्यों भौतिक सभ्यताको पालिस का रंग फीका पड़ने लगा, आध्यात्मिक सभ्यताका पक्का रंग अपना असर डालने लगा।

दिनके कोई बारह बजेके करीब परिवारके लोग पर्वत बंदना समाप्त कर वापिस आगये। उन्होंने मुंसिफ साहबको ध्यानपूर्वक छह ढाला पढते देख आ श्चर्य पूर्वक कहा — कहिये, यह क्या हो रहा है? आज यह पुस्तक हाथमें कैसे? उत्तरमें मुंसिफ साहब बोले — तुम लोग जब पहाड़ पर चढने गये तब ही से मेरी आंख फिर नहीं लगी। अधिक देर चित्त न लगा तो फिर मैंने यह पुस्तक निकाल कर देखी। पढ़नेसे जो आनन्द मिलो वह वचनागोचर है। मैं आज तक यह न जानता था कि जैन धर्ममें ऐसी बढिया बढिया पुस्तकें हैं और इस भारतमें ऐसे २ ग्रंथ रच-यिता कवि हो गये हैं। आजसे मेरे चित्तमें ऐसी भावना होगई है कि वृद्धावस्थाके बचे खुचे दिन अब ऐसे २ ग्रंथोंके अध्ययन मननमें ही खर्च करूं। जो हो अबसे मैं भी तुम लोगोंके साथ साथ मंदिरजीमें दर्शन और शास्त्र श्रवण करने चला करूंगा। पहाड़ पर भी एकबार जानेका विचार है, पर हां! यदि इस के वर्णनकी कोई पुस्तक हो तो और अच्छो, जिससे ऐतिहासिक बातोंका भी पता लग जाय।

मुंसिफ साहबके—इस विचार परिवर्त्तनसे उनकी गृहिणीको जो आनन्द हुआ उसका लिखना कठिन है, उनने अपना यहांका आना सार्थक समझा और भविष्यमें धर्मसाधनमें कोई विघ्न न आवेगा स-मझ अपने भाग्यको पुनः पुनः धन्यवाद दिया।

(५)

सम्मेद शिखरकी यात्रा कर जबसे वीरभानुजी घर पर आये हैं, उनकी प्रवृत्ति बहुत कुछ बदल गई है। पहिले जो प्रातःकालका समय इधर उधरकी बातें और ऐहिक कर्म करने ही में बीतता था वह अब स्नान कर पूजा और शास्त्र स्वाध्याय करनेमें बीतने लगा है। मध्याह्न और सामका समय भी धार्मिक चर्चा तथा आध्यात्मिक विषयोंके मनन करनेमें ही खर्च होता है। जिन पुरातन धार्मिक पद्धतियोंको पहिले व्यर्थ और भारतकी अवनतिका कारण समझ वे घृणा करते थे उन्हींको अब भारतीयत्व और आध्या-त्मिक सभ्यताकी नींव समझ स्वयं आदरके साथ आचरण करने लगे हैं। प्रतिदिन जिन मंदिर जा-वीतराग मूर्तिके दर्शन कर स्वरूपानुभव किये बिना उन्हें अब कल नहीं पड़ती।

(६)

करीब तीन वर्ष लगातार परिश्रम और मनन करने के बाद वीरभानुजी की दशामें जमीन आकाशका अंतर पड़ गया है। आज हम उन्हें छोटे छोटे गांवों कस्बों और बड़े २ शहरोंमें पैदल घूमते देखते हैं। वृद्धावस्थाके कारण यद्यपि शरीर कुछ कमजोर अवश्य हो गया है, तथापि संसारिक माया जाल और पौद्गलिक प्रभावमें फंसे प्राणियोंको, आत्माके शुद्धस्वरूपका सर्वथा आस्वादन करनेवाले, समस्त प्राणियोंके हितैषी, परमात्मा महावीर तीर्थंकरका उपदेश उत्साह पूर्वक सुनानेमें कोई कसर नहीं छोड़ते।

विधवा विवाह आदि अवैत्रिक उपायोंद्वारा जैनियोंकी संख्या बढानेका दम भरनेवाले लोगोंको अपने ओजस्वी उपदेश, अविरल परिश्रम और पवित्र आचरणसे हजारोंकी संख्यामें जैन धर्मधारियोंको बढाकर वास्तविक धर्मके उन्नतिका एक सीधा सच्चा रास्ता बतला मुंसिफ साहब संसारके भूषण कहे जाने लगे हैं।

शोलापुर निवासी श्रीमान् शेठ हीराचंदजी नेमिचंदके प्रश्नोंका समाधान।

पद्मावती पुरवाल वर्ष २ अंक बारहवेंमें क्षेत्रपालादिके पूजनके विषयमें विचार करते हुए हमने उन्हें सम्यग्दृष्टि लिखा है उस विषयमें जैन समाजके प्रसिद्ध व्यक्ति श्रीमान सेठ हीराचंदजी नेमिचंद ने हमारे पास कुछ प्रश्न भेजे हैं। उनका समाधान हमारी समझके अनुसार इस प्रकार है।

पहला प्रश्न—व्यंतर वासी भवनवासी देवगण जिनेंद्रके सेवक राग द्वेषके धारक हैं सो सम्यग्दृष्टी हैं ऐसा आप लिखते हैं सो किस ग्रंथके आधारसे लिखते हैं उसका नाम प्रकरण और श्लोक उद्धृत करनेकी कृपा करें।

उत्तर—रत्नकरंडश्रावकाचारकी एक भाषा टीका हमारे पास है उसके मंगलाचरणमें लिखा है।

वृषभ आदि जिन सन्मति सार
सारद गुरुको नमि सुखकार।
मूल संमंत भद्र मुनिराज
वृत्तिकरी प्रभेंदु यतिराज ॥१॥
तास वचनिका रची विशाल।
चंपाराम महा बुधिमाल
तासु अर्थ हम सूक्ष्म सु पाय
लिखे वचनिका सुगम बनाय ॥२॥

प्रशस्तिके पद्यमें लिखा है—

गर्गदेश झालरि प्रथम पत्तन सुपुर अनूप
झालावार सुहावनों मदनसिंह तसु भूप
तिस पत्तन बहु ज्ञातिके लोक बसैं सुपुनीत
तामें हुमड़ जाति है वागवर देश जनीत
मुरा शत्रु युत अरुणयुत बसै एक जातीय
चंपाराम सहायनें रची वचनिका सत्य।

भाषाग्रंथकारने क्षेत्रपालादि देवी देवताओंके विषयमें विचार करते करते पृष्ठ नं०९६में लिखा है

देव्यष्टचाष्टजयादिका द्विगुणिता विद्यादिका देवता:
श्रीतीर्थेश्वरमातृकाश्च जनका यक्ष्यश्च यक्षेश्वर:।
द्वात्रिंशत्त्रिदशा ग्रहास्तिथिसुरा दिक्कन्यकाश्चाष्टधा
दिक्पाला दश चेत्यमी सुरगणा: कुर्वंतु नो मंगलं॥

अर्थ—देवी आठ जयादिक ८ रोहिण्यादिक १६ सोलह नंदा १ भद्रा २ सरस्वती ३ मयूर वाहिनी ४ यह तो

सारस्वतका क्रम यहां ४ भी है यातैं चकार है। जया-दिक ८ रोहिण्यादिक सोलह १६ शांति अक लघुशांतिकादिकमें है। तीर्थंकर माता २४ पिता २४ यक्ष २४ यक्षिणी २४ द्वात्रिंशदिंद्र ३२ नवग्रह ९ तिथिदेव१५ दिक्कन्या ८ तथा ४८ एवं ५६ यह सर्व जिन शासन देवता बृहत्शांतिक मध्यशांतिक प्रतिष्ठा विधान यागमंडल शांतिक विधान चिंतामणि शांतिक विधानादि केई शास्त्रनितैं येहही पूजाविधानमें मान्य हैं। इत्यादि।

बहुरि साखि भावसंग्रहको —

इंद्राद्यष्टहरित्पालान् दिक्षास्वष्टसुनिशापतिं
रक्षोवरुणयोर्मध्ये शेषमीशानशक्रयोः ।१।
न्यासाह्वानादिकं कृत्वा क्रमेणैतान् मुदं नयेत्
बलिप्रदानतः सर्वान् स्वस्य मंत्रैर्यथा क्रमं ।२

ऐसैं दिक्पाल पूजन विधान हैं। बहुरि अभय नंदी, वसुनंदि इंद्रनंदी आचार्य जुदा जुदा लिखा है। बहुरि यशस्तिलकमें अभिषेकाधिकारमें सोमदेवजी दश दिक्पाल पूजन विधी लिखो है। ऐसे सैकड़ा ग्रंथनितैं प्रमाण है दशदिक्पाल पूजन विधानका निर्णय कह्या" इसी प्रकार ग्रंथकारने क्षेत्रपालादिकको भी मान्य बतलाया है और शास्त्र विरुद्ध स्वरूपके धारी लोकरूढि मान्य क्षेत्रपालका आदर सत्कार करना शास्त्र विरुद्ध बतलाया है। इसके सिवाय यह भी लिखो है—"यक्ष यक्षिणी उपसर्ग निराकरण करयो है सो जिन समयोचित विना सहाय कुण करै मिथ्यादृष्टि तो सहाय कैसे करैं। तथा ग्रंथकर्ताने इतना ही लिख कर नहिं छोड़ दिया है कि ये सम्यग्दृष्टि हैं किंतु जिन २ आचार्योंने अपने मौलिक ग्रंथोंमें इनका सत्कार पूजन आदिको व्यवस्था लिखो है उन सबका पुष्ट प्रमाण स्वरूप उल्लेख किया है जिससे यह कहा ही नहिं जा सकता कि क्षेत्रपाल आदि मिथ्यादृष्टि हैं यहां रत्नकरंड श्रावकाचारको भाषा टीकाके आधार पर ही हम कुछ आचार्योंके वाक्योंका उल्लेख कर आये हैं व करते हैं जिन्होंने कि क्षेत्रपालादिको सम्यग्दृष्टी स्वीकार किया है।

सुणहु साखि श्रीनेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती विरचित त्रिलोकसारजीकी—

सिरिदेवो सुदेवी सव्वह्न सणक्कुमारजक्खाणं
रूवाणिय जिणपासे अट्ठविहा मंगला होंति।

९८७ की गाथा है याका अर्थ श्रीदेवी श्रुतदेवी सर्वाह्न सनत्कुमार जक्षनिके रूप प्रतिबिम्ब अकृत्रिम मंदिर में है सो कृत्रिम मंदिरको प्रतिमा प्रतिष्ठित तिनमें यह मार्ग कैसे नहिं मानत हो। जो अकृत्रिम जिन प्रतिमा चैत्यालय है तहां यक्षनिको प्रतिमा है तो जैसे अकृत्रिम जिन प्रतिमा अनादि निधन तैसे यह जिन शासन देवता अनादि निधन हैं याका विघात कैसैं होय। तीर्थंनिमें चतुर्थ कालके उकेरे यक्ष यक्षिणीका सन्निवेश देखो तथा गोम्मटसारके अंतमें भी गोम्मटयक्षका स्तव स्वामीने लिखा है यातैं इनिका निषेध कैसें होइ यातैं जिन शासन देवता मान्य हैं।

बहुरि यह आदिपुराणमें भगजिनसेनाचार्यने भी वर्ण लाभ क्रियाका व्याख्यानमें वेद स्मृति क्रिया मंत्र देव लिंग भिक्षाशुद्धि ऐसैं मार्ग दिखाय अन्य मिथ्यादेवताको आराधना छुडाय जिन शासन देवता स्वसमयोचित मान्य कहा है।

विश्वेश्वरादयो ज्ञेया देवताः शांतिहेतवः।
क्रूरास्तु देवता हेया यासां स्याद् वृत्तिरामिषैः।

अर्थ--विश्वेश्वरी आदि लेकर जिन समयोचित देवता हैं ते शांतिके हेतु जानने योग्य हैं। ज्या देवता की मांसकरि वृत्ति है ते क्रूर देवता कुदेव हैं तिनका त्याग करणा उचित है बहुरि साखि यशस्तिलककी-

"देवं जगत्त्रयीनेत्रं व्यंतराद्याश्च देवताः

समं पूजाविधानेषु पश्यन् दूरं व्रजेदधः।
ताः शासनाधिरक्षार्थं कल्पिता परमागमे
अतो यज्ञांशदानेन माननीयाः सुदृष्टिभिः॥

अर्थ—पूजा विधानमैं त्रिलोकोपति जिनदेवनैं तथा व्यंतरादिक देवतानैं समान देखैलो (समान मानने वाला) जैसे तीर्थंकर तैसे यह है सो मूढ अतिशय-करि अधोगति जाय। व्यंतरादि देवता परमागमविषै शासन रक्षार्थ कहीं हैं यातैं सम्यग्दृष्टी यज्ञांश दान करि मानै तारक नहिं गिणे शांति हेतु मानै। ऐसे जिनशासन देवता मान्य हैं। वीरसेन जिनसेन देवनंदी गुणभद्र इन्द्रनंदी पद्मनंदी अभयनंदी इत्यादि मुनिवरां यों ही मार्ग शान्ति क्रियादि विधान उपदेश्यो है तातै प्रमाण है। जो अज्ञानी हो हठ ग्राह करै सो कुगति जाय है।

बहुरि जिनशासन देवता मंगलाष्टकमैं जिन मतके मान्य कहे सो लिखआये हैं।

इसलिये जब धुरंधर जैनाचार्योंने पद्मावती दिक्पाल और क्षेत्र पालादिको मान्य गिना है और यशस्तिलककार आचार्य प्रवर सोमदेवने यहां तक लिख दिया है कि सम्यग्दृष्टियोंको यज्ञांशदानसे सन्मान करना चाहिये तब क्षेत्रपालादि मिथ्यादृष्टियोंकी कोटिमें कभी परिगणित नहिं हो सकते।

आपने जो यह लिखा है कि "बृहद्द्रव्यसंग्रह की टीकामें क्षेत्रपाल चंडिका आदिको मिथ्यादृष्टि लिखा है और अनगार धर्मामृतमें शासन देवताओंको कुदेव लिखा है" सो अनगार धर्मामृतका तो यह तात्पर्य है कि पंच परमेष्ठीसे भिन्न समस्त देव कुदेव हैं पंच परमेष्ठीके समान अन्यदेव पूज्य नहीं कहे जा सकते। परंतु बृहद्द्रव्यसंग्रहकी टीकामें मिथ्या दृष्टि क्षेत्रपालादिकको क्यों बतलाया सो कुछ समझमें नहीं आता। उपर्युक्त आचार्योंके वचनानुसार और वे लोग भगवानके भक्त हैं इस रूपसेतो इनमें मिथ्या दर्शनकी संभावना हो नहीं सकती।

स्वर्गीय परम विद्वान पं० टोडरमलजीने मोक्षमार्ग प्रकाशमें जहां क्षेत्रपालादिका विषय उठाया है वहांपर उन्होंने यह नहिं लिखा है कि क्षेत्रपालादिक मिथ्यादृष्टी हैं यदि उनको क्षेत्रपालादिकका मिथ्यात्वीपना अभिमत होता तो वे साफ शब्दोंमें क्षेत्रपालादिकको मिथ्या दृष्टी बिना लिखे न छोड़ते।

हमें बहुत दिनसे इस बातकी श्रद्धा है कि क्षेत्रपालादि मिथ्यादृष्टी नहीं हैं सम्यग्दृष्टि हैं यशस्तिलकके कर्ता आचार्य आदिके वचनानुसार हमें इस बातपर पूरा विश्वास है कि इनको जिन शासनका सेवक मान इनका कुछ सत्कार अवश्य करना योग्य है किंतु जिनेंद्र भगवानके समान इनको मानना मिथ्यात्व है इसीलिये पद्मावतीपुरवालके १२ वें अंकमें हमने क्षेत्रपालादिको मिथ्यादृष्टी नहीं बतलाया है और भगवान को पूजनेके अनंतर क्षेत्रपालादिकोभी यज्ञकेअंश दान देनेका जिकर किया है।

दूसरा प्रश्न —यदि वे सम्यग्दृष्टि हैं तो उनसे विघ्न उपस्थित हो जानेकी संभावना है ऐसा आप लिखते हैं सा क्यों कर?

उत्तरमें निवेदन है कि क्षेत्रपालादिकको सम्यक्दृष्टि कहनेसे उनके चौथे तक गुणस्थान हो सकते हैं तथा चौथे गुणस्थान तक अनंतानुबंधि कषाय चतुष्टयका नाश माना है वाको अप्रत्याख्यान कषाय चतुष्टयादिका बराबर सद्भाव है। संभव है किसीके द्वारा विशेष अपमान हो जानेके कारण क्षेत्रपालादिके परिणामोंमें कुछ मालिन्य संभूत हो जाय और कषायके आवेशसे जो मनुष्य पूजन करता हो उसकी पूजनमें उ-

नसे कुछ विघ्नबाधा उपस्थित हो जाय। क्योंकि सम्यक् दृष्टि मनुष्य जैनधर्मका बलवान नाशक कारण तो उपस्थित नहि कर सकता अपनेसे विरोध रखनेवाले मनुष्यके विषयमें उसके परिणाम मलिन हो सकते हैं और वह उसके अहितके लिये प्रवृत्ति कर सकता है महाराज श्रेणिक ऐतिहासिक दृष्टिसे बिम्बसार नामसे प्रसिद्ध हैं क्षायिक सम्यग्दृष्टि परम विद्वान और अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता थे किंतु अपने पुत्र कुणिकका असह्य अपमान जब उन्हें सहय न हो सका तो उन्हें आत्मघात करना पड़ा था यद्यपि वे आत्मघात जैसे कर्मको नीरणाय समझते तथापि कषायको प्रबलतासे उस वातका उन्हें जरा भी स्मरण नहि रहा इसलिये हम तो यही समझते हैं कि बलवान अपमान आदिसे क्षेत्रपाल आदिके परिणामोंमें मालिन्य उपस्थित हो सकता है और कषायकी तीव्रतासे वे उसका बदला लेसकते हैं इसीलिये हमने यह लिख दिया था कि उनसे विघ्न उपस्थित हो जानेकी संभावना है।

तीसरा प्रश्न — क्षेत्रपाल पद्मावती चक्रेश्वरी आदि शासनदेवताओंने सम्यग्दृष्टि और व्रती श्रावकोंका सत्कार किया है ऐसी बहुतसी कथाएं बांचनेमें आती हैं लेकिन सम्यग्दृष्टि अथवा श्रावकने शासन देवताओंका सत्कार फलाने रीतिसे किया ऐसी कोई कथा आपके बांचनेमें आई हो तो उस पुस्तकका और कथाका नाम लिखें।

उत्तरमें निवेदन है कि मुझे इस बातका स्मरण नहीं कि सम्यग्दृष्टि व्रती श्रावकने शासन देवताओंका सत्कार किया है। हां! कृष्ण बलदेव रावण आदिका शास्त्रमें यह उल्लेख मिलता है कि इन्होंने अपने अभीष्ट सिद्धिके लिये व्यंतरदेव देवियोंकी उपासनाकी थी परन्तु तब तक वे सम्यग्दृष्टि व्रती न थे किंतु सोमदेव आदि मुनि आचार्योंने जिनेंद्रकी पूजनके बाद क्षेत्रपाल पद्मावती आदिको यज्ञांश दान आदि देना चाहिये इत्यादि उल्लेख किया है इसलिये जब इन आचार्योंने सम्यग्दृष्टिके लिये भी क्षेत्रपाल आदिके सत्कार की आज्ञा दी तब यह सिद्ध ही है कि सम्यग्दृष्टी क्षेत्रपाल आदिका आदर कर सकता है इसलिये क्षेत्रपालादिको सम्यग्दृष्टि माननेमें हमें तो कुछ अड़चन नजर नहि होती, इसलिये हमने उन्हें सम्यग्दृष्टी लिखा है और उन्हें जिनेंद्रका सेवक समझ यज्ञांश दान देना ही चाहिये इस बातपर जोर दिया है।

नोट——प्रथम द्वितीय अंक प्रायः छपचुका था उस समय हमें सेठ साहबका पत्र मिला था इसलिये जगह न रहनेके कारण हम सेठसाहबके प्रश्नोंका उत्तर प्रथम द्वितीय अंकमें न छाप सके। तीसरे अंकके समय ख्याल नहि रहा इसलिये इस चतुर्थ अंकमें छपाया गया है। लाचारी और प्रमाद मिश्रित देरीके लिये हम सेठसाहबसे क्षमाके प्रार्थी हैं।

मेरा स्वप्न।

आज रातमें नींद मुझे गहरी थी आई
अर्ध निशाके मांझ मुझे इक ध्वनी समाई।
जैन जातिके प्रमुख आयकर यों कहते हैं
हुआ कार्य मम सिद्ध विपत्ति क्यों सहते हैं॥

ज्ञात नहीं क्या आपको निज पद हमको मिलगया
स्वयं सिद्ध जिनधर्मका झंडा जगमें उड़गया॥१॥
सुनकर सबकी बात हृदय हूआ मम ऐसा
होते ही परभात कमल होता है जैसा।

मैंने अपना जन्म सफल तब ही है जाना
यत्न करें सब होय तभी मनमें यह माना
मैं उनसे कहने लगा, अहो महाशय! क्या कभी
जीवन दाताके लिये उरण होना है सभी ॥२॥
किंतु आपने आज अभी जो गिरा उचारी
फैल गई मम हृदय धाम ज्यों की त्यों सारी।
अमृत स्वादु से आज मिटी सब मेरि विपत्ती
मैं जाता बन छोड़ लीजिये सब सम्पत्ती॥
किन्तु उन्होंने यों कहा अहो मित्र सुन लीजिए
हेयाहेय विचार कर जो चाहे सो कीजिए ॥३॥
मैंने तब यों कहा कहो क्या कहते भाई
कर्म विभूति इसी लिए इन्द्रियें बनाई।
जो जो आज्ञा करें मानता हूं मैं सबको
जिससे कारज होय विपति सब छूटे जगको॥
सबने जगमें सुयशका हाल मुझे तब यों कहा।
उसको सुनकर हृदयमें, पामर भाव नहीं रहा ॥४॥
तब विचारने लगा अहो क्या करूं आज मैं,
जिन धर्मी जन होय करूं जिमि वही काज मैं।
कुछ विचारके बाद हृदयका वेग बढ़ायो,
शिशिर भानुको देख पयोनिधि होता है ज्यों।
अब क्या था आनन्दमय लहरें हृदि उठने लगीं।
हृदय वेग आनन्दसे दम मेरी बढ़ने लगी ॥५॥
तब मैंने परिवार सभाको पत्र लिखाया,
अपने मनका भाव सभी उसमें दरसाया।
उन्नति साधक ऐक्य भावका गुणभी गाया;
देशभक्ति आदर्शभाव मैं उसमें लाया॥
सद्भावोंसे गठित वह, दसखत करनेके लिये।
लेना चाहा हाथसे, खोल किवाड़ तभी दिये।॥६॥
पटकी आहट सुनी उठा मैं शीघ्र पलंगसे,
देखा तो इक छात्र खड़ा था नूतन ढंगसे।
मैंने उससे कहा कहो कैसे तुम आए
क्या प्रभात हो, गया पूछने हो क्या आए।
नम्र भावसे छात्रने वाणी यों मुझसे कही।
जो अबोधके हृदयका परिचय भी वह दे रही॥७॥
मैंने उससे कहा किया तुमने नहिं अच्छा।
आनंद मेरा नष्ट किया लेने निज शिक्षा।
वह विनीत तब भूल मानकर क्षमा मांगने,
लगा हाथको जोड़ कहा तब उससे हमने।
अय विनीत! मन रंजकर तेरा अघ कुछ भी नहीं।
किन्तु विभूको स्वप्नमें समुन्नता फवती नहीं ॥८॥

पन्नालाल जैन—काव्यतीर्थ
पालथौन (सागर)

षोडशकारण भावना।

जब हम जैनी हैं तब हम नियमसे उन तीर्थंकर जिनोंके भक्त हैं जिन्होंने स्वयं षोडशकारण भावना भाकर तीर्थंकर नामकर्म बांधा और फिर तीर्थंकर हो कर जैन धर्मका प्रचार करके अनेकोंको मोक्षमार्ग बतलाया -जिस कार्यको प्रभूने किया उस कार्यका करना भक्तोंके लिये भी आवश्यक होता है क्योंकि जो वस्तु मिष्ट होती है उसके खानेसे खानेवालेको अवश्य स्वाद आयगा। जिसकी रसनाशक्ति प्रबल है वह अधिक सूक्ष्म रीतिसे स्वादको जानेगा और जिसकी रसनाशक्ति मंद है वह मंद जानेगा-परजिह्वाइन्द्रीवालेको मिष्ट वस्तुका मिष्ट स्वाद आवेहीगा। इसी तरह

यद्यपि हम तीर्थंकर होनेवाली आत्माओंकी तरह षोडश कारण भावनाको नहीं पासकते हैं, तो भी हम अपनी बुद्धि अनुसार भाकर लाभ उठा सकते हैं इसलिये हमारे जैनी भाइयोंको उचित है कि प्रमाद छोड़कर इन भावनाओंकी भावना करें। जैसे बारह भावनाओंकी भावना वैराग्य उत्पन्न करनेकी माता है अष्ट द्रव्यसे पूजनकी भावना भक्ति उपजानेकी माता है वैसेही चारित्रकी उत्पत्तिके लिये ये १६ भावनाएं उपयोगिनी हैं।

भावनाका यद्यपि मतलब बराबर विचार करना होता है तथापि जिस बातको हृदयसे विचारा जाता है उस बातके करनेका अवसर आजाय और आप कर भी सक्ता हो तो भी उसे न करना सच्ची भावना नहीं है। सच्ची भावनाका भानेवाला जिस बातकी भावना भाता है उसके आचरणके लिये सदा तैयार रहता है। जैसे किसीके दिलमें यह भावना हो कि हम श्रीसम्मेदशिखरजीकी यात्रा करें परन्तु द्रव्यके अभाव व संगति न मिलनेसे जा नहीं सका है, परन्तु यदि संघपति जाने लगे और उससे कहे कि तुम्हारा द्रव्य भी न लगेगा व तुम सानन्द यात्रा कर लोगे तब कोई अनिवार्य रुकावट न होने पर भी प्रमादसे न जावे तो उसकी शिखरजी जानेकी भावना सच्ची नहीं कही जा सक्ती है। ऐसा कहनेका मतलब यह है कि इन १६ भावनाओंका भावनेका मतलब केवल विचार करना ही न लेकर उन पर शक्तिके अनुसार चलना भी लेना चाहिये। और भावना करनेवालेको इन भावनाओंके भानेसे अपना जन्म सफल मानना चाहिये।

(१) दर्शनविशुद्धि भावना — निश्चय नयसे अपने शुद्ध आत्माके स्वरूपका सच्चा श्रद्धान व उसकी भावना ही पहली भावना है। व्यवहारनयसे सर्वज्ञ वीतराग हितोपदेशी अरहंत देव, परिग्रह आरंभ रहित आत्मध्यानी व ज्ञानी साधु, अनेकांतमय वस्तु प्रतिपादक अहिंसा रूप जिन धर्म पर श्रद्धा करके इनकी दिलसे भक्ति करना तथा जीव, अजीव, आस्रव बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वों पर विश्वास लाकर निरंतर यह भावना करनी कि हमारी आत्मा कर्मबंधमें है इसीसे उसका स्वभाव प्रगट नहीं है अब संवर व निर्जराके उपायोंसे आत्माको शुद्ध करके उसे मोक्षरूप करूंगा तथा इसीलिये निरंतर तत्वचर्चामें अपने मनको लगाए रखना चाहिये।

इस व्यवहार भावनाकी रक्षाके लिये जिन मतमें अटल श्रद्धा रख विषयभोगोंकी तृष्णासे रहित हो धर्मधारी व साधारण प्राणी मात्रसे घृणा भाव निवार, मूढताईसे भक्तिकी संगतमें न रंग, अपने धर्मकी व पर धर्मकी वृद्धिकी भावना कर अथवा परदोष अप्रगट तथा निज दोष प्रगटकी आदत रख, धर्म मार्गमें आप या परको स्थिति करण करता हुआ, धर्मके प्रेमियोंसे वात्सल्य भाव रख तथा उसीसे उनकी आपत्तियोंमें सहाय कर धर्मकी प्रभावना करनेमें लवलीन होता है और जाति कुल, सुख, बल, विद्या, धन अधिकार तथा तपकी श्रेष्ठता रखते हुए भी इन क्षणिक बलोंके होनेसे अभिमान नहीं करता है तथा देखादेखी किसी भी देव गुरू व लौकिक बात पर श्रद्धा नहीं लाता और न मिथ्या देव गुरु धर्म व उनके भक्तोंकी इस तरह संगति करता है कि अपनी श्रद्धाको बिगाड़ बैठे व सत्य पथसे विचलित हो जाय। इस तरह जो २५ दोष रहित व्यवहार सम्यग्दर्शनको पालता है व उसकी बारबार भावना भाता है परन्तु अंतरंगमें आत्मश्रद्धा युक्त स्वस्वरूपकी भावनाकी अखंड रुचि रखता है सो प्रथम भावनाका भावक है।

(२) विनयसम्पन्नता सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र ही परम तारक, दुःख निवारक जगत उद्धारक तथा सुख विस्तारक है। ऐसी श्रद्धासे भरकर इनकी तरफ व इनके सेवनेवाले आत्माओंकी तरफ हार्दिक भक्ति रखना तथा यथाशक्ति रत्नत्रयको पालन और धर्मधारी महात्माओंकी विनय करना सो यह दूसरी भावना आत्माके परिणाम रूपी भूमिको कोमल बनाकर उसमेंसे मानकी कठोरताको हटाकर इस योग्यकर देती है कि स्वानुभूति भावका बीज बोकर स्वात्मानन्द फलकी प्राप्ति की जा सके।

(३) शीलव्रतेष्वनतीचार—आत्माका स्वभाव शांत वीतराग है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह-व्रतोंमें चलना निराकुलताका साधक व स्वपर कष्ट निवारक है, ऐसा श्रद्धान रख इस शील तथा व्रतोंके पालनमें मेरे कोई दोष न लगे, ऐसी भावना रखनी तथा यथाशक्ति क्रोधादि कषायोंसे बचे रहकर शील और व्रतोंकी रक्षा करना सो यह तीसरी भावना आत्माके मनोहर बागमें रमनेके लिये चित्तको प्रफुल्लित और शांत रखनेवाली है।

(४) अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग-ज्ञान सुखदाई तथा अज्ञान दुःखदायी है। ज्ञानसे रंगे प्राणीके सब भाव ज्ञानमयी होते हैं। क्योंकि ज्ञानीको आत्माका यथार्थ ज्ञान है। ऐसाश्रद्धामें लाकर निरंतर वस्तुस्वरूपको न भूलकर उसीवासनामें रंगे रहना कभी कभी प्रगटपने पट् द्रव्योंकी भावना करनी व जिनवाणीके तत्त्व ज्ञान बोधक शास्त्रोंकी स्वाध्याय करनी, तत्वचर्चा करनी तथा इस व्यवहार तत्त्वज्ञानके बलसे आत्माके शुद्ध स्वभावके अनुभवमें लीन होना अथवा भावना करनी कि मैं एक हूं, निर्मल हूं ज्ञान दर्शन स्वभाव हूं, असंख्यात प्रदेशी हूं अमूर्तिक हूं सिद्धसम परमात्मा हूं सो चौथी भावना आनन्द कर्ता, सप्त भय हरता तथा संसार उच्छेद करता है।

(५) संवेग—मेरा शुद्ध स्वभाव ही शोभनीक है क्योंकि उसमें अनंतज्ञान दर्शन वीर्य तथा अतीन्द्रिय आनन्द है ऐसा श्रद्धामें लाकर उसके साधक इस परमपवित्र रत्नत्रयमई जिन धर्ममें व जिन धर्मके साधक अनेक पूजा प्रभावना जप तप उपदेश दान आदि कार्योंमें हार्दिक प्रेम रखना तथा संसार शरीर भोग क्षणिक दुःखदाई तथा आकुलताकारक हैं ऐसा जान इनमें हार्दिक प्रेम न रखना और इसी लिये बड़े प्रेमसे धर्मकार्योंको साधना व संसार वर्द्धक पापरूप दुःखदाई कार्योंसे बचना और अवसर पाकर शुद्ध आत्मस्वरूपके अमृतमई अनुभव रसके स्वादमें आशक्त हो स्वप्रेमरसमें भीज जाना सो यह पांचवीं भावना भवरोग नाशक, मुक्तिसुखप्रदायक तथा गुणग्रामरक्षक है।

(६) शक्तितस्त्याग—पर द्रव्य, परगुण परपर्याय अपनी नहीं, बिलकुल त्यागने योग्य है, ऐसी श्रद्धा रख कर सर्व परिग्रहका त्यागही निराकुलता कारक, मोहघातक, कर्म संहारक तथा मोक्षदायक है ऐसी चाहना करता हुआ रह कर शक्ति हो तो सब परिग्रह छोड़ कर साधु हो जाना अथवा परिग्रह प्रमाणका श्रावक व्रत पालना और निरंतर ज्ञानदान, आहारदान औषधिदान व अभयदान देना—लक्ष्मीको जिन धर्मकी उन्नतिमें विद्याप्रचारमें जगतके उपकारमें खेतोंमें पानीकी तरह खर्च कर देना और इस त्याग भक्तिके प्रभावसे कभी कभी सर्व परसे मुंह मोड़ अपने आपसे दिल जोड़ अपने ही स्वरूपानंदके भोगमें मगन हो सिवाय अपने आत्मधर्मके और सब त्याग देना यह

त्याग भावना भवस्थिति हरणी, अतीन्द्रिय सुख करनी तथा श्रेयमार्ग पर आरूढ़ करनेवाली है।

(७) शक्तितस्तप —आत्माको इच्छा निरोध लक्षण तपके द्वारा कर्म बन्धनसे मुक्त करना है। इस श्रद्धासे अपनी शारीरिक व मानसिक शक्तिके अनुसार उपवास, ऊनोदर वृत्ति परिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन कायक्लेश प्रायश्चित विनय वैयावृत स्वाध्याय व्युत्सर्ग इन १२ तपोंका साधनेकी भावना करते हुए ध्यान करना तथा सकलपरूप धर्म ध्यानसे निर्विकल्प ध्यानके लिये उपयोगको सर्व पर पदार्थोंसे रोककर आपके शुद्ध स्वरूपमें तन्मय करना सो यह सातवीं भावना कर्म निर्मूलन करनेके लिये कुठारके समान, मल दग्ध करनेको अग्नि समान तथा निजत्मानुभव रस पानेके लिये सुख समुद्रके समान है।

(८) साधु समाधि- रत्नत्रय रूप आत्म समाधि ही संसार तारक है। इस श्रद्धाको रखके भली प्रकारसे अपनी समाधि होनेकी भावना करनी तथा यथाशक्ति चेष्टा करनी तथा साधु महात्माओंकी समाधि स्थापनमें सहायभूत होनेकी भावना तथा चेष्टा करनी और निश्चयसे अपने शुद्ध ज्ञानानन्द स्वभावमें भले प्रकार तल्लीन हो जाना सो आठवी साधु समाधि भावना परम कल्याण करिणी और भावोंकी संतानकी संहारिणी है।

(९) वैय्यावृत्यकरण—आत्मानुभवको मोक्षका साधक जानके आत्मानुभवके साधक साधु पुरुषोंकी सेवा करनेकी भावना व सेवा करनी तथा अपनी प्राप्त शक्तियोंको अन्य धर्म धारी गृहस्थोंकी योग्य आवश्यकताओंकी पूर्तिमें लगानेकी हार्दिक भावना करके यथाशक्ति हर एक तरहसे मदद पहुंचाना, उनकी टहल सेवा चाकरी करना तथा जगतके प्राणीमात्रके संकट निवारणके लिये अपनी शक्तियोंसे काम लेना और निश्चयमें अपने शुद्ध आत्मस्वभावकी आराधनामें तन्मय हो जाना यह नवमी भावना जगतके साथ परम प्रेम व समता विस्तारनेवाली है

(१०) अर्हद् भक्ति—स्वस्वरूपके निर्मल पदकी भावनामें आशक्त पुरुष स्वस्वरूपको प्राप्त करके जिन्होंने अपने केवल ज्ञानसे सब कुछ जाना है व अपने अनंत सुखसे परमानन्दका विलास किया है व अपने अनंत यथाख्यात चारित्रसे परम विरागता तथा शांतिका अनुभव किया है तथा जिनकी दिव्य वाणीसे सच्चा मोक्षमार्ग जगतको प्रगट हो रहा है ऐसे अर्हंतोंकी पूजा करके वीतराग भाव प्राप्त करना तथा निश्चयमें अपने ही आत्माको अर्हंत मानके उसके ध्यानमें लवलीन हो जाना यह १० वीं भावना साक्षात् निज पद प्राप्तिके लिये परम सहायक और जगत सदुपकार करनेवाली है।

(११) आचार्य भक्ति--स्वात्मानंदका प्रेमी उन गुरुओंकी पूजा व भक्तियोंमें परम स्नेह रखता है जिन्होंने धर्म पथ पर पूर्णतया चल कर साधु मार्गका द्योतन किया है व अपने प्रभावशाली प्रभाव शिक्षासे अनेक भटके हुओंको मुनि पदमें स्थापित किया है तथा यथाशक्ति उनकी भक्ति करता है और निश्चयसे अपनी ही आत्माको आचार्य मानके उसकी आराधनामें लवलीन होना है यह आचार्य भक्ति साक्षात् धर्मामृत रसका पान करानेवाली है।

(१२) बहुश्रुत भक्ति—परम निर्मल ज्ञानका अभिलाषी उन बहुत शास्त्रोंके पारगामी उपाध्यायों व निर्ग्रंथ पद धारी शास्त्र मर्मज्ञ उपदेशकोंकी भक्तिमें उनकी वाणीसे लाभ उठानेके भावसे उत्कंठा रखता हुआ यथाशक्ति भक्ति करके लाभ उठाता है और निश्चयसे

आत्माको ही परम गुरु व अपना परम शिक्षक जानके उसके ध्यानमें लवलीन हो जाता है यह बरहवीं भावना अपने आत्माका परम हित करने वाली है।

(१३) प्रवचन भक्ति—श्री जिनेन्द्रका उपदेश आचार्योंके द्वारा जिस वाणीमें गूंथा हुआ है उस जिन वाणीके पठनपाठन व प्रचारमें अतिशय लालायित रहना व यथा शक्ति स्वयं स्वाध्यायादि करना व निश्चयसे अपने आत्माको ही भावश्रुत ज्ञानरूप प्रवचन जानके उसकी आराधनामें एकमेक हो जाना यह तेरहवीं भावना केवलज्ञान प्राप्तिकी मुख्य साधिका है।

(१४) आवश्यकापरिहाणि— अपने आत्माकी उन्नतिमें अत्यन्त प्रेमी जिन २ क्रियाओंकी साधना नियमित करना आवश्यक समझ चुका है जैसा साधुओंके लिये प्रतिक्रम, प्रत्याख्यान, सामायिक, वंदना, स्तुति, कायोत्सर्ग व गृहस्थोंके लिये देवपूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय संयम, तप और दान इन क्रियाओंमें मेरे कभी त्रुटि न पड़ जाय इस बात की दृढ़ भावना करके इनकी साधना और निश्चयसे अपने आपको वशकर किसी अन्यके स्वाधीन नहीं ऐसे निज आत्म स्वरूपमें ही रहनेसे कभी मुहको न मोड़ना सो यह चौदहवीं भावना मुक्ति द्वीप पहुचनेकी नौकाके समान ले जानेवाली है।

(१५) मार्ग प्रभावना—जिन मार्गसे अपने आपको परम लाभ पहुंच रहा है इस जिन धर्मका आप भले प्रकार पालन करना, अपने आपको प्रभावशाली बनाने व इस धर्मके सिद्धांतोंका जगतमें प्रचार कर जगतके जीवोंको सच्चे मार्गमें लानेकी भावना करनी व यथा शक्ति उद्योग करना तथा निश्चयसे अपने आत्माके रत्नत्रय स्वभावमें गुप्त हो जाना सो यह पंद्रहवीं भावना साक्षात् जगतका कल्याण करनेवाली व सर्व सत्व हितकी भावनाको बढ़ाने वाली है।

(१६) प्रवचन वात्सल्य—परम स्वरूपकी भावनामें लवलीन आत्मा उन साधर्मी भाई बहनोंसे अतिशय प्रेम रखता है जो अपने आत्माको मोक्ष मार्ग पर चला रहे हैं और इसी लिये भावना करता है कि मैं जिस तरह बने उनके काम आऊं तथा यथाशक्ति उनके संकट निवारणमें काम भी आता है तथा निश्चयसे अपने आत्माको ही प्रवचन स्वरूप जान कर के अनुभवमें आनेको लीन कर देना सो यह १६ वीं भावना परम धर्मका प्रेम विस्तार करने वाली और आत्माके इस तरह इन सद्गुणोंको विस्तारने वाली है। १६ भावनाओंका विचार कमसे कम इस भाद्रपद मासमें हरएक दिन हरएक श्रावकको करना चाहिये और यथा शक्ति इन पर चलके अपने आत्मबलको बढ़ाता हुआ परका उपकार करना चाहिये। कषायोंका दमन करके स्ववशमें रखना चाहिये।

आत्माकी परम शांतिको भोग करके उसीका विस्तार करना चाहिये।

जिन मंदिरोंका हिसाब प्रकाशन।

जिन मंदिर धर्मकी वे संस्थाएं हैं जिनमें श्रावक लोग धर्मसाधन करते हैं व धर्मार्थ द्रव्य देते हैं उस द्रव्यका कोई न कोई प्रबन्धक होता है। उस प्रबन्धकका यह कर्तव्य है कि वह अपने सुपुर्द किये हुए पैसेकी भले प्रकार रक्षा करे, उससे अपना स्वार्थ न साधे तथा उसको धर्म कामोंमें उपयोग करता रहे और बही खातोंमें बराबर हिसाब व चिट्ठा तैयार करके दो परीक्षकोंसे जचवा करके हस्ताक्षर लेकर हिसाबको छपवा डाले तथा सर्व भाई बहनोंके हाथमें उसकी नकल बांट देवे ऐसा व्यवहार करनेसे सबको मालूम हो जायगा कि हमारे धर्मके पैसेका इस तरह उपयोग हुआ

है। किसीको कोई शंका न रहेगी तथ भाई बहनोंको और भी अधिक उत्कंठा होग कि हम धर्म संस्थामें अधिक द्रव्य दान करें ऐसा समझ कर हरएक नगर और ग्रामके जिन मंदिरके प्रबन्ध कर्ताको उचित है कि इस दशलाक्षणीके प्रारंभमे हो अपना हिसाब छपा हुआ सबको बांट देवे धर्म को जागृति करनेका यह एक उत्तम उपाय है।

अपने यह की मर्दुमशुमारी व
जनसंख्या लेना।

यह बात भी बहुत जरूरी है कि हम इस बातको जाने कि हमारी जनसंख्या कितनी है तथा उसमे शिक्षा सामाजिक स्थितीको क्या हालत है, इसके लिये हर वर्ष अपने २ स्थानको जनसंख्या तफसीलके साथ को जानो चाहिये। अनंत चौदशका एक ऐसा दिन है जिस दिन सब भाई जिन मंदिरमें अवश्य पधारते हैं, एक दो स्वधर्मसेवकोंको चाहिये क श्री जिनमंदिरके द्वार पर बैठ जावें ओर आनेवालेसे सब हाल मालूम करके खानापूरी कर लेवें। सुगमताके साथमें हमें अपने यहांको जातिको अवस्था मालूम हो जायगी हम अपने पाठकोंसे कहेंगे कि वे अवश्य २ इस बातका उद्यम करें। जातिकी दशाको सुधार विना उसका हाल जाने कैसे हो सका है? क्या पाठकगण ध्यान देवेंगे?

— जैनमित्र

कलिकाल।

(ले०—पं० दरबारीलालजी जैन न्यायतीर्थ।)

१

जहां सत्यका नाम नहीं है धर्मकर्मका काम नहीं है।
कहीं शान्तिका धाम नहीं है ऐसा कठिन कराल।
कटेगा कैसे यह कलिकाल।

२

आलसमें जो झूल रहे हैं धर्म कर्मको भूल रहे हैं।
दुरभिमानमें फूल रहे हैं ऐसे जिसके बाल।
कटेगा कैसे यह कलिकाल।

३

जिसने बाल विवाह कराये बूढ़े सपत्नीक बनवाये।
पीछे पकड़ पकड़ कर खाये ऐसी जिसकी चाल॥
कटेगा कैसे यह कलिकाल।

४

हीन संहनन हमें बनाया पाप कर्म करना सिखलाया।
बुला बुला कर हमें फंसाया ऐसा जिसका जाल॥
कटेगा कैसे यह कलिकाल।

५

रुपया पैसा बहुत दिखाया दिखा दिखाकर मन ललचाया।
किन्तु पेट खाली करवाया किया हाय कंगाल॥
कटेगा कैसे यह कलिकाल।

६

पातिव्रत स्वधर्म भुलाया पति पत्नीमें बैर कराया।
भाईसे भाई मरवाया हाय कालका गाल॥
कटेगा कैसे यह कलिकाल।

हमारा वक्तव्य।

पद्मावती पुरवालके गत १—२ अंकमें पद्मावती परिषद् और फिरोजाबाद मेलाका वृत्तांत छापते समय लाला कुंदनलालजीके विषयमें हमने लिखा था कि—तथापि मेलाके प्रबंधकर्त्ता ला० कुंदनलालजी ने तंबूतक देनेसे इनकार कर दिया। इस पर उक्त लालाजीने एक पत्र भेजा है जो इस प्रकार है—

सम्पादक पद्मावतीपुरवाल मासिकपत्र कलकत्ता

सेवामें जुहार

सज्जनवृन्द !

सेवामें निवेदन है कि आज मैंने "पद्मावतीपुरवाल" नामक पत्र वर्ष ३ अंक १—२ में पद्मावती परिषद्के आठवें अधिवेशनके संक्षिप्त विवरणमें अन्तिम लेखको पढ़ा। उसमें लिखाथा कि सभापति मुंशी बंसीधरजी और पं० संतलालजी व जयंतीप्रसादजी आदि महानुभावोंकी कृपासे यद्यपि बाहरसे आए हुए परिषद्के सहायकोंको अधिक आराम मिला तथापि मेलाके प्रबंधकर्त्ता लाला कुन्दनलालने तंबूतक देनेको इन्कार कर दिया! इस पंडितोंके प्रति सहानुभूतिदर्शनको सहस्रशः धन्यवाद!।

यह शब्द जो इस पत्रमें लिखे गये हैं वह लिखाने वालोंकी निहायत गलती है जो कि ऐसे झूठे शब्द लिखे अगर यह शब्द लिखाने वालोंकी गलतीसे लिखेगये हैं तब तो इन शब्दोंका भूलसुधार करें और जो ये शब्द सच्चे ही लिखेगये हैं तो इन शब्दोंके सबूतमें हमारे निम्न लिखित प्रश्नोंका उत्तर देवे।

(१) जब कि प्रबंध कर्ताने तम्बू वगैरह देनेको इन्कार कर दिया था तब आप लोग किनके तम्बूओंमें ठहरे थे ?

(२) यह कि आप जिन तम्बूओंमें ठहरे थे तथा तम्बूओंके अगाड़ी सिमियाने लगाये गये थे जिनमें कि आपने सभाकी थी और सभामें फर्श बिछाये गये थे वह आपने कहांसे मंगाये थे।

(३) यह कि पंडित लोगोंका पानी पान वगैरहका किसने इन्तजाम किया था और कौन इस इन्तजामका प्रबंध कर्त्ता था और कैसा प्रबंध था।

(४) यह कि मेलाके प्रबन्ध कर्त्ताके पास कोई पत्र १० ५ या १५ रोज पहिले दिया था कि हमको फलां चीज की जरूरत मेला में होगी सो हमको मेलामें तैयार मिले लिखा था या नहीं अगर लिखा था तो प्रबन्ध कर्त्ता मेलाने कोई जवाब दिया या नहीं।

(५) यह कि प्रबन्ध कर्त्ता मेलामें बीमार था या तन्दुरुस्त था अगर बीमार था तो भी प्रबंधकर्त्ताने मेला का प्रबन्ध किया या नहीं।

आपने प्रबन्धकर्त्ताके ऊपर यह जुर्म बेकसूर और जबरदस्ती लगा दिया है जो आपको मेलेमें तकलीफ हुई थी और आप धूपमें ठहरे थे चूंकि तम्बू वगैरहके वास्ते तो प्रबन्ध कर्त्ताने इन्कार ही कर दिया था तो आपको उचित था कि प्रबन्धकर्त्ता मेलाको सभामें बुलाकर हिदायत करते ताकि उसी वक्त प्रबन्धकर्त्ता या तो शरमिंदा होता या इन्तजाम करता।

इन सब बातोंको सोचकर देखनेसे प्रबन्धकर्त्ताके ऊपर कोई दोष नहीं लगता लेकिन प्रबन्धकर्त्ताके ऊपर किसी द्वेषीने द्वेषवश आपके कानभर कर यह शब्द लिखा दिये हैं। मेला फिरोजाबादका प्रबन्धकर्त्ता एक ही है विघ्न डालने वाले सैकड़ों हैं आप जानते हैं कि "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" इस मेला फिरोजाबादको होने

हुये करीब १०० व्यक्त हुये और प्रबन्धकर्त्ताभी इसी खानदानमेंसे होते रहे हैं लेकिन आज तक किसी भाई या मंदिर या दुकानदार तथा गैरमजहबीने कोई शिकायत किसी किसमकी नहीं की मगर आज आपका अनायास दोषारोपण देख प्रबन्धकर्त्ताको नहीं बलकि यहांकी जनताको भी अत्यन्त खेद हुवा है।

नोट—सम्पादकजी कृपया इन प्रश्नोंको अपने पत्र में स्थान दे कृतार्थ कीजिये और दोषारोपोके पास तक इस पत्रको पहुंचा दीजिये।

फिरोजाबाद   निवेदक

ता० ३०—६—१९२०   ला० कुन्दनलाल प्रबंधकर्त्ता
                                    जैनमेला फिरोजाबाद

लालाजीने जो पांच प्रश्न किये हैं उनके उत्तरमें विशेष न लिख हम इतना बतला देना ही काफी समझते हैं कि पद्मावती परिषदके स्वागत कारिणीसभाके प्रबंध कर्ता अपनी शक्तिसे जितने डेरा तंबू जुटा सके थे उतने ही में पंडितोंको ठहरना पड़ा था। आवश्यकता पड़ने पर आपसे हमारे मश्च हो जब तंबू मांगा गया तो "पंडित हमारे बुलाये नहीं आये हैं हम अन्य लोगोंके लिये तंबू देंगे।" ऐसा साफ जवाब आपने दिया था। हां! एक बात की हम सराहना करते हैं और उसके लिये हम लालाजी को धन्यवाद देते हैं कि— उस समय आप अस्वस्थ थे, और वृद्धावस्थाके कारण शरीर कमजोर भी था तो भी शक्तिसे बाहर अधिक मेलाका इन्तजाम किया। हमारा जो कुछ लिखना है वह यही है कि— फिरोजाबादका मेला पद्मावती पुरवाल भाईयोंके निवासस्थानके समीप होनेके कारण वे लोग ही अधिक आया करते हैं, उनहीके संबोधनके लिये परिषद अपना अधिवेशन मेलाके समय किया करती है इसलिये उस समय सभाके लिये मौकेकी जगह बड़े मंदिरजीके बगलमें मिलनी चाहिये जिससे लोगोंको अधिक लाभ हो सके और पंडित लोगोंके लिये भी अन्य यात्रियों के समान सब सामान आपकी तरफसे मिलना चाहि जिससे सैकड़ों कोशकी दूरसे आनेका उनमें उत्साह बना रहे।

उपवास करनेका तरीका।

(लेखक—पं० रघुनाथदासजी जैन सरनो सं० जैनगजट (पटा))

दि० जैनाम्नायमें भादवमासमें दशलक्षणपर्व अति उत्तम मानागया है प्रायः दशलक्षण पर्वके ११ दिवस बड़े पुनीत माने जाते हैं। इन दिनों उपवास, एकासन बहुत स्त्री- पुरुष धारण करते हैं सो आज हम उस ही उपवासकी शास्त्रोक्त विधि वर्णन करते हैं। यदि विधिपूर्वक उपवास एक भी बनजावे तब महान पुण्य बंध होता है। यदि ऐसे उपवासके समय आगामी भवको आयुबंध करे तो नियमकर देवायु ही का बंध करे। सो हम शास्त्र विधिके अनुकूल यथा विधिसे उपवास नहीं करते हैं इसलिये पूर्ण धर्मलाभ हमको होना ही नहीं है।

उपवास एक तप और व्रत होनेसे धर्मका उत्तम अंग है। उपवास करनेसे पांच इंद्री व बन्दरके समान चंचल मन सब वशमें हो जाते हैं। और पूर्व कर्मोंकी निर्जरा होती है। संसारमें जो कुछ दुःख और कष्ट उठाने पड़ते हैं वे इंद्रियोंके वशमें न करनेसे ही उठाने

पड़ते हैं रसना इंद्रीके वशमें मछली, स्पर्श इंद्रीके वशमें हस्ती, कर्ण इंद्रीके वश हिरण नेत्र इंद्रीके वश पतंग, नासिका इंद्रीके वशमें भ्रमर (भौंरा) मरणको प्राप्त हो जाते हैं। एक इंद्रीके वशमें पड़कर ये सब जीव मरणको प्राप्त हो जाते हैं तब जिनके पांचों इंद्रियोंके विषय तीव्र हों उनके दुःखोंका क्या ठिकाना है? उपवाससे इंद्रियोंके विषय शिथिल हो जाते हैं उपवास इंद्रिय विषयके जीतनेको विषहरणमंत्रके समान है वा इंद्रिय विषयरूपी सर्पके जीतनेको गरुड़ समान है उस उपवासका विधि शास्त्रकारोंने इस प्रकार वर्णन की है। कषाय विषय और आहार जहां इन तीनोंका उपवास वा एकासन वा दिनमें त्याग किया जाता वही वास्तविक यथार्थ रूपसे उपवास समझना चाहिये और शेष विषय-कषाय का त्याग न कर केवल आहार ही का त्याग किया जाता है उसको लंघन (भूखा मरना) कहते हैं। श्रीअमितगति आचार्य महाराज इस विषयमें ऐसा लिखते हैं-'जिसने इंद्रियों के विषय भोग और उपभोगोंको त्याग दिया है (भोग जो पदार्थ एकवार भोगनेमें आवे रोटी पूरी आदि उपभोग जो वार २ भोगनेमें आवे, कपड़ा आदि। और जो समस्त प्रकारके आरम्भ करके रहित है उसहीको जिनेंद्र देवने चार प्रकारके आहारका त्याग उपवास कहा है (खाद्य रोटी, पूरी आदि १। स्वाद्य पान इलायची आदि २। पेय शरबत दुग्ध आदि) भावार्थ — इंद्रियोंके विषय भोग और आरम्भके त्याग किये विना चार प्रकारके आहारका त्यागना उपवास नहीं कहलाता है। स्वामी समंतभद्राचार्यने उपवासके विषयमें ऐसा वर्णन किया है। हिंसा १, झूठ २, चोरी ३, अब्रह्म (मैथुन) ४, और परिग्रह ५ ऐसे पांच पाप, शृंगारादि क्रिया आरम्भ, अतर फुलेल आदि गंध लगाना, पुष्पोंकी माला आदि धारण करना, स्नान करना, अंजन लगाना और तमाखू आदि सूंघना इन समस्तका उपवासके दिन त्याग करना चाहिये। उपवास करने वाले मनुष्यको उस दिन अत्यन्त अनुरागके साथ धर्मामृतका पान करना, (स्वाध्याय) और अन्य जीवोंको धर्मोपदेश देना चाहिये। और ज्ञान ध्यान, सामायिक, स्तुति वन्दना व पूजन (प्रासुक शुद्ध अचित्त द्रव्यसे) करना चाहिये। इस प्रकारके लक्षण व स्वरूपसे यह बात साक्षात जानी जाती है कि केवल आहार त्यागका ही नाम उपवास नहीं है वरन आहार १ विषय २, कषाय ३ का त्यागकर धर्ममें काल व्यतीत करना व पंचपापोंका त्याग, आरम्भ त्याग, शरीरसे ममत्व त्यागकर एकांत स्थान मंदिरादिमें धर्मध्यान स्वाध्याय सामायिकादिमें काल व्यतीत करनाही उपवास है। इसीमें उपवास, धर्मका एक मुख्य अंग व सुखका व पुण्य बंध व कर्मोंकी निर्जराका प्रधान कारण है। शास्त्रोंमें जहां ऐसे कथन लिखे हैं अमुक मनुष्य वा अमुक पशुने उपवास कर मरण कर स्वर्गादि शुभ गति पाई वहां यह समझलेना कि उन्होंने उपर्युक्त विधिसे शास्त्रोक्त उपवास किये थे तब महान शुभकर्म बंधन कर शुभ पर्याय देवगति पाई। यहांपर एक दृष्टांत है। समभाव, शास्त्रज्ञान, तपश्चरण करना ये सब क्रियायें सम्यक्तके विना पत्थरके बोझेके समान हैं। और ये सम्यक्त सहित उपर्युक्त क्रियाएं मणिके समान हैं पत्थर एक मनका कोई वेचे तब रुपया आठआना पासकता है। मणि १ तोले की कीमत हजारहों रु० होते हैं इतना बड़ा अन्तर है तैसेही केवल उपवास व एकासन के दिन आहारको त्यागकर देना व विषय कषाय का त्याग न करना व उपवासके दिन आहार

विषयका त्याग कर धर्ममें काल व्यतीत करना दोनो के फलमें पत्थर व मणिके समान अंतर समझना पहिला पत्थर व दूसरा मणि वा रत्नसमान समझना जैन धर्मका यह सिद्धांत है सम्पूर्ण बाह्य शोरीरिक क्रियाएं हमको भावोंकी शुद्धता पूर्वक करना पूर्ण फलको देने वाली हैं अन्यथा किंचित् भी शुभफल न हो। एक प्रकार तो यह है दूसरा प्रकार यह है विना बाह्य क्रियाके पालन किये पूर्ण पुन्य फल या मोक्ष सुख केवल भावशुद्धिसे हम नहीं पासकते हैं यदि पासकें तब तीर्थंकर महाराज संपूर्ण परिग्रह त्याग कर चरित्र क्यों धारण करें? चरित्र ही धर्म है (प्रवचनसार)। भावार्थः — बाह्य आचार क्रियाकांड भावशुद्धि दोनो ही से हमारे कार्यकी सिद्धि हो सकतीहैं। भावशुद्धि मुख्य है क्रिया गौण है। जैनधर्म क्रिया व ज्ञान (भाव शुद्धि) दोनोंसे ही मोक्षमानता है। बनमें आग लगे और अंधा व पंगुला दो पुरुष उसमें घिर जावें तब पंगुला विना पांवके आखके होते हुए अग्निमें जलही जावेगा। और अंधा विना आखके पाव होते हुए भी अग्निमें भस्म हो ही जावेगा। और ये दोनो मिलकर ऐसा उपाय करें अंधे के कंधे पर पंगुला बैठकर वह अंधेको रास्ता बतावे उस रास्ते (मार्ग) पर अंधा चले तब वे दोनो बनकी अग्निके उपद्रवसे बच सकते हैं। और जो भावोंकी शुद्धताका पक्ष लेकर बाह्य क्रिया का निषेध करते हैं वह आलसी निरुद्यमी है; क्रिया ही में मग्न हो कर भावोंकी शुद्धता नही करते है वे अज्ञानीहैं दोनो पक्ष एकांत रूप होनेसे मिथ्या हैं। जैन धर्म अनेकांत स्वरूप है। अतएव उपवास, व्रत, सामायक, पूजन सम्पूर्ण क्रियाएं भाव शुद्धि (विषय-कषाय-वासना रहित) पूर्वक ही यथार्थ पूर्ण शुभ फलके देनेवाली हैं व्रत पर्वके दिनमें धर्मध्यानसे काल व्यतीत करना ही परम धर्म हैं और ऐसेही रीतिसे प्रवर्तन करना चाहिये। आशा है कि समाज हमारे लिखेपर ध्यान देगी और अपनी प्रवृत्ति उपयुक्त प्रकार की धारण करेगी।

बाल गंगाधर तिलक।

भारत भूमिके हृदय सम्राट राजनीतिज्ञोंके सिरताज बालगंगाधर अब मनुष्य देहमें नहो हैं। अजरामरताके नाते यद्यपि उनकी मृत्यु नहीं हुई है तौ भी हम लोगोंको जो उनकी इस पर्यायसे लाभ हो सक्ता था वह नहीं होगा—उसका कारण उनका पंच भूतमय शरीर नष्ट हो गया है। यद्यपि उनका यह पर्यायपरिवर्तन उनके लिये हित कर है—रुग्ण वृद्ध शरीर की जगह नूतन शरीर उन्हें मिल गया होगा तौ भी यह भारतके राज नैतिक क्षेत्रके लिये चिंताप्रद हुआ है।

जिस महामना परोपकारैकरत तिलकके वियोग से आज समस्त भारत शोकाछन्न है उसमें ऐसी क्या शक्ति क्या गुणव्यक्ति थी इस बातका उत्तर यही है कि वे विशाल हृदय वसुधैवकुटुंबके पक्षपाती ही नहीं बिल्क आदर्श थे। उन्होने भारत वासियोंके उद्धारार्थ दो वार जेल काटा। कई वार विलायत गये और अनेकोंके साथ वैर बांधा। इतना सब होते हुये भी उन्होंने अपने भाई बंधु और जातिके लोग कभी मान मदमें चूर हो घृणाकी दृष्टिसे न देखे। पुरातन पद्धति—जातीय रीति रिवाज तोड़ उन्होंने कभी अपने सर्व प्रथम सद्दा-

... जाति नेता रुष्ट न किये। समुद्र यात्रा करनेसे वैष्णव धर्मावलंबियोंको प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध होना पड़ता है। तिलक महराज कई बार विलायत गये और पुत्र पुत्रियोंके विवाह आदि कार्य के समय प्रायश्चित धारण कर शुद्ध हुये। तेंतीस करोड़ भारत वासियोंके सम्मानास्पद, तिलकने मुट्ठी भर मान बढ़ाई पा कर ही उन्मत्त हुये लोगोंके समान कभी यह न ख्याल कियाकि मुझे प्रायश्चित्तकी क्या जरूरत है? उन्होंने अपने धर्म प्रवर्तक लोगों पर कभी गाली वर्षण न किया। तिलक धर्म द्वंद्वसे सर्वथा विमुख थे और यही कारण था कि वे सबमजहब और देशके लोगोंसे सम्मानित हुये।

तिलक महराजका जीवन चरित अनेक पत्रोंमें प्रकाशित हो चुका है इस लिये हमने उसे प्रकाशित नहीं किया। उसको ध्यान पूर्वक पढ़नेसे बहुतसी शिक्षायें मिल सक्ती हैं। हमारे जो नव युवक राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश करना चाहते हैं पर साथ ही साथ अपने वीतरागी शास्त्रों देवाओं और गुरुओंको शाप देनेकी बुरी आदत से पेशी भी बन रहे हैं उन्हें तिलक महराजके चारित्रसे शिक्षा लेनी चाहिये।

जन्टिलमैन।

(एक सच्ची घटनाके आधार पर)

बाबू दीनानाथ शहरमें रहते हैं अब;
पूरा जन्टिलमैन जानते हैं उनको सब।
ध्यान गांवका उन्हें कभी जब आजाता है,
तब विरक्तिका भाव वदन पर छाजाता है।
एक बार जब पिता गांव से मिलने आये,
बाबू साहब उन्हें देख जी में घबराये।
सीधे सादे और पिता थे भोले भाले;
बाबूजी के ठाट-बाट थे सभी निराले।
उन्हें देख कर एक मित्रवर बोले ऐसे—
"आप कौन हैं, और यहां पर आये कैसे?
फिर बाबू की ओर सभी सहचर मुसकाये'
बोले तब वे कि "ये एक हैं, घरसे आये!"
हुये सङ्कुचित उन्हें पिता कहते भी बाबू,
किन्तु पिताने कहा क्रोधसे हो बे-काबू-
"यह कृतघ्न कुछ नहीं कहेगा हालहमारा,
पर इसकी मां भेद बता सकती है सारा!"

—मैथिलीशरण गुप्त।

तीर्थक्षेत्र कमेटी — श्री सम्मेद शिखर तीर्थ रक्षा करनेके लिये भी बंबईमें सेठ बलदेवदासजी कलकत्ता निवासीके सभापतित्वमें सभा हुई थी उसमें बीसलाखकी अपीलकी गई थी लोग चंदा भर रहे हैं।

आदर्शदान — सहारनपुर निवासी ला० जम्बूप्रसाद जी व फिरोजपुर निवासी ला०देवीसहायजीने पचास पचास हजार रुपया शिखरजी पर्वत रक्षार्थ दिया है। इसके सिवा आप तन मनसे भी प्रयत्न कर रहे हैं।

प्रबन्धकी आवश्यकता — श्री जंबू स्वामी सिद्ध क्षेत्र चौरासी मथुरा का प्रबंध ठीक नहीं है स्थानीय पंचोंको ध्यान देना चाहिये।

जैनसिद्धांतप्रकाशकप्रेस, ८ महेन्द्रबोसलेन श्यामबाजार कलकत्तामें पा

पद्मावती परिषद्का मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा कविताओंसे विभूषित)

संपादक-पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ

प्रकाशक-श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

विषय सूची।

वर्ष. ३ — अं. ५-६

वार्षिक मू० २)

आनरेरी मैनेजर-
श्रीधन्यकुमार जैन, 'सिंह'

१ अंक का ≈)

समाचार संग्रह।

मंगाले'—जिन भाईयोंको फसली बुखारकी दवा चाहिये, डाकव्यय भेज कर निम्न पतेसे मुफ्त मंगाले।

पं० आदमप्रसादजी जैन.

तीर्थक्षेत्र—कंपिलाजी (फर्रुखाबाद)

उत्तरपाड़ा (कलकत्ता) में—श्रीदशलक्षण पर्व सानंद समाप्त हुआ। चतुर्दशीके दिन मंदिरजीको करीब १००) रुपयेकी आमद हुई। दातारोंको धन्यवाद!

कुंडलपुर—उदासीनाश्रमके ब्र० अमरचंद जीने श्री दशलक्षण पर्वमें १० दिनके उपवास किये थे। श्री अष्टाह्निका पर्वमें भी आपने ८ उपवास किये थे।

हो गया—रोहाना (रोहतक) में सेठ हुकमचंद जैन औषधालय स्थापित हो गया।

शोक—है कि जैनगजटके सुयोग्य आनरेरी सम्पादक श्रीमान पं० रघुनाथदासजी रईस सरनौके ज्येष्ठ भ्राताको स्वर्गवास ता० २५ अगस्त सन २० को हो गया। आपके इस असह्य दुःखमें हम समवेदना प्रगट करते हैं और स्वर्गवासी आत्माको शांति लाभके लिये परमात्मासे प्रार्थना करते हैं।

कलकत्तेमें—ता: १ अक्टूबरसे ता:४ तक ट्राम कंपनीमें हड़ताल रही। हड़तालियोंकी पहिले १७-१८ रु. तनखा थी, अब २४-२५ रुपये हो गई है।

कलकत्तेमें—आज करीब ८-६ रोजसे गैस कंपनीकी हड़ताल जारी है; जिससे सड़कों पर अंधेरा रहता है—मोमबत्तीसे काम लिया जाता है। अभी कुछ निपटेरा नहीं हुआ (१६ १०-२०)

बंबईमें—डांकखानेका काम बंद है वहांके पोष्टमैनोंने हड़ताल कर दी है।—करीब एक महीना हो गया। गैस कंपनीकी भी यही हालत है। सुनते हैं अंधेरेमें मोटर और बग्गी दोनों आपसमें टकरा जाने से बड़ा नुकसान हुआ है।

दुकानमें जैन पर्वकी छुट्टी—रा० ब० रा० सेठ कल्याणमलजीने प्रत्येक चतुर्दशी तथा पर्युषणमें पंचमी अष्टमी और सुगंध दशमीको अपनी दुकानमें छुट्टी रक्खी है। व्यापारी जैन समाजके लिये प्रथम आदर्श है।

भूल सुधार।

स्त्री मुक्तिपर विचार करते हुये हमने एक जगह विदेह क्षेत्रके शूद्रोंको मुक्तिका विधान लिखा है। उसपर अनेक महाशयोंने हमसे उसका शास्त्रीय प्रमाण मांगा है। उत्तरमें हमारा कहना है कि उक्त विषय हमने किसी विद्वान (जिनका नाम हमें याद नहीं पड़ता) के मुखसे सुना था और तदनुसार ही सरसरी तौरपर लिख दिया था परन्तु बहुत खोज करने पर भी उक्त विषयका कोई भी शास्त्रीय वाक्य कहीं भी न मिला अतः उसको पाठक सुधार कर पढ़ें।

श्रीलाल जैनके प्रबंधसे

जैनसिद्धांतप्रकाशक (पवित्र) प्रेस

८ महेंद्रबोसलेन, श्यामबाजार कलकत्तामें छपा

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदं

३ रा वर्ष } कलकत्ता, श्रावण, वीरनिर्वाण सं० २४४६ सन १९२० { ५ वां अंक

हमारा प्यारा भारतवर्ष ।

हमारा प्यारा भारतवर्ष ।
आदि-सभ्यता-सद्म, पुण्यका पद्म, विश्व-आदर्श ॥ १ ॥
राम-राज-सुख-सेतु, सागर कृति-केतु, प्रजाका हर्ष ।
सच्छासनकी सृष्टि, शान्ति-सद्वृष्टि, आर्य-उत्कर्ष ॥ २ ॥
स्वतंत्रता की खान, जाति-अभिमान, ज्ञान- भण्डार ।
ऋषि-समाज की, शुभ सुराजकी, भूमि शील-शृंगार ॥ ३ ॥
देश-भक्तिका, प्रजा शक्तिका निलय, न्याय-अवतार ।
अघ-अनीतिका ईति-भीतिका नाशक, विगत-विकार ॥ ४ ॥

पाण्डेय लोचनप्रसाद ।

भूगोलभ्रमण मीमांसा।

(लेखक— पं रघुनाथदासजी सरनौ)

विदित हो कि पृथ्वीको जैन अजैन वेद पुराण इंजील कुरान सब हीं मतमें स्थिर माना है परन्तु यूरोपके वैज्ञानिक मनुष्य पृथ्वीको घूमती हुई और सूर्य्य आदिको स्थिर मानते हैं सो हम इस विषय पर विचार करते हैं यद्यपि अब उनमें भी कोई विद्वान सूर्य तारा ग्रह नक्षत्रोंको भ्रमण करते मानने लग गये हैं, उनमें भी एक मत नहीं है भूभ्रमण वादियोंका मत है कि पृथ्वी नारंगीके समान गोला है इसमें वे ये हेतु देते हैं –

(१) सब तारागण पृथ्वी हैं वे गोल दिखाई देते हैं इस कारण यह पृथ्वी भी गोल है

(२) नेत्रोंद्वारा सब तरफ पृथ्वी गोल दिखाई देती है इस कारण पृथ्वी गोल है।

(३) ग्रहण पड़ने समय पृथ्वीकी छाया गोल पड़ती है इस कारण पृथ्वी गोल है।

(४) ऊंचे स्थानसे पृथ्वी अधिक दीख पड़ती है इस कारण पृथ्वी गोल है।

(५) जहाजको ३, ४ मीलसे देखते हैं तो पहले उसका मस्तूल दिखाई देता है पीछे जहाजका तल भाग इस कारण पृथ्वी गोल है। ऊपर लिखे हेतु ठीक नहीं

(१) सब तारागण गोल होनेसे पृथ्वीके गोल होनेका हेतु ठीक नहीं पड़ता है क्योंकि आपही स्वयं परिभाषाओंमें लिखते हैं कि तारागण कोई गोल हैं और कोई तिखूंटे चौखूंटे। इसका हेतु आपके माने हुए हेतुसे बाधित हुआ दूसरी बात यह है कि एक पदार्थ गोल होनेसे दूसरे पदार्थको वैसा ही मानना अयुक्त है जैसे एक मनुष्यके तीन पुत्र गोरे हैं। इस हेतु गर्भ स्थित हुआ बालक भी गौर वर्ण होगा ऐसा नियम नहीं गर्भस्थल बालक सम्भव है कि श्याम हो यह सबके प्रतीत गोचर है। २ रा नेत्रोंद्वारा पृथ्वी गोल दिखाई पड़ती है इसका कारण कुछ और ही है वह यह है कि हमारी नेत्र इंद्रियका विषय सब तरफ चारो दिशामें एकसा है क्योंकि केन्द्रसे चारो तरफ जो डोरी या रस्सी घुमाई जाती है वह गोलाकार ही क्षेत्र बनावेगी या बनाती है हम अपनी आंखको केन्द्र बना कर चारो तरफ देखेंगे तब चारो तरफ एकसी दूरी होनेसे गोलाकार ही क्षेत्र बनेगा।

(३) ग्रहण पड़ते समय सूर्य चंद्रमा पर पृथ्वीकी छाया नहीं पड़ती क्योंकि सूर्य हमेशा पृथ्वीसे उपरबहता है और छाया नीचेको पड़ती है फिर अमावसकी तिथीको ग्रहण क्यों पड़ता है हर तिथीमें पड़ना चाहिये और चंद्र ग्रहण पूर्णमासी ही को क्यों ?

(४) ऊंचे स्थानसे पृथ्वी अधिक दीखती है इसका कारण यह है कि पृथ्वीसे जब हम देखते हैं तब टीला घास वृक्ष आदि पदार्थोंसे देखना रुक जाता है और पहाड़से ऊंचे स्थानसे दृष्टि रुकती नहीं यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है।

(५) जहाजका मस्तूल दीखता है वह मस्तूल उपयुक्त जो पदार्थ दृष्टिके प्रतिबन्धक है उनसे ऊंचा होने से दीखता है। कोस दूरसे फोटू सब जहाज का बिंब आवे या दूरबीनसे सब जहाज दीखने लगे तब आपका हेतु ठीक नहीं बनता है।

भू भ्रमण वादियोंकी परिभाषा।

ग्रह चंद्रमा आदि तारोंके आकार तिखूटे चौखूंटे अड़ गोल लम्बे व पूंछवाले हैं। जलका स्वभाव द्रवीभूत

होनेसे नीचेको ढलनेका और गढ़े में भर जानेका है गढ़ेमें समस्थल रहनेका जलका स्वभाव है पृथ्वी पर सर्वदेश उपर को हैं इसमे सब और ऊंचा ही ऊंचा है अमेरिकासे हिन्दुस्थान नीचा और हिन्दुस्तानसे अमेरिका नीचा तैसे ही हरिद्वारसे कलकत्ता नीचा और कलकत्तासे हरिद्वार नीचा [आकर्षण शक्ति] आकर्षण गुण पृथ्वीमें है और उसका स्वभाव पदार्थको अपनी ओर खींचनेका है जैसे चुम्बक पत्थर अपनी ओर लोहे को खींचता है जल आकर्षण शक्तिसे बहता है २ अग्नि आकर्षण शक्तिसे ऊपर जाती हैं। ३ जल आकर्षण शक्तिसे गढ़े में ठहरता है ४ आकर्षणशक्तिसे पदार्थ अंतरिक्ष आकाशमे रहते हैं जैसे चुम्बककी पटिया वाले मकानमें लोहेका पुतला आकाशमे स्थिर रहता है ५ आकर्षण शक्तिसे पृथ्वी घूमती है ६ आकर्षण शक्तिसे सब पृथ्वी तारे आदि नियम रूपसे चलते हैं स्थिर रहते हैं और घूमते हैं ७ कोई २ पृथ्वी तारे आपसमे भिड़ २ कर टूट जाते हैं तथा और पृथ्वीमें मिल जाते हैं ८ चन्द्रमा सूर्य समुद्रके जलको उपर खींचलेता है इससे ही समुद्रमें ज्वार भाटा होता है ९ हलके और छोटे पदार्थ पर आकर्षणका अधिक प्रभाव पड़ता है इस कारण यह उसे अपनी ओर जल्द खींचता है जैसे चुम्बक लोहेके छोटे व हलके पदार्थको जल्द और भारी व बड़ेको देरसे खींचता है।

(१०) एक शीशेकी नलीसे यदि वायु निकाल ली जाय और उसमें दो वस्तु डाली जांय एक हलकी और एक भारी तो दोनों एक समय पृथ्वी पर पहुँचेंगे।

(११) उत्तर दक्षिणकी तरफ दो ध्रुव तारे हैं वे चुम्बककी आकर्षण शक्ति वाले हैं उनकी आकर्षण शक्तिसे कुतुबनुमाकी सूईका मुख उत्तर दक्षिणका रहता है उसीसे दिशाओं की सम्हाल होती है।

(१२) तारे पृथ्वी अनन्तानन्त हैं क्योंकि वे आकर्षण शक्तिसे खींचे हुए हैं।

(१३) पृथ्वीकी दो चाले हैं एक घूमना दूसरी आगे बढना।

१४ पदार्थमें हलका भारीपन गुण नहीं है।

१५ आकर्षण शक्ति केंद्रके स्थान पर अधिक शक्ति वाली और दूरी पर कम होती है।

१६ केंद्रमें जितना २ दूर पदार्थ होगा उतनाही उतना भारी होजायगा केंद्रके पास भारी नहीं रहता।

आकर्षणशक्ति पर विचार ।

पदार्थकी सिद्धि आगम प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणसे होती है। सो जैनागम तथा वेद पुराण कुराण इंजलमें पृथ्वीके घुमानेवाली ऐसी आकर्षण शक्ति मानी नहीं है। यदि प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध हो तो वादी प्रतिवादी दोनो स्वीकार कर ही लेवें तब विवाद ही किस बातका? अतएव आकर्षण शक्ति प्रत्यक्ष प्रतीत गोचर नहीं। अब आकर्षण शक्ति अनुमान प्रमाण से सिद्ध होती है या नहीं इस बात पर विचार करते हैं। साधनसे साध्यका ज्ञान होना उसे अनुमान कहते हैं। साध्य अप्रत्यक्ष होता है। साधन वादी प्रतिवादी दोनोंके मान्य व प्रत्यक्ष होता है। साधनके वचनको हेतु कहते हैं। व तर्क भी कहते हैं। व्याप्ति ज्ञान को तर्क कहते हैं। साहचर्य नियमको व्याप्ति कहते हैं यथा यत्र यत्र अग्निर्नास्ति यत्र तत्र धूमो नास्ति यह व्यतिरेक व्याप्ति है यहां अग्नि साध्य है धूम साधन है अग्नि जिस स्थलमें रहे उसे पक्ष कहते हैं। यत्र यत्र धूमः तत्र २ अग्निः यह अन्वय व्याप्ति है। इसका विशेष पूर्ण स्वरूप न्याय ग्रंथ न्यायदीपिका प्रमेयरत्नमाला (परीक्षा मुख) आदिसे समझना चाहिये। यहां कुछ प्रसंगपाकर लिखा गया है कर्ता आदिका विचार अनुमान

प्रमाणसे होता है । यथा यह पर्वत अग्निमान है धूम वान होनेसे यथा रसोईका स्थान यह अन्वय दृष्टांत है जहां अग्नि नहीं होती वहां धूम नहीं होता जैसे जलका तालाब । यहां पर्वत पक्ष अग्नि साध्य धूम साधन रसोईका घर दृष्टान्त अन्वय दृष्टांत । तालाव व्यतिरेक दृष्टांत । तैसे पृथ्वीमें आकर्पण शक्ति है इसका साधन नही बनता है । क्योंकि उसके साथ अन्वय व्यतिरेक व्याप्तिका अभाव है और चुम्बक पत्थरके साथमे व्याप्ति बनती है चुंबक पत्थरमे लोहेको खीचनेका शक्ति है क्योंकि सूई उसके पास रखनेसे खिच जाती है । चुम्बक पत्थर पक्ष खीचनेकी शक्ति साध्य सूईका उसी तरफ खिच जाना साधन । जहां चुम्बक पत्थर नहीं वहां लोहा नहीं खीचा जा सकता । यथा मिट्टी या मिट्टी का टुकड़ा आकर्पण शक्ति पृथ्वीमें प्रतीत नहीं होता जैसेकि चुम्बकमें सबके प्रत्यक्ष व अनुमानसे प्रतीत सिद्ध है । दृष्टांत मात्रसे साध्यकी सिद्धि नहीं मानी जा सकती जब तक अन्वय व्यतिरेक रूप व्याप्ति हेतु से सिद्ध कर न दिखाई जावे जैसे—जहां २ पृथ्वी हो तहां २ आकर्षण शक्ति हो जहां पृथ्वी नहीं वहां आकर्षण शक्ति नहीं सो ऐसा सिद्ध नहीं होता । जब आकर्षण शक्ति पृथ्वीमें है और उसका स्वभाव खींचने का है तब चलना घूमना ये विरुद्ध कार्य आकर्पणके माने नहीं जा सकते हैं । खीचना घूमना चलना ये धर्म विरुद्ध हैं जैसे चुम्बक पत्थर लोहेको अपनी तरफ खीच तो लेता है परन्तु वह खुद या सूईको घुमाता चलाता नहीं है । आकर्पण शक्तिसे पदार्थ आकाशमें स्थिर रहते हैं उस पर चुम्बकका दृष्टांत दिया है सो दृष्टांत विपम है क्योंकि चुम्बक पत्थरकी पटिया छत में लगा देते हैं तब लोहेकी सूई आकाशमें ठहरी रहती है परन्तु आकाशमें पृथ्वी नहीं तब वहां आकर्पण शक्ति का मानना अयुक्त है क्योंकि आप ही अपनी एक परिभाषामें ऐसा मान चुके हैं कि पृथ्वीसे ऊपर ४२ मील तक वायु मंडल है वह पृथ्वीके ऊपर आकाशके पदार्थोंको पृथ्वीके साथ रखता है । आकर्षण शक्तिसे जल गड्ढेमें ठहरता है व बहता है इसके विरुद्ध आप अपनी परिभाषामें लिखते हैं कि जलका स्वभाव द्रवीभूत होनेसे नीचेको ढलनेका और गड्ढेमें भर जानेका और उसमें समस्थल रहनेका है ये परिभाषा परस्पर विरुद्ध हैं वास्तवमें ये सब स्वभाव जलके ही हैं आकर्पणशक्ति का कल्पना वृथा है जैसे चुम्बकके बड़ेसे बड़े टुकड़ेमें व छोटेसे छोटे टुकड़ेमें लोहा खींचनेकी शक्ति प्रत्यक्ष सबके प्रतीत गोचर है या संखियाका बड़ा टुकड़ा व रत्तीभर सबमें जहरीली खासियत है तैसे मिट्टी के टुकड़े डेलेमें पदार्थके खींचनेकी शक्ति प्रतीतिमें नहीं आता है यदि होती तो जिस घरमें चुम्बक पत्थरकी पटिया लगी थी सो उस चुम्बकने तो लोहेके टुकड़ेको अपनी तरफ खींच लिया परन्तु छत जो मिट्टीकी थी उसने अपनी तरफ लोहेके टुकड़े को नहीं खीचा । और यह बात आप मानते हैं कि पृथ्वीमें सर्व पदार्थ अपनी तरफ खींचनेवाली एक आकर्पणशक्ति है आकर्पणशक्तिसे पृथ्वी तारे आदि चलते हैं स्थिर रहते हैं और घूमते हैं सो धर्म परस्पर विरुद्ध होनेसे ठीक नहीं है जैसे जलका स्वभाव द्रवीभूत होनेका और अग्निको ऊंचा ली उठनेका है । आकर्पण शक्तिसे जल गड्ढेमें ठहरता है व समस्थल रहता है ऐसा भूभ्रमणवादी मानते हैं । तब जल गोल पृथ्वी पर घूमनेसे अवश्य आकाशमें गिर जावेगा क्योंकि नदी समुद्र गोलाकार नहीं बन सकते क्योंकि उनका स्वभाव ही समस्थल रहनेका है । गोलाकार पदार्थ समस्थल रहे यह बात प्रत्यक्ष विरुद्ध है प्रत्यक्ष विरुद्ध हेतु विरुद्ध पदार्थको सिद्धि मानी जावे तब कर्ता

वाद सत्य ठीक मान लेना चाहिये जलका स्वभाव समस्थल है तो पृथ्वी गोल नारंगीके आकार ऐसा बन नहीं सकता है। अब वायु मंडलको विचार समझिये–वायु मंडलकी परिभाषा जो विवादापन्न है वह यह है कि पृथ्वीके ऊपर एक वायु मंडल है वह मंडल पृथ्वीसे ४२ मील ऊंचे तक है। वहांसे उपर कोई पदार्थ नहीं जा सकता उसका स्वभाव यह है कि पृथ्वीके उपर आकाशके पदार्थोंको पृथ्वीके साथ रखता है। यह कल्पना भी प्रमाणविरुद्ध है पृथ्वीका स्वभाव धारण जलका द्रवण [ढाल] अग्निका ऊर्ध्वगमन वायुका तिर्यक्‌गमन ऐसा जैन वैशेषिक नैय्यायक सबने माना है व प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है पवन तिर्यक पूर्वसे पश्चिम पश्चिमसे पूर्व उत्तरसे दक्षिण व दक्षिणसे उत्तर तिर्यग्गमन करता प्रत्यक्ष सबके प्रतीत सिद्ध है। गोल घूमता हुआ उत्तरसे पूर्व दक्षिणसे पश्चिम ऐसा गोल चलता हुआ किसीके प्रतीतिमें नही आता है। इस पवनसे भिन्न जुदा वायु मंडल प्रत्यक्ष देखनेमें कोई आता ही नही है। आकाशमें ऐसा क्षेत्र विभाग भूभ्रमण वादियोंने माना ही नही है कि इतने आकाशमें तो वायु मंडलका पवन रहता है इतनेमें तिर्यग [तिरछा] गमन वाला पवन रहता है इसवास्ते वायुमंडल की कल्पना व्यर्थ है। इसके सिवाय आपकी एक परिभाषा भी वायु मंडलके कार्यका खंडन कर रही है वह यह है कि आकाशसे जल बरसता है उसका बूंद पृथ्वी पर टेढ़ी पड़ती है इससे मालूम होता है कि पृथ्वी घूमती है। यहां पर बात विचार करनेकी है कि घूमती हुई पृथ्वीके साथ वायु मंडल आकाशके सर्व पदार्थो को साथ रखता है यह नियम बाधित हो गया। क्योंकि बूंदको वायु मंडल सीधा न पहुंचा सका इसी तरह हमारी यह सब कल्पनाएं ठीक हैं। हवाई जहाज आकाश में पृथ्वीके साथ चल कर अभीष्ट स्थान पर नहीं पहुंच सकता है क्योंकि पृथ्वी एक घंटेमें करीब ११००) मील चलती है और हवाई जहाज ७० मीलही चलता है इसी तरह बंदूक की गोली तोपका गोला ठीक निशान पर नही लग सकते हैं। न आकाशके उड़ने वाले पक्षी चलती पृथ्वीके साथ अभीष्ट स्थान पर पहुंच सकते है इसपर भूभ्रमण वादी यह उत्तर दें कि वायु मंडलके साथ उतनी चाल तो स्वतः हवाई जहाज चल जाता हैं और ७० मील फी घंटा अधिक चलता है तब यह उस अवस्थामें तो बन सकती है कि जिस दशाको पृथ्वी घूमें उसी दशाको हवाई जहाज चले उससे पीछली दशा या बगलकी दशाओंमें नहीं बनेगा जैसे देहली से हवाई जहाज उत्तरकी लाहौरकी तरफ चलाया गया पृथ्वी चल रही है दक्षिणकी तब देहलीसे पृथ्वी १ घंटेमें ११०० मील के करीब दक्षिण की चली तब वह हवाई जहाज ११००मील पीछे हट गया या एक घंटेमें ७० मील अपनी चालसे चला तब एक घंटेमें करीब ११७० मील लाहौरसे उत्तर उसे पहुंच जाना चाहिये सो ऐसा होता ही नहीं क्योंकि हवाई जहाजकी चाल सब दिशामें एकसी प्रत्यक्ष देखनेमें आती है। यह तो पीछे चालके विषयमें दोष आता है तिरछी और बगल की चालमें इसप्रकार समझ लीजिये। तोप बंदूकके निशानमें यह दोष है कि निशान लगाते समय जिस समय बंदूक या तोप चलाते हैं उससे कालांतरमें गोली गोल निशाना पर पहुंचते है तब तक निशाना का स्थान कुछ नीचा या ऊंचा अवश्य हो जावेगा तब निशान कभी ठीक स्थान पर नही लगसकता है ईसी तरह पक्षी की चाल आदि पर समझ लेना चाहिये। और उपर्युक्त पदार्थ अपनी २ चाल चलकर अभीष्ट स्थान पर पहुंचते ही है इससे स्पष्ट रीतिसे सिद्ध होता है

कि पृथ्वी स्थिर है बूंद तिरछी होनेका कारण और ही कुछ है मेघ जब बरसता है तब यह बात प्रत्यक्ष है कि जब पूर्वसे पश्चिम को हवा चलती है तब पूरबसे पश्चिम को तरफ बूंदें तिरछी जमीन पर गिरती हैं हवा तेज हो तो अधिक तिरछी मध्य या कम हो तो कम तिरछी हवाके सन्मुख दिशामें बूंदे पड़ेंगी यदि हवा बंद हो तो सीधी मेघकी बूंद पड़ेगी किसी कारण को किसी कार्य उत्पन्न होनेमें उस सत्य कारणको न मान कर अन्य कारणकी मनोक्त कल्पना करना अयुक्त है उसी तरह आकर्षण शक्तिमें कल्पना की गई है कि एक विद्वान एक बागकी शैर करने गये शैर करते २ वहां एक पलंग पर लेट गये वहां एक सेवके वृक्षसे एक फल जमीन पर टूट पड़ा उसे देखकर कहा कि आ. हा. पृथ्वीमें आकर्षण शक्ति है फलको अपनी तरफ खींच लिया। तबसे आकर्षणशक्तिकी कल्पना चली है।

वास्तविक असल कारण यह है कि पदार्थों में आधार आधेय सम्बन्ध परस्पर रहता है। पदार्थों को किसी तरकीबसे आकाशकी तरफ फेंक देवें पहुंचा देवे तबभी वह पदार्थ आधारकी तरफ आजावेगा जैसे ईंटको हम अपनी ताकतसे आकाशकी तरफ फेंक दें तब जहां तक हमारे फेंकनेकी ताकत है तहांतक वह आकाशमें जाकर स्वयं पृथ्वी जो उसका आधार है वहां आकर ठहरेगी। हवाई जहाजमें यन्त्रसे हवा भरकर उसे आकाशमें चलाते हैं। यदि आकाशमें यन्त्रमें हवा निकाल लेवे तब वह पृथ्वी पर ही ठहरेगा तब आगे आकर्षणकी ताकत हवा निकालने पर उसे आकाशमें एक घंटेमें ठहरा सके तैसे ही सेवके वृक्ष पर फल लगाथा उसे वृक्षकी टहनी पकड़े थी हवाकी प्रबल वेगसे टूटकर पृथ्वी रूपी आधार पर पड़ा। आकाश उसका आधार न था इससे वहां न ठहर सका। पक्षी अपनी ताकतसे आकाशमें उड़ते हैं जब वे अपनी ताकत उड़नेकी संकोच लें तो पृथ्वी पर गिर पड़ेंगे। वा कोई पक्षी आकाशमें सो नहीं सकता। व्याकरणमें अधिकरण एक कारक माना है उसीको आधार कहते हैं यदि आकर्षणमें खींचनेकी शक्तिथी तो फल हवाके प्रबल धक्केसे गिरा उससे पूर्व क्यों फल को पृथ्वी पर नखींच लिया ऐसी आकर्षण शक्तिमानना पिष्टपेषणन्यायवत् व अकिंचितकारी है। अब पृथ्वीके भ्रमनेका विचार करते है। भूभ्रमण वादी पृथ्वी भ्रमण करती है, और भूभ्रमण करती प्रतीतमें नहीं आती स्थिर प्रतीति होती है इसविषयमें नावका दृष्टांत इसप्रकार देते हैं कि जैसे जब हम नावमें बैठते हैं तब नाव चलती है और हमें स्थिर प्रतीत होती है। तैसे पृथ्वी चलती है और हमें स्थिर प्रतीत होती है सो हमारा ऐसा ज्ञान भ्रमरूप है। सो यह दृष्टांत ठीक नहीं केवल दृष्टांत मात्रसे साध्यकी सिद्धि नहीं होती जब तक कि साध्यके सिद्धकरनेको साधन न बनया जावे रेखागणितकी सब साध्य साधन द्वारा ही सिद्धकी गई हैं न केवल दृष्टांत मात्रसे। एक पदार्थ को भ्रमरूप देखकर दूसरे को भ्रमरूप मानना अयुक्त है ठीक नहीं है यथा जब हम नावमें बैठकर एक किनारेसे दूसरे किनारेको जाते हैं उस समय नाव हमें स्थिर प्रतीत होती है यह ज्ञान हमारा भ्रम रूप है। परन्तु जब हम एक किनारेसे दूसरे किनारे पहुंच गये तब हम अपने मनमें विचार किया कि नाव हमें स्थिर प्रतीत होती थी हमारा यह ज्ञान भ्रम रूप मिथ्या था। यदि नाव स्थिर होती तो हम एक स्थानसे दूसरे स्थान पर कैसे आजाते इसप्रकार स्थानसे स्थानांतर गमन रूप क्रियाने नावके स्थिर ज्ञानको भ्रम सिद्ध कर दिया। तैसे

ही एक आदमीने रात्रीमें रस्सी देखी। भ्रमसे मन में यह समझ लिया कि यह सर्प है। फिर उसने दीपकके प्रकाशसे उस रस्सी को रस्सी ही प्रतीत कर लिया और उस रस्सीमें सर्पके ज्ञानको भ्रमरूप समझ लिया दैव योगसे किसी समय रात्रीमें उसने सर्प देखा और पहली बात उसे याद आ गई कि उस रात्रीमें हमने रस्सी देखी थी तैसेही रस्सी यह है। ऐसा समझकर वह बेडर होकर सर्पके पास होकर निकले तब सांप उसे काट खावेगा तब उसको दुःख होगा और थोड़ी देर बाद वह प्राणांत हो जायगा और लोग उससे यह भी कहेंगे कि तुम बड़े बेवकूफ थे दीपक से क्यों न देख लिया होता इसीप्रकार नावके दृष्टांत को लेकर पृथ्वी को चलती हुई मानना अयुक्त है ठीक नहीं है। ऐसे अनेक और भी दृष्टांत पाये जाते हैं। एक आदमी भला मानस है उसका लड़का ज्वारी है बापके दृष्टांत को लेकर लड़के को कैसे भला मान सकते है। एक मनुष्य के दो पुत्र गौर वर्ण हैं उनका दृष्टांत लेकर गर्भस्थ पुत्रको गौर वर्ण मानना मिथ्या है। सम्भव है गर्भस्थ पुत्र श्याम हो गौर वर्ण न हो। नाव चलना प्रत्यक्ष प्रमाण से भी सिद्ध है। किनारे पर जो पुरुष खड़े हैं उनको नाव चलती दीखती हैं अनुमानसे अब सिद्ध करते हैं। नाव गमन करती है क्योंकि एकस्थान से दूसरे स्थानको प्राप्त होती है जैसे मार्ग चलता पुरुष व सूर्य चंद्रमा। यहां नाव पक्ष गमन साध्य स्थानसे स्थानन्तर प्राप्त होना साधन चलता पुरुष सूर्य चंद्रमा अन्वय दृष्टान्त व्याप्ति इस प्रकार है जो जो स्थानसे स्थानान्तर अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थानको प्राप्त हो सो सो गमन करता है अन्वय व्याप्ति। जो जो पदार्थ गमन नहीं करता है सो सो अपने स्थान पर रहता है व्यतिरेक व्याप्ति। इसी तरह सूर्यके गमनमें साध्य साधन भाव घना है। सूर्य गतिमान है क्योंकि स्थानसे अन्य स्थानको प्राप्त होता है। यथा पथिक अन्वय दृष्टांत पृथ्वी ध्रुव तारा व्यतिरेक दृष्टांत। सूर्य पक्ष गतिमान (गमन करना) साध्य स्थानसे स्थानान्तर प्राप्त होना साधन हेतु (श्री प्रमेय कमल मार्तंड) पृथ्वी घूमती व चलती हुई उपर्युक्त प्रकार न तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे न अनुमान प्रमाणसे ही सिद्ध होती है। साध्य साधन भाव व अन्वय व्यतिरेक व्याप्ति किसी तरहसे बन नहीं सकती है।

सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्र स्थानसे स्थानांतर गमन करते हैं इस विषयमें यूरोपके विद्वानोंकी सम्मति इस प्रकार है।

नक्षत्रोंकी गति

आकाशमें अनंत नक्षत्र हैं उनमें छः ह हजार दीखपड़ते हैं कोई मनुष्य कभी समूचे आकाशको नहीं देख सकता लाख यत्न करने पर आधेसे अधिक आकाश दृष्टिगोचर नहीं होता ऐसी व्यवस्थामें यह कहना उचित है कि एक समयमें तीन हजारसे अधिक नक्षत्र आंखों के सामने नहीं रहते ज्योतिषी नक्षत्रोंका श्रेणि विभाग करते हैं। चमकीले नक्षत्र प्रथम श्रेणीके हैं उनमें काल पुरुषके समीप रहनेवाला लुब्धक अगस्ता दक्षिणप्रदेशवर्ती बृहद्हृदय उत्तराकाशवर्ती तथा कृत्तिका रोहिणी आदि (वृषराशिवाले) नक्षत्र बड़े उज्वल होते हैं इनकी अपेक्षा सप्तर्षि मंडल तथा काल पुरुषके नक्षत्र अनुज्वल प्रभारहितसे होते हैं अतएव द्वितीय श्रेणीके हैं इनके अतिरिक्त जो नक्षत्र धूंधलेसे दीख पड़ते हैं वे तृतीय श्रेणीके हैं चौथी तथा पंचम श्रेणीके

नक्षत्र मेघसून्य ज्योत्स्नामयी रात्रिमें बहुत देख पड़ते हैं जिनकी दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण है वे भी षष्ठ श्रेणीके अनुज्वल नक्षत्रोंको नहीं देख सकते। दूरबीनकी सहायता से दृष्टिगोचर होते हैं जो साधारण दूरबीनसे नहीं दीखते वे बड़े बड़े दूरबीनोंकी सहायतासे प्रत्यक्ष हो जाते हैं और उनकी तस्वीरें बन जाती हैं बड़े बड़े दूरबीनोंसे एकादश श्रेणीके नक्षत्र दृश्यमान होते हैं हार्सेल साहबने कार दूरबीन बनाई है उसकी शक्ति इतनी अधिक है कि जिसका प्रकाश पृथ्वी तक पहुंचनेमें दो हजार वर्ष लगता है वह भी समीपस्थ मालूम पड़ता है प्रकाश रश्मि साधारण रूपसे हरएक सेकेण्ड में एकलाख छियालिस हजार माइल तक पहुंच जाती है जिसके प्रकाशके आनेमें दो हजार वर्ष लगते हैं वे हमसे कितनी दूर पर हैं इसका अनुमान इतने हीमें करलेना चाहिये।

अब बहुतसे लोगोंका विश्वास है कि प्राचीन ज्योतिष नक्षत्रोंको उक्त दूरताका ज्ञान नहीं रखतेथे। वे नक्षत्रोंको अचल समझते थे। यह प्राचीन ज्योतिषी पदसे यूरोपियन ज्योतिषी पदको समझना चाहिये क्योंकि उसमें हार्सेल साहबने यह बात पहले ही पहल जानी है कि चन्द्र शनि वृहस्पति तथा शुक्रको भांति साधारण नक्षत्र भी चलते हैं केवल ग्रह उपग्रह ही नहीं चलते सभी नक्षत्र अपने स्थानसे दूसरे स्थानको जाते हैं वे किसी प्राकृतिक नियमके वशोभूत होकर ऐसा कर रहे हैं। यह बात उक्त साहब ने बड़े ध्यानसे देखभालकर ठीक की है। पहले ज्योतषियोंका विश्वास था सूर्य ग्रह और उपग्रहोंसे वेष्टित होकर प्रतिदिन किसी निर्दिष्ट स्थानकी ओर जाते हैं तथा सौरजगत् प्रति सेकेण्ड चार माइलके वेगसे घूमता है। इसीसे स्थिर नक्षत्र चलते दिखाई देते हैं अब यह विश्वास दूर हो गया वे समझते हैं कि पृथ्वी वृहस्पति तथा शुक्र आदि जिस प्रकार चलते हैं वैसे ही नक्षत्र भी।

(शिक्षा २१—११—१७)

(नोट) जो महाशय भूगोलमें शंका करते हैं उन्हें उचित है कि उक्त लेखको ध्यानमें लावें। युरोपीय विद्वानोंका निश्चय परोक्ष पदार्थों पर एकसा नहीं रहता बदलता रहता है।

इस उपर्युक्त लेखसे सूर्यादि ग्रहनक्षत्र स्थान से स्थानांतर गमन करते हैं प्राकृतिक नियमके वशीभूत होकर इससे जैन सिद्धान्त तत्वार्थ सूत्रमें जो अध्याय चौथेमें सूत्र आचार्य महाराजने दिया है कि ज्योतिष चक्र सुमेरुपर्वत को नित्य प्रदक्षिणा देता है स्पष्ट सिद्ध हो जाता है। और पृथ्वी स्थिर नहीं, चलती है सूर्य स्थिर है व उसके साधनमें नावका दृष्टांत विषम मिथ्या पड़ जाता है अतएव जैनोंका अपने जैनसिद्धांत पर पूर्ण विश्वास रखना चाहिये।

आगे इसी विषय पर और भी पाश्चात्य विद्वानों का मत देकर विचार करते हैं—

भूभ्रमणवादियोंका मत।

(१) चन्द्रमा पृथ्वी की सदैव प्रदक्षिणा देता रहता है।

(२) चन्द्रमा पृथ्वीसे दो लाख चालीस हजार मील दूरी पर रहता है।

(३) चन्द्रमा चमकदार नहीं है किंतु सूर्यकी कांतिसे चमकदार हो जाता है।

(४) आकाशमें ऐसे तारे भी हैं जिनका प्रकाश एक सेकेण्डमें ६६ मील चलता है उनकी रोशनी अब तक पृथ्वी पर नहीं आई जबसे कि यह पृथ्वी बनी है। (भूभ्रमणमीमांसा) नंबर ४ पर अब विचार करते हैं तब यह विषय सर्वथा असम्भव प्रतीत होता है। दूर-

चीज नेत्र इन्द्रियका विषय हैं अतीन्द्रिय ज्ञानका विषय नहीं। क्योंकि अब हम दुरबीन लगावें और उस समय आंख बंद कर लेवें तब, हमको कुछ भी नहीं दीखेगा। अतएव दूरके पदार्थ देखनेमें उपादान कारण नेत्र इन्द्रियकी शक्ति और निमित्तकारण दुरबीन है। जैसे हमारे नेत्रोंमें विकार होनेपर अक्षर पढ़नेको चश्मा लगानेकी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु अन्धेको चश्मेसे नहीं दिखता है। जब कोई आदमी नाल बनाता है तब वह पहले अक्षरोंको धोकर या बिगाड़ कर, और अक्षर लिखता है तब पहले अक्षरोंको स्पष्ट जनानेके लिये खुर्दबीन शीशा लगाते हैं उसमें छोटी चीज बड़ी दीखने लगती है। यह जो शीशेसे लाभ है वह उसमें गुण है। और उस खुर्दबीन – शीशेसे मक्खी हमें भंवर (भौंरा) के बराबर दीखती है सो यह उस शीशामें गुण है कि मक्खीके सब अवयव दीख गये, परन्तु शीशा देखकर मक्खीको भंवर (भौंरा) मान लेना मिथ्या ज्ञान है। तैसे ही दुरबीन से दूरका पदार्थ देख लेना संभव है और दुरबीन शब्दका अर्थ भी यही है कि दूरका पदार्थ देख लेना इसके सिवाय मालोंका अंतर बतलाना कर देना यह ठीक नहीं। नेत्र इन्द्रीमें जितनी आवरण शक्ति है उतना दूरबीन दिखा सकती है, अधिक कदापि नहीं नेत्र इन्द्रियका विषय मर्यादारूप है। यदि यह मान्य नहीं है तब ऐसा पहलवान जिसको कोई हरा न सके न हो वह कसरत कर रुस्तमहिंदका बराबर ताकतवर क्यों नहीं बनजाता है? व रेतसे घड़ा क्यों न कोई बना लेवे? यदि दुरबीन नेत्र इंद्रीके विषयको अन्यथा रूप परिणमन करानेमें समर्थ है तब भगवानके पास जो पदार्थ हैं या पृथ्वीके भीतर क्या है वह क्यों नहीं दिखला देवे? और दुरबीनसे देखे पदार्थ सबै ठीक भी नहीं निकलते हैं। दृष्टांतः— "पुच्छल तारा जो गत अप्रेलमें मालूम हुआ है कि १० लाख मील प्रति सप्ताहमें चलता हुआ नीचे आरहा है और दूरबीनसे दिखाई देता है। कुछ मास पीछे अपनी आंखोंसे दीखने लगेगा। ऐसा ता: २३ मई सन् १९१७ का मेसेंज कहता है। और इससे पहले एक वैज्ञानिकने लिखा था अप्रेलमें पुच्छल तारा जमीन पर गिरेगा। सो ये दोनो बातें ठीक नहीं निकलीं। और दोनो वैज्ञानिकों के विरुद्ध मत हैं। दूसरा दृष्टांत:— शिक्षा नामके पत्रमें "नक्षत्रोंकी गति" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है जिसको १. वें पृष्ठ पर उद्धृत भी करदिया है।

इससे सिद्ध होता है कि यूरोपिय विद्वानोंका निश्चय परोक्ष पदार्थों पर एकसा नहीं रहता बदलता रहता है। इसलिये कोई विद्वान सूर्यको स्थिर मानते हैं कोई चलता हुआ! कोई नक्षत्रोंको स्थिर मानते हैं कोई चलते हुए, जब उनके दो विरुद्ध मत हैं – वे ही एकमत नहीं, उन्हींका शंकित मत है तब दूसरे जैन अजैन भारतवासी अपने अपने शास्त्रोंके विरुद्ध पृथ्वीको घूमती हुई मानें सूर्यको स्थिर मानें यह उनकी बड़ी भूल है। सो ही नीतिकारने कहा है: (श्लोक) योध्रुवाणि परित्यज्य, अध्रुवं परिषेवते। ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति, अध्रुवं नष्टमेव हि॥ दोहा— जो ध्रुव वस्तुन त्यागिके, रहे अध्रुव गहि लाइ। ध्रुव तासु नशिजात हैं, अध्रुव गहतु नसाइ॥ अर्थ – जो निश्चित वस्तुओंको त्याग कर अनिश्चितका सेवा करता है उसके निश्चित वस्तु भी नष्ट हो जाती है अनिश्चित तो नष्ट ही है, (सारांश) ऐसे भूगोल विषयके माननेवालोंकी अपने मतसे श्रद्धा नष्ट हो जाती है। शंकाएं उनके चित्तमें उत्पन्न अनेक प्रकारकी पैदा हुआ करती हैं। दूरबीनके निमित्तसे आंखमें इतनी शक्ति बढ जावे कि तारेकी

रौशनी अब तक पृथ्वी पर नहीं आई, जबसे पृथ्वी बनी है पृथ्वी अनादिसे है । जैसे अनन्त काल बीतगया यह न किसीने बनाई है और नेत्र इंद्रीका विषय अनन्तकाल जाननेका नहीं है इंद्रिय ज्ञान प्रत्यक्षकालको जान सकता है सो ये सब बातें जैन ग्रेजुएट कैसे भूलगये । पृथ्वी बनी है ऐसा माननेसे सृष्टिका कर्ता सिद्ध होता है । और भूभ्रमण वादी ऐसा कहते हैं कि यंत्रसे पृथ्वी घूमती दीखती है सो जैसे खुर्दवीनसे छोटी चीज बड़ी दीख पड़ती है तैसे यंत्रसे घूमती दीखती होगी ?

अब चन्द्रमा चमकदार नहीं है सूर्यकी कांतिसे चमकदार हो जाता है इस पर विचार करते हैं भूभ्रमण वादी मानते हैं कि जैसे यह पृथ्वी है वैसे ही सूर्य चन्द्र, तारे भी पृथ्वी है सूर्यसे चंद्रमा नीचे है क्योंकि पृथ्वीसे चंद्रमा २ ४०, ००० मील दूर है और सूर्य चारकरोड़ मील, ऐसा ये मानते हैं । जब चन्द्रमामें प्रकाश नहीं और सूर्यका प्रकाश उस पर पड़ता है तब यह सूर्यका प्रकाश चन्द्रमाके ऊपरले भाग पर पड़ेगा और हमें चन्द्रमाका निचला भाग दीखता है उसपर सूर्यका प्रकाश पड़ ही नहीं सकता है जैसा कि पृथ्वी के आधे गोलेपर प्रकाश नहीं पड़ता है क्योंकि यह सूर्य आड़में है मकानकी छतके ऊपरले भागपर प्रकाश पड़ता है उसे धूप कहते हैं । वह छतके नीचले भागमें प्रवेश नहीं करती है तैसे ही चन्द्रमा हमसे ऊपर है उसके उपरले भागको हम नहीं देख सकते हैं उसका नीचला भाग हमको दीखता है, वहां सूर्यका प्रकाश प्रवेश नहीं कर सकता । इसलिये चन्द्रमा सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशमान सिद्ध नहीं होता है वह अपने ही प्रकाशसे प्रकाशमान है । दूसरी बात यह है कि सूर्यके प्रकाशसे यदि चन्द्रमा प्रकाशमान है तो सूर्यका प्रकाश गर्म है तो चंद्रमाका प्रकाश भी गर्म होना चाहिये । जैसे कि पृथ्वी पर सूर्यका प्रकाश पड़नेसे पृथ्वी गर्म हो जाती है । सूर्यका प्रकाश गरम प्यास लानेवाला, पित्तवर्धक है और चन्द्रमाका प्रकाश शीतल गरमीशांत करनेवाला है । सूर्यके प्रकाशको घाम धूप कहते हैं चंद्रमाके प्रकाशको चांदनी कहते हैं दोनों प्रकाशके गुण स्वभाव–अलग अलग परस्पर विरुद्ध हैं, जैसे जलका व अग्नि का स्वभाव--गुण- विरुद्ध है ऐसी अवस्थामें सूर्यके प्रकाशसे चंद्रमा प्रकाशवाला है स्वयं चंद्रमामें प्रकाश नहीं, ऐसा मानना युक्तिशून्य प्रत्यक्षविरुद्ध है । किसी प्रमाणसे प्रतीत गोचर सिद्ध नहीं होता है । जब सूर्य ग्रह उपग्रह, तारे अपने अपने प्रकाशसे प्रकाशवाले हैं तब चन्द्रमाने क्या अपराध किया जो वह प्रकाशमान न माना जावे ? और यो एकबात सबके प्रत्यक्ष है कि सूर्य दूसरे ग्रह नक्षत्र और तारोंके प्रकाशका अभिभव—तिरस्कार करनेवाला है । दिनके प्रथम पहर कोई २ तारे, चन्द्रमा क्षीण–निष्प्रभ दीखने लगते हैं । जो जिसका तिरस्कार करनेवाला है वह उसको क्या देगा ? क्या उपकार करेगा ?

अब चन्द्रमा पृथ्वीकी परिक्रमा देता है इस विषय पर विचार करते हैं । युरोपीय विद्वानोंका मत जो हमने ऊपर लिखा है उससे यह बात पाई जाती है कि सौर जगत् प्रति सेकेण्ड ४ मील चलता है सौरजगत्में चंद्रमा भी शामिल है । वह पृथ्वीसे दो लाख चालीस हजार मील दूरी पर घूमता है तब दो लाख चालीस हजार का दूना व अठारह हजारके करीब पृथ्वीका व्यास सब मिलाकर चारलाख अठानवे हजार व्यास हुआ । उसको तेइस बटा आठसे गुणा करनेसे पंद्रहलाख तेतीस हजार सात सौ चौदह परिधि हुई । इतनी परिधिको ४ मील फी सेकेण्डके हिसाबसे चौबीस घंटेमें तीन

वैद्यकमें तीन तरहका शरीर माना है - वातपित्त कफ १' वातकफ २, पित्तकफ ३, वातपित्तकफ ४। इनमें वात होका शरीर हलका होता है। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि हवामें हलका भारीपन है। तैसा ही पृथ्वी जल अग्निमें हलकाभारीपन अवश्य है एक हलकी एकभारी दो चाजें हवा निकालकर नलीमें डाली जाती हैं वे एक साथ पृथ्वी पर पड़ती हं उसका कारण यह है कि आसमानसे जो हलका पदार्थ गिरता है उसके जमीनपर आनेमें हवा प्रतिबंधक है उस की रुकावटसे पदार्थ देरमें जमीन पर आता है भारी पर रुकावटका कम असर पड़ता है। इसीसे नलीमें से हवा निकालकर हलके भारी पदार्थ एक साथ पृथ्वी पर गिरते हैं। जैसे - तेज चलती हवाके सन्मुख चलनेसे रास्ता देरमें पूरा होता है और हवा को पीठपीछे कर चलनेसे जल्दी रास्ता खतम हो जाता है।

२। पृथ्वीके घूमने से रात दिन होनेमें एक बड़ा दोष आता है। जब पृथ्वी सूर्यसे समान दूरीपर अर्थात् २३॥ डिगरीपर रहता हुई घूमता है सदा उस की चाल एकसी रहती हैं। २४ घंटेमें अपनी कीलीपर घूमती जाती है। और २४ घंटेमें दिनरात हो जाते हैं तब बिनाकारण दिन-रात छोटे बड़े क्यों? दिन रात छोटे बड़े तब हीं हो सकते हैं जब चाल एक सी न हो, विषम हो। जैसी सूर्यादिकी चाल हम विषम मानते हैं।

३। दो ध्रुवतारे उत्तर, दक्षिण दिशामें हैं। उनको आकर्षणशक्तिका असर-प्रभाव पृथ्वीके ऊपरले गोले पर पड़ेगा सर्वत्र नहीं। इसलिये कुतुबनुमाकी सूई उत्तर-दक्षिणको रहसकती है रात्रिमें नहीं रह सकती है। और वह कुतुबनुमाकी सुई रात-दिन उत्तर-दक्षिण को रहती है। इसीसे घूमती, गोल नारंगी समान पृथ्वीमें दृष्टांत घटित नहीं होता है। दूसरी बात यह है कि ध्रुवतारोंकी आकर्षण शक्ति जमीन पर पड़ीहुई, या मेज पर रखी सुईको मुख उत्तर दक्षिणको क्यों कर देती है या मकानके भीतर ध्रुवतारेकी आकर्षणशक्ति कैसे प्रवेश कर सकती है? क्यों क मकानके अन्दर सूर्यकी धूप, चन्द्रमाकी चांदनी प्रवेश नहीं कर सकती है। न चुम्बकको छत पर रख देवें तो वह अन्दर मकानके रखी हुई सुईको जो उसके आड़में रक्खी है खींच सकता है इसलिये कारण कुछ और हों यानी दृष्टान्त ठीक नहीं बनता है। तोप की साधी नलीसे निकला हुआ गोला आसमानी लाइन ऊंचे को जाता है। सो यह सबूत पृथ्वी गोल व घूमने पर घटित नहीं होता इसका कारण भी कुछ अन्य है। भूभ्रमण वादियोंका यह परिभाषा है कि आकर्षण शक्तिसे अग्निका लौ ऊपरको जाती है हम भी ऐसा मानते हैं कि अग्निको लौका स्वभाव ऊर्ध्व गमन है। सो जब तोपमें बत्ती लगानेसे बारूद अग्नि रूप होकर वहां अग्नि गोलेमें प्रवेश करती है तब गोला अग्निसे तपा हुआ, नलीसे ऊपरको चलता हुआ, अभीष्ट स्थान पर जा गिरता है। जैसे भाड़में-खप्परमें चना डालकर भूजते हैं तो बालूकी गरमीसे चना उचटकर ऊपरको जाता है। या आगमें बेलका फल पकानेको डालते हैं तो अग्निकी गरमीसे बेल उचट कर ऊपर ही को जाता है।

यहां कुछ शंकाएं पैदा होती है। भूभ्रमण वादियों की यह परिभाषा है कि अमेरिकासे हिंदुस्तान नीचा और हिंदुस्तानसे अमेरिका नीचा देहलीसे कलकत्ता नीचा कलकत्तासे देहली नीचा सो ठीक हो है क्योंकि पृथ्वी जब घूमती है, जो शहर ऊपर हैं वे नीचे पड़ जाएंगे और जो नीचे हैं वे ऊंचेको हो जावेंगे। हम

इस परिभाषाको लेखकी आदिमें लिख चुके हैं जब एक स्थान पर तोपको रखकर निशान २५ कोसपर लगावें तब गोला निशाने तक मिनटोंमें पहुंचेगा कुछ देर अवश्य लगेगी। उतनी देरमें तोपका मुंह अवश्य ऊंचा या नीचा हो जावेगा या निशानेका स्थान ऊंचा या नीचा हो जायगा। भावार्थ – तोपका मुंह ऊंचा होगा तो निशान नीचा और तोपका मुंह नीचा होगा तो निशान ऊंचा हो जावेगा। तब तोपका गोला निशाने पर नहीं लग सकेगा। निशाने पर तब ही लगेगा जब पृथ्वी स्थिर माना जावे। पृथ्वी जब घूमती आगे बढ़ती हुई चली आरहा है तब यह बात निर्विवाद प्रतिवादी सब मान लेंगे कि उसकी चाल एक दिशाकी ही होगी। न कि चारों दिशाकी। जिस दिशाको चलेगी उससे पीठ पीछे क्षेत्रको छोडती जावेगी व दाहिने बांये क्षेत्रको भी छोडती जावेगी जिस दिशाको चल रही हैं उस दिशाके आगेके क्षेत्रको ग्रहण करती जावेगी। अब कल्पना करो कि देहली शहरसे जो पृथ्वी सुबह (प्रातःकाल) कलकत्तेकी तरफ चली तो एक घंटेमें वह देहलीसे ११०० मीलके करीब कलकत्तेकी तरफ पहुंची। जो शहर दिल्लीसे करीब ११०० सौ मील पीछे पश्चिमको था, वह देहली के क्षेत्र (आकाश) पर आगया। और जो देहलीसे उत्तर दक्षिणके क्षेत्र थे, वे भी उसी तरह आगेको चले गये। अब यहां पर यह तर्कना उत्पन्न होती हैं कि देहलीसे सुबह पृथ्वी जब कलकत्तेकी तरफ चली तबही चार हवाई जहाज एकसे व एकसी चालवाले पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाको चलाये गये तब जो पूर्व दिशाको चल रहा है वह बायु मंडलको जितना चलेगा उतना तो उसके साथ चलेगा बाकी पूर्वको १ घंटेमें ७० मील जो उसकी चाल है उतना देहलीसे कलकत्तेकी तरफ चल जायगा। यह बात तो भूभ्रमणवादीकी बात मानकर कही गई। परंतु वायु मंडलका खंडन हम इस लेखमें पहले कर चुके हैं वायु मंडलको न मानें तब वह पृथ्वीकी चाल जिस दशा को है उस दिशाके अभीष्ट स्थान पहुंच ही नहीं सकेगा। क्योंकि पृथ्वी जब एक घंटेमें चलेगी ११०० मीलके अंदाज तब वह एक घंटेमें चलेगा ७० ही मील। जो देहलीसे जारहा है वह एक घंटेमें जितनी दूर जिस शहरमें उसे पहुंचना है उस शहरमें वह कुछ थोड़े मिनटोंमें पहुंच जायगा। क्योंकि वह शहर भी तो पश्चिमसे आरहा है। जैसे हम सरनौसे पटेको एक आदमीसे मिलनेको चले, उसी समय वह आदमी सरनौको आया। तब वह हमको शीघ्र ही मिल जायगा। कि जितने समयमें हम पटे पहुंचते उस समय से यह बात स्पष्ट सबके प्रतीत गोचर है वा हवाई जहाज जब पश्चिमको जारहा है तब पश्चिमसे आता हुआ वायु मंडल ११०० मीलके अंदाज प्रति घंटेकी चालसे उस हवाई जहाजका पृष्ठको उल्टा चलावे और हवाई जहाज फी (प्रति) घंटे सत्तर मीलके हिसाब से पश्चिमको चले। ऐसी हालतमें वह हवाई जहाज पश्चिमको अभीष्ट स्थान पर कभी पहूंच ही नहीं सकेगा। अब उत्तर दक्षिणकी व्यवस्था समझिये। हवाई जहाज उत्तर-दक्षिण दिशाको प्रातःकाल देहली से दुरबीनसे सीध बांधकर आसमानमें चले उन २ शहरोंमें होकर जिन २ शहरोंमें होकर रेल सड़कका रास्ता है उस शहरको जहां उनको पहुंचना है तब वे शहर शहर जो पूर्वको तरफ जारहे हैं हवाई जहाजोंको मिल ही नहीं सकते हैं इसी तरह उड़ने वाले पक्षियों की चाल बन्दूक तोप व घोड़ेकी दौड़ना इत्यादि आआशमानी (आकांक्षा) चाल पर इस ही दृष्टान्तको

लगा लीजिए। चारो दिशामें आशमानी-आकाशी चाल एकसी तब ही बन सकेगी, जब पृथ्वी स्थिर मानी जावे, अन्यथा कदापि नहीं। और अबही हवाई जहाज विलायतसे बसरा, अदन, बम्बई, देहली, इलाहाबाद होते हुए कल कत्ते पहुंचे उनकी चाल एक सी थी (भूभ्रमणवादी) १ बालगणितमें समकोण सम धरातल पर बनता है। २ बालगणितमें समानांतर रेखा कभी नहीं मिलती ३ हाईगणितमें समानांतर रेखा गोल भी जाती है ४ हाई गणितमें समकोण गोले पर भी बन जाता है (भूभ्रमणवाद पर विचार) समकोन सम धरातल पर ही बनता है रेखागणितमें भी ऐसी परिभाषा है और रेखा गणितकी विद्या प्राचीन सर्व मान्य है और प्रत्यक्ष सबके यह बात प्रतीत सिद्ध है कि समकोण समधरातल पर ही बनेगा विषम धरातल पर गोले पर कभी नहीं बनेगा यदि प्रत्यक्ष विरुद्ध मनमाने पदार्थोंके स्वरूप मान लेवें तब गौको भैंस कहनेमें क्या दोष है? कर्तावाद, अद्वैत वाद सत्य क्यों न मानें जावें? बालगणित हाईगणित दोनों परस्पर विरुध रूप है। दो विरुद्ध धर्म एक पदार्थमें रह ही नही सकते और अग्निमें उष्णताव शीतलता। यो तो बालगणित ही सत्य हो या हाई गणित। परंतु बालगणित प्रत्यक्ष परमाण सिद्ध व सबके प्रतीतमें आता है इससे बालगणित सत्य है।

अब इस पर विचार करते हैं कि सूयका प्रकाश जिस समय कलकत्तेमें होता है उससे कुछ देर बाद मद्रास में। सो जब पृथ्वी नारंगीके समान गोल नहीं, तब समधरातल पृथ्वी पर एक साथ प्रकाश क्यों नहीं पड़ता? ऐसा भूभ्रमणवादियों पक्ष है। सो इसका समाधान इस तरह है कि हम पृथ्वी को समधरातल नहीं मानते हैं। जैन ग्रंथोंमें भरतक्षेत्रकी पृथ्वी विषय मानी है कहो अधिक उंची, कहो अधिक नीची कही कम ऊंची, कही कम नीची इससे सूर्यकाप्रकाश कही आगे, कही पीछे पड़ता है जैसे एक भीत है उसपर ऊपरले भागपर प्रकाश प्रातः काल पड़ेगा उस भीतसे परे छाया पड़ेगी, वहां प्रकाश दुपहरको पड़ेगा। वा मकानकी छत पर प्रकाश पहले पड़ेगा और मकानके चौक पर बहुत देरीसे प्रकाश पड़ेगा। इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं। वृक्षकी आरमें छांह रहती है प्रकाश नही। और यह बात प्रत्यक्ष भी प्रतीतमें आती है। पृथ्वी गोल नारंगी या गेंदके समान नही है। वह विषम उचां-नीचा सबके देखनेमें प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। पृथ्वी गोल, घूमती हुई माननेमें एक दोष यह भी आता है कि एक नहर राजघाटसे कानपुर तक पश्चिमसे पूर्वको बहती है। ऐसा उसका ढाल है और भूभ्रमणवादी जलका स्वभाव गड्ढेमें समस्थल रहनेका मानते हैं तब घूमती पृथ्वीमें ढाल एकसा रहही नही सकता। तब किसी समय ढाल पश्चिमसे पूर्वको है वह नियमसे पूर्वसे पश्चिम को होगा जब पृथ्वी घूमेगी तब ढाल कानपुरसे राजघाटको हो आवेगी तब यह नदी एक दिन-रातमें राजघाटसे कानपुरकी तरफ बहेगी कानपुरसे राजघाटकी तरफ बहेगी? यो नहरसे उत्तर-दक्षिण पृथ्वी घूम रही है तब जल किनारे पर आकर पृथ्वी पर अवश्य फैल जावेगा। सो ऐसा होता नही। इससे पृथ्वी स्थिर है।

मालवाप्रांतके पद्मावतीपुरवालोंकी संख्या।

जनसंख्या	पुरुष	स्त्री
२८१६	१४३३	१३८३

अविवाहित		विवाहित	
पुरुष	स्त्री	पुरुष	स्त्री
६६८	४००	६४१	६४६

विधुर	विधवा	पढे पुरुष	स्त्री
१२४	३३४	७००	४०

अपढ़ पुरुष	स्त्री
६६३	१३४३

१४ विधवा ऐसी हैं जिनकी अवस्था २० वर्षसे कम है।

१७३ ग्रामोंमें यह जाति बस रही हैं।

६६४ कुल घर हैं।

७७ शामिल रहने वाले हैं

---

७४१ दोनों मिलाकर हुये

७४१ गोत्रोंसे कुल घर हैं।

१३८३ कुल स्त्रियें हैं

६४६ उनमेंसे ब्याही गई

७३४ बाकी बची

३३४ इनमें गई विधवा

४०० बाकी बची कुवारी

६६८ पुरुष कुवारे हैं जिसमेंसे

४०० तो उपरोक्त ४०० कुमारी से ब्याह लेंगे

२६८ बाकी बच गये

१२४ हैं विधुर

३९२ दोनों मिलाकर हुये।

इस जातिके अन्दर इन ३९२के भाग्यमें स्त्री नहीं है

२१ इस जातिमें कुल गोत्र हैं

एक २ गोत्रमें कितने २ घर हैं वे इस मुजब हैं

घर सं०	नामगोत्र
१३२	धावड़धींगा
९८	अनगोत्या ये तीनप्रकारके हैं तीनों शामिल हैं
६६	सतमदिवाना
६१	अजमेरी
५३	गोवरिया
५३	लकड़मोड़
४६	आठपगा
३४	इलायचे
३२	फावड़ाफाड़
२६	नारिया
२७	वामनपुरया
१९	लिलेरिया
१६	रायसरदार
१७	श्रीमोड़
१७	श्रांजेर
११	मनुवा
६	रणजीत
८	काश्मीरिया
७	कसूम्या
७४१	इस तरह गोत्रोंसे हैं

नोट—ऊपर विवाहित पुरुष विवाहित स्त्री ६४१ ६४६ हैं इसका मतलब यह है कि ८ आदमीके दो २ स्त्रियें हैं अब सभाने नियम किया है कि एक स्त्री (निःसंतान व रोगी) होते हुये भी दूसरा विवाह न किया जावे।

निवेदक—

बाल मुकुंद दिगंबर दास सीहोर।

दाक्षिणात्य पद्मावतीपुरवाल मनुष्य संख्या वीरांक २४४५ में ।

नाम-नगर	विधुर	सस्त्रीक	कुमार	विधवा	सधवा	कन्या	जोड़
१ भण्डारा	०	२	२	१	२	४	११
२ नागपुर	४	१०	१०	३	१०	७	४०
३ वर्धा	६	१३	१५	१०	१४	८	६०
४ सिन्धी	१	१	२	५	१	३	१३
५ पोनार	३	३	२	३	३	३	१७
६ केलोर	०	१	१	०	१	०	३
७ उमरेड़	०	१	०	३	१	०	५
८ खिमोर	०	१	१	१	१	१	५
९ देवली	०	१	०	१	१	१	४
१० आर्वी	०	१	०	२	१	०	४
११ पेलोकेलिको	०	१	२	०	१	३	७
कुल जोड़	१४	३५	३५	२६	३६	३०	१७६

नोट——वर्धामें एक सज्जनके दो स्त्री हैं।

पं० गौरीलालजी देहली ।

लकवा।

डाक्टर—(घरके दरवाजेके पास) इसघरमें क्या कोई लड़का बीमार है ?

लड़केकी मा—(उतकण्ठित स्वरसे) हां, इसी घरमें; मेरा ही लड़का-है। सवेरेसे न मालूम क्या हो गया है ! खड़ाकर देती हूं; गिरपड़ता है।

डाक्टर— खड़ा नहीं हुआ जाता ?

लड़केकी मा—हां सुबेरेसे उसकी यही हालत है।

डाक्टर— कहां ? जमीन पर ?

लड़केकी मा—हां ।

डाक्टर—बड़े आश्चर्यकी बात है ! लड़केकी उमर क्या है ?

लड़केकीमा— साढ़े चार वर्षका है।

डाक्टर— इस उमरमें तो उसे अच्छी तरह खड़ा होना, चलना-फिरना चाहिये था। कबसे ऐसा हुआ ?

लड़केकीमा— कबसे कहूं; डाक्टर साहब ! कलरातको खूब अच्छी तरह था तमाम घरमें उछलता कूदता फिरता था। आज सुबह मैंने उसे 'पेंट' 'फ्राक' पहिराया, मोजा-जूता पहिराकर खड़ा करते धपसे गिर पड़ा !

डाक्टर—शायद पैर रपट गयो होगा।

लड़केकी मा—सुनिये ! मैंने उसे उठाकर खड़ा

किया पर फिर गिर पड़ा। छः सात बार ऐसाही हुआ। मेरे तो छक्के छूट गये!—सचमुच बड़ा हास्य हो रहा है!

डाक्टर—आश्चर्य है? अच्छा चलिये देखूं तो सही।

लड़केकी मा—हां मैं लाती हूं —कहकर भीतरसे लड़केको गोदमें ले आई। बालक देखनेमें बहुत ही सुन्दर और हृष्ट पुष्ट है। पैरोंमें मोजा व जूता है लड़केको देखतेही डाक्टर साहब अवाक हो गये और सराहना करने लगे—वाह! वाह! ज़रा उतार तो दीजिये।

माने वैसा ही किया। उतरते ही बालक खम्भसरीखा धमसे गिर गया।

डाक्टर—आश्चर्य है! मुझे डाक्टरी करते २ जनम बीत गया पर ऐसा कहीं भी नहीं देखा! (लड़केको माने उठा लिया। डाक्टर साहब लड़केसे पूछने लगे) लल्लू! कहीं दर्द हो रहा है क्या?

बालक—"ना"

डाक्टर—सिरमें पीर तो नहीं होता?

बालक—ना

डाक्टर—कलरातको खूब सोया था?

बालक—हां

डाक्टर—ठीक है (मानो सब समझ गये हैं, —ऐसे भावसे लड़केकी माकी तरफ फिरकर बोले) पक्षाघात है।

लड़केकी मा—ऐं! पक्षा—! क्या?

डाक्टर—"लकवा"

लड़केकी मा—हाथ ऊपरको ओर कर रोने लगी, लड़का धमसे गिर पड़ा।

डाक्टर—क्या किया जाय! कहिये बड़े ही दुःखकी बात है? नीचेका अंग पक्षाघातसे एकदम नाकाम हो गया है देख तो रही हैं लड़के पैर बिलकुल काम नहीं दे रहे हैं? (यह कहते हुये डाक्टर साहब अपनी बातकी सच्चाई प्रमाणित करनेके लिये लड़केके पास आए। फिर उसके ढीले पायजामेको उठाकर देखतेही चौंककर पीछे हट गये।)

डाक्टर—यह क्या ऐं, यह क्या? —यह क्या आप तो खूब हैं—वाह!

लड़केकी मा—पर डाक्टर साहब—

डाक्टर—गिर पड़नेका क्या कसूर है? उसके दो-दो पैरोंको पेन्टके एकही पांयचेमें भर देनेसे गिरेगा नहीं तो क्या उठ खड़ा होगा!

—धन्यकुमार जैन

मनुष्य और संसार।

सागरमें तिनका है बहता,
उछल रहा है लहरोंके बल 'मैं हूं' 'मैं हूं' कहता!
इस तरंगमें मारे फिरते बड़-पीपल अभिमानी,
उनकी कथा जान कर भी यह बना हुआ अज्ञानी।
अपनेको है बड़ा समझता—यह इसकी नादानी,
धीरे धीरे गला रहा है इसको खारी पानी।

धक्के खाकर भी इतराता—ऐसा मदसे फूला।
मैं हूं कौन, कौन है सागर, इसको बिलकुल भूला।
धोखे ही धोखेमें मित्रो! अपनेको खावेगा,
जिस गोदीमें उछल रहा है उसमें ही सोवेगा।
उचक उचक नभके तारोंको छुआ चाहता है यह,
कुछ न पूछिये, क्या जानें क्या हुआ चाहता है यह?

बदरीनाथ भट्ट

व्यभिचारके कारणों पर विचार।

हमारे सम्पादक जाति प्रबोधक विधवा विवाहके बड़े ही पक्षपाती हैं आपको उल्टा ही सूझता है। जाति प्रबोधक अं-२ में हिंदू भाई कब जागेंगे इस शीर्षकमें आपने एक दृष्टांत दिया है। दृष्टांतके लिये अभी हालमें ऋषिकेशमें एक ब्राह्मण कुलसे उत्पन्न विधवाके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि उसका एक भंगीसे अनुचित सम्बन्ध होगया और अब उसके घर एक लड़का मौजूद है। हम संपादकजीसे पूछते हैं बालविधवाएं ही ऐसा कृत्य करें तब तो आपका हेतु ठीक बनता है परन्तु हम इसके विरुद्ध अनेक दृष्टान्त पाते हैं। एक भंगी हमारे गांवके जमींदारके नौकर था मकुआ उसका नाम था जबरदस्त जवान था एक उसके लड़का था स्त्रीकी उम्र २५ वर्षको थी वह स्त्री एक ठाकुरके घरमें बैठ गई एक नाइनने पति छोड़कर दूसरेसे धरेजा कर लिया। हालमें ही एक कायस्थकी तरुण स्त्री तरुण पति छोड़कर एक बनियेके घरमें पड़ गई (नगलाख्याली-पटा) वे दोनों अभी मौजूद हैं बहुत गृहस्थ ऐसे देखे जाते हैं अच्छी खूबसूरत स्त्रियों को छोड़कर रंडीबाजी करते हैं वे विधवाके बतौर जिन्दगी बसर (काटना) करती है सधवा व्यभिचार करती हैं विवाहित पुरुष व्यभिचार सेवन करते हैं उपर्युक्त कृत्यों में मूल कारण क्या है उस पर संपादकको विचार करना चाहिए केवल पौरुषवादी आप न बने दैवयोग पर भी विचार करना चाहिये। भला उपर्युक्त अनुचित कृत्य सधवा स्त्रियोंने व विवाहित पुरुष ने क्यों किये व ऐसे और भी हो रहे हैं। उसका भी उपाय सम्पादक को बताना चाहिये कल्पना करो एक विधवा स्त्री दस बरस की है उसका विवाह दूसरा कर दिया दैवयोगसे २ वर्ष बाद दूसरा पति मर जावे उसके उपभोगांतराय का तीव्र उदय है। व्यभिचारके मूल कारणों पर दृष्टि न डाल कर वृथा मन घड़न्त कल्पनाएं की जा रही हैं। व्यभिचार का मूल कारण तीव्र मोह कर्म का प्रबल उदय है वा पूर्व भव के संचित पाप कर्मों का उदय है यह विधवा वा सधवा विवाहित अविवाहित स्त्री पुरुष सब पर घटित हो जाता है यह तो हुआ उपादान कारण, निमित्त सामिग्री खोटी संगति आदि। उपाय पापसे बचनेका धर्म विद्याका अभ्यास सत्संगति पाप भय हैं, जिन जीवोंके पाप का भय नहीं लोकलज्जा नहीं वे व्यभिचार चोरी लूट और डकैती सब कुछ अन्याय व पाप कर्म करते हैं राज्य दंड पाकर भी नहीं रुकते हैं। हम पूछते हैं उस ब्राह्मण की कन्या को यदि पापका भय न रहा तब किसी ऊंच जातिसे संबन्ध कर लेती परंतु उसके तीव्र पूर्व भवके पाप का उदय था लोक लाज मिट गई तब तो भंगी से सम्बन्ध कर लिया। कर्मोंकी विचित्र गति है दैव दुर्निवार है। नहीं क्या उसको ऊंच जाति कोई न मिला भंगी ही रह गया था हमारी समझमें ऐसा लज्जा के समाचार सम्पादकों को छापने नहीं चाहिये। भारत के इतिहासों से विदित है सती स्त्रियों पर अनेक अनेक कष्ट आये तब भी वे शीलव्रत से भ्रष्ट नहीं हुईं शीलकी रक्षा की। भारत अबभी इस कलिकालमें अन्य देशोंसे धार्मिक व्यवस्थाओंमें बढ़ा चढ़ा है। अब भी ऐसी स्त्रियां दृष्टि गोचर हैं जो ७ या ८ वर्ष पर विधवा हुई ७० वर्षकी उम्रमें मर गई शील व्रतका पूर्ण पालन किया। ऐसे लेख छापने चाहिये जिनसे शीलकी दृढता हो, न कि धर्मभ्रष्टता फैला-

नेवाले अनुचित लेख। उड़द की दाल खाकर किसीका पेट फूल जाय दर्द होने लगे तब क्या जनता उड़दकी दाल खानी छोड़ देगी। विधवा विवाह चलनेमें एक बड़ी भारी धार्मिक रुकावट पड़ रही है वह यह है— विधवा विवाह व्यभिचार है उसमें जो सन्तान पैदा होगी वह नीच वर्ण शंकर होगा, वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था बिगड़ जावेगी। इसी कारण क्षत्री ब्राह्मण वैश्य जातिमें धरेजा नहीं होता है यह बहुत पुराना प्रथा चौथे कालसे चली आई है। शूद्रोंमें धरेजा होता है सो वे नीच वर्ण हैं हीं। उनमें धरेजेको नीच समझते हैं यूरोपमें शाही खानदानमें अब भी धरेजा नहीं। इंगरेजी जैन गजटसे पाया जाता है ईसाई धर्मसे मुसलमान-वैष्णव आर्य समाज बौद्ध जैनमें उत्तर २ अहिंसा धर्म अधिक २ है। जिन देशोंकी धार्मिक व्यवस्था गिरी हुई है उनकी रीति रिवाज सामाजिक व्यवस्था भी गिरी हुई है तब भारत उनका अनुकरण क्यों करने लगे? अतः वास्तविक हितकी तरफ दृष्टि कर कार्य करना उचित है।

बीसवीं शताब्दी

आज कल कोई २ पश्चिमीय विद्याके रसिक अपने उपदेशोंमें बड़े जोरके साथ "अब वासवींशताब्दि है हमको स्वतन्त्र बोलनेका अधिकार है। आदि कह २ कर बड़े जोरसे गुणगान किया करते हैं। हम इस बात पर अपना विचार पाठकोंके सामहने उपस्थित करते हैं कि स्वतंत्रता सर्वथ अच्छी नहीं, न बीसवींशताब्दिमें कोई लौकिक धार्मिक उन्नति ही हुई वरन अवनतिहुई है। बड़े पापका उदय जब जीवोंके आता है तब देशमें महामारी (प्लेग) अकाल घोर युद्धके कार्य होते हैं। प्रथम प्लेग ही पर दृष्टि डालिये इस रोगसे बहुधा तरुण पुरुष मरते हैं वृद्ध पुरुष बहुत कम देखने में आते हैं इस कारण तरुण स्त्रियां अधिक संख्या विधवा हो जाती हैं। अकाल पर दृष्टि डालते हैं। तब भी यही नतीजा निकलता है अकाल संवत १८७४ में पड़ा था फिर १८६७ में फिर १९१७ में १९३४ में फिर १९५३ में इस प्रकार करीब बीस २ वर्षके अन्तरमें पडे थे बीसवीं शताब्दिमें अकाल सं-१९५६ व १९६४ व १९७५ इस प्रकार बीस वर्षमें ३ अकाल तो पूरे २ सर्व क्षेत्र में पड़ गये व किसी २ प्रांतमें अब भी हैं। युद्ध पर विचार करिये यूरोपके घोर युद्धमें लाखों मारे गये घायल हुए। युद्ध चतुर्थकालमें राम रावण पांडव कौरव में इससे भी अधिक हुए युद्ध समाप्ति पर हजारों राजा दीक्षित होते हजारों रानी आर्यका हो जाती धर्मनिष्ठ शूरवीरोंका अंतिम लक्ष्य धर्म पर हो जाता था। अब यह बात नहीं, युद्ध हारकर संक्लेश बढ़ता है उस जाति के परिणाम नहीं है। जिन रानियोंके पति युद्धमें मारे जाते वे आर्यका व श्रावका हो जाती। अब हमें यह बात नहीं दीखती है। उपर्युक्त बातों पर पाठक स्वयं विचार करें ये सब बातें प्रत्यक्ष सिद्ध है। अब स्वतंत्र विचारोंके विषयमें देखिये—किसी प्रकारसे स्वतंत्र विचार अच्छे हैं किसी प्रकारसे बुरे। जो व्यक्ति जिस धार्मिक विषयमें न पूर्ण विद्वान हैं न लोक स्थितिके पूर्ण ज्ञाता है वे जटल काफाये स्वतंत्रताके अभिमानमें आकर मिलाते हैं अपनी कहते चले जाते हैं दूसरेकी सुनते ही नहीं, हम चुनी दीगरां नेस्त (हमारे समान दूसरा नहीं) इस कहावतको

चरितार्थ कररहे है। जिस देशमें घरमें एक मुखिया रहेगो वहां सब तरह कुशल रहैगी जहां वहुतोंका मुखियापन होगा सब अपनी २ ढाई चावलकी खिच डो पकावेंगे वह देश नष्ट हो जावेगा। नीतिकार कहते हैं दोहा—

वहुपति नापति पतितपति। पत्नीपति पतिबाल॥
नर पुर हू की का चली, सुर पुर करें उजार॥

जिस कामके बहुत स्वामी हों या कोई भी स्वामी न हो पतित पति अयोग्य स्वामी हो या स्त्री या बालक स्वामी हों ऐसी अवस्थामें मनुष्य लोककी क्या कथा है देव लोक भी नष्ट (ऊजड़) हो जाता है। सो दिगम्बर जैन समाजमें बिलकुल यही कहावत चरितार्थ हो रही है कोई महाशय कहते हैं स्व-पं० टोडरमल जी साहब का बनाया हुआ मोक्ष मार्ग प्रकाश ग्रंथका विश्वास मत करो, हमारी मानो, महावीर स्वामी तीर्थकर सर्वज्ञ नहीं थे, लीडर थे मनुष्य बंदरकी औलाद है। प्रथमा नुयोग मिथ्या है, इत्यादिक कहां तक लिखें स्वतंत्रता की सीमा इस कदर बढ गई है जो कहनेमें नहीं आती है और यह नीति है अति सर्वत्र वर्जयेत्। स्त्री स्वातंत्र्य की सीमा यहांतक बढ गई है स्त्रियां राज्यके कामोंमें बोट देने लगी है यह भी हमारी रायमें अच्छा कार्य नही है नीति कार कहते हैं पूज्योंका जहां अनादर होता है तहां व अपूज्य जहां पूजे जाते है तहां दरिद्र मर णादि संकट उत्पन्न होते है यूरोपमें स्त्रियोंने कौंसिल में वोटके अधिकारको धूम उठाई वादशाहको बग्घीके पीछे पड़ी उसही साल घोर युद्धका प्रारम्भ हुआ था यूरोपीय विदेशी हैं हमे उनसे क्या? भारतवासी भी राज नैतिक कार्योंमें स्त्रियां वोट दें ऐसी सम्मति देने लगे हैं यह अनुचित है क्योंकि--

नदीतीरेषु यो वृक्षः, या च नारी निरंकुशा।
मंत्रहीनश्च यो राजा, त्रयश्चैव विनश्यति॥

अर्थ—नदी किनारेका वृक्ष स्त्री स्वतन्त्र निरंकुश मंत्रहीन राजा ये तीनो नाशको प्राप्त होते है। (चा णक्य नी० द०) स्त्री पुरुषोंका मल्ल युद्ध शस्त्र युद्धमे समानता नहीं हो सकती है यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। एलिस साहबने जो एक यूरोपमें प्रसिद्ध विद्वान हैं स्त्री पुरुषों मे अंतर शीर्षक लेखमें स्त्रीको पुरुषसे हीन सिद्ध किया है वह लेख भारतीय नीति धर्मसे मिलता है। जिन्होंने सरकारी रिपोर्ट देखी होगी वे इस बातको जान सकते हैं आजसे वोस वर्ष पहलेसे अब मदिरा (शराब) भारतमें अधिक पिकी मांसके वास्ते पशु अधिक मारे गये मरी अकाल वा अन्य प्रजा पर अनेक आपत्ति युद्ध का आधिक्य चोरी डकैती अधिक होती हैं फिर भी वोस वीशताब्दीके न मालूम क्यों यश गान किये जाते हैं।

कर्त्तव्य-ग्रहण।

सन्ध्या रविने पूछा—मेरा कार्य्यभार अब लेगा कौन?
सुन कर यह रहगया जगत् नव चित्र समान निरुत्तर मौन
मिट्टीका दीपक जलता था, उसने कहा विनयके साथ
जितनी आप हों-शक्ति जहां तक कार्य्य करूंगा मैं दिननाथ।

(बंगलासे अनुवादित)

पारसनाथसिंह, बी० ए०

प्यार।

प्यार! कौन सी वस्तु प्यार है? मुझे बता दो।
किसको कहता कोन प्यार है यही दिखा दो।
पृथ्वीपर भटक भटक कर समय गँवाया।
ढूंढा मैंने बहुत प्यारका पता न पाया।
यों खो करके अपना हृदय पाया मैंने बहुत दुःख।
पर यह भी तो जाना नहीं होता है क्या प्यार-सुख॥

--रामचन्द्र शुक्ल, बी० ए०

आर्य-सभ्यता।

(लेखक—श्रीयुत धन्यकुमार जैन 'सिंह'।)

(१)

जो आर्य सभ्यता मनुष्यको परलोकमें विश्वासी, सर्वज्ञ कथित आप्त प्रणीत शास्त्रोंमें दृढ़ श्रद्धालु, अदृष्ट वादी और परार्थपर बननेकी शिक्षा देती है; उसी पवित्र सभ्यताका नाम 'आर्य सभ्यता' है। और जो मानवको अपनी विषय वासनाओंकी आग बुझानेके लिये दुनिया इहलोक-सर्वस्व मनावलंबी, आत्मनिर्भरशील और स्वार्थपर बना देता है, वह पश्चात्य सभ्यता, या 'भौतिक-सभ्यता' है। आजकल भारतवर्षमें प्राचीन प्राच्य सभ्यताके साथ नूतन पाश्चात्य-सभ्यताका ऐसा संघर्ष उपस्थित हुआ है; जिसके फलसे हम लोगोंमेंसे बहुतसे भाई पाश्चात्य सभ्यताके पक्षी हो उठे हैं। उनका मत है कि, 'प्राच्य सभ्यताने हमको परलोक-विश्वासी, अदृष्टवादी और अपने धार्मिक आगमोंमें अंधश्रद्धालु बनादिया है; इसीलिये हम दिन दिन अधःपतित हो रहे हैं। यदि हम भाग्य पर भरोसा न करके पुरुषार्थका आश्रय लें तो हमारी उन्नति अवश्य हो आदि—" इसमें दृष्टांत स्वरूप ये लोग बेखटके इङ्गलैंड, फ्रांस, जर्मन, अमेरिका, जापान आदिका उल्लेख करदेते हैं।

समाज-शरीरको जीव-शरीरसे तुलना कर जाना जाता है कि, जीव-देहकी भांति समाज-देहकी भी उत्पत्ति, स्थिति, पुष्टि, क्षय और ध्वंस है। जीव-देहमें जो व्यष्टि नामसे प्रकट है, समाजदेहमें वही समष्टि रूपमें प्रकट है। जीव जिस तरह सर्वदा आत्मरक्षा कर जीवित रहनेकी कोशिश करता है, समाज भी उसी प्रकार जीवित रहनेकी कोशिश करता है। जीवकी जैसी शैशव, कैशोर, यौवन और वार्द्धक्य अवस्थाएं हैं, समाजकी भी वैसी अवस्थाएं हैं।

जीव विशेषके साथ समाजकी तुलना करनेसे हम अपना वक्तव्य सहजमें प्रकट कर सकेंगे—यह समझ कर हम जीवके साथ समाजका सामंजस्य करते हैं।

जिस प्रकार सब जीवोंकी आयु समान नहीं; उसी प्रकार नर नारियोंकी भी आयु समान नहीं। जल वायु तथा अन्यान्य अनेक कारणोंसे किसी देशके आदमी नाटे और थोड़ी आयु वाले होते हैं; किसी देशके लंबे और दीर्घ आयु वाले होते हैं। सब ही जानते हैं कि, जिस उमरमें हमारे देशकी स्त्रियां संतानकी माता बन जाती हैं; उस उमरमें अंग्रेज-तनया खेल कूदमें विह्वल रह कर बालिका कहाती हैं। भारतवर्षमें १५।१६ वर्षकी जननियोंका अभाव नहीं; पर इंग्लैंड आदि शीत प्रधान देशोंमें १७।१८ वर्षके पहिले स्त्रियोंके यौवन संचार ही नहीं होता। हमारे देशमें क्या पुरुष और क्या स्त्री; सब ही के थोड़ी उमरमें यौवन संचार होता है और थोड़ी उमरमें वार्द्धक्य आ दबाता है। अर्थात्—जिसका यौवन जितनी जल्दी प्रकट होता है तथा जिसके शारीरिक अंग प्रत्यंगकी जितनी जल्दी पुष्टि होती है, वह उतनीही जल्दी वार्द्धक्यमें पहुंचता है और ध्वंसके मार्गका पथिक बनता है।

समाजकी भी यही दशा है। जो समाज जितनी जल्दी उन्नति करती, वह उतनी ही जल्दी अवनतिको प्राप्त होती है। हां, मनुष्य और समाजका आयुष्काल समान नहीं है। मनुष्य आजकल अधिकसे अधिक अपने आयु कर्मानुसार एकसौ बीस वर्ष तक जीवित रह

सकता है, पर समाज कब तक विद्यमान रहेगी—यह निर्णय करना कठिन है। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि, इसका भी अंत है। धरा-पृष्ठसे जो समाज नष्ट हुई है, उनके मृत्यु-समय शायद हम कहदेंगे परन्तु उनके उत्पत्तिका समय हमें नहीं मालूम। अतएव उन सब समाजोंका कितने दिनों तक अस्तित्व वा जीवन रहा-यह हम निश्चित नहीं कह सकते। मिसर, बैबिलन, सिरिया, फिन्डिया, फिनिशिया आदि राज्य बहुत दिन पहिले विद्यमान थे। उन सब देशोंकी समाज एक समयमें विशेष उन्नत और सुसभ्य थी। किन्तु अब उनका अस्तित्व नहीं है। इन सब प्राचीन समाजकी सभ्यताका कुछ कुछ अंश यत्र तत्र फैल कर पुष्ट होता रहा है, पर मूल समाज अब नहीं है।

ऐतिहासिकोंके मुंहसे यह सुनते हैं कि, किसी समयमें मिसर आदि देश सभ्य और उन्नत थे। यही मिसर देशकी सभ्यता ग्रीक देशमें जाकर ग्रीक सभ्यतामें परिणत हुई, फिर ग्रीक सभ्यतासे रोमक सभ्यता उत्पन्न हुई। रोमक-सभ्यता ही वर्तमान युरोपीय सभ्यताकी जननी स्वरूप है। रोमक सभ्यता फ्रांसमें होकर युरोपके अन्यान्य देशमें फैल गई और फिर उसने भिन्न २ देशमें जाकर भिन्न २ मूर्ति धारण की। इसीप्रकार हम युरोपकी वर्तमान सभ्यताकी खोज करते २ मिसर पर्यंत पहुंच सकते हैं; पर मिसरके पहलेका इतिहास अज्ञात है। वह इतिहास कितना मिला है, उसका कितना अंश वास्तविक है और कितना अनुमान मूलक वा कल्पित है-इसका निर्णय करना कठिन है। हां, हम इतना समझ सकते हैं कि किसी समय पूर्व एशिया और उत्तर अफ्रिकामें जो सभ्यता थी, वही युरोपकी वर्तमान सभ्यताकी जड़ है और उन सब अति प्राचीन सभ्य-समाजका अब बिलकुल अस्तित्व नहीं है। ऐतिहासिकोंका अनुमान है कि, इन सब प्राचीन समाजका आयुष्काल डेढ़ हजार वर्षसे लेकर दो हजार वर्ष तक था। वह भी ठीक है या नहीं; संदेह है। परंतु रोम-समाजका आयुष्काल दो हजार वर्षसे अधिक नहीं था—यह ठीक है।

हमने जो कुछ कहा, उसका यही सार है कि, समाज देहकी, जीव-देहकी भांति उत्पत्ति स्थिति लय, शैशव कैशोर यौवन और जरा अवस्थाएं होती हैं। मिसर आदि देशकी सभ्य और उन्नत समाज दीर्घ काल तक अपने अस्तित्वकी रक्षा करते हुए भी आखिर समय पर विलुप्त हुई। वर्तमान पाश्चात्य सभ्यता उसी प्राचीन मिसर सभ्यतासे पैदा हुई है। यहां यह दृष्टांत शायद प्रासंगिक होगा कि एक पुराने मकानके ध्वंसावशेष अर्थात् ईंट, पत्थर, काठ आदि उपादानोंसे यदि एक नया मकान बनाया जाय तो उस नये मकानको पुराना नहीं कहा जा सकता। पुराने मकानके सामानसे नया मकान बना है - यही कहा जा सकता है। जिस प्रकार पुराने मकानके सामानसे बना हुआ नया मकान, पुराने मकानसे बिलकुल मिलता जुलता होने पर भी पुराना न कहला कर नया कहलाता है उसी प्रकार पुरातन प्राचीन समाजके उपादानसे बना हुआ नवीन समाजको पुरातन समाज कहना किसी भी युक्ति द्वारा संगत नहीं। उसका प्रत्येक उपादान पुरातन समाजसे संगृहीत होने पर भी वह नूतन समाजके सिवा और कुछ भी नहीं है। मिसर, बेबिलन, फिनिशिया आदि समाजके उपादानसे गठित होने पर भी युरोपकी वर्तमान समाजको वही पुरातन समाज समझना युक्ति युक्त नहीं।

यदि पुराने मकानको वारंवार जीर्णोद्धार कराकर उसे ठीक रक्खा जावे तो उसमें नया सामान कितना

भी क्यों न लगे पर वह पुराना ही कहाता है आवश्यक होने पर यदि उसका परिवर्द्धन (बढ़ना) वा परिवर्त्तन (घटना) किया जाय, तो भी उसका प्राचीनत्व नष्ट नहीं होता। ऐसा ही समाजके संबन्धमें समझना चाहिये। इसी नियमके अनुसार ही भारतको 'आर्य—सभ्यता', प्राचीन सभ्यता कहलाती है।

(२)

बहुतसे पाश्चात्य विद्याके अभ्यासी देशीय सुधारकोंने —पाश्चात्य जातिकी कार्य-तत्परता चंचलता, उत्साह, साहस उद्यम इत्यादिके साथ भारत वासियोंकी तुलना कर कहा है भारत घोर निद्रामें खुर्राटे ले रहा है, और अब भी बहुतसे सुधारक अपने जीवनका अंतिम ध्येय इसीमें समझ कर अपने लेखों (गद्य पद्य) में क्षोभ प्रकट कर रहे हैं। किंतु इस क्षोभका वास्तविक कोई कारण है या नहीं—इसका विचार कर निर्णय करना आवश्यक है।

नियमित रीतिसे, धीरभावसे गमन करने वाले में और ऊर्ध्व श्वासमें दौड़ने वाले पसीनेसे लदबद कलेवर में क्या अंतर नहीं है? जो ऊर्ध्व श्वासमें दिशा विदिशामें ज्ञान शून्य होकर दौड़ते हैं वे धीरगामी व्यक्ति को बहुत पीछे छोड़कर अग्रसर हो सकते हैं—यह ठीक है; पर उनकी यह गति कब तक रहेगी?

आज उस पाश्चात्य उन्नतिका क्या परिणाम हुआ है इसके लिये जर्मनकी लड़ाई का दृष्टांत काफी है सारे देशमें हा हा कार मच गया है। सब देशोंकी शांति विदा हो गई है श्रीयुक्त बिपिनचंद्र पाल महाशय इंगलैंडमें आकर पाश्चात्य समाजकी जो अवस्था देख आये हैं वह उनहीके शब्दोंमें नीचे लिखते हैं।

"दश वर्ष पहिले जब मैं लंडन गया था, तब राजपथमें क्वचित् कभी दो एक सिपाही मात्र नजर आते थे। और आज? आज ऐसा कोई रास्ता नहीं दिन-रातमें ऐसा कोई समय नहीं, जहां और जब सामने, पीछे, दाहिने और बायें "खाकी" की भीड़ न दिखाई दे। दुपहरको आराम गृहमें बैठनेके लिए जाता हूं तो वहां भी "खाकी"। रातको होटलमें जाता हूं तो वहां भी "खाकी"! लंडन मानों आज एक विशाल सेनाका स्थानसा हो उठा है। जहां देखो वहां सिपाही। कोई कभी निःसंग है, तो कोई कभी मित्रके साथ है और अधिकांश — विशेषतः शामके वक्त 'युगल रूपसे' विहार करते दिखाई देते हैं।

इतना खाकीकी भरमार कोई भी जातिके भविष्य के लिये कल्याण कारी नहीं है। यह "खाकी" क्या चीज है? कुछ नहीं; केवल जातीय पशु शक्तिकी चिन्ह प्रतिमा वा साक्षात मूर्ति है। "खाकी" की पूजा का अर्थ पशुशक्तिकी पूजा है मनुष्य जिसकी पूजा करता है उसीपर उसका भरोसा अधिक रहता है। जो जाति पशुबल की उपासक है उसकी आत्माके ऊपर आस्था अपने आपही घट जाती है। आधुनिक पाश्चात्य समाजमें कभी भी किसी दिन आत्माकी शक्तिके ऊपर ऐसी आस्था नहीं थी।—"

(३)

यूरोपीय शक्ति, प्राच्य देशमें बाहु बलसे वा कौशलसे राज्य विस्तार करनेमें समर्थ हुई है, इसलिये प्राच्य देशवासी असभ्य है और यूरोपीय सभ्य हैं—यह सिद्धांत समीचीन नहीं हैं। बाहुबल मत्त यूरोपने पशुत्वको ही आज कल उच्च आसन दिया है और मनुष्यत्वको पशुत्वके सामने तुच्छ समझा है। इसका परिणाम कभी भी अच्छा नहीं निकल सकता। अभी जो यूरोपके भीषण समर—अनलमें लाखों मनुष्य भस्म हो गये हजारोंके घर श्मशान रूप हो गये, अ-

संख्य विद्यामन्दिर, पुस्तकागार और धर्मालय ध्वंस हो गये, यह क्या सभ्यताका लक्षण है?

यूरोपकी चंचलताके साथ भारत वासियोंकी निश्चेष्टताकी तुलना करके अधिकांश लोग यही कहते हैं कि भारत वर्ष एक समय उन्नत और सुसभ्य अवश्य था, पर आज उसकी मृत्यु हो गई है। अब हमलोग मृतवत् जड़ पदार्थके रूपमें परिणत हो गये हैं। निवृत्ति मार्गमें जोकर ही हमारी यह दशा हुई है। यदि हमारे प्राचीन शास्त्रकार 'निवृत्ति मार्गमें ही सुख है' इस बातका प्रचार न करके लोगोंको 'प्रवृत्ति मार्गमें परिचालित करते तो हमारी ऐसी दुर्दशा नहीं होती, हम भी वर्तमान कालमें पृथ्वीकी अन्यान्य सुसभ्य जातियोंको समकक्षता करते। इत्यादि यह बात आंशिक सत्य हो भी सकती है किंतु यह संपूर्ण सत्य है--- ऐसा कोई हृदयधारी मनुष्य स्वीकार नहीं कर सकता जीव मात्रमें जैसी जागृत और निद्रित अवस्थाएं हैं, समाजकी भी वैसी ही जागृत और निद्रित अवस्थाएं हैं वैज्ञानिकोंका कहना है कि जागृत अवस्थामें जीव मस्तिष्कसे काम, लेते हैं इससे मस्तिष्कमें थकावट आजाती है। निद्राके द्वारा वह थकावट दूर होती है, शारीरिक परिश्रम करनेसे जिसप्रकार शरीरकी पेशी-समूह क्षयको प्राप्त होती हैं और आहार ग्रहण तथा विश्राम द्वारा वही पेशी समूह पूर्णता प्राप्त करती हैं, निद्राके द्वारा चिन्ताक्लिष्ट मस्तिष्ककी भी क्षयहूं उसी प्रकार पूर्ति होती है। इसलिये शरीर धारण वा रक्षा के लिये निद्रा जीव मात्रको अत्यावश्यक है, हमेशा जगते रहनेमें शरीरका अवश्य विनाश होगा।

समाजरक्षा और उसकी पुष्टिके लिये भी निद्रा वा विश्राम अत्यन्त आवश्यक है। आर्य-समाज दूरकाल जागरणके बाद अब निद्रा वा विश्राम ले रहा है यह समाजकी मृत्यु नहीं है, निद्रा वा विश्राम मात्र है। विश्रामके बाद जब समाजकी थकावट दूर हो जायगी तब स्वाभाविक नियमानुसार समाजकी निद्रा भंग हो जायगी। इस निद्रा भंगके बाद समाज फिर नूतन उत्साहसे नूतन शक्तिके साथ कार्य क्षेत्रमें प्रवेश करेगी जिसप्रकार पूरी थकावट दूर होनेसे पहिले, अर्थात् कच्ची नींदमें यदि किसीको जगा दिया जाय तो वह फिर सोनेकी बारंवार चेष्टा करता है उसीप्रकार यदि अस्वाभाविकरूपसे समाजकी निद्रा भंग करा जावे तो वह साधारण सुस्थ समाजकी तरह कार्य पर तत्पर नहीं रह सकती, वह बराबर निश्चेष्ट होकर विश्राम लेना चाहती है।

हम पाश्चात्य जातिके अधीन हैं; इसलिये हमें उनकी विशेष प्रथाओंका अनुकरण करना चाहिये ऐसी धारणा करना हमारी बड़ी भारी भूल है। आर्य-जाति के सामने पाश्चात्यजाति अभी शिशु है। अभी यूरोप में जितने सुसभ्य देश हैं, उनमेंसे फ्रांस ही सर्वापेक्षा पुरातन समझिये। फ्रांसकी सभ्यताका आरंभ हुए अभी डेढ़ हजार वर्ष हुए हैं। यूरोप आदि अन्यान्य देशकी सभ्यता को अभी एक हजार वर्ष भी नहीं हुए। यूरोप को यह वयोवृद्ध फ्रान्सीसी समाज भी अभी आर्योंके सामने नाबालक है। ऐतिहासिकोंका कहना है कि, भारतीय सभ्यता छह हजार वर्षसे जागी है। हम इस का समर्थन नहीं करते, और न हमें स्वीकार ही है। परंतु यहां तकके अनुरोधसे मान भी लें, तो भी यूरोपकी सभ्यता पंचम वर्षीय बालिका और आर्यसभ्यता साठ वर्षकी प्रौढ़ा वा वृद्धा है।

अब पाठकगण विचार कर देखें कि, पंचमवर्षीय शिशुको यदि किसी कारणसे साठ वर्षके वृद्धके ऊपर प्रभुत्व मिल जाय तो क्या वह वृद्ध सब विषयोंमें उस

बालकको अपना आदर्श समझेगा? किंतु हमलोगोंमें बहुतसे भाई—विशेषतः पाश्चात्य शिक्षामें शिक्षित—सब विषयोंमें अंग्रेज समाजको अपना आदर्श स्थानीय मानकर अपनी भूलको स्वीकार नहीं करते। इसके सिवाय आहार व्यवहारमें, उठने बैठनेमें और पहिरने ओढ़नेमें भी उनका अनुकरण करते हुये लज्जित नहीं होते। किंतु उन्हें एकवार भलीभांति विचार करना चाहिये कि, हम साठ वर्षके वृद्ध होकर पांच वर्षके वालकका अनुकरण कर अन्यान्य जातिकी दृष्टिमें किस प्रकार हास्यास्पद हो रहे हैं। साठ वर्षके वृद्ध अनुभवी अपने सुख और शांतिके लिये जो कुछ उपयोगी और उपकारी समझकर ग्रहण करता है, वह क्या पांच वर्षके वालकके अनुरोधसे अथवा उसकी मनस्तुष्टिके लिये स्वेच्छासे परित्याग कर देता है? परन्तु खेद है कि, हम ऐसा ही करते हैं।

अंग्रेज जातिको यह अभिमान है कि, पृथ्वीमें सब विषयोंमें हमही उन्नत और सभ्य हैं, अन्यान्य जाति हमारी अपेक्षा असभ्य हैं। उसका यह अभिमान इतना प्रवल है कि, वह अपनी गुरु स्थानीय फरासी जातिको भी कभी कभी असभ्य और वर्व्वर कहनेमें संकोच नहीं करती। युरोपकी अन्यान्य देशकी जातियां अंग्रेज जातिकी इस धारणाको द्वीपवास-जनित अहंकारका फल समझती हैं। जो जाति अपने गुरुको भी असभ्य, वर्व्वर आदि समझनेमें आगा पीछा नहीं करती वह जाति हम सरीखी पराधीन दुर्व्वल और कृष्णकाय जातिको सब विषयमें वर्व्वर और असभ्य समझेगी—इसमें क्या आश्चर्य? किंतु वह हमें असभ्य समझती है; इसलिये क्या हम भी अपनेको असभ्य समझने लगें? हमारे परम पूज्यपाद आचार्यगण घोर परिश्रम कर मानव समाजके कल्याणके लिये जो कुछ तथ्य संग्रह कर गये हैं, वह शरीर हितकर, समाज हितकर, इहलोक हितकर और परलोक हितकर समझ कर ही कर गये हैं। उनकी वह रचनाएं जोकि: त्रिकालज्ञ (सर्वज्ञ) वीतराग देवके मुंहसे निकले हुए परम पूज्य जीव मात्रके हितकर शास्त्र (प्रथमानु योग, करणानु योग—चरणानु योग, द्रव्यानु योग) हैं, जो हमको प्रत्येक पद पदमें हितकी प्राप्तिके लिये कारण हैं—उन सबको क्या हम एक अभिमानांध अर्वाचीन पंचम वर्षीय शिशुकी आज्ञासे "कुछ नहीं" कहकर उड़ा देंगे? हमको याद रखना होगा कि, जिस मार्गपर चलकर समाज बहुत काल तक जीवन धारण कर सकेगी हमको वही (जोकि हमारे परम हितैषी आचार्योंने अपने शास्त्र रत्नोंमें कहा है) मार्ग अवलंबन करना चाहिये। जिस बातको जाननेके लिये या प्रत्यक्ष करनेके लिये मि० जगदीशचंद्र बसु महोदयने अपना जीवनका अधिकांश भाग व्यतीत कर दिया; उसी बातको हमारे बच्चे भी बतला सकते हैं कि-वृक्षादिकोंमें जीव है। अस्तु, हम इसको बुरा नहीं समझते; किंतु इसी (साईन्स) से जाने हुए पदार्थोंको सत्य और आचार्योंके कथनको मिथ्या मानने वाले भाईयोंको अपने मार्गसे विचलित हो नहीं वल्कि कुमार्गगामी समझ कर उनको सुमार्गमें आनेके लिये अनुरोध करते हैं। हम उनको विश्वास दिलाते हैं कि, पाश्चात्य समाजके पनोपोगण जिस पथमें अपनी समाजको ले जा रहे हैं उसका परिणाम कैसा होगा-यह वे ही अभी निश्चय नहीं कर सके हैं। परंतु उनके समझमें इतना अवश्य आ गया होगा कि; उनके बताये हुए मार्ग पर चलनेसे समाज दुराशा अतृप्ति और घोर अशांति पूर्ण हो जायगी। आजकल युरोपमें जो श्रमजीवी और धनवानोंमें वात वात पर विरोध हो रहा है, हड़तालोंकी भर-

मार हो रही है—यह सब क्या समाजके उन्नतिके लक्षण हैं?

और भी एक विषयमें पाश्चात्य समाजके विवेकियोंने बड़ी भारी भूलकी है; और अब उस भूलको सुधारनेके लिये वे व्याकुल हो उठे हैं। आश्चर्य और खेदके साथ कहना पड़ता है कि हम भी पाश्चात्य समाजका अन्ध अनुकरण करनेके लिये अपनी शक्तिका बुरी तरहसे अपव्यय कर रहे हैं। हमारे नये सुधारक गण स्त्री-स्वाधीनताके लिये नाना प्रकारके जाल बिछा रहे हैं। वे अपनी इच्छा की पूर्तिके लिये सर्वज्ञ प्रणीत आगम का अर्थ पलट कर 'स्त्री-पर्यायसे मुक्ति होना' बतला रहे हैं। पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंको भी एकसे अधिक (विधवा विवाह) विवाह करनेका अधिकार देनेके लिए लालायित हो रहे हैं!

हमारे देशके जिन शास्त्र कारोंने 'सत्वेषु मैत्री' 'अहिंसा परमो धर्मः' 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' आदि महत् वाक्योंका प्रचार कर उदारता और समदर्शिताका परिचय दिया है, उन्होंने स्त्रियोंको बाल्यावस्थामें पिताके अधीन, यौवन अवस्थामें पतिके अधीन और वृद्धावस्थामें पुत्रके अधीन; अर्थात् सर्वदा किसी न किसी एक पुरुषके अधीन रहनेकी व्यवस्था क्यों की है? इसका क्या कोई कारण नहीं है? अदूरदर्शी व्यक्ति इसका कारण यह बतलाते हैं कि "पुरुष ही समाजके हर्ता-कर्ता-विधाता थे, इसीलिए वे इस प्रकारकी एकदेश-दर्शिताका परिचय दे गये हैं। यह उनके स्वार्थपरताका परिचय मात्र है। यदि स्त्रियां शास्त्र रचना करतीं तो समाजमें स्त्री जातिका स्थान पुरुषोंके नीचे कभी भी नहीं रहता। वे भी पुरुषोंकी समकक्षता कर सकतीं—इत्यादि" परंतु यह हेतु बिल्कुल भ्रमात्मक और अज्ञानताका दृष्टान्त मात्र है।

अंग्रेजीमें एक कहावत है, जिसका मतलब यह है कि फल देखनेसे ही वृक्षका परिचय मिलता है। यूरोपमें स्त्री-स्वाधीनताका फल विषमय हुआ है या अमृतमय, इससे समाजमें अशांति फैली है या शांति? यह आंख खोल कर देखनेसे ही पता लग जायगा, इसी स्त्री-स्वाधीनताके फलसे इंगलैंडमें 'सफरोगेट' नाम की एक नयी संप्रदायकी सृष्टि हुई है। यह संप्रदाय हर एक विषयमें, यहां तक कि, राजनैतिक विषयोंमें भी पुरुषोंसे दो कदम आगे रहनेका प्रयत्न करती रहती है! युद्धसे पहिले इसने कई वर्षों तक अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये कितने ही घृणित-कार्य किये हैं। स्त्री और पुरुषके प्राकृतिक पार्थक्यको अग्राह्य कर यह संप्रदाय बाहुबलसे पुरुषोंकी समकक्षता करनेके लिये उन्मत्त हुई थी। इस संप्रदायने पुलिसके साथ बाहुबलसे काम लेनेमें आगापीछा नहीं किया, अच्छे अच्छे मकानोंमें आग लगा कर भस्म करनेमें भी संकोच नहीं किया! एक एक कर सैकड़ों परिचय मिल सकते हैं। दैनिक और साप्ताहिक पत्रोंके पाठकोंको इन वीरांगनाओंकी अनेक कीर्ति-कहानी ज्ञात होंगी।

जो समाजनेता स्त्री-स्वाधीनताके प्रचारके लिये कटिबद्ध थे, हमारे देशमें स्त्री-स्वाधीनता न होनेसे हम (भारत) को "असभ्य" "वर्बर" आदि कहने में संकोच नहीं करते थे, आज इंग्लैंडमें वे ही समाजनेता उन वीरांगनाओंके फेरमें पड़ कर त्राहि त्राहि कर रहे हैं। अब वेही अद्भुत प्रश्न करते हैं कि ऐसा क्यों हुआ? स्त्रियोंने क्यों अपनी स्वाभाविक कोमलता छोड़ कर कठोरता धारणकी है? इन सब प्रश्नोंकी मीमांसा करते समय वे कभी ऐसी युक्तियां देते हैं जिनको सुन कर हंसी आती है। पाठकोंके मनोरंजनके लिये उनकी एक युक्ति यहां लिखते हैं।

जिस समय इंग्लैंडमें "सफरी गेट" दलने पुरुषोंको दमन करनेके लिये 'जागो जागो' कह कर रमणी-समाजको उत्तेजित किया था और संभ्रांत लार्ड घरानेकी स्त्रियां भी पुलिशके साथ युद्ध कर कारागार में जानेको गौरव समझती थीं, उसी समय इंग्लैंडके एक प्रसिद्ध दार्शनिक और समाज तत्त्वज्ञ विद्वानने किसी समाचार पत्रमें लिखा था कि 'इंग्लैंडके पुरुष जिस पोषाकको व्यवहारमें लाते हैं वह कटा छटी चुस्त है, मानों शरीरसे चिपट गई है। इस पोषाकको पहिरनेसे पुरुषका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, जिससे स्त्रियोंके हृदयमें भय वा भक्ति ठहर नहीं सकती। यदि यूरोपीयगण पारसी या अफगानस्थानी पुरुषों जैसा ढीला पाजामा और घाघरा सरीखा नीचा व ढीला अंगरखा पहिनते, तो स्त्रियां उन्हें देख कर अवश्य कहती कि—यह पुरुष है। मुसलमान समाजमें स्त्रियां पुरुषोंके अधीन और पदानत क्यों रहती हैं, इसका प्रधान कारण उनकी पोषाक ही है। अतएव हे अंग्रेजो! यदि स्त्रियोंको तुम अपने अधीन और पैरोंतले रखना चाहते हो तो अपनी चुस्त पोषाकको उतार कर अलग फेंक दो, और काबुलियोंकी भांतिकी पोषाक पहिनना शुरू कर दो।'

स्त्री-स्वाधीनताका अमोघ फल स्वरूप स्वेच्छाचारिणी स्त्रियोंको लेकर इंग्लैंडके समाजनेता गण किस प्रकार विपत्तिमें पड़े थे, यह उपर्युक्त दार्शनिक महाशयकी चमकदार युक्तिके पाठ मात्रसे सहज ही समझमें आसकती है। यूरोपके समाजनेताओंने स्त्रियों को स्वाधीनता देकर अपनी कैसी भयंकर उन्नतिकी है, यह अपने आप ही विचार कर देख लें। फल देख कर पेड़की पहिचान हो ही जाती है।

हिंदु और मुसलमान जातियों में प्रचलित, पुरुषों की बहु विवाह पद्धति भी आजतक; सभ्यता के मदमें चूर यूरोपीय जाति की आंखों में कांटे के समान चुभती थी। वे इसी कारण आर्यों को वर्बर असभ्य आदि निंदनीय विशेषणोंसे विशिष्ट किया करते थे; जैसा कि आजकल भी उनकी नकल कर जन्म सफल माननेवाले कुछ लोग किया करते हैं। परंतु गत युद्धने उनके मुंह को मार दिया है। फ्रान्स इंगलैंड जर्मनी आदि प्रायः समस्त ही देशों में इस समय पुरुषोंकी संख्या कम हो गई है और स्त्रियां एक एकके हिस्सेमें तीन तीन से भी अधिक आनेके करीब दीख रही हैं। उन देशोंके रक्षक अपने सामने इस विकराल मुंह फाड़े समस्या को देख कर घबड़ा उठे हैं। एक तरफ एक पुरुषके बहु विवाह पद्धति की घृणा उन्हें रोकती है, दूसरी तरफ पुरुषों के बांटसे बची हुई स्त्रियां और भविष्य में उनसे संतति न उत्पन्न होनेके कारण स्वजातीय क्षयका भीषण दृश्य डरा रहा है। एक पुरुष यदि एक ही स्त्री को रक्खे तो हद्दसे हद्द साल भरमें एक बच्चा पैदा हो सकता है और जो अविवाहित बची स्त्रियां रह गईं वे पति लाभ न कर सकने के कारण कभी भी संतान न जनेंगी। इस तरह उनका होना न होना उन देशोंके लिये बराबर ही होगा एवं ब्रह्मचारिणी न रह सकने के सबब व्यभिचार जनित संतान पैदा कर जारजों की वृद्धि होगी। ऐसी अवस्थामें सिवा भारतीयोंकी पुरातन पद्धति (पुरुषोंका बहु विवाह) का सहारा लिये कोई ठिकाना नहीं रह जाता है।

उपर्युक्त नाना कारणों के वशवर्ती हो और खूब अच्छी तरह सोच समझ कर इंगलैण्ड और फ्रान्स के समाजनेताओंने स्थिर किया है कि पुरुषोंके बहु विवाह की पद्धति भारतके समान इन देशोंमें भी चलाई जाय। अर्थात् इतने दिनों तक जिस हिंदु और मुसलमानों

की प्रथाको ये लोग बर्बरता और असभ्यताका काम कह कर निंदनीय समझते थे उसी प्रथाको अब ये अपनी समाज व देशकी रक्षा के निमित्त सहारा लेनेपर उतारू हुए हैं। हमें विश्वास है कि प्राचीन और अर्वाचीन समाज-व्यवस्थाकी तरतमताको पाठकगण इतने मात्र से ही समझ लेंगे।

नोटपर शंका।

श्री युत शंकर पंढरीनाथ रणदिवे सोलापुरवालोंने जैनमित्र अंक ३७ में प्रश्न किया है कि श्रीयुत रावजी सखाराम दोशीने स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी साक्षी देकर लिखा था कि तीन प्रकारके पात्रों को नवधा भक्ति की जाती है इससे ऐलक को अष्ट द्रव्योंसे पूजन प्रदक्षणा साष्टांग नमस्कार आदि करना चाहिये इत्यादि तिसपर प्रश्न किया है-क्या अविरत सम्यग्दृष्टीकी भी अष्टद्रव्यसे पूजनादिकी जावे इत्यादि-जिस पर संपादक जीने नोटदिया, जिसका संक्षेप यह है कि यथा सम्भव तीनों पात्रोंकी नवधा भक्ति करना सबके साथ एक सी भक्ति न होगी परंतु एलक मुनि सदृश हैं लघु मुनि हैं उनको अर्घपाद्य कियाजाय मस्तक नमाया जाय तो कुछ विरोध नही इत्यादिक सो मेरी समझमें तो संपादकजी का लिखना शास्त्रोक्त मालूम नही पड़ता क्योंकि शास्त्रोंमें देव गुरु शास्त्रको पूजा कही है नकि ऐल्लकको भी तथा एल्लक लघुमुनि लिखें सो किसी शास्त्रमें एल्लकको मुनि संज्ञा उपचार करके भी नहि देखने सुननेमें आई अलवत्ता मुनिके छोटा भाई कहे हैं सो इसका अर्थ यह नही है कि वे लघु मुनि हैं मुनि पांच प्रकारके कहे हैं तिनमें भी एल्लकको नहि गिना है तथा गुरु निर्गंथ होते हैं ऐल्लकको निर्गंथ संज्ञा भी नही कही जैसे राजाका छोटा भाई होवे तो कोई भी उसको लघु राजा नही कहता यह लौकिक व्यवहार भी नही है तो फिर एकको मुनि कैसे माना जाय उनको तो श्रावकसंज्ञा है इस वास्ते संपादकजी से प्रार्थना है कि इसका कोई शास्त्राधार होवे तो लिखिये चांदमलजीके लेख पर रा. स. दोसीजीने लेख दिये वे ऊटपटांग थे लेखकोंको चाहिये कि जिनाज्ञा भंगका भय रख कर लेखनी उठाया करें क्योंकि आज्ञा भंगके बराबर बड़ा पाप और नही है।

—शिखरचन्द गोधा

तुकोगंज-इन्दौर।

क्षमा प्रार्थना।

हम अपने सर्व ग्राहकों, पाठकों व सर्व जैन समाजके भाई व बहिनोंसे अपनी उन त्रुटियोंके लिये क्षमाके प्रार्थी हैं जो हमारे लेखोंमें गत वर्ष हमारे प्रमाद व अल्पज्ञताके वश हो गई हों। हमारे लेखोंके द्वारा यदि किसीके मनको कोई प्रकारका कष्ट पहुंचा हो उसके लिये हम मन वचन कायसे क्षमा प्रार्थना करते हैं कि हरएक समय भाई व बहन हमारी तरफसे चित्त को साफ कर क्षमा प्रदान करें तथा हम भी क्षमा प्रदान करते हैं। शांति ही इस भव पर भव में सुखदाई है।

खम्मामि सव्व जीवाणं सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूदेसु वैरं मज्झं ण केणवि॥

क्षमाभिलाषी—संचालक—पद्मावतीपुरवाल.

---

* इस लेखमें हमें "हितवादी" से बहुत कुछ सहायता मिली है, अतएव हम हितवादी-संपादकके अत्यंत आभारी हैं।

लेखक—

पद्मावती परिषद् का आलस।

हमारी जातिमें पढे लिखों को संख्या और खास कर पंडितों को गणना को कमी नहीं है, जन संख्या के हिसाब से पचहत्तर आदमी पीछे एक शिक्षित पड सक्ता है और इस हिसावसे यदि हरएक विद्वान अपने हिस्सेमें आये इन ७५ भाइयोंको सुमार्ग पर लानेका वीड़ा उठाले, इन्हे ऐहलौकिक और पारलौकिक सुख दिलानेके लिये कमर कसले तो बहुत ही शीघ्र यानी दो चार वर्षके अन्दर हो अंदर पद्मावती पुरवालोंको दशा सुधर सक्ती है। परंतु हमारे इन शिक्षितोंका ध्यान अपनी दीन हीन जातिकी दशा पर कुछ भी नहीं है। ये लोग व्यक्तिगत तो जो कुछ सुधार के मार्ग या कार्य सोचते या करते होंगे उन्हे तो वे महाशय ही जानते होगें परंतु समस्त पंडित और शिक्षितों की मुख्य सभा जो पद्मावती परिषद् है वह जिस प्रकार आलस्यमें पड़ी खुर्राटे ले रही है उसे देखकर वहुत ही दुःख और शोक होता है।

कोई सभा या संस्था अपने कार्यमें जभी सफल और परिश्रमशील हो सकती है जब उसके संचालक मंत्री महा मंत्री आदि उत्साही व उद्यमी हों। सभा व संस्था समान पथके पथिक—एक ही उद्देश्यको मान कर काम करने वाले बहु संख्यक लोगोंको समष्टि रूपसे प्रगट शक्ति होती है जिसका लोगोंमें परिचय देनेके लिये उन्हें निश्चित मार्ग पर सदा तत्पर रहने और चलानेके लिये किसी एक या दो व्यक्तिके जिम्मे उसका कार्य भार सौंप दिया जाता है जिनको प्रचलित भाषामें मंत्री महा मंत्री आदि नामोंसे पुकारते हैं। इस प्रकार जन समुदायको उस शक्तिको व्यक्ति करना उन निश्चित व्यक्तियोंके हाथको वात रह जाती है। यदि वे लोग उत्साही उद्यमी होते हैं तो अपने मार्ग भ्रष्ट वा शिथिलाचारी भाईयोंको नाना तरहके उपायोंसे सचेत कर ठीक मार्ग पर ले आते हैं और यदि आलसी निरुद्यमी होते हैं तो केवल नामके पीछे साल भरमें दो एक दिन ही हाथ पैर पोट पाट कर कार्य तत्परता दिखला हट जाते हैं और फिर वही गहरी कुंभ कर्णी निद्रामें मग्न हो आराम करने लगते हैं।

उक्त ही हालत हमारी पद्मावती परिषद्की या उसके संचालकोंकी है। वा० बनारसीदासजी इस समय मनुष्य पर्यायमें नहीं हैं और इसे हम अपना दुर्भाग्य ही समझते हैं इसलिये उनके महा मंत्रित्वके समयकी तो कोई हम बात ही छेड़ना पसंद नहीं करते उपस्थित जो हमारे सहायक महामंत्री पं० वंशीधरजी हैं उनके विषयमें हो दो एक शब्द कहना है।

परिषद्का अधिवेशन गत चैत्र शुदीमें फिरोजाबाद हुआ था उसको बीते आज ६ महीने हो गये परंतु उसमें पास हुये प्रस्तावोंकी अमली कार्यवाही अपने भाईयोंसे करानेकी कोशिश कराना तो एक तरफ रहो उन प्रस्तावोंकी नकल ही नही अभी तक छपाई है। कहिये! कैसा वढ़िया संचालन हो रहा है। अन्य २ जातियोंके लोग तो पीछे आगे और अपने सतत उद्योगसे आगे कदम वढ़ाये चले जांय और हम व हमारी परिषद् ८-६ वर्षके दीर्घकालमें सिर्फ करवट वदल हो कर रहजाय। इससे तो यही अच्छा है कि इसका अस्तित्व ही न रहे जिससे यह कहने को तो न रहे कि हमारी जातिकी एक सभा है और वह कुछ काम नहीं करती 'आंख फूटे पीर जाय' की कहावत चरितार्थ हो जाय।

यह तो हुई हमारे प्रधान सहायक महामंत्री साहवके उत्साहकी और उद्यमकी दशा। अब अन्य पंडित महानुभावोंकी वात सुनिये। फिरोजाबादके

मेलाके समय प्रायः सब ही लोग एकत्र हुये थे और कार्यकर्ता चुननेकी भी बात उठाई गई थी पर किसी ने भी उत्साहसे प्रेरित हो जातिके दीन हीन भाइयों पर तरस खाकर कोई जातिसेवाका कार्य ग्रहण करनेकी तकलीफ नहीं उठाई। महामंत्री की जगह खाली हुये ६ महीने हो गये उस पर आज तक नियत करनेकी किसीने बात नहीं चलाई। हम कहते हैं यह क्यों? किसी सभाको सुचारु रूपसे चलानेका यह कायदा नहीं है। खैर! अब तक जो कुछ हुआ सो हुआ पर अब तो हमारे समाज हितैषी शिक्षित भाईयो को चेत जाना चाहिये यदि हमारे सहायक महामंत्री साहब आदि वर्तमानके नेता यदि कुछ काम नही करते तो क्यों नहीं उनकी जगह दूसरे उत्साहित पुरुष ग्रहण करनेका साहस करते। हमारा वही नेता प्रशंसनीय और श्रद्धाभाजन हो सक्ता है जो हमारे वास्ते सालमें दो एक दिन नही बल्कि प्रतिमास और प्रतिदिन कुछ न कुछ हमारे हितके लिये अपने जीवनका समय उत्सर्ग कर सके। हमारे भाइयों की दशा बहुत ही शोचनीय है। वे जिसप्रकार अपना हितका मार्ग पहचान सकें उस तरह कार्य प्रारंभ करना चाहिये। वे लोग अखबार नहीं पढ़ते, उन्हे उसके पढ़नेकी रुचि ही नहीं होती और न उससे कोई लाभ ही समझते हैं बल्कि उसके लेनेमें फिजूल खर्च करना और पढ़नेसे समय बर्बाद करना होता है ऐसा उनका दृढ विश्वास सा है इसलिये इस उपेक्षा को दूर करनेके लिए परिषद्‌के कार्य कर्ताओंको तरह तरहके उपाय काममें लाना चाहिये, उपदेशक घुमाने चाहिये। इसके सिवा विधवाओंको हीन दशाका परिवीक्षण कर सुधार होना भी जरूरी है; जो अपने गरीब भाई हैं उनको व्यापारमें लगाना, जो अपाहिज अनाथ बच्चे हैं उनकी सुधलेना आदि सैकड़ों ऐसे कार्य हैं जिनका होना बहुत ही जरूरी हो उठा है, उनके बिना किये हमारी जो दशा इस समय है उससे भी बदतर हो जायगी। अतः जातिके शिक्षितो! हितैषियो!! और उनकी हीन दशा देखकर अविरल आंसू बहाने वाले महानुभावो!!! उठो, आलस्य त्यागो मैदानमें आ कार्य करना प्रारंभ करदो। यह मत सोचो कि अमुक बड़ा विद्वान है वह तो नही करता, हम करेंगे तो लोग हंसेंगे। नहीं, जातिकी आज जो दशा हो गई है वह विद्वान अविद्वान छोटे बड़े की अपेक्षा नहीं करती। उसके लिये तो सेवा करनेके लिये जो कमर कसेगा अपना जीवन उसके लिये समर्पण करैगा वही विद्वान है, वही बड़ा है। इसलिये इन पंक्तियों पर ध्यान दें आशा है जरूर चेत होगा।

देखें! कौन कौन माईके लाल जातिको हीन दशाका देख अपनी परिषद्‌को जगानेका बीड़ा उठाते हैं। जिन महाशयोंको कार्य करना हो वे इसी पत्र (पद्मावती पुरवाल) के पते पर पत्र व्यहार करें। हम शक्तिभर उनको मदद देंगे।

अत्याचारका अंत।

(लेखक— श्रीयुत धन्यकुमार जैन 'सिंह'।)

(१)

संध्याका समय है। एक मौन भावने प्रकृतिके समस्त दिनसे रौद्रदीप्त मुखको गंभीर बना रक्खा है। उसी म्लान सौन्दर्यमें खड़ी हुई एक सजीव तशवीरके समान बसंतिया अपने घरके सामने वाले कुएँमें से पानी भर रही थी। इसी समय गांवके जमींदार उमरावसिंहका पुत्र, स्वरूपसिंह उस कुवाके बगल वाली रास्तेसे जाते हुए, बसंतियाकी ओर ताक कर एक अश्लील दिल्लगी करता हुआ निकल गया। इससे बसंतिया का मुख लज्जा और घृणासे संध्याके रक्तिम आकाशके समान आरक्त हो उठा। वह झट-पट अपनी गागर उठोकर घरकी ओर चल दी।

संध्या उत्तीर्ण होनेके बाद रोजकी तरह बसंतियाने अपनी छोटीसी मढैयामें दीआ-बत्ती की, फिर बैठ कर पतिके आनेकी बाट देखने लगी।

मिट्टू अपने बैल-बछराओंको लेकर घर लौटा। पर रोजकी तरह अपने सामने हंसती हुई बसंतियाको न आते देख, थका हुआ मिट्टू और भी थक गया। उसने बसंतियासे पूछा "बसंती, तू उदास क्यों है?"

कुछ जवाब न देकर बसंतियाने बैल बछरोंको उनके स्थान पर बांध दिया। फिर पतिके लिये मूंढा और एक लोटा पानी लाकर बगलमें खड़ी हो गई। मिट्टूने देखा, जो हँसीके गाल कारण-अकारणसे उसके सामने लाल हो जाते थे, वे आज सूख गये हैं। वहपूछने लगा—"क्या हुआ है बसंती?"

उत्तर देनेसे पहिले ही बसंतिया रो उठी, क्योंकि आजकी तरह उसका अपमान पहिले कभी न हुआ था। मिट्टू लोटा रख कर घबड़ा कर बोला—"ये क्या, रो रही है। क्या हुआ है?" इस बार बसंतिया बोली—"कुछ नहीं-तुम मुंह हाथ धोवो।"

"नहीं कहेगी, तो यह रहा तेरा लोटा और पानी" कह कर मिट्टू उठ खड़ा हुआ। बसंतियाने हाथ पकड़ कर उसे मूढ़ा पर बिठा लिया। मिट्टूने कहा—"बोल तो! क्या हुआ है?"

बसंतियाने जब देखा कि: बिना कहे नहीं बनेगी तो उसने बड़ी कठिनाईसे शामकी सब बातें कह सुनाई। सुनते सुनते मिट्टू खड़ा हो गया। उसका खून सारे शरीरमें दौड़ने लगा—आंखोंमेंसे आगकी चिनगारियां छूटने लगीं।—"अच्छा, स्वरूप सिंह!" कहते हुए वह फिर बैठगया।

वाक्य अस्पष्ट होने पर भी इसका अर्थ बसंतियाने साफ समझ लिया कि, उसके हृदयमें स्वरूपसिंहको लक्ष्य करती हुई एक तीक्ष्ण तलवार कांप रहा है।

स्वरूप सिंहके नामसे गाँवके सबही लोग काँपते हैं। उसके खुलमखुल्ला अन्याय-अत्याचारको सब ही चुपचाप सह लेते हैं। उसके आमंत्रणको लोग यमराजके 'वारन्ट' से भी ज्यादा डरते हैं। उसकी कचहरीका न्याय पंजाबके 'मार्शललॉ' से भी अधिक भयंकर है। यह बसंतियाको भली भांति मालूम था। इसीसे वह अपने ऊपर आने वाली विपत्तियोंको याद कर कांप रही है, और अपनी रक्षाके लिये अपनी बुद्धिकी आरा-

भना कर रही है। परंतु उसे गांवसे भागजानेके सिवाय कुछभी नही सूझता। उसने लड़खड़ाती हुई जबानमें अपने पतिसे कहा "कुवाके बगलवाली रास्ता तो अपनी ही है। उसे बंद कर दें, तो——"

मिट्ठू ने उसकी बातका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वह मूंछों पर हाथ फेरता हुआ, खटिया पर जासोया।

(२)

सबेरे घरसे निकलते मिट्ठू ने देखाकि, स्वरूपसिंह का नौकर रामरूप कुवाके बगलवाली सड़कसे जमीदारके घर काम पर जा रहा है। कलकी घटनासे उस का मन अभी तक उत्तेजित था। उसने रामरूपको देखते ही कहा—"ओरे रूपा, इस रास्तेसे नहीं जा सकेगा-लौट जा!"

रामरूप जमींदारका नौकर है गांवका कोई भी आदमी उसके ऊपर हुकमचला सकता है-यह उसने स्वप्नमें भी न सोचा था। वह अपने पदका वजन अच्छी तरह जानता था वह हुंकारता हुआ बोला—' मिजाज तो बड़ा गरम दीखता है! रोक सके तो रोकता क्यों नहीं?

मिट्ठू ने बड़ी मुशकिलसे अपने क्रोधको दबा रक्खा था; पर वह रामरूपकी वाक्याग्निके संयोगसे 'धप्'से जल उठा। उसने रामरूपके सामने खड़े हो कर छोटी सी सड़क रोकदी। बसंतियाको जिस बातका डर था उसीका सूत्रपात होते देख उसने झटसे जाकर पति का हाथ पकड़ कर वहांसे हटाना चाहा, परंतु उसके दुर्बल हाथोंका क्षीण आकर्षण मिट्ठू को मालूम भी न पड़ा। वह हाथसे उल्टा पथ दिखा कर कहने लगा, "लौट जा, नहीं तो—"

उसकी वह गर्वित वीर- मूर्ति देख कर भयभीत, रामरूप चुपचाप उलटे पांव लौट गया। कुछ दूर जा कर रामरूप बोला-"अच्छा!" इसके उत्तरमें मिट्ठू एक ऐसी बात कहना चाहता था, जो रामरूप वा उसके मालिक स्वरूपसिंहके लिये बिलकुल ही गौरव बढाने वाली नहींथी। परंतु बसंतियाने उसका मुख दबा दिया।

मिट्ठू को घरमें लाकर बसंतिया बोली-"आज ही चलो, यहांसे भाग जांय।"

उसका भय देख कर इतनी गुस्सामें भी मिट्ठू हँस पड़ा। वह बोला-"डर क्या है बसंतिये, तुझे रक्षा करनेकी शक्ति मेरे इन दो हाथोंमें है।"

अभी तक उसके शरीरमें रक्त अस्वाभाविक उत्तेजना से दौड रहा था-इसी लिये बलकी ही बात उसके मुह से निकली। बसंतियाने कहा-"वे बडे आदमी हैं जमींदार हैं: हम सरीखे हजारों लोग उनके आंखोंके इशारे पर उठा-बैठा करते हैं। और तुम अकेले हो। मत पड़ा रहने दो-चलो भाग चलें।

स्वरूपसिंहने अपनी निरीह प्रजाके ऊपर कितना अत्याचार किया है, कितनी अबलाओंको पातिव्रत धर्म से च्युत किया है कितने निर्दोषियोंको कैद की उन की धन सम्पत्ति छीन कर उन्हें अपने गांवसे निकाल दिया है इन सब बातोंको याद करते ही बसंतिया भय से कांपने लगी। मिट्ठू ने अपनी सबल भुजाओंमें बसंतियाको लपेट कर कहा-"मा बापकी जायदाद बीसों पीढियोंका जन्मस्थान बातकी बातमें छोड दिया जाता है! बसंती?

बसंतिया-"रहने दो घरद्वार-चलो। हम दोनों जहां रहेंगे, वहीं हमारा घर द्वार है।"

मिट्ठू-"तू क्यों झूंठ-मूंठको घबड़ा रही है, बसंती? यदि ऐसेही जाना होगा; तो चले चलेंगे।"

३

मिट्ठू यदि उस दिन रामरूपको पकड़ कर मारता

भी तो शायद रामरूप अपनेको इससे ज्यादह अपमानित न समझता। वह गुस्से में भुर्राता हुआ अपने घर लौट गया। बैठा बैठा बहुत देर तक तमाखू पीता रहा दिन रात जमींदारोंके राजनैतिक आन्दोलनमें रहते रहते उसके मगजमें भी बहुतसी राजनैतिक चालें घुस गई थीं। तमाखूके धुवांके साथ २ जब मिट्टूको हैरान करनेकी फंदी उसके दिमागमें आ गई—तो वह उछल पड़ा। चिलमकी आग उछल कर उसके सिर पर गिर पड़ी, जिससे उसके सिरके बाल कुछ जल गये। कंधे पर भी थोड़ी सी आग गिर पड़ी, वहां भी फफलक पड़ गया। 'भलेरी तमाखूको ऐसी तैसी करूं' कहते हुए उस समय तो रामरूपने मन ही मन संकल्प किया कि—'' ऐसी तमाखू तो मैंने छोड़ी ! ''

करीब तीन घंटे बाद वह जमींदारके घर पहुंचा। रामरूप स्वरूपसिंहका प्यारा नौकर है। उसको नव बजे आते देख, स्वरूपसिंह बहुत ही खफा हो कर कहने लगे 'क्यों रे रूपा, तेरे ठाट-बाट तो अब शाही खानदानियोंसे भी बढ़ चले ! — नव बजे आया है, मुंह दिखाने—बेईमान ! बदमाश कहींका— '

रामरूप हाथ जोड़ कर रोता हुआ सा बोला—'गरीब परवर, मेरा कुछ भी कसूर नहीं है। '

स्वरूपसिंह- कसूर नहीं है; तो इतनी देर क्यों की?

रामरूप— हुजूर, मैं रोजकी तरह आज भी आया था, पर मिट्टुआके कुवांके पास आते ही उसने मुझसे लड़ाई ठान दी। तिस पर भी हुजूर उसने जो मनमें आई वही कह कर मेरी बेइज्जती की ! '

कुवांके पासका नाम लेते ही स्वरूपसिंहके मनके निभृत कोणमें एक लज्जारुण मुखकी अपूर्व श्री जग उठी। उसने पूछा—'बे-कसूर ? '

रामरूप—'बिल्कुल बेकसूर, गरीब परवर ! कितनी गालियां दीं—हुजूर, फिर मुझे रोक रक्खा ! '

स्वरूपसिंहके मुख पर क्रमशः अंधेरा छा गया। वह बोला—'रोक रक्खा था ?'

रामरूप — जी हां, सिर्फ रोका ही नहीं था, उसने सैकड़ों ऊट पटांग बातें सुनाई हैं, हुजूर !'

स्वरूपसिंह— किसको ? '

रामरूप— 'हुजूर, मुझे कहनेमें डर लगता है —'

स्वरूपसिंह—'डरकी क्या बात है। जो कुछ उसने कहा है—वही कह दे। '

रामरूप—'हुजूर ! उस नालायकने आपका नाम लेकर सैकड़ों ऊटपटांग बातें सुनाई थीं, हुजूरके सामने मैं वह कैसे कहूं ! '

स्वरूपसिंह सिंहकी तरह हुंकार कर बोले 'अच्छा ! तू तीन चपरासियोंको लेकर अभी जा। उस नालायकके बच्चेको जूता मारते मारते मेरे पास ला—जा जल्दी जा ! '

रामरूप—हुजूरका हुकम है, तो मैं अभी जाता हूं !

स्वरूपसिंह—'हां, जा— देख, उसे बांधकर पीछेके दरवाजेसे लाना, ठाकुर साहबको न पता लगने पावें !

रामरूप— हुकम हुजूरका ऐसा ही होगा।' कह कर वहांसे उछलता हुआ चपरासियोंको लेकर मिट्टूके घरकी ओर चल दिया।

बसंतियाने जो सोचा थो वही हुआ। उसके प्राणोंसे भी प्यारे मिट्टूको आज जमींदार के हुकमसे पांच पांच रुपयेके नौकर बांध कर ले-जा रहे हैं झूठा मांजने वाला रामरूप उसे जूता मार रहा है ! वह इस भौतिक कांडको ज्यादा देर तक न देख सकी, बेहोश होकर जमीन पर गिर पड़ी।

(४)

इधर तो मिट्टूको पकड़ कर लानेके लिये रामरूप

को भेज दिया, उधर स्वरूपसिंह अपने यार जुगलानन्द को लेकर अपनी सूदमें निकल पड़े। ये दोनों करीब दस मिनट बाद वहीं पहुंचे जहां बसंतिया बेहोश पड़ी थी। दोनोंने मिल कर उसे अपनी मोटरमें रख लिया और उमराव बागमें आपहुंचे। इस बागमें उमराव सिंहने अपने रहनेके वास्ते हवादार एक मकान भी बनवाया था जिसमें ये सुबह साम आकर शास्त्र स्वाध्याय किया करते थे। इसमें एक कमरेमें पुस्तकालय भी है।

जब बसंतियाको ये लोग उठा कर लाये थे, तब बसंतिया बेहोश ही थी पर मोटर चलते ही हवा लगने के कारण उसको होश आया। वह अपनेको स्वरूपसिंहकी मोटरमें देख चौंक पड़ी। उसकी आवाज बंद हो गई, अपने साथ दो शख्सोंको देख वह बहुत ही घबराई और सामने आनेवाली आफतोंको याद कर रो उठी। पर उसे रोनेका भी अधिकार नहीं, स्वरूपसिंहने उसके मुंहमें रूमाल ठूस दिया और यह धमकी दिखाई कि—"खबरदार रोई या चिल्लाई तो छुरी भोंक दूंगा!"

बसंतिआको एक कमरेमें बंद कर स्वरूपसिंह घर लौट आया और जुगलानन्द उसकी रक्षाके लिये वहीं रह गया।

(५)

स्वरूपसिंहने अपनी कचहरीमें आकर देखा: तो सचमुच ही मिट्ठूको बंधा हुआ पाया। उसके सिरसे खून निकल रहा था। खून देखते ही स्वरूपसिंह चौंक पड़ा। उसने रामरूपसे पूछा—"इसके यह सिर पर चोट कैसे आई?"

उत्तरमें रामरूप कुछ कहना ही चाहता था; पर बीच ही में मिट्ठू बोल उठा—"यह चोट नहीं है; स्वरूपसिंह! रामरूपके जूतोंका निशान है!"

स्वरूपसिंहने नाराज होकर पूछा—"क्यों रामरूप तुमने इसको जूता मारा था?"

रामरूप—"जी नहीं—हुजूर! यह झूठ बोल रहा है—पूछिये न-इन सबको!,,

तीनों चपरासी—"हुजुर! यह झूठ कहता है. रामरूपने इसने 'तुम, से 'तू, भी नहीं कहा।"

मिट्ठू कुछ कहना चाहता था; पर अपनी कुछ भी सुनाई नहीं होगी जानकर वह चुप रह गया।

स्वरूप सिंह—"ठीक है इसको हाजतमें बंद रक्खो, खबरदार यह भागने न पावे। अगर भाग गया तो तुम चारोंको जीता न छोड़ूंगे!"

रामरूप—"आप बेफिक्र रहिये हुजूर! यह मेरे हाथसे भागकर जायगा कहां?"

स्वरूपसिंह—"अच्छा: जाओ।"

हुक्म पाते ही सब चले गये।

(६)

उमरावसिंहके जमानेमें प्रजाको जो सुख था, वह अब स्वप्नमें भी नहीं है। वे प्रत्येक व्यक्तिकी दुःख-सुखकी कहानी सुनते थे: और उसकी सहायता देते थे। अब अवस्था अधिक हो जानेसे वे अपनी इस क्षणिक-देहसे कुछ आत्म-कल्याण करनेके लिये अपने पुत्रको जमींदारीका भार देकर एकांतमें रह कर शास्त्रोंका अध्ययन किया करते हैं। उन्हें अपनी जमींदारीकी कुछ भी खबर नहीं है। प्रजाके दुःख सुखसे उनका कोई सरोकार नहीं है। दिन रात वे शास्त्र पढ़ने ही में मग्न रहते हैं। उनकी दिनचर्या यही है, शौचादिसे निवृत्त हो कर स्वाध्यायके लिये बैठ जाना और भूख-प्यास लगने पर उसको शांत कर फिर स्वाध्यायमें लीन हो जाना। रातको दस बजे सोना और सुबह चार बजे उठना।

इसमें कुछ भी शक नहीं कि, कर्म ही दुनियामें सबसे बलवान है। एक तरफ गरीबाईका दुःख पूर्ण-ही और सतीत्वका प्रभाव! दोनोंमें खूब ही मुठ-भेड़ हुई। पश्चात्ताप करते करते उमरावसिंहको एक शंका उत्पन्न हो गई; जिसने उन्हें दूसरे ग्रंथोंके देखनेकी जरूरत पड़ी। वे बिना कुछ कहे सुने चुपचाप घरसे निकल पड़े और पैदल ही अपने बागमें पहुंचे। वे अपने विषयमें इतने लीन थे कि, घरसे बाग तक चलने में कुछ भी थकावट न मालूम पड़ी। जब ग्रंथाव-लोकनसे उनकी शंका दूर हो गई; तो उन्होंने अपने को बाग वाले पुस्तकालयमें पाया। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

वे धीरे धीरे लकड़ीके सहारे नीचे उतरे। उतरते ही उनके कानमें किसी स्त्रीके रोनेकी आवाज पहुंची; जिससे वे चकित हो चारों ओर देखने लगे। उनसे नहीं रहा गया, उन्होंने आवाज दी-" कौन है भाई! क्यों रोता है? .. आवाजके सुनते ही जुगला-नंदके छक्के छूट गये। वह भागनेकी चेष्टा करने लगा, पर पैर उठानेकी उसमें ताकत नहीं रही। इतनेमें उमरावसिंहका दयासे भरा हुआ शरीर भी वहां पहुंचा। उमरावसिंहने ऐसा दृश्य पहले कभी न देखा था।

देखते ही वे "हे प्रभो! रक्षा करो!!" इतना कह कर-उनसे खड़ा नहीं रहा गया-वहीं बैठ गये। उम-रावसिंहको बागमें, अपने सामने देखकर जुगलानंद वहांसे भागा। जुगलानंदको भागते देख उन्होंने उसे पकड़ना चाहा पर शिथिल-शरीरने साफ मना कर दिया। हताश हो वे दरवाजेसे उठ कर भीतर ग-ये; जहां बसंतिया थी। उन्होंने बसंतियासे पूछा— "तू कौन है बेटी?"

बसंतिया—" मैं आपकी दासी—आपके गांवकी बहू हूं—मुझे बचाइये!"

उमरावसिंह—' तुझे यहां कौन लाया?'

बसंतिया—" मुझे उनका नाम लेनेमें डर लगता है—मुझे वे लोग बेहोशीकी हालतमें मोटरमें रखकर यहां ले आये हैं—'

उमरावसिंह—" मोटरमें बिठाकर! कौन? ब-ताओ-कोई डर नहीं बेटी?"

बसंतियाने हिम्मत बांधकर स्वरूपसिंह और जुगलानंदका नाम लिया। और मिट्ठूकी गिरफ्तारी आदिका सब हाल धीरे धीरे कह दिया उमरावसिंह बसंतियाको अपने साथ लेकर सीधे स्वरूपसिंहके पास पहुंचे।

(७)

स्वरूपसिंह मिट्ठूको हवालातमें भिजवाकर कचहरी से जाना ही चाहता था कि, जुगलानंदको दौड़ते हुए आते देख स्वरूपसिंहका मुंह इतना सा निकल आया। उसने जो अनुमान किया वह तो नहीं; पर उससे भी भयंकर भंडा फूटा। दोनों ही सलाह कर वहांसे चल दिये। बाहर निकलते ही रामरूपने आकर कहा—'हुजू-रको ऊपर ठाकुर-साहब याद कर रहे हैं।"

रामरूपकी इस खबरको सुन कर दोनों ही श्याम-रूप हो गये। बड़ी मुश्किलमें बेचारोंकी जान फंसी। जुगलानंद सोचने लगा—हम तो झूठ-मूठकी 'हा हुसे' में 'आ फंसे!' उसने भागनेकी मनमें ठानी पर वह भी स्वरूपसिंहके रौबसे डरता था। दोनों वीर उमराव-सिंहके सामने पहुंचे।

उमरावसिंहने किसीका भी मुंह नहीं देखा बसं-तियाकी ओर देखते हुए कहा-' तुम दोनों—नहीं रामरूप! मिट्ठू कहां है?"

रामरूपने लड़खड़ाती हुई जबानमें उत्तर दिया

'कोठरीमें बंद है।'

उमरावसिंह—"जा जल्दी, ला उसको !"

रामरूप हवालातकी ओर दौड़ा हुआ गया। वह बड़ी द्विविधामें पड़ गया कि यदि हाथ खोल देता हूं तो यह मारे बिना नहीं छोड़ेगा और बंधा रहने देता हूं तो ठाकुर-साहब नौकरीसे खारीज किये बिना नहीं मानेंगे। उसने मिट्ठूसे ठाकुर साहबके पास चलनेके लिये कहा और हाथकी हथकड़ी खोलनेको हाथ बढ़ाया। पर मिट्ठूने हाथ समेट कर यह उत्तर दिया कि 'खबरदार हथकड़ी खोली तो तुझे जिन्दा नहीं छोड़नेका!' वह उसी तरह मिट्ठूको ठाकुर साहबके पास ले गया। उसके हाथमें हथकड़ी देखकर उन्हें बड़ी दया आई उसकी हथकड़ी अपने हाथोंसे खोल दी।

मिट्ठू उमरावसिंहके पैरोंसे लिपट गयी। मिट्ठूको बड़ी मुश्किलसे छुड़ा कर ठाकुरसाहबने उसे अपनी छातीसे लगाया। फिर कहा --

"बेटा! मैंने आदिसे अंत तककी सब बातें सुन ली हैं, तू बिल्कुल बेकसूर है (स्वरूपसिंहकी तरफ इशारा कर) इस नालायकने तेरे साथ बड़ा अन्याय किया है। मालूम पड़ता है तुझ सरीखी मेरी अन्य प्रजा भी इसने बहुत ही तंग की होगी (जुगुलनंदादिकी तरफ देखकर) क्यों रे, नालायको! सच सच कहो तो तुम सब लोग भी इस तरहके कठोर कैसे हो गये? और दुष्ट स्वरूपाने अन्य भी क्या क्या अत्याचार किये हैं? अहो! मेरा शरीर एकदम पश्चात्तापसे जला जा रहा है। मैं नहीं समझता था कि धर्मज्ञान—विहीन अंग्रेजी शिक्षाका ऐसा फल होता है? इससे तो हम ही हजार गुणे अच्छे हैं जो सिर्फ हस्ताक्षर मात्र कर ही अपना काम चलाते रहे और प्रजाको सुख शांति देते रहे। इस स्वरूपा नालायकको बी० ए० पास कराया, नीति जाननेसे न्याय ठीक करेगा, तथा और भी प्रजाकी उन्नति करेगा इस लिये एल० एल० बी० की डिग्री हासिल कराई, और इसका फल यह हुआ कि सतियोंके सतीत्व भ्रष्ट करनेमें पर नारियोंको दूसरेकी बहू बनानेमें दोष ही नहीं मानता। धिक्कार है!"

इसके बाद ठाकुर साहबने अपने दीवान आदि प्रधान २ कर्मचारियोंको बुलाकर हुक्म सुनाया कि आजसे वृद्ध होने पर भी हम जमींदारीका काम देखेंगे। स्वरूपाकी आज्ञा-जब तक हमारी पुनराज्ञा प्रचलित न हो, कोई न माने।

अपने वृद्ध सुयोग्य स्वामीको फिर पाकर प्रजामें आनंदोत्सवकी सीमा न रही। लोग बसंतिया और मिट्ठूकी, तरह तरहसे प्रशंसा कर शीलव्रतकी अनुमोदना करने लगे।

कुंवर स्वरूपसिंहको भी ठाकुर साहबने उपेक्षा न की। उसके रहन सहनका पृथक् प्रबंध कर एक धर्मज्ञ विद्वान उसके पढ़ानेके लिये नियुक्त कर दिये। और जैसे वह सच्चरित्र और दयालु बन सके-इस तरह पढ़ाने और समझानेके लिये पंडितजीको प्रेरणा कर दी।

उपसंहार।

स्वरूपसिंह धर्मशास्त्रमें निपुण हो सच्चरित्रताका महत्व और लक्षण समझने लगे हैं। उनकी प्रजा अब अपने बिगड़े स्वामीको सुधरे और हितकर पा, मन ही मन फूली नहीं समाती। पंडित जी और परलोक गत वृद्ध ठाकुर साहबको समय २ पर सैकड़ों दुआएं मिला करती हैं।

समालोचनाकी आलोचना।

पद्मावती पुरवालके १-२ अंकमें प्रकाशित न्याय तीर्थ पं० मक्खनलालजीका लेख विधवा विवाह खंडन विषयका छपा था उस पर बंबईके सहयोगी जैन हितेच्छुने अपनी कुछ सम्मति दी है और उसके सम्पादक को अपना गुरुस्थानीय मानने वाले जैन हितैषीने उस का उल्था अपनी १०--११ वी संख्यामें प्रकाशित किया है। जैन हितेच्छुके सम्पादक शाह वाड़ीलाल मोती लाल जीने सिवा न्यायतीर्थ जी व उनके समान अन्य जैन शास्त्रके विद्वानोंको कोशने गाली देने व यहां तक कि उनके मरण तककी भावना करनेके कुछ नहीं लिखा। हां ! इतना जरूर है कि अपने हृदयके उक्त उच्च विचार प्रकट करनेके लिये लेखमें दी गई एक लोकोक्ति पर विचार करनेका बहाना अवश्य खोज निकाला है।

समालोचककी बुद्धि कितनी हित ग्राहिणी और कुशाग्र है यह दो चार उनकी लिखी नीचे उद्धृतकी गई पंक्तियोंसे ही सहजमें मालूम हो जायगा। आप लिखते हैं—

'हमें तो अब ये न्यायतीर्थ पंडित दुनियाके भाररूप ही प्रतीत होते हैं (भावार्थ पंडितोंका मर जाना ही अच्छा है) इन विचारोंमें सामान्य बुद्धिका भी टोटा है (यानी—ये गदहा हैं)। धर्मशास्त्रके पन्ने उलटने वाले ये नहीं समझते और इतने पर भी समाजके नेता और शास्त्रोंके उपदेशक बनने चले हैं हमारी समझमें तो शास्त्रोंके अर्थ भी इन लोगोंके दो अंगुलके मस्तिष्कोंसे विकृत हो कर ही बाहर निकलते होंगे और इस कारण ऐसे उपदेशकोंको समाजके लिये सदा भयंकर ही समझना चाहिये।"

उक्त जैनहितेच्छु-सम्पादक की पवित्र भावनायें हम वीरभगवानकी वाणीकी हृदयमें ध्यान रख शिर माथे लेते हैं और दो एक बात उनको वा पाठकोंकी सेवामें लिखना आवश्यक समझते हैं।

विधवा विवाह खंडन पुस्तक पृष्ठ ६३ का है। उसमें लेखकने सिर्फ शाहजीकी लिखी एक उक्ति ही लिखी ही नहीं है उसको आदिसे अंत तक पढ़नेवाले जानते होंगे कि उसमें जैन अजैन आदि अनेक आचार्योंके मतका उल्लेख है लोकोक्तिका विचार है और युक्ति व दृष्टांत पूर्वक स्त्री-पुरुषके एक या अनेक विवाह होनेमें जो अंतर है उसका दिग्दर्शन है। सिर्फ ऊपरी ऊपरी किसी एक बातको उड़ादेने और अपनी लेखन शैली या गालिवर्षाकी चतुरतासे समालोचना कर देने मात्र से समस्त पुस्तककी अग्राह्यता नहीं हो सकती। शिक्षित व्यक्तियोंके हृदयमें भी ऐसी बातें कम प्रवेश कर पाती हैं जिनकी कि भित्ती केवल कषाय पर ही निर्भर होती हैं। किसीको यह कह देनेसे कि 'भाई! तुम पैदा न होते तो अच्छे, या लोगोंमें यह जाहिर कर देने से कि 'ऐसे लोगोंका उपदेश न मानना ये तुम्हारे लिये भयंकर हैं।' किसी विचारणीय बातका खंडन नहीं हो सकता बल्कि ऐसी बातोंका कहनेवाला ही जनताकी दृष्टिमें हेय हो जाता है।

भारत क्या समस्त संसारकी जितनी जातियां हैं उन सबकी और मनुष्य मात्रका यह स्वभाव है कि जिसको जिस विषयमें अपनेसे अधिक ज्ञानी वा अपना हितैषी मानते हैं उसकी सयुक्ति वा नियुक्ति किसी भी तरहकी बातोंका विश्वास करलेते हैं इसके सिवा अन्य किसी की भी कैसी भी बातोंका नहीं। इसी नियमके अनुसार जैन समाज भी अपने परम हितैषी व सर्वा-

पेक्षा अधिक अनुभवी ज्ञानी आचार्योंकी बातोंका ही आदर करता आया है और कर रहा है एवं भविष्यमें भी जब तक एक भी सच्चा जैनी रहेगा करता रहेगा। इसलिये जैन शास्त्रोंके प्रमाण देकर तर्कतीर्थ महाशय ने विधवा-विवाहका अनौचित्य दिखलाया है, परंतु जैन शास्त्रोंके ज्ञानसे सर्वथा अनभिज्ञ हमारे शाहजीको वे प्रमाण 'दो अंगुलके मस्तिष्कसे निकले विकृत विचार मालूम हुए हैं। अच्छा होता जैन हितेच्छु वा उनके हिमायती जैनहितैषी संपादक जैन जनताके समक्ष अपने विशाल मस्तिष्कसे उद्भूत सुकृत विचार प्रकट कर देते और ज्यादा नहीं तो खर्चके साथ २ कुछ पाससे बुद्धि खर्च करनेकी भी उदारता दिखला देते।

शास्त्रीय वचनोंको सिद्ध करने वाले यदि लौकिक वचन भी मिल जाते हैं तो और भी उनमें प्रामाणिकता आजाती है इसी लिये तर्कतीर्थजीने लौकिक उक्ति द्वारा शास्त्रीय प्रमाणमें पुष्टता प्रकटकी है। इसके बाद इमली आदि वृक्षोंके दृष्टांत देकर पुरुषके वीर्य और स्त्री के रजमें जो प्रभेद है एवं किसका वंश या कुलके साथ क्या संबंध है सो बहुत ही अच्छी तरह सिद्ध किया है। परंतु 'अपनी कहनी दूसरे की न सुननी' में मस्त रहने वाले ये बीसवीं शताब्दीके ताजे सभ्य क्यों उन पर विचार करने लगे, उनने तो बस एक बात कह दी-' पंडित कुछ नहीं जानते सिर्फ शास्त्रोंके पत्रे पलटने वाले हैं, झगड़ा चुको। शायद इनकी बात दूसरे लोग मानले या सुनले इसलिये 'भाई! इन पंडितोंको कुछ आता जाता नहीं इनके उपदेश बड़े भयंकर होते हैं' कहकर एक विभीषिका दिखला दी और समस्त संसारको अपनी आज्ञाका वश वर्ती समझ खुश हो रहे।

अंतमें हम एक बात और कहेंगे और वह यह कि शाहजीको पंडितजी सौ वर्षके पुराने लेखक प्रतीत हुए हैं, उनका लिखा 'भद्दा दलीलें हजारों बार काटी गई हैं और कभीकी साफ करदी गई हैं' मालूम पड़ता है अतएव पुनरुक्तिके भयसे जैन हितेच्छुमें उनका उल्लेख नहीं हुआ है और सिर्फ 'तिरिया तेल हमीर हठ' आदि लौकिक उक्तिही पहिले 'हजारों बार काटी गई' दलीलोंमें से शेष बच गई होगी सो उसीका उल्लेख कर वह भी आज 'हजारों बार' की संख्यामें परिगणित करा देनेके लायक करदी गई है। और इस तरह अन्य विधवा विवाहके निरसनकी युक्तियोंके समान इस युक्तिका अस्तित्व भी अपने और अपने समान ख्याल वाले लोगोंके मस्तिष्कसे हटा देनेका अपार यश आपने प्राप्त किया है! हमारी और हम सरीखे अन्य लोगोंकी बस इतनी ही प्रार्थना है कि 'शाहजी! कृपा कर हजारों बार काटी गई दलीलें किस जगह छपी या लिखी मिलती हैं सब तरहकी बाधाओंसे निर्मुक्त वे किसने कब साफ करदी हैं सो सब खुलासा करनेकी तकलीफ उठावें जिससे हम लोगोंका मस्तिष्क भी आप सरीखा हो जाय।

हमारे शाहजीका एक बातका बड़ा सहारा है और जब कभी आपको विधवा-विवाहके पुष्ट करनेकी सूझती है तभी उसको काममें लाये विना नहीं मानते आप फर्माते हैं कि 'इन पढ़े लिखे बालकोंको (पंडितों को आप इन सुसभ्य सुंदर विशेषणोंसे विशिष्ट करने में ही अपना गौरव समझते हैं!) इतना भी ज्ञान नहीं है कि किस चीजको आदरणीय और किसको बलात्पादरणीय मानना चाहिये आदि।, इस पर हम बालकोंका आप बुजुर्गोंकी सेवामें यही निवेदन है कि जिसको आप बुजुर्गोंका ख्याल समझ हम पर तरस खा हमें बच्चा कह कर अपनी लेखनी और जिह्वाको पवित्र बना-

ते हैं हम उसे समाजमें प्रचलित केवल एक रिवाज मात्र पाते हैं। जिन लोगोंको थोड़ा बहुत ज्ञान है पर अपने ज्ञानी होनेका घमंड नहीं है वे यह बात भली भांति जानते हैं कि किसी भी पद्मावतीपुरवाल अग्रवाल आदि उच्च जातिके पुरुष या स्त्री अपनी ब्रह्मचरण धारण करनेकी उचित शक्तिको खो बैठते हैं और किसी पर पुरुष या पर नारीसे संबंध कर लेते तो वह उच्च बीसोंकी श्रेणीसे गिरकर दशाकी द्वितीय श्रेणीमें आजाता है। उसके बाद स्वजातीय विधवा स्त्री या पुरुषसे संबंध न कर विजातीयसे करता है तो वह उस दशाकी श्रेणीसे एक श्रेणी और गिर जाता है इस तरह ज्यों ज्यों एक देश ब्रह्मचर्यके पालने की त्रुटि उससे होती चलती है समानधर्मी समाजकी श्रेणीमेंसे भी त्यों त्यों वह निम्न होता जाता है।

इसप्रकार शाहजीको हम लड़कोंकी बतलाई गई समाज व्यवस्था दिन रातकी देखी सुनी गई बात है। और उसमें हमें या समाजको कोई विवादको जगह नहीं है इसप्रकारकी श्रेणिभुक्त पुरुष प्रति वर्ष हुआ करते हैं समाज उन पर जोर जुल्म नहीं करती सिर्फ श्रेणि विभागके जो नियम हैं उन्हें ही काममें लाती है झगड़ा तो सोरा इस बातका है कि हम या समाज ब्रह्मचर्य भ्रष्ट विधवा और ब्रह्मचारिणी विधवाको समान श्रेणीमें नहीं बैठा सके न समान दोनोंका सत्कार ही कर सके हैं और आप उपरसे श्रेणी विभागका नाम लेकर सबको एकमेक करना चाहते हैं। इस तरह मायाचारीपूर्वक कार्य करनेकी और खुल्लम खुल्ला समाजको चेतानेकी प्रणालीमें ही हम आप भिन्न २ हैं।

जिसप्रकार एक स्कूलके पढ़ने वाले भिन्न कक्षाके बालक एकही तरहका कोर्स नहीं पढ़ सकते उसी प्रकार व्रती और अव्रती पुरुष स्त्री एक श्रेणी भुक्त हो एकसा काम नहीं कर सके। जिसप्रकार प्रथम श्रेणी का बालक ८वी या ९वी श्रेणीके बालकों के साथ बैठ कर पढ़ नहीं सका ईसीप्रकार एकदेश ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट पुरुष या स्त्री एकदेश ब्रह्मचर्य के अभ्यासी श्रावकों की पंक्तिमें सामिल हो खान पान आदि बीसा जातीय रिवाज नहीं पाल सका। विभिन्नता सूचक कुछ न कुछ अवश्य ही अंतर रहेगा।

इसप्रकार शाहजी को अब हम बालकोंका बालकता का अनुभव हो गया होगा ऐसी पूरी उम्मेद हैं और की गई याचनामें शीघ्र ही 'विधवाविवाह खंडन' पुस्तकमें दी गई शास्त्रीय उक्तियोंके विरुद्ध दि० जैनाचार्योंकी साक्षी पूर्वक लिखी एक पुस्तक भेज सफल करेंगे।

निवेदक—
दुनियांके लिये भाररूप—
एक अंगुलका मस्तिष्क

एक हजार इनाम।

जो महाशय हिंदी भाषामें दि० जैन आचार्योंके प्रमाण देकर विधवाओंके धर्मोक्त धर्मशास्त्रानुमोदित विवाह सिद्ध कर देंगे उन्हें एक हजार रुपये इनाम मिलेगा। पुस्तक छपाकर सर्व साधारणमें मुफ्त बांट दी जायगी सो पृथक्।

निवेदक—
ए० सी० जैन
दि० पद्मावती पुरवाल कार्यालय

देशकी उन्नति।

(संकलित)

स्वदेश हितैषी बाबू लोग शीघ्र ही नूतन शासन परिषद्में प्रवेश कर किस प्रकार स्वायत्त शासन हासिल करेंगे, गंभीर भावसे इस विषय पर विचार करने बैठे ही थे कि, इसी समय एक भिखारीकी करुण आवाजने उनके स्वतंत्र विचारमें खलबली मचा दी।

एक बाबूने खफा हो कर कहा—दरवानने क्या भीख नहीं दी? सो यहां आ कर गधाकी तरह रेंक रहा है? चल यहांसे!

भिक्षुक— आप गरीबोंके माई बाप हो बाबू! दरवानने तो यह कहा बाबूजी, दस बजे बाद भीख नहीं मिलती- बाबूजी! कृपा निधान बाबू लोग! आप हमारे माई-बाप हैं बाबूजी- एक फटा पुराना कपड़ा मिल जाय बाबूजी!

दूसरे बाबू—ऐसे 'लेक्चर' बहुत सुने हैं--जाओ यहांसे, दरवान!

भिक्षुक--गरीब परवर! भूखे प्यासे पर दया करिये-बाबूजी! इसी दरबारमें पहिले बाबूजी हम लोगोंको पेट भर खानेको और फटे पुराने कपड़े पहिरनेको मिलते थे बाबूजी!- एक आध कपड़ा मिल जाय बाबूजी बड़ी ठंड है-बाबूजी!

भिखारीकी इस विनय प्रार्थनासे एक सुधारक महाशयको इतना जोश आयाकि उनने मुंहमें लगी हुई सिगरेटको जमीनमें दे मारी और स्टेज पर खड़े हो कर वक्तृता झाड़ने लगे कि-" यद्यपि आजका विषय 'शासन-सुधार' है तथापि हमको अपने सामने आई हुई विकराल मूर्त्तिको देख कर निश्चित विषय भूल जाना होगा। हमे अपने उन्नत जीवनका मार्ग साफ करनेके लिए सबसे पहिले संसारसे इन भिखारियोंका अस्तित्व उठा देना होगा, अन्यथा हमारी तरह प्रत्येक देश हितैषीको आये हुए स्वतंत्र-विचारसे हाथ धोना पड़ेगा। अतएव हम यह प्रस्ताव उपस्थित करते हैं कि इन भिखारियोंको कोई भी भीख न दे। पहलेकी बात को छोड़ दीजिये अब वह जमाना नहीं रहा। हमारे बाप दादाओंको इतनी तमीज़ नहीं थी कि, वे भविष्यकी कल्पना कर सकते। उस जमानेमें दान एक वस्तु अपर समझी जाती थी, इसीसे उन्होंने भिक्षुकोंकी संख्या बढ़ानेमें कुछ भी हिताहितका विचार नहीं किया था। यदि वे इस प्रथाको न चला कर भिखारियोंको उद्योगी और स्वावलंबी बनानेके लिये उनको भिक्षा न देते; तो हमारे देशकी ऐसी दुरवस्था कदापि न होती। इसी लिये हमें अपने पूर्वजोंकी बात पर विश्वास न कर अपने हृदयसे पूछ कर स्वतंत्रता पूर्वक विचार कर काम करना चाहिये जिससे हमारा देश भी इंगलैंड, फ्रांस जर्मन आदि देशोंसे उन्नतिमें हीन न रहे। आशा है आप लोग हमारे मतसे संपूर्ण सहमत होकर शीघ्र ही कार्य क्षेत्रमें पदार्पण करनेमें आगा पीछा न सोचेंगे।"

वयोवृद्ध पंडित भास्करदेवजी एक तरफ बैठे हुए बाबूओंका 'लेक्चर' सुन रहे थे। भिक्षुकोंके प्रति इस अनुदारताको देख कर उनसे रहा नहीं गया। वे कहने लगे —

आप लोगोंने अन्यान्य सभ्य देशोंकी भिक्षा न देने की प्रथाका अपने देशमें अभाव देख कर जो दुःख प्रकट किया है, मेरी समझसे वह बिलकुल भ्रम ही है। मैं आप लोगोंसे पूछता हूं कि, उन सब देशोंको आज

कैसी दुर्दशा हो रही है, क्या आप लोगोंको कुछ मालूम है ? इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मन आदि देशोंमें इस विषय पर घोर अन्दोलन हो रहा है, परिश्रम करनेमें असमर्थ विकलांग भिक्षुकोंके भरण पोषणके लिये क्या उपाय हो सकता है,—इस पर विचार करते करते वहांके बड़े बड़े समाज-नेताओंकी कैसी अवस्था हो गई है ? इतने पर भी आप लोगोंकी समझमें नहीं आता कि पुरातन प्रथाओंमें क्या गुण है और वे कितने सोच विचारके बाद चलाई हैं ? आपकी इच्छा नहीं ; तो आप भीख मत दीजिये, पर उसके लिए उस प्रथाको और उसके प्रवर्तकोंको दोषी मत बनाइये । बिना विचारे अपने पूर्वजोंको गालियां दे कर अपने मुंह 'मियां मिट्ठू' बनना—यह केवल अपनी छिपी हुई नीचताको मायावी भाषा खोलोंमें लपेट कर पूछना है कि, बताओ इसमें क्या है ?-बस इसके सिवा और कुछ नहीं।

एक बाबू—इसलिए क्या भिक्षावृत्तिको आश्रय देना चाहिये ?

पंडितजी—मैं यह नहीं कहता कि, आप आश्रय दें। मेरा कहना यह है कि, भिखारीको देख कर यदि आपको दया न आवे तो आप उसे भीख मत दीजिये। परन्तु आप अपनी उस दया वृत्तिके अभावसे भिक्षा न देनेकी इच्छाको 'देशकी उन्नति' की दुहाई देकर समर्थन न करें। जो दरिद्र होकर भी विलासिताको अपनाते हैं, फैशनेबुल चीजोंके व्यवहारमें अपने ऐश-आराममें व्यर्थ धनका सत्यानाश करते हैं क्या उनकी अपेक्षा इन भिक्षुकोंसे समाजको अधिक हानि होती है ? आपलोगोंके मनसे—'भिक्षुकगण आलस्यके अवतार स्वरूप हैं और वे दूसरोंकी कमाई जबर्दस्ती छीनते हैं।' परन्तु हमारे देशके धनवानोंके सुपूतोंका-जिनको खाने पहिरनेकी कोई चिंता नहीं-उनका क्या हाल है ? भिक्षुकोंको भी रोज दो एक कोस चल फिर कर भीख मांगनी पड़ती है; पर जो बाप दादोंकी कमाईमें गुलछर्रे उड़ाते हैं, 'परमेसरी-नोट' की ब्याज पर ऐश आराम करते हैं और अपनी ख्याति पूजाके लिये वर्षमें एक आध बार अपने नामसे लेख प्रकाशित कर ही अपनेको कृत कृत्य मानते हैं, वे क्या आलस्यको आश्रय नहीं देते ? क्या उनको भी मजूरी करने वा खेती करनेका उपदेश कभी देते हैं ? अंधे लूले लंगड़े आतुर भिक्षुक ही देशकी उन्नतिमें अंतराय हैं और विलासी, निकम्मा बाबू-दल ही शायद देशकी उन्नतिमें सहायक है ? बलिहारी है आपलोगोंकी विवेचना-शक्तिको ! (भिखारीसे) यह लो भाई दो पैसे; इतनेसे ही सबर करो' मैं भी गरीब हूं कपड़ा लत्ते देना मेरी शक्तिसे बाहिर है—माफ करना भाई !

भिक्षुक खुश होकर चला गया।

—धन्यकुमार जैन ।

बन्धु सम्मेलन ।

(१)

हे भाग्यहीन ! हत भारत ! भव्यदेश
तेरे तनूज नित नव्य अकार्य लीन।
भाई तथा निज कुटुम्ब बुभुक्षितों को
स्वार्थाभिमान वश हो अपमान देते॥

(२)

ये ही सदा जगतमें करना भला क्या
काटें गले कठिन हो अपने सुतोंके।
इष्टार्थ मान कर क्या ? यह नय तुम्हारा
फैला कहो झटिति मैं यह पूछता हूं॥

(३)

हे विश्व व्याप्त कलहे ! तुमरा भला हो
क्या क्या करूं स्तवन देवि ! प्रसन्न होओ।
आती नहीं नगर बीच कभी हमारे
तो लाज प्रेम वश बन्धु हमें न छोड़ें॥

(४)

हे दुष्टभाव कलिते ! तुमने सदा ही
आके सता कर हमें अति दुःख दीना।
लो आज ही पकड़के तव केश जाल
डाला तुम्हे धरणि पैर तले दबाया॥

(५)

भागो यहां अब तुम्हे नहि कोइ भाई
पाले तुम्हे स्वहितसे इस मालथोने।
यों डाटके डपटके घरसे निकाला
हुआ प्रसन्न मुख आज सभी जनोंका॥

(६)

हे चन्द्रनाथ ! जिनजी तुम्हरी कृपासे
पूरे मनोरथ हुए जनता सभीके।
द्वेषादिसे प्रभव स्वार्थ गए हमारे
छूटे हुए सकल बन्धु गले लगाए॥

(७)

संसारके कठिन मारगमें हमारे
भारी उपस्थित हुआ बहु बन्धुवैर॥
सो आज शान्त मन हो करके सभीने
मेघाकृता कर क्षमा सब ही बुझाया॥

(८)

संसारमें यदि परस्पर सबै भाई
रोकें कषाय अपनी अपने हृदयमें।
तो देशमें फिर वही फल मिल सकेंगे
जो स्वादमें निज अमी-फल मात कारी॥

—श्रीपन्नालाल (मणि) काव्यतीर्थ,

भ्रम निवारण।

जैनहितैषीने सत्योदय जातिप्रबोधक इन पत्रोंको जैन पत्र समझ कर कोई जैनी भाई न पढ़ और न खरीदे यह प्रस्ताव पास होनेसे कलकत्ता जैनसभाको महामूर्ख अनुभवशून्य आदि अपशब्दों द्वारा सम्बोधित कर सभ्यताका परिचय दिया है। एक साधारण और स्थानीय सभा होनेकी हैसियतसे सभाको इस प्रकारकी तजवीज देनेका कोई अधिकार नहीं था ऐसा लिखकर वकीलातकी टांग अड़ाई है सत्योदय जाति प्रबोधक आदि पत्रोंमें जैनत्व स्थापनके लिये स्वरुचिविरचित जैन पत्रोंका लक्षण रच पत्रोंमें जैनत्व मढ़नेकी भरसक चेष्टाकी है और अन्तमें हमारी रायमें कलकत्ता जैन सभाने इस प्रस्तावको पास करके अपनी हृदयकी संकीर्णता अनुदारता अदूरदृष्टता और ना समझी ही का परिचय नहीं दिया बल्कि सोध ही विद्वानोंके प्रति अपनी धृष्टता भी प्रकटकी है यह भी लिख मारा है, इत्यादि आपने अपनी और अपने अनुयायियों का विद्वत्ता प्रकटकी है। इस लेखका उत्तर देते हुये हमें हर्ष और दुःख दोनों प्रकट होते हैं कारण हर्ष तो यों होता है पाश्चात्य विद्याके आडम्बरी और भौतिक उद्गारसे जैनसमाजमें यद्वा तद्वा उर्दू हिन्दी इंगलिश आदि अपभ्रंश भाषा भपक कर अबकल्याणी पचकल्याणों निरक्षर साक्षर सधर्मीको संख्यामें वि-

ग्रीन हो गये, समाज अनेक विद्वानोंसे विभूषित हो अङ्ग, अङ्गमें हर्षोद्गारसे फूला नहीं समोता और दिल्ली के ढाई घुड़ सवारोंके सदृश विद्वानोंको गणनामे भरती होनेकों वे रोक टोक खुला हुआ मार्ग पालिया हैं एक तो पत्र निकाल दिया और और दूसरे जैन आर्ष ग्रंथोंकी समालोचना करने लगे, विद्वत्ताका चूडान्त निदर्शन इससे अधिक क्या होगा ? जो योगस्याग। तपस्वी आचार्योंके भी गुरु बननेके लिये प्रस्तुत हो गये (जानते चाहे ओमकी गंध न हों , नवीन फेसनको विजिलोंकी रोशनीके सामने शान्त कडुवे तैलके दीप को कोन पूछे. साफ सुथरे नर्मी मिश्रित घों के समक्ष पाले मिट्टीके खारी घीका सेवन कोन बुद्धिमान करै बिना पैसा कोड़ी खर्च किये मनमानी स्वेच्छापूर्वक विधवा सधवा ब्राह्मणी शूद्री सुन्दर रमणियोंकी प्राप्ति होते कुरूप कन्यायोंके साथ आर्ष विवाह विधि के फन्दमें कोन फसै ! कोमल और सुन्दर चमकीले बूटोंको मोकीनी और आरामसे गाय बैल भैंस आदि पशुओं के कटनेके दुःखको कौन बूझे ? नमकीन और मीठी रसीली बजारी मिठाइयोंसे पेट पूजाके सामने श्री जिनेन्द्र मूर्तियोंकी पूजा प्रतिष्ठा विधान पर क्यों विचार करें ? यह सब पूजा प्रतिष्ठा और आचार विचार वर्ण व्यवस्था आदि जो कुछ जैन शास्त्रोंमें लिखा है वह ब्राह्मणोंसे लिया हुआ है ऐसा कहते हैं और सामाजिक लौकिक कार्योंमें धर्म और धर्म शास्त्रोंकी कोई आवश्यकता नहीं यह व्यर्थ ढकोसला लगा रक्खा है किन्तु सामाजिक और लौकिक उन्नति पथमें धर्म और धर्म शास्त्र ही कंटक है इसलिये धर्म और धर्म शास्त्र केवल ताखमें रखने लायक है ऐसे विकाश सिद्धांत प्रचारक वर्ष प्रति वर्ष नवीन २ दुर्जनोंकी संख्यामें व्युत्पन्न होकर जिस समाजके परीक्षाप्रधानियोंकी संख्यामें भरती होते जा रहे हैं इससे अधिक समाजके लिये अलभ्य लाभ और हर्षका स्थान भला क्या होगा ? परन्तु दुःख इस कारणसे है कि कालकी गतिसे कलिकालके आप लोग परीक्षा प्रधानियोंने भैंस सुदामावा निकालनेके समान जैन धर्म और जैनशास्त्र तथा जैन समाजका नाम निसान न रहनेनकका प्रयत्न कर डाला है फिर भी मुख्त्यार साहब कलकत्ता सभा पर प्रश्न करते हैं कि जाति प्रबोधक सत्योदय इन पत्रोंकी जैन धर्मके गौरव घटानेरूप बदनियती पाई जाय ऐसा स्पष्ट प्रमाण क्या सभाके पास मोजूद है ? सो हम मुख्त्यार साहबसे पूछते हैं कि सत्योदय १ जाति प्रबोधक २ जैन हितैषी ३ पत्रोंने पद्म पुराण को वाल्मकीय रामायणकी नकल कहा है आदि पुराण समीक्षामें जिनसेन झूठे हरिवंशपुराण समीक्षामें दूसरे जिनसेन झूठे गोम्मटसार प्रमेयकमलमार्तण्ड राजवार्तिक श्लोकवार्तिक तत्वार्थ सूत्र सर्वार्थसिद्धि आदिके कर्ता श्री १०८ कुन्द कुन्द स्वामी उमास्वामी पूज्यपाद अकलंक नेमिचन्द्र प्रभाचन्द्र आदि प्रमुख आचार्योंको स्त्री मुक्ति शूद्र मुक्ति लेख द्वारा क्या असत्य वक्ता नहीं ठहराया है क्योंकि इन ग्रंथोंमें द्रव्य स्त्रीके मोक्षका अभाव दिखालाया गया है सो ही राजवार्तिकजीमें श्रीमदकलंक देव स्वामी लिखते हैं (मानुषीपर्याप्तिकासु चतुर्दशापि गुणस्थानानि सन्ति भावलिंगापेक्षया द्रव्यलिङ्गापेक्षेण तु पञ्चाद्यानि) इसका मतलब यह है कि पर्याप्त मनुष्यिणी स्त्रियोंके भाव लिंगकी अपेक्षासे अर्थात् भाव स्त्रियोंके चौदहो गुण स्थान होते हैं परन्तु (द्रव्यलिङ्गापेक्षेण तु) द्रव्यलिङ्गकी अपेक्षासे अर्थात् द्रव्य स्त्रियोंके आदिके पांच गुण स्थान ही होते हैं जब पाँचवे गुणस्थानसे ऊपरला गुणस्थान हो नहीं फिर मोक्ष कैसा [सोही अष्टपाहुड़ी

में श्रीकुंद कुंद स्वामीने लिखा है] द्रव्य स्त्रियोंमें वे हैं जिनके डाढ़ी मूंछ लिङ्ग आदि पुरुषके चिन्ह न हो किन्तु योनि स्तन आदि हों वे द्रव्य स्त्रियें हैं और जो द्रव्य पुरुष हों चाहें स्त्री नपुंसक हों परन्तु जिनके स्त्री स्वभावके कोमलतादि धर्म परिमाणोंमें पाये जांय वे भाव स्त्री हैं इस प्रकार प्रामाणिक प्रमुख आचार्यरचित आर्ष शास्त्र लिखित प्रमाण होने पर भी स्त्रीमुक्ति शूद्र मुक्ति प्रतिपादन करना अहं सर्वज्ञ वन सबको असत्य ठहराना जिन धर्मका क्या गौरव घटाना नहीं है? गौरव घटाना ही नहीं किन्तु जैन धर्म पर कुठारी मारना है और जाति प्रबोधकने विधवा विवाहको पुष्ट कर जो हमने पूर्वमें अपने लेख द्वारा जैन शास्त्रों और आचार्योंका प्रमाण दे कर असत् सिद्ध किया हैं उन सबको असत्य ठहराया कि नहीं।

सन् १९२० के जुलाई अगस्तके ७-८ वे अङ्कमें सत्योदयने यहां तक कह डाला है कि "विवाहादि प्रथा सामाजिक है इसमें धर्मको कोई आवश्यकता नहीं विधवा विवाहके पक्षमें दी गई युक्तियां और प्रमाण सत्य और न्यायकी कसौटो पर सच्चे उतरते हैं या नहीं इस बातकी सचाईके लिये जैन धर्मके शास्त्रों को प्रमाण मानना बिलकुल व्यर्थ और अनुचित हैं चाहे विधवा विवाहका आन्दोलन जैन धर्मके शास्त्रों के विरुद्ध हो क्यों न हो शास्त्रोंमें उसको बुरा ही क्यों न बतलाया हो तथापि यदि उसके प्रमाण और युक्तियां सत्य और न्यायकी कसौटी पर सच्चो सिद्ध हों जांय तो कोई उसको बुरा अथवा पाप नहीं कह सकता और यदि दुराग्रह वश कोई वैसा हो कहता जाय तो वह उसको केवल मूर्खताजन्य हास्यास्पद अभिमान है।" यहां पर सत्योदयके संपादक और उनके अनुयायियोंके लिये हमारा इतना कहना है कि यदि तुम्हें हमारे परम पूज्य उन शास्त्र और आचार्योंको परवाह नहीं है तो ऐसी निरर्गल स्वेच्छाचारिताकी मदांधता से पूरित तड्डा तड्डा बकने वाले बध्या पुरुषों (स्टले-गीरों) को मन मानी सत्यकी कसौटीकी किसको परवाह है वह सत्यकी कसौटी आपके घरकी गढी हुई है सो आपही मानिये जनता तो ऐसे लपौडे कथाको माननेके लिये कभी तैयार नही है विधवा विवाह पक्ष वालोंको चाहिये कि अपनी विधवा मां बहिने पुत्रियों के विवाह कर तथा सधवायें स्त्रियोंके तलाक आदि नियोग द्वारा कुटुम्ब वृद्धिकर सुशील सदाचार आदि भावों द्वारा धर्मोन्नति का पथ दिखावें तब समाज भी विशेष लाभ समझ अनुयायी स्वयं हो जायगा पर सो हो नहीं सक्ता यदि अग्नि शीतल हो जाय सूर्य पश्चिम में उदय होने लगे तब विधवा विवाहादिसे सदाचार शीलता उत्पन्न हो धर्म पथ बने अन्यथा शूकरी कूकरी के समान धर्म विहीन कुटुम्ब बढ़ाके क्या लाभ? यों तो तीनो लोक चौरासी लक्ष योनिमें अनन्तानन्त जीवोंसे भरा पड़ा है सो सब आपका कुटुम्ब स्वयमेव ही है।

जब आपने विधवा विवाह नियोग तथा तलाक (विवाहित पुरुष रहने पर भी उस पुरुषको छोड़ स्वयं मनमाना दूसरा कर लेवे) और वर्ण व्यवस्थाका अभाव तथा शुद्ध खानपानका लोप कर दिया आचार विचारका पूजा पाठ धर्म कर्मको जलाञ्जलि दे अपना सत्व सब खो दिया तब उन्नति किस बातकीकी अब तुम्हारेमें जैनत्व हो नहीं रहा जैन धर्म ही को हिंसा कर डालो तब अहिंसा धर्मके प्रतिपालक कैसे? जैन धर्म जैन शास्त्र की रक्षा होते तो जैन समाजकी रक्षा करना उन्नति पथ है अन्यथा जैन धर्मके नष्ट होते तो वह समाज हो अन्य समाज हो जायगा तब सत्योदय जाति प्रबो-

धर्मके उन्नति पथको ढकोसला ही समझना चाहिये।

इस प्रकार उपर्युक्त स्पष्ट प्रमाण जो इन पत्रोंके विरुद्ध सभाके पास था सो लिखा अब आप अपनी सुनिये-इन पत्रोंकी मामी पोनेवाले आपने भी तो अनीश्वरवादमें समन्तभद्र स्वामी तकको असत्यवक्ता बताया है क्योंकि जिनेन्द्र शुद्ध परमात्माकी भक्ति स्तुति पञ्चोपचारी पूजाको तो आपने ही ब्राह्मणोंसे लिया, लिखा है जो समन्तभद्र स्वामीने युक्त्यनुशासनमें स्वयं स्तुतिकी है जो भक्तिमार्ग नामके लेखसे पूर्व अंकमें इसी पत्रमें लिखा जा चुका है अब आपने जिनधर्म प्रतिपादक किस आचार्यको और किस शास्त्रको प्रामाणिक समझा है माना है और लिखा है ? आप और आपका परिकर लिखें हम सुननेके लिये उत्सुक हैं यह नहीं हो सक्ता कि एक तरफ जिनधर्मकी जड़ भी काटते जावें और एक तरफ जैनहितैषीरूप केदार कंकण पहिन बिल्ली भकवन जैनधर्मी भी बने रहें जेब कतरनेवालेकी मावासी (प्रशंसा) तब ही समझी जाती है जब तक जेबवालेकी दृष्टि न पड़े अब तो यह भोली भाली जैन जाति भी समझ गई कि ये लोग हमारे परम पूज्य प्रातःस्मरणीय उन आचार्योंके भी बाबा बननेका दावा रखकर हमें धोखा दे रहे हैं, नहीं तो हम पद्मावतीपुरवालके इस वर्षके दूसरे अंकमें लिख चुके हैं कि अपना सिद्धांत पृथक् स्थापन कर लिखें या यह लिखें कि अमुक आचार्य और अमुक शास्त्रको मानते हैं या यह लिखें कि किसी आचार्य और शास्त्रको नहीं मानते उसका अभी तक कोई उत्तर क्यों नहीं दिया ?

इस प्रकार जैन धर्म जैन शास्त्र और जैन ऋषि जिनदेवके विरुद्ध लेख होने पर भी जातिप्रबोधक और सत्योदयके लेख जैन धर्मके अविरुद्ध लेख बताये जाय इस असत्यका भी कुछ ठिकाना है ? समाजको धोखा देते लज्जा नहीं आती मेरी मां और बांझके समान समस्त जैनाचार्योंके सिद्धान्त और उद्देशोंका लोप करते भी हमारे पत्र जैन पत्र, हमलोग जैनी, ऐसा कहते न्यायका गला आप घोटते हैं। कलकत्ताकी सभा आपकी विद्वत्ताको खूब समझती है। फिर भी आप उसके सामने शास्त्रज्ञताका जो 'पंडितोऽहं' की भाषामें परिचय देते हैं, नहीं मालूम आपके झूठे लेखों और पत्रोंका प्रतिवाद तथा वहिष्कार क्यों न करें आपने तथा स[ ]शिक्षाकारक लेखकोंने उर्दू इंगलिशमें वकालत आदि विषयोंका अभ्यास किया है शास्त्रीय विषयोंका नहीं शास्त्रीय विषयमें टांग अड़ाना अच्छा नहीं आपने और आपके लंगोटिया मित्र सत्योदय जाति प्रबोधकके सम्पादक तथा सूर्य भानु आदि ऋषी प्रणीत शास्त्रोंके खण्डन कर्ताओंने जो न्याय व्याकरण तथा सिद्धांत शास्त्र राजवार्तिक श्लोक वार्तिकादिका तथा अन्य अध्यात्मशास्त्रोंका अभ्यास किया है सो शायद एक दोके (जिनका मुझे परिचय नहीं हो) सिवा सबकी विद्वत्ता मालूम है जाति प्रबोधकसंपादकके लिये स्वर्गीय श्रीमान विद्वद्वर पं॰ गोपालदासजीका शिष्य लिख कर आप न लगाइये तीर्थंकरोंकी जिनाकारोंकी सन्तान लिख कर श्रीमान पं॰ गोपालदासजीको कलङ्कित करनेकी कृपा आप हीने की थी जिसका फल यह हुआ था कि आपके बदले पं॰ जीको सन् १६११ में दिल्ली दरबारके समय देहलीमें क्षमापत्र विज्ञापन बटवाकर प्रायश्चित्त लेना पड़ा था वहां मैं मौजूद था आपको छोड़ प्रायः सबकी विद्वत्ता मालूम है और आपकी विद्वत्ता तो आपके लेखोंसे ही प्रकट होती है दृष्टांतमें आपने जैन हितैषी अङ्क ६ चैत सं॰ १६७६ के में (परमात्माकी पहिचान) हेडिंग (उत्थानिका) दे कर जो

पद्मावती पुरवाल पत्रकी गलती निकाल आक्षेप किया है वही काफी है । आप लिखते हैं —

"किसी इन्सानके वालिदको कैसे ईश माने हम ।

इस कवितामें सहयोगीने यह दिखलाया है कि जो मनुष्योंका पिता होता है वह परमात्मा नहीं हो शक्ता हमारे ख्यालमें सहयोगीके इस युक्तिवादने जैनियोंके लिये परमात्माके विषयमें एक बड़ी ही विलक्षण समस्या उपस्थित कर दी है क्योंकि वे अभी तक अर्हन्तोंको जो प्राय: मनुष्योंके पिता होते हैं सकल परमात्मा मानते आये हैं और उनके शास्त्रोंमें ऐसा ही विधान पाया जाता है आदि।" ओ आपने इसमें अर्हन्तोंके स्त्री पुत्रादि बतलाये हैं और तिस पर भी आप जैन शास्त्रोंकी साक्षी देते हैं कि उनके शास्त्रोंमें सब जगह विधान पाया जाता है इस भूठका भी ठिकाना है भोले जीवोंको ठगना और आंखोंमें धूल भोंकना और अपनेको विद्वान बताना, नहीं तो यह क्या है ?

मुख्त्यार साहबने और मुख्त्यार साहबके पक्षपातियोंने उन घोर तपश्चरण करने वाले निष्पक्षपाती वीतरागी परोपकारैककार्यनिरत मुनियोंके उपदिष्ट शास्त्रोंका इसी बुद्धिसे खण्डन किया है जिनको इतना भी बोध नहीं है कि जैन शास्त्रोंमें स्थलस्थलमें अर्हन्तोका लक्षण वर्णन करते हुए अनेक आचार्योंने अनेक शास्त्रोंमें तथा श्री समन्तभद्र स्वामीने रत्नकरण्डमें

क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मया: ।

न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्त: स प्रकीर्तित: ॥

इत्यादि श्लोकों द्वारा आप्त अर्हन्त सकल परमात्माका लक्षण अठारह-दोष रहित छयालीस गुण विराजमान बतलाया है छढाला मङ्गल पाठ इष्ट छत्तीसी आदि छोटी २ भाषा कविताओं तकमें साधारण मनुष्योंने भी उन महान ग्रंथोंका आशय स्पष्ट रीतिसे दिखला दिया है कि अठारह दोष रहित छयालीस गुण सहित हितोपदेशी वीतराग सर्वज्ञ इन गुण सहित अर्हन्त देव का स्वरूप है फिर भी आप स्त्री पुत्रों सहित अर्हन्तको कह कर भोले जीवोंको धोखा देते हैं। "आप डुबन्ते वामना लेडूबे यजमान" की कहावतको आप अपने ही में चरितार्थ करते हैं आपसे हम पूछते हैं कि जैन शास्त्रोंमें ऋषभ देवके भरत बाहुबलि आदिक पुत्र सुनन्दादिक स्त्रियां संसार अवस्थामें लिखी हैं कि अरहन्त अवस्थामें ? यदि संसार अवस्थाका कथन अर्हन्त अवस्थामें लिखा जाता तो अठारह दोष रहित विशेषणको अर्हन्तके लक्षणमें कोई आवश्यकता नहीं थी जो लोग ईश्वरके स्त्री पुत्र मानते हैं उनके कोई अवस्था भेद नहीं मानते वे स्त्री पुत्रों सहितमें भी ईश्वरत्व स्थापन कर उनको स्त्री पुत्र सहित पूजते हैं जैन लोग स्त्री पुत्र सहित अर्हन्तको कभी नहीं पूजते न उनका ऐसा स्वरूप ही मानते हैं उस विचारे कविता बनाने वालेने पद्मावती पुरवालमें क्या अन्यथा लिखा था फिर आपको इस प्रकार आक्षेप करनेका क्या अधिकार था यहां तक द्वेष रख कर लेखनी नहीं उठाते पुराणोंमें गृहस्थ तथा राज्य अवस्था में स्त्री पुत्र राज्यादिकका वर्णन किया है मुनि अवस्थामें उन सबका परित्याग करनेवाले और अर्हन्त सिद्ध अवस्था में पर द्रव्य संसर्ग रहित निज शुद्धस्वरूपमें लीन आत्माको परमात्मा कहा है।

कालकीगति निराली है कहां तो वह समय था कि द्वादशाङ्ग वाणीके अङ्ग और पूर्वाङ्गके जानने वाले भी अपनेको छद्मस्थ लिख ग्रन्थ रचनाकी आदि अन्त में बहु आनियोंसे अज्ञात भूलकी क्षमा प्रार्थना करते आज उन सिद्धान्तोंका एक अंश न जानने पर भी उन महर्षिओंकी अवहेलना करते हुए जैनधर्म और जैन

कुलको भस्म करनेमें अङ्गारके सदृश कार्य करनेवाले अपनेको विद्वान कह कर पुकारें ! समाजमें सर्वज्ञसे भी बढ़कर बननेका दावा रक्खें जिस समाजमें ऊट पटांग दो अक्षर जानने वाले भी विद्वानकी दृष्टिसे देखे जांय उस समाजकी उन्नति और विद्वत्ताकी इति श्री वहां हीं समझना चाहिये इस भावी विधि पर खेद शतशः खेद है तथापि आपलोग कोई कोई असुर कुमार जातिके भवनवासी देवोंके समान नारकियोंको जैसे कि तुम्हारी मां पूर्व जन्ममें जो अंजन लगाती थी वह तुम्हारी आंख फोड़ना चाहती थी इसी प्रकार भोले भाले जीवोंको शास्त्रोंके वाक्योंको अथवा अनर्थ करने की कृपा न करें खैर ! विद्वानोंसे जो धृष्टताकी है उस अपराधके बदलेमें यहीं हाथ जोड़ कर क्षमा प्रार्थना करते हैं कि उन देव शास्त्र गुरुकी निन्दा कर इस घोर संसार परिभ्रमण का कारण दर्शन मोहनीय कर्मकी पोट बांध औरोंको बंधा कर स्वपरका अहित न करें । और आप यह लिखते हैं कि साधारण और एक स्थानीय सभा होनेकी हैसियतसे इन पत्रोंको अजैन करार देना कलकत्ता समाजको कोई अख्त्यार नहीं था सो मुख्तार साहब ! आप और आपके विद्वानोंको जो एक एक व्यक्ति हैं उनको सारे समाजके और आपके गुरु आचार्य प्रवरोंका तथा उनके रचित ग्रन्थोंका खंडन और उनके ऊपर झूटा कलंक लगानेका अख्त्यार किसने दिया और उन शास्त्र तथा गुरुओंका अपमान अविनय अवर्णवाद इतना बड़ा अपराध किस हैसियतसे किया ? तुम्हारे पास कुछ उत्तर है तुम्हारे लिये सिवाय निग्रह स्थानके कुछ नहीं, आपलोग समाजके इतने बड़े अपराधी हैं कि इसप्रकारके प्रस्ताव पास करनेका प्रत्येक व्यक्तिको अधिकार है फिर इस सभा की तो बहुत बड़ी शक्ति है क्योंकि अनेक सदस्योंकी शक्ति मिलकर इसमें महाशक्ति उत्पन्न हुई है । धर्म विरुद्ध शास्त्र विरुद्ध कार्य देखकर एक जैनको वह शक्ति है कि सर्व जैन धर्मावलम्बियोंको मानना होगा और उस जैन धर्म निर्दोष पताकाके नीचे एकत्र हो हो जाना होगा यदि उनका अपना धर्म सच्चे मनसे प्यारा होगा तो । और भी एक जैनको वह अधिकार है कि तुम्हारे पत्रोंको तुम्हारी धर्म विरुद्ध कार्यवाहीको और तुम्हें रोक दे तथापि हम केवल समझाते ही हैं जिससे जैन धर्म जैन शास्त्र जैन समाजको किसी प्रकारकी हानि न पहुंचे ।

उपर्युक्त कथनसे पाठकोंको मालूम हुआ होगा कि सत्योदयने तो स्पष्ट लिखा है कि सामाजिक व्यावहारिक कार्योंमें धर्म और धर्म शास्त्रोंकी कोई आवश्यकता नहीं परन्तु जैन हितैषी ७-८-९ अङ्कमें "धर्म और समाज" यह लेख प्रतिभासे उद्धृत है इस लेखके छापनेका भी यही अभिप्राय है कि वर्तमान कालका जैन धर्म भी पक्षपाती मत है और उन्नति पथमें यह भी कंटक है जैन हितैषी संपादक तथा प्रेमीजी यदि वर्तमानमें सामाजिक रीति रिवाज तथा शास्त्र विहित बातोंका विपरीत अर्थ समझ वर्तमान धर्माचरण उन्नति पथका कण्टक समझते तब तो हमें भी किन्हीं अंशोंमें स्वीकार हो जाता परन्तु आपने तो समस्त आप्त प्रणीत शास्त्र और मुनियोंको और उन पर टिके हुये जिन धर्मको सबको ही कंटक और बन्धन बता दिया अब आप किस नीव पर दिवाल उठाते हैं जिन समन्त भद्रस्वामी कथित शास्त्र लक्षणका सहारा ले कर परीक्षा प्रधानी बनते हैं जो "जैन गजट संपादक व विचारपरिवर्तन" नाम लेखमें प्रेमीजीने लिखा है सम्पादकजीने उन्हीं समन्तभद्रकृत स्वयंभूस्तोत्र व युक्त्यनुशासन आदिमें की हुई शुद्ध परमात्माकी स्तुतिको

अपने अनीश्वरवादमें ब्राह्मणोंसे लिया हुआ जैन मतके विरुद्ध बतादिया है तब आपकी भी बातें उसी प्रकार हैं जैसे बा० अर्जुनलाल सेठीजी जब जेलमें रहे तब तो जिन धर्मके बगुला भक्त बन जिन प्रतिमा दर्शनके विना एक मास उपवास कर धर्म्मात्मा श्रद्धालुपना दिखलाया और अब जिन प्रतिमा दर्शन और मंदिर जाना पाप समझते हैं उसी प्रकार आप लोगोंने जैन धर्म्म और जैन समाजका नाम निशान न रहने तककी कमर कसी है जब ही भौतिक उन्नतिके लिये तथा स्वेच्छा प्रवृत्तिके लिये धर्म्म ही कंटक है यह आपके लेखोंसे स्पष्ट प्रकट है इस प्रकार जैन हितैषी संपादकजीके हृदयमें जब सामाजिक तथा व्यावहारिक कार्योंमें धर्म्म की कोई आवश्यकता नहीं है तो हमको नहीं मालूम धर्म्मकी किस जगह आवश्यकता रही क्योंकि संसारी जीव आठो प्रहर गृहस्थाश्रममें खान पान व्यापार राज्य सेवा विवाहादि कार्य करते हैं इनमें धर्म्मका काम नहीं तो फिर आपके कथनानुसार खान पानमें तो मांस मदिरा अभक्ष्य भक्षण करनेमें कोई विवेककी आवश्यकता नहीं और व्यापारादिमें चोरी हिंसा झूठ आदिके त्यागकी आवश्यकता नहीं और विवाह आदि में पर स्त्री वेश्या कुकर्म त्यागकी कोई परवाह नहीं क्यों कि सब बातें और उपदेश धार्मिक दृष्टिसे किये जाते हैं इनके लिये राजदण्ड भी राजधर्म्ममें स्थापित किया जाता है सामाजिक आर्थिक दृष्टिसे नहीं। यदि सामाजिक आर्थिक दृष्टिसे किये जाते तो चोरीमें धन लाभ होता है और पर स्त्री वेश्यादिकके सेवनमें सन्तान वृद्धि विषयसेवन आराम इत्यादि मिलता है तथा धर्म विना धन सबल निर्बलसे छीन लेता और वह सुख करता है दूसरोंको दुःख और कष्टसे धर्म अधर्म का विचार ही नहीं तो दण्ड किस लिये फिर शिक्षा प्रचार आदिका विवेचन क्यों स्वेच्छा पूर्वक खुशी आवे वहां करना चाहिये और जब धर्म्म ही नहीं तब धर्म्म विना धर्म्मी कहां जब धर्म्म आत्माके सुख न्याय आदि नहीं तो आत्मा नहीं जब आत्मा नहीं तब आ गया—

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत् ।
भस्मीभूतशरीरस्य पुनरागमनं कुतः ॥

जब तक जीये सुखसे जीये ऋण ले कर खूब घी दूध शक्कर खाय और मोटा होवे शरीर ही आत्मा है शरीर भस्मभया फिर आना जाना कैसा अर्थात् पुनर्जन्म नहीं तब सुख दुःख किसे तो फिर पिता पुत्रको और पुत्र पिताको भी खाने लगे हानि लाभ तो रहा ही नहीं सो नहीं है। पाठक गण समझें कि धर्म का और समाजका तथा व्यवहारका उसी प्रकार सम्बन्ध है जैसे भोजनके साथ पानीका जैसे धूमके साथ अग्नि का ज्ञानके साथ आत्माका। विना धर्मके व्यवहार चलेगा ही नहीं, समाज टिकेगा ही नहीं। लेख बहुत बढ गया है इससे इस विषयमें विशेष वक्तव्य नहीं है किन्तु इतना कहना है कि ये सुधारक सज्जनगण जिस व्यवहार सुखके लिये सुधार सुधार पुकार रहे हैं और अपनेको निष्पक्षपाती समझ निरग्रंथ गुरुओंकी और उनके वाक्योंकी अवहेलना कर रहे हैं और नय विभाग विना वास्तविक तत्व न समझ अर्थका अनर्थ करते हैं और समाजको साधारण जनताने भी पहिलेसे ही कुछ वास्तविक अर्थ और उद्देश न समझ रूढ़िकी जिद रख अपने सुधारका उपाय नहीं सोचा है इसमें कारण तीन पड़ते हैं मिथ्या श्रद्धान ज्ञान आचरण। इनका विषय शास्त्रीय कथन छोड़कै व्यवहारमें लीजिये व्यवहारमें मिथ्या श्रद्धान तो यह हो रहा है कि प्राचीन पद्धति वालोंके तो रूढ़िकी परिपाटीमें जो पहले किसी विद्वानने मार्ग बताया था उस रीति रि-

वाजमें बीच २ में अज्ञलोगोंने अर्थका अनर्थकर विगाड़ दिया। विवेक द्वारा दोष संशोधन कर निर्दोषमार्गके अनुसरण करनेकी चेष्टा न कर लोग उस अर्वाचीनकी विगड़ी हुई हालत ही को सच्चा समझ छोटी २ बातों पर झगड़ा कर शिर फोड़ते हैं और असली उद्देशका ध्यान नहीं रखते और नानाप्रकार मनगढ़न्त बातोंसे परस्पर अनेकताकर धर्म और समाजकोहानि पहुंचाते हैं। सम्यक्त्वके प्रभावना वात्सल्यादि अंगको भी भूल जाते हैं। धर्म और समाजकी निन्दा कराते हैं यह सब समाजमें अविद्या के कारण है। शास्त्रके उपदेशका प्रायः अभाव ही हो गया है। पदस्थके योग्य कार्य करनेकी शिक्षाका प्रचार ही नहीं रहा। नवीन पद्धति वालोंके तो श्रद्धा, कुल क्रम या रूढि व लज्जा आदिसे प्राचीन पद्धति वालोंके जो चली आती थी वह भी नहीं रही। शास्त्रोंका मनन अनुक्रमसे करते नहीं, क्योंकि शास्त्रों पर श्रद्धा नहीं और शास्त्रके नागका अवलम्बन किये विना हिताहित विवेक बुद्धि उत्पन्न नहीं होती अतः स्वयं आचार्य बन अपने मार्गपर संसारको चलाना चाहते हैं। शास्त्रका अंकुश अपने लिये नहीं किंतु शास्त्रके ऊपर अपना अंकुश चलाने लगे हैं नदीका उलटा पानी मगरै चढ़ने लगा है जिसका फल यह हुआ है कि श्रद्धान ज्ञान विगड़ गया खोटी बुद्धि हो गई, परन्तु मिथ्या आचरण विना आत्माकी खोटी प्रवृत्ति नहीं होती यद्यपि निश्चयनयसे तीनों आत्मामें एक साथ होते हैं तथापि व्यवहारमें भिन्न २ प्रवृत्ति भी होती हैं प्राचीन पद्धति वालेके तो कुलक्रम से चले आए श्रद्धान आचरणमें इतना लोप नहीं हुआ था जिससे धर्म पर विशेष आघात पहुंचता पूर्व धर्माचरणके संस्कार उद्बाधित करते थे कुछ ज्ञानकी कमी होनेसे कुछ गोलमाल करलेते थे। देव शास्त्र गुरुकी श्रद्धा तथा धर्मानुकूल सर्व हितकारी व्यवहार खान पानादिमें तो गड़बड़ी नहीं हुई थी परन्तु नवीन पद्धति वालोंने तो पाश्चात्य विद्याके कुज्ञानसे श्रद्धान ज्ञान आचरण तीनों जड़मूल से विगाड़ लिये। देव शास्त्र गुरुका श्रद्धान नहीं रहा तब तो उनका खण्डन करते हुए आप सबज्ञ बन उनसे भी सवाये सर्वज्ञपनेका दावा करने लगे। प्रेमीजी लिखते हैं कि जब बीस पन्थमें से तेरह पन्थ निकला है तब भट्टारकों को न मानने वाले तेरह पन्थियोंको मुसल्मान और म्लेच्छ तुल्य बतलाया है परन्तु ये लोग चिल्लाते ही रहे और तेरह पन्थका प्रभाव देखते २ देश व्यापी हो गया सो हमारा पन्थ भी देश व्यापी हो जायगा परन्तु उन्हे यह नहीं मालूम है कि जिन्होंने तेरह पन्थ चलाया था उन्होंने मूल संघके समस्त आचार्योंकी शरण ली थी सबको प्रामाणीक मोना था और उन्हींके वाक्योंसे बेहूद निर्गल पूजन आदिमें रात्रि दिनका विचार नहीं पुष्प फलादिमें हिंसा आदिका विचार नही यत्नाचार का विवेक नही इत्यादि अनर्थ दूर करने के लिये मुख्य गौणविवक्षासे निषेध वाक्य प्रचारित किये थे। (तथापि अनेकोंने असलीतत्त्व न समझ उभय पक्षके पक्षपातने जैन धर्म को हानि ही पहुंचाई लाभ क्या हुआ) आपलोगोंने तो समस्त आचार्यों पर ही पानी फेर दिया आचार्योंको ही नहीं जैन धर्मको ही उन्नति पथमें कण्टक बतला दिया श्रद्धा तो यों गई और जिस ज्ञानसे आचरण कर रहे हो वे तुम्हारे नवीन पद्धति वालोंके ज्ञान आचरण मिथ्या है यह बात हम केवल अन्धश्रद्धासे तथा पुरानी बातोंसे या अटूट श्रद्धासे ही नहीं कहते किंतु हम प्रत्यक्षमें प्रमाणित करते हैं वह इस प्रकार है पाठक गण भी सावधान होकर पढ़ें।

जब ज्ञान सर्वज्ञागत आगम ज्ञानसे विप-

रीत है और आपलोग स्वयं सर्वज्ञ है नहीं फिर आप का कथन सत्य है इसमें प्रबलप्रमाण आपलोगोंके पास क्या है? यदि कदाचित् अनुभव सिद्ध प्रबल प्रमाण ठहरावे सो भी नहीं हमने अपने लेखोंमें बहुतसी बातोंमें तुम्हारे अनुभवका भ्रम बतलाया है तथा स्त्री मुक्ति आदिमें ज्ञानानन्द ब्रह्मचारीजी आदिने भी दिखाया है और इसलेखमे भी हमने बहुत कुछ लिखा है तथापि और भी सुनिये आप लोगोंने पत्रों द्वारा जिनमंदिर बनवाना प्रतिष्ठा पूजनादिकका ईस प्रकार निषेध कर कि ये कोई कामके नहीं-ऐसा लिख लिख कर तथा पूजनादिक को ब्राह्मणोंसे लिया लिख लोगोंकी श्रद्धा देव दर्शन पूजनादिकसे हटा दी तब संसारमें दर्शन पूजनादि नित्य आवश्यक क्रिया मुनि तकको लिखी है वह सब छोड़ देंनेसे कोई पूजादिक न करेंगे और न मंदिरमें धर्म साधन शास्त्रोपदेशके लिये आवेगे यदि नहीं आवेंगे तब उनके द्वारा जो हिंसादिक पाप त्यागनेकी जो शिक्षा मिलती थी उन सबका अभाव हुआ जब उन सबका अभाव हुआ तब खोटी संगतिसे हिंसादिनिरत जीव हो जायगे कि नहीं और कुछ अब भी होने लगे हैं जब पाप पुण्यका विचार नहीं तब परस्पर कलह अधर्माचरणसे जीव निरन्तर नारकी ज्यों मर पच दुःख भोगेंगे कि सुख? तब आप अच्छे हितकारी ठहरेंगे कि तुम्हेंकोसेंगे विचारिये और आपने खान पानके विषयमें शुद्ध खान पान वालोंकी निन्दा और ढकोसला लिख मारे संसारमें देखते २ हमारे तुम्हारे इसी जन्ममें आंखे देखते २ शुद्ध खान पानकी जलाञ्जलि बैठ गई यह आप लोगोंकी ही असीम कृपा हुई है कि औरोंकी जिसका फल यह हुआ है कि आप लोग ही घरोंमें बड़े २ लेक्चर झाड़ने वाले बरबाके माल चाबने लग गये जो माससे भी निन्द्य है डाक्टरी दवाइयोंमें आप मदिरा सेवन करने लग गये इन अखाद्य पदार्थों से जीवोंकी बुद्धि बिगड़ती है और बुद्धि बिगड़नेसे पापाचरण होता है और पापसे इस लोक परलोकमें सुख का अभाव होता है ऐसा शास्त्र कहता है परन्तु आपका धर्म दूसरा है आपके मतसे पुण्य कुछ है नहीं तब धर्म अधर्म कैसा? अब आपके मतसे भी हानि सुनिये जब चर्वी मदिरा मांस रुमादि जीव मिश्रित बजारी चीजे खानेसे तुम्हारे शरीर की आरोग्यता नष्ट होती है (यह सब मान्य सिद्धांत है डाक्टरी वैद्यक शास्त्रोंसे उल्लिखित बातोंको तो आपको भी मानना होगा कि इन पदार्थो के खानेसे आरोग्यता नष्ट होती है) जब आरोग्यता नष्ट होगी तब तुम्हारा सन्तान कमजोर होगा वंश परंपराय को अल्प आयु बनावेगा और तब तुम्हारी सन्तानका नाम निशान न रहने देगा अतः तुम्हारा उक्त ज्ञान मिथ्या है इसीप्रकार तुम्हारा आचरण जो चलेगा अज्ञानानुकूल होनेसे वह मिथ्या दुःखदाई होगा तुम्हारे जितने भी वर्तमान मे उपदेश हैं वे विषयोंकी सामिग्री तथा आकांक्षाये बढ़ाने वाले हैं और अन्यान्य अभक्ष्य प्रवृत्तिवाले हैं और तुम्हारे आचरण भी इसी प्रकार हैं क्यों कि आचरण ज्ञानानुकूल ही होते हैं इस कारण मिथ्या ज्ञान आचरण को छोड़ो व अपना अहित करो एवं औरोंको अहितमें न पटको हमारी तो यही प्रार्थना है फिर आपकी इच्छा पाठक गण भी समझ गये होगें उपर्युक्त कथानानुसार समाज और व्यवहार हो का हो नहीं किन्तु प्राणीमात्रका धर्म बिना जीवन नहीं, धर्म छोड़ तीनोंकाल सुख न हुआ न होगा और न होता है इस लिये धर्म्म और धर्म के साधनोंमें सदा सावधान रहो यही मेरी प्रार्थना है।

झम्मनलाल तर्क तीर्थ।

प्राप्तिस्वीकार और समालोचना।

१ श्रावक-वनिता-बोधिनी-जयदयालमल्ल कृत चौथी आवृत्ति। पहिले संस्करणोंसे इसमें कुछ नवीनता है और वह प्रकाशिका मगनबहेन माणिकचंदजीके मतमें इस प्रकार है—"अनावश्यक समझ कर पहिली भूमिका निकाल दी गई है। कहीं कहीं आवश्यक जानकर टीका टिप्पणी भी करदी गई है; पर बहुत कम। आशा है ये थोड़े से परिवर्त्तन जो पाठक पाठिकाओंकी इच्छानुकूल ही किये गये हैं पसंद पड़ेंगे।"

इसके बाद हमारी बहिनने लिखा है कि "पुस्तकके विचारांशोंसे मैं सहमत नहीं अनेक सज्जनोंने भी उन विचारांशोंको निकाल देकर पुस्तक प्रकाशित करानेकी सम्मति दी थी परन्तु ऐसा करना लेखकके विचारोंकी हत्या करना समझ कर ऐसा नहीं किया गया।"

पहिली भूमिका तो हमने पढ़ी नहीं है जो उसकी आवश्यकता अनावश्यकताके विषयमें अपनी सम्मति लिख सकें परंतु आवश्यक जान जो इस संस्करणमें टीका टिप्पणियां की गई हैं वे पढ़ी हैं। नमूनाके तौर पर देखिये-

लेखकने वीतराग जिनदेवके दर्शन स्तुतिकी जहा विधि बतलाई है और उससे सुखकी उत्पत्ति लिखी है उसपर संशोधकने टिप्पणी की है "पर हाय! कृत कृत्य हुए आवागमनसे छूटे हुये जिनेंद्र भगवान प्रार्थीकी यह प्रार्थना पूरी करनेके नहीं।"

इन पंक्तियोंसे संशोधक और प्रकाशकका दृष्टिमें आज तक जो दर्शन पूजनका मार्ग चला आता है वह मिथ्या है-उसके करनेकी कोई आवश्यकता नहीं; यह स्पष्ट विदित होता है।

इसी प्रकारकी भौतिक सभ्यताकी पुष्टि करने वाली बातें लिखना और सर्वज्ञ प्रणीत अनादि निधन सर्व हितकर वीतराग स्तवन और स्वस्वरूप याचन मिथ्या बतलाना हमारे प्रकाशक संशोधकने बहुत ही आवश्यक समझा है! जैन महिलाओंके प्रति इस उपकारको धन्यवाद!

अंतमें हम जैन समाजके प्रति कहते हैं कि—आजकल ऊट पटांग बे सिर पैरकी बातोंका धर्म शास्त्रके साथ संबन्ध लगानेवाले अनेक नये नये लोग पैदा हो गये हैं और आज तक अपने विद्वानों पर अविचल विश्वास रखनेवाले जैनियोंके श्रद्धानमें अपनी श्रद्धा घुसेड़ आत्मवत् सब करना चाहते हैं। इसलिये सोच समझ छपे ग्रंथ खरीदना और पढना चाहिये।

ब्रह्मचारी शीतलप्रशादजीकी साक्षीकी भी इसमें मुहर लगी है सो क्या ब्रह्मचारीजी भी उपयु क्त बातों से सहमत हैं?

पुस्तककी कीमत ॥-) और प्राप्तिस्थान जुबलीबाग तारदेव मुंबई है।

२ निबंधरत्नमाला-पुस्तक साइज पृष्ठ सं० १२० मूल्य ॥) प्रकाशक- कुमार देवेंद्रप्रशादजी प्रेम-भवन आरा। यह श्रीमती चंदाबाईजीके उन लेखोंका संग्रह है जो भिन्न २ जैन अजैन पत्रोंमें समय २ पर छप चुके हैं। लेखोंकी भाषा स्त्री समाजके लिये कठिन होने पर भी साधारण अच्छी है। पाठकोंसे एक २ प्रति मंगानेका अनुरोध करते हैं। बाईजीका उद्योग प्रशंसनीय है। आशा है भविष्यमें भी इसी प्रकार लेखादि द्वारा समस्त स्त्री समाजका हित करनेमें विशेष भाग लेंगी।

३ गोलापूर्व जैन–संपादक पं० मुन्नालालजी रांधेलीय,नमक मंडी–सागर। वार्षिक मुल्य १॥) है यह पत्र गोलापूर्व जैन महा सभाकी तरफसे हर महीने निकलता है। जाति उत्थानके लेख रहते है। धार्मिक विषय पर भी कभी २ विवेचन रहता है, जैसे विधवा विवाह खंडन। लेखोंको भाषापरिमार्जित होनेकी जरूरत है। जैनी भाईयोंको इसका ग्राहक हो संपादक व प्रकाशकका उत्साह बढ़ाना चाहिये।

जैन सिद्धांत—दि० जैन शास्त्रि परिषद्का मुख पत्र, वार्षिक मूल्य ३) रु०। प्रति मास शोलापुरसे प्रगट होता है। संपादक न्याय तीर्थ पंडित वंशीधरजी मालिक श्रीधर प्रेस, शोलापुर–है। आज कल जो युरोपीय भौतिक और भारतीय आध्यात्मिक सभ्यताका संघर्ष उपस्थित हुआ है उसमें जैन धर्मके तत्त्वों में भी लोगोंके श्रद्धान उथल पुथल होने लगे है और अपनी अपनी इच्छानुसार जैसा जिसके मनमें आता है वही पुष्ट करनेमें कुछ लोग बुद्धि खर्चने लगे है। ऐसे लोगोंके श्रद्धानको श्रष्ट और सत्य बनानेके लिये ही इस पत्रका उदय हुआ है। लेख अच्छे २ जैन शास्त्रके मर्मज्ञ विद्वानोंके रहते हैं। स्त्री मुक्ति पर ब्रह्मचारी ज्ञानानंदजीका और कर्म–सिद्धांत पर संपादकीय लेख ध्यानसे पढ़ने योग्य हैं। प्रत्येक आत्माके हित चाहने वाले मनुष्यको इसका ग्राहक होना चाहिये। मूल्य भी कागज आदिकी मंहगीके सामने कुछ अधिक नहीं हैं। संपादको ग्राहक होनेकी सूचना दीजिये।

संपादक महाशयको प्रयत्नशील हो इस समय पर निकालते रहनेका उद्योग करना बहुत ही आवश्यक है।

स्याद्वाद ग्रंथ माला—कलकत्ताकी दी० जैन सभाने गत कार्तिक महोत्सव पर भौतिक सभ्यताके परिहारार्थ, सत्य तत्त्व प्रगट करनेके लिये एक लघु पुस्तकावली प्रकाशित करनेका प्रस्ताव पास किया था तदनुसार उसके मंत्री श्री युत पं० जयदेव जीने उक्त नामकी ग्रंथमाला प्रकाशित करना प्रारंभ किया है अब तक तीन पुष्प निकल कर जैन समाजमें अपनी सौरभ फैला चुके है। उनमें पहिला "जैनियोंका भक्ति मार्ग" है। जैन हितैषी और सत्योदय पत्रोंमें जो भौतिक सभ्यताके पक्षियोंने जिनेंद्र स्तुति वदना आदिके विरुद्धमे अपने विचार प्रगट किये थे उनहीका युक्ति आगम और लोक व्यवहार द्वारा समुचित उत्तर दे आध्यात्मिक सभ्यताको पुष्ट और सत्य साबित किया गयाहै पुस्तक पढनेसे वीतरागी देवसे हमे क्या २ किस तरह प्राप्त होता है यह बहुत ही ढूढता और सरलता पूर्वक समझमें आजाता है। इसके लेखक हैं गोपालदास दि० जैन सिद्धांत विद्यालय मुरैना (ग्वालियर) की शास्त्रि कक्षाके विद्यार्थी पं० अजितकुमार कौंदेय।

दूसरापुष्प है —'पुनर्विवाह पर विचार' स्त्री और पुरुषमें समानता कह जो विधवाओंके पर पुरुष संयोग (धरेजा कराबे) को शील साबित करनेकी जी जानसे चेष्टा करते है और इस तरह बुराईको भलाई साबित कर अपने व अपने कुटुंबियोंके कुशीलाचरणसे उत्पन्न अपवादको मिटानेका साहस करते हैं उन ही के सुबोधार्थ और वस्तविक शीलके स्वरूप प्रचारार्थ यह छोटीसी पुस्तक प्रकाशितकी गई है। नाना दृष्टान्त और युक्तियों द्वारा स्त्रियोंके धरेजेसे धार्मिक और लौकिक हानि बतलाई गई है। तीसरा पुष्प भूगोलभ्रमण मीमांसा है' पृथ्वी घूमता है और सूरज आदि स्थिर है ऐसा आजकलके कुछ लोगोंका मत है इसी पर गवेषणा पूर्व क विचार किया है और पृथ्वीकी स्थिरता साबित कर पुरातन भारतीय मत पुष्ट किया गया है। प्रत्येक शिक्षित को इसका मनन करना चा-

हिये। अंतके दोनों पुस्तकोंके लेखक पं० रघुनाथदास जी मल्लौ (एटा) हैं।

प्रत्येक पुष्प बिना मूल्य सिर्फ दो पैसेका पोंष्टेज भेजदेने मात्रसे ही प्रकाशकके पाससे मिल सक्ता है। आत्महित चाहने वालोंको अच्छा अवसर है और कलकत्ताकी सभाका स्तुत्य उद्योग है।

जाति भाइयोंसे प्रार्थना।

हम अपने देश जाति (पद्मावती पुरवालों) के निवास स्थानसे बहुत दूर रहते हैं, यहां अपने भाईयों के समाचार मिलनेका सिवा पत्र पानेके दूसरा कोई उपाय नहीं है परंतु हमारे भाई इस पत्र प्रकाशनमें ऐसे उदासीन हैं कि कभी कहींके समाचार ही हमें नहीं देते। ऐसी अवस्थामें हानि यह होती है कि पद्मावती परिषद्के मुख पत्रसे पद्मावती पुरवालोंको हम विशेष लाभ पहुंचानेमें असमर्थ हो जाते हैं। यह पत्र प्रतिमास ३२ (४ फार्म) पृष्ठका निकलता है, हमारा विचार और उद्देश आधेमें जाति उत्थान कुरीति निवारण एवं सर्वत्रके पाये हुए समाचारों पर विचार कर कुमार्ग पर जाते हुएकों चेतावनी और सुमार्ग पर चलने वालेकी प्रशंसा करनेका है लेकिन एक तो हमारे अन्य पंडित गण और शिक्षित महाशय ऐसे उदासीन हैं कि कभी किसी प्रकारका सामाजिक व धार्मिक लेख नहीं भेजते, दूसरे हमारे भाई भी कहींकी कुछ खबर नहीं भेजते इसलिये हमारे मनकी इच्छा मनमें रह जाती है।

हम अपने भाईयोंसे हाथ जोड़ प्रार्थना करते हैं कि वे अपने २ गांवकी या आस पासके गांवोंकी जैसी खबर जो महाशय भेज सकें, सच्ची २ भेजा करें जैसे कि फलानी जगह यह धर्म कार्य हुआ, फलानी जगहके फलाने महाशयने यह अच्छा या बुरा काम किया फलाने आदमीने अपनी लड़कीको फलाने बुड्ढे या जवानके हाथ बेची आदि। इससे पापियोंको निंदा प्राप्तिरूप दंड और धर्मात्माओंको प्रशंसारूप सुख प्राप्त होगा। आशा है यह हमारी प्रार्थना व्यर्थ न जायगी।

विधवा और अनाथोंकी खबर दीजिये।

कालकी कराल गति और जातिमें कन्या-विक्रय, वृद्ध विवाह बाल विवाह एवं अनुचित विवाह आदि नाना कारणोंसे-विधवा व अनाथोंकी संख्या दिन पर दिन बढ़ रही है। अहिंसा धर्मके पालक होनेके कारण, अपने कुटुंब व समाजकी रक्षा व उसके दीन दुःखियोंकी प्रति पालना करना हमारे प्रत्येक धर्मात्मा जाति हितैषी पुरुषका काम है इसलिये जहांकी विधवा मा बहिन दुःख पा रही हों या कोई अनाथ बालक बालिका अपना कष्टसे जीवन बिता रहे हो वहांके भाईयोंको हमारे पास खबर भेजनी चाहिये हम उनका यथा शक्ति समुचित प्रबंध कर देंगे।

रुजगार विना बैठोंको सूचना।

हमारे भाई प्रायः गांवोंमें रहते हैं, और गांवोंकी हालत आज कल जैसी रुजगार आदिके विषयमें है वैसी सब लोग जानते ही हैं, दिन भर परिश्रम कर भी अपने कुटुंबके भरण पोषण लायक बड़ी कठिनतासे पैदा कर पाते हैं तिस परभी चोरी डांके आदिके सैकड़ों भय लगे रहते हैं। अतः अब समय आ गया है कि हम धीरे २ ग्राम वासको छोड़ते जांय। हमारा कहना उन भाईयोंसे नहीं है जो गावोंमें रह कर ही

कमा पैदा कर लेते हैं बल्कि जो व्यापार बिना खाली बैठे हैं या व्यापार करते भी अपनी पूरी तौरसे गुजर नहीं कर सकते उनके लिये कहना है जो भाई यहां (कलकत्ता) या कहीं (दिल्ली आदि शहरोंमें) रुजगार करना चाहते हैं उन्हें एक बार हमसे भी पूछ लेना चाहिये हम उनकी यथा शक्ति इस विषयमें सहायता करेंगे

अहिंसा प्रचारिणी सभाकी स्थापना

और सहायता स्वीकार

जबसे मध्य प्रादेशिक सरकारने रतौनामें कसाई खाना खोलनेका विचार प्रगट किया है तबसे देशमें अहिंसाका लुप्त भाव फिरसे उद्भूत हो उठा है। जगह २ लोग गोवध सहित वध न करनेकी प्रतिज्ञायें ले रहे हैं। उक्त उद्देशको जोर शोरके साथ कार्यमें परिणत करनेके लिये ब्रह्मचारी ज्ञानानंदजीने उपयुक्त सभा स्थापित की है और इससे सर्वत्र उपदेशकोंका भ्रमण कराने एवं साप्ताहिक पत्र प्रकाशन करनेकी स्कीम प्रकाशितकी है। दशलाक्षणिक पर्वमें ब्रह्मचारी जी यहां भी पधारे थे और स्थानीय सज्जनोंने निम्न लिखित उक्त कार्यमें सहायता दी है।

१२००) सेठ चैनसुख गंभीरमलजीने एक मुष्टि दिये।

१२०) पं० बलदेवदासजीने १००) रु० मासिक एक उपदेशक भ्रमण करानेके लिये स्वीकार किये और १००) रु० देकर स्थायी सभासद बने।

३००) मदनलाल प्रभुलालजीने एक मुष्टि व २५) रु० मासिक सदाके लिये।

३००) शेठ मिरेमल किशोरीलालजी पाटनी।

१००) शेठ सेढमल दयाचंदजी।

१००) शेठ रामजीवनदास फूलचंदजी।

१००) शेठ पूरनचंद्र कुंदनलालजी।

१००) शेठ कन्हैयालाल किशोरीचंदजी।

१००) शेठ हजारीलाल जमनादासजी।

नियम व उद्देश—

एक हजार या उससे अधिक एक मुष्टि प्रदान करने वाले महाशय परम सहायक, १००) रु० देनेसे स्थायी सभासद और ५) रु० देनेसे साधारण सभासद होंगे। मांस खाना शराब पीना शिकार करना व चमड़ा आदि अस्पृश्य वस्तुओंके व्यापारका त्यागी हो सभासद बन सकता है।

धन्यवाद !

निम्न लिखित महानुभावोंने इस पत्रको अपना कर जो सहायता दी है उसके लिये आन्तरिक धन्यवाद है। आशा है, अन्य भाई भी इनका अनुकरण कर हमारे उत्साहको बढ़ावेंगे।

१) ओंकारपुर प्रान्तीय दि० जैन खंडेलवाल सभा (मा० ज्ञातिरत्न चैनसुखजी छाबड़ा)

५) सकल जैन पंचान फतेहपुर (मारवाड़) (मा० पं० हीरालालजी अध्यापक)

ग्राहकोंसे निवेदन !

इस साल ३ रा अंक (२) की वी० पी० से ग्राहकों का सेवामें भेजा गया था। जिन महाशयोंने इसे छुड़ा कर हमारे कार्यमें सहायता दी है उन्हें हार्दिक धन्यवाद ! और जिन महानुभावोंने हमारी पहली सूचना (१-२ रे अंकमें दी गई थी) पर ध्यान न देकर वी० पी० पहुंचने पर वापिस की उनको भी धन्यवाद है। हमें विश्वास है इनमेंसे बहुतोंकी वी० पी० उनके अन्यत्र चले जानेके कारण वापिस आई है। उनसे निवेदन है कि वे अपना वार्षिक मूल्य भेजकर अनुगृहीत करें। —मैनेजर।

पद्मावती परिषद्का मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा कविताओंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

विषय सूची।

वर्ष ३ — अंक ७

सूचना

संपादक महोदयके अस्वस्थ हो जानेसे "स्त्री मुक्ति पर विचार" नहीं छपा है पाठक धैर्य रक्खें।

वार्षिक मू० २)

व्यवस्थापक—
श्रीधन्यकुमार जैन. 'सिंह'

१ अंक का≡)

विविध समाचार।

फिरोजाबाद इस साल कुआर वदी १ के दिन फीरोजाबादमें जल यात्रा या कलशाभिषेक उत्सव होता है जिसमें बाहरसे आये हुये भाई भी सम्मलित होते हैं और खुरजा वाले सेठकी तरफसे सबको ज्योनार हो जाती है परंतु इस साल कुछ शोककी वजह से उन्होंने ज्योनार मुलतवी कर दी लेकिन यहां के पद्मावती पुरवाल भाईयोंने मिलकर अपना ज्योनारको और सब भाईयोंका सत्कार और प्रबंध अच्छा रहा। हर साल ऐसा ही करना चाहिये।

मथुरा—इस साल मथुराका मेला कार्तिक वदी २ से ८ मी तक रहा लेकिन भीड़ कुछ नहीं था बाहर से आये हुये आदमियोंके लिये कुछ प्रबंध ठीक नहीं था पं० लक्ष्मीचंद्र लश्कर वाले भी पहुंच गये थे आप ने शास्त्र सभाकी। मथुराके जैनियोंको इसका उचित प्रबंध करना चाहिये बाहरके यात्रियोंको आराम देनेका तथा व्याऊका ठीक प्रबंध करना चाहिये।

आगरेमें-जैन बोर्डिंग हाउसका प्रबंध बिलकुल नहीं है लड़के अपना प्रबंध आप करते हैं इमारतमें मरम्मतकी बहुत जरूरत है स्टोरके कमरे टूटी हालतमें हैं जनताको अवश्य एक प्रबंध कारणी कमेटी बना कर अच्छा इंतजाम करना चाहिये यह एक शर्मकी बात है कि इतने बड़े शहरमें इसका प्रबंध न हो। आगरेमें जैन पाठशालामें पंडितकी आवश्यकता है जो लड़कों को ३ दर्जे तक बालबोध छहढाला वगैरह पढ़ा सके पंडित सदाचारी शांत स्वभाव होना चाहिये। वेतन योग्यतानुसार।

पत्र व्यवहारका पता:-बाबूलाल जैन टिकट कलक्टर राजाकी मंडी, आगरा।

शोक—बड़े शोकके साथ प्रगट करना पड़ता है कि ला० हीरालालजी कंचनलालजी जमींदार कुतकपुरके पुत्र ला० मोतीरामजी मैनेजर जनरल ओफिस जवरी बाग इन्दौरकी धर्म पत्नीका अचानक ही २० वर्षकी अवस्थामें मिती कार्तिक वदी ११ को स्वर्गवास हो गया हम बाबूजी साहबसे निवेदन करते हैं कि आजकल के जमानेका विचार कर धैर्य धारण करें। तथा उन्हें सद्गति प्राप्त होवे। जयकुमार पद्मावतीय

सावधान—सिकन्द्राबादमें बल्लभगढ़का सुखानंद नामधारी ब्रह्मचारी पहुंचा है। उसके बहुत कुआचरण पकड़े गये हैं। यह बदमाश है जहां कहीं आ पहुंच जावे उससे सावधान रहें यह पूरा ठग है।

तिथिदर्पण—श्री वीर सं० २४३७ का छप कर तैयार है। नीचे लिखे पते पर पत्र लिख कर मगाइये-

बद्रामीलाल मुनीम सिद्धवरकूट दि० जैन कार्यालय पो० मान्धाता ॐकारजी (नीमाड़)

कलकत्तामें शीघ्र ही खंडेलवाल महासभा होने वाली है। खंडेलवालोंमें जो सच्चे विद्वान व परोपकारी हैं उनको शांतिसे बैठकर खंडेलवाल जातिके उत्थानके उपायोंको सोचना चाहिये। यह बड़ी खुशी की बात है कि झालरापाटनके सेठ लालचंदजी सभापतिका पद ग्रहण करेंगे। सेठ लालचंदजी पं० गिरधर शर्मा कवि ऐसे सज्जनोंको संगति रखते हैं इस से आशा होती है कि वे ऐसे ही प्रस्ताव पास करेंगे जिससे वास्तविक जातिका हित हो व जिसको जाति अमलमें लाकर अवनतिके गर्त्तसे उठ कर उन्नतिके पथ पर आरूढ़ हो जावे-जातिसे व्यर्थ व्यय व कुरीतियां हटें तथा शिक्षाके साधनमें आरूढ़ हो।

जैनसिद्धांतप्रकाशकप्रेस, ८ महेन्द्रबोसलेन श्यामबाजार कलकत्तामें छपा।

धर्मध्वंसे सतां ध्वंसस्तस्माद्धर्मद्रुहोऽवनान् । निवारयन्ति ये सन्तो रक्षितं तैः सतां जगत् ॥
कंटकानिव राज्यस्य नेता धर्मस्य कंटकान् । सदोद्धरति सर्वेषां यस्य लक्ष्मी रोमंवत् ॥ (गुणभद्राचार्य)

३ रा वर्ष } कलकत्ता, आश्विन, वीरनिर्वाण सं० २४४६ सन १९२० { ७ वां अंक

पुकार !

नाथ कबतक हम दुःख सहेंगे
रहे सैकड़ों वर्ष दुखी हम कब तक और रहेंगे ।। नाथ ।।
नष्ट हुआ है ज्ञान हमारा नहीं रहा चारित्र
श्रद्धाको भी खोकरके हम कब तक और बहेंगे ।। नाथ ।।
टूट गईं हड्डियां हमारी निबल हुए हैं हाथ
पतित हुए हैं बोलो कब तक भिक्षा वचन कहेंगे ।। नाथ ।।
रिक्त हुए है हृदय हमारे गया वचन चातुर्य
तनमें तनुबल भी न रहा है कब तक निबल रहेंगे ।। नाथ ।।
फेशनके झगड़ेमें पड़कर व्यर्थ गमाया धर्म
सत्य धर्मको गहा न अब तक कब तक नहीं गहेंगे ।। नाथ ।।

—न्यायतीर्थ दरबारीलाल जैन ।

वर्तमान शिक्षाका परिणाम।

एक लोकोक्ति है कि "फल देखनेसे वृक्षके भले बुरेकी पहिचान हो जाती है।" इसीके अनुसार वर्तमानकी शिक्षा जो हमारे देश व समाजमें प्रचलित है उसके फलाफलको हम जांच करना चाहते हैं। हमारे शिक्षित गण जिस शिक्षाका प्रचार समाजमें करनेकी सलाह देते हैं और तदनुसार प्रयत्न करने पर उतारू होते हैं, वह शिक्षा कैसी है? उसने आज तक हमारा क्या हित वा अहित किया है—यह विवेचना पूर्वक जानना बहुत ही आवश्यक है। हमारे देशकी शिक्षा पद्धति सात समुद्र पार रहने वाले अंग्रेज लोगोंके हाथसे प्रारंभ हुई है और अब तक उसकी बागडोर उन्हीके हाथमें है। जिस देशकी जैसी अवस्था होती है उसीके अनुसार वहांके अधिवासियोंके मानसिक परिणामों की गति होती है और मानसिक भावोंका अनुकरण कर शारीरिक क्रिया चलती है। इसी नियमके वशवर्ती हो जो हमारे देशमें वर्तमान शिक्षा प्रणाली विदेशी लोगोंकी कृपासे प्रचलित हुई है उसमें वैदेशिकताकी गंध ही अधिक आती है। जो कुछ भी हो, हम लोग जिस पद्धतिसे या जिस शिक्षासे मनुष्य बनाये जाते हैं वह हमें आशानुरूप फल देती है या नहीं—यही देखना है।

शिक्षाके तीन फल हैं—शारीरिक मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति। कोई भी ज्ञानी जाति इसी वास्ते मोह मायाको जलांजलि दे अपनी संतान सुदूर पर देशमें भेज अगणित द्रव्य व्यय करती है कि जिससे उसके बाल बच्चोंका शरीर हृष्ट पुष्ट हो, मनके विचार उन्नत हों और आत्माके स्वरूपका भली भांति अधिगम हो।

हमारे देश और समाज भुक्त शिक्षित गण जिस वर्तमान की शिक्षासे शिक्षित हुये हैं, उनमें उक्त तीनों प्रकारका उन्नतिका अभाव पाते हैं और उसका विशेष विवरण इस प्रकार है—

शिक्षाका पहिला फल शरीरका हृष्ट पुष्ट होना नाना प्रकारके रोगोंका शिकार न बनना और काम पड़ने पर शरीरसे स्वावलंबित साधना है। हमारे विद्यार्थियों की शारीरिक अवस्था और स्वास्थ्यकी क्या दशा है? उसे प्रायः सब लोग जानते हैं। ग्रामीण और माध्यमिक स्थितिके लोगोंमें यहां तक विश्वास उत्पन्न हो गया है कि पढ़े लिखे निरे बाबू होते हैं और वे दो चार सेर वजन पाव आध मील तक भी नहीं लेजा सकते। हमारे देशकी उन्नतिके भावी स्तम्भ बनने वाले जवान या कुमार जिस दिनसे स्कूल या कालिज का सहारा लेते हैं उसी समयसे उन पर तीन बातोंका बोझा लाद दिया जाता है बेसिर पैरके इतिहासका मय तारीख और सन संवतके मुखस्थ कराना, बिना समझे बूझे परिभाषाओंकी पुस्तकोंका घुखाना और और शरीर स्वास्थ्यकी तरफ ध्यान न दे समय असमय पर पढ़ाना। हमारे छात्रोंका स्वास्थ्य जिस प्रकार हीन और भविष्यके लिये भयावह है वैसा किसी भी सभ्य असभ्य देशके बालकोंका नहीं पाया जाता। इन बेचारोंको स्वास्थ्य दायक ताजे खाद्य पदार्थ भी भोजनको नहीं मिलते, समस्त समय सुंदर स्वेत पुस्तक

को मस्तिकस्थ करनेमें ही लगाना पड़ता है और व्यावहारिक-रात दिन काममें आनेवाली बातोंका सर्वथा ज्ञान नहीं कराया जाता। ये शिक्षितगण जब डेढ़ हाथ लंबे पुष्ट कागज पर श्वेत या कृष्ण काय महाशय के सुंदर हस्ताक्षर संयुक्त डिग्री हासिल कर कालिज स्कूलोंसे बाहिर निकलते हैं और गृहस्थीका भार शिर पर पड़ता है तो व्यावहारिक ज्ञानके अभावमें दिशा विदिशाओंमें जीविकाके लिये आशा भरी दृष्टिसे ताकने लगते हैं। बहुतसे तो उच्च शिक्षाके ये फल यहां तक देशको लाभ पहुंचानेमें भाग लेते हैं कि मद्यआदि मादक पदार्थों तकको दुकान खोल बैठते हैं।

हमारा यह आंखों देखा हाल है और यहांके सब लोग भी जानते हैं कि बनारसमें अग्रवाल वंशज कुछ ग्रेजुएट ब्रान्डी आदि शराबके ठेकेकी दुकान खोले हैं। जाति भाइयोंके पूछने पर इन्होंने साफ उत्तर दिया था कि व्यापारमें हिंसा अहिंसाका ख्याल नहीं होता। भारतके सब प्रधान शिक्षालयोंके अड्डे बंगालमें तो और भी अनेक ऐसी ही दुकानें इन शिक्षितोंकी कृपासे खुलती जाती हैं जिन्हें देख यहांके समाचार पत्र शिक्षाके फल पर बार २ क्षोभ प्रगट करते हैं। परंतु इसमें इन विचारे शिक्षितोंका कुछ भी दोष नहीं है, कारण-विश्वविद्यालय (यूनिवर्सिटी) की डिग्रीका अपमान कर जब क्षुधा और पारिवारिक पोषणकी आवश्यकता मुंह फाड़के आगे पड़ती है एवं उसके आक्रमणसे जब आंखोंके सामने अंधेरा आजाता है तब उन्हें दिशा विदिशा खाई कुआ, हिंसा अहिंसा, हित अहित कुछ नहीं सूझ पड़ता। सूझ पड़ता है सिर्फ उदर और गृह पोषणका कुत्सित अकुत्सित एक मार्ग। जिसका अवलंबन कर ये अपने जीवनके दिन काटनेमें लग जाते हैं। तलाश करने पर ऐसे डिग्री प्राप्त ग्रेजुएट अनेक पाये जायेंगे जो मद्य विक्रयके कार्यमें पड़ अपना धर्म कर्म सब खो रहे हैं! कौन नहीं जानता कि घूंस खोर कर्मचारियोंका हमारे देशमें अभाव नहीं है। जिस आफिसमें देखो उस जगह उन लंचखोरोंकी संख्या दहाईसे अधिक ही निकलेगी।

असली बात यह है कि पढ़ चुकने पर किस प्रकार भद्र मनुष्यकी भांति जीवन यात्रा बिताना होगा यह आज कलके स्कूल कालिजोंमें कुछ भी नहीं बताया जाता। लंबे २ डाढ़ी मूंछ और ऊंचे ऊंचे मस्तकसे सुशोभित युनीवर्सिटीके चान्सलर व संचालक इस बातको सोचनेकी कभी तकलीफ उठाना जरूरी ही नहीं समझते कि विपुल अर्थव्यय और आधी आधी उम्र गंवा कर हमारे पढ़नेवाले सुसज्जित हुआ बालक किस प्रकार अपने कुटुंबका भरण पोषण कर सकेगा। उन्हें तो सिर्फ एक बातसे मतलब रहता है और वह यह है कि दश बीस या पचास पुस्तकें और उनकी कापीयें इसने अपने मगजमें घुसेड़ ली हैं या नहीं। यह राक्षसरूपधारिणी शिक्षा हमारे नवयुवकोंका खून चूस उन्हें खांसी कास लंबा २ गर्दन और अस्थि मज्जा हीन नरकंकालका रूप देदेती है आंखोंकी दार्शनिक शक्तिको खींच चश्मासे सुशोभित कर अंध अंधोंकी लिष्टमें नाम दर्ज करा देनेकी कृपा करती है। उदरकी परिपाकाग्निमें धाय हानताका जल डाल सदा औषधिसेवी बना देती है, और समाज व देशमें अकर्मण्योंकी संख्या बढ़ा डालती है। इस शिक्षाके आक्रमणसे आक्रांत नाममात्रके पुरुष (दर असलमें पुरुषत्व हीन) अपने शरीरका ही जब निर्विघ्नता पूर्वक रक्षण नहीं कर सकते, प्रतिदिन उसकी रक्षाकेलिये उन्हें डाक्टर और वैद्य हकीमोंका घर जाहना पड़ता है।

तब इनसे देशकी, समाजकी और परिवारकी रक्षा होगी—समझना निरा भूल भरा है।

इस प्रकार प्रेजुएट महाशयोंकी शारीरिक व्यवस्थाकी समालोचनासे हमारे पाठकोंने भली भांति जान लिया होगा कि, वर्तमान युगकी शिक्षासे शारीरिक उन्नति कितनी हुई है और भविष्यमें किस प्रकारकी हो सकती है।

मानसिक उन्नतिकी तरफ ध्यान देनेसे भी वर्तमान शिक्षाका फल, सुफल नहीं दीखता। इस शिक्षासे जो हजारोंकी तादादमें लोग शिक्षित इधर उधर सर्वत्र दृष्टि गोचर हो रहे हैं, उनकी मानसिक उन्नतिको देखनेसे हमारे उक्त वाक्यकी सत्यता अधिक अंशोंमें साबित हो जाती है। इन डिग्री वा डिग्रीधारी शिक्षितोंमें व्यावहारिक बुद्धि (कामनसेंस) का तो एक तरहसे अभाव ही पाया जाता है। इतने बड़े भारतवर्षमें और इतनी शिक्षितोंकी संख्यामें सिर्फ दो चार व्यक्ति ही विज्ञान आदिकी गवेषणामें संलग्न देखे जाते हैं और भी जो इतिहास, दर्शन, अर्थशास्त्र, प्रभृति विषयोंकी गवेषणामें दत्त चित्त हैं उनकी संख्या भी अंगुलियों पर गिनने लायकसे अधिक नहीं, एवं उनके परिश्रमसे फलीभूत कार्यकी जो खबर रखते हैं उन्हें भली भांति विदित होगा कि, इनके कार्य किस प्रकारके भ्रमात्मक और पहाड़ खोद चूहा निकालनेके सदृश ज्ञानी मनुष्योंकी हास्यास्पद होते हैं। यूरोपीय विद्वानोंकी गवेषणा परिपाटीकी नकल करनेवाले ये हमारे देशके शिक्षित सज्जन वेद पुराण इतिहास दर्शन आदिके असली अर्थकी तरफ दृष्टि न दे, उनके साथ ज्ञानकी आवश्यकता न समझ ऊपरी ऊपरी स्वबुद्धि विनिर्मित अर्थको हृदयंगम करही गवेषणा पटु बन प्रसिद्ध हो जाते हैं। हमारे परिचित एक सज्जन यहां (कलकत्ता) की युनिवर्सिटीमें शास्त्र गवेषणा करनेके लिये नियुक्त हैं, उन्होंने सायं कालीन अघमर्षण (पाप नाशक) मंत्रकी बात सुन शीघ्र ही अघमर्षण नामक ऋषिको ही हिंदु दर्शनका आदिम निर्माता कह अपने गवेषणा तत्त्वका परिचय दे डाला है! इनके सिवा इन तरुण शिक्षितोंमें नैतिक बुद्धिका भी परिस्फुरण नहीं देखा जाता, प्रत्युत बाल्यावस्थाके समय कौटुंबिक भारतीय पद्धतिके अनुसार जो कुछ अच्छी २ बातोंका अभ्यास अपने माता पिताके साथ किया था उसे भी पूर्ण वयस्क होने पर भ्रम ज्ञानविहीन शिक्षाके वशवर्ती हो कुसंस्कार कह छोड़ बैठते हैं। यदि कोई इनमेंसे भाग्यवश विपुल अर्थका—अपने बाप दादोंकी उपार्जित संपत्तिका अधिकारी हो जाता है तो हिताहितके विचार करनेमें शून्य हो नित्य नैमित्तिक धार्मिक क्रिया कलापोंको जलांजलि दे वैदेशिक विलासिताके फंदमें पड़ नाना तरहसे भाव और द्रव्य आत्मिक हिंसा करनेमें अग्रसर हो जाता है।

धनका उपार्जन करना भी मानसिक शक्ति पर निर्भर होता है। विचार बुद्धि और व्यवसाय बुद्धि साधारण व्यावहारिक बुद्धिसे ही उत्पन्न होती है। हमारे देशका व्यापार अधिक अंशोंमें क्या सब अंशोंमें ही आज कलके शिक्षित व्यक्तियोंसे भिन्न लोगोंके हाथमें है। इसमें बुद्धिका दोष नहीं है। हममें बुद्धि है, पर उसका जड़ स्वभाव होनेसे आत्मबुद्धिमें अविश्वास हो गया है। इसीलिये यह बुद्धि कार्य कालमें फल नहीं देती। साधारण व्यक्तिगत स्वार्थके क्षुद्रता-जालमें फंस कर 'अब तो मरा, हाय! अब तो सर्वनाश हुआ'—इत्यादि विभीषिकाएं हमारे शिक्षितोंके साहस और धैर्यको रसातलमें पहुंचा देती हैं। धैर्य और साहसके बिना

अकेली बुद्धि कुछ भी कार्यकारी नहीं हो सकती। इसीलिये हमारे शिक्षित इस विषयकी कभी चिंता भी नहीं करते। 'जैसे हो वैसे अपना जीवन बिता देना अन्य बातोंसे हमें क्या मतलब पड़ा है'—यही उनकी भावना रहती है। प्रत्येक व्यक्ति साधारण (काम चलाऊ) बनकर रहना चाहता है। यह क्यों? वर्त्तमान अंग्रेजी शिक्षा ही इसकी जबाबदार है—यह किसी को अस्वीकार नहीं होगा। अतएव यह भलीभांति जाना गया कि मानसिक उन्नतिके लिये भी वर्त्तमान प्रचलित शिक्षा लाभ दायक नहीं है।

आध्यात्मिक शिक्षाके लिये तो वर्त्तमान प्रचलित शिक्षा या अंग्रेजी-शिक्षा सोलहों आने कुफल फला रही है-यह किसी विचार शील व्यक्तिसे छिपा नहीं है। हमारे धर्म संबंधी आदर्श, प्राच्य उच्च गंभीर भाव —यह सब, अब मनचाहेकी सामग्री हो उठी है। धर्म का आदर्श, दार्शनिक आदर्श—इनको अब कोई अव लम्बन ही नहीं करना चाहते। हमारे अधिकांश सभ्य या नव-शिक्षित इनकी कुछ खबर ही नहीं रखना चाहते, वे इनको अपने मनगढ़न्त कल्पित भोग-विलास के सामने तुच्छ समझने लगे हैं। उन्हें अब शास्त्र पुराण कल्पित तथा झूंठ सूझते हैं। विषय वासनाओंमें मस्त, ये 'ताजे-सभ्य' अब अपने पूर्वाचार्योंको सीधी गालियां सुनानेमें भी नहीं चूकते! इनका नशा कितना भयंकर और कितना विष उगलने वाला है यह इनके कुकृत्योंसे साक्षात् जाहिर है। इतना ही नहीं, बल्कि मुसलमान समाजमें जो अब भी वर्त्तमान है—अपनी समाजके नवशिक्षितोंने वह भी त्याग दिया है। पाश्चात्य आचार धीरे धीरे समाज में फैल रहा है; 'चप्-कार्ट लेट'कीदूकानोंमें और होटलोंमें बिना खाये अथवा भक्ष्य-अभक्ष्य बिना भखे शिक्षा असंपूर्ण रह जाती है—यह भाव हमारे स्कूल और कालेजोंके छात्रोंमें फैल रहा है। आस्तिक-बुद्धि धीरे धीरे लोप होती जा रही है। पेट भरना, देह ढकना नित्य नये नये शृंगार करना और ऐश-आराममें मस्त रहना—इनके अतिरिक्त जीवनका उच्च-आदर्श और कुछ भी नहीं हो सकता।"—ऐसीही धारणा धीरे धीरे इनके हृदयमें अड्डा जमा रही है। भगवद्भक्ति, सर्वज्ञ प्रणीत आगमोंमें विश्वास, धार्मिक आचरण और दया भावका तो इनमें क्रमशः लोप होता जा रहा है।

यदि कहीं भी, किसी स्कूल या कालेजमें इस विषयकी चर्चा भी है, तो वह उन्हींके बनाये हुए 'बाइबेल' से ही की जाती है। हमारे शास्त्रोंको कहीं भी, किसी भी स्कूल या कालेजमें स्थान नहीं मिलता। इसलिये यह स्पष्ट है कि, आज कलकी प्रचलित अंग्रेजी-शिक्षा हमारे धर्म और आचारकी कट्टर विरोधी है। इससे प्रकारान्तरसे सिर्फ नास्तिकता और ऐहिक भोग-विलासकी ही शिक्षा मिलती है। इस शिक्षासे हमारे देशमें केवल हिताहित ज्ञान हीन व्यक्तियोंकी संख्या बढ़ती जाती है। यह ही नव शिक्षित वा ताजे सभ्य हमारी समाजमें उच्छृङ्खलताको आश्रय दे कर प्रकारान्तरसे ध्वंस पथके पाथक बन रहे हैं।

हमारे देशकी प्राचीन-सभ्यताका आदर्श, धर्म शास्त्रके विशेष ज्ञानके बिना नहीं जाना जा सकता। अपनेको पूर्ण शिक्षित या नेता मान, जनताके हितैषी बन कर जो हमारे धर्म शास्त्रके तत्त्वोंको बिना जाने हमारे प्राचीन आचार व्यवहार और राजनीतिकी चर्चा करते हैं, उन्हें आधुनिक ऐहिक सर्वस्व बुद्धिकी प्रेरणासे हमारे शास्त्र और पुराणोंमें दोष दिखाई देने लगते हैं। इसका प्रधान कारण उनकी शिक्षा ही है। इसलिये धार्मिक शिक्षा पाये बिना कोई भी शिक्षित संपूर्ण शिक्षित नहीं कहा जा सकता।

अंतमें हम शिक्षा विभागके कार्य कर्त्ताओंसे यह नम्र प्रार्थना करते हैं कि, यदि भारतको उन्नत पथमें लाना है तो सबसे पहिले शिक्षा-प्रणालीमें परिवर्तन करें। धार्मिक शिक्षा ही शिक्षाकी जड़ है। इसलिये प्रत्येक स्कूल या कालेज, पाठशाला या विद्यालय सब में धार्मिक ग्रंथ पढानेका अच्छा प्रबंध करें।

हमारे देशके पिता माताओंको भी अपनी प्यारी संतानको ऐसे शिक्षालयमें भर्ती कराना चाहिये, जहां धर्म-शास्त्र पढनेका विशेष प्रबंध हो। यदि उस गांव में या उनके गांवके आस पास ऐसा स्कूल या पाठशाला न हो तो उनको चाहिये कि अपने आप या गांव के लोगोंसे चंदा कर ऐसी पाठशाला स्थापित करलें; जिसमे धर्मशास्त्र पढाया जावे। इसीमें भारतका कल्याण है।

ब्रह्मचर्य पर कर्मवीर गांधीजीके विचार।

इस समय देशकी जो दुर्दशा हो रही है उसके और चाहे जो कारण हों पर दुर्दशाका आरम्भ ब्रह्मचर्यकी हत्या-व्यभिचार और अनाचारसे ही होता है। कलकत्ते मे हजार पीछे ३०९८ बच्चे मर जाते है इसका कारण क्या है? बड़े बाजारमें बच्चे प्राय: पैदा होते ही मर जाते हैं, साल भर जीनेसे पहले ही उनकी संख्या आधी हो जाती है इसका कारण ब्रह्मचर्यका अभाव है। और भी बहुतसे कारण हैं पर उन सब कारणोंका मूल ब्रह्मचर्यका अभाव है। हमारा कोई काम नहीं बनता जिस काममे हाथ डालते हैं, वही बिगड़ जाता है जो आन्दोलन करते है, वही विफल होता है। हमारी कोई पुकार सुनी नहीं जाती, पुलिसका एक मामूली चपरासी भी हमे डरा देता है, हमारे देशमें ही हमारा कोई अधिकार नहीं? ऐसी दुर्दशा क्यों है और यह कैसे सुधरेगा? वह बल नहीं है वह तेज नहीं है, वह धैर्य नहीं है जिसकी धाक लोग मानें। यह बल और धैर्य ब्रह्मचर्यके बिना प्राप्त नहीं हो सकता। इस लिये महात्मा गांधी सबको अखंड ब्रह्मचर्यका उपदेश देते है

"माता पिताओं का कर्तव्य है कि वे अपने बच्चोंको ब्रह्मचर्यकी शिक्षा दें। हिन्दू शास्त्रके अनुसार विवाह का अत्यन्त शीघ्र काल २५ वर्ष है। यदि हमारे माताओं को यह बात समझा दी जा सके कि वैवाहिक जीवन की तालीम लड़के लड़कियोंको पहलेसे देना पाप है तो हिन्दुस्थानमें होनेवाले विवाहोंकी आधी संख्या आप ही घट जाय। इस देशकी जलवायु उष्ण है और इसलिये यहां लड़कियोंको ऋतु शीघ्र प्राप्त होती है—यह ख्याल एकदम गलत है। शीघ्र ऋतु प्राप्त होनेके संबन्धमें जो संस्कार या अन्ध विश्वास फैला है उससे बड़ा अन्ध विश्वास और कोई मैंने नहीं अनुभव किया। मैं दावेके साथ कहता हूं कि जलवायुके साथ ऋतुका कुछ भी संबन्ध नहीं है। अल्पकालमें ऋतु जिससे प्राप्त होती है वह हमारे पारिवारिक जीवनको घेर कर रहने वाली मानसिक और नैतिक बातें हैं। माताएं और अन्य आप्तवर्ग निर्दोष बच्चोंको यह सिखलाना अपना धर्म समझते हैं कि अमुक वयसमें तुम्हारा ब्याह होने वाला है। नन्हे और गोदके बच्चों तकका वाग्दान हो जाया करता है! बच्चोंकी पोशाक और उनका खानपान

भी इस ढंगका होता है जिससे मनोविकार प्रबल हो। हम लोग गुड़ियोंकी तरह बच्चोंका शृंगार करते हैं—उनके आनन्दके लिये नहीं बल्कि अपने आनन्द और दम्भ:के लिये दोनों लड़कोंको मैंने पालकर बड़ा किया है। इन्हे जो भी पोशाक दी गई उसे उन्होंने बिना कठिनाईके बल्कि बड़े आनन्दके साथ पहना है हमलोग बच्चोंको सब प्रकारके मादक और उत्तेजक पदार्थ खिलाते हैं। प्यारसे हम इतने अन्धे हो जाते हैं कि हमें यही नहीं सूझता कि लड़कोंके कोमल शरीर पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा। परिणाम यह होता है कि जल्दी वीर्य या रजकी उत्पत्ति होती है, जल्दी सन्तति हो जाती है और जल्दी मृत्यु भी पहुंच जाती है। माता पिता वस्तुपाठ सिखलाते हैं और बच्चे भी उसे बहुत आसानीसे सीख लेते हैं। वे अपने मनोविकारोंके वश बड़ी लापरवाहीके साथ भोगमें लिप्त होकर अपने बच्चोंके सामने असंयत भोगका आदर्श रख देते हैं। परिवारमें एकाएक ही कोई बच्चा पैदा हो जाता है तो बड़ी खुशी मनाई जाती है। आश्चर्य इस बातका है कि इस समय देशकी जैसी हालत है तोभी हमें संयम नहीं सूझता। मुझे इस बातमें ज़रा भी सन्देह नहीं है कि विवाहित स्त्री पुरुष यदि वे अपने देशका कल्याण चाहते हैं और यह चाहते हैं कि हिन्दुस्थान सुदृढ़ और सुडौल स्त्री पुरुषोंका राष्ट्र बने तो वे पूर्ण संयमका अभ्यास करेंगे और फिल हाल अकाल सृष्टिसे बाज आवेंगे।"

महात्माजीने अन्तमें ब्रह्मचर्यके पालनेके १० नियम बतलाये हैं जिनका यथा सम्भव पालन करना बहुत ही आवश्यक है।

१ लड़के और लड़कियोंको सादगी और स्वाभाविक रीतिसे पालन कर उनके मनमें यह विश्वास पूर्णरूपसे जमा देना चाहिये कि तुमलोग निर्दोष हो और आगे भी निर्दोष रह सकते हो।

२ सबको मादक और उत्तेजक पदार्थोंका सेवन छोड़ देना चाहिये। तामसिक आहारको छोड़कर सात्विक आहार करना चाहिये।

३ पति और पत्नीको अलग अलग कमरोंमें रहना चाहिये और एकान्त न करना चाहिये।

४ शरीर और मन सदा सत्कार्यमें लगा रहना चाहिये।

५ जल्दी सो जाना और जल्दी उठना, इस नियमका कड़ाईके साथ पालन करना चाहिये।

६ अश्लील साहित्यको कभी न पढ़ना चाहिये। गन्दे विचारोंका उतार स्वच्छ विचार हैं।

७ नाटक थियेटर आदि जिनसे मनोविकार प्रबल होते हैं उनसे घृणा करना चाहिये।

८ स्वप्नदोषसे डरनेकी कोई जरूरत नहीं है। साधारण सुदृढ़ मनुष्य ऐसे अवसर पर ठंढे पानीसे एक बार नहा लिया करें यह इसका सबसे अच्छा उपाय है। यह ख्याल बिलकुल गलत है कि स्वप्नदोषसे बचनेके लिये बीच बीचमें भोग करना चाहिये।

९ सबसे बड़ी बात यह है कि कोई भी यह ख्याल न करे कि पति और पत्नीका ब्रह्मचर्यसे रहना इतना कठिन है कि वह असंभव हो समझिये, इसके विपरीत आत्म संयमको जीवनकी एक साधारण और स्वाभाविक बात समझनी चाहिये

१० पवित्रताके लिये हृदयसे कोई नित्य प्रार्थना करे तो वह उत्तरोत्तर अधिक अधिक पवित्र होता जाता है।

—भारतमित्र.

उदयचंद्र।

(लेखक—श्रीयुत धन्यकुमार जैन 'सिंह'।)

(१)

उदयचंद्र बाबू बड़नगरके डिप्टी मजिस्ट्रेट सब-डिविजनके कर्त्ता हैं। जब अंग्रेजी-शिक्षा प्रचंड मादक द्रव्यकी भांति पेटमें पहुंचते ही मस्तिष्कमें भीषण क्रिया प्रारम्भ कर देती थी; तब उन्हें विलायत जानेकी सूझती थी। यौवन अवस्थामें बी० ए० पढ़ते समय, दादीके पाससे कुछ रुपये लेकर वे विलायत भागने पर तैयार हुए; पर उनके एक मित्रने विश्वास घात कर उन्हें बंबईमें एक ऐसे भूतमें जहाजमें सवार होते वक्त पकड़वा दिया; जिससे उन्हें झकमार कर अपने घर लौटना ही पड़ा। परन्तु बंबईकी चौपाटी और जहाजकी जेटीमें विलायतकी जितनी हवा लगी थी, उतने ही से उनका चाल-चलन और मिजाज बहुत कुछ विलायती ढंगका हो गया था। शायद विलायत रह आने पर भी न होता। बी० ए० पास इतना करनेके साथ साथ दो इल्लतें पीछे लग गईं; जिससे उन्हें सागर-पार जानेका संकल्प विसर्जन करना ही पड़ा। उक्त दो इल्लतोंमें एकतो उनकी स्वयं पत्नी ही थीं; दूसरी नौकरी।

उदयचंद्र बाबूके पिता नथमल बाबू भी राज्यके ऊंचे ओहदे पर काम करते थे। आहार-व्यवहारमें उनका भी कुछ विचार नहीं था। पुत्र क्रमशः पिताके इस आदर्शको लांघता हुआ एक कदम आगे बढ़ गया। परन्तु नथ्थूबाबूने पेन्सन पाकर और अपने पुत्रको राजकीय कार्यमें बिठाकर दूसरा ही रास्ता पकड़ा।

उन्होंने लोगोंकी देखा देखी अपनी अंतिम जिन्दगी साधु संप्रदायमें सम्मिलित हो बितानेको ठानी। इस विचारको कार्यमें परिणत करनेके लिये गुरु भी एक विलक्षण साधु मिल गये। ये लोगोंमें ब्रह्मचारी नामसे प्रसिद्ध थे पर असलमें जैसे थे वह इनके जिगरी दोस्त व आस पासके बैठनेवाले ही सब जानते थे। नथमल बाबूसे इनकी पुरानी जान पहिचान थी और वह अधिक प्रीतिमें इस वास्ते परिणत होगई थी कि ब्रह्मचारी हरेक विरुद्ध अविरुद्ध आचरणको धर्म शास्त्रसे न्याय्य सिद्ध कर दिखानेमें कभी आगा पीछा न सोचते थे। छुआ छूत भक्ष्य अभक्ष्य की जिकर जब कभी नथमल इनसे करते और अपने चिर-अभ्यस्त साहबी आचारको शंकाकी दृष्टिसे देखते तभी ये सन्यासी महाराज उनको 'देश काल अनुसार धार्मिक आचरण व्यवहार भी बदल जाते हैं' की दुहाई दे पवित्र सिद्ध कर दिखाते। 'जैसी रूह फरिश्ते वैसे' के अनुसार अपनी हां में हां मिलानेवाले इन गुरुको पा नथमल बाबूने अपनी वृद्धावस्था सार्थक समझी। बड़ी खातिर खुशामद कर ब्रह्मचारीजीको अपने यहां ही रखने लग गये। शाम सुबह गप्पें करना, अखबार पढ़ना, ताश खेलना टहलने जाना आदि कार्यावलीसे दोनों महाशयोंके दिन गुजरने लगे।

(२)

उदयचंद्रमें विद्या बुद्धि सब ही थी, अभाव था तो सिर्फ पुरातन दर्शनशास्त्रके ज्ञानका या भारतीय आचार व्यवहारसे प्रेमका। साहबी हवसमें वे पिता से दो कदम आगे ही थे। नथमलमें जो आदतें थीं उन्हें वे करते जरूर थे पर साथही ऐसा करना सर्वथा अच्छा भी न समझते थे; लेकिन पुत्र उदयचंद्रसे कोई इस विषयमें कुछ बात चीत करता तो वे तन मनसे उपयोगी और कर्तव्य कार्य सिद्ध किये विना न रहते। उनका विश्वास थो "भारतियोंका समस्त आचार व्यवहार, पोषाक परिच्छद, खान पान, पालन पोषण, सम्मिलित कौटुम्बिक वास आदि सब अधूरी सभ्यताका परिचायक है और उसे पूरा सभ्य होनेके लिये शताब्दियोंका समय लगेगा। इसके विपरीत पाश्चात्य (यूरोपीय) गण सब ही सभ्य हैं उनकी नकल करना सभ्यतामें कदम रख अग्रसर होना है। कोट बूट पतलून पहिरना, सर्वदा तैयार रहनेका चिन्ह है। चिमटासे उठा उठाकर खाना, बोतलकी बोतल सोडा वाटर डकार जाना स्वास्थ्यका साधन है। दीन होनों भूखों प्यासोंको पालना आलसियोंकी संख्या बढ़ाना है। भाई बहिन भौजाई मामी फूफी आदिका सम्मिलित रखना अपनी गाढ़ी कमाईका दूसरोंको हक दे अन्याय करना है।"

उक्त प्रकारके विचार प्रवाहमें बहनेवाले उदयचंद्रको पिताका सन्यासीको साथ रखना भी खटकता था। अतएव समय समय पर वे कहा भी करते थे कि-"बुढौतीमें इतना सब पढ लिख कर भी हमारे बाबूजीकी अक्ल चौपट हो गई है। भला एक आदमीको अपने पास रखने, उसके सब प्रकारसे भरण पोषण करनेकी क्या आवश्यकता? और न हो तो कम से कम भोजनका चार्ज तो ब्रह्मचारीसे वसूल करना ही चाहिये!"

नथमलजी भी पुत्रकी उक्त सदिच्छा और विचार विचित्रताको न समझते हों-यह बात नहीं, लेकिन जान बूझकर वे इस विषयमें कभी तर्क वितर्क या प्रश्नोत्तर न करते थे। उनने सोच रक्खा था कि-अपने कामसे काम, व्यर्थके झगड़ेमें क्या रक्खा है?

इतना सब होने पर भी उदयचन्द्र विचारशील थे वे ब्रह्मचारीजी या सन्यासीके नैतिक और व्यावहारिक चारित्रकी तरफ कड़ी निगाह रखते थे। जब कभी उदयचंद्र ब्रह्मचारीजीको एकांतमें किसी स्त्रीके साथ बातचीत करते देखते; तब ही उनके चित्तमें नाना शंकाओंका भूत सवार हो जाता "और स्त्रीके रहते हुए भी ब्रह्मचर्य पालनकी प्रतिज्ञा" की प्रसिद्धि उनके बीचमें खड़ी हो समाधान कर शांति दे जाती। जब कभी रात्रि-भोजन, अभक्ष्य भक्षण करते देखते तब ही अपने समान अंग्रेजीदां समझ चुप रह जाते। गरज यह कि ब्रह्मचारीजीके विषयमें लोगोंकी जब राय सुनते तब तो शंकित हो जाते और जब पछैयां हवाकी लहरमें लहराने लगते तब कुचारित्र सुचारित्रकी समता अपना असर बिना दिखाये न रहता।

(३)

उदयचंद्रके एक बहिन कोई चौदह वर्षकी अविवाहित थी, उसका नाम विमला था। अंग्रेजी शिक्षाके प्रभावसे नथमल और उनके पुत्र डिप्टी साहब दोनों ही बाल विवाहके विरोधी थे। इसके सिवा वे लड़के लड़कियोंका विवाह करना मा बाप या भाई भौजाईका कर्म न समझते थे वे अक्सर यह कहा करते— जिस प्रकार गाय भैसोंके झुंडमें सांड और भैसोंको

कभी कोई पसंद कर दरम्पर संयोग नहीं करता, वे जिसको चाहें पसंद कर अपना काम निकाल लिया करते हैं, उसी प्रकार मनुष्य समाजमें भी होना उचित है।"—इसी सिद्धान्तके वश भूत हो पिता व माईने कभी विमलाके लिये वर ढूंढनेका तकलीफ नहीं उठाई। विमला को भी अपने संरक्षकोंको इस कार्यवाहीमें कुछ खेद नहीं हुआ। कारण वह भी 'गवर्नमेंट हाई स्कूलकी' ६ वीं क्लासमें पढती थी और चार हालको कुछ कुछ समझी कर चुकी थी। मैमोंजैसा टोप और गौन धारण कर विमला जब स्कूल जाती तो साहब जैसी घेरोई करने लगती और इसलिये विवाहित अविवाहित की कोई शंका न कर सकता। लेकिन जातिके लोग, गावोंकी अपढ औरतें और मुहल्लेकी बुढियां बड़ी 'चलते-पुर्जा' होती हैं। वे अक्सर विमलाकी चाल ढाल, ओढन पहिरनकी परस्परमें समालोचना किया करतीं और अभी तक विवाहित न होनेके कारण तो आकाश पाताल एक कर दिखातीं। कोई कहती— हैं! दीवान और डिपुटी हुये तो क्या? विटिया तो जवान हो कुंवारी फिर रही है।' कोई कहती—'भाई! अभी पढ रही है विवाह होते ही ससुराल चली जायगी, तो फिर पढ़ना छूट जायगा, इसलिये जब खूब होशियार होजायगी तब विवाह होजायगा।' मुंडे मुंडे मति 'भिन्ना' के अनुसार पुराने जमानेकी कोई खाला तो यहां तक कह बैठती— तुम सब तो पागल हो! जब बिना रुपया पैसा खर्च किये, विवाह बिना करे कराये ही काम चल जाय तो क्या जरूरत है चाहने एक ब्रह्मचारी रख तो रक्खा है, लड़कीका पढ़ना भी नहीं छुटता और काम भी—

नामवरी एक कोश और बदनामी हजार कोश, के अनुसार विमलाकी बात छिपी न रही उदयचंद्रके कान तक कुछ कुछ भुनभुनाहट इसबातकी पहुंची। और सोलही आने इस बातकी सचाई तो तब प्रमाणित हुई जब कि विमलाका गणेशजीसा स्थूल उदर, नीबूकासा पीला चहरा और छिपकलीसी आंखें हो गईं एवं भंडा फोड़ हो जानेका समय अति सनीप आ उपस्थित, हुआ।

(४)

पूनामें एक अनाथ बाल संरक्षक गृह है इसमें जो विधवा, सधवा, विवाहित या अविवाहित स्त्रियां अपनी संतानकी रक्षा नहीं कर सकतीं या निन्दाके भयसे खुले मैदान प्रसव नहीं कर सकतीं उनकी निंदा छपानेका भली भांति उपाय किया जाता है प्रतिवर्ष सैकड़ो ही बच्चे यहां उत्पन्न होते हैं और उनका पालन पोषण कर मनुष्य संख्याकी वृद्धिकी जाती है।

हमारे वृद्ध नथमल साहब भी अपनी बुढौतीकी कालिमाको संसारमें प्रगट न होने देनेके लिये करीब एक महीनासे यहीं ही अपना डेरा डाले हुये हैं साथमें चतुर बेटी विमला भी है यहां ब्र० जी या सन्यासी महाराज भी हैं या नहीं, सो हम ठीक ठाक तो नहीं कह सके पर इतना जरूर है कि सामके समय विमला घंटा दो घंटाके लिये हवाखानेका बहाना कर अविदित स्थानकी ओर प्रतिदिन अवश्य जाया करती है। यहां उनका कोई जान पहिचानका नहीं है इसलिये किसीको भी उसके विषयमें कुछ नहीं मालूम है। बाल संरक्षक गृह के प्रबन्ध कर्ताओंको तो यहांके नियमानुसार कुछ भी पूछनेका अधिकार नहीं है लेकिन यह सब जानते हैं कि श्रीमान् और पदवीदार किसी घरानेकी यह कन्या है। पूरे डेढ महीना रहकर विमला ने एक पुत्र पैदा किया और वृद्ध पिताके साथ १५-२० दिन रहकर अपने घर लौट आई।

जिस प्रकार एकवार मनुष्यका खून करनेवाले पुरुषका हृदय उत्तरोत्तर मजबूत होता जाता है उसी प्रकार एकवार शुभ सन्तान प्रसव करनेसे दृढ़ हुई विमला भी अब परीक्षोत्तीर्ण हो चली एक तरफ तो वह एफ० ए० बी० ए० की परन्तु सेकेण्ड क्लासकी परीक्षाओंको पार करती चलती है दूसरी तरफ पुत्राके उच्च गृहको अलंकृत करआया करती है। परन्तु यह कि २२ वर्षकी अवस्थामें उसने बी० ए० की परीक्षा पास की और तब तक परीक्षामें पतिव्रता होकर भी कुमारी कहलानेका सौभाग्य उसको बना ही रहा। लेकिन सर्वदा स्वतन्त्रताकी आराधना और शुश्रूषा करते रहनेसे वह किसी पुरुषकी आज्ञाकारिणी बनकर कैसे रह सकती! पहिले अभिभावकोंकी इच्छा, पात्राभाव आदि नाना कारणोंसे विवाह नहीं हुआ और अब विवाह कर एक पुरुषकी बंदी रहना मनुष्यताके विरुद्ध समझ उसने विवाहकी सर्वथा मनाई करदी। इसके सिवा अपना वर अपने आप पसंद करनेकी उच्च सभ्यताके वशवर्ती होकर भी शिक्षित माई और पिता कुछ जोर न दे सके। इस प्रकार विमला मिस (कुमारी) रहकर यथेच्छ प्रवृत्ति करने लगी।

(५)

उदयचंद्रजी जातिके अग्रवाल थे। इनके घरमें वैष्णव धर्मकी आराधना होते भी पत्नी जैन पुत्री होनेसे जिन धर्मका सेवन किया करती थी और पतिको धर्म कर्मकी विशेष पक्षपाती न होनेके कारण कभी किसी प्रकारका विघ्न न आया करता था जैन साधुओंकी महत्ता और उनके चारित्रकी कष्ट साध्यताका उदयचंद्रजीकी पत्नी कमलाको तो अधिक ज्ञान और श्रद्धान था पर बाबूजी सामान्य वेषधारियोंके समान ही समझते थे। विमला और पूर्वोक्त सन्यासीजीको चरित्र-वर्णनाकरते २ कमलाने घमंडके साथ एक दिन कहा था कि—सब एकसे नहीं होते, हमारे साधुओंकी तो क्या बात मामान्य व्रतधारी मनुष्यकी तुलना भी गेरुवे वस्त्रोंको पहिननेसे भीतरी कालिमाको प्रगट करने वाले साधु नामधारी लोग नहीं कर सकते। भला! संसारसे विरक्त शुद्ध आत्माके स्वरूपमें प्रेम करने वाले मनुष्योंको वर्षोंमें एक जगह डेरा डालकर रहनेकी क्या आवश्यकता! जो गृहरूपी कीचड़में युवती युवती स्त्रियोंके समूहमें रहे और अपनेको वैरागी बतलावे तो उससे अधिक छली कौन है! ऐसे लोगोंके फंदेमें तो अयाने लोग ही फसते हैं सयाने नहीं। किसी दिन यदि भाग्य हुआ तो आपको जैन मुनिके दर्शन कराऊंगी जिससे आपके हृदयका विपरीत भाव सर्वथा दूर हो जायगा।

(६)

नथमलको मरे आज दो वर्ष हो गये हैं, तबसे उदयचंद्र अपने दैनिक कर्तव्य कर्म, सांसारिक व्यवहार आदिके जितने भी काम करते हैं उनमें एक बातका सदा ध्यान रखते हैं और वह यह कि कभी किसी साधु सन्यासीको अपने यहां कदम नहीं रखने देते। वे सदा अपनी बहिन व पिताके साथ ब्रह्मचारीका सद्व्यवहार देख सबको वैसा ही समझने लगे हैं। पहिलेकी समस्त साधु महात्माओंकी कथाओं, किंवदन्तियोंको वे अतिशयोक्ति या भक्ति भावाश्रित गाथाओंके सिवा कुछ नहीं समझते। बल्कि यही नहीं, जहां तक उनको पेशजाती है साधु सन्यासी होनेका मार्ग बंद करदेने तककी कोशिश करते हैं यही कारण है कि इनकी माता धर्म भक्त होने पर भी साधुओंकी शुश्रूषा करनेका मनमें इच्छा रख कर भी कभी उनके साथ एक बात भी नहीं करने पाती बातकी तो क्या बात? परछाहीं तक नहीं देख सकी इसी कारण और पास

के जितने साधु सन्यासी थे सब ही डिपुटी मजिष्ट्रेट साहबकी इच्छा जान चुके थे और पादप्रहार यो घुघुकारको सहनेकी किसमें सामर्थ्य नहीं बची थी लेकिन पतिके मर जानेसे सर्वथा पुत्रकी इच्छा पर चलने वाली बुढ़ियाको अन्य बातोंसे जो खेद होता था उससे कहीं बढ़ कर साधुओंके अपमानसे होता वह मनही मन पछताया करती और मौके बे मौके कहा करती मालिक मर जानेसे घरको मालिकी छुट जाती है। वे जीवित होते तो क्या दो वर्षमें एक भी साधु घर न आता। लेकिन मांकी उक्त सदिच्छाको पुत्र पहिले इतिहासको स्मरण करा दबा दिया करता और बुढ़िया चुप हो जाया करती।

(७)

जब किसी एक जातिका मनुष्य कुछ अपराध कर दिया करता है तो लोग उस जातिके सब ही मनुष्यों को उसी सरीखा समझने लगते हैं यही कारण है कि विमलाके परोक्ष पति सन्यासीजीको देख कर उदयचंद्र जीकी साधुओंके विषयमें उक्त धारणा हो गई थी, लेकिन मनुष्यका जब भला होना होता है तब कारण भी वैसे ही मिल जाया करते हैं।

कुछ दिनोंके बीतने पर विहार करते २ एक जैन साधु पधारे। प्रातः कालीन समस्त चर्या संपूर्ण कर ये आहारार्थ निकले। अन्य श्रावकोंकी भांति उदयचंद्रजीकी पत्नी कमला भी हाथमें जलकी भरी झारी और विविध प्रासुक द्रव्य ले दरवाजे पर खड़ी हुई। चंद्रज्योत्स्नाके समान समस्त गृहोंमें अपनी शरीर छाया दिखलाते हुये मुनिराज क्रमसे उसके दरवाजे पर पधारे और मनोगत अपनी प्रतिज्ञाकी पूर्ति समझ वहीं हो ठिठक रहे। मुनिको अपने समीप ठहरा समझ कमलाने नवधा भक्ति पूर्वक पड़िगाहन किया और पाद प्रक्षालन का जल शिर पर लगा रोमांचित हो गई। यह सब हाल बाबू उदयचंद्रजी भी देख रहे थे और नाना प्रकारके तर्क वितर्कोंके साथ साथ उनकी आत्मा पर गहरी भाव मुद्रा पड़ रही थी। वे सोचते थे कि एक तो यह शीतकालका समय, दूसरे सुंदर २ स्त्रियोंका निगाह तले आना एवं अन्य भी नाना तरहके विघ्न कारण तो भी इनका मन कुछ भी कष्ट या दुःखका अनुभव नहीं करता। हम सरीखे क्षुद्र मनुष्योंका मन तो वस्त्रों से सर्वथा आच्छादित शरीरके रहने पर भी विचलित हो जाता है और कषायपोषकताके नाना कारण ढूढने लगता है। ऐसा विचार करते २ हीं उदयचंद्र आनन्द सागरमें गोते लगाने लगे, और हाथ मस्तक पर रख मुनिके पास नम्र भावसे जा बैठे। आहार कर चुकनेके बाद मुनिराजने कर्तव्यानुसार कुछ धर्मोपदेश दिया और प्रति दिन स्वाध्याय करनेकी प्रतिज्ञा दे अपने अभीष्ट स्थानकी ओर पधार गये।

(८)

बा० उदयचंद्रजीने विमलासे सर्वथा संबंध त्याग दिया है, उसकी स्वेच्छाचारिता उन्हें आंखमें तिनके की भांति खटकती है। वे समान स्वभाववाली पत्नीके साथ कमलालय बना निवास करते हैं और पेंशनके दिनोंको ऐहिक पिताका आदर्श न मना धर्म पिताके आदेशानुसार बिताते हैं पर एक शल्य उनके हृदयमें अब भी मौजूद है कि वर्षों तक परिश्रम करने पर भी जिन मुनिके दर्शन और उपदेशसे सुमार्ग मिला था उनके दर्शन फिर न मिले।

ब्रह्मचारीजीका हृदय ।

यह बात जैन समाजसे छिपी नहीं है कि ब्र० शीतल प्रसादजीके जैसे रंगे हुये कपड़े हैं वैसे उनकी आत्मा भी रंगी हुई है। विशेषता इतनी है कि कपड़े इकरंगे हैं, आत्मा दुरंगी है। बहुतसे लोगोंका यह भी खयाल है कि—ब्रह्मचारीजी हर एक व्यक्तिको खुश रखना चाहते हैं इसीलिये उन्हें दुरंगी चालें चलनी पड़ती हैं। बहुतोंका खयाल यह है कि उनकी आत्मा बहुत कमजोर है जरा जैसा नीतिवालोंका उनपर प्रभाव पड़ता है वैसा ही स्वर वे भी निकाल बैठते हैं। बहुतोंका कहना है कि उनके भीतरी विचार दूसरे हैं और अपना सम्मान रक्षाके लिये ऊपरी विचार दूसरे ही गोलमाल रूपमें वे अपने पत्रमें प्रगट करते हैं और करते हैं। ऊपरके दो खयाल वालोंकी बात तो हमारी समझमें नहीं आती कारण कि ब्रह्मचारीजी संस्कृत अंग्रेजी उर्दूके विद्वान हैं और आजकलकी जो चतुराई समझी जाती है उसके प्रचार चतुरोंमें उनकी गणना भी होती है। समाजमें भी वे खूब घूम चुके हैं। जहां उनका पत्र जैनमित्र भी नहीं पहुंच पाता वहां वे स्वयं पहुंचकर ख्यातिलाभ कर चुके हैं। इसलिये वे सबको खुश रखना चाहते हैं अथवा उनकी आत्मा कमजोर है यह बात गले नहीं उतरती। हां! तीसरी बातके विषयमें जैसा कि जैनहितैषीने प्रगट किया है कि 'ब्रह्मचारीजीके निजी विचार कुछ और हैं और बाह्यमें सम्मान रक्षा और लोक रंजनके लिये कुछ और विचार प्रगट करते रहते हैं।' हमारा भी ऐसा ही विश्वास है। इन दुरंगे विचारोंके कारण वे बाबुओं, पण्डितों, सेठों, त्यागियों, आदि किन्हींके भी विश्वास भाजन नहीं हैं। कलकत्तेमें होनेवाले महामण्डलके अधिवेशनमें उन्होंने उसके अध्यक्षकी हैसियतसे जो गोलमाल भाषण दिया था उस पर स्व० बाबू दयाचंदजीने उन्हें खूब सुनाई थीं, उधर सम्पादक जैनगजटने भी उनको दुरंगी चालका परिचय कराया था। जैनहितैषी और सत्यवादी ने अनेकवार उनके इस उपयोगी गुण का वर्णन समय २ पर किया ही है। ऊपर कुछ और, भीतर कुछ और, इस नीतिका कारण ब्रह्मचारीजीकी क्रमसे प्राप्त शिक्षा है—पहले उन्होंने केवल अंग्रेजी पढ़ी थी, धर्म शिक्षा विहीन केवल अंग्रेजी बाबुओंके जो धर्म विहीन संस्कार होते हैं—उन्होंने उनकी आत्मामें स्थान पा लिया है पीछे उन्होंने समयसारादि ग्रन्थोंके अवलोकन और मननसे आर्ष वचनोंका विशेष आनंद और उनकी विशेष दृढ़ता भी हुई है। इन दोनों संस्कारोंके मिश्रणसे बिचारे ब्रह्मचारीजी दोनों तरहके लिये (दुरंगी चालके लिये) बाध्य हैं। यही कारण है कि वे कभी सम्यग्दर्शन और आत्मानुभवका व्याख्यान देते हुए इतने तन्मग्न हो जाते हैं कि आंखमीच कर 'अहा! ओहो' की ध्वनि निकालने लगते हैं। यह उनका भाव सर्वथा दिखावटी है ऐसा भी हम नहीं कह सकते। परंतु वे आर्ष वाक्योंके पूर्ण पक्षपाती हैं ऐसा भी हम नहीं कह सकते, क्योंकि आर्ष निषिद्ध विधवा विवाहके वे पूर्ण पक्षपाती हैं। इस बातको ब्रह्मचारीजी की नीतिसे परिचित सभी जानते हैं। जैनहितैषीने कई बार प्रकट किया है कि ब्रह्मचारीजी विधवा विवाहके पूर्ण पक्षपाती हैं। एक बार बाबू बुधमल

पाटणीने इंदौरके सेठ कल्याणमलजीको विधवा विवाहके पक्षपाती बतलाते हुए ब्रह्मचारीजीको भी उसके पक्षपाती और एक सभामें व्याख्यान द्वारा विधवा विवाहको पुष्ट करनेवाले बतलाया था। यदि ब्रह्मचारीजी उनके विपक्षमें होते तो तुरन्त ही उक्त बाबू साहबके कथनको असत्य सिद्ध कर डालते, कमसे कम जनताके भ्रम निवारणार्थ तो एक लेख द्वारा अपने विचार प्रगट कर देते परन्तु उन लोगोंके सामने हुई बातके विरुद्ध वे कैसे लिखें। अभी हालमें पं० झम्मनलालजी तर्कतीर्थने अनेक शास्त्रीय और लौकिक युक्तियों द्वारा विधवा विवाहका खण्डन एक ट्रैक्टमें प्रसिद्ध किया है। उस ट्रैक्टकी अनेक विद्वानोंने प्रशंसा की है, कई विधवा विवाह पक्षपाती महाशयोंने भी तर्कतीर्थ जी की युक्तियोंकी हार्दिक प्रशंसा की है, परन्तु हमारे ब्रह्मचारीजीने उन युक्तियोंसे विधवा विवाहका मार्ग रुकता हुआ समझ कर उसकी समालोचनामें तीन चार प्रश्न कर डाले हैं। वे प्रश्न भी कोई महत्त्वके नहीं हैं, उनका उत्तर भी लेखकने उस ट्रैक्टमें लिखा है, फिर भी बिना पूरी पुस्तकके पढ़े ब्रह्मचारीजीने उस पुस्तकको असंतोषित सिद्ध करनेकी चेष्टा की है। उनकी यह चेष्टा विधवा विवाहको आवश्यक और विपक्षमें दी गई युक्तियोंको निस्सार सिद्ध करनेके लिये ही है। अन्यथा अब भी प्रगट करदें कि हम ऐसे धर्म निषिद्ध, समाजमें नीचता फैलाने वाले, विधवा विवाहके पक्षपाती नहीं हैं। उनके ऐसा प्रगट करनेसे हम अनेक विषयमें वैसी धारणा निकाल देंगे अन्यथा समस्त जनताका जैसा कि अब विश्वास है वह और भी दृढ़ हो जायगा।

ब्रह्मचारीजी जाति भेदको उठाना चाहते हैं—ऐसी आवाज तो कई व्याख्यानोंमें और जैनमित्रके कई अंकोंमें जोरसे लगा चुके हैं परन्तु जाति भेद उठाने वालोंको नमूना एवं आदर्श बतलानेसे और उनके विचारोंकी हार्दिक प्रशंसा करनेसे हमें संदेह होता है कि कहीं ब्रह्मचारीजी वर्णभेद उठानेमें भी पृष्ठपोषक सहायक तो नहीं हैं? कारण कि जो जो महाशय समाजमें जाति भेद उठानेके उद्योगमें लगे हुए हैं उनका वह उद्योग वर्ण भेद उठानेके लिये भी बराबर जारी है। इटावामें जो कुछ समय पहले एक जैन भ्रातृ सम्मेलन खोला गया था, उसका उद्देश्य जाति भेद उठानेका प्रगट किया गया था, परन्तु उसके संस्थापक और संचालक बाबू भगवानदीनजी बाबू चन्द्रसेनजी आदि हैं, इन महाशयोंका सिद्धांत है कि "भंगी चमारके साथ खानेमें कोई दोष नहीं है, वे भी हमारे हैं, वर्णभेदकी अब कोई जरूरत नहीं है, वर्णभेदसे देशका कभी उत्थान नहीं होगा आदि।" इन्हीं विचारोंके समर्थक बाबू सूरजभानु अर्जुनलालजी नाथूरामजी आदि हैं। ये सभा करके जातिभेद और वर्णभेद उठाना चाहते हैं। इनके एक विचारसे सम्बन्ध रखने वाले दूसरे (भीतर) विचारके विषयमें कुछ न कहना, और उनके एक विचारकी प्रशंसा तथा पुष्टि करना क्या दूसरे विचारके विषयमें सन्देह नहीं पैदा करना? अन्यथा उन्हें स्पष्ट करदेना चाहिये कि हम ऐसे विचार वालोंके उन छिपे हुये विचारोंसे सर्वथा सहमत नहीं हैं, प्रत्युत उनके उन विचारोंकी निंदा करते हैं। परन्तु ब्रह्मचारीजी सबकुछ जानते हुए भी स्पष्ट बात कभी नहीं कहते, किन्तु गोलमाल बात कहकर समाजको धोखेमें डाल देते हैं जैसा कि अभी हालमें उन्होंने सेठी अर्जुनलालजीकी पुत्रीके विवाह सम्बन्धमें सेठीजीको एक उत्तम नमूना पेश

करनेवाला बतलाया है। जिन सेठीजीको जातिभेद उठानेमें ब्र० जीने नमूना बतलाया है उन्हीं सेठजीने उदयलाल काशलीवालका विवाह एक अज्ञात जाति (सुना गया है-ब्राह्मणी) विधवासे स्वयं कराया है जैसा कि निमन्त्रण पत्रोंमें प्रसिद्ध किया गया है। क्या अब ब्र० जी उन्हें जातिभेद उठानेके साथ वर्ण भेद उठानेका आदर्श भी समझेंगे? अथवा अब जाति भेद उठानेका नमूना पेश करनेवाला भी उन्हें वे नहीं समझेंगे! ब्र० जीकी क्या अन्तर्नीति है सो कुछ समझमें नहीं आती। सेठीजीके ज्वलन्त उदाहरणसे हमारे कथनकी स्पष्टता उन्हें प्रतीत हुई होगी।

ब्रह्मचारीजी सुधारकोंकी अनेक धर्म विरुद्ध बातोंको छिपा जाते हैं यह बात भी उनके प्राच्य संस्कारका परिणाम है। वर्धामें शाह बाड़ीलाल मोतीलालजीने जिस असत्य पूर्ण धोखेबाजीसे काम लिया उसे आपने तुरन्त प्रकाशित न किया किन्तु कारणवश कुछकाल पीछे आपको उसका बहुभाग प्रकाशित करना पड़ा। ऋ० ब्र० आश्रमके आप अधिष्ठाता हैं, उसकी भीतरी दशाको आपने स्पष्ट रूपसे कभी नहीं प्रगट किया। अन्यथा उस संस्थाका सुधार होना कोई कठिन काम नहीं था। वहांका धर्म विघातक मिश्र नीतिको हटाकर शुद्ध नीति करनेका आपका उद्योग न तो अब है और न उसके होनेकी आशा ही है सेठी अर्जुनलाल जीकी वास्तविक दशाको बतलानेवाले अनेक लेख जैनमित्रमें छपनेके लिये आये परन्तु आपने उन्हें प्रकाशित नहीं होने दिया! कितनी बातें ब्र० जीने छिपाई हैं इस विषयमें कहां तक कहा जाय!

यद्यपि ब्रह्मचारीजी संस्कृतकी उन्नति चाहनेवाले भी हैं साथ ही आप कालेज़के इतने प्रेमी हैं कि उसकी धुनमें काशीकी स्याद्वादपाठशालाको कालेजकी शाखा बनानेमें भी आप राजी हो गये अन्यथा उस पाठशाला के मन्त्री बाबू सुमति सादजीने उक्त पाठशाला के द्रव्यको कालेजमें लेनेके लिये जैनमित्रके कई अंकोंमें कई लेख निकाले परन्तु उसके अधिष्ठाता ब्र० जीने उन लेखोंका प्रतिवाद नहीं किया। यदि वे वैसा न चाहते तो अपने पत्रमें वैसे लेख कभी न निकलने देते। हमें तो इसमें भी सन्देह है कि विना अधिष्ठाताकी सलाहके उसका मंत्री उसकी सत्ता मेटनेवाली बात समाजमें रख दे! उक्त बाबू साहबने मथुरा महाविद्यालयके विषयमें भी कालेजकी सम्मति दी थी। परन्तु विद्यालयके मंत्री मुंशी मूलचंदजी वकील ने उन्हें तुरन्त एक नोटिस दिया था कि तुम्हें विद्यालयके विषयमें वैसी सम्मति देनेका कोई अधिकार नहीं है। बाबू सुमतिप्रसादजी तो पुलिस विभागके क्लर्क हैं, उनके वैसे विचारोंका हमें आश्चर्य नहीं, परन्तु ब्र० जी की कार्य प्रणालीका अवश्य ही खेद है। ललितपुर वाली शास्त्रिपरिषद्में बा० सुमतिप्रसादजीके लेखके विरुद्ध एक प्रस्ताव रक्खा जानेवाला था परन्तु ब्रह्मचारीजीने उसको नहीं रखने दिया और जैनमित्रमें कालेजके प्रस्तावके विरुद्ध लेख देनेका वहां वचन दिया था हमें जहां तक स्मरण है उनका वैसा लेख आज तक प्रकाशित नहीं हुआ। ये सब बातें ब्रह्मचारीजीकी दुरंगी चालकी चालें हैं।

ब्रह्मचारीजीका सेठीजीके नाम प्राइवेट पत्र और सेठीजीकी मामीजीके उत्तरमें दिया हुआ खुलासा पत्र भी उनकी भीतरी मिश्रित आत्माका परिचायक है। समाज अब सेठीजीके विचारोंसे अच्छी तरह परिचित हो चुकी है वे जैनधर्मको वैष्णवधर्मसे निकला हुआ बतलाते हैं। मूर्तिपूजाका खण्डन करते हैं। जैन मूर्तियोंको तोड़ देनेके लिये और जैन शास्त्रोंको जला

देनेके लिये भी उनके उद्गार निकलचुके हैं। एक वै-ष्णवके घर रात्रिमें भोजन करके वे धन्य जीवन बन ही चुके हैं। मुहम्मद, विष्णु, बुद्ध ईशा वगैरहको नमस्कार कर सच्ची देशभक्तिका परिचय भी वे दे चुके हैं। स्त्री मुक्ति नामका लेख दूसरेके नामसे छपाकर दिगम्बर जैनाचार्य और उनके बनाये हुए शास्त्रोंको झूठ सिद्ध करनेमें कोई कसर उन्होंने नहीं रक्खी है। जेलखानेमें रहनेके अन्तिम दिन तक देवदर्शन कर भोजन करनेकी दुहाई देकर जिन सेठीजीने समस्त समाज को धार्मिक सहायताके लिये बाध्य कर दिया उन्हीं देशोद्धारको ढोंग मारनेवाले सेठीजीने उसमे निकलते ही मूर्ति पूजाका निषेध कर अपने मंत्र मायाचारका परिचय देकर आधुनिक नवीन सुधारकोंके हृदयका परिचय भी करा दिया है। जिस गीता रहस्यको उसकी विस्तृत टीका बनाने वाले स्वर्गीय तिलक महाराज भी नहीं समझ सके थे उसे सेठ जी समझे हैं। अन्यथा मूर्ति पूजाका निषेध कैसे करते ? अस्तु जिस बातको समाज जानती है वह ब्रह्मचारीजीसे छिपी हो यह बात किसीके ध्यानमें नहीं आसक्ता। यदि किसीके ध्यानमें आवे भी तो हमारे ब्रह्मचारीजी ने ता० १४ अक्टूबरके जैनमित्रमें सेठजी की अश्रद्धा को स्वयं प्रगट कर दिया है। सेठीजीकी इस धर्म द्रोहिता और उनके मिथ्या भावोंको समझते हुये और स्वयं उसको उल्लेख करते हुये भी ब्र० जी महाराजने सेठीजीके प्रति सम्यग्दर्शनका हार्दिक वात्सल्य अंग प्रगट किया है परन्तु एक सप्तम प्रतिमा धारीके लिये यह वात्सल्य अंग कहां तक योग्य है इसको वेही जाने ब्रह्मचारीजी अपने प्राइवेट पत्रमें सेठीजीको लिखते हैं कि 'आप जैनसिद्धान्तके मर्मको जानने वाले हैं, जीवन कैसे सार्थक बनता है इससे भी पूर्ण विज्ञ है चाहे किसी स्वार्थसे हो, चाहे कर्मोदयसे हो उक्त विचार सेठीजीके जैनधर्म विषयक पूर्ण अज्ञानको प्रगट करते है, ऐसी अवस्थामें ब्र० जीका उन्हें जैन सिद्धान्तका मर्मज्ञ बताना कैसी समझदारीका काम है ! या तो उनके ऊपर सेठीजीके प्रभावका पूर्ण असर है जिससे ऐसी घोर प्रतिकूलतामें भी उन्होंने ऐसा खुशामदी वाक्य लिख मारा या समयसारी ब्र०जीको भी समयसारके अहोरात्र मनन करनेसे जैनधर्ममें वेदान्त वादका मर्म मालूम हुआ हो इसलिये सेठीजीके ज्ञान की उन्होंने प्रशंसाकी हैं। अन्यथा जैनधर्मको वैष्णव धर्मसे निकला हुआ कहनेवाले और एक ब्रह्मकी श्रद्धा रखनेवालेके लिये जैनधर्मका मर्मी लिखना क्या उन्हें उचित है? क्या ऐसी खुशामदोंसे सेठीजीका सुधार होगा! हम कह सक्ते हैं कि सेठजी पहले भले ही जैनधर्मका कुछ ज्ञान रखते हों परन्तु इस समय वे उसके विषयमें सर्वथा अज्ञ हैं। इस समय उन्हें जैनधर्मके वैपरीत्य भावोंसे रोकनेकी आवश्यकता है नकि उनके झूठे गीत गानेकी। कहना चाहिये कि सार्थक जीवनका सेठजीने मिथ्या श्रद्धानसे निरर्थक कर डाला। मालूम होता है कि सार्थक जीवन कैसे बनता है इस बातको वे तनिक भी नहीं समझते अन्यथा स्वपरकल्याणकारी जैनधर्मसे वे कभी विमुख न होते।

अपने प्राइवेट पत्रके अन्तमें ब्र० जीने भावना प्रगटकी है कि "जैसे जैपुरके पं० टोडरमल दौलतराम सदासुख, पं० जयचंद्र आदिने जैन जातिका उपकार किया है उससे कहीं अधिक उपकार आपकी आत्मा तथा मन वचन कायके द्वारा सम्पादन हो तथा जैन धर्म व अहिंसा तत्त्व जगतमें विस्तरै" भावना बुरी नहीं है परन्तु पं० टोडरमलजी आदिने गोम्मटसारादि

ग्रन्थोंकी टीकाओं द्वारा समस्त समाजका चिर स्मरणीय महान् उपकार किया है, सेठीजीने उसी गोम्मटसारके अर्थका अनर्थ सिद्ध करनेकी चेष्टा, और जैन धर्मकी निंदा कर महान् अपकार किया है। तब भी ब्र० जीकी हार्दिक भावना समयोपयोगी और पात्रानुकूल ही हुई है। ब्र० जीका उपदेश समय और पात्र के योग्य होता है इसका प्रमाण उनकी भावना है। अच्छा होता यदि वेदान्तका मर्म समझाने और उस में प्रतीति करानेसे उन्हें वे कुंद कुंद स्वामीसे भी अधिक उपकारी बतलानेकी उदारता और दिखलाते। हमें इसका भी खेद है कि ब्र० जीने विक्षिप्त आदि लिख कर सेठ जीके हृदयको व्यर्थ दुखाया. जैनधर्मसे घृणा करते हुए भी सेठीजी कहीं जैन समाजकी दृष्टिमें न गिरजांय. भले ही सेठीजीके गौरवकी रक्षा के लिये वैसा लिखना हो, फिर भी जब सेठीजी वैसा गौरव नहीं चाहते हैं। उन्हें किसी व्यापक अभीष्ट सिद्ध करनेकी अभिलाषासे जैन धर्मकी निंदा करने में ही लाभ दीखता हो, और वे विक्षिप्त नहीं हैं जैसा कि उन्होंने स्वयं प्रगट किया है तो फिर एक मिथ्या बात लोगोंमें फैलाना यह समाजको धोखेमें डालना है। अपने दूसरे पत्रमें जो अनुमान सेठजीकी विक्षिप्ततामें ब्र० जीने लिखा है वह हर एक पाठकको निर्मूल प्रतीत होता है। अब तक कोई ऐसी असृंखल (बेसिलसिलेकी असंबद्ध) बात उनकी नहीं प्रगट की गई है जिससे उनमें पागलपन सिद्ध होता हो। अस्तु सेठीजीने ब्र० जीका प्राइवेट पत्र और उसकी मीमांसा सत्योदय अंक ७-८ में प्रगट कर दी है। उसका उत्तर ब्र० जीने १४ अक्टूबरके जैन मित्रमें दिया है वह भी द्रष्टव्य है। इस उत्तरमें उन्होंने सेठीजीको कहीं पर श्रद्धानी, कहीं उनमें श्रद्धानके न होने की सम्भावना कहीं उन्हें एक परम ब्रह्मके श्रद्धानी बतला कर-अपनी कमजोर आत्मा तथा गोलमाली भाषा और भावोंका पूरा परिचय करा दिया है। ब्र० जी लिखते हैं कि 'जिस सेठीजीने कितने ही दिनों बिना श्री जिनेन्द्रकी प्रतिमाके दर्शन किये भोजन न किया वह नियमो आदिमें बिना जिनदर्शनके भोजन करले व जिन प्रतिमाकी निंदा करे इसको विक्षिप्त चित्तता न कहें तो क्या यह मान लेंकि सेठीजीका श्रद्धान वास्तवमें जैन धर्म व जैन प्रतिमासे उठ गया है" क्यों ब्रह्मचारीजी! वास्तवमें सेठीजी का श्रद्धान उठ गया है इस लिये वे जिन प्रतिमाकी निंदा करते हैं ऐसा कहनेमें आपको क्यों संकोच होता है, अब सेठीजीके मिथ्या भाव कहां तक छिप सके हैं? यदि जैन धर्म व जिन प्रतिमाके निंदा करने वाले ही विक्षिप्त हैं तो आप बा० सूरजभानु, भगवानदीन, सबोंको विक्षिप्त समझते होंगे? क्योंकि ये सब जैनधर्म और जिन प्रतिमाको अनावश्यक समझते हैं। आगे आप लिखते हैं कि 'सेठीजी किसी तरह जैन धर्मकी दृढता कायम रक्खें इसलिये उनको यह वचन लिखे कि आप जैन सिद्धांतके मर्मको जाननेवाले हैं" यह भी उनका लिखना भूल है यदि जैन धर्मके मर्मको जानते होते तो उसे वे कैसे छोडते और कैसे उनकी उसमें दृढता चली जाती? यह बात तो ब्र० जी स्वयं स्वीकार करते हैं कि सेठीजीमें जैन धर्म की दृढता नहीं है। आगे वे स्वयं लिखते हैं कि 'इसका (जैन धर्मके मर्म जाननेका) यह मतलब कदापि नहीं लिया जा सकता कि सेठ जीमें यह प्रशंसा की है कि वे श्रद्धावान हैं'। यहां पर तो वे स्पष्ट लिख गये हैं कि सेठीजीमें श्रद्धान नहीं है परन्तु फिर भी सन्देह प्रगट करते हैं कि "वर्तमानमें भी उनको ज्ञान

अवश्य है परन्तु किन्हीं २ बातोंमें श्रद्धाका न होना संभव हो सका है " इन पंक्तियोंसे मालूम होता है कि ब्र० जीको सेठजीके भावोंका कुछ पता नहीं चला तभी तो उन्होंने द्वयर्थक संदिग्ध-वाक्य लिखा है कि संभव हो सका है, यदि पता भी चला है तो किन्ही किन्ही बातोंका । मानों सेठीजी जैनधर्म स्वीकार करते हों और किसी किसी बातमें उनका मत भेद हो परन्तु आगे चल कर आप लिखते हैं कि ' उनकी श्रद्धाको ठीक करनेके लिये ही यह सूचनाकी थी कि वे कुंद कुंदाचार्यके ग्रंथोंको ध्यानसे देखें जिससे भाव यही था कि वे स्त्री मुक्ति व दकी प्रश्नको निर्मूल करें आप यह भी लिखते हैं कि आपने (सेठीजीने) व जैन हितैषीने अंक १०-११ में मेरे प्राइवेट पत्रको छाप कर शायद जनताको बतलाना चाहा होगा कि मैं सेठीजीके स्त्री मुक्ति व दकी प्रश्न आदिके सिद्धान्तसे सहमत हूं" इन दोनों कोष्ठकोंकी पंक्तियोंसे प्रगट होता है कि सेठीजीका क्या सिद्धांत है और उन्हें जैन धर्ममें बिलकुल श्रद्धा नहीं है यह बात ब्र० जी अच्छी तरह जानते हैं । फिर भी उन्होंने पैरोंसे ठुकराईजानेवाली फुटबालकी तरह अपनी लेखनी इधर उधर हलकाई है इसके लिये उन्हें स्पष्ट वक्ता महाशयोंसे सम्हालना चाहिये । धार्मिक विषयमें ऐसी स्पष्ट और जमी हुई बातें लिखनेवाले ऐसे ही उदासीन वेषधारी धर्म भूषण समाज और धर्मका उत्थान करनेमें समर्थ हो सकते हैं । ब्र० जीके प्राइवेट पत्रकी मीमांसामें सेठीजीने उनके विषयमें अन्य अनेक बातोंके सिवा एक बात यह भी कही है कि ' मैं यह भी चाहता था कि ब्र० जीके हृदयको उस कालिमासे भी शुद्ध करदूं जो एक अर्सेसे लगी हुई है जिसको अनेक प्रतिष्ठितव्यक्ति विश्वस्त दिगम्बर जैन भली भांति जानते हैं' हम नहीं कह सकते कि सेठीजीको अन्य कई बातोंका उत्तर देते हुए ब्र० जी इस विषयमें क्यों निरुत्तर बन गये हमारी समझसे सबसे पहिले इसी विषयका उत्तर या प्रश्न ब्र० जीकी ओरसे होना आवश्यक था, परन्तु उन्होंने इस विषयका जिकर भी नहीं किया है, अस्तु इसके विषयमें ब्र० जी और सेठीजी जानें, हमें केवल आश्चर्य इस बातका है कि सेठीजीकी इतनी कड़ी और दोष पूर्ण लेखनीके होने पर भी हमारे धर्म भूषण जी महाराज उनसे बार बार क्षमा मांगनेके प्रार्थी बने हैं । जो पत्र ब्र० जीने सेठीजीको लिखे हैं वे सेठीजीके प्रति बड़ी विनय और भक्तिसे भरे हुए हैं प्रत्युत सेठीजीने जो मीमांसा ब्र० जीके विषयमेंकी है वह बहुत कड़ी और दोषास्पद, फिर भी ब्र० जीने क्षमा प्रार्थनाकी है सो भी बार बार । इसका मतलब हमारी समझमें तो कुछ आता नहीं है समाजके प्रतिष्ठित व्यक्ति भले ही भली भांति समझते हों । शेष फिर कभी ।

—ब्रह्मचारीजीका एक चिरपरिचित ।

नोट—ब्रह्मचारीजीके विषयमें जितनी बातें लिखीगई हैं उनकी सत्यता या असत्यता प्रायः सभी बुद्धिमान मनुष्योंको मालूम है । इस समय जब कि जैन समाजमें दो दलोंका संगठन होनेसे विभेद होता नजर आरहा है तब सप्तम प्रतिमाधारी व नेता माने जानेवाले, प्रतिष्ठित पत्रके सम्पादकको अपनी नीति स्पष्ट करदेनी चाहिये उक्त लेखमें जो जैन शास्त्र विरुद्ध बातोंके प्रचारमें भी वर्णीजीकी शोध बतलाई गई है यदि वह असत्य है तो अवश्य ही उसका लिखित निराकरण करदेना उचित है । संपादक—

स्वप्न भ्रांति।

(१)

एक दिवस वन बीच गया था मन बहलाने।
अति विचित्र इक वहां ज्योति थी लगी दिखाने॥
देखि अनूपम ज्योति भान हुआ मनमें यों।
प्रावृट घन लखि शिखी यूथ को होता है ज्यों॥
हृदय भाव मेरे हुए ज्योति नहीं यह स्वप्न है।
किन्तु जागने में अहो! नहीं दीखता स्वप्न है॥

(२)

यों विचार दिल मांझ गया उसके समीप में।
मोद हुआ ज्यों मिले देख मुक्ता कु सीप में॥
अहो! यहा यह नार कहां से अद्भुत सुन्दर॥
आई है जिसि लखन नेत्र शत किए पुरंदर॥
रूप भूप की ही छटा सभी दीख पड़ती यहां।
गुण आगर सागर सरस भान हुआ मुझको महां॥

(३)

लख कर उसका रूप मोद से अति विह्वल हो।
गया सामने शीघ्र हृदय में खूब सबल हो॥
पर लख उसका तेज हृदय में कंप उठा यों।
ऋतु वसन्त के बीच फूल होता कदम्ब ज्यों॥
मैंने तब कर जोड़ कर बातें उससे यों कही।
सुभगे! शीघ्र बताय दो क्यों आई तज सुर मही॥

(४)

क्या लोगों के दुःख नाश करने की चर्चा—;
व्याप्त तुम्हारे पास पठाया था क्या पर्चा॥
अथवा लख तुम दीन दुखी बूढ़े भारत को।
दीन दुखित या क्षुद्र जीव गण हैं भारतको॥
हे देवी! इस भाव से यदी मही में अवतरी।
तो यह विनती आप से कौन सदयने हे करी॥

(५)

सुनकर मेरी बात मुझे वह लगी बुलाने।
पा इशारा बाल लगे ज्यों सती सुलाने॥
यों मैं उस के साथ मौन व्रत को धारण कर।
चला हर्ष के साथ मार्ग कंटक बारण कर॥
दिव्य भवन में पहुंच कर जो मैंने देखा वहां।
शब्द बिना इस बदन से बात कहूं कैसे यहां॥

(६)

वहां जायकर ज्योति खड़ी हो कर इक पट पर।
बोली जो दे कर्ण सुनो अब हे पाठक वर॥
"यदी चाहती मान देश का सबही जनता।
तहिं करे अन्याय बंद मन में धर क्षमता॥
गो-वध सम पातक बड़ा मत होने दो तुम कभी।
सत शिक्षा के मार्ग पर सब तज लग जाओ सभी॥

(७)

आठ वर्ष से लगा दीन विधवायें साठ तक।
हो उन सब को एक करो आपत्ति काट सब॥
बना शीघ्र शिक्षा-मंदिर दो, जहां नु-देला—
रहते हैं सत्कृत्य लीन जो देश मझेला॥
सभी जाति की तुम वहां अबलाओं को थान दो।
क्षण-क्षीणा सम्पत्ति स आवेनश्वर यह मान लो॥

(८)

जैन बौद्ध जो यहां अभी हैं भारत बासी
हिन्दू यवन अन्य जाति जो अति विश्वासी।
उसमें ज्ञान प्रकाश करो सब ही जन मिलकर
माता बहनों तनयाओं को सुखदो मिल कर ॥
मैं भी आकर के यहां शिक्षा दूंगी प्रेम से।
शिक्षित रमणी मग सदा धर्म लीन हों नेम से ॥

(९)

नीच जाति के लोग सदा ही नीचे होते।
नीचे नीचे भाव सदा नीचे मन होते ॥
नीच भाव से सदा नीच करना है उनका।
नीच लक्ष्य ही आज बनाया नीचे मनका ॥
नीचे भाव निदान से नीच प्रथा हैं चाहते।
नीच बनाना आज वे भारत को हैं चाहते ॥

(१०)

इस कारण विधवा विवाह का जोर हुआ है।
इसी लिए सब पतित जाति में शोर हुआ है ॥
इस निदान से जैन जाति का ह्रास हुआ है।
और इसी कारण पटैल बिल पास हुआ है ॥
माननीय नव युवक गण तनिक विचारो हृदय में।
क्या से क्या अब हो गया नीच भाव के उदय में ॥

(११)

कह कर शीघ्र प्रकाश ज्योति का हुआ जब ही
अन्धकार से व्याप्त हुआ वह पट भी तब ही।
धीरे धीरे मार्ग ढूंढ कर बाहर आया
कंटक व्याप्त प्रदेश दृष्टि गत मेरे आया।
तब मैंने कर जोड़ के विनती विभु से यों करी
जैन धरम के मार्ग को निष्कंटक कर दो वरी।

(१२)

यदी मुझे फिर जन्म मिले इसही भारत पर
तौ करना सद्धर्म जैन युत हे त्रिलोक वर।
नीच भाव से कल्पित यहां जो जानता होवै
तौ हे दीन दयाल बदन उन जीभ न होवै ॥
धर्म भ्रष्ट नहिं कर सकें अपने स्वारथ के लिये
धर्म भाव जग में बढ़े वर मांगि दो मेरे लिये।

श्री युक्त "मणि" काव्यतीर्थ

एकता।

हिम्मत है गरचे मरदो करके तो कुछ दिखा दो।
मुल्के अदनका जाता इस हिंदका बचा दो ॥
हिम्मतसे "हिम" निकालो पत्रजमें 'ऐक' जोड़ो।
बस एक मत बनो तुम आलसको सब मिटादो ॥
बनकर गुलाम कौमो मैदांमें आयो भाई।
सोतों यह जैन जाती भुजकर इसे जगा दो ॥
बूढ़ोंकी शादी रोको बच्चोंको मत विवाहो।
खो न गालो गायें इसका जतन बता दो ॥
फुलवारी वेश्यानृत रोको ये बाजो आतिश।
इनसे बचे जो पैसा कंगलोंको दान दे दो ॥
हे वीरके उपासक ! निर्वीय क्यों हुये हो।
श्रीवीर मतका झंडा गिरता इसे उठा दो ॥
शिक्षाको दो तरक्की दिल खोल करके आदर।
तन मन लगाके दौलत इस पर सभी लुटा दो ॥
आपुसकी फूट मेटो खोलो कलेजा मिललो।
जै जैनधर्मको जै जै जै की ध्वनि उठा दो ॥
बस बस कमरको 'पन्ना' सोये हो खूब जागो।
इन जैनी भाइयोंको ललकार कर जगा दो ॥

बाबू-पन्नालाल जैन (जैनमित्र मंडल) खिचनी।

लाल झूंठ।

नाथूरामजीप्रेमी और बा० जुगुलकिशोरजी समाजको भ्रममें डालनेमें बड़े ही कुशल हस्त हैं। आपकी लीला से हम खूब परिचित हैं हमारा आपका खंडनका जैन गजटकी सम्पादकोंसे पहिलेसे व्यवहार चला आता है आपने जै० हि० अं० १०-११ में सफेद झूंठ शीर्षक लेखमें पं० मक्खनलालजी तर्कतीर्थके सत्य लेखको (विविध समाचारकी विरसता पं० पुरवाल अं० ३) असत्य ठहरानेका व्यर्थ ही तान आलापी है व पण्डित जी की खूब ही निंदाकी है। आप अपने पत्र जैन हि० में लिखते हैं हमारा दृढ़ विश्वास है कि स्वामी समंतभद्रके प्रति हम अभी तक जितना पूज्य भाव रखते है उसकी कल्पना भी तर्कतीर्थजी नहीं करसकते इसके आगे आप लिखते हैं वे हमारे उन वाक्योंको प्रगट करें जिनमें समंतभद्र स्वामीकी हंसी उड़ाई गई है और उनके वचनों पर कुठाराघात किया गया हैं। हम इस बातको स्पष्ट किये देते हैं पाठक स्वयं उस पर विचार करें हम कहते हैं उनके वचनों पर आप व आपकी पार्टी सरासर कुठाराघात कर रही है खुले मैदान इसमें कुछ भी संदेह नहीं। देखिये—

(१) समंतभद्रस्वामी देवागमस्तोत्रमें लिखते हैं सूक्ष्म (कर्म परमाणु आदि) अंतरित [राम रावण ऋषभदेव आदिक] दूरार्थ (मेरुद्वीप समुद्र स्वर्ग नरकादिक) किसी के (सर्वज्ञ) प्रत्यक्ष हैं। अनुमेय होनेसे, जो अनुमेय होता है वह किसीके प्रत्यक्ष होता है जैसे अग्नि। इस प्रकार सर्वज्ञकी सिद्धि होती है रत्नकरंड श्रावकाचारमें महाराज लिखते हैं लोक अलोकका कथन चारि गतिका निरूपण स्वर्गादि नरकादि क्षेत्र व जीवोंका निरूपण जिसमें हो वह करणानुयोग है वह सम्यक् ज्ञान है। करणानुयोगमें मेरु समुद्र द्वीप नदी नंदीश्वर द्वीप स्वर्ग नरकादिका वर्णन है ही। व ऐसा ही तत्वार्थसूत्र व उसकी सब टीकाएं राजवार्तिक आदिमें वर्णन पाया जाता है इन सब बातोंके विरुद्ध आप जैन हितैषी अंक ७-८ में गूढ गवेषणाओंमें ५४५ सफा पर लिखते हैं भूगोलको पक्ष ले कर और शास्त्रार्थ भी इन बातोंको ले कर कभी न करना चाहिये कि एक लाख योजनका ऊंचा सुमेरु है गंगा सिन्धु आदि नदियोंका परिवार चौदह चौदह हजार है द्वीपके बाद समुद्र व समुद्रके बाद द्वीप हैं।

(२) देवागम स्तोत्रको आप मानते हैं ऐसा आप अपने लेखमें स्वीकार करते हैं उसमें आदि श्लोक में देवोंका आगमन ऐसा लिखा है रत्नकरंड श्रावकाचारमें सम्यक्‌दृष्टि मरण कर नरक गति पशु गति नहीं पाता मेंढक पूजनके फलसे स्वर्गमें देव हुआ ऐसा लिखा है इसके विरुद्ध आप लिखते हैं—सिवाय भूगोल व तारा गणोंकी राम कहानी यूरोपीय विद्वानोंकी सुनाते हैं तब स्वर्ग नरकका कहीं पता नहीं लगता वरन निषेध पाया जाता है। व बाबू सूरजभानुजीने सर्व धर्मोंकी उत्पत्तिमें सत्योदय हाल अंक ५-६ में सफा लिखा है स्वर्ग नर्कको कल्पना अज्ञानी जीवोंने कर ली है इससे आचार्य ग्रंथ कर्त्ता अज्ञानी लेखककी समझमें ठहरे इससे अधिक धर्म द्रोह धर्म निन्दकता क्या होगी। जब देव नर्क दो गति नहीं तब देव गति १ देवगत्यानुपूर्वी २ देवायु ३ नर्क गति १ नर्कगत्यानु पूर्वी २ नर्कायु ३ इन छः प्रकृतियोंकी कमी होने से १४२ ही प्रकृति १४८ की जगह माननेसे गोम्मटसार कर्मकांडका कट्टा हो कर हर स्थलमें काटना प-

ड़ेगा सर्व सिद्धांत मिथ्या ठहरते हैं आचार्य मिथ्या वादी ठहरते हैं यह भी आचार्योंकी निंदा नहीं तो क्या है !

(३) देवागम स्तोत्रमें सर्वज्ञकी सिद्धि की है यहां ऐसा लिखा है आपका मत सत्य है सत्य मोक्ष मार्ग का प्ररूपक है अन्य नहीं। इसके विपरीत आपके सेठी जी सत्योदयमें लिखते हैं सर्वज्ञ कोई हो नहीं सकता सब मार्गोंसे मोक्ष है इसका खंडन न कर उनके लेखों की व उनकी बड़ी भारी प्रशंसाकी है जैनेकी प्रशंसा करे सो वैसा। केवल प्रशंसा ही नहीं उनके शूद्र मुक्ति लेखकी छाया ले कर गोत्र विचार लेख अन्ड बंड लिख ही डाला है !

(४) हम प्रेमीजीसे और उनके अनुयायियोंसे पूछते हैं अंक ७-८-६ जैन हि० में मुक्तिके मार्ग नामक लेखका आपने अनुवाद किया है ईसाई मुसलमान मतकी पुष्टि करता है क्या वह मोक्ष मार्ग स्वामीसमंतभद्रके मतके अनुकूल है ?—यदि नहीं है तब उसको पूर्व पक्ष मान कर जैन मतके अनुकूल साक्षर खंडन नहीं किया सो क्या लेखकके प्रेमवश या भयसे नहीं किया। या खंडन करने योग्य ज्ञान नहीं था यदि था ? तो लेख स विस्तर छापा खंडन सविस्तर क्यों नहीं छापा ? जिस पत्रमें ऐसे आगम विरुद्ध लेख छपें वह कैसा जैन पत्र ? इसी तरह सत्योदय पत्रने सेठीजीके लेख स्त्रीमुक्ति शूद्र मुक्ति दिगम्बर आम्नायके विरुद्ध छापे वरन गीता का अद्वैतवाद भी छाप दिया जिस पर जैन पत्र बननेका साहस करते हैं। जैन हितैषीमें मुक्तिका मार्ग लिखा है उससे सारांश यह निकलता है ज्ञानसे दुःख ज्ञान नष्टसे सुख–मोक्ष यह मत वैशेषिक दर्शनसे भी गिरा हुआ है। स्वामी समंतभद्र महाराज देवागममें ऐसा लिखते हैं मोही जीवके अल्प ज्ञानसे सब कर्मोंका बंध होता है निर्मोही जीवके अल्प ज्ञानसे मोक्ष। यहां केवल ज्ञानकी पूर्ण ज्ञान संज्ञा है उससे अन्य जो ज्ञान है मति ज्ञानादिक उनकी अल्प ज्ञान संज्ञा है।

(५) जिनसेन आचार्य महाराजने आदि पुराण ग्रंथमें वर्ण व्यवस्था लिखी है उसमें शूद्रोंके स्पर्श अस्पर्श दो भेद लिखे हैं। आप अपने पत्रमें अस्पर्शोंको स्पर्श बनानेमें बहुत ही उत्सुक हैं। विचार शील पाठकोंको चाहिये देवागमस्तोत्र रत्नकरंडश्रावकाचार ग्रंथोंको खूब समझ कर पढ़ें पीछे जैन हितैषी अंक ७ से ११ तक पढ़ें और मिलान करें कि यह पत्र उपर्युक्त ग्रंथोंके अनुकूल लेख लिखता है या प्रतिकूल ! यदि लेख शास्त्र विरुद्ध हों तो ऐसे पत्रको जैन पत्र न समझें यह पत्र समाजमें विरुद्ध बातें फैला रहा है।

दृष्टि विकार नहीं है।

(१) दृष्टि विकार कलकत्ते सभाको सम्पादक जैन हितैषी बतलाते हैं सो आपका ऐसा लिखना ठीक नहीं। आप यह हेतु देते हैं कि जाति प्रबोधक सत्योदय दो पत्रोंका बहिष्कार का प्रस्ताव सभाने किया तब ही जैन हितैषीका बहिष्कार क्यों नहीं किया उस सभाके ऊपर जब लेख दिये तब नाराज हो कर बहिष्कार किया कि यह पत्र भी जैन पत्र नहीं है। इसका उत्तर इस प्रकार है जो विशेष बुद्धिमान होता है उस का छल बहुत थोड़े मनुष्य जान सकते हैं सो भी बहुत कालमें। सो जातिप्रबोधक सत्योदयने खुल्लम

खुला धर्म विरुद्ध लेख लिखे इससे उनका अभिप्राय समाजको शीघ्र प्रगट हो गया जैन हितैषीने कुछ धार्मिक विषय लिख उसके साथमें कुछ विपरीत लिखे जैसे कोई सराफ ग्राहकको पहिले अच्छा माल दे कर उसे विश्वास दिला दे पीछे खराब सोना जवाहरात दे कर उसकी गांठ काट लेवे। ऐसे जैन हितैषीकी कूट नीति हैं, अव्वल जैनाचार्योंका शासनभेद लिखा उसी अंकमें अछूतोंका उत्थोन समाचार छाप दिये जिसके पढ़नेसे जाति भेद वर्ण भेदसे समाज घृणा करने लगे और ऊंच नीच भंगी चमार धना जुलाहे ठाकुर एक हो जावें। जो जैन धर्म हिन्दु धर्म लोक प्रवृत्ति सबके विरुद्ध है। प्रेमीजी एक तरफ प्राचीन ग्रंथोंका संग्रह लिख रहे हैं दूसरी तरफ धर्म विरुद्ध वर्णाश्रम घातक विधवा विवाह मंडन लिख रहे हैं। जैनियोंके भक्ति मार्ग पर छुरी चला रहे हैं। तीर्थक्षेत्रकमेटीकी निंदा कर रहे हैं। एक अंकमें शास्त्रीय चर्चा शास्त्र विरुद्ध लिखकर समाज पर अपना महत्त्व जमा रहे हैं उस ही अंकमें जैन ग्रंथ करणानुयोगके विरुद्ध भूगोल खगोल लिख कर बता रहे हैं कि सुमेरु पर्वत जम्बूद्वीप नंदीश्वर द्वीप स्वर्ग नर्क विदेह यह कुछ नहीं गप्पे हैं जो इनको माने वे मूर्ख हैं डारविनका मत ठीक है जैनाचार्य मिथ्यावादी हैं इस विषयमें पंडितोंकी हंसी उड़ाते हैं वह पंडितोकी हंसी नहीं वरन विद्यानंदी महाराज श्लोकवार्तिक अष्टसहस्रीके कर्ता आचार्यकी हंसी है जिन्होंने श्लोक वार्तिक ग्रंथमें भूभ्रमणका खंडन किया है उसको सर्व पंडित मानते हैं। इत्यादि बातोंपर पाठक विचार करें। यह जैन पत्र कैसा?

निवेदक—
रघुनाथ दास जैन
संपादक–जैनगजट, सरनौ (एटा)

प्रार्थना।

इक अर्ज सुनो धर ध्यान दिगम्बर और श्वेताम्बरवाले
हो एक माईके लाल, क्यों लड़ते दोनों बाल?।
है जिन वाणी सुविशाल जिस जननीने दोनों पाले॥ १
ये क्रोध महा अघकारी, अरु मान देत दुःखभारी।
मत बनो और संसारी, हैं ये दोनों विषधर काले॥ २
तीरथ जा पुन्य कमाते, भव भवके पाप नशाते।
उनके कारण मदमाते, नाहक वैर बढ़ानेवाले॥ प० ३
तुम हो दोनों धन वान, तो करो धर्म उत्थान।
क्यों होते दाना दान, कर कर नालिश बैठे ठाले?॥ ४
हिंदू यवनोंका एका, क्या तुमने इसे न देखा?
फिर अपना करलो लेखा, जो हैं भाव परस्पर काले॥
गिरजाना धर्म पताका, मुरझाना जैन लताका।
फिर राज्य वैभव प्रताप तो फिर बिगड़ी कौन सम्हाले
है जिनवानी सुखदाई, जिसने दशधर्म बनाई।
जिनके तुम हो अनुयायी पर हा शोक! क्षमा नहिं वाले।
भारतकी जातियें अन्य, जो थी अति नीच जघन्य।
उन्नति कर भई जग धन्य, पर तुम बना बिगाड़नवाले
जो होता द्रव्य बचाया, जिसको है व्यर्थ लुटाया।
तो होती निर्मल काया, अब भी जागो सोनेवाले॥ ६
मन अपनी आंख उघारो, मत आप हि लाजन मारो।
भाई पर तन मन वारो, दोनों एक गोदके पाले॥ १०
जो दोमें एक हारा, तो हास्य करे संसारा।
भाईने भाई पछाड़ा, ताने मारें अन्यमतवाले॥ प० ११
जब अग्नि लगे घर आकर, क्या सरे कूप खुदवाकर।

सो मिलो परस्पर आकर, तातें धन्य कहें जगवाले॥
क्या लिया फूटका ठेका ? क्या त्यागदिया है एका ?
फिर करना दुःखका लेखा, अब हो 'ओफतके परकाले
तुम बीज फूट बोते हो, अरु पग पसार सोते हो।
फिर अवनतिको रोते हो वाह वा उन्नति करनेवाले॥
गर भूले प्रातःकाल तो लौटो सांझ सकाल।
हो आओ लाल गुलाल, धर्म की शर्म बचानेवाले॥
लेव आश्रय श्रीगांधीका, अरु निज निज प्रतिनिधिजीका
हो निर्णयपथ पानीका, धन रख प्रेम पियो मत प्याले
बस खूब सोये अब जागो, यह वैर परस्पर त्यागो।
अब निज उन्नतिमें लागो 'पन्ना' अलनको उदय बनाले
इक अर्ज सुनो धर०॥ १७
बाबू पन्नालाल जैन,
(जैनमित्र मंडल) सिवनी।

खुली चिट्ठी।

श्रीयुत मुंशी वन्शीधरजी साः
मुख्य अध्यापक टाउन-स्कूल, फिरोजाबाद।

सेवामें निवेदन है कि आपने जो वचन समाजको सेवाके लिये दिया था और जो द्रव्य सामाजिक कार्यमें लगानेके लिये कहा था उसका कुछ सदुपयोग नहीं किया, इसलिये मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप अपनी मास्टरीको तिलांजलि देकर समाजके हितके लिये अपनी सेवा और धन अर्पण करके शूरवीरता दिखाओगे। अब सोचते रहनेका समय नहीं है आयुका कुछ भरोसा नहीं और जिस क्षेत्रमें आप हैं वहां काम करनेका बहुत कुछ सौभाग्य प्राप्त है और हम लोगोंका केन्द्र है इसलिये आप सबसे पहिले खडे हो और उदाहरणके लिये दूसरेको काम करके दिखादो जिससे दूसरेका भी उत्साह बढ़े और सामाजिक काममें उन्नति हो। फिरोजाबादमें एक जैन पुस्तकालय अवश्य स्थापित करना चाहिये जिसमें नवयुवक आपकी आज्ञा मानने और काम करनेके लिये तय्यार हैं पाठशालाका यथा योग्य प्रबंध होना चाहिये और उसकी रिपोर्ट पत्रमें छपना चाहिये आप वृद्ध पुरुष हैं और कामका अच्छा तजुर्बा रखते हैं और आपको यथा साध्य मैं भी सेवा करता रहूंगा।

भवदीय-बाबूलाल जैन टिकट कलक्टर
राजाकी मंडी (आगरा)

नोट-उक्त प्रार्थना समय पर और उचित ही की गई है। आशा है हमारे वृद्ध मुंशीजी इसको कार्यमें शीघ्र ही परिणत करेंगे। मुस्तफाबादपुरमें पाठशाला न चलती हो तो फिरोजाबादमें पाठशाला मौजूद है उसकी तरक्की करना चाहिये। धर्मशास्त्र पं० संतलालजी पढ़ावें शेष विषय मुंशीजी। इस प्रकार थोड़ा ध्यान देनेसे अच्छा विद्यालय बन सकता है। —संपादक,

जातीय सुधार कैसे हो ?

लेखक—पं० जयचंद्र जैन, टेहू (आगरा)

उक्त प्रश्न हमारी जातिमें कदापि उदित नहीं हो इस लिये हमारे पूर्वजोंने अपनी बुद्धिसे बड़ा भारी काम लिया था। उन्होंने प्रथम तो प्रत्येक गांवमें पंचायतें स्थापित कीं फिर वे भी पंचायतें अन्य गांवों को पंचायतोंसे संबंध रक्खें ऐसा उपाय किया था इन पंचायतोंके ऊपर भी मेला होने की तरकीब निकाली थीं जिससे कि उक्त प्रश्नका होना जातिमें कदापि नहीं पाया जा सकता था उस समय मुकद्दमे बाजोंका मुंह सर्वत्र काला ही दिखाई देता था। उन्होंने बरातोंमें पंचायतोंके जानेकी तरकीब प्रचलितकी। जिससे कि लड़केवाला लड़कीवालेके साथ या लड़कीवाला लड़केवालेके साथमें अनुचित व्यवहार कभी नहीं कर सकता था। यदि प्रमादवश करता भी था तो पंचायतें शीघ्र ही निबटारा कर देती थीं। आज कलकी तरह तहसीलोंमें नहीं जाना पड़ता था। उस समय कन्या विक्रय बालवृद्धविवाहादिका नाम निशान भी कहीं पर नहीं था उसका कारण पंचायतोंका होना व निस्वार्थपना ही था। उस समय "पांच मनुष्य परमेश्वरके बराबर होते हैं" यह किंवदन्ती मुख्यतया सर्वत्र विद्यमान थी उस समयका इतिहास यही बतलाता है कि जातीय झगड़े बहुत ही कम कचहरी में पेश होते थे। उस समय न्यायाधीश समस्त आगरा प्रांतमें एक ही था तो भी उस न्यायाधीशके पासमें दिनमें ज्यादा से ज्यादा १०-११ मुकद्दमें बहुत ही मुशकिलसे होते थे जिनका कि फैसला न्यायाधीशकी बुद्धिके बाहिर होता था। उस समय समस्त भारतमें प्रेम, मेल और निःस्वार्थका ही सर्वत्र साम्राज्य था किन्तु इस समयके इतिहासमें पूर्व इतिहाससे आकाश पातालका अंतर हो गया है मनुष्य स्वार्थान्ध हो अपनी पालित पुत्रियों द्वारा अपना उदर पोषण कर रहे हैं। और हमारी पंचायतें भी स्वार्थान्ध बन गयी हैं वे भी लोगों को अनर्थसे बचाना अपना कार्य नहीं समझती हैं इसी कारण लोग मनमानी घर जानी कर रहे हैं। हमारे धनिक लोग भी अपने धनके मदसे उन्मत्त हो किसीको कुछ समझना बड़ा पाप समझते हैं। हम लोग पूर्वजोंके द्वारा स्थापित कर्तव्यों पर बराबर चलते आ रहे हैं लेकिन वह इस लोकोक्ति चलना लकीरके फकीरकी कहावतको चरितार्थ करता है। जातीय सुधार के लिये ही इस पत्रका मुख्य जन्म है किन्तु हमारे भाई इसे कदापि नहीं देखते हैं। देखते तो दूर ही रहो किन्तु उसके ग्राहक होना भी पसंद नहीं करते हैं। जातीय सुधारके लिये सभायें भी जहां कहीं होती हैं वहां पर भी लोग बड़ी मुश्किलसे बुलावा आने पर जाते हैं। तब कहिये कि जातीय सुधार कैसे हो सकता है। हमारी समझमें यही आता है कि जब तक पंचायतें अपना कार्य शुरू नहीं करेंगी तब तक सुधार होना टेढ़ी खीर है। चाहे कितनी ही सभायें होवें या पत्र निकलें तो भी सुधार होना कठिन है इसलिये पद्मावती परिषद्‌की ओरसे उपदेशकका भ्रमण होना चाहिये उस उपदेशकका मुख्य कर्तव्य यह होना चाहिये कि प्रत्येक गांवमें जाकर शास्त्रजी या भगवानके समक्षमें प्रत्येक गांवके पंचोंसे प्रतिज्ञा पत्र भरवावे। प्रतिज्ञा पत्र इस प्रकारका होना चाहिये कि हम लोग शास्त्रजीके समक्ष प्रतिज्ञा करते हैं कि हम अपना या अपने पुत्र पुत्रियोंका अनमेल विवाह या कन्या विक्रय कभी नहीं करेंगे यदि कोई हमारे

गांवका भाई अनमेल विवाह या कन्याविक्रय करेगा तो उसके साथ हमारा खानपानादि व्योहार बंद रहेगा। यह गांवोंके प्रत्येक पंचोंसे प्रतिज्ञा पत्र लिखवाना चाहिये। और पांडेलोगोंसे भी प्रतिज्ञा पत्र इस प्रकार लिखवाना चाहिये कि अनमेल व्याह कन्या विक्रय, बाल विवाह और वृद्ध विवाहको हम लोग कदापि नहीं पढ़ेंगे और उनमें सामिल भी नहीं होंगे तभी जातिकी उन्नति हो सकती है। अन्यथा नहीं। क्योंकि समाजको एक मनुष्य कभी सुधार नहीं सकता है। और एक मनुष्यके सुधरनेसे समाज नहीं सुधर सकी है जबकि सभी एक साथ सुधरें तभी समाजका सुधार हो सकता है अन्यथा नहीं। सभी समाजके सुधरनेका उपाय यही हो सकता है और कोई सुधरनेका दूसरा उपाय नहीं है। इस प्रकार सब लोग प्रतिज्ञा पत्र लिखदें तो कन्या विक्रय बाल विवाहादि सभी कुरीतियां समाजसे नफूचक्कर हो जांयगी। अन्य प्रकार नहीं इन सबके दूर हो जानेसे ही गृहस्थ धर्मका पालन पूर्णरीत्या हो सकता है।

हमारे भाईयोंका झगड़ा मंदिरोंके विषयमें अधिकतर होता है। उसका मुख्य कारण मंदिरोंमें एकत्रित की हुई द्रव्य है। मंदिरोंकी बहुत द्रव्य तो भाईयोंने हजम करली है जो कुछ बचा है उस पर रात्रि दिन झगड़े होते हैं। इन सबका झगड़ा इस प्रकार दूर हो सकता है कि प्रथम तो पद्मावती परिषद्की रजिष्टरी होनी चाहिये जब रजिष्टरी हो जावे तब समस्त मंदिरोंका रुपया पद्मावती परिषद्में इकट्ठा होना चाहिये उस रुपयाका एक बैंक खुलना चाहिये उस बैंकसे व्याज पर रुपये भाईयोंको देना चाहिये जिससे कि हमारे भाई उन रुपयोंसे व्यापार करें।

पद्मावती परिषद्की रजिष्टरीके लिये फिरोजाबाद के मेलाके समय परिषद्के मंत्रीने कोशिशकी थी, किन्तु यह ज्ञात नहीं हुआ कि परिषद्की रजिष्टरी हुई या नहीं। यदि नहीं हुई हो तो अब परिषद्की शीघ्र रजिष्टरी कराना चाहिये। तभी उस रजिष्टरी द्वारा मंदिरोंका रुपया आ सकता है अन्यथा नहीं। इसमें प्रमाद करना उचित नहीं क्योंकि समाजकी हालत प्रतिदिन बहुत ही बिगड़ती जाती है। रजिष्टरी होने पर परिषद्के कुलकार्य विश्वास योग्य सरकारमें समझे जावेंगे।

दूसरी बात यह है कि परिषद्की ओरसे शीघ्र ही सुयोग्य वयस्क उपदेशक नियत होना चाहिये। उसका परिभ्रमण प्रत्येक गांवमें हो।

प्राय हमारे धनिक लोग ही कन्या खरीदते हैं गरीब बेचारे मुंह ताकते रह जाते हैं। क्या करें! रुपयेके बलके सामने समस्त बल फीका है। धनिक लोग ही कन्या खरीदनेमें या खरीद करानेमें मुख्य कारण हैं क्योंकि धनिक ही गरीबोंको उधार रुपया देकर भी समाज हितैषी बनते हैं। इसलिये धनिक लोगोंका मुख्य कर्तव्य है कि वे गरीब लोगोंको व्याज पर रुपया न देकर सबके हितैषी बनें, और स्वयं भी कन्या न खरीदें।

यदि यह कहा जाय निर्धनिकोंके पास इतना रुपया नहीं है जिससे कि वे लोग अपनी पुत्रीका व्याह कर सकें इसलिये लड़कीका रुपया लेते हैं तो इसके उत्तर यह है कि अपने गांवोंके पंचोंके सामने यह कह दें कि 'हमारे पास रुपया इतना नहीं है कि हम अपनी पुत्रीका विवाह कर सकें। इसलिये पंच ही इसका व्याह करें।' ऐसा करना बहुत ही अच्छी बात है इससे शीघ्र ही कन्या विक्रयका मुंह काला हो सकता है, तब सभी लोगोंके व्याह हो सकते हैं। हमारे भाई तीन

बार ब्याह हो जाने पर तथा सन्तानके होने पर भी अपना ब्याह कर लेते हैं। अवस्थाके अधिक होने पर भी इंद्रिय लोलुपी बनते हैं। जिससे कि अन्य लोगों के ब्याह कभी नहीं होने पाते हैं। इसलिये धनिक लोगों और विद्वानोंको उचित है कि वे लोग सन्तान के होने पर या अवस्था अधिक होने पर अपना विवाह कभी नहीं करें यदि करें तो एक या दोसे अधिक ब्याह नहीं करें इन सब बातोंके होने पर समाज शीघ्र सुधर सकती है।

कितने ही हमारे भाई सन्तानके नहीं होने पर धन अधिक होनेसे अन्यकी सन्तानको गोद रखलेते हैं। और उसीका ब्याहादि कार्य खुशीसे करते हैं। किन्तु उसके पढ़ानेमें एक पैसा तक भी खर्च नहीं करते हैं, व उस लड़के के बड़े होजाने पर वह लड़का पसीनेसे कमाई हुई द्रव्यका दुरुपयोग करता है इस बातके कई दृष्टान्त हैं। जिनका लिखना उचित नहीं। हमारी समाजमें पं० वंशीधरजी हेड मास्टर टाउन स्कूल फिरोजाबाद वालेका अनुकरण करना चाहिये। अपनी द्रव्य को धर्म खातेमें देदेनी चाहिये। तभी द्रव्यका सदुपयोग हो सक्ता है अन्यथा नहीं। हमारी समाजमें श्री १००८ हामवीर स्वामीजीकी कृपासे किसी बातकी कमी नहीं है। यदि कमी है तो केवल हमलोगोंके सुधरनेकी। पद्मावती परिषद्को इस समय सचेत हो जाना चाहिये। उसके सब विभागोंमेंसे एक विभाग ही अपनी यथाशक्ति कार्य कर रहा है। अन्य सब विभाग मन्त्रीजीकी कृपासे घोर निद्रा देवीकी गोदमें खुर्राटा मार रहे हैं यदि परिषद् इस समय सचेत नहीं हुई तो हमारे भाइयोंकी हालत अतीव शोचनीय हो जायगी फिर सुधरना भाईयोंका मुशकिल हो जायगा। हमने राजमल (भोगर) में रथ यात्राके समय पर राजमल पचोलरा इन दो गांवोंकी पंच.यतोंसे हस्ताक्षर कन्या विक्रय अनमेल विवाहके निषेधमें कराये थे उन दो गावोंके पंचोंने हस्ताक्षर तत्काल ही कर दिये। और उन्होंने कहा था कि कन्या विक्रय अनमेल विवाहके निषेधमें सब गांवके पंचोंके हस्ताक्षर होने चाहिये तभी कुरीतियां दूर हो सक्ती हैं और उनके दूर होनेका दूसरा उपाय नहीं है। जब ऐसा हो जायगा तब हमारे कुलकार्य योग्य कहे जावेंगे।

अंतिम बात यह है कि हमलोगोंका निवास अधिकतर छोटे २ ग्रामोंमें है ग्रामोंमें वास होनेके कारण हमलोगोंके विचार और हृदय बहुत छोटे बने हुये हैं। तथा आज कल गावोंमें व्यापार भी बहुत कम है व्यापार है भी तो बहुत परिश्रमका है और जिनके पास अधिक रुपया है उन लोगोंको तो बड़ी मुसीबत रहती है क्योंकि पुलिसका इन्तजाम शहरोंकी अपेक्षा गांवोंमें बहुत ही खराब है डाके आदि अधिक पड़ते हैं जिससे कि रात्रिको सोनेके लाले पड़े रहते हैं इसलिये उनको चाहिये कि गांवोंको छोड़कर शहरोंमें निवास करें शहरोंमें प्रत्येक चीजका सुभीता रहता है। शिक्षा का प्रबंध शहरों ही में उत्तम है। गांवोंमें अधिकसे अधिक मिडिल तक शिक्षाका प्रबंध है इसी कारण हमारे भाई बहुत अशिक्षित हैं।

अब गावोंमें धार्मिक व्यवस्था भी ठीक नहीं है। इसलिये हमारे भाई किसानोंकी संगतिसे किसान सरीखे बन गये हैं। लिखनेका प्रयोजन यह है कि छोटे २ गावोंका निवास हमारे भाईयोंको शीघ्र छोड़ देना चाहिये और शहरमें वास स्थान बनाने चाहिये जिससे कि शिक्षा धर्म आदि सभी तरहका सुभीता रहे।

यह बात निश्चित है जो लोग अभी गावोंमें निवास कर रहे हैं इनकी अपेक्षा जिन्होंने गांवोंको छोड़

कर शहरमें निवास किया है उनके धन धर्म इज्जत और यश आदिमें बहुत अन्तर हो गया है । गांवोंमें इस समय कुछ भी व्यापार नहीं है । अन्तमें निवेदन यही है कि परिषद्की रजिष्टरी शीघ्र हो और उपदेशक द्वारा कुल गांवोंके पंचोंके हस्ताक्षर कन्या विक्रय आदि कुरीतियोंके निषेधमें कराये जावें । और गांवोंके वासको छोड़कर हमारे भाई शहरमें शीघ्र निवास करें इतना होने पर समाज शीघ्र सुधर सकती है ।

(विशेष फिर)।

संपादकीय विचार ।

सिंहावलोकन ।

पद्मावती परिषद् और उसके संचालक बार २ जगाए जाने पर भी जागना नहीं चाहते । प्रायः हरएक अंकमें उनको इस तंद्राका दिग्दर्शन कराया जाता है और उनकी निंदाकी जाती है पर वे उसकी कुछ पर्वा नहीं करते । इससे समाज हितैषी उत्साही कुछ पुरुषोंको बड़ा खेद होता है और होना ही चाहिये । हमारे पास कई जगहोंसे इस खेदको प्रगट करनेवाले पत्र आये हैं । महामंत्रीका जो स्थान खाली है उस पद पर योग्य व्यक्तिको स्थापित करनेके लिये भी लोग जोर दे रहे हैं पर यह सब हो कब ? जबकि सहायक महामंत्री पं० वंशीधरजी चेतें और कुछ करें ? सब से प्रथम उनके कार्यालयसे ही इस बातका आंदोलन होना उचित है । देखें ! पंडितजीकी दृष्टि कब तक इस तरफ पहुंचती है ।

उपदेशक विभाग और विरोध नाशक विभागकी तो सबसे बुरी अवस्था है । उनका जिस दिनसे जन्म हुआ है तबसे ही उनके मंत्री महाशयोंने कुछ भी काम नहीं दिखलाया । वार्षिक अधिवेशनके समय भी कभी लिखित रिपोर्ट नहीं सुनाई और यह ठीक भी है, जब कुछ काम करते तब तो लोगोंको बतलाते नहीं तो नहीं ही है ।

एटाकी पाठशाला फिर चालू हो गई है । उसमें टेहू निवासी पं० चैतन्यस्वरूपजी पढ़ाते हैं । विद्या विभागके मंत्री पं० रघुनाथ शास्त्रीजीके पत्रसे मालूम हुआ है कि पंडितजीके उद्योगसे पाठशालाकी अवस्था ठीक है पर फसली ज्वरका शहरमें अधिक प्रकोप होनेके कारण विद्यार्थियोंकी उपस्थिति कम होती है इसके सिवा एक महाशयके पत्रसे ज्ञात हुआ है कि स्थानीय (एटाके) भाई पाठशालाकी तरफ कुछ भी ध्यान नहीं देते इसलिये अवस्था सुधरती नहीं है । यदि यह सच है तो स्थानीय पंचोंसे हम प्रार्थना करते हैं कि तन मन धनसे उसकी रक्षा करें और दिन दूनी रात चौगुनी उन्नतिकर वास्तविक विद्याप्रेमी बन उदाहरण दिखलावें ।

ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम

जैन समाज अपनी गाढ़ी कमाईका दान सद्धर्म के प्रचारार्थ पाठशालाओं और विद्यालयोंमें देती है । इस उद्देश्यके विपरीत जब किसी संस्थाके संचालक प्रवृत्ति करते हैं तो उनको निगाह रखने वाले दूरदर्शी विद्वान लोग एक विलक्षण चितामें पड़ जाते हैं और संचालकोंको बार बार चितावनी दिये बिना उनसे नहीं रहा जाता, लेकिन कोई २ मनुष्य अपनी धुनिके इतने पक्के और धोखेबाज होते हैं कि न तो

द्रव्य दाताओंकी कुछ पर्वा करते हैं और न विद्वानोंके सत्परामर्शको। इसी भांतिके संचालकोंमें ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम हस्तिनापुरके कुछ संचालक हैं। यह संस्था जब कायमकी गई थी तब जैन समाजमें उक्त उद्देश्यकी पुष्टिके लिये ही द्रव्य मांगा गया था पर मति भ्रष्ट हो जानेके कारण लोग कुमार्ग पर प्रवृत्ति करने के लिये उतारू हो गये हैं। नाना उपायोंसे कोमल हृदयी जैन जातिके नवजात बालकोंके संस्कार मलिन करने पर कमर कस रहे हैं। इस समाचारकी पुष्टि हालके जैन मित्रमें छपी हुई ब्र० शीतलप्रसादजी की सूचनासे होती है। वर्णीजीने प्रबंध कारिणी सभा के मेम्बरों और धर्म भ्रष्ट कतिपय संचालकोंके बदल देनेकी सम्मति दी है। यहां नहीं बल्कि भारतवर्षीय दि० जैन महासभाको उसमें हस्तक्षेप करने तकका इशारा किया है। जो कुछ भी हो! इन बातोंसे आश्रमकी भीतरी हालत बहुत ही शोचनीय ज्ञात होती है जिस संस्थाको जीवित रखनेके लिये जैन समाज अपनी कठिन कमाईका अंश प्रति वर्ष पंद्रह हजार रुपयेके करीब खर्च करे। अपने प्राणोंसे भी प्यारे नन्हे नन्हे बच्चोंको उनकी रोती हुई माताओंसे वर्षों वियुक्त रखने तककी कठिन परीषहको सहे और मन चले लोग उनबच्चोंका धर्म रत्न छीन डालनेमें कसाईपन करें उन्हें रात्रि भोजन, अभक्ष्य भक्षण, जिन मूर्तिका अदर्शन आदि करा इहलोक परलोक भ्रष्ट करें यह कहांतक युक्ति संगत है?

अंतमें हम आश्रमके संचालकों, जैन समाजके हितैषियों और प्रबंधकारिणी सभाके सदस्योंका आग्रह पूर्वक सूचित करते हैं कि वे आश्रमकी नीतिको शीघ्र ही सुधारें। जैन समाजका द्रव्य उसको बतलाये गये उद्देश्यकी पुष्टिमें लगाएं नहीं तो स्थिति भयंकर हो जायगी और जो विद्वान लोग अभी इशारोंसे समझा रहे हैं वे दूसरी तरह पेश आनेके लिये बाध्य होंगे।

दि० जैनपाठशालाकी आवश्यक्ता।

पाढ़म (मैनपुरी) में एक जैन पाठशाला करीब ७-८ वर्षसे कायम थी और बराबर जारी रही परन्तु अब ३ वर्षसे टूट गई है। पाढ़म भी एक अच्छी बस्ती है यहां जैनियोंके ३५-४० घर हैं। तथा दो दि० जैन मंदिरजी हैं यहां पर पाठशाला होनेकी अत्यन्त आवश्यकता है गतवर्ष दशलक्षण पर्वमें सुगंध दशमीके दिन पाठशालाकी आवश्यकता बतलाई गई थी। जबसे यहांकी पाठशाला टूट गई है वहांके मनुष्य उसके बाद भी चंदा देते हैं परन्तु जितना चन्दा है उतनेमें आजकल कोई अध्यापक नहीं मिलता है इस साल भी दशलक्षण पर्वमें चंदा हुआ था वहांके सब आदमियोंने यह भी कहा था कि यदि अध्यापक नहीं मिलता है तो १) एक एक रुपया और बढ़ादेंगे पं० अवश्य बुलवाना चाहिये। पाठशाला बंद होते हुये चन्दा इकट्ठा करना देना यह सब परिश्रम पाठशालाके मंत्री ला० लालारामजी पाढ़मका है हमने सुना है कि ला० देवीसहाय जी सा० रईस बेंकर फिरोजपुर छावनीने ५० स्थानोंकी पाठशालाओंको ५) माहवारी देना स्वीकार किया है। लाला जीको इस पाठशालाका भी ध्यान होना चाहिये। यदि पाठशालाके भाई सा० चाहें तो पाठशाला शीघ्र कायम करें। इससाल दशलक्षण पर्वमें यह भी विचार हुआ था कि यदि पाठशाला जारी नहीं होगी और रुपया जमा होता ही है तो यह रुपया मुरैना विद्यालय मथुरा विद्यालय काशी विद्यालय ब्रह्मचर्य आश्रम आदि किसी स्थानको भेज दिया जाया करे। अतएव पाठशालाके मंत्री महोदय लालारामजीसे निवेदन है कि पाठशालाका शीघ्र प्रबंध करें अथवा रुपया दूसरे किसी स्थान पर पहुंचा दें।

जयकुमार पाढ़मीय

आवश्यकता— (१) संस्कृतमें मध्यमाकी योग्यता वाले और शास्त्र सभाके अनुभवी अध्यापककी। वेतन ३०) से ४०) तक। पता—बाबूलाल वकील बाजारगांव मुरादाबाद। (२) एक ऐसे आदमीकी जरूरत है जो मंदिरजीमें पूजन करने वालेको मदद दिया करे यानी सामग्री बनाना पूजा पढ़वाना आदि। लिखो—होशियार सिंह जैन मुजफ्फर नगर। (३) स० हु० दि० जैन महाविद्यालय इन्दोरके लिये अंग्रेजीमें एट्रेंस पास और शिक्षा विभागमें काम कर चुके हों ऐसे २ अध्यापक। प्रार्थनापत्र मय सार्टिफिकेट भेजें—ला० हजारीलाल महामंत्री जवरीबाग, इन्दौर। ४ कन्याशाला स्थापित करनेको एक अनुभवी अध्यापिका जो हिन्दी और धर्मशिक्षा दे सके। वेतन ५०) मासिक तक। पता—पन्नालाल, मंत्री दि० जैन कन्या पाठशाला सुजानगढ़ जि० बीकानेर। (५) जैन पाठशाला के लिये एक ऐसे पंडितकी जो तीसरे दर्जे वालेको धार्मिक और लौकिक शिक्षा दे सकें। लिखो बाबूलाल जैन राजामण्डी आगरा। (६) जैन पाठशालाके लिये एक पंडितकी आवश्यकता है। वेतन २५) से ३०) मासिक तक। लिखो—लाला मनसनप्रसाद संगमलालजी, लश्करगंज, सरधना (मेरठ)

केसली (सागर)—में महा सभाके उपदेशक पं० मांजीलालजीके व्याख्यानसे ४० चालीस अजैन भाईयोंने मांसाहारका त्याग किया।

शास्त्र लिखनेके लिये—सुलेखकोंकी आवश्यकता है जो घर पर या यहां आकर नियत रेट अथवा वेतन पर कार्य्य कर सकें प्रार्थना पत्र मय नमूनेके शीघ्र ही महा मंत्री ओफिस बड़नगरसे मगाने चाहिये।

महा सभा—के कानपुर अधिवेशनकी तारीखें ता० १-२-३ एप्रिल सन १९२१ निश्चित हो चुकी हैं। अतः भाईयोंको अधिवेशनकी सफलताकी अभीसे कोशिश करनी चाहिये। उपयोगी और कार्यमें परिणत होने योग्य प्रस्ताव भेजने चाहिये।

भगवानदास महामंत्री,
श्री भा० दि० जैन महा सभा—बड़नगर

कलकत्तेमें विद्यालयादिके लिये चंदा।

कलकत्तामें ४ लाख रुपयेकी आवश्यकता है। फंड प्रारम्भ हो गया है खंडेलवाल महासभाका प्रथम कर्तव्य है कि इसकी पूर्ति करावे-और विद्याका अंकुर कलकत्तेमें बोकर चिरकालके लिये जो कष्ट है उसको दूर करावे। महा सभाको याद दिलानेके लिये ही यह लिखा गया है।

धार्मिक संस्थाओं पर घोर आपत्ति—

बम्बई गवर्नमेंटके प्रेस नोटसे यह जान कर बहुत ही दुःख हुआ कि बम्बईके जैन बोर्डिंग श्राविकाश्रम व जुबलीबाग तथा दि० जैन मंदिरके स्थानोंको सर्कार रेलवेके एक्टनके लिये लेना चाहती है। इन संस्थाओंसे सारे भारतके जैनसमाजको लाभ पहुंच रहा है। इस लिये इसका विरोध सब भारतके जैनों मात्रको करना चाहिये। जैन बोर्डिंगमें श्वेताम्बरी मूर्ति पूजक व स्थानकवासी भी विद्यार्थी लाभ उठाते चले आ रहे हैं। सेठ माणकचंदजीके गाढ़ परिश्रमकी क्षति होने वाली है। इस लिये महासभा, प्रान्तिकसभा व स्थानीय पंचायतियोंको इसका विरोधरूप तार बम्बई गवर्नरके पास बहुत शीघ्र भेजना चाहिये जिसमें यह लिखना चाहियेकि हम लोग सर्कारके इस इरादेका घोर विरोध करते हैं जो उसने तारदेव पर स्थापित जैन बोर्डिंग, श्राविकाश्रम, जुबलीबाग, दि० जैन मंदिरके स्थानोंको रेलवेके कामके लिये लेनेका दर्शाया है। इन संस्थाओंसे सर्व भारतके जैनियोंको लाभ पहुंचता है तथा हमारे धर्मका घात होता है इससे सर्कार इस इरादेको बन्द कर देवे और दूसरी जगह ढूंढे ऐसे तार पंचायतियोंको धर्म रक्षा हेतु अवश्य देने चाहिये।

पद्मावती परिषद्का मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल ।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा कविताओंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

विषय सूची।

वर्ष. ३ | अं. ८

वार्षिक मू० २)

व्यवस्थापक—
श्रीधन्यकुमार जैन, 'सिंह'

१ अंक ≡)

सद्भाव ।

(श्रीयुक्त मणि काव्यतीर्थ)

हे दीन पालक विभो तुम्हरी कृपासे ।
पाया अभी समय एक अनूप ऐसा ॥
सारी धरागत विभो ! हिंसा मिटाना ।
है लक्ष्य आज सबने निज चित्त ठाना १॥

ये भाव हो उदय पाकर आज सारे ।
मेटें व्यथा जगतकी सबही जरूर ॥
होंगे सुखी जन यहां इस भावसे यों ।
होते बटेर कर पाकर अंध जैसे २॥

हिंसा-प्रभाव लखके सब देश वासी ।
हैं एक आज तज वैर युगान्तरोंका ॥
यों भारतीय जनता मिल प्रेम धारें ।
होवें तभी अति विचित्र सुयोग भूमें ३॥

हे माननीय नव भारतके दुलारे !
आया सुकाल करलो निज शांत चित्त ॥
जो आज देश अपना कर रत्न सारा ।
डाला महा जनक व्याधि सभी हटाई ४॥

प्राप्ति-स्वीकार ।

नवग्रह अरिष्ट निवारक विधान ग्रहोंकी चालसे जब प्राणियोंके अनिष्ट होनेकी सूचना दी जाती है तब आज कल लोग उसको नाना मिथ्या उपायोंसे शांति करते हैं और असली शांतिकारणोंको भूल जाते हैं। इसमें प्रधान कारण दो है। एक तो जैन शास्त्रानुसार आज कल शांतिकारक विधि बतलानेवाले ग्रंथोंका प्रचार नहीं है दूसरे जोशी पाधा आदि अनेक भ्रांत लोगोंकी अधिकतासे हमारे भाई उनकी बातोंमें फंस जाते हैं। हर्ष है कि सेठ बालमुकुंद दिगंबरदास जीने उक्त नामकी पुस्तक प्रकाशित कर शांतिविधानकी तरकीब लोगोंको सुलभ कर दी है। प्रत्येक ग्रहसे उत्पन्न अशांतिको नष्ट करनेके लिये उन ९ ग्रहोंकी अशांतिके नाशक जिनेंद्र भगवानोंका इसमें पूजन है। प्रत्येक जैनीको अपने पास रखकर काम पड़नेपर उपयोगमें लाना चाहिये। मूल्य लागत मात्र =)॥ पोष्टेज जुदा। मिलनेका पता—सेठ बालमुकुन्द दिगम्बर दासजी जैन ८७ न० राजबाजार सिहोर छावनी।

बालबोध जैनधर्म—लेखक पं० फूलजारीलालजी धर्माध्यापक जैनस्कूल पानीपत। इसमें सरलतापूर्वक स्कूलमें पढ़ने वाले बच्चोंको जैनधर्मकी शिक्षा देनेका प्रारंभ किया गया है। पंडितजीको सब यहां क्लासोंमें पढ़ाने लायक पुस्तक रचकर प्रकाशित करना चाहिये।

तीन औषधियां। नाम है,—च्यवनप्राश, मदनानन्द मोदक और मकरध्वज। यह तीनों आयुर्वेद शास्त्रोक्त प्रसिद्ध औषधि है। ये शीतकालमें सेवन करनेसे एक वर्ष तक मनुष्यको स्वस्थ, सबल और सतेज रखती है इन दिनों यह औषधियां बहुतेरे मनुष्य बनाने लगे हैं। फिर भी उनमें विशुद्धताका बड़ा अभाव होता है। फिर, जो विशुद्ध औषधियां बनाते हैं, वह उनकी कीमत अधिक बढ़ा देते हैं। पर ये औषधियां सेवन करनेसे गुण दायक प्रतीत हुई हैं और अल्प मूल्य वाली भी हैं; इन दिनों ये तीनों यथा क्रम प्रातः काल संध्या और रात्रिको लेना चाहिये। पंद्रह दिनमें इनका फल मालूम हो सकता है अतएव पंद्रह दिनकी खुराक का एकत्र मूल्य ६) पोष्टेज जुदा। पता, वी० एन० वैद्यरत्न, २०३ हरिसनरोड, कलकत्ता

धर्मध्वंसे सतां ध्वंसस्तस्माद्धर्मद्रुहोऽधमान् । निवारयन्ति ये सन्तो रक्षितं तैः सतां जगत् ॥
कंटकानिव राज्यस्य नेता धर्मस्य कंटकान् । सद्योद्धरति यो योगी यस्सलक्ष्मीधरो भवेत् ॥ (गुणभद्राचार्य)

३ रा वर्ष } कलकत्ता, कार्तिक, वीरनिर्वाण सं० २४४७ सन् १९२० { ८ वां अंक

नकल ।

करना नकल किसी की जगमें होता अतिहानीकारक ।
जो नर करते नकल किसी की होते वे सुकार्यघातक ॥
धर्म कार्यके नकली नरगण जाते गिने धर्म द्रोही ।
क्योंकि सिवा नकलीपनके वे हैं अधर्ममें अतिमोही ॥ १ ॥
उसीतरह जो देशकार्यमें करते हैं नकली व्यवहार ।
यशके लोभी वे नर हो कर करते बस देश संहार ॥
जाते फिसल शीघ्र नकली नर आफत जरा देखनेसे ।
किंतु नहीं डिगते असली नर वज्र कष्ट भी पडनेसे ॥ २ ॥
स्वाभाविक पदार्थकी शोभा मनोहारिणी होती है ।
कायम रहती बहुत दिनोंतक कार्यकारिणी होती है ॥
इसीलिये है नम्र निवेदन सब स्वाभाविक अपनाओ ।
आदी सुंदर अन्त भयंकर नकलपिन मत लाओ ॥ ३ ॥

स्त्री-मुक्तिपर विचार।

[तीसरे अंकसे आगे]

यहांतक पाठक इसबातको भलीभांति समझ चुके होंगे कि यद्यपि भोगभूमिमें स्त्रियोंके समस्त संहनन होते हैं परंतु कर्मभूमिमें नहीं किंतु अंतके तीन ही संहनन होते हैं क्योंकि कर्मभूमि और भोगभूमि भिन्न भिन्न २ हैं—भोगभूमिकी समस्त बातोंका क्रमिक विधान कर्मभूमिमें नहीं हो सकता एवं कर्मभूमिकी समस्त बातोंका क्रमिक विधान भोगभूमिमें नहीं हो सकता हां कोई २ क्रमिक बातें होती हैं इसलिये सेठी अर्जुनलालजीने जो यह लिखा था कि भोगभूमीके अंत होने पर कर्मभूमिमें जिस प्रकार आयु आदिका क्रमिक विधान चला आया उस प्रकार संहननोंका क्यों नहीं आया-एकदम तीनों संहननोंका कर्मभूमिमें अभाव कैसे हो गया? यह निर्मूल ठहरा। अब जो सेठीजीने यह लिखा है कि 'अंतिमतियसंहडणो' इत्यादि गाथा असंबद्ध और क्षेपक हैं इस बात पर विचार किया जाता है—

सेठीजीने लिखा है-कि 'अंतिमतियसंहडणो' यह गाथा पूर्वापर संबंध न मिलनेसे असंबद्ध है तथा कर्मकांडका पहिला अधिकार प्रकृति समुत्कीर्तन है उसमें प्रकृतियोंका वर्णन है किंतु विचार करनेसे यह मालूम पड़ता है कि वे गाथायें सिलसिलेवार नहीं आपसमें उनका क्रम टूटा हुआ है और टीकाकारोंने अपने गद्य ग्रंथोंमें उनको पूरा कर ठीक किया है। एवं सेठीजीने उस पर अपना यह राय भी दी है कि आचार्य महाराजने तो क्रम ठीक ही लिखा होगा किंतु लिखित या मुद्रित प्रतियोंमें वह क्रम दीख नहीं पड़ता इसलिये या तो यह मानना पड़ेगा कि वे गाथा खोई गईं या यह कहना पड़ेगा कि क्षेपक जान वे ग्रंथसे निकाल दी गईं एवं क्रम खंडन कर दिया गया।

उत्तरमें निवेदन है कि—खोये गये किंवा क्षेपक जानि निकाल देनेकी शंका निर्मूल है क्योंकि यह स्वाभाविक बात है कि जिस समय कोई प्रसिद्ध विद्वान जिस किसी ग्रंथका निर्माण करता है उसके भक्त एवं धर्मप्राण मनुष्य उसकी हाथों हाथ प्रति करा लेते हैं, और बात ही बातमें एक प्रतिका सैकड़ों जगह पठन पाठन प्रचार हो जाता है। भगवान नेमिचंद्र मामूली विद्वान न थे प्रसिद्ध राजा चामुंडरायके गुरु थे इसलिये गोम्मटसार पूर्ण होते ही उसकी अवश्य सैकड़ों प्रति हो गई होंगी ऐसी अवस्थामें कम बुद्धि मनुष्य भी इस बातको समझ सकता है कि यदि एक प्रतिमें कुछ गाथा खोई जाय तो दूसरी प्रतिमें तो नहीं खोई जा सकती। अथवा एक प्रतिसे निकाल दी जाय तो दूसरी प्रतिसे तो नहीं निकाल दी जा सकती।

लेकिन हां जो प्रति भगवान नेमिचंद्रने लिख कर तैयारकी होगी उसीमेंसे किसीने गाथा निकाल दिये हों तो माना जा सकता है कि गोम्मटसारको कुछ गाथाओंका लोप हो गया लेकिन यह बात असंभव है। भगवान नेमिचंद्रने अपने जीवनास्तित्वतक कई दफा गोम्मटसार उलटा पलटा होगा और उस उलट पुलटनेके पहिले सैकड़ों प्रति तो हो ही चुकी होंगी इसलिये हमारी समझमें तो यह बात बाहिर है कि प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकारकी गाथा किसीने निकाल दी हों और क्रम खंडित कर दिया हो।

शायद पाठकोंको यह शंका होगी कि अब किसी

ने प्रकृतिसमुत्कीर्तन अधिकारसे गाथा निकाली हो नहीं; तो क्या वजह है जो उसमें १४८ प्रकृतियोंको क्रम से गाथा नहीं मिलतीं जिस क्रमका वर्णन किया है उसका क्रमानुसार नहीं वर्णन किया। तो उसका समाधान यह है कि गोम्मटसारके पाठी अन्य विद्वान एवं स्त्रीमुक्तिके मंडनकार महाशयको भी यह वातपूर्ण अभिमत है कि गोम्मटसार भगवान नेमिचन्द्रका बनाया हुआ स्वतन्त्र ग्रंथ नहीं किन्तु संकलित ग्रंथ है माधवचंद्र आदि आचार्योंने गाथाओंका संकलन कर गोम्मटसारकी रचना हुई है ऐसी दशामें भगवान नेमिचंद्रको जो जैसी दूसरे ग्रंथोंमें गाथा मिली उनका उन गाथाओंमें ही क्रमशः स्थान योग कर रखदिया और यह समझ कि यह सरल विषय है अन्य ग्रन्थोंमें स्पष्ट है अपनी ओरसे १४८ प्रकृतियोंका क्रमवार वर्णन नहीं किया।

कदाचित् यह कहा जाय कि ऐसी क्या जरूरत पड़ी थी जो उन्होंने ऐसा किया? उन्हें अपनी निजकी गाथा बनाकर १४८ प्रकृतियोंका क्रमवार वर्णन करदेना था तो उसका समाधान यह है कि—

इस दंतकथाके अनुसार कि "भगवान नेमिचंद्र एक दिन धवल आदि ग्रंथोंका अवलोकन कर रहे थे उसीसमय उनके मुख्य शिष्य राजा चामुंडराय का आना होगया। चामुंडरायको देखकर आचार्य नेमिचंद्रने ग्रंथ बंद कर दिये। राजा चामुंडरायको यह बात अच्छी न लगी उसने शीघ्र ही विनयावनत हो कहा—भगवन्! यह क्या? मुझेभी कुछ सुनाइये उत्तरमें भगवान नेमिचंद्रने यह कहा कि अभी तुम इतने विशाल किंतु गूढ ग्रंथोंके अधिकारी नहीं हो उसको शांत कर दिया एवं धवल आदि ग्रंथोंके विषय जाननेके लिये राजा चामुंडरायको अति लालायित देख शीघ्र ही भगवान नेमिचंद्रने गोम्मटसार ग्रंथका निर्माण किया। ऐसी दशामें यह बात अनुभवमें आसकती है कि गोम्मटसारके बनानेमें अधिक जल्दी होनेके कारण एवं प्रकृतियोंका विषय सरल जान भगवान नेमिचंद्रने प्रकृतियोंके क्रमपर ध्यान नहीं दिया।

यदि यह संकलित ग्रंथ न होता और चामुंडराय के संबंधसे गोम्मटसारके बनानेमें भगवान नेमिचद्रको जल्दी नहीं होती तो जिसप्रकार पाणिनीय व्याकरणके महाभाष्यमें बहुतसे सूत्रोंका भाष्य न मिलनेसे एवं कहीं कहीं विषयके वर्णनमें त्रुटि होजानेके कारण यह कल्पना करली गई कि पतंजलि महाराजने वृक्षोंके पत्तोंपर महाभाष्यका निर्माण किया था वे लिखनेमें व्यग्र थे पीछे उनके एक बकरा बंधा था जैसे २ वे पत्तोंपर लिखकर रखते जाते थे उनमें बहुतसे पत्तोंको वह चबाता जाता था उसीप्रकार गोम्मटसारके विषयमें भी यह कल्पना करली जाती कि इसके कुछ गाथा खाये गये या अधिक जान ग्रंथसे जुदे कर दिये गये।

यदि यह कहा जाय कि वे गाथायें संगृहीत नहीं भगवान नेमिचंद्रजीकी बनाई हुई हैं इसलिये १४८ प्रकृतियोंके क्रमवार वर्णन न करनेमें उनमेंसे किन्हीं कारणोंसे कुछ गाथायें जुदी जुदी करदी गई हैं तो इस विषयमें हमारा यह मत है कि 'पडि पिसय पहुदि दव्वं' इत्यादि गाथाओंमें जहांपर आचार्य महाराजने नोकर्मों का वर्णन किया है वहां पर आठों कर्मोंको उत्तर प्रकृतियां व उनके कार्य स्पष्टरूपसे लिख दिये हैं। यदि वहां पर १४८ प्रकृतियोंका फिर क्रमवार वर्णन करते और वहां भी करते तो पुनरुक्त दोष हो जाता यदि यह प्रश्न उठाया जाय कि यहीं पर ही समस्त उत्तर प्रकृतियोंका क्रमवार वर्णन करना था वहां नहीं तो इस

का उत्तर स्पष्ट है कि वहां पर तो उनको वैसा वर्णन करना हो पड़ता और यहां पर जो कुछ वर्णन किया है वही पर्याप्त है, दोषास्पद नहीं। कुछ भी हो प्रकृति समुत्कीर्तनकी ३३ वीं गाथा तक गाथाओंको यदि संगृहीत माना जाय तब भी दोष नहीं क्योंकि नोकर्मोंके वर्णनके समय आठों कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंका वर्णन जरूरी समझ यहां कुछ विशेषताप्रतिपादक इतनी ही गाथायें रक्खीं और यदि भगवान नेमिचंद्रकी बनाई ये गाथायें मानी जाय तब भी दोष नहीं क्योंकि आगे नोकर्म वर्णन करते समय कर्मोंकी उत्तर प्रकृतियोंका वर्णन करना हीं था वहां जिन २ प्रकृतियोंमें विशेष वर्णन करना था उन गाथाओंका निर्माण कर दिया इसलिये सेठीजीने प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकारको आदिकी गाथाओंको बेसिलसिले बतलाकर ३२ वीं गाथाको प्रकरण विरुद्ध सिद्ध करनेका जो साहस किया था वह अयुक्त है भगवान नेमिचन्द्रने जितनी गाथायें संगृहीत वा निर्मित की थीं उतनी हीं हैं किसीके द्वारा रंचमात्र भी घटाई बढाई नहीं गई।

सेठीजीने जो यह लिखा है कि 'यह गाथा जहां तक भी इसका पूर्वापरसे संबंध मिलाया तो असंबद्ध और क्षेपक मालूम होती है' बड़ा आश्चर्यकारक है क्योंकि गोम्मटसारके पाठी अथवा जिन्होंने गोम्मटसार देखा भी नहीं है वे गोम्मटसार खोलकर देख सकते हैं कि जब अंतिम तियसंहननी इस ३२ वीं गाथाके पूर्वको २९ । ३० । ३१ वीं गाथाओंमें संहननोंका वर्णन है और बत्तीसवीं गाथाके आगे अन्य नाम कर्मकी उत्तर प्रकृतियोंमें आचार्य महाराजने कुछ विशेष वर्णन की आवश्यकता न समझ कर संहनन प्रकृतिके आगे आनेवाली आतप प्रकृतिकी ३३ वीं गाथामें विशेष वर्णन किया है तब ३२ वीं गाथा कभी असंबद्ध नहीं हो सकती। विचारनेकी बात है कि ३२ वीं गाथाके पूर्व एक वा दो में भी नहीं तीन गाथाओंमें संहननोंका वर्णन है और तेतीसवीं गाथामें क्रम प्राप्त आतप प्रकृतिका वर्णन है तब नहीं मालूम सेठीजीको बत्तीसवी गाथा असंबद्ध कैसे जच गई? बलिहारी इस बुद्धिमत्ताकी है।

सेठीजी! आपको ऐसी असंबद्धता पर जोर देनेसे तो हमें यही जचता है कि बत्तीसवीं गाथाके पूर्वकी गाथाओंमें और जीवकांडकी गाथाओंमें आचार्य महाराज यदि संहनन ही संहनन लिखते चले आते तब ही आपको बत्तीसवीं गाथा संबद्ध जान पड़ती फिर तो वैसा ही हाल होता जैसे कि एक विद्यार्थी परीक्षा देने गया किंतु उसको आता कुछ भी न था बस ज्यों ही उसे प्रश्न पत्र मिला उत्तर तो वह न दे सका क्योंकि असमर्थ था उसने प्रश्नपत्रके टाइममें केवल श्री शब्दको ही लिख कर तमाम कापी भर दी। महानुभाव! आजकलके जमानेका भी अनुभव कर लीजिये जिस समय कोई पुस्तकका लेखक किसी पुस्तकको लिखता है वह किसी किसी विषयकी थोड़ीसी ही विशेष बातें लिखकर उस प्रकरणको समाप्त कर देता है चाहें कालांतरमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंको उस लेखकका उस प्रकारका विषय वर्णन विशृंखल जान पड़े किंतु पुस्तकके लिखनेवालेको अपने कालमें उस विषयका वैसा लिखना ही आवश्यक मालूम पड़ता है भगवान नेमिचन्द्रका भी उस समयके अनुसार ऐसा ही हाल होगा इस लिये उनके वैसे विषय वर्णनकी ठीक स्थिति न समझ उसमें 'ऐसा वर्णन करना चाहिये ऐसा नहीं', इत्यादि मन गढंत युक्तियां लगाना अनुचित ही है।

आगे चलकर आप लिखते हैं कि कर्मभूमिको

स्त्रियोंके संहनन सम्बन्धी गाथा (३३) ३२ वीं है, इस के पूर्व २८ वीं गाथामें अङ्गोपांगके नाम हैं, संहननोंके नाम कहीं नहीं। २९, ३०, ३१ इन तीन गाथाओंमें यह वर्णन है कि छः संहनन वाले जीव किस किस संहनन से कौन कौन गतिमें उत्पन्न होते हैं, जैसे सृपाटिक संहनन वाले जीव स्वर्ग में उत्पन्न हों तो लांतवका पिष्ट युगल तक ही होंगे आगे नहीं इत्यादि ३३ वीं गाथामें आतप नाम प्रकृति और अग्नि कायकाभेद बताया है'

उत्तरमें निवेदन है कि अनुभव आत्मक धर्म है सेठीजी! उस अनुभवको आत्मासे जुदा न करो ज्यो तो आत्मामें अनुभवके लिये स्थान दो। महानुभाव तत्त्वार्थसूत्रजीके 'गतिजातिशरीरांगोपांगेति' इस सूत्रके अनुसार संहनन नाम कर्मके पहिले अंगोपांग नामकर्म है इस लिये अंगोपांगमें विशेषता बतलाने के लिये या उसका साफ स्वरूप समझानेके लिये आचार्य महाराजने अठाईसवीं गाथामें उसका वर्णन किया है निर्माण बंधन संघात संस्थान इन चार नाम कर्मोंमें कुछ विशेषता बतलानेकी आवश्यकता नहीं समझी और संहननोंके अंदर विशेष स्वरूप समझानेकी आवश्यकता समझी इस लिये उनतीससे लेकर चार गाथाओंमें उन्होंने संहनन नाम कर्मका विशेष वर्णन किया। तथा यह हम पूर्व लिख चुके हैं कि संहननके बाद आतप नाम कर्म है बीचके नाम कर्मोंमें विशेषता बतलानेकी आचार्य महाराजने आवश्यकता न समझी इस लिये ३३ वीं गाथामें आतप प्रकृतिका वर्णन किया है। आश्चर्यकी बात है इस प्रकार क्रम के रहने पर भी केवल बत्तीसवीं गाथाको भूल सिद्ध करनेके लिये न मालूम सेठीजीने क्यों अविचारितरम्य प्रयोग किया? आगे चलकर सेठीजी लिखते हैं—

'अस्तु, इस (३३) ३२ वीं गाथाका पूर्वापर गाथाओंसे कोई भी सम्बन्ध नहीं है और यह यहां बिल्कुल अनावश्यक है। यदि कहीं तारतम्य से १४८ कर्म-प्रकृतियोंका वर्णन भी होता तो भी इस गाथाकी यहां जरूरत नहीं होती, क्योंकि इसमें कर्मभूमि की मनुष्यिणी और तिर्यञ्चनी के उदय योग्य संहननों का वर्णन है और यह वहीं होना चाहिये जहां गति मार्गणा में तिर्यंचों और मनुष्यों के उदय योग्य प्रकृतियों का वर्णन है अर्थात् बन्धोदय सत्वाधिकार में इसका स्थान होता। परन्तु वहां तो इस संहननाभाव का कुछ जिक्र ही नहीं। यदि यह कहा जाय कि संहननोंके वर्णनमें विशेष बातोंका दर्शाना जरूरी था जैसा २९, ३०, ३१ में किया गया है इस प्रतिवाद का उत्तर यह है कि जैसी विशेषता कर्म-भूमि की स्त्रियों के लिये कही जाती है भोग-भूमियों के लिये अन्त के पांच संहननों का अभाव भी तो वैसी ही विशेषता है उसकी भी गाथा यहां ही इसके साथ ही होनी चाहिये थी. उसका वर्णन कर्मकाण्ड के बन्धोदय के सत्वाधिकार में ३०२ और ३०३ की गाथा संख्या में क्रमानुसार क्यों किया गया? कर्म-भूमि ही की स्त्रियों के लिये विशेष गाथा रचकर यहां क्यों रक्खी गई?'

उत्तरमें निवेदन है कि (३३) ३२ वीं गाथा का पूर्वापरसे संबंध न बतलाना अयुक्त है क्यों कि हम अच्छीतरहसे बतला चुके कि आचार्य महाराजने आवश्यकतानुसार क्रमिक ही वर्णन किया है। 'यदि तारतम्यसे १४८ प्रकृतियोंका वर्णन भी होता तो भी इस गाथाको यहां वर्णन करनेकी जरूरत न थी किंतु बंधोदय सत्वाधिकारमें इसका स्थान होता' यह भी ठीक नहीं क्योंकि नाम कर्मको उत्तर

प्रकृतियोंमें संहननका विशेष वर्णन जब आचार्यने किया है तब ३२ वीं गाथाका विषय स्वरूप विशेष वर्णन भी करदिया, बंधोदय सत्त्वाधिकारमें ख्याल न रहनेपर यदि इस विशेष बातका यहां ख्याल उठ आया तो आचार्य महाराजने वज्रपाप नहीं करडाला। आजकल भी यह देखा जाता है कि पुस्तककार अपनी पुस्तकमें प्रकरणानुसार दो एक विशेष बातका उल्लेख कर देता है पीछे जब उस विषयको स्वतंत्र लिखता है उस समय पूर्वोल्लिखित विषयको छोड़कर उस विषयका जितना उसे वर्णन करना होता है करता है। आचार्य महाराजने भी ऐसा ही किया है। नामकर्मकी उत्तर प्रकृतियोंके विशेषका वर्णन वे करचुके थे क्रमप्राप्त संहनन नामक भी नाम कर्मकी उत्तर प्रकृति आगई उसमें भी कुछ विशेष वर्णन कर दिया एवं बंधोदय सत्त्वाधिकारमें जो विशेष पहले लिख दिया उसके अतिरिक्त वर्णन किया ऐसे करनेमें कोई अपराध आचार्यसे नहिं बनगया। तथा यह जो लिखा है कि-'यदि विशेष ही वर्णन करना था तो कर्मभूमिकी स्त्रियोंकी विशेषताके समान भोगभूमिकी स्त्रियोंकी भी विशेषता वर्णन करनी थी उनके भी पांच संहननोंका यहां ही अभाव बतलाना था किन्तु ऐसा न कहकर कर्मकांडके बंधोदय सत्त्वाधिकारमें ३०२। ३०३ की गाथामें वह क्यों वर्णन किया' यह भी लिखना अयुक्त है क्योंकि ग्रंथकारकी राजी वह प्रकरणोपात्त जहां विशेषता वर्णन करना चाहे वहां कर सकता है परंतु हां! प्रकरण विरुद्ध नहीं होना चाहिये। भगवान नेमिचंद्रने प्रकरणोपात्त कर्मभूमि की स्त्रियोंके संहननोंमें विशेषता ३२ वीं गाथासे कह दी और भोगभूमि की स्त्रियोंमें ३०२-३०३ की गाथाओंसे कहदी यह अयुक्त नहीं।

आगे चलकर सेठीजीने जो यह लिखा है कि-'पाठकों को शायद २९, ३०, ३१ गाथाके विषयमें प्रश्न हो कि ये भी विशेषता प्रतिपादक हैं। इसका समाधान यह है कि इन गाथाओंमें यह वर्णन है कि किस संहननका जीव कहां २ उत्पन्न होसकता है और यह कथन बन्धोदय सत्त्वाधिकारमें कहीं भी जगह नहीं पा सकता। वहां मार्गणा और गुणस्थानोंमें बन्ध, उदयादिको प्रकृतिगणना है, संहनन न मार्गणा है न गुणस्थान एवं स्वर्गके युगल और नरक पृथिवियां भी मार्गणा नहीं। इस कारण जीव किस २ संहननसे कौन २ स्वर्ग युगल वा नरक-भूमिमें उत्पन्न होते हैं इसका कथन संहननोंके वर्णनके साथ ही हो सकता है अन्यत्र नहीं। परन्तु स्त्रियोंके संहननोदयका लेख तो गति और वेद दोनों मार्गणाओंमें होना चाहिये, उसमें कोई विशिष्टता नहीं। स्त्री वेद मार्गणाकी गणनामें है तथा गतिमार्गणाके अन्तर्गतमें है। २९, ३० ३१ गाथाका विषय ही यह कहता है कि इनके पूर्व संहननोंका वर्णन करनेवाली गाथायें थीं।'

उत्तरमें निवेदन है कि वाह सेठीजी खूब ही आखोंमें धूलि झोकना जानते हो! आपने ३२ वी गाथामें स्त्रीवेद पकड़कर उसे वेदमार्गणा और गतिमार्गणाके अंतर्गत मानकर तो यह कह दिया कि ३२ वी गाथाका विषय बंधोदय सत्त्वाधिकारमें होना चाहिये और २९, ३०, ३१ गाथाओंमें संहनन शब्दको पकड़कर और उसे कोई भी गुणस्थान या मार्गणा न बतलाकर यह लिख दिया कि ये तीन गाथायें बंधोदय सत्त्वाधिकारमें स्थान नहीं पासकती। धन्य है। महानुभाव! क्या आपको लिखते समय यह न सूझा था कि जिस पुरुष या स्त्री वा तिर्यंच देवादिकके फलाने संहननका उदय होगा तो वह फलानी गति जावेगा और फलानेका

उदय होगा तो फलानोमें। यहां पर भी संहननका आधार स्त्रीके समान मनुष्य देव स्त्री आदिका हीं ग्रहण होगा और स्त्रीको जिस प्रकार मार्गणा माना गया है उस प्रकार पुरुष तिर्यंच आदिको भी मानना होगा क्योंकि संहननका उदय पत्थर ईंटके नहीं होता। बलिहारी! क्या इस प्रकार ऊट पटांग लिखनेसे ही ३२ वीं गाथाका विषय असंबद्ध माना जायगा? इसलिये मानना होगा जिस प्रकार २९ वीं आदि तीन गाथाओं का विषय वर्णन विशेषतासे जान ग्रंथकारने प्रारंभमें ही वह वर्णन किया है उसी प्रकार ३२ वीं गाथाका विषय भी विशेष विषय जान ३२ वीं ही गाथामें ही वर्णन किया है। ३२ वीं गाथा बंधोदय सत्वाधिकारमें ही होनी चाहिये यहां नहीं होनी चाहिये इत्यादि कुतर्कोंका अवलंबनकर उस गाथाका विषय असंबद्ध बन जाना अन्याय ही नहीं महा पाप है। यह ग्रंथकारकी स्वतंत्रता है कि वह आगमके अविरुद्ध किंतु प्रकरणानुकूल जिस किसी बातको जहां वर्णन करना चाहे वहां कर सकता है। तथा यह जो लिखा है '२९ ३० ३१ वीं गाथाओं का विषय ही यह कहता है कि इनके पूर्व संहननोंके वर्णन करने वाली गाथायें थी वह भी अयुक्त है क्यों कि जब यह बात युक्तिद्वारा भले प्रकार सिद्ध हो चुकी है कि ग्रंथकारने जितनी भी गाथायें बनाई वा संगृहीतकीं वे गाथायें सब हैं उनमें कुछ भी भाग जुदा नहीं किया गया तब २९ वीं गाथाके पूर्व कुछ गाथा बतलाना न्याय्य नहिं माना जा सकता क्योंकि पूर्वापर संबंध मिलाकर ग्रंथकारको प्रकृति समुत्कीर्तन अधिकारके प्रारम्भमें इतना ही वर्णन करना अभीष्ट था। तथा आपने जो यह लिखा है कि---

ऊपर लिखी हुई दलीलोंसे जब यह गाथा किसी दूसरेकी क्षेपक साबित है तो 'जिणेहि णिद्दिट्ठं' (जिनेन्द्रने कहा है) ये शब्द भी व्याख्या करने योग्य हो जाते हैं इसका निर्माता ग्रंथोध्ययन करने वालों पर प्रारम्भमें ही 'जिनेन्द्रने कहा है' ऐसे कह कर उस मत भेदका जोर डालता है जो उसके दिमागमें खूब बना हुआ है और जिसका प्रचार करना वह अपना पहिला कर्तव्य समझता है। वह इस कथनके जिनोक्त होनेकी प्रतीति विशेषतासे दिलाता है।

उत्तरमें निवेदन है कि जिनेंद्रोक्त शब्दसे ग्रंथकारका अभिप्राय जोर डालना किंवा किसी खास मत का प्रचार करना नहीं है। क्योंकि यदि ग्रंथकार भगवान नेमिचंद्र या उनके किसी गुरुका कर्मभूमिमें स्त्रियों के तीन ही संहनन होते है यह खास रूपसे मत होता तब तो ऐसी जोका वैसा लिखना ठीक होता किंतु स्त्रियोंके अंतके तीन ही संहनन होते हैं यह सिद्धांत तो ... आदि गुरु नामसे पुकारे गये हैं। जो वि. सं. ४९ में हो गये हैं और वि. सं. ७३५ में होनेवाले भगवान नेमिचंद्र से सैकड़ों वर्ष पहलेके हैं उन भगवान कुंदकुंदका भी है जैसा कि ऊपर षट्पाहुड ग्रंथानुसार उद्धृत किया जा चुका है, तब यह कैसे कहा जा सकता है कि जिनोक्त पदोल्लेखसे ग्रंथकार किसी खास मतके प्रदर्शनार्थ जोर डालता है। दूसरे यह भी बात है कि दिगंबर जैन सिद्धांतमें भगवान नेमिचंद्र आचार्य के आगे वा पीछे होने वाले किसी भी आचार्यने स्त्री को मोक्षका विधान नहीं माना किंतु द्रव्य पुरुष लिंगसे ही मोक्षका विधान माना है तथा ऐसा माननेसे यह बात सिद्ध ही है कि उन्हें स्त्रियोंके तीन ही संहनन अभीष्ट थे तब स्त्रियोंके तीन ही संहनन होते हैं यह किसी खास ग्रन्थकारका मत बतलाना और यह भी जाहिर करना कि बत्तीसवीं गाथामें 'जिणेहि णिद्दिट्ठं', इस पदसे भगवान नेमिचंदने भी उसकी

पुष्टि की है कितनी असमीक्षिता और धृष्टताका कारण है ! क्या भगवान नेमिचंद्र सरीखे प्रचंड आचार्य भी किसी कदाग्रह प्रेरित मत पर जोर दे सकते थे ? क्योंकि जहां जहां मतभेदका अवसर आया है उन्होंने दोनों मतोंका उल्लेख कर दिया है अपनी ओरसे किसी भी मत पर जोर नहीं दिया। आश्चर्यकी बात है कि संतान रूपसे जब यह बात अभीष्ट है कि कर्मभूमिकी स्त्रियां मोक्षकी अधिकारिणी नहीं उनके अंतके तीन ही संहनन होते हैं तब भी 'जिणेहि णिदिट्ठं' इस पदसे आचार्य नेमिचंद्र पर जबरन कलंक मढ़ना पूर्वापर ग्रंथ देखनेका कष्ट नहिं उठाना धृष्टता मात्र है।

ग्रन्थकार जितना विषय वर्णन करना चाहता है यदि वह गाथा वा श्लोकमें थोड़े ही अक्षरोंमें वर्णन हो जाता है तब पाद पूर्तिके लिये वह अधिक अक्षर जोड़ देता है ३२ वीं गाथामें तीन पादसे कुछ अधिकमें जब भगवान नेमिचंद्रका अमोघ वर्णन हो चुका तब उन्होंने 'जिणेहि णिदिट्ठं' इन पूज्यता वाचक शब्दोंमें अपने परंपरा गुरुका उल्लेख किया है इसके सिवा उनका कोई अभिप्राय प्रतीत नहीं होता गोम्मटसारमें और भी कई जगह उन्होंने ऐसा किया है अन्य आचार्योंने भी अपनी भक्ति प्रदर्शनार्थ ऐसा किया है किंतु सेठीजीके मतानुसार वहां किसीके खास मत पर जोर देनेकी शंका किसीको नहीं उठती । अस्तु ।

सेठीजीने यह भी कटाक्ष किया है कि जब यह ग्रंथ राजा चामुंडरायके लिये बनाया गया तब ग्रन्थकारको ज्ञानावरणादिक आठ अंगोंके नाम गिनानेकी क्या आवश्यकता थी। आठों उत्तर प्रकृतियोंका ज्ञाता चामुंडराय क्या आठ अंगोंका नाम नहीं जानता था इत्यादि।

उत्तरमें निवेदन है कि यह लिखना आपका निर्मूल और निन्दित मतके प्रचारार्थ शास्त्रका मखौल उड़ाना है जब ऊपर यह बात सिद्ध करदी गई कि पुनरुक्ति आदि दोषोंके कारण और प्रारंभमें कुछ ही उत्तर प्रकृतियोंके विशेषका वर्णन करना ग्रन्थकारको अभिमत था, इसी लिये उन्होंने ज्ञानावरणादि आठों अंगोंका वर्णन किया क्योंकि आठों अंगोंका बिना वर्णन किये वे उत्तर प्रकृतियोंका विशेष वर्णन नहीं कर सकते थे आगे जाकर भी ग्रंथका सिलसिला नहीं बंधता इसलिये ग्रंथकारका आठों अंगोंका वर्णन अयुक्त नहीं।

चामुंडराय ही समझ सके इसलिये गोम्मटसार बना हो यह सेठीजीका कदाग्रह है। ग्रंथ किसीके निमित्तसे बनाया जाता है परन्तु ग्रंथकारका अभिमत तो सर्वोपयोगी और क्रमबद्ध बनानेका होता है। गोम्मटसार चामुंडरायके निमित्तसे तो बना परंतु पदार्थोंका क्रमवृत्तिसे तो वर्णन करना ग्रंथकारको उचित ही था, प्रमेयरत्नमाला आदि और भी ग्रंथ खास व्यक्तियोंके लिये बनाये गये हैं परन्तु उन ग्रंथोंमें उस नैमित्तिक व्यक्तिके जाने हुये भी बहुत से विषयोंका सर्वोपयोगी हो जानेकी बुद्धिसे वर्णन किया गया है इसलिये चामुंडराय कर्मोंके आठ अंग भी नहीं जानता था क्या.—इत्यादि लिखकर हंसी उड़ाना अपनी कालिमा प्रकट करना है।

आगे चलकर सेठीजीने फिर यह बात दुहराई है कि ३२ वीं गाथा बंधोदय सत्त्वाधिकारमें होनी चाहिये और कर्मभूमिकी स्त्रियोंके अंतके तीन ही संहनन होते हैं यह किसी आचार्य विशेषका मत है सो उसका उत्तर सविस्तर दे ही दिया गया है। भगवान कुंदकुंदका जो मत था वही उनसे सैकड़ों वर्ष पीछे होने

वाले आचार्य नेमिचंद्रका भी है एवं उनके बाद भी होने वाले आचार्योंका वही मत अब तक कायम है।

आगे चलकर सेठीजीने कुछ मत भेदोंका उल्लेख करते हुए करणानुयोगमें भी मत भेदोंका उल्लेख किया है परन्तु आचार्योंके मत भेद को कषाय निमित्तक बतलाया है यह सर्वथा अयुक्त है। वीतरागी आचार्य ऐसा नहीं कर सकते परन्तु हां स्मृति दोष वा स्मृति दोषने वैसा होना संभव है जिसको कि बड़े २ अनुभवी भी स्वीकार करते हैं तथा यह भी बात है जहां आचार्यका मतभेद है वहां पर ग्रंथकारोंने साफ लिख दिया है कि 'यह अमुक आचार्यका मत है और यह अमुक आचार्यका इसमें कौनसा ठीक है और कौनसा वेठीक है यह सिवाय केवलीके निर्णय नहीं होसकता विदेह आदि क्षेत्रोंमें जहां कि केवली विराजमान हैं वे ही ठीक वेठीक बता सकते हैं किंतु हमें दोनों प्रमाण हैं तथा ऐसी अशक्य विवेचन बातोंका निर्णय न होने से हमारे श्रद्धान पर व्याघात नहीं पहुंच सकता' इस लिए कर्मभूमिकी स्त्रियोंके तीन ही संहनन होते हैं यह सिद्धांत यदि किसी आचार्य विशेषका होता तो इसका भी मत द्वैविध्य दिखलाते हुए निदर्शन करते परन्तु यह तो कुंद कुंद एवं उनके पूर्वकालीन आचार्यों में सब ही आचार्यों व स्वयं वीरभगवान का मत है, यही नहीं प्राकृतिक नियमानुसार सिद्ध सिद्धांत है इसलिये इस सिद्धांतके निदर्शनसे भगवान नेमिचंद्र दोषी नहीं ठहर सकते। सेठीजीका उन्हें इस तरह दोषी ठहराना निर्मूल है। (क्रमशः)

नई फैसन।

(ले० श्री जौहरीलाल जैन रपरिया, करहल।)

कोट बूट पतलून डाट कर बन जाते ईसाई हैं।
कालर माफलर हैट मुंह पर जेबघड़ी लटकाई है ॥ १॥
पीना टी कप, खाना बिस्कुट संगमें नान खटाई है।
टेढ़े मेढ़े बाल संवारे फैशन नई बनाई है ॥ २ ॥
चढ़ें साइकिल बैठें चेयर संगमें मेडम बाई हैं।
चले घूमने संग ले मेडम मुंह सोजर सुलगाई है ॥३॥
हिंदीसे तो नाता तोड़ा गिट पिट बात बनाई है।
डेम फूल अर ब्लाडी कह कर फैशन नई बनाई है ॥४॥
जाति पांतिका भेद नहीं कुछ गुड भी फ्रेंड बनाते हैं
मास्टर व बिरादर भाई इङ्गलिशमेन बनाते हैं ॥ ५ ॥
देव ध्यान पूजाको छोड़ो सब फिजूल बतलाते हैं।
बूट पहन कर खाना खाते यों ही धर्म गमाते हैं ॥ ६ ॥
घरका खाना पीना छोड़ा होटल सोट जमाई है।
घरमें औरत रहे अकेली फैसन नई बनाई है ॥ ७॥
पाउडर मुंह पर मल कर मिश्री काला रंग छिपाते हैं।
सेफटी रेजर घरमें रखकर नित प्रति बाल बनाते हैं ॥
सोपर सोप बदनमें मलकर गोरा रंग बनाते हैं।
रिष्टवाचको बांध कलाई न्यू फैशन जतलाते हैं ॥ ९ ॥
जौहरी ध्यान लगाकर देखो इसमें बहुत बुराई है।
देशी चाल सर्वदा चालो इसमें बहुत भलाई है ॥ १०॥

सुखियाका सुख !

(लेखक-श्रीयुत धन्यकुमार जैन 'सिंह')

(१)

दूसरथपुरके जमीदार जगमोहनलाल आजकल रामगढ़ ही में रहते हैं। दुर्भाग्यवश इनके पीछे एक मुकद्दमेका ऐसा अड़ंगा लगा कि इन्हें अपनी जमीदारी बेच देनी पड़ी। कारण, इसके सिवा उनके पास ऐसा कोई भी मंत्र नहीं था, जिससे वे अपने इकलौते बेटे (लालबहादुर) को कैदसे बचा सकते।

लालबहादुरकी उमर करीब ३० वर्षकी होगी। पिताने मोहके मारे इसको कुछ भी पढ़ाया नहीं था। उनकी धारणा थी कि, पढ़ लिख कर लोग बिगड़ जाते हैं। परंतु अब वे ऐसा नहीं समझते। अब उनको यह अच्छी तरह भास गया है कि कमसे कम अपने लड़के लड़कियोंको हिन्दी भाषाका इतना ज्ञान अवश्य करा देना चाहिये, जिससे वे शास्त्र-स्वाध्याय करलिया करें। बन सके तो कुछ संस्कृत भी पढ़ा देना चाहिये। परन्तु उनका अंग्रेजी भाषासे पूरा वैर है। वे इस भाषाको अत्यंत घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। इसका कारण पूछने पर वे कह दिया करते हैं कि, "भाई ! मैं तो कुछ भी नहीं पढ़ा, अगर हिन्दी भी बांच सकता तो बुढ़ापेमें कुछ शास्त्र-स्वाध्याय कर अपना मनुष्य जन्म सफल करता। पर आजकल जो छोकरे लोग अंग्रेजी पढ़कर बापके सामने सिगरेट सुलगाते हैं-सो बड़ी भद्दी बात है—अरे, औरोंकी तो जाने दो अपने निन्दकरणके बेटेको ही देखलो उसने जरा कुछ 'पास-पूस' कर लिया है तो वह अपनेको २५ वां तीर्थंकर ही समझता है। सुनते हैं उसने विधवाओंके विवाह करानेकी प्रतिज्ञा ले ली है ! कोई ब्रह्मचर्य पालनेकी प्रतिज्ञा लेता है, कोई अभक्ष्य न खानेकी प्रतिज्ञा लेता है पर ऐसी प्रतिज्ञा तो कोई नहीं लेता, जिससे उलटी धर्मको हानि और व्यभिचार बढ़े ! बहुतसे छोकरोंने तो अपनी एक 'टोली भी बनाली है, उसमेंसे दो तीन अखबार भी निकलते हैं। इनमेंसे एकमें तो सिर्फ शास्त्रोंकी निन्दाकी जाती है और परम पूज्य आचार्योंको सीधी गालियां दी जाती हैं—क्या करें, अंग्रेजी भाषासे घृणा न करें तो और क्या करें !" इस उत्तरसे लोग ठंडे हो जाते हैं, फिर कुछ प्रश्न भी करते हैं तो उसका उत्तर पा लेते हैं।

(२)

लालबहादुर विद्वत्तामें तो "कोरमकोर चारचवाल सौ" है ही पर पैसा पैदा करनेमें उसे अद्वितीय समझिये ! वृद्ध पिता जगमोहनलालकी 'तेरहीमें' उसको कुछ कर्ज लेना पड़ा था, इस कर्जेका पटानेके लिए उसने एक नई तरकीब निकाली। उसने अपनी बड़ी लड़की सुखियाकी सगाई ऐसी जगह कर दी जहां दूसरा कोई भला आदमी भटककर भी न जा पावे। अब दूल्हा दरवाजे पर लड़की व्याहने आया, तब सुखियाकी मा को बहुत ही बुरा लगा। वह उसी दम लालबहादुरके पास पहुंची और बड़ी नाराजीसे कहने लगी-"क्या लड़कीका ब्याह करते हो या उसे कुएमें डालते हो ? भला, उस दूल्हेकी सूरत तो देखो ! क्या ठीक उसका, न जाने ६० का है या ८० का। छिः छिः, ऐसा लोभ किस कामका ! जाओ, उठो, बारात वापिस कर दो;

नहीं तो मैं कूआ पोखरमें गिर कर मर जाऊंगी ! लज्जा-शरम सब चली गई ? कर्ज पटाने चले हैं ! इससे तो यही अच्छा कि, तुम ही उसके बदले वर्ष दो वर्ष की कैद भुगत आओ, उस बेचारीको जन्म भरके लिए दुखिया क्यों बनाते हो ?"

अपनी स्त्रीकी बातें सुनते सुनते लालबहादुरका पारा खूब ही चढ़ गया था; पर उसने उस समय काम बिगड़ते देख कुछ कहा नहीं।—'अच्छा' कह कर वहांसे उठ आया और जनमासेमें जा पहुंचा।

जनमासा गांवके बाहर था। क्योंकि, गांवके मुखिया स्वरूपचंदने पहिले ही से वहांके जमींदारसे कहकर ऐसा प्रबंध करा लिया था; जिससे बारात गांवके भीतर कहीं भी न ठहर सके। परंतु इससे मूर्ख लालबहादुर पर कुछ भी असर न पड़ा। हां, अगर गांवके सब भाई मिलकर लालबहादुरको दबाते और बरातियोंको गांवमें घुसने न देते; तो शायद उसे यह सबंध जबरन छोड़ना पड़ता और पंचोंसे माफी मांगकर इस पापका प्रायश्चित लेना पड़ता ; पर हाय ! गांव वालोंमें इतनी एकता कहां ! उनमें तो इतनी भी ताकत नहीं कि, वे अपने खास भाई को भी ऐसे अन्याय कार्य करनेसे रोक सकें ! उनसे कोई कहे भी तो वे साफ कह देते हैं कि—"उसकी वह जाने, हम तो न्यारे रहते हैं। "—और जब भाई भाईमें मुकद्दमा चलता है, तब कोई न्यारा रह कर चुप-चाप नहीं बैठता ! तब तो उछल कूद कर, अपने बालबच्चोंके जेवर तक बेच ' कर, अदालत में अपनी वीरता दिखलाते हैं। ऐसी वीरताको धिक्कार है ! और सौ सौ बार धिक्कार है !! परंतु हमारे इस धिक्कारको सुनता कौन है ? वे तो इसीमें अपनी बहादुरी समझते हैं ! परंतु यह उनकी बड़ी भारी भूल है। उनको यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि, भाई भाई में एकता रख कर मिल-जुल कर काम करनेमें अन्याय कार्य को तन-मन-धनसे रोकनेमें ; और अपनी हानिकारक कुरीतियोंको निकालनेमें ही वीरता और बड़प्पन है।

लालबहादुरको जनमासेसे लौट कर फिर गांवमें आना पड़ा क्यों कि, वहां वरपक्षका कोई था नहीं ; सब दूलहेके साथ लड़कीवालेके दरवाजे पर पहुंच चुके थे। हां, रखवारीके लिये एक 'मस्तराम चौबे' अवश्य था। क्यों कि, रकम सब वहीं थी।

लालबहादुर दूल्हेके पास जाकर कुछ कानाफूसी करने लगा। इधर देर होनेसे लोग घबरा रहे थे। क्यों कि, सामके सात बजे का मुहूर्त था, और अब बज चुके साढ़े आठ ! अब भी, कानाफूसी ' बंद नहीं होती देख, एक बाराती लालबहादुर का हाथ पकड़ कर कहने लगा—"क्यों भाई साहब ! क्या दो हजारसे भी पेट नहीं भरा ? — अब और क्या लेना चाहते हो ?"

लालबहादुर मूर्खानंद तो था ही, उसने कड़ककर जवाब दिया —" चुप क्यों नहीं रहते ; जो होता है सो देखो ! ज्यादा, तीन-पांच लगाई तो—"

लालबहादुर और भी कुछ कहना चाहता था, पर दूल्हाके कहनेसे वह गम खाकर चुप रह गया। लोगोंमें हल्ला हो गया कि, लड़कीवाला अब तीन हजार मांगता है और पहिले रुपये लेकर पीछे ब्याह करना चाहता है। परन्तु वास्तवमें यह बात नहीं थी। वह अपनी स्त्रीकी बात कह रहा था और उसके लिये दूल्हेसे कुछ सलाह ले रहा था। हियेके अन्धे, मरघटके मुर्दे, बूढे दूल्हेने उसे यह सलाह दी कि-उनको, (सुखियाकीमा को) धोखेमें डालकर कहीं किसी कोठरीमें बंद कर दो और ब्याह शुरू कर दो, नहीं तो झूठ-मूठका एक फजिहत हो आयगा—

बुड्ढेकी अकल तो तभीसे भाग गई थी, जबसे उसको ब्याहकी सूझा, पर अब लोभी लालबहादुरकी भी अक्ल मारी गई ! उसने इस सलाहको मान लिया और वैसा ही किया । पांड़ेने ब्याह पढ़ना शुरू कर दिया और पंजाबमेलके समान अविराम विरामका कुछ विचार न कर घंटे भर अगड़म बगड़म श्लोक पढ 'ब्याह हो गया' कह दिया । कुंवारी सुखिया अब ब्याही हो कर दूल्हाके साथ जनमासेमें पहुंची ।

(३)

जनमासेमें पहुंचते ही दूल्हेका मुंह कुम्हलाया सा निकल आया । वहां जो रुपयोंका सन्दूक था, उसका पता नहीं; और उसकी रखवालीके लिये मस्तरामचौबे को छोड़ गये थे, उसका भी पता नहीं ! इतनेमें लाल-बहादुर भी वहां आ पहुंचा । उसने जब सुना कि—रुपयोंका सन्दूक चोरी चला गया है, तब उसे बहुत ही गुस्सा आई, और दूल्हेसे कहने लगा—'ये सब चालाकी दूसरोंको सिखाना ! यहां तो पहिले नगद तीन हजार रुपये, तुम्हारी तो क्या बात तुम्हारे बापसे भी रखवा लूंगा, तब कहीं यहांसे हिलने दूंगा ! अगर जिन्दे घर लौटना चाहते हो तो पहिले यहां चुप-चाप नगद तीन हजार गिन कर रख दो ! साले हमसे ही उस्तादी चाल चलने आये हैं । हमने तो विश्वास कर के ब्याहे पीछे रुपये लेना चाहा; पर ये तो ब्याह होते ही उलटे पैंतरा बदलने लगे !!

लालबहादुरकी खींचातानीसे पैंसठदास (दूल्हा) के होश-हवास उड़ गये । वह लालबहादुरके पैरों पड़ कर रोने लगा । बड़ी मुश्किलसे लोगोंने दूल्हेको अलग किया और फैसला करनेके लिये लालबहादुर को खामोश करके बिठाया । फैसलामें बुड्ढे से तीन हजार रुपयेका तमस्सुक लिखवा कर लालबहादुरको दिया गया । क्यों कि, रुपये वास्तवमें चोरी हो गये थे । उस नौकरके चले जानेसे लोगोंका उसी पर शक हुआ पर बहुत कोशिश करने पर भी उस समय उसका पता नहीं चला ।

आखिर रातके साढे बारह बजे, बड़ी मुश्किलों से लोगोंने लालबहादुरको विदा कर पाया । लालब-हादुरके चले जाने पर लोगोंने सलाहकी कि—अब यहांसे चलदेना ही ठीक है । क्या जाने गांवमें जाकर समधी साहिबको कैसी समझमें आवे, और भी फजि-हत हो ! इससे अभी चलदेना ठीक है ।

यह सबकी समझमें भी आ गया क्यों कि—दूल्हेका गांव पास ही था, करीब ४ कोस होगा । लोग चलने की तैयारी करने लगे. करीब दो बजेके भीतर ही भीतर सब रवाने हो गये ।

(४)

लालबहादुरके घर 'रोआ-राट' मच रहा है, दरवाजे पर सिपाही खड़े हैं । देखते ही लालबहादुर के छक्के छूट गये । 'आधी रातको यह क्या मामला !' कह कर वह जहांका तहां खड़ा रह गया । हिम्मत बांध कर भीतर पहुंचा; तो हाथमें हथकड़ी पड़ गई ! कारण पूछने पर, उसे कुछ भी उत्तर न मिला । चुपचाप खड़ा खड़ा देखता रहा । थोड़ी देरमें कोठरीमेंसे एक लाश निकाली गई । लाश देखते ही लालबहादुरके पेटमें पानी हो गया । उसकी जबान बंद हो गई और आंखों के सामने अंधेरा छा गया । लाश समेत वह थानेमें लाया गया । रात भर हवालातमें बंद रख कर लालब-हादुर सुबह ही आगरे पहुंचाया गया । साथमें लाश भी भेजी गई । यह लाश सुखियाकी मां यो लाल-बहादुरकी स्त्रीकी थी ।

(५)

अदालतसे फैसला हुआ,—लालबहादुरको चौदह वर्षकी सख्त कैद और सब जायदाद जप्त कर लेनेका। इसके सिवा, कचहरीमें जब लालबहादुरको तलाशी ली गई थी; तब उसके पास १००१) का तमस्सुक निकला था, वह भी सरकारने जप्त कर लिया। मामले का फैसला होने हा तमस्सुककी बारी आई! ससुर लालबहादुरकी गिरफ्तारीके बाद जमाई हंसराज साहब बुलाये गये।

हंसराजको हम पैंसठदास ही कहेंगे, क्योंकि उनकी उमर पैंसठ वर्षकी है। इनका मुकदमा भी करीब छह महिने चला। सातवें महीनेमें इनका भी फैसला सुनाया गया,—"या तो तीन हजार रुपये मय ब्याजके एक महिनेके भीतर दाखिल करें; अगर नहीं दाखिल कर सकें तो तीन वर्षकी कैद भुगतें।" हायरे नसीब! जब तक फैसला हुआ, तब तक "रही सही" पूंजी भी वकीलोंके गले उतर चुकी! बुड्ढे बाबा ने रुपये पेश करनेके लिये बहुत ही कोशिश की; पर कुछ न हुआ। किसीने भी कुछ न दिया। ब्याहमें लड्डू उड़ाने वाले, मूंछदार मर्दोंने भी अपना मुंह छिपा लिया—ठीक है जब दिन खोटे आते हैं, तब साथी भी वैरी हो जाते हैं।

एक महीना बीत चुका। पैंसठदास अदालतमें रुपये न पेश कर सके इसलिये वे भी जेलखाने भेजे गये। घरमें उनकी अन्धी भतीजी लच्छो, लच्छोका तीन वर्षका लड़का मोतीलाल, सुखिया; और पुराना नौकर बुलाकीदास—ये चार जने रह गये। बूढ़ा नौकर बुलाकीदास बहुत ही नेक आदमी था। वह किसी प्रकारसे इनकी गुजर करने लगा। उसे सुखियाको देख कर बड़ा तरस आता था। उसने पहले भी अपने मालिकसे मना किया था कि, तुम ब्याह मत करो। परंतु आजकलके मालिक नौकरोंको तो आदमी ही नहीं समझते। वे उनकी बातोंको लातोंसे ठुकराते हैं, फल भी वैसा पाते हैं इसमें संदेह नहीं; पर पीछेसे।

(६)

पैंसठदासको दो वर्ष भी कैदमें न सड़ना पड़ा। तीन महीने पहिले ही उनकी आत्माने दूसरा नया पिंजरा बदल लिया। यह समाचार उनके घर भी भेजा गया। सुखियाने भी सुना; पर अनजान लड़कीको कुछ भी दुःख शोक नहीं! वेचारी जानती ही नहीं कि, मेरा कौन मरा; और किसका मरा! उसे मालूम ही नहीं कि, इनके मरनेसे मेरा क्या गया और इनके पीछे मेरी कैसी दुर्दशा होगी!

अपने मालिकके मर जानेसे वृद्ध बुलाकीदास भी हिम्मत हार गया। इन लोगोंकी भरण पोषणकी चिंता ने उसका ढीला पिंजर और भी ढीला कर डाला। इसी चिंतामें घुल २ कर कुछ दिन बाद वह भी चल बसा। इसके मर जानेसे वेचारी अन्धी लच्छोको महान कष्ट हुआ। क्योंकि, अब उसीके ऊपर सब भार आ पड़ा।

(७)

आज, पांच वर्ष बाद सुखियाको मालूम पड़ा है कि, मेरा विवाह हो चुका है और मैं विधवा हूं! आज उसको खबर पड़ी है कि, मैं अनाथा हूं—बाप कैदमें है म. परलोक सिधारी है और पति भी इस लोकमें नहीं है। उसका अपना कहने लायक इस संसारमें कोई नहीं है, बाप तो कसाई है ही; उसीने तो सुखियाका सुख छीन कर उसका सत्यानाश किया है। अगर वह इस समय कैदसे छूट भी जाय, तो भी उससे सुखियाको कुछ भी सहारा नहीं मिल सकता—वह सुखियाको भरोसा था। अन्धी लच्छोको एक सहारा अवश्य था; पर वह सुखियाको छोड़ कर कहीं भी नहीं जा सकती थी। उसके देवर जेठ मौजूद थे, वहांसे

कई एक बार बुलावा भी आया था; परंतु 'सुखियाकी युवा अवस्था है, न मालूम क्याका क्या कर बैठे ?' इस आशंकासे वह इसे छोड़ कर कहीं भी नहीं गई। वह तरह तरहके कष्टोंको झेलती हुई भी सुखियाके पास ही रही। पड़ोसियोंके घरसे कुछ पिसाईका काम मिल जाता है, उसीसे बेचारी किसी तरह गुजारा करती है।

(८)

सुखियाको रोते रोते दो वर्ष हो चुके; पर उसे किसीने भी न अपनाया; इससे अब उसने रोना छोड़ दिया है। अब सुखियाकी उमर सोलह वर्षसे कम नहीं है। उसके शरीर पर एक विलक्षण तेज झलक रहा है। वह अपने यौवनके बोझसे दब गई है। उसे होस नहीं है कि, मैं कौन हूं, विधवा हूं या सधवा! वह मनमाना शृंगार करती है, मनमानी जगह उठती बैठती है; लच्छोके रोकने पर भी वह रुकती नहीं है। पड़ोसमें बिरादरीके दो तीन घर, हैं लच्छोने उनके पास भी सुखियाकी शिकायत की; पर इन लोगोंने भी कुछ नहीं सुना!—हाय! कौन जानता था कि, अब वे (ब्याहमें लड्डू उड़ाने वाले) ही ऐसे कठोर हो जांयगे !!

अब सुखिया लच्छोकी लातों से ठुकराने लगी तब उसने अपने देवर-जेठोंके पास खबर भेज दी कि, मुझे ले जाओ। कुछ रोज बाद लच्छो भी चली गई। लच्छोके चले जानेसे सुखियाको खूब ही मौका मिल गया! अब वह अपनी मनमानी करने लगी !! उसके घर चौबीसों घंटे हरमनियां—तबला और सारंगीकी तानें उड़ने लगीं !!! अब वही अनाथा, अनजान सुखिया लोगोंकी 'जान' बन बैठी है।

पैंसठदासने शायद मरे पीछे घरमें रोने वाला कोई नहीं है, इसलिये ही ब्याह किया होगा; पर उनकी इतनी आशा भी पूरी नहीं हुई! उनके घरमें अब 'रोआरोट' का नामो-निशान तक नहीं रहा; इतना ही दुःख है।

(९)

गांवके लोगोंमें सुखियाकी खूब ही चर्चा होने लगी। घर घरमें पैंसठदासकी नामवरी होने लगी! उनके साथ २ उनके जाति भाइयोंकी भी खूब नामवरी होने लगी! जहां तहां लोग कहने लगे, 'बनियोंके पास रुपया हुआ तो क्या, पर वे रहेंगे वैसे के वैसे ही! भला, इन ग्यारह घरसे उसका (सुखियाका) गुजारा नहीं चल सकता था? ये लोग मिलकर उसे डाट-डपट कर नहीं रख सकते थे? पर कहे कौन, भाई!"

धीरे २ सुखियाका नाम दूर दूर तक जाहिर हो गया। साथ साथ जातिके लोगोंकी भी प्रशंसा होने लगी! प्रशंसा सुनते सुनते जब इन लोगोंकी कानकी झिल्लियां फटने लगीं; तब इन्हें होस आया। तब ये इधर उधर मुंह उठाये दौड़-धूप करने लगे। आखिर इन लोगोंने मिलकर सुखियाको उस गांवसे भगा ही दिया; पर इसमें कई एक घायल भी हो गये।

(१०)

सुखिया करीब १५—१६ वर्षसे आगरेमें ही रहती है। अब उसके चारों तरफ उतने भौंरे नहीं चुपटते हैं, जितने पहिले चुपटते थे। अब उसे बुढ़िया कह कर लोग चिढ़ाते जरूर हैं, पर वह अपनेको अभी तक जवान समझकर शृंगार करनेमें कोई कसर नहीं छोड़ती। इतने पर भी उसके दिन बहुत कष्टसे गुजरने लगे। दोनों वक्त खाना जुटता है, तो मकानका किराया नहीं और किराया है तो दोनों वक्त खानेको नहीं! अब उसे अपने किये पापोंके फलको देख कर पछतावा आता है। पर "अब पछताये होतका, जब चिड़ियां चुग गईं खेत!"

(११)

सुखिया किसीके यहां रह कर कुछ काम करना चाहती थी, पर उसे किसी हिन्दूने रखना नहीं चाहा। आखिर वह एक अंग्रेजके यहां रह कर धायका काम करने लगी। छोटे २ बच्चोंको खिलानेमें ही वह अपने को सुखी मानने लगी, यही "सुखियाका सुख" है !

युवक !

जातितनमें, वीर युवको ! आप भाल समान हो।
आधार जीवनके तुम्हीं हो, जातिकी तुम जान हो ॥ १ ॥
जाति संकटमें पड़ी है ! आप क्या हो सो रहे ?
संकट-तिमिर नाशक तुम्हीं जगसुख प्रसारक भान हो ॥
दीन दुर्बल रो रहे हैं, देखता कोई नहीं।
आंखके तारे तथा दानोंके तुमही कानहो ॥ ३ ॥
खूब सोचो, कौन थे ? क्या हो गये ? क्या हो रहे !
तुम ही कहो क्या पददलित जातीयताकी शान हो ? ४
टोप-हथपा लाद कर निज पाग मत खोना कभी।
धिक्कार है ! निज जातिके अपमान कारक मान को ॥ ५ ॥
जातिने पाला है तुम को लाड़ कर अय "भारतीय"!
भावना है जातिकी सेवामें जीवन-दान हो ॥ ६ ॥

रामस्वरूप भारतीय

भावना !

जायंगे अशरण-शरणकी हम शरण।
गायंगे गुण गर्व से विपदा-हरण ॥ १ ॥
कमर कसि कर आयंगे मैदानमें।
तार देंगे सब हमें तारण-तरण ॥ २ ॥
तोड़ देंगे कर्मकी जञ्जीरका।
तब मिटेगा यह दुखद जन्मन मरण ॥ ३ ॥
वे बसामें ऐ दीन बन्धु भारतीय।
है अमीरीके निमंत्रणमें मरण ॥ ४ ॥

पद्मावती-परिषद्।

आन तुमसे जातिमें परिषद् पड़े। हों जैन-बान्धव पैर अपनेसे खड़े ॥ १ ॥
प्रेमकी पावन पताका फर हरे। दिलसे सेवक दीनके होवें बड़े ॥ २ ॥
हम बंधे सब जाति हितके सूतमें। जाति-बंधन हो सुखद दृढ़तर कड़े ॥ ३ ॥
अभिमान भर जातीयताका जातिमें। "भारतीय" मिलें गले जो कल लड़े ॥ ४ ॥

बुड्ढोंकी शादीने ही जैनजातिका पतन किया।

(लेखक—बाबू पन्नालालजी जैन, सिवनी)

चाल थियेटर ताल कहरवाः—

सुनो बुड्ढे, दादा सुनो बुड्ढे दादा !
वाहरे जोड़ा बुड्ढा नर और छोटेसे मादा॥ सुनो०
डगमग डगमग मूंड हाथ मिल तुमको करें मनाई।
फिर भी तुमने हठ धर्मी कर शादीको ठहराई॥ सुनो०
बालकपन लड़कों संग खेला ज्वानी संग मृगनैनी।
जप तप दान न करते अब भी वाहरे बुड्ढे जैनी॥ सु०
तरुणके मुंहको खैंच निवाला अपने मुंहमें डाले।
मर जाओगे जब तुम दादा पड़े वह किसके पाले?॥
काम वासनाके वश हो तुम देते थैली खोल।
लानत ऐसे धन पाना पर कन्या लेते मोल॥ सुनो०
दांत गिरे और बाल पके पर आकड़ वही जवानीकी।
झुक कर कमर खोजती फिरती भूमि इस्मशानीकी॥
बाद तुम्हारे अगर सुशीला निकली तो वह खैर।
वरना नाक कटैगी दादा फिसल परे महि पैर॥ सुनो०
अब मिहमानी और करोगे कितने दिन दुनियांकी?।
जिसके कारण नाश करो तुम जिंदगी उस कन्याकी॥
करलो कुछ प्रतिपाल जो निश दिन फिरते भूंखे पेट।
पुन्यकी हुंडी रखलो संग नहीं लेगा काल चपेट॥ सु०
पुन्य कमाया सो भर पाया हुये हो लक्षाधीश।
दीन अपाहिज अनाथको दे लेते क्यों ना आशीष?॥ सु०
बीस वर्षका बेटा घरमें १२ वर्षका नाती।
लाये नारी बारह वर्षकी लाज शर्म नहीं आती॥ सु०
विधवा वर्धनी महासभाके क्या बुड्ढे संरक्षक।
तब ही दादाजी बन गये हो रक्षकसे तुम भक्षक॥ सु०
जाति हितैषी धर्म काजमें तुम पैसी दुम दाबो।
दान शक्ति यदि हजारकी तो सौमें ही टरकाबो॥ सु०

बाल कालकी जो विधवा हैं जातिमें ये भर ज्वानी।
काम वासना बूढ़ोंकी लख क्यों न होय दीवानी?॥
दल्लालोंकी दल्लाली पड़े अकल पर गाज।
ऐसे कोसें कन्याओं को जैसे चिड़िया बाज॥ सुनो०
मात पिता वे डूब मरें जो बिटियां बेचें मोल।
लानत लानत निर्लज्जोंको पीवें वे विष घोल॥ सु०
वेश्या घर कन्या उपजे आमोद प्रमोद मनावें।
वही निखट्टू मात पिता जो बिटिया बेचके खावें॥ सु०
पक्षी बेचकर वधिक हाथमें जैसे लेवें पैसा।
द्रव्य लेके कन्या दे सो नर पिशाच वह तैसा।
जरा तो सोचो दल्लालो और जरा तो करो विचार।
क्या तुमको कोई और नहीं है कन्या बिन रोजगार॥
देखें जब केशोंके ऊपर, श्वेतसे करने काले।
अबलाओंको ठग फिर बूढ़े सिह होते मतवाले॥ सु०
बंदर मुख भालू मुख पिचक गये हैं गाल।
आंखों अंधे कानों बहरे, लटक गई है खाल॥ सुनो०
कन्याओंका री समाज तू ब्याहे मत बूढ़ोंको।
थोड़े दिन भूमि खोज कर सेवें वे गड्ढोंको॥ सुनो०
जैन जातिमें तुम बूढ़ोंसे कितनी विधवा होगई?।
जन संख्या भी घटते घटते प्रतिदिन कितनी खो गई॥
नई स्त्रीके बूढ़े पतिजी, थोड़े दिनके साथी।
बूढ़े जा बैकुंठ जांय फिर वह डोले मदमाती॥ सुनो०
सिरपर मौर लगाकर बूढ़े डाल गलेमें फूल।
वाह वाह क्या खूब सुहाई कुत्ते ऊपर झूल॥ सुनो०
रोय रोय कन्या कहती हाय पिता धिक भाई।
लोभके वश बूढ़ोंको ब्याहा बनकर हुये कसाई॥
लड्डू लोभी पंच हुयेअरु पण्डित हुआ निखट्टू।

मात पितादिक हुये कमाई, बुड्ढा 'बुड्ढा टट्टू' ॥
बुड्ढे वरको कन्या नाहीं देते भोली नाई।
जैन हाथ कर हुये कुबुद्धी अकल गई बौराई ॥ २७
जैन बेल मुरझाय रही है वृद्ध व्याहसे भाई।
इस कुरीतिका काला मुंह करदो करके चतुराई ॥ सु० २८
बुड्ढे जब व्याहनको आवें चढ घोड़े पर ऐसे।
सरकस वाले घोड़े पर दिखावें बन्दर जैसे ॥ सु० २९
हा! इसा इस बड़े नगारे शोभा नहीं है क्षेम।
साठ वर्षके बुड्ढेके संग आठ वर्षकी मेम ॥ सु० ३०
तारसे जिसके दांत कसे हो आंखों चश्मो प्यारा।
पांवमें पट्टी गालमें गड्ढे बूढा दूल्हा प्यारा ॥ सु० ३१
द्रव्य बढा है पास तुम्हारे करलो चारों दान।
इस भवमें सन्मान होय और पर भवमें कल्यान ॥ ३२
राजा न्याय करे परजाको खुशी रहे दिन रात।
बुड्ढे ही कर लें अनोखो लड़कोंकी क्या बात? ॥ सु० ३३
कन्या विक्रय, दलालो और बूढा शादी वाला।
'पन्ना' इनका बाप काट करो पंचनसे मुंह काला ॥
सुना बुड्ढे दादा०, वाहरे जोड़ा० ॥ ३४ ॥

सदाचार ।

(लेखक—पं. जयचंद्र जैन देह. आगरा)

इस असार संसारमें सभी जातिके लोग अपनी २ उन्नति चाहते हैं, और उन्नति करनेमें तन मन धनसे लग भी रहे हैं, कितने ही लोग यह कहते हैं कि-आर्थिक उन्नति सब उन्नतियोंमें उत्तम है उसीको करना चाहिये। और कितने लोगोंका इस विषयमें यह मत है कि—संसारमें यशकी उन्नति करना चाहिये क्योंकि कीर्तिके सामने समस्त उन्नति निष्फल है, इन लोगोंका यह विचार कितने ही अंशोंमें सुयोग्य उत्तम है। हमारी समझमें समस्त उन्नतियोंका मूल मंत्र कोई है तो सदाचार है। सदाचार उत्तम आचरणको कहते हैं यह आचरण मनुष्यको स्वाभाविक रत्न है। इसके पास रहनेसे मनुष्य किसी प्रकारके रोगोंसे नहीं सताया जा सकता है। आजकल रोगका सर्वत्र साम्राज्य दिखाई दे रहा है, जिसके घरमें कमसे कम ४ मनुष्य हैं उसके यहां भी एक दो अवश्य रोग ग्रसित हैं। इसका प्रधान कारण सदाचारका नहीं होना है।

चाहे मनुष्यमें धन विद्या और बल कितनी ही बढ जावे किन्तु सदाचार नहीं होनेके कारण उसकी वृद्धि सब होना व्यर्थ है। सदाचारके मुख्य दो कारण हैं। प्रथम ब्रह्मचर्य दूसरा ईमानदारी। ब्रह्मचर्यका अर्थ यहां पर यह है कि—अपने शीलको सदैव रक्षित रखना है। इसी शीलके प्रभावसे कितने ही लोगोंने संसारमें यश प्राप्त किया है जिनका गुण गान आजकल भी गाया जाता है। जिनकी कीर्तिसे ही पुराण भारत माताको सुशोभित कर रहे हैं। शीलके रक्षित रखनेसे मनुष्यका स्वास्थ्य ठीक रह सकता है। स्वास्थ्यसे मनुष्यका धर्म ध्यानमें चित्त उत्तमरीत्या लग सकता है। शीलके रक्षित नहीं रहनेमें हमारे आचार्योंने चार प्रधान कारण बतलाये हैं वे—इस प्रकार हैं।
"पणिदरसभोयणेण य तस्सुवजोगे कुसीलसेवाय वेदस्सुदीरणाये मेहुणसंणा हवदि ऐसा" स्वादिष्ट और गरिष्ट भोजनका करना १ भुक्त विषयका

स्मरण २ व्यभिचारियोंकी सेवा ३ वेदक र्मकी उदीरणा ४ इन चारकारणोंसे ही मनुष्यको मैथुनकी वांछा होती है। उक्त चार प्रधान कारण मनुष्यके ब्रह्मचर्य पालनेमें बाधक हैं स्वादिष्ट और गरिष्ठ भोजन करनेसे शरीरमें धातु अधिक बढ जाती है और उससे मनुष्यके परिणाम भी शुद्ध नहीं रहते हैं। वे परिणाम मनुष्यको अपने स्वाभाविक गुणसे सदैव वंचित रखते हैं। उन परिणामों द्वारा मनुष्यके हेय और उपादेयका विचार नहीं रहता है सेव्य और असेव्यका विचार मनुष्यसे हजारों दूर किनारा कर जाता है। इसलिये ब्रह्मचर्य पालने वालोंको स्वादिष्ट और गरिष्ट भोजन कभी नहीं करना चाहिये। हमारी विधवा बहिनोंको विशेषतया गरिष्ट स्वादिष्ट भोजन करना उचित नहीं है। और व्यभिचारिणी स्त्रियों व व्यभिचारी पुरुषोंकी संगति करना सर्वथा छोड़ने योग्य है। तथा प्रथम भोगे हुये भोगोंका स्मरण अनुभव करना निंदनीय कर्म है क्योंकि भुक्त पूर्व भोगोंके स्मरण और अनुभवसे भी मनुष्यके परिणामोंमें चंचलता पैदा हो जाती है जिसका कि दूर करना मनुष्यकी शक्तिके बाहिर हो जाता है परिणामोंमें किसी प्रकारकी चंचलता पैदा हो जाय तो उस चंचलताके दूर करनेका मुख्य उपाय प्रतिपक्ष भावना (उलटी भावना) का होना है अर्थात् किसी कारण वश स्त्रीके देखनेसे या स्पर्श मात्रसे परिणाम बिगड़ गये हों तो ब्रह्मचर्यकी भावनाओंकी भावना चाहिये और ब्रह्मचारी गणोंकी कथाओंका पठन पाठन करना आवश्यक है। ऐसा करनेसे अवश्य मनुष्यके परिणाम सुधर सकते हैं अन्यथा नहीं। इसलिये उचित है कि मनुष्यको स्वस्त्रीसंतोषव्रत और स्त्रीको स्व पुरुष संतोष व्रत धारण करना चाहिये। विधवाओं का सम्पूर्ण रीत्या ब्रह्मचर्य पालनो शुभकार्य है। और उक्त चार कारणोंका सेवना भी निंदनीय है। विधवाओंको उचित है कि भूषणोंका, व रंगीले वस्त्रोंके पहिननेका त्याग करना वे अपना शुभ कर्म समझें। इतरथा वे विधवा नाम मात्रकी कही जा सक्ती है फिर सधवा और विधवाओंमें भेदका जानना कठिन होगा।

रंगीले वस्त्र और चमकीले सुनहरी रुपैरी गहनों के पहिननेसे परिणामोंमें अवश्य मलिनता आजाती है फिर मलिनतासे परिणामोका संभलना टेढी खीर सरीखा है। ये कारण व्यभिचारके मुख्य साधन हैं। इस लिये शास्त्रोंमें मनोहर आभूषणोंका पहिनना अनुरागी पुरुषोंकी कथाका सुनना सुंदर वालोंका काढ़ना आदि निषिद्ध वतलाया है। तब फिर नहीं मालूम, विशेष तया हमारी विधवायें इसका क्यों सदुपयोग करती हैं। ब्रह्मचर्यसे ही सीता मनोरमा आदिके नामको समाजका बच्चा बच्चा तक जानता है और उनकी कीर्ति देवाङ्गनायें भी गाती हैं आज कल भी देखनेमें आता है जो ब्रह्मचारी हैं वे किसी प्रकारके रोगसे ग्रसित नहीं हैं उनके शरीर पर कांति स्वाभाविक सुवर्णकीसी झलकती है। जो व्यभिचारी हैं उनके सतान सुपुष्ट कभी नहीं हो सक्ती हैं। कितने तो सन्तानका मुख देखनेके लिये तरसते रहते हैं यही हाल स्त्रियोंका है। जो अधिक व्यभिचारिणी होंगी उनके कभी उत्तम संतान नहीं होगी जैसेकि वेश्याओंके नहीं होती है कथंचित वेश्याओंके हो भी जाय तो निर्बल कुरूप होगी। लिखनेका प्रयोजन यह है कि मनुष्य स्त्रीको यथा शक्ति ब्रह्मचर्य पालना चाहिये।

सदाचारकी उन्नतिमें ईमानदारी भी मुख्य कारण है। क्योंकि आजकल जितने कार्य देखे जाते हैं वे केवल ईमानदारीके ही ऊपर निर्भर हैं। विश्वास मनुष्यके लिये कामधेनु गाय है। इसीसे मनुष्य सबका

विश्वास भाजन समझा जाता है । ईमानदारीसे पराये मनुष्य भी अपने हो जाते हैं यदि संसारसे ईमान कतई उठ जांय तो संसारके सभी कार्य रद्दो बदल हो जांय कोई किसीका विश्वास ही न करें। संसारमें बड़ी भारी हल चल हो जावें। मान लिया जाय कि सरकार ही वेईमान हो जाय तो उसका राज्य ही एक ओर किनारा कर जाय, सरकार अपना राज्य केवल एक ईमानके वलसे ही कर रही है। जितने हुंडी पुर्जे नोट आदि लिखे जाते है वे केवल विश्वासके ऊपर ही काममें लाये जाते हैं। जो वेईमान होते हैं उनके लिये संसार भरमें निजी मनुष्य कोई नहीं रहता है।उनके सब कार्य शिथिल हो जाते हैं। यदि वे कुछ भी कार्य करें तो उनको किसीमें सफलता प्राप्त नहीं होती है

व्यापारके लिये भी ईमानदारीको बड़ी भारी जरूरत है क्योंकि इसके विना मनुष्य किसीका विश्वास भाजन नहीं समझा जाता है। जो लोग प्रथम विश्वास भाजन वन पश्चात् विश्वास घात करते हैं फिरभी सदाचारीके सार्टीफिकटका दावा रखते हैं ऐसे मनुष्य सदैव घृणाके पात्र हैं। सदाचारी का दिल कभी बुरी भावनाओंसे दूषित नही होता उसका मुंह ही वतला देता है कि यह एक उत्तम मनुष्य हैं। सदाचारीके द्वारा ही समाज का व कुल संसार का समस्त कार्य चलता है। सदाचारी ही सबका आदरणीय विश्वासपात्र समझा जाता है दुराचारीका तो मुंह देखनेसेही बड़ा भारी पाप लगता है उसकी संगतिकी तो वातही दूर है। दुराचारी लोग कभी संसारमें उत्तम कार्य नही कर सके हैं और वे आजतक किसीके विश्वास भाजन न तो कभी बने हैं और न बनेंगे। सबही दुराचारीसे घृणा करते हैं। इस लिये उचित यह है कि मनुष्यको उन्नति सदाचारमें करनी चाहिये इसकी उन्नतिमें सभी उन्नति सफल हैं। सदाचारकी उन्नति होनेसे ही सामाजिक उन्नति हो सकती है अत: अन्तमें निवेदन यह है कि मनुष्यको ब्रह्मचारी बन ईमानदारीमें सदैव संलग्न रहना चाहिये, इनहीके पालनेसे मनुष्य सदाचारी कहा जाता है जिस प्रकार मनुष्यके ऊपर धनकी धुनि सवार रहती है उसी प्रकार मनुष्यको सदाचारकी धुनिमें सदैव मस्त रहना चाहिये। इस असार संसारमें जन्म मरण कौनसा पुरुष नहीं करता है किन्तु सदाचारके पालने वाले विरलेही दृष्टिमे आते है। हजारों उपदेशके झाड़ने वाले मिलेंगे किन्तु स्वपरोपदेशक लाखोंमें एक ही मनुष्य होता है। प्रथम कर्तव्य मनुष्यका है कि जिस विषयका उपदेश दूसरेको दे उससे पहिले वह उपदेश अपनी आत्माको दे ले। तभी उपदेशका देना सफल सप्रयोजन है।

व्यर्थ बैठनेसे—कार्य कुछ नहीं करनेसे भी मनुष्य के परिणामोंमें मलिनता आ जाती है क्योंकि मन एक ऐसा व्यवसायी है जो कभी अपना कार्य त्याग कर नही बैठता है सदैव अपना कार्य किया करता है। मनके शुभ अशुभ कार्य करनेमें मुख्य साधन मनुष्यका कार्यमें तत्पर होना है। सदाचारकी कृपासे मनुष्य कभी व्यर्थ नहीं बैठ सकता है। क्योंकि सदाचारी सदैव शुभकार्य करता रहता है उसको व्यर्थ बैठनेका कभी अवसर नहीं मिलता है इसीसे उसके परिणामोंमें मलिनताका नाम निशान तक भी दिखाई नहीं देता है। सदाचारी सदैव परोपकारी सबका हितैषी होता है। सदाचारकी महिमा अगम्य है जिसकी महिमासे यह भूमि आजतक भी पवित्र है। सदाचारकी वृद्धि कम होनेके कारण दुराचारकी प्रवृत्ति अधिक बढ़जानेसे ही संसारमें लोगोंको दुखका सामना अधिक करना पड़ता है। ये दो कारण ही सुख दुखमें प्रवर्तक हैं इसलिये

सुखकी इच्छासे सदाचारको अपनाना चाहिये। दुराचारको अपने पासमें कतई नहीं भटकने देना चाहिये

सदाचार आत्माका धर्म है, वह निमित्त कारण मिलनेसे अन्यरूप परिणमन कर जाता है जिससे आत्मामें सदाचारको गंध तक नहीं रहती, दुराचारकी दुर्गंध आत्मामें सदैव बनी रहती हैं इसका मुख्य कारण मनुष्यकी बुरी भावना है। बुरी भावनाओंसे आत्मा सुखके बदले दुःखका ही अनुभव करता है सुखका कभी नहीं इसलिये उचित है कि सदाचारियोंकी कथा आदिके पठन पाठनसे अपने शुभ भाव सदैव रखने चाहिये जिससेकि शुभभाव सदाचारकी वृद्धिमें प्रधान कारण हों। दुराचारियोंकी संगति करना अपना धर्म नहीं समझ, सदाचारियोंकी संगति कर सदाचार में प्रवृत्त होना चाहिये।

आतिशबाजीके तुल्य हिंसा नहीं।

चाल थियेटर ताल कहरवा—

जैन जातिके माना जैन जातिके माना।
मार गिरावें घड़ी एकमें कई हजार पानी॥ जैन०
पानी पीयें छान छानकर कोरी ढोंग बताते।
आतिशबाजी जलवा कर अगणित हिंसा करवाते। जै०
कहते हैं हम जैनी हैं, है धर्म हमारा पाक।
जैन धर्मकी मूल दया का करते हैं पर खाक॥ जैन० २
समझ पर पड़गई गाज हमारी होगया सत्यानाश।
पैसा फुंके हमारा और सब देखें लोग तमाशा॥ जै० ३
दयाधर्म की लिये पताका जीवोंके रक्षक हैं।
आतिशबाजी बन्द न करते तो हिंसापक्षक हैं॥ जैन० ४
कोरा ढोंग दयाका करते कर अजैन हमाई।
ढेर करें लाखों प्रानीका खूब दया पलवाई॥ जैन० ५
अजैन मांसाहारी इसका करते हैं व्यवसाय।
क्यों कोई इसको पैसा देकर घोर नकमें जाय?॥ जै० ६
इक अजैन का पशुवध लखकर हाय हाय हम करते।
लखते नहिं पर शोक! उन्हें जो तड़फ कलप कर मरते॥
कहते हैं हम दया धुरंधर धरें अहिंसा निशदिन।
नाममें बट्टा लगता है क्या फिर आतिशबाजी बिन?॥
जो कोई खेले और खिलाये आतिशबाजी नाटक।
खुला हुआ है बेशक उनके लिये नर्कका फाटक॥ जै० ६
आग लगे घर जरे मरे कोई खूब हुआ यह पालिश।
गाली का गलहार डाल कर कोर्टमें ठोंके नालिश॥ जै०
हाय हाय है इस कुरीतिने कर दिया सत्यानाश।
इस भवमें धनधर्म छुटगये अरु पर भव दुखकी राश॥ जै०
आतिशबाजीको बंद करके लंगड़े लूले पालो।
गौका चारा खेंच खेंच कर मत घर आग डालो॥ जै०
गतभव के शुभ कर्मोदयसे पाया धन अरु धर्म।
पर अब आशा काहेकी जो करते हिंसाकर्म?॥ जैन०
इस दुष्टकी दुर्गंधीसे जर जाय पवन अरु पानी।
जिसके कारण व्याधि प्रसित हो मरते लाखों प्रानी॥
लेई धूक सरेस लगा और मकड़ीकाभी जाल।
आदि अंत हिंसा हिंसा है सोचो जैनीलाल॥ जैन० १५
ऐसे हिंसा कर्ममें शामिल करते कई मेहमान।
"आप डूबने पांडे जी और ले डूबे जजमान"॥ जैन० १६
सच्ची दूसरी आतिशबाजी का है यह फुलवारी।
लूटे हमारा धन हम खुश हो हंसते देदे तारी॥ जैन० १७
फुलवारी जब लुटे कहींपर कई के जो सिर फूटे।
घुटनी केवल गिरें, मरें कोई, दबकर जो पग टूटे॥ जै०
लौकिक और धार्मिक तासे यह दोनों महा निषेध।

फिरभी ना चेतें तो है क्या मनुष पशूमें भेद ॥ जै० १६
इनकाभी अज्ञानी करते व्याह कार्यमें लेखो ।
इसीसे भारत गारत है "घरफूंक तमाशा" देखो ॥ जै०
सोचो जरा विचारो मनमें धरो न अबतुम मौन ।
वरना मसल होयगी " बुड्ढा सच पर सुनता कौन ?॥
पहले वाले कहते थे भारतको "सोनाधाम" ।
इन अपव्ययके कारण से अब नहीं पासलदाम॥ जै०
धन व्यय करना है तो ऐसा करोकि होवे सुख ।
हीनहीन जो पात्र दयाके उनकामेटो दुःख ॥जैनजाति०
कठिन कमाईके पैसेको मत खोवो सुन सुन ।
यही मसल मशहूर "गधेने खाया पाप न पुन" ॥ जै०
जरा से धन पर हे जैनी तुम रहे हो इतने ऊंघ ।
पिता तुम्हारे घी खाते थे हाथ रहे तुम सूंघ ॥ जै०२५
पूर्वजों के धन को यारो हमने दिया समेट ।
बापके पीछे दोदो शादी अब बनिये अब सेठ ॥ जै०२६
खूब सोये अब तो जागो करलो कुछ कल्याना ।
काल खड़ा है सिर पर आ लेकर जम का परवाना॥
धनी बिगड़ गये कई एक इन अपव्यय ही के हेत ।
पर अब वह पछताय रहे जब "चिड़ियें चुनगई खेत
हाय हाय री जैन जाति तू अब तक भी ना जागी।
कूप खोदने दौड़ेगी क्या लगेगी जब घर आगी ? ॥
"पन्ना" इसका तन मन धनसे बहिष्कार करवाय ।
कृत कारत अनुमोदन करके गणित पुण्य कमाय ॥
जैन जातिके मानो मार गिराये ॥ ३० ॥

बाबू पन्नालाल जैन उपमंत्री
(जैनमित्र मंडल) सिवनी ।

नाटक खेलनेमे हानि ।

प्रिय बन्धुओ और शुभचिन्तको ! मै आप की सेवा में कुछ लिखना चाहता हूं और आशा करता हूं कि आप सज्जन पुरुष उस पर विचार करेंगे और इस महामारी रोग के नाश करने के लिये आप आन्दोलन करेंगे और अपनी संतानको इस व्याधिसे बचाये रखेंगे । यह बात लिखते हुये हृदय कंपायमान होता है कि हमारी जैन जाति शिक्षा से दिन ब दिन शून्य होती चली जाती है और दुर्व्यसनों में पड़ती चली जा रही है जहां पर विद्या का प्रकाश सूर्य के समान देदीप्यमान था शोक ! आज हम बिल्कुल शून्य व हमारा सितारा दिन २ अस्त होता चला जा रहा है-बन्धुओ ! इसका क्या कारण है ?

हमारे पूज्य आचार्य जिनके लिखे हुये ग्रंथों को आज सभ्य संसार बड़ी गौरव की दृष्टि से देख रहा है (यहां तक कि लंडन तक में जैन अनुयायी मौजूद हैं और वहां पर एक जैन साहित्य सभा कायम हो गई है) जिनकी विद्वत्ता का डंका सारे भारत वर्ष में बज रहा था-बन्धुओ इसका क्या कारण है कि आज हम इतने पतित होते चले जा रहे हैं । खोजने से मालूम पड़ता है कि अविद्या रूपी अंधकार की कालिमा ने हमको बिलकुल ढक लिया है । जिस दान शालता-परोपकारता, सहनशीलता, दयालुता, संयम इत्यादि के लिये हम विख्यात थे आज हममे उनका लोप हो गया परिणाम उलटा हो गया इतना कर चुकने पर भी इति श्री नहीं हुई-धनाढ्योंने तो विषय वासना की पूर्ति और छल कपटसे धनका संचय करना और उसको दुर्व्यसनोंमे उड़ाने का ठेका ले लिया है और इसको अपना परम धर्म व आत्युन्नति का कारण स-

मच रक्खा है और इस दुर्व्यसन में पड़कर मदमस्त और अंधे हो रहे हैं और सारी समाज को डुबाने पर उतारू हुये हैं।

जैन जाति रूपी वृक्ष में नाटक रूपी दीमक लग गई है जिस से कि हमारी नवयुवक संतान पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता जाता है। मनुष्य जन्म पाकर स्त्री का रूप धारण कर हाव भाव कटाक्ष दिखलाना और नाचने गाने की शिक्षा दिलाना क्या भाइयो जैन धर्म को उन्नतिके मार्ग पर लावेगा या अवनतिके मार्ग पर ? बन्धुओ इस पर जरा विचार कीजिये "राग उदै जग अंध भया सहजै सब लोगन लाज गंवाई। सीख बिना जिय सीख रह्यो विसनादिक सेवन की चतुराई ॥ तापर और रचे रस काव्य कहा कहिये तिन की निठुराई। अंध असूजन की अखियांन में झोकत हैं रज राम धुआई ॥" भाईयो अभी हाल में राजा की मंडी आगरा के भाई १५००) रु० फूंक कर २, ३ ड्रामा स्त्री पुरुषों को दिखाकर अपने को कृतार्थ कर चुके हैं। कि दूसरा ड्रामा मोती कटरा आगरा के जैनी भाईयोंने रुपया इकट्ठा करके उससे बढ़िया ड्रामा खेलने का विचार किया है। भाईयो ! यदि यह उत्तम कार्य है तो मेरी राय में जना पार्ट अपनी स्त्रियों को दिया जाय तो जनता पर अच्छा असर पड़ेगा और जैन जाति में स्त्रियां भी सुधर जावेंगी और देखनेवालों को इस बात का संशय न रहेगा कि वह स्त्री है या पुरुष ? इस ड्रामासे स्त्री बालक और पुरुष इन सबों का यह सुधार बहुत जल्दी हो जायगा जिस सुधार के लिये हम बर्षों से कोशिश कर रहे थे।

प्रिय बन्धुओ ! हमारे माननीय जैन धर्म भूषण ब्र० शीतल प्रसादजी का कहना है कि आजकल विषय वासना का ज़ोर ज्यादा है। इन नाटक आदि खेलों का प्रचार करनेका समय नहीं है यह समय विद्यालय खुलवा कर बालकों को शिक्षा दिलवा कर जातीय सुधार कर कुरीतियों को हटाने का समय है। शोक इस इतने बड़े आगरे शहर में जैनियों की एक संस्था व विद्यालय भी नहीं है यहां पर बेलनगंज, मोती-कटला, राजा की मंडी, छीपीटोला इत्यादिक जगहों पर जैनियों की अधिक संख्या होने पर भी एक ऐसा विद्यालय नही है जिसमें उसके साधन के लिये दस पांच हजार रुपये का फंड हो और जिसमें दो चार विद्वान विद्या अध्ययन करके आत्मोन्नति कर सकें। दशलाक्षणी पर्वमे ऐसा देखा गया है कि किसी मंदिरमें कोई ऐसा विद्वान व पंडित नहीं है जो दशलाक्षण धर्म के स्वरूप को भलीभांति समझा कर सुमार्ग पर लावे और जैन धर्म का प्रचार करे—हम लोग इतने विमुख हो गये हैं कि मंदिरोंमें पूजन प्रक्षाल तक करना भूल गये हैं और विषय वासना में फंसे हुये हैं मंदिर मे पूजन प्रक्षाल की रोज शिकायत सुनते हैं हमको शुद्ध दर्शन पढना भी नहीं आता पूजन की बात तो दूर रही अगर यही प्रथा प्रचलित रही तो मंदिरोंमें ताले पड़ जायंगे।

अंतमें ड्रामा खेलने वाले भाईयों से प्रार्थना करता हूं कि इस महामारी को अपना कर्तव्य न समझ कर दूर से ही नमस्कार करें और पक्षपात को छोड़ धार्मिक कामों में हाथ बढावे और विद्या की उन्नति कर समाजको सुमार्ग पर लावे जिससे अपना और दूसरोंका कल्याण हो— मैं ने किसी कषायके वशीभूत हो या पक्षपात से नहीं लिखा है और मैं जिनेंद्र देव से प्रार्थना करता हूं कि उनके प्रसाद से हमलोग सुमार्ग पर आवें और मैं क्षमा का प्रार्थी हूं।

निवेदक—
बाबूलाल जैन, आगरा,

नोट-लेखकने वर्तमान नाटक खेलने के जो दोष बतलाये हैं वे उतने ही नहीं है। ऊहापोह और दूर दृष्टि से विचार करने पर कई गुने दोष पड़ेंगे। हमारे प्रांत में जगह २ इनको भरमार होती जा रही है और मेला उत्सव आदिके समय जब ये खेले जाते है तो शास्त्र सभा आदिमें बेहद विघ्न डाल देते है। इन्द्रिय विषयों के लोलुपी अज्ञानी स्त्री पुरुषों के झुंडके झुंड इकट्ठे हो राग भावो में मन आसक्त करते है और अपनी गिरी पड़ी हालत को सुझानेवाले पंडितों व विद्वानोंके व्याख्यान नहीं सुनते। इसलिये नाटक खेलने के प्रेमी महानुभावों को चाहिये कि जातिके होनहार बालकोंका जो समय तबला मंजीरा आदि बजाकर नष्ट करते हैं उसे हो सभा सोसाइटियां स्थापित कर अच्छी २ बातों पर विचार करने कराने में खर्च करें। जिससे 'एक पंथ दोकाज' की कहावत के अनुसार वर्तमानकी कुरीतियों का फोटू उन आगे मा बाप होने वालोंको ज्ञान हो जाय और दूसरे कुमार्ग पर जाते हुओंको भी रोकने का दावा रख सकें।

—संपादक।

पद्मावती परिषद्का वार्षिक अधिवेशन।

धीरे धीरे दिन गुजर गये, दूसरे अधिवेशनका समय भी समीप आ पहुंचा पर हमारे स० महा मंत्री साहबकी निद्रा भंग न हुई। परिषद्को स्थापित हुये ६ वर्ष हो गये यदि इसके विभागीय या प्रधान मंत्रीगण कुछ भी कार्य करते, यहां तक कि सालमें कमसे कम समय मिलाकर एक महीना भी जातीय सेवामें लगाने का कष्ट उठाते तो अवश्य अवश्य ही हमारे मुट्ठी भर भाइयोंका बहुत कुछ सुधार हो जाता। पर यहां तो बात ही दूसरी हैं। अधिवेशनके समय ही हमारे कर्मठ मंत्रीगण जागते हैं। उनको अपने भाइयोंकी गिरी हालतका समाचार सालभर तक नहीं लग पाता और ज्यों ही महीना पंद्रह दिन पहिले मिलता है त्यों ही टीकट ले रेलमें सवार हो आ धमकते हैं और दो चार दिन आंसू बहाकर फिर थकावटके मारे पूरे सालभर को सो जाते हैं।

लिखनेका तात्पर्य यह है कि उक्त हालतको देखते देखते आज कई वर्ष हो गये हैं, पहिले जिस बातको समाजके इने गिने मनुष्य जानते थे उसी कुंभकर्ण निद्राको हरएक मनुष्य जान गया है। फल भी इसका यह हो रहा है कि जो कुछ पहिले परिषद्के प्रति लोगों को श्रद्धा या विश्वास था वह धीरे २ उठ रहा है हमारे पास इसके यथेष्ट प्रमाण हैं कि साल दो साल पहिले जो समाजके दो एक प्रतिष्ठित मनुष्य इस परिषद्में सहायता करने तयार हुये थे वे ही अब आलस्यकी अमर्यादा देख घबड़ा कर हाथ खींच रहे हैं। सभा मण्डपमें जो बहुत थोडे मनुष्योंका जुड़ाव होता है और सैकड़ों कोसोंसे विद्वान लोग खर्च कर आते हैं उन से लोग लाभ नहीं उठाते। वृद्ध विवाह बालविवाह कन्या विक्रय आदिका प्रचार घटनेकी जगह बढताही जाता है। विधवाओंकी करुणा जनक हालत और भी करुणा जनक होती चली जाती है। गुप्त दस्साओंकी संख्याके साथ २ प्रगट दस्साओंकी भी प्रति वर्ष वृद्धि होती जा रही है। अनेक तरुण विधवा स्त्रियोंके विजातीय पुरुषोंके साथ भोगनेके भीषण समाचार सु-

समाचार हमें पत्र द्वारा लिखे हैं, वे बडे ही दुःख दायक हैं। समाजमें ऐसे भी आदमी मौजूद हैं जो उपदेशक जीको सामान तक अपने यहां नहीं रखने देते! शोक! महाशोक!!

उपदेशकोंसे लोग इस प्रकार जो डरते हैं उसमें कई कारण हैं। एक तो सर्व साधारणकी यह धारणा सी हो गई है कि पंडितजी आये हैं, उपदेश जो देंगे सो तो देंगे ही, पर चंदाकी अपील जरूर करेंगे। दूसरे निर्धनता इतनी आ गई है कि अपने बाल-बच्चों का ही पालन पोषण कठिनतासे कर पाते हैं; फिर एक मेहिमानके आनेसे व उसके दो चार दिन ठहरनेसे जो खर्च हो वह कहांसे लावें?—इसके अलावा जिनकी स्थिति जरा अच्छी है, उनका हृदय इतना छोटा व वात्सल्य हीन है कि एक २ पैसे के लिये भी जान दिये मरते हैं। वे यह नहीं समझते कि भाग्यसे धर्मोपदेश सुननेका अवसर प्राप्त हुआ है, धर्मोपदेश सुपात्र है इनको और दृष्टिसे न सही उपकारीकी दृष्टिसे ही सम्मान करें। उन्हें तो यह सूझता है कि यह बलाय कब टले। इसलिये हमारी सभाओं और धर्मात्मा भाइयोंका कर्तव्य है कि वे अपने व्ययसे उपदेशक प्रत्येक छोटे बड़े गांवोंमें घुमावें; और उनसे किसी प्रकारके भी चंदा संग्रह करनेकी मनाई कर दें। उपदेशकोंको भी चाहिये कि वे आर्थिक किसी प्रकारका भी संबंध श्रोताओंसे न रक्खें। इस प्रकार जब लोगोंको विश्वास हो जायगा तो वे अधिक संख्यामें उपदेश सुनने भी आया करेंगे और लाभ भी बहुत कुछ उठा सकेंगे।

ब्रह्मचारीजीका खुलासा।

इसी पत्रके अंक ७ वें में जो ब्रह्मचारीजीका हृदय नामक लेख प्रगट हुआ था उसमें, की गई शंकाओंका खुलासा ब्रह्मचारीजीने जैनमित्र अंक ६ वर्ष २२ वें में जो किया है उसे हम पाठकोंके अवलोकनार्थ उद्धृत करते हैं।

हमने आज तक कोई भाषण सभामें विधवा विवाहके पक्षमें नहीं दिया, न कोई लेख किसी पत्रमें ही प्रगट किया है। विधवा विवाहके हानि लाभ पर विचार करना व खानगी रीतिसे किसीसे वार्तालाप करना हर एकका स्वतंत्र हक है।

पं० झम्मनलालजीके "विधवा विवाह खंडन" के लेखकी समालोचनामें शंकाएं उठाकर लेखक द्वारा उन शंकाओंका उत्तर इसीलिये स्पष्ट कराना चाहा था कि जिस किसीके दिलमें ऐसी शंका हो वे बिलकुल निर्मूल हो जावें।

हम जाति और वर्ण भेद उठाना नहीं चाहते हमने आजतक कोई भाषण व लेख ऐसा नहीं दिया न लिखा। श्री महापुराणजीके अनुसार हम जातियोंमें परस्पर सम्बन्ध होना व वर्ण व्यवस्था रहना इस विषय पर भाषण भी दे चुके हैं व लेख भी लिख चुके हैं। जैसे पहले सूर्य व चंद्रवंश रहते हुये भी सम्बन्ध होता था; ऐसे सम्बन्धके लिये हम कई बार समाजको चिता चुके हैं।

ऋ० ब्र० आश्रमके सम्बन्धमें जो कुछ जिस तरह समझमें आया सुधारका उपाय किया है—यह कभी ठीक नहीं हो सकता था कि भीतरी सुधार कमेटी द्वारा न करा कर केवल पत्रोंमें ही प्रगट करते रहना।

यह बिलकुल मिथ्या है कि हम व भाई सुमतिलालजी जो कई वर्षसे स्याद्वाद महा विद्यालयके मंत्रीका काम बडे प्रेम से कर रहे हैं, स्या० वि०के

द्रव्य को इंग्रेजो कालेज में लगाना चाहते थे। मंत्रोजीने एक दफे यह सूचना की थी कि काशी में एक संस्कृत व दूसरा इंग्रेजी भाग रखके कालेज किया जाय-संस्कृत भागमें यही द्रव्य लगे किंतु इंग्रेजी भागमें दूसरा द्रव्य एकत्र करके लगाया जाय—इस प्रस्तावसे कोई हानि नहीं थी, न हो सकी है-प्रस्ताव किसीके कहनेसे अमलमें नहीं आता जब तक कोई कमेटी या सभा या समाज मान्य न कर लेवे। उस प्रस्ताव पर न सम्मति ली गई न पास ही हुआ।

सेठीजीने "सत्योदय" में जो कुछ लिखा उसका भी हमने उत्तर देकर वृथा समय व शक्ति नष्ट करना नहीं चाहा। केवल कुछ आवश्यक खुलासा किया था उसमें जो सेठीजीसे क्षमा भाव प्रदर्शित किया था उसका अभिप्राय क्षमा मांगनेका नहीं है किन्तु सेठीजी ऐसे विद्वान व्यक्तिने जो उल्टा अर्थ लगा कर हमारे पर आक्षेप किया था उसीके लिये उनको लज्जित करनेके लिये यह वाक्य लिखा गया था। जो भाई शांतिसे हमारे उस लेखको पढ़ेंगे उनको हिन्दी साहित्यकी रचनासे यही भाव पैदा होगा। मेरेको उनसे क्षमा मांगनेकी कोई जरूरत नहीं है न मैंने क्षमा मांगी है।

हम किसी भी भाईको जो पहले जैन विचार रखता था अब उसमें पतित हो रहा है उसे धक्का देना नहीं चाहते; किंतु शक्तिके अनुसार स्थितिकरण करना चाहते हैं-इसी भावसे सेठीजीके सम्बन्धमें लेख लिखा गया था।

मोरेना जैनसिद्धांत विद्यालयकी वर्तमान दशा।

हमें विश्वस्त सूत्रसे ज्ञात हुआ है कि उक्त विद्यालय की वर्तमान अवस्था यद्यपि ऊपर पूर्ववत् ही है पर भीतरी हालत राजयक्ष्मासे ग्रसित रोगीकी भांति धीरे २ बिगड़ रही है। विद्यार्थी भी उच्चकक्षाओंके अधिक नहीं हैं। संस्कृत विभागोंमें कुल १६ के करीब छात्र हैं। जिनमें बहुतसे तो इस साल वहांसे विदा लेने वाले हैं। कारण जो दो एक हमें मालूम हुये हैं वे यह हैं,—

(१) अध्यापक अपने समय पर नहीं आते हैं न जाते हैं और न ठीक पढाते हैं।

(२) कलकत्ता युनिवर्सिटी में भर्ती हुये जैन ग्रंथोंमें भी परीक्षा नहीं दिलाई जाती। प्राईवेट देने वालोंको भी यथा साध्य रोका जाता है।

(३) विद्यालयमें निर्धारित ग्रंथोंके सिवा अन्य ग्रंथ यदि कोई छात्र किसी अध्यापकके घर पर प्राइवेट समयमें पढ़ना चाहता है तो अध्यापक और छात्र दोनों ही दोषी ठहराये जाते हैं।

(४) अध्यापक व कार्यकर्त्ताओंमें परस्पर मनोमालिन्य है।

(५) सुपरिन्टेन्डेंट महाशय सदा उपस्थित नहीं रहते। अनेक बार देश जाते हैं और कार्यकालमें भी घर जाया आया करते हैं।

मनोमालिन्यके विषयमें हमें कुछ कहना नहीं है, जहां दस पात्र होते हैं वहां खटकते ही हैं; पर उक्त पठन संबंधी नियमोंके विषयमें हमें कुछ कहना है विद्यालयके नामानुसार जैन ग्रंथ ही पढाना चाहिये-यह ठीक है और इसविषयमें किसीको आपत्ति भी नहीं है; पर गवर्णमेन्ट परीक्षा उन्हीं जैन ग्रंथोंमें न दिलवाना या देने वाले छात्रोंको विघ्न उपस्थित करना कहांकी बुद्धिमत्ता है ? यद्यपि सिर्फ परीक्षामें पास हो,-जानेसे ही कोई विद्वान नहीं हो जाता यह ठीक है; पर साथ ही आज कल परीक्षाके भय बिना भी

कोई विद्वान किसी ग्रंथमें असीम परिश्रम नहीं कर सकता। पहिले जमानेमें भी शिष्यकी मौखिक, लिखित नाना तरहसे गुरुगण परीक्षा लिया करते थे। विद्यालयके जो अध्यापक परीक्षादानके विरोधी हैं, वे भी तो किसी समय परीक्षार्थ रात दिन परिश्रम कर चुके हैं। परन्तु मनुष्यका कुछ स्वभाव ही ऐसा है कि वह उपस्थित सुस्थितिके फंदेमें फंस अपनी गत दुःस्थिति (?) भूल जाता है। विद्यार्थियोंको पठनावस्थामें अध्ययनके समान कोई वस्तु प्रिय नहीं होती और विशेष कर प्रबुद्ध छात्र तो उस पठनके साथ अपने जीवन मरणका प्रश्न समझते हैं। ऐसी हालतमें यह नियम बनाना कि कोई छात्र या अध्यापक प्राइवेट न पढ़-पढ़ा सके; कितनी मार्मिक वेदनाका कारण है, यह हर एक अनुभव करनेसे जान सकता है।

संस्कृतज्ञ विद्वानोंको प्रायः पठन-पाठनका व्यसन रहता है, यह साधारणकी धारणासी है; पर उक्त समाचारसे हमें शंका हो चली है। यदि यह ठीक है तो मंत्री महोदय क्यों नहीं अपने अधिकारका उपयोग करते? या किसी प्रेमविघ्न की शंकासे वे उन्हें समयानुकूल चलानेमें असमर्थ हैं?

विद्यालय के अधिष्ठाता पं० घन्नालालजी काशलीवालसे हम निवेदन करते हैं कि, वे विद्या के विघ्न कारक नियमोंको शीघ्र ही उठादें। प्रत्येक विद्यार्थी व अध्यापकको प्राइवेट पढ़ने- पढ़ानेका स्वतंत्र हकदें।

विचित्र गुण-ग्राहकता !

जैन समाजमें जबसे दलबंदी होना प्रारम्भ हुई है और इसकी बागडोर शिक्षितंमन्य निरनुभवी कुछ अल्प वयस्क लोगोंके हाथमें पड़ी है; तबसे नित्य नये सैकड़ों बखेड़े खड़े होने लगे हैं। हमारे ये भाई दूसरे लोगोंके अभिप्रायोंको जनतामें आदि अन्त वाक्य विहीन प्रकाशित कर अपनी गुणग्राहिणी बुद्धिका परिचय दिया करते हैं। 'पद्मावतीपुरवाल' पर ऐसे महानुभावोंकी विशेष कृपा रहती है। जैनहितैषीके संपादक महाशय गतवर्षके १२ वें अंकमें प्रकाशित 'परमात्मा' शीर्षक कविताके विषयमें ऐसा ही एक फुटनोट लिख कर अपना अन्तस्तत्त्व प्रगट कर चुके हैं। अब फिर श्रीमान् बा० निहालकरणजी सेठी एम० एस० सी० ने उसी पत्र में 'पद्मावतीपुरवाल' के ५-६ अंकमें प्रकाशित 'आर्य सभ्यता' शीर्षक लेखकी कुछ बातोंपर अपनी विवेक शालिनी बुद्धिका गहरा परिचय दिया है। आपने लेख गत पूर्वापर सम्बन्ध को उल्लेख न कर 'दशरा-ग्रशरा:' वाली कहावत चरितार्थ की है।

'आर्यसभ्यता' की पाश्चात्य सभ्यताके साथ तुलना करने वाले लोगोंको इस भ्रमश्रद्धा पर कि 'हमारे पूर्वजोंने निवृत्तिमार्गका उपदेश दिया और उसपर चलनेसे हमारी अवनति हो गई, प्रवृत्तिमार्गमें चलनेसे पाश्चात्य लोगोंकी उन्नति होगई' विवेचन करते हुये 'आर्यसभ्यता' के लेखकने यह सिद्ध किया है कि नहीं, निवृत्तिमार्ग पर चलनेसे हमारी अवनति नहीं हुई; बल्कि प्रकृतिके नियम अनुसार ही अवनति हुई है क्योंकि उन्नतिके बाद अवनति अवश्यं-भावनी होती है। 'चक्रवत्परिवर्तंते दुःखानि च सुखानि च' इस नियम को प्रायः बच्चा २ जानता है। इसीलिये बहुत दिनोंतक समुन्नत रहने वाला भारतवर्ष इस समय अवनत है, उन्नति रूप जागरणके बाद अवनति रूप शयन कर रहा है, जैसाकि—स्वयं हमारे बाबू साहिब अपनी भूमिकामें दिखलाते हैं कि, "अब सारे संसार में जागो— — — आदि

शब्दों द्वारा अपनी सोई हुई जन्मभूमि को जगानेके लिये प्रयत्न कर रहे हैं।"

हमारे शेठीजी यदि हितग्राहकतासे दलबंदीके फेर में न पड़कर "जीवमात्रमें" इत्यादि उद्धृत पंक्तियोंके प्रारंभिक पैराको मननपूर्वक पाठ करते अथवा सत्यता की वृद्धिकर्त्ताके नाते 'यूरोपकी चंचलताके साथ' आदि समस्त संगत वाक्यका भी उल्लेख करते तो बहुत ही सहजमें जनता समझ जाती कि 'समाज शास्त्रका नवीन सिद्धांत, औरलोगोंके लिये सर्वथा पुरातन, और नित्य अनुभवमें आनेवाला है, पर शेठोजीके लिये सचमुच ही नवीन है।

"जैन समाज!-----" आदि पंक्तियों द्वारा शेठीजीने जो अपनी राय प्रगट की है, उसके विषयमें हमें कुछ कहना नहीं हैं क्योंकि जिसका जिसके प्रति जैसा हृदय होता है वह उसके प्रति वैसा ही चाहा करता है: पर होना जाना तो भविष्यके हाथमें रहता है।

आनन्दकी पगडंडियां।

सत्य खोजी पुत्र।

राधारमनके लड़केकी उमर एक कम बीस वर्ष की है। इसका नाम है:—ब्रजभूषण: परंतु स्कूलके साथी इसे 'मेरो यार' ही कहते हैं। बहुतोंको तो इसके असली नामका भी पता नहीं। जो हो, इसकी बुद्धि वैज्ञानिक तत्वोंमें बड़ी ही तेजीके साथ दौड़ती है; कभी फिसलती नहीं, यही तारीफ है। एकदिन राधारमनके सत्यखोजी पुत्रने सत्य तत्वका गड्ढा पूरा करनेके अभिप्रायसे, बातोंही बातोंमें अपनी पूज्य मातासे यह प्रश्न किया कि, "मा, यदि पिताजी के साथ तुम्हारा विवाह न हो कर, और किसीके साथ होता; तो मैं किसका लड़का कहलाता? तुम्हारा लड़का होता या पिताजीका?" बेचारी मा अपने खोज-प्रिय पुत्रके प्रश्नका कुछ भी उत्तर न दे: बार बार अपने पतिको कोसती हुई वहां से चली गई। क्यों कि उन्ही की जिदसे इस नये वैज्ञानिक वा 'सत्यखोजी,को आविर्भाव हुआ है।

धन्यवाद!

बा०मदनविहारीलालजी एक समाज-संशोधक जीव हैं। उनकी विधवा कन्या इस समय पति हीन होनेके कारण उनका हृदय दयासे भींज कर 'लद्द-पद्द' हो गया है। एक दिन बाबू साहिब अपने मित्र दोस्तों के साथ अपनी बैठकमें 'ताश' खेल रहे थे। इसी समय एक नवशिक्षित, उज्ज्वल श्यामवर्ण नवयुवकका आविर्भाव हुआ। उसने आते ही पूछा—'क्या यही मदन बाबूका घर है?'

मदन०—"जी हां, कहिये क्या हुक्म है?"

युवकने जेबसे एक हिन्दी मासिकपत्र निकालते हुये कहा—"इस नोटिश पर कुछ बातचीत करना है।"

मदन०—'कौनसा नोटिश?—पढ़िये तो जरा।'

युवक—'पढनेको क्या जरूरत;-इसमें यही लिखा है कि, एक २३-२५ वर्षके सुशिक्षित—'

मदन०-'हां, हां! क्या कोई पात्र आपकी तलाश में है?'

युवक-'जी,—मैं ही—'

मदन०—"आपकी अवस्था तो हमें ४०-४५ वर्षकी प्रतीत होती है,—आपने व्यर्थ कष्ट उठाया! आपकी इस कृपाके लिये धन्यवाद!"

तासी!

कानूमल चौधरी एक बड़े भारी व्याख्यान दाता ठहरे। कहीं भी सभा हो; वे जरूर हाजिर होंगे। बहुत जगह लोक मतके विरुद्ध वक्तृता देकर उन्हें गालियां सुननी पड़ती हैं, पर उनका यह व्याख्यान देनेका नशा नहीं छूटता।

स्थानीय एक बगीचेमें किसी सभाका अधिवेशन था। बड़ी भारी भीड़ हुई। उसमें हमारे कानूबाबू भी पहुंचे। जब वहां विधवा-विवाहके विरुद्ध प्रस्ताव पास होने लगा; तब ये बड़े ही बिगड़े और जबर्दस्ती 'मंच' पर जा खड़े हुए! लोग इनका व्याख्यान किसी तरह भी सुनना नहीं चाहते; पर ये कहे ही जाते हैं। इनकी उद्दण्डता देखकर एक गंवार पाजामासे बाहर निकल ही पड़ा। उसने जाकर वक्ताके हलते हुये गाल पर जोरसे एक चपत जमा दी; और उसे 'मंच' से उतार कर सभासे बाहर निकाल दिया। कानूमल बेचारे चुपचाप घर आये; तो वहां भी चैन नहीं। गाल पर अंगुलियों का दाग देख उनकी स्त्रीने बड़े स्नेहसे पूछा--"गाल कैसे सूज गया? आहा! पांचों अंगुलियां उछर आई हैं; किस निर्दयीने ऐसी चपत मारी?"

कानूबाबूने बड़ी गंभीरतासे उत्तर दिया--'यह चपतका दाग नहीं है, तालीकी निशानी है।'

स्त्री--"अरी मोरी मैया! तालीकी निशानी यहां आकर लगी!"

कानूबाबू--"तुम लोगोंको तो कभी सभा सोसाइटियोंमें जानेका सौभाग्य नहीं हुआ; फिर तुम्हें इसका हाल कैसे मालूम हो! सुनो, सभामें जो अच्छा व्याख्यान देता है, अर्थात् जो व्याख्यान लोगोंको अच्छा लगता है, उसमें वे तालियां बजाते हैं। आज की सभामें मेरा व्याख्यान लोगोंको इतना रुचा कि, उनमें से एक आदमीने अपने हाथ पर ताली न बजा कर मेरे गाल पर ही ताली जमा दी। इसीलिए शायद गाल सूज गया होगा!"

—एक चलता फिरता आनन्दी।

समाजका कर्तव्य।

प्रकृतिका यह नियम है कि, किसी समाज व धर्म की नीव उसके शास्त्रों पर ही निर्भर रहती है। जिस धर्मके ग्रन्थ अकाट्य, अद्वितीय और श्रद्धेय होते हैं वह धर्म उन्नत रहता है और जिसके ग्रन्थों वा तत्त्वों पर किसी भी तरहका आक्षेप आघात होता है उस धर्मकी दुरवस्था शब्दोंमें उच्चारण करने लायक नहीं रहती। हमारी समाज का प्रत्येक मनुष्य इस बातको प्रायः जानता है कि आजकल इस समाजमें कुछ व्यक्ति पाश्चात्य वायुके वेगसे प्रेरित हो (जिनको अंग्रेजी शिक्षाके सिवाय; धर्म विद्याका कुछ भी ज्ञान नहीं है) शास्त्रों पर मिथ्या टीका टिप्पणी करते हैं। जो हमारे परम पूज्य आचार्योंको खुले मुंह अप शब्दोंका व्यवहार कर रहे हैं, उनको कुयुक्तिके सत्योदय जातिप्रबोधक और जैनहितैषी हैं। उनका उद्गार इनमें ही प्रकाशित होता है। इनकी पुस्तकें भी निकली हैं (स्त्रीमुक्ति आदि) जिनमें वही प्रलाप भरा रहता है। इन पुरुषोंके विषयमें हमारे कुछ मध्यस्थ भाइयोंके यह विचार हैं कि इनके शंकाओंका उत्तर दिया जाय; पर जरा विचारनेसे मालूम होगा कि, उत्तर उन्हींको दिया जाता है, जो जिज्ञासु हों! पर ये सब तो अपने लक्ष्यकी ही सिद्धि करना चाहते हैं चाहे कैसी भी होवे।

ये स्वयं विधवाविवाह खंडनकी समालोचनामें लिख चुके हैं कि 'तुम्हारे शास्त्र कुछ भी कहें' भला तब कैसी तो शंका और कैसा समाधान ? तिस परभी इतनी बात और है कि ये लोग स्वप्रकाशित पुस्तकें किसी शिक्षितको सीधे पैसेसे नहीं भेजते, और भोले भाइयों को पत्र देखते ही भेज देते हैं। ऐसा एक हमारे मित्रके साथ हो चुका है कि उन्होंने इनकी स्त्रीमुक्तिआदि पुस्तक मंगानेके लिये तीन पत्र दिये; पर उनका कुछ उत्तर नहीं। उन्हींके पार्श्ववासीने जो कि महाजन हैं, पत्र दिया तो उसपर चौथे दिन पुस्तकें आ पहुंची। अब पाठक ही इनकी नीतिपर विचार करें। बहुतसे भाई कहते हैं कि लिखने दो; तुम्हें उनसे क्या क्षति है ? परन्तु ये लोग यदि अन्य दर्शनवाले होकर लिखें तो हमें कोई क्षति नहीं। संसारका नियम है यदि किसी पुरुषको कोई अन्य पुरुष जिसमें उसका शत्रुभाव है विष नहीं बल्कि उत्तमभोजन भी खिलावे तो विचारके साथ खायगा, पर अपना कुटुम्बी ही स्वार्थ वश हो यदि विष भी खिलावे तो सहसा ही खा जायगा। ऐसे स्थल पर उसके मित्र का कर्तव्य है कि उसकी मायाचारीको प्रकट कर उससे उसको विरक्त करा दे।

हमारे भाइयोंकी उपरोक्त सहनशीलता कहां तक सराहनीय होती रहे ? यदि कोई कुछ भी सत्व रखता होगा तो अपने पिताको गाली देते हुए देखकर उदासीन नहीं बैठ सकता, पर जन्म २ में रक्षा करनेवाले परम पूज्य धर्म पिताओंको गाली देते सुन रहे है! इसका कुछभी प्रतीकार नहीं ! कुछ भी घृणा नहीं ! क्या यह लज्जाकी बात नहीं है?

हमारी कलकत्तेकी समाजने इस तरफ लक्ष्य दिया है और उक्त पत्रोंका बहिष्कार कर चुकी है। जिस पर बहुभाग जनताने अमल किया है और करती जा रही है। हम आशा करते हैं कि शीघ्रही इसकी पूर्ति हो जायगी। जैनका बच्चा २ भी इनसे घृणा करेगा। परन्तु तबतक हम सन्तुष्ट नहीं हो सकते जब तक इनसे किसी प्रकारका संबंध रहे। कैसा अन्धेर है कि जो हमारे धर्मपर इस तरहका आक्षेप करते हैं उन्हींके हाथ में उसकी रक्षा सौंपी जा रही है !! उन विद्यालयोंमें भी इनका आधिपत्य है जिनमें हमारे बच्चों पर भीतर ही भीतर बहुत बुरा प्रभाव पड़ सकता है। समाज जिन से उन्नति की आशा करती है। क्या इन्हींके अधिकारमें रहकर हमारे तत्व सुरक्षित रह सकते हैं? यदि दूधकी रक्षाकेलिये बिल्लीको रक्खा जाय तो वह दूध बचेगा क्या ? समाज इनकी कूटनीतिको नहीं जानती, यह नहीं, जानती जरूर है। फिर ऐसा क्यों हो रहा है?

समाजका इस समय यह कर्तव्य है कि, वह एक तरफसे 'सत्योदय' 'जातिप्रबोधक' और "जैनहितैषी"—इन तीनोंका बायकाट करें; और इनसे उन अधिकारोंको भी वापिस ले लेवें; जिनके कारण धार्मिक संस्थाओंका अनिष्ट हो जाने से भविष्यमें धर्मपर पानी फिर जानेकी सम्भावना हो। आशा है; समाज अपना कर्तव्य-कार्य करनेमें आगा-पीछा न करेगी।

—भूरामल जैन, कलकत्ता

धन्यवाद !

निम्न लिखित महानुभावोंकी सहायता धन्यवाद सहित स्वीकार की जाती है। आशा है; हमारे प्रेमी पाठक भी इनका अनुकरण करेंगे।

५) लाला नन्नूलाल हरसुखलालजी, पलेज।
४) लाला बनारसी दास राजकुमारजी, पालेज।
२) सि० मोतीचंद्र कुंजीलालजी, काशी।

जैनसत्यप्रकाशक पवित्र प्रेस, श्यामबाजार—कलकत्ता।

RED. NO.C. 888.

पद्मावती परिषद्का मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल !

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा कविताओंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

विषय सूची ।

वर्ष. ३ | अं. ९

शोक !

हमारे सम्पादक महोदयकी पूज्य माता का स्वर्गवास मिती पौषसुद छटको हो गया है इस आकस्मिक मातृ वियोगका विरहमें हम उनके साथ सहानुभूति प्रगट करते हैं और आशा करते है कि वे संसारका स्वरूप चिन्तवनकर पूर्ववत् कार्यरत होंगे ।

प्रकाशक ।

वार्षिक मू० २)

व्यवस्थापक—
श्रीधन्यकुमार जैन. 'सिंह'

१ अंक का ≈)

जरूरी-सूचनाएं !

इस वर्ष करीब ४०० वी० पी० वापिस आनेसे, ग्राहकोंकी तरफसे इस पत्रको ८००) रुपयेका धक्का लगा है। परंतु तौ भी हमने किसीको पत्र भेजना बन्द नहीं किया; वी० पी० लोटाने वालोंको भी बराबर अंक भेजते रहे हैं। इस अंकको लेकर ९ अंक उनके पास पहुंच चुके; परंतु खेद है कि किसी सज्जनने वार्षिक मूल्य के २) अभी तक नहीं भेजे! हमें पाठकों पर पूरा भरोसा था; और है कि, वे २) भेज देंगे। नव महीने तक भी जब किसी सज्जनने मूल्य नहीं भेजा तो लाचार होकर हमें सूचना देनी पडती है कि: अगर उनका वार्षिक मूल्य २) ता: १० मार्च तक न मिला; तो १० वें अंकमें उनके पास "पद्मावतीपुरवाल" न भेजा जायगा, उन का नाम ग्राहकोंमेंसे निकाल देना पडेगा। आशा है, हमारे प्रेमी पाठक इस सूचना को पढते ही मनीआर्डरसे २) भेज देंगे।

अब वी० पी० भेजनेमें ≡) लगते हैं, इसलिये ग्राहकोंको वी०पी० न मंगाकर मनीआर्डरसे ही २) भेजना चाहिये। ग्राहक चाहे जिस समयमें बन सकते हैं, इसलिये नये बननेवाले ग्राहकोंको १ ले अंककी बाट न जोह कर अभी ही २) भेज कर ग्राहक बन जाना चाहिये। २८ फरवरी तक ग्राहक बननेवालोंको पीछले १, २, ३, ४, ५-६ अंक मुफ्तमें मिलेंगे! शीघ्रता कीजिये!

देरीका कारण।

८ वां अंक १ फरवरीको ही तैयार होगया था और कुछ ग्राहकोंको भेजा भी गया था; परंतु पोष्ट आफिससे नया रजिष्टर नम्बर न मिलनेके कारण ता: ११ फरवरी को रवाना हो पाया। इसीलिये ८ वां अंक २७ दिनकी देरीमें पाठकोंकी सेवामें पहुंच पाया। आशा है, इसके लिए पाठक क्षमा प्रदान करेंगे।

रुपये भेजनेका पता:,—— मैनेजर "पद्मावतीपुरवाल"

८ नं० महेन्द्रबोसलेन, पो० श्यामबाजार—कलकत्ता।

पद्मावतीपुरवाल ।

मासिक पत्र

धर्मध्वंसे सतां ध्वंसस्तस्माद्धर्मद्रुहोऽधमान् । निवारयन्ति ये सन्तो रक्षितं तैः सतां जगत् ॥
कंटकानिव राज्यस्य नेता धर्मस्य कंटकान् । सदोद्धरति सोद्योगो यस्स लक्ष्मीधरो भवेत् ॥ (गुणभद्राचार्य)

३ रा वर्ष | कलकत्ता, अगहन, वीरनिर्वाण सं० २४४७ई० सन् १९२० | ९ वां अंक

आधुनिक सभ्यता ।

(लेखक:— कविकुमार पं० भद्रदत्त शर्मा वैद्यभूषण, कासगंज ।)

(१)

हा ! आर्य हिन्दू जैन का बस नाम ही अब शेष है ।
सब कर्म वैदेशिक हुए नहिं देशका अब वेष है ॥
बस विदेशी फैशनोंमें लोग अब फँसने लगे ।
निज देश भाषा सभ्यता पर हाय ! वह हँसने लगे ॥

(२)

टोप है, औ कोट है, पतलून पूरा सूट है ।
मफलर तथा वो सेफटीपिन, वाच, टाई, बूट है ॥
चश्मा लगा यूरुप के नक्काल साहब बन गये ।
त्याग कर निज वेष को व्यय व्यर्थ करने लग गये ॥

(३)

अलबर्ट कर्जन फैसनों में लोग मूँछ कटा रहे ।
तजकर शिखा जुल्फें रखा, हिन्दुत्व हाय ! मिटा रहे ॥
केक, बिस्कुट, तूस में ही स्वाद उनको आ रहे ।
बैठे हुए वे होटलों में टोटलें लगवा रहे ॥

(४)

काँटा, छुरी, चम्मच, बिना वे भोज्य में असमर्थ हैं ।
अंडा, मांस, सुरा, बना बिन खाद्य उनके व्यर्थ हैं ॥
क्रिश्चियन, चांडाल वा यवनादिकों के संग में ।
संकोच तज भोजन करें नव सभ्यता के रंग में ॥

(५)

यूरुप को जाते कभी यदि छात्र पढ़ने के लिये ।
निज धर्म तज वे आ रहे हैं संग प्रिय लेडी लिये ॥
स्वातंत्र्य देकर नारियों को दास उनके बन रहे ।
लेडी समान उन्हें बना कर नारि धर्म बिगो रहे ॥

(६)

निज देश-वेषी सहिपता से भी पिता कहते नहीं।
पूछने पर मित्र, अथवा भृत्य, कह देते कहीं॥
तुम कौन मत के सभ्य, हो जब पूछते कोई कहीं।
तो यह कहें हम तो किसी मत के कभी 'काहिल' नहीं॥

(७)

पशुगण जहां व्यवहार हो, व्यभिचारका न विचार हो।
बस पूर्ण भ्रष्टाचार हो, अरु मद्य, मांस प्रचार हो॥
सब कर्ममें स्वातन्त्र्य हो किञ्चित् न जाति विवेक हो।
मत पन्थ उनका है वही 'जिसमें न बन्धन एक हो'॥

(८)

इंगलिश जरा सी पढ़ गये अभिमान से वह भर गये।
बी० ए० कहीं यदि हो गये मानो बृहस्पति बन गये॥
वे सर्व विद्या मूल-संस्कृत तत्त्व से अनभिज्ञ हैं।
हा! कूप-भेक समान इंगलिश जान कर ही विज्ञ हैं॥

(९)

मर्चेंट वेनिस, हिमलीयर हेमलिट अब आ रहा।
रागों रहित सङ्गीत निन्दित नाच मोद बढ़ा रहा॥
जो ज्ञान, भक्ति, विराग, नवरस, नीतिधर्म सिखा रहा।
वह देश का साहित्य अब तो व्यर्थ समझा जा रहा॥

(१०)

पढ़ कर हुए मुख्तयार, बारिस्टर, वकील यदा कहीं।
बस आग भड़काने लगे दो भाइयों में वे वहीं॥
निज स्वार्थहित वे सैकड़ों को कर रहे बरबाद हैं।
विस्तार मिथ्यावाद तोड़ें धर्म की मरजाद हैं॥

(११)

यदि हो गये हाकिम कहीं तो बन गये मानों खुदा!
है! कर्म पैशाचिक करें कर न्याय, नीति, सभी जुदा॥
वे धूर्त लेकर घूंस हा! करते महा अन्याय हैं।
राज्य की ले आड़ करते घूंस का व्यवसाय हैं॥

(१२)

निज देश उन्नति, मान से उनको न कुछ भी काम है।
कुछ दुर्दशा हो देश की मिलता उन्हें आराम है॥
देश सब भूखों मरै पर वे उड़ाते माल हैं।
निज पेट के हित दीन दुखियों की खिचाते खाल हैं॥

(१३)

निज पूर्वजों की सत्प्रथा का कर रहे उपहास हैं।
अति निद्य नूतन कुप्रथा के हो रहे वह दास हैं॥
उन बाबुओं की अक्ल ही बस ज्ञान का भंडार है!
उनको हुई निज देश की शुचि सभ्यता निस्सार है!!

(१४)

वे स्वर्ग सम निज देशकी हा! जानते महिमा कहां।
संसार के 'जनपद' कभी शिक्षार्थ आते थे जहां।
सब देश जब कि असभ्य थे तब देश भारत सभ्य था॥
सर्व गुण सम्पन्न था संसार का गुरु भव्य था।

(१५)

हाय! इस नव सभ्यता ने नाश भारत का किया।
सब प्रकार इसे गिरा कर दीन हीन बना दिया॥
हे दयामय! शीघ्र अब नव सभ्यता का क्षय करो।
प्राचीन भारत-सभ्यता जगदीश! सब के उर भरो॥

— अग्रवाल-बंधु।

जैनधर्मपर शेठीजीके विचार और उनकी आलोचना।

(लेखक:— श्रीयुत पं० मक्खनलालजी न्यायालंकार, हस्तिनापुर।)

विद्वानोंके विचार और उनके कार्य उन्हें दो कोटियोंमें रखते हैं। (१) प्रथम कोटिमें उन्हें समझना चाहिये; जो किसी आधार पर गहरी गवेषणा करते हैं, किसी निर्धारित् पदार्थपर उसके समस्त अंशोंका अनेक शास्त्रीय और लौकिक युक्तियों द्वारा परिज्ञान करते हुए उसकी सूक्ष्म तहमें घुसकर निर्धारित पदार्थके निर्धारण-कारण तक पहुंच जाते हैं और उसका सच्चा बोध पाकर उसके निर्माताका हार्दिक गुणानुवाद करते हैं। ऐसे विद्वान कुछ वर्तमान पुरुषोंमें पाई हुई विशेषज्ञताको अपनेसे पूर्व विद्वानोंकी तुलनामें अत्यल्प समझते हैं, शास्त्रीय विचारों एवं धार्मिक रहस्यों के विषयमें पहले वे उसी पूर्व कथित आधारकी ओर अपनी बुद्धिको ले जाते हैं, सहसा स्थूल विचारसे पूर्व कथित कोई सिद्धांत या विचार उन्हें अयुक्त भी मालूम होता है फिर भी वे उसे अयुक्त समझकर अपनी बुद्धिको झट वहांसे हटा नहीं लेते किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से उसका शनैः फिर विचार करते हैं, जब तक उन्हें उस कथित पदार्थके वक्तव्यका पूरा २ बोध नहीं होता तब तक वे अपने ज्ञानका विकाश उसी ओर बढाते-जाते हैं फिर तुलनात्मक पद्धति से उस विषयमें अपनी बुद्धिको किसी एकरूपमें स्थिर करते हैं। ऐसे पुरुषों को अपने नामका एवं पाण्डित्य प्रदर्शनका कुछ परवा नहीं होता। किसी नई खोजसे नाम पानेकी इच्छा रखनेवाली जितना निज नामकी ख्यातिमें प्रसन्न होता है उससे कई लाख गुणी प्रसन्नता उन पुरुषों को पदार्थके अन्तस्तत्व एवं रहस्य के जानने से होती है परन्तु नामकी चाहना न रहने पर भी पदार्थ खोजी विद्वानोंमें उनका नाम सदा आदरणीय एवं प्रमुख समझा जाता है। ऐसे पुरुष सदा शांति पूर्वक पदार्थ विचारमें मग्न रहते हैं, वे उन नई खोज वालोंको देखकर उनकी अज्ञता पर मन ही मन हंसते है. जो कि स्थूल दृष्टिसे पदार्थके असली तत्वको न समझ कर अपने पांडित्य प्रदर्शन की इच्छासे जनता को भ्रममें डालते हैं। जिन लोगोंके विचारोंपर तत्त्वज्ञ हंसकर उपेक्षा करते हैं उन्हीं विद्वानोंको [२] द्वितीय कोटिमें समझना चाहिये। ये विद्वान महोदय भी बुद्धिकौशल रखते हैं पदार्थोंका अपनी समझके आधारपर विचार भी करते हैं समकक्ष विद्वानोंमें प्रधानता भी पाते हैं, परन्तु इनकी प्रमुखाकांक्षा इनके वस्तुविवेचीज्ञानको देर तक विचार करनेकेलिये उदर में नहीं ठहरने देती, उसे बाहर निकलवाती रहती हैं। वे अपनी पंडितमन्य तर्कणाके द्वारा जो कुछ समझ पाते हैं झट उसे ख्यातिलाभकी आकांक्षासे जनतामें रख देते हैं। ऐसे विद्वान किसी प्राक्तननिर्धारित तत्त्व एवं प्राच्य कथनकी सूक्ष्म गवेषणाकी ओर अपने समय और दिमागको नहीं लगाते। क्यों कि—वैसा करनेमें उनको कुछ नाम नहीं हो सकता। इसलिये अपनी स्वतन्त्र खोजकी पूरी परवा करते हैं। जब उन्हें कोई नईबात नहीं मिलती तो उन प्राच्य सिद्धांतोंको गिरानेकी चेष्टा करते हैं कि जिनपर जनताका विश्वास है। पदार्थ अनन्तधर्मात्मक हैं एवं अनन्तपर्यायें हरसमय बदलती रहती हैं इसलिये किसी अपेक्षा किसी एक अंश में

कोई बात उस पदार्थको नवीनता रूपमें उन्हे प्रतीत होने लगती है। बस उसी एक अंशको लेकर वे अपने तर्क बलको जनताको परिचय कराते हैं और पदार्थके समस्तरूपसे अनभिज्ञ जनताको अपनी ओर खींचते हैं। संसारमें लोगोंका ज्ञान श्रद्धान और आचार भिन्न २ रूपमें किन्हीका मर्यादित और किन्हींका स्वतन्त्र मनो भीत है इसलिये कुछ समयप्रवाहीलोग उन तर्कशालियों के अनुयायी एवं उनके गुण गाथा गान करनेवाले भी होजाते हैं। ऐसे लोग गांठकी बुद्धि नहीं रखते, केवल उन तर्कशालियोंके बलपर शोरगुल मचाकर एवं समयकी फल बताकर समुदायवलकी वृद्धि करते हैं ऐसा समुदाय स्वयं शास्त्रीयबोध से सर्वथाशून्य होने से उस समय प्रगतिकी ओर लेजानेवाले तर्कशालियोंके चञ्चुप्रवेशी शास्त्रीयज्ञानको सर्वोपरि समझकर उनकी सभी बातें और क्रियाओं पर थोड़ासी विचार नहीं करता केवल उनका अन्ध श्रद्धालु बन जाता है. उस समुदायपर नेतृत्व करनेवाले वे तर्कवली विद्वान भी अधिक महत्वाकांक्षाकी गहरी लालसासे इतने उच्छृंखल और अविवेकी बनजाते हैं कि युक्ति प्रमाणों से निर्धारित एवं अकाट्य अखंडित सिद्धान्तोंके विषयमें भी अनायास मनचाहा बोलते हैं। उस उच्छृंखल नवीनताकी धुनमें इतने लवलीन होजाते हैं कि अनादिनिधन स्वभावसिद्ध कुलाचलोंके सदृश पदार्थों कोभी अपने तुच्छ ज्ञानके बलसे पलट देना चाहते हैं! उन्हें उस लीलाकी धुनमें इतना बोध नहीं रहता कि उनकी इन कुतर्कपूर्ण तुच्छ विचारों एवं अविचारित रम्य कृत्योंपर तत्वमर्मज्ञ क्या कहेंगे? "अर्थी दोषं न पश्यति" इस नीतिके अनुसार उन्हें तो अपने नये स्वतन्त्र अनुभव रखनेमें ही अपने पांडित्यका गौरव दीखता है। इस प्रकारके स्वतन्त्र अनुभव प्रगट करने वालोंकी हम बहुतलम्बी मीमांसा करना चाहते हैं और बतलाना चाहते हैं कि भौतिकवादके विकाशवादने असली ठोस विकाशवादका नाशकर जनताका कितना अहित और प्रतारण किया है। परन्तु ऐसा करनेसे प्रकृत लेख बढ़ जायगा, इसलिये वैसी मीमांसा फिर कभी उसी विचारके लेखमें प्रगट करेंगे, प्रकृतमें जो वक्तव्य है उसीपर विचार करते हैं।

१९२० नवम्बरके सत्योदयमें सेठी अर्जुनलालजीने "मेरा स्वतन्त्र अनुभव" इस शीर्षक द्वारा जैनधर्मके विषयमें अपने स्वतन्त्र विचार प्रगट किये हैं। सेठीजीने २२॥ पृष्ठ के लेखमें जिस कुतर्कपूर्णबुद्धिकौशलसे जैन धर्म को जड़मूल से उखाड़कर फेंकदेनेकी चेष्टा की है वह विद्वानोंके लिये हास्यास्पद और धर्मानभिज्ञ, स्वातन्त्र्य प्रिय समय प्रवाहियोंके लिये भ्रम पैदाकरने वाली है। उन्होंने श्री ऋषभदेव, श्री महावीर स्वामी आदि तीर्थंकरोंको उस समयके विशेष-विद्वान् बतलाकर इस बढ़े हुए विकाशवादके समयमें उनसे बढ़कर विशेषज्ञ अपनेको सिद्ध करने तककी भी अविचारितरम्य एवं अधर्मचेष्टाकी है। "पद्मावतीपुरवाल" के संपादकने यह ठीक ही लिखा है कि किसी अभीष्ट विशेषकी सिद्धिके लिये सेठीजी जैनधर्मकी निन्दा करनेमें ही लाभ समझते हों, यह बात अब स्पष्ट होगई। स्वतन्त्र और उच्छृंखलताकी बढ़ी हुई बाढ़में अनेक उलट फेरोंके समान उन्होंने प्रधान लीडर एवं आधुनिक तीर्थंकर बननेका अवसर समझा है। कुछ समयानुगामी दिगम्बर श्वेताम्बर स्थानकवासी जैनियोंमेंही वे प्रमुख बननेकी चेष्टा नहीं करते किन्तु देशभरमें मान्यता एवं ख्याति चाहनेका प्रयत्न कर रहे हैं। इसलिये उन्होंने सभी प्राच्य दर्शन और नवीनमतोंके अभिभावकोंको पूरा २महत्व दिया है। छूत-अछूत का भेद मिटाकर

तथा परस्पर उच्छिष्ठ [झूठा] खाकर ही परस्पर प्रेम हो सका है। इस प्रकार देशोद्धारकी धुनवालोंका साथ देनेवाले सेठीजी सब धर्मों के भेदभावको उठाने काभी प्रयास कर रहे हैं। इस प्रयाससे वे सब धर्मवालोंमें प्रिय एवं मान्य बन सकेंगे या नहीं अथवा उस लम्बे प्रयासमें छब्बेकी जगह दूबेभी न रहेंगे? इसबात को पाठक ही समझलें।

एक ओर तो भारतके प्रसिद्ध अनुभवी विद्वान् स्वर्गीय बालगङ्गाधर तिलक प्रभृति तो जैनधर्मको परमादरणीय एवं सर्वोच्च बतलाते हैं कलकत्ता विश्वविद्यालयके प्रधान दार्शनिक अंगरेज प्रोफेसर जैनधर्मके महत्वपर महीनोंसे व्याख्यानदे रहे हैं। अभी हालमें उक्त विद्यालयमें व्याख्यान देनेके लिये "की आफ नौलेज" के रचयिता बाबू चम्पतरायजी वैरिष्टरसे प्रार्थना की गई है, सुना है उन्होंने स्वीकृति भी देदी है और वे कई सप्ताह उस विषय पर बोलेंगे।

अनेक धम ग्रंथोंके अवलोकयिता प्रधान दार्शनिक विद्वान डाक्टर हर्मनजैकोबो और डाक्टरथोमस जैनधर्मको ही सर्वोच्च एवं आत्मीयधर्म कह रहे हैं। इन दार्शनिक विद्वानोंकी गवेषणाओंसे विदित होता है कि जैनधर्म वर्तमान समयमें सर्वोपरि गौरवाधायक और सर्वादरणीय बननेवाला है। एक ओर सेठीजी अपने अटकलपच्चू स्वतंत्र अनुभवका कुतूहलपूर्ण नया अविष्कार अलगही दिखा रहे हैं। इनको यह नये अविष्कारका नाटक जनताके लिये कितना हास्यास्पद होगा सो सब बहुत जल्दी सबों के सामने आने वाला है।

पकड़े जानेके पहले जब सेठीजी मोरैना पधारे थे उस समय श्री गोम्मट्टसारजीके विषयमें हमारी और हमारे सहाध्यायी मित्रोंकी उनसे बातचीत हुई थी। हमने तो उसी समय जान लिया था कि सेठीजी गोम्मट्टसारके कितने जानकार हैं पीछे जब श्री गोम्मट्टसारके आधार पर उन्होंने अपना नाम छिपाकर दूसरेके नामसे स्त्रीमुक्ति लेख प्रगट किया तब गोम्मट्टसारके समझने वालोंको उनके गोम्मट्टसार देखनेका कारण और उसके ऊपरी ज्ञानका पूरा पता चलगया। अब इस सत्योदयके लेखसे उन लोगोंके नेत्र भी खुल जायगे जो सेठीजीको जैन धर्मका मर्मी समझ रहे हैं साथ ही उन्हें उनके भीतरी अभिप्रायका भी पता चल जायगा।

यद्यपि हम सत्योदय पत्रका बहिष्कार करचुके हैं उसे हम छूना भी नहीं चाहते फिर भी सेठीजीके लेख से कुछ अबोध भोली जनता भ्रममें पड़सकी है इस उद्देश्यसे सेठीजीके लेखका उत्तर देनेके लिये और बहिष्कृत पत्र सत्योदयके देखनेके लिये हमें वाध्य होना पड़ा अस्तु, सेठी अर्जुनलालजीने अपने स्वतन्त्र अनुभव वाले लेखमें दिगम्बराचार्य प्रणीत व्रत विधानोंमें न्यूनाधिकता श्वेताम्बर दिगम्बरोंका मतभेद, मूर्तिपूजा खण्डन गृहस्थावस्थासे मोक्ष आदि अनेक छोटी मोटी बातोंके साथ (जब मूल सिद्धांत ही कुछ नहीं हैं तब इन सब बातों पर विचार करना व्यर्थ है इस लिये इन बातोंको सेठीजीके विचारानुसार हमने छोटी मोटी लिखा है) निम्न लिखित खास—खास सिद्धांतोंके विषयमें उन्होंने इस प्रकार अपना मत प्रगट किया है।

[१] जैनधर्म सर्वज्ञ तीर्थंकर प्रणीत मत नहीं है किंतु यह विकाशवादके मत पर एक संगृहीत मत है

[२) धर्मोंकी सृष्टि अपने समयकी आवश्यकता एवं मनुष्योंके समयानुसार होनेवाले भावोंके आधार हुआ करती है। इसलिये जैन धर्म क्या अन्य धर्म क्या

कोई धर्म सच्चा नहीं कहा जा सका ।

[३] सर्वज्ञ कोई नहीं हो सका ।

[४] तीर्थंकर उस समयके विशेष विद्वान हुए हैं वे सर्वज्ञ नहीं हो सके ।

[५] ऋषभदेवके समयसे आजकलका ज्ञान बढ़ा है । पहले लोगोंमें इतना ज्ञान नहीं था जितना कि अब है ।

[६] ज्ञानका विकाश सदा बढता ही जायगा । इन छह भेदोंमें बटा हुआ सेठीजीका मत कहां तक ठीक है पहले इसी बात पर विचार किया जाता है ।

संग्रहीतमत पर विचार ।

संग्रहीतमत उसीको कहा जा सकता है जिसका भिन्न-भिन्न अनेक मतोंमेंसे एक २ बातको लेकर संग्रह किया जाय । जैनधर्म इस प्रकार संग्रहीतमत है या नहीं ? इस विषय पर विचार करते हुए यदि जैन धर्मके स्वरूप कथन पर दृष्टि डाली जाय तो प्राचीन और अर्वाचीन सभी अन्य मतोंसे जैन धर्मका स्वरूप निराला ही प्रतीत होता है । जो पदार्थका निरूपण अ-य समस्त दर्शनोंने किया है जैनधर्मने उससे विपरीत ी किया है अथवा जो निरूपण जैनधर्म करता है अन्य समस्त उससे सर्वथा उलटा ही करते हैं इसलिये जहां रस्पर सर्वथा विरुद्धता है वहां संग्रह बतलाना नि-ान्त भूल है । संग्रह किसी प्रकारकी अनुकूलता ही हो सका है सर्वथा प्रतिकूलतामें कैसा ? जो स्या-द्वाद अथवा अनेकान्तके अन्तस्तत्त्वको नहीं समझते हैं वल चंचुप्रवेशिनी बुद्धिसे उसका ऊपरी शब्दार्थ क-ते हैं उन्हें यह प्रतीत होता है कि एकएक बातके कह का नामही अनेकान्त है अथवा एक बात किसी प्र-ार अच्छी भी है और किसी प्रकार बुरी भी है यही नियोंका कथंचिद्वाद अथवा स्याद्वाद है । इसी म-मझके आधार पर सेठीजीने भिन्न २ मतोंकी बातोंको अच्छा समझा है और उनके प्रतिपादयिताओंको उन बातोंका आविष्कारक और जैनधर्मके प्रतिपादयिताको सर्वग्राहिणी बुद्धिसे विचार करनेवाला विशेष महात्मा बतलाया है । इस विषयमें सेठीजी की दी हुई युक्तियों पर पीछे विचार किया जायगा पहले यह बता देना आवश्यक है कि अनेकांत और स्याद्वाद क्या है ?

स्याद्वाद और अनेकांतमें परस्पर अन्तर है । अनेकांत प्रमाणवादका नाम है तथा स्याद्वाद नयवादका नाम है "अनेके अन्ताः धर्मा यस्मिन् असौ अनेकान्तः । जिसमें अनेकधर्म पाये जांय उसे अनेकांत कहते हैं इस व्युत्पत्तिवादसे भी अनेक-अनन्त धर्मोंके समूहको ही अनेकांत कहते हैं । इस अनन्त धर्मात्मक पदार्थको उसके सर्वांशको लेकर विवेचन करनेका नामही प्रमाणवाद हैं किसी निर्दिष्ट विवक्षा वश उसी अनन्त धर्मात्मक पदार्थके एक अंशके विवेचनको स्याद्वाद कहते हैं ।

वस्तुमें अंश दो प्रकारके होते हैं । [१] गुणरूप [२] अविभाग प्रतिच्छेदरूप । गुणरूप अंशविवेचन भावविवेचन कहलाती है । इन दोनों प्रकारकी विवेचनाओंका संबंध केवल द्रव्यनिरूपण से है । अर्थात् द्रव्यके अविभागप्रतिच्छेदोंकी अपेक्षा की गई अंशोंकी खण्ड कल्पना को ही पर्याय धर्म कहते हैं । और उसी प्रतिक्षणवर्ती पर्याय धर्मको विषय करनेवाला नयवाद है । यह नयवाद आपेक्षिकदृष्टिसे अंशांशरूपसे एक २ अंशका ग्राहक होता है यह नयवाद स्याद्वाद नामसे प्रसिद्ध है दूसरे शब्दोंमें इसे ही कथंचिद्वाद कहते हैं । जिस ज्ञानसे अथवा जिस वचनसे वस्तुके सर्वांशोंका ग्रहण होता है उसे ही प्रमाणवाद कहते हैं । प्रमाणवाद वस्तुके संग्राहात्मक सभी धर्मोंको विषय

करता है। तथा अनादिकालसे अनन्तकाल तक होने वाली वस्तुकी पर्यायोंके समूह को ही वस्तु कहते हैं। अर्थात् एक वस्तु उतना ही है जितनीकि उसकी सर्व पर्यायें हैं। इसलिये अंशांशोंके संग्रहका नाम ही वस्तु है और उसका ज्ञानही अथवा विवेचन ही अनेकांत है। इस वस्तु विवेचनसे यह बात भली भांति सिद्ध हो जाती है कि वस्तु स्वरूपका निरूपक ही अनेकान्त है और यही जैन धर्म है जैनधर्म और अनेकान्त धर्म दोनो ही पर्यायवाचक शब्द हैं। इसी अनेकान्तको वस्तु विवेचन की दृष्टिसे स्याद्वाद कहते हैं स्याद्वाद अथवा अनेकान्तका यह अर्थ कदापि नहीं है कि हर किसी बातमें उसे जोड़दिया जाय और झट किसी मनोनीत बातको समयानुसार अच्छी या बुरी सिद्धकर लिया जाय। जैसे कि सेठीजीने अपने बुद्धि कौशलसे समयानुसार किसी बातको अच्छा और किसी बातको बुरा बतलाया है। और उन्हीं अच्छी-बुरी बातोंकी कल्पनासे अनेकान्त धर्मका समयानुसार संग्रहात्मक बतलाया है। तथा इसी संग्रहकी दृष्टिसे अन्य धर्मोंसे जैन धर्मकी तुलना करते हुए उसे निर्मूल सिद्ध करनेकी पूरी चेष्टाकी है। सेठीजी हमें दर्पान्वित न समझें तो हम उनसे आग्रह करते हैं वे किसी विद्वानके पास जाकर अनेकान्तका सविस्तर स्वरूप बतलानेवाले पंचाध्यायी अष्टसहस्री आदि शास्त्रोंको पढ़े, फिर उन्हें यह मालूम होगा कि अनेकान्त कुछ और ही है और वह अनाद्यनन्त रहनेवाला वस्तु स्वरूप है। यदि सेठीजीने अनेकान्त निरूपक शास्त्रोंको समझकर पढ़ा तो उन्हें अपने इस वर्तमान कुतर्कवाद एवं बुद्धि कौशलपर अत्यन्त दुःख और पश्चात्ताप होगा सेठीजी के समान वर्तमान समयकी मांगको पूरा करने वाले बहुत से जैन नामधारी महाशय भोले भाइयोंमें अनेकान्त की व्याख्या करते हुए हरएक बात को सिद्ध करडालते हैं। हमने बाबू भगवानदीनजीको ऋषभ ब्रह्मचर्याश्रम में बहुतसी बातोंको पुष्ट करते हुए स्वयं देखा है। वे कहते हैं मांस खानाभी कथंचित जैन धर्म से सिद्ध है, हिंसाकरना भी कथंचित् ठीक है आदि।

अनेकान्त क्या है, अभीष्ट सिद्ध करने के लिये एक जादूगरीका झोला है। यदि वास्तवमें यही अनेकान्त हो, तब तो जैनधर्मका मूल्य कुछ भी नहीं होसकता। और न कुछ काल वह ठहर सका है न विद्वानोंमें प्रशंसनीय होसका है, परन्तु जैनधर्म के विषय में प्रसिद्ध दार्शनिक आचार्य स्वामी शंकराचार्यजी बहुत प्रयत्न करनेपर एवं अनेकान्तको संशयात्मक सिद्ध करने की पूरी चेष्टा करने परभी वे विफल प्रयासी बनगये, बनारसके नैयायिक, वैशेषिक दार्शनिकों में धुरंधर प्रसिद्ध विद्वान रामशास्त्री, सीताराम शास्त्री तथा उपस्थित विद्वान् अम्बादास शास्त्री प्रभृतिने जैनधर्म के अनेकान्त स्याद्वादको अकाट्य एवं सत्यवस्तुधर्म बतलाया है। इन विद्वानोंने अनेकांतवाद के ग्रन्थोंका मार्मिक रहस्य समझा है, अनेक अंग्रेज और डाक्टर सतीशचंद्र विद्याभूषण पी० एच० डी० प्रभृति विद्वान जैनधर्म को सर्वोपरि महत्व देते हैं। यह बात हम भूमिका में ही कहचुके हैं। यदि अनेकान्तवादका संग्रहात्मकही अन्तस्तत्व होता तो यह धर्म स्वामी विद्यानन्दि सरीखे उद्भटाचार्यों द्वारा कभी स्वीकृत नहीं होता। अस्तु। यहांपर हम जैनधर्म के पुष्टिवाद और महत्वपर विचार नहीं करना चाहते। इसलिये इसे छोड़कर वस्तु स्वरूपका ही विचार करते हैं। कारण कि सेठीजी और उनके अनुगन्ता कहसके हैं कि इन विद्वानों के गीतोंमें क्या रक्खा है। इन विद्वानोंका ज्ञानबलतो कुछभी नहीं है। तीर्थंकर सरीखे म-

हात्मामी उस समय के विशेषज्ञ होने से संग्रहरूप में जैन धर्मका अस्तित्व बनासके हैं। परन्तु सेठीजी ऐसा कह नहीं सके क्योंकि वे उन तीर्थंकरों की अपेक्षा इन उपर्युक्त विद्वानोंको अवश्यही विशेषज्ञ समझते होंगे क्योंकि उनके मतसे ज्ञानका विकाश पहलेसे अब बहुत बढ़ा हुआ है और वे स्वयं वर्तमान समय के सर्वोपरि विशेषज्ञ (तीर्थंकर महात्मा) हैं। उन्हें वर्तमान समयका सर्वोपरि विशेषज्ञ मानना इसलिये भी आवश्यक है कि उन्होंने अपने बुद्धिबल से तत्वोंकी सूक्ष्म खोजमें जैनधर्मको संग्रहात्मकधर्म बतलाकर के बहुत बड़ा धार्मिक आविष्कार किया है। जिस अनेकान्त के तात्विकरहस्यको समन्तभद्रादि आचार्य नहीं समझसके उसे सेठीजी समझे हैं इसलिये सेठीजी के मतके अनुसार वर्तमान समयके उपर्युक्त विद्वान प्राच्य जैनधर्म के संग्रहकर्ताओं से विशेषज्ञ हैं। इसलिये हमें उन्हें प्रसंगमें लाना पड़ा कि वे जैनधर्म को संग्रहीत बतलाते हैं या नहीं ? संग्रहमें सदा मूल पदार्थको महत्व दियाजाताहै। संग्रहकी कभी प्रशंसा नहीं होसकी परन्तु वर्तमान विद्वानोंने अन्य धर्मोंसे जैनधर्म को उत्तम बतलाया है इसलिये स्पष्ट विदित है कि जैनधर्म द्वारा प्रतिपादित वस्तुरूप अन्यान्यधर्मोंसे भिन्न एक विलक्षणरूपमें स्वभावसिद्ध है। वह अन्य धर्मोंका संग्रह नहीं किन्तु उनसे सर्वथा प्रतिकूल है।

जो महाशयइस अनेकान्त से मांसखाना, हिंसाकरना, आदि क्रियाओंको पुष्ट करते हैं। अथवा जो सचेल मूर्ति की पूजना आदि भी कथंचित ठीक बतलाते हैं वे इस अनेकान्तका दुरुपयोग करते हैं। यहसब क्रियाकाण्ड हैं क्रियाकाण्ड (चरित्र) का सम्बन्ध धर्म से है। और वह सदा एक रूपमें रहता है ऐसा नहीं है कि जिस प्रकार वस्तु द्रव्यदृष्टि से नित्य और पर्यायदृष्टिसे अनित्य कही जाती है उसी प्रकार किसी दृष्टिसे अहिंसा ठीक समझीजाय अथवा किसी समय पापसे अधर्म और किसी समय पापसे धर्म समझाजायाकिसी समय सम्यग्दर्शन चौथेगुणस्थान की क्रियाओंसे होता हो तो किसी समय वह पहले गुणस्थानकी क्रियाओं से ही मानाजाय। किसी समय किसी दृष्टिसे मुनि धर्म को दिगम्बर मानाजाय। तो किसी समय किसी दृष्टिसे उसे सचेल मानलिया जाय। किसी समय मूर्तिपूजासे स्वर्गादिक की प्राप्ति बतलाई जाय तो किसी समय उससे नरकादिक की प्राप्ति भी बतलाईजाय, कभी जिन मूर्तिका पूजन ठीक समझाजाय तो कभी मसजिद पूजा भी ठीक समझीजाय। कभी किसी दृष्टिसे वर्णव्यवस्था ठीक समझीजाय कभी अन्यदृष्टि से उसका लोपकर छूत-अछूत का भेद मिटाना भी ठीक समझाजाय इत्यादि सब बातोंके सिद्ध करने को अनेकान्त नहीं कहते हैं किन्तु वह वस्तु स्वरूप है और वहभी सदा निजदृष्टि और निजरूपसे निश्चित है। उपर्युक्त बातें व्यवहार एवं निश्चयधर्म से सम्बन्ध रखती है। यहां शंका होसक्ती है कि व्यवहार धर्मको भी तो आपेक्षिक दृष्टिसे घटायाजाता है जैसे मंदिर बनवाने में धार्मिक आरम्भ करनेमें हिंसा करने को पोषणभी जैनग्रन्थों में कियागया है। इसीप्रकार किसी भूखेको मांस खानेका उपदेश भी दयादृष्टि से उत्तम है। देशकाल के अनुसार मुनिमहाराज भी कुछ कपड़ा रक्खें तो इसमें कोई हानि नहीं है। आदि। यद्यपि स्थूल दृष्टिसे कहीं गई ऐसी २ बातें स्थूलबुद्धि वालों को समझमें ठीक २ जचने लगी हैं और उसी अपनी जांचके आधारपर वे स्याद्वाद का खासा प्रचार करडालते हैं परन्तु वास्तव में विचार किया जाय तो ऊपर कहे हुए विकल्प जैनधर्म से सर्वथा निषिद्धहो हैं

हिंसा चाहे मन्दिरजी बनवाने में कीजाय चाहे पूजन में कीजाय चाहे पात्रदान में कीजाय वह सदा हिंसा ही है और उसका फल सदा पापरूप है हिंसा कभी अहिंसा नहीं होसकती।

परंतु धर्म कार्योंमें हिंसा अत्यल्प होती है और पुण्य एवं विशुद्धता समधिक होती है इसलिये उन कार्यो का विधान किया जाता है। जो गृहस्थ अपने सांसारिक आरंभोंमें सदा हिंसा किया करते हैं उन्हें उससे बचाने के लिये अथवा निरन्तर पापबन्धको छुड़ाकर पुण्यबन्ध कराने के लिये तथा विशुद्धता प्राप्त करानेके लिये धार्मिक कार्योंका उपदेश है। यही स्वामी समन्त भद्राचार्यने कहा है कि जिस प्रकार अमृतके समुद्र में विषकी एक कणिका दोषोत्पादक नहीं है उसी प्रकार जिनेंद्रकी पूजा करने वाले व्यक्तिके होनेवाले बहुत से पुण्यके ढेरमें आरम्भ जनित थोड़ा पापका लेश दोषाधायक नहीं है। इसका मतलब यह नहीं है कि पूजन करते समय आरम्भजनित हिंसा अहिंसा हो गई। उतनी तो हिंसा है ही। अमृतसिंधुमें विषकी कणिका दोष भले ही न पैदा करें उसका असर कुछ कार्यकारी भले ही न हो फिरभी विषकी कणिका तो विष कणिकाही है इसलिये पूज्यपाद आचार्य महाराजने स्वयं आरम्भ जनित हिंसाको सावद्यलेश बतलाया है ऐसा नहीं है कि उसका अभाव सिद्धकर दिखाया हो। एक शंका यह भी हो सकती है कि जब हिंसा सदा हिंसा ही है तो उसका उपदेश विधान क्यों पाया जाता है अर्थात् जैनधर्म जब सर्वथा हिंसाका निषेध करता है किसी अपेक्षासे भी उसका विधान नहीं करता तो फिर ऐसे कार्योंका जिनमें हिंसा अवश्यम्भाविनी हैं क्यों विधान बतलाता है? इसका यह उत्तर है कि जैन धर्म हिंसाका विधान तो कभी करता ही नहीं किन्तु विशुद्धताका विधान करता है जिन कार्योंसे विशुद्धता होती है उन्हीका उपदेश जैन धर्म देता है परन्तु इस शरीरधारी जीवकी विशुद्धता भी मूर्तिमान पदार्थोंके सम्बन्ध बिना नहीं हो सकी और मूर्तिमान पदार्थोंके सम्बन्धसे होनेवाली सभी क्रियायें आरम्भजनित हैं इसलिये विशुद्धता प्राप्त करनेके लिये भी बीच-बीचमें पुन्यबन्ध होना एवं उसका करना अनिवार्य है। क्रिया मात्र ही जब आरम्भ पैदा करनेवाली है तो कहना होगा कि विशुद्धताका दरवाजा ही आरंभ है। विना दरवाजे के जिस प्रकार कोई घरमें नहीं जा सक्ता (उपरसे कूदनेवालेके लिये वही दरवाजा समझना चाहिये) उसीप्रकार विना आरम्भके कोई विशुद्धि नहीं प्राप्त कर सका। इसीलिये व्यवहार धर्मकी सृष्टि है। जब शुक्ल ध्यानरूपी विशुद्धताके घरमें यह जीव घुस जाता है तब पुण्यबन्धसे भी मुक्त हो जाता है। इस संक्षिप्त कथनसे यह बात भले भांति समझमें आ जाती है कि जैन धर्म कभी किसी दृष्टिमें हिंसाका पोषक नहीं है जितने अंशमें हिंसा है सदा बुरा है मुनि महाराज भी जब तक भोजनादि गमनागमन क्रिया करते हैं तब तक छट्ठे गुणस्थानवर्ती-प्रमादी हैं जब उस प्रमाद को छोड़ते हैं तभी ऊपरकी विशुद्धतामें पहुंचते हैं। इसीप्रकार मूर्ति पूजा भी सदा आवश्यक है यह बात प्राचीन इतिहाससे सुनिर्णीत है। मिथ्या क्रियाओं से कभी सम्यक्त्व नहीं हो सक्ता! अधर्म धर्म नहीं हो सका मुनि धर्म कभी सचेल नहीं हो सक्ता। इत्यादि सभी बातें सदा एक रूपमें स्थिर रहती हैं। व्रतविधानादि भी सेठीजीके अनेकान्तानुसार देशकाल की अपेक्षा कभी नहीं बदलते। जितने अंशमें वे उन्हें बदलते हुए समझते हैं उतने अंशमें वे बिलकुल नहीं समझे हैं। इसबातका निर्णय व्रतविधान विचारमें ही

हम करेंगे। अभी तो उनकी दृष्टिसे अतविद्यानादि वि चारको छोटाविचार समझकर छोड़ देते हैं केवल यहां पर अनेकान्त और संग्रहीतका विचार करते हैं अबतक हमने यह बतलाया है कि अनेकान्तका जो अर्थकर सेठोजोने जैनधर्मको संग्राहात्मक बतलाया है वह अनेकान्तका अर्थ नहीं किन्तु अर्थ विपर्यास है आगे सेठोजी को दी हुई युक्तियोंके आधार पर जैनधर्म संग्रहीत होसकता है या नहीं ? इसी बातपर विचार किया जाता है।

१—सबसे पहिले सेठोजी लिखते हैं "कि मनुष्य दो दिमाग वाले होते हैं पहले वे जो किसी विषयके सम्बन्धमें बारम्बार अपनी विवेचन शक्ति और तर्कबुद्धिसे किसी सिद्धांतको स्थिर करते हैं और सर्व साधारणमें प्रगट करते हैं। एवं उसका प्रचार करते कराते हैं ऐसे लोग पदार्थोंके गुण व शक्तियों पर संग्राहिणी दृष्टिसे विचार नहीं करते और न वे करही सकते हैं यथा ज्योतिष व खगोल विद्याके विषयमें अनुसन्धान करनेवाला व्यक्ति वैद्यकके विषयों पर कभी ध्यान नहीं लगाता। वह सीधा अपनी एक ही धुनमें लगा रहता है। और जो विचार उसके स्थिर होते जाते हैं उनको वह निश्चित सिद्धांत बना लेता है। परन्तु संसारके जितने पदार्थ हैं उनमें अनन्तगुण है और उनका अस्तित्व एवं व्यवहार आपेक्षिक है।"

यहां पर हम सेठोजीसे पूंछते हैं कि पहले तो प्रत्येक पदार्थ अनन्तगुणात्मक है इस बातको आपने कैसे जाना ? क्या अनन्तगुणोंका भी कोई अलग ज्ञान कर सका है यहां पर तो 'परन्तु' लिख कर आपने पदार्थोंकी अनन्तशक्तियोंके विषयमें अपनी निश्चित समझ बतलाई है जैसा कि कोष्टकके भीतर लिखी गई आपकी पंक्तिसे स्पष्ट विदित है सम्भव है आपने शास्त्रोंसे एवं किन्हीं विशेषज्ञोंसे परम्परा जाना हो फिर स्वयं अनुभवकर वैसा निश्चित सिद्धान्त स्थिर किया हो तो कहना होगा कि जिस व्यक्ति एवं जिस शास्त्रसे आपने पदार्थके अनन्तगुणोंका स्थिर सिद्धांत बनाया है वे आपको प्रमाण होंगे। अन्यथा उस विषयमें आप दूसरोंके विचारोंको पदार्थके एक देश ग्रहण करनेवाले एवं सर्व ग्राहिणी बुद्धिसे विचार करनेमें असमर्थ बतला कर अपने सिद्धांतको ठीक नहीं कह सके। प्रमाणभूत अल्पज्ञ व्यक्ति एवं अल्पज्ञद्वारा कहा हुआ शास्त्र अनन्तशक्तियोंके ज्ञान और उनके विवेचन करनेमें सर्वथा असमर्थ है। इस लिये बिना किसी अनन्तशक्तियोंके साक्षात् दृष्टा ज्ञाता [सर्वज्ञ] के आपको पदार्थका अनन्तगुणात्मक अनुभव कभी नहीं हो सका और वह दूसरोंका बोध एकदेशी है वह एक ही दायरे तक ठीक है ऐसा कहनेमें आप समर्थ हैं। यदि बिना पदार्थकी समस्त शक्तियोंका परोक्षज्ञान किये आप उन सूक्ष्मदर्शियोंके ज्ञानको एक देशी बतलाते हैं तो दुःसाहस करते हैं। इसलिये आपको सर्वज्ञकी कही हुई पदार्थ व्यवस्थाके माननेमें तो निश्चय है और वह निश्चय यहां तक दृढ है कि सूक्ष्मान्वेषी मूल पदार्थके आविष्कर्ताओंके ज्ञानको भी आप एक दायरे तक ठीक बतलाते हैं। केवल सर्वज्ञ मानने ही में आपका विरोध है। उसका कारण भी हम यही समझते हैं कि यदि सर्वज्ञसत्ताको आप स्वीकार कर लेंगे तो आपका संग्रहात्मक नया आविष्कार मान्य न ठहरेगा और वैसी अवस्थामें आप तीर्थंकरोंके समान विशेषज्ञ बननेका मौका इस उलट फेरके जमानेमें भी न पा सकेंगे। अस्तु। सर्वज्ञ हो सका है या नहीं ? इस बातका विचार सर्वज्ञ सिद्धि विचारमें आगे किया जायगा अभी तो इस बातका विचार करना है कि

आपको पदार्थकी अनन्त शक्तियों पर पूरा विश्वास है भले ही उस विश्वासको आप किसी व्यक्ति व शास्त्र के प्रमाणसे न स्वीकार करें। केवल पदार्थकी शक्तियोंके कार्योंसे उनको अनुमान करलें तब भी पदार्थ अनन्तशक्तियोंका समूह है। यह बात आप भलीभांति स्वीकार करते हैं तो आपको यह भी स्वीकार करना पड़ेगाकि पूरे पदार्थका सत्य ज्ञान वही है जो उस पूरे पदार्थको विषय करता है पदार्थके एकदेशका जाननेवाला ज्ञान भी सत्यज्ञान कहा जा सका है जब कि वह उतनाही बतलाया जाय। परन्तु ज्ञान तो एक देशको विषय करनेवाला हो और उसे सर्वदेशको विषय करनेवाला समझा जाय तो वैसी समझ सर्वथा मिथ्या है। जैसे एक कमरेमें १०० चीजें रक्खी है एक अंधा आदमी टटोलता हुआ उनमेंसे कोई एक चीज ले आया। फिर उससे पूछा गया कमरेमें क्या है? अंधेने उत्तर दिया कि कमरेमें सिवा एक चीजके और कुछ नहीं है। इस अन्धेके ज्ञानको उस कमरेमें रक्खी हुई और ९९ चीजोंको जाननेवाले मिथ्या समझेंगे। यदि वह अन्धा इसबातको स्वीकार करता कि मुझे तो एकही चीज मिलसकी है सम्भव है कि कमरेमें और भी चीजे हों और उन्हें मैं न ढूढ़ सका हूं। तबतो उसे झूठा नहीं कहा जा सकता परन्तु मिली हुई एकही चीजको स्वीकार करना बाकी चीजोंका सर्वथा निषेध करना उसका झूठ है। यदि कालान्तरमे उसे एक वस्तुका और भी पता लग जाय फिर वह उस कमरेमें दो वस्तुओंको सत्ता बतलावे और बाकीका निषेध करे तबभी उसका कहना झूठ है। इसीप्रकार जब पदार्थ अनन्त शक्तियों वाला है तो उन समस्त शक्तियों का ज्ञान ही पूरे पदार्थका सच्चा ज्ञान है? जो कोई अनन्तात्मकात्मक पदार्थ की दो-चार शक्तियों को जानकर उतने ही ज्ञानको पूरे पदार्थका ज्ञान बतलाता है अथवा उन जानी हुई दो चार शक्तियों रूप ही पूरा पदार्थ समझता है एवं बिना जानी हुई बाकी की समस्त शक्तियोंका निषेध करता है तो वह झूठा है जैसे अरबों सम्पतिवानको धन हीन अथवा हजारपति मात्र समझनेवाला और कहनेवाला मिथ्यावादी है। उसी प्रकार अधूरे ज्ञानको ही पूरा ज्ञान समझनेवाला और कहनेवाला मिथ्यावादी है। आजकलके साईन्सवेत्ता खोजकरते हुए जितना कुछ समझ पाते है उतने ही अंशमें अपनाज्ञान स्थिर करते जाते हैं और नवीन खोजके द्वारा जब कभी पहली खोजसे कुछ आगे बढते हैं, तो फिर पहले स्थिर कियेगये ज्ञानको रद्दकर नवीन खोजतक अपने ज्ञानको स्थिर करते हैं और उसीका जनतामें प्रचार करतेहै। परन्तु इनका विचार एवं इनकी खोज कभी स्थिर नहीं हो पाती। सदा आगे बढ़ने एवं तद्विषयक नवीनता जानने की इन्हे सदा इच्छा रहा करती है इसलिये यह साइन्स संस्कृत सांशयिक अथवा संशय शब्दका अपभ्रंश मालूम पड़ता है कुछ समय पहले इन साइन्सवेत्ताओंके मतसे सूर्य आगका गोला समझा जाता था। हिन्दीकी प्राइमरी पुस्तकों में भी वैसा छपा हुआ है अनेक बालकों से प्रश्न करने पर उत्तर मिलता है कि सूर्य एक आगका गोला है परन्तु अब उसके विषयमें उन्हीं वैज्ञानिकों की आवाज उठ रही है कि वह आगका गोला नहीं है किन्तु रेडियम धातुका बना हुआ है। पहले रेडियम धातुका पता नहीं लगा था इस लिये "रत्नों की ज्योति से भी दीपकका काम लिया जाता है" इन प्रमाण सिद्ध पौराणिक बातोंको वे मिथ्या समझ रहे थे। परन्तु उक्त धातुका अमेरिकाके किसी व्यापारी के पास पता चलनेसे वे उसकी ज्योतिसे अब सूर्य

की तुलना करने लगे। जैन शास्त्र सूर्यके विमानको प्रकाशमान अनुष्णमणियों का पुंज पहले से ही कह रहे हैं। इतने परभी (अपनी बातकी पुष्टि समझ कर भी) इन विज्ञान वादियों को हम उस नई खोजके लिये बधाई नही दे सकते और न उनके ज्ञानको ठीक ज्ञान कह सकते हैं। सम्भवहै कि जैसे पहले सूर्यको आगका गोला बतलाकर उन्होंने अनेक अबोध बालकों को भ्रममें डाल दियाथा उसी प्रकार आगेभी उसके विषयमें और कुछ कहने लगें। यदि भूगर्भ विद्या विशारदोंको किसी नवीन चमकीली चीज़का और भी पता चले तो ये विज्ञानवादी सूर्यको उसीका बना बतलाकर फिर अनेकोंको भ्रममें डाल देंगे इसलिये कहना पड़ता है कि इनका ज्ञान सदा संशयात्मक रहता है। इस कथनसे हमारा अभिप्राय यह कदापि नहीं कि नई खोज करना अच्छा नहीं है अथवा विज्ञानवेत्ता नासमझ हैं। नहीं, किसी बातकी खोज करना कभी बुरा नही है और खोजके आविष्कर्ता भी विशेषज्ञ विद्वान हैं क्योंकि वे पदार्थकी शक्तियोंको जानने के लिये सदा प्रयत्नशील रहते हैं हमतो यहभी कहनेके लिये तैयार हैं कि जितने अंशमें विज्ञान बढ़ाहै उतने अंशमें जैनधर्म कथित पदार्थों की पुष्टि हुई है जैसे बहु भाग प्राच्य दर्शनकारोंने शब्दको अमूर्त आकाशका गुण बतलाया है एवं नैयायिक वैशेषिक आदि दार्शनिकों ने स्वतन्त्र भिन्न २ द्रव्य माना है परन्तु वर्तमान साइन्सने उन सब बातों का निराकरणकर स्पष्ट बतलादिया है कि शब्द जड़ तत्त्व से निकला है इसलिये वह टैलीफोन, टैलीग्राफ आदि यन्त्रों से यथेष्ट स्थान पर लेजाया जाता है। पृथ्वी आदिके परमाणु भी एकही जड़ तत्त्व एवं भौतिक विभागकी पर्यायें हैं। इसी प्रकार जड़में स्वयं क्रिया नहीं होसकी इसलिये कर्मफल देने के लिये ईश्वरीय प्रेरक शक्तिकी आवश्यकता है। इस भारतीय नैयायिक वैशेषिक मीमांसकादि सभी प्राच्य-दार्शनिकोंके कर्तृवादके बड़े भारी निश्चित सिद्धांतको एकक्षण (एक सैकिन्ड) में कई लाख मील जाने वालीबिजली आदिकी क्रियाओं द्वारा अकाट्यबाधा पहुंचाई है। इन सब बातों से यह बात सिद्ध होती है कि जितने अंशमें वर्तमान विज्ञान ठीक २ विकाशतक पहुंचेगा उतने अंशमें जैनधर्मकी ही पुष्टि होगी। क्यों कि यह धर्म पदार्थों की यथार्थता का विवेचक है। हां यह बात दूसरी है कि विज्ञानको जब तक पदार्थ स्वरूप तक पहुंच न हो तबतक उसका जैनधर्म से विरोधप्रतीत हो, जैसाकि अब बहुतसी बातों मेंहै। परन्तु उस विरोधका प्रतिरोध धीरें २ स्वयं विज्ञानही करता जाता है, जैनधर्म सदा एक रूपमें अटल है विज्ञानवादियोंने अमरीकाकी खोज लगाई पहले अमरीका भी उस कि दृष्टिमें नहीं था, उसीने उत्तर ध्रुवकी यात्रामें पहले उत्तर ध्रुवका भण्डा एक ढूंढे हुए नवीन बर्फीले स्थलमें लगादिया और उत्तरध्रुवी दुनियां इससे आगे नहीं है ऐसी ढंढोरा भी पाश्चमात्य शिक्षितों में करादिया। वे भी उस ढंढोरेको आप्तवाक्य समझकर उत्तरध्रुवके विषयमें अपने विचारोंको स्थिरकरने लगे।

पीछे कुछ वर्षोंकी सतत खोजसे उसने प्रगट कियाकि पहली बात ग़लत है। उत्तरध्रुवका अभी औरभी पता-चला है तथा अभी सम्भव है कि उनकी इस नवीन खोज से आगे भी हो। इस दूसरे एलानने फिर उन अनुगन्ताओं के विचारों को बदल दिया इस प्रकारकी प्रगति से यह बात सुनिर्णीत है कि " आजकाल का विज्ञान स्थिर नहीं है और न वह कभी होसका है। "

निजगतिके आधार पर वह कभी पदार्थांश तक पहुंचता है कभी पदार्थ से विपरीतही उसके विषयमें बोध करता है। इसलिये यह विज्ञान विकाश पदार्थका सत्याज्ञान नहीं कहा जासक्ता, उसे हम पदार्थ परोक्षाभ्यास (प्रैक्टिस) कहसक्ते हैं।

सेठीजीने ऐसे ही आविष्कर्ताओंको अपनी तर्क बुद्धिसे किसी बातको स्थिर करनेवाले बतलाया है परन्तु उनका एकदेशीज्ञान मिथ्या है। एकही पदार्थके विषय में उनकी अधूरी खोज है उसीको वे पूरी बतलाते हैं और उसीका प्रचार करने-कराते हैं। समझदार ऐसे प्रचारको झूठी बातका प्रचार एवं धोखेबाजी कहेंगे। अनुसंधान करनेवाले व्यक्तिके जो-जो विचार स्थिर होते हैं उनके वह निश्चित सिद्धांत किसीएक दायरेतक ठीक हैं। सेठीजीकी यह समझ भूलभरी है। उनके कथनसे ही उपर्युक्त बात झूंठ सिद्ध होती है। कारण कि एकही पदार्थांशमें किसी अनुसंधानकारीके विचार पहले दूसरे रूपमें स्थिर हुए फिर दूसरेरूपमें स्थिर हुए तो उसके पहले विचारोंके आधारपर निश्चित सिद्धान्त दूसरे विचारोंसे बदल जायंगे। एवं दूसरे ही बनाने पड़ेंगे। इसलिये एक दायरेतक अनुसंधानकारी सच्चेज्ञानवाला है यह बात सेठीजी की स्ववचन बाधित है क्योंकि आगे चलकर वे स्वयं लिखते हैं:—

कि "सूक्ष्मतत्त्व विचारोंके निर्णीत सिद्धान्त अपने दायरे तक ठीक होते हैं परन्तु जब कोई अन्य व्यक्ति अपने पूर्ण तत्वदर्शीके सिद्धान्त पर अन्य आपेक्षिक दृष्टिसे नई रोशनी डालता है वा दूसरी अपेक्षासे उसको अमान्य ठहराता है तो भेद होना आवश्यक है" पहले तो ऐसे अपेक्षा कथनको हम सर्वथा मिथ्या और अज्ञान समझते हैं कि एकही पदार्थका ज्ञान किसी समय तक सच्चा बना रहे और पीछे वह झूठा और अमान्य ठहराया जाय। क्यों पदार्थ स्वरूप समयानुसार बदलता रहता है जिससेकि उसका ज्ञान बदलता रहे और वह कभी सच्चा या कभी झूठा समझा जाय जब पदार्थ स्वरूप सदा एक रूपमें नित्य हैं तो किसी अपेक्षासे भी क्यों न उसका विचार किया जाय वह सदा एक सा ही होगा। अथवा जिस अपेक्षासे पदार्थके किसी अंशका आपेक्षिक दृष्टिसे निषेध किया जाता है तो दूसरी दृष्टिसे उसका विधान कियाजाता है इस विधि-निषेधमें भी एक ज्ञान दूसरे ज्ञानका विरोधी एवं झूठा नहीं है क्योंकि निषेध पक्ष विधान पक्षके मार्गको स्वीकार करता हुआ विवेचन दृष्टिसे उसे गौण बनाता है, वही हालत विधान पक्षकी है अपेक्षा कथन भी अपनी दृष्टिसे सदा एक रूपमें स्थिर है वह कभी उस अपेक्षासे दूसरे रूप नहीं हो सक्ता। यह आपेक्षिक कथन पदार्थ स्वरूपसे सम्बन्ध रखता है इसलिये वह परस्पर विरुद्ध नहीं है किन्तु पदार्थ धर्मोंकी सत्ता ही वैसी होनेसे अविरुद्ध है। तथा पदार्थ स्वरूप सदा नित्य है तो वह आपेक्षिक कथन भी सदा नित्य है यह सेठीजीका लिखना उनकी अजानकारी पर हंसी दिलाता है कि कुछ समय पीछे पहला विचार आपेक्षिक दृष्टिसे झूठा एवं अमान्य हो जाता है। जो बात एक समयमें अमान्य है और वस्तु धर्म वैसा ही है तो वह सदा अमान्य ही रहेगी। ऐसा ही नहीं कि आज अमान्य है कल मान्य हो जायगी, अथवा आज मान्य है कल अमान्य हो जायगी। इसलिये सेठीजीने जिन तत्त्व दर्शियोंका ज्ञान एक दायरे तक ठीक बतला कर कालान्तरमें उसे दूसरे द्वारा अमान्य ठहराया है इससे यह बात साफ समझमें आ जाती है कि पहले तत्वान्वेषियोंका ज्ञान एक दायरे तक भी ठीक नहीं था, यदि उसे ठीक माना जाय तो

वह एक दायरे तक सदा ठीक होना चाहिये, चाहे किसी अपेक्षासे क्यों न उस पर दृष्टि डाली जाय । आगेका पदार्थांश उन्होंने नहीं जाना है तो वह अंश भले ही दूसरे वैज्ञानिकों द्वारा अमान्य ठहराया जाय परन्तु सेठीजीने पूर्व तत्वान्वेषियोंके एक दायरे वाले ज्ञानको स्वयं समयानुसार अमान्य एवं अनुदार तथा संकीर्ण बतलाया है । क्या सेठीजी इस बातका उत्तर ठीक दे सकेंगे कि जिन्होंने अपनी पूर्ण गहरी समझ से एक दायरे तक किसी एक अंशका पूरा ज्ञान एवं उसका मूल आविष्कार किया है वे कभी अनुदार तथा संकीर्ण कहे जा सकते हैं । प्रत्युतः उन्हें मूलके आविष्कारक होनेसे उस दायरे तक सर्वोपरि उदार और विपुलज्ञानी समझना चाहिये । यदि ऐसा न माना जावे तो एक दायरे तक उनके ज्ञानका हिस्सा और दूसरे दायरे तक दूसरे वैज्ञानिकोंके ज्ञानका हिस्सा इकट्ठा करें और उससे पूरे पदार्थका स्वरूप बतलाकर सेठीजी जैन धर्मको संग्रहीतमत कहनेका साहस किस तर्क बलसे कर सकेंगे ? परन्तु उन्होंने स्वयं उन मूल के आविष्कर्ताओंको कालानुसार अमान्य ठहराया है इससे सिद्ध है कि उनके एक दायरेका ज्ञान भी झूठा है । अब उनके एक दायरे वाला ज्ञान भी झूठा है तो ऐसे मूल आविष्कारका संग्रह पदार्थ —स्वरूप कभी नहीं हो सकता ।

संसारमें जितने पदार्थ हैं वे तो सदा अनाद्यनन्त स्थायी अपने स्वभाव में रहते हैं केवल उनके ज्ञान में ही सचाई और मिथ्यापन आता है । आज जितने मत-भेद दीख रहे हैं वे सब ज्ञानभेदसे भिन्न २ होरहे हैं । एक ही आत्मतत्त्वको कोई किसी प्रकार निरूपण करता है, कोई किसी प्रकार करता है आत्मतत्व एक है उसका निरूपण किसको लेकर जिस अपेक्षासे किया जाय वह सदा एक होना चाहिये जिस देश में अक्षर बनानेवाली स्याही सहित वस्तुकोदवात कहते हैं । वहां उसे दावात कहनेवाले तो सच्चे ज्ञानी समझे जाते हैं जो उसे दीपक समझरहे हैं वे झूठे समझे जाते हैं क्योंकि उनके ज्ञानने पदार्थको उलटे रूप में विषय किया है । बस यही वस्तुभेदज्ञान मत भेदका कारण है । जिस प्रकार दवात को दीपक समझना या कहना मिथ्या है उसी प्रकार एक वस्तु को उसके स्वरूप से भिन्न स्वरूप वाली समझना या कहना मिथ्या है इसलिये संसारके सभी मत किसी अंशमें सच्चे नहीं कहे जासकते सच्चा वो ही होसकता है जो वस्तु की यथार्थताको विषय करनेवाला है । ऐसा नहीं है कि हाथीके कणमात्रका ज्ञान रखनेवाला पुरुष कानरूपही हाथीको समझता है तो उसका ज्ञानभी किसी दायरेतक सच मानलिया जाय फिर कभी कोई विशेषज्ञ पूछका ज्ञान होनेपर हाथीको कान और पूछरूप समझे तो एकदायरे तक वहभी सच्चा समझाजाय ।

सेठीजीके इस दायरेके ज्ञानसे तो सौको एक समझनेवाले, लाख को दो कहने वाले, हजारको पांच कहने वाले सभी सच्चे कहे जाने चाहियें क्योंकि पहलेका एक दायरे तक दूसरेका दो तक तीसरेका पांच दायरे तक ज्ञान झूठा नहीं है । परन्तु संसारमें वैसे ज्ञान वालोंको झूठा समझा जाता है । जो एक, दो, तीनका ज्ञान करके यदि आगेकी संख्यामें संशय करता है तो वहभी संशयवादी मिथ्या है । क्योंकि उसे पदार्थ की यथार्थताका कुछ निश्चय नहीं है । इसप्रकारके अधूरे अयथार्थज्ञानसे दूसरोंकी बहुत हानि होती है वे कल्याण नहीं करसकते किसी कोट्याधीशके विषयमें अकिंचनताका ज्ञान जिसप्रकार उससे काम नहीं उठाने

देता उसीप्रकार वस्तुकी समग्रताका एकदेशीय ज्ञान उससे लाभ नहीं उठाने देता। यदि मनुष्यमें मोक्षोपयोगी योग्यताका बोध न कराया जाय एवं उसकी असली रूपमें अथवा कुछ त्यागधर्मतक ही हद बतलाई जाय तो कोई मनुष्य चरम उन्नति करनेका प्रयत्न नहीं कर सक्ता। यही बड़ीभारी हानि पदार्थविपर्याससे होती है; इस कथनसे सेठीजीका यह कहना कि 'सूक्ष्मान्वेषी सर्वग्राहिणीदृष्टिसे पदार्थका विचार नहीं करते किन्तु अपने दायरे तक ही ठीक हैं और उन्हीं दायरे वालेकी कही हुई पदार्थ व्यवस्था पर जो सर्वग्राहिणीदृष्टिसे विचार कर पदार्थके स्वरूपकी पूर्णता सब दायरा वालोंके संग्रहीतमतपर समझते हैं वही विशेषज्ञ हैं और ऐसे ही विशेषज्ञ तीर्थंकर हैं' सर्वथा अयुक्त एवं भ्रमतापूर्ण है। जैनधर्मके तीर्थंकरोंद्वारा बतलाईहुई पदार्थ व्यवस्था अनन्तशक्तियोंको विषयकरने वाली गुणपर्यायात्मक एवं उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, सत्तात्मक निरालीही है उससे पदार्थकी समग्रता तथा यथार्थताका बोध होता है और अनुभवमें आता है।

यहांपर शंका कीजासक्ती है कि सांख्यमत पदार्थको नित्य मानता है बौद्धमत उसे अनित्य मानता है ये दोनों ही मत अपनी दृष्टिको सर्वग्राहिणी नहीं बना सके, किन्तु एक नित्यांश और दूसरा अनित्यांश दायरेतकही घूमतारहा परन्तु पदार्थ नित्यानित्यात्मक होनेसे विशेषज्ञ तीर्थंकर महात्माओंने उसपर सर्वग्राहिणीदृष्टिसे विचारकर दोनों मतोंको संग्रहरूपमें एकत्रित करलिया। बस यही तो जैनियोंका अनेकान्त है। स्थूलदृष्टिसे शंका ठीक मालूम होती है सब धर्मोंके तत्त्वोंको किसीप्रकार बुरा न कहनेवाले आजकालके महोपदेशक या तो जैनधर्मको नित्यैकान्त अनित्यैकान्त आदि मतोंमें अन्तर्भूत करदेते हैं या उन सबोंको जैन मतकी शाखाएं समझते हैं। और जैनधर्म कथित पदार्थव्यवस्थाका गुणगान कर डालते हैं यही सर्व मतोंकी एवं सर्व मतानुकूल पर खण्डन शून्य स्वमत मंडन कहलाता है। ऐसे मंडनसे बहुतसे यही निर्णय नहीं कर पाते कि महोपदेशकजीके व्याख्यानसे निर्णीत बात क्या समझी जाय? अस्तु। ऐसीही शालाओंसे सेठीजीने जैनधर्मको संग्राहत्मक बतलानेका लम्बा प्रयास किया है। उपर्युक्त शंकाकारोंके उत्तरमें यह समझना चाहिये कि यदि जैनधर्म सांख्य और बौद्धमतका संग्रह होता तो दोनोंके अनुकूल पड़ता अथवा दोनोंही जैनधर्मके अनुकूल पड़ते। परन्तु जैनधर्मसे दोनोंही विरुद्ध पड़ते हैं। विरुद्धतामें हेतु यह है कि जिस रूपमें सांख्यने पदार्थका विचार कर नित्यैकांत सिद्धांतको स्थिर किया है वह सिद्धांत पदार्थ विचारको छूता भी नहीं है। यदि वह किसी एक दृष्टिसे वैसा कहता और दूसरी दृष्टिका उसे बोध न होनेसे उस पर वह नहीं भी विचार करता तो भी उसका एक दृष्टिसे किया हुआ एकदेशीय विचार एवं निश्चित सिद्धांत ठीक समझा जाता परन्तु वहां तो दृष्टिका नामही नहीं है दृष्टि (अपेक्षा) तत्त्वको वे विचारें क्या जाने कि पदार्थस्वरूप में पूर्णता बिना उसके नहीं आती है। दृष्टितत्त्व तो पदार्थस्वरूपके साक्षात् दृष्टा स्याद्वादियोंके यहां ही मिल सक्ता है। उन्हींसे सेठीजीने उस तत्त्वको सुनो है और उसके अन्तस्तत्त्वको न समझ कर उसके सहारे जैनधर्मको संग्राहत्मक बतलाने की चेष्टा की है। अस्तु! सांख्यने पदार्थको नित्यमान कर गुण पर्यायात्मक पदार्थ स्वरूपका सर्वथा विपर्यास किया है। इसलिये उसका विचार एकदेशीय नहीं किन्तु विपरीत है एकदेशीय वह उसी अवस्था में होता जबकि वह पदार्थ किसी एक अंश तक ठीक होता वहां उसने पदार्थके

स्वरूपको उलटा ही बना डाला। क्योंकि गुणपर्यायों का विकाश पदार्थ में युगपत् होता है और दोनों का तादात्म्य संबंध है तदात्म्य संबंध होनेसे गुण ही पर्याय और पर्याय ही गुण ठहरते हैं इसलिये द्रव्यको गुण पर्याय समुदायात्मक अथवा गुणसमुदायात्मक अथवा पर्याय समुदायात्मक कहा जाता है तीनों बातोंका एक ही अर्थ है क्योंकि पदार्थका स्वरूप गुणपर्यायात्मक अथवा गुणात्मक अथवा पर्यायात्मक तत्वसे ही बना हुआ है। सांख्यमतने जिस नित्यताको स्थिर सिद्धान्त बनाया है वह पदार्थ स्वरूपका एक अंश भी नहीं है किन्तु उसका सर्वथा विपरीत रूप है। द्रव्यदृष्टिसे ही पदार्थ नित्य माना जा सका है परन्तु वह द्रव्यदृष्टि पर्याय दृष्टि को छोड़कर दृष्टि ही नहीं रहती विपर्यास हो जाता है। क्योंकि द्रव्यदृष्टि स्वयं पर्याय समुदायात्मक है इसी प्रकार पर्यायदृष्टि स्वयं द्रव्यांशरूप है। इसलिये इस दृष्टितत्वके अन्तस्तत्वको समझनेवाला कोई भी समझदार सांख्य मतसे स्थिर किया गया नित्यताके सिद्धांतको एकदेशीय एवं किसी एक दायरे तक भी ठीक नहीं कह सकता। बिना दोनों दृष्टियों को साथ लिये जो गमन करना है वह पदार्थ व्यवस्थाके विचार मार्गसे सर्वथा दूर है क्योंकि पदार्थ स्वरूप ही वैसा है। यदि कहा जाय कि सांख्य आगे नहीं बढ़ा है केवल नित्यांश तक ही उसका ज्ञानका विकाश हो पाया है इसके उत्तरमें समझना चाहिये जिस अंश तक वह नित्यताका सिद्धांत स्थिर कर सकता है वहां अंश तो अनित्य है। उसने अनित्यांश को नित्यांश समझकर उलटा विचार किया है। यही हाल सांख्यसे विपक्ष धारण करने वाला बौद्धमतका है। इन मतोंने पदार्थके एक अंशका विचार नहीं किया है किंतु उससे विपरीतरूपमें समझा है।

स्वतन्त्रताकी व्याख्या।

पदार्थके स्वरूपको नहीं छूनेवाले उस विपरीत कथनको एकदेशीय विकाश समझकर नहीं मालूम सेठीजीने किस युक्तिसे उसका संग्रह करने की चेष्टा की है? परन्तु जहां अनुभवसे व्यवस्था की जाती है वहां युक्तिबलको पूछता कौन है? जहां इतना बड़ा अनुभव हो जाता है वहां पुरुष उन्हें पूरा रहस्यज्ञ एवं शास्त्रमर्मी समझ कर उनके वचन विश्वासी बन जाते हैं। वचन युक्तिशून्य हैं या उसमें सहित हैं इस जगड्वालमें वे फिर अपने दिमागको कष्ट नहीं पहुंचाते। यद्यपि किसी बातके विषयमें अनुभव अनेक विद्वानों को हुआ करता है परन्तु वह शास्त्रीय अथवा लौकिक अथवा दोनों के प्रमाणोंसे सहित होता है। सेठीजी इसबातका खूब समझते हैं इसलिये उन्होंने पहलेसे ही इस युक्तिवादके झगड़े को उठादेनेके लिये अपने अनुभवके पूर्व "स्वतन्त्र" विशेषण लगा दिया है। अब इस उदार विशाल "स्वतन्त्र" अनुभवमें शास्त्रीय अथवा लौकिक युक्तियोंके ढूंढनेका कुछ काम नहीं रहा। जो महाशय सेठीजी के अनुभव को युक्तिशून्य समझकर उसे अविवेक पूर्ण एवं त्याज्य बतलावे वे पहले उनके पूर्व जुड़े हुए "स्वतन्त्र" विशेषणपर दृष्टि देदें। व्यर्थ ही एक अनुभवी विद्वान को युक्ति सहित विवेचन करनेकेलिये बाध्य न करें।

सेठीजीने ज्योतिष वैद्यक आदिके जो दृष्टांत दिये हैं वे भी विषम हैं भले ही ज्योतिषको जानकर सर्व ब्राह्मणों बुद्धिसे विचार करनेमें असमर्थ होनेसे उस ज्योतिषसे संबंध रखनेवाले वैद्यक विषयसे अज्ञात रहें परन्तु उस ज्योतिषको तो ठीक २ जानता है यदि ज्योतिषके विषयमें ही रातमें सूर्योदय (उलटा) बतलाता है तो उसके ज्ञानकी बलिहारी है। अल्पज्ञोंका ज्ञान वहीं तक ठीक समझा जाता है जहां तक कि वह यथार्थरीतिसे पहुंच जाता है। (अपूर्ण)

पश्चात्ताप।

कहलाता था विश्वमें मैं सबका सिर मौर।
किन्तु काल वश पाप, बश हुआ औरका और॥
हुआ औरका और दीन भिक्षुक कहलाया।
जो कुछ किये कुकार्य उन्हींका यह फल पाया॥
जिसका विस्मृत नाम हृदयको दहलाता था।
वही स्यार हो गया शेर जो कहलाता था॥ १॥

होता है संसारमें सदा, पतन उत्थान।
पदरज सुरगिरि होत है, सुरगिरि रेणु समान॥
सुरगिरि रेणु समान तनकमें हो जाता है।
अरु मदनका रंग पलकमें धो जाता है॥
हँसता है जो अभी वही क्षण भरमें रोता॥
है मनुष्य वह कौन सदा जो सुखिया होता॥ २॥

मरना तो संसारका, अटल नियम है एक।
चक्र प्रवर्तक हुए, उनकी रही न टेक॥
उनकी रही न टेक कालने ग्रास बनाया।
रहे देखते भ्रातृ पुत्र पितु जननी जाया॥
तो भी समझा नहीं मुझे है क्या क्या करना।
करलूं अपने कार्य अंतमें निश्चित मरना॥ ३॥

ईर्ष्यानलमें नित जला, किये सैकड़ों पाप।
दया क्षमाको छोड़ कर, दिया सदा सन्ताप॥
दिया सदा सन्ताप दीनको अश्रु बहाया।
हो घमंडमें चूर रोष आनन दिखलाया॥
बलसे मनुजत्व दिखाया हा पल पलमें।
आप जला फिर जगत जलाया ईर्ष्यानलमें॥ ४॥

धन पाकरके क्यों दिया, दीनोंको संताप?
देश जाति रक्षक कभी, किया न कार्य कलाप॥
किया न कार्य कलाप व्यर्थमें जनम गमाया।
स्वार्थ स्वार्थ यह मंत्र रहा पर काम न आया॥
दिया दैवने दंड दीन हालतमें धरके।
और सिखाया मुझे, करो क्या धन पा करके॥

मरना तो है एक दिन, इसकी क्या है भीति?
किन्तु खेद यह है यही, छोड़ प्रीतिकी रीति॥
छोड़ प्रीतिकी रीति वैर को मित्र बनाया।
नहीं दुःख परिपूर्ण दीन जनको अपनाया॥
कभी न चाहा न्याय नीतिसे पार उतरना।
इसी लिये तो दुःख पूर्ण होता है मरना॥ ६॥

बनना पड़े न धनिक अब मुझको बिना विवेक।
अविवेककी धनिकता पाप कुफल है एक॥
पाप कुफल है एक पापकी है यह माला।
इसके फंदे पड़ा नहीं पाता है त्राता॥
देश जाति हित छोड़ नहीं है इसमें बचना।
परहितको स्वीकार विवेकी निर्धन बनना॥ ७॥

यदि धन देता हैं, विधे तो देना सद्ज्ञान।
केवल धनकी प्राप्ति तो, है मदिराका पान॥
है मदिराका पान नशा जल्दी आता है।
कर्तव्याकर्तव्य भूलकर बह जाता है॥
मेरी प्रार्थना देव विधे यह शिक्षा लेना।
है या नहीं विवेक देखना यदि धन देना॥ ८॥

करता पश्चात्ताप हूं दुष्कृत्योंका आज।
क्षमा करो रक्षा करो प्रभो जगत शिरताज॥
प्रभो जगत शिरताज हृदय निर्मल करदो।
करो प्रफुल्लित हृदय पद्म रवि सम तम हरदो॥
निज कृत्योंसे नेत्र अश्रु ओसे है भरता।
समझ गया सज्ज्ञान बिना है धन क्या करता॥ ९॥

—न्यायतीर्थ दरबारीलाल जैन।

सामने कुछ खाली जमीन पड़ी थी। मेरी स्त्रीके प्रयत्नसे उसमें नित्य गुलाब, गेंदा बेल—चमेली आदि फूल खिला करते थे। उसमें मटरकी फली, चनाका साग, पोदीना आदि उत्पन्न होते थे। कभी किसी दिन मैं शाकमण्डीकी तरफ झांकता भी न था; पर रोज नये नये शाक मेरी थालीमें परोसे जाते थे। और अब ?—अब बनोइया रोज ५-६ पैसेका शाक लाता है, पर थालीमें वही आता—वही अपना कच्चा शाक पका आता है। आह ! कैसा आ गया है !

मैं जिस समय आंगन करके दुकानको रवाना होता उस समय अपनी सुकोमल करांगुलियोंमें दबा कर वह पानका बीड़ा देती और मुस्कराहटपूर्वक लज्जासे चिलिम्र हो मेरे चेहरे की तरफ प्रेमपूरित दृष्टिसे बार बार ताकती। अहा ! उस समयकी बातोंकी याद फिर आती है ! अब मुझे उसके इस प्रकार ताकनेका अर्थ समझमें आ रहा है कि अधिक देर तक वियोग होनेकी उम्मेद से ही वह मेरी आकृतिकी जी भर पान करनेकी कोशिश करती थी। मैं जिस समय दुकान बंद कर रात्रिको सोनेके लिये घर आता तो उस अकृत्रिम स्नेह भरित मूर्तिको संकेत मात्रसे ही दरवाजा खोलते पाता था। मानों मेरी आनेकी राह वह आंख गड़ाकर बहुत देरसे देख ही रही हो। मेरे घरमें प्रवेश करते ही उसके रोम रोम फूल जाते, वह मेरे हाथमेंसे थांड़ी, कंधेसे दुपट्टा उठा कर यथास्थान रखती और मुझे प्रसन्न देख प्रसन्न होती और उदास देख प्रसन्न करने की चेष्टा करती। तब 'प्राणप्रिये, 'प्राणनाथ' कहकर प्रसन्न करनेकी रीति न थी। पर अब ?—अब जो कुञ्चित-कुन्तला, अलकाञ्चला, त्रिलास चपला, दामिनी-हासिना भामिनी है उसे खूब गावेषणा पूर्वक विचार कर देखो, अपने स्वतंत्र-विचार-प्रवाहमें बहा कर देखो; जैसे जीमें आवे देखो; पर अब वह वैसी नहीं है। उसे देख कर मेरी पहिली स्त्री की कल्पना भी उसमें नहीं कर सकोगे। वह स्वाभाविक लज्जा वह बिना किसी टीका के आभूषणोंकी अपूर्व सुन्दरता, वह चन्द्रमाकी कलाके समान मनोहर मुखाकृति; अब इस आनन्द प्रमादमें ही, खेल कूद, शृंगारमें ही मशगूल और भोग विलासमें डूबी हुई औरतमें नहीं है ! यद्यपि वह आज जीवित होती, (यद्यपि शरीरसे है) यदि उसका शान्त—सौम्यमण्डित मुख एक क्षण भरके लिये भी आंखोंके सामने रखनेको मुझको ताकत होती, तो मैं बता देता कि उस जीवन और बिलासितामें कितना अन्तर है ! पर क्या करूं; मैंने खुद ही उसकी हत्या की है।

सुना है पानीमें डूबते हुए अधूरे जीवोंके [illegible] सुशीतल, शान्तिमय [illegible] इच्छा न होनेपर भी आंखें आप ही बन्द हो जाती हैं और मनोहारी स्वप्न दिखाई देने लगते हैं; इसीसे वह अन्तिम-निद्रा लेता है—[illegible] नहीं आता। आज मेरी भी हूबहू वैसी ही दशा है, केवल उस शीतल शांतिमय अनन्त निद्राकी ही अभाव है। मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूं कि एक मित्र सौनिक बहुत मेरे पास रख गये हैं। मैंने उन्हें कौतूहल वश अपनी स्त्रीके हाथोंमें पहिरा दिये। मेरी स्त्रीने हंसते हुए कहा—"पहिरा तो रहे हो; पर उतारने न दूंगी।" मैंने—"अच्छी बात है।" कह कर पहिरा दिये। उसने मुझे प्रणाम किया। मुझे चुप देख कर पूछा—'मुझे असीस नहीं दो ?' मैंने कहा—दी है।' उसने पूछा—'क्या ?' मैंने कहा—"बहुत अच्छी असीस दी है।" उसने पूछा—"क्या बताओ न ? जन्म जन्मान्तरमें तुम्हारी स्त्री रहूं ?"

मैंने कहा—" यह आशीर्वाद तो मेरे लिए ही हुआ, मैं जीवित रहूं ; तभी तो तुम मेरी स्त्री होवोगी !" मेरी स्त्रीने कहा- 'होने दो, इसके सिवाय और कोई अच्छी असीस मेरे लिए नहीं है ।" मैंने हँसते हुए कहा 'क्या ? हमेशा यही दासी वृत्ति ? यह नहीं होगा बिरला ! (मेरी स्त्रीका नाम बिरला है) जिस दिन तुम्हारे हाथमें ऐसे ही सोनेके खडुवे पहिरा सकूंगा, उसीदिन आशीर्वाद दूंगा ।' उसका मुंह कुछ उदास हो गया; उसने उत्तर दिया-"मैंने खडुवा उतारनेके लिए मना किया था, इसीलिए गुस्सा हो गये हो ? हंसो नहीं समझे? तुमसे कभी कुछ मांगा है ? —" कहते कहते उसकी आंखोंमें आंसू भर आये । मैंने उल्टा समझा । मैंने उसे अभिमान, समझा । मैंने कहा—" मांगती नहीं हो—यही तो दोष है ! तुम अगर खाते-पीते सोते-जागते मुझसे तकाजा करो—" बात पूरी भी न होने दी, उसने शिर झुका कर धीरे से कहा—" छिः, छिः !"

मैंने कुछ उत्तेजित हो कर कहा—" छि छि, नहीं, बिरला ! औरोंकी स्त्री स्वामीसे कितना तकाजा करती हैं, कितना उपद्रव करती हैं; पर तुमने एक दिन भी मुझसे कुछ नहीं मांगा ! तुम्हारे लहंगामें सौनो थेगरा लग जाने पर भी जब मैं कपड़ा नहीं लाता; तब भी तुमने मुझसे कपड़ा लानेके लिये कभी कुछ नहीं कहा—पर यह ठीक नहीं ! औरतों के तकाजेसे ही मर्द रुजगार करते हैं, नहीं; तो मुझ सरीखे—"

मेरी बात को रोककर बिरलाने कहा—"पर जिसके नहीं है, वह क्या चोरी करने जायगा ?" मैंने कहा—"क्यों ? तुम सरीखी लक्ष्मी जिसके है, वह चोरी करने क्यों चला ? ' उसके मुंह पर मानो एक छायासी पड़ गई । उसने कहा—" मैं तो बड़ी भारी कहीं की लक्ष्मी हूं ! कहते हैं, स्त्रीके भाग्यसे धन आता है । मेरा नसीबही खोटाहै, तुम क्या करोगे ?" मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया मुझे चुप देख कर उसने कहा—" क्या सोचते हो ? " मैंने कहा—'कुछ नहीं, कुछ लोग कहते हैं कि, उद्योगमें ही लक्ष्मी है ।' बिरलाने पूछा-'क्या दुकान छोड़ दोगे ?' हां, कुछ करूंगा' कह कर मैं अपने मित्रके पास चला गया; खडुवा फेरनेके लिए । बिरलाने एक गहरी उसांस ली; और वह अपने काम-काजमें लग गई ।

इसके पीछे कैसे क्या हुआ —यह मैं भी न समझ सका, पाठकोंको कैसे समझाऊं ?—मैंने दूकान उठा दी । माल-मसाला बेचकर एक सौ अस्सी रुपये अदा हुए । इन्हीं रुपयोंसे मैं कुछ हिन्दीके उपन्यास खरीद लाया; और समाचार पत्रोंमें अपना चटकीला विज्ञापन छपानेलगा । कुछदिनोंमें मैं एक प्रसिद्ध बुकसेलर हो गया । पूंजी होजाने पर मैं अपने आप ही पुस्तकें छपाने लगा । बंगलाके अच्छे अच्छे नाटक उपन्यास सब ही मैंने हिन्दीमें प्रकाशित कर डाले । पांचही वर्षमें मेरा नाम हिन्दी साहित्य संसारमें जरूरतसे ज्यादा प्रसिद्ध होगया । जैसे हो, मैं पांच वर्षमें ही लखपति हो गया; अर्थात् पहिले जिसकी मासिक आय बीस-बाईस रुपयेकी थी, उसकी पांच वर्ष बाद बीस बाईस हजारकी आमदनी हो गई ! ओः कैसा अराम है !

लोग रुपयोंकी तलाशमें घूमते हैं; पर आश्चर्य है रुपये ही मुझे खोजते फिरते हैं ! भूखोंकी क्षुधा, आतुरोंकी वेदना, अनाथोंकी पुकार और विधवाओंका क्रन्दन,—इन सबकी कुछ भी परवाह न कर रुपये मेरी ही आराधना कर रहे हैं ! मैं उन्हें लातोंसे ठुकराता हूं ! पर वे मुझे पूजते हैं ! लक्ष्मीकी कृपाके साथ साथ औरोंकी भी कृपा दृष्टि है, इसमें सन्देह नहीं ! स्त्रियोंकी

चर्चासे लेकर सम्पादकीय विचारों तकमें मेरी प्रशंसा गायी जाती है। आज मैं गण्य हूं मान्य हूं, धन्यहूं, सब कुछ हूं ! आज,लाटसाहबकी कोठी के सामने मेरी बिल्डिङ्ग सिर ऊंचा किये खड़ी है चार चार मोटरें दरवाजे पर खड़ी हैं, ड्याढ़ी पर बन्दूकदार दो दो संत्री पहरा दे रहे हैं। आज सबकी पार्टियां मुझे निमंत्रण देकर अपनेको धन्य मानता हैं; साहब-सूबोंके यहां मेरे लिये सीट 'रिजर्व' रक्खी जाती है ! अब मेरी स्त्री भी इन पार्टियोंमें शामिल होने लगी है। अब वह मोटर पर सवार हो—स्वास्थ्य रक्षाके लिये हवा खाने जाती है; काला-आदमीके सिवा मैम साहबोंसे हाथ मिलाती है और 'पियानो बजा कर गाने गाती है, बिरलाके मुंह से अंग्रेजी लब्ज सुनकर मेम साहब उसकी बड़ी तारीफ करते हैं। परंतु ये सब एक दिनमें नहीं हुआ। खूब आसानीसे भी नहीं हुआ। यह हुआ है;—अनेक प्रयत्नसे, बहुत परिश्रमसे, नाना युक्तियोंसे और बेहद खुशामदसे ! ओः कैसा आराम है !

सबसे पहिले, जिस दिन मैं अपनी बिरलाके लिये सोनेकी पचलरी बनवा कर लाया, और उसे अपने हाथोंसे बड़े स्नेह उत्साहसे पहिरा कर मन ही मन फूला न समाया, उसी दिन उसकी आंखोंमेंसे दो बूंद आंसू ढरक कर गालों पर मोतीसे चमकने लगे। बिरलाने पहिलेकी भांति एक साष्टांग प्रणाम कर, बड़ी मुश्किलसे इतना कहा-'आज मुझे एक भीख दो!' मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मैंने कहा—" यह क्या बिरला ! ऐसी दीनता क्यों ? तुम्हारे लिये ही मैं सब कुछ कर रहा हूं।"

बिरला—'यह जानती हूं; पर बहुत हो चुकी, अब जरूरत क्या है ? चलो, उसी पांच रुपये वाली झोंपड़ी में लौट चलें'!'

मैं—'क्यों ?'

बिरला—'मैं यह सब नहीं चाहती।'

स्त्रियोंको गहनोंसे अरुचि आज तक मैंने कहीं भी नहीं सुनी थी। बिरला की इस इच्छाने मुझे बहुत ताज्जुब हुआ। मैंने पूछा—' यह सब नहीं चाहती ? —तो क्या चाहती हो ?'

अस्तोन्मुख सूर्यकी भांति उसका खिन्न मुख लाल हो उठा। उसने बड़ी आसानीसे कहा—"मैं सिर्फ तुम्हें चाहती हूं।'

मैंने खूब जोरसे हंसकर उत्तर दिया—'अच्छी बात है; मैं कौनसा कपूरकी तरह उड़ा जाता हूं !'

उसने अपनी लज्जाभरी दृष्टिको मेरी तरफ डाल कर कहा—' अभी नहीं; पर अब उड़ोगे—और दो दिन बाद ही उड़ना शुरू करोगे। तुम्हारे मुखका पहिलेका नरम भाव अब कठिन होता जाता है। तुम्हारे सामने खड़े होनेमें मुझे अब भय मालूम होता है तुम्हें आयनेमें मुंह देखनेकी फुर्सत नहीं मिलती; नहीं तो देखते;-तुम्हारे सिर पर, कसौटी पर चांदीके दाग सरीखे जहां तहां सफेदी चमकने लगी है।'

मैं इस बातको नामंजूर नहीं कर सका। मैंने कहा-' चेहरा क्या हमेशा एकसा रहता है; बिरला ? मैं क्या बूढ़ा नहीं होऊंगा ?

बिरला-'होओगे क्यों नहीं ? उमरमें सब ही होते हैं। पर तुमतो अपनी ओरसे बूढ़े बनते हो। मेरी सिरकी कसम है; तुम मेरा कहा मानो !'

बातको हंसीमें उड़ानेके लिये मैंने कहा—' अरे बापरे ! कसम मैं किस तरह खाऊं ? मुझ तो रूखी रोटी भी हजम नहीं होती; खाते ही पेटमें गड़बड़ मच जाती है।

बिरला—'यही तो मैं कहती हूं। दिन पर दिन

तुम्हारी भूख घटती जाती है। चेहरा तो देखो; कैसा होगया है! पहिले दाल—रोटी ही खूब रुचिके साथ खाते थे; अब पचास तरहका व्यंजन भी तुम्हें नहीं रुचता! तुम्हारी खुराक गई, नींद गई —'

लिष्टको ज्यादा बढ़ते देख मैंने कहा— नींद गई-यह तुमसे किसने कहा ? तुम क्या सारी रात जाग कर मेरा नींदकी परीक्षा करती हो ?

बिरला-' दिल्लगी की बात नहीं है! जिसके जहां पीर होती है, उसका वहीं हाथ रहता है—नहीं जानते ? सबेरेकी होनमें जब कुछ नींद आती है, तब तुम सोनेकी खानि, हीरेकी खानि; कितने तरहके स्वप्न देखते हो और अपने आप न मलूम क्या बड़-बड़ करते रहते हो। रात-दिन तुम भूतोंके साथ घूमने-फिरते रहते हो। दिनमें कभी एक क्षणके लिये भी तुम घर नहीं रहते। और रातको मेरे पास रहते हुए भी, तुम इतनी दूर रहते हो कि; वहां तक मैं पहुंच ही नहीं पाती!'-इतना कह कर वह फूट फूटकर रोने लगी।

मैंने उसे आदरके साथ अपने पास बैठा कर कहा 'छिः छिः, गहने पहिन कर कितनी औरतें अपनेको धन्य समझती हैं, मनलब मानती हैं, अपनी सहेलियोंका मोंठा मुंह कराती हैं; और तुम रो रही हो ?

बिरलाने उसी तरह रोते रोते कहा—' मेरे रहते हुए रसोईया तुम्हारी रसोई करे, नोकर तुम्हारा काम करें, दासी तुम्हारे बिस्तर करे—यह सब मेरे लिए असह्य है। मुझे ऐसा मलूम पड़ता है; मानो तुमने मुझे त्याग दिया है!'—इतना कह कर फिर वह पहिलेकी तरह रो उठी। मैंने बिरलाको नाना तरहसे शांत किया। फिर उसने कहा—' सारेदिन मेरे लिए कुछ काम नहीं, यहां रहने से मैं पागल हो जाऊंगी। चलो यहांसे भाग चलें! इस मकानके चारों ओर आग सी जल रही है, मेरी सारी देह आगसे गल गई है।'

मैंने कहा-'भागेगी क्यों? मैं तुम्हे इतना काम दूंगा कि तुम भी उसमें डूब जाओगी।'

वह आश्चर्यमें मेरी ओर टकटकी लगा कर देखने लगी। मैंने फिर कहा—'सुनो! मैं तुम्हारे लिए एक मेम रख दूंगा वह तुम्हें लिखना पढ़ना सिखावेगी, अंग्रेजीमें बात कहना सिखावेगी, बुनना सिखावेगी, गाना बजाना सिखावेगी। तुम्हारा ऐसा मीठा स्वर बिना उपयोगके व्यर्थ जा रहा है—' बिरलाने मेरा मुंह दबा दिया। उसने कहा—'किसने कहा कि मेरा स्वर मीठा है?' मैंने मुंह परसे हाथ हटा कर कहा—' मैं जानता हूं, एक दिन छिपकर मैंने सुना था।'

बिरला—' हाने दो! मैं गृहस्थ के घरकी बहू हूं क्या होगा मेरा अंग्रेजी पढ़ कर—अंग्रेजीमें बात चीत सीख कर? मुझे तो साहब के साथमें बात-चीत नहीं करना है! यहां मैं कुछ भी न सीख सकूंगी। रातदिन मेरे मनमें आगसी जलती रहती है।'

उसके हृदयके भारी बोझ को हलका करनेके लिये मैंने हंसीमें कहा—'वहां भी तो मैं सारे दिन तुम्हारी चद्दरके छोरमें बंधा नहीं रहता था।'

बिरला—'सो क्यों? वहां मैं सारे दिन तुम्हारे काममें लगी रहती थी और शामको बाट जोहती रहती थी—कब तुम आवोगे। यहां मुझे किसीके लिये कुछ करना धरना नहीं! सब कुछ मानो मेरे लिये नवीन हैं, मैं किसी को जानती बूझती नहीं!—मानों मैं कहींसे बह कर आई हूं, और यहां आकर हिलग गई हूं। तुम्हारे पैरों पड़ती हूं—'हा हा' खाती हूं! तुम वहीं लौट चलो। वह घर, वह आंगन, वह फूलोंकी सुगन्ध! मेरे बाल बच्चे नहीं हुए—जब उन पेड़ोंमें पानी देती थी तब मुझे बच्चों को दूध पिलाने की

याद आजाती थी । चलो; अब क्यों ? मुझे आशासे अतिरिक्त बहुत कुछ मिल चुका है । तुम्हारी भी आशा पूर्ण हो गई !'

मैंने कहा—नहीं, बिरला ! मेरी आशा अभी तक पूर्ण नहीं हुई ।'

कुछ देर तक वह मेरी तरफ देखती रही फिर बोली आशा कभी पूर्ण नहीं होती । आशासे आशा बढ़ती ही जाती है । अगर तुम्हें आशा पूर्ण करनी है तो तुम अपनी बात याद करो,— एक दिन तुमने किसी बातमें कहा था कि आशा पूर्ण करनेके लिये निराशाको अपनाओ ! संतोषसे ही आशा मिटती है । आशा कभी पूरी नहीं होती, और न हुई है ।"

मैंने कहा—' मेरी आशा इतनी बड़ी नहीं है, जो पूरी न हो सके ! मैं सिर्फ इतना ही चाहता हूं कि, मेरे मित्रोंकी स्त्रियां जिसतरह सज धज के साथ रहती हैं तुम भी उसी तरह रहो और मुझे खुश करो । पर आज कल तो तुम ऐसी बन गई हो कि, बाल काढ़नेमें भी तुम्हें आलस है ।'

बिरला—'किसके लिए बालकाढ़ूं; शृंगार करूं ? जो देखने वाला है, वह तो रातदिन रुपयोंके धन्धेमें घूमता रहता है ।'

इसी सूत्रमें विषयको बांधनेकेलिए, मौका देख कर मैंने कहा— अच्छा, मैं जिसतरह तुम्हें सजाना चाहता हूं, वैसी बनकर देखो, अगर पांच आदमी तुम्हें प्रशंसाकी दृष्टिसे देखें—' बातको पूरा नहीं करने दी । 'छिः' कह कर उसने मेरी तरफ ऐसी दृष्टिसे देखा; जिससे मैं 'किंकर्तव्य विमूढ़' सा होगया । फिर भी मैंने पीछा नहीं छोड़ा । मैंने कहा—' बिरला ! मिसेस् सिन्हा, मि०गुप्त आदि जैसे इधर-उधर घूमती फिरती हैं, क्या मेरी भी इच्छा नहीं होती कि, तुम भी वैसी बन कर मेरी आशा-पूर्ण करो ?' इसके बाद फिर मैंने अति नम्र स्वरसे कहा—'मेरे लिए इतना कष्ट स्वीकार न करोगी, बिरला ?'

बिरलाने कुछ भी उत्तर न दिया गया । उसके हृदयके आंसू बाहर निकल पड़े । वह मनही मन रोने लगी । आज उन आँसुओंको याद करते हुए मेरी आंखोंमें भी आंसू आते हैं । ओः कैसा अनर्थ है !

आज मुझे अर्थात् मिष्टर सेठ्ठी को देख कर कोई (वैज्ञानिक ही क्यों न हो) पहिलेके उस निर्मलचंद्र जैन-की कल्पना नहीं कर सकता । एक ही आदमीके भीतर ऐसे विभिन्न व्यक्तिका विकाश देखनेमें आता है कि जिसे देख कर बड़े आश्चर्यसे कहना पड़ता है कि—'यह क्या बनी है !' मेरा मर्जीके सम्बन्धमें भी 'हू बहू' ऐसे ही एक लाउजुककी बात आ रही है । जो पहिलेकी उस पतिपरायणा, सेवापरायणा या गृहस्थके कामोंमें निपुण बिरलाको अपनी आंखोंसे देख चुके हैं वे अब उसे देख कर तीन हाथ पीछे हट कर कहते हैं— यह वही है ! वे चाहे जो कहें; पर मैं इस बातको खूब समझता हूं कि, यह वह नहीं है । मेरी बिरला को—मैंने अपने हाथों हत्या की है । एक दिनमें नहीं बल्कि पल पलमें उसके नसनसमें विष भरकर मैंने उसकी हत्याकी है !

संसारमें ऐसे अनेक पाप हैं; जो लोगोंकी दृष्टिसे छिप कर हुआ करते हैं । इनका परिणाम अत्यंत शोचनीय होता है; और उन्हें समाजदण्ड अथवा राजदण्ड स्पर्श तक नहीं कर सकता । रोग-शोक, दुर्दिन वा दुर्दैवके जरिये जब कोई इस क्षणभंगुर शरीरको जबर्दस्ती तोड़नेकीचेष्टा करता है तब कानूनके भीतर होनेसे उसका दण्डविधान होता है परंतु प्रलोभनके वशवर्ती हो जब कोई किसीके भीतरी मनुष्यकी हत्या

करता है, तब दण्ड-विधान कहां सोता रहता है ? खूनीको फांसीकी सजा दी जाती है, परंतु उन नीच स्वतंत्रता-प्रिय चाण्डालों के लिए कोई भी दण्ड नहीं, जो विषयलोलुपता के वशवर्ती हो दुर्मति-विष प्रयोगसे एक असहाय की अन्तरात्माका घात करते हैं ! मैं जो कई वर्षोंसे अपनी स्त्रीकी धीरे-धीरे हत्या कर रहा हूं, इस दुष्कृत्यके लिए समाजके सब ही समझदार सभ्यों या सुधारकोंने मेरी प्रशंसा की है-मुझे अपनाया है, मेरे इस आदर्श-कार्य (?) के लिए धन्यवाद दिया है। अः कैसा आराम है !

एक प्रकारका सौन्दर्य ऐसा होता है, जो यौवनकालमें ही कमलकी भांति खिल उठता है। मिसेस सेटही यौवनके उसपार पहुंच चुकी हैं। परंतु उस सुकेशा सुवेषा झलमलाती लताको देखकर समीक्षकके बापको भी कहना पड़ेगा कि, यह अनंत यौवना है। —जिस पार्टीमें मिसेस् सेटही न पहुंचें, उस पार्टीको बलिरां-पार्टी ही समझिये ! अब मेरी भी ताकत नहीं कि बिरला-को पार्टीमें जानेसे रोक सकूं। चाहे बीजली पड़े और चाहे प्रलय हो; मिसेस् सेटही पार्टियोंमें अवश्य शामिल होवेंगी।

आज ही की जिक्र है। मेरा शिर घूम रहा है, मुझसे पलंगसे उठा नहीं जाता; इसलिए मैं रजाई ओढ़कर सोनेकी चेष्टा कर रहा था कि, इतनेमें बिरला नहीं-नहीं; मिसेस सेटहीने अन्धकारमय कमरेमें प्रवेश किया। उसके प्रवेश करते ही खुशबूके मारे घर भर गया। मैंने उसे डरते हुए, बुलाया— बिरला !'

उसने मानो विरक्त हो कर कहा— 'वाह ! तुम यहां आरामसे रजाई ओढ़ कर सो रहे हो; और मैं उधर उधर ढूंढ़ती फिरती हूं !'

मुझे रोना आगया; बड़ी मुश्किलसे हृदयके आवेगको रोक कर कहा— 'आराम नहीं; बिरला ! आज मेरा बड़ी जोरसे शिर घूम रहा है' । —उसी पांच रुपये वाली झोंपड़ीमें भी एक बार मैं ऐसी पीड़ासे खाट पर लेट गया था; उस दिनकी शीतल हाथोंकी सुश्रुषाको याद कर मैंने वेदनामयी दीनतामें स्वरसे फिर कहा— मेरे पास जरा बैठ जाओ; बिरला !'

हाय ! उसने मेरी इस प्रार्थना पर जरा भी ध्यान नहीं दिया ! मेरी वीनतीसे उसको जरा भी तरस न आया ! वह कहने लगी—'वाह भूल गये क्या ? आज मिसेस् ब्यनार्गोकी पार्टी है; मुझे जल्दी जाना है।— भूल गई ! तुम्हें किसलिए खोजती थी ?—हां ! देखो; इस नेकलेस (हार) को देखते देखते लोगोंकी आंखें घिस गई हैं ! तुमने उसदिन जिस नेकलेसकी कही थी, उसे पहिर कर मैं लेडिस सोसियल में जाऊंगी !'

मेसस सी० हरबर्ट एण्ड को० के यहां जाकर देख आया हूं—इस नेकलेसकी कीमत १००००० एक लाख रुपये है ! मेरे मस्तिष्कके भीतर मानों एक एञ्जिन सा चल रहा था। मैं चुप-चाप पड़ा रहा। मेरी स्त्री समझती थी कि, इसने लाकर रक्खा ही होगा; और अभी उठकर देगा, परन्तु मुझे हलते न देख उसने घृणासे कहा-'चुपकी क्यों साध गये ? मुंहसे एक आध लब्ज तो खिसकाओ ! उठो, कपड़े-पहिरो !'

मैंने हताश होकर कहा- 'उठनेकी सामर्थ्य नहीं है; बिरला ! बड़ी पीड़ा हो रही है ! शरीर मुरझाता जाता है, उठने को जी चाहता है; पर शरीर- ,

बिरला- क्यों ? बोझा ढो रहे थे क्या ?

मेरी आखें आसूंसे भर गईं । हाय ! जो दूसरे का बोझ ढोता है, उसके लिये बोझ उतारनेकी जगह है। और जो अपना बोझ ढोता है उसके लिये वह भी

नहीं ! मिसेस् सेट्होने फिरसे मुझे पूंछा—'तुम क्या सच-मुच नहीं आओगे ?'

हायरे आशा ! मैंने फिर विमर्षी स्वरसे कहा—'आज तुम भी मत जाओ; विरला ! मेरे पास रहो ।'

विरला—'वाह ! सो कैसे हो सकता है ! आज मेरा गाना सुननेके लिये ही फिउडेटरी चीफ् (अर्थात् प्रधान जागीरदार) आवेंगे। सिड़ी-पन रहने दो उठो ! और अगर सच-मुच ही तुम्हारा सिर घूमता हो; तो क्या यहां पड़े पड़े आराम हो जायगा ? चलो बगीचेकी हवा खाते ही सब बन्द हो जायगा ।—अगर तुम न चलोगे; तो मैं वहां पर कैसे एक्सकिउज (छुटकारा) पाउंगी ?'

मैंने दुःखित हो कर कहा—'जो सच बात है; वही कहना। कह देना; उनकी तबियत ठीक नहीं थी ।'

विरला—'हायरे नसीब ! मुझे ही विश्वास नहीं होता; तो वे कैसे इस बात पर 'बिलिव' कर लेंगे ! सब मस्करी करेंगे कि, क्या मि० सेटही घरमें बैठे हुये सुन्दरियोंको फंसानेके लिये जाल बुन रहे हैं ?' यह कह कर मिसेस् सेट्ही मुझे उसी अवस्थामें छोड़ कर मच-मच शब्द करती हुई कमरेसे बाहर निकल गई ।

बस ! अब मुझे मालूम पड़ा कि, मैं निहायत अकेला हूं। मानो सहसा मैं किसी गहरे गड्ढेमें गिरपड़ा हूं; और साथ साथ मेरा मुंह भी बंद हो गया है; उसी अन्धकारमें मेरे प्राण कांप रहे हैं, और मैं तड़फ तड़फ कर खूब ओरसे चिल्ला रहा हूं; पर कोई सुनने वाला नहीं! मैं अकेला हूं, बिल्कुल अकेला हूं: किंतु तो भी मुझे खेद नहीं; क्षोभ नहीं। काहेका खेद और कैसा क्षोभ ? पहिले मैंने क्यों नहीं सोचा कि, हाथसे छूटा हुआ तीर अपना नहीं होता ? परंतु क्यों ऐसा होता है ? यह क्या अंग्रेजी-शिक्षाका दोष है ? हाँ हाँ, हजार बार हाँ ! इसी दुष्टिनीने मुझे, फिर मेरी विरलाको उल्टा रास्ता बतला कर दोनों को सत्यानाश किया है !! ओःफ्; कैसा आराम है !

आज मुझे बार बार खयाल आता है कि, इतना किया; सो किसलिए ? आज यह निरर्थक 'किसलिए' रह रह कर मेरी छाती पर शिलाघात कर रहा है। इतना कीया; सो किसलिये ? धन-सम्पत्तिके लिए ऐसा घोर परिश्रम; अविराम युद्ध; और इतनी दुश्चिन्ता क्यों ? इस इन्द्रतुल्य 'ठाट बाट्' की क्या जरूरत है ? तुम इसमेंसे कितना भोग करते हो, कितनेकी तुम्हें जरूरत है ? तुम्हारे चारों ओर सिर्फ अभाव की गर्जन है;—'नहीं है नहीं है; चाहिये चाहिये ! 'तुम इस अग्निराशिके ऊपर आराम-शय्या बिछाकर क्या बैठे हो ? नंगे आये हो, नंगे जाओगे—तुम्हारे साथ इस दुनियाका एक धूलिकणा भी नहीं जायगा;—फिर कुछ दिनके लिए ऐसा आडम्बर क्यों ?

सच है; क्यों व्यर्थका कूड़ा इकट्ठा किया ? सब ही कहा करते हैं कि, कारणके बिना काम नहीं होता। बताओ तो सही, मेरे इस जीवनका क्या उद्देश्य है ?—चौरासी लाख योनियोंमें भटके हुए इस निर्मल चंद्रने आज रुपयोंका ढेर क्यों इकट्ठा किया है ? अगर और कहीं इसका उत्तर देना पड़े; तो मिष्टर सेट्ही इसका क्या उत्तर देंगे ? दुनियामें जो मैंने झाड़ू देकर यह कूड़ा इकट्ठा किया है, वह किसके लिये ?

लोग समझते हैं कि, मिष्टर सेट्ही खूब ही मजेमें हैं; खूब सुखी हैं ! मैं भी यही समझता हूं। पिशाचग्रस्त नहीं जानता कि, उसे भूतने घेर लिया है ! वह यही समझता है कि, मैं खूब आराममें हूं। परन्तु भूतोंको भी रहस्य-ज्ञान होता है। क्षण भरके लिये जब कभी कभी वह अपना प्रभाव हटा लेते हैं, तब मनुष्य

को स्वाभाविक चेतना होती है। उससे मालूम हो जाता है कि, जिसे उसने अमृत समझ कर पान किया है, वह अमृत नहीं; बल्कि खून है! पर यह चेतना क्षण भरके लिए ही आती है।

"आज मुझे अच्छीतरह मालूम पड़ गयाकि, संसार में मैं अकेला हूं :- मेरा अपना कहनेको कोई भी नहीं है। "सभ्यताकी बाढ़" में बह कर मैं एक ऐसी जगह आ पड़ा हूं; जहां अन्धकार ही अन्धकार है। आःफ्! कैसा आराम है! *

चर्खा (रेंटा) चलाइए !

आजकल देशमें नौकरशाहीके साथ प्रतिनिधियोंका जो शांतिपूर्वक युद्ध चल रहा है उससे देशकी व्यापार नीतिपर असर पड़ा है। कर्मवीर गांधीजीने अपने बुद्धिबलसे भारतकी नष्ट भ्रष्ट सभ्यताको फिर एकबार जाग्रत करनेका बीड़ा उठाया है। पाश्चिमात्य सभ्यताके कट्टर पक्षपाती भी उनके उपदेशसे कायल हो अपने बापदादोंके भक्त होते जारहे हैं। जो कुछ दिन पहिले कोट बूट, पेंट हैट, घड़ी छड़ी लगाये पूरे साहब बने दिखलाई पड़ते थे, वे ही अब अपनी पूर्व वासनाका सर्वथा त्यागकर धोती दुपट्टा टोपी लगाये भारतमाताके सुपूत मालूम पड़ते हैं। जहां देखिये वहां ही, जिधर ताकिये उधर ही सर्वत्र पुरातन भारतीय सभ्यताका यशोगान व उसकी भक्तिमें प्रतिदिन दीक्षित होते हुये असंख्य नर नारी दीख पड़ते हैं। और जैसी आजकल हवा बह रही है उससे यही निश्चित होता है कि बहुत शीघ्र ही भारतमाताके सुखके दिन आनेवाले हैं।

गांधीजीने जो उपाय देशके लिये कल्याण दिखलानेवाले बतलाये हैं, उनमें विदेशी अन्य वस्तुओंका चाहे इसतमय व्यवहार त्याग हो सके चाहे नहीं; पर मेनचेष्टर इंग्लैण्ड लंकाशायर आदि विदेशोंके बने हुये कपड़ेका व्यवहार तो अवश्य ही बन्द करने योग्य बतलाया है। और वास्तवमें यह बात है भी ठीक। जितनी विदेशी वस्तु अन्यप्रकारकी हमारे काममें आती हैं व जिनके प्रतिदिन व्यवहार करनेके हम पैदी बन गये हैं, उनमें कपड़ा ही एक ऐसा है जो तत्काल उत्पन्न हुये बच्चेसे लेकर श्मशान भूमिकेलिये जानेवाले बुड्ढे तकके काममें आता है, जिसकी कमाईसे हमारा धन ले विदेशी धनवान और हम निर्धन हो रहे हैं। इसी वस्त्र व्यापारके माहात्म्यसे ही विदेशियोंने हमारे व्यापारको चौपट कर दिया, हमें जन-बहुल शहरोंमें रहनेको बाध्य कर दिया, हमारा ग्रामोंका वास छुड़ा दिया और हमारी अनाथ मा बहिनें जो किसीप्रकार इज्जतके साथ अन्य लोगोंकी पर्वा न कर अपना गुजारा कर सकीं, उन्हें भी सब तरहसे परमुखापेक्षी निहत्था बना डाला। विदेशी वस्त्रोंके व्यापारके चमकनेसे

* बंग-भाषाके सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत देवेन्द्रनाथ वसु महाशयके "निरुद्देश्य" नामक लेखके आधारसे यह आख्यायिका लिखी गई है। —लेखक।

पहिले हमारे भाइयोंको गावोंमें ही अनेक रुजगार थे। आश्विनसे प्रारंभकर चैत्र तक कपाससे लेकर वस्त्र बुनने तकमें हमारे भाई चिपटे रहा करते थे और उस परिश्रमसे असंख्य लोगोंका शरीर आच्छादनकर स्वयं लाभसे मालामाल हो जाते थे। जेठमासकी लम्बी लम्बी दुपहरियां और रसोई आदि नित्य कार्यों कर चुकनेपर जो समय मिलता था उसमें हमारे घरोंकी प्रायः समस्त ही स्त्रियां सूत कातने, रुई निकालने आदिके कार्योंमें लगी रहती थीं और इसतरह घरके भीतर बैठी ही बैठी वे काफी धन कमा लिया करती थीं। पर जबसे मिलोंके बने हुये पतले कमजोर कपड़े पहिनने लगे हैं तबसे हमारे सब ही काम चौपट हो गये हैं। स्त्रियोंको घरके भीतर करने लायक कोई कर्म ही शेष नहीं रहा है। वास्तवमें देखा जाय तो (और देशोंकी हम कह नहीं सक्ते पर) हिंदुस्तानका जो अहित इन कलपुर्जों आदिके बननेसे हुआ है वह बड़ा ही भयानक और भीतरीमारको खींचनेवाला हुआ है, हमें आजकल विधवा स्त्रियोंकी रक्षाके लिए उल्टे सीधे उपाय जो सूझ पड़ते हैं वे सब इन कल कारखानोंकी ही कृपाके फल हैं, नहीं भला पांच दश सेर कपास ओटकर, पाव डेढ पाव सूत कात कर, दश पांच सेर आटा पीसकर कौन स्त्री अपना पेट भरने लायक मंजूरी पैदा नहीं कर सक्ती? करती थीं; पर वर्तमानमें जब उन बातोंकी जरूरत ही नहीं है तब मिहनत करनेवालोंका क्या कसूर!

परंतु अब देशके शिक्षितोंका ध्यान इस तरफ आकर्षित हुआ है, वे अपने देशकी पूर्ववत् फिर अवस्था करना चाहते हैं। भारतके प्रायः अधिकांश लोग इस बातके पक्षपाती हो गये हैं और होते जाते हैं कि, हमें देशी हाथका बुना ही कपड़ा पहिनना चाहिये और देशका नष्ट व्यापार फिर जीवित करना चाहिये। जब यह बात है तब हमलोगोंका भी कर्तव्य है कि, उनके कार्यमें सहायता दें और अपना पहिलेका व्यापार फिर चालू कर सुखी बनें, और बनावें।

हमें वस्त्र बनानेके लिये यह बहुत ही आवश्यक है कि अपने चर्खी (रैंटा) चर्खारूपी अस्त्र जो भोथरे हो गये हैं, जिनमें मोर्चा लग गया है जिनके सैंटा न्यूटा पृथक् २ कार्यहीन होकर पड़े हैं, उनको फिर संभालें। उनका पुनरुद्धार करें। हमें चाहिये कि अब किसी प्रकारकी भी उपेक्षा न कर जो हजारों लाखों मन कपास घरोंमें बन्द पड़ी है उनको रैंटी लगवाकर उटवाना शुरू करें रुई जो निकले उसे धुनवावें और पोली बनवाकर सूत कतावें। कार्यको करनेके लिये यद्यपि पहले पहिल कठिनता पड़ेगी, क्योंकि इधर बहुत दिनोंसे इस कलका प्रचार उठास गया है, पर तो भी इस कामको जानने वाले बहुत हैं और यदि नहीं हों तो यह ऐसा कोई कठिन काम नहीं है जो सीखा न जासके। इस कामके करनेसे अपनाही नहीं अन्य हजारों आदमियों का पालन होगा। कपासका जो भाव मन्दा होगया है और उससे हमारे भाईयोंको जो घाटा पड़ा है वह रुई निकलवानेसे न होगा। रुई ओटनेमें जो पुरुष व स्त्रियां लग जांय वे परिश्रम फल पाकर अपना जीवन सुखसे व्यतीत करसकेंगे। रुईधुनने औरे पोली

बांधनेका परिश्रमफल धुनियाओं (कढेरों) को मिलेगा जिससे वे भी काममें लग जांयगे। रेंटा कातनेसे सूत तैयार होगा और जुलाहे (कोरी) या अन्य इस कार्यको सीख जानेवाले आदमी वस्त्र तयार कर अपना भली भांति निर्वाह कर सकेंगे इस तरह व्यापारके चेत जानेसे हमारे सैकडों भाई काममें लग जांयगे और हम भी आरामसे धनपैदा कर सकेंगे।

देखें ! इस लेखपर कितने आदमी इस कार्यको कर अपने नष्ट व्यापारको फिर अपने हाथमें कर लेते हैं। 'वस्त्र तयार होनेपर कौन लेगा ?' इस प्रश्नको तो कभी विचार में भी न लाना चाहिये, कारण अब करोडों आदमी उनके खरीददार पैदा होगये हैं।

विविध-प्रसंग।

अलीगढ़की जैन पाठशाला—बन्द है। यहांके भाईयोंको शीघ्र इसका काम चालू करना चाहिये। विद्या ही उन्नतिका मूल है, इसलिये वहांके मुखियोंसे निवेदन है कि, योग्य अध्यापक रख कर पाठशाला जल्दी खुलवावें।

हिरनपुर [आगरा] के भाइयोंकी—धर्मसाधन में कुछ शिथिलता सुन कर हमें बड़ा दुख हुआ। ला० सेतीलालजी आदिको चाहिये कि, वे लोगोंको धर्म साधनके लिये उत्साहित करें।

मामदी [आगरा] के जिनमंदिरमें—पूजन प्रक्षालनादिका कोई सुप्रबन्ध नहीं, यह कम खेदकी बात नहीं है। यहांके मंदिरजीका रुपया फिरोजाबाद के पंचोंके पास जमा है, इसलिये उनको रुपया देकर मंदिरजीकी मरम्मत करा देनी चाहिये। रुपये पंचोंके पास जमा रहें और मंदिरजीकी मरम्मत न हो, यह बड़े दुःखकी बात है। आशा है, फिरोजाबादके पंच ध्यान देंगे।

आरखी [आगरा] के मंदिरजीमें—दर्शन करने और शास्त्र सुननेकेलिये बहुत कम भाई आते हैं, यह बड़ी लज्जाकी बात है। दान, ध्यान तो दूर रहा! दर्शन तो प्रत्येक जैनीके बच्चेको रोज करना चाहिये! दर्शन करनेके लिए जो नहीं आते, उन्हें लोग समझावें और न मानें तो उन्हें पंचायती दण्ड दें। आशा है, ला० छेदालालजी, ला० निरमामलजी आदि इस पर ध्यान देंगे।

जौंधरीके भाइयोंकी—धार्मिक प्रवृत्ति ठीक नहीं है। आशा है, वहांके पं० जमनालालजी कुछ उद्योग करके भाइयोंका उत्साह बढ़ावेंगे। धर्म साधनसे ही मनुष्य भवकी सफलता है।

पचमान [आगरा] के भाइयोंका प्रमाद—हमें 'जैनगजट' से मालूम पड़ा है कि, पं० सोनपालजी उपदेशक दौरा करते हुये पचमान पहुंचे। और वहां सभा करनेका बहुत प्रयत्न किया; पर कोई भाई उपदेश सुनने नहीं आया ! यहांके मंदिरजीमें पूजन-प्रक्षालन का भी कुछ प्रबन्ध नहीं है ! जैनियोंके लिए यह बड़ी लज्जाकी बात है। आशा है, ला० सुखनंदनलालजी आदि इसका इन्तिज़ाम करेंगे।

कुछ दिन पहिले इसी गाँवके किसी भाईने अपनी लड़की बेची थी—यह पक्की खबर है। हाय ! जैनियो, तुमने अपने पुरखाओंका नाम डुबो दिया !

राजाकाताल [आगरा]—यहांके भाई जैन पाठशाला खोलना चाहते हैं ; पर ५) मासिकसे अधिक चंदा इकट्ठा नहीं होता, यही विघ्न है। आशा है, फिरोजाबादके भाई इसकी पूर्ति कर यशके भागी होंगे।

मांस खाना छोड़ा-पं० सोनपालजीके उपदेशसे रजावली [पटा] के शुभानी नामक एक मुसलमान मिर्जाने मांस खानेका त्याग किया ; और रात्रिमें अन्न न खाना कबूल किया। —नगलासिंकंदर [आगरा] के कुछ ठाकुरोंने मांस न खानेकी प्रतिज्ञा ली। औरोंको भी ऐसा करना चाहिये।

आपसकी फूट मिटी —पचोखरा [आगरा] के भाइयोंमें कुछ दिनोंसे आपसमें मुकद्दमा चल रहा था, हर्ष है कि—पं० सोनपालजीके उपदेशसे उन्होंने अदालतसे मुकद्दमा उठालेनेकी प्रतिज्ञा की।

उत्तरपाड़ा(बंगाल)—के जिन मंदिरजीके कुछ रुपये-वहींके ला० कालियानदासजी मौजीरामजीके पास जमा हैं; जिसकी ब्याज १) की है। करीब एक सालकी ब्याज इन पर बाकी है। मंदिरजीके कार्यकर्त्ताओंके बार बार मांगने पर भी वे ब्याज देनेके लिए तैयार नहीं ! यह अनुचित व्यवहार जैनियोंके योग्य नहीं। आशा है, लालाजी शीघ्रही इसका निबटेरा कर देंगे।

इसके सिवाय उक्त लालाजीसे सविनय निवेदन है कि, वे पहिलेकी तरह अब भी बट्टेके (रुपये बेचनेकी नफा) रुपये मन्दिरजीको दिया करें। क्योंकि जिस गद्दी पर वे बैठे हैं, उसके प्रतिष्ठाताकी यह प्रतिज्ञा थी कि, "बट्टेकी आमदनी मंदिरजी को देंगे।" आशा है, लालाजी इस बात पर ध्यान दे कर पुण्य लूटेंगे।

समाचार-संग्रह ।

सभा स्थापित हुई—सकरौली [पटा] और मारखी [आगरा] में 'जैन धर्म प्रचारिणी सभा' कायम हुई है। आशा है, और गांव वाले भी ऐसा करेंगे।

बड़ेलाट—अबकी बार लार्ड चेम्सफोर्डकी जगह लार्ड रिडिङ्ग बड़ेलाट हुए हैं।

आश्चर्य जनक घटनाएं-सुनते हैं कि, काशीमें २५ जनवरीको सुबह ८—९ बजेके करीब श्री १००८ पार्श्वनाथजी स्वामीकी प्रतिमा अपने आप हिलती रहीं ; और २८ जनवरीको हीरेकी प्रतिमाजीके ऊपर लगा हुआ छत्र भी करीब एक घण्टेतक हिलता रहा।

कलकत्तेमें—बहुतसी शराबकी दूकानें बंद हो गई हैं। यहांके स्वयंसेवक हर तरहसे प्रयत्न करके शराबियोंकी संख्या घटा रहे हैं।

कलकत्तेमें—२७ जनवरीसे ट्राम बंद है। हड़तालियोंका कहना है कि अगर तनखा न बढ़ावें तो उनका पहिलेका हिसाब चुका दें, वे अपने अपने घर चले जावेंगे। २० दिन हो गये अभी तक कुछ निबटेरा नहीं हुआ।

"खण्डेलवालजैनहितेच्छु"-नामका पत्र बम्बईसे शीघ्र ही निकलने वाला है। सुना है, इसके सम्पादक श्री० पं० पन्नालालजी बाकलीवाल होंगे।

मर्दुमशुमारी—१० मार्च १९२१को सरकारकी तरफसे मर्दुमशुमारी होनेवाली है। इसबातका ध्यान

रखिये कि उसमें जातिकी जगह " पद्मावतीपुरवाल" और धर्मकी जगह "दिगम्बर जैन" ही लिखाया जाय। इस बातको भूलियेगा नहीं, अपने सब भाइयोंको जता दीजिये।

अंदेश्वरी—तीर्थक्षेत्रमें दिगम्बरी और श्वेताम्बरी भाईयोंमें झगड़ा हुआ। खेद है!

तारीख १८, १९ और २० फरवरीको कलकत्तेमें एक कमेटी बैठेगी; जिसमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो तरफके पंच मिलकर आपसमें पूज्य श्री सम्मेद शिखर जीके मामलेका निबटेरा करेंगे। आशा है, इस कमेटीके बाद फिर दिगम्बर और श्वेताम्बर भाइयोंमें किसी तरहका झगड़ा न होगा; और यात्रियोंको किसी प्रकार की तकलीफ न होगी।

भारतवर्षीयदि० जैन महासभाका २५ वां वार्षिक अधिवेशन

उक्त महासभाका कानपूरमें तारीख १-२-३ अप्रैल मिती चैत्र बदी ९-१०-११ को श्रीमान् साहू सलेखचंद जी साहिब रईस, नजीबाबादके सभापतित्व में बड़े समारोहके साथ होगा। सब जैन बन्धुओंकी उपस्थिति प्रार्थनीय है। समय सन्निकट है, अतः महासभामें विचारणीय प्रस्ताव भेजें। और अपनी २ पंचाइतों, सभापतियोंसे प्रतिनिधि चुनकर शीघ्र नाम भेजिये प्रतिनिधि फार्म यहांसे मंगा लिजीएगा।

पता:-अमोलकचन्द उड़ेसरीय मन्त्री-महासभा

जंवरीबाग—इन्दौर।

पंडितों और समझदारोंसे सविनय प्रार्थना।

प्रार्थना इतनी ही है कि, वे हर महीने अपने अपने एक-आध लेख भेजा करें। और जिस गांव या शहरमें कोई नई बात गुजरी हो (अर्थात् जातिके लिए जो हानिकर हो) उसकी खबर हमें अवश्य दिया करें, जिससे उसपर विचार कर हम अपनी राय लिख सकें। इसके सिवा जातिके समस्त भाइयोंके सामने वह बात आजानेसे वे भी अपना विचार प्रकट कर जातिका कुछ भला कर सकेंगे। आशा है, इस बारकी प्रार्थना व्यर्थ न जायगी।

समालोचना।

'दिगंबरजैन' मासिकपत्र—यह सचित्रविशेषांक है। दि० जैन समाज को इसका परिचय देना व्यर्थ है। इतनी महगीमें भी कापड़ियाजीने इसे सुन्दर बनानेमें कसर नहीं छोड़ी। वार्षिक मूल्य भी अधिक नहीं; सिर्फ १॥) है। हिन्दी और गुजराती भाषा भाषियोंके लिए यह पत्र अत्यंत उपयोगी है। पताः "दिगंबरजैन" कार्यालय, चंदावाड़ी-सूरत।

"जैन सिद्धांत" मासिकपत्र—यह पत्र श्रीमान् पं० वंशीधरजीके संपादकत्वमें बहुत ही उत्तम निकलता है। हर एक जिज्ञासु या सत्य खोजीको इसका ग्राहक बनना चाहिये। इसमें 'हिन्दू व जैन धर्म' शीर्षक लेख हमें बहुत ही अच्छा लगा है। इसका वार्षिक मूल्य ३) है।

पता—

प्रकाशक—" जैनसिद्धांत "

श्रीधर प्रेस' शोलापुर।

जैन सिद्धान्तप्रकाशक (पवित्र) प्रेस, श्यामबाजार—कलकत्ता।

RED. NO.C. 888

पद्मावती परिषद्का मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल ।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा कविताओंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

विषय सूची ।

वर्ष. ३ अंक. १०

सूचना—

"जैनधर्म पर सेठीजीके विचार और उनकी आलोचना" शीर्षक लेख गत ९वें अंकसे छपरहा है, पाठक ध्यान और मनन पूर्वक इसे पढ़ावें। इस अंकमें पाठकोंके मनोरंजनार्थ स्थानाभावसे कोई गल्प या प्रहसन न दे सके, इसके लिये क्षमा प्रार्थी हैं। आगामी अंकमें इसकी पूर्ति होगी।

प्रकाशक ।

वार्षिक मू० २)

व्यवस्थापक—श्रीधन्यकुमार जैन. 'सिंह'

१ अंकका ≡)

जरूरी-सूचनाएं !

१-जिन महाशयोंके पास यह अंक नमूनेके बतौर भेजा जाता है उनके पास उत्तर न आनेसे आगामी अंक २=) की वी० पी० से भेजा जायगा इसलिये जिनको लेना मंजूर न हो वे कृपाकर मनाईका पत्र दे दें।

२-हम गतांकमें अपने प्रेमी पाठकों वा ग्राहकोंको यह बात जता चुके हैं कि, इस वर्ष करीब ४०० वी० पी० वापिस आनेसे, ग्राहकोंकी तरफसे इस पत्रको १००) रुपयेका धक्का लगा है। परंतु तौ भी हमने किसीको पत्र भेजना बन्द नहीं किया; वी० पी० लौटाने वालोंको भी बराबर अंक भेजते रहे हैं। परन्तु खेद है कि, बा० शिवनरायणजी छावडा कलकता, बा० पन्नालालजी सिवनी, ला० आहकुमारजी नारखी और ला० नंदराम वासुदेवजी निधौली—इन प्रेमियोंके सिवा और किसी सज्जनने वार्षिक मूल्य के २) अभी तक नहीं भेजे! जब किसी सज्जनने मूल्य नहीं भेजा तो लाचार होकर हमें १० वें अंकमें उनके पास "पद्मावतीपुरवाल" भेजना बंद कर देना पडा।

३-अब वी० पी० भेजनेमें ≡) लगते हैं, इसलिये ग्राहकोंको वी०पी० न मंगाकर मनीआर्डरसे ही २) भेजना चाहिये। ग्राहक चाहे जिस समयमें बन सकते हैं, इसलिये नये बननेवाले ग्राहकोंको १ ले अंककी बाट न जोह कर अभी ही २) भेज कर ग्राहक बन जाना चाहिये। होली तक ग्राहक बननेवालोंको पीछले १, २, ३, ४, ५-६ अंक मुफ्तमें मिलेंगे! शीघ्रता कीजिये!

४-हमारे पास पद्मावतीपुरवालके पुराने अंक कुछ बच रहे हैं, उनको हम एक आनेके हिसाबसे देना चाहते हैं। जिनको जितने अंक मंगाने हों, वे उतनेकी टिकट भेजकर मंगालें। पोष्टेजके लिये जुदा टिकटें भेजनी चाहिये।

रुपये भेजनेका पता:,—— मैनेजर "पद्मावतीपुरवाल"

८ नं० महेन्द्रबोसलेन, पो० श्यामबाजार—कलकत्ता।

पद्मावतीपुरवाल ।

मासिकपत्र

धर्मध्वंसे सतां ध्वंसस्तस्माद्धर्मद्रुहोधमान् । निवारयन्ति ये सन्तो रक्षितं तैः सतां जगत् ॥
कंटकानिव राज्यस्य नेता धर्मस्य कंटकान् । सदोद्धरति सोद्योगो यस्स लक्ष्मीधरो भवेत् ॥ (गुणभद्राचार्य)

[illegible] वर्ष } [illegible], पौष, वीरनिर्वाण सं० २४[illegible]७, ई० सन् १९२१ { १०वां अंक

परिताप ।

(१)

[illegible]-घन घिरते ही आ रहे हैं घनेरे ; इस समय न नीलाकाश भी दीखता है ;
उस परम पिताकी पूर्ण आभा नहीं जो; अवनि यह अँधेरा दूर होवे कहाँ से ॥

(२)

करवट रवि ने ली है महा-निर्दयी हो, रजनि अति कराला रूप लेके पधारी ।
शशि [illegible] छिपा है बादलों बीच जाके; उडु गण नभमें तो दीखते ही नहीं हैं ॥

(३)

सब जगह यहाँ तो छा रहा है अँधेरा ; अब कुसमय देखो ले रहा है बसेरा ।
सुपथ इस निशामें आज कैसे दिखेगा ; यह भव-निधि कैसे पार हा ! हो सकेगा ॥

(४)

मम हृद्-तलमें ये भावनायें अनेकों; विचलित करती हैं सर्वथा शान्ति मेरी ।
जिस विधि भवसे मैं पा सकूं मुक्ति स्वामी ! प्रभुवर ! तुम ऐसी ज्ञान-आभा दिखा दो ॥

—प्रेमनारायण भट्ट.

जैनधर्मपर सेठीजीके विचार और उनकी आलोचना।

(लेखक—श्रीयुत वादीभकेशरी पं० मक्खनलालजी न्यायालंकार, हस्तिनापुर)

(९ वें अंकसे आगे)

सभी सम्बन्धियोंके ज्ञानकी अपेक्षा, उसके तद्विषय ज्ञानकी सचाईके लिये आवश्यक नहीं है अन्यथा परस्पर कुछ न कुछ सभी पदार्थोंका सम्बन्ध होनेसे सबोंके ज्ञानकी आवश्यकता पड़ेगी। ज्योतिषका विद्वान् यदि ग्रहादिगतियोंको पूर्णपरिज्ञान रखता है तो उसे तद्विषयका यथार्थज्ञाता कहनाही चाहिये। उसके लिये सम्बन्धित वैद्यकज्ञान आवश्यक नहीं है। और न वह वैद्यकका विषय ही है। सेठीजीने खगोल, भूगोल, वैद्यक, गणित आदि सब विद्याओं का परस्पर सम्बन्ध बतला कर किसी एक विषयके ज्ञाताको एक देशीय ज्ञानवाला ठहराया है और उससे भिन्नमतोंके पक्षपातको पुष्ट किया है। अभीष्ट सिद्धि यह करनी चाही है कि अन्य मतोंके समान जैनधर्म भी झूंठा है। परन्तु इसमें पहली बात तो यह है कि जो पूर्णरीतिसे यथार्थ जानता है उसका उस विषयका ज्ञान एक देशीय नहीं किन्तु सर्वदेशीय है। यहांपर उन सूक्ष्म अविभाग प्रतिच्छेदोंका जिकर नहीं है जिन्हें कि कोई अल्पज्ञ जानही नहीं सकता है किन्तु लोकमतमें विख्यात विद्वत्ताकी दृष्टिसे समझनाचाहिये। जो जिस विषयको जानता है और यथार्थ जानता है तो वह उस विषयका पूर्णज्ञाता है लोकमें ऐसाही व्यवहार होता है। इसलिये वैद्यकादिके ज्ञानसे शून्य ज्योतिर्विदके ज्ञानकी तुलना भिन्न २ मतोंसे करना एवं ज्योतिर्विदके समान उन्हें भी एकदेशीय ज्ञानवाले बतलाना नितान्तभूल है। क्योंकि ज्योतिर्विद अपने विषयमें सत्यज्ञानी है। भिन्नमत अपने विषयमें सत्यज्ञानी नहीं हैं। जिसप्रकार ज्योतिर्विदका वैद्यकादि विषयोंमें दखल न होनेसे वह उन विषयोंका ज्ञाता अपनेको नहीं सिद्धकरता, उसप्रकार ये भिन्न २ मतवाले अपनेको अज्ञानकार नहीं बतलाते, किन्तु वे समस्त पदार्थोंकी समस्तशक्तियोंके ठीक २ ज्ञाता अपनेको बतलाते हैं। अर्थात् सभी पदार्थोंके निर्णय विचारक एवं सत्यज्ञानी वे अपनेको प्रगट करते हैं। यदि ऐसा न करें तो उनका कोई मतही नहीं बनसकता अधूरे विचारों के प्रगटकरनेपर किसीमतकी सिद्धि नहीं होसकती, वास्तवमें वे विचार अधूरे ही हों, फिर भी मतप्रचारक उन्हें पूर्णरूपमें प्रगट करता है एवं जनताभी उसे अपनी बुद्धिके आधारपर पूरा समझती है तभी उसपर चलनेके लिये तैयार होजाती है। अन्यथा यदि कोई यह कहे कि अभी ठहरो मैं निर्दिष्ट बातको पूरी खोज नहीं करसका हूं। तो जनता उसपर कभी विश्वास नहीं कर सकेगी। अतएव मतप्रचारककी दृष्टि में भी अधूरीखोज पूरी जचने लगती और उसपर श्रद्धा रखनेवाली जनताकी बुद्धिमें भी वह पूरी जंचती है तभी किसीमतका आविष्कार हो जाता है। इसी आधारपर आज सभी मत स्थिर हैं। यह बात कोई नहीं कह सकता कि उनके मतसे किसी बातका विचार छोड़दियागया है संसारसे लेकर मोक्षतक, नरकसे लेकर स्वर्गतक, मूर्त पदार्थसे लेकर अमूर्ततक, लोकसे लेकर अलोक तक, और अबसे लेकर अनादि और अनन्त तक सभी मत वाले अपनी कही हुई व्यवस्था ठीक बतलाते हैं। तथा उसीपर

श्रद्धा, ज्ञान, आचरण करने से जीवको सच्चा हित बतलाते हैं। परंतु पदार्थ को अनन्त शक्त्यात्मक बतलाने वाले सेठीजी भी यह बात नहीं कह सकेंगे कि सभी मतों में सच्चा हित हो सका है। अथवा सबों की बतलाई हुई पदार्थ व्यवस्था ठीक है। फिर ज्योतिषके ज्ञाताके समान इन्हें एक देशीय सत्यज्ञाताओं एक दायरे तक घूमनेवाले कैसे कहा जा सकता है। ज्योतिषका ज्ञाता ज्योतिषके दायरेमें ही घूमता है दायरे तक उसका ज्ञान सच्चा है वह वैद्यकादि दायरोंमें न तो अपना ज्ञाताही बतलाता है और न वह उन विषयोंमें प्रमाण है। यदि वह ज्योतिषके सिवा अन्यविषयों का जानता भी है तो उसका वह जानना उन विषयों का एक देशीय-एक दायरे तक ज्ञान है ठीक २ ज्ञान नहीं कहा जा सकता। और न ऐसा एक देशीय ज्ञान प्रमाण कोटिमें सम्हाला ही जाता है ज्योतिषके ज्ञाताके समान न ये मत-आविष्कर्ता एक देशीय ज्ञानवाले कहे जा सक्ते हैं और न ये ज्योतिर्विदके समान अपने विषयके यथार्थ विवेचक ही हैं ये लोग पदार्थकी पूर्णतातक अपनी पहुंच बतलाते हैं परन्तु यह पहुंच सर्वथा मिथ्या है। इसलिये इन्हें एक दायरेतक ठीक ज्ञानवाले जो सेठीजी ने समझा है सो ठीक नहीं है। यदि ये भिन्न २ आविष्कर्ता एक देशीयज्ञानवाले कहे जा सक्ते हैं तो वैसे ही कहे जा सक्ते हैं जैसे कि ज्योतिषका ज्ञाता भूगोल, खगोल, वैद्यिक विषयमें चञ्चुप्रवेशी है उसी प्रकार ये भी चञ्चुप्रवेशी हैं। ज्योतिर्विद जैसे अपने विषयको ज्ञाता है वैसे ये अपने विषयके ज्ञाता नहीं हैं। ज्योतिर्विद अपने विषयमें सर्व ग्राहिणीबुद्धिसे विचार करने वाला है साक्षात् ज्योतिषसे सम्बन्ध रखनेवाले गणित, ज्योतिष, फलित ज्योतिष, बिम्बबोध, कालबोध आदि विषयक सभी शास्त्रोंका वह ज्ञाता है अन्यथा वह ज्योतिर्विद भी पूरा नहीं है। वैद्यकादि उससे पर-पर सम्बन्ध रखने वाले हैं उनके विषयमें यदि वह नहीं जानता है तो उसे ज्योतिषका सर्वग्राहिणीबुद्धिसे अविचारक नहीं कहा जा सक्ता। क्योंकि भिन्न २ विषयकी सर्व ग्राहिणीबुद्धि उसी विषयको विषय करनेवाली होती है ज्योतिर्विदके समान ये मताविष्कर्ता अपने विषयमें सर्व ग्राहिणी बुद्धिवाले नहीं कहेजा सके क्योंकि उनका समस्त पदार्थ विषय है परन्तु वे उसके एक देशका भी यथार्थ बोध नहीं करपाते। ये लोग या तो पदार्थके एक अंशको ग्रहणकर उसीको उसका सर्व रूप समझते हैं या विपरीतरूप ग्रहणकर उसीको पदार्थरूप बतलाते हैं, दोनोंही प्रकार उनके, यथार्थ पदार्थबोधसे रहित हैं। परन्तु सेठीजीने उन सबको सत्य बतलाया है। वे लिखते हैं कि "ये सब अपने २ दृष्टिसे सत्य होते हैं मिथ्या एकभी नहीं।" इस सूक्ष्म एवं मूलतत्व विचारकों की सत्यताके विषयमें हम तो ऊपर बहुत कुछ स्पष्ट कर चुके हैं परंतु सेठीजी ही स्वयं "ये सब अपने २ दृष्टिमें सत्य होते हैं मिथ्या एकभी नहीं" इस पंक्तिके ऊपर ७-८ वीं पंक्तियोंमें लिखते हैं कि "इससे पूर्व तत्वदर्शी के अनुयायी जो प्रायः-अनुदार और संकीर्ण हुआ करते हैं नवीन ज्योतिको ग्रहण न करके प्रतिकूलता करते हैं आदि" सेठीजीकी इन पंक्तियोंसे तो साफ जाहिर है कि पीछेके तत्वदर्शियोंके विचारोंकी तुलनामें पहिलेके तत्वदर्शियोंके विचार प्रतिकूल होते हैं। दोनोंके विचारोंकी प्रतिकूलतामें किसी एकके ही विचार ठीक कहे जासके हैं, सबोंके नहीं। जैसा कि उन्होंने स्वयं पश्चात् विचारकोंको ठीक बतलाया है। फिर उनका सबोंका सत्य बतलाना और

मिथ्या एकभी नहीं कहना, कहां तक ठीक है ? हम सेठीजीके इस पूर्वापरविरुद्ध कथनमें किसको ठीक समझें ? मालूम होता है स्वतन्त्र अनुभवकी धुनमें मग्न रहनेसे उन्हें अपने पूर्वापर विरुद्ध कथनका भी कुछ ज्ञान नहीं रहा है। ऊपर लिखीगई पंक्तियोंके आगेही सेठीजी लिखते हैं कि " इनके मूल आविष्कर्ता हृदयसे झूठे कभी नहीं होते, जो कुछ उनको ठीक जंचता है उसे ही प्रगटकर देते हैं" । इन पंक्तियोंसे भी साफ जाहिर है कि उन मूल आविष्कर्ताओंके सिद्धान्त यदि झूठे भी हों तो भी उनका हृदय तो झूठा नहीं है जो कुछ उनको समझमें आया उसका उन्होंने प्रचार कर डाला। सेठीजीकी इन पंक्तियोंसे कैसा अच्छा अकाट्य युक्तिवाद टपक रहा है, ऐसी-ऐसी युक्तियोंके बलसे सबोंका संग्रह जैन धर्म अवश्य सिद्ध हो जायगा फिर इस उलट फेरके समयमें रूसके "जार" की तरह तीर्थंकरोंका आसन भी न रहेगा और सेठीजीका दल बोलशेविकोंकी तरह जैन धर्म के विशाल सिंहासन पर बैठे बिना न रहेगा। क्योंजी ! हृदयकी सचाईमें पदार्थकी सचाईका होना भी नियमित है क्या ? मूल आविष्कर्ता हृदयके शुद्ध अथवा सच्चे होते हैं ऐसा कहनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं परन्तु हृदय ठीक है इसलिये उनकी जांच भी ठीक है ऐसा नहीं कहा जा सकता।

पदार्थके अन्यथा कथनको हीं झूठ कहते हैं। ऐसा झूठ राग द्वेष और अज्ञानसे होता है। एक बालकसे गणितका प्रश्न किया गया कि १६ग ज गाढा प्रतिदिन गज भर फाड़नेसे कितने दिनोंमें फट जायगा बालकने उत्तर दिया कि सोलह दिनमें। बालकका हृदय बिलकुल साफ है और न वह हृदयसे झूठा ही कहा जा सका है प्रत्युत परीक्षामें सफलता प्राप्त करनेके उद्देश्यसे वह अपने उत्तरको हृदयमें सच्चा समझ रहा है परन्तु उसका आशय बुरा न होने पर भी उसका कथन गलत है। इसी प्रकार उन मूल आविष्कर्ताओंका आशय भले ही शुद्ध हो परन्तु अज्ञानवश उनकी कही हुई पदार्थ व्यवस्था ठीक नहीं है जो कुछ अपने हृदयमें जंच जाय उसे ही सत्य समझा जाय तब तो सचाईका लक्षण पूरा असंकीर्ण और उदार बन जायगा जिसके हृदयमें जो जैसा ठीक समझा जायगा। मालूम होता है इसी मन्तव्यानुसार सेठीजी जैनधर्म विषयक अपनी संग्रहात्मक जांचको ठीक समझते हैं और अपने हृयकी सचाईकी दुहाई देकर बिना युक्तिके केवल स्वतन्त्र अनुभवके आधार पर उस जांचको दूसरोंके गले उतारना चाहते हैं। आगे चलकर आप लिखते हैं कि ये लोग अपने समकालीन लोगोंका तथा पूरा तत्वदर्शियोंसे जो ज्ञान प्राप्त होता है उसको एक चित्त करके एकांत वा मतदृष्टिको त्याग करके विचार शृंखलामें लेते हैं और उसको सापेक्ष रूपमें अनेकान्त व नयवादसे प्रगट करते हैं इससे लोकका आग्रह दूर हो जाता है, हम सेठीजीसे जानना चाहते हैं जब उनके उपर्युक्त गहरे युक्तिवादसे संग्रहकर्ता ऋषभ देव या महावीरस्वामी आदि तीर्थकर्ता महात्मा मतदृष्टिका सर्वथा त्याग कर देते हैं और अनेकान्त या नयवादसे प्रगट करते हैं तो अनेकान्तका नाम जैनमत क्यों उन्होंने प्रगट किया ? क्योंकि लोकका आग्रह तो तभी दूर हो सक्ता था कि जब वे प्रगटकर देते कि जिसबातको वे कहरहे हैं वह सब मतोंमें कुछ २ अंश में ठीक पाई जाती है परन्तु पदार्थका वह एकदेश है इसलिये सबोंके एकत्रित करने से उसकी पूर्णता होती है परन्तु इसके विपरीत उन्होंने इस अनेकान्त यो नयवादका नाम जैनमत रक्खा, इससे तो लोकका आग्रह जैसा

भिन्न २ मतोंके नामसे बढ़ना है वह औरभी दृढ़ हो जाता है। यदि आप कहें कि तीर्थंकरोंने तो जैनमत के नामसे अनेकान्तको नहीं बतलाया है यह बात तो अतिमन्दज्ञानी आचार्योंने जोडदी होगी तो इसके उत्तरमें आपको समझना चाहिये कि ऋषभदेवको असंख्यकाल वीतजानेसे उनके समय की बातोंका शास्त्राधार से भी न निर्णय कर सकें तो न सही परन्तु महावीरस्वामीको तो कुल २४४७ वर्षही बीते हैं उनको सत्ता तो आपका पक्षपातीपी आधुनिक इतिहास भी स्वीकार करता है। महावीरस्वामीको भी आप संग्रहकर्तामहात्माओंमें बतलाते हैं फिर उन्होने अनेकान्त को जैनमतके नाम से क्यों कहा ? यदि उनको सिद्धान्त स्वतन्त्ररूपमें न होता और सब मतोंका संग्रह होता तो उन्हें लोकाग्रह हटानेकेलिये उसे संग्रहके नामसेही प्रगट करनाथा वह आजकलके " थियोसिफिकल" विचारोंके समान स्वीकार कियाजाता। कदाचित् आप कहें कि यह भी उन महात्माओं की एकान्तदृष्टि है कि उस संग्रहवादको किसी एकनामसे प्रसिद्ध किया। हम कहते हैं कि एकान्तदृष्टि नहीं उनकी सह एकान्त दृष्टि सही। परन्तु आपने तो उन्हें लोकाग्रह दूर करने वाले एवं मतदृष्टिको त्यागकरनेवाले अपने स्वतन्त्र अनुभवसे जाना है। फिर आप तो ऐसी शंका करही नहीं सक्ते और महावीरस्वामी का कथन तो जैनमतके नामसे प्रसिद्ध है यह बात आपके अनुभव और कथनसे प्रतिकूल पड़ती है इसका भी कोई उत्तर है ? उपर्युक्त कथन से यह बात भलीभांति सिद्ध होती है कि अनेकांतवादभी एक दर्शन है वह भी किसी एक नामसे प्रसिद्ध है। संग्रहात्मक वह नहीं है। यदि संग्रहात्मक होता तो " जैन " इस खास नामसे न कहाजाता। यहांपर पाठकोंको शंका पैदा हो सक्ती है कि जब अनेकान्त वस्तुस्वरूपको बतलाता है तो उसे किसी एक नामसे क्यों कहागया है ? अन्यदर्शन तो एक दृष्टितक पहुंचनेके कारण मतरूपमें प्रसिद्ध हुए हैं। अनेकान्त या नयवाद तो किसी मतके नामसे प्रसिद्ध न होकर केवल सद्वस्तुसंग्रह अथवा पदार्थ स्वरूप के नामसे प्रसिद्ध होता, उसे जैनमत कहकर अनुदार एवं संकीर्ण क्यों बनाडाला ? उत्तरमें निवेदन है कि अनेकान्तवाद स्याद्वाद जिनवाद तीनों पर्यायवाचक शब्द हैं। इन तीनों वादोंके वक्ताको अनेकान्त वादी, स्याद्वादी, जिनवादी [जैन] कहाजाता है। ऐसा कहनेका हेतु यह है कि अनेकान्त या स्याद्वाद वस्तुस्वरूप पड़ता है इसबात को हम पहले स्पष्ट करचुके हैं। अष्टकर्मोंको जीतनेवाले को जिन कहते हैं अर्थात् सबपदार्थ स्वरूप साक्षात्कर्ता सर्वज्ञको जिन कहते हैं। दूसरे शब्दोंमें पूर्ण उदार, असंकोच समीचीन साक्षात् विशाल दर्शीको जिन कहते हैं। जो समस्तवस्तुस्वरूपको समीचीन साक्षात् जाननेवाला है वही जिन है उन्हीका कथन अनेकान्तवाद, स्याद्वाद एवं जिनवाद के नामसे प्रसिद्ध है। इसी वस्तु स्वरूपात्मक अनेकान्तवाद या स्याद्वाद कथन को कहनेवाला मत जैनमत या स्याद्वादवादी मत कहलाता है इस कथनसे हरएक समझदार पुरुष के अनुभव में यह बात भलीभांति आजायगी कि जिस प्रकार अनेकांत या स्याद्वाद वस्तुस्वरूप विवेचक है इसी प्रकार जैनमत भी सर्वज्ञमत अथवा पदार्थ साक्षात्कारी मत है।

बौद्धादिमतों के समान वह किसी खास व्यक्ति का चलाया हुआ मत नहीं है उसे ऋषभदेव या महावीर स्वामी का मत कहना भी भूल है। और न ऐसा जैन शास्त्रोंमें कहीं उल्लेखही मिलता है। ऋषभदेव, महावीर स्वामी आदि नाम केवल लोक व्यवहारोंमें

छद्मस्थ पुरुषोंके रक्खे गये थे उन छद्मस्थानियोंने जैन-मत नहीं कहा है किन्तु साक्षात् दर्शी, वीतराग, सर्वज्ञ, अर्हंतदेवने कहा है। उस समय भी उन्हें महावीर स्वामी या ऋषभदेव जो कहागया है वह तो पहले के समान नाम निक्षेप से ही कहा गया है भाव निक्षेप से वे उस समय तीर्थंकर अर्हंत हैं। इसलिये तीर्थंकर प्रकृति का उदय तेरहवें गुणस्थानमें कहा गया है। नाम निक्षेप से नामानुसार किसी कामकी सिद्धि नहीं होती। भाव निक्षेप से ही कार्य सिद्ध होता है। इसलिये जैनमत ऋषभदेव महावीर स्वामीका मत नहीं किन्तु सर्वज्ञ, अर्हन्तका मत है। सर्वज्ञ अर्हन्त सदा से होते आये हैं। क्योंकि जबसे संसार है तभीसे जीवोंके ज्ञानका विकाश है संसार अनादि है। ज्ञान विकाश भी अनादि है। वर्तमान समय के पूर्णज्ञान विकाशवाले सर्वज्ञ अर्हन्त ऋषभदेवादि महावीर स्वामी पर्यन्त चौवीस तीर्थंकर इस क्षेत्र में हुए हैं पहले अर्हन्तोंके समान इन्होंने भी उसी प्रकार पदार्थ स्वरूप अनेकान्तमत जैनमत कहा है इसलिये लोकव्यवहारार्थ उस जैनमत या अनेकान्तमत को ऋषभदेव या महावीरस्वामीका मत कहदिया जाता है, लोक व्यवहारमें ऐसा कहा भी जाता है। जो जिस समय राजगद्दी पर बैठता है उस समय सब राजनीति उसीके नामसे प्रख्यात होती है। यद्यपि वही राजनीति उस कुलमें बहुत कालसे चली आती है नवीन वंशज राजा उसे उसीके अनुसार चलाता है फिर भी उपस्थित राजाके नामसे ही उस नीतिका जनतामें प्रचार होता है। इसी प्रकार ऋषभदेव, महावीर स्वामी को वर्तमान समयके जैनमत का नायक समझना चाहिये। जैनमत गद्दी सदासे चली आती है। वह वस्तु स्वरूप विवेचक सच्ची नीति है। उसका अभाव कभी हो नहीं होसका। क्योंकि वस्तु सदा अनादि निधन है। जैन मत की गद्दीके वर्तमान संचालक वर्तमान तीर्थंकर हैं। राज्यगद्दी व्यवहार कार्य है उसमें परिवर्तन स्वयंया दूसरों द्वारा हो सकता है और होता है। परन्तु इस सर्वज्ञ प्रणीत धर्म सिद्धान्त में कभी किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होसक्ता।

सेठाजी अब "जैनमत संग्रहीत है।" अपने इस स्वतन्त्र अनुभवको सर्वथा मिथ्या एवं पदार्थ स्वरूपसे विपरीत अनुभव समझ कर तत्काल शास्त्रीयमार्गानुकूल की ओर अपनी बुद्धि को लेजायगे। ऐसी हम आशा करते हैं। जैनमतके सिद्धान्त स्वतन्त्र सिद्ध हैं। इस विषय में एक प्रखर जैनेतर विद्वान का अनुभव अभी पौष कृष्णा ५के "अहिंसा" में प्रकाशित हुआ है उसके कुछ शब्द हम यहां उद्धृत करते हैं। उनसे सेठोजी अपने मन्तव्यकी परीक्षा करले। (क्रमशः)

मुंशीजीका उत्तर।

महाशयजी आपके सातवें अंक पद्मावती पुरवाल में जो खुली चिट्ठी शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है, उसका प्रतिवाद कतिपय कारणवशात् मैं न दे सका परन्तु अब मैं लिखता हूं—

[१] प्रथम तो जैन पाठशाला फीरोजाबादकी उन्नति विषयमें थो। मैं उद्यम यथाशक्ति स्वयंकर रहा हूं और दूसरोंसे भी उन्नति करानेकी चेष्टा नित्य प्रति कराता रहता हूं। स्मरण रहे कि उन्नति क्रमगत

होती है, एक साथ नहीं होती है। सम्प्रति एक अध्यापक उक्त पाठशालामें बढ़ा दिया गया है ७५ विद्यार्थी इस समय विद्याध्ययन करते हैं। और मैनेजर पाठशाला [श्रीमान सेठ श्रीधर लाल जी] साहबकी सम्मति और भी उच्चशिक्षा देनेकी दी है उसके प्रत्युत्तरमें मैनेजर साहब पाठशालाने सहर्ष वचन दे दिया है। पहलेसे अधिकांश उन्नति हो गई है। यह आप लोगोंकी कृपा होनेका फल है कि उक्त पाठशाला साधारण जैन और अजैन वरन सरकारी दृष्टिमें भी स्थान पाने लगा है।

[२] द्वितीय आप महानुभावोंने मेरी परिचर्या [नौकरी] परित्याग [छोड़ने] को समस्या प्रकटकी है। यह मैं भी उचित समझता हूं सचतो भाव त्याग के उद्यत हो रहा हूं ५ जौलाई सन् १९११ ई० तक अवश्य ही छोड़ दूंगा इस समय मुझको ६०) रु० मासिक वेतन मिलता है और जो जो कार्य आप मेरे लिये नियत करेंगे उनके करनेकेलिये तैयार होऊंगा परन्तु जैसे मंदिरके ऊपर कलशारोपण होनेसे मंदिर की शोभा बढ़ जाती है। एवं आपसे भी मेरी सविनय प्रार्थना है कि आप भी सब विद्वान नेतागण सालमें एक एक मास अपने निज कार्य मुक्त करके वहरतरह से यहां आकर सहायता और कार्य सुधारकी प्रणालिया समझा कर अन्तःकरणसे सुदृढ होकर मेरे हृदयको संतुष्ट करनेका वचन देवें। और अपने अपने शुभ नाम इसी पत्र के दूसरे अंकमें मुद्रित करा देवें मुद्रित ही नहीं करा देवें बल्कि यह वचन भी लिख देवें कि इस कार्यमें तन मन धनसे हम तैयार हैं। और कभी अपने वचनसे शिथिल न होंगे तो आशा है कि सूखा हुआ पद्मावती परिषद् रूप पौधा हरा भरा हो जावेगा, फूलेगा फलेगा, उन्नति होना अन्यथा समझमें नहीं आता।

नोट—मैं लाला बाबूरामजी साहब टिकट कलेक्टर राजामंडी-आगराको धन्यवाद देता हूं कि आपने स्वयं कार्य त्याग सच्चे मनसे १ मास परिषद्का कार्य्य करने का वचन दिया है। आपको यही स्वीकारता पद्मावती० पत्रमें भी मुद्रित कराने का भेज देनी चाहिये।

(३] तीसरे आपकी चिट्ठीमें मेरे धनका सदुपयोग न होनेका उपलम्भन था उसका उत्तर यह है।

कि ५५१ रु० मेरी पुत्री धनवन्ती बाईने अपने मरण समय विद्यादानमें वितीर्ण किये थे और ५२५) रु० मेंने वितीर्ण किये थे इन रुपयोंमेंसे मैंने अपनी वकफशुदा जायदाद एत्मादपुरके जो चबूतरा लम्बे सड़क कला था उस पर मैंने एक दूकान बनानेकी इच्छाकी तो गवर्नमेण्टने रोक दिया कि यह जमीन सरकारी है। यह मामला छ महीने चला उसको महान प्रयत्न पूर्वक ६०) रु० में सरकारसे बिक्री नामा करा लिया है। शेष रुपयोंसे एक दूकान बनानेकी उसी चबूतरे पर कोशिश हो रही है। दूकान बनने पर ५) पांच रुपयेके करीब उसका मासिक किराया आने लगेगा और उसकी आमदनी विद्या-दानमें खर्च की जायगी। उपरोक्त लेखानुसार के सिवाय मैं निरंतर अपने धनका और भी कई प्रकारसे सदुपयोग कर रहा हूं। इस कार्यमें कोई भी मेरी लघु बुद्धिमें अयोग, किम्वा दुरुपयोग नहीं प्रतीत होता यदि कहींकोई भूल हो तो कृपया अनुग्रहीत कीजियेगा। मैं यो जातिय सेवा कार्यमें किसी भांति त्रुटि नहीं कर रहा हूं-मसल मशहूर है कि अकेला चना भार नहीं फोड़ सकता। अगर आप इसमें समय समय पर और भी उपदेश व सम्मति देते रहेंगे तो मैं आप लोगोंका अति ही कृतार्थ होउंगा।

जातीय सेवक
मास्टर बंशीधरजैन
फिरोजाबाद-आगरा

प्रकाशका धुंधलापन।

जैनमित्रके अंक १४ पृष्ठ संख्या २११में बा० माणिकचंद्रजी वेनाड़ाके नामसे 'भारतीय जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्था कलकत्ता पर कुछ प्रकाश' शीर्षक एक लेख छपा है। वह प्रकाश वास्तवमें प्रकाशक है या उसके भीतर धुंधलापन भरा हुआ है। जिससे कि जैन समाजके शुभचिंतकोंके हृदय पर उससे प्रकाशके बदले अंधकार छा जावेगा यही निर्णय करना इस लेख का उद्देश्य है।

सबसे पहिले बाबू साहबने संस्थाके महामंत्री पं० पन्नालालजी बाकलीवालके स्तीफा पर खेद प्रगट करते हुये कुछ व्यंग किये है और बाकलीवालजीने स्तीफा क्यों दिया है? इसके कुछ कारण प्रगट किये हैं हम उन कारणोंको अपने आठों पहरके सहवाससे सत्य नहीं समझते और मुख्य कारण क्या है इसको हम विशदरीत्या न लिखकर यही केवल लिख देना उचित समझते हैं कि—बाकलीवालजीने जो संस्थासे स्तीफा दिया है वह उक्त बाबूसाहब, उनके लघुभ्राता और अपने भतीजे छगनमलजी बाकलीवाल तथा नाथूरामजी प्रेमीकी प्रेरणा व कोशिशसे दिया है। प्रमाण स्वरूप हमारे पास वे पत्र मौजूद है जो इधर कुछ दिनोंसे छगनमलजीने उक्त अपने निकट संबंधिओंकी प्रेरणा व सम्मतिसे बाकलीवालजीको लिखे थे। यद्यपि उन पत्रोंको प्रकाशित करनेकी हमारी इच्छा नहीं है तो भी आवश्यकता पड़ने पर उनको प्रकाशित करनेमें हम न चूकेंगे।

स्तीफामें बाकलीवालजीने 'संस्थाकी हानि लाभका हमको जिम्मेवार बताया है और अपनी जगह पर संस्थापक दानी सहायक लाइफमेम्बर आदिको अन्य मनुष्यको चुनने न चुननेका अधिकार प्रगट किया है' जिससे स्पष्ट झलकता है कि पिछले एक वर्ष और जब तक अन्य महामंत्रीका निर्वाचन न हो तब तक भी हम दोनों इसके जिम्मेवार हैं परंतु इस प्रकारका निर्विवाद मार्ग रहते हुये भी बाबूसाहबने यह लिख मारा है कि आगे ये लोग ही इसका कार्य चलावेंगे और इसी पर अपने भीतरी अभिप्रायकी नीव डालकर ऊटपटांगोंका बड़ा भारी मकान खड़ा कर दिया है।

बाकलीवालजीने क्यों स्तीफा दिया है इसका प्रमाणीक उत्तर हम ऊपर लिख चुके है और उनकी सत्यता का पता वेनाड़ाजीको भी है परन्तु बाकलीवालजीने जो अपने स्तीफा देनेके कारण बताये हैं उनमें मुख्य तथा हम लोगोंके साथ मतभेद—मनो मुटाव ही लिखा है। उसके दो एक कारणोंका दिग्दर्शन भी कराया है।

उत्तरमें हम इतना लिखदेना अपना फर्ज समझते हैं कि—बाकलीवालजीके साथ हमारा कोई अपरिहार्य मत भेद नहीं हुआ उनने जो मकान बनवानेके विषयमें मतभेद होना लिखा है वह एकदम ठीक नहीं है। यों तो अपनी २ बुद्धि के माफिक सबही तर्क वितर्क करते हैं, पूर्व पक्ष उत्तर पक्ष लेते हैं लेकिन जिसकी युक्तियां अकाट्य, हृदयग्राहिणी और लाभदायक होती हैं उसीका मान्य और कार्यपरिणत की जाती हैं। असली बात यह थी कि—आजसे तीन वर्ष पहिले जबकि संस्था इस (वर्तमान) मकानमें आई थी उस समय यहां श्यामबाजारकी आबादी बहुत ही कम थी, १५-१६ कमरे और दो चौकका दुतला मकान हमको उस समय ६३) रु० मासिक भाड़े पर मिलगया

था जिसमें संस्थाको ४५) रु० सिर्फ देने पड़ते हैं * लेकिन समयकी कृपासे भाड़ा दिनपर दिन बढ़ता ही गया और उसका असर हमपर भी आया। यद्यपि रैंट बिल पास होजानेके कारण साधारण मकानोंका भाड़ा नहीं बढ़ाया जासकता तथापि जिसके रहनेसे किसी प्रकारकी मकानको जोखम पहुंचती हो उसको उठाया जा सकता है इसलिये मकान-मालिकने हमको गतवर्ष चैत्रमासमें उठ जानेका नोटिस दिया। हमने उस नोटिसको तो महामंत्रीजी व परम संस्थापक संरक्षकजी के पास भेजदिया और स्वयं अन्य मकान खोजना प्रारंभ करदिया हमने कई महीने कोशिशकी परंतु छापाखाने लायक मकान जैनमंदिरजीके पास एक २ मील चारोतरफ कहीं न मिला। दोएक नवीन मकान जो देखे उनके कमरे छोटे २ थे और भाड़ा २५०-३०० रु० मासिक था इसलिये भाड़ेके मकानका तो प्रस्ताव यों रद्द हुआ अब लीजकी (भाड़ेपर) जगह खोजनी प्रारंभ किया जिसे लेकर टीनका मकान बनवा कर प्रेस चलालिया जायगा और ग्रंथोंके लिये दूसरा मकान लेलेंगे ऐसा विचार हुआ तो वह दो तीन वर्षसे अधिक दिनके लिये देने पर कोई राजी न हुआ और कमसे कम दश पांच वर्षको विना लीज लिये लाभ होता न देखा तो यह भी विचार बदल देना पड़ा। अब सबसे अंतमें निजी जमीन खरीद कर उसपर टीनका मकान बनानेका विचार किया गया इसके लिये अनेक पत्र व्यवहार करने पर संस्थाके संस्थापक और संरक्षक जीने ही आठ आना सैकड़ाकी ब्याज पर पांच सात हजार रुपया देना कबूल किया इस तरह आजसे छह सात मास पहिले ही जमीन लेनेका सब बखेड़ा तय हो गया होता परंतु 'भवितव्यता भी कोई चीज है'। संरक्षकजी पूना पहुंचे और वहां उन्हें एक संस्थाके चिर—शुभचिंतकजीसे साक्षात् हो गया और इधर चाकलीवालजी भ्रमण करते बंबई पहुंचे, वहां उनको भी उक्त शुभ चिंतकोंने अपने पंजेमें फंसा लिया। इस प्रकार हमारे अनुकूल लोग प्रतिकूल किये गये और संस्थाकी चिरस्थायितामें कंटक बोये गये। बंबईमें जब संरक्षकजी और महामंत्रीजी दोनोंका संयोग हुआ तो एक एक ग्यारहकी कहावत चरितार्थ हुई और संस्थाके भवनका विचार सर्वथा चौपट हो गया।

लेकिन ये सब तो दूर देशोंमें बैठे थे और मकान वालेका नोटिस पर नोटिस, डाट डपट आदि सब हमें यहां सहना पड़ता था इसलिये हमें शांति कहां थी? हमने और भी अपनी बुद्धिके अनुसार उपाय किये और ऊपर बतलाये गये तीन उपायोंमेंसे किसी एकको ढूंढनेका सब तरह दलाल आदिकी मारफत प्रयत्न करना जारी ही रक्खा। बंबई होते हुये चाकलीवालजी जब यहां आये तो जो उन्हें बंबईमें बातें सुझाई गईं थी उन सबका उत्तर दिया एवं भाड़ेके मकान, लीजकी जगह और खरीदनेकी जमीन आदि सबकी रिपोर्ट सविस्तर समझा कर साथमें न अन्यहृदे खोजनेका प्रयत्न किया। आखिर चाकलीवालजी भी हमारे विचार ही पर आ गये एवं उत्तरपाड़ा वाली आदि कलकत्ताके बाहिर तक जमीन आदिकी तलाशी की गई और रुपयोंके लिये उनके साथ ही जाकर सेठ किशोरीलालजीसे प्रबंध करनेकी पक्कीबातकी गई। इसके बाद चाकलीवालजी आसाम निजी कामके लिये चले गये और पूर्वोक्त महाशयोंने उन पर अपना दवाव डालना फिर प्रारंभ किया एवं उनको स्तीफा देनेके लिये भी मजबूर कर दिया।

इस इतिहाससे पाठकोंका समझमें भलीभांति आ जायगा कि स्तीफा देनेके कारण और हमारे साथ म-

* हम दोनोंसे १२] और दो भाइयोंसे ७] इस तरह १९) भाड़ेके आते हैं।

तभेदके प्रकाशनकी बातोंमें कहां तक सारवत्ता है ? बाबू साहबने आज कलकी सभ्यताके नाते हम पर खुश होते हुये एक बात बहुत ही खूब सूरत कही है और वह यह है कि "संस्थाका ग्रंथ संपादन और संशोधनका काम तो ये ही पंडित करें पर इनकी संरक्षकता किसी निस्वार्थ अनुभवी मनुष्यको दी जाय । इसमें आपने युक्तिवादका सहारा लेते हुये यह लिखा है कि 'जहां तक हम जानते हैं उक्त दोनों पंडित महाशय संस्थाके वेतन भोगी कार्यकर्ता हैं, और काफी तनखा लेकर संस्थाका काम करते हैं । ऐसी अवस्थामें उन्हीके भरोसे पर इतनी बड़ी संस्थाका कार्य छोड़ देना ठीक नहीं ।"

बैनाड़ाजीने हमारे लिये जो अपने हृदयके उद्गार निकाले हैं उनके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं पर इतना लिख देना उचित समझते हैं कि जैसा आपने वेतनभोगी होने मात्रसे स्वार्थी और अविश्वास करने योग्य बतलाया है उससे आपके भोलरी हृदय और विवेकशालिनी बुद्धिका खासा परिचय मिल जाता है । संस्थाका जन्म नौ वर्षसे हुआ है और तभीसे हमारा इसकी सेवा करनेमें हाथ है । बाकलीवालजी हमारी विद्यार्थी अवस्थामें पत्र व्यवहार व हिसाब किताबको कार्य करते थे और हम प्रेसोंमें आनेजाने आदिके सिवा ग्रन्थ संशोधन आदिका कार्य करते थे । तबसे लेकर अबतक हमने सैकड़ों तरहकी सेवायें की हैं, पिछले वर्षोंमें तो महामन्त्री साहबने सिर्फ संरक्षक या इसी प्रकार दो एक अन्य सम्माननीय महोशयको दो एक पत्र लिखनेके सिवा कुछ भी नहीं किया और डेढ दो वर्षसे तो २— ३ माससे अधिक उपस्थिति ही उनकी नहीं है । ऐसे समय हमने ग्रन्थ संशोधन या ग्रन्थ लिखनेके हिसाबसे तो परिश्रम फल लिया है और प्रबन्ध आदिके अन्य सब ही काम आर्थिक लाभको बिना लिये ही किये हैं । इसतरह जिस प्रकार दूसरी ग्रन्थमालाओंके मन्त्री तो पत्रोत्तरका ही केवल काम करते है और ग्रन्थोंका संशोधन आदि परिश्रम फल दे दूसरे लोगोंसे कराते हैं उसी प्रकार हमने संशोधनादि स्वयं किया है इसलिये उसका परिश्रम फल दूसरेको न दे स्वयं लिया है और दूसरे काम आनरेरी ही किये हैं । बाबू साहब वर्तमानमें जिन जिनको आनरेरी समझ निस्वार्थी कह आदर करते हैं और इस तरह स्वयं एक सभाके महामन्त्री होनेके कारण समाज पर अपने निस्वार्थीपनेका बोझा डालते हैं उसे हम उनकी संकोर्ण अदूरदर्शिनी बुद्धिका केवल फलमात्र समझते हैं कारण— जितने आनरेरी कार्य कर्ता हैं वे दो एकको छोड़कर प्रायः सब ही अपने अपने हाथके नीचे एक एक दो दो क्लर्क रखते हैं अपना काम उनसे ही कराते हैं और स्वयं सिवा दो एक बातकी सलाह देने, मेले ठेलेमें सामिल हो जाने (सो भी कभी कभी) एवं क्लर्कके लिखे पर दस्तखत कर देनेके कुछ भी नहीं करते इस पर भी तुर्रा यह कि अपने उपकारका बोझ समाज पर लादते हैं और उनके लिये अपनी पौकेटसे क्लर्कको तनखा देनेवाले समाजके उपकारको चट कर जाते हैं इसके सिवा बिचारा समस्त दिन परिश्रम करनेवाला क्लर्क उनकी निगाहमें समाजका धन खानेवाला समझा जाता है ।

हम संस्थाके वेतनभोगी कार्यकर्ता हैं यह हमारे लिये कोई अपमानकी बात नहीं है सबसे बडे अपमान और पल्ले सिरेकी धोखेबाजी की हम यह बात समझते हैं और जिसके थोडी भी बुद्धि है वहभी यही समझेगा कि परिश्रमफल लेने वालेको स्वार्थी कहना

या समझना । विश्वसनीय ईमानदार होना और स्वार्थी होना ये दोनों भिन्न २ बाते हैं । हम दश बीस ऐसे उदाहरण दे सकते हैं जो कहनेको तो वेतन नहीं लेते पर भीतर ही भीतर हजारोंकी रकमें बिना डकार लिये हजम करजाते हैं । इसलिये गृहस्थ होनेके कारण अपनी दैहिक आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके लिये जो हम वेतन या आर्थिक सहायता लेते हैं वह उचित है और चौबीसों घंटे जो उसके पलटेमें सेवा करते हैं वह हमारे लिये गौरवकी बात है । जो लोग दिनभर रुपये कमानेकी हाय हाय और लेवा-बेची के फंदमें या दलाली करते हुये दुकानदारोंकी खुशामत करनेके मोहमें इधर उधर रास्ता नापते फिरते हैं उन बिचारों को यह गौरव और आनंद कहांसे प्राप्त हो सकता है वे तो यदि आनंद कुछ समझते हैं तो इसीमें कि दूसरोंके दोष निकालना और उनकी निंदा करना ।

बैनाडाजीने वेतन लेने मात्रसे हमारे ऊपर अविश्वास प्रगट किया है उसके लिये हमें विशेष कुछ कहना नहीं है, उसका उत्तर संस्थाकी प्रकाशित आज तककी रिपोर्टे देंगी, महामंत्री साहबका लेख देता है और हमारे कार्य देंगे । जिस संस्थाको आज वे बड़ी कह रहे हैं और उसे हमसे छोटी हो जानेका स्वप्न देखरहे हैं वह इतनी बड़ी किसनेकी है ? इसका क्या उनको पता नहीं है ? यदि जो अविश्वास बैनाडाजीको हममें दीख रहा है वह यदि ठीक होता तो संस्थाकी यह अवस्था ही न हो पाती, वह कभीकी चौपट होगई होती यदि कहा जाय कि--पहिले ऊपर महामंत्री साहब थे अब कोई नहीं है सो यह भी नितांत भूल है । महामंत्री साहब के रहते हुये भी जोखमके कामोंमें हाथ सदा हमारा ही रहा है, यदि हमारा हृदय जैसा बैनाडाजी समझ रहे हैं वैसा ही होता तो महामंत्रीजी की ओटमें हम खूब माला माल हो जाते या प्रतिवर्ष संस्थामें जो रकम बढ़ी है वह न बढ़ने देते । खैर ! इस विषयमें हम अधिक लिखना नहीं चाहते संस्थाके सहायक, सभासद ,संस्थापक, संरक्षक आदिको यह अधिकार है कि वे हमारा हिसाब किताब रिपोर्टमें जो छपा है उसे देखें, यदि उसमें वे गलती न पकड़सकें तो किसी भी भाईको निरीक्षक चुनकर भेजदें वह जिस तरह चाहे सब खातोंकी परीक्षा करले ।

पाठकों को यह बात भी ध्यानमें रखने लायक है कि कलकत्तेमें आकर महाशय नाथूरामजी प्रेमी और छगनमलजी बाकलीवाल (पं पन्नालालजीके भतीजे) की भीतरी जलन रूप कृपाकटाक्षसे हममेंसे मन्त्रीने १ वर्ष और सहायकमहाशयने ३ वर्ष तक वेतनकी कोई पर्वाह न कर केवल फार्मके हिसाबसे काम किया है शेष कार्य मुक्त आनरेरी तौरसे किया है पश्चात् महामंत्री और संरक्षक के विशेष आग्रह से वेतन लेना मंजूर किया है ।

इसके बाद चलकर बैनाडाजीने एक अनधिकार चर्चा हमारे प्राइवेट चरित्रके विषयमें की है : आपने दोष लगाया है कि "काफी तनखा पाने परभी हमें संतोष नहीं है और उसके लिये सट्टा खेलते हैं ।" बैनाडाजीने यहां तो समाजके सामने एक ऐसा प्रकाश प्रकट किया है जिसके कारण प्राय: सबही की आंखोंमें चकाचौंध आ जायगी और उसमें समाज जब अपनी आंखें बंद करलेगा या देखते हुये भी न देख सकेगा तो बैनाडाजी अपना काम बिना किसी प्रकारकी रुकावटके बना सकेंगे लेकिन यह उनको मालूम नहीं है या गुप्त अभिप्राय सिद्ध करनेकी धुनिमें वे भूलगये हैं कि चकाचौंध अधिक समय तक नहीं रहता और वास्तविकता उसका स्थान दखल करलेती है ।

सबसे प्रथम तो हमें यह कहनो है कि संसारमें राजासे लेकर रंकतक किसे संतोष है? थोड़ीसी भी जिसके बुद्धि है वह भी देख लेगा कि करोड़पति अरब पतिसे लेकर खाकपति तक सबही पैसा कमानेकी धुनिमें लगे चक्करकाटा करते है। हमें जो असंतोषी बतलाकर आपने दूषित करना चाहा है सो आपसे या आपकी ओटमें लेख लिखनेवाले महाशयोंसे पूछते हैं कि आप कितने बडे भारी संतोषी हैं? आप रुपयेके लालचमें काफीसे से भी अधिक आमदनी होते हुये क्यों दिनरात हाय हायमें फंसे रहते है? जिस सट्टेका उल्लेख हमारे लिये किया है वही आप क्यों करते हैं? आपने समाजके लिये सिवा पर्चोंपर दस्तखत करनेके क्या सेवा बजायी है? हम चौबीसोघंटे समाज सेवा करते हैं और उसको करने हुये जीविका निर्वाहका दूसरा मार्ग नहीं निकालसक्ते या निकाल सकने पर भी हम सेवामें विघ्न आजानेके भयसे अन्य मार्गोंका अवलंबन नहीं लेते इससे कुछ महीनामें रुपया लेते हैं और वह भी जब कि समाजको दूनी उसकी जगह उपार्जन करादेते हैं तब. इसीलिये क्या आप जिसकामको भूषण समझ करते रहते हैं उसे हम दूषण भूषणकी परीक्षाथ भी नही करसक्ते। याद रहे हम समाजके सेवक हैं तो इतने ही कि उसके निमित्त अर्पण किये गये धनका सदुपयोग करें, उसको पैसा पैसा का हिसाब रक्खें और स्वयं जो कुछ लेते हैं उसका बदला उसको योग्य रीतिसे देदें। इसके सिवो समाजका हमपर कोई स्वत्त्व या अधिकार नहीं है, हम समाजके खरीदे हुए गुलाम नहीं है, हम अपने जिम्मेपर चाहे जो कुछ कर सक्ते हैं। रातभर हमचोरी या डकैती करते हैं पर मालिकका काम नेक नीयती व ईमान दारीके साथ फर्माते हैं और उसमे कोई किसी प्रकारकी गलती नहीं निकाल सका तो हम उस मालिकके उपकारसे अनृण हो जाते हैं। हम पर कोई भी किसी प्रकारका इस विषयमें दबाव नहीं डाल सक्ता है। जो बुरा काम है और उसे हम अच्छा समझ रहे हैं तो कोई भी हितैषिताके नाते बड़ा है तो सूचना रूपमें और छोटा है तो विनती रूपमे समझा सक्ता है मानना न मानना हमारी इच्छा पर निर्भर है।

यह तो हुई हमारे अधिकार अनधिकारकी बात, अब रही यह कि—हम अपनी तकदीर अजमानेके लिये सट्टा किया करते हैं या नहा? सो इसके लिये भी यही उत्तर है कि बैनाड़ाजीका हृदय एक गुप्त द्वेषसे दूषित हो रहा है और उसीके फेरमें पड़कर आपने हम पर यह अभियोग लगाया है। ऊपर लिखी गई पंक्तियोंसे हम यदि—सेवा समयके अतिरिक्त समयमें दूसरा काम भी करें तो कोई भी रुकावट नहीं आसक्ती; लेकिन हम समाजको सत्यताके नाते यह प्रगट किये देते हैं कि हम किसीप्रकारका कोई भी वर्तमानमें सट्टा या धंधा नहीं करते और न बैनाड़ाजी यह बात प्रमाणित कर सक्ते हैं. उनने जो हम पर सट्टेके लिये कर्ज देनेकी बात लिखी है और जिसे भयंकर बतलाया है सो एक तो हमें संस्थाके विद्यार्थी अवस्थासे लेकर आज तक आवश्यकता पड़ने पर महामंत्रीजीकी आज्ञानुसार समय समय पर लिये गये कर्जके सिवा किसीका पैसा भी नहीं देना है। और यदि यही हम तर्कके अनुरोधसे मान भी लें; तो वह संस्थाके लिये क्यों भयंकर बात है? कोई हमारी जायदाद बोलकर तो संस्था नहीं है जो हमारा कर्ज चुकानेके लिये नीलाम करा लेगा या हम ही ऐसे भोले या बेवकूफ हैं जो तिनहा पुरुषको डाट डपटमें आकर संस्थाकी रोकड़मेंसे हुंडी उसको भरा देंगे?

'घाकलीवालजीको यह रहस्य अच्छी तरह मालूम है' ऐसा बैनाडाजी लिखते हैं पर साथ ही उनको हमारे और समाजके एवं अपने अधिकारकी बात भी मालूम है यह शायद बैनाडाजी नहीं समझते ? और समझते ही तो वे इस तरह प्राइवेट चरित्र पर आक्रमण ही क्यों करते ?

बैनाड़ाजीने संस्थाके भवन बनवानेमें हमें प्रयत्नशील और संरक्षक व महामंत्री साहबको उसका विरोधी होना बतलाया है सो इसका हम खुलासा ऊपर लिख चुके हैं कि महामंत्री व संरक्षक महाशय हमारे प्रस्तावके स्वयं विरोधी नहीं हैं वल्कि विरोधी किये गये हैं। नहीं तो संस्थाके भवनकी सहायतार्थ सात हजार तककी स्वीकारता संरक्षक महाशय कभी न देते और महामंत्रीजी भी हमारे साथ रुपयाका इंतिजाम करनेके लिये कभी न जाते। दूसरे संस्थाका भवन यदि बन जायगा तो उससे हमारा कोई निजी स्वार्थ न सधेगा, जमीन या मकान कुछ हमारे न हो जायेंगे बल्कि हमें तो उस कर्जको चुकानेके लिये प्रेमका प्रबन्ध हीं विशेष करना होगा और उसमें खटना भी अधिक होगा, महीनाकी महीना व्याज देनी होगा और अपना वायदा झूठा न हो सके इसकी चिंता रखनी होगी। इतनी झगडेवाजी जो हम शिर पर लेना चाहते थे वह सिर्फ इसलिये कि अभी जमीन सस्तेमें मिल जायगी सदाकी जगह २ स्थान बदलनेकी दिक्कत मिट जायेगी और रुपये भी बिना किसी प्रकारका समाज पर दवाव डाले दश बारह वर्षमे पट जायेंगे। इस सबसे संस्थाकी चिरस्थायिता होती संरक्षक व महामंत्री साहबका यश दिगंतव्यापी होता और हम तो परिश्रम फल माहवारी लेते चलते हैं इसलिये कुछ भी यशोभागी नहीं ही होते।

बैनाडाजीको हमारा उपर्युक्त सदभिप्राय भी धतूरेके नशेमें सर्वत्र पीला ही पीला देखनेवालेके समान रहस्यमय मालूम पड़ा है! और इस तरह हमारी संस्थाके लिये भवन निर्माणकी सदिच्छाका उन्होंने मखौल उड़ाना चाहा है पर बैनाडाजीको यह मालूम नहीं है कि जिस प्रकार अन्य सामान्य वेतन भोगी चाकरोंका कुछ विशेष साहस नहीं होता उस प्रकार वेतन भोगी होने पर भी हमारा कई गुना साहस है। आप या आपके पिछलगू हजार विरोध करें हमारा अभिप्राय यदि खोटा नहीं है और हमारे हाथ यदि किसी निजी स्वार्थके खूनसे रंगे नहीं हैं तो कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। आपको यह जानकर महा दुःख होगा पर हमें लाचार हो सुनाना पड़ता है कि जिसका आप विरोध कर रहे हैं वही काम संरक्षक श्रीमान् सेठ हीराचंद्रजी रामचंद्रजीकी आज्ञा व सम्मति अनुसार हो गया। संस्थाका भवन कलकत्तेमें फिलहाल दश वर्षके लिये बनना निर्णीत हो गया, लिखा पढ़ी भी आधी हो गई आधी बाकी है यह हमारे निस्वार्थ भावकी विजय है और डंकेकी चोट कहते हैं कि जब तक हममें संस्थाकी सेवा करनेका भाव रहेगा इसी तरह विरोधियों पर विजय पाते रहेंगे एकवार हम लोगोंके सहायक महामंत्रित्व और मंत्रित्व पद पर हमला किया गया था और उनके हड़प जानेका कांड रचा था, दूसरीवार सिद्धांतराज गोम्मटसारजीके प्रकाशित करनेमें नाना तरहकी अड़चनें अटकाईं गईं थी पर वे दोनों हमले महामंत्रीजी व अन्य दो एकके पास प्राइवेट पत्रों द्वारा ही थे और तीसरा यह खुल्लम खुल्ला समाचार पत्रोंमें किया गया है लेकिन तीनों ही में हमारी सचाईने हमारा साथ दिया है और भविष्यमें भी यदि सचाई हममें रही तो

वह सदा साथ देगी।

आपने आगे चलकर संस्थाकी तीन वर्षकी रिपोर्ट न प्रकाशित करनेका उल्लेख किया है और इसलिये प्रबंधमे शिथिलता होनेकी शंका उत्पन्नकी है। परन्तु बैनाड़ाजोको यह नहीं मालूम है कि रिपोर्ट तैयार करनेका प्रबंध और संस्थाके अन्य कार्योंका प्रवन्ध ये दोनों भिन्न भिन्न बातें हैं। रिपोर्ट तयार करना न करना महामंत्रीजीका कार्य है, प्रेस ग्रंथ प्रकाशन आदिका प्रबन्ध करना हमारा काम है। जब महामंत्रीजी अस्वस्थ होने आदि अनेक कारणोंसे यहां न रहे तो रिपोर्ट कौन तयार करता! यदि कहा जाय कि क्लर्क तो इसका खुलासा उत्तर यह है कि सब वही खातोंका सिलसिलेवार जमाखर्चका चिट्ठा व अन्य हिसाब वह तयार कर सक्ता है लेकिन उसको भूलें निकालना, जांच करना आदि सब काम तो महामंत्रीजीके ही जिम्मे आज तक रहा है, तिस पर भी दो वर्षकी रिपोर्ट तो छप चुकी है, तीसरी वर्षकी तयार हो रही है छपने पर तीनों वर्षकी एक पुस्तक संस्थाके संरक्षक सभासदों आदिके पास भेज दी जायगी। जिनको विशेष आवश्यकता हो वे दो वर्षकी अभी मंगा सके हैं। आपने व्योरेवार रिपोर्ट प्रकाशित करने लिखा है सो सदा सब लोगोंकी आई हुई रकमें, उनसे प्रकाशित हुई पुस्तकोंकी संख्या और कितने दामोंमें कितनी विकी, कितना स्टाक (सिलक) में वाकी है आदि सब ही विवरण तो छपतो है; फिर विशेष विवरण क्या होना चाहिये कुछ समझमें नहीं आया! क्या जिन लोगोंके पास पुस्तकें भेजी गई हैं उन लोगोंका नाम धामका पता छपाना चाहिये जिससे बैनाड़ाजी या अन्य उन सरीखे हो व्यक्ति यह पता चला सकें कि कहीं ज्यादा कीमत वसूल कर पंडितोंने तो नहीं हजम करली है! पर हम तो इसके लिये भी तयार हैं चाहे तो बिलवही या सर्कारी रसीद दिखा सकते हैं।

संस्थाको बंगालमे लानेका जो उद्देश्य था और वह सफल हुआ या नहीं? इस बातका उत्तर देना हम अपना फर्ज नहीं समझते कारण न तो हम उस उद्देश्यसे यहां आये ही थे और न यहां संस्था लानेके हम पक्षपाती हीथे। हमारा तो सोलहो आने विचार बनारसमें ही रहनेका था पर जब महामंत्रीजीका सब प्रकार कलकत्ते जानेका ही विचार देखा तो मजबूरन कड़ेसे कड़े पत्रोंके लिखने पर हम यहां आये थे। इसका विशेष खुलासा बनारसके पंच या वहांके नव युवक ही बता सकते हैं।

सबके अंतमे बैनाड़ाजीने संस्थाकी हितकामनाको ढोंगमानते हुये और हम पर मोलदार बननेका अभियोग लगाते हुये अपनी एक राय पेशकी है और वह यह है कि—कलकत्तेमे जब छापेके विरोधी अधिक हैं, वहांसे कोई सहायता नहीं मिलती है तो संस्था कलकत्तामें ही क्यों रक्खी जाय। उसका स्थान शोलापुर या बनारस कर दिया जाय।

वास्तवमें प्रस्ताव बहुत ही सुंदर है और ऊपरसे देखनेमें प्यारा भी लगता है परंतु जो वास्तविक हितैषी हैं और अपने हानिलाभके समान धर्मादेको भी हानि लाभ सोचनेमें बुद्धि खर्च करते हैं उनकी दृष्टिमें असुंदर और हेये जंचने योग्य है। कारण जितनी सरलता या शीघ्रतासे लिखा या बोला जासक्ता है और और जितने अल्प व्ययमें उक्त प्रस्ताव छपनेके लिये जासक्ता है उतनी सरलता शीघ्रता और अल्प व्ययसे स्थान परिवर्तनका यह प्रस्ताव अमलमें नहीं आसक्ता। आपने तो चर्मजिह्वा हिलादी या काष्ठमयी लेखनीसे कागज काला करडाला पर जिसको यह प्रस्ताव अम-

रूमें लाना पड़ेगा उसको कितना परिश्रम उठाना पड़ेगा अपना काम कितने महीने बंद रखना पड़ेगा, दूसरी जगह काम जारी करने और समान को लेजाने आदि में कितना खर्च उठाना पड़ेगा सो शायद बैनाड़ाजीने नहीं सोचा। संस्थाके पास इस समय जितनी पुस्तकें तयार हैं उनकी एक एक प्रतिको मिलानेसे वजन पच्चीस सेरके करीब होता है और यदि चारसौ प्रति भी डाकमें मानी जांय तो ढाई सौ मन वजन तो सिर्फ तयार पुस्तकोंका है छपे हुये जो फार्म हैं वे अलहदा हैं! गोम्मटसारजी का अंतिमखंड, लब्धिसारजी आदि कई ग्रंथ छप रहे हैं इसके अलावा प्रेसका सब सामान है। मशीन, हैंड प्रेस टाइप आदि हैं जिनका भी अनुमानतः वजन प्रेस सौ मन है। इस तरह पांचसौ मन संस्थाके पास कमसे कम वजन है। इसका रेल्वे भाड़ा ३-४ रु० मनके हिसावसे भी यदि शोलापुर का हो तो दोहजार रुपयों पर पानी फिरता है। बीचमें कमसे कम ४-५ महीनों काम बंद भी रखना पड़ेगा और उससे जो छपाई आदिसे आमदनी है वह भी बंद हो जायगी और सबको न सही कुछ कर्मचारियोंको तो तनखा देनी पड़ेगी इस तरह वह भी हानि होगी। तीसरे शोलापुरमें कंपोजिटर आदिकी तनखा प्रायः यहांसे ड्योढी है, वर्तमान में हमारे यहां ६) रु०के कंपोजीटरसे लगाकर सबसे बड़ा सत्ताईस रुपये पाता है और अंतिम अवधि ३०) रु० तक है। शोलापुरमें यह तनखा निम्न श्रेणीके कंपोजिटरकी है। यहां हमको ६-१० रु०में फोर्म पड़ जाता है और वहां १४-१५ रु० में पड़ेगा इस तरह छपाईका खर्च ड्योढा हो जायगा।

यदि यह कहा जाय कि सब सामान यहां बेचदिया जाय और वहां दूसरा खरीद लिया जाय यह भी ठीक नहीं है कारण एक तो प्रेसका ही सामान हम बेच सके हैं पर ग्रंथ नहीं विकसक्ते वे तो साथ जांयगें ही दूसरे जो यहां प्रेसका सामान अपनी जरूरत होनेपर आधे मूल्यमें बेचा जयगा वही वल्कि उससे भी गिरी पड़ी हालतका हमकों दूने मूल्यमें खरीदना पड़ेगा गरज यह कि संस्थाका ५-७ हजार रुपया स्वाहा हो जायगा। अभी जों निजी प्रेस होनेसे सब प्रकार छापनेका स्वातंत्र्य है वह लुप्त हो जायगा।

शोलापुर संस्था जानेसे हमको लाभ है और वह यह है कि पचास रुपये रोजका यहां मय कागज आदिके खर्च है उसका समस्त प्रबन्ध करना पड़ता है। किसी महीनेमें आमदनी कम होनेसे अपने जिम्मे कर्जला नौकरोंकी तनखा चुकानी पड़ती है वह सब झंझट हमारे शिरसे उठ जायगी और संस्थाके संरक्षकके जिम्मे बंध आयगी लेकिन ऊपर लिखे गये हानिके विचारसे ही हम अपनी सलाह नहीं देते। यदि कोई भाईका लाल संस्थाका सच्चा शुभ चिंतक मार्ग व्यय देनेको तयार हो जाय और यहांसे शोलापुरमें नौकरों आदिका कम खर्च पड़ता है ऐसा किसी प्रेसके हिसावका नकसा देकर सिद्ध कर दें तो हम खुशी व खुशी जानेकों तयार हैं, संस्था लेजानेकों मुस्तैद हैं। यदि यह नहीं होता तो कोई भी संस्थाको स्थान परिवर्तन नहीं करा सक्ता।

संस्थामें जो रुपया लगता है वह मूल संस्थापक का है संरक्षक का है। और दानी सहायकों का है। प्रेसमें जो रकम लगी है वह लाइफ मेंबरोंकी है और सबने ही अपने २ बंधुओंकी स्मृतिमें ग्रंथ प्रकाशित होनेकी परंपरा जारी रखनेकेलिये दी है ऐसी अवस्थामें एक पैसा भी इन रकमोंमेंसे किसी अन्य खातेमें खर्च नहीं होसक्ता और विना भाड़ा दिये संस्थाका सामान कहीं भी कोई नहीं ले जासका

तो फिर हम बैनाड़ा जीसे ही पूछते हैं कि आपने जो स्थान परिवर्तन का प्रस्ताव पेश किया है वह किस प्रकार कार्य परिणत हो सकेगा ? क्या आप अपने पाससे दो एक हजार रुपया देनेको तयार हैं और शेषका प्रबंध अन्य लोगोंसे करादेने की सामर्थ्य रखते हैं ? यदि रखते हैं तो प्रगट कीजिये हम शोलापुर ही क्या, जहां आप कहिये जानेको तयार है। केवल सूखी बातें बनानेसे काम नहीं चलता।

बनारसमें पुनः लेजानेकी बात जो अपने लिखी है वह भी पूर्ववत् हो विघ्नकारक है। इसके सिवा जिस भयसे कलकत्तासे उठाकर संस्थाको बैनाडाजी इधर उधर लेजानेकी कोशिश करते हैं वह कहीं भी नष्ट नहीं होसक्ता वल्कि उत्तरदायित्वका वोझ हट जानेसे बढही जायगा।

कलकत्तेमें छापेके अधिकांश लोग विरोधी हैं यह यद्यपि ठीक है तोभी हमारे ऊपर देखभाल करनेवाले या हिसाब किताबकी जाच करनेवाले लोगोंकी कमी नहीं है। क्या यहां सार्वजनिक संस्थायें नहीं है और क्या उन सबकी देख भाल शोलापुर या बनारस वाले ही करते हैं ? यदि नहीं तो पानी की तरह रुपये बहाने, चालू कामको चौपट करने और अपना ऊपरी हितैषिता दिखानेके ये ढोंग क्यों किये जाते हैं ?

संरक्षक महाशयको यहां पधारनेकी साग्रह प्रार्थना की है, उनके आनेपर यहांके कुछ समझदार लोगोंकी कमेटी बनाई जायगी और उसकी देख भालमे संस्थाका समस्त कार्य होगा।

संस्थाके लिये जमीन खरीदने का जो विचार था वह इसलिये था कि आजकल मकानोका भाड़ा अधिक हो जानेसे प्रेसलायक मकान १२५-१५० रुपये महीनेसे कम भाडेमें नहीं मिलसका और वह भी दो एक वर्षके लिये, अधिक दिनोंकी लिखा पढी कोई करनेको तयार नहीं होता और जब भाड़ा हरसाल बढता ही चलता है तब कोई तयार भी कैसे हो ? दो एक वर्षके पिछार जगह २ प्रेसको उठाते फिरें कल कब्जोको बैठाते डोले, काम काज बंद कर हानि सहते रहें इससे तो यही अच्छा जान पडा और जो थोडा बहुत भी संस्थाका शुभ चिंतक होगा उसे भी जान पडेगा कि जगह खरीद लेना और उसकी कीमत हजार दो हजार रुपया अपने पाससे लगाकर दूसरे से कर्जले दिवा देना एवं व्याज देते रहना। इस तरह जो व्याज देनी पडती वह तो भाड़ाके बतौर महीने व महीने देते रहने और प्रति साल प्रेसकी आमदनी से हजार रुपया देकर भी कर्जका बोझ हलका करदेने तो दश बारह वर्षमें ही संस्थाका निजी मकान हो जाता जिससे सदा को भाडेकी झंझट उठजाती, जगह कभी न बदलनी पड़ती और जमीनकी कीमत बढ जानेसे (जैसा कि अब तक होता आया है) चाहें जब कमसे कम दूने रुपये तो उठ ही आते।

परंतु उक्त सदिच्छाका इस तरह जिन लोगोंने भीतरी द्वेषसे दूषित हो स्वयं हो नहीं किंतु दूसरे लोगोंसे भी विरोध किया कराया है, उन्हें एक दिन अवश्य पश्चात्ताप करना होगा।

गजाधरलाल न्यायतीर्थ सहायक महामंत्री,

श्रीलाल जैन मंत्री—भारतीय जैनसिद्धांत

प्रकाशिनीसंस्था कलकत्ता।

ब्रह्मचारीजीके प्रश्नोंका उत्तर।

जैनमित्रके श्रावण सु० १२ सं१९७७ वीरसं २४४६ के अंक्क ६-१०केपन्नेमें जो श्रीमान् धर्म भूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने विधवाविवाह मण्डनवालों की तरफ़से प्रश्न उपस्थित किये हैं उनका उत्तर इसप्रकार है—

प्रश्न नं० १—जब पुरुष एक स्त्रीके मरने पर द्वितीय विवाह कर लेता है तब स्त्री क्यों नहीं?

उत्तर—विवाह विधि, उत्तम कुल ब्रती द्विजातीय ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य जातिके वंश परम्पराय कुल वृद्धि के लिये मन्तानार्थ है। पुरुषोंसे कुल और वंश चलते हैं वंश और कुल बढ़नेमें प्रबल उपादान शक्ति पुरुषोंमें है स्त्रियोंमें नहीं। स्त्रियोंके वंश और कुल नहीं चलते क्योंकि कुल और वंश भेदक स्त्रियोंमें शक्ति नहीं, पुरुषोंमें ही है जैसे बीजमें ही वह शक्ति है कि अपने समान तदनुरूप वृक्षादिकी सन्तान एकरूप पैदा करे। जैसे चनेके इकसार सजातीय वृक्ष पैदा करनेको चने के बीजमें ही शक्ति है भूमिमें नहीं। क्योंकि जैसा बीज होगा वैसा वैसाही वृक्ष पैदा होगा चनेके बीजसे गेहूंका वृक्ष पैदा नहीं होगा किन्तु चनेका ही होगा इससे यह बात सिद्ध हुई कि वीर्य भेद ही कुलभेदक होता है जैसा जमीनके भेदसे वृक्षोंमें भेद नहीं होता किन्तु बीजके भेदसे वृक्षोंमें भेद होता है उसीप्रकार एक पुरुषके वीर्यसे विवाहित दश स्त्रीयोंसे उत्पन्नहुई सन्तान एकही कुलवंश कहलावेगा एकस्त्रीके रजसे दशपुरुषोंके वीर्यसे उत्पन्न हुई सन्तान उन दशपुरुषोंका या वर्णसंकर कहलावेगी एक कुल नहीं। विधवाविवाह खण्डनमें हम दिखा चुके हैं कि मनुष्यके वीर्यमें मनुष्यका आकार होता है स्त्रीके रजमें नहीं, इसलिये उत्तमकुलके वंशको चलानेका भार पुरुषपरही निर्भर है वह पुरुष दशस्त्रियोंसे उत्पन्न हुई सन्तानका वंशधर कहलावेगा परन्तु एकस्त्रीके रजसे दशपुरुषोंसे उत्पन्न हुई सन्तानकी वंशधर स्त्री नहीं किन्तु दशपुरुष और पुरुषों को अनिश्चित दशामें वेश्या पुत्र संज्ञा होगी इस हेतु मानव जातिमात्रमें बालकही गोदलिया जाता है कन्या नहीं दत्तक पुत्रका विधान स्थलस्थलपर है दत्तक कन्याका नहीं, दाय भागमें भी पैतृकसम्पत्तीका मालिक पुत्रही होता है कन्या नहीं कन्या मौजूद होनेपर भी दत्तक पुत्र उत्तराधिकारी होता है, परन्तु कन्या नहीं। लड़कीके यदि पुत्र हो तो वह पुत्र तो उत्तराधिकारी बन शक्ता है लड़की नहीं अतः क्यों न इसका उत्तर यही होगा कि लड़कीसे वंश नहीं चलते इसलिये पुरुष एक स्त्री मरनेपर दूसरा विवाह करशक्ता है स्त्री नहीं। विवाहविधिका उद्देश विषय—सुख नहीं, स्त्री का कुल चलता नहीं अब तीसरा प्रयोजन दिखलाईये तब विधवा विवाह बने अतः विधवा विवाह बिलकुल निषिद्ध है। यदि कोई विवाह विषयसुखार्थ कहै तो पुरुषोंकेलिये अनेक वेश्यायें और स्त्रियोंकेलिये अनेक गुण्डे मौजूद हैं ही फिर किस वास्ते आजन्म एकके साथ बन्धनमें फंस अनेक प्रकार सुख दुःख भोगनेका मार्ग विवाह वीधि चलती इनसब कुमार्गोंको छुड़ानेका कारण यही है कि विषयोंमें सुख है ही नहीं: किन्तु विवाहादि व्यवस्था भी विषय तृष्णा कम करनेके लिये ही है अतः स्त्री पति मरने पर दूसरा विवाह नहीं करशक्ती स्त्री पर्यायमें अयोग्यता दैवी है पूर्वोपारजित कर्मोंकी है अपनी की हुई नहीं है।

प्रश्न नं० २—जैसे पुरुष एक स्त्रीके मरनेपर दूसरी स्त्री-

करलेने पर भी परस्त्रीसेवी नहीं होता वैसे एक स्त्री भी यदि एकपतिके वियोगपर दूसरा पति करले तो उसे कुशीलका दोष क्यों होना चाहिये ?

उत्तर–दूसरे प्रश्नका भी उत्तर प्रथम प्रश्नके उत्तरसे ही सम्बन्ध रखता है वह इसप्रकार है कि–किसी स्थल पर कारणसे कार्यका अनुमान होता है जैसे चौकेमें आटा दाल आदि सामग्री की योजना करनेसे मालूम होता है यहां रसोई बनेगी और कहीं पर कार्यसे कारण का अनुमान होता है जैसे दिनमें रास्ते आदि सर्वत्र कीचड़ तथा वृक्षोंके चिन्ह देखे तो मालूम हुआ कि रात्रीको बादल हुए थे इसी प्रकार यहांपर भी जब एक पुरुषकी दश विवाहित स्त्रियोंसे उत्पन्न हुई सन्तान उसी पुरुषकी पुकारी जाती हैं और प्रायः स्वभावसंस्कारादिका असर सबमें एकसा पाया जाता है, व्यवहार में कोई भी उस संतानको वर्णसंकर और दोगला नहीं कहता, व्यभिचारियोंकी सन्तान नही कहता वह सुशील सन्तान कही जाती है और सुशील सन्तानरूपकार्य अपने माता पिताओंको सुशील सिद्ध करता है। यहांपर सुशीलसन्तानरूपकार्य सुशीलमाता पितारूप कारणका अनुमान कराता है यह अनुभव सकलजनसुप्रसिद्ध है यदि ऐसा नहीं तो शूद्रजातिमें भी जहां एकको छोड़ दूसरा पति करलेती हैं तब वहांपर सन्तान पर पुरुषका अधिकार रहता है चाहे तो वह पुरुष अपने वीर्यसे उत्पन्न हुई सन्तानको ज़बरन छीनलेता है और जहांतक संभव है वहांतक अंग्रेज तथा अन्यविदेशी आदि जिनमें स्त्रीको पुरुषवत् स्वतन्त्रता है, स्त्रियें एकको छोड़ दूसरा पति पसन्द कर लेती हैं उनके यहां भी सन्तानको पुरुष लेलेता है उनके यहांपर भी सन्तानपर पुरुषका अधिकार क्यों रहता ? इससे सिद्ध है कि सन्तानपर पुरुषका अधिकार है जब सन्तान पुरुष अधिकृत रही तब अनेक पुरुषों से उत्पन्न सन्तानमें विजातीयत्व सुतरां सिद्ध रहा। यह वीजातीयत्व ही दोगलापन व्यभिचारीपन सिद्ध करता है। अब व्यभिचारी सन्तानरूप कार्य लोकप्रसिद्ध है तब यही कार्य कारण रूप माता पिताओंमें व्यभिचारीपन सुलभतासे सिद्ध करता है यदि ऐसा नही है तो वेश्याओंकी सन्तानको सुशील और वेश्याकोभी सुशील कहना चाहिए क्योंकि विधवा विवाह तथा नियोगकी तरह कुछ काल केलिये उसने भी उस विट मनुष्यको पति अङ्गीकार किया है और अनेकविटोंसे उत्पन्न हुई सन्तानमें विजातीयत्व न हो तो उसमें भी सुतरां अनायास सुशीलत्व सिद्ध है फिर वेश्याओंको कुशील कहना केवल मनो कल्पना ही ठहरै और फिर तो सर्वमयी भगवान् हैं खुशी आवै, वही करिये। ऐसा ठहरै। सो नहीं है स्त्री एक पति मरने पर दूसरा विवाह करे तो उपर्युक्त कथनसे साफ २ रूपसे कुशील है, इससे नही कर सकी।

प्रश्न ३—ब्रह्मचर्यव्रत परिणामों से होता है जैसा एक स्त्रीके मरनेपर पुरुष आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत न पाले तो एक स्त्रीसे फिर विवाह कर सक्ता है तो भी एक देशब्रह्मचर्यव्रतपालक है वैसे यदि स्त्रीपतिके मरने पर आजन्मब्रह्मचर्य अपने परिणामोंसे नहीं पालसकी तो यदि द्वितीयपति करै तो फिर वह स्त्री एकदेश ब्रह्मचर्यपालक क्यों नहीं ?

उत्तर–यद्यपि तृतीयप्रश्न और द्वितीय प्रश्न एक हो हैं एकही पदार्थको कह रहे हैं और एकही विषय है क्योंकि स्त्रीके परिणामोंसे पुरुषकी तरह अखण्ड ब्रह्मचर्य न पले तो वह दूसरा विवाह करले वह एक देश ब्रह्मचर्य अर्थात् स्वपतिसन्तोषिणी है या नहीं और इसको कुशीलका दोष क्यों कहना चाहिये यह सब एकही बात है। पूर्व प्रश्नमें ब्रह्मचर्यघातक

कुशीलको लेकर निषेधमुखसे शङ्काको है और तृतीय प्रश्नमें वाक्यान्तर से ब्रह्मचर्य विधानकेलिये विधिमुखसे शङ्काको है केवल इतनाही भेद है तथापि हम इतना कहे बिना नहीं रहेंगे कि इस प्रश्नको करते हुये प्रश्न कर्ता बहुत भूल करते हैं वे आचार्यों के उद्देशको भी भूलजाते हैं और अपने उद्देशको मनमें रखकर भूल करते हैं वह यह है कि हमने विधवाविवाहखण्डन पुस्तकमें समुचितरूपसे प्रमाणित करदिया है कि विवाहविधि सन्तानार्थ है विषय सुखार्थ नहीं, फिरभी वही रटनी लगाई जाती है कि पुरुष दश विवाह करले स्त्री क्यों नहीं? स्पष्टरूपसे अपना अभिप्राय क्यों नहीं कहते कि पुरुष तो "सन्तानार्थ" इस धर्म विधि बहाने दश दश विवाह करके ऐशआराम करे तब भी सुशील है और स्त्री दूसरा भी विवाह करे तब भी कुशील ऐसा अन्याय क्यों? यह कहना तुम्हारा बाह्यदृष्टिसे ऐशआराम की अपेक्षा ठीक है परन्तु कुछ ध्यान देकर विचारिये, विषयलालसारूपी टोपका शोशा मस्तकसे उतार कर तथा पुरुषोंके साथ स्पर्द्धा स्त्रियोंका न दिलाकर कुछ न्यायकी तरफ झुकिये तब पता लगेगा कि यह अन्याय भी किसीप्रकार [दूधदेनेवाली गायकी दोलातें भी सहन होती हैं इसन्यायकी तरह] न्यायकी-धारामें आकर पड़जाता है। वह इसप्रकार है कि-यद्यपि श्रीआचार्य ऋषि महर्षियोंका यह अभिप्राय नहीं है कि पुरुष विषयसुखार्थ विवाह करे किंतु सन्तानार्थ करे। परन्तु कोई पुरुष सन्तान होनेपर भी लोलुपतासे विषयसुखार्थ यदि एक स्त्री मरनेपर दूसरा विवाह करले तो भी वह पुरुष सुशील संतानका उत्पादक और सदाचारशील कुलवृद्धिका कारण होनेसे कुशील नहीं किन्तु विषयसुखबोधक परिणामोंद्वारा व्रत भङ्गता है और बाह्यदृष्टिमें द्रव्यव्रतापेक्षया द्वितीय विवाह भी सन्तानोत्पादक कुलवर्द्धक होनेसे 'सन्तानार्थ' इस उद्देश्यकी अभङ्गता है इसलिये भङ्गाभङ्गात्मक होनेसे पुरुषका द्वितीय विवाह सन्तानके बहाने [आन्तरङ्गिक विषय सुख की इच्छासे] किया हुआ भी अतीचारस्वरूप ही है अनाचार स्वरूप नहीं कुशील नहीं व्यभिचार नहीं क्योंकि द्विजातीय ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य कुल जन्म संस्कार जन्म द्विजन्मा व्रतीय सन्तानवृद्धि का कारण है किसी भी परिणामसे किया हुआ विवाह है तो भी विशुद्धपरिणामोंका क्षेत्र उच्चजातीयत्व उच्चाचरणस्वरूप धर्मके वर्द्धक कुलका बढ़ानेवाला होनेसे अन्याय नहीं न्यायकी धारामें ही आ पड़ता है, हमारी अभीष्टसिद्धिका ही कारण हो जाता है और स्त्रीका पुनर्विवाह नहीं क्योंकि स्त्रीका पुनर्विवाह केवल विषय सुखतृष्णाका ही वर्द्धक है और सुशील कुलका नहीं। प्रत्युत (उलटा) कुशीली सन्तान कुशीली कुलका बढ़ानेवाला होगा इसलिये विधवाविवाह कुशील है अन्याय है व्यभिचार है इसविषयमें स्पर्द्धाकी बात नहीं अपनेको चार और दूसरोंको दोकी बात नहीं, अन्य मनुष्य करोड़पती लक्षाधीश और हमारे पास सौ रुपये क्यों नहीं इन बातों से वस्तु सिद्धि नहीं यह तो अपने पूर्वोपार्जित कर्मके उदयसे पुरुष स्त्रियोंमें बलाबल है अपनी मुहजोरीकी बात नहीं, पुरुषोंका द्वितीयविवाह दूषण भी भूषणरूप सिद्ध होता है और स्त्रियोंका नहीं जैसे सर्वत्र अनवस्था रूप दूषण माना जाता है (जैसे यदि द्रव्यकी उत्पत्ति एकसे दूसरेकी मानली जाय तो वह उससे और वह अन्यसे ऐसा कहते २ कहीं भी अवस्थान नहीं ठहरता कि मूल द्रव्य अमुक द्रव्य है जिससे ये द्रव्य उत्पन्न हुये हैं इसलिये छहों द्रव्य स्वतः सिद्ध मानने चाहिये वहां तो यह अनवस्था दूषण कहा और यही अनवस्था इन छहों द्रव्योंको स्वतः

सिद्ध माननेसे अनादित्व आता है क्योंकि प्रत्येक द्रव्य परिणामी हैं तब एक परिणामको छोड़ दूसरेको और दूसरेको छोड़ तीसरेको इसप्रकार अनन्तानन्त परिणामोंको रखता है तब उत्तरपरिणामके पूर्व अन्य परिणाम था और उसके पूर्वमें अन्य था इसप्रकार पूर्व पूर्व परिणामोंकी अपेक्षा वस्तुके परिणामका अवस्थान कहीं नहीं ठहरता यही अनादित्व है इसको भी दूषण कहना चाहिये) परन्तु अनादिसिद्ध पदार्थोंमें अनवस्थाको कोई भी सिद्धान्तवाला दूषण नहीं मानता किन्तु भूषण ही बतलाते हैं क्योंकि अनवस्था वहीं होती है जहां अप्रामाणिक अनन्त पदार्थोंकी कल्पनासे अविश्रान्ति हो ठहरना न हो और जहां भूत कालिकापेक्षा प्रामाणिक अनन्त पदार्थोंकी कल्पना से अविश्रान्ति हो वही अनादित्व है और ऐष्यत्कालादिकी अपेक्षा अविश्रान्तिको अनन्तत्व कहते हैं ये पदार्थगत धर्म हैं भूषण हैं वस्तु स्थिति है इसको कोन अन्यथा कर शका है इसीप्रकार "पुरुषु महत्सु गुणेषु स्यति [अन्तकर्मणि मोक्षे] प्रवर्त्तते स पुरुषः" जो आत्मा पञ्चपरावर्तन भ्रमणरूप संसारका अन्त करके अपने श्रेष्ठ गुणोंमें प्रवर्त रमें वही पुरुष है और स्त्यायते शुक्रशोणिते यत्र धा दोषाच्छादनशीला सा स्त्री' जो आत्मा जिस पर्य्यायमें रज वीर्यको इकट्ठा करै संचय करै उसे स्त्री कहते हैं स्त्यै शब्दसंघातयोः इस स्त्यै धातुसे स्त्यायनेड्ड् इस सूत्रसे ड्रट् प्रत्यय हो कर स्त्री शब्द बनता है अर्थात् स्त्रीके गर्भनलीमें ही रज वीर्य इकट्ठे होते हैं जिन दोनोंको मिलकर ही बालक का शरीर बनता है अथवा अपने दोष छिपानेका है स्वभाव जाका इत्यादि व्युत्पत्ति तथा लक्षणादिसे स्त्री पुरुषोंमें अन्तर महदन्तर है पुरुषके सामर्थ्यको स्त्री नहीं पाती पुरुषका पुनर्विवाह सुशील सजातीय कुलवर्द्धक है इसलिये इष्ट है सुशील है और स्त्रीका पुनर्विवाह कुशील विजातीयकुलवर्द्धक है इसलिये अनिष्ट है कुशील है केवल विषयतृष्णाकी ही पोषक है सर्वज्ञप्रणीत आगममें और उनके अभिमत उद्देशके विरुद्ध है इसलिये हेय है त्यागने योग्य है।

४ प्रश्न-जब हर कोई व्रत भावसे होता है तब यदि किसी स्त्रीके ब्रह्मचर्य पूर्ण रूपसे पालनेके भाव नहीं हैं और वह लज्जा व भयसे पालती है तो क्यों उसके व्रत पालनेका फल प्राप्त होगा?

उत्तर-यह बात ठीक है कि जैनसिद्धान्तमें व्रतोंका स्वरूप भाव शुद्धिपर ही निर्भर है परन्तु भावशुद्धिका अनन्य कारण पूज्य जैनाचार्योंने द्रव्य शुद्धिको माना है द्रव्यशुद्धि बिना भावशुद्धि होती ही नहीं, सोही श्रीपद्मनन्दी आचार्य लिखते हैं नित्यपूजनमें द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं भावस्य शुद्धिमधिकामधिगन्तुकामः। आलम्बनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन् भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञम्।१। यथानुरूपं जैसी चाहिये वैसी अथवा जहां तक होशके वहांतक द्रव्य शुद्धिको प्राप्तकर अधिक भावशुद्धिको प्राप्त करनेकी है इच्छा जिसके ऐसा मैं भावशुद्धिके कारण भूत अनेक आलम्बनोंका आलम्ब कर खुशीहोता हुआ सच्चे पूज्य पुरुष अर्हन्तसिद्धादि पञ्चपरमेष्टीकी यह पूजन करता हूं। यहां पर श्रीआचार्य प्रवरने द्रव्यशुद्धिको अग्रेसर करके भावशुद्धि की है द्रव्यशुद्धिको भावशुद्धिका [भावशुद्धिकार्याव्यवहित पूर्वक्षणवृत्तित्वविशिष्ट] साक्षात्कारण माना है अर्थात् साक्षात् कारण वह होता है जो कार्यकेपूर्व क्षणमें अथवा कार्यसहभावी हो जैसे घट बननेके पूर्वक्षणमें जो कुम्हारके हाथमें दंड है तथा मिट्टी है ये साक्षात् कारण घटके प्रति हैं और प्रकाशके प्रति अन्धकारका अभाव कारण है ये दोनों साक्षात् कारण हैं इसीप्रकार भावशुद्धिके

पूर्वक्षणमें अवश्य द्रव्य शुद्धि होना चाहिये ऐसा श्री-आचार्यप्रवर कह रहे हैं यदि ऐसा न होतो द्रव्यलिङ्ग विना भावलिङ्ग होना चाहिये और फिर श्वेताम्बर सिद्धान्तवत् उपाश्रयमें बुहारी देते हुये के भी मोक्ष होना सुलभ है एक बाततो यह है दूसरी बात यह है कि जहां भावलिङ्ग होता है वहां द्रव्यलिङ्ग अवश्य होना चाहिये परन्तु द्रव्यलिङ्ग होते भावलिङ्ग होता भी है और नहीं भी। प्रवाह मार्ग-आम मार्ग तथा व्यवहारमें यह नियम नहीं कि भावलिङ्ग हो तब ही द्रव्य लिङ्ग हो क्योंकि भावलिङ्ग द्रव्यलिंगकी उत्पत्तिका कारण नहीं किन्तु जहां भावलिङ्ग होगा उसके पूर्व क्षणमें द्रव्यलिङ्ग होना ही चाहिये यह नियम है यदि ऐसा न होकर भावलिङ्ग होय तब ही द्रव्यलिङ्ग होय यह नियम होता तो मुनियोंके लिये बाईस परिषहों को सहना और द्वादशानुप्रेक्षाका चिन्तवन समाधि मरणके समय ४८ अड़तालीस २ मुनियों का रहना एकमुनिका भावलिङ्गमें ल्यावनेके तथा व्रतमें स्थिर रखनेके प्रयत्न की क्यों आवश्यकता आचार शास्त्रोंमें वतलाई। द्रव्यलिङ्गमेंही भावलिङ्ग होनेकी योग्यता है इसलिये भावलिङ्ग उत्पन्न करनेके लिये द्रव्यलिङ्ग आचरणीय है यद्यपि सिद्धांतमें भावलिङ्ग विना द्रव्यलिङ्ग मोक्ष साधक नहीं और उत्सर्गमार्गसे भावलिङ्ग विना द्रव्यलिङ्गकी प्रताड़णाभी बहुत कुछ कीगई है तथा द्रव्यलिङ्ग स्वर्गसुखादिका साधक तो है ही विफल तो नहीं है, रही बात इसकी कि द्रव्यलिङ्ग बलदाचरणीय तो नहीं होता सो भी नही है क्योंकि जो मनुष्य पूर्वमें विशुद्ध परिणामोंसे मुनिपद धारण करले पश्चात् उदयवश मुनिपद से शिथिल होता होवै तो लज्जा भय आदि से उसके दृढ़ होने का मार्ग समझैं तो आचार्य द्रव्यलिङ्ग रखनेके लिये बलदाचरणीय भी उपदेश देते हैं।

जिस उपदेशसे परिणाम [फल अवस्था] में सुख हो और कहता कडुवा भी लगै तो वह उपदेश ग्राह्य होता है जैसे अत्यन्त क्षीण शरीर है जिसका ऐसा भी रोगी है तो भी यदि रोगहर्ता औषधि कटुक भी हो तो भी ग्राह्य होती है परन्तु प्राणहर्ता मिष्टोषधि भी ग्राह्य नहीं और भी एक बात है कि जो जीव इन्द्रियोंके विवश हैं जिनके इन्द्रिय और मन वशमें नहीं हैं और जिनके देखादेखी संघ व समाजमें अनेक प्राणियोंके अहित होनेकी सम्भावना है ऐसे समय पर श्रीआचार्योंको मुनियोंके लिये तथा श्रावकों के लिये और मुख्य प्रमाणीक पञ्चोंको समाज व जातिके लिये बलादाचरणीय उपदेश व दण्ड व प्रायश्चित्त तक देनेकी आज्ञा है और दीया है और दिया भी जाता है सर्वत्र अनुभूत है उसी प्रकार द्विजातीय विधवा कुलाङ्गनायें स्वभावतः सौम्य और शीलवती हुआ करती हैं उनके जन्मसे ही सदाचार शील और कुलाचारके पाठ पढाये जाते हैं और आजन्म पति की सदा आज्ञाकारिणी और सदाचारिणी तथा पतिसर्वस्व जीवनतक अर्पण करने वाली होती हैं पतिके दुःखमें दुःख और सुखमें सुख माननेवाली होती है उस पति के वियोगमें दूसरे पतिके साथ विवाह करनेको तत्पर कदापि न होंगी किन्तु जिनको बाल्यावस्थासे ही कुसङ्गति रहती है और सदाचार कुलाचार शिक्षासे विहीन होती हैं जिनके हत्यारे माता पिताओंने लोभवश व अज्ञानतासे मूली गाजरकी तरह बेंचकर धनाढ्योंकी विभूती को देख मुग्ध होकर न्याय अन्याय हित अहित न विचार कर अन्ध कूपमें जिनको पटक दिया है वे अज्ञतासे व खोटी

सङ्गतिसे अथवा वे स्त्रियां जिन्हें बाहिरी पाश्चात्य विद्वानोंकी हवा लग गई है ऐसे पुनर्विवाह [एक पतिके साथ प्रतिज्ञाके भङ्गरूप] रूप खोटा काम कदाचारमें प्रवृत्त होनेकी चेष्टा भले हीं करैं अथवा विषय लंपटी स्वार्थी कुसंगति पाश्चात्य विद्यासंसर्गी धर्म भ्रष्ट भलेही उनको उत्तेजित कर प्रवृत्त करावैं।

हां! एक समय वह था कि ऐसे व्रतभङ्ग कुशील कार्यमें प्रेरण व अनुमोदनमें अपना शीलभंग और पाप समझते थे आज जमाना पलट गया है, व्यभिचारियोंके ग्राम बसने लगे और ऐसे कामोंको पुण्य के भण्डार बतलानेमें भी नहीं संकोच करते और माता बहिनोंको वेश्याओंकी शिक्षासे समाज सुधार और बड़े २ गौरवलाभ बताने लगे ऐसे वञ्चकोंसे उत्तेजित जो अज्ञानवश ऐसी कुप्रथाओंमें फसनेवाली स्त्रियां उनकेलिये लज्जा भय कुलाचारका बन्धन धर्मोपदेश व्रतशिक्षा भोजन वस्त्रादि नियमादि जिन साधनोंसे उनके शील व्रतकी रक्षा और परिणामविशुद्धि होसके उसीप्रकार करना उनके माता पिता गुरुजनोंका कर्तव्य है।

यह उपदेश केवल निर्मलकुल रक्षार्थ तथा सुशाल सन्तान द्वारा द्विजातीय उच्च कुल तथा आय क्षेत्र आर्य भूमिका सबके साम्हने माथा ऊंचा करनेकेलि येही नहीं है किन्तु उन विधवा स्त्रियोंके आत्माको उन्नत बना कर उनके उद्धार करने का और संसारमें मोक्ष मार्ग जारी रखानेको आर्ष विवाह और वर्ण व्यवस्था एक मात्र उपाय है वास्तवमें जैनधर्म सच्चा और खरी बात कहनेवाला है और संसार वाग्जाल कपट कूट मिथ्यात्व [क्रोध कषायादि परिपूरित है इसलिये संसारके उद्देश्योंसे जैनधर्मके उद्देश्य ठीक उलटे पड़ते हैं परन्तु जब यह जीव संसार की ठगोरीसे दुःखीहोके सुख ढूंढ़ता है तब इसे जैनधर्म के वीतराग उद्देश्योंकी अवश्य शरण लेनी पड़ती है जैसे महात्मा गान्धी ऐसे नेताओंको भी विधवाविवाह अनिष्ट कुप्रथाकी ओर झुकते हुये भी आखिर अखण्ड ब्रह्मचर्य का शरण लेनाहीं पड़ा तथा असहयोग भी परसम्बन्ध त्यागका नाम है जैन शास्त्रमें हर जगह समस्त दुःखोंका मूल और बन्धका कारण परसंसर्ग ही बतलाया है यह भी उसी सिद्धान्तकी छाया है अन्यथा संसारमें दूसरा सुखका मार्ग ही नहीं है पर विषयी पुरुषोंको विषयान्धतामें तो जैनधर्मके उद्देश्य और कठोर व्रतविषय कषायके रोकनेवाली जिन भगवान की आज्ञायें विष समान ही प्रतीत होती हैं इसीलिये हर एक साधारण आत्म,-ज्ञान शून्य धारण करनेमें असमर्थ हो विषय कषायके विवशहो अंड वंड बकने लग जाते हैं यही तो कारण है कि हमारे जैन समाजमें ही बहुत से पंडितम्मन्य अपने को विद्वान् माननेवाले जैन शास्त्रोंका मुख्य उद्देश्य अहिंसा और ब्रह्मचर्य इत्यादिकके विरुद्ध विधवा विवाह मांसभक्षण रात्रि भोजन अभक्ष्य भक्षण मूर्तिपूजन-निषेध वर्ण व्यवस्था लोप भारतके स्वराज्य मिलने का मुख्य कारण धर्म भ्रष्ट होना समझते हैं यह तो हमारे जैनी भाइयोंकी दशा है और स्वराज्यके सूत्रधाररूप स्वर्गीय माननीय तिलक महाराजको अपने धर्मपर अटल श्रद्धा देखिये कि मरण समयमें कहाकि यह समय हमारे ईश्वर भजन का है अब हमसे किसी प्रकार की अन्य बात चीत न करें

इस सबका तात्पर्य यह है कि जिनको दू-
रदर्शिता है और कुछ अनुभव है वे तो ऋषि
वाक्यो की अवहेलना नहीं करते एक बार
समझमें न आवें तब भी एक समय ध्यानसे वि-
चार कर के समझ लेते हैं और जिनके श्रद्धान
नहीं है वे मनुष्य अपनेको ही सर्वज्ञ मान बैठते
हैं और अर्थका अनर्थ करते हैं यही कारण है
अर्जुन लालसेठी नाथूराम प्रेमी जुगुल कि-
शोर मुख्त्यार चन्द्रसेन भगवान दीन जी
इत्यादिने अपने को ही सर्वज्ञ मान लिया है
और कहते हैं कि सर्वज्ञ कोई होता ही नहीं
इत्यादि अश्रद्धा वाक्य इन लोगोंके विषयमें पद्-
मावती पुरवाल जैन गजट आदिमें कई बार नि
कले हैं पाठकोको विदित ही है इसी हेतु तो
इन लोगोंने जैनहितैषी आदिमें उदयलाल
कासलीवालके विधवा विवाहके विषयमें लिख
मारा कि उदयलालजी को विधवा ब्राह्मणी
के साथ जैन विवाह विधिसे विवाह होगया।
भला समझनेकी बात है कि जैन शास्त्र तो वि-
धवा विवाह निषेधक है फिर विधवा विवाह
का जैन विवाह विधिसे होना कैसा ? धो-
खा देकर जैन समाज को ठगनेके सिवाय और
कुछ नहीं है। हमारा किसीसे विरोध नहीं है
हम अपनी श्रद्धासे कहते हैं इसप्रकार तब सम्यग्दर्शन
ज्ञान चारित्र रूप मोक्ष मार्गका एक अंश सम्यक्
चारित्र जो मोक्षका साक्षात् कारण है वह
विधिवा विवाह तथा वर्ण व्यवस्थाका भङ्ग क-
रना यद्वा तद्वा जैसा तैसा खाना इत्यादि कारणों-
से प्रायः लुप्त ही हो जायगा और सम्यक्
चारित्रका लोप भय तो मोक्षका कारण ही न ठहरा
जबसम्यक् चारित्र मोक्षका कारण नहीं तब
सम्यक् चारित्र पर अश्रद्धा हुई और जब अ-
श्रद्धा हुई तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान भी लुप्त
हुये जागये । मिथ्या दर्शनमिथ्या ज्ञान मिथ्या-
चारित्र होगये फिर जैनत्व कहां रहा ? आत्मश्रद्धा
कहा विषय कषाय आत्म ज्ञानके शत्रु जब उनका एक
छत्र राज्य भया तब आत्म ज्ञान और आत्मश्रद्धा
कहां ? यद्यपि वर्तमानमें विधवाओंकी संख्या बहुत
और विधवापनेका दु:ख बहुत है इस ओर दृष्टि डा-
लते हैं तब विधवा विवाह निषेधकी कठोर और भी-
षण प्रतिज्ञा है परन्तु इसमें विचलित होनेसे आगमी
कुमार्ग रूप समुद्रके उमलनेसे समूल डूबजानेकी आ-
शङ्का है इसलिये समाज नेताओंका कर्तव्य है कि
अपनी जातिको पञ्चायतोंसे कन्या विक्रय बन्द करादें
और कन्या विक्रय बंद तब होय जब कन्या विक्रय
करनेवाले और खरीदने वालोंके यहां जातिके पञ्च
लोग लाडू जीमने न पहुंचे उस भोजनको मलसे भी
अनिष्ट समझें और अनमेल विवाह न करें जो ऐसा
करें उनके भी खाने न जावें, जाति दण्ड कायम करें
देखें कैसे विधवा होतीं हैं फिर वे ही इनी गिनी कम
होंगीं और शास्त्रानुसार बराबरी कर या ड्योढ़ा या
दूना हद दर्जे अढ़ गुढ योग्य वरके साथ विवाह हो,
लड़कीका विवाह १२ वर्ष से नीचेमें न हो और बालक
का कमसे कम सोलह वर्षसे नीचा न हो और गरीब
अमीरमें भेदभाव न होना चाहिये प्राय: बाल बालिकायें
पठित होने चाहिये मूर्ख न हों । ये तो आगमीके
लिये सुधार किये जावें और वर्तमान विधवाओंको
शिक्षा तथा दस्तकारीका काम सिखाकर उन्हें सुमार्ग
लगानेकी चेष्टा करें विधवाओंके खान पान स्वादिक
राग वर्द्धक न हों और गहने बिलकुल न पहरावे

आंय माता पिता सास श्वसुर कुटुम्बीजन उनके मन को दुखावै नहीं, उनका मान रखें उन्हें घरकी पुरखनी बना दें इत्यादि अनेक उपायोंसे शील रक्षा करते हुये समाज कुलके घरके हितकारी काम उनसे लेवें उनका सुखमय जीवन बनादें गोरष्ट कामोद्दीपन भोजन न देवें, इस प्रकार की शिक्षायें देकर शील व्रतमें दृढ़ करें यह सब समाज व कुटुम्बियोंका कर्तव्य है।

उपर्युक्त लेखसे पाठकगण व श्रीमान् ब्रह्मचारी जी युक्तिसंगत और श्रीआचार्योंका आन्तरिक अभिप्राय भली भांति समझ सन्तुष्ट होंगे अन्यथा मुझे फिर भी सूचना देंगे मैं ऐसी आशा करता हूं।

श्रीमान् ब्रह्मचारीजीने एक और भी प्रश्न किया है कि विधवाविवाह खण्डन पुस्तक में लेखक देश म्लेच्छोंके पञ्चमगुणस्थान ही लिखते हैं और श्रीगोमटसारजी शास्त्रमें लिखा है कि चक्रवर्ती के साथ आयेहुए म्लेच्छोंके छट्ठागुणस्थान होता है।

उत्तर— इसका तात्पर्य ऐसा है कि श्रीमन् गोमटसार जी के पिछले श्रीलब्धिसार विभागमें स्वयं शंका उठाई है कि म्लेच्छोंके मुनिदीक्षा कैसे सम्भवे! वहांपर साफ २ यह लिखा है कि चक्रवर्ती के साथ जो म्लेच्छ आते हैं उनके चक्रवर्ती आदिके साथ विवाह सम्बन्ध होते हैं इसलिए वे मुनिदीक्षा योग्य होते हैं अथवा जो म्लेच्छ कन्याये चक्रवर्ती विवाह लाते हैं उनके जो सन्तान होती है वह भी मातृपक्षसे म्लेच्छ कहीजाती है इससे वे मुनि दीक्षा योग्य होती है तथा छट्ठागुणस्थानसंभवे।" इससबका यह मतलब कि चक्रवर्ती आदिके साथ विवाह सम्बन्ध होने लगे तब उनका संस्कार जन्म होगया तब द्विजन्माओंके सम्बन्धसे म्लेच्छ देशोपाधि न रही आर्य क्षेत्रवासी और द्विजन्मापना व्यपदेश किसी अपेक्षा अंशोंमें होनेसे दीक्षायोग्यता कही और म्लेच्छ कन्याओंकी सन्तान तो कुलजन्ममें भी कुछ आर्यत्व है तब म्लेच्छता सर्वांश घटित न रही इसीलिए अंकसदृष्टिमें प्रतिपाद्यादिस्थान कथनमें म्लेच्छ देशीय मनुष्य जो मुनि कहे उनके परिणाम छट्ठे गुणस्थानके परिणामों में जघन्य भी नहीं कहे और उत्कृष्ट भी नहीं कहे किन्तु मध्यम कहे इसका भी यही मतलब है कि म्लेच्छ देशके मनुष्योंके कर्ममें म्लेच्छता न होनेसे तो परिणामोंमें वक्रता नहीं और आर्यकुलका जन्म न होनेसे संस्कार विशेष नहीं इससे उत्कृष्टता नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि उनके सोवांशोंमें म्लेच्छता नहीं तब म्लेच्छ देशोपाधि नहीं रही इसलिये आम मार्गमें तो म्लेच्छदेशीय मनुष्योंका दीक्षा योग्य कुल तथा छट्ठा गुण स्थान नहीं यह एक विशेष बात है कोई यहां शङ्का करे कर्ममें म्लेच्छ भी संस्कार करले तब म्लेच्छ देशीय म्लेच्छोंकी तरह उनको भी द्विजत्व और आर्यत्व कहना चाहिये? सो नहीं, म्लेच्छीय देशीय मनुष्योंके परिणाम सरल है अज्ञ हैं और कर्म म्लेच्छ जड़ वक्र हैं उनके उस जातिके परिणाम होते हैं इनके नहीं।

मुझे इतना और कहना है कि बहुत भाई कहते विधवाविवाहसे जनसंख्या बढ़ेगी यद्यपि मानवीय उपायसे यह कहा जाता है परजनवृद्धि वास्तवमें पुण्य पाप फलाधीन है। कृषक हरएक उपाय करते हैं पर सुभिक्ष दैवाधीन है वही जनसंख्यामें समझना।

नोट—इन प्रश्नोंका श्रीमान् धर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजीने जैनमित्रमें छपाये थे सो कृपाकर ब्रह्मचारीजी इन उत्तरोंको भी जैनमित्रमें स्थान देवें।

—झम्मनलाल जैन तर्कतीर्थ।

बरहनके जैन मंदिरकी घटना ।

एक दर्शकसे इस बातका पता लगा है कि जैनमंदिर पहले उसके पासके गांव सरायहीमें था बरहनके लोग वहीं दर्शन करने जाया करते थे किन्तु मंदिरके दूर रहनेके कारण प्रतिदिन स्त्री बच्चे सराय नहीं जा सकते थे इसलिये बरहनके भाइयोंने यह सोचा कि विना दर्शनके अपने को रोटी खाना ठीक नहीं हमारे स्त्री बच्चों को दर्शन नहीं मिलते, कभी कभी आलस्यके कारण हम भी दर्शन करने नहीं जाते इसलिये यदि बरहनमें ही मंदिर बनजाय तो बहुत अच्छा हो। हम लोग चार पांच घर हैं पूजा वगैरहका ठीक बंदोबस्त हो जायगा और हमारा धर्मकार्य अच्छी तरह सधता रहेगा। सब लोगोंका सम्मति होगई। मंदिर बनकर तयार होगया। प्रतिमा विराजमान होगई और विवाह शादीमें जो रुपया आता सो सरायके मंदिरमें न पहुंच कर बरहनके मंदिरमे जाने लगा।

परंतु यह बात सरायके कुछ भाइयोंको सहन नहीं सकी। वे बरहनके भाइयोंसे जलने लगे और हर एक तरहसे नुकसान पहुंचाने लगे।

कुछ दिनबाद बरहनके भाइयोंने धर्मकी भक्तिमें आकर अपने यहां जलयात्रा [जलेब] का भी प्रबंध कर लिया और पर्यूषणके बादमें उन्होंने जलेब निकलना निश्चय कर लिया। सरायके जो भाई बरहनके आदमियोंसे जलते थे उनको बरहनमें जलेबके निकलनेसे और भी ईर्षा हुई। वे अपनी जलनको दबा न सके और इस साल भादों सुदी १५ स को अपनी ईर्षाका परिचय देदिया।

बरहनमें सरायके जिन भाइयोंकी सिहिरवानीसे उत्पात हुआ है वे ये हैं—मिहोलाल वल्द धनवंत, चंद्रसेन वल्द, विनोदीलाल वल्द खुन्नूलाल चिरंजीलाल वल्द खुन्नूलाल हीरालाल वल्द छेदेलाल, जाहरलाल वल्द जिनेश्वर दास। जाहरलालकी उम्र कम है कुछ समझदार भी कम है। मिहोलालजी आदिने जाहरलाल लडका को 'कहो भाई कुछ वीरताको काम करोगे ? आदि प्रकारसे मजबूर कर यह कहा कि बरहनमें जलेब निकलने वाली है यदि वहां पर जलेब निकली तो अपनी बड़ी निंदा होगी नाक कट जायगी इसलिये जहां तक बने बरहनकी प्रतिमाजीको गुम कर दो जिससे जलेब बंद हो जाय, बस, जाहरलाल निडर था ही। वह वहांसे बरहनके मंदिरमें आया और प्रतिमा [illegible] करके पिछोरेमें लपेट कर घूरेमे गाढ दी।

चूंकि वह दिन जल यात्राका था इसलिये पं० रंछोरदासजी चावली आदि अन्य २ ग्रामोंके बहुतसे मनुष्य वहांपर मौजूद थे। प्रतिमाजीकी चोरी होते ही सबके चेहरों पर सुस्ती छागई। बरहनके लोग रोने लगे। अन्न पानी ग्रहण करना बंद कर दिया। पं०रंछोरदासजी आदिने बहुत कुछ लोगों को धैर्य बंधाया परंतु जिनको धर्मका कुछभी खयाल है वे कब मान सकते हैं।

खोज करने २ लोगोंकी शक जाहरलाल पर गई। [illegible]कानेसे उसने प्रतिमा उठाना स्वीकार किया। वह कबूल तो कर [illegible]या किंतु 'यहां रक्खा है वहां रक्खी है' इत्यादि रूपसे टालमटोल बतलाने लगा। बहुत विनय करने परभी उसने प्रतिमा लाकर न दी।

भाई सोनपाल जो सरायकेही रहने वाले हैं उनको यह बात सह्य नहीं हुई उन्होने नंगी तलवार कर जाहरलालको डराया तब उसने घूरेमें प्रतिमा बतलाई। उप-

स्थित भाइयोंने प्रतिमाजीका अभिषेक कर मंदिरमें विराजमान किया और चित्तको शांत किया।

यह बात कम निंदाकी नहीं। जिन लोगोंकी सलाहसे यह काम हुआ है उन लोगोंने बड़ा भारी अपराध किया है जब ये लोग अपने प्राणप्यारे धर्मपर आघात करनेमें भी नहीं चूके तब और किस बातमें चूक सकते हैं हमारा यह निवेदन है कि श्रीयुत भाई उल्फतरायजी आदि जो सरायके प्रतिष्ठित पुरुष हैं उनको चाहिये कि पद्मावती परिषदके मंत्रीको यह सूचना दें और आगामी गंजके मेले या उडेसरके मेलेमें जहां परिषद् का अधिवेशन हो उसमें जाकर सब बात कहनी चाहिये और परिषद् जब तक फैसला न दे तब तक इन लोगोंके साथ खान पान बंद कर देना चाहिये। आज यह काम हुआ है कल और कुछ होगा तो इस प्रकार हर एक मन माना ही जो कार्य कर डालेगा। इस निंदित कार्यसे हमारी जातिकी बड़ी तोहीन हुई है। लोग यह समझते हैं कि हम जो निंदित कार्य करेंगे किसी को मालूम न होगा परन्तु अच्छा किया कार्य तो छिप जा सकता है बुरा कार्य नहीं। आशा है इस बातपर अवश्य ध्यान दिया जायगा।

मोमदी और फरिहाके पंच ध्यान दें।

कुछ दिनोंसे इस जातिमें ऐसे ऐसे लोग पैदा होगये हैं जो अपनी प्राणोंसे प्यारी पुत्रियों का मौतके मुंहमें जानेके लिये तयार बुड्ढे खसटों के साथ तक विवाह कर देते हैं और उसके बदलेमें मनका धनले मालदार बनने की कोशिश करते हैं। पहिले यह रिवाज कहीं २ सुनीजाती थी और जो कोई भी इस कुकर्मको करता था वह छुपे २ करता था प्रगट होजाने पर सब लोग उसकी बुराई करते थे। यहां तक कि कहीं कहीं तो पंचायतसे अलहदा भी ऐसा आदमी कर दिया जाता था परन्तु अब मतलबी लोगोंके बढ़जानेसे और पंचायतोंके धर्मकर्ममें शिथिल होजानेसे दूसरा ही ढंग होगया है। थैलियों का मुंह रुपयोंसे भरनेके लिये और विना कमाई किये हुयही गुलछर्रे उडानेके लिये लोगोंने अपनी लडकियों को बेचना शुरू कर दिया है। लोभके फंदमें फस कर आगे लडकियोंके सुख दुःखकी कुछ भी चिन्ता न कर उन्हें उनके मा बापों चचा ताउओं और नाते रिस्तेदारोंने कुएमें पटकना प्रारंभ करदिया है। ऐसे पापी आजकल प्रायः हरएक ग्राममें नये नये होते जा रहे हैं। अन्य पाप तो ऐसे हैं जिनके प्रगट होजानेसे पंचायत जाति भाई बिरादरीसे छेक देते हैं, राजाभी साबित हो जाने पर दंड देता है पर यह लड़की का बेचना. ऐसा पाप है जिसके करने वाले को कोई दंड ही नहीं मिलता। लेकिन जो धर्मकी, व बिरादरीकी हानि इस पापसे होती है वह किसी भी पापसे नहीं होती। यदि कोई एक मनुष्य मार दियाजाय तो उसको उसी समय कष्ट होता है और उसके मरनेसे कुछ इने गिने लोगों को ही दुःख पहुंचता है परन्तु लडकी बेचनेसे तमाम बिरादरी का नुक्सान होता है, सब लोगोंका मुंह काला किया जाता है और लड़की को रह रह कर हत्या की जाती है। कारण लोभके वशीभूत हो कर मा बाप या चचा ताऊ

लडकी को बुड्ढेके हाथ बेचते हैं। बुड्ढा मनुष्य लडकी की समस्त इच्छायें पूर्ण नहीं करसकता या थोडेदिन जीवित रहकर ही मर जाता है और अनाथ लडकी सैकडोंतरह के अनर्थ कर अपना धर्म कर्म सब खो बैठती है एवं जातिके लोगोंको न अपने ससुराल व मायकेवाले आदि समस्त रिश्तेदारों को बदनाम करती है।

इस तरह प्रायः प्रत्येक प्रान्तमें लडकी बेचने वाले विरादरीमें पैदा होजाते हैं परंतु तो भी इस पापको रोकनेका कोई भी उपाय कहीं की भी पंचायतने नहीं निकाला है। इस पाप को रोकनेका तरीका केवल सरल यही है कि ऐसे विवाहोंमें कहींके भी पंच शामिल न हों। न तो कोई बरातमें आवे और न कोई लडकावालेके यहां नेग चलाने आवे यदि इस प्रकार का प्रबंध लोग अपनी अपनी पंचायतोंमें करलें तो शीघ्र ही यह पाप बंद हो सकता है।

हम समय समय पर इस विषय पर लिख चुके हैं, चित्र द्वारा समाजके कानोंमें वृद्ध विवाह कन्या विक्रयकी बुराइयां डाल चुके हैं परन्तु पत्रके पढनेवाले लोगोंकी कमी होनेसे और धर्म कार्योंमें अधिक शिथिलता होनेसे जैसा फल चाहिये, नहीं होसका। आज हमारे पास मोमदीके पंचोंका एक पत्र आया है उसकी कुछ उल्लेख योग्य बातोंको हम यहां उद्धृत करते हैं और फरिहा [मैनपुरी] व मोमदी [आगरा] दोनों जगहके पंचोंसे प्रार्थना करते हैं कि इस कुकर्म को जैसे हो रोकदें। बंद करानेमें आपको सब ही जैनी अजैनी सहायता देंगे और कोई न भी दे तो बिना आपके शामिल हुये भांवरें भी तो नहीं पडसकती।

पत्रका सारांश यह है कि—

"यहां [मोमदी] बादाम लाल नामके एक जैनी हैं। उनके भाई और भाईकी स्त्रीका देहांत हो चुका है लेकिन वे दो लडकियां छोड मरे हैं।

वे दोनों ही विवाहके योग्य हैं। बादामलालकी उम्र इस समय ६० वर्षके करीब है तो भी थोडे दिन की जिंदगी को सुख पूर्वक काटनेकी धुनमें वे अपनी नादान भतीजियोंके साथ अन्याय करना चाहते हैं। अतिदहार फरिहा [मैनपुरी] निवासी रेवतीलाल बजाज [पचास वर्षसे अधिकके] मिलगये हैं। आपने साई [बयाना] रूपमें सात सौ रुपयेका कपडा भी एक दलालकी मारफत इनके पास भिजवा दिया है। विवाह वैशाखमें होजानेकी तदबीर हो रही है।

हमने बादामलाल को बहुत प्रकार समझाया है पर वे लडकी बेचनेसे रुकते नहीं।"

उक्त पत्रको पढकर जो हमें दुःख हुआ है उसको लिखना शक्तिके बाहिर है। प्रत्येक जातिहितैषी को भी ऐसा ही दुःख होगा। परंतु खाली दुःख ही दुःख मनाने या सहानुभूति दिखलानेसे ही अब काम नहीं चलता। यह समय अमली कार्यवाही करने का है। हम विरादरीके हर एक छोटे बडे पुरुष और स्त्रीसे साग्रह निवेदन करते हैं कि वे ऐसे विवाहोंमें हरगिज हरगिज शामिल न हों। आपके यदि ये लोग नातेदार हैं तो भी बुरे मार्गपर जाने वाले और एक भोली भाली लडकी की हत्या करनेवाले इन लोगोंकी इस कुचेष्टामें किसी प्रकार भी सहानुभूति न दिखलावें। यदि किसी लोभ या मोहके फंदमें पडकर आप इस कुकर्ममें शामिल हुये तो इस पापफलके आप भी भागी होंगे।

फरिहा और मापदींके पंचो ! आप लोगोंकी सरहद्दमें यह जीती जागती नरमेध यज्ञ होने वाली है ! इस पापकी जो बदबू फैलेगी वह आपके महकते हुये यशको एकदम दबा देगी इसलिये तन मन धनसे इसे रोकिये। रुपयेके जोरमें एक विषयी मनुष्य इस तरह अपना हाथ सफाया करे और आप अपने बलको कुछभी काम में न लावें यह क्या ठीक है ? पंचोंके सामने लाख पति और खाकपति दोनो समान हैं।

रेवतीलालजी के भाई लाला गुलजारीलाल जीसे भी हम यह विना कहे नहीं रहसकते कि आप सब तरहसे समझदार हैं, कलकत्तेमें मुद्दतसे अच्छे अच्छे लोगोंका सुहबत करते हैं फिर भी क्या इस विषयासक्त अपने भाई को जोर दे कर, ज्ञानदे कर, ऊंची नीची सब तरह की समझा कर रोक नहीं सकते ?

विरादरीके गुरु पांडेलोगोंको भी हम हाथ जोडकर प्रार्थना करते हैं कि आप अपनेमें इस बात की मुनादी पिटवादें और कडी प्रतिज्ञा करलें कि वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह को हम कदापि नहीं पढेंगे। यदि यह विवाह होगया और हमारे पांडेमहाशयोंके हाथसे ही यह आहुति हुई तो समझना होगा कि बहुत शीघ्रही इस जाति का, पांडे महाशयों का और पंचलोगोंका आसन कंपायमान हो रसातलको जानेवाला है !

क्या हम आशा करें कि इस पापको रोकने की सबलोग चेष्टा करेंगे !

मालवा प्रान्तिक पद्मावतीपुरवाल-परिषदके सभापति श्रीमान पं० गौरीलालजी

वैयाकरण-सिद्धान्त शास्त्रीका हौसंगावादमें दिया हुआ भाषण।

सज्जन वृन्दो ! और महिलाओ ! यद्यपि यह पद्मावती पुरवाल जाति अनेक श्रीमान् धीमान् जाति मान्य धार्मिक पुरुष से भरी हुई है तथापि मुझे जो इस पद पर आरूढ़ होनेका अनुरोध किया गया है उसके प्रतिरोध करने की मेरेमें सामर्थ्य नहीं है। क्योंकि आपका प्रभाव वात्सल्य और भ्रातृस्नेह का भार मुझे प्रस्तुत कार्यसे नहीं हटने देता किन्तु निर्धार्यमाण कार्य करनेमें आपके साहाय्य को दृढ़ रखनेकी प्रेरणा करता है।

यह वंश अनादि कालसे अविच्छिन्न निर्दोष मोगो को ग्रहण करता हुआ अनेक कल्पकालों के सुषमादि-कोलोंमें यथा योग्य पुरुषरत्नोंको उत्पन्न करता हुआ अभ्युदय और अपवर्गके साधनोंमें मुख्य होता रहा है। अर्थात् बहुतसे जीव इस जातीय शरीरमें जन्म लेकर त्रिवर्ग और अपवर्गके भोक्ता बने हैं। इसी अवसर्पिणी कल्पके चतुर्थ कालमें अनेक प्राणी इसमें जन्म धारण-कर यथा योग्य शुभगतिके पात्र बने हैं वही जाति अब इस दुष्षम समयके मध्यमें प्राप्त होरही है तबभी अनेक देशव्रती पुरुषों को उत्पन्न कर इतर आर्य्य-जातियों के साथ सदाचार पूर्वक अपनेको जाति

हितैषी ही नहीं किन्तु देश हितैषी भी बनावेंगे।

इस जातिको वर्तमान प्रगतिके अनुसार क्या२ करना चाहिये इसका विचार आपलोग स्वयं करेंगे परन्तु सूत्रपात करना अपना कर्तव्य समझताहूं।

वर्तमानमें यद्यपि यह यहां चारभागों में विभक्त है। (१—आगरा—एटाप्रान्त, २—मालवा—भोपाल प्रान्त, ३-दक्षिण भण्डारा वर्धा प्रान्त, ४-कोटाप्रान्त) तथापि अपने स्वरूपसे च्युत नहीं, किन्तु कोटा प्रान्त के पद्मावतापुरवालों को सत्समागतिके न मिलनेसे उनसे आत्म हितैषी जैनधर्मका भेद होगया है हमें पूर्ण आशा है कि आप उनके इस धर्मभेद को अभेद करानेको पूर्ण चेष्टा करेंगे।

सज्जनो! जो तीनों प्रान्तोंके पद्मावती पुरवाल हैं। उनके आचार व्यवहार धर्माचरण तथा शारीरिक मानसिक शक्ति और उनका आर्थिक सामाजिक दैशिक रीतियों को उच्चतम बनाते हुए इस वंश वृक्षको निर्दोष सफल बनावेंगे जिससे कि इसमें आनेवाली आत्माएं इसकी सघन छाया का आश्रय लेकर मिष्ट फलोंको भोगें।

इस जातिमें जो स्त्रियें, शिक्षाके विना अपने कर्तव्यसे च्युत होगई हैं जिससे पुत्रादि कुटुम्बियोंसे तिरस्कृत होकर वा उनसे वियुक्त होकर नाना प्रकारके क्लेशोंको सह रही हैं। स्त्रियोंमें शिशु धारण शिशु पालन, शिशु पोषण कुटुम्ब सेवा आतिथ्य सत्कारके साधन भूत शिक्षाके न होनेसे पुरुषोंकी अवस्था कितनी शोचनीय होरही है जो कि आपसे छिपी हुई नहीं है। हमारी संतान कितनी निर्बल होगई है जो जवानीके समयमें बुढ़ापेका अनुभव करलेती है और बहुत सी सन्तानें युवतियोंको विधवा बनाकर बच्चोंको अनाथ बनानेमें सहायक बनती हैं।

जिस भारतमें पहले औषधियोंका कितना उपयोग होताथा और आज कितना होरहा है यह किसीसे छिपा हुआ नहीं है। इससे केवल शरीर ही नष्ट नहीं होता किन्तु हमारा धर्मभी नष्ट हो रहा है।

जिस भारतका व्यापार सम्पूर्णमें हमारा नामभी प्रसिद्ध व्यापारियोंमें गिना जाताथा और हमीलोग अपने देशका कृषि शिल्पकारोंको उच्चतम बनाकर विदेशोंमें अपने और देशके नाम को ऊंचा करतेथे आज हम विदेशियोंके दलाल व कमीशन एजन्टके नामसे कलंकित किये जाते हैं। हम व्यापारियोंके ही निमित्त से हमारे देशके बहुतसे श्रमजीवी विना अन्नके त्रसित हो रहे हैं और हम भी उनके समान निर्धन बन गये हैं। क्या हम अब भी न समझेंगे कि हमें व्यर्थ व्यय दूरकर अपने दैशिक व्यापार को बढ़ाना चाहिये?

जो जातिमें नैमित्तिक कुरीतियां घुस गई हैं जिनसे धर्म अर्थ और काम पुरुषार्थमें बाधाएं आती हैं उन कुरीतियों को एक दम हटा देना चाहिये।

अपनी संतानमें शिक्षाके अभावसे अनेक पुरुष सेवावृत्ति कर जीवन निर्वाह कर रहे हैं सो यह भी स्वराज्यका घात है अतः हमको उचित है कि संतान को ऐसी शिक्षा देवे कि जिससे अपने जातीय शरीरकी वृद्धि करते हुए धर्मानुकूल सच्चे व्यापारी बनें और देश हितैषी कहावें।

हमारे हृदयग्राही जिन मंदिर हैं जिनका निर्माण हमारे हितके लिये पूर्व पूर्वे पुरुषोंने किया है उनकी भक्ति पूजन और स्वाध्यायादि कर अपने को सच्चरित्र बनानेका प्रयत्न करें जिससे इसलोक और परलोकमें मनस्वी बनें। तथा जहां पर ऐसे धर्म साधन नहीं हैं उन स्थानोंसे सम्बन्ध छोड़ देवें। या वहां परचैत्यालय आदि बना कर देव पूजनादि कर्तव्योंका पालन करें।

भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें रहनेके कारण पद्मावती पुरवालोंकी संख्या कहीं कहीं बहुत ही न्यून है, अतः सभी प्रान्तोंका ऐक्य सम्मेलन बढ़ानेके लिये परस्पर प्रेम सम्बन्धी उत्सवादि गमनागमन आदि बातोंका प्रचार होना परमावश्यक है। इसकेलिये प्रान्तीय परिषदोंको ध्यान देना चाहिये।

मुझे पूर्ण आशा है कि हमारे सभ्यवृंद सहमत होकर उपयुक्त साधनोंमें सहकारी बनकर ऐसे प्रस्ताव निर्धारित करेंगे जिनसे जाति सदा वृद्धिंगत होवे।

अन्तमें उन श्रीऋषभदेव तीर्थकर स्वामीका नाम हृदयमें विराजमान करते हैं जिन्होंने इस जाति को वर्ण व्यवस्था देकर उचित कार्य और मोक्ष साधनमें लगाया है।

शुभसमाचार।

श्रीदिगम्बर जैन पद्मावती पुरवाल परिषद मालवा के उपदेशक परमेष्ठीलालजी का दौरा, मालवा प्रान्तमें शुरू हुवा है, भाईयों को इनके ठहरने आदिका प्रबंध ठीक कर धर्मोपदेश सुनना चाहिये और सभाके द्वारा पास हुवे प्रस्तावोंको काममें लेना चाहिये। वार्षिक चंदा जैसे कि पारसाल बालमुकुन्दजी दिगम्बरदासजीके आनरेरी दौरेमें दिया था, उससेभी अधिक उत्साहके साथ देकर रसीद ले लेना चाहिये, और जो कुछ धर्म लाभ उपदेशकके द्वारा हो, उसकी रिपोर्ट सभाके दफ्तरमें मीहीर छावनी भेजना चाहिये

प्रार्थी:—

मगनलाल जैन

मंत्री- उदेशक विभाग, शुजालपुर।

पावापुरके लिए चंदा, सेवक धनपतरायने कराया कटहरा निकलवा कर पीतलका लगानेके लिये।

१२) बा० मधुसूदन दास जौहरी काशी

१०) बा० बनारसी दासजी जौहरी ,,

१०) बा० मोतीलाल कुंजीलाल ,,

६॥) चुन्नीलाल अजमेरा ,,

५) रेवतीराम पद्मा० पु० उत्तरपाड़ा

५) चंदाराम मुंन्नीलाल,,

२) ला० कलियानदास मैजीराम,,

उत्तरपाड़ाके मंदिरमें पत्थर बिछानेके लिए ला० धनपतरायजीके समधी— ला० कलियानदासजीने ५०) दिये।

शोक और सहानुभूति।

पाढम निवासी पंडित सोनपालजी की धर्म पत्नी का फागुनवदी पंचमीके दिन स्वर्गवास होगयी। आप कई महीनोंसे बीमार थीं। उमर करीब २१-२२ वर्षके थी। पंडितजीको यह दूसरा विवाह था। खेद है कि आपको इन पत्नीका भी असामयिक वियोग सहना पड़ा। पंडितजीको संसार स्वरूपका चिंतवनकर पूर्ववत कार्यरत होना चाहिये।

नगले स्वरूप निवासी हकीम झुन्नीलालजीके ज्येष्ठभ्राता लाला चम्पारामजीका फालगुन वदी ७को देहावसान होगया। आपके कुटुम्बको धैर्य और शान्ति बनाये रखकर धर्म कर्म में तत्पर होना चाहिये। हम उक्त दोनों परिवारोंके साथ समवेदना प्रगट करते हैं।

जैन सिद्धांत प्रकाशक (पवित्र) प्रेस, श्यामबजार-कलकत्ता। फाल्गुन वदी १था, १९८७

पद्मावती परिषद्‌का मासिक मुखपत्र

पद्मावतीपुरवाल ।

(सामाजिक, धार्मिक, लेखों तथा कविताओंसे विभूषित)

संपादक—पं० गजाधरलालजी 'न्यायतीर्थ'

प्रकाशक—श्रीलाल 'काव्यतीर्थ'

वर्ष. ३ अं. १-१७

विषय सूची ।

सूचना—

"जैनधर्म पर सेठीजीके विचार और उनकी आलोचना" नामक लेख गत ६वें अंक से छपरहा है, पाठक ध्यान और मनन पूर्वक पढ़ें, पढावें। इस अंकमें पाठकोंके मनोरंजनार्थ स्थानाभावसे कोई गल्प या प्रहसन न दे सके, इसके लिये क्षमा प्रार्थी हैं। आगामी अंकमें इसकी पूर्ति होगी। प्रकाशक—

वार्षिक मू० २)

व्यवस्थापक—
श्रीधन्यकुमार जैन, 'सिंह'

१ अंक का≡)

जरूरी-सूचनाएं!

१—जिन महाशयोंके पास यह अंक नमूनेके बतौर भेजा जाता है उनके पास उत्तर न आनेसे आगामी अंक २≡) की वी० पी० से भेजा जायगा इसलिये जिनको लेना मजूर न हो वे कृपाकर मनाईका पत्र दे दें।

इन अंकोके साथ इसपत्रका तीसरा वर्ष समाप्त हो गया इसलिये आगामी अंक वी० पी० से भेजा जायगा जिन महाशयोंको ग्राहक न रहना मंजूर हो वे इस अंकके पाते ही मनाईका पत्र डालदें। बहुतसे भाई सालभर तक तो पत्र लेते रहते हैं और जब कीमत वसूल करनेके लिये वी० पी० भेजी जाती है तो वापिस लोटा देते हैं इसप्रकार धार्मिक पैसेका दुरुपयोग करना अच्छा नहीं इसलिये जिन महाशयोंने साल भरतक अंक लिये हैं उन्हें जरूर २) हीं किमत भेज देनी चाहिये।

३—अब वी० पी० भेजनेमें ।) लगते हैं, इसलिये ग्राहकोंको वी०पी० न मंगाकर मनीआर्डरसे ही २) भेजना चाहिये। ग्राहक चाहे जिस समयसे बन सकते हैं, इसलिये नये बननेवाले ग्राहकोंको किसी अंककी बाट न जोह कर अभी ही २) भेज कर ग्राहक बन जाना चाहिये। शीघ्र ग्राहक बननेवालोंको पीछले १, २, ३, ४, ५—६ अंक मुफ्तमें मिलेंगे! शीघ्रता कीजिये!

४—हमारे पास पद्मावतीपुरवालके पुराने अंक कुछ बच रहे हैं, उनको हम एक आनेके हिसाबसे देना चाहते हैं। जिनको जितने अंक मंगाने हों, वे उतनेकी टिकट भेजकर मंगालें। पोष्टेजके लिये जुदी टिकटें भेजनी चाहिये।

रुपये भेजनेका पता:,— मैनेजर "पद्मावतीपुरवाल"

८ नं० महेन्द्रबोसलेन, पो० श्यामबाजार—कलकत्ता।

पद्मावतीपुरवाल।

मासिकपत्र

धर्मध्वंसे सतां ध्वंसस्तस्माद्धर्मद्रुहोऽथमान्। निवारयन्ति ये सन्तो रक्षितं तैः सतां जगत्॥
कंटकानिव राज्यस्य नेता धर्मस्य कंटकान्। सदोद्धरति सोद्योगो यस्स लक्ष्मीधरो भवेत्॥ (गुणभद्राचार्य)

३ रा वर्ष | कलकत्ता, माघ-फाल्गुण, वीरनिर्वाण सं० २४४७, ई० सन् १९२१ | ११-१२ वां अंक

दीन।

(लेखक—श्रीयुत पंडित दरबारीलालजी जैन न्यायतीर्थ)

(१)

दीन दीन छिः दीन अरे कैसा दुखदायक।
हुआ आज यह शब्द बनाया है नालायक॥
यद्यपि हूं मैं मनुज धर्मको पालन करता।
चोरी कभी न करूं झूंठसे भारी डरता॥
तौभी मेरा जगतमें नहीं कहीं विश्वास है।
वही सत्य अवतार है जिसके पैसा पास है॥

(२)

जो होकर उन्मत्त पाप लाखों करते हैं।
दीनोंको हा चूस चूसकर घर भरते हैं॥
कहलाते हैं साहुकार वे इस भूतल पर।
मरते हैं वे साधु दीन भूखों नूजन्म भर॥
इसी नियमसे आज हा मैं भी भूखों मर रहा।
उदर पूर्तिके ही लिये हाय हाय हूं कर रहा॥

(३)

तनमें कपड़ा नहीं बदन सारा नङ्गा है।
लाज बचाने बापराजका यह यह अङ्गा है॥
पाठक क्यों हंस पड़े हमारी बातें सुनकर।
तुम्हीं बचाओ हमें हृदयमें कुछ करुणा धर॥
पर दीनोंकी बातपर कौन लगाता कान है।
अगर भूलसे लगगया तो मिलता अपमान है॥

(४)

सच है मेरा ख्याल सधन कैसे कर सकें।
जो न जानते दुःख, दुःख वे क्या हर सकें॥
उनको क्या मालूम शीत है कैसा होता।
बोता कांटे अंग अंगमें सब सुख खोता॥
गद्दों पर वे सोरहे लगी मुसहरी है जहां।
वे क्या जाने जगतमें कौन दीन रोता कहां॥

(५)

अरे ग्रीष्मका समय अनलसा बरस रहा है।
शीतलताके लिये हृदय यह तरस रहा है॥
चलती है क्या पवन ? नहीं यह अग्नि लपट है।
या दीनोंके लिये अग्नि देवकी झपट है॥
कुछ भी हो पर धनिक को कुछ भी है धक्का नहीं।
दीन कौन जो इस समय हो हक्का बक्का नहीं॥

(६)

वर्षा आई उमड़ उमड़कर घन घिर आये।
चातकको आनन्द, दीनको विपदा लाये॥
पृथ्वीने भी हरे रंगके कपड़े धारे।
किन्तु फिरें बस दीन जगतमें मारे मारे॥
सिर पर वर्षा हो रही पद हैं कीचड़में धसे।
स्वर्ग लोकको भ्रान्तिसे नरक लोकमें हैं फ़से॥

(७)

हा ! टूटी झोपड़ी एकसे सरा वोर है।
पानीकी बौछार लगरही सभी ओर है॥
तनमें कपड़ा नही अङ्ग है फूला जाता।
नरकोंका भी दुःख देखकर लज्जा खाता॥
पर ये ऋतुयें धनिकको हैं वसंतसे कम नहीं।
पर वसन्त भी दीनको रखने देता दम नहीं॥

[८]

यह होली है उन्हें उड़ावेंगे गुलाल वे।
खावेंगे मद्यादि सहित मिष्टान्न माल वे॥
किन्तु स्वयं ये दीन होलिका सम जलते हैं।
उनकी घीमें सभी किन्तु ये कर मलते हैं॥
अन्नवस्त्र का कष्ट हा पाते हैं ये रात दिन।
दीपमालिका होलिकामें भी चैन न एकदिन॥

[९]

करते हैं प्रार्थना अश्रुसे आखें भरके।
काके करको कमल हृदयमें आशा धरके॥
यदि दिखलाना नरक विधे तो नरक दिखाओ।
पर निर्दय लोकमें कभी मत दीन बनाओ॥
हाय हमारे देशमें दीनोंकी है यह दशा।
फिर धनिकोंकी मण्डली होती है कर्कशा॥

[१०]

धनिको ! है सविनीत प्रार्थना इन दीनोंकी।
दुःख पंकमें फंसे हुए भूखे मीनोंको॥
एक मातृके पुत्र भ्रातृ सम हैं अपनाओ।
इन को करो न चूर्ण किन्तु करुणा दिखलाओ॥
कर दो जो कुछ कर सको जिससे प्रख्य ससार हो।
दुःख घटै अवनति हटै करुणाका विस्तार हो॥

वे मौत मर रहे हैं।

हिन्दोस्तान वाले बे मौत मर रहे हैं।
उनको जो चाहिये करना उसको न कर रहे हैं॥
एम० ए० पढ़े हैं बाबू बीबी निरी दिहाती।
तालीम औरतोंकी दिलसे भुला रहे हैं॥ १॥
डासनका बूट चहिये सूटकी जीन ही हो।
बासिन्द: हिन्द हो कर साहब कहा रहे हैं॥ २॥
हां हैट ह्वाइट अवेका, ख्वाहिश न पगड़ियोंकी।
छोड़े मजहब तरीके टेबुल पर खा रहे हैं॥ ३
सहते हुए तबाही है नामकी खुवाहश।
खान, खान, राय साहेब दौलत लुटा रहे हैं॥ ४॥
काटें गले बिरादर अपने ही भाइयोंके।
मुतलक न बू मुहब्बत, छुरियें चला रहे हैं॥ ५॥
गूंगे मवेशियों पर मुतलक रहम न खाते।
उनको ही बददुआसे "पद्मा" बता रहे हैं॥ ६॥

जैनधर्मपर सेठीजीके विचार और उनकी आलोचना.

(लेखक—श्रीयुत वादीभकेशरी पं० मक्खनलालजी न्यायालंकार, हस्तिनापुर।)

श्रीयुक्त पं० आनन्दशंकर ध्रुव एम. ए. प्रिंसिपल तथा वाइस चैंसेलर विश्वविद्यालय काशी स्याद्वाद जैन महाविद्यालयके १५ वें वार्षिकोत्सवके सभापति नियत हुये थे। उस समय उन्होंने अपने भाषणके प्रारम्भमें कहा था कि—·········मैं अपने अनुभवसे जब विचार करता हूं तब जैन सिद्धान्तके कथनानुसार वस्तुका स्वरूप अनन्त धर्मात्मक ही प्रतीत में आताहूं। ऐसी कोई भी वस्तु दृष्टिगोचर नहीं होती जिसमें युगपत अनेक धर्मोंका सद्भाव न सिद्ध हो। साथही यह बात भी प्रत्येक विचारशील के अनुभव करने योग्य है कि प्रत्येक वस्तु मे जो अनन्त धर्म प्रतीत होते हैं वे उसमें हमेशा से ही हैं, कुछ ऐसा नहीं है कि पहले वस्तु एकधर्मात्मक हो और पीछे अनन्तधर्मात्मक होगई हो, और जब अनन्त-धर्मात्मक वस्तु हमेशासे स्वयं सिद्ध है तब अनन्त-धर्मात्मक वस्तु स्वरूपका प्रतिपादक जैनधर्म भी हमेशासे है यह बात भी सिद्ध होती है।·········
·········जैनोंके नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीरस्वामी इन तीर्थंकरोंके कथन इतिहास में पायजाते हैं और ऋषभदेव आदि तीर्थंकरोंका समय वेदकालसे बहुत पहलेका है " जैनोंके अहिंसा, तप और स्याद्वाद ये तीन बड़े सिद्धांत है। और ये तीनोंही सिद्धांत संसारके हितकारी हैं। जगतके हित करने वाले अहिंसा के पवित्र सिद्धांत की पुष्टिके लिये स्याद्वादका निरूपण जैनोंमें बड़ी खूबीके साथ किया गया है " आदि। उपर्युक्त विद्वानके रेखांकित वाक्योंपर दृष्टिडालकर सेठीजी यदि विचार करेंगे तो उन्हें दूसरोंका एक एक वायरैतक ठीक ज्ञान बतलाना स्वयं बालबुद्धि प्रतीत होगा। जो सिद्धान्त या तत्त्वविवेचन भारतके अन्य समस्त प्रसिद्ध प्राच्यदर्शनोंने माना है जैनमत में उससे सर्वथा भिन्नता है। ऐसी अवस्थामें किन २ मतोंसे जैनमत संग्रहीत है यह बात सेठीजी प्रगटकरें तब हम उनके कथनको अटकलपच्चू न कहकर ठीक समझेंगे। यहांपर बहुत संक्षेप से हम कुछ प्रसिद्ध दर्शनोंके सिद्धांतों को दिखाकर इस प्रकरणको समाप्त करेंगे।

सबसे प्रथम बौद्धदर्शनका ही दिग्दर्शन कराना आवश्यक है क्योंकि उसकी छाया एवं क्षणभंगुर विवेचना से जैनधर्मका अंग बनाहुआ सेठीजी अवश्य ख्याल करते होंगे।

दार्शनिक दृष्टि से बौद्धदर्शन चारभागोंमें बटाहुआ है। [१] सौत्रान्तिक [२] वैभाषिक [३] योगाचार [४] माध्यमिक।

इनमें योगाचार और माध्यमिक बाह्यपदार्थोंको नहीं मानते केवल विज्ञानतत्त्वको मानते हैं। सौत्रान्तिक और वैभाषिक बाह्यपदार्थों को इसलिये स्वीकार करते हैं कि विना उनके ज्ञान नहीं होसक्ता। परन्तु वे भी इन्हें स्वप्नवत् मिथ्या कहते हैं। यहांपर उनका क्षणभंगुरतत्त्व सिद्ध होता है "भिन्नापि देशमाऽभिन्ना शून्यताद्वयलक्षणा। "इस प्रमाणके अनुसार बौद्धोंका मुक्ति सिद्धान्त भी चित्तवासना एवं ज्ञानवासनाकी शून्यतामें चलाजाता है। बौद्धदर्शन

प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण मानता है परन्तु अनुमानका सविकल्प विषय होनेसे उसे वह मिथ्या बता कर केवल एक प्रत्यक्ष ही प्रमाण मानता है। प्रत्यक्षभी वह निर्विकल्पक मानता है अर्थात् उसके मतमे पदार्थका निश्चयात्मक बोध नहीं होता किन्तु दर्शनके समान सत्ता मात्रका बोध होता है। जहां निश्चयात्मक बोध होता है वहीं वह प्रत्यक्ष अप्रमाण होजाता है। क्योंकि वाह्यपदार्थोंकी यथार्थसत्ता उसके मतसे अस्वीकृत है। इसके सिवा बौद्ध रूप, वेदना, विज्ञान संज्ञा, संस्कार इन पांच सन्तान स्कन्धोंको स्वीकार करता हुआ भी इनके वाह्यविषयका सर्वथा अभाव बतलाता है। बौद्धसिद्धान्त के अन्तस्तत्त्वपर दृष्टि डाली जाती है तो वह जैनधर्म से सर्वथा विपरीतही प्रतीत होता है। जो लोग बौद्धमतकी क्षणभंगुरता से जैनधर्मकी तुलना करतेहुए उसके अनित्य सिद्धान्तको पर्याय दृष्टि में गर्भित करडालते हैं वे स्वयं नासमझ हैं और जनताको धोखेमें डालते हैं क्योंकि बौद्धकी अनित्यता वाह्यपदार्थकी अवास्तविकतासे सम्बन्ध रखती है। वहां पर्यायदृष्टि का ध्यान नहीं है, किन्तु द्रव्यके लोपका ध्यान है। ऐसी सर्वथा विरुद्ध अवस्था में जैनधर्म और बौद्धधर्म किसी एक अंशमें भी एकरूपता नहीं धारण करते।

वैशेषिक दर्शन—भारतके प्रसिद्ध प्राच्यदर्शनों में से एक प्रधान दर्शन है। यह दर्शन मूलमें सात पदार्थ मानता है। [१] द्रव्य [२] गुण [३] कर्म [४] सामान्य, [५] विशेष, [६] समवाय, [७] अभाव, इसके मतसे द्रव्य भिन्न वस्तु है और उसकी सत्ता सर्वथा भिन्न दूसरी वस्तु है। सत्ताको व्यापक एवं नित्य मानता हुआ भी उससे सम्बन्धित पदार्थका वह नाश मानता है। गुण कर्म भी उसके मतसे स्वतन्त्र पदार्थ हैं। उनका द्रव्य से सम्बन्ध करने वाला समवाय सम्बन्ध भी स्वतन्त्र भिन्न पदार्थ है। जब वह समवाय नित्य और विभू है ईश्वरीय ज्ञान सर्वत्र क्यों नहीं चलाजाता अथवा मुक्तोंमें ज्ञानादि गुणों का नाश क्यों होजाता है इसका उत्तर उनके यहां कुछ नहीं मिलता। पदार्थ अवस्था से अवस्थान्तर धारण करता है—पूर्व पर्याय का नाश ही उत्तर पर्याय है, ऐसा न मानकर उक्त दर्शन पदार्थ का सर्वथा नाश मानता है इसके लिये उसने अभाव को स्वतन्त्र पदार्थ माना है अस्तु। इन सातोंको मानकर भी समस्त पदार्थ स्वरूप एवं समस्त पदार्थ संख्या वह संकलित नहीं करसका पृथ्वी, जल, तेज वायु इन चारों को वह भिन्न २ मानता है। ये सब भौतिकवादके विकाश हैं यह बात आजकल की साइन्स अच्छी तरह सिद्ध कर चुकी है। शब्द को वह अमूर्त आकाश का गुण मानता है। जड़ में स्वयं क्रिया भी नहीं मानता। परमाणुरूप पृथिव्यादिको नित्य और स्कन्धरूप पृथिव्यादिको सर्वथा अनित्य मानता है।

जीव प्रकृति और ईश्वर को छोड़कर समस्त पदार्थों की सृष्टि व प्रलय एक व्यापक अनाद्यनन्त शुद्ध ईश्वर करता है यह भी उक्त दर्शन का मूल सिद्धान्त है यहांपर हम किसी प्रकार खन्डन मन्डन नहीं करते किंतु यह बतलाना चाहते हैं कि इन दर्शनों के जो सिद्धान्त हैं अथवा जो पदार्थ व्यवस्था है—जैनमत उसके सर्वथा प्रतिकूल है। किसी एक सिद्धान्त का भी उसमें समावेश नहीं है। ऐसी अवस्था में संग्रह तत्व की सिद्धि असम्भव है।

वैशेषिक दर्शनसे मिलता जुलता न्यायदर्शन है। विशेषता यह है कि वह सोलह पदार्थ मानता है। पदार्थ निरूपण शैली एवं पदार्थलक्षण व्यवस्था प्रायः

वैशेषिकके तुल्य है। इसलिये इसविषयमें अधिक लिखना व्यर्थ है। प्रमाणव्यवस्था न्यायदर्शनकारोंने जो की है उसमें समग्र प्रमाणोंका एकत्र समावेश नहीं होता। दूसरे वह दूषित भी है। इनके मतसे चक्षुका जिस प्रकार वस्तुनिष्ठ रूपके साथ संयुक्तसमवाय सम्बन्ध है उसी प्रकार वस्तुनिष्ठ रस और गन्धादिके साथभी उसका वही सम्बन्ध है इसलिये जिस प्रकार चक्षुसे रूपका ज्ञान होता है उसी प्रकार रस और गन्धादिका भी उससे ज्ञान होना चाहिये क्योंकि सन्निकर्षमें उभयत्र एक है। परन्तु वैसा नहीं होता। इसलिये सन्निकर्ष में प्रमाणता घटित नहीं होती, ईश्वरीय ज्ञान में प्रमाण लक्षण जाता ही नहीं। यदि जायगा तो उसका ज्ञान अल्पज्ञ ठहरेगा।

सांख्यदर्शनभी एक प्रधान और सुविवेचित दर्शन है। स्थूलदृष्टिसे इसकी मानीहुई पदार्थव्यवस्था उचित प्रतीत होती है इसलिये दर्शनोंकी ऊपरी काट छांट करनेवाले सेठीजी सरीखे महाशय बौद्धके समान सांख्यदर्शनका समावेश भी जैनदर्शनमें करते होंगे एवं जैनदर्शन के नित्यैकान्त अंगकी सिद्धि उससे करते होंगे। इसविषयमें उन्हें सांख्यदर्शनकी पदार्थव्यवस्थापहले समझलेनी नितान्त आवश्यक है। यद्यपि स्थूलतासे यह बात सांख्यकी बहुत अच्छी प्रतीत होती है कि वह जड़प्रकृति और पुरुष के सम्बन्धसे संसार तथा प्रकृतिका सम्बन्ध छूटनेसे पुरुषको मोक्ष मानता है। पदार्थों को वह नित्य मानता है।

सूक्ष्मदृष्टिसे सांख्य सिद्धान्तका परिज्ञान करनेसे मालूम होता है कि उसकी मानीहुई पदार्थ व्यवस्था विचित्र ही है। वह पचीस तत्वोंको मानता है। "प्रकृतेर्महान् ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्च भूतानि च"। अर्थात् प्रकृति महान्, अहंकार, ११ ज्ञानेन्द्रिय, और कर्मेन्द्रिय आकाशादि ५ भूत रूपरसादि ५ तन्मात्रा और पुरुष इन पच्चीसतत्वोंमें मूलमें दो पदार्थ हैं। (१) प्रकृति, (२) पुरुष। बाकी प्रकृतिके विकार हैं। सांख्य, बुद्धिको भी प्रकृतिका कार्य मानता है। सत्व, रज, तम इन आत्मा में होनेवाले तीनों धर्मोंको भी वह केवल प्रकृतिके ही कार्य मानता है। पुरुषको प्रकृतिका सम्बन्ध होनेपर भी वह अपरिणामी एवं सदा निर्लेप शुद्ध मानता है।

सांख्य सिद्धान्त-"कूटस्थ नित्या चिच्छक्तिरपरिणामिनी विज्ञानधर्माश्रयोभवितुं नहित्येव। न च चिच्छक्तेरपरिणामित्वमसिद्धमिति मन्तव्यम्, चितिशक्तिरपरिणामिनी सदा ज्ञातृत्वात् न यदेवं, न तदेवं यथा चित्तादि इत्याद्यनुमानसंभवात्। तथा यद्यसौ पुरुषः परिणामी स्यात् तदा परिणामस्य कादाचित्कत्वात्तासां चित्तवृत्तीनां सदा ज्ञातृत्वं नोपपद्येत। चिद्रूपस्य पुरुषस्य सदैवाधिष्ठातृत्वेनावस्थितस्य यदन्तरंगनिर्मलं सत्वं तस्यापि सदैव स्थितत्वात् ततश्च सिद्धं तस्य सदा ज्ञातृत्वमिति, न कादाचित् परिणामित्वशंकावतरति।

संस्कृत सुलभ है। अर्थपर दृष्टिदेकर सेठीजी विचार करें कि किसप्रकारके हेतुवादसे पुरुषमें सांख्य कूटस्थनित्यता सिद्ध करता है? क्या रागद्वेषादिभाव पुरुषको मलिन नहीं बनाते हैं? एवं उनके रहनेपर भी ज्ञातृत्वधर्मका कभी अभाव हो सकता है? यदि पुरुषकी निर्मलता सदा तदवस्थ रहती है तो मुक्तात्मा और संसारी आत्मामें अन्तर क्या है? यदि प्रकृतिका सम्बन्धही अंतरका कारण बतलाया जाय तो वैसी विनादोषोत्पादक प्रकृतिका

सम्बन्ध मुक्तात्माओंमें भी वह स्वीकार करता है क्योंकि प्रकृति उसके मतमें व्यापक पदार्थ है। बुद्धि स्वयं प्रकृति जड़का कार्य कभी नहीं होसकी, जैसा कि वह मानता है। पुरुष संसारसे निकल-कर मोक्ष प्राप्त करता है इस अवस्थान्तरमें पुरुष सदा कूटस्थ नित्य ही रहता है? संसार एवं मोक्ष सब प्रकृति के ही कार्य हैं सेठीजी इसपर स्वयं विचार करें। इसके सिवा सांख्यने जो पदार्थव्य-वस्था बतलाई है वह अधूरी है। और वैसी भी नहीं। जब अकाश अमूर्त पदार्थ है तो वह प्रकृतिसे कैसे साध्य होसका है? यदि प्रकृति भी अमूर्त है तो मूर्तपदार्थोंकी सृष्टि कहांसे होगी? जो प्रमाण संख्या सांख्य मानता है वह भी असंगत एवं अधूरी है।

"सांख्यस्य त्रीणि तत्वानि" अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम ये तीन प्रमाण सांख्य मानता है। अधिक लिखना व्यर्थ है। इस पदार्थ व्यवस्था और प्रमाणव्यवस्थामें से जैनधर्मने कौनसा तत्व-स्वीकार किया है सो सेठीजी बतलावें? वेदान्त-दर्शनका तो मूल सिद्धान्त एकतत्वपरही समाप्त होता है। "एकमद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन, आरामंतस्तु पश्यन्ति न तं पश्यति कश्चन" जग-तमें एक परमब्रह्मही पदार्थ है बाकी सब उसकी माया है, और कुछभी नहीं है। जो कुछ पदार्थ जगतके आप हम और जड़ हैं वे सब भ्रमरूप हैं, परमब्रह्मकी मायारूप हैं,। माया अवस्तु है यह सिद्धांत वेदान्तदर्शनका है। वेदान्तवाद आत्माका शुद्ध निरूपण करता है। इसलिये वह निश्चयनय के अनुसार ठीक है। ऐसा कहनेवाले और सम-झनेवाले निश्चयनयको तनिक भी नहीं समझते। कारण कि निश्चयनय वस्तुका यथार्थरूप बतलाता हुआ व्यवहारनयका सद्भाव स्वीकार करता है। वह सद्भाव भी मिथ्या नहीं है। अन्यथा निश्चय नय भी असिद्ध हो जाता है। दूसरे, निश्चयनय सभी वस्तुओंका यथार्थ सद्भाव स्वीकार करता है वेदांत दर्शन परमब्रह्मके सिवा सभी वस्तुओंका सर्वथा लोप करता है। उक्त दर्शनके अनुसार यदि मायाका परमब्रह्म उपादान कारण है अथवा नि-मित्त कारण है, दोनों ही अवस्थामें माया अवस्तु सिद्ध नहीं होती। यदि कुछ भी नहीं तो 'परम ब्रह्मकी माया' यह कथन निरर्थक ठहरता है। ती-सरे परमब्रह्मकी सत्तामात्र मानने वाले किस वचनसे, किस हेतुसे, किस शास्त्रसे किस निज रूपसे किस प्रकार उस एक तत्वकी सिद्धि करते हैं सो कुछ समझमें नहीं आता।

योग दर्शनमें बहुत ही महत्वका विवेचन है उसने सम्प्रज्ञात समाधि और असम्प्रज्ञात समाधिका विधान व्रतविधान, संसार स्वरूप निरूपण, मोक्षतत्व निरूप-ण आदि सब व्यवस्था ऐसी बतलाई हैं जो जैनदर्श-नसे मिलती जुलती प्रतीत होती हैं। परंतु योगदर्शन में पदार्थ व्यवस्था वही है जो सांख्य दर्शनने बतलाई है। सांख्यदर्शन और योगदर्शन दोनों समान हैं थो-ड़ासा अंतर रखते हैं। सांख्यने जिस प्रकार प्रकृति पुरुष आदि २५ तत्व माने हैं योगदर्शन उन २५ त-त्वोंको मानताहुआ एक ईश्वरतत्व और मानता है। जिस सांख्यका हम उल्लेख करचुके हैं वह "ईश्वरा-सिद्धः" इस सूत्रसे ईश्वरतत्वका निषेध करता है। योगदर्शन ईश्वरतत्वको मानता है इसलिये इसके यह २६ तत्व मानेगये हैं। पुरुषको अपरिणामी मानना आदि व्यवस्था वैसीही है जैसी कि हम सांख्यकी

उल्लेख कर चुके हैं। केवलज्ञानकी प्राप्तिमें यह दर्शनभी बुद्धिसत्ताका अभाव बतलाता है पृथ्वी में गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द ये पांच गुण, जलमें चार, अग्नि में तीन, वायुमें, दो, उक्त दर्शन मानता है। यथाक्रम घटालेना चाहिये।

उक्त दर्शनोंके सिवा—मीमांसकदर्शन, शैवदर्शन, प्राभाकरदर्शन, जैमनीयदर्शन, औलुक्यदर्शन नकुलीस पाशुपतदर्शन, रामानुजदर्शन, रसेश्वर दर्शन, पूर्णप्रज्ञदर्शन, चार्वाकदर्शन आदि अनेक दर्शन जगतमें प्रसिद्ध हैं उनका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। जिन प्रसिद्ध एवं कुछ सूक्ष्म विचारक दर्शनोंके बलपर सेठीजी संग्रह सिद्ध करनेचले हैं उन्हींका हमने दिग्दर्शन करादिया है। इसके सिवा जिन २ व्यक्तियोंको सेठीजीने छठे गुणस्थानवर्ती तक बतलाया है उन आधुनिक व्यक्तियोंके मतपर विचार करना भी व्यर्थ है। सेठीजी लिखते हैं कि—

"ईसाको, मुहम्मदको, गुरुनानकको, दादाजी, कबीरजी, राधेस्वामी, जरदुश्त, चैतन्य, कृष्ण रामनी विवेकानन्द, शम्शतबरैज सेन्टजान, समर्थरामदास, दयानन्दजी आर्य आदिको एकान्ती जैनीलोग षष्ठगुणस्थानवर्ती तक भी न माने यह कितनी भूल है और एकान्त दृढ़ है। और मजा यह है कि अपने जैनके बेषके पाखण्डी, व्यभिचारी, और कटमल्ले भी हों तो वे मुनिजीही मानेजायें, यह कैसा अन्धेर है। कितना अनेकान्तमार्ग पतित हुआ है।" यहां पर इस विषयमें हम अधिक न लिखकर आगे लिखेंगे। संक्षेपमें इतना ही कहेंगे कि उपर्युक्त आधुनिक व्यक्तियोंके मत ऐसे हैं जिनमें कोई शूरताके बलपर, कोई राजनैतिकबलपर, कोई परराष्ट्र विजयिताके बलपर, कोई नैतिक मार्गके बल पर, कोई देश सेवाके बल पर कोई समयके आधार पर ही सर्जित हुए हैं, इन व्यक्तियोंके जो कुछ सिद्धांत भी हैं वे तो प्रसिद्ध दर्शनोंके आंगोपांगरूपमें ही स्वीकृत हैं, किन्ही आर्य समाजी आदिको वैशेषिकादिके सिद्धांत ही स्वीकृत हैं। ईसा मुहम्मदके मतोंकी सृष्टि अपूर्व ही है। वहां आत्माकी भी शून्यता है। और प्रधान व्यक्तिके हुक्मसे एक स्त्री, पुरुष तयार किया गया, पीछे पसली काट कर उसीका मनुष्य बना दिया गया। एवं आज तक मरनेवाले सभी एक जगह इकट्ठे हो रहे हैं। सब दुनियाके खतम होने पर वे एक न्यायाधीश ईश्वरद्वारा दोजख या बहिश्त भेजे जायंगे। आदि सभी बातें इनकी ऐसी हैं जो बिना सिर पैरकी केवल मनोरंजन करती हैं। गुरु नानक, दादू, कबीर विवेकानन्द इत्यादि व्यक्तियोंकी बातें उनके भक्तोंद्वारा मतरूपमें मान ली गई हैं वास्तवमें इन व्यक्तियोंका लक्ष्य दूसरा ही था उसे मतके नामसे कहना भूल है। कृष्ण चैतन्यके विषयमें इतिहासकी प्रसिद्धि पर्याप्त है सेठीजी इन्हें छठे गुणस्थानी बतला कर अपनी बिलकुल अज्ञताका परिचय दे चुके हैं। उनकी मंशा तो इन लोगोंको तेरहवें गुणस्थानवर्ती अपने तीर्थंकर मानने तक की मालूम होती है तभी तो लिखते हैं कि "एकान्ती जैनी लोग षष्ठ गुणस्थानवर्ती तक भी न माने, यह कितनी भूल है!" ऐसी २ बे सिर पैरकी बातें हांकनेसे वे सामान्य जनताकी दृष्टिसे भी अधः पतित हो चुके। वहां पर उनके गोम्मटसारके ज्ञानकी कलई भी अच्छी तरह खुल गई और उनके बहुत कालसे छिपे हुए तीव्र माया चारका भी पूरा पता चल गया। छठे गुणस्थानमें किन २ भावोंका उल्लेख है वहां कैसी प्रवृत्ति है, किस प्रकार किस दर्जेका त्याग है, सम्यक् चारित्र और मिथ्या चारित्रमें क्या फर्क है? इन स

म्पूर्ण बातोंमें सेठीजी बिलकुल अन्धे बन गये हैं अ न्यथा ऐसी अज्ञतामयी बातें वे कभी नहीं कहते। साथ ही उन्होंने जैन मुनियोंको जिन शब्दोंमें गालियां दी हैं वह बातभी उनकी अधमता और जैन धर्मसे उन के घृणाभावोंको स्पष्ट सूचित करती है। जो व्यक्तियां मांस भक्षण तक करें एवं विपरीत श्रद्धा रक्खें उन्हें छट्टे गुणस्थानवर्ती बतलाते हैं वांहरी बुद्धि! क्या उनको प्राथमिक ज्ञान साराही नष्ट भ्रष्ट हो गया? इस कथनसे तो मालूम होता है कि सेठीजीको तीव्र मिथ्यात्वके उदयने विलक्षण हो विक्षिप्त बना दिया है। अस्तु। सेठीजी की इन सर्वथा उलटी बातों पर हमें दो चार शब्द कहने पडे हैं। प्रकृतमें वक्तव्य यह है कि उपर्युक्त व्यक्तियोंको बातों [मतों] में कोई पदार्थ व्यवस्था और प्रमाण व्यवस्था नहीं पाई जाती है जिसका संग्रह जैन धर्मको रचना करती हो। इसलिये संक्षेपमें इस मत दिग्दर्शनसे यह बात पाठकोंके ध्यान में भलीभांति आजायगी कि जैनधर्मकी पदार्थ व्यवस्था और प्रमाण व्यवस्था ऐसी है जो किसी भी मत में नहीं मिलती फिर बिना किसी बातका उल्लेख किये सेठीजीने गोलमाल रूपमें जो अपनी ख्याति लाभकी सनकमें यह लेख लिख मारा है कि मूल आविष्कर्ताओंका एक दायरे तक ज्ञान ठीक है और उन्हीं सब दायरेवालोंका सर्व ग्राहिणी बुद्धिसे संग्रह किया हुआ जैनधर्म है यह किस आधार पर लिखा है सो प्रकट करें, साथमें यह भी प्रगट करें कि ईसा मुहम्मद आदि छट्ठे गुणस्थानवर्ती किस आधार पर कहे जा सकते हैं? जैनियोंके जिस गुणस्थान शब्द का उन्होंने उल्लेख किया है तो उसीके अनुसार शा स्त्राधारसे वे बतावें कि किस प्रमाण व युक्तिबलसे उन्होंने यह बात कही है और अब उन्होंने समाजमें एक ऐसी विपरीत बात रख दी है तो उन्हें उसकी प्रमाणता समाजके सामने सिद्ध करनी पडेगी अन्यथा अपने कहे हुएको उन्हें वापिस लेना पडेगा। साथ ही अपनी अज्ञता पूर्ण निंद्य कृति पर बहुत पश्चात्ताप करना पडेगा। यदि उन्हें अपने स्वतंत्र विचार प्रगट करनेका पूर्ण अधिकार है वे ऐसा करनेमें किसीके बंधे हुए नहीं हैं तो समाजको भी अधिकार है कि वह उनका बहुत घृणित रूपमें बहिष्कार कर दे। अस्तु।

सेठीजी यह भी बतलावें जो छह द्रव्य जैनमत ने स्वीकार किये हैं जिनके बाहर कोई द्रव्य शेष नहीं रह जाता वह किस मतमें है जहां कि उनका संग्रह किया गया? यदि कहा जाय कि कोई द्रव्य किसी मतमें कही गई है और कोई किसीमें तो बतलावें कि धर्म अधर्म द्रव्य किस मत में कहीं गई हैं? अथवा जो पुद्गलादि द्रव्यों का स्वरूप जैनधर्म बतलाता है वह कहां मिलता है? जीवस्वरूप निरूपण जो जैनधर्म में पायाजाता है वैसा किस दर्शनमें एक अंशरूपमें भी पायाजाता है? श्रावकोंको प्रतिमाओंके दर्जे, गुणस्थानोंद्वारा अनुभवमें आनेवाले भावोंका तरतमरूपसे वर्णन, कषायाध्यवसायस्थान, योगाध्यवसायस्थान, योग-अयोग व्यवस्था, भावबंध द्रव्यबन्धादि व्यवस्था, लेश्याओंद्वारा कषायभावोंका चित्र पटोल्लेख, कर्मप्रकृतियोंके असंख्यात आवरणों का बन्ध सत्ता उदयरूपमें अतिसूक्ष्म स्पष्ट विवेचन, त्रिकरणचूलिका, दशकरणचूलिका बन्धोदयकूट, कर्मावस्थाप्रदर्शक गत्यादि मार्गणानिरूपण आदि बातों का किसीभी दर्शनमें उल्लेख कियागया हो तो सेठीजी प्रगट करें।

ये बातें ऐसी हैं कि जिनका अवलोकन और

मगन आत्माको आनंदित करता है और उपयोगको अपनी ओर खींचता है। अभी तक ये बातें जैनेतर-भारतीय एवं पाश्चिमात्य विद्वानोंके कर्णगोचर नहीं हुई हैं अन्यथा ये तात्त्विक सिद्धांत विद्वानोंके हृदयङ्गम होने पर फिर उन्हें उनके माननेके लिये बाध्य बनादेंगे। इसके सिवा ये सब बातें ऐसी हैं जो अनुभवमें आती है परंतु साथ ही वे इतनी सूक्ष्म हैं कि उनका विधान किसी अल्पज्ञ द्वारा नहीं किया जा सकता। जिन सूक्ष्मभावों को एवं कर्मकूटों का उल्लेख आचार्योंने ग्रंथमें प्रकाशित किया है वह उनका कहा हुआ कभी नहीं हो सकता। क्या कोई अल्पज्ञ आत्मीय भावोंका एवं इन इंद्रिय-अगोचर सूक्ष्म-कर्म पुंजोंका साक्षात्कार करसकता है।

वैसी अनुभवगम्यबाते कभी उल्लेखमें नहीं लायी जा सकीं। यथा एक निगोद शरीरमें जीव, द्रव्य प्रमाणसे सिद्धोंसे अनंतगुणे हैं तथा अतीतकालके समयोंसे भी अनंतगुणे हैं। स्कन्ध, आवास पुलवि देह आदि उनके भेद हैं। जीव भव्य अभव्य होते हैं आदि। यद्यपि ये बातें भलेही अल्पज्ञानियों को आगमप्रमाणके सिवा दूसरे प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं हों तथापि जैनधर्मकी अन्योन्य अनुभवगम्य स्थूलबातोंसे इनकी यथार्थतामें कोई भी सन्देह नहीं रहता ये सब बातें अन्यत्र कहीं नहीं पायी जाती। इसलिये जैन धर्म सर्वज्ञ प्रणीत है यह बात भली भाँति समझमें आजाती है।

इसीलिये बहुतसी सूक्ष्मबातोंका उल्लेख करते हुए आचार्योंने स्वयं प्रगट किया है कि जिनमत अगाध है हम उन सूक्ष्मताओं का उल्लेख कहां तक कर सके हैं जो कुछ वे करसके हैं उसमें भी उन्हें जगह जगह कहना पड़ा है कि आगे इसके अवक्तव्य है। तथा अपने कथनमें भी उन्हें अपने छद्मस्थ होनेके कारण वास्तविक तत्त्वबोध के लिये दूसरे २ आचार्यों की शरण लेनी पड़ी है और उन्होंने पूर्वाचार्योंके प्रमाण माना है। यही कारण है कि समस्त जैनग्रन्थ पूर्वापर अविरुद्ध एक श्रृङ्खला में गुथे हुए हैं। उनमे जहां-कहीं कथा ग्रन्थोंमे लोगोंको विरोधसा प्रतीत होता है वह नगण्य एवं स्मृतिव्युच्छित्तिवश है। पुरातत्वज्ञोंके स्मृति पथ प्रमाणकालको जानकर एवं ग्रन्थोंके लिपि प्रारंभ कालको जानकर सीता जनककी पुत्री है या रावण की है ऐसी २ विरुद्धता लानेवाली बातों पर जैनधर्मको पूर्वापर विरुद्ध कहनेका दु:साहस करना और उछलकूद मचाना पांडित्यसे सर्वथा बाहर है हम तो यहांतक कहते हैं कि सर्वार्थ सिद्धि वाले देव, मानुषी प्रमाणसे त्रिगुण हैं अथवा सप्तगुण हैं ऐसा विकल्प पक्ष भी स्मृतिबोध और पूर्वाचार्योंके प्रमाण बलसे होगया। कारण कि इनबातोंका उल्लेख तो सर्वमान्य है उनके आधार पर आचार्योंकी परम्परामें स्मृतिपथवश ऐसा हुआ परन्तु उस विकल्पको श्रवण करनेवाले उत्तराचार्योंने पूर्वाचार्योंकी श्रृंखला तोड़कर उच्छृंखलता नहीं की इसी लिये जैनमार्ग बराबर सर्वत्र एक श्रृंखलामें अविरुद्ध चला आरहा है। उस अगाधतत्त्वसागरके अतलस्पर्शी विवेचनमें केवल एक दो बातोंका विरोध विद्वानोंको उच्छृंखलता पैदा नहीं कर सकता किन्तु जिज्ञासा मात्रमें प्रश्नोत्पादक है।

यदि जैनधर्म संग्रहात्मक होता तो ऐसा अनुभवगम्य विवेचन कभी नहीं उसमें मिलता। दूसरे संग्रहमें सदा मूलके तत्त्वोंका अंशांशरूपसे समावेश रहता है। उनका विरोध नहीं होता। आज संसार के बहुभाग मत—क्या प्राचीन क्या अर्वाचीन सभी ईश्वरमें कर्तृत्व स्वीकार करते हैं, और यह संस्कार

प्रायः हरएक मनुष्यमें यहां तक घुसा हुआ है कि उसके हरएक कार्यमें उसे ईश्वरका सहारा प्रतीत होता है। इतने बड़े बहुभाग प्रतिष्ठित मतोंके सि-द्धांतको जैनधर्मने छोड़ दिया ! अन्य दर्शनकारोंने मुक्तात्माओंके अतिरिक्त एक शुद्धबुद्ध, अनाद्यनन्त, व्यापक परमात्मा स्वीकार किया है, यहां उसका स-र्वथा निराकरण किया गया है। जिस संग्रहमें खास खास सर्वमत स्वीकृत बातोंको अंशांशरूपसे विवे-चन भी नहीं मिले वह संग्रह कैसा ? यह बात ह-मारी, समझसे तो बिलकुल बाहर है। दूसरे-संग्रह काल कौन माना जाय ? यदि जैनधर्म पहिलेका है जैसा कि अन्यान्य प्राचीन दर्शनोंके शास्त्रोंमें उसका उल्लेख पाया जाता है और अन्य सांख्य, बौद्ध आदि दर्शन पीछेके हैं, तब तो संग्रह बनता नहीं। यदि ये दर्शन पहिलेके हैं जैनधर्म पीछेका है तो फिर सेठीजीके कथनानुसार संसार भरमें निष्पक्ष महा-त्माओंका प्रभाव होनेके कारण-संग्रहात्मक सिद्धांत का आविष्कार सर्व मान्य होनेसे ये मत भेद एक २ दायरेमें क्यों संकीर्ण बन गये ? जब कि सेठीजीके कथनानुसार पदार्थ अनन्त धर्मात्मक है तब संग्रह का विकाश होनेके पीछे मूल आविष्कर्ताओंके ज्ञान विकाशको उस संग्रहात्मक खोजके आगे बढ़ना चा-हिये था न कि अनन्त धर्मोंको छोड़ कर एकान्त ध-र्मकी संकीर्णतामें आना चाहिये। सेठीजी संग्रहको सर्वग्राहिणी बुद्धिसे विचार करनेवाला स्वयं बतलाते हैं और यह भी आप फरमाते हैं कि पहिलेकी अपेक्षा वर्तमानमें उत्तरोत्तर ज्ञानका विकाश बढ़ता जा रहा है और ऋषभदेवसे महावीर स्वामी तक और महा-वीरस्वामीसे पीछे अब तक क्रमसे ज्ञान विकाश बढ़ा है। ऐसी अवस्थामें ये सभी प्रसिद्ध दर्शन-जिन्हें कि सेठीजी और उनके भक्त गण-सरस्वती सहोदर तथा बाबू भगवानदीनजी आदि जैन धर्म रूपी शरीर के हाथ-पांव, हाथ पेट, पीठ आदि आंगोपांग समझ रहे हैं—एकान्तके गड्ढेमें क्यों गिर पड़े ? बढ़े हुए ज्ञानके विकाशमें उन्हें महावीरस्वामीसे अधिक स-र्वग्राहिणी बुद्धिसे पदार्थ विचार करना था, न कि उल्टे एकदायरेमें संकीर्ण एवं अनुदार बनना ? सेठी जी पदार्थकी अनन्त शक्तियों वाले ज्ञानको ही यथार्थ ज्ञान समझते हैं यह बात तो उनकी निर्विवाद सिद्ध है। ऐसी अवस्थामें जैनधर्म यदि आगेका है तब भी वह संग्रहात्मक सिद्ध नहीं होता, क्योंकि संग्रह किस का, बौद्धादि तो पीछे के हैं। दूसरे विकाशवादियोंका ज्ञान पहिलेसे बढ़ा हुआ है इसलिये उसे पदार्थ स्व-रूपकी ओर समधिक बढ़ना चाहिये था अन्यथा क-हना होगा कि आज कलका ज्ञान केवल भौतिकवाद का कुमति विकाश है। यदि जैनधर्म पीछेका है तब भी वह संग्रहात्मक सिद्ध नहीं होता। अन्यथा पीछे का होनेसे बढ़े हुए ज्ञान विकाशमें अनेक मतान्तरों की सृष्टि प्रबलरूपमें नहीं होनी चाहिये।

अब दोनों प्रकारसे जैनधर्म संग्रहात्मक नहीं ठ-हरता और वह सर्वग्राहिणी बुद्धिसे निष्पक्ष महात्मा-ओंद्वारा सुविवेचित है तो वही सत्यताकी कोटिमें आता है, वैसी अवस्थामें उत्तरोत्तर सेठीजीका ज्ञान विकाश भी नहीं सिद्ध होता। एक बात यह भी है कि जब एकान्तके पीछे संग्रहात्मक अनेकान्त और उसके पीछे फिर एकान्त यह सिलसिला विकाशवाद के अनुसार सदा चलता रहेगा तो अनेकान्ती भी एक दायरेमें आजायगे जैसा कि आपने बतलाया ही है। फिर पदार्थको अनन्त शक्तियोंका ज्ञान कभी किसी को भी नहीं हो सकेगा। जो कुछ होगा वह आगे चल कर मिथ्या ठहर जायगा। ऐसी अवस्थामें पदार्थ नि-

णेय एवं यथार्थ बोध छिपा ही रहेगा। सभी विशेषज्ञ मिथ्या और संदिग्ध कोटिमें ही सम्हाले जायंगे। उत्तरोत्तर बढ़े हुए ज्ञानके विकाशने यह अनर्थ और पहुंचाया।

इस हमारे कथनको सेठीजी केवल अपने समान तर्कणारूपमें न समझें, किन्तु जब कि वे तीर्थंकरों तकका ज्ञान आज कलसे तुच्छ बतला चुके हैं तब उपर्युक्त कार्य कारणरूप कथन पर विचार करें, फिर इन सब बातोंका युक्तियुक्त उत्तर दें तब हम उनके पांडित्यकी यथार्थता समझेंगे। यदि उन्होंने हमारी सब बातोंका कुछ भी उत्तर न दिया और वे अपनी सृष्टि उत्पत्ति तथा लोकोत्पत्ति रचनाकी धुन में ही लगे रहे तो बाबू सूरजभानुके समान उनकी बातोंको शिक्षित समाज बुरी तरह ठुकरादेगा। उन की एक भी बात मान्य कोटिमें नहीं आ सकी। हमें खेदके साथ लिखना पड़ता है कि एक समझदारके नामसे ख्याति पाया हुआ पुरुष किसी विशेष आकांक्षासे इतना पूर्वापर विरुद्ध अनर्गल बोलने लग जाय कि युक्ति सीमाका भी उल्लंघन कर डाले। सेठी जीके इस सीमोल्लंघनके विषयमें ता० २५-१-२१ के दैनिक भारतमित्रकी चार पंक्तियां पाठकोंके सामने रख देते हैं "जिस प्रकार मदिराका नशा होता है और उस नशेमें विवेक बुद्धि नष्ट हो जाती है। उसी प्रकार अकरणीय कारवार, अर्थ लोलुपता तथा संग सोहबत, अपने धर्मके सम्बन्धमें अज्ञान इत्यादि बातों का भी नशा होता है और इस नशे में चूर मनुष्य सोच नहीं सका कि क्या विधि है और क्या निषेध?"

सेठीजीने किस प्रकार अपनेको वर्तमान समयका विशेषज्ञ (तीर्थंकर) सिद्ध करना चाहा है एवं किस प्रकार वे पूर्वापर नियम विरुद्ध बोले हैं इस विषय को पाठकोंको बोध करानेके लिये उनकी कुछ पंक्तियों को हम नीचे उद्धृत करते हैं।

"ऐसे भी पुरुष उत्पन्न होते रहते हैं जो इन भिन्न २ मतोंको संग्रह दृष्टिसे ग्रहण करके आपेक्षिक तत्त्व ज्ञानका प्रचार करते हैं। ये लोग अपने समकालीन लोगोंका तथा पुरातत्त्वदर्शियोंसे जो ज्ञान प्राप्त होता है उसको एकत्र करके वा मत दृष्टिको त्याग करके विचार शृंखलामें लेते हैं और उसको सापेक्ष रूपमें अनेकान्त वा नयवादसे प्रगट करते हैं। इससे लोकका आग्रह दूर होता रहता है और वस्तुतः ज्ञान का प्रचार होता है। ये लोग अपनी तरफसे कुछ घटाते बढ़ाते नहीं। किन्तु संग्रहीतरूपमें विशाल दृष्टि से अपने समय तक प्राप्त हुये विकसित ज्ञानको प्रगट करते हैं। मतलब यह है कि पृथक २ तत्त्व दर्शियों और सिद्धान्त प्रणेताओंके मतोंमें जो एकान्त दृष्टि का दोष और संकीर्णताका रोग उत्पन्न हो जाता है जिससे जनता रोग ग्रसित हो कर पक्षपात अदूरदर्शिता एवं कदाग्रहके कोषमें फंस जाती है उसको ये एकान्तवादी विशालदर्शी लोग दूर करते रहते हैं। ये लोग एक प्रकारसे न्यायाधीशके तौर पर होते हैं, इनको किसी विशेष मतसे पक्ष नहीं होता न किसी बाह्य वेष व्यवहार पर आग्रह होता, सर्व मतोंकी सत्यताको आपेक्षिक रीति पर स्वीकार करते कराते हैं। इसके साथ यह भी (स्मरण) रहे कि संग्रह कर्ता अनेकान्तवादी अपने समय तकके विकाशको प्राप्त हुए ज्ञान पुष्पोंको (अनेकान्त) स्याद्वाद और नयवादके सूत्रमें गूंथ कर हाररूपसे प्रगट करते हैं, उनके विचारोंकी सीमा वहीं तक रहती है। मानव ज्ञान उन्नतिशील है, अतः जो कुछ ज्ञान भिन्न २ सिद्धांतियोंका एकत्रितरूपमें इन संग्रह कर्ताओंद्वारा

प्रगट होता है वही ज्ञान कालान्तरमें स्वयं एकांत रूपमें मत हो जाता है, कारण कि उसके पीछे समय २ पर अनेक मत निकलते हैं परीक्षाकी कसौटी पर खींचे जाते हैं। और जनतामे प्रचलित और श्रद्धास्पद होते जाते हैं। जितने समय तक ये नवीन मत दिलों में जगह नहीं पालेते उतने समय तक अन्तिम अनेकान्तवादियोंका ज्ञान संग्रह एवं व्यवहार अनेकान्त रूपमें रहता है। परन्तु नवीन २ सिद्धांतोंको उद्‌भूति के पीछे भी उन्हीं अनेकान्तवादियोंके अनुयायी स्वयं पूर्वके प्राप्त ज्ञान पर ही जमे रहते हैं और उनको भी उसका आग्रह हठ हो जाता है।"

पाठकगण, इन पंक्तियोंपर स्वयं विचार करें कि सेठीजीका कथन कितना पूर्वापर विरोधी है। पहिले वे स्वयं अनेकान्तवादियों को वस्तुतः सत्य-ज्ञान प्रकाशी एवं लोकके आग्रह को दूर करनेवाले बतलाते हैं। आगे चलकर उन्हेंभी वे आग्रही हठी एवं मिथ्या ज्ञानी बतलाते हैं। इस विषयमें हम अधिक लिखना नहीं चाहते, पहिले यह बात स्पष्ट करचुके हैं कि ऐसा एकान्त अनेकान्त पदार्थ व्यवस्था की यथार्थता नहीं करसकते। अनेकांत या अनेकांतका स्वरूप वस्तुधर्मसे सम्बंध रखता है। सेठीजी कहां तो अपनी तर्कणाके बलपर सब मतोंको मिलामिलूकर धर्म कर्मका लोपकर छूत अछूतके भेदको मिटाने की चेष्टा करते हैं और इसमें जैनियोंको शामिल करनेके लिये उनके अनेकान्त सिद्धान्ततकका अर्थका अनर्थ एवं महान दुरुपयोग करते हैं। कहां उनके उपर्युक्त कथन सेही सभीमत मिथ्या ठहरजाते हैं। जबकि वे एकके पीछे एकको मिथ्या बतलाते हैं। और विकाशवादानुसार यह प्रवाह बतलाते हैं तब कोई मत एकान्त या अनेकांत एक ग्राहिणी बुद्धिसे विचाराहुआ एक दायरेवाला, अथवा सर्वग्राहिणी बुद्धिसे विचाराहुआ अनेकदायरेवाला ठीक सत्य नहीं ठहरता। आगे चलकर वे धर्मकी वृद्धि समयानुसार बतलाते हैं जैसाकि वे लिखते हैं "सर्वमतों और व्यवहारिकमार्गों को देशकाल और जनताकी परिस्थितिके अनुसार लौकिक अभ्युत्थान एवं ज्ञानविकाशके अनुसार आवश्यक मानते हैं। उनके अनावश्यक अंश, रूढ़िगतभागकी कांट छांट करते रहते हैं और इसप्रकार प्राचीनमें नवीन मिलातेहुए लोकको आगे उन्नतिमार्गमें खींचते हैं। जनताको एकस्थान पर स्थिर रहकर गलने सड़ने नहीं देते, परन्तु व्यवहारमार्ग एवं रहनसहनका रीतिरिवाज ये लोगभी समयके अनुसार सर्व भिन्न भिन्न जनताके रिवाजोंका सार खींचकर बनाते हैं जो इसबातका सूचक होता है कि इस-मार्ग पर चलनेवाले अनेकान्ती हैं आग्रही नहीं।" जब सभी बातें समयानुसार हैं तो कोई धर्म यथार्थ परिस्थितिएवं स्थिर सिद्धान्तवाला नहीं कहाजासकता। जब जैसा समय होगा और उस समय के लोगोंका जैसा ज्ञान होगा उस ज्ञानके बलसे वे जो कुछ पदार्थ रहस्य समझेंगे और जिस प्रकार अपने सुभीतेके सहारे सुखदायक व्यवहारमार्ग समझेंगे वही उस समय ठीक समझाजायगा। ऐसी अवस्थामें कोई नहीं कहसक्ता कि वास्तवमें क्या ठीक बात है? पदार्थ स्वरूप क्या है?

व्यवहार धर्ममें भी आजकलके विलासिताकी ओर दौड़नेवाले विधवा विवाहके प्रवर्तक आप सरीखे लोगोंको बुद्धिके अनुसार आपके मन्तव्यानुसार यह कहना असंगत होगया कि व्यभिचार और डकैती

बुरे हैं। पहिले समय वालोंने अपने समय और अपनी धार्मिक बुद्धिके अनुसार व्यभिचार, डकैती को महापाप समझा था परन्तु आज कलके विलासी विधवाओंकी जीवदया करनेवाले और दुष्काल तथा विदेश गमनसे अबलाकी तेजोसे सताये हुए आप सरीखे पुरुषोंके विचारानुसार व्यभिचार और डकैती अधर्म नहीं कहे जासकते। जबकि उनसे जीवदया होती है फिर अधर्म कैसे? भारतके सभी महर्षियोंने एक निश्चित रूपमें जो इन व्यभिचारादिक्रियाओं को पाप रूप बतलाया है वह ठीक नहीं। कारण कि वे उतने ज्ञान विकाशी नहीं थे जो यह समझकर कि देश कालानुसार धर्म-अधर्म होजाता है-व्यभिचार डकैती आदि को पुण्य पाप अथवा धर्म अधर्मके विकल्प रूपमें लिखते। तब कहीं वे पदार्थ व्यवस्थाके ठीक विधायक कहे जाते। उनका एक निश्चित रूपका कथन आज कलके सेठीजी सरीखे विशेषज्ञ महात्माओं को बिलकुल असंगत प्रतीत होता है। क्योंकि वह समय ज्ञान शून्य था। विचारे महार्षियों को तो केवल मोक्ष जानेकी धुन सवार थी, वे क्या जाने कि संसारका ऐश आराम भी कोई चीज़ है या नहीं? अथवा उसका निषेध आज कलके निकृष्ट संहनन वालोंकी बढ़ी हुई कम जोरीकी तीव्राकांक्षाके अनुसार उन्हें दुःखदायी मालूम होगा। यदि वे भी केवल परमाणुकी चौदह राजू गतिका प्रकाश न कर भौतिक वादके किसी विद्युच्चमत्कार का आविष्कार करने एवं समयोपयोगी धर्म बतलानेमें अपनी कोई सम्मति प्रगट कर जाते तो जरूर वे आज कलके पाश्चिमात्य विकाश वादमें ऊंचा आसन पा जाते। परन्तु उन्होंने उस मोक्ष तत्वके पाने एवं शुद्धोपयोगी बननेकी धुनमें लोक पूज्यताकी कुछ भी परवाह नहीं की-यह भी उनकी भूलही कहनी चाहिये।

अस्तु, इस विषयमें हम आगे लिखेंगे। प्रकृतमें यही बतलाना है कि जब सेठीजी सब मतों और व्यवहारिक मार्गोंको देश काल और जनताकी परिस्थिति के अनुसार लौकिक अभ्युत्थान एवं ज्ञान विकाशके अनुसार आवश्यक मानते हैं तो कोई मत संसार में ठीक नहीं कहा जासका और न कभी कहा जासकेगा। क्योंकि एक तो देशकालकी परिस्थिति दूसरे ज्ञानविकाश ये दोनों बातें ऐसी हैं जो अपने-अपने समय और ज्ञानके अनुसार धर्मका निश्चय बनाती रहेंगी। ऐसी अवस्थामें निश्चित पदार्थ स्वरूप एवं सत्यधर्म एकरूपमें कभी नहीं ठहर सकता। जो देश वर्तमानमें ऐसे हैं जिनमें धान्यकी कमी एवं प्राच्य संस्कार वश लोग मांस भक्षण किया करते हैं जैसे कि वर्तमान भूगोलके अनुसार "ग्रीनलण्ड" (एक देशका नाम) का बतलाया जाता है। तो क्या सेठीजी अथवा उनके जैसे विचारवाले इस बातका कोई सदुत्तर देंगे कि उन देशवासियोंका मांस भक्षण ही धर्म है? वहांकी जनताकी परिस्थितिके अनुसार यदि वे मांस भक्षण को भी धर्म बतलानेका निस्साहस करेंगे तो उन्हें प्रगट करना होगा कि धर्मका क्या लक्षण है? सेठीजी और उनके गुरु एवं उनके पोषक सेवी भक्तगणोंसे हमारा यह प्रश्न है। सेठीजीके ऊपर उद्धृत की गई पंक्तियोंसे यह बात भली भांति प्रगट हो जाती है कि कोई धर्म ठीक नहीं, सब धर्म झूठे हैं। क्योंकि वे अनेकान्त मतोंको भी जिन्हें कि वे सर्व ग्राहिणी बुद्धिसे विचार करनेवाले कहते हैं कालानुसार एकान्ती, हठी कहते हैं और साथ ही वर्तमान समयकी मांगके अनुसार सेठीजी सब धर्मोंके भेद भावको मिटा कर वर्णभेद, जातिभेद, शीलकुशीलभेद आदि सभीको उड़ा देना चाहते हैं और उस

प्रयोगसे भारतवर्षको जल्दी स्वराज दिला कर उसे फिर पाश्चिमात्य देशोंकी तरह सुखी बनाना चाहते हैं। वास्तवमें सेठीजीका यह प्रयोग ऐसा है कि महात्मा गांधी, विजय राघवाचार्य, सी० आर० दास, अलीबन्धु, अरविन्दघोष, स्वर्गीय तिलक प्रभृति किसी भी राजनीतिज्ञ, देशनेताके हृदयमें नहीं आ सका। अब देशोद्धार होनेमें कुछ ही विलम्ब समझना चाहिये। यदि इस गहरे विचारसे लिखे गये " मेरा स्वतंत्र अनुभव " लेखसे न हुआ तो फिर वे प्रजोत्पत्ति और सृष्टयुत्पत्ति नामक लेखोंको लिखने वाले हैं जिनमे शर्तियारूपसे प्राच्यपुरुषोंको घोसलामें रहने वाले सिद्ध किया जायगा, उन लेखोंसे भारतकी चरमोन्नति तत्काल ही समझिये। यदि हमारे विचारोंमें उपेक्षा भाव न हुआ तो उनका दिग्दर्शन भी हम पाठकोंको करावेंगे।

आज कलके सभी प्रसिद्ध २ देशनेतागण प्राच्य भारतके महत्वके गीत गाते हैं, वे महर्षियोंके ज्ञानको वर्तमान पाश्चिमात्य भौतिक वादके ज्ञानसे बढ़ा हुआ बतलाते हैं, इसी लिये वे उनके उपासक हैं। प्राच्य भारतीय सभ्यताको वे वास्तविक सभ्यता और आज कलके विकाशसे होनेवाली शिक्षित सभ्यताको वे पूरी असभ्यता कहते हैं जैसाकि ता० २६ जनवरी १९२१ के दैनिक भारतमित्रमें महात्मा गांधीके लेखसे विदित होता है, गांधीजी कहते हैं कि " आधुनिक सभ्यता कई वर्ष अनुभव लेनेके पश्चात् मैंने उससे एक शिक्षा ग्रहण की है और यह यही है कि चाहे कुछ भी हो तुम उसका तिरस्कार करो। यह आधुनिक सभ्यता क्या है? यह जड़ जगतकी पूजा है, हम लोगों में जो पाशविक भाव है उसीकी उपासना है यह केवल जड़त्ववाद है और आधुनिक सभ्यता कोई चीज नहीं हैं। यदि मैं अपने देशको न जानता होता तो मैं भी विपथगामी हो जाता जैसे शिक्षित भारतवासी हुए हैं।"

हमारे सेठी अर्जुनलालजी कहते हैं कि प्राच्य-भारत बिलकुल असभ्य था, प्राच्यभारत ज्ञानविहीन था अब ज्ञानका विकाश बहुत बढ़ा चढ़ा है। स्व० तिलक महाराज गीता रहस्यमें अर्जुन, कृष्ण आदिके ज्ञान बलकी प्रशंसा करते हैं, उससमयकी राजनीति एवं युद्धकलाको पूरा महत्त्व देते हैं। पौराणिक बातों पर पूर्ण श्रद्धा प्रगट करते हैं। इधर हमारे सेठी जी उन कृष्ण आदि पुरुषों के ज्ञान से आधुनिक ज्ञानको बढ़ाहुआ बतलाते हैं जैसा कि लिखते हैं- "खेद है कि पुराण तो जितने भी है वे सब हरएक आचार्य ने अपने समय के अनुसार लिखे हैं और सामयिक साहित्य से विभूषित किये हैं। कोई पुराण इतिहास दृष्टिसे नहीं लिखा, तदुपरान्त जैनका पौराणिकभाग भी वैसा ही संग्रहीत समझना चाहिये जैसा अनेकांत तात्विक सिद्धान्त।" सेठीजीने इस कथनसे पौराणिक भागको असत्य सिद्ध किया है साथही वे पहले महर्षियोंतकके ज्ञान को बहुत कुछ तुच्छ समझते हैं जैसा कि वे स्वयं लिखते हैं "जितना ज्ञान महावीरको मिला उतना पार्श्वको नहीं और इसी तरह पूर्व समझना चाहिये। कारण कि ज्ञान उत्तरोत्तर मानव समाजमें वृद्धिको पारहा है। नई-नई खोजें होतीही रहती हैं।" आदि सेठीजीने अपने समस्तलेखमें इसी बातकी पुष्टि की है और साफ शब्दोंमें कहडाला है कि महावीरसे अब ज्ञानकी वृद्धि हैं। जितनी महावीरमें थी उतनी पार्श्वमें नहीं था। जितनी पार्श्वमें थी उतनी उनसे पूर्वके तीर्थंकरोंमें ही नही थी। हम सेठीजी के इस लोकोत्तर दिव्यज्ञान की कहांतक प्रशंसा करें? हम समझते

हैं कि वे वर्तमान समयके अनुसार केवल ज्ञानको पूर्णता अपनेमें जरूर मानते होंगे । इसलिये उन्होंने प्रगट कर दिया है कि "एक संग्रहकर्ता अनेकान्त महागुरुके पीछे जितने२ भिन्न२ सिद्धान्त निकले उनका पूर्व संग्रहीत अनेकान्तवादमें स्थानदाता अन्य महात्मा जन्मलेकर विशालमतिसे प्रचार न करें तावत्कालको तीर्थ व्युच्छित्ति समझना चाहिये।" सेठीजी की इन पंक्तियोंसे और उत्तरोत्तर बढ़ा हुआ ज्ञानविकाश बतलाने से साफ जाहिर है कि वे आधुनिक तीर्थंकर बननेका पक्का दावा करते हैं । क्योंकि सत्योदय के लेखमें उन्होंने अपना विशालमति से, पूर्वसंगृहीत अनेकान्तका रहस्य और सब मतोंका मिलान अपने अनुभवसे स्पष्ट प्रगट कर दिया है । साथही उनसे जो सम्भवना प्रगट हुई है उसके सहोदरजीने आ जैनहितैषीमें सब मतोंका अच्छा संग्रह कर दिखाया है। इस विशाल मतिके निमित्तसे सेठीजी यदि आधुनिक महात्मा तीर्थंकर न कहे जायं तो फिर क्या कहे जांय ?

जैनग्रन्थोंके अनुसार बताई हुई तीर्थव्युच्छित्तिका निश्चित समय समझकर जो लोग आजकल तीर्थंकर का जन्महोना असंभव समझते हैं तो वैसा समझनेवालोंके लिये सेठीजी कहते हैं कि " अन्य महात्मा जन्मलेकर विशालमतिसे प्रचार न करें तावत कालको तीर्थव्युच्छित्ति समझना चाहिये। इसकालमें कितने वर्ष बीतते हैं इसका कोई प्रमाण नहीं यह रहस्य प्रकृतिके अज्ञेय हैं। हां अंदाजा यही है जब भिन्न२ मतियोंके नूतनसिद्धान्त विचार कसौटीमें जनता के द्वारा खूब परीक्षित होजाते हैं एवं खण्डन मण्डन विरोध आदि से तय जाते हैं और उधर से पूर्वके अनेकान्ती सबच्युत होकर स्वयं संकीर्णदृष्टिवाले होजाते हैं तभी नवीन महात्माका जन्म होता है जो नूतन अनेकान्तका प्रचारकरता है और सब नवीनमतों, धर्मों, सिद्धान्तोंको स्याद्वादद्वारा एकत्र करके प्रचार करता है।" सबमत अनेकान्तमें गर्भित होसकते हैं या नहीं, धर्म, समयानुसार होता है या नहीं ज्ञानका विकाश बढ़ाहुआ है या नहीं ? इन विषयोंकी मीमांसा कुछ तो हम करचुके हैं कुछ आगे करेंगे । अनेकान्तके स्वरूपानुसार अन्यदर्शन उसमें किसी प्रकार अन्तर्हित नहीं किये जासकते । यह बातहम विशद कर चुके हैं। यहांपर पाठकोंको सेठीजीकी तीर्थंकराकांक्षाका परिचय कराते हैं उन्होंने तीर्थव्युच्छित्तिके प्रमाणका निषेधकर और अपनी विशालमतिका संग्रहके द्वारा परिचय देकर अपने आपको आधुनिकमहात्मा तीर्थंकर सिद्ध करना चाहा है यह बात उनकी पंक्तियोंसे स्पष्ट होजाती है। इसीलिये हमने लेखकी प्रारम्भिक भूमिकामें दिखलादिया है किसेठीजी वर्तमानसमयके तीर्थंकर बनना चाहते हैं यहांतक उनका अभीष्ट है। वे अनेकान्तकी नूतनप्रभुताद्वारा अपनेमें प्रभुता सिद्ध करना चाहते हैं। जैनतीर्थंकरोंने तो षट्द्रव्य, नवपदार्थ, सप्ततत्वादिका विवेचन किया है । सेठीजी कहते हैं कि "महावीरके पीछे जैनमें भी भिन्नमतोंके महात्मा और ऋषि जैनधर्मके भी अनिवार्य महात्मा हो कर जैनियोंके पूज्य न होजांय तावत् जैनधर्म नहीं मतही है । अनेकान्त नहीं एकान्त है । और एकान्त भी गली सड़ी" देखा पाठक ! आधुनिक तीर्थंकरका कैसा सारभूत युक्तिपूर्ण तात्विक विवेचन है ? हम इन पंक्तियोंका क्या खंडन करें इनमें कुछ सार नहीं, विना किसी युक्तिके लिखा हुआ सेठीजीका अनुभव है।

विचारक पाठक देखें कि कहांतक सेठीजीने अ-

अखंड प्रलाप किया है। सेठीजी इतने आविष्कार सेही सन्तुष्ट नहीं हुए हैं उन्होंने समयप्रवाही लोगोंसे अपनी पूजा करानेकी भी नींव जमादी है। उन्होंने तीर्थंकरोंकी पूजाकरनेवालोंको मूर्ख बतलाकर संकेत कर दिया है कि लोग विपुलमतिधारक एवं नवीन आविष्कर्ता सेठीजी को महत्व दें तथा उनकी पूजाकरें। वे लिखते हैं-" लोकमें ये लोग किस रूपमें पूजेजाते हैं सो उस समयकी जनताकी परिस्थिति पर निर्भर है। जितनी जनता स्थूलबुद्धिधारी होगी और स्वयं सूक्ष्मतत्वगवेषणा करनेवालों न होगी उतनाही उच्चपद इन महात्माओंको देती है अथवा जितनी पूज्यता भिन्न २ आविष्कर्ताओंको जनता देती है उसीके अन्दाजसे इनकी पूज्यता होती है प्राचीन समयमें अवतारों की पदवी दीजातीथी, सो इधर संग्रहकर्ताओंने तीर्थंकरका ढांचा बनाया " सेठीजीने बतलादिया है कि तीर्थंकरका ढांचा है उसे अब कोई मत पूजो। जो पूजोगे तो मूर्ख ठहरोगे। उनकी पूजा उस समयकी परिस्थितिके अनुसार थी,। अब विकाशवादका जमाना है इससमय जो तुम्हें विशेषज्ञ प्रतीत हो उसकी पूजा करो। तीर्थंकरोंका महत्व गिराकर अपने भक्तोंसे सेठीजी पुजना चाहते है यह उन्होंने खुलासा कर दिया है। बाहरी विवेक हीनता और नीचाकाक्षा तो मनुष्यको स्वार्थान्ध बनाकर सर्वथा पागल बना देती है।

आगे चलकर सेठीजीने लिखा है कि " इनका (तीर्थंकर महात्माओंका) मोक्ष मार्ग एक वेष या एक देवतापर नहीं किन्तु सर्व वेष सर्व देवता पर है। दुनियांकी प्राथमिक अवस्थामें ये जिनेन्द्र व तीर्थंकरही कहलाये हों सो कोई बात नहीं या नग्न ही रहे हों सो भी नहीं। आदि" सेठीजी सिद्धकरें कि किस युक्ति व प्रमाणसे उन्होंने वैसा लिखा है। क्या वे किसी भी युक्ति व प्रमाणसे तीर्थंकरों को रत्नत्रयके सिवा अन्य मोक्षमार्गी व नग्न वेषके सिवा अन्य वेषधारी वा एक जिनेन्द्रदेवके सिवा अन्य देवताका उपासक सिद्ध करसकते हैं? क्या इतनी धूल झोंकनेका भी कोई ठिकाना है? क्या ऐसा महाझूंठ और ऐसी धोखेबाजी सेठीजी को महाअज्ञ एवं वहिष्कृत नहीं सिद्धकरती?* हम सेठीजीकी विवेकान्धतापर तो क्या कहें उनके पीछे चलनेवाले महात्माओंसे हमारा कहना है कि वे आंख बंदकर सेठीजीके पथपर न चलें और न उनको विशेषज्ञ ही समझलें किन्तु स्वयं पदार्थ परीक्षा करें. ग्रन्थावलोकनकर वस्तुकी यथार्थ खोज करें।

यदि हमारे इसबातपर वे कुछ ध्यान न देकर सेठीजी को ही गोम्मटसारी मानकर उनके पीछे चलेंगे तो स्मरण रक्खें वे अपना स्वयं अहित कर डालेंगे और साथमें और भी शास्त्रानभिज्ञ जनताका अहित करडालेंगे।

हमें बड़े दुखके साथ लिखना पड़ता है कि सेठीजीके इस कुतर्कवाद और कुमतिवादने कुछ समयप्रवाही अजान लोगोंकी बुद्धिमें फर्क डालकर महा अनर्थ एवं अकल्याण किया है अभी जैनहितैषी गत नवम्बर दिसम्बर (१६२०) के सम्मिलित अंकमें किन्हीं अमरावती निवासी सरस्वती सहोदरजीका लेख निकला है। लेखका शीर्षक है " जैनधर्मका अनेकान्तात्मक प्रभुता" लेखक महाशयने जैनधर्मको सार्वभौमिकतापर विचार करते हुए बौद्धदर्शन को बायां हाथ मीमांसा दर्शनको दायां हाथ, चार्वाक को पेट, और

---

* साक्षात महाझूंठ और पल्लिसिरेकी धोखेबाजी देखते हुए इन शब्दोंके प्रयोगके लिये यथार्थ वादिता और सभ्यता दोनों ही हमें नहीं रोकती ।

जैनधर्म को मस्तक बतलाकर सब मतोंका संग्रह कर जैनधर्मको एक मनुष्य रूपी खिलौनेके रूपमें गढ़कर तैयार करदिया है। लेखक अपने मनमें समझता होगा कि इसने बड़ी गहरीखोजमें लेख लिखा है परन्तु अनेकान्ततत्वज्ञ विद्वानोंकी दृष्टिके सिवा सामान्य जैनजनताकी दृष्टिमें भी उस लेखसे लेखककी पूरी अज्ञता प्रतीत होती है। उसपर भी लेखक अपना भद्दा नाम (अन्यथा छिपाकर क्यों ?) छिपाकर अपने आप ही सरस्वतीका सगाभाई बतलाता है। क्या लेखक जैसे पर आभावान्वित ठीका वृद्धि न रखने वाले व्यक्ति भी कभी सामान्यतः भावोंके उदरसे उत्पन्न होसकते हैं? लेखसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखक सेठीजीका पक्षभक्त है और सेठीजी द्वारा प्रगट हुई सरस्वती का ही सगाभाई प्रतीत होता है इसीलिये उन्हीके 'संग्रह आविष्कारका उलथा अपने शब्दोंमें संकलित करनेका पाण्डित्य दिखाता है कहा कहीं तो सेठीजीके सत्योदयवाले लेखके शब्दोंका सामञ्जस्य भी ज्योंका त्यों उसने रखदिया है। यह बात पाठकोंको उक्त लेखके थोड़ेसे निम्न लिखित वाक्यसे प्रतीत हो जायगी।

"जैनधर्म अन्यान्य मतों तथा सिद्धान्तोंकी पारस्परिकविरुद्धता मिटाकर उन सबको एकताके सूत्रमें संचालित करनेवाला और प्रतिपादक एक वैज्ञानिक मार्ग था उस समयके विद्वानोंमें प्रायः अपने २ मतका दुराग्रह नहीं था जैसे जैसे अनेकान्तात्मक प्रभुत्व भारतवर्षमें कम होता गया वैसेही मत पंथ वर्ण और जाति भेद बढ़ता गया और परस्पर उच्च नीच निंदा स्तुति तथा ईर्षाके भाव फैलतेगये। अपने धर्मरूपी शरीरके एक एक अंगको सत्यमान और बाकी अंगोंको मिथ्याजान अथवा एक अंगको ही उपादेय और अंगोंको हेय जानकर एकान्तीवन अनेकान्तवादिताका जो शोर अभी तक मचाया गया है वह कहांतक प्रशस्त है इसी प्रकार (शरीरके समान) धर्मरूपी शरीरका मस्तिक जैनधर्म है और उसकी वर्तमान शाखा प्रशाखाएं मस्तक के ही विभाग हैं। बाकी संसारके समस्त भिन्न २ धर्म उस शरीरके अन्यान्य हस्त-पादादिक अंग और अवयव हैं। यही अनेकान्तका वास्तविक रहस्य है परन्तु आजकल एक तो जैनसमाजमें अनेकान्तका समझनेवाले ही कम हैं। नय समूहकी संख्या भी गणनातीत होनेसे कुशाग्रबुद्धि जैनाचार्यों ने दीर्घमननके बाद नयोंके महान् समूहको सिर्फ सात नयोंमें विभक्त करदिया धर्म जगतका सबप्रकारको प्रकृतियां चाहे वे पारमार्थिक हों राजनैतिक हों, या व्यक्तिगतहों जुद २ अपेक्षाओंके अवलम्बित मात्र हैं। जगतके समस्त विचार और प्रवृत्तियां भिन्न २ नयोंके अवलम्बित मात्र हैं, संसार के समस्त धर्म पंथ जैनधर्मके ही भिन्न २ नय विशेष हैं। उनका परस्पर मतविरोध भलेही हो और उनके अनुयायी परस्परमें विरोधभाव और घृणा रखते हों किन्तु जैनधर्म उन सब धर्मपंथोंके भिन्न भिन्न नयोंका संकलित समुदाय है। जो धर्मके ठेकेदार हो धर्मके शत्रु हैं। जो भोली जनताका अपने पूर्वजोंके धर्म रहस्यका विपरीत अर्थ समझाकर और पूर्वजोंके नामकी दुहाई देकर जैनधर्मके रहे-सहे प्रभुत्वको भी नष्ट भ्रष्ट करना चाहते हैं मीमांसक आत्माको नित्य एक अबद्ध त्रिगुण अबाधित मानते हैं परन्तु स्वभाव दृष्टि निश्चयनयकी अपेक्षा यह ठीक है। निश्चयनयकी अपेक्षा मीमांसा दर्शनको भी जिनेश्वरका एक अंग कहा है। बौद्ध दर्शन व्यवहारनय पूर्वक सिद्ध है इसलिये बायां हाथ और मीमांसा दर्शन निश्चयनयसे योग्य है इसलिये दाहिना हाथ कहलाता है चार्वाकमतको जिनेश्वरका पेट माना है वह इस हेतुसे कि जगत्का को-

ई कर्ता हर्ता नहीं मानते इसप्रकार षट्दर्शन जैनधर्मके भिन्न २ अंग प्रतीत होते हैं। यही जैनधर्मको अनेकान्त प्रभुता है।"

जैनहितैषी अंक १-२ से उद्धृत।

इस लेखके विषयमें मीमांसा करना व्यर्थ है। अनेकान्तका क्या स्वरूप है यह बात हम स्पष्ट कर चुके हैं लेखकने अनेकान्तके सहारे जातिभेद, वर्णभेद धर्मभेद आदि सब बातोंका मन माना लोप करना चाहा है, अनेकान्तको अद्वितीय रहस्य समझने वाले धर्मतत्वज्ञोंको उल्टा धर्मशत्रु बतलाया है। बौद्धदर्शनकी क्षणिकताको लेखकजी व्यवहारधर्म बतलाते हैं? क्या जैनियोंकी पर्याय दृष्टि व्यवहारधर्म है चार्वाकको पेट बतलाते हुए उन्हें उसने स्वर्ग, नरक, मोक्ष, जीव आदिके लोपका सिद्धान्त भी मान्य होगा। लेखकने जैनधर्मके नय और अपेक्षा कथनको ढोलकी पोल समझी है इस पोलमें वर्णव्यवस्था लोप आदि सभी बातें सिद्ध करना चाही हैं इस अनेकान्त रहस्यको समझकर विद्वानोंको हंसी आये बिना न रहेगा। सरस्वतीके साथ नाता जोड़नेवाला लेखक अनेकान्तको स्वयं तो खाक भी नहीं समझा है और अपनी ज़मीन आसमानके कुलाबेको जोड़नेवाली समझके बलपर जैनसिद्धान्तोंको ललकारता है और उनसे घृणा करता है कि वे अनेकान्तको कुछ नहीं समझते। लेखकका ऐसा कहना सूर्यके प्रकाशको बुरा समझनेवाले एवं उससे घृणा करनेवाले घूकके समान है। इससमयकी गतिने ऐसी धांधलबाजी मचाई है कि हर एक अपना पाण्डित्य बिना किसी निर्णय और विचारके झट कर बैठता है इसीलिये प्रायः सभी समाजोंका "अनायका विनश्यन्ति, नश्यन्ति बहुनायकाः" इस मन्तव्यके अनुसार अधःपात होरहा है। सरस्वती सहोदरजी हम से रुष्ट न हों, उन्होंने जो बात प्रगटकी है उसपर वे विचार करें, "छोटा मुंह बड़ी बात" वाला हाल उन्हों ने किया है। अनेकान्त वस्तु धर्म है स्याद्वाद और अनेकान्तमें क्या अंतर है? इस विषयपर हम इसी लेखके सिलसिलेमें पहिले स्पष्ट लिख चुके हैं आप उसपर मनन करें, साथ ही स्याद्वाद प्रतिपादक ग्रंथोंको पढ़ें। तब अनेकान्त आपको दृष्टिमें संग्रहात्मक अथवा सब मतोंसे अविरुद्ध प्रतीत न होगा। क्योंकि हरएक दर्शन-मतकी नींव उसकी तत्वव्यवस्था और प्रमाणव्यवस्थापर हुआ करती है। अन्यथा चारित्रमार्गका नैतिक निरूपण तो हरएक दर्शनमें समान भी मिल सकता है। जैसे हिंसा, झूंठ, चोरी, कुशील बुरे हैं पाप हैं; सबोंको मोक्षके लिये यत्न करना चाहिये, आदि। इन नैतिक बातोंमें भी वस्तु स्वरूपकी यदि खोजकी जाय तो उसमें भी हरएक जगह भिन्नता प्रतीत होती है। हिंसा, झूंठ, चोरी आदिको बुरा बतलाते हुए अनेकमत कुछ अंशोंमें अथवा विजातीय लक्षणोंसे उन्हें स्वीकार भी करते हैं। इसीलिये प्रधान २ दर्शनोंमें भी यह उल्लेख पायाजाता है। कि "वैदिकी हिंसा हिंसा न स्यात्।" आदि जहां धार्मिक कार्योंमें भी हिंसाका उल्लेख है वहां नैतिक लौकिक व्यवहारमें हिंसासे बचनेका मार्ग कठिन ही समझना चाहिये आरंभ उद्योग विरोधिनी, संकल्पी, इन हिंसाओंका विवेचन तो कहीं ढूंढने परभी नहीं मिलता। यदि कहीं मिलै भी तो वहां भी उस सूक्ष्मस्वरूप निरूपणकी पूरी कमी है। इसी प्रकार मोक्षका यत्न करना चाहिये ऐसा कहनेवाले मोक्षतत्व और उसकी प्राप्तिके उपायोंमें आकाश-पातालकी भिन्नता रखते हैं जहां ज्ञान गुण और सुख गुणका भी अभाव होजाता है एवं जहांसे कुछ काल पीछे लौट आना भी होसकता है वहां उस मोक्षतत्वसे

संसार तत्व ह. कहां अच्छा है। जहां कि ज्ञानादि गुणों को सत्ता तो आत्मामें बनी रहती है। तथा आत्माको जड़ता तो प्राप्त नहीं होती है। जिन बातोंके संग्रह करनेमें आपके गुरुमहाराजने अपनी चतुराई दीखायी है उन बातोंके सिवा मूलपदार्थ व्यवस्थापर यदि आपलोग विचार करें तो आप अपने संग्रहतत्वके नये आविष्कार पर स्वयं बुद्धिहीनता प्रतीत करेंगे इसीलिये हमने भारतके प्रसिद्ध २ दर्शनोंका पदार्थ व्यवस्था और प्रमाणव्यवस्थाका बहुत संक्षिप्त दिग्दर्शन करादिया है। इस विषयमें अधिक लिखना व्यर्थ है। हमने किसी दर्शनके तत्वोंकी समालोचनारूपमें अपनी मान्यता नहीं की है। केवल दिग्दर्शन ही करादिया है। यदि आप और सेठीजी किसी विषयमें विशेष समझनेकी इच्छा प्रगट करेंगे तो सब शास्त्रीय प्रमाणोंसे हरएक बातके विशेष विवेचन द्वारा आपको संतोष दिलानेके लिये हम तैयार हैं। स्वनामधन्य श्रीविनयविजयजी उपाध्याय और श्रीआनंदघनजीका उल्लेख आपने किया है सो या तो इनके विवक्षाकथनको आप ही नहीं समझे हैं या वे यदि सबमतोंको अविरुद्ध समझतेहुए अनेकान्तका अर्थ सब मतोंका संग्रह समझते हैं तो वे अनेकान्तको नहीं समझे। केवल ऊपरीबातोंमें काम नहीं चलता, दार्शनिक सिद्धांतोंको एक साहित्य लेखकी छटा दिखलाकर बिना उनका रहस्य समझे उलट पुलटरूपमें रखनेका दुःसाहसकरना महापाप है और न पदार्थ परीक्षाका ही यह मार्ग है। जहां स्याद्वादके रहस्यज्ञ विद्वानोंको तो एकान्ती बताकर जैनधर्मको नष्ट करनेवाला बतलाया जाता है और स्वयं अपनेको सरस्वती सहोदर प्रसिद्धकर अयुक्त एवं अप्रमाणित पदार्थ विवेचन निश्चित सिद्धान्तरूपमें रक्खाजाता है वहां परीक्षाका मार्ग कहां रहा? यह तो जनताको अपनी ओर खींचनेकी चेष्टामात्र है। और पुरा हठाग्रह है। पदार्थ परीक्षा और पदार्थ जिज्ञासाके प्रश्न ही दूसरे प्रकारसे होते हैं।

इतने पर भी लेखकजी उनके लेखोंको प्रकाशित करनेवाले पत्रोंकी हिमायतके साथ सिफारिश करते हैं कि उन पत्रोंको जरूर पढो। न पढनेवालोंको वे धर्मके ठेकेदार बतलाते हैं वास्तव में हम कह सके हैं कि जो ऐसे लेखोंवाले पत्रोंका वहिष्कार करते हैं वे ही धर्मके सच्चे ठेकेदार हैं। जो नास्तिकवादी एवं लामजहब हैं वे किसी धर्मके ठेकेदार कैसे हो सकते हैं? लेखकजी सब मतोंके भिन्न २ विचारोंको नय समूह समझते हुए कहते हैं कि "जैनाचार्योंने दीर्घ मननके बाद नयों के महान् समूहको सिर्फ सात ही नयोंमें विभक्त कर दिया" लेखककी इस गहरी पंक्तिसे पाठक समझ सकते हैं की लेखकजी सर्वज्ञ नहीं मानते, दीर्घ मननके बाद जैनाचार्योंको ही वे नयोंके संग्रहीता बतलाते हैं।

जैन हितैषी पत्र और उसके वर्तमान सम्पादक बाबू जुगलकिशोरजी अपनेको बहुत कुछ जैनधर्मका ज्ञाता एवं श्रद्धालु प्रगट करते रहते हैं। कलकत्ता सभाके ऊपर भी आपने यही युक्तिबाण चलाया था, परन्तु सरस्वती सहोदरजीके लेखको उन्होंने कैसे स्थान दे दिया? यदि अपने उदार असंकीर्ण विचारोंके अनुसार दे भी दिया तो ऐसे सिद्धान्तविरुद्ध मिथ्यालेखपर उन्हें संपादकीय नोट अवश्य करना उचितथा? ऐसे लेखके नीचे नोट न रहनेसे सत्योदयके संपादक बाबू चन्द्रसेनजीके समान बाबू जुगलकिशोरजी भी अनेकान्त को नहीं समझे हैं या लेखकके अभिप्रायानुसारका

वे समझे हैं, यह बात पाठकोंके ध्यानमें आये बिना नहीं रहेगी। यदि ऐसा न हो तो किसी विद्वान् संपादक को महत्त्व देना व्यर्थ है। नोटफोट तो दूर रहो उन्होंने उसी लेखके नीचे दो खण्डविचार रख दिये हैं। उस लेखपर विश्वास करनेकी ओर पाठकोंकी बुद्धि को खींचते हैं। सम्पादकजीके खण्ड विचारोंके वाक्योंका नमूना यह है–" पक्षपात दृष्टि गुण दोषोंका विवेक नहीं होने देती। वह मनुष्यों को हठग्राही बनादेती है। उसमें श्रद्धाके न होते हुए भी कषायवश किसी बातपर व्यर्थका आग्रह किया जाता है। इसके विपरीत अपक्षपात दृष्टि गुणदोषोंके विवेकमें प्रधान सहायक है। उसके कारण सत्पुरुषों को परीक्षाद्वारा सुनिर्णीत होनेपर अपनी पूर्वश्रद्धा तथा प्रवृत्तिको बदलनेमें कुछ भी संकोच नहीं होता। वे अपनी बुद्धि को वहांतक लेजाकर स्थिर करते हैं जहांतक युक्ति पहुंचाती है। अर्थात् उनकी मति प्रायः युक्त्यानु (युक्त्यनु) गामनी होती है।"

यद्यपि स्थूलदृष्टि से उक्त खण्डविचार सुन्दर एवं नीतिमार्गका प्रवर्तक प्रतीत होता है परन्तु जिस लेखके नीचे यह खण्डविचार रक्खा गया है उससे स्पष्ट विदित होता है कि संपादकजीका अभिप्राय पाठकोंकी शास्त्रीय-अनेकान्त श्रद्धा एवं समाज शृंखलाको बदलकर–लेखकके बताये हुए दार्शनिक और जातिभेद मिटानेवाले नवीन अनेकान्तकी ओर ले जानेका है। खण्ड विचार भी लेख और लेखककी टिप्पणीकी समाप्ति पर दिये गये हैं इसलिए उन्हें सम्पादकीय समझनेमें कोई विशेषता शेष नहीं रहती यदि ये विचार भी लेखकके हैं तब भी संपादकजीका को ऐसे लेखको खण्ड विचारों द्वारा पुष्टि देखकर अवश्य इनका निराकरण करना उचित था। जैन हितैषीपत्र और उसके संपादकजीकी क्या अन्तर्नीति है यह बात उन्हें ध्यानमें लानी चाहिये जो इनको ठीक विचार वाले अब भी समझ रहे हैं। यदि वे अब भी न समझें तो सेठीजी और बाबू सूरजभानुजी के छिपेहुए विचारोंके समान कुछ काल पीछे अवश्य समझ लेंगे। उसके लिये भी अब बहुत काल न लगेगा। अस्तु जैनमत सर्वज्ञप्रणीत है इसीलिये उसको बताई हुई पदार्थव्यवस्था और प्रमाणव्यवस्था अकाट्य है। जैन धर्मका मार्ग गणधर एवं आचार्योंद्वारा सदासे एक शृंखलामें सूत्रित है उसके विषयमें हरएक व्यक्ति जो शास्त्रोंको समझने की योग्यता भी नहीं रखता, बिना किसी संकोच के अपना मनगढंत युक्ति प्रमाणशून्य, उच्छृंखल, उत्सूत्र मन्तव्य जो कह बैठता है यह बात विद्वानों को पद्धतिसे बाहिर है। बिना किसी बातको समझे उसका मनरूपमें प्रकाश करना और निश्चित सिद्धांत बिना किसी प्रबल युक्ति और प्रमाणके स्वरूपका विपर्यास करना अक्षम्य भूल है। तीर्थंकरों तकको अल्पज्ञ, विशेषज्ञ एवं उनकी सत्ताको उठाने वाला अधर्म साहस करना अनेक आत्माओंको विपरीत मार्ग पर लेजाने का प्रधान कारण है। इसीलिये कोई भाई बिना स्वयं पदार्थ समझे किसी अपने प्रभावक व्यक्तिके प्रभावमें आकर पिछलगू बनकर सैद्धांतिक बातोंमें "संग्रह ज्ञान विकाश" के समान अपनी टांग अड़ा कर पांचवें घुड़सवार बननेकी चेष्टाके समान व्यर्थ हास्यपात्र न बने। उनके ऐसा करनेसे धार्मिकहानि होनेकी पूरी संभावना है। इसीलिये हमें सेठीजीके संग्रह विचारके साथ इतना उल्लेख करना पड़ा है यद्यपि इस–उल्लेखमें हम एक दो कटु शब्दोंका प्रयोग

भा कर गये हैं परन्तु क्या करें कुछ लोगोंके विचार बे लगाम घोड़े के समान इधर-उधर पराश्रे स्वछंचारी बनने पर उतारू होचले हैं। उनकी ऐसी विचार शैली की प्रेरणाही हमे-उकता कर वैसे शब्द प्रयोगके लिये बाध्य कर देती है। यह भी एक कषायांश है। उस की कृपासे साम्प्रतिक महत्वाकांक्षी लोगोंकी बलवती वासनाओंकी उपेक्षाके स्थानमें उनके प्रमादकी ओर बुद्धि दौड़ती है और प्रकृतिमें कुछ खेदका विकार भाव आजाता है। अन्यथा हम जब शांतिसे विचार करते हैं तो सब झंझट और आकुलतामय माया प्रतीत होता है जैन धर्म वस्तु स्वरूप है आत्मीय तत्त्व है। वह आत्माओंके आवरण और विकार भावोंके दूर होने पर उनमें स्वयं विद्यमान होता रहता है। आत्मीय तत्त्व को भला कोई क्या नष्ट कर सकता है? नष्ट करनेकी ओर जो मन्द बुद्धियों का झुकाव होजाता है वह भी आवरण और विकार भावोंकी प्रेरणाका परिणाम है। इसमें उन जीवोंका कोई दोष नहीं है। वे बिचारे कर्म यन्त्रणासे परतन्त्र हैं। कर्म की तीव्रपरतन्त्रता बिचारे मिथ्या दृष्टिको कभी सद्बुद्धि नहीं होने देती। वहां वीतराग मूर्ति, मुनियोंके सदुपदेश भी ऊसर बृष्टिके समान निरर्थक चले जाते हैं। सर्वज्ञका निषेध जो करते हैं वे अज्ञानता वश करते हैं। कालान्तर में वैसा भाव भी सम्यग्ज्ञान होने पर सूर्य प्रकाशके उदय में अन्धकारके समान नष्ट होजाता है। कभी धर्म की सत्ता जीवोंमें अधिक पाई जाती है कभी उनमें उसका नाम शेष भी नहीं रहता, यह भी समय का चक्र है। इन सब बातोंके लिये खेद प्रगट करना व्यर्थ है। वह कषायोद्रेक है। उसी शुभाशुभ रागोद्रेक का बलवती प्रेरणा मानसिक खेद प्रगट करती है। और उसीके निमित्तसे जीवोंकी सुगति कुगति क्रम से जीवोंके हिताहितमें प्रवृत्त होती है।

(इति संग्रहीत मत पर विचार समाप्त)

शास्त्रि—परिषद्के तृतीय वार्षिक अधिवेशन कानपुरके सभापति

विद्वद्वर पं० लालारामजी शास्त्रीका व्याख्यान।

श्रियं दिशतु वो देवः श्रीनाभेयजिनः सदा
मोक्षमार्गं सतां ब्रूते यदागमपदावली।

वन्दनीय त्यागीं ब्रह्मचारियो! महासभा और स्वागत कारिणी सभाके माननीय सभापतिमहोदय, शास्त्रियो, सभ्यगण और माता भगनियो!

(१) जबकि छोटी बड़ी सभी सभाओं के लिये सुयोग्य दूरदर्शी विद्वान् सभापतिके निर्वाचनकी गहरी गवेषणा की जाती है तो मुझे यह बतलानेकी कोई आवश्यकता शेष नहीं रहजाती कि इस शास्त्रिपरिषद् के लिये कितने सुयोग्य और दूरदर्शी विद्वान् को निर्वाचन करना आवश्यक है। शास्त्रिपरिषद्का सभाध्यक्ष शास्त्री ही हो सकता है, इस नाते भले ही मैं इस पदका अधिकारी एवं उसके योग्य समझा जाऊं। परन्तु चारों अनुयोगों की जैसी प्रखर विद्वत्ता इसके लिये अपेक्षणीय है उसका अशांश भी मैं अपनेमें नहीं पाता ऐसी विषम समस्या में इस परिषद् के विचार शील शास्त्रियोंने मुझे इस पदका महान गुरुतर भार क्यों

सौंपा ? इसका अन्तस्तत्व वे ही जानें। यदि इस विषय में मैं उनसे शास्त्रार्थ करता हूं तो भी मुझे आशा नहीं कि इस विशाल शास्त्रिमंडलके समक्ष प्रकृत विषयमें विजय पासकूं अतएव अब इसी निश्चय पर कि जिस प्रकार उन्होंने मुझे यह गुरुतर कार्य भार सौंपा है उसी प्रकार वे मुझे कार्य मार्ग बतलानेमें भी सत्परामर्श एवं सहायता प्रदान करेंगे मैं उनके दिये हुये सम्मानका परम आभारी एवं कृतज्ञ बनता हुआ इस पदका सादर स्वीकार करता हूं।

सभ्य बांधवो ! जगतमें गहरी खोज करने पर भी केवल दो पदार्थोंकी उपलब्धि होती है पहला जड़ दूसरा चेतन। इन दोंको छोड़कर तीसरा कोई पदार्थ किसी युक्ति और प्रमाण से सिद्ध नहीं होता। जो कुछ अनंत पदार्थों का सृष्टि आपके समक्ष उपस्थित है जिसमें कि आप स्वल्प वस्तुओंका बोध करते हैं वह सब उन्हीं दो तत्त्वोंका विकार है। इन दोनोंमें जड़तत्त्व पांच भागों में बटा हुआ है जिस जड़में चेतनका सम्बन्ध है वह पुद्गलके नामसे विख्यात है आज जो कुछ भौतिक उन्नति पाश्चिमात्य देशोंने की है वह इसी पुद्गल द्रव्य का अचिन्त्य एवं महाशक्तियों का परिणाम है दोनों ही तत्त्व विकाशशाली हैं अन्तर इतना है कि पुद्गल स्वयं विकाशी है चेतन प्रयत्न साध्य है दोनोंके विकाश भेदसे ही विद्वानों को ध्येयका परिज्ञान होजाता है, विकाशभेद और ध्येयका परिज्ञान ये दोनों बातें अभी सूत्ररूप कही गई हैं इनका संक्षिप्त खुलासा इस प्रकार है:—

यद्यपि पुद्गल का अनेक रूपोंमें आविष्कार किया जाता है इसका विकाश भी प्रयत्न साध्यही प्रतीत होता है तथापि सूक्ष्म विचारसे यह बात अच्छी तरह समझ में आजाती है कि पुद्गलकी भिन्न २ शक्तियों के अनुरूप एवं अनुकूल समुदायमात्रको आविष्कारों द्वारा सिद्ध कीजाती है न कि शक्तियोंकी व्यक्ति। यदि शक्तियोंकी व्यक्ति पुद्गलमें प्रयोग साध्य ही होती स्वयं किसी स्कन्ध एवं परमाणु में उस जाति की व्यक्ति जैसी कि विज्ञान वादियों के प्रयोग से संपादित की जाती है स्वयं नहीं होनी चाहिये परन्तु आप अभी देख रहे हैं कि जो वाष्पका प्रयोग आज बड़े २ यंत्रोंको चला रहा है वह कहीं स्वयं उत्पन्न अग्नि के संस्कार और जल के सम्बन्धसे बन २ व्यर्थ जारहा है जिस विद्युत्शक्तिसे आज टेलिफोन टेलीग्राफ आदि अनेक आविष्कार किये जारहे हैं वह विद्युत् एक महान् शक्ति को लिये हुये भयंकर रूपमें उत्पन्न होती है और बादलों में विलीन हो जाती है जो शब्द बिना तारके तार द्वारा सहस्रों कोश दूर चला जाता है वह शब्द प्रकार जड़ टक्करोंसे स्वयं पैदा होकर महान् विस्तृत पर्वतका भेदन करता हुआ सहस्रों कोश चला जाता है [illegible] के शब्दों के सिवा बादलोंकी गड़गड़ाहट एवं तड़तड़ाहट इसके ज्वलन्त उदाहरण है।

इस कथनसे तात्पर्य यह निकालना चाहिये कि पुद्गलकी शक्तियाँ अचिन्त्य हैं। और वे स्वयं विकशित हैं। भिन्न २ सांकेतिकरूपमें उनका समुदय एवं सदुपयोग मात्र प्रयत्न साध्य है।

चेतनमें यह बात नहीं है उसका विकाश बिना प्रयत्न के हो ही नहीं सकता। उसकी शक्तियां पहिलेसे व्यक्त नहीं हैं। किन्तु अनादिकालसे निगोदादि पर्यायोंमें रहनेके कारण सर्वथा लुप्त सदृश बनी रहती हैं। पीछे उपदेशादिग्रहण व्रतविधान, ब्रह्मचर्यादि कारण कलापों द्वारा बड़ी कठिनाईसे उनका आवरण दूर किया जाता है। आत्मीय विकाश पुरुषार्थ साध्य है। इसलिये उसकी चरमोन्नति होनेपर आत्मा फिर कभी

अशुद्ध एवं अविकाशी नहीं बन सकता। परन्तु पुद्गल का जो कुछ विकाश है वह स्वयं होता है। इसलिये कभी शुद्ध कभी अशुद्ध रूपमें आया करता है। सर्वथा शुद्ध होजाने पर भी वह फिर अशुद्ध हो जाता है। इसीलिये पुद्गलकी उन्नति नहीं कही जासकती। उन्नति शब्दका वाच्य सुधार है। विचार करने पर भौतिक वादमें कभी कोई सुधार नहीं होता है। वह सदा एक रूपसे दूसरे रूपमें आता रहता है। लौकिक दृष्टिसे जिसे सुधार कहा जाता है; वह भी वास्तवमें कुछ सुधार नहीं; किन्तु रूपान्तर मात्र है। इसीलिये आत्मीय सुधार ही सुधार कहा जासकता है। जितने अंशों आत्मीय विकाश है उतने ही उतने ही अंशमें आत्मोन्नति कहना चाहिये। इसलिये उन्नति आत्मा की ही हो सकती है पुद्गलकी नहीं। जो लोग भौतिक उन्नतिमें ही उन्नति एवं अपने देहकी उन्नति समझते हैं वे भूल कर रहते हैं। भौतिक उन्नति वास्तवमें कोई उन्नति नहीं है। किन्तु व्यावहारिक निर्वाहका साधन मात्र है। विद्वानोंका ध्येय आत्मोन्नति होना चाहिये और उसीके उपायोंकी खोज करनी चाहिये।

आत्मोन्नतिमें मूल साधन केवल आत्मोपयोगी तत्वोंका चिन्तवन ध्यान, संयमादि हैं। परन्तु बिना पदार्थोंकी यथार्थ परिस्थिति एवं आत्मीय तत्वका पूरा रहस्य समझे आत्मीय सुधार असंभव है। इसलिये सबसे प्रथम पदार्थोंकी यथार्थ प्रतीति वाञ्छनीय है। उसके बिना बहुत कुछ ज्ञानका विकाश होनेपर भी मदिरापानके समान जीव यथार्थ ज्ञानी नहीं बन सकता खासकर आत्मोपयोगी तत्वों तक उसकी पहुंच नहीं हो पाती। क्यों नहीं हो पाती? इसके उत्तरमें मदिराके समान कर्मकृत बलवत्ताके और कुछ नहीं कहा जासकता। जो लोग आत्मीय विचार शून्य केवल भौतिक आविष्कारोंमें लगे हुए हैं, वे खोजी विद्वान् अवश्य समझे जायगें परन्तु उनका वह ज्ञान कुमति विकाश है। यथार्थ प्रतीति और ज्ञानके होनेपर भी बिना आत्म संबंधित पदार्थोंका त्याग किये आत्मीय उन्नति कभी नहीं हो सकती। इसलिये आगमोक्त विधिके अनुसार हमें पदस्थानुसार क्रम २ से आत्मेतर पदार्थोंका सम्बन्ध छोड़ना चाहिये। जितने अंशमें हमें बाह्य पदार्थोंसे उपेक्षित होंगे, उतने ही अंशमें हमें आत्मीय आह्लाद एवं निर्मलता प्राप्त होगी।

३—जैनधर्म द्वारा कही गई तत्त्व व्यवस्था पर दृष्टि डालने एवं उसका मनन करनेसे युक्ति और प्रमाण वादियोंका हृदय यह स्वीकार किये बिना नहीं रहसकता कि जैनधर्म सर्वज्ञ प्रणीत है, अथवा जैनधर्म ही सर्वज्ञ प्रणीत है। क्योंकि जैनधर्म द्वारा बताई गई पदार्थ व्यवस्था युक्ति प्रमाण और आगमसे अवच्छिन्न है, अविरुद्ध है अनुभवगम्य है। ऐसे सन्मार्ग प्रदर्शक सर्वज्ञोक्त हितकारी जैनधर्मका जगतमें प्रचार करना, शंकाकारोंकी शंकाओंको दूर करना, धार्मिक शैथिल्य न आने देना, जैन तत्त्व विद्वानोंकी सृष्टि बना रहे इसके लिये संस्थाओंको सुव्यवस्थित और सुदृढ करना इत्यादि बातोंकी सिद्धिके लिये इस शास्त्रि परिषद्‌की योजना है। उपर्युक्त कार्योंको सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी यह है कि सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था आर्षानुकूल सदा दृढ़ बनाये रखना। वर्तमान के सामयिक प्रवाहने कुछ लोगोंके हृदयमें यह विचार तरंग पैदा करदी है, कि सामाजिक बातोंमें धर्मकी कोई आवश्यकता नहीं, समाज सुधार सदा समयानुसार हो सकता है, इसे केवल विचार-स्वातन्त्र्य कहा जा-

सकता है। किसी युक्ति और प्रमाणकी नीतिपर इस कथनकी रचना नहीं है। यदि सामाजिक-सुधार धर्म की कोई परवा नहीं करता तो फिर समाज व्यवस्था क्या वस्तु है?

लोकनीति की मर्यादा क्या है? अनेक तर्कणाओंके उठानेपर परिणाम यही निकलेगा कि धर्म मूलक समाज व्यवस्थाही हितकारी एवं उपादेय हो सकती है। अन्यथा नहीं। दूसरी बात यह है कि धर्म मूलक समाज व्यवस्था माननेपरही धार्मिक व्यवस्था स्थिर रह सकती है। धार्मिक समाजही धार्मिक व्यवस्था स्थिर कर सकता है क्या धर्म विहीन कियाचारी समाज, धर्मपरायण कभी बनसकता है? आज विधवा और वर्णव्यवस्था जैसी धर्म विरुद्ध बातें सुनी जाती है जिनसे समाजका अवश्यम्भावी पतन सुनिश्चित है इन्हीं उत्सूत्रभाषियों के विचारों का दुष्परिणाम है। इसलिये सामाजिक व्यवस्थाको आगमानुकूल रखना। इसी तरह जैनसिद्धान्त अथवा ऋषिवाक्यों की रक्षा करना, शास्त्रीय बोधशून्य लोगों द्वारा फैलाये जाने वाले मिथ्या विचार एवं सिद्धान्तविपरीत बातों का सयुक्तिक निराकरणकर जनताको सुमार्ग पर रखना। यह सब ज़िम्मेदारी इस परिषद्के शास्त्रियोंकी है।"कुछ शंका समाधान कर लेना अथवा किसी विषयपर शास्त्रार्थ करलेना यही इसके अधिवेशनका सदुपयोग है।" ऐसा जिन महाशयों का कहना है उन्हें अभीतक उत्तरदायित्वपूर्ण इसके कर्मक्षेत्रका ध्यान नहीं है ऐसा मालूम होता है। आगमोक्त मार्ग बतलाकर सामाजिक और धार्मिक व्यवस्थाकी रक्षा और वृद्धि ये दो कार्य इस शास्त्रिपरिषद् द्वारा ही सिद्ध हो सकते हैं। इनकी सुव्यवस्थासे ही जैन समाज और जैनधर्मकी सच्ची उन्नति है। इसलिये शास्त्रिपरिषद्की उपयोगिता और कार्य गौरव कितनी आवश्यक और महत्त्व का है यह बात सबोंके ध्यानमें आचुकी होगी।

(५) अभीतक परिषद्ने अपने दायित्वोंको यद्यपि पूरा नहीं किया है। फिर भी इसके कार्योंसे बहुत कुछ सन्तोष होता है। धर्म विरुद्ध लेखनी उठानेवालों को सयुक्तिक और सप्रमाण लेखों द्वारा निरुत्तर बनाना यत्र तत्र तात्त्विक व्याख्यानों द्वारा धर्म प्रभावना करना जैनसिद्धान्त द्वारा दार्शनिक तथा सामाजिक सिद्धान्तोंके अन्तस्तत्त्वोंका समीचीन रहस्य बतलाना ये सब इसीके कार्य हैं। यह तीसरा अधिवेशन है। तीन वर्षके कार्योंने इसकी भावी समुन्नतिमें मुझे किसी अंशमें निराशा नहीं होती।

विज्ञवरों!

(५) जैनधर्म की उन्नतिकेलिये किन किन बातोंकी समाजको आवश्यकता है इसविषयमें मेरे यह विचार हैं। हरएक समाजकी उन्नति विद्वानों द्वारा हुई है। हमारी समाजमें इस समय ऐसे विद्वान् तैयार करनेकी बड़ी आवश्यकता है जो एक एक विषयके पूर्ण निष्णातहों। शास्त्रीयकक्षामें छात्रके पहुंचने पर सिद्धान्तके साथ गणित ज्योतिष विज्ञान भूगोल वैद्यक, न्याय, व्याकरण साहित्य आदि में से कोई एक विषय प्रधान रूपसे पढ़ाना चाहिये। किसी विषयके मर्मज्ञ विद्वान् इसी व्यवस्था से बन सकते हैं; इसके लिये भिन्न२ विषयोंके विद्याभ्यासी शास्त्रीय कक्षायों के छात्रोंके लिये निर्वाह योग्य अच्छी वृत्तियां देनी चाहिये। इसके सिवा जयधवल महा धवलादि सिद्धांत ग्रंथ उपलब्ध होते हुए भी जो अभी तक पठनपाठनमें नहीं आरहे हैं उन्हें लानेकी आवश्यकता है। यहां मुझे जैन धर्मभूषण ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी के दो उपवास और कर्णाटकके पंचोंकी जायदादकी बात याद

आती है। क्या सिद्धान्त ग्रन्थ उनकी निजी सम्पत्ति है? या इसको सच्चा विनय कह सकते है? आचार्यों की एक महती कृतीके लुप्त रहनेसे धर्म प्रचार मे पूरी बाधकता समझनी चाहिये। मैं इसविषयमें खेद प्रगट करके ही सन्तुष्ट नहीं होना चाहता किन्तु मेरा सम्मति है कि इस विषय पर यहां परामर्श करके उक्त ग्रन्थोंको बडे २ नगरोंमें भिजवाने का उद्योग प्रयत्न करना चाहिये।

(६) सामान्यरीतिसे हर एक जैन वाचक शास्त्र व सिद्धान्तोंके जानकार बनें इसका सबसे सरल उपाय शास्त्र सभायें हैं आजकलके उपदेशों का सम्प्रदायसे मैं कुछ हानि नहीं समझताहूं इतना अवश्य है कि इस प्रतिद्वंद्विताम शास्त्रसभाओं का प्रचार कम होता चला जाता है। वह कम न हो ऐसा प्रयत्न करना आवश्यक है, हरएक मन्दिरमें शास्त्र सभायें अवश्य हों, जहां पर विद्वान रहते हैं, उन्हें सोत्साह इस कार्यमें भागलेना चाहिये। मुझे याद है, कि पंडित प्रवर भागचन्द्रजी के समय तक तत्त्वचर्चा का अच्छा आनन्द रहता था, परम पूज्य सिद्ध क्षेत्र सोनागिरजी पर एक शिला 'ज्ञानगुदड़ी' के नामसे प्रख्यात है, मेला ठेलाओंमें १-२ घंटा तत्त्व विचार अवश्य होना चाहिये आजकल मेला उत्सवोंमें विद्वानों का समागम होने परभी जनता शास्त्रीय चर्चाका आनन्द नहीं लेती यह एक बड़ा त्रुटि है। इसे दूर करना चाहिये।

७—मेरी यह भी सम्मति है, कि सालभरमें एक बार एक तत्त्व विचार सभा हुआ करे, इसका कार्य यह होगा कि विवाद कोटिमें आये हुए या नहीं आये हुए खास २ विषयों पर कुछ नियत विद्वान भाषण करें, ऐसे विद्वानोंकी नियति नियत समयसे बारमास पहले परिषद्के मंत्री द्वारा की जाय, विषय और स्थान का सूचना भी एक मास पहिले प्रगट की जाय। दिनमें तत्त्वचर्चा रात्रिमें भाषण रक्खा जाय इस कार्य क्रमसे तत्त्व विचार सभाकी उपयोगिता जनताके लिये अति हितकर होगी।

८— इसी तत्त्व विचार प्रसंगमें मैं कुछ नेतृत्वकी लालसा रखने वाले व्यक्तियोंके विचारों एवं कुछ पत्रोंके विषयमें भी दो बातें कहना आवश्यक समझता हूं, अब यह बात हर एक धार्मिक पुरुषको ध्यानमें रखलेना चाहिये कि जो लोग जैनधर्मसे प्रतिकूल लेखनी चला रहे हैं, वे कुछ उसमें मतभेद रखते हों ऐसा नहीं है किन्तु वे जैनधर्मका सर्वथा लोप करना चाहते हैं, उनका कोई निजी मत भी नहीं है। किन्तु सभी लोग सद्-भावना मिटाकर नरक, स्वर्ग, मोक्ष आदि बातोंके झगड़ेको छोड़कर केवल आर्थिक एवं भौतिक उन्नति द्वारा संसारमें सुखी रहें, यही उनका मत है, ऐसे व्यक्तियोंमें कुछ तो प्रगट हो चुके हैं और कुछ अभी अव्यक्त हैं। मैं ऐसे विचारों पर खेद करता हुआ जैन समाजको सम्मति दूंगा कि जैनधर्मकी जड़ मूलसे उखाड़ देनेवाले पत्रोंको सर्वथा न खरीदें और न पढ़ें। जैनहितैषी, सत्योदय और जाति प्रबोधक ये तीन पत्र जैनधर्मसे प्रतिकूल चल रहे हैं। सत्योदय और जाति प्रबोधकके लेखोंसे तो परिणामोंमें एक दम आकुलता होने लगती है इसलिये उन्हें तो छूना भी हानिकर है।

अभी कुछ दिन पहले स्वर्गीय लोक मान्य तिलकके विषयमें ऐंग्लो इंडियन स्टेट्समैन पत्रने कुछ अपमान जनक शब्द लिखे थे उसके प्रतिफलमें तिलक भक्त देशने उस पत्रके घोर बहिष्कारके सिवा उसके खरीदने वालों तकका बहिष्कार किया था जहां एक दैशिक नेताके विषयका इतना ध्यान है, तो क्या धर्मको

प्राणोंसे प्यारा समझनेवाला जैन समाज अपने परम पूज्य आचार्योंको और उनकी कृतिको झूठा ठहरानेवाले पत्रोंका बहिष्कार करनेके लिये तयार न होगा ? धर्म निष्ठ समाजसे मुझे वैसी सम्भावना नहीं है ।

९-धर्मकी सत्ता स्थिर करनेके लिये एवं विवाद ग्रस्त विषयमे निश्चित परामर्श देनेके लिये मुनियोंमे आचार्य और श्रावकोंमे गृहस्थाचार्य रहा करते थे उन्होंकी आज्ञानुसार धार्मिक प्रवृत्तियोंका पालन होता था, वर्तमान समयमे वह व्यवस्था नहीं है ।

परन्तु धार्मिक शासनके बिना धार्मिक शिथिलता एवं जनताकी अनर्गल उच्छृंखल वृत्ति रुक नहीं सकती अतएव आगमोक्त मार्ग पर आरूढ़ रहनेवाले जैन समाजके लिये आवश्यक है कि वह विवाद ग्रस्त विषयोंमें शास्त्रिपरिषद्की सम्मतिको प्रमाणभूत समझे । शास्त्रिपरिषद्की सम्मति कोई स्वतंत्र सम्मति नहीं होगी किन्तु सप्रमाण होगी ।

१०-धार्मिक ज्ञान की कमी होने से बहु संख्यक ग्रामोंमें धर्म क्रियायें लुप्त-स्खलित होगई हैं नगरोंमें भी शिथिलता देखनेमें आती है इसके लिये सदुपदेष्टा विद्वान उपदेशकोंकी बड़ी आवश्यकता है इसकी पूर्तिका सुगम उपाय यह होगा कि विशारद और शास्त्रीय कक्षाओंमें इसका पाठ्य क्रम रक्खा जाय । भाषण कलाके लिये उपयुक्त समय रक्खा जाय । यदि उपदेशक विभागका उचित संगठन होगया तो उससे अनेक आत्माओंके हित होने की पूर्ण सम्भावना है यद्यपि महासभाने एक उपदेशक विभाग खोल रक्खा है परन्तु योग्य उपदेशकोंकी सृष्टिका अभी तक कोई उपाय नहीं हुआ है बिना संस्थाओंको खास विषय और कुछ छात्र नियत किये यह कार्य नहीं हो सकता ।

११-मैं एक आवश्यक विषयकी ओर आपका ध्यान आकर्षित करता हूं वह है "संस्कार" बहुत दिनोंसे हमारे यहांसे संस्कारोंके उठ जाने से हम संस्कारोंकी आवश्यकता और उनसे होने वाले लाभोंको एक दम भूलसे गये हैं संस्कारों के बिना हमारा कुलाचार मन्द पड़ गया है बुद्धियोंमे मलिनता की कमी आगई है यदि आज हमारे यहां विद्यारम्भ आदिक संस्कार प्रचलित होते तो अनपढ़ पुरुषोंकी संख्या थोड़ी भी देखनेमे नहीं आती । अनिवार्य शिक्षा के लिये बिल तो हमने दूसरोंसे बहुत दिनोंतक पास कराये परन्तु विद्यारम्भ संस्कार द्वारा प्राप्त समाधान अनिवार्य विद्या की ओर जो कि हमारा आवश्यक स्वतन्त्र कर्तव्य था ध्यान नहीं दिया ।

अब आवश्यकता है कि हम सारे समी संस्कारोंका प्रचार करें कमसे कम यज्ञोपवीत संस्कार जो कि हमारे ध्येय रत्नत्रयका बाह्य स्मारक चिह्न विशेष है जो हर एक जैन गृहस्थ को अवश्य करना चाहिये सभी संस्थाओं के छात्र इस संस्कार से शून्य न रहें ऐसा प्रबन्ध उन संस्थाओं के संचालकोंको करना उचित है । इसी प्रकार इस विषयमें मैं अपनी माताओं और भगिनियों का ध्यान आकर्षित करूंगा कि वे भी अपनी परिषद् द्वारा बालकोंके संस्कारों का प्रचार करावें । सन्तान का धर्म निष्ठा के लिये संस्कार मूल कारण है बाल्य जीवन माताओंसे भी घनिष्ट सम्बन्ध रखता है इस लिये उन्हें संस्कार शुद्धि पर पूर्णलक्ष्य देना चाहिये ।

१२-मुझे एक बात श्रावक श्रेष्ठ उपस्थित सम्मान्य ब्रह्मचारि महोदयोंसे भी कहना कि जो ११ वीं प्रतिमा धारी क्षुल्लक अथवा ऐलक हैं उन्हें रेल गाड़ीसे सफर नहीं करना चाहिये । ग्यारहवीं प्रतिमा वाले उद्दिष्ट त्यागी हैं अतएव उनको रेलसे सफर करना शास्त्र नि-

षिक शांतिके लिये इर्यापथ शुद्धि का भी नहीं पलने देता ऐसे संयमी ग्रामोंमें घूमते हुए भ्रमण करें तो ग्राम वासियोंको सदुपदेशकी प्राप्ति पात्रदान वैयावृत्त भोजन शुद्धि आदि बहुतसी बातोंका लाभ हो सकता है तथा व्रतियोंकी क्रियायें भी निराकुल पलसकेंगी। व्रतियों को चरणानु योग शास्त्रोंका पूरा मनन करना चाहिये मेरी यह भी सम्मति है कि प्रत्येक गृहस्थको सबसे प्रथम श्रावकाचारका स्वाध्याय करना नितान्त आवश्यक है इसके बिना हमलोग प्राथमिक क्रियाओंको भी भूलते जाते हैं।

१३—आज कल जो दिगम्बर और श्वेताम्बरोंमें तीर्थोंका झगड़ा चल रहा है, उस सम्बन्धमें मुझे इतना ही कहना है कि मुझे जहां तक इस पारस्परिक सम्बन्धका इतिहास मालूम है दिगम्बरोंकी ओरसे आज तक कोई झगड़ा नहीं उठाया गया है। यहां अपने धार्मिक हकोंकी रक्षाके लिये उन्हें सामना करनेके लिये बाध्य होना पड़ा है। यह कोई उनका दोष नहीं कहा जासकता, इस समय भी जब कि शान्ति-विचारकी बात निर्णीत होचुकी थी, फिर भी हमारे श्वेताम्बर भाइयोंने न मालूम क्यों टाल कर दी, जिसका हमें खेद है, परन्तु साथ ही हर्ष है, कि वे फिर शान्ति-विधानका वचन देते हैं। हमारे दिगम्बर भाई इस अवसरको भी देखें, अच्छा है यदि परस्पर ही शान्ति और समझौता हो जाय।

१४—मुझे अभी एक अत्यावश्यक विषय और भी आपके सामने उपस्थित करना शेष है। मैं इस समय महा विद्यालयकी दशा साधारण रूपमें ही देख रहा हूं इसका दिग्दर्शन करानेमें मैं आपका समय नहीं लूंगा किन्तु उसके सुधारका उपाय यह बात लाऊंगा, कि उसमें प्रवेशिकाकी कक्षायें न रक्खी जांय किन्तु उसके नामके अनुसार विशारद और शास्त्रीय कक्षायें रक्खी जांय। स्थान उसका किसी बड़े शहरमें रक्खा जांय बड़े शहरमें चले जानेसे बड़े २ छात्रोंको बाह्य नागरिक व्यवहारोंका बहुत कुछ अनुभव बिना शिक्षाके स्वयं हो जाता है जिसकी कि उनकेलिये बड़ी आवश्यकता है। अध्यापककी योजना अच्छे रूपमेंकी जाय एक उत्साही विद्वानको मंत्री नियत कर देना चाहिये। जितनी शिकायत मुझे महाविद्यालयके सम्बन्धमें है उतनी ही परीक्षालयके विषयमें है। जब तक एक व्यापक परीक्षालय नहीं होगा तब तक छात्रोंकी पढ़ाईका सिलसिला किसी नियत रूपमें नहीं आसकेगा।

१५—बम्बई परीक्षालयका कार्य इस समय श्रीयुत सेठ रावजी सखाराम दोशी द्वारा उत्तम रीतिसे चल रहा है यदि उन्हें ही भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परीक्षालयका मंत्री नियत किया जाय या किसी दूसरे योग्य विद्वानको। इस कार्यको शास्त्रिपरिषद् अच्छी तरह कर सकती है उसीके अधीन इसे करना अच्छा होगा, वर्तमान समयमें जो सरकारी परीक्षाओंकी बाढ़ चल रही है वह संस्कृत विद्याकी समुन्नतिका चिह्न अवश्य है। परन्तु इन परीक्षाओंसे छात्रोंकी सिद्धान्तकी योग्यतामें बहुत कुछ कमी रह जाती है और वैसी अवस्थामें हमारे लक्ष्यकी सिद्धिमें बाधा आती है, इसलिये एक व्यापक परीक्षालय खोलकर उसीकी उपाधियोंसे छात्रोंको विभूषित किया जाय, और वे ही उपाधियां प्रमाण रूप समझी जांय। वर्तमान दैशिक अभ्युत्थान भी हमारी सम्मतिका समर्थन करता है इस परीक्षालय द्वारा उन वृद्ध अनुभवी विद्वानोंको भी सम्मिलित किया जाय जो समाजमें साहित्यिक योग्यता से प्रसिद्ध हैं। परीक्षाओंके केन्द्र नियत किये जांय, और शास्त्रीय परीक्षा मौखिक ली जाय जिससे शास्त्री-

व योग्यताका परिज्ञान हो जाय, तथा शास्त्रीय उपाधि किसी केन्द्रमें छात्रोंको बुलाकर दी जाय।

१६-जैन संस्थाओंके लिये पाठ्य पुस्तकोंके नवीन निर्माणकी भी पूर्ण आवश्यकता है, यह विषय पहिले परिषद्में कहा जा चुका है, ऐसा मुझे स्मरण है। परन्तु अभी तक उसका कोई परिणाम नहीं दीखा है। हिन्दीकी प्रचलित पुस्तकोंसे छोटे २ बालकोंके संस्कार ईश्वर कर्तृत्वसे दूषित हो जाते हैं। इस दोषको हटाने एवं छात्रोंमें जैन तत्वोंका सुगमतासे ज्ञान करानेके लिये बालोपयोगी पुस्तकोंके निर्माणकी पूरी आवश्यकता है। शास्त्रि परिषद्का एक यह भी आवश्यक कार्य है, कि समाजमें जो पुस्तकें या ट्रैक्ट निकलें उनपर जांचकी जाय कि ये धर्मानुकूल हैं या प्रतिकूल।

१७—हमें धार्मिक और आर्थिक दृष्टिसे स्वदेशी वस्तुओंका उपयोग करना परमावश्यक है। शुद्ध स्वदेशी औषधि वस्त्र, उपकरण, आदि सभी पदार्थ स्वदेशी ही वर्तना उचित है. जैन संस्थाओंके छात्रोंको स्वदेशी वस्त्रोंको धारण करना अत्यावश्यक है। यहां पर मैं यह कहना भी उचित समझता हूं कि स्वराज्य के हम भी पक्षपाती हैं। परन्तु धर्मको ताकमें रख कर जो स्वराज चाहते हैं, वे देश हितैषी नहीं किन्तु हानिकारक हैं, धर्मकी रक्षा करते हुए स्वराजमें हमें पूरा भाग लेना चाहिये। अहिंसा प्रचारमें देश इस समय हमारा साथ देरहा है इसलिये उसकी ओर जैनियोंको खास कर प्रयत्न शील होना चाहिये।

१८— अन्तमें मैं दो बातें कहकर अपने भाषण को समाप्त करूंगा एक तो भट्टारकोंके विषयमें कुछ कह देना समयोचित समझता हूं। पहले समय में भट्टारक महोदयोंसे बहुत कुछ धर्म प्रभावना और सामाजिक मर्य्यादा रह चुकी है, इतिहास इसका साक्षी है। अनेक महत्त्वशाली संस्कृत ग्रंथोंके उपलब्ध होनेसे प्राचीन भट्टारकोंके प्रखर पाण्डित्यका परिज्ञान भी सहज हो जाता है। कई स्थलों पर शास्त्रार्थमें विजय पाकर धर्मका माहात्म्य भट्टारकोंने ही दिखलाया है। परन्तु आजकल के बहुभाग भट्टारकों की प्रवृत्तियां शिथिल हो रही हैं। उनमें ज्ञानकी मात्रा भाषा ग्रन्थोंके समझने तककी भी शेष नहीं दिखती, चारित्रांश भी जो कुछ शेष है वह केवल प्रतिष्ठाके लिये दिखाने मात्रका है। धर्मार्थ संचित संपत्ति उनको विलासिताकी ओर उन्हें खींच रही है ये ही सब कारण ऐसे हैं जो भट्टारकोंकी वर्तमान परिस्थितिको दूषित एवं निद्य बना रहे हैं। मैं उन भट्टारक महोदयों को सलाह देता हूं कि वे वर्तमान समयकी अपनी आवश्यकताका समय समझ कर अपने सदुपकारों द्वारा जनताको आकर्षित बनावें। जैनियोंमें चारित्रकी मात्रा शिथिल हो रही है, श्राद्धिक भाव उठते जा रहे हैं। सामाजिक बन्धन तोड़नेके लिये कुछ आवाजें उठ रही हैं ऐसी अवस्थामें आपका कर्तव्य है कि गृहस्थाचार्योंके समान उन्हें धार्मिक दृढ़ता पर स्थिर रक्खें। सबसे प्रथम आपका कर्तव्य यह है कि आप अपने पदस्थानुसार संयमी बनें। आपकी क्रियायें आदर्श हों, इन्द्रिय विजयी और संयमी बननेसे ही आप जनताको मार्ग बतलानेमें समर्थ हो सकते हैं अन्यथा कभी नहीं। दूसरा कर्तव्य आपका यह होना चाहिये कि संस्कृत ग्रन्थोंका अच्छी तरह मनन करें। चारों अनुयोगोंका कमसे कम सामान्य ज्ञान आपको अवश्य होना चाहिये। तीसरा कर्तव्य आपका यह होगा कि अधिकृत सम्पत्तिसे सुशिक्षा धर्मायतनोंकी रक्षा, शास्त्रोद्धार उदासीन भावकी समुन्नति आदि कार्य करें। उपर्युक्त तीन कर्तव्योंसे भट्टारक सम्प्रदाय-

जैनियोंके लिये हितकर और परमावश्यक बन जायगा।

१९— शास्त्रिपरिषद्का संगठन उत्तम और व्यापक बने इसके लिये निम्न लिखित कार्य विधानके लिये मेरी सम्मति है। मैं देखता हूं कि प्राय: सभी प्रान्तोंमें शास्त्रियोंका निवास एवं प्रवास है। हरएक प्रान्त अथवा कतिपय नगरोंके कार्योंका उत्तर दायित्व उस प्रांतके शास्त्री महाशयको सौंपा जाय। परिषद्के उद्देश्य तथा प्रस्तावका प्रचार, धर्म विरुद्ध बातोंका निवारण, सामाजिक कार्योंमें धर्मानुकूलता संस्थाओंकी उचित समालोचना आदि सभी कार्यों के लिये प्रान्तीय शास्त्रियोंको मंत्री नियत किया जाय वे स्वयं सुधार करें। परिषद्के मंत्रीको वहांकी व्यवस्थाकी रिपोर्ट भेजते रहें। समाजकी परिस्थतिका ज्ञान कराते रहें। इस प्रकार भिन्न २ प्रांतके शास्त्रियोंने यदि अपना २ मंत्रित्व पूरा किया तो समस्त समाजका अभ्युदय हो सकता है। शास्त्रियोंका कर्तव्य है कि वे सोत्साह उक्त कार्योंमें भाग लेवें, उनकी शक्तिके सदुपयोगका यह अच्छा अवसर है।

२०— अब मैं अपने भाषणके समाप्त करनेके पहिले अपना प्रधान कर्त्तव्य समझता हूं कि उन महाशयोंका कृतज्ञ बनूं जिनकी कृपासे यह शास्त्रिपरिषद् अपना अधिवेशन यहां कर रही है। स्वागतकारिणी समितिके सभाध्यक्ष ला० रामस्वरूपजी, उसके मंत्री बाबू रूपचंदजी शास्त्रिपरिषद्के कार्य सचिव पं० दुर्गाप्रसादजीके कार्योंका आभारी बनता हुआ उन्हें धन्यवाद देता हूं। मेलेकी शोभा बढाने वाली और प्राचीन शास्त्रोंके दर्शन कराने वाली प्रदर्शिनीके अश्रान्त उद्योगी मंत्री पं० कन्हैयालालजी वैद्यराजको भी मैं भूरि २ धन्यवाद देता हूं। इसके सिवा कानपुरके सभी खास कर बाबू नवलकिशोर जी वकील विशेष धन्यवादके पात्र हैं जिन्होंने कि सम्मेलनमें पूरा पूरा भाग लिया है और समाज सुधारका विचार किया है।

२१-अन्तमें परन्तु प्रधान धन्यवाद मैं महा सभा के सभाध्यक्ष महोदय और महामंत्रीजीको दूंगा जिनकी कृपासे महासभा सम्बन्धी कार्योंके रहते हुए भी इस परिषद्के लिये समय मिला है, तथा जिन्होंने महासभाके कार्योंमें पूरा योग दिया है।

श्रीजिनेंद्रदेव उपस्थित महानुभावोंको सुविचारके लिये सुबुद्धि प्रदान करें ऐसी भावना करता हुआ अब मैं अपने स्थानको ग्रहण करता हूं।

श्री पद्मावतीपुरवालपरिषद् मालवाका पांचवां वार्षिक अधिवेशन होसंगाबादका विवरण।

(माघ शुक्ला २ से ४ तक श्रीयुत पण्डित गोरीलालजी देहलीवालोंके सभापतित्वमें हुआ)

पहले दिन रात्रिको माघ सुदी २ को कार्य प्रारंभ। ८॥ बजे ५०० स्त्री पुरुषों की उपस्थिति सभामंडप मे थी जो अच्छा सजाया गया था मंगलाचरण विः घनश्यामलाल जी मोरैनाने किया-पश्चात् सभापति का चुनाव हुआ।

प्रस्ताव, बाबू दिगंबरदासजी ने किया समर्थन, नारायण गैंदा लालजी होसंगाबादने और अनुमोदक पं० कस्तूर चंदजी महोपदेशकने किया

सभापति पं० गोरीलालजी देहलीने सभापतिका आसन ग्रहण किया। जय हुई।

पश्चात् सिंघई डालचन्दजी सभापति स्वागतकारिणी समिति होसंगाबादने आगत भाइयोंका स्वागत करते हुये भाषण किया।

पश्चात् पंडित गोरीलालजी देहलीने अपना लिखा हुआ भाषण पढ़कर सुनाया, क्योंकि और अन्य धर्मी सज्जन पधारे थे सो उनकी प्रेरणासे न्यायालंकार पं० मक्खनलालजो वादीभगजकेशरी हस्तनापुर और न्यायाचार्य पं० माणिकचन्द्रजी मोरेना के जैन धर्मके महत्वपर व्याख्यान हुवे। वि० बनवारी लालजी मोरेना का भाषण हुआ पश्चात आजकी बैठक समाप्त हुई और सभा विसर्जित की गई।

दूसरे दिन २ बजे दुपहरसे ४ बजे तीसरे पहरतक सबजेक्ट कमेटीका चुनाव होकर उसके द्वारा प्रस्तावोंकी सूची तैयारकी गई रात्रिको ६ बजेसे कार्य प्रारंभ हुवा बाबू दिगंबरदासजो आनरेरीसेक्रेटरीने वीर सं० २४४६की विद्याविभाग उपदेशविभागकी रिपोर्ट व हिसाब पढ़कर सुनाये और सब भाईयों द्वारा पास किये गये फिर उन भाईयोंके जो स्वयं नहीं आसके थे आये हुवे सहानुभूति सूचक पत्र वा तार सुनाये गये फिर निम्नलिखित प्रस्ताव आम सभामें पास हुवे पश्चात् पं० मक्खनलालजो पं० माणिकचंदजी पं० कस्तूरचंदजीके व्याख्यान हुवे और आजकी सभा विसर्जित हुई।

प्रस्ताव नं १—यह सभा प्रस्ताव करती है कि महासभाके कानपुर अधिवेशनके लिये प्रति निधि चुने जावें।

प्रस्तावक—छोगमलजी चौक भोपाल, समर्थक—देवचन्दजी धामंदा,

अनुमोदक—का—कन्हैयालालजी (जानेवाले भाईयोंके शुभनाम जिनने स्वीकारता दी)

सिंघई डालचंदजी गेंदालालजी होसंगाबाद, छोगमलजी भोपाल, पं० कस्तूरचंदजी उपदेशक वा रामुकंदजी सोहौर।

२ पद्मावती परिषद्के लिये प्रति निधि चुने जावें और मंत्री परिषद व मेलेवाले भाईको उद्देसर लिखा जाय कि कानपुर अधिवेशनके २ चारदिन बाद हो परिषद्का अधिवेशन रखें।

प्रस्तावक—हरलाल बेड़स्या, समर्थक जोरावर जामनेर। अनुमोदक पं० मक्खनलालजी हस्तना-पुर। (उपरोक्त भाई कानपुर जानेवाले इस अधिवेशनमें भी शामिल होंगे।

३ जाति प्रबोधक जैनहितैषी, सत्योदय, जीनों पत्र का बहिष्कार किया जाय।

प्रस्तावक—पं कस्तूरचंदजी, समर्थक—पं० मक्खनलालजी, अनुमोदक सेठ गेंदालालजी होसंगाबाद, सिंघई डालचंदजी होसंगाबाद

४ धर्म विरुद्ध लोगोंके साथ धर्म विरुद्ध कार्योंमें वर्धाके रामाराबजी भाग लेते हैं इसलिये यह परिषद् इसकारवाई पर खेद प्रगट करती हुई आगामी ऐसे कार्य न करनेका अनुरोध करती है इस प्रस्तावकी १ प्रति उनको भेजी जाय।

प्रस्तावक सिंघई डालचंदजी होसंगाबाद। समर्थक पं० कस्तूरचंदजी भोपाल। अनुमोदक धनजी रामजी वावड़ा खेड़ा।

५ जिन ग्रामोंमें मन्दिर नहीं है वहां चैत्यालयस्थापन करानेकी प्रेरणा और स्वाध्याय करनेकी प्रेरणाकी जावे। प्रस्तावक मिट्ठूलालजी भाऊ खेड़ी समर्थक मुन्नालालजी जावर। अनुमोदक मगनलालजी सारंगपुर।

६। पंचायतोंका स्थापन हर गांवमें होना चाहिये। प्रस्तावक पं० कस्तूरचंदजी, समर्थक पं० बाबलरामजी उपदेशक, अनुमोदक—हजारी मलजी सतपोपला

७ स्वदेशी वस्तुका प्रचार करना चाहिये प्र: मन्नूलालजी होसंगाबाद। समर्थक जवरचंद्रजी हडलाय, अनुमोदक मिश्रीलालजी होसंगाबाद।

८ खासकर श्री पद्मावती पाठशाला सीहोर तथा दूसरी धार्मिक पाठशालाओंमें अपने बच्चोंको पढ़नेको भेजना चाहिये। प्र: गप्पूलालजी होसंगाबाद, समथक पं० मोजीलालजी अनुमोदक, मन्नूलालजी गुढ़ी सीहोर।

९ सभाकी रिपार्ट व हिसाब सं २४४६ का पास किया जावे। प्रस्तावक सभापति। सर्व सम्मतिसे पास।

१० पुत्रजन्म विवाहादि उत्सवोंके समय सभाको अवश्य सहायता दी जावे। प्र: हेमराजजी आष्टा, समर्थक जवरचंदजी कोठाड़ी, अनुमोदक, ऊंकारचंदजी पोड़ा।

११ आगामी सालका बजट पास किया जाय प्र: सभापति सर्व सम्मतिसे पास।

१२ शिखरचंदजी टूंडला, बा० बनारसीदासजी जलेसर गोकुलचंदजी मरनी लच्छीरामजी होसंगाबाद आदि सुजनोंकी असमय मृत्यु पर यह सभा शोक प्रगट करती है तथा उनके कुटुम्बसे समवेदना प्रगट करती है। नोट-इस प्रस्तावकी एक एक कापी उनके कुटुम्बियोंके पास भेजी जायें) प्रस्तावक:—सभापति

१३ लायकके वतन आदि सहायता पाठशालाको दी जाय चाहे कहीं भी जाति भरमें कोई भी बाटे, प्रस्तावक सिंघई डालचंदजी, समर्थक, हजारीलालजी मूलचंदजी सीहोर। अनुमोदक:-छोगमलजी भोपाल।

१४ पिछले वर्षोंमें पास हुवे प्रस्तावोंको अमली कार्रवाईकी जावे।

प्र: बंसीलालजी सीहोर, समः राजेबाबुजी सुजालपु अनु० हेमराजजी-आष्टा

तीसरे दिन ४ बजे दिनसे ६ तक।

सभापतिका आसन ग्रहण- स्वागत अनाथ बड़नगरके अनाथों द्वारा पढ़ा जाना।

सीहोरकी पद्मावतीपाठशालाके विद्यार्थियोंका भाषण।

वि: जगमंदिरलाल ४-३०से ३५ तक विधवाकी महिमा
" सुमतिलाल ४-३५ से ४५ तक पंच परमेष्ठीके गुण
" नेमचंद ४- ४१ से ५१ तक १२ व्रत
" निहालचंद ४-५५ से ५-५ तक ८ कर्म
" मित्रसेन ५-५ से १५ तक मिथ्यातसे संसार भ्रमण
" परमेष्ठ लाल ५-१५ से ३० तक सम्यक्त्वका स्वरूप
और फिजूल खर्च पर ड्रामा ५-३० से ३५ तक

प्रश्न करता-नेमचंद। उत्तरदाता-मित्रसेन

उपदेश, पं० मौजीलालजी, जीव दयाका ५-३५से ६ बजेतक।

पं० बाबलरामजी उपदेशक महासभा समाजोन्नति पर २-१० से ६-४० तक।

रात्रिको ८ बजेसे ११ बजे तक घाटपर आम सभा हुई टाउनहालके पास जिसमें पं० मौजीलालजी आदि विद्वानोंके अहिंसा, मद्यनिषेध आदि विषय पर व्याख्यान हुए।

सभामंडपमें नित्यके अनुसार शास्त्रजी होनेके ६ बजेसे फिर पं० मौजीलालजी, पं० कस्तूरचंदजी, महामंत्री मोतीलालजी भोपाल श्रीयुत ठाकुर साहब आदिके प्रभाव शाली व्याख्यान हुवे। शेष फिर—

निवेदक—बालमुकुन्दजी दिगम्बरदास

सुनो जैनी ।

तुम्हारो इस शिथिलताको तजो जैनी तजो जैनी ।
खूब भर नींद सोये हो जगो जैनी जगो जैनी ॥
तुम्हारे पूर्वजोंने किस कदर डंका बजाया था ।
प्रमादी तुम हुये कैसे ? उठो जैनी उठो जैनी ॥ १ ॥
नहीं प्रतिनिधि तुम्हारा है राज्यभारतके प्रतिनिधि संग
लो इसका सुदृढ आन्दोलन करो जैनी करो जैनी २
सहोदर जो तुम्हारे थे भिन्नमत हो गये तुम से ।
लगाने सुपथ पर उनको डटो जैनी डटो जैनी ॥ ३ ॥
कोटो दिनारके स्वामी थे अब हो लखपति हों बस ।
ये वेश्या नृत्य आदिकसे भगो जैनी भगो जैनी ।४॥
पराक्रम है कहां हनुमान सा और वीर लछमन सा ?
कि सेवन ब्रह्मचर्याका करो जैनी करो जैनी ॥ ५ ॥
भुलाते हो क्यों अग्निभूत वायुभूतको मन से ? ।
उठो भंडार विद्याका भरो जैनी भरो जैनी ॥ ६ ॥
नहीं क्या देखते आंखोंसे कितनी हो रही विधवा ?
इनिथी वृद्ध विवाहोंको करो जैनी करो जैनी ॥ ७ ॥
क्या संख्या अपनी थी इतनाकी जितनी देखरहे इस दम
दुष्ट फल बालव्याहोंका लखो जैनी लखो जैनी ॥८॥
दयाको दूर करते हो इसीसे पाप फलता है ।
ये आतिसबाजीसे अब तो हटो जैनी हटो जैनी ॥९॥
चेत जा, जाग लो, सम्हलो करो उत्थान जातीका ।
न खावो एक क्षण "पन्ना" सुनो जैनी सुनो जैनी १०

पन्नालाल सिंघना ।

श्री जिन बिम्ब प्रतिष्ठा पंच कल्याण महोत्सव
पर श्री भा० दि० जैन महासभाका

नैमित्तिक अधिवेशन

उडेसर (मैनपुर)

धर्म स्नेह पूर्वक जुहारु, अपरंच निवेदन है कि उडेसरमें जिनबिम्ब प्रतिष्ठा पंचकल्याणक महोत्सव वैसाख बदो १३ ता० ५ मई से मिती बैसाख सुदी २ ता० ९ मई तक है इसी अवसर पर महा सभाका नैमित्तिक अधिवेशन भी होगा । कृपाकर इस अवसर पर अवश्य २ पधारें ।

नोटः—स्टेशन शिकोहाबाद ई० आई० आर० या सिकंदरा राऊ आर० एम० पर उतरें । वहांसे इका द्वारा उडेसर आवें पधारनेकी स्वीकारता उडेसर स्वागत समितिको दीजिएगा ।

अमोलकचन्द उडेसरीय
स० महामंत्री

पद्मावती परिषद्का अधिवेशन ।

एटामें पंचकल्याणक !

एक पंथ दो काज !!

अवश्य पधारिये !!!

वैसाख सुदी १२ से जेठबदी . तक बडे सज धज व उत्साहके साथ श्रीदेवाधिदेव जिनेंद्र भगवानके पंचकल्याणकोंका महोत्सव होगा। इस समय बडे २ विद्वानोंके व्याख्यान होंगे, पद्मावती परिषद्का जलसा होगा, नवीन कार्य कर्त्ताओंका चुनाव हो परिषद्का संस्कार किया जायगा । हजार काम छोडकर आइये ।

निवेदक—
सकल दि० जैन पंच
एटा ।

पद्मावती पुरवालके आक्षेपोंका समाधान शीर्षक नोटपर कुछ निवेदन।

पद्मावती पुरवाल वर्ष तीसरा अङ्क ८वें में मुरैना जैन सिद्धान्त विद्यालय पर कुछ नोट प्रकाशित होगया था उसका समाधान पूज्यपाद पं० धन्नालालजीने खंडेलवाल जैन हितेच्छु वर्ष प्रथम अङ्क २ में विस्तार के साथ दिया है यद्यपि उस नोटके निकालनेकी कोई आवश्यकता न थी, विद्यालयमें क्या त्रुटि है? यह हम उसके मंत्री महोदय से ही पूछ सकते और उसके परिमार्जनको उनसे निवेदन कर सकते थे। विचार भी ऐसा ही था परन्तु पूज्यात्मा मातुश्रीके स्वर्गवासकी आकस्मिक घटना घटजानेके कारण हमें देश जाना पड़ा और नोटके प्रकाशनसे किसीको आघात पहुंचेगा इस बातकी स्वप्नमें भी आशा न कर "विद्यालय की त्रुटि भी परिमार्जित होजाय" इस सदिच्छा से वह नोट प्रकाशित कर दिया था परन्तु उसका परिणाम विपरीत होगया। विद्यालय के पूज्यात्मक और मित्रात्मक कार्यकर्ताओं को बुरा लग गया और हमें पक्षपाती समझ विद्यालयको विरुद्ध कोटिमें परिगणित कर डाला। विद्यालयके विषयमें हमारे क्या और कैसे भाव हैं शायद दो एक वारके परिचयसे उसके मन्त्री महोदय समझतेही होंगे तथापि प्रतिज्ञा पूर्वक यह लिखनेको आज बाध्य होना पड़ता है कि हमें यहांतक अभिमान है कि जैन समाजमें मुरैना विद्यालयकी शानी का कोई दूसरा विद्यालय नहीं। स्वनाम धन्य स्वर्गीय पं० गोपालदासजीने इसरूपके विद्यालयकी नींवही नहीं डाली किंतु जैनधर्मको उन्नतिका सबको दिखाई पड़ने वाला मूर्तिक असाधारण कारण प्रत्यक्ष दिखादिया। मोरैना विद्यालयमें उत्पन्न हुए वृक्षोंने अपने मधुर धार्मिक फल प्रदानकर जैनसमाजको जो तृप्त किया है, सर्वथा जर्जरित करनेवाले विधर्मियोंके आघातोंसे जो जैनधर्मकी रक्षा हुई है और हो रही है समाज उसे भूलजाने वाला नहीं, हमें भी ऐसा पागलपना नहीं सूझ सकता कि हम ऐसे परमोपकारी विद्यालयका कुछ भी उपकार स्मरण न कर उसको आहत करनेके लिये उठ खड़े हों परन्तु यह सर्वसम्मत बात है कि जिसप्रकार सर्वथा सफेद चद्दरमें सरसों बराबर भी काला धब्बा खटकता है कोमलांग मनुष्यको हाथभर ऊंची किंतु कोमल गद्दो के नीचे रक्खी हुईभी सरसों चुभती है विशेष क्या लाखों वर्ष तपकरने पर भी जरासी शल्य रहजाने पर निर्वाण सुख हासिल नहीं होता उसीप्रकार परमोपकारी विद्यालयमें थोड़ासी त्रुटि जो बिना परिश्रमके ही परिमार्जित हो जा सकती है हमें सह्य नहीं हो सकती और हमारी यह धारणा है कि जिसका कुछ भी विद्यालयके साथ प्रेम होगा उसको वह त्रुटि जरूर खटकेगी और उसके परिमार्जित करनेकेलिये जिस प्रकार प्यासा भूखा छटपटाता है उसीप्रकार छटपटायेगा इस लिये विद्यालयके विषयमें कुछ लिख देना दोषावह नहीं समझा जा सका।

यहांपर एक यह भी विचारने की बात है कि कोई भी पदार्थ हो जिससे कोई बात का द्वेष नहीं, जिसकी ओर भी विशेष उन्नति की कामना हृदयमें जागरूकता धारण किये रहती है यदि उसके विषयमें कभी कुछ

मुखसे निकल भी जाय तो उससे यह न समझ लेना चाहिये कि वह विरोधसे कटाक्ष कर रहा है किंतु जब उस पदार्थ के साथ पहिले कुछ द्वेष प्रगट हो गया हो या कुछ निजी स्वार्थ छिपा कर उसपर कटाक्ष किया गया हो तभी वह कथन द्वेष पूर्ण माना जा सकता है मोरैना विद्यालयसे हमारा कोई द्वेष नहीं, उसको धक्का पहुचाने में हमारा कोई निजी स्वार्थभी नहीं विद्यालयमें कार्य करने वाले जितने भी महानुभाव हैं सब हमारे प्रेमी हैं तब हमारा उसकी त्रुटिके विषयमें लिखा जाना कभी द्वेष प्रयुक्त नहीं समझा जासकता अस्तु हम नोटों का खुलासा करते हुए.... समाधानपर थोड़ासा निवेदन किये देते है—

पद्मावती पुरवालमें पहला नोट यह था कि " अध्यापक अपने समय पर न आते हैं और न ठीक पढ़ाते " इस नोटके देनेका हमारा अभिप्राय यह था कि जो विद्वान पढ़ानेके लिये नियत हैं उन पर विद्यालयके भोजन सामग्री आदिके इकट्ठे करनेके प्रबन्ध का भी भार डाल रक्खा है। मजबूरीसे उन्हें वैसा करना पड़ता है। ऐसी हालतमें यह बात सुलभरूपसे ध्यानमें आसकती है कि भोजनादिका प्रबंध करने में विशेष समय लग जानेके कारण वे कभी कभी नियत समय पर नहीं आसकते हैं। पढ़ाते समय ही भोजन आदिके प्रबंधका कार्य आजाने पर बीचमें पढ़ाना छोड़ कर भी जा सकते हैं और चित्तमें व्याक्षेप हो जानेसे ठीक पढ़ाना भी नहीं हो सकता क्यों कि पढ़ानेका कार्य चित्तकी एकाग्रता पर निर्भर है। जब कि चित्तमें एकाग्रता और शांति रहेगी किसी प्रकारका द्वैधीभाव न रहेगा तभी अध्यापक विद्यार्थीके हृदयका भाव समझ सकता है और अपना मनोभाव छात्रोंके हृदयमे जमा सकता है किन्तु यदि उपर्युक्त कारणमें एक का भी अभाव हो गया तो अध्यापक और छात्रके बीचमें 'पढ़ाना और सुनना' बस ये दो ही कार्य रह सकते हैं। समझाना और समझना होना कठिन है। यद्यपि यहां पर यह युक्ति दी जा सकती है कि ये दो महाशय हमेशासे यह कार्य करते चले आरहे हैं तो उसका समाधान यह है कि सुभीतेके समय वे करते रहे होंगे परंतु इस समय इस कार्यका भार इनसे ले कर दूसरेको सुपर्द करना चाहिये और इन विद्वानोंको मुख्यतासे पाठनका कार्य देना चाहिये फल यह होगा कि इससे छात्रोंको संतोष होगा। विद्वानोंकी जो शक्ति दूसरे कार्योंमें खर्च होती है वह पाठन और छात्रोंको योग्य विद्वान तयार करनेमें होगी तो विद्यालयका बहुत कुछ उपकार होगा। अलावा इसके भोजन आदिके प्रबंधमें जो भी इन विद्वानोंका समय व्यय होता है जब उसकी चिंता उन्हें न करनी पड़ेगी तब जैनधर्मको द्वेषी मूर्तियां जो जैनधर्म पर आघात कर रही हैं थोड़ी सी जैन धर्मकी बात जानकर और अटकोली सटकोली कुछ हिंदी लिख कर ही अपनेको सर्वोच्च विद्वान माननेका दम भर रही हैं उनके वचनोंको खंडनाकेलिये इनका हृदय लहलहायेगा और उससे शास्त्रानुसार विद्वत्ता पूर्ण उत्तर देनेमें जैनधर्मका असाधारण उपकार होगा। बस हमारे नोटका यही भाव था किंतु मोरैना के व्यक्ति गत विद्वान या समष्टिगत विद्वानोंमें कोई विद्वेष परिपूर्ण न था। पूज्यपाद पंडितजीने शायद नोटका यह तात्पर्य समझ कर कि 'मोरैनाके अध्यापक लापरवाह हैं जो उनके जिम्मे कार्य सुपुर्द है उस को करना वह अपना कर्तव्य नही समझते हैं' उसका निराकरण किया है और जो अध्यापक कार्य करते हैं उनके कार्यकी शृंखला बतलाई है। परन्तु हमारा

नतमस्तक हो यह पं० जीसे निवेदन है कि हमारा वैसा भाव न था। आपने जो कार्यशृंखला बतलाई है वह बेशक हमारे लिये खटकनेकी बात है जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं यदि यह भी बात हमारी किसी कारणसे अयुक्त जान पड़े तो आपका पूर्ण अधिकार है आप उसे न स्वीकार करें।

आपने यह जो लिखा है कि 'न्यायाचार्य पं० माणिकचंद्रजी और साहित्य शैरोमणि पं० जगन्नाथप्रसादजीके विषयमें शायद कोई शिकायत न होगी किंतु पं० वंशीधरजी न्या० अ० और पं० देवकीनंदजी वक्ताके विषयमें होगी परंतु इनको अध्यापनके सिवा अन्य भी कार्य करने पड़ते हैं इत्यादि उसके उत्तरमें यह निवेदन है कि यह आप भी समझते हैं कि अंतके दोनों विद्वान विद्यालयका अन्य कार्य करते हैं इसलिये कभी कभी ठीक समय पर कार्य करनेको उन्हें असुविधा होजाती होगी बस उसीविषयमें हमारा निवेदन है कि ' अन्य कार्यको झंझटसे अवश्य ही असुविधा होती होगा '। इसीलिये पठन पाठन कार्यसे अतिरिक्त कार्यमें उनकी शक्तिके व्यर्थ व्यय होनेमें हमने विरोध बतलाया है। यदि पं० माणिकचंद्रजी या अन्य कोई महाशय पाठनसे अतिरिक्त कार्य करें तो भी हमें नोट करनेमें कोई संकोच नहीं और मित्रवर पं० वंशीधरजी और देवकीनंदनजी मुख्य कार्य अध्यापनका छोड़ अन्य करें तो भी नोट देनेमें हमें कोई संकोच नहीं, हमारा कोई पक्षपात नहीं, हम तो सब विद्वानोंको एकसा देखते हैं और सबही को उन्हें एकसा देखना चाहिये। यदि किन्हीं विशेष कारणोंसे एक प्रिय और एक अप्रिय या एकका कार्य उत्तम और एकका हीन दीख पड़े तो निष्पक्ष दृष्टिसे जांचकर उसका निर्णय करना हमारा सबका कर्तव्य है। अस्तु

पद्मावतीपुरवालका दूसरा नोट यह था—' कलकत्ता यूनिवर्सिटीमें भर्ती हुए जैनग्रंथोंमें भी परीक्षा नही दिलाई जाती। प्राइवेट देनेवालोंको भी यथा साध्य रोका जाता है' सम्पादक महोदय पूज्यपाद पंडितजीने सरकारी परीक्षाकी अपेक्षा जैन परीक्षालयका महत्व अच्छी तरह सुझाया है। सरकारी परीक्षाकी अपेक्षा जैन परीक्षालय द्वारा निश्चित परीक्षाके सुफल भी बतलाये हैं। इतर परीक्षाके देनेसे विद्यार्थी अपरिपक्व रहते हैं यह सुझाया है विशेष क्या सरकारी परीक्षासे हानि ही बतलाई है। पंडितजीका कहना हमें मान्य है और उत्तम है परंतु यहां पर हमारा यह निवेदन है कि आप सरकारी परीक्षा मत देने दीजिये परंतु जिस परीक्षालयके अनुसार आपके विद्यालयमें पठनक्रम जारी है उसके पूर्णरूपसे समाप्त करनेके लिए तो आप विद्यार्थीको बाध्य करिये, यह तो न होना चाहिये कि एक निम्न श्रेणीके ग्रंथ और एक उच्च श्रेणीके ग्रंथमें विद्यार्थी परीक्षा दे सके। इसप्रकार कभी उसकी जड़ मजबूत नहीं हो सकती किंतु उच्च परीक्षाके किसी ग्रंथमें परीक्षा देनेसे और किसी कदर उसमें पास हो जानेसे विद्यार्थीके हृदयमें शास्त्री बननेकी ही भावना उद्दित हो जाती है और फिर उनको अपनी अपरिपक्व अवस्थाके विचारका अवसर नहीं मिलता। शायद भा० दि० जै० परीक्षालयमें निर्धारित पठनक्रमके अनुसार विद्यालयमें पढ़ाई होती है परंतु देखनेमें आता है कि एक ही विद्यार्थी शास्त्रीय उच्च परीक्षाके ग्रंथमें परीक्षा दे रहा है और वही पंडित परीक्षाके ग्रंथमें भी परीक्षा दे रहा है और उसे अच्छी तरह संस्कृत लिखनेकी भी योग्यता नहीं। वैसा करनेसे फल यह होता है कि वैयाकरणिक और साहित्यिक विषयका यथेष्ट ज्ञान न होनेके कारण वह अपने पठित ग्रंथके भूल जाने पर फिरसे

उसे लगानेकी सामर्थ्य नहीं रखता किन्तु स्वाध्याय करनेवाले जिस प्रकार भाषा देखकर बहुतसा विषय अभ्यास करलेते हैं वैसा ही विषय कुछ उसे अभ्यस्त हो जाता है। इस बातकी आप अच्छी तरह जांच कर सकते हैं और यह भी विचार सकते हैं किसी कारणसे जिन विद्यार्थियोंको कुछ जड़ मजबूत है, कुछ सिल सिलेसे जिन्होंने कोर्स पूरा किया है उनकी कैसी योग्यता है? हमारी यह नम्र प्रार्थना है कि मा० दि० जै० परीक्षालयका पठनक्रम आपके तथा स्व० पंडित गोपालदासजीके द्वारा निर्धारित है। परीक्षाके सिलसिलेवार ग्रंथ पढनेसे धर्म शास्त्रके साथ व्याकरण साहित्य और न्यायमें विद्यार्थीकी जड़ यथेष्ट परिपक्व हो जाती है वह शास्त्रीय परीक्षाके सर्वथा योग्य बन जाता है। आपके महामंत्रित्वमें आपके द्वारा निर्धारित मा० दि० जै० परीक्षालयके अनुसार बम्बई विद्यालयमें पढनेवाले विद्यार्थियोंकी आप जांच कर सकते हैं। इस लिये शुरूसे उसी पठनक्रमके अनुसार पढाईका सिल सिला जारी रखना चाहिये। विद्यार्थियोंको इससे बड़ा लाभ होगा। योग्यता होनेपर पठित आदित विषयमें विचार करनेकी उन्हें सफलता और निर्भीकता होगी सिलसिलेवार शास्त्रीय परीक्षा पास करनेसे वे अच्छे विद्वान बनेंगे और ग्रंथोंके पढे रहनेके कारण यदि वे उस समय सरकारी परीक्षाको भी देंगे तो कोई हानि न हो सकेगी। हां यदि इस प्रकारका प्रबंध रहेगा कि विद्यार्थी अपनी इच्छानुसार चाहें किसी विषयमें परीक्षा दे तो वह अपनी इच्छानुसार पढेगा और यदि सरकारी परीक्षाके ग्रन्थोंको पढलेगा तो उस परीक्षाको देनेको लिये भी जी चलायगा, किसी ग्रंथके पढनेकी यदि कमी देखेगा तो प्राइवेट पढनेके लिये भी प्रयत्न करेगा यदि उस समय उसको परीक्षा देनेसे रोका जायगा तो अवश्य ही वह उस रोकनेको क्लेश दायक समझ सकता है। प्रायः ऐसा ही होता आया है। पठन क्रमके अनुसार पढनेको किसी प्रकारसे बाध्यता न होनेपर विद्यार्थी इच्छानुसार परीक्षा देते आये हैं। यहां तक कि सरकारी प्रथमा मध्यमा परीक्षा भी बहुतों ने पास करली हैं किंतु जिस समय वे तीर्थ परीक्षाके लिये आमादा हुए हैं उन्हें रोका गया है। नहीं मालूम ऐसा क्यों किया गया? यदि सरकारी परीक्षाका विरोध ही था तो सरकारी मध्यमा परीक्षा देनेके लिये भी विद्यार्थियोंको आज्ञा नहीं मिलनी चाहिये थी। यदि मध्यमा परीक्षाके लिये आज्ञा मिलगई तो उन्हें तीर्थ देनेके लिये क्यों आज्ञाका प्रतिरोध? मध्यम परीक्षाकी आज्ञाकी भूल एक बार नहीं, कई बार हो चुकी है और तीर्थ परीक्षाके तीव्र प्रतिरोध करनेसे विद्यालय छोड़नेके लिये विद्यार्थियोंको बाध्य होना पड़ा है।

इस विषयमें हमारी तो तुच्छ राय यही है कि विद्यालयमें जो पठनक्रम जारी है उसको पूरा करनेके लिये विद्यार्थियों पर जोर नहीं डाला जाता। इच्छानुसार पढनेके लिये उन्हें छुट्टी रहती है। स्वच्छंद प्रकृतिसे वे इच्छानुसार परीक्षा देनेके लिये बाध्य हो जाते हैं। विद्यालयके असली उद्देशका दमन हो जाता है। सरकारी परीक्षाके देते समय यदि विद्यार्थीको विद्यालयका उद्देश सुनाया जाता है और उसीके अनुसार उसको चलनेके लिये बाध्य किया जाता है तो उसे बड़ा कंटालता है। ठीक भी है 'विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसांप्रतं' इस नियमके अनुसार उसको अपनी क्रिया अयुक्त भी कार्य अच्छा लगता है फल यह निकलता है कि वह सरकारी परीक्षामें पीछेसे विघ्न उपस्थित करने वाले अधिकारियोंको अपना विरोधी मान बैठता है एवं अन्य किसी विद्यालयमें जाकर अपनी इ-

च्छाकी पूर्ति कर लेता है। इसलिये हमारी इच्छा यह है कि विद्यालयके उद्देशानुसार जो भी विद्यालयमें कोर्स जारी है वा आगे जारी होगा उसीपर खास लक्ष्य रखना चाहिये और विद्यार्थीको प्रारंभमें ही खोल देना चाहिये कि तुम्हें इस कोर्सके अनुसार पढना होगा। तुम्हारी इच्छानुसार पढ़ाई न होगी। कोर्स पूरा करने बाद तुम्हारी इच्छा। तुम जो चाहो सो कर सकते हो। बस सब बातकी झंझट मिट जायगी। अन्य परीक्षा देनेके लिये विद्यार्थीका होसला हो न पढेगा। न उसे पाठनकी भी जरूरत रहेगी। यदि अपने चंचल स्वभावमें वह प्राइवेट कुछ पढे भी तो समझानेसे उसे बुरा भी नहीं लग सकता। इस रूपसे सब व्यवस्था हो सकती है। यदि विद्यालयमें निर्धारित पठनक्रमपर पूरा लक्ष्य न रक्खा जावेगा—उसीके पढनेके लिये विद्यार्थियों पर जोर न डाला जायगा किंतु इच्छानुसार पढने पर वे जिससमय इच्छानुसार कार्य करनेके लिये उतारू हो जायगे उस समय उनको विद्यालयका उद्देश सुनाया जायगा और जो कार्य विद्यार्थी करना चाहते हैं उसका घोर प्रतिरोध किया जायगा तो कभी व्यवस्था न होगी। जब विद्यार्थियोंको विद्यालयके उद्देश्यका अच्छी तरह ज्ञान नहीं और उन्हें सरल वचनोंमें समझाने पूर्वक उद्देश्यके पालन करनेके लिये जोर भी नहीं दिया जाता तब उनको जो सूझेगी वे करेंगे ही। विद्यार्थि अवस्थामें सब ही की इच्छा विलक्षणता लिये रहती है और उस विलक्षणतामें सद्बुद्धिसे भी विरोध किया जाना बुरा लगता है। क्या जो महाशय आज विद्यालयका कार्य करते हैं किसी समय उनको उनके इच्छानुसार पढ़ने और परीक्षा देनेकी क्या इच्छा न थी और उस बलवान इच्छासे प्रेरित हो अपनी इच्छाकी पूर्तिके लिये उन्होंने बलवान प्रयत्न नहीं किया था? अपनी इच्छाकी पूर्ति न देख विद्यालय छोड़ अन्य विद्यालयका समाश्रयण करना वा विद्यालयके छोड़नेके लिये तयार हो जाना रूप कार्य करनेके लिये वे कटिबद्ध न हुये थे? बस ऐसी ही अन्य विद्यार्थियोंकी परिणति समझ लेनी चाहिये। जैसे पीछेसे आप लोग समझे और संभले वैसे अन्य लोग समझ सकते हैं नहीं तो पीछे निरोध करनेसे भी कोई फल नहीं। विशेष क्या जो भी विद्यार्थी विद्यालयमें प्रविष्ट हो उसकी योग्यताको जांचकर उसको वैसेही ग्रन्थ पढ़नेकी आज्ञा दी जाय शुरूमेंही विद्यालयके उद्देश्य महत्त्वकी नीव उसके हृदयमें जमादी जाय यदि वह रहना चाहे तो रहे, जाना चाहे चला जाय, न होगा बांस न बजेगी बांसरी इस तुच्छ कहावतके अनुसार जब विद्यालयके कोर्सके अनुसार ही पठन पाठन करना जारी हो जायगा अन्य ग्रन्थ पढनेकी मुमानियत पहिलेसे ही कर दी जायगी तब सरकारी परीक्षाके लिये विद्यार्थी भी तयार नहीं हो सकते। कोर्स पूरा कर चले जावें फिर वे परीक्षा देवें तो उनकी खुसी। बस कोर्सके अनुसार पढाईका मुख्य लक्ष्य न होनेके कारण इच्छानुसार पठन पाठन होने पर विद्यार्थियोंको सरकारी परीक्षामें प्रविष्ट जैन ग्रन्थ पढ़नेके लिये और किसी कारणसे मध्यम परीक्षा देनेके लिये भी आज्ञा मिलगई जब तीर्थ परीक्षा देनेका अवसर आया तो घोर प्रतिरोध किया गया यहबात खटकनेके लायक समझ हमें दूसरे नोटके लिये बाध्य होना पड़ा जोकि हमें अनुचित नहीं जान पडता। हां विद्यालयमें निर्धारित पठन क्रमानुसार पढ़ाईका ही कड़ा नियम होता और उस समय हम सरकारी परीक्षानुसार पढ़ने वा परीक्षा देनेके लिये

जोर देते वा विद्यालयके अधिकारियों के इस विरोधको बुरा कहते तो अवश्य हमारा वैसा करना अनुचित होता।

पूज्यपाद पंडितजीने यह भी लिखा है कि "शायद आपको यह ख्याल हो कि गवर्नमेंटका प्रमाण पत्र हासिल कर लेनेसे विद्यार्थीकी इज्जत अधिक हो जाती है सो भी केवल भ्रम ही है। जिसने गवर्नमेंटकी परीक्षा नहीं दी है वे भी प्रत्युत कितने ही अंशोंमें उन परीक्षा देने वालोंसे इज्जतदार देखे जाते हैं तथा गवर्नमेंटका प्रमाण पत्र पाये हुए कितने ही अंतः शून्य भी पाये जाते हैं" उसमें निवेदन है कि यह बात बेशक ठीक है कि परीक्षामें पास होना और न होना योग्यताका परिचायक नहीं किंतु जिसने पठन क्रमानुसार सिलसिलेसे पढ़ा है वह परीक्षा देने वाला भी योग्य कहा जा सकता है और परीक्षा न देने वाला भी योग्य कहा जा सकता है। किंतु सिलसिलेवार पढ़ने पर भी परीक्षामें उत्तीर्ण हो जानेवाला सर्वथा अन्यायी किंवा आक्षेपका स्थल नहीं माना जा सकता इसलिये जब पठन क्रमके अनुसार सिलसिलेसे पढ़ना ही योग्यतामें कारण है तब सिलसिलेवार पठन क्रमकी पर्वाह न कर जो जल्दी मार धाड़कर तीर्थ परीक्षा पास करेगा वह अवश्य ही अपरिपक्व रहेगा ऐसी तीर्थ परीक्षा विशेष अर्थप्रदा नहीं हो सकती और वह अंतः शून्य भी कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं परन्तु जहां पर उद्देश्यासार सिलसिलेवार पठन क्रमानुसार पठन पाठन नहीं, वहां पर किसी निम्न कक्षाके ग्रंथमें परीक्षा देनेवाला और किसी उच्चकक्षा के ग्रन्थमें परीक्षा देनेवालाभी योग्य नहीं समझा जा सकता वह भी तो अंतःशून्य ही मानना पड़ेगा ऐसे अनेक भी शास्त्री पैदा हो जाय तो भी तो महत्त्व नहीं माना जा सकता इस लिये हमारी तो राय यह है कि जिसने बेसिलसिले पढ़ा है वह चाहे जैन परीक्षालय से शास्त्रीका प्रमाण पत्र पा चुका हो वा सरकारी परीक्षासे तीर्थ आदिका प्रमाण पत्र पा चुका हो अयोग्य और अंतः शून्य ही है और जिसने सिलसिलेसे पढ़ा है वह योग्य है। यदि उस हालतमें उसने कोई परीक्षा पास करली है तो भी अनुचित नहीं है। एक दम परीक्षा न देनेका एकांत भी ठीक नहीं मालूम होता।

तीसरा नोट यह है कि—विद्यालयमें निर्धारित ग्रंथोंके सिवा अन्य ग्रन्थ यदि कोई छात्र किसी अध्यापकके घर पर प्राइवेट समयमें पढ़ना चाहता है तो अध्यापक और छात्र दोनों ही दोषी ठहराये जाते हैं।

इस नोटका समाधान पंडितजीने दया अंशको लेकर दिया है परन्तु हम उसका समाधान पहिले ही लिख चुके हैं। जब विद्यालयके पठनक्रमानुसार पढ़नेका ही नियम कड़ा रहेगा तो प्राइवेट पठन पाठन के लिये अध्यापक और विद्यार्थियोंका साहस न हो सकेगा। यदि किसी अध्यापकका किसी छात्र पर विशेष प्रेम हो और किसी अंशमें वह उसे कमजोर जान पड़ता हो किन्तु हो छात्र बुद्धिका अच्छा तो उस पर ओपलकी किसी भी कारणसे कहा सुनीसे एक पक्षकी ही बात सर्वथा सत्य समझ कर भयंकर आपत्ति और अपमान करनेके लिये भी प्रयत्न न करना होगा। जिस प्रकार विद्यार्थियोंमें कोई विद्यार्थी ऐसे शिथिल होते हैं कि वे शक्ति रहने पर भी बड़ी कठिनतासे कोर्स पूरा करते हैं और बहुतसे ऐसे परिश्रमी भी होते हैं जो उस कोर्सको योग्यताके साथ पूराकर अन्य ग्रन्थ भी पढ़नेके लिये उत्सुक रहते हैं इसी प्रकार बहुतसे अध्यापक ऐसे भी शिथिल होते हैं कि किसी प्रकार विद्यालयका समय पूरा कर फिर

वे एक अक्षर पढ़ानेका भी संबंध नहीं रखते । मिष्ट वचनोंमें अपनी हितैषिताकी डींग भी मारा करते हैं और एक अध्यापक ऐसे होते हैं जो विद्यालयके समयके अतिरिक्त समयमें भी पढ़ानेकी कृपा दिखलाते हैं और दूसरे अध्यापकोंको वैसा न करते देख और व्यवहारमें समानता ही देख वे अपने कार्यका प्रसार कर हितैषिता जाहिर करना चाहते हैं। यदि मोरैना विद्यालयके अध्यापकोंमें यह गुण है कि प्राइवेट समयमें भी पढ़ानेका उत्साह रखते हैं तो बहुत ही अच्छा है . जब पठन क्रमके अनुसार पढ़नेका कड़ा नियम न रहने पर वे विद्यालयके समयके अतिरिक्त भी पढ़ाते हैं तो पठन क्रमके नियमकी कड़ाई हो जाने पर यह होगा कि जो छात्र पाठ पढ़ने समय किसी विषयको न समझ सकेगा उसे वे अतिरिक्त समयमें पढ़ानेकी कृपा करेंगे इस लिये जब विद्यालयके उद्देश्यानुसार पठन क्रमके नियमके कड़े होनेमें सभी सुव्यवस्था हो सकती है। विद्यार्थी भी समझ पूर्वक ग्रन्थका अभ्यास करेगा। अन्य ग्रन्थोंके पढ़नेमें शक्तिका व्यय न हो कर जब उसी ग्रन्थके पढ़ानेमें वह व्यय होगी तो अध्यापकोंको नवीन २ लक्षणा सूझेगी और उनसे विद्यार्थियोंके हृदय पर बड़ा असर पहुंचेगा तब विद्यालयके उद्देश्यानुसार पठन क्रमका कड़ा नियम बनाना ही परमावश्यक है।

चौथा नोट यह है—अध्यापक व कार्यकर्ताओंमें परस्पर मनोमालिन्य है। समाधानमें पंडितजीने मनोमालिन्यका होना स्वाभाविक है । जहां दश पात्र होते हैं खटकते ही हैं। यह लिख भी दिया है। इस नोटसे हमारा अभिप्राय यह है कि यदि विद्यालयका उन्नति कारक मनोमालिन्य हो तब तो वह प्रशस्त ही है किन्तु जहां एक दूसरेका विघातक तुच्छ बात पर मनोमालिन्य हो तो वह सर्वथा हेय है । तुच्छ बात पर मनोमालिन्य बढ़ता २ किसी समय भयंकर हो जा सकता है और उसका डेप्युटेशन महा मंत्री साहबके पास तक भी पहुंच जा सकता है जिससे कि विद्यालयको कई प्रकारकी हानियां सहन करनी पड़ सकती है, हमारी तो राय यह है कि मनोमालिन्यका होना स्वार्थ पर निर्भर है यदि उस स्वार्थकी रक्षा करबड़ा अपनेको बड़ा मान कर छोटोंके साथ प्रेम मय वर्ताव करे और छोटा बड़ा जान उसमें भक्ति रक्खे तो कभी मनोमालिन्यको अवसर नहीं मिल सकता। यदि वहां पर हठसे कुछ मनोमालिन्य आकर भी उपस्थित हो जाय तो वह भयंकर रूप धारण नहीं कर सकता। मोरैना विद्यालयके अंदर जो अध्यापक हैं किसी समय उनमें गुरुत्व और शिष्यत्व का भाव रह चुका है। फिर वहां तो किसी प्रकारके मनोमालिन्यका अवकाश ही नहीं मिलना चाहिये । किन्तु जिस महा कार्यको उन्होंने हाथमें ले रक्खा है उसे आपसमें किसी प्रकारका भेद भाव न रख कर सुसंपन्न करना चाहिये। मोरैना सरीखे विशाल विद्यालयमें थोड़ा सा भी मनोमालिन्य होना हमारे लिये तो सर्वथा दुःखास्पद ही है। मोरैना विद्यालय और उसके विद्वानोंमें जो भी हमें अभिमान है वह न कुछ चीज मनोमालिन्यसे म्लानता धारण कर लेता है।

पांचवां नोट सुपरिन्टेन्डेन्ट महाशय सदा उपस्थित नहीं रहते अनेकबार देश जाया करते हैं और कार्य कालमें भी घर पर आया जाया करते हैं, समाधानमें पूज्यपाद पंडितजीने इसनोटपर बहुत कुछ ऊहापो किया है हमारा इस नोटके करनेमे यह तात्पर्य है कि सुपिर्टेंडेन्ट महाशय को सुपुर्द बाहरसे लकड़ी लाना आदि बाहरके कार्य हैं इस लिये उन्हे बाहर वा घर

पर अधिक आनेकी आवश्यकता हो जाती है। यदि उन्हें यह कार्य न करना पड़े तो वे यथा समय आकर विना किसी चिन्ताके अपना कार्य कर सकते हैं और विद्यालय को ऐसा करने से बहुत लाभ हो सकता। है हमें आश्चर्य है कि पंडितजीने इस बातको तो अयुक्त समझा कि कोर्सके अलावा ग्रंथ पढ़ानेसे अध्यापकोंकी शक्तिका व्यर्थ व्यय होता है परन्तु इस बातपर विचार न किया कि जो विद्वान् भोजनकी सामग्रीके जुटानेमें लगा रहता है उसकी शक्तिका भी व्यर्थ व्यय होता है। हमारी तो यह धारणा हमें उचित ही जान पड़ती है कि कोर्ससे अतिरिक्त भी घंटे आध घंटे ग्रन्थ पढ़ानेसे उतना भयंकर शक्तिका व्यय नहीं होता जितना कि एक विद्वान अध्यापकके जिम्मे भोजनके प्रबंधका भार सुपुर्द करनेपर शक्तिका व्यर्थ व्यय ही नहीं दुरुपयोग होता है हमारा यह कभी तात्पर्य नहीं था कि सुपरिंटेन्ट महाशय अपने कार्यको कर्तव्य कार्य नहीं समझते। हमारे नोटोंका हमारा लिखा उक्त तात्पर्य समझ पूज्यपाद पंडितजी वा अन्य विद्वान विचारलें कि हम सरकारी परीक्षाको किस हालतमें अच्छी समझते हैं? प्राइवेट पढना पढाना हमें किस तरह इष्ट हैं? विद्यार्थियोंको आजादी देना हम कैसा समझते हैं? किस हालतमें हम विद्यार्थियों को गैर परीक्षा देनेकेलिये बाध्य बतलाते हैं? क्योंकि पांचवे नोटमें पंडितजीने इन्हीं बातोंका ऊहापोह किया है कुछ भी हो हमारा निजी तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति जिस लायक हो उसको वही कार्य सुपुर्द किया जाय दूसरे, विद्यालयके उद्देशानुसार पठन क्रमका कड़ानियम कर दिया जाय क्योंकि बल और तज्जन्य भयपर समस्त साम्राज्य की सत्ता निर्भर है जब विद्यालयके पास पठन क्रमको कड़ा नियम होगा और उसका भय विद्यार्थियों को होगा तो उनकी स्वच्छन्द प्रवृति रुक जायगी पूर्ज्यपाद पंडितजी ऊपर सामान्य रूपसे सरकारी परीक्षा पर नोटकर आये हैं फिर भी उन्होंने न्याय तीर्थ परीक्षापर खासकर कटाक्ष किया है मालूम होता है यह खासकर हमारेही ऊपर किया गया है परन्तु पंडितजीके चरणोंमें हमारा यह निवेदन है कि हमें न्यायतीर्थ कहाने में कोई गौरव नही मालूम पड़ता। इस टाईटिल से ही कोई अद्वितीयता नहीं झलक सकती और न हमने यह टाइटिल अभिमानके वशंवद होकर प्राप्त करना चाहा था हम तो सरकारी परीक्षाके विरोधी थे बम्बई विद्यालयमें आपके मंत्रित्वकालमें पंडित परीक्षाके प्रथम खंड से आपके द्वारा निर्धारित पठन क्रमानुसार परीक्षा दी थी हमें न्याय पढ़नेको विशेष अभिलाषा थी और न्यायके अध्यापनका प्रबन्ध आपके विद्यालयमें था नहीं इसलिये आपकी आज्ञानुसार काशी आना पड़ा था और वहां जैन न्याय पढ़ा और परीक्षा दी। जब स्या० पा के मस्त अधिकारियों ने हमें सताया विशेष पिपठिषु होने पर भी हमारा कोई प्रबंध सुव्यवस्थित न किया गया जातीय पक्षकर हमारे ऊपर मनमाने वार करने भी प्रारंभ कर दिये तब हमें घबड़ा कर पाठशाला छोड़नी पड़ी। पाठशाला छोड़ने पर भी स्वाभाविक द्वेषके कारण जब हमारी यह बदनामी की कि जो विद्यार्थी पाठशालासे जुदे हुए हैं वे खिलाड़ी थे पढनेवाले न थे तब हमको बड़ा क्लेश हुआ। अपने कलंकके निरसनकेलिये हमें बनारस कालेजकी मध्यमा और आचार्यका खंड देना पड़ा। आचार्य खंडमें विशेष कालकी आवश्यकता होनेसे कलकत्ताकी प्राचीन न्याय तीर्थकी परीक्षा देनी पड़ी जिससे सबको यह प्रगट दिखा दिया कि हम पिपठिषु थे और अधिकारी अत्याचारी थे इसी तरह हमारे मित्रोंने

भी किया यदि ऐसा समझ कर भी आप किम्वा अन्य महाशय न्याय सीथं परीक्षा का देना किसी अभिमान से या शौकसे समझें तो हम उसका निराकरण कैसे कर सकते हैं ? अस्तु।

पंडितजीने जो किसी एक व्यक्ति पर यह दोष पटका है कि उसने विद्यालयकी हालत सुधारी है सो ठीक नहीं हम कभी एक व्यक्तिके आश्रयसे वैसा नहीं लिख सकते किंतु बहुतोंसे यह बात सुनी हैजो खुद उसमें तीन २ दो २ मास रहकर आनेवाले हैं। इसलिये हमने विद्यालयकी हित कामनासे वैसा लिख दिया था यदि हमारा कहना अनुचित ज्ञात पड़ता है तो आप हमें क्षमा प्रदान करें।

विद्यालयके मित्र मंत्रिमहोदयने भी खुली चिट्ठीमें हमें बहुत कुछ मृदुल शब्दोंमें समझानेकी चेष्टाकी है उन्होंने जो लिखा है उसका उत्तर खुलासा तौरसे अच्छी तरह इस निवेदनमें आगया है इसलिये हम कुछ नहीं लिखना चाहते। परंतु एक विचित्र बात उन्होंने यह लिखी है कि प० पु० के जिस अंकमें विद्यालय संबंधी नोट निकला था वह अंक न जाने क्यों १५ दिन बाद हमारे पास भेजा गया। तत्काल क्यों नहीं भेजा गया। यद्यपि इसके उत्तरमें लिखवा दिया गया था कि 'महानुभाव! हमारा पोष्ट बागबाज़ारकी जगह श्याम बजार होगया है। हम अबतक अमृतबाज़ार पत्रिकाके पोष्टसे पद्मावती पुरवाल रवाना करते थे किंतु झंझट हो जानेसे श्यामबाजारसे रवाना करनेका मौका आगया। रजिष्टर नंबरके विना उससे रवाना हो नहीं सकता इसलिये उसकी प्राप्तिमें १५ दिनका अर्सा होगया इसलिये १५ दिन पीछे आपके पास पद्मावतीपुरवाल पहुंच सका' परंतु मंत्रिमहोदयको हमारी यह बात झूठ जंची और हमारा विद्यालयसे द्वेष जतलानेके लिये लिख ही तो डाला कि१५दिन बाद द्वेषसे भेजा। बलिहारी!!! विचारनेकी बात है कि जो बात पत्रमें प्रकाशित होगई वह तो जाहिर होई गई फिर उसके छिपानेकी क्या आवश्यकता? परंतु हमारे मित्र मंत्रिमहोदयकी अक्लमें हमारी लिखी बात सच्ची कैसे आवे? मित्रवर! ज़रासी ही बात पर इस प्रकार एकदम भबक जाना और विद्यालयके विषयमें इनका हृदय क्या है? इस बात पर ज़रा भी विचार न करना युक्तियुक्त नहीं जान पड़ता।

चिट्ठीमें आपने जो हमें जाति पक्षपाती बतलाया है वह आपकी विचार शक्तिका उत्कृष्ट नमूना है। क्या विद्यालयके बारेमें थोड़ा गौर करनेसेही हम जाति पक्षपाती हो गये? तब तो जो भी आपके विषयमें कुछ लिखेगा उनका मुह इसीतरह कलंक लगाकर तोड़ा जायेगा। अस्तु, खुशी आपकी, इससे भी आप अधिक लिख सकते हैं परन्तु मित्र! इस बातको दावेके साथ हम कहनेकेलिये तयार हैं कि यदि जातीय पक्ष कार्यका विघातक है तो जातीय विद्वेष भी कार्यका भयंकर विघातक होता है। बुद्धिमानी तो इसी बातमें है कि जो मनुष्य जातीय विशेष प्रेम करे और दूसरी जातिके व्यक्तियोंको घृणाकी दृष्टिसे देखे उसको समझाकर उस दोषका परिमार्जन कर दें किंतु उनको और भी भबकानेमें चतुरता नहीं, न निष्पक्षता जाहिर हो सकती है। अस्तु, इस बातपर ऊहापोहकर आप ही खुद विचार कर सकते हैं। हमारा विशेष लिखना व्यर्थ है।

अन्तमें यह हमारा नम्र निवेदन है कि हमें इस निवेदन करनेकी आवश्यकता न थी परन्तु हमारे शब्दोंका तात्पर्य विलक्षण रूपसे समझ लिया

गया। हमें विद्यालयका विरोधी समझानेकेलिये प्रयत्न किया गया इसलिये हमने यह तात्पर्य प्रकाशित किया है। मोरेना विद्यालयसे समाजका क्या उपकार हो रहा है कैसे २ मीठे फल पैदाकर वह समाजको प्रदान कर रहा है यह बच्चा बच्चा भी जानता है इसलिये ऐसे परोपकारी विद्यालयके हम कभी विरोधी नहीं हो सकते और न समाज ही इतनी चंचल है जा न कुछ बातसे भभक जाय। प्रबन्धके विषयमें कुछ अंशमें राय देदी गई है जो कि समस्त समाजका कर्तव्य है। विशेष क्या?

विविध विषय।

पद्मावती परिषद्।

भरसलगंज करिहा (मैनपुरी) में पद्मावती परिषद्के वार्षिकोत्सव होनेकी सूचना या सम्मति संग्रह करनेके लिये एक पत्र हमें परिषद्के महामंत्री साहबकी तरफसे मिला था। उत्तरमें हमने सलाह उड़ेसरमें होनेकी दी थी। इसके बाद कोई समाचार आजतक हमारे पास नहीं आया है। अधिवेशन हो गया या होना बाकी है। हां! इतना जरूर है कि देशसे जो समाचार आये हैं उनसे यह पता लगता है कि गंजका मेला ही नहीं हुआ और जब गंजका मेला ही नहीं हुआ तब परिषद्का अधिवेशन न होना स्वयं सिद्ध है। लेकिन जब यह बात ठीक है तब उसके महामन्त्री साहबने अधिवेशन कहां करनेका विचार किया है सो अभी तक कुछ प्रगट नहीं किया। उड़ेसरमें जो बिंबप्रतिष्ठा होनेवाली है उसका समय बहुत ही समीप है। जातीय विशाल सभाके अधिवेशनकी मिति निश्चित न होने तकका जहां अन्धेर है वहां उसके सभापति निर्वाचनका प्रस्ताव होना बिलकुल असंभव ही समझना चाहिये। एटाके पंचोंकी तरफसे जो हमें समाचार मिले हैं उनसे कुछ कुछ इस बातका आभास मिलता है कि शायद पद्मावती परिषदका अधिवेशन एटा में पंच कल्याणकोत्सवके समय हो। उड़ेसरके धर्मात्मा सज्जन पं० मुन्नोलालजीने पहिले परिषद्को निमंत्रित किया था और कुछ दिन पहिले उनके पत्र भी परिषद्के अधिवेशनार्थ आते थे परन्तु पं० अमोलकचंद्रजीके द्वारा प्रकाशित विज्ञापनमें परिषद्के अधिवेशनकी कोई सूचना नहीं है और न उड़ेसरके पंचोंकी तरफसे ही परिषद्के उत्सव होनेकी कोई खबर है तब ऐसा अनुमान हुए बिना नहीं रहता कि एटामें शायद परिषद्का अधिवेशन हो। खैर! अधिवेशन कहीं भी हो परन्तु होना जरूर चाहिये और उसकी सूचना भी परिषद्के महामंत्री द्वारा समस्त समाचार पत्रोंमें प्रगट होनी चाहिये। हमारी समझसे उड़ेसरका मेला अधिक समीप है और तबतक कोई भी कार्यवाही न होसकेगी इसलिये एटामें ही परिषद्का अधिवेशन होना लाभदायक है और उसका अभीसे सुयोग्य प्रभावशाली जातिहितैषी व्यक्तिको

सभापति

चुना जाना चाहिये। एटाका मेला वैसाख सुदी १२ से प्रारंभ होगा और जेठ बदी १ को समाप्त होगा इसलिये अंतके तीन दिन परिषद्के लिये निश्चित किये जांय। एटा पद्मावती पुरवाल जैनोंका जन और धन समृद्ध नगर है। अन्य समस्त नगरोंकी अपेक्षा

यहां ही पद्मावती पुरवालोंका निवास अधिक संख्या में है, लोगोंमें धार्मिक उत्साह भी बहुत है और यहां जो यहांके पंच सामिल हो प्रस्ताव या नियम पास कर देंगे उसे समस्त जाति सिर झुका कर अमलमें लावेगी ऐसी शक्ति भी यहां ही है। जातिके प्रसिद्ध प्रसिद्ध सज्जन यहां या इस नगरके आस पास रहते हैं, उनके सामिल होनेका इस अधिवेशनमें पूरा पूरा निश्चय है। अबकी अन्य सालोंकी भांति इस अधिवेशनको कोरा मनबहलाव या दिखानेकी हीं वस्तु न रहने देना चाहिये। परिषद्के नियमानुसार अबकी कार्यकर्ताओंके परिवर्तनका निर्विवाद नंबर है। फिरोजाबादके मेलामें तो जब यह प्रस्ताव उठाया गया था तब 'प्रति तृतीय' शब्दके अर्थमें गोलमाल खड़ा हो जानेसे कुछ भी कार्य न हो सका था लेकिन अब की तो यह भी बखेड़ा न खड़ा हो सकेगा।

अन्य विभागोंके मंत्री चाहें बदले जांय या न बदले जांय लेकिन प्रबंध विभाग, उपदेशक विभाग और विरोध नाशक विभागके मंत्रियोंको तो जरूर जरूर बदल देना ही उचित है। महामंत्री पं० वंशीधरजी न्यायतीर्थने यद्यपि परिषद्को जन्मदान दिया है और बहुत कुछ उसकी सेवाकी है परन्तु गत तीन चार वर्षोंसे उन्होंने उसके संचालनमें आशातीत ढील भी दिखलाई है। यद्यपि यह हम मानते हैं कि पंडितजीके जिम्मे बहुतसे समाज व धर्म सेवाके कार्य हैं और उनसे उनको अवकाश बहुत ही कम मिलता है तो भी हमें जो उनके स्थान परिवर्तनका प्रस्ताव लिखना पड़ता है वह लाचारीसे, अपनी जातिकी हीन दशाको देखकर और उसके उत्थानमें सावकाश उत्साही व्यक्तिकी आवश्यकताका पूरा पूरा ध्यान रखकर अन्य विभागोंके जो मंत्री हैं वे, तो नाममात्रके ही हैं, उनका बदलना तो किसीको भी आपत्तिजनक न होगा।

जब यह बात है तब इनके स्थानमें कौन महाशय चुने जांय इस पर भी अवश्य विचार होना चाहिये। हमारी समझमें महामंत्रीका पद विद्वद्वर पं० लालारामजीको सौंपा जाय। पंडितजी बहुत ही कार्यकुशल नियमबद्ध कार्यवाही करनेमें सिद्ध हस्त हैं। आपके कार्य कालमें अवश्य ही परिषद्के जीवनमें विशेष बल संचरित होगा आप कई सभाओंके कार्यकर्ता रह चुके हैं। इनके सहायक पं० सोमपालजी पाढम निवासी हों। आप भी पहिले कई सभाओंका कार्य कर चुके हैं। इनमें एक यह भी विशेषता है कि देशमें ही रहते हैं और परिषद्की सेवा करनेके लिये उत्सुक भी हैं।

परिषद्की पाठशाला।

जलेसरसे उठ कर पाठशाला पटा गई है और तबसे उसकी हालतमें कोई उन्नतिजनक तबदीली नहीं हुई बल्कि गत ३-४ वर्षोंसे उसने अपने दिन बुरी तरह विताये हैं, करीब एक वर्ष तक तो उसके पट भी नहीं खुले। कोई ६-७ माससे पं० चैतनस्वरूपजी नियुक्त किये गये हैं और अब वे भी यहांसे जाना चाहते हैं। एटा पद्मावतीपुरवालोंका धन और जन समृद्ध नगर है। यहां सुशिक्षित व्यापारियोंका निवास भी है परंतु जैसी दशा पाठशालाकी यहां बिगड़ी सुननेमें आती है वैसी छोटे २ गांवों में भी नहीं। यह एटाके पंचोंकी शानमें धब्बा लगानेकी बात है। अबकी अधिवेशन भी उसी जगह हो रहा है ऐसे समय एटाके जैनी भाइयोंको चेत जाना चाहिये, समाजके होन हार अपने बच्चोंको ज्ञान देनेके लिये कटिबद्ध होना बहुत ही आवश्यक है। पंचकल्याणकों

से जो प्रभावना होगी वह ४-६ दिन या महीना दो महीना ही रहेगी परंतु शास्त्र ज्ञानसे संस्कारित संतानके हृदयमें जो जैनधर्मको प्रभावना दृढ हो जायगी उससे जब तक पढा लिखा एक भी जैनी रहेगा, रहेगी। धर्मकी ज्ञाता होजानेसे भावी संतान आप लोगोंका अनुकरण कर एक नहीं, सैकड़ो पंचकल्याणोंके करनेमें प्रयत्न शील रहेगी। लेकिन उसको यदि ज्ञानदान न दिया जायगा तो आपके किये धरेको भी चौपट कर देगी इसलिये पाठशालाकी दशा बहुत ही शीघ्र उत्साह पूर्वक सुधारना जरूरी है।

इटामें जैनियोंकी संख्या काफी है। यदि वे चाहे और उनमेंसे प्रत्येक कमसे कम आठ आना महीना या एक पैसा प्रति दिन अपनी संतानके शिक्षित करनेके लिये खर्च करनेका बीड़ा उठाले तो एक अच्छा विद्यालय चल सक्ता है। आज कल पाठशालाका खर्च समस्त समाजकी सहायतासे चलता है यह भी इटाके श्रीमान् धीमान लोगोंकी शानके खिलाफ है। आज कल समस्त खान पान चीज़ोंके तेज हो जानेसे अध्यापक सस्तेमें नहीं मिल सक्ते और हमारे भाई पुराने जमानेका वही २५-३० रु० मासिक वेतनवाले अध्यापकको रखनेका राग आलापते हैं यह भी देश कालकी परिस्थिति-ज्ञानके विरुद्ध है। अब अच्छा उत्साही और प्रभावशाली विद्वान् ५०-६० रु० से कममें नहीं मिलता और उसके ऊपर बेइज्जती या अपमानसे भी नहीं रह सक्ता। हमने कई बार सुना है कि सजातीय होनेसे इटावाले अध्यापककी इज्जत नहीं करते, पंचायती काम समझ हर एक अपनेको मालिक समझता है, यदि यह मालिकीपना चंदा आदि देते समय सूझे और जैसे अपना काम आपडने पर हजार तरहसे उसे मनुष्य कर डालता है, वैसे हो चंदा आदि को कमी भी हर एक मनुष्य जी जानसे पूर्ण करडाले तब तो कोई हर्ज नहीं बल्कि प्रशंसाका ही काम समझा जाय लेकिन पाठशालाके अध्यापक पर तो दूसरे ही समय मालिकीपन सूझता है। पंडितजीने किसी कारणवश यदि लड़केको मारा या धमकाया तो फौरन ही उसके मा या बाप पंडितजीसे खोटी खरी सुनाने तयार रहते हैं। वे यह नहीं समझते कि पंडितजीसे हमारा या हमारे लड़कोंका कोई वैर नहीं है। अपराध करनेसे जैसे हम मारते या धमकाते हैं वैसे ही पंडितजी तरफदारी करनेसे उलटा हमारा ही लड़का खराब हो जायगा। बस! इस प्रकारकी वारदातोंसे ही पंडितजीके नाकों दम आजाता है और वे डेरा डंडा बाधनेमें ही अपनी कुशल समझते हैं। इसलिये जिसप्रकार संसारके अन्य शिक्षालय चलते हैं वैसे ही यह हमारी पाठशाला भी चलनी चाहिये। इसके सुप्रबंधार्थ एक अच्छे समझदारोंकी कमेटी बननी चाहिये और उसीकी तावेदारीमें पाठशालाकी समस्त देख भाल हो, किसी एक मनुष्यकी ही तूती न बोले।

गत वर्षोंमें जो हुआ है वह इसीप्रकार हुआ है और अतएव ही पंडित कोई चिरस्थायी नहीं रह सका है।

उपदेशक विभाग।

यह सब ही को मालूम है कि उपदेशकसे समाजको कितना लाभ पहुंचता है। हमारी परिषद्ने इस कार्यके लिये विभाग तो खोल रक्खा है पर उसके मंत्रीने आज तक कोई भी कार्य नहीं किया है। होसक्ता है मंत्री साहब द्रव्यके अभावमें यह उपयोगी काम प्रारंभ न कर सके हों, पर हमारी तो यह धारणा है कि कोशिश करनेवाला हो तो द्रव्यकी सहायता काफी मिल सकी है। सौ रुपये मासिक खर्चका मासिक पत्र

बराबर चलता रहे और ३०-४० रु० मासिक खर्चका चलता फिरता परिषद्का संदेश वाहक दैनिक न चल सके यह बात कम ध्यानमें आती है। अबकी इस विभागका भी सुप्रबंध होना जरूरी है,

जैनमित्रकी कलुषता।

हमने गत ७ वे अंकमें 'ब्रह्मचारीजीका हृदय' नामक एक लेख किसी महाशयका छपा दिया था जिसमें ब्रह्मचारीजीकी प्रवृत्ति पर प्रकाश डाला गया था साथमें हमने उसका लिखित खुलासा भी ब्रह्मचारीजीसे पूछा था और ब्रह्मचारीजीने जो उत्तर जैनमित्रमें छापा था उसको हमने समाजके भ्रम निवारणार्थ ज्योंका त्यों छाप दिया था इसप्रकार एक समाचार पत्रके संपादकका जो कर्तव्य होना चाहिये वह हमने पूरा कर दिखाया लेकिन हृदयके दुरंगे ब्रह्मचारीजी को भीतर ही भीतर यह हमारा वर्ताव अच्छा नहीं लगा और तबसे वे एक प्रकारका अनुचित द्वेष हमारे प्रति रखने लगे हैं एवं उसका बदला भी ले रहे हैं।

द्वेषका कारण क्या है?

जैनमित्रके १४ वे अंकमें माणिकचंद्रजी बैनाड़ाका एक लेख हमारे विरुद्ध ब्रह्मचारीजीने पं० पन्नालालजीके स्तीफा छपनेके १५ दिन बाद ही छाप दिया और उसका उत्तर जब हमने छापनेके लिये भेजा तो आज ३महीना बाद भी नहीं छापा! इसप्रकार सत्यका खून कर ब्रह्मचारीजीने अपने भीतरी हृदयका पहिला परिचय दिया है। यद्यपि बकायदा हम अपने प्राइवेट चारित्र पर मिथ्याकलंक लगानेवाले लेखक और उसके प्रकाशक या संपादक दोनोंको अपने उत्तर छापनेके लिये ही नहीं, बल्कि उन मिथ्या अभियोगोंको प्रकाशित कर अपमानित करनेके बदलेमें क्षमा प्रार्थना करने पर भी बाध्य कर सकते थे और कर सकते हैं लेकिन एकताके इस जमानेमें ऐसा करना उचित नहीं समझते और उनसे हम आग्रहकरते हैं कि सत्य प्रकाशके लिये ही हमारा उत्तर प्रकाशित करदे, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है।

दूसरा परिचय।

पं० मक्खनलालजी द्वारा लिखित विधवा विवाह खंडन लेखकी समालोचना करते समय जैनमित्रके संपादकको हैसियतसे ब्रह्मचारीजीने कुछ शंकायें उपस्थितकी थीं और उनका उत्तर पंडितजीसे मांगा था। पंडितजीने युक्त्यनुसार विस्तृत उत्तर इसी पत्रमें छपा दिया और साथमें जैनमित्रमें प्रकाशित करनेके लिये भी नोट रूपमें प्रार्थना करदी थी। लेकिन ब्रह्मचारीजी उसे भी निगल गये। क्या इससे सातवे अंकमें प्रकाशित शंकाको ठीक समझें? या लोग जो बात २ में ब्रह्मचारीजीको शंकाके लिये एक २ पुरुष रखनेका पक्षपाती कहते हैं उसे पुष्ट हुआ समझें? नहीं भला पाठकोंको पहिले शंकाकर चक्करमें डाल देना और फिर उसका उत्तर न छापना कहांकी बुद्धिमानी और निष्पक्षता है?

तीसरा परिचय।

ब्रह्मचारीजी प्रायः लागत दामों पर जैन ग्रन्थोंका प्रचार करनेवाली एक मात्र माणिकचंद्रग्रंथमालाको कहा करते हैं और पुनः पुन जैनमित्रमें प्रकाशित भी किया करते हैं और भारतीय जैन सिद्धांत प्रकाशिनी संस्थाका नाम भूल जाया करते है या अनंतकीर्तिजैनग्रंथमालामें मिला देनेकी लालसासे भुला दिया करते है परंतु ब्रह्मचारीजी यह नहीं समझते कि ग्रंथोंके खरीददार तो दोनों संस्थाओंके ग्रंथोंका परिमाण और न्योछावरका मिलान कर तो हमारे भुलावेमें नहीं आसक्ते

नोटिस दिया है।

खंडेलवालजैनहितेच्छुके अंकमे रामलालजी मोदीने एक लेख प्रकाशित किया है और उसमें हमारे ऊपर मिथ्या कलंक वा बेसिरपैर के दोष लगाये हैं। जिनके कारण हमें बहुत हानि पड़ी है। भविष्य में हर

एक मनुष्यका इस प्रकार लोगोंमें मिथ्या भाव फैलाने का होसला न हो इसके लिये हमने उनको क्षमामागनेकी सूचनादी है। देखें मोदीजी अपने लिखेको वापिस लेते हैं या हमारी और अपनी शक्तिको किसी दूसरी तरफ लगानेका मौका देते हैं।

बहिष्कार ।

जैनहितैषीने कुछ पत्रोंका हवाला देकर बतलाया है कि हमलोगोंका बहिष्कार जब स्वयं सम्पादकोंको स्वीकार नहीं है तब सामान्य जनताको तो क्या बात? पर मुख्तार साहब शायद यह भूल गये है कि जैन पत्रोंके संपादकोंने हमको अपनी शृंखलामेंसे वर्तमान जैन जनताकी दृष्टिमेंसे तो बहिष्कृत करादी दिया है पर भविष्यतमें उत्पन्न होनेवाली जनताकी दृष्टिमेंसे बहिष्कार करानेकी सामग्री भी यथेष्ठ परिणाममें संग्रह कर रहे हैं और इस तरह सब तरह बहिष्कार ही बहिष्कारकी ध्वनि कर रहे हैं।

वर्ष समाप्ति ।

अनन्त गुण गरिष्ठ शुद्ध चिदानंद चैतन्यके परम शांति रसमय स्वरूप चिंतवन की महिमासे और उनकी साकार उपासनासे उपार्जित पुण्य राशिकी गरिमा से समस्त जैनसमाज की सेवा करते हुये इस पत्रका यह तीसरा वर्ष समाप्त हो गया। गतसालोंकी भांति इस साल भी हम नियमानुसार मासांतमें पहुंच कर सेवा न करसके इसका हमें आंतरिक दुख है परन्तु हमारी परिस्थिति स्वास्थ्य भङ्ग और कौटुम्बिक विपत्तियोंका एक साथ समुदाय उपस्थित होजानेसे सबही अंक सेवामें पहुंचा सके यह भी कोई कम बात नहीं है।

जितने मनुष्योंके साथ व्यवहार किया जाताहै उतनीही अधिक राग द्वेषकी उत्पत्ति होतीहै। हमारा व्यवहार या संबंध समस्त दि० जैनसमाज और खासकर पद्मावतीपुरवाल भाइयोंसे है। इसलिये हमने अपने पदका ध्यानकर सच्चे सेवक होनेका लिहाजकर अनेक प्रकार इच्छा न रहते हुयेभी दिल दुखाये हैं, जिनको अपना सीधा सच्चा सुखकारी पथ नहीं मालूम था उन्हें शास्त्रानुसार वह पथ बतलाया है। जो कारणवश या मिथ्यात्वके वशीभूत हो विपरीत मार्ग पर चलनेके लिये उतारू थे और अपने साथ अनेक भोलेभाले लोगोंको चलनेके लिये उसकाते थे उन्हें भी युक्तियों द्वारा सुमार्गपर रहनेका उपदेश दे भ्रम दूर किया है एवं कुरीतियोंके चुंगलमें फंसे, विषयसेवनको ही सर्वस्व माननेवाले लोगोंको उनकी कलई खोल दुष्कर्मोंसे घृणा कराई है। परन्तु इस सब सेवा बजानेमें हमसे अनेक अपराध होगये होंगे, संभव है किनही किन्हीको यह हमारा वर्ताव भी खटका हो, उन सबसे हम अपने अपराध क्षमा कराते और भविष्यमें इसके समान सार भाग ग्रहण करनेकी क्षमाप्रार्थना करतेहैं।

हितैषियोंसे ।

आजकल कागज छपाई आदि सबका भाव तेज होजानेसे और जैन समाजमें पढ़े लिखे समाचार पत्रोंके प्रेमियोंकी संख्या अत्यल्प होनेसे इस पत्रको अन्य सालोंसे कहीं अधिक घाटा उठाना पड़ा है जिसको हम प्रथम अंकमें प्रकाशित करेंगे इसलिये हम अपने ग्राहक, अनुग्राहक पृष्ठ पोषक संरक्षक आदि प्रत्येक सज्जन से प्रार्थना करते है कि जिस प्रकार हो, अपनी शक्ति न छिपाकर सहायता दीजिये, ग्राहक बनाइये खुशीके कार्योंमें सहायता दीजिये दिलाइये औरर समय भी कुछ मदद कीजिये। इसमें जो विषय रहते है, जैसी छपाई सफाई और कागज आदि रहाकरते है वह सब आपको ज्ञातही है अतः इस समय जरूर२ मदद करिये

अंतमें

हम अपने वीतराग देवसे समाज और धर्म सेवा करने की नई नई उमंगें और उत्साहों की प्रार्थना कर आपकी सेवामें शीघ्र ही पुनः अनेका वायदाकर विदा लेते हैं।

जैन सिद्धांत प्रकाशक (पवित्र) प्रेस, श्यामबजार-कलकत्ता। वैशाख वदी ८मी २४४७